रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह

प्रथम खण्ड

RASTANTRASAAR & SIDDHAPRAYOG SANGRAHA

PART 1

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन (ध.ट्र.)

पोस्ट : कालेड़ा– कृष्ण गोपाल–305408 (अजमेर) राजस्थान

KRISHNA GOPAL AYURVED BHAWAN (D.T.)

Post: Kalera-Krishna Gopal-305408 (Ajmer) Rajasthan

ॐ

कृष्ण गोपाल ग्रन्थमाला का प्रथम रत्न

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

प्रथम खण्ड

: : प्रकाशक : :

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन [ध. ट्र.]

पो. कालेड़ा-कृष्णगोपाल - 305408

(जिला–अजमेर) राजस्थान

१.	प्रथम संस्करण	जुलाई	१९३२ ई.
२.	द्वितीय संस्करण	जुलाई	१९३८ ई.
३.	तृतीय संस्करण	अप्रेल	१९४२ ई.
४.	चतुर्थ संस्करण	मार्च	१९४५ ई.
५.	पंचम संस्करण	जनवरी	१९४७ ई.
६.	षष्ठम् संस्करण	जनवरी	१९४९ ई.
७.	सप्तम् संस्करण	सितम्बर	१९५१ ई.
८.	अष्टम् संस्करण	अगस्त	१९५६ ई.
९.	नवम् संस्करण	मई	१९६१ ई.
१०.	दशम् संस्करण	दिसम्बर	१९६६ ई.
११.	एकादश संस्करण	नवम्बर	१९७३ ई.
१२.	द्वादश संस्करण	दिसम्बर	१९८० ई.
१३.	तेरहवां संस्करण	मार्च	१९९१ ई.
१४.	चौदहवां संस्करण	सितम्बर	१९९९ ई.
१५.	पंद्रहवां संस्करण	जून	२००१ ई.
१६.	सोलहवां संस्करण	मार्च	२००३ ई.
१७.	सतहरवां संस्करण	मार्च	२००६ ई.
१८.	अठारवां संस्करण	फरवरी	२०१० ई.
१९.	उन्नीसवां संस्करण	मई	२०१० ई.
२०.	बीसवां संस्करण	अगस्त	२०११ ई.
२१.	ईक्कीसवां संस्करण	अप्रेल	२०१२ ई.
२२.	बाईसवां संस्करण	जून	२०१३ ई.
२३.	तेईसवा संस्करण	मई	२०१४ ई.
२४.	चौइसवां संस्करण	फरवरी	२०१५ ई.
२५.	पच्चीसवां संस्करण	नवम्बर	२०१५ ई.

चौइसवा संस्करण जून २०१३ तक ७०७५० प्रतियां
एवं पच्चीसवां संस्करण (वर्तमान) की १००० प्रतियां
कुल मिलाकर ७१७५० प्रतियां प्रकाशित

पच्चीसवां संस्करण प्रति १०००
सन् २०१५

मूल्य-३३५/- रु.

सर्वाधिकार :

मुद्रक :
स्कावयर प्रिन्टर्स,
जयपुर
मो. 9829609746

: : प्रकाशक : :

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन (धर्मार्थ ट्रस्ट)

पो. कालेडा कृष्ण गोपाल-305 408 (जिला अजमेर) राजस्थान

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन (धर्मार्थ ट्रस्ट)
के
संस्थापक

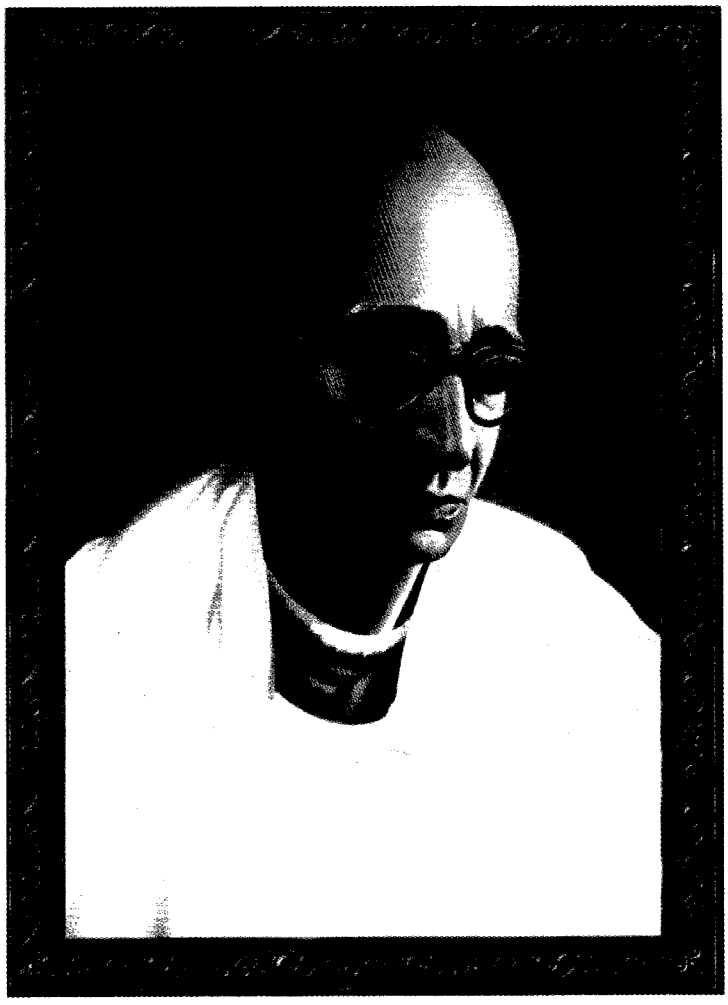

स्वर्गीय स्वामी श्री कृष्णानन्द जी महाराज

जन्म : 3.7.1889 निर्वाण : 30.12.1974

प्रकाशकीय निवेदन

नमः सवित्रे जगदेक चक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थिति नाश हेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्म धारिणे विरंचिनारायण शंकरात्मने॥

परब्रह्म परमात्मा की असीम अनुकम्पा से **'रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह-प्रथम खण्ड'** का 19वां संस्करण आयुर्वेद विद्वानों एवं जन मानस की सेवा में प्रस्तुत है। कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन (ध.ट्र.) कालेड़ा, अजमेर द्वारा निर्मित औषधियों का मुख्य आधार प्रातः स्मरणीय स्वामी श्री कृष्णानन्दजी महाराज द्वारा संग्रहित व रचित **'रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह'** ग्रन्थ है। हमारा सदैव यह प्रयास रहा है कि उत्तम कोटि की औषधियों का निर्माण कर सर्व साधारण जनमानस की सेवा कर सके।

वर्तमान में जब आयुर्वेद विज्ञान की महत्ता को विश्व के अनेक देशों ने मान्यता दी है, तो हमारा भी यह कर्त्तव्य है कि जनमानस तक पहुंचाने के लिये शुद्ध आयुर्वेदिक औषधियां निर्माण हो तथा आयुर्वेद साहित्य का प्रकाशन करें।

आयुर्वेद साहित्य के प्रकाशन में कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन (ध.ट्र.) कालेड़ा, अजमेर का अपना विशिष्ठ स्थान रहा है। भवन ने अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थों का प्रकाशन किया है जिनकी विद्वानों एवं सर्वसाधारण में अच्छी प्रतिष्ठा है। अद्यावधि आयुर्वेद शिक्षा शास्त्रियों एवं चिकित्सकों में इस ग्रन्थ 'रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह प्रथम खण्ड' की अत्यधिक मांग अनुसार 18वें संस्करण की 1000 प्रतियों के विक्रय होने के कारण इसकी अत्यधिक लोकप्रियता एवं महाविद्यालयों द्वारा मांग होने पर 19वाँ संस्करण प्रकाशित कर प्रस्तुत है, यह संस्करण अत्यधिक आर्कषक स्वरूप एवं बड़े आकार में प्रस्तुत किया जा रहा है।

विद्वान वैद्यों द्वारा प्रकाशन में पूर्ण रूप से सावधानी रखी गयी है इसके उपरान्त भी त्रुटि मिलने पर अवश्य सूचित करें। इस खण्ड की अभी तक 65750 प्रतियों का प्रकाशन एवं निरन्तर इसकी उपयोगिता यह दर्शाती है कि आयुर्वेद जगत में अत्यधिक सरल भाषा का यह एक मात्र ग्रन्थ है। यह जानकर आपको प्रसन्नता होगी कि इस पुस्तक का द्वितीय खण्ड द्वादश संस्करण भी नये आकार एवं त्ररूप में प्रकाशित कर दिया गया है। कृपया विद्वान पाठक एवं औषधि-निर्माता, चिकित्सकों एवं महाविद्यालय स्नातकों से निवेदन है कि स्थानीय विक्रेता से अपनी प्रतियां प्राप्त करने हेतु सम्पर्क करें।

इति शुभम्।

वरिष्ठ व्यवस्थापक
कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन (ध.ट्र.)
कालेड़ा-अजमेर

मई, 2010

* श्री *

सतहरवां संस्करण की विज्ञप्ति

श्री परब्रह्म परमात्मा की परमकृपामयी अनुकम्पा से यह 'रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड' का संस्करण हमारे कृपालु सज्जन, गुणाग्राही ग्राहकों तथा विद्वान वैद्यों के करकमलों में समर्पित है।

इस लोकप्रिय व सार्वजन हितैषी ग्रन्थ के मूल रचयिता स्वर्गीय स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज ने "**नात्मार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति**" न स्वयं के लिए, न सकाम भावनाओं से किन्तु मानव मात्र पर दया (सेवा) के एक मात्र लक्ष्य से कड़े परिश्रम व त्याग द्वारा प्रकाशित करवाकर जनता जनार्दन की सेवा का परम लाभ लिया है।

उन्हीं महात्मा की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने तथा प्रकाशन-प्रवाह को निरन्तर रखने की दृष्टि से यह संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इस ग्रन्थ की उपयोगिता के विषय में कुछ भी लिखना अपर्याप्त होगा। इसके १६ संस्करणों में ५७७५० प्रतियां अभी तक निकल चुकी हैं। साथ ही इसके तीन गुजराती संस्करण भी निकल चुके हैं। इन परिस्थितियों में यह ग्रन्थ-पुष्प न केवल औषध-निर्माण तथा चिकित्सा के आदर्श की पूर्ति करता है, वरन् जन-कल्याण की भावनाओं व कामनाओं की पूर्ति भी करता है।

उदारमना धर्म-परायण श्री प्रन्यास मण्डल ने इस ग्रन्थ का मूल्य स्वल्प बढ़ाकर प्रायः लागत मात्र मूल्य रखने का निर्णय लेकर सर्वसुलभ बना दिया है।

इसके प्रति संस्करण में संशोधनादि होते रहने से इसका कलेवर अधिक बढ़कर इस मँहगे युग में इतनी भारी कीमत न हो जाये कि सामान्यजन इसे खरीदकर लाभ न उठा सकें, अतः संस्था ने संकलन करके 'क्वाथ संग्रह' 'चूर्णसंग्रह' व 'नित्योपयोगी गुटिका संग्रह' आदि लघु पुस्तिकायें अलग से प्रकाशित की हैं-वे इसी ग्रन्थ पुष्प के अङ्ग हैं। इन्हें तथा इस ग्रन्थ को पाठक, ग्राहक पृथक्-पृथक् कम मूल्य में ही खरीद सकते हैं।

इस संस्करण में पूर्व संस्करणों की त्रुटियों को निकालकर और परिशिष्ट के नवीन योगों को प्रकरणानुसार यथास्थान देकर संशोधन और परिवर्धन कर दिया है।

इस ग्रन्थ में औषध व मात्रा आदि में पुराने तौल, मानों का ही उपयोग समयाभाव से किया गया है, इसका हमें खेद हैं, किन्तु प्रयोग कर्त्ताओं की सुविधा हेतु पुराने व नये मानों की तालिका भी ग्रन्थ में दे दी है। तदनुसार परिवर्तन करके लाभ उठाने का कष्ट करेंगे।

संभावना है कि इतने प्रयास पर भी वर्ण संयोजक दोष, जो दृष्टि दोष तथा प्रमादवश रह गए हों, उन्हें सज्जन वृन्द, विद्वान वैद्य सुधारकर हमें अवगत कराने की कृपा करेंगे। जिससे अग्रिम संस्करणों में उन्हें सुधारने का प्रयास किया जा सके।

॥ इत्यलम् ॥

* निवेदन *

मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय का मूल आधार स्तम्भ 'रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' यह ग्रन्थ है। पूज्य सवामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज ने अपना सर्वस्व सार अनुभव व ज्ञान, इस गन्थ के द्वारा जनता जनार्दन एवं आयुर्वेद जगत् के सामने रखा है। यह ग्रन्थ ३ खण्डों में विभक्त है, तृतीय खण्ड प्रकाशनाधीन है।

आयुर्वेद विषयक संस्कृत एवं देशी भाषाओं में अनेक ग्रन्थ हैं किन्तु 'रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' यह ग्रन्थ अपने ढंग का अनोखा है। इसकी भाषाशैली सरल एवं सहज समझ में आने लायक है। इसमें आयुर्वेद के प्रचलित करीब-करीब सभी योग दिये गये हैं। औषधियों की बनावट इस ढङ्ग से दी है कि आयुर्वेद का ज्ञान रखने वाला कोई सामान्य चिकित्सक औषध बना सकता है। औषध उपयोग भी इतना विस्तृत रूप से दिया हुआ है जिससे रोग निदान, चिकित्सा एवं औषध उपचार सरलता से किया जा सकता है। यह कृष्णगोपाल का पुष्प आज समस्त भारतवर्ष में चिकित्सक वैद्य, औषध निर्माण वैद्य, आयुर्वेद के विद्यार्थी और आयुर्वेद के प्रेमी सज्जन, इन सभी के हाथों में है। हमने यह अनुभव किया है कि इसकी मांग और भी बढ़ती जा रही है, उसे पूरी करने के लिए हम प्रयत्नशील हैं हमें उम्मीद है कि समस्त आयुर्वेद परिवार उत्तरोत्तर इससे अधिक लाभ उठावेगा। इस ग्रन्थ में नूतन पद्धति के अनुसार औषध क्रिया विज्ञान (फार्मोकोलोजी) की शैली से गुण-वर्णन किया गया है। इसी ग्रन्थ के आधार से हम यहाँ रसायनशाला में औषध निर्माण करते हैं। उत्तरोत्तर बढ़ती हुई औषधियों की माँग से एवं औषधियों के सेवन से होने वाले लाभ द्वारा यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ में दिये हुए प्रयोग प्रमाणिक एवं आशुफलदायी हैं।

यह ग्रन्थ आयुर्वेद के पाठ्यक्रम ग्रन्थों में से एक है, केन्द्रीय एवं अन्य राज्यों के फार्मोकोपिया में इस ग्रन्थ में उल्लिखित अनेक योगों के मान्यता दी है। अभी तक आयुर्वेद महाविद्यालय में इसका जितना उपयोग होना चाहिए था उतना नहीं हो पाया है। आज घरेलू वैद्य की तरह इसने

कई घरों में प्रवेश पाया है, अब हमें आशा है कि अनेक विद्यालयों में भी इस ग्रन्थ का उपयोग होने लगेगा जिससे आयुर्वेद शिक्षा को प्राप्त करने वाले विद्यार्थी भी इससे विशेष लाभ उठा सकें। हमारे कई उपयुक्त ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और हो रहे हैं। उनमें यह ग्रन्थ प्रथम स्थान रखता है। अन्य ग्रन्थों के नाम व मूल्य ग्रंथ कवर के अंत में दिये गये है।

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन की प्रतिष्ठा सत्य एवं सेवा पर आधारित है। संस्था ने आयुर्वेद जगत् में यह पहला कदम उठाया है कि अपना कोई भी प्रयोग गुप्त न रखा जाय। इसी मूल बुनियाद के आधार पर हम हमारे सभी योग प्रकट करते आ रहे हैं जो इस ग्रन्थ में एवं इसके दूसरे खण्ड में आपके समक्ष हैं।

आज भारत में हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्धति से आयुर्वेद का गौरव पुनः बढ़ने लगा है। राज्य सरकारें भी इस ओर आकर्षित हो रही हैं। खासतौर पर राजस्थान सरकार ने इस दिशा में काफी कदम उठाये हैं। राजस्थान के अङ्गभूत होने के नाते हम भी आयुर्वेद के उत्थान में सहायक होना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। हमें पूरी आशा है कि हमारे अनुभवों का हमारी प्रादेशिक राज्य सरकार एवं भारत के अन्य राज्य लाभ उठायेंगे इस दिशा में अगर कुछ अंश तक भी हम सहायक बन सकें तो अपने को कृत्य-कृत्य मानेगें। सेवा-परायणवृत्ति धारण करने से हम हमारा यह प्रमुख कर्त्तव्य भी मानते हैं।

इस ग्रन्थ की प्रथमावृत्ति से लगाकर दशम आवृत्ति तक पूज्य स्वामीजी महाराज ने प्रत्येक संस्करण में संशोधन एवं परिवर्द्धन किया है। आपके आदेशानुसार तथा रसायनशाला में प्रत्यक्ष क्रियानुभव द्वारा प्राप्त नूतन प्रयोग कूपीपक्व रसायन अद्वितीय योग शतगुण गन्धक जारित, अभ्रमाक्षिक सत्व ग्रासित सुवर्ण चन्द्रोदय का चमत्कारिक प्रयोग भी वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री द्वारा बढ़ाये हैं।

इस ग्रन्थ लेखन में मराठी ग्रन्थ 'आयुर्वेदीय औषध गुणधर्म शास्त्र' ले. स्व. गंगाधर शास्त्री गुणे से काफी मदद मिली है, इसलिए हम ग्रन्थ लेखक और प्रकाशक, संस्था के आभारी है। इसके अतिरिक्त कई प्राचीन शास्त्र, 'आयुर्वेद निबन्ध माला' (गुजराती) 'रसायनसार संग्रह' (गुजराती) 'वैद्यकसार संग्रह' (मराठी) और अर्वाचीन आयुर्वेद, यूनानी ग्रन्थों और कई मासिक पत्रों तथा परिचित अनुभवी वैद्यों से भी योग मिले हैं, उन सबके हम हृदय से आभारी है।

आभार प्रदर्शन के समय कविराज प्रतापसिंहजी का संस्मरण हो आता है। आपकी इस संस्था पर असीम कृपा रही थी। आपने सातवें संस्करण का संशोधन कर देने की कृपा भी की थी। कितने ही अनुभूत विचार और प्रयोग स्व. आचार्य पं. सुखरामदासजी टी. ओझा से मिले थे, जो इस ग्रन्थ में यथास्थान सम्मिलित किये गये हैं एवं कतिपय नूतन विचार वै. बापालाजी शाह आयुर्वेद मार्त्तण्ड सूरत के लेख से मिले हैं, जिनका उपयोग भी हुआ है। इन सब कृपालु सहायकों का हम हृदय पूर्वक आभार मानते हैं।

छपाई एवं अन्य कार्यों में जो भूलें हुई हों उनके लिए पाठक क्षमा प्रदान कर हमें सूचित करें ताकि अगले संस्करण में सुधार हो सके।

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

कालेड़ा-कृष्णगोपाल

व्यवस्थापक
कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन (ध.ट्र.)

* तोल तालिका *

इस 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' प्रथम भाग में भी पूर्व संस्करणों की भाँति औषधियों के वजन यथा पूर्व होने से उनकी वर्तमान प्रचलित मेट्रीक वजन पद्धति से संतुलन एवं परिवर्तन तालिका नीचे दी जा रही है।

१ रत्ती	= १२१ मिली ग्राम	
६ रत्ती	= ७२९ मिली ग्राम	
८ रत्ती	= १ माशा	= ९७२ मिली ग्राम
१॥ माशा	= १/८ तोला	= १.४५९ ग्राम
३ माशा	= १/४ तोला	= २.९१६ ग्राम
६ माशा	= १/२ तोला	= ५.८३२ ग्राम
१२ माशा	= १ तोला	= ११.६६४ ग्राम
४० सेर	= १ मण	= ३७.३२४ किलो ग्राम

अवोरड्यू पाइस वजन पद्धति		मेट्रीक
१ ग्रेन	=	.०६४७९८९ ग्राम
२७.३४ ग्रेन	= १ ड्राम	= १.७७२
४३७.५ ग्रेन	= १६ ड्राम	= १औंस = २८.३५० ग्राम
७००० ग्रेन	= १६ औंस	= १ पौंड = ४५३.५९२ ग्राम
	२८ पौंड	= १ क्वार्टर = १२.७० कि.ग्रा.
	११२ पौंड या ४ क्वार्टर	= १ हेडरवेट = ५०.८०२ कि.ग्रा.

भूमिका

*

यह बात निर्विवाद है कि सत्य किसी से छिपाये नहीं छिप सकता। अन्तिम निर्णय भी वही होता है, जो सत्य रहता है। सारांश-सत्य की सदा विजय होती है। "सत्ये नास्ति भयं क्वचित" इस उक्ति के अनुसार सत्य को कही किसी प्रकार का भय भी नहीं रहता। यह उक्ति हमारे आयुर्वेद के लिए चरितार्थ हो रही है। चाहे कोई कितनी ही निन्दा क्यों न करें, अन्त में उसे मानना ही पड़ेगा कि आयुर्वेद सिद्धान्त ध्रुव एवं सत्य है, यूरोप आदि शीत कटिबन्ध निवासियों के आहार-विहार की ओर दृष्टि रखकर अद्यावधि जितनी एलोपैथिक आदि औषधियाँ बनी हैं, वे उनके लिए चाहे हितकारी हों, परन्तु हमारे महर्षियों का यह कथन पूर्ण सत्य है कि :

"यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम्।"

अर्थात् जो प्राणी जहां जन्मा है, उसके लिए उसी देश के औषधि एवं आहार-विहार हितकारी होते हैं। अर्थात् भारतीय आर्यों के लिए भारतीय औषधि अन्न और विहार ही हितकारी हैं। यही युक्ति सिद्धान्त सूत्र के तात्पर्यार्थ है। इसी सिद्धान्त के अनुसार भगवान् स्वयंभू ने आर्यों के कल्याणार्थ वेदों के अनेक सूक्तों में आयुर्वेदोपदेश का विवेचन किया है कि, "किस प्रकार प्राणिमात्र नाना महौषधियों से आयु और आरोग्य का रक्षणकर दीर्घायु प्राप्त कर सकता है एवं यक्ष्मादि भयंकर रोगों से छुटकारा पा सकता है।" किन्तु वेद या वेदवाणी, सबही के लिए सुलभ नहीं है। सूत्र रूप से कहे हुए इन गूढ़ सूक्तों तथा मंत्रों के गम्भीर अर्थ को यथावत् जान लेना भावी अल्पज्ञ सन्तानों के लिए टेड़ी खीर है, इस भावना से प्रेरित हो, सम्पूर्ण जगत् के कल्याणेच्छुक आत्रेय, भारद्वाज, काश्यप, पाराशर, सुश्रुतादि महर्षियों ने इन वेद सूक्तों के विस्तृत व्याख्यान रूप आयुर्वेदिक संहिताग्रन्थों की रचना की थी। इनमें से कतिपय कालवशात् लुप्तप्राय: हो गये हैं। वर्तमान काल में केवल अत्रिसंहिता, भेलसंहिता, काश्यप संहिता, चरकसंहिता, सुश्रुत संहितादि थोड़े से संहिता ग्रन्थ विद्यमान हैं।

वेदों की तरह इन संहिताओं में भी अर्थगाम्भीर्य एवं मनुष्यों के उत्तरोत्तर बलबुद्धि के ह्रास का अनुभव कर वाग्भट्ट, वृन्द, वंगसेन, चक्रपाणि, गयदास, शार्ङ्गधर, विजयरक्षित, श्री कण्ठदत्त, हेमाद्रि, चन्द्रनन्दन, अरुणदत्त, डल्हण भावमिश्रादि अनेक आचार्यों ने इस संहिताओं पर व्याख्यायें व स्वतन्त्र ग्रन्थ रचनाएं की हैं। इन धान्वन्तर आत्रेय साम्प्रदायिक संहिता ग्रन्थों के साथ-साथ भगवान् शंकर के सिद्ध साम्प्रदायिक ग्रन्थों का भी अवतार हुआ। धान्वन्तरात्रेय साम्प्रदायिक ग्रन्थों में केवल वनौषधियों द्वारा जैसे चिकित्सा वर्णन है, वैसे ही सिद्धरसार्णव, काकचण्डीश्वर, रसरत्नाकरादि सिद्धसाम्प्रदायिक ग्रन्थों की चिकित्सा में पारदादि, रसोपरस स्वर्णादि धातुपधातु हीरकादि मणि आदि का महत्त्व है। सारांश यह है कि उपर्युक्त सभी ग्रन्थ संस्कृत में अपने-अपने विषयों का वर्णन करने वाले हैं। धान्वन्तर साम्प्रदायिक शल्यचिकित्सा (Surgery) आत्रेय साम्प्रदायिक कायचिकित्सा (Medicines) और सिद्ध साम्प्रदायिक रसायन शास्त्र (Chemistry) के पथप्रदर्शक रहते हुए भी वे महात्मा-गण पारस्परिक हस्तक्षेप करने वाले नहीं थे और न वर्तमान की तरह वे एक दूसरे को देख कुढने-चिड़ने वाले ही थे, अपितु सबका परस्पर में बड़ा आदर भाव था। अपने शास्त्र के अधिकार की बात न रहने पर वे स्पष्ट कहते हैं; कि यह इस शास्त्र का विषय नहीं किन्तु अमुक शास्त्र का विषय है। उदाहरणार्थ-शस्त्र क्रिया साध्य विषय का पूरा वर्णन करने के बाद औषधि विषय के प्रारम्भ में ही महर्षि सुश्रुताचार्य कहते हैं, कि-"पराधिकारे न विस्तरोक्ति" अर्थात् यह कायचिकित्सा शास्त्र का विषय है, अत: मैं यहां विस्तार नहीं करना चाहता। इसी प्रकार चरकाचार्य ने भी अपने संहिता ग्रन्थों में केवल औषधि साध्य बात को ही कहा है। शस्त्रक्रियासाध्य रोग के विषय में स्पष्ट कह दिया है कि; "अत्र धान्वन्तराणामेवाधिकार:" अर्थात्-इस शस्त्रक्रिया के विषय में धन्वन्तरि संहिता के अनुयायियों का ही अधिकार है। यह इस शास्त्र का विषय नहीं है।

किन्तु आगे चलकर इन तीनों सम्प्रदायों की चमत्कारिक चिकित्सा प्रणालियों की उपयुक्तता को अनुभव करने वाले कतिपय दीर्घदर्शी आचार्यों ने सबका समन्वय एक ही ग्रन्थ में रहना अच्छा समझा और वैसा ही कर भी डाला। उदाहरणार्थ चक्रदत्त, वंगसेन, शार्ङ्गधर संहिता, भावप्रकाश, योगचिन्तामणि, योगरत्नाकर आदि ऐसे समन्वयात्मक अनेक ग्रन्थ आज हम सबके समक्ष विद्यमान हैं। इसी प्रकार अल्प संस्कृतज्ञों एवं केवल हिन्दी जानने वालों के लिए इन सब ग्रन्थों की भाषा-टीकाएं भी बनी छपी हैं। इतना ही नहीं कतिपय आधुनिक वैद्य महाशयों ने केवल सरल हिन्दी में संग्रह तैयार किये हैं, जो छपकर बिक रहे हैं। उदाहरणार्थ–चिकित्सा चन्द्रोदय, रस हजारा, आयुर्वेद प्रकाश आदि। ''रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह'' नामक प्रस्तुत ग्रन्थ भी इसी संग्रह कोटि में आता है तथापि यह उपर्युक्त सब ही संग्रह ग्रन्थों में अपनी कुछ विशेषता रखता है। अत: इस विषय में कुछ कह देना अप्रासंगिक न होगा।

आज तक कई छोटे बड़े संग्रह मेरे देखने में आये हैं। वैद्यक विषय की कई बातें ऐसी हैं, जिनका एक ही ग्रन्थ में संगृहीत रहना नितान्त आवश्यक है। परन्तु ऐसा देखने में नहीं आया। आवश्यक बातें दो चार एक में हैं तो एक दो दूसरे में और इसी प्रकार कुछ बातें किसी और संग्रह में हैं। ऐसी अवस्था में साधक को एक ही जगह बातें न मिलने से कई संग्रहों को देखने की झंझट रहती है। कई बड़े-बड़े संग्रह होने पर भी उनमें उक्त आवश्यक बातों का नामोनिशान तक नहीं दिखाई देता। ऐसी अवस्था में ऐसे संग्रह ग्रन्थ की नितान्त आवश्यकता थी, जो न बहुत बड़ा हो और न नितान्त छोटा। इसके अतिरिक्त ऐसा भी न हो जिसमें वैद्यक विषय की महत्त्व की बात छूट जाय। यदि सच कहा जाय तो इस बड़ी भारी कमी की पूर्ति कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन कालेड़ा (अजमेर) द्वारा प्रकाशित सरल हिन्दी के 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' ने की है। यह वस्तुत: परम्परा प्राप्त दीर्घकाल तक अनुभव की हुई वैद्यक विद्या का निचोड़ है। सारांश यह है कि इसके विद्वान अनुभवी लेखक ने–

(१) आयुर्वेदीय प्रयोग विधान में चिकित्सोपयोगी सभी महत्व की बातें सरल भाषा में स्पष्ट समझाई हैं।

(२) आवश्यक सूचना प्रकरण बड़ा महत्व रखता है, क्योंकि रोगी, रोग, औषधि और आहार-विहारादि विषयक सभी उपयुक्त सूचनाएं एक ही स्थान में दे दी गई हैं।

(३) परिभाषा–प्रकरण में औषधियों के बनाने की विधि, तोल, नाप, पुटविधि, यन्त्रों का वर्णन और उनके चित्र इत्यादि बातें विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं।

(४) शोधन-प्रकरण में धातु-उपधातु विष आदि की शोधन विधि वही दी है जो सरल और अनुभूत है।

(५) भस्म प्रकरण में कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय की रसायनशाला में जिस विधि से भस्में बनाई जाती हैं, जिससे मनुष्यों का निश्चित उपकार हो रहा है, रोगी रोग मुक्त होते हैं, जो शतशोऽनुभूत हैं, उन्हें खोलकर सरल भाषा में लिख दिया गया है। इतना ही नहीं, उनका गुण विवेचन भी विस्तारपूर्वक लिखा है।

(६) कूपीपक्व रसायन अर्थात् मकरध्वज-चन्द्रोदयादि बनाने की सरल अनुभूत विधियां जैसी इस संग्रह में है, वैसी किसी भी संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि भाषा ग्रन्थों में नहीं है।

(७) पर्पटी, खरलीय रसायन अर्थात् सभी प्रकार के अनुभूत एवं प्रभूत रस, गुटिका, चूर्ण, क्वाथ, आसव-अरिष्ट, घृत, तैल, पाक, अवलेह, अञ्जन, लेप, मलहम आदि सभी प्रकरणों के आदि में महत्व की सूचना और औषधि विधि आदि का वर्णन किया गया है। विशेषता यह है कि, व्यर्थ आडम्बर न कर वे ही प्रयोग दिये हैं जो अपने अनुभूत हैं। प्रत्येक प्रयोग के साथ मूल ग्रन्थ जिससे प्रयोग लिखा गया है या जिस सज्जन का अनुभूत है, उसका नाम तक लिख दिया है।

(८) अनुक्रमणिका भी दो प्रकार से दी है यथा-रोगानुसार और औषधों के नामानुसार। रोगानुसार औषध सूची में विशेषता यह है कि उपद्रव भेद और वातादि दोष भेद से औषधि भेद दिखाया गया है।

इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण छप चुका है और अपनी अतीव उपयुक्तता के कारण हाथों-हाथ बिक भी चुका है। यह ग्रन्थ छोटा होने पर भी इसमें जितने विषयों का समावेश किया गया है उन सभी को वैद्यक व्यवसायियों ने नितान्त उपयुक्त समझा और लाभ भी उठाया है। मैंने भी इस ग्रन्थ के प्रथम संस्करण के कई फलदायी प्रयोगों को बनाकर अनुभव किया तो मुझे अत्यन्त सन्तोष हुआ और मेरी इच्छा हुई कि यदि इसी प्रकार का विवेचन कर जिन-जिन विषयों का समावेश इसमें नहीं हुआ है उन्हें भी स्थान दिया जाय, तो सोने में सुगन्धि हो जाय। मैंने यह सूचना इस ग्रन्थ के मूल लेखक श्रद्धेय स्वामीजी महाराज श्री कृष्णानन्दजी को दी। मेरी सूचना का आदर करते हुए स्वामीजी ने लिखा कि अगले संस्करण के समय में इसका ध्यान अवश्य रखूंगा। सौभाग्य की बात है कि शुभावसर शीघ्र ही प्राप्त हो गया।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' का संशोधित एवं परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण है। अनेक अवशिष्ट बातों के सांगोपांग विवेचन का समावेश किये जाने से अब यह ग्रन्थ प्रथमावृत्ति से लगभग चौगुना हो गया है। इतना होने पर भी मूल्य में विशेष वृद्धि नहीं गई। इस एक ही पुस्तक के पास रहने से वैद्यों को इधर-उधर भटकने या अनेक पुस्तकों को रखने का झंझट नहीं करना पड़ेगा। यह ग्रन्थ घर प्रवास में लाभ देने वाला हो गया है। इस एक ही ग्रन्थ के सहारे से वैद्य अपना काम भली-भांति कर सकता है। सारांश, चिकित्सोपयोगी ऐसी कोई बात नहीं छूटी जो इस ग्रन्थ में संग्रहीत न हुई हो। प्रत्येक वैद्य को चाहिए कि, वे इस ग्रन्थ का समुचित आदर करें और लाभ उठावें। इतना ही नहीं, सर्वसाधारण के लिये भी यह ग्रन्थ बड़े काम की चीज है, इसलिए मैं तो कहूँगा कि इसकी एक-एक प्रति प्रत्येक घर में रहनी चाहिए।

लेखक के निवेदन में स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशक-कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन द्वारा सब काम केवल प्राणि मात्र पर दया दृष्टि से हो रहे हैं। उनकी चिकित्सा दीन-दुखियों के लिए सदैव धर्मार्थ रहती रही है। मैं आशा करता हूँ कि सभी सज्जन इस भवन के प्रत्येक कार्य में तन, मन और धन से सदैव सहायक रहेंगे।

नागपुर
१-६-१९३८ ई.

श्री गोवर्धन शर्मा छांगाणी

* कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमाला *

कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमाला के ३१ पुष्प आज तक प्रकाशित हुए हैं। कुछ मुख्य ग्रन्थों का परिचय भी अलग से दिया हुआ है। इस 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' ग्रन्थ की विशेषताएं निम्न प्रकार हैं-

१-पुरातन आयर्वेदीय योग, उनकी बनावट (निर्माण) एवं उपयोगों को सरलता से अपने अनुभव के आधार पर प्रकट करना।

२-चिकित्साक्षेत्र में आधुनिक विज्ञान के साथ-साथ भारतीय पुरातन चिकित्सा विज्ञान को समन्वयपूर्वक प्रत्यक्ष सामने रखना।

३-रोग की तह में जाकर खोज करना तथा औषधि के बलाबलका विचार इस ढंग से सामने रखना कि सामान्य ज्ञान रखने वाला मनुष्य भी उसे समझ सके एवं उपयोग में ला सके।

गत वर्षों में संस्था ने रसशास्त्र अन्वेषण विषयक कार्य शुरू किया है और संस्कारित पारदयुक्त औषधियां भी बनाई हैं, उनका दिग्दर्शन यहाँ से निकलने वाले 'स्वास्थ्य' मासिक में आता ही है। उसका विशेष विवरण 'रसतत्व विवेचन' नामक पुस्तक में हुआ है। इससे पूर्व रसशास्त्र विषयक पुस्तकें (१) रसहृदयतन्त्र (२) रसोपनिषद् (प्रथम खण्ड) तथा (३) रसशास्त्र प्रवेशिका यहाँ से प्रकाशित हुई है।

रोग निदान व चिकित्सान्तर्गत सिद्ध परीक्षा पद्धति (प्रथम खण्ड) में रोग निदान का बड़े विस्तार से प्रश्न परीक्षा, रोग की सामान्य दशा तथा प्रकृति का भी सुन्दर वर्णन किया है, साथ-साथ शारीरिक संस्थानों के अनुसार विविध परीक्षाएं नूतन शैली से सरल भाषा में लिखी गई हैं। 'चिकित्सातत्व प्रदीप' २ खण्डों में प्रकाशित हुआ है, इसी ग्रन्थमाला के 'नेत्ररोग विज्ञान' नामक ग्रन्थ में नेत्र रोग व चिकित्सा का प्रथम बार हिन्दी भाषा में इतना सुविशाल परिचय दिया गया है जो प्रत्येक क्षेत्र के चिकित्सक के लिए पठनीय व मननीय है। 'औषधगुणधर्म विवेचन' नामक ग्रन्थ हिन्दी पाठकों के लिए अत्युपयोगी है। इसके साथ-साथ वनौषधिज्ञान सम्बन्धी 'गाँवों में औषधरत्न' तीन भागों में प्रकाशित किया गया है, जिनमें ३५६ वनौषधियों के पांचों ही अङ्गों का सुविस्तृत मैटेरिया मेडिकात्मक नूतन शैली से विवेचन किया गया है। विविध भाषाओं में पर्याय शब्द भी दिये गये हैं।

भारत के हर क्षेत्र में ज्ञान का अगाध भण्डार भरा है, उसमें से कुछ हिस्सा लेकर अगर हम अपने अनुभव प्रत्यक्ष प्रकट करें तो बहुत कार्य हो सकता है। ज्ञान वही उपयुक्त है जो अनुभव में लाया जाये, औषधि वही श्रेष्ठ है कि जो रोग का निवारण कर सके "तदैव युक्त भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।"

आधुनिक आयुर्वेद मनीषी एवं विद्वज्जनों से प्रार्थना है कि वे अपने अनुभव ज्ञान के द्वारा हमारे कार्य में सहयोग करें। यह जरूरी है कि जहाँ पाश्चिमात्य विज्ञान अत्युच्च शिखर पर स्थित है, वहाँ आयुर्वेद को उसके मुकाबले में उठकर खड़ा होना है। कारण वे पूर्तियां आयुर्वेद से ही हल हो सकती हैं।

न त्वहं कामये राज्यं स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्॥

आधार ग्रन्थों की संकेत सूची

संस्कृत ग्रन्थ

अनु.त.	अनुपान तरंगिणी।	भा.प्र.	भाव प्रकाश।	र.र.स.	रसरत्नसमुच्चय।
अ.ह.	अष्टाङ्गहृदय।	भा.भै.र.	भारत भैषज्यरत्नाकर।	र.रा.सु.	रस राजसुन्दर।
आ.प्र.	आयुर्वेद प्रकाश।	मा.नि.	माधवनिदान।	र.सा.	रसायनसार।
ग.नि.	गदनिग्रह।	भै.र.	भैषज्यरत्नावली।	र.सा.सं.	रसेन्द्रसार संग्रह।
च.सं.	चरकसंहिता।	यो.र.	योग रत्नाकर।	वृ.मा.	वृन्दमाधव।
च.द.	चक्रदत्त।	र.का.	रसकामधेनु।	वै.जी.	वैद्य जीवनम्।
नि.र.	निघण्टूरत्नाकर।	र.चं.	रसचण्डांशु।	शा.सं.	शार्ङ्गधर संहिता।
बृ.नि.र.	बृहद् निघण्टूरत्नाकर।	र.चि.	रसचिन्तामणि।	सि.भे.म.	सिद्धभेषजमणिमाला।
व.रा.	वसवराजीयम्।	र.त.	रसतरङ्गिणी।	सि.भे.म.	सिद्धभेषज्यमञ्जूषा।
बृ.यो.त.	बृहद् योगतरिङ्गणी।	र.यो.सा.	रसयोगसागर।	सु.सं.	सुश्रुतसंहिता।
ब.से.	बंगसेन।	र.र.	रसरत्नाकर।	हा.सं.	हारीतसंहिता।

हिन्दी ग्रन्थ

अ.यो.मा.	अनुभूत योगमाला।	बा.चि.	बालचिकित्सा।	ति.अ.	तिब्बे अकबर।
इ.गु.	इलाजुलगुर्बा।	चा.चि.	चारु चिकित्सा।	धन्वन्तरि	धन्वन्तरि (मासिक)
खू.चि.	खूबचन्द चिकित्सा।	चि.चं.	चिकित्सा चन्द्रोदय।	स्वा.र.	स्वास्थ्य रक्षा।

गुजराती ग्रन्थ

अ.प्र.	अनुभूत प्रयोगावली।	आ.नि.मा.	आयुर्वेदनिबन्धमाला।	र.तं.	रसौद्धारतन्त्र।
आ.औ.	आर्य-औषध।	घ. वै.	घर वैद्य	वै.चि.सा.	वैद्यक चिकित्सासार।
आ.भि.	आर्यभिषक।	रसा.सा.सं.	रसायनसार संग्रह।	वै.स.वि.	वैद्यक सम्बन्धी विचारो।

मराठी ग्रन्थ

औ.गु.ध.शा.	औषधगुणधर्म शास्त्र।	आ.क.नि.	आर्य-वैद्य कलानिधि।	वै.सा.सं.	वैद्यकसार संग्रह।

अनुक्रमणिका

प्रकरण	पृष्ठ	प्रकरण	पृष्ठ	प्रकरण	पृष्ठ
आयुर्वेदीय प्रयोग विधान	१	पर्पटी प्रकरण	१४५	अर्क प्रकरण	३८६
आवश्यक सूचना	४	खरलीय रसायन	१५५	पाक अवलेह शर्बत प्रकरण	३९१
आयुर्वेदीय परिभाषा	१७	गुटिका प्रकरण	३०७	घृत तैल प्रकरण	४०८
द्रव्य शोधन प्रकरण	२७	चूर्ण प्रकरण	३२६	अञ्जन प्रकरण	४२४
भस्म प्रकरण	४०	कषाय प्रकरण	३४८	लेप-मलहम	४२८
कूपीपक्व	११८	आसवादि प्रकरण	३६०	सेक-धूम प्रकरण	

आवश्यक सूचना

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
आहार विहार सम्बन्धी सूचना	१४	औषध सम्बन्धी सूचना	४	रोगी विषयक सूचना	१३
प्रयोगों में मिलाने योग्य		रोग विषयक सूचना	७		
औषधियों की शुद्धि	७				

आयुर्वेदीय परिभाषा

औषधि	पृष्ठ	औषधि	पृष्ठ	औषधि	पृष्ठ
अपामार्ग का क्षार	२२	घृत और तैल बनाने की विधि	२१	भूधर यन्त्र	२०
अभाव वर्ग	२६	चावल के धोवन की विधि	२२	यवक्षार बनाने की विधि	२२
अभ्रक निश्चन्द्र करण विधि	२५	चौसठ प्रहरी पीपल बनाने की विधि	२३	रसांजन बनाने की विधि	२६
अर्क निकालने की विधि	२१	डमरूयन्त्र	१७	लवण यन्त्र	१८
अवलेह बनाने की विधि	२१	तिर्यक् पातन यन्त्र	२०	लाक्षारस विधि	२४
आक का क्षार बनाने की विधि	२२	तिल पञ्चाङ्ग का क्षार	२२	लोबान फूल की विधि	२२
आकाश पातन यन्त्र	२०	तैल पातन यन्त्र	१७	लोबान के तैल बनाने की विधि	२४
इमली की छाल का क्षार	२२	दोलायन्त्र	१८	लोबान की सत्व पातन विधि	२४
एरण्ड तैल निकालने की विधि	२६	नलिका डमरूयन्त्र	१७	वज्रमुद्रा	२०
औषध निर्माण परिभाषा	२१	नलिका यन्त्र	१९	वराह पुट	१७
कज्जली बनाने की विधि	२५	पलाश क्षार	२२	सत्यानाशी का तैल निकालने की विधि	२६
कषाय विधि	२१	पाताल यन्त्र	१८	सराव संपुट	१७
कलई के मैल में से कलई निकालना	२५	पीपल का क्षार	२२	सर्वार्थकारी भ्राष्ट्री	२०
काञ्जी बनाने की विधि	२१	पुट पाक विधि	२१	साधारण मुद्रा	२०
कुक्कुट पुट	१७	पुट यन्त्र आदि विधि	१७	सिद्ध भ्राष्ट्री	२१
केले के खंभे का क्षार	२२	बालुका गर्भपाताल यन्त्र	१८	सिंगरफ से पारा निकालने की विधि	२४
गजपुट	१७	बालुका यन्त्र	१८	सौवर्चल नमक विधि	२३
गिलोय का घन बनाने की विधि	२४	वाष्प यन्त्र	१९	स्वरस यन्त्र	१९
गिलोय का सत्व निकालने की विधि	२४	भीमसेनी कर्पूर बनाने की विधि	२२	स्वर्जिका क्षार	२२

द्रव्य शोधन प्रकरण

अकीक शोधन	३७	उपपन्ना शोधन	३७	कलई शोधन	२७
अण्डे के छिलकों का शोधन	३९	उसारे रेवन्द शोधन	३९	कांसी शोधन	२८
अहिफेन शोधन	३९	एरण्ड बीज का शोधन	३९	कासीस शोधन	३५
अभ्रक शोधन	३१	कनेर मूल का शोधन	३८	कुचिला शोधन	३७

नाम औषधि	पृष्ठ
खर्पर शोधन	३४
गन्धक शोधन	३०
गन्धाविरोजा शोधन	३९
गुञ्जा शोधन	३८
गुग्गुलु शोधन विधि	३८
गेरु शोधन	३१
गोदन्ती शोधन	३४
गोमेद मणि शोधन	३५
चाक मिट्टी शोधन	३१
जर्मन, सिल्वर शोधन	२८
जसद शोधन	२८
जहर मोहरा शोधन	३७
जयपाल शोधन	३७
ताम्र शोधन	२७
तुत्थ शोधन	२९
धतूर शोधन	३७
नीलम शोधन	३५
नौसादार शोधन	२९
पन्ना शोधन	३५
पारद शोधन	३१
पित्त शुद्धि	३९
पिरोजा शोधन	३७
पीतल शोधन	२८
पुखराज शोधन	३५
प्रवाल शोधन	३७
फिटकरी शोधन	३७
वच्छनाभ शोधन	३७
बारहसिंगा शोधन	३७
भल्लातक शोधन	३८
भाँग शोधन	३८
मण्डूर शोधन	२८
मल्ल शोधन	२९
माणिक्य शोधन	३१
मृद्दार श्रृङ्ग शोधन	३५
मनः शिला शोधन	२९
मिश्र धातु तथा उनका शोधन	२८
मौक्तिक शोधन	३६
रसकर्पूर शोधन	३१
रसाञ्जन शोधन	३८
राजावर्त शोधन	३५
रौप्य शोधन	२७
लहशुन शोधन	३९
लांगली शोधन	३८
लोह शोधन	२७
वंग शोधन	२७
वराटिका शोधन	३७
वज्र शोधन	३५
वैक्रान्त शोधन	३५
वैडूर्य शोधन	३५
शंख शोधन	३६
शिलाजीत शोधन	३१-३२
शीशा शोधन	२८
शुक्ति शोधन	३६
समुद्रफेन शोधन	३९
सर्प विष शोधन	३९
सुरमा शोधन	२९
सुवर्ण शोधन	२७
सुवर्णमाक्षिक शोधन	२८
सोहागा शोधन	३७
संगेयसव शोधन	३७
संगेयहूद शोधन	३७
हरताल शोधन	२९
हिंगुल शोधन	२९
हींग शोधन	३९

भस्म प्रकरण

नाम औषधि	पृष्ठ
अकीक पिष्टी (विशेष)	४४१
अकीक पिष्टी	१०२
अकीक भस्म	१०२
अभ्रक भस्म	७५
कर्कट भस्म	११७
कान्तलोह भस्म	११७
कासीस भस्म	८१
कासीस गोदन्ती भस्म	८२
कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म	११३
कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म (विशेष)	४४१
कूर्मास्थि भस्म	११७
काँस्य भस्म	१११
गोदन्ती भस्म	८३
गोमेदमणि भस्म	८९
जसद भस्म ✓	६३
जसद भस्म (विशेष) ✓	४४१
जहरमोहरा भस्म	१०२
ताम्र भस्म	४९
ताक्ष्यं (पन्ना) भस्म	८९
तुत्थ भस्म	१११
तृणकान्तमणि पिष्टी	१०३
तृणकान्तमणि पिष्टी (विशेष)	४४१
त्रिवंग भस्म	६२
नाग भस्म	६६
नीलमणि भस्म	९०
नीलांजन भस्म	११७
प्रवाल भस्म	९३
प्रवाल पिष्टी	९४
पारद भस्म	६९
पिरोजा भस्म	१०३
पीतल भस्म	११०
पुष्पराग भस्म	९०
मण्डूर भस्म	७२
मधु मण्डूर भस्म १७ पुटी	७४
मण्डूर माक्षिक भस्म	७५
मल्ल भस्म	१०६
माणिक्य भस्म	८८
माणिक्य पिष्टी	८९
मुक्ता भस्म	९१
मुक्ता पिष्टी	९२
राजावर्त भस्म	९१
राजावर्त पिष्टी	९१
रौप्य भस्म	४७
लोहभस्म	५३
वंग भस्म	५७
वज्र (हीरा) भस्म	८६
वर्तलोह (जर्मन सिल्वर) भस्म	१११
वराटिका भस्म	९९
वैक्रान्त भस्म	९१
वैडूर्य भस्म	९०
शंख भस्म	१०१
शम्बूक भस्म	११३
शुभ्रा भस्म	११४
शुक्ति भस्म	९८

नाम औषधि	पृष्ठ	नाम औषधि	पृष्ठ	नाम औषधि	पृष्ठ
शुक्ति पिष्टी (द्वितीय विधि)	९९	संगजराहत भस्म	११०	स्फटिकमणि भस्म	११६
शृङ्ग भस्म	१०७	संगेयहूद भस्म	११०	हरताल भस्म	१०३
संगेयसव भस्म	१०९	सुवर्ण भस्म	४४	हरताल गोदन्ती मिश्रित भस्म	११३
संगेयसव पिष्टी	१०९	स्वर्णमाक्षिक भस्म	६९		

कूपीपक्व प्रकरण

अष्टमूर्ति रसायन	१४२	पूर्णचन्द्रोदय रस (विशेष)	१२६	व्याधिहरण रस	१४३
ताल चन्द्रोदय	१३४	मल्ल चन्द्रोदय	१३३	शिलासिन्दूर ✓	१३५
ताल सिन्दूर	१३४	मल्ल सिन्दूर ✓	१३२	सङ्गात सिन्दूर रस	१४५
त्रिपुर भैरव रस	१४४	माणिक्य रस ✓	१३५	समीरपन्नग रस ✓	१३८
पञ्चसूत ✓	१४३	रस सिन्दूर (षड्गुण) ✓	१३०	सुवर्णभूपति रस	१४१
पूर्णचन्द्रोदय रस	१२९	रस कर्पूर ✓	२६३	सुवर्ण वंग ✓	१३६
				हरगौरी रस (सुवर्ण)	१४५

पर्पटी प्रकरण

अभ्र पर्पटी	१५४	बोल पर्पटी	१५१	विजय पर्पटी	१५०
ताम्र पर्पटी	१४९	मल्ल पर्पटी	१५४	शीतल पर्पटी	१५३
पञ्चामृत पर्पटी	१५१	रस पर्पटी	१४७	सुवर्ण पर्पटी	१४८
प्राणदा पर्पटी	१५३	लोह पर्पटी	१५०		

खरलीय रसायन

अगस्ति सूतराज रस	१९१	कर्पूर रस	१९०	गुल्मकालानल रस	२४०
अग्निकुमार रस	२०१	कफकर्त्तन रस	२९४	गुल्मकुठार रस	२३९
अग्नितुण्डी वटी ✓	२०३	कफकुठार रस	२१७	ग्रहणीकपाट रस	१९३
अग्नि रस	२१८	कस्तूरी भैरव रस	१५८	चतुर्मुख रस ✓	३०४
अचिन्त्यशक्ति रस	२९६	कामदुधा रस ✓	२२३	चन्द्रांशु रस	२८१
अमरसुन्दरी वटी	२३०	कामधेनु रस	३०२	चन्दनाहि लोह (ज्वर)	१८१
अमीर रस	२६४	कामिनी विद्रावण रस	२८७	चन्दनादि लोह (प्रमेह)	२४८
अर्धाङ्गवातारि रस	२९४	कालकूट रस	१७२	चन्द्रकला रस	२११
अर्श कुठार रस	१९९	कालारि रस	२९४	चन्द्रशेखर रस	२८४
अश्वकञ्चुकी रस	१६१	कुमार कल्याण रस ✓	२८१	चन्द्रामृत रस	२१७
अश्विनीकुमार रस	२४५	कुमुदेश्वर रस	२२२	जयमङ्गल रस ✓	१६७
आखुविषान्तक रस	२८७	कुष्ठ कुठार रस	३०१	जलोदरारि रस	२५४
आनन्द भैरव रस	१८९	केशरादि वटी (उपदंश)	२६१	जातिफलादि वटी (अतिसार)	१९६
आमवात प्रमथिनी वटी	२३७	कृमि कुठार रस	२०६	जातिफलादि वटी (मधुमेह)	२४८
आरोग्यवर्द्धिनी वटिका ✓	२५०	कुमिमुद्गर रस	२०५	जातिफलादि वटी (अर्श)	२००
इच्छाभेदी रस ✓	१८८	क्रव्याद् रस	२०२	ज्वरकेसरी वटी	१५९
उन्माद गजकेसरी रस ✓	२२९	गन्धक रसायन ✓	२२५	तक्र मण्डूर	२५६
उपदंश कुठार वटी	२६३	गण्डमालाकण्डन रस ✓	२५९	ताप्यादि लोह ✓	२०६
उपदंश सूर्य	२६२	गदमुरारि रस	१७१	त्रिनेत्र रस	२४२
एकांगवीर ✓	२३५	गर्भ चिन्तामणि रस ✓	२७८	त्रिभुवन कीर्ति रस ✓	१६३
कनकसुन्दर रस	१९२	गर्भपाल रस	२७८	त्रिविक्रम रस	२४४

नाम औषधि	पृष्ठ
त्रैलोक्य चिन्तामणि रस	१६५
त्र्यूषणाद्य लोह	२४९
दन्तोद्भेद गदान्तक रस	२८४
दुग्धवटी	१९४
दुर्जलजेता रस	१६७
नवायस चूर्ण (लोह)	२१०
नागार्जुनाभ्र रस	३०६
नारायण ज्वरांकुश रस	१५९
नित्यानन्द रस	२६१
नित्योदित रस	१९९
निद्रोदय रस	२२९
नीलकण्ठ रस	१८८
पञ्चनिम्ब चूर्ण	२६६
पञ्चवक्त्र रस	१६९
पञ्चामृत रस	३०१
पाषाणवज्रक रस	२४५
पुनर्नवा मण्डूर	२५८
पुष्पधन्वा रस	२८८
प्रताप लंकेश्वर रस	२७९
प्रदरान्तक रस	२७७
प्रदरान्तक लोह	२७६
प्रदरारि रस	२७७
प्रभाकर वटी	२४१
प्रमेहगजकेसरी रस	२९६
प्रमेहान्तक वटी	२४७
प्रवाल पञ्चामृत	२४०
प्रवाल पञ्चामृत (नं. २)	४४१
प्लीहान्तक वटी (लोह)	२४९
बालचन्द्र रस	३०३
बालसञ्जीवन रस	२८३
बालार्क गुटिका	२८४
बोलबद्ध रस	२००
बृहद् योगराज गुग्गुलु	२३३
बृहद् वंगेश्वर रस	२४६
ब्राह्मी वटी	१८०
भूतभैरव रस (ज्वर)	१८१
भूतभैरव रस (उन्माद)	२२९
मञ्जिष्ठादि तालसिन्दूर	२६८
मधुमालिनी बसन्त	१८४
मल्ल पुष्प	१८०

नाम औषधि	पृष्ठ
मल्लादि वटी (फिरङ्ग)	२६५
मल्लादि वटी (विषमज्वर)	१८१
मल्लादि वटी (श्वास-कास)	२२०
मल्लसिन्दूर वटी	२३६
मधुरान्तकवटी (मौक्तिकयुक्त)	१७५
मलेरिया वटी	१८०
महाज्वरांकुश रस	१५९
महामृत्युञ्जय रस	१७१
महावातराज रस	२९२
महावात विध्वंसन	२३०
महामृगांक रस	२१३
माणिक्य रसादि गुटिका	२८६
मूत्रकृच्छ्रान्तक रस	२४२
मेहान्तक रस	२९७
मृगनाभ्यादि वटी	२८९
मृद्विरेचन रस	२८५
मृत्युञ्जय रस	१७०
योगेन्द्र रस	३०३
रत्नगिरी रस	१६०
रस कर्पूर	२६३
रस माणिक्य	२६७
रसादि चूर्ण	२२२
राजावर्त रस	२२३
रामबाण रस	१९८
लघुमालिनी बसन्त	१८५
लघुलाही चूर्ण	१९५
लघुसूतशेखर रस	२७४
लक्ष्मीनारायण रस	१७३
लक्ष्मीविलास रस 'अभ्रकयुक्त'	१७६
लक्ष्मीविलास रस (नारदीय)	१७९
लक्ष्मीविलास रस 'स्वर्णयुक्त'	२१४
लवंगादि तालसिंदूर	२१८
लांगल्यादि लोह	२३७
लाही चूर्ण	१९४
लीलाविलास रस	२७५
लोकनाथ रस	२५४
बसन्तकुसुमाकर रस	२४३
वातकुलान्तक रस	२२९
वातगजांकुश रस	२३२
वातेभकेशरी रस	२९४

नाम औषधि	पृष्ठ
वान्तिहृद् रस	२२२
विश्वतापहरण रस	१५६
वीर्यशोधन वटी	२९०
वीर्यस्तम्भन वटी	२९२
वृद्धिवाधिका वटी	२५९
वृष्य वटी	२९२
शतायु रसायन	३०६
शंख वटी	१९५
शंखोदर रस	१९६
शिलासिन्दूर वटी	२६०
शीतभंजी रस	१५६
शुक्रमातृका वटी	२८७
शूलवज्रिणी वटी	२३७
श्वासकुठार रस	२१८
श्वासरोगान्तक वटी	२१९
श्वासदमन चूर्ण	२२०
समीरगज केसरी रस	२३२
सर्वाङ्गसुन्दर रस	२८५
संचेतनी गुटिका	१७५
संशमनी वटी	१८८
सारिवादि वटी	२७६
सिद्ध प्राणेश्वर	१९८
सुवर्णमालिनी वसन्त	१८१
सूचिकाभरण रस	१५८
सूतराज रस	१५७
सूतशेखर रस	२६९
सूतिकाभरण रस	२९८
सूतिकारि रस	२८०
स्मृतिसागर रस	२९९
हरताल पुष्प	२८६
हरिशंकर	२४६
हिक्कान्तक रस	२२१
हिंगुल रसायन	२३८
हिंगुल वटी	१९७
हेमनाथ रस	२४२
हेमगर्भपोटली रस (सन्निपात)	१६८
हेमगर्भ पोटली रस (क्षय)	११४
क्षुद्बोधक रस	२९६

गुग्गुलु प्रकरण

नाम औषधि	पृष्ठ	नाम औषधि	पृष्ठ	नाम औषधि	पृष्ठ
कांचनार गुग्गुलु	३१५	योगराज गुग्गुलु	३२२	शतावरी गुग्गुलु	४४१
कैशोर गुग्गुलु	३२१	पञ्चतिक्त घृत गुग्गुलु	४४१	सप्तविंशतिको गुग्गुलु	३२२
गोक्षुरादि गुग्गुलु	३१४	लाक्षादि गुग्गुलु	३२२	सिंहनाद गुग्गुलु	३२२

गुटिका प्रकरण

अन्त्रवृद्धिहर गुटिका	३१४	चित्रकादि वटी	३२४	बालजीवन वटी	३१९
अभयादि मोदक	३२३	चिंचाभल्लातक वटी	३१५	बालरक्षक गुटिका	३१८
एलादि गुटिका	३२३	छर्दिरिपु वटी	३२४	बालरक्षक सोगठी	३१८
करंजादि वटी	३२३	ज्वरमुरारि गुटिका	३२१	मरिचादि गुटिका	३२४
कर्पूरादि वटी	३२३	ज्वरारि वटी	३०९	लवंगादि गुटिका	३२५
कन्यालोहादि वटी	३२३	डब्बानाशक गुटिका	३२४	लहसुनादि वटिका	३२०
कण्ठसुधार वटी	३२३	तिन्दुकादि वटी	३२५	विसूचिकाहर वटिका	३२०
कासीसादि वटी	३१७	तृष्णाघ्नि गुटिका	३२०	व्योषादि गुटिका	३२५
कांकायन वटी (अर्श)	३१४	त्रिवृदष्टक मोदक	३०९	शिलाजतु वटी	३२५
कासमर्दन वटी	३२४	दुर्नामकुठार वटी	३१४	शुक्रस्तम्भन गुटिका	३१३
कुटजादि वटी	३२४	धनंजय वटी	३१०	संजीवनी वटी	३०८
खदिरादि वटी	३२४	धात्री भल्लातक वटी	३१६	सर्पगन्धादि गुटिका	३२१
गन्धक वटी	३१७	नाग गुटिका	३१०	हिस्टीरियानाशक वटी	३२५
चन्द्रप्रभा वटी	३११	प्रदरान्तक वटी	३१८	हिंग्वादि वटी	३२५

चूर्ण प्रकरण

अजमोदादि चूर्ण	३४५	पंचसम चूर्ण	३३४	राजरेचन	३४४
अन्त्रवृद्धिहर चूर्ण	३३६	पंचसकार चूर्ण	३३४	लघुगंगाधर चूर्ण	३४६
अमृत चूर्ण	३२७	पाठादि चूर्ण	३३२	लवणभास्कर चूर्ण	३३१
अविपत्तिकर चूर्ण	३३५	प्लीहान्तक क्षार चूर्ण	३३३	लवंगादि चूर्ण	३४६
उष्णवातघ्न चूर्ण	३३७	प्लीहान्तक चूर्ण	३३३	वज्रक्षार चूर्ण	३४६
कर्पूराद्य चूर्ण	३३६	प्रदरान्तक चूर्ण	३४१	वासादि चूर्ण	३४४
कृमिघ्न चूर्ण	३४१	प्रवाहिकारिपु चूर्ण	३३५	विरेचन चूर्ण	३३४
गोमूत्र क्षार चूर्ण	३३५	बालघोर कासघ्न चूर्ण	३४२	वीर्य शोधन चूर्ण	३३७
चन्दनादि चूर्ण	३४१	बाल अतिसारहर चूर्ण	३४३	वृद्धदण्ड चूर्ण	३४६
चिन्तामणि चूर्ण	३४४	बालमित्र चूर्ण	३४३	शिवाक्षार पाचन चूर्ण	३३२
तालीसादि चूर्ण (ग्रहणी)	३४५	बृहत्सितोपलादि चूर्ण	३३०	श्रङ्गयादि चूर्ण	३४७
त्रिफला चूर्ण	३३३	भास्कर लवण चूर्ण	३४४	सामुद्राद्य चूर्ण	३४७
दन्तप्रभाकर मंजन	३३६	मञ्जिष्ठादि चूर्ण	३३६	स्वादिष्ट पाचन चूर्ण	३४७
दन्तदोषहर मंजन	३३६	महासुदर्शन चूर्ण	३२६	सितोपलादि चूर्ण	३२८
नारसिंह चूर्ण	३३८	मूत्रविरेचन चूर्ण	३३७	स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण	३४७
नारायण चूर्ण	३४५	रजःप्रवर्तक चूर्ण	३४२	हिंग्वष्टक चूर्ण	३३२
न्यग्रोधादि चूर्ण	३४७	रक्तप्रदररिपु चूर्ण	३४२	हिस्टीरिया नाशक चूर्ण	३४१

कषाय प्रकरण

अष्टादशांग क्वाथ	३५०	आरग्वधादि कल्क	३५८	कंटकार्यादि क्वाथ	३५२
अमृताष्टक क्वाथ	३५२	उपदंशहर क्वाथ	३५६	कुटजादि कषाय	३५३

नाम औषधि	पृष्ठ	नाम औषधि	पृष्ठ	नाम औषधि	पृष्ठ
कपित्थादि यवागू	३५८	नागरादि क्वाथ	३५२	मूत्रशोधक द्रव	३५७
कृमिघ्न क्वाथ	३५६	पञ्चमूलादि कषाय	३५२	रजः प्रवर्तक क्वाथ	३५६
जातिपत्रादि क्वाथ	३५३	पटोलादि क्वाथ	३५७	लघु मंजिष्ठादि क्वाथ	३५१
त्रिकंटकादि क्वाथ	३५३	पर्पटादि क्वाथ	३५५	शुष्ककासहर क्वाथ	३५८
तगरादि कषाय	३५९	बृहत्यादि क्वाथ	३५७	षडंग यूष	३५८
दशमूल क्वाथ	३४९	बृहद् मंजिष्ठादि क्वाथ	३५१	षडंग पानीय	३५८
दार्व्यादि क्वाथ	३५५	मधुकादि हिम	३५८	सप्तमुष्टिक यूष	३५८
देवदार्वाद्य क्वाथ	३५३	मधुरज्वरान्तक क्वाथ	३५३	स्तन्य शोधक क्वाथ	३५६
दुरालभादि क्वाथ	३५७	महारास्नादि क्वाथ	३५४		

आसवादि प्रकरण

अंगूरासव	३८५	कुमार्यासव	३६९	पर्पटाद्यरिष्ट	३८२
अर्जुनारिष्ट	३७३	खदिरारिष्ट	३७१	पुनर्नवासव	३८१
अभयारिष्ट	३७७	चन्दनासव	३७८	भृंगराजासव	३८२
अमृतारिष्ट	३७३	चविकासव	३८०	महाद्राक्षासव	३८५
अरविन्दासव	३८३	जीरकाद्यरिष्ट	३७९	मृद्विकासव	३८५
अशोकारिष्ट	३७८	त्रिफलारिष्ट	३७३	रक्तशोधकारिष्ट	३८४
अश्वगन्धारिष्ट	३७३	दशमूलारिष्ट	३६७	रोहितारिष्ट	३८१
उशीरासव	३७१	द्राक्षासव	३७५	लोध्रासव	३६८
कनकासव	३७२	द्राक्षारिष्ट	३८४	वासारिष्ट	३८५
कर्पूरासव	३८३	द्राक्षारिष्ट (द्वि.वि.)	३७५	सारिवासव	३८१
कार्पासारिष्ट	३७८	देवदार्वाद्यरिष्ट	३८४	सारस्वतारिष्ट	३७४
कुटजारिष्ट	३७६				

अर्क प्रकरण

उदरामृत योग	३८६	जम्भीरी द्राव	३८७	मेदोहर अर्क	३८८
कर्पूरधारा (जीवनरसायनअर्क)	३८८	ज्वरमुरारि अर्क	३८९	लघु शंखद्राव	३८६
किरातादि अर्क	३८८	ज्वरहर अर्क	३८८	लाक्षा अर्क	३८९
गाजर का अर्क	३८८	निम्बू द्राव	३८६	शंख द्राव	३८६
गुड़मार अर्क	३९०	पुनर्नवा अर्क	३९०	शोथनाशक अर्क	३८८
चन्दनादि अर्क	३८६	बालबन्धु अर्क	३८६	सौंफ का अर्क	३९०
चांदी का खिजाब	३९०	महासुदर्शन अर्क	३९०	स्त्रीगदान्तक अर्क	३८९

पाक, अवलेह, शर्बत प्रकरण

अतरीफल कशनीजी	४०४	कुटजावलेह	३९६	माजून नुकरा	४००
अतरीफल मुलैयन	४०४	कौंच पाक	३९२	माजून हिजरलयहूद	४०१
अदरक का शर्बत	४०६	खमीरा गाऊजबान सादा	४०२	माजून फिलासफा	४०१
अष्टांगावलेह	३९६	खमीरा गावजवां अम्बरी	४०२	रक्तशोधक शर्बत	४०५
आंवले का मुरब्बा	४०५	खमीरा गाऊजबान अम्बरी जवाहर		खमीरा संदल	४०४
आर्द्रकावलेह	३९८	वाला	४०३	गुलाब का गुलकन्द	३९६
एरण्ड पाक	३९८	खमीराआबरेशम (स्वणमुक्तायुक्त)	४०३	गुलाब का शर्बत	४०६
कास कण्डनावलेह	३९५	खमीरा जमुर्रद	४०४	गोक्षुरादि अवलेह	३९५
कूष्माण्डावलेह	३९७	खमीरा मरवारीद (स्वर्ण मुक्तायुक्त)	४०३	च्यवन प्राशावलेह	३९३

नाम औषधि	पृष्ठ	नाम औषधि	पृष्ठ	नाम औषधि	पृष्ठ
चन्दन का शर्बत	४०६	बादाम पाक	३९८	वासावलेह	३९६
चित्रक हरीतकी	४४१	भल्लातक पाक	३९९	विजयापुष्पाद्यवलेह	३९९
जीरकादि मोदक	३९२	मधुयष्ट्याद्यवलेह	३९७	सारिवादि शार्कर	४०५
दवाउल मुश्क	४००	मदन मोदक	३९९	शुण्ठयादि पाक	३९१
द्राक्षावलेह	३९७	माजून उशबा	४०१	शुण्ठ्यादि पायस (कषाय)	४०५
नींबू का शर्बत	४०६	माजून कचूर	४०२	सालम पाक	३९८
नेत्र शूलान्तक मोदक	३९३	माजून चोबचीनी	४०१	स्वादिष्ट शर्बत	४०६
प्रतिश्यायहर शर्बत	४०७	लउकसपिस्ताँ	४०५	सितोपलादि अवलेह	३९५
बनप्शा शर्बत	४०६	लबूब कबीर	४०४	सौभाग्य सुंठी पाक	३९१

घृत तैल प्रकरण

अपूर्व तिला	४१७	जीवन्त्यादि घृत	४१२	ब्राह्मी घृत	४१४
अशोक घृत	४१३	त्रिफलादि घृत	४१०	बालरक्षक तैल	४२१
अष्ट मंगल घृत	४१३	दशमूलाद्य घृत	४११	बिल्वादि तैल	४१८
कटु तुम्बी तैल	४२१	दूर्वादि घृत	४१५	भृङ्गराज तैल	४२०
करवीर तैल	४२१	धातक्यादि तैल	४२२	महाविषगर्भ तैल	४२२
कल्याण घृत	४१५	नतादि तैल	४२२	मल्ल तैल	४१६
कासीसादि तैल	४१९	नाड़ी व्रणहर तैल	४२०	मल्ल सर्पि	४१८
कोशातक्यादि तैल	४२१	नाराच घृत	४१०	मन:शिलादि तैल	४२१
गंधक घृत	४१४	नारायण तैल	४१९	लघुविषगर्भ तैल	४२३
घाव तैल	४२०	नासा कृमिहर घृत	४१५	लाक्षादि तैल	४१९
चक्र मर्द तैल	४१९	निम्बादि तैल	४१९	लिङ्ग तैल	४१८
चक्रमर्दादि तैल	४१७	पचगव्य घृत	४१२	व्याघ्री तैल	४१६
चन्दनादि यमक	४२३	पंचतिक्त घृत	४४१	वातहर तैल	४१७
चन्दनादि तैल	४१६	पीड़ा शामक तैल	४२३	सिद्धार्थादि तैल	४२१
चन्दनबला लाक्षादि तैल	४१६	फल घृत	४१०	षडबिन्दु तैल	४२१
चर्मरोग नाशक तैल	४१८	बला तैल	४२२	षट्पल घृत	४११
चांगेरी घृत	४१४	बृहद्धात्री घृत	४१३	क्षार तैल	४१८
जात्यादि घृत	४१५				

अञ्जन प्रकरण

अञ्जन रस	४२६	नेत्र प्रभाकर अञ्जन	४२५	पुष्पहर अञ्जन	४२७
कृष्ण नेत्रांजन	४२५	नेत्र बिन्दु	४२६	बबूलादि स्वरस	४२६
चन्दनादि वर्ति	४२७	नेत्रसुदर्शन अर्क पलाशांजन	४२७	रसकेश्वर गुटिका	४२६
चन्द्रोदया वर्ति	४२६	पथ्यादि अञ्जन	४२७	रक्त नेत्राञ्जन	४२६
दार्व्यादि रस क्रिया	४२७				

लेप-मलहम-प्रकरण

अंगुली पाकहर लेप	४३०	अर्शोहर मलहम	४३६	कर्ण शोथहर लेप	४३१
अंजन नामिकाहर लेप	४३०	अस्थि दोषहर सेक	४३९	कर्पूरादि मलहम	४३२
अग्निदग्ध व्रणहर मलहम	४३६	अस्थिसन्धानक लेप	४३०	कासीसादि लेप	४३१
अदीठ (कारबंकलका) मलहम	४३५	उपदंशरिपु मलहम	४३५	कुष्ठहर लेप	४२९
अपराजित धूप	४३८	कंकुष्ठादि लेप	४३०	कृमिघ्न धूम्र	४३८
अर्शोघ्न धूम्र	४३८	कलिंगाद्य नस्य	४३९	कृष्णादि लेप	४२९

नाम औषधि	पृष्ठ
कण्ठमाल का मलहम	४३५
गुलाबी मलहम	४३३
चन्द्रप्रभा उबटन	४४०
[illegible]	४३३
जन्तुघ्नधूप	४३८
जात्यादि धूप	४३८
तुत्थादि लेप	४३०
त्वक्पत्रादि उद्वर्तन	४४०
दद्रुदमन मलहम	४३५
दद्रुहर लेप	४३१
दशांग धूप	४३८
दशांग लेप	४२८
दारुणक नाशक मलहम	४३४
देवदार्व्यादि धूम्र	४३९
दोषघ्न लेप	४२८
द्विनिशादि लेप	४२९
नजला नाशक नस्य	४३९
निम्बादि मलहम	३३८
निर्मला गुद वर्ति	४४०
निशादि लेप	४३२
पामाहर मलहम	४३४

नाम औषधि	पृष्ठ
पारद मलहम	४३७
पारदादि मलहम	४३७
पार्श्वशूल नाशक लेप	४३०
प्रतिसारणीय क्षार	४३०
प्रलापहर लेप	४३१
फल वर्ति ✓	४४०
बीजपूर जटादि लेप	४२९
ब्यूचीहर मलहम	४३४
भगन्दर नाशक मलहम	४३५
भूनिम्बादि उद्धूलन	४४०
मधुकादि लेप	४२९
मनःशिलादि धूम्रपान	४३९
[illegible]	४३७
मांस्यादि लेप	४३१
माहेश्वर धूप	४३८
मूर्च्छान्तक नस्य	४४०
रजःप्रवर्तिनी वर्ति	४४०
रसांजनादि लेप	४३१
राल का मलहम	४३२
[illegible]	४३२
व्रणशोधक लेप	४२९

नाम औषधि	पृष्ठ
विषादि उद्धूलन	४४०
व्रणामृत मलहम	४३३
व्रणामृत श्वेत मलहम	४३३
शिरःशूलान्तक नस्य	४३९
शिरःशूलान्तक मलहम	४३६
श्लीपदहर लेप	४३१

*** अंगीभूत प्रकाशन ***

-१- योग सं. पेज
नित्योपयोगीगुटिकासंग्रह

-२-
नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह

-३-
नित्योपयोगी चूर्ण संग्रह

नोट : उक्त तीनों संग्रहों के योग इसी ग्रन्थ रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह के ही अंग हैं जो पृथक्-पृथक् छोटी पुस्तकों के रूप में पाठकों की सुविधा के लिए छापे गये हैं।

ग्रन्थ का उत्तरार्द्ध पृष्ठ

रोगानुसार औषध सूची १

पारिभाषिक शब्दों की सूची, २३

* ॐ *

○ श्री धन्वन्तरये नमः ○

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

प्रथम खण्ड

आयुर्वेदीय-प्रयोग-विधान।

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः।
सर्वकार्येष्वंतरंगं शरीरस्य हि रक्षणम्॥

शास्त्राचार्यों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ कहे हैं। इन सबका मुख्य साधन शरीर है। इसलिये शरीर की रक्षा अवश्य करनी चाहिये। इसी हेतु से धन्वन्तरि, भरद्वाज, अत्रि इत्यादि परोपकारी मुनियों द्वारा अथर्ववेद के उपवेदरूप आयुर्वेद का अविर्भाव हुआ है। आयुर्वेद की व्याख्या प्राचीन आचार्यों ने निम्न वचन से की है-

आयुर्हिताहितं व्याधेनिदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः आयुर्वेदः स उच्यते॥

जिसमें आयु के हित (पथ्य आहार-विहार) अहित (हानिकर आहार-विहार), रोग का निदान और व्याधियों की चिकित्सा आदि का वर्णन है, उसे विद्वान् मनुष्य आयुर्वेद कहते हैं।

इस आयुर्वेद का मुख्य प्रयोजन स्वास्थ्य का रक्षण करना और गौण प्रयोजन रोगाक्रान्त रोगी का रोग दूर करके आरोग्य प्रदान करना है। रोग दूर करने के लिये तीन प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता है-(१) हेतु ज्ञान (रोग के भिन्न-भिन्न कारणों का ज्ञान)। (२) लिंगज्ञान (रोग का लक्षण)। (३) चिकित्सा ज्ञान। इनमें से पहिले और दूसरे विभाग को इस ग्रन्थ में स्थान नहीं दिया। चिकित्सा में उपयोगी सिद्ध प्रयोग, पारद प्रयोग, धातुओं की भस्म विधि आदि विषय यहाँ विस्तारपूर्वक लिखे हैं।

चिकित्सा के तीन प्रकार हैं-मंत्र-चिकित्सा, औषधि-चिकित्सा और शस्त्र-चिकित्सा। मंत्र-चिकित्सा और शस्त्र चिकित्सा इस ग्रन्थ का विषय नहीं है। यहाँ केवल औषधि-चिकित्सा संबंधी कुछ विचार किया है। शास्त्राचार्यों ने इन औषधियों के मुख्य दो विभाग किये हैं-(१) सेन्द्रिय (प्राणिजन्य और वनौषधि) (२) निरिन्द्रिय (खनिज औषधि)। पुनः इसका वर्गीकरण करके कर्पूरादिवर्ग, वटादिवर्ग, गुडूच्यादिवर्ग-ऐसे अनेक विभाग किये हैं। इन औषधियों के स्वरूपज्ञान और रस, वीर्यविपाक, प्रभाव आदि गुण को जानने के लिये आयुर्वेद के प्रकरण रूप अनेक निघण्टु बने हैं।

दूसरी रीति से औषधि उपयोग के दो विभाग किये हैं-(1) सिद्ध औषधि (अनेक औषधियाँ मिला करके अथवा एक ही औषधि अमुक संस्कार से सिद्ध की गई हो, वह) (2) असिद्ध औषधि (अलग-अलग अपक्व औषधि) इनमें से सिद्ध औषधियों के कृति और जाति भेद से निम्न अनुसार चार विभाग होते हैं। इनका विवेचन पृथक-पृथक् ४ शास्त्रों में किया है-

(1) कल्प शास्त्र-एक अथवा अनेक औषधियों का मिश्रण निश्चित विधि से तैयार करके सेवन कराने से अमुक विशेष फल की प्राप्ति होती है। यह कल्प शास्त्र के ग्रन्थों में दिखाया है।

(2) वनस्पति शास्त्र-इन ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न वानस्पत्यादि औषधियों का विवेचन किया है।

(3) रस शास्त्र-पारद आदि खनिज औषधियों को अन्य औषधियों के संस्कार देने से वे शरीर में नाना प्रकार के गुण उत्पन्न करती हैं। यह वर्णन इन ग्रन्थों में किया है।

(4) रसायन शास्त्र-दो अथवा अधिक औषधि मिलाकर, मूल वस्तु से भिन्न गुण अथवा अधिक गुण वाली औषधि तैयार होती है। जैसे-पारा, गन्धक और सोना मिलकर अधिक गुण वाला पूर्णचन्द्रोदय रस एवं पारा और अन्य क्षार मिलकर भिन्न गुणवाला रसकपूर तैयार होता है। यह सब रसायन शास्त्र के विषय हैं।

इनमें से वनौषधि, रस और रसायनशास्त्र के प्रयोगों में से अनेक महत्व के प्रयोग, जिनका अनुभव कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय में और इतर परिचित चिकित्सकों द्वारा अनेक वर्षों से हो रहा है, उन प्रयोगों को इस ग्रन्थ में स्थान दिया है।

सिद्ध प्रयोग देना यह इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। अनेक धातु-उप-धातुओं की भस्म, विविध पारद कल्प, विविध वनौषधियों के मिश्रण से बनाई हुई गुटिका आदि औषधियां, क्षार, घृत-तैलादि द्रव्यों को नाना प्रकार से औषधों के संस्कार देकर सिद्ध की हुई औषधियां इत्यादि सिद्ध प्रयोग हैं। इन प्रयोगों में से अनेकों को अनेक औषधियों के मिश्रण से तैयार किया जाता है। इन औषधि-द्रव्यों में अनेक प्रकार के गुणों

के परमाणु मिश्रित रहते हैं। भिन्न-भिन्न द्रव्यों में भिन्न-भिन्न गुण का प्राधान्य रहता है। इस हेतु से कौन-कौन द्रव्य परस्पर सहायक हैं और कौन-कौन विरोधी हैं, यह बिना शास्त्राभ्यास के नहीं जाना जाता। विरोधी औषधियों का मिश्रण बनाने पर किसी समय तुरन्त और किसी समय भविष्य में हानि पहुँचती है।

विरोधी औषधियों (एण्टागोनिस्ट्स-Antagonists) की क्रिया परस्पर एक दूसरे के विपरीत होती हैं। इनमें कितनी ही वीर्य विरोधी और कितनी ही संयोग विरोधी हैं। उदाहरणार्थ-दूध और दही, शराब और कुचिला, अफीम और सूचीबूटी, कुचिला ओर कपूर, इनका वीर्य परस्पर विरुद्ध होने से इनका मिश्रण नहीं कराया जाता है। इस तरह अफीम और सूचीबूटी (Atropa Belladonna), गारीकून (Polyporus Officinalis) और सूचीबूटी इनकी क्रिया परस्पर विरुद्ध होने से अफीम ओर गारीकून के विष-प्रकोप मे सूचीबूटी तथा सूचीबूटी के विष-प्रकोप में अफीम हितावह होती है। इस तरह धतूरा ओर पद्मकाष्ठ की क्रिया विरुद्ध है। धतूरे का धूम्रपान करने पर उबाक होती है और कफ गिरता है, इसके विपरीत नये पद्मकाष्ठ का फाण्ट या चूर्ण लेने पर उबाक और वमन बन्द हो जाती है। अत: ये सब परस्पर विरोधी हैं। इस प्रकार की विरोधी औषधियों के मिश्रण से लाभ के स्थान पर हानि पहुँच जाने की संभावना रहती है। अत: मन घडन्त रीति से औषधियों को मिलाकर प्रयोग तैयार नहीं किये जाते।

नूतन-प्रयोग निर्माण विधि-नये प्रयोग तैयार करने के लिये निम्न प्रकार की औषधियों को मिलाना चाहिये-

1-रोगनाशक एक अथवा अधिक मुख्य औषधियां।

2-रोग के उपद्रवों को शमन करने वाली औषधियां।

3-मुख्य औषधि को सहायता पहुँचाने वाली औषधियां।

4-मुख्य और सहायक औषधियों के दोष को शांत करने वाली औषधियां।

जैसे ज्वर उतारने के लिये ज्वरकेसरी वटी दी जाती है। इस ज्वरकेसरी में पारद, गन्धक, बच्छनाभ, त्रिकुट, त्रिफला और जमालगोटा है। इन सब औषधियों को यथा विधि मिलाकर, फिर भांगरे के रस की भावना देकर तैयार किया जाता है। इनमें उष्णता कम करके ज्वर को दूर करने वाली मुख्य औषधि बच्छनाभ है। बच्छनाभ से पसीना आता है, मूत्र साफ होता है, नाड़ी और हृदय की बढ़ी हुई गति मन्द हो जाती है, वेदना शांति होती है और ज्वर की निवृत्ति होती है।

किन्तु एक मात्र बच्छनाभ का ही उपयोग किया जाय तो व्याधि से मुक्ति नहीं मिल सकती। कारण, ज्वर होने में मुख्य हेतु सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति है। जब तक सेन्द्रिय विष को नष्ट न किया जाय और सेन्द्रिय विष जिस कारण से उत्पन्न हुआ है, उस हेतु को भी दूर नहीं हटाया जाय, तब तक सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति होती रहेगी। फिर सेन्द्रिय विष को दूर करने के लिये रक्त में उष्णता बढ़कर ज्वर का वेग उत्पन्न होता ही रहेगा। अत: इस मूल कारण को भी साथ-साथ नष्ट कर देना चाहिये। इस सेन्द्रिय विष का उत्पादक कारण क्या है? इस बात का शास्त्रानुरूप विचार करने पर अवगत होता है कि आमाशय रस दूषित होकर (आम बनकर) के नाड़ियों में प्रविष्ट हो जाता है। जिससे प्रस्वेद द्वारा विष का निकलना रुक जाता है। यह विष रक्त में रहे हुये अनेक रक्ताणुओं को दूषित बना देता है, और इसी हेतु से हानिकर सूक्ष्म कीटाणुओं की उत्पत्ति होती है। अन्त्र मल से पूर्ण हो जाते हैं, अत: वे अपना कार्य करने में असमर्थ होते हैं फिर कोष्ठाग्नि स्वस्थान से बाहर निकल, दोषों को जलाने के लिये रक्त में उष्णता उत्पन्न करती है।

ज्वर को शमन करने के लिये इन सब कारणों को (जन्तु-दूषित आम और मलावरोध को) दूर करना चाहिये। किन्तु ये सब कार्य एक मात्र बच्छनाभ से नहीं हो सकते। इसलिये बच्छनाभ के साथ-साथ सहायक औषधियां मिलाई हैं। बच्छनाभ को सहायता पहुँचाना, जन्तुओं का नाश करना और रक्त के दूषित अणुओं को शुद्ध करना, इन कार्यों के लिये पारद मिलाया जाता है। पारद जन्तुघ्न, कोष्ठस्थ दोषनाशक और योगवाही (गुणवर्द्धक) है। परन्तु, बिना गन्धक मिलाये अन्य औषधियों के साथ पारद नहीं मिल सकता अत: गन्धक भी मिलाया है। गन्धक पारद को मूर्छित बनाकर पारद की चंचलता दूर करता है। गन्धक में दुर्गन्धनाशक, रक्तशोधक, जन्तुघ्न और पाचन गुण भी हैं। अत: नाड़ियों में रहे हुए दोष का संशोधन, कीटाणुओं का नाश और पाचन-क्रिया को सबल बनाना, इन कार्यों में सहायता मिलती है। तदपि बच्छनाभ और पारद गन्धक की कज्जली मिलाने से भी मलावरोध दूर नहीं होता।

अनेक प्रकार के ज्वर बहुधा मलावरोध होने पर ही होते हैं और वे कब्ज दूर होने से दूर हो जाते हैं। अत: जमालगोटे का मिश्रण किया। जमालगोटा मलावरोधनाशक है। परन्तु इसमें वमन कराने का और आँतों में दाह उत्पन्न करने का दोष है। इस हेतु से भांगरे के रस की भावना दी है और त्रिफला मिलाया है। भांगरे से दाह और उबाक का शमन होता है तथा वातवाहिनियों का क्षोभ दूर होता है एवं त्रिफला से जमालगोटे की तेजी कम होती है और दोषों का पचन होता है।

इसके अतिरिक्त बच्छनाभ उष्णता कम करता है। परन्तु साथ-साथ हृदय की गति को कुछ शिथिल बनाता है। इस दोष को दबाने के लिये शास्त्राचार्यों ने इस औषधि में कज्जली और त्रिकटुकी योजना की है। पारद-गन्धक की कज्जली हृद्य है, और त्रिकटु भी हृद्य, उष्ण, किंचित् पसीना लाने वाला और दीपन-पाचन है।

इस तरह बने हुये प्रयोग में बच्छनाभ मुख्य रोगनाशक औषधि है। जमालगोटा मल दोष को दूर करने वाली दूसरे नम्बर में कही हुई उपद्रवनाशक औषधि है। पारद और गन्धक रक्तशोधक और गुणवर्द्धक (योगवाही) होने से दूसरे और तीसरे प्रकार की सहायक औषधियां हैं। त्रिकुट-हृद्य, दोषशामक और अग्निदीपक होने से उपद्रवनाशक और दोष नाशक औषधि है। ज्वर में बहुधा अग्निमान्द्य हो जाता है, उसे दूर करने का काम त्रिकटु करता है और बल्य होने से बच्छनाभ के दोष भी शमन करता है। अतः यह दूसरे और चौथे प्रकार के लिखे हुए कार्यों को करने वाली औषधि है। भांगरे का रस और त्रिफला, दोष शामक चतुर्थ विभाग की औषधियां हैं।

इस उदाहरण के अनुसार चाहे जितने नये प्रयोग बना सकते हैं। शास्त्र में ६४-६४ औषधियों के क्वाथ आदि का विधान किया है, उन सब में यही नियम वर्तमान है। यद्यपि कई बार रोगनाशक अनेक मुख्य और गौण औषधियों एवं उपद्रव-शामक अनेक औषधियों को ही मिलाया जाता है, चतुर्थ विभाग की औषधि मिलाने की आवश्यकता नहीं रहती, तथापि मूल नियम का परिवर्तन नहीं होता।

शास्त्र में रोग, उपद्रव, ऋतु, दूष्य, देश, काल, औषधि बल, अनल, प्रकृति आदि का पूर्ण विचार करके ही प्रयोग लिखे हें, एवं अर्वाचीन विद्वान् भी इसी तरह प्रयोग तैयार करते हैं, परन्तु साधारण बोधवाले चिकित्सकों के लिये नूतन प्रयोग की योजना करने में कठिनता रहती है। इस प्रतिबन्ध को दूर करने के लिए यहाँ मुख्य नियम संक्षेप में दर्शाये हैं।

जिन सिद्ध औषधियों के प्रयोग को प्राचीन आचार्यों और विद्वानों ने शास्त्रविधि अनुसार तैयार किया है, वे सब निर्भयतापूर्वक उपयोग में आ सकते हैं। तथापि किसी-किसी समय देश काल और रोगी-परिस्थिति के अनुसार तुरन्त लाभ होने के लिये मात्रा और मिश्रण में थोड़ा अन्तर किया जाता है। कदाच अन्तर न किया जाय तो भी नुकसान का भय नहीं है। किन्तु शास्त्रविधि को त्यागकर काल्पनिक रीति से अनेक औषधियों का मिश्रण करके उपयोग किया जाय, तो विशेष जवाबदारी रहती है। क्वचित् ऐसी मनोकल्पित औषधि से किसी को लाभ हो जाय, तो भी अनेकों को हानि पहुँचायेगी।

विशुद्ध औषधि परिचय-श्री वाग्भटाचार्य ने लिखा है कि-

प्रयोगः शमयेद्व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्।

नाऽसौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत् (अ.हृ.सू. स्था अ. १३-१६)

औषधि उसे कहना चाहिए जो व्याधि का शमन करे। एक रोग का शमन करके दूसरा रोग उत्पन्न करे, उसे अशुद्ध (अनुपयोगी) जाननी चाहिये। जो रोग का शमन करे ओर कुछ भी विकृति न करे, उसी को शुद्ध लाभदायक औषधि समझनी चाहिये।

इसी तरह औषधि प्रयोग तैयार करने में नवीन चिकित्सकों को आपत्ति आती है। वह इन परीक्षित प्रयोगों से बहुत अंश में दूर हो सकेगी ऐसी मेरी धारणा है। इसी हेतु से अनुभूत संग्रह को प्रकाशित किया है। यदि अधिकारी वर्ग इस ग्रन्थ से कुछ लाभ उठावेंगे, तो मैं अपना परिश्रम सफल मानूंगा।

आवश्यक सूचना

(औषधि सम्बन्धी सूचना)

(1) वनौषधि वर्षाकाल पीछे अथवा एक वर्ष बीत जाने पर न्यून गुण युक्त हो जाती है। साधारण चूर्ण प्राय: दो मास पीछे और लवण, हींग और पारद युक्त छै मास अथवा अधिक समय पीछे न्यून गुणवाले हो जाते हैं, परन्तु कांच की शीशी में मजबूत बन्द रहने से गुण कुछ विशेष समय तक रह सकते हैं।

(2) गोली, अवलेह, शर्बत आदि एक वर्ष पश्चात् न्यून गुण वाले होते हैं। पाक एक मास से अधिक समय तक अच्छा नहीं रहता। सिद्ध तैल चार मास (बोतलों में रहे तो १ वर्ष) पश्चात् न्यून गुण वाला हो जाता है। सिद्ध घृत, तैल की अपेक्षा पुराना होने पर भी (सम्हालपूर्वक) रखा जाय तो गुणयुक्त रहता है।

(3) आसव, अरिष्ट, कूपीपक्व रसायन और धातुओं की भस्में जितनी पुरानी होती हैं, उतनी ही विशेष सौम्य होती हैं।

(4) गूगलवाली गुटिका दो, तीन वर्ष तक अच्छी रह सकती है, तदन्तर गुण का ह्रास होने लगता है।

(5) पीपलं, धनियां और बायबिडंग एक वर्ष का पुराना लेवें।

(6) नेत्र रोग की औषधि में घी पुराना और खाने के लिए नया लें तथा बाहर लेप करने के लिये घृत को धोकर के उपयोग में लें।

(7) कफनाशक औषधि के साथ अनुपान रूप से शहद पुराना और धातु पौष्टिक औषधि में नया लें।

(8) गिलोय, कूड़े की छाल, अडूसा, शतावरी, असगन्ध, पीयावासा, सौंफ, काशीफल, प्रसारणी ये नव औषधियां ताजा लें। ताजा न मिले तो सूखी औषधि समान वजन से लें।

(9) उपर्युक्त नव औषधियों के अतिरिक्त अन्य औषधियों को सूखी के बदले ताजी लेनी हो तो दुगुनी लेनी चाहिये।

(10) बड़े वृक्षों के मूल लेने को लिखा हो, वहाँ पर वृक्ष की अन्तर छाल लें, परन्तु छोटे-छोटे वृक्षों के मूल ही लें। सिर्फ लघु पंचमूल के बदले में पंचांग लेने का रिवाज है।

(11) जहां कड़वे पटोल लिखें हों, वहां पर मात्र उसके पत्ते ही लिये जाते हैं।

(12) यदि कोई औषधि समय पर न मिले सके, तो प्रतिनिधि रूप से समान गुणवाली दूसरी औषधि लेनी चाहिए। परन्तु प्रयोग में जो मुख्य वस्तु हो, उसके बदले में प्रतिनिधि न लें केवल गौण औषधि के स्थान में प्रतिनिधि लें। जैसे आकड़े दूध के अभाव में आक के पत्तों का रस, अजवायन न मिलने पर अजमोद आदि। प्रतिनिधि विषयक विशेष वर्णन आगे परिभाषा प्रकरण में लिखा जायेगा।

(13) क्वाथ के लिये बरतन मिट्टी का लें और मुँह खुला रखकर क्वाथ करें, यह प्रचलित रीति है। मुँह ढककर मन्दाग्नि से क्वाथ किया जाय तो विशेष लाभ होता है। ऐसा नव्य विचारकों का मत है। पात्र मिट्टी का न मिले तो पीतल का कलई किया हुआ लें।

(14) तैल पकाने के लिये पीतल का कलई किया हुआ ४-६ गुना बड़ा पात्र लेवें अन्यथा उफान आकर तैल बाहर निकल जायेगा। लोहे की कढ़ाई में पकाने से तैल काला हो जाता है।

(15) एल्युमिनियम का बरतन कदापि औषधि-कार्य के लिये उपयोग में न लें वैसे ही खाने पीने में भी एल्युमिनियिम का पात्र लेना अनुपयुक्त माना गया है। एल्युमिनियम के बरतन में बने हुए भोजन और औषधि में जहर मिश्रित हो जाता है। उसके सेवन से पाचन क्रिया बिगड़ती है और रक्त विकृत होता है। एल्युमिनियम के पात्र में यदि जल ४-८ घण्टे भरा रहे, तो यह भी दूषित हो जाता है।

(16) जायफल, जावित्री, लोंग, सौंफ आदि सुगन्धित तैलीय द्रव्यों का चूर्ण आवश्यकता पर करें। पहले से विशेष परिणाम में कूटकर तैयार न रखें। तैलीय द्रव्य मिश्रित औषधियों के चूर्ण को कांच की मजूबत डाटवाली शीशी में रखना चाहिये। डाट रहित शीशी में से अथवा टीन के डिब्बे में से चूर्ण का तैलांश थोड़े ही दिनों में निकल जाता है।

(17) नमक और क्षार (नौसादर, सोरा आदि) मिश्रित औषधियां वर्षा ऋतु में शीतल वायु लगने से गुणहीन हो जाती हैं। इसलिए ऐसे समय पर शीशी में से आवश्यकता हो उतने परिणाम में औषधि को सम्हालपूर्वक निकाल, शीशी, को सत्वर बन्द कर देना चाहिये। टीन के डिब्बे आदि धातु पात्र में रखने से लवण और धातु का संयोग होकर औषधि दूषित हो जाती है।

(18) घृत और तैल को कांच या चीनी मिट्टी के अमृतबान में रखना चाहिये। टीन के डिब्बे में जल्दी खराब हो जाते हैं। अमृतबान में से भी घृत को अंगुलियों से न निकालें। कलछी या चम्मच से निकालना चाहिये। अन्यथा घृत में दुर्गन्ध हो जाती है।

(19) औषधि का उपयोग करने से पहले रोग के निदान, औषधि के गुण, देश, काल (ऋतु) और प्रकृति का विचार करना चाहिये। जैसे-ताजा गोदुग्ध पथ्य, तेजोवर्धक और तुरन्त बल बढ़ानेवाला है, तो भी ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, बवासीर, कफवाली खांसी, कृमि, विद्रधि, नवीन सुजाक और कुष्ठ आदि रोगों में हानिकर है। कफ प्रकृति वाले के लिये हितकर औषधियां पित्त प्रकृति वाले को समान रोग होने पर भी हानि पहुँचाती हैं एवं देश और काल भेद से भी औषधि योजना में परिवर्तन किया जाता है। यदि उपरोक्त रोगों में दूध देना आवश्यक हो, तो दूध गरम करते वक्त थोड़ा सोंठ का चूर्ण डाल दें।

(20) संखिया, हरताल, रसकपूर, दालचिकना, मैनसिल, बच्छनाभ, कुचिला और कनेर आदि जहरी औषधियों की तीक्ष्णता और मल दोष को दूर करके उपयोग में लिया जाता है। ऐसी औषधियों के शोधन करने की विधि शोधन प्रकरण में लिखी है और धातु, उपधातुएँ प्रायः भस्म करके ही प्रयोग में ली जाती हैं।

(21) हींग को घी में भून करके उपयोग में लेनी चाहिये।

(22) फिटकरी और सोहागे को खाने की औषधि में मिलाने के लिए प्रायः फूला बना करके उपयोग में लिया जाता है। क्वचित् दाद की औषधि में सोहागा कच्चा भी मिलाते हैं, और पूयप्रमेह की औषधि में फिटकरी कच्ची ही मिलाई जाती है।

(23) बच्छनाभ प्रधान औषधि बहुधा शीतांग ज्वर, मुद्दती ताप, विशूचिका और हृदय की धड़कन में नहीं देनी चाहिये। यदि आवश्यक हो, तो सम्हालपूर्वक बहुत कम मात्रा में दें। कारण, बच्छनाभ शरीर की उष्णता को शीघ्र मूत्र और पसीना लाकर कम करता है और हृदय को कुछ शिथिल बनाता है। जहां ताप बढ़ा हुआ हो और ताप कम करना आवश्यक हो, वहां पर वत्सनाभयुक्त औषधि देने से स्वेद आकर ताप शनैः शनैः कम हो जाता है।

(24) कुचिला नये तीक्ष्ण वातप्रकोप के समय हानि पहुँचाता है और पुरानी वातव्याधि में अति हितकर है। मात्रा अधिक होने पर वातवाहिनियां खिंचने लगती हैं।

(25) पारद-मिश्रित औषधि सगर्भा स्त्री, दुर्बल, वृक्कशोथयुक्त पाण्डु और कण्ठमाल के रोगी को कम अनुकूल रहती है। स्त्रियों के गर्भाशय और योनि के रोगों में हितकर है एवं बालकों को पारद मिश्रित औषधियाँ तो अति ही अनुकूल रहती हैं।

(26) सोमलवाली औषधियां घी या दूध पिलाकर देनी चाहिये। परन्तु न्यूमोनिया, सन्निपात आदि रोगों में घृत दूध पिलाये बिना रोगानुसार अनुपान के साथ दें। कितने ही विद्वानों ने शुक्रक्षय में सोमल वाली औषधि हितकर नहीं मानी एवं सन्निपात में पित्तप्रकोप से प्रलाप होता हो, नेत्रलाल हो और बेहोशी आदि उपद्रवों की प्रतीति होती हो तो सोमल वाली औषधि न देवें।

न्यूमोनिया आदि कफप्रधान रोगों में सोमलयुक्त औषधि मल्लचन्द्रोदय, समीर-पन्नग आदि सत्वर लाभ पहुँचाते हैं। कफ-प्रधान रोगों में जहां सोमलभस्म व पुष्प देने का निषेध है, वहां पर मल्लचन्द्रोदय या समीर-पन्नग वासास्वरस या चूर्ण के साथ प्रायः दिया जाता है। शीतांग सन्निपात में सोमलयुक्त औषध सत्वर फलप्रद है। जो ज्वर बार-बार स्वेद आकर उतर जाता है, वहां शारीरिक उष्णता का अति ह्रास न होने के लिये मल्लमिश्रित औषध दी जाती है।

(27) हरताल भस्म और हरताल मिश्रित औषधि ये सब उग्र होने से पित्त प्रधान कुष्ठ और पित्त प्रधान वातरक्त में हानिकर हैं।

(28) ताम्र भस्म मूत्रपिंड के शोथ से उत्पन्न हुए उदर रोग में हानिकर है। कारण ताम्र भस्म उष्ण और पित्त विरेचक होने से मूत्रपिंड के कार्य में प्रतिबन्ध करती है। जिससे मूत्र में पित्त मिल जाता है और मूत्रोत्सर्ग क्रिया कम हो जाती है। फिर उदर में जलसंचय अधिक होने लगता है और शोथ बढ़ता जाता है।

(29) सुवर्ण माक्षिक भस्म क्विनाइन के विष को दूर करने में अति हितकर है; परन्तु नये तीव्र ज्वर में नहीं देनी चाहिये।

(30) शृङ्ग-भस्म वातजन्य शुष्क कास में हानिकर है तथा कफ प्रधान कास, श्वास ओर न्यूमोनिया आदि रोगों में हितकर है।

(31) जसद-भस्म उपदंश जन्य कण्ठ रोग में हितकर नहीं है।

(32) वराटिका भस्म आमयुक्त जीर्ण संग्रहणी में लाभदायक है। परन्तु नूतन आम संग्रहणी में हितकर नहीं है।

(33) लोहभस्म रक्तार्श और रक्तातिसार के आरम्भ में हानिकर है। परन्तु वातार्श और पित्तार्श में अधिक शक्तिपात हुआ हो, तो लाभदायक है। रक्त वृद्धि और पुष्टि के लिये लोहभस्म भोजन के बाद देना, यह विशेष हितकर है।

(34) सुवर्ण भस्म संखिया से मारण की हो, तो क्षय रोग की प्रथमावस्था में न दें, अन्यथा शुष्क कास बढ़ जायेगा। पारद, गन्धक या वनौषधि से मारित यह भस्म क्षय रोग में विशेष हितकर है।

सुवर्ण पर्पटी पुरानी संग्रहणी में ज्वर होने पर, अथवा मानसिक विकृति होने पर नहीं देनी चाहिए। सुवर्ण पर्पटी के सेवनकाल में दुग्धाहार विशेष लाभदायक है।

सुवर्ण मिश्रित औषधि ज्यादा परिणाम में क्षय रोगी को नहीं देनी चाहिये। मात्रा अधिक होने पर क्षय के जन्तु (Tuberculosis) एक साथ अधिक संख्या में मरते हैं जिससे विषवृद्धि होकर ज्वर बढ़ जाता है। अतः शुद्ध सुवर्ण की मात्रा एक समय में १/१०० से १/५० रत्ती तक और सुवर्ण भस्म की मात्रा १/३२ रत्ती तक देना चाहिये।

जब क्षय रोग में ज्वर ९९° से अधिक हो, तब सुवर्ण-मिश्रित औषधि न दें। अन्य औषधि से ज्वर को कम करने के बाद सुवर्ण-मिश्रित औषधि दें। मंथर ज्वर के विष का ह्रास कराने तथा स्थावर जंगम विष के शमनार्थ स्वर्ण-प्रधान औषधि प्रयुक्त होती है।

(35) एलुवा वाली औषधियां विशेषतः रात्रि को सोने के समय दी जाती हैं। परन्तु सगर्भा स्त्री को नहीं देना चाहिये।

(36) कस्तूरी औषधियों में मिलानी हो, इसके पहिले उसके भीतर से बालों को अच्छी तरह देखकर निकाल डालना चाहिये एवं कस्तूरी

मिलाने के पश्चात् औषधियों को हो सके उतना जल्दी मिलाकर छोटी-छोटी गोलियां बनाकर छाया में सुखा देनी चाहिये अथवा सूखा चूर्ण करके बोतलों में भर लेना चाहिये।

(37) केशर को औषधि में मिलाने से पहले एक थाल में रखें। फिर एक कटोरी को गरमकर केशर के ऊपर ढक देवें। जिससे केशर में से नमी निकल जायेगी फिर उसे बारीक पीसकर मिला लेवें।

(38) अफीम वाली औषधि बालकों को अधिक मात्रा में सहन नहीं होती। यदि आवश्यकता हो तो सम्हालपूर्वक दें। रक्तार्श और रक्तातिसार में दूषित रक्त और कच्चे आम गिरते हों, तब तक अफीम युक्त औषधि न दें।

सगर्भा स्त्री को अफीम वाली औषधि कदापि नहीं देनी चाहिये। कमजोर आंत वाले मधुमेह के रोगी को अफीम वाली औषधि सम्हालपूर्वक देनी चाहिये।

नेत्र में अञ्जन और लेप के लिये अफीम जितनी पुरानी मिले उतनी ही हितकर है। अफीम आदि कतिपय औषधियाँ स्वस्थावस्था में जिस तरह परिणाम दर्शाती हैं; वे कतिपय विकार में वैसा परिणाम नहीं दर्शाती। जैसे-निद्रा लाने में अफीम उत्तम औषधि है, फिर भी किसी-किसी व्यक्ति को तीव्र ज्वर होने पर निद्रा नहीं ला सकती। प्रत्युत उत्तेजना देती है, जिससे प्रलाप बढ़ जाता है।

(39) मादक औषधि की क्रिया शीतल देश की अपेक्षा उष्ण देश में अधिकतर प्रकाशित होती है और प्रातःकाल सेवन की हुई औषधि इतर समय की अपेक्षा अधिक गुण दर्शाती है।

(40) किसी-किसी व्यक्ति को लोहभस्म, सोमल, हींग, अफीम, क्विनाइन या इतर कोई-कोई औषधि अनुकूल नहीं होती। ऐसे मनुष्यों के लिये उस औषधि का प्रयोग (रोगनाशक होने पर भी) नहीं करना चाहिये।

एक रोगिणी को दूध अनुकूल नहीं रहता था दूध पिलाने पर थूक में रक्त आने लगता था। जिससे दूध अहितकर समझकर हमें छुड़ा देना पड़ा था।

(41) जिन-जिन औषधियों के रसायनिक संयोग द्वारा गुण में परिवर्तन हो जाता हो, ऐसे परस्पर विरोधी द्रव्यों का मिश्रण नहीं करना चाहिये। जैसे-दूध और दही, दूध और नींबू का रस, दूध और लहसुन आदि। परन्तु क्वचित् अतिसार के रोगियों को रोग की महिमानुसार दूध में नींबू का रस निचोड़ कर तुरन्त पिलाते हैं। मस्तिष्क-गत वातविकार में रोगी को दूध में लहसुन मिला खीर बनाकर सेवन कराते हैं। इस तरह अन्य रासायनिक संयोगविरोधी द्रव्यों का प्रयोग भी हो सकता है।

(42) शोथहर औषधियों के प्रयोग काल में यदि नमक, शराब या मांसाहार का सेवन किया जायेगा तो औषधि से योग्य लाभ नहीं हो सकेगा।

(43) मेदोहर औषधियों के प्रयोगकाल में यदि घृत, मधुर पदार्थ, दही चावलादि मेदवर्द्धक आहार का सेवन अधिक होगा तो औषधि से योग्य लाभ नहीं पहुँचेगा।

(44) शुक्रवर्द्धक औषधियों के सेवन काल में आग्रहपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन होगा तो ही लाभ मिल सकेगा।

(45) शराब, तमाखू, अफीम आदि का व्यसन कराना हानिकर है। फिर भी इतर मार्ग न होने पर व्यसन कराया जाता है। जैसे-मधुमेह दूर न होने पर अफीम का व्यसन, मानसिक आघात शमनार्थ शराब का व्यसन, निर्बल व्यक्ति की मानसिक थकावट को दूर कराने के लिये चाय का व्यसन आदि। इस तरह विविध व्यसनों द्वारा रोग का दमन कराया जाता है।

(46) मुख द्वारा सेवन की हुई औषधि जितने परिमाण में और जितने समय में फल प्रदर्शित करती है, इनकी अपेक्षा अन्तःक्षेपण की हुई औषधि कम परिमाण में ही सत्वर लाभ पहुँचाती है। कारण, आमाशय और अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कला द्वारा औषधिसत्व का शोषण मृदुतापूर्वक और विलम्ब से होता है। शोषण हो जाने पर भी वह सत्व यकृत् में जाता है और उसमें पित्तमिश्रित होकर रक्त में गमन करता है, जिससे यकृत में भी औषधि का कुछ अंश नष्ट हो जाता है।

परन्तु अन्तःक्षेपण द्वारा औषधि द्रव्य सत्वर शोषित हो जाता है और उसके सत्व का इतर यन्त्रों द्वारा क्षय नहीं होता। इस हेतु से कम मात्रा होने पर भी सत्वर लाभ पहुँचता है।

भीतर प्रवेश किये हुये औषध सत्व का शोषण रसत्वचा (Serousmembrane) द्वारा अति सत्वर होता है। संयोजक कला (Intercellulartissue) द्वारा अपेक्षाकृत कम शोषण और श्लैष्मिक कला द्वारा सबकी अपेक्षा कम शोषण होता है।

(47) कितनी ही औषधियां प्रतिदिन सेवन करने पर देह में शनैः शनैः संचित होती रहती हैं। जैसे-पारद, सोमल, कुचिला आदि। इन संगृहीत औषधियों का असर अर्थात् संग्राहक क्रिया (Cumulative action) कभी-कभी सहसा उपस्थित हो जाता है। अतः इन औषधियों का सेवन दीर्घकाल तक करना हो तो बीच-बीच में थोड़े-थोड़े दिन तक इनको छोड़ देना चाहिये।

(48) चूर्ण और गुटिका आदि औषधियों की अपेक्षा आसव-अरिष्ट, अर्क, क्वाथ आदि औषधियां सत्वर शोषित होकर अपना फल दर्शाती हैं। अतः तीव्र विकार शमनार्थ औषधि का द्रव प्रवाही रूप से उपयोग करना विशेष हितावह माना जाता है।

(49) आमाशय में आहार होने की अपेक्षा आमाशय खाली होने पर औषधि सत्वर शोषित हो जाती है। इसके अतिरिक्त प्रयोगभेद, रोगभेद, स्त्री-पुरुषभेद, आयुभेद, ऋतुभेद, देशभेद, अभ्यासभेद, शारीरिक उत्तापभेद आदि कारणों से औषधि सत्व की शोषण क्रिया में तारतम्य हो जाता है।

(50) अफीम, सोमल, शराब, गांजा, कुचिला आदि औषधियां व्यसन अभ्यास (Idiosyncrasy) के हेतु से अधिक मात्रा में सेवन करने पर भी विष क्रिया उत्पन्न नहीं करा सकती। अतः ऐसी औषधियां सेवन कराने के पहिले इस बात को भी सोच लेना चाहिये।

(51) प्रस्वेद लाने वाली औषधि देने पर रोगी को भलीभाँति वस्त्र औढ़ाकर बैठाना या सुलाना चाहिये।

(52) नित्य उपयोग के दन्त मंजन में तेज नमक मिलाना हानिकर है। तेज नमक से दांतों की सफेदी और मसूड़ों को हानि पहुँचती है, दांतों की संधि घिस जाती है, और दांत अलग-अलग हो जाते हैं। परन्तु जिनके दांतों में कृमि हो, पीप आता हो, उनको सैंधा नमक और सरसों का तैल मिला दन्त मंजन विशेष लाभदायक है।

(53) किसी भी चूर्ण में ईसबगोल मिलाना हो, तो बिना कूटा ही मिलाना चाहिये। कूटा हुआ ईसबगोल हानिकर है।

(54) अनुपान रूप से घृत और तैल लेने पर १ घण्टा तक ठण्डा जल न पीवें। यदि अति व्याकुलता उपस्थित हो, तो निवाया जल थोड़े परिमाण में ले सकते हैं।

(55) भिलावे वाली दवाई के साथ अनुपान रूप से चाय, कॉफी या गरम-गरम जल आदि नहीं लेना चाहिये। मट्ठा, नीबू का रस, नारियल का जल और शीतल जल आदि सहायक होते हैं।

प्रयोगों में मिलाने योग्य औषधियों की शुद्धि

(५६) चित्रकमूल, भारंगी मूल, अर्क मूल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, मुलहठी आदि औषधियों को बाजार से लाते ही नहीं कूट लेना चाहिये। उनके धूल, कीटाणु दूषित द्रव्य लगा हो, दूषित वायु में बन्द रही हो या मकड़ी आदि के अण्डे अथवा जाले लगे हो तो इन सबको दूर करना चाहिये ओर निरुपयोगी छाल आदि हो उसे छीलकर दूर करना चाहिये।

१. मूल शाखा और फनर सुगन्ध रहित आदि को शुद्ध करने के लिये उबलते हुये जल में उनको डाल १-१ मिनट रख जल को निकाल फिर धूप में सुखा लेना चाहिये।

२. मृदु फल जिनको जल में डालने पर तुरन्त सत्व निकल जाता हो ऐसे द्रव्यों को गरम जल से भिगोये हुये कपड़े से पोंछ एक आधा घंटे तक धूप में फैला देना चाहिये।

३. ऊपर की छाल की जितनी तह हीन वीर्य हो गई हो या दूषित हुई हो तो उसको छीलकर दूर कर देनी चाहिये।

४. सूखे पुष्प और पानों से गर्दा निकाल पोंछ, धूप में फैलाकर शुद्ध कर लेना चाहिये।

५. नमक को तांबे या पीतल के बरतन में ३ गुना अधिक जल में डालें ऊपर आये हुये कचरे को झर से निकाल देवें। फिर अच्छी तरह नितर जाने पर तांबे या पीतल की कड़ाही में निकला लेवें। पैंदे में बैठे हुये कचरे को फेंक देवें, जल को उबाल कर सुखा देने पर कली चूना जैसा स्वच्छ सफेद नमक हो जाय तो उसे अमृतबान में भर लेवें और आवश्कता पर काम में लेवें।

(रोग विषयक सूचना)

(५७) नूतन ज्वर में तेज वायु का सेवन, दिन में अधिक समय तक शयन, स्नान, अभ्यङ्ग, मैथुन, क्रोध और परिश्रम हानिकर है।

(५८) चढ़ते बुखार में ज्वर हर औषधि देने से ज्वर विशेष कुपित होता है।

(५९) जब तक नूतन ज्वर शरीर में रहे, तब तक खाने को कुछ भी नहीं देना चाहिये। आचार्यों ने कहा है कि-

शयनं पित्तनाशाय वातनाशाय मर्दनम्। वमनं कफनाशाय ज्वरनाशाय लङ्घनम्॥

(६०) ज्वर रोग में जल गरम करके ठण्डा किया हुआ थोड़ा-थोड़ा आवश्यकता अनुसार देते रहना चाहिये।

(६१) पुराने ज्वर में रोगी को घी और दूध अवश्य देना चाहिये। दूध को 'सर्वज्वराणां जीर्णानां क्षीरं भैषज्यमुत्तमम्' इस वचन से उत्तम भेषज माना है। जीर्णज्वर जो कि क्वाथ, वमन, लङ्घन और लघु भोजन से शमन न हुआ हो, उस पर शास्त्रोक्त घृतपान हितावह माना गया है। इसके रोगी को कदापि उपवास न करावें। यदि अपथ्य सेवन से दोष प्रकुपित हुए हों, तो सम्हाल पूर्वक लङ्घन करावें।

(६२) मुद्दती ज्वर में ज्वरशामक औषधि न देवें। विकार को पचन, करने वाली पाचन और शोधन औषधि देनी चाहिए।

(६३) चातुर्थिक ज्वर (तिजारी) वाले रोगी को ज्वर दूर होने के पश्चात् भी दो-चार मास तक गुड़ वाला पदार्थ खाने को नहीं देना चाहिये, अन्यथा ज्वर पुनः आ जाता है।

(६४) शीतला के ज्वर में पीने को ठण्डा जल दिया जाता है।

(६५) तरुण ज्वर में द्विदल धान्य आदि भोजन, मांस, स्त्री-सेवन और पतली कांजी पीना अति हानिकर है।

(६६) त्रिदोष ज्वर में घृत कदापि नहीं देना चाहिए एवं मांस या भात देना भी हानिकारक है।

(६७) सन्निपात में दाह हो तो भी शीतल जल नहीं पिलाना चाहिये। यदि प्रस्वेद आता हो तो सत्वर बन्द करने की चिकित्सा करनी चाहिये। अन्यथा रोगी शीत में आ जाता है।

(६८) यदि सन्निपात में तन्द्रा है, तो तीक्ष्ण नस्य आदि औषधि द्वारा तुरन्त चेतना लाने का प्रयत्न करना चाहिये।

(६९) यदि सन्निपात में कर्णशोथ हो जाय तो जोंक आदि उपचारों से तुरन्त सूजन को दूर करना चाहिए।

(७०) सन्निपात में पहिले वात-कफ का शमन करें, तदनन्तर वातपित्त को दूर करना चाहिये।

(७१) ज्वर चले जाने के पश्चात् जब तक शरीर में शक्ति न आवे, तब तक मैथुन, व्यायाम, मार्गगमन, देर से पचने वाले भोजन, सूर्य के ताप या वायु का अति सेवन और ठण्डे जल से स्नान करना हानिकर है।

(७२) ज्वर रोकने वाली औषधि एक दिन में ३ समय दें। पारी के बुखार आने से ६ घण्टे पहिले से २-२ घण्टे पर 3 बार औषधि दें तथा सन्निपात में रोग काबू में आये, तब तक २-२ घण्टे पर ३-४ या अधिक बार औषधि देते रहना चाहिये।

(७३) सन्निपात, मुद्दती ज्वर, प्लेग और क्षय रोग में जुलाब देना अति हानिकर है। परन्तु मलावरोध हो, तो मृदु विरेचन देकर उदर शुद्धि कर लेनी चाहिये। दूध में अमलतास डालकर देने से कोष्ठशुद्धि हो जाती है।

(७४) अतिसार के रोगी को कच्चा दूध और पतला अन्न (कांजी आदि पिलाना), हानिकर है, किन्तु चावल की-लाजा की यवागू का निषेध नहीं है। अतिसार में उपवास अति लाभदायक है। औषधि थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिन में 3-4 बार देना हितकर है। एक साथ में ज्यादा औषधि देने से लाभ के बदले हानि होती है। कच्चा आंव पड़ता हो तब तक अफीम या अन्य स्तम्भक औषधि नहीं देनी चाहिए। अतिसार शांत होने के पश्चात् भी १५ दिन तक अधिक भोजन, पक्वान्न, कच्चा अनाज और देर से पचने वाले पदार्थों का त्याग करना चाहिए।

(७५) विसूचिका (कालेरा) में रोगी को पीने के लिए बार-बार एक-एक तोला बर्फ का जल दें अथवा गरम करके शीतल किये हुए जल को सौंफ के अर्क में मिलाकर एक-एक चम्मच देते रहें। एक साथ में ज्यादा जल नहीं पिलाना चाहिये। अफीम वाली औषधि हो सके, तब तक न दें। पेशाब बन्द हो, तो मूत्रेन्द्रिय में कपूर रक्खें और पेडू पर केसूला तथा कलमी शोरा की लुगदी बांधे। यदि दस्त बन्द हो जाने पर वमन बन्द न होती हो तो जल के बदले में तिल का तैल अथवा घृत पिलाना अति हितकर है।

(७६) रक्तार्श और रक्तातिसार के आरम्भ में जब तक दूषित रक्त गिरता हो तब तक लोह भस्म आदि स्तंभक औषधि न दें। अफीम से भी तुरन्त दूषित रक्त का स्तम्भन न करें। अर्श के रोगी को कच्चा दूध और मलावरोध कारक भोजन नहीं देना चाहिये।

(७७) जीर्णमलावरोध के रोगी को बार-बार विरेचन देना हानिकर है। आवश्यकता पर बस्ति से आंतों को साफ कर लेना, यह लाभदायक है। परन्तु बस्ति का उपयोग भी बार-बार नहीं करना चाहिये।

(७८) अम्लपित्त रोग में भोजन के बीच में या भोजन करके तुरन्त ज्यादा जल पीना, शाक ज्यादा खाना, खट्टे पदार्थ खाना, गरम-गरम भोजन, चाय आदि लेना ये सब हानिकर हैं।

(७९) दाहयुक्त अम्लपित्त रोग में वमन, विरेचन से शोधन किये बिना औषधि देना लाभदायक नहीं है।

(८०) रक्तपित्त के रोगी को धूम्रपान आदि व्यसन और पित्तवर्द्धक आहार-विहारों का त्याग करना चाहिये।

(८१) सब प्रकार के उदर रोगों में मट्ठा और गोमूत्र का सेवन अति लाभदायक है।

(८२) कृमिरोग में अधिक मधुर पदार्थ, गुड़, अति दूध और कच्चा दूध हानिकारक तथा तैल हितकर है।

(८३) भगन्दर में हींग, बेसन और मधुर पदार्थ हानिकर हैं।

(८४) रक्तगुल्म की चिकित्सा शास्त्रमर्यादा के अनुसार 10 मास के बाद करनी चाहिये। किन्तु नव्य मत के अनुसार यदि रोग निर्णित हो जाय तो तुरन्त की जाती है।

(८५) कफ प्रधान गुल्म रोग में वमन कराना हानिकर है।

(८६) शूलरोग में द्विदल धान्य (चना, मसूर, मटर, मूंग आदि) का सेवन अति हानिकर है। वमन, लङ्घन, स्वेदन और पाचन औषधियां लाभदायक हैं। प्रथम स्वेदन देना विशेष हितकर है।

(८७) वात-जन्य शूल में रेचन औषधि और निरूह बस्ति, पित्त-जन्य शूल में मधुर औषधियों से सिद्ध किया हुआ दुग्ध और कफ जन्य शूल में कड़वी और चरपरी औषधियां तथा वमन हितकर है।

(८८) परिणाम शूल में लंघन, वमन, विरेचन और तैलयुक्त बस्ति ये सब लाभ पहुँचाते हैं।

(८९) अन्न द्रव शूल में पित्त शमनार्थ तथा कफ नाशार्थ विरेचन और अम्लपित्त हर औषधि देना निम्न वचन में कहा है।

पित्तान्तं वमनं कृत्वा कफान्तं च विरेचनम्। अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्ते यदीरितम्॥

(९०) आमजन्यतीव्र उदरशूल में नमक मिले निवाये जल से वमन कराना हितकर है। उस समय तीव्र शूलघ्न औषधि देना हानिकर है।

(९१) जलोदर रोग से संचित जल को यन्त्र से निकालना हो, तो एक ही समय में सब जल नहीं निकालना चाहिये।

(९२) अजीर्ण रोग में तीव्र पीड़ा होती हो, तब शूलान्तक औषधि न दें। अन्यथा अग्नि आम दोष से आच्छादित होने से प्रकुपित होती है।

(९३) शुष्क वातिक कास और पित्तप्रधान सूखी खांसी के रोगी को खट्टा पदार्थ, चरपरा पदार्थ, अजीर्ण होवे उतने अधिक परिमाण में भोजन और हींग हानिकर है। इस तरह सिंगरफ, अभ्रक, संखिया, कुचिला और भिलावा आदि उत्तेजक औषधि भी नहीं देना चाहिये।

(९४) क्षय रोग में विरेचन और स्त्री सेवन हानिकर हैं। क्षय के कीटाणुओं को नाश करने वाली औषधि स्वर्ण है, परन्तु जब ज्वर अधिक हो तब स्वर्ण वाली औषधि नहीं देनी चाहिये। पतले दस्त लगते हों, तो जल्दी बांधने का प्रबन्ध करना चाहिये, परन्तु अफीम से दस्त न रोकें। सोमलवाली औषधि शुष्क कास होने पर नहीं देनी चाहिये। यदि क्षय रोगी को देवदारु या बांस के जंगल में या बकरियों के साथ रखा जाय तो सत्वर लाभ होने की सम्भावना है।

भोजन में बकरी का दूध-और घी, बकरे के मस्तक को उबालकर बनाया हुआ यूष और लहसुन ये सब अति हितकर हैं, तथा उपवास, परिश्रम, मानसिक चिन्ता और तेज वायु अति हानिकर है।

क्षय रोगी के कफ को जमीन में गहरा खड्डा करके दबा दें तथा वस्त्र और जगह को साफ रखें। क्षय रोगी के थूकने के बरतन में फिनायल, मिट्टी का तेल तथा राख रखें, जिससे मक्खी उस पर न बैठे एवं हो सके तो थूकने के पात्र को ढक कर रखें।

(९५) कृमिजन्य हृदयरोग में वमन कराने का निषेध है, विरेचन देना हितावह है।

(९६) शस्त्र लगने से शरीर का कोई भाग कट जाने पर उसको ऊँचा रखने से रक्त निकलना बन्द होता है।

(९७) उरुस्तम्भ (आढ्यवात) में वमन विरेचन, बस्ति, तैलमर्दन, शिरावेध और स्निग्ध पदार्थों का सेवन हानिकारक है। लेप, ईंट तपाकर सेकना, स्वेदन, उपवास तथा आम, मेद और कफ में नाशक रूक्ष पदार्थों का सेवन हितकर है। जलाशय में तैरना भी लाभदायक है। इस रोग में पहिले कफनाशक उपचार और फिर वातनाशक औषधि देवें।

(९८) अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) के रोगी को लंघन नहीं कराना चाहिये एवं वमन, अनुवासन और आस्थापन बस्ति ये कर्म भी नहीं कराना चाहिये।

(९९) अपतन्त्रक पीड़ित को वातश्लेष्म विकृत होने पर अथवा श्वासावरोध होने पर तीक्ष्ण नस्य देना चाहिये।

(१००) कम्पवात में तैल की मालिश, पौष्टिक भोजन तथा अफीम, कुचिला और गूगल का सेवन ये सब अति लाभदायक हैं।

(१०१) अर्दित वात (मुख के पक्षाघात) में तैल की मालिश और स्निग्ध भोजन लाभदायक है।

(१०२) मन्यास्तम्भ में रूक्ष स्वेद और नस्य से सत्वर लाभ होता है।

(१०३) जीर्ण आमवात में लंघन, स्वेदन, स्नेहपान, विरेचन, बस्ति तथा कडवी, चरपरी और अग्नि प्रदीपक औषधियों का उपचार करने से सत्वर लाभ पहुँचता है।

(१०४) वात रोग की सूजन पर रात्रि को लेप न करें और दिन में सूखने पर लेप को बार-बार हटाते रहना चाहिये।

(१०५) गाँठ, फोड़े आदि पर बैठाने का लेप गाढ़ा किया हो तो उसे रहने दें, बार-बार न हटावें एवं पकाने की गांठ पर भी रात्रि को नया लेप करना चाहिये।

(१०६) अस्थि भङ्गका लेप २-३ दिन या अधिक दिन के बाद ही खोलकर बदलें, जल्दी नहीं खोलना चाहिये।

(१०७) विद्रधि (फोड़े) को पकाने के लिये बांधी हुई पुल्टिस को यदि २-३ घण्टे पर बार-बार बदलते रहें तो पाक जल्दी हो जाता है। पुल्टिस को ज्यादा समय तक रहने देना, यह लाभदायक नहीं है।

(१०८) विद्रधि को शस्त्र से चीरना हो, तो खड़ा चीरा लगावें। जिससे रक्तवाहिनियां थोड़ी कटती हैं और रक्त भी थोड़ा निकलता है। प्रमादवश आड़ा चीरा लगाया जायेगा तो रक्तवाहिनियां ज्यादा कट जायेगी और रक्त ज्यादा निकलेगा।

(१०९) पित्तप्रधान उन्माद के रोगी को धारोष्ण दूध अथवा गोघृत पिलाना और पौष्टिक आहार देना, ये सब हितकर हैं। सूर्य के ताप और अग्नि का सेवन, मैथुन, शोक, क्रोध आदि हानिकर हैं। ठण्डे जल में बैठना अति हितकर है।

(११०) कुष्ठ रोग में मांस, दूध, दही और इनसे बनी हुई वस्तुओं का सेवन हानिकर है। चने के पदार्थ और घी अति हितकर हैं। वमन, विरेचन, स्वेदन और बस्ति प्रयोग लाभदायक हैं।

(१११) विसर्प रोग में घृत और तैल वाले पदार्थ हानिकर हैं।

(११२) श्लीपदरोग में तैल की मालिश हानिकर है। किन्तु जब रक्त निकालना हो तब तैल मर्दन और स्वेदन कर सकते हैं।

(११३) कर्णशोथ पर तैल और घृत वाले मलहम प्रायः लाभ नहीं पहुँचाते हैं। जोकों से दूषित रक्त निकलवाकर शोथ को तुरन्त कम करने वाला लेप लगाना चाहिये।

(११४) नाड़ी व्रण (नासूर) का मुंह छोटा होवे तो पहिले चूना, सैंधानमक या अन्य क्षार युक्त लेप करके मुँह को बड़ा बनावें। पश्चात् सिद्धघृत अथवा तैल की पिचकारी द्वारा प्रवेश कराने से रोग की निवृत्ति होती है।

(११५) पागल कुत्ता काटने के पश्चात् १ वर्ष पर्यन्त वातप्रकोपक पदार्थों का सेवन नहीं कराना चाहिये।

(११६) सांप काटने के पश्चात् एक आधमास तक नित्य रोगी को शक्ति अनुसार सुबह भोजन के ३ घण्टे पहिले २ से ४ तोले तक घी पिलाने से नेत्रज्योति नहीं बिगड़ती।

(११७) चूहे के विष-प्रकोप में शीतल वायु, शीतल जल, शीतल गुण वाला भोजन, दिन में शयन आदि हानिकर हैं।

(११८) बहुमूत्र रोग, जिसमें थोड़ा-थोड़ा मूत्र बार-बार होता है, किसी को मूत्रदाह भी होता है, उसमें अधिक घी, खटाई, नये चावल, अधिक परिमाण में मधुर पदार्थ का सेवन, अजीर्ण में भोजन, भोजन पचन होने से पहले पुनः भोजन और भोजन के साथ अधिक जलपान ये सब हानिकर हैं तथा भोजन के एक घण्टे पीछे जल पीना, भोजन सादा और कम करना, खुली वायु में घूमना ये सब हितकर हैं।

(११९) स्वप्नदोष में रात्रि को मधुर पदार्थ का सेवन, रात्रि को भात खाना अजीर्ण में भोजन, वातल पदार्थों का अति सेवन, खट्टा पदार्थ खाना, तमाखू, चाय आदि हानिकर हैं एवं अफीम, सोमल और हरताल मिश्रित औषधि भी प्रायः हितकर नहीं हैं। सायंकाल को खुली वायु में घूमना, सात्विक भोजन, ईश्वरस्मरण, रात्रि को भोजन के बदले केवल दूध पीना, ये सब लाभदायक हैं।

(१२०) पूयमेह (सुजाक) के रोगी का रक्तशोधन न करने और अपथ्य सेवन करने से मूत्र कृच्छ, पेशाब में रक्तस्राव, बद, वृषणवृद्धि, नेत्राभिष्यन्द, मंदाग्नि, सन्धिवात और प्रमेह पिटिका आदि में से कोई न कोई उपद्रव हो जाने की संभावना रहती है।

(१२१) सुजाक और उपदंश रोग में अपथ्य सेवन से रोग का मूल ऐसा दृढ़ हो जाता है कि जीवन पर्यन्त बार-बार अनेक उपद्रव होते रहते हैं। बद, विद्रधि, नेत्रव्याधि, नख बिगड़ना, रक्तविकार, संधिवात, मन्दाग्नि, मलावरोध आदि की संप्राप्ति हो जाती है।

(१२२) दांत के रोग, नेत्र रोग, शिर दर्द और प्रतिश्याय आदि में आवश्यकता पर पेट साफ करने वाली औषधि का सेवन करते रहना चाहिये।

(१२३) साधारण हिलते हुए ऊपर के दांत और दाढ़ों को शस्त्र से नहीं निकलवाना चाहिये। अन्यथा नसों में आघात होकर अधिक रक्त गिरना, शिरदर्द, नेत्र की निर्बलता आदि भयङ्कर रोग उत्पन्न होते हैं। यदि दाढ़ को निकलवाना हो तो दन्त विशेषज्ञों से मसूड़े की जड़ को शिथिल करने वाली औषधि को लगाकर निकलवाना चाहिये।

(१२४) तीक्ष्ण नेत्र रोग में नेत्रों को ठंडे जल से नहीं धोना चाहिये और ठण्डी वायु से बचाना चाहिये। नेत्रों को धोने के लिये निवाये जल का उपयोग करना चाहिये। नेत्र रोग में गुड़, मिर्च, तैल, शुष्क अन्न, कब्जकारक पदार्थ और रात्रि जागरण इन सबका त्याग करना चाहिये।

(१२५) थका हुआ, रुदन किया हुआ, भयभीत, मदिरा पिया हुआ, नवीन ज्वरवाला, अजीर्ण रोगी, मल-मूत्र का वेग जिसने रोका हो, इन सब के नेत्रों में अञ्जन नहीं कराना चाहिये।

(१२६) फूले आदि रोगों में जहां लेखन औषधि को प्रयोजित करना हो उस लेखन (तीक्ष्ण) औषधि के साथ मिश्री अथवा अन्य मधुर औषधि न मिलावें। केवल शहद मिला सकते हैं।

(१२७) फूला, मोतियाबिन्दु आदि रोगों में अंजन करने के लिये तांबे की सलाई विशेष हितकर है।

(१२८) मोतियाबिन्दु के रोगी के नेत्रों में ज्यादा अश्रुपात हो, ऐसी औषधि का उपचार नहीं करना चाहिये।

(१२९) पित्तज अभिष्यन्द में कदापि स्वेदन नहीं देना चाहिये। पित्तज और वातज नेत्र रोग का आमावस्था के समय कच्चा दोष हो तब तक नेत्र में औषधि न डालें। किन्तु कफजनित नेत्र रोग की आमावस्था में तीक्ष्ण औषधि डालना चाहिये।

(१३०) नेत्र, हृदय और वृषण कोमल होने से इन स्थानों का स्वेदन न दें। अति आवश्यकता होने पर सौम्य स्वेदन दें।

(१३१) मूत्र रोग में मूत्रविरेचन देना हो तो सुबह के समय देना चाहिये।

(१३२) कफवृद्धि दूर करने के लिये वमन करना हो, तो प्रातः कांजी पिलाकर वामक औषधि देवें।

(१३३) मलावरोध और इतर रोगों में विरेचन के लिये औषधि प्रातः दें। परन्तु मृदु विरेचन देना हो, तो रात्रि को देना चाहिये।

(१३४) अग्निमांद्य और अजीर्ण को दूर करने वाली औषधि भोजन के साथ लेनी चाहिये। अजीर्णनाशक औषधि रात्रि को भी दी जाती है।

(१३५) तृषा, हिचकी, श्वास और विष प्रकोप में बार-बार औषधि का सेवन करना चाहिये।

(१३६) मानसिक चिन्ता या इतर रोगों से निद्रानाश होने पर मादक औषधि रात्रि को सोने के दो घण्टे पहिले देनी चाहिये।

(१३७) रक्तविकार, कफप्रकोप, जीर्ण विषपीड़ा और इतर रोगों में रात्रि को स्वेदल औषधि देनी हो तो सोने के दो घण्टे पहिले दें।

(१३८) अग्नि से जले हुए भाग पर शीतल जल लगाना हानिकर है और तुरन्त सेक करना हितकर है।

(१३९) कान के रोग में रस आदि औषधि प्रातः और तैल आदि औषधि सूर्यास्त पश्चात् डालनी चाहिये।

(१४०) दाहसह शिरदर्द रोग में तैल की मालिश नहीं करनी चाहिये। क्योंकि तैल से रोमकूप बन्द हो जाते हैं, जिससे प्रस्वेद द्वारा विष बाहर नहीं निकल सकता। फिर मस्तिष्क में उष्णता की वृद्धि होकर दाह, उत्ताप और व्याकुलता बढ़ जाते हैं।

(१४१) जब असाध्य रोग निवारण न हो सके तब तीव्र पीड़ा आदि लक्षणों को कम कराने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु ऐसी क्रिया से रोग शान्त हो जायेगा, ऐसे मिथ्या भ्रम में रोगी या रोगी के सम्बन्धियों को नहीं डालना चाहिये।

(१४२) मूत्राशयग्रन्थि (पौरुषग्रन्थि) की वृद्धि हो जाने पर शीत न लग जाय, यह सम्हालना चाहिये, नियमित पथ्य भोजन करना चाहिए,

नियमित समय पर उदरशुद्धि हो ऐसा स्वभाव बनावें। अधिक परिश्रम या मार्ग-गमन न करें। मूत्रावरोधक द्रव्य या मूत्र की उत्पत्ति का ह्रास करने वाले भोजन या औषध (मल्ल, क्विनाइन, बंगभस्म, कुचिला, हींग, तैल, भिलावा आदि) न लेवें।

(१४३) बालाक्षेप-बालकों को धनुर्वात आने पर रोगी के वस्त्र दूर करना चाहिये। मुखमण्डल पर जल छिड़कें, वायु डालें और पैरों को गरम जल में रखावें।

(१४४) प्रसूता को आक्षेप आने पर गर्भाशय में उत्तरबस्ति देकर दोष को बाहर निकालें, पैरों पर गर्म जल की थैली से सेक करें।

(१४५) यकृद्विकार और कामला होने पर यकृत् के पित्त से पचन होने वाले पदार्थ घृत, तैलादि का सेवन नहीं करना चाहिये या कम करना चाहिये।

(१४६) यकृत् में रक्तसंग्रह से पीड़ित रोगी को शराब का व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये। व्यायाम, लंघन, विरेचन, यकृत् पर सेक और रक्तस्राव कराना ये सब हितकारक हैं।

(१४७) रक्तदबाव वृद्धि, चर्मरोग (कण्डू, दद्रु, ब्यूची, ददौरे), कुष्ठ, रक्तविकार, वृक्कशूल, मूत्रावरोध और शोथरोग, इन रोगों में हो सके तो नमक का सेवन बिल्कुल बन्द करें। न हो सके तो अति कम मात्रा में सैंधानमक लेवें। मलावरोध न रहने देवें गरम-गरम चाय, तमाखू, सिगरेट, शराब, मिर्च आदि व्यसन हो तो छोड़ देवें एवं मानसिक चिन्ता भी कम करें।

(१४८) निद्रानाश (निद्रा न आने) में नियमित उदरशुद्धि हो ऐसा स्वभाव डालें। निद्रानाश का हेतु मानसिक आघात होने पर शाम को द्राक्षासव या खुरासानी अजवायन देना चाहिये। मन को ईश्वर में लगाकर प्रसन्न रखने का प्रयत्न करें। रक्तदबाव वृद्धि हेतु हो, तो विरेचन देवें। उष्ण आहार या पेय का अधिक सेवन हो, तो भोजन सम शीतोष्ण कराना चाहिये।

(१४९) गर्भपात होने पर गर्भाशय में रहे हुए गर्भ के अङ्ग उपाङ्गों को निकालकर गर्भाशय को शुद्ध बना लेना चाहिये।

(१५०) कर्णशूल, पूयपाक होने पर होता हो, तो कान को उष्ण रखना चाहिये शीतल वायु और शीतल जल से रक्षा करनी चाहिये।

(१५१) उरस्तोय पीड़ित रोगी के फुफ्फुसों को शीत न लग जाय, यह सम्हालना चाहिये और रोगी को शय्या पर पूर्ण आराम कराना चाहिये।

(१५२) विष प्रकोप यदि किसी अम्ल (Acid) या दाहक पदार्थ के सेवन से हुआ हो, तो उसके विरोधी प्रतिविष का सेवन कराने से विष शमन हो जाता है।

अफीम, जमालगोटा, कुचिला, शीशा (नाग), मुर्दासंग, सिन्दूर, जसद, बच्छनाभ, ताम्रादि का सेवन होने पर वमन करायी जाती है। यदि स्वाभाविक वमन होकर विष निकल गया हो, तो फिर वमन कराने की आवश्यकता नहीं है। पारद, रसकर्पूरादि के विषप्रकोप में वमन नहीं करायी जाती, बल्कि, दूध और घी का सेवन कराया जाता है।

(१५३) सर्प विष और अहिफेन विष इन दोनों के विष से पीड़ित रोगी को निद्रा न आ जाय, यह सम्हालना चाहिये। इस हेतु तीक्ष्ण अञ्जनादि प्रयोग करें और हृदय के संरक्षणार्थ हृद्य औषधि का सेवन करावें।

(१५४) अलर्क अर्थात् पागल कुत्ते के विष से पीड़ित रोगी को कुत्ता काटने के लगभग १५ दिन होने पर धतूरा या इतर औषधि के सेवन द्वारा अपक्व विष को प्रकुपित कराकर जला देना चाहिये।

(१५५) सोमल का सेवन विष -मात्रा में हो गया हो, तो हो सके उतना जल्दी वमन करा देना चाहिये। यदि विष का प्रवेश रक्त और अन्त्र में हो गया हो, तो दूध में घी, या जल में एरण्ड तैल मिलाकर पिला देना चाहिये।

(१५६) नासारक्तस्राव यदि मस्तिष्क में रक्त वृद्धि होने पर हुआ हो, तो उसे नहीं रोकना चाहिये। अन्यथा भयंकर आपत्ति उपस्थित हो जायेगी, पक्षाघात, नेत्रादि मार्ग से रक्तस्राव या कोई बड़ी शिरा टूटकर मृत्यु अथवा अन्य विकार की प्राप्ति हो जायेगी।

(१५७) शारीरिक उष्णता-शीत कटिबन्ध प्रदेश में स्वस्थ सबल मनुष्य की शारीरिक उष्णता सामान्यतः ९८.४० मानी गई है। भारत में प्रान्त भेद से उष्णता भिन्न-भिन्न रहती है। कतिपय निर्बल मनुष्यों को ९६.५० से ९७.५० तक उष्णता रहती है। उनको ९९० होने पर सामान्यतः १॥ डिग्री ज्वर माना जायेगा।

प्रायः सुबह उठने के समय अधिकतम और रात्रि को सोने के २-३ घण्टे बाद न्यूनतम उष्णता रहती है। शीत लगने और क्रोध करने पर उष्णता में वृद्धि हो जाती है। स्वस्थ मनुष्य को कभी १००० तक हो जाती है। उसे ज्वर नहीं मानना चाहिये।

ज्वरावस्था में उष्णता १०५० से १०८० तक ४-६ घण्टे रहने पर स्थिति भयप्रद मानी जाती है, इससे अधिक बढ़ने पर रोगी का जीवन अधिक समय तक नहीं रह सकेगा, ऐसा अनुमान होता है।

आशुकारी आमवातिक ज्वर में १०४० से अधिक उष्णता रहने पर हृदय को हानि पहुँचने का भय रहता है एवं क्षय रोग में भी जितनी उष्णता बढ़ती है, उतना ही अधिक कीटाणु विष रक्त में मिल जाने का अनुमान होता है और उतना ही अधिक मांसक्षय होता है।

कामला रोग रक्त में पित्त मिल जाने पर होता है, यदि साथ-साथ शारीरिक उष्णता भी बढ़ जाती है तो रोग बल अधिक माना जाता है।

आन्त्रिक ज्वर (मधुरा रोग) में सामान्यतः सुबह की अपेक्षा शाम को २ डिग्री उष्णता अधिक रहती है। पहले सप्ताह में उष्णता क्रमशः बढ़ती है, सप्ताह के अन्त में सुबह १०२° हो तो रात्रि १०४° को रहता है, दूसरे सप्ताह में यह परिणाम कायम रहता है, तीसरे सप्ताह में उष्णता क्रमशः घटने लगती है।

बड़ी आयु वाले मनुष्य को ज्वर बढ़ने पर प्रलाप होने लगता है, किन्तु छोटे बच्चे को ऐसी अवस्था में आक्षेप होता है। बालकों को ज्वर वृद्धि शीघ्र होती है और ह्रास भी शीघ्र होता है।

उदर में मल, आम का विष संगृहीत होने पर ज्वरावस्था अधिक समय तक रहती है एवं कम होने के पश्चात् थोड़े ही समय में उष्णता बढ़ जाती है।

(१५८) **नाड़ी की गति**–सामान्यतः पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की नाड़ी की गति अधिक रहती है। भोजन के परिपाक काल में, परिश्रम करने पर और मानसिक उत्तेजना होने पर नाड़ी की गति बढ़ जाती है। भय लगने पर गति मन्द हो जाती है, हृदय निर्बल होने पर नाड़ी की गति निर्बल और अधिक वेगवती बन जाती है।

शारीरिक उत्ताप (Temperature)और नाड़ी (Pulse) का सम्बन्ध स्वस्थावस्था में प्रति मिनट निम्नानुसार रहता है–

उत्ताप	नाड़ी स्पन्दन	उत्ताप	नाड़ी स्पन्दन
९८°	६०	१०३°	११०
१००°	८०	१०४°	१२०
१०१°	९०	१०५°	१३०
१०२°	१००	१०६°	१४०

सामान्यतः १ डिग्री उत्ताप बढ़ने पर नाड़ी स्पन्द ८ से १० प्रति मिनट बढ़ जाते हैं।

सगर्भावस्था में ३ मास के पश्चात् नाड़ी की गति सामान्यतः शिथिल होने लगती है और श्वासोच्छ्वास की संख्या में वृद्धि होती है। नाड़ी स्पन्दन सामान्यतः प्रति मिनट स्वस्थावस्था में निम्नानुसार होता है–

गर्भस्थ शिशु	१४० से १५०	३ से ७ वर्ष	९० से १००
जन्म के समय	१३० से १४०	७ से १४ वर्ष	७५ से ९५
प्रथम वर्ष	११५ से १३०	१४ से २५ वर्ष	७५ से ८५
द्वितीय वर्ष	१०० से ११५	२५ से ६० वर्ष	६५ से ७५
तृतीय वर्ष	९५ से १०५	६० से अधिक	७५ से ८५

सामान्यतः आयु और बलवृद्धि के साथ-साथ नाड़ी स्पन्दन कम होते जाते हैं। पुनः वृद्धावस्था में हृदय निर्बल बनने पर स्पन्दन संख्या बढ़ जाती है।

स्वस्थावस्था में शारीरिक उष्णता, नाड़ीगति और श्वसन संख्या नियमित और परस्पर सम्बन्धवाली रहती है। सामान्यतः नाड़ीस्पन्दन और श्वसन का अनुपात ४=१ रहता है। यह नियम फुफ्सुसप्रदाहादि रोगों में टूट जाता है।

(१४९) **श्वसन क्रिया**– आयुवृद्धि के साथ जैसे-जैसे फुफ्फुस सबल बनते जाते हैं, वैसे-वैसे श्वसन संख्या कम होती जाती है। पुरुषों की अपेक्षा समान आयु वाली स्त्री की श्वास संख्या कुछ अधिक होती है एवं गर्भावस्था में और वृद्धि होती है। सामान्यतः श्वसनसंख्या प्रति मिनट आयु की दृष्टि से निम्नानुसार होती है।

२ मास से २ वर्ष तक	३० से ३५	१० वर्ष से १५ वर्ष तक १८ से २२
२ वर्ष से ५ वर्ष तक	२५ से ३०	१५ वर्ष से ४० वर्ष तक १८ से २०
५ वर्ष से १० वर्ष तक	२२ से २५	उत्तर वय में २० से २५

निमोनिया, कास, श्वासादि, फुफ्फुस रोगों में प्रायः श्वास गहरा नहीं चल सकता जिससे श्वसन संख्या में वृद्धि हो जाती है। इसी तरह ज्वर, हृदयविकार अथवा अन्य कारण से निर्बलना आने पर श्वसन क्रिया जल्दी-जल्दी होने लगती है। जिससे संख्या में वृद्धि होती है।

(१६०) **रक्तदबाव**–स्वस्थावस्था में हृदय, धमनी, शिरा और रक्ताभिसरण सहायक अवयव सबल होने पर रक्तदबाव सामान्यतः नियमित रहता है। किन्तु गरम-गरम भोजन, गरम पेय, शराब आदि उत्तेजक औषधियां व्यायाम, विरेचन, उपवास,रक्तस्राव, शीत लगना और क्रोध, चिन्तादि मनोवृत्तियों के कारण न्यूनाधिक हो जाता है। शराब और उपदंशादि रोगों के कारण से धमनियों की दीवार कठोर बनने पर बहुधा रक्त दबाव बढ़ जाता है। पाण्डुरोग, देह में रक्त की न्यूनता और अति हृदय शामक औषधि लेने पर रक्त का दबाव कम हो जाता है। रक्तदबाव वृद्धि और रक्त दबाव ह्रास, इनमें जो स्थिति उत्पन्न हुई हो उसे लक्ष्य में रखकर चिकित्सा करनी चाहिये।

सामान्यतः रक्तदबाव आयु अनुसार निम्नानुसार होता है–

रक्त दबाव दर्शक चार्ट

आयु वर्ष	आकुंचन रक्त भार	प्रसारण रक्त भार	नाड़ी दबाव
२ से ५	८१	४५	३६
५ से १०	९०	५३	३७
१० से १५	१००	६२	३८
१५ से २०	११०	७१	३९
२० से ३०	१२०	८०	४०
३० से ३५	१२४	८२	४२
३५ से ४०	१२६	८३	४३
४० से ५०	१२८	८४	४४
५० से ६०	१३२	८६	४६
६० से ६५	१३६	८८	४८
६५ से ७०	१४०	९०	५०
८० से अधिक	१४५	९२	५३

(१६१) **अङ्ग मर्दन**–मांसपेशियों को सबल बनाने और थकावट दूर करने के लिये चंपी अति सहायक क्रिया है। चंपी करने में मांसपेशियों की मोटाई के अनुरूप उन पर दबाव देना चाहिये एवं एक सिरे से दूसरे सिरे तक मांसपेशी पर घर्षण करना चाहिये। इस क्रिया में दबाव सर्वदा रक्त की गति हो उस और डाला जाता है। विरुद्ध दिशा में दबाव नहीं देना चाहिये। जिस तरह रक्ताभिसरण क्रिया में सरलता हो, उस तरह चंपी करना चाहिये।

चंपी करने के पहिले त्वचा को स्निग्ध बनाने के लिये तैल मर्दन कर लेना चाहिये। विशेष रुग्ण स्थान में मलहम की मालिश भी की जाती है फिर चंपी करने पर त्वचा उत्तेजित होती है और मांसपेशियां सबल बनती हैं और शांत निद्रा आने से रोग निवारण या थकावट दूर करने में सहायता मिल जाती है।

(१६२) **औषध मात्रा**–आयु और बल के अनुरूप औषधियों की मात्रा में न्यूनाधिकता होती है। जैसे–बड़ी आयु वाले सबल मनुष्य को कोई औषधि २४ रत्ती दी जाती है, तो वही औषधि कम आयु वाले या निर्बल को सामान्यतः निम्नानुसार न्यून देनी चाहिये।

आयु	रत्ती	आयु	रत्ती
२१ से ५० वर्ष	२४	५ से ८ वर्ष	८
१८ से २० वर्ष	२०	३ से ५ वर्ष	५
१६ से १८ वर्ष	१६	२ से ३ वर्ष	३
१२ से १६ वर्ष	१२	१ से २ वर्ष	२
८ से १२ वर्ष	१०	१ वर्ष से कम	१

पुरुष की अपेक्षा नाजुक प्रकृति वाली स्त्रियों को मात्रा कुछ कम देनी चाहिये। जल्दी लाभ पहुँचाने की भावना से अधिक मात्रा नहीं देना चाहिये। अन्यथा लाभदायक औषधि से भी हानि पहुँच जायेगी।

शहरवासी मनुष्यों की अपेक्षा ग्रामों की शुद्ध वायु में रहने वाले मनुष्यों को मात्रा प्रायः अधिक देना चाहिये।

विरेचन औषधि की मात्रा आयु भेद की अपेक्षा शरीर बल, रोगबल, मलसंग्रह और समय पर विशेष अवलम्बित है।

मादक और निद्राप्रद औषधि की मात्रा व्यसन, स्वभाव और प्रकृति के आधार पर न्यूनाधिक होती है।

रोगी विषयक सूचना

(१६३) सगर्भा स्त्री को अफीम, जमालगोटा और एलुवा वाली अथवा तीक्ष्ण औषधियाँ नहीं देनी चाहिये।

(१६४) सूतिका ज्वर से पीड़ित रोगिणी और सन्निपात के रोगी को घी खिलाना अति हानिकर हैं।

(१६५) यकृत् की शिथिलता से उत्पन्न मन्दाग्नि और बहुमूत्र के रोगी को घी ज्यादा नहीं देना चाहिये। मन्दाग्नि होने पर घी का पचन योग्य समय में नहीं होता और बहुमूत्र होने से मूत्रोत्पत्ति में अधिक कष्ट पहुँचता है और पेशाब के साथ घृत का कुछ अंश भी निकलता है।

(१६६) दूध पीने वाले बच्चों को औषधि देने के समय उसकी माता को भी औषधि देनी चाहिये। बालकों को अफीम वाली औषधि देने की आवश्यकता हो, तो सम्हालपूर्वक दें।

(१६७) जल मे डूबा हुआ मनुष्य जब तक तैर कर ऊपर न आया हो, तब तक उसके जीवन की आशा रह सकती है, उसे पैदे में से निकाला गया हो, तो कृत्रिम श्वासोच्छ्वास चलाने के लिये बार-बार नाक में फूंक देवें। हाथ हिलाते रहें और सीधा अथवा उल्टा सुलाकर पेट में रहे हुए जल को निकाल डालें। यदि छोटा बच्चा हो, तो चक्र (गाड़ी के चाक) पर बांधे फिर चक्र को फिराकर पेट में भरे हुए जल को निकाल डालें, जिह्वा को बाहर खेंचे, हाथ पैर दबावें, सेक करें, गर्म वस्त्र पहिनावें ओर निर्वात प्रकाश वाले स्थान में रखें। ये सब उपाय करने पर मनुष्य पुनः होश में आ जाता है।

(१६८) शरीर में रोग हो तब तक पौष्टिक औषधि से लाभ नहीं होता। रोग दूर होने के पश्चात् ही पौष्टिक औषधि देना चाहिये।

(१६९) किसी भी रोगी का रोग शमन होने लगे, उस समय उसके औषधि व्यवस्था द्वारा, स्वाभाविक क्रिया या अभ्यास में व्याघात नहीं पहुँचाना चाहिये। स्वभाव के अनुकूल औषधि-व्यवस्था और पथ्य आदि की योजना करनी चाहिये।

(१७०) स्त्रियों के शारीरिक विधान में कोमलता और स्वभाव में मृदुता होने से पुरुषों की अपेक्षा औषधि की मात्रा कम देनी चाहिये।

(१७१) शास्त्रों में लिखे हुए रोगों के समस्त लक्षण त्रिदोषज ज्वर आदि रोगों में हों तो रोग दूर नहीं हो सकेगा, अर्थात् रोगी की मृत्यु हो जाने की सम्भावना है।

आहार-विहार सम्बन्धी सूचना

(१७२) **शीतल जलपान**–मूर्च्छा, पित्त, गर्मी, दाह, विषविकार, रक्तविकार, मदात्यय, श्रम, तमकश्वास, वमन और ऊर्ध्व रक्तपित्त आदि रोगों में अन्नपाचन होने पर ठण्डा जल पिलाना लाभदायक है। रक्तपित्त, मूर्च्छा, रक्तविकार और पित्तप्रधान रोगों में उष्ण जल का उपयोग हानिकर है।

(१७३) **उष्ण जलपान**–पार्श्वशूल, प्रमेह, बवासीर, पाण्डु, जुकाम, वातरोग, गलग्रह, अफारा, महावरोध, विरेचन, नवीन ज्वर, गुल्म, क्षय, मन्दाग्नि, अरुचि, नेत्ररोग, संग्रहणी, कफप्रधान रोग, श्वास, कास, फोड़ा, फुन्सी और हिचकी इन रोगों में गरम तथा गर्म ठण्डा किया हुआ जल पिलाना हितकर है। दिन में उबाला हुआ जल शाम तक और रात्रि को उबाला हुआ सुबह तक उपयोग में लेवें।

(१७४) **अल्प जलपान**–अरुचि, जुकाम, मदाग्नि, शोथ, क्षय, मुँह में जल आना, उदररोग, कुष्ठ, तीक्ष्ण नेत्ररोग, नूतन ज्वर, व्रण और मधुमेह में थोड़ा-थोड़ा जल आवश्यकता पर पिलाते रहें। विसूचिका (हैजे) में सौंफ का उबाला हुआ (परन्तु ठण्डा किया हुआ) जल या बर्फ का जल एक-एक चम्मच पिलाते रहें। एक साथ में अधिक जल पिलाने से वमन का वेग नहीं रुकता।

(१७५) **शीतल जल निषेध**–घृत-पान या तैल-पान के बाद प्यास हो, तो निवाया जल पिलावें। तुरन्त ठण्डा जल पिलाना हानिकर है एवं सन्निपात के रोगी को ठण्डा जल पिलाना या स्नान कराना, मृत्यु को बुलाना है।

(१७६) **अधिक जलपान**– एक समय में अधिक जल पीने से आम बढ़ता है। फिर धीरे-धीरे अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है।

(१७७) **मधुर जलपान**–शक्कर मिलाकर जल पीने से कफ बढ़ता है और वायु घटता है। मिश्रीयुक्त जल दोष नाशक और शुक्रल है। गुड़ वाला जल मूत्रकृच्छ्रघ्न पित्तकर तथा कफवर्धक है। किन्तु पुराना गुड़युक्त जल पित्त नाशक और पथ्य है।

(१७८) **जलपान निषेध**–शौच जाने के पश्चात्, सूर्य के ताप में घूमकर बिना विश्रान्ति लिये और व्यायाम या शारीरिक परिश्रम करने पर तुरन्त एवं भोजन के प्रारम्भ में जल-पान नहीं करना चाहिये।

(१७९) **उषःपान**–रात्रि के अन्त में उठने पर शौच जाने से पहले जलपान करना हितकर है। किन्तु कफप्रकोप, मन्दाग्नि और नूतन ज्वर आदि रोगों में उषःपान नहीं करना चाहिये। विशेष विचार "चिकित्सा-तत्व-प्रदीप" प्रथम खण्ड में किया है।

(१८०) **दुग्ध निषेध**–तीव्र आम प्रकोपसह नूतन ज्वर, मन्दाग्नि, आमवृद्धि, कुष्ठ, उदरशूल, कफवृद्धि और कृमि, इन रोगों में दुग्ध हानिकर है। अर्श के रोगी के लिए कच्चा दुग्ध हानि पहुँचाता है। नया उपदंश, सुजाक और व्रण में से पूयस्राव होता हो तब अधिक दुग्ध पीना या भैंस का दुग्ध पीना हितकर नहीं है।

(१८१) **दुग्ध के प्रतिकूल पदार्थ**–सेंधानमक को छोड़कर अन्य क्षार, लवण, आँवले को छोड़कर अन्य खटाई, गुड़, मूंग, मूली, मद्य, मत्स्य आदि भोजन इनमें से किसी के साथ दुग्ध का सेवन नहीं करना चाहिये।

(१८२) **तक्र निषेध**–उपदंश, सुजाक, प्रमेह, मूत्र में जलन, क्षत, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, तृषा, रक्तपित्त और अम्लपित्त आदि रोग वालों को, दुर्बल मनुष्य को एवं गरमी के समय (ग्रीष्म और शरद् ऋतु में) तक्र नहीं पिलाना चाहिये।

(१८३) **दही निषेध**–रक्तपित्त, अम्लपित्त, कफवृद्धि, क्षय, सूजन, आगन्तुक क्षतरोग, अस्थिभंग, पीनस, उपदंश, सुजाक, नेत्रदाह, नेत्रलाली, पित्तजमेह, अश्मरी, मूत्रकृच्छ, मूत्राघात आदि मूत्ररोग, मदात्यय, कुष्ठ, वातरक्त, अन्तर विद्रधि और मूत्ररोग जनित संधिवात, इन व्याधियों से पीड़ितों को दही नहीं देना चाहिये। शरद्, ग्रीष्म और बसन्त ऋतु में दही प्रतिकूल रहता है, एवं रात्रि के समय में भी दही का सेवन निषिद्ध है। दिन में यदि सेवन करना हो तो नमक, जल, घृत, मिश्री, शहद, मूंग का यूष अथवा आंवले का चूर्ण, इनमें से किसी अनुकूल वस्तु का मिश्रण प्रकृति और समयानुसार करना चाहिये। अन्यथा कुष्ठ, रक्तविकार, कामला, सूजन, भ्रम, पित्तप्रकोप, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, फोड़ा-फुन्सी और संधियों में पीड़ा आदि विकार हो जाने की सम्भावना है।

(१८४) **घृत निषेध**–ज्वर सहित राज्ययक्ष्मा रोगी, दूध पीने वाला बालक, वृद्ध रोगी, कफवृद्धि, मलावरोध के रोगी, आमवात रोगी, जीर्णज्वरी, मन्दाग्नि वाले बहुमूत्र रोगी, प्रमेह रोगी और अजीर्ण जनित निर्जन्तुक विसूचिका रोगी इन सबको घी थोड़े-थोड़े परिणाम में दें, अधिक न दें। सन्निपात और नूतन ज्वर में बिलकुल न दें। क्षय में अजा घृत तथा सिद्ध घृत अन्य घृत की अपेक्षा विशेष लाभप्रद है।

(१८५) **अदरक का निषेध**–कुष्ठ, पाण्डु, मूत्रकृच्छ्र, सुजाक, रक्तपित्त, व्रण, शुष्क कास, दाह, निद्रानाश इन रोगों में ग्रीष्म और शरद् ऋतु में तथा पित्त प्रधान प्रकृति वालों को अदरक का सेवन हानिकर है।

(१८६) **शहद का उपयोग**–शहद रोगनाशक औषधि के साथ पुराना और रसायन गुण के लिये नया लेना हितकर है। अनुपान में शहद के साथ घृत मिलाना हो तो गोघृत लेना चाहिए, वातश्लेष्म प्रधान प्रकृति वालों को शहद दुगुना और पित्त प्रधान प्रकृति वालों को घृत दुगुना लेना चाहिये। दोनों को समभाग नहीं मिलाना चाहिये।

यूनानी में शहद की चाशनी के मैल को निकालकर उपयोग में लेने का विधान है तथापि आयुर्वेद की दृष्टि से गर्म किया हुआ शहद एक प्रकार का विष है। विष अग्नि पर गरम करने से कुपित होता है। इसलिये आयुर्वेद में शहद को गरम करने का निषेध किया है। शहद को बोतल, अमृतबान या मिट्टी के बर्तन में रखना चाहिये। टीन के पीपे में ६-८ मास तक रहने पर शहद काला हो जाता है और दुर्गन्ध आने लगती है।

शहद में सामान्यत: शीतवीर्य, लघु, ईषत् कषाययुक्त, मधुर रस, रूक्ष, ग्राही, लेखन, चक्षु के लिये हितकर, अग्निप्रदीपक, स्वरवर्द्धक, व्रणशोधक, व्रणरोपक, कोमलता-सम्पादक, सूक्ष्म स्रोतोगामी, स्त्रोतस्समूह का विशोधक, आह्लादजनक, प्रसादक, वर्णकारक, मेधाजनक, कामोत्तेजक, विशद गुणयुक्त, रुचिकर, योगवाही और किंचित् वातकारक गुण हैं। शहद कुष्ठ, अर्श, कास, रक्तपित्त, कफ, प्रमेह, क्लान्ति, कृमि, मेद, पिपासा, वमन, श्वास, हिक्का, अतिसार, कोष्ठबद्धता, दाह, क्षत और क्षय रोग में हितकर है।

शहद में जो बड़ी मक्खी का शहद (भ्रामर) है, वह गाढ़ा अतिमधुर, भारी और रक्तपित्तनाशक है। छोटी मक्खियों का शहद (माक्षिक) अति हल्का, रूक्ष और श्रेष्ठ है। इस शहद को भगवान् धन्वन्तरि और महर्षि आत्रेय ने सर्वश्रेष्ठ और श्वास आदि रोगों में विशेष हितकर माना है।

नया शहद बृहण, पौष्टिक, सर, अभिष्यन्दी, स्निग्ध, अनुलोमक और श्लेष्महर है। पुराना शहद-रूक्ष, मेद और कफका नाशक, ग्राही और अति लेखन (देह को कृष बनाने वाला) है।

छत्ता परिपक्व होने पर शहद निकाला हो, तो वह त्रिदोषनाशक तथा छत्ता पूरा पका न हो, तो शहद खट्टा और त्रिदोषकृत् होता है।

नव्य मत (Chemistry) के अनुसार शहद की परीक्षा करने पर विविध शर्करा (अन्न शर्करा, द्राक्ष शर्करा और फलशर्करा (Dextrose, Glucose and Fructose) मिलती है। इस हेतु से अनेक रोगियों के बल की रक्षा के लिये शहद की योजना की जाती है। शहद में यह विशेषता है कि वह आमाशय में ही शोषित हो जाता है। उसे अन्त्र में जाने की आवश्यकता नहीं है। इस हेतु से मधुमेह के रोगी को भी शहद दिया जाता है। जिनको शक्कर अनुकूल न हो, वे प्रतिदिन २-४ तोले शहद भोजन के साथ सेवन करते रहें, तो हृदय सबल बनता है।

(१८७) मूत्र की प्रतिक्रिया अम्ल (Acidic Reaction) हो, तो घृत आदि स्नेहयुक्त भोजन अधिकांश में नहीं करना चाहिये।

(१८८) प्रात:काल के भोजन के पश्चात् वामकुक्षी (बांई करवट से लगभग आध घण्टे तक आराम) करना और सायंकाल के भोजन के बाद थोड़ा घूमना लाभदायक है। इस विषय में अंग्रेजी कहावत है कि–After dinner rest a while, after supper walk a mile.

(१८९) दिन के भोजन के अन्त में तक्र सेवन और रात्रि के भोजन के बाद दुग्ध पान करना हितकारक है। रात्रि को दही का सेवन और भोजनोपरान्त तुरन्त अधिक जलपान निषिद्ध है।

(१९०) **भोजन** के पश्चात्, मूत्र के वेग के समय और दिन में स्त्री प्रसंग करना हानिकर है। भोजन के पश्चात् और अपचन में स्नान करना ही हानिकर है।

(१९१) **ताम्बूल सेवन**–आलस्य, व्रण, विद्रधि, दन्तरोग, तालुरोग, उपजिह्वा के विकार, अर्बुदरोग, गलगण्ड, अपची, तालुशोष और कफप्रकोप में ताम्बूल हितकर है।

(१९२) **ताम्बूल निषेध**–नेत्र प्रकोप, रक्तपित्त, क्षत, दाह, विषप्रकोप, शोष (राजयक्ष्मा), मदात्यय, मोह, मूर्च्छा, श्वास आदि रोग पीड़ितों के लिये नागरबेल का पान हानिकर है।

शौच जाने के पश्चात्, भोजन के पहिले, नूतन प्रतिश्याय में, दृष्टिविकार, कान के बल का क्षय, दांतों में पीप निकलना, मसूड़ों की शिथिलता और परिश्रम करने से प्रस्वेद आने पर पान नहीं खाना चाहिये। राज्यक्ष्मा रोगी को भी पान नहीं देना चाहिये।

(१९३) **ताम्बूल का अतियोग**–पान का अति सेवन करने पर विविध रोगों की उत्पत्ति होती है। दांत, कान, नेत्र आदि का बलक्षय, शोष, रक्तपित्त, दाह और वातरक्त आदि रोग हो जाते हैं।

(१९४) **अचक्षुष्य**–शिर पर गरम जल से स्नान करने से नेत्रों को हानि पहुँचती है और बली पलित की उत्पत्ति होती है। मन्द प्रकाश या प्रचण्ड प्रकाश में लिखना-पढ़ना या इतर सूक्ष्म कार्य करना, सोते-सोते और चलती गाड़ी में पुस्तक पढ़ना, गरम वस्तु का अधिक सेवन, सिनेमा देखना, नेत्र को अधिक परिश्रम पहुँचे ऐसा सूक्ष्म काम करना, मिर्च आदि उग्र वस्तु कूटना, धुएँ में बैठना, अग्नि को फूंक मारना, अधिक

स्त्री सहवास, अधिक तमाखू सेवन, अग्नि के पास अधिक बैठना, सूर्य के ताप में घूमना और सूर्य पर त्राटक करना आदि नेत्र के लिये हानिकर है।

(१९५) **दन्तविघातक**–पत्थर के कोयले, रेती या अन्य कठोर वस्तु से दांत साफ करने से दांत के ऊपर की सफेदी खराब हो जाती है एवं सिगरेट, बीड़ी, सूर्ती तमाखु, शराब, सिरका, तेज खटाई, मधुर और नागरबेल का पान इनका अधिक सेवन करते रहने से दांतों में कृमि उत्पन्न हो जाते हैं और हानि होती है।

(१९६) सोने के समय शिर पर कपड़ा बाँधने एवं पैर पर मौजे या अन्य चिपके हुए वस्त्र या जूते पहिनने से रक्ताभिसरण क्रिया में प्रतिबन्ध होता है। जिससे उस अवयव की शक्ति न्यून होती जाती है।

(१९७) **दिन में निद्रा लेने के अधिकारी**–व्यायाम या श्रम से थका हुआ, जिसने मैथुन किया हो, रोज मार्ग गमन करने वाला, अतिसार, उदरशूल, रसाजीर्ण, श्वास, तृषा, हिक्का और निराम वात के रोगी, कफक्षय हुआ हो बालक, मद्य पीकर नशे में आया हो, वृद्ध, रात्रि जागरण वाले इन सबको दिन में भोजन के पहिले सोना हितावह है।

(१९८) **उपवास के अनधिकारी**–वातरोगी, तृषातुर, बालक, वृद्ध, सगर्भा स्त्री, क्षयरोगी, जीर्ण ज्वरी, अनेक रोगों से पीड़ित, थका हुआ और क्षुधातुर मनुष्य को उपवास न करावें तथा उपवास कराने से जिसकी हड्डी में पीड़ा, मन में भ्रम, नेत्र पर अंधेरा, हृदय में अवरोध और शरीर में अति अशक्ति आती हो, उसे भी अधिक उपवास नहीं कराना चाहिये।

(१९९) **नूतन रोग में**–यदि वात, पित्त, कफ, धातुएँ बलवान हों, तो औषधि की मात्रा पूरी दी जाती है। परन्तु जीर्ण रोग में वात आदि धातु निर्बल हो जाने के कारण जितना रोग जीर्ण हो उतनी ही मात्रा कम करनी चाहिये और औषधि ज्यादा दिनों तक देनी चाहिये। जैसे हृदय रोग से पीड़ित को लोह भस्म, सुवर्ण भस्म, मुक्ता भस्म, प्रवालपिष्टी या इतर हृदय पौष्टिक औषधि यदि पूर्ण मात्रा में दी जाय तो हानि पहुँचाती है और १६ वां हिस्सा जितनी सूक्ष्म मात्रा देने से वह पचन होकर शनैः शनैः लाभ पहुँचाती है।

(२००) **आहारादिका विरोध**–औषधि सेवन में आहार-विहार, देश कालादि विरोध न हो, इस बात को समझाने के लिये नव प्रकार के विरोधों का उदाहरण अष्टांग संग्रहकार ने निम्न श्लोक में लिखा है। ऐसी विरोधी वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए–

क्षीरं कुलत्थैः पनसेन मत्स्यैस्तसं दधिं क्षौद्रघृते समांशे।
वार्यूषरे रात्रिषु सक्तवश्च तोयान्तरास्ते यवकास्तथैव॥

(अ) दूध और कुलथी दोनों के विपाक और वीर्य के विरोध है। इसमें दूध मधुर विपाकयुक्त और शीतवीर्य तथा कुलथी अम्लविपाकयुक्त और उष्णवीर्य है। यह विरुद्ध गुण विपाक का उदाहरण है। इनका सेवन एक साथ नहीं करना चाहिये।

(आ) दूध का कटहल से विरोध है। इन दोनों के रस, वीर्य विपाक में समानता होते हुए भी ये परस्पर महाविरोधी हैं। यह सदृश गुण-विरोधी उदाहरण है।

(इ) दूध का चिलिचिम जाति के मत्स्य और इतर प्रकार के सब मत्स्यों के साथ विरोध है। दूध और मत्स्य दोनों में मधुर गुण होने से एक अंश में समानता है। दूध में शीतवीर्य और मत्स्य में उष्णवीर्य होने से एक अंश में विरोध है। इन दोनों का एक साथ सेवन करना निषिद्ध है। यह एक देश विरोधी उदाहरण है।

(ई) दही तपाकर खाना यह विरुद्ध होने से हानि पहुँचाता है। यह विरुद्ध संस्कार का उदाहरण है।

(उ) शहद और घी दोनों समभाग में मिलाकर सेवन करना, यह हानिकर है। यह मात्रा विरोधी उदाहरण है।

(ऊ) ऊषर भूमि स्थित जल विरुद्ध स्वभाव वाला है, यह विरोधी देश का उदाहरण है।

(ए) रात्रि में सत्तू का उपयोग करना कालविरोधी है।

(ऐ) बिना जल मिलाये सत्तू का सेवन करना, संयोगादि दोषदर्शक है।

(ओ) केवल जौ का सेवन करना और इत्तर अन्न का सेवन बिल्कुल न करना यह स्वभाव विरुद्ध नियम का उदाहरण है।

आयुर्वेदीय परिभाषा

* * *

पुट यन्त्र आदि विधि

(१) **गजपुट**–एक गज चौड़ा और एक गज गहरा (लगभग २७ इंच) खड्डाकर, उसमें गोबरी भर, बीच में औषध के संपुट को रखकर अग्नि देने से गजपुट अग्नि कही जाती है। गजपुट के लिये २।। हाथ का गोल खड्डा बनवाकर पक्का ईंटों से बंधवा लेने से २७ इंच लगभग का खड्डा तैयार हो जायेगा। खड्डे की गोलाई जितनी नीचे हो, उससे ऊपर के भाग में ३-४ इंच कम रहना चाहिये। इस रीति से खड्डा तैयार होने पर अग्नि प्रमाण से लगती है। ईंटों से बांधे बिना अग्नि का तेज जमीन में बहुत चला जाता है। संपुट के ऊपर १-२ कण्डों की तह रख इस तरह संपुट बीच में रखना चाहिये। संपुट स्वांग शीतल होने पर ही गजपुट में से निकालना चाहिये।

(२) **वराह पुट**–उपरोक्त विधि से एक हाथ (१८ इंच) का खड्डा तैयार करा उसमें अग्नि देने से वराह पुट कहा जाता है।

(३) **कुक्कुट पुट**–उपरोक्त विधि से ९ इंच का खड्डा बना उसमें अग्नि, देने से कुक्कुट पुट कहलाता है।

(४) **सरावसंपुट**–दो मिट्टी के सराव, समान नाप वाले लेवें। इनमें से एक में औषध रखें, फिर दूसरे को ऊपर ओंधा रखें तथा संधिपर चारों और चिकनी मिट्टी में भिगोया कपड़ा लपेट देवें। ऊपर थोड़ी-थोड़ी मिट्टी लगाकर सुखा देवें।

सूचना–सराव संपुट करने के पहिले सरावों की धारायें पत्थर पर जल डाल, घिसकर चिकनी बना लेवें, दोनों सरावोंकी किनारी समान ही होनी चाहिये एवं सराव फूटे हुये या कच्चे न हों यह भी देख लेना चाहिये।

(५) **डमरूयन्त्र**–दो हांडियां ऐसी लें कि जिनमें नीचे की हांडी से ऊपर की हांडी बड़ी हो। परन्तु मुँह दोनों के बराबर हों। इन हांडियों के भीतर चूना अथवा चाक मिट्टी का लेप अच्छी तरह से करके सुखा लें फिर दोनों हांडियों के मुंह को पत्थर पर जल डालकर घिसें और संधि बराबर मिल जाय ऐसी किनार बना लें जिससे संधि में से पारा बाहर न निकल जाय। इस तरह हांडी तैयार होने पर छोटी हांडी में सिंगरफ, जो तीन घण्टे या अधिक समय तक नींबू के रस में पीसकर सुखाया हो, वह भरें। पश्चात् बड़ी हांडी को छोटी हांडी के ऊपर ओंधी रखकर दोनों की संधि वज्र मुद्रा से बन्द करें अथवा एक भाग चूना और दो भाग गेहूँ के आटे को जल में मिलाकर सन्धि बन्द करें या लोहे के तार से बांधकर संधिपर कपड़-मिट्टी करें। मजबूत बन्द न होने से संधि को तोड़कर पारा निकल जाता है।

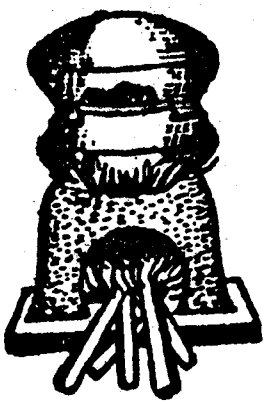

यन्त्र सूखने से चूल्हे पर चढ़ाकर १२ घन्टे अग्नि देकर पारा उड़ा लें। ऊपर की हांडी पर ४-८ घंटे कपड़े की तह, जल से भिगोकर रखें। कपड़े को बार-बार गरम होने पर ठण्डे जल से भिगो लें। इतना सम्हाल रखें कि नीचे की हांडी पर जल की बूंदे न गिर जायें अन्यथा हाँडी फूट जायेगी। १२ घण्टे बाद यन्त्र स्वांग शीतल होने पर ऊपर की हांडी में लगे हुए पारे को कपड़े से पोंछ; निकालकर वस्त्र से छान लें। कदाचित पारा पूरा न निकला हो और सिंगरफ में रह गया हो तो पुनः इस यन्त्र द्वारा निकाल लें।

(६) **नलिका डमरू यन्त्र**–उपरोक्त विधि से डमरूयन्त्र को (दो हांडियों को) कलई से पुतवा लें। फिर ऊपर की हांडी के बराबर मध्यमार्ग में छेद करें। छेद में ४-६ अंगुल लम्बी चाक मिट्टी की अथवा चिकनी मिट्टी की नली बनवाकर लगा दें। नली के भीतर मटर जा सके उतना बड़ा छिद्र रखें। इस नली को हाँडी के छिद्र में घुसा चारों और मिट्टी लगाकर सन्धि मजबूत बन्द करें। इस विधि से ऊपर की हाँडी तैयार होने पर, नीचे की हाँडी में औषधि भरें। फिर डमरू यन्त्र तैयार कर चूल्हे पर चढ़ावें। धुआँ नली में से निकलता रहे। पश्चात् इस नली के चारों ओर रससिंदूर आदि औषधि जम जायेगी, और नीचे की हाँडी के पैंदे में कज्जली के साथ में डाली हुई धातु की भस्म हो जायेगी। इस तरह इस यन्त्र द्वारा एक साथ दो कार्य होते हैं।

(७) **तैल पातन यन्त्र**–चीनी अथवा पीतल के एक बरतन पर स्वच्छ कपड़े का टुकड़ा फैलाकर बरतन के किनारे पर मजबूत बांधें। फिर कपड़े के ऊपर बीच में तैल निकालने की औषधि का चूर्ण रखें और उस पर अभ्रक का टुकड़ा इस तरह रखें कि औषधि और कपड़ा बराबर ढक जाय बाद में अभ्रक के ऊपर पूरे अंगारों से भरे हुए लोहे के तवे को रखें, जिससे एक आध घण्टे में तैल नीचे टपक जाय।

सूचना–कपड़े को तवा न लग जाय, इस बात की सम्हाल रखें अन्यथा कपड़ा जल जाता है और सब औषधि नीचे बर्तन में गिर जाती है। तवे पर सतत पंखे से वायु करते रहें जिससे अग्नि सतेज रहे। एक आध घण्टे बाद तवे और अभ्रक को दूर करके देख लें। तैल टपक गया हो तो कपड़े को खोलकर तैल निकाल लें। इस विधि से तैल कम निकलता है। अतः जब कम मात्रा में तैल उपयोग में लेना हो तब यह तैल पातन यन्त्र काम में आता है।

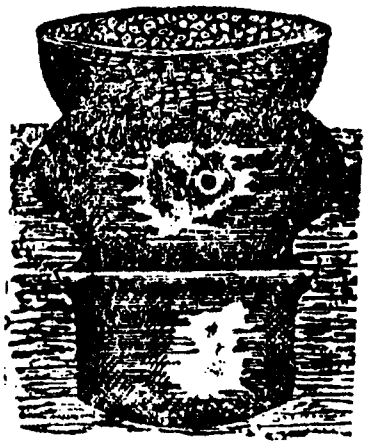

(८) **पातालयन्त्र पहली विधि**–एक हाँडी लेकर उसमें तैल या अर्क निकालने की औषधि कूटकर या भिगोकर भरें। हांडी के मुँह पर मजबूत नया अच्छा कपड़ा बाँधकर कपड़े के बाहर की बाजू में आटा अथवा मिट्टी लगा दें। फिर हांडी के मुँह के बराबर एक कलई किया हुआ भगोना रख, सन्धि को कपड़मिट्टी लगाकर बन्द करें। जरूरत हो तो लोहे के तारसे भी बांध लें। पश्चात् जमीन में खड्डाकर, उसमें इस यन्त्र को रखें। भगोना नीचे और हांडी ऊपर रहे। हांडी का पौना भाग जमीन में रहे इतना बड़ा खड्डा बनावें। खड्डे में यन्त्र के चारों ओर मिट्टी अच्छी तरह से दबाकर भर दें, ताकि नीचे वाले भगोने को अग्नि की उष्णता न पहुँचे। हांडी के ऊपर के भाग में अग्नि तीन से १२ घन्टे तक औषधि के परिमाण अनुसार निश्चित् समय तक जलावें। अति खुले भाग में तेज वायु चलती हो, वहां पर अग्नि न दें। क्योंकि ऊपर के बर्तन को अग्नि कम लगती है, और नीचे के बर्तन को उष्णता पहुँचेगी। फिर अर्क कम और जला हुआ निकलेगा।

दूसरी विधि-चूल्हे पर एक मिट्टी की नांद रखें और उस (नांद) पर लोहे की या मिट्टी की परात रखें। परात और नांद के बीच एक सीध में छिद्र बना दें। नांद में छिद्र इतना बड़ा बनाया जावे कि बोतल के गले का भाग ४ अंगुल बाहर निकला रह सके, बोतल का यह गले वाला भाग नांद के छिद्र से होता हुआ चूल्हे के पोले भाग की ओर रहेगा और परात जो नांद पर रखी गई है उसका छिद्र इतना बड़ा बनावें कि उसमें से बोतल का पेंदा बाहर हो सके ताकि बोतल नीचे की नांद और ऊपर की परात के सहारे सीधी और स्थिर रह सके।

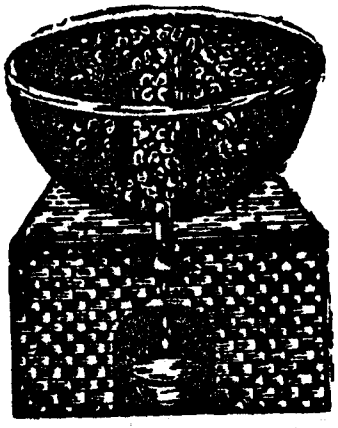

अथवा एक ही परात रख उस में छिद्र कर शीशी को लोहे का कड़ा (Ring) या तार के आधार से सम्हाल पूर्वक रख लें।

शीशी पर ५-७ कपड़ मिट्टी करें कपड़मिट्टी की विधि आगे कूपीपक्व रसायन प्रकरण में लिखी है।

जिस औषधि का तैल निकालना हो, उसे शीशी में भर, शीशी के मुँह में लोहे के तारों की गोली डाल मुख बन्द कर दें जिससे औषधि बाहर न गिर जाय और तैल बराबर झरता रहे। फिर इस शीशी को परात में रख कर दोनों की सन्धि को मिट्टी से बन्द करें, और चूल्हे के भीतर शीशी के नीचे एक कांच का गिलास रखें, जिसमें तैल गिरता रहे। शीशी और गिलास दोनों एक नली के भीतर रहें ऐसी लोहे के पतरे की नली बना कर रखें, जिससे तैल भाप के साथ उड़ न जाय और बराबर गिलास में टपकता रहे। इस तरह योजना होने पर ऊपर वाली परात में अग्नि देते रहें, जिसमें तैल टपकता रहे ६-८ घण्टे तक अथवा जहां तक तैल निकलता रहे तब तक अग्नि दें। तैल निकलना बन्द होने पर अग्नि देना बन्द करें, चूल्हें पर नांद रखकर यन्त्र तैयार करने से बाहर से तैल टपकता देखने में आ सकता है।

सूचना–सोंठ, लोंग, आदि शुष्क वस्तुओं का तैल निकालना हो तो उन्हें कूटकर रात्रि को जल में भिगो दूसरे दिन एक घण्टा धूप में रखकर तैल निकाल लें।

(९) **बालुका गर्भपाताल यन्त्र**–दूसरी विधि से पाताल यन्त्र बना शीशी के चारों ओर परात में तीन-तीन अंगुल जगह खाली रहे, और शीशी से ४ अंगुल ऊँचा रहे, ऐसी लोहे की एक नली बनाकर शीशी के चारों ओर परात में रख दें। फिर नली के भीतर शीशी के चारों ओर रेत भरें और नली के बाहर परात के भीतर गोबरी जलावें। इस विधि से तैल अथवा अर्क निकालने के यन्त्र को बालुका गर्भ-पाताल यन्त्र कहते हैं।

(१०) **बालुका यन्त्र**–इस यंत्र की विधि "कूपीपक्व रसायन" में लिखी जायेगी।

(११) **लवणयन्त्र**–मिट्टी की हांडी में नमक के भीतर औषधि के संपुट को दबाकर चूल्हे पर चढ़ावें। फिर निश्चित समय तक अग्नि देकर औषधि को सिद्ध करें। इस तरह तैयार किए हुए यन्त्र को लवण यन्त्र कहते हैं।

लवणयन्त्र और बालुकायन्त्र, दोनों की कृति में समानता है। लवणयंत्र का विधान होने पर हांडी में नमक भरकर औषधि के संपुट को दबाया जाता है और बालुका यन्त्र में रेत के भीतर संपुट अथवा बोतल को रखा जाता है। अग्नि देने की विधि दोनों में समान है।

(१२) **दोलायन्त्र**–कपड़े की ४ तहें करके एक छोटी थैली बना लें। उसमें ३ भोज पत्रों में लपेटकर औषधि मिश्रित पारे का गोला अथवा अन्य स्वेदन देने की औषधि को रखें। थैली के ऊपर के भाग को दृढ़ डोरी से बांध कर हाँडी में लटकावें। हाँडी के ऊपर लोहे की शलाका रखें, जिस पर पारे वाली थैली की डोरी बांध देने से हाँडी में थैली झूले की तरह लटकती रहेगी। थैली हाँडी के पैंदे से एक अंगुल

ऊँची रहनी चाहिये। थैली का कोई भाग हाँडी को नहीं लगना चाहिये, अन्यथा हांडी के तले में लगने से कपड़ा जल जायेगा, फिर थैली में से औषधि हाँडी में गिरकर नष्ट हो जायेगी।

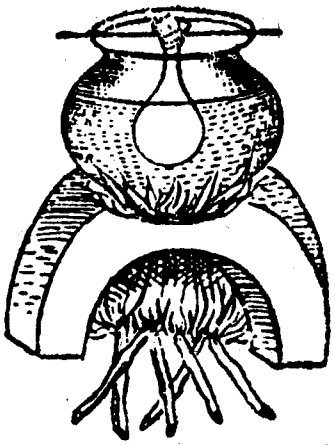

हाँडी में काँजी, गोमूत्र, दूध, तक्र, तैल अथवा अन्य शोधनीय-द्रव्य इतना भरें कि थैली में भरी हुई औषधि अथवा पारद का गोला द्रव में डूबा रहे। गोमूत्र, दूध आदि उफान आकर बाहर न गिर जाय, इसलिए पहिले से हाँडी बड़ी लें। अग्नि मन्द-मन्द नियत समय तक दें। कांजी, गोमूत्र, आदि द्रव कदाचित् समय से कुछ पहले सूख जाय तो पुनः ऊपर से डालें क्योंकि, द्रव्य बिल्कुल सूख जाने पर कांजी आदि पदार्थ डालने से हाँडी फूट जायेगी

(१३) **वाष्प यन्त्र**-एक भगोने या हाँडी में जल अथवा काँजी भरें और बरतन के ऊपर लोहे की शलाका रखें। फिर बादाम, पिस्ता अथवा अन्य तैल निकालने की औषधि को कूट, पोटली में बांधकर इसे डोरे से उस शलाका पर बाँधकर लटका दें। जल से पोटली ऊँची रखें ताकि उसे भाप लगती रहे, इस तरह यन्त्र तैयार कर चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि दें फिर औषधि पसीजने पर पोटली को निकालकर तैल निचोड़ लें।

(१४) **स्वरसयन्त्र**-बिल्वपत्र, अडूसा, पियाबाँसा आदि खुष्क द्रव्यों का स्वरस निकालने के लिए पहले इनको इमामदस्ते में कूटें। फिर एक कटोरदान में भरकर ढक्कन मजबूत ढक दें। पश्चात् चूल्हें पर कड़ाही को चढ़ा कड़ाही में ईंट के ३ टुकड़े रखकर उन पर कटोरदान रखें उस पर एक पत्थर रखें, फिर कटोरदान के चारों और जल इतना भरें कि कटोरदान के भीतर प्रवेश न करें। इस तरह यन्त्र बनने पर नीचे अग्नि जलावें। लगभग आध घण्टे में औषधि नरम होने पर बाहर निकाल निचोड़ लें।

(१५) **नलिकायन्त्र**-(अर्क निकालने का भभका) भीतर से कलई की हुई तांबे की डेगची या मिट्टी की डेगची जैसी हांडी लें ऊपर तांबे की बाल्टी जैसा बरतन बनवाकर रखें। जिनकी ४ अंगुल किनारी नीचे वाली डेगची में चली जाय। फिर सन्धि को अच्छी तरह बन्द करें। ताकि अर्क भाप होकर बाहर न निकल जाय। ऊपर की बाल्टी के पैंदे में एक औंधा कटोरा कड़ाही के आकार का जड़वा लें। उस कटोरे में ही कलई करवा लें। बाल्टी में कटोरे के नीचे के भाग में एक नली लगा दें। जिसमें से अर्क बाहर निकलता रहे। नली इस तरह लगानी चाहिये कि बाल्टी डेगची पर रखने के समय नली डेगची से ऊपर रहे। जिससे भाप बाल्टी में लगे हुए औंधें कटोरे में इकट्ठी होकर नली द्वारा बाहर निकलती रहे। बाल्टी के नीचे का भाग जो यन्त्र बन्द करने के समय नीचे डेगची में रहता है, उस जगह पर आध इञ्च की मुड़ी हुई किनारी वाली तांबे की पट्टी नली के समान ऊँचाई पर जड़वा लें। इसलिए कि नीचे की डेगची में से भाप उत्पन्न होकर ऊपर की बाल्टी के नीचे ओंधे जड़े हुए कटोरे में लगे, और वह भाप अर्क रूप होकर तांबे की मुड़ी हुई पट्टी पर से नली में चली जाय। बाल्टी में कटोरे के ऊपर एक दूसरी नली लगावें जिससे जल उष्ण होने पर बार-बार निकाल सकें।

इस तरह यंत्र तैयार होने पर जिस औषधि का अर्क निकालना हो, उसे ४ गुने पानी में २४ घण्टे भिगोकर भरें। कोई-कोई औषधि जल मिलाये बिना भी भरी जाती है। डेगची का १ हिस्सा खाली रखें और ३ हिस्से में औषधि युक्त जल रखें। पश्चात् ऊपर के बरतन को बैठा, सन्धि में कपड़मिट्टी लगा, सुदृढ़ करें। कपड़मिट्टी अच्छी नहीं लगी होगी तो भाप बाहर निकलती रहेगी, जिससे अर्क कम निकलेगा।

यन्त्र तैयार होने से चूल्हें पर चढ़ाकर अग्नि जलाना आरम्भ करें। ऊपर के बरतन में जल भरें। जल उष्ण होने पर बार-बार निकालते जाय, और शीतल जल भरते रहें। अर्क निकालने की नली के ऊपर में एक मुड़े हुए सिरे वाली दूसरी नली लगा दें। उसका अन्तिम भाग बोतल में रखें। फिर इन दोनों नलियों की सन्धि पर एक कपड़ा पलेट दें, जिससे अर्क बोतल में गिरता रहे। जब निकलते हुए अर्क में से जली हुई गन्ध आने लगे तब अर्क निकालना बन्द करें।

सुदर्शन चूर्ण जैसी कड़वी औषधियों का अर्क इस यन्त्र द्वारा निकालने से उनका कड़वापन दूर हो जाता है और लाभ सत्वर होता है।

सूचना-यदि हरताल, गन्धक आदि का तैल निकालना हो तो दोनों पात्र मिट्टी के ही लेने चाहिये, और ऊपर से ढक्कन में बांस की मुड़ी हुई नली को लगाना चाहिये। बांस की नली का सम्बन्ध कांच की नली से रखकर अर्क बोतल में गिरे, ऐसी योजना करनी चाहिये। इस तरह शंखद्राव आदि तेजाब भी मिट्टी के बरतनों का यन्त्र बनाकर निकालना चाहिये। धातु के बरतनों का यन्त्र होगा तो बर्तन खराब हो जायेंगे और अर्क (तेजाब) भी दोष वाला बन जायेगा।

(१६) **आकाशपातन यन्त्र**–एक मिट्टी की खुले मुँह वाली हांडी लें। उसके पैंदे में मिट्टी का लेप करके उस पर ईंट अथवा केलु का टुकड़ा (Tile) जमावें। ईंट के चारों और औषधि डालें और ईंट पर एक चीनी मिट्टी का गिलास रखें। फिर हांडी पर एक तांबे की ऐसी डेगची रखें, जिसके बाहर कलई की हो। उस हांडी, और डेगची की संधि पर, गेहूँ का आटा या मिट्टी लगा दें जिससे भाप बाहर न निकल जाय। इस तरह यन्त्र तैयार होने पर उसे चूल्हें पर चढ़ावें। इसके बाद डेगची में जल भर दें। उस जल के उष्ण हो जाने पर उसको बार-बार निकालकर शीतल जल भरते रहें, जिससे अर्क डेगची के पैंदे में लगकर भीतर के गिलास में टपकता रहे। इस रीति से ३ घण्टे अथवा कुछ अधिक समय तक आँच लगने से अर्क निकल जाता है। यन्त्र स्वयं शीतल होने पर सम्हालपूर्वक खोले और अर्क को निकालकर फिल्टर पेपर से बोतल में छान लें।

(१७) **भूधर यन्त्र**–एक हांडी में आधे हिस्से तक जल भरें और दूसरी हाँडी में पारा मिली हुई औषधि का लेप कर देवें। फिर उस हाँडी को पहली हाँडी के ऊपर औंधी रख सन्धि स्थान पर कपड़-मिट्टी लगा अच्छी रीति से बन्द करें और जमीन में गड्ढा करके यन्त्र को दबा दें। ऊपर की हाँडी के पेंदे का भाग बाहर दिखता रहे, उस तरह योजना करें। पश्चात् ऊपर वाली हाँडी के ऊपर गोबरी जलावें। लगभग १०-१२ घण्टे तक अग्नि देने से पारद नीचे वाली जल से भरी हुई हाँडी में चला जायेगा। पारे का अधः पतन करने के लिये इस यन्त्र का उपयोग किया जाता है।

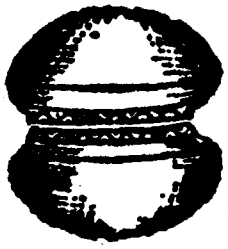

द्वितीय विधि–जमीन में १। हाथ का चौकोर खड्डा कर उसके बीच में भी एक बालिश्त चौकोर खड्डा करें। इसमें शराव रख ऊपर २-३ अंगुल मिट्टी दबा दें फिर गड्ढे में गोबरी भरकर अग्नि देनी चाहिये।

(१८) **तिर्यक् पातन यन्त्र**–इस यन्त्र की विधि कूपीपक्व रसायन प्रकरण में लिखी है।

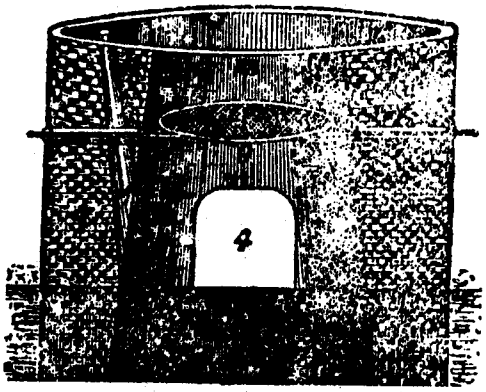

(१९) **वज्रमुद्रा**–पीपल की लाख, लोहचूर (लुहार की भट्टी के पास जो लोहे का मैल बिखर कर पड़ा रहता है), रुई और सैंधानमक प्रत्येक १-१ तोला, रेत २ तोले और चिकनी मिट्टी ४ तोले लेकर सबको मिला लें फिर थोड़ा-थोड़ा जल डालकर घन पर हथौड़े से खूब कूटे। कूटते-कूटते जब चिकना हो जाय, तब उसे डमरू यन्त्र की सन्धि पर लगावें। (रूई १ तोला अधिक हो जाती है अतः २-३ माशे मिलावें)।

(२०) **साधारण मुद्रा**–चिकनी मिट्टी एक दिन जल में भिगोकर छान लें। फिर उसमें चौथा हिस्सा गोबर और चौथा हिस्सा घोड़े की लीद को मिलाकर भस्म और इतर औषधियों के सम्पुट पर लेप करें। यदि डमरूयन्त्र की सन्धि बन्द करना है तो एक भाग चूने को दो भाग गेहूँ के आटे में मिला जल में सानकर लगावें।

(२१) **सर्वार्थ करी भ्राष्ट्री**–जमीन में एक बालिश्त गहरा और एक गज (३६ इंच) गोलाई वाला खड्डा खुदवाकर उसमें चारों ओर ईंटों की दीवार बनावें।

1-2–जमीन के भीतर दीवार ६ इंच की चारों ओर गोल।

3–भस्म का संपुट रखने के लिये तथा गोबरी और लकड़ी भरने के लिये जमीन में भीतर खाली हिस्सा २४ इंच चौड़ाई। ऊँचाई जमीन के ऊपर के भाग तक ९ इंच।

4–भट्टी का मुंह ९×९ इंच का।

5-6–दीवार। जमीन के ऊपर के लोहे के डंडों तक ऊँचाई ३३॥ इञ्च।

7-8–लोहे के डण्डे ४ हैं। भट्टी के भीतर ४॥ इंच, दीवार में दबा हुआ ८।॥ इंच। शेष भाग भट्टी के बाहर है। बाहर का हिस्सा ज्यादा होने पर भी चित्र में स्थान कम दिखाया गया है।

9–लोहे के डण्डे के पास भीतर का खाली भाग गोलाई १८॥ इंच।

10–लोहे की जाली। चारों ओर २-२ इंच जगह खाली है।

11-12–ऊपर की दीवार। चौड़ाई ९ इंच।

13–ऊपर के भाग में भट्टी के भीतर की खाली जगह। चौड़ाई १७॥ इंच

14–लोहे की नली के नीचे का भाग। चौड़ाई १० इंच।

15–लोहे की नली का सिरा। चौड़ाई २। इंच। दीवार के मध्य भाग में है। जब दीवार १३॥ इंच (१८ अंगुल) ऊंची बन जाय तब पैर के अंगूठे जितनी मोटी और एक-एक हाथ लम्बी लोहे की सांट दीवार में आ जाय, ऐसे ४ छेद चारों ओर समान दूरी पर रख लें, जिससे सांटों को जब चाहें तब इच्छानुसार रख और निकाल सकें। सांटे भट्टी के भीतर छः छः अंगुल रहेंगी और शेष हिस्सा दीवार में तथा भट्टी के बाहर रहेगा। इन सांटों के ऊपर औषधि का संपुट रखने के लिये लोहे की जाली रखी जायेगी। सांटों के ऊपर औषधि का सम्पुट रखने के लिये लोहे की जाली रखी जायेगी। सांटों के छिद्र के ऊपर १० अंगुल दीवार बनावें, जिससे

सब मिलकर २८ अंगुल ऊँची दीवार बनेगी। दीवार भीतर से इस तरह संकरी करते जायें कि, लोहे की जाली २२ अंगुल गोलाई वाली, उन सांटों पर रह सकें। दो दिशाओं में बराबर सामने आंच देने के लिये दो मुंह एक-एक बालिश्त लम्बे-चौड़े बनावें, और भट्टी में तीसरी और एक हाथ लम्बी, नीचे मुट्ठी चली जाय, ऐसी गोल १० इंच की चौड़ाई वाली और ऊपर में २। इंच (३ अंगुल) छेद वाली लोहे की नली ऊपर को उठी हुई तिरछी लगावें। इस नली के भीतर का भाग जमीन के ऊपर से दीवार में शुरू हो जायेगा और नली का ऊपर का भाग (दीवार में) तिरछा होकर ऊपर निकलेगा। नीचे रखे हुए दो मुंहों के मध्य भाग में (दीवार में) तीसरी ओर नली रखें जिससे नली के नीचे के मुंह से धुआं और अग्नि की लपटें घुसेंगी और ऊपर के मुँह में से बाहर निकलेंगी। बराबर तीव्राग्नि देना हो तो, संपुट के चारों ओर लकड़ी जलानी पड़ेगी और उस नली के मुँह को ईंट की डाट लगाकर बिल्कुल बन्द करना पड़ेगा। मन्द अथवा मध्य में अग्नि देना हो, तो इस नली में से डाट निकाल डालें। दो मुंह बनाये हैं, इनके मध्यम भाग में चौथी दिशा को दीवार में थोड़ा ऊँचा एक बालिश्त लम्बा-चौड़ा तीसरा मुंह बना लें, जिसमें से कलछे को धातुओं का रस करने के समय डाल सकें। भट्टी तैयार हो जाने पर बाहर और भीतर अच्छी रीति से प्लास्टर कर लें, ताकि भट्टी वर्षों पर्यन्त काम दे सके। गजपुट देने के समय लोहे की जाली निकाल लें, केवल लोहे की सांट रहने दें एवं तीनों मुंहों को ईंटों से बन्द करें तथा मध्य भाग में सम्पुट को रखकर ऊपर और नीचे अग्नि दें। बराह पुट देना हो, तो भट्टी मे लोहे की जाली रखें और भट्टी के ऊपर लोहे का चूल्हा रखें। पश्चात् नीचे और ऊपर गोबरी भर, बीच में सम्पुट रखकर अग्नि दें। इस तरह एक ही भट्टी से अनेक कार्य एक साथ में होते हैं। काम करने वालों को धुआं अथवा गर्मी से विशेष त्रास नहीं होता और थोड़ी लकड़ी से कार्य भी विशेष होता है।

(रसायनसार के आधार से)

(२२) **सिद्ध भ्राष्ट्री**-इस भट्टी का उपयोग हम अनेक वर्षों से कर रहे हैं। इसके बनाने की विधि कूपीपक्व रसायन प्रकरण में दी जायेगी।

(२) औषधनिर्माण परिभाषा

(१) **कषाय**-इसके ५ भेद है। स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फाण्ट। इन सबको बनाने की विधि कषाय प्रकरण के प्रारम्भ में दी गई है।

(२) **अर्क निकालने की विधि**-गीली अथवा सूखी औषधि का अर्क नलिकायन्त्र द्वारा निकल सकता है। सूखी औषधि को २४ घण्टे पहले ८ गुने जल में भिगो दें और दूसरे दिन अर्क को निकाल लें। पलाश की जड़ को निकाल, छोटे-छोटे टुकड़े कर उसी दिन अर्क निकालना पड़ता है, अन्यथा जड़-सूख जाने पर अर्क बहुम कम निकलता है। सुदर्शन चूर्ण जैसी कड़वी औषधियों को एक दिन पहले भिगोकर अर्क निकालने से अच्छा काम देता है, और कड़वापन चला जाने से सबके उपयोग में भी आ सकता है।

(३) **पुटपाक विधि**-औषधियों का कल्ककर उसके ऊपर गंभारी, बड़ अथवा जामुन आदि के पत्तों को अच्छी प्रकार से लपेट दें, फिर उस पर दो अंगुल मिट्टी का लेप कर अग्नि में रखें। जब दहकते अंगारे के सदृश वर्णवाला हो जाय तब, सम्पुट को निकाल लेवें। पश्चात् मिट्टी और पत्तों को दूरकर कल्क के रस को निचोड़ लेवें।

(४) **अवलेह बनाने की विधि**-क्वाथ आदि को पुनः पकाने से जो गाढ़ा हो जाता है उसे रस क्रिया, अवलेह और लेह कहते हैं। अवलेह में चीनी डालनी हो, तो चूर्ण से चौगुनी, गुड़ डालना हो, तो चूर्ण से दूना और द्रव पदार्थ मिलाना हो तो, चूर्ण से चौगुना डालें। अवलेह में जब चाशनी के सदृश तार निकलने लगे पानी में डालने से डूब जाय, चाशनी कड़ी हो जाय, अंगुली के दबाने से अंगुली की रेखा उठ आवे और गंध तथा रस अपूर्व हो जाय तब, अवलेह को भली भांति पका हुआ जानें।

(५) **घृत और तैल बनाने की विधि**-पहले औषधियों का कल्क करें। पश्चात् उससे चौगुना घृत अथवा तैल और तैल से चौगुने द्रव पदार्थ लें। सबको कलई की हुई पीतल की कड़ाही में भर कर पकावें। द्रव-पदार्थ के जल जाने पर घृत अथवा तैल शेष रहे, तब कड़ाई को चूल्हें पर से, नीचे उतार लेवें और घृत या तैल को ऊपर से सम्हालपूर्वक निकाल लेवें।

अथवा औषधियों के कल्क या चूर्ण में उससे चौगुना पानी डालकर पकावें, जब चौथा भाग शेष रहे तब, उसमें घृत अथवा तैल डालकर सम्पूर्ण पानी जल जाने तक पकावें। यहाँ जो चौगुना पानी डालने को कहा है वह गिलोय आदि कोमल पदार्थों के लिये हैं, सोंठ आदि सूखे पदार्थों के लिये अठगुना और देवदारु आदि कठिन सूखे पदार्थों के लिये सोलह गुना जल डालें।

सूचना-घृत, तैल और गुड़पाक को एक ही दिन में सिद्ध नहीं करना चाहिये।

घृत सिद्ध हो जाने के समय झाग बन्द हो जाते हैं तब, सुगन्ध आने लगती है। परन्तु तैल सिद्ध होने के पहले झाग उत्पन्न होते हैं तैल साफ दिखाई देने लगता है और सुवास आती है।

घृत और तैल पाक की परीक्षा-कल्क को अंगुली से दबाकर मसलें। बत्ती की तरह हो जाय और अग्नि में डालने से शब्द न होवे तो पाक सिद्ध समझें। विशेष विचार घृत तैल प्रकरण के आरम्भ में दिया है।

(६) **कांजी बनाने की विधि**-१ सेर चावलों को १६ गुने जल में उबालें पक जाने पर ऊपर का माँड ले लें। फिर एक सेर कुलथी का क्वाथकर, छान कर मिला लें। पश्चात् माँड और क्वाथ को एक मिट्टी की हाँडी में सरसों का तैल चुपड़कर डालें। फिर उसमें राई, जीरा, सैंधा नमक, हींग, सोंठ और हल्दी का चूर्ण, पाँच-पाँच तोले तथा थोड़े बांस के पत्ते और आधा सेर उड़द के बड़े डाल, मुंह बाँधकर तीन दिन रख दें। चौथे दिन जब खट्टी बास आने लगे, तब काँजी छानकर उपयोग में लेवें।

द्वितीय विधि–१ सेर चावल या ज्वार को १६ गुने पानी में उबालें। चतुर्थांश पानी जल जाय और ३ भाग शेष रहे तब उतारकर ३-४ दिन रहने दें। खट्टी गन्ध आने पर छान लें।

पीने के लिये उपयोग में लेना हो तो, प्रथम विधि के लिखे अनुसार मसाला मिलाकर तैयार करके, अथवा प्रकृति के अनुकूल मसाला मिलावें। औषधियों के शोधन के लिये सैंधा नमक को छोड़कर अन्य मसाला मिलाने का आग्रह नहीं है।

(७) **चावल के धोवन की विधि**–दो तोले चावलों को मोटा-मोटा कूटें। फिर जल से धोकर ८ गुने जल में भिगों दें। एक घण्टे बाद मसलकर छान लें।

(८) **लोहबान के फूल तैयार करने की विधि**–दस तोले लोबान को तवे पर रखकर मन्दाग्नि दें। जब लोबान पतला हो जाय तब, ऊपर कांच का प्याला उल्टा रखें और अग्नि थोड़ी तेज करें, जिससे थोड़े समय में लोबान का फूल भाप-रूप होकर प्याले के नीचे लग जायेगा। किन्तु भीमसेनी कर्पूर बनाने की विधि के अनुसार पहले से ही सन्धि बन्द कर लेना विशेष लाभदायक है।

(९) **भीमसेनी कर्पूर बनाने की विधि**–कपूर २ तोले, छोटी इलायची के बीज ६ माशे, समुद्रफेन, निर्मली, नागरमोथा, रसोंत और अगर ३-३ माशे, केशर १॥ माशा और कस्तूरी ६ रत्ती लें। सबको खरल में डाल गुलाब जल में घोटकर एक टिकिया बनालें। पश्चात् टिकिया को काँसी के कटोरे में रखें और ऊपर कांसी का दूसरा कटोरा औंधा रखकर दोनों की सन्धि को पानी से साने हुए उड़द के आटे से बन्द करें, बाद में संपुट को छोटे से चूल्हें पर रखकर नीचे तिल्ली के तेल की मोटी बत्ती का दीपक जलावें, कटोरे के ऊपर खादी की आठ दस तह कर पानी में तर करके रखें। पाँच-पाँच मिनट बाद कपड़ा बदलते जाय, इस रीति से ३ घण्टे तक अग्नि दें। फिर ठण्डा होने पर यन्त्र को खोल ऊपर कटोरे में लगे हुए पुष्प को निकाल लेवें। (र. सा.)

सूचना–अग्नि तीन घण्टे से अधिक समय तक देने से ऊपर लगे हुए पुष्प नीचे गिरने लगते हैं। अतः अग्नि ३ घण्टे देकर बन्द करें। यदि टिकिया में कपूर रह जाय तो, दूसरे समय अग्नि देकर उड़ालें।

सूचना (नं. २)–जब तक सच्चा भीमसेनी कपूर (सुमात्रा और बोर्निया के वृक्ष की छाल में से निकाला हुआ कपूर) मिल सके तब तक इस प्रकार से कृत्रिम बनाये हुये कपूर का उपयोग नहीं करना चाहिये।

(१०) **यवक्षार बनाने की विधि**–जौ के पचांग की गजपुट के खड्डे में जला कर श्वेत राख करें, फिर १६ गुने जल में रात्रि को भिगो दें। सुबह ऊपर-ऊपर से जल सम्हालकर नितार लेवें और नीचे की राख को फेंक देवें। इस जल को छान कड़ाही में डाल चूल्हें पर चढ़ाकर अग्नि देवें। पानी जल करके क्षार बन जायेगा। कदाचित् क्षार काला हो जाय तो और थोड़ा जल मिलाकर छान लेवें। फिर उसी समय कड़ाही में डालकर क्षार बना लेवें, इसकी मात्रा २ रत्ती से ८ रत्ती तक है।

सूचना–जौ के पंचाग को खड्डे में जलाने से विशेष परिमाण में राख मिलती है। बाहर जमीन पर जलाने से वायु में राख बहुत उड़ जाती है। राख के साथ काले कोयले रहें हों, उनको अलग निकाल डालें। सिर्फ सफेद राख का ही क्षार बनाने में उपयोग करें।

उपयोग–अनेक समय केवल जवाखार ही खाने के लिए दिया जाता है। जवाखार से मूत्र साफ आता है और अजीर्ण दूर होता है। क्षार विशेष करके घृत में मिलाकर चटाया जाता है।

सूचना–कोई भी क्षार अधिक दिनों तक सेवन करने से वीर्य और हड्डी सन्धियों को नुकसान पहुँचाता है। अतः आवश्यकता पर क्षार कुछ दिनों तक सेवन कर फिर छोड़ देना चाहिये।

(११) **अपामार्ग (आंधीझाड़ा), केले का खम्बा, तिल (पञ्चांग), पीपल, पलाश, आक, इमली की छाल आदि का क्षार बनाने की विधि**–जवाखार के अनुसार जिस द्रव का क्षार बनाना हो, उसे जलाकर राख करें, फिर क्षार बना लें। पलाश पुष्प का क्षार मूत्र रोग, उदर रोग, मलेरिया आदि में लाभदायक है। केले का क्षार अश्मरी और नेत्र रोग में उपयोगी है।

(१२) **स्वर्जिकाक्षार (सज्जीखार) बनाने की विधि**–कच्छ आदि देशों में सौवर्चल (लाखा-लूणखी) नामक पौधे को काटकर सुखा देते हैं। फिर खड्डे में भरकर जलाते हैं, बार-बार ऊपर से और सूखे पौधे को डालते हैं। जब खड्डा राख से भर जाता है, तब उसे मिट्टी से बन्द कर देते हैं। १०-१५ दिनों में क्षार का ढेला जम जाने पर निकाल देते हैं।

यदि वनौषधियों से बनाये हुए क्षारों का रासायनिक दृष्टि से पृथक्करण किया जाय तो, उनमें विविध वायवीय द्रव्य, धातवीय द्रव्य और अधातवीय द्रव्य भिन्न-भिन्न मात्रा में प्रतीत होते हैं। सब क्षारों में किसी न किसी अंश में दूसरों से भेद रहा है। देश काल-भेद से एक ही औषध के क्षार में द्रव्य परिमाण में भी भेद हो जाता है। अतः प्राचीन आचार्यों ने ऊसर भूमि, दीमक वाली भूमि, शुष्क भूमि आदि स्थानों से वनौषधियाँ लाने का निषेध किया है एवं कौन-कौन औषधि वसन्त ऋतु, शरद् ऋतु आदि में लानी चाहिये, इस बात का भी विचार किया है।

सूचना–क्षार बनाने के लिये भस्म को मिट्टी, पत्थर या चीनी-मिट्टी के पात्र में भिगोना चाहिये। लोहा, पीतल आदि धातुओं के पात्र न लें।

भस्म को ८-१० गुने गरम जल के साथ मिला २-२ घण्टों के अन्तर पर ४-६ बार डण्डे से चला देना चाहिये। फिर २४ घण्टों के पश्चात् ऊपर-ऊपर से स्वच्छ जल नितार, दूसरे मिट्टी के घड़े में छानकर एक दिन रख दें। पश्चात् सम्हालपूर्वक ऊपर-ऊपर साफ जल को नितार, मिट्टी के पात्र में डाल, चूल्हे पर चढ़ा कर क्षार बना लेवें।

यदि क्षार को विशेष शुद्ध बनाना हो, तो आधा जल कम हो जाने पर उसमें एक-दो लोटे शीतल जल डालकर पात्र को नीचे उतार लेना चाहिये।

ऐसा करने से मैल तल भाग में बैठ जाता है। फिर २-३ घण्टे पश्चात् स्वच्छ जल को ऊपर-ऊपर से दूसरे पात्र में नितार चूल्हें पर चढ़ाकर क्षार बना लेना चाहिये। जब क्षार के रवे बंधने लगें, तब कुछ समय तक मन्द अग्नि देकर घोल को गाढ़ा होने देवें, रबड़ी सदृश होने पर कड़ाही को उतार दूसरे मिट्टी या चीनी मिट्टी के पात्र मे डाल देवें। ताकि एक दो दिन में ही सूर्य के ताप से सूख क्षार रवों के रूप में जम जाय।

यदि क्षार को सौम्य और विशुद्ध बनाना हो, तो उक्त क्षार में जल डालकर जल्दी धो डालें। धोने से कुछ अंश क्षार का निकल भी जाता है, परन्तु विशेष अंश लवण का ही जल के साथ निकल जाता है। फिर उसे मन्द अग्नि पर सम्हाल पूर्वक चलाते रहें, जल न जाय यह सम्हालें। यदि अग्नि तेज लग जायेगी या कड़ाही अधिक समय तक अग्नि पर रह जायेगी, तो क्षार का रंग बदलने लगेगा। ऐसा हो तो तुरन्त नीचे उतार लेना चाहिये। इस सौम्य क्षार का सेवन जल के साथ भी हो सकता है। इतर क्षारों के समान घृत के साथ लेने की आवश्यकता नहीं।

वर्तमान पाश्चात्य देशों में सज्जीक्षार (Soda Bicarb) विशेषत: नमक गंधक का तेजाब और चूने के योग से बनाया जाता है। इसी तरह यवक्षार (Potas Bicarb) का निर्माण भी खनिज द्रव्यों से किया जाता है। इनके गुण भौतिक रसायन शास्त्र की दृष्टि से तो लगभग वानस्पतिक क्षार के सदृश हैं, जीवन रसायन शास्त्र की दृष्टि से विभिन्नता या न्यूनता हो, तो इसका निर्णय दोनों प्रकार के क्षारों (वानस्पतिक और खनिज) का रोगियों पर प्रयोग करने पर ही हो सकेगा।

गुण धर्म–खनिज स्वर्जिकाक्षार के सेवन से यकृत्, अग्न्याशय आदि के रसों का स्राव बढ़ जाता है तथा आमाशयिक रस की तीक्ष्णता और अम्लता कम हो जाती है इस हेतु से ऊबाक, वमन, अपचन, दाह, विष्टब्धता, उदर के कृमिरोग, मूत्र में अम्लता, संधि स्थानों में पीड़ा आदि विकार शमन हो जाते हैं। वानस्पतिक स्वर्जिकाक्षार का परिणाम समान ही है, या जीवनीय शक्ति पर अधिक लाभ पहुँचाता है? इसका निर्णय अभी नहीं हुआ।

इस स्वर्जिका-क्षार की उत्पत्ति सोडियम (Sodium of natr) उदजन (Hydrogen) और कार्बन (Carbon) के एक-एक परमाणु और ऑक्सीजन (Oxygen) के ३ परमाणुओं के संयोग से होती है। इसका रासायनिक संकेत "$NaHCO_3$" है।

खनिज यवक्षार के गुण स्वर्जिकाक्षार के अनुरूप किन्तु कुछ भेद वाले हैं। यह क्षार रक्त या मूत्र में अम्लता बढ़ने पर विशेष हितकर है। यह अम्लता वृद्धिजन्य सन्धिपीड़ा, संधिशोथ, मूत्रकृच्छ्, बहुमूत्र, मूत्राश्मरी आदि को दूर करता है। फुफ्फुस और श्वासवाहिनियों में जब उष्णता की वृद्धि होकर श्लेष्मा सूख जाता है, शुष्क कास चलने लगती है, या बंधा हुआ कफ निकलने लगता है, तब इस क्षार का सेवन लाभदायक है।

इसकी उत्पत्ति रसायन शास्त्र की दृष्टि से पोटाशियम (Potassium kalium), उदजन और कार्बन के १-१ अणु और ऑक्सीजन के ३ परमाणुओं के संयोग से होती है। इसका संकेत "$KHCO_3$" है।

यद्यपि सब क्षारों के गुण कुछ-कुछ भेदवाले हैं, तथापि प्राचीन आचार्यों ने क्षारों को सामान्य रूप से अग्नि सदृश, तीक्ष्ण, पाचन, भेदक, लघु, दृष्टिनाशक, वीर्य को हानिकर और रक्तपित्तकारक माना है। सब क्षार सामान्य रूप से विबंध, आनाह, पीनस, यकृत्विकार, प्लीहावृद्धि, आमवृद्धि, कफप्रकोप, गुल्म, ग्रहणी और कृमि आदि रोगों के नाशक हैं।

(१३) **सौवर्चल नमक विधि**–सज्जीखार (सोडा बाई कार्ब) को दूने जल में मिलावें। फिर उसमें जितना सेंधा नमक द्रव होकर गल जाय उतना मिलावें। उस पात्र को चूल्हे पर चढ़ाकर अग्नि देवें। जल सूखकर नमक अच्छी तरह गरम हो जाय, तब पात्र को नीचे उतार लेवें। शीतल होने पर नमक को निकाल लेवें। (र.तं.)

गुणधर्म–सौवर्चल नमक उष्ण, चरपरा और लघु है। आमप्रकोप, उदरशूल, ऊर्ध्व वात गुल्म, मलावरोध, अफारा और अरुचि आदि को दूर करता है। इतर नमकों की अपेक्षा यह अधिकतर उष्ण वीर्य है।

(१४) **६४ प्रहरी पिप्पली बनाने की विधि**–छोटी अच्छी जाति की नयी पीपलों को कूट कपड़छान चूर्ण करें। फिर खरल में डाल ८ दिन तक अहोरात्र मर्दन कराने से ६४ प्रहरी पीपल तैयार होती है। अनेक चिकित्सकों के मतानुसार खरल में और बट्टे पर सुवर्ण का पतरा लगाकर खरल करना चाहिये, जिससे सुवर्ण का अंश भी पीपल में मिल जाय। यह सुवर्ण युक्त विधि राजा-महाराजाओं के लिये है। सामान्य चिकित्सक, धर्मार्थ औषधालय और फार्मसी वालों के लिये संभाव्य नहीं है।

मात्रा–२ से ६ रत्ती शहद के साथ या इतर भस्म और शहद के साथ दिन में २ बार।

उपयोग–पीपल में चरपरा, कड़वा, मधुर और स्निग्ध रस है; तथा लघु, अग्निप्रदीपक, मृदुविरेचक, मधुर विपाकयुक्त, अनुष्णवीर्य, वृष्य और रसायन गुण है। यह वातविकार, श्लेष्मप्रकोप, श्वास, कास, ज्वर, कृमि, गुल्म, अर्श, उदररोग, कुष्ठ, प्रमेह, प्लीहा, शूल आमवृद्धि आदि को दूर करती है; तथा स्तन्य (दूध) की वृद्धि करती है। ६४ प्रहर तक खरल कराने पर यह तत्काल गुण दर्शाती है।

प्राचीन आचार्यों ने पीपल का उपयोग कफज-कास, जीर्णज्वर, प्लीहा वृद्धि, अग्निमान्द्य, अरुचि, वातश्लेष्म ज्वर, अम्लपित्त, रक्तपित्त, कामला, हिक्का, मेदोवृद्धि, गृध्रसी, परिणामशूल, वातरक्त, कृमि, अर्श, प्रवाहिका, कफोदर और शोथ रोग आदि पर किया है। बालकों के मसूढ़ों पर शहद पीपल घिसते रहने से बिना कष्ट दांत बाहर निकल आते हैं।

आचार्यों ने ताजी (कच्ची) पीपल को कफकर, स्निग्ध, शीतवीर्य, मधुर रसयुक्त, गुरुपाकी और पित्तनाशक कहा है। सूखी पीपल में आमाशय के पित्त (Hydrochloric Acid) को नाश करने का गुण कुछ कम हो जाता है।

पीपल को शहद के साथ सेवन करने पर मदोवृद्धि, कफ, श्वास, कास और ज्वर नष्ट होते हैं। यह अग्निवर्द्धक, वृष्य, मेधाजनक और रसायन

है। द्विगुण गुड़ मिलाकर सेवन करने पर जीर्ण ज्वर, अग्निमान्द्य, कास, अजीर्ण, अरुचि, पाण्डु और कृमिरोग दूर होते हैं।

पीपल में डाक्टरी के दृष्टि अनुसार हृदयोत्तेजक, यकृत्-उत्तेजक, सारक और रक्त-शोधक गुण अवस्थित हैं। इनमें से ६४ प्रहरी पीपल में उत्तेजक गुण बढ़ जाता है। हृदय में शिथिलता आ जाने पर इस पीपल के चूर्ण को शहद के साथ देने से हृदय अपना कार्य बलपूर्वक करने लगता है। तन्द्रा और मूर्च्छा आ जाने पर पीपल का नस्य कराने से रोगी तत्काल सचेत हो जाता है।

(१५) **गिलोय का घन बनाने की विधि**–ताजी परिपक्व गिलोय को कूटकर चार गुने जल में ६ घण्टे तक भिगोवें, पश्चात् खूब मसलकर गिलोय को निकाल देवें, फिर जल को छान, चूल्हें पर चढ़ाकर मन्दाग्नि देवें। अवलेह के समान गाढ़ा होने पर उतार लेवें।

सूचना–गिलोय में सत्व रहा हो, तो फिर दूसरी बार जल मिलाकर उपरोक्त विधि से घन बना लेवें।

(१६) **गिलोय का सत्व निकालने की विधि**–ताजी पक्की गिलोय को कूटकर चार गुने जल में ३ घण्टे तक भिगो देवें। फिर अच्छी रीति से मसल कर जल को निकाल लें पुनः दूसरी बार जल मिला, एक घण्टे तक मसलकर जल निकाल लें और इसी तरह तीसरी बार भी करें। बाद में सब जल को छानकर एक बरतन में रख लेवें। जैसे-जैसे जल नितरता जाय, वैसे-वैसे सम्हालपूर्वक कटोरी से ऊपर का जल निकालते जाय अन्त में नीचे से गिलोय का सत्व मिल जायेगा। यदि सत्व मैला कड़वा हो, तो और थोड़ा जल मिलाकर रख दें। फिर धीरे-धीरे नितरे जल को निकाल देवें। इस तरह करने से गिलोय का सत्व स्वच्छ हो जायेगा।

उपयोग–गिलोय सत्व अनुपान रूप से अथवा अकेला शहद या दूध के साथ सेवन कराया जाता है। यह शीतवीर्य है। जीर्ण-ज्वर, निर्बलता, दाह, तृषा, पमेह, शिरदर्द, अरुचि, पित्तविकार, धातु की उष्णता, मूत्र का पीलापन आदि को दूर करता है।

मात्रा–२ से ४ रत्ती, दिन में दो या तीन समय, शहद के साथ।

सूचना–अधिक समय तक गिलोय को भिगोने से लेसदार हो जाती है, जिससे सत्व का रंग मैला हो जाता है। गिलोय के ऊपर का जो जल निकले उसका घन बनाकर उपयोग में लेवें।

(१७) **लाक्षारस विधि**–लाक्षादि तैल बनाने के समय लाक्षा (लाख) का रस बनाना पड़ता है। लाख को ४ गुने जल में मिला दसवां हिस्सा लोध, दसवां हिस्सा सज्जीखार और थोड़े से बेर के पत्ते, जल गरम होने पर डालने से लाख का रस हो जाता है। फिर उसे कपड़े से छान तैल में मिलाकर तैल को सिद्ध करें। इस तरह सोहागे का चूर्ण मिलाने से लाख का रस हो जाता है।

(१८) **लोबान के तैल बनाने की विधि**–लोबान और सफेद राल समभाग मिलाकर बोतल में भरें। फिर बोतल के मुखपर लोहे के तार की गोली लगाकर पाताल-यन्त्र से तैल निकाल लेवें अथवा एक छटांक लोबान को करोंदे के रस में खरलकर पांच तोले गोघृत मिलाकर शीशी में भरें। फिर पाताल यन्त्र से तैल निकाल लेवें। इस तैल का उपयोग शिर दर्द में कपाल पर लगाने और नपुंसकता दूर करने के लिये इन्द्रिय पर मालिश करने में आता है।

(१९) **लोबान की सत्वपातन विधि**–लोबान १६ तोले, बच्छनाभ ४ तोले और सफेद सोमल ४ तोले लेकर सबका सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर थूहर के एक बालिश्त लंबे और इतने ही मोटे डंडे के बीच में खड्डा कर चूर्ण भरें; और उसको एक मिट्टी की हाँडी में सम्हालकर रखें। पश्चात् हाँडी के मुंह पर दूसरी हाँडी को रख, सन्धि बन्दकर डमरू यन्त्र बना लेवें फिर चूल्हे पर रखकर नीचे दीपाग्नि ४ पहर देकर सत्व उड़ा लेवें। ऊपर की हाँडी पर गीला कपड़ा रखें। कपड़ा सूखने पर कपड़े को बार-बार बदलते रहें। ४ पहर पीछे यन्त्र स्वांग शीतल होने पर ऊपर लगा हुआ सत्व निकाल लेवें।

वर्तमान में ऊर्ध्वपातन यन्त्र द्वारा लोहबान का पुष्प उड़ा लेते हैं उसे लोहबान पुष्प (Benzonic Acid) कहते हैं। इसका उपयोग डाक्टरी में अधिक होता है। मात्रा २॥ से ८ रत्ती। यह उत्तेजक है। इसकी क्रिया समस्त श्लैष्मिक कला पर होती है, तथा श्वास प्रणालिका और मूत्र यन्त्र की श्लैष्मिक कला पर विशेष होती है, जिससे कफ निःसारण और मूत्रजनन कार्य के लिये इसका व्यवहार होता है। सेवन करने पर यह शोषित होकर फिर पेशाब में हिप्युरिक एसिड रूप से कुछ-कुछ निकलता रहता है।

स्थानिक प्रयोग से यह उग्रता साधक है, इसके धूम्रपान से श्वासनलिका और नासिका में उग्रता उत्पन्न होकर जुकाम और कास रोगों में विलक्षण लाभ होता है। इसमें ज्वरघ्न गुण भी रहता है एवं यह कीटाणुनाशक शोधक और रोपक होने से इसे शतधौत घृत में मिला मलहम बनाकर दुष्ट व्रण पर उपयोग में लिया जाता है।

(२०) **सिंगरफ में से पारा निकालने की विधि**–सिंगरफ को नीम के पत्तों के रस या नींबू के रस में ३ घण्टे खरल कर कपरौटी की हुई हाँडी में भरें। फिर डमरू यन्त्र में लिखे अनुसार पारद निकाल कर कपड़े से अच्छी रीति से छान लें। नीचे जो गंधक की राख रह जायेगी कदाचित् उसमें पारद रह जाय तो, पुनः संपुट करके निकाल लेवें। एक सेर सिंगरफ में से प्रायः तीन पाव पारद निकलता है।

डमरू यन्त्र के बदले में जैसी एक मिट्टी की हाँडी डमरू यन्त्र की विधि में लिखी है वैसी घिसी हुई लेवें, और मिट्टी के दो तवे हाँडी के मुँह से थोड़े बड़े लेवें, जो हाँडी के ऊपर अच्छी तरह रह सके और हांडी की संधि पर बराबर मिल जायें। पश्चात् नींबू के रस की भावना दिया हुआ सिंगरफ का चूर्ण भरकर हाँडी को चूल्हे पर चढ़ावें और हांडी पर एक तवे को ढक दें। किसी स्थान में सन्धि खुली न रही हो, यह देख लेवें, १५-२० मिनट पर तथा थोड़ा गरम होने पर, नीचे उतारकर किसी मिट्टी के बरतन में औंधा रख दें और तत्काल दूसरे तवे को ढक दें। नीचे उतारे हुए तवे में लगे हुए पारद को ५ मिनिट पश्चात् कपड़े से सम्हालपूर्वक पोछ लें, फिर दूसरा तवा गरम होने पर उसे

उतार लें और पहिले उतारे हुए तवे को ढक दें, इस रीति से लगभग १५-१५ मिनट पर तवे बदलते जायं। बार-बार तवे को हाँडी पर रखने के समय जल में भिगोये हुए कपड़े से पोंछ करके रखें।

सिन्ध आयुर्वेदिक फार्मेसी वालों की कही हुई इस विधि से पारद सुगमता से निकलता है। डमरूयन्त्र बनाने में जो त्रास पहुँचता है, वह इसमें नहीं है। इसके अतिरिक्त डमरूयन्त्र में सब पारद चढ़ गया या नहीं, इस बात का बोध समीचीन रूप से नहीं होता। अनुमान मात्र से अग्नि देनी पड़ती है। इस विधि से पारद निकालने में यह शंका नहीं रहती। जब तक तवे पर पारद लगता रहे तब तक अग्नि देवें और पारद निकलना बन्द होने पर कार्य को समाप्त करें। कदाचित हाँडी में सिंगरफ जम जाय और पारद ऊपर न उड़ सके, तो इस विधि में कोई भी समय लोहशलाका चलाकर सिंगरफ को बिखेर सकते हैं। ये सब डमरूयन्त्र की अपेक्षा इसमें विशेषताऐं हैं। इस विधि से निकालने में पारद पूर्ण परिमाण में निकल आता है।

पारद निकालने के समय सिंगरफ में शुद्ध लोहे का चूर्ण मिला लें, तो पारद जल्दी निकल जाता है और साथ-साथ लोह भस्म भी होने लगती है। इस तरह रौप्य या ताम्र भी मिला सकते हैं।

इनके अतिरिक्त सिंगरफ के चूर्ण को कपड़े की पट्टियों में या पुरानी रुई की तह में रख कन्दुक या बण्डल बना अग्नि देकर पारद निकालते हैं। कन्दुक को अग्नि निर्वात स्थान में देते हैं। ऊपर एक बड़ा घड़ा इस तरह रखा जाता है कि पारद उड़कर घड़े में लगता रहे। पारद न उड़ जाय, ऐसे चौड़े मुँह का घड़ा कन्दुक के ऊपर सम्हालपूर्वक रखना चाहिये। घड़े को रखने के समय उसके मुँह का कुछ भाग जमीन पर लगा रहे। एक ओर केलू या पत्थर का टुकड़ा रखें, जिससे वायु कन्दुक को मिलती रहे और कन्दुक की अग्नि बुझ न जाय। इस तरह पारद निकालने पर एक सेर सिंगरफ में से ७० तोले पारद मिलता है जो पारद ऊपर उड़ता है, वह पारद डमरूयन्त्र के समान शुद्ध होता है। किन्तु जो पारद नीचे राख में मिल जाता है, उसे फिर से उड़ा लेना चाहिये, क्योंकि उसमें अशुद्ध द्रव्य रह जाने का संदेह रहता है। इस क्रिया में घड़ा छोटा होगा, तो पारद बहुत चला जायेगा। कितने ही चिकित्सक घड़े को आड़ा रखते हैं। फिर मुँह पर गीला निचोड़ा हुआ कपड़ा डालते रहते हैं। बार-बार १-१ घण्टे पर कपड़ा बदलते हैं। इस प्रकार से पारद घड़े के पेट में एक ओर लगता रहता है। घड़ा ओंधा रखने में पारा ऊपर में चारों ओर लग जाता है।

(२१) **कज्जली बनाने की विधि**-शुद्ध पारद और शुद्ध गंधक समभाग लेकर सम्यक् खरल करें। दोनों मिल कर काला चूर्ण हो जाय तथा पारद की चमक बिल्कुल जाती रहे, तब कज्जली तैयार हुई जानें। औषध विशेष में जहां गंधक दूना मिलाकर कज्जली बनाने की विधि है, वहाँ पारद से गन्धक दूना मिलावें।

उपयोग-भिन्न-भिन्न औषधियों के स्वरस की भावना देने से कज्जली में रोग शामक शक्ति बढ़ जाती है। बिना भावना से भी कज्जली अकेली अनेक विकारों को दूर करती है। कज्जली स्वभावत: जन्तुघ्न, वृष्य, अँतड़ी के सेन्द्रिय विष को दूर करने वाली रसासन (सप्त धातुओं को व्यवस्थित करके शरीर को पुष्ट बनाने वाली) है। गले की गाँठ (Tonsils)पर सूजन आना, प्रतिश्याय, कास, गले में रही हुई घण्टिका शिथिल होना, फुफ्फुसों में पीड़ा होना, कफ और बुदबुदे सहित वमन, बालकों का अपचन, अतिसार, विसर्प, स्त्रियों के प्रदर रोग इत्यादि को दूर करती है। घृत में मिला मलहम बनाकर खाज, दाद, मस्तक के फोड़े-फुन्सी इत्यादि पर लगाने में उपयोगी है।

बरनाके क्वाथ की ७ भावना देकर तैयार की हुई कज्जली अन्तर्विद्रधिका प्रसादन (माँस को बिखेर देना) करती है। नागर बेल के पान के रस और अदरक के रस की भावना दी हुई कज्जली उत्तेजक होती है। आँवले की भावना युक्त कज्जली मिश्री के साथ देने से जीर्ण मदात्यय रोग (Chronic Alcohilism) को दूर करती है। द्विगुण गन्धक की कज्जली गोघृत के साथ २१ दिन तक उपदंश रोगी को देने से उपदंश विकार का शमन होता है। भोजन में गेहूँ और घृत दें नमक बिल्कुल नहीं देना चाहिये।

मात्रा-१ से २ रत्ती खाने के लिए। मलहम के लिये ६ माशे कज्जली को १० तोले शतधौत घृत में मिला लेना चाहिये।

(२२) **कलई के मैल में से कलई निकालने की विधि**-शोधन करने पर कलई का मैल निकलता है उसके साथ थोड़ा-थोड़ा नौसादर और गुड़ मिला कढ़ाई में गरम करने से कलई अलग निकल आती है।

इसी तरह शीशे के मैल में से शीशा और जसद के मैल मेंसे जसद निकाल लिया जाता है।

(२३) **अभ्रक निश्चन्द्रीकरण विधि**-शुद्ध धान्याभ्रक का चूर्ण १ सेर तथा कलमीशोरा और गुड़ आध-आध सेर लेकर मिला लेवें। पश्चात् हाँडी में भर तेज अग्नि पर रखकर १२ घण्टे अग्नि देने से अभ्रक निश्चन्द्र हो जाता है। शीतल होने पर अभ्रक निकाल, कूटकर जल में भिगो दें। ४-६ घण्टे पीछे सम्हालकर जल निकाल देवें, फिर मिलाकर मल लेवें। जल स्थिर होने से ऊपर निकाल दें। इस रीति से ३-४ बार धोने से क्षार निकलकर अभ्रक मात्र शेष रह जाता है।

इस अभ्रक से भस्म बहुत जल्दी तैयार होती है। यद्यपि धान्याभ्रक से बनाई हुई भस्म अधिक लाभदायक है, तथापि अच्छे अभ्रक के अभाव में समय पर इससे काम चल सकता है।

सूचना-अग्नि लगने से शोरा बड़ी आवाज के साथ उड़ता रहता है, इससे भय न मानें और हाँड़ी में ऊपर थोड़ी अभ्रक कच्ची रह जाय, तो अलग निकाल लेवें। उसे दूसरे समय निश्चन्द्र कर लेवें। हांडी पर ढक्कन ऐसा लगावें कि जिसमें अंगुली आ जाय। बिल्कुल बन्द होगा तो बरतन फूट जायेगा।

(२४) **सत्यानाशी का तैल निकालने की विधि**–सत्यानाशी के पक्के, सूखे बीज को कूटकर उबलते हुए जल में डालकर ढक दें। जल उतना लेवें कि बीज अच्छी तरह डूब जाये। जल शीतल होने पर बीजों को दबाकर निचोड़ लेने से जल और तैल निकल आता है तैल जल पर तैरता है। उसे सम्हालपूर्वक रूई के फोहे से निकाल लेवें। यह तैल उपदंश और त्वचा रोग में खाने और लगाने के लिये उपयोगी है। अधिक परिणाम में तैल निकालना हो तो पातालयन्त्र से अथवा तिल, सरसों आदि के समान कोल्हू से निकाल लेवें।

(२५) **रसांजन बनाने की विधि**–दारुहल्दी को कूटकर २४ घंटे तक १६ गुने जल में भिगो देवें पश्चात् क्वाथ करके अष्टमांश जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवें। बाद में समभाग बकरी का दुग्ध मिलाकर कड़ाही में डालकर दुग्ध के मावे की तरह बना लें। तुरन्त उपयोग के लिये यह रसांजन विशेष उपयोगी है। दुग्ध मिला हुआ होने से रसांजन एक मास से अधिक समय तक नहीं रह सकता। जन्तु हो जाते हैं, इसलिये थोड़े परिमाण में तैयार करें। दीर्घकाल तक रखने के लिए रसांजन बनाना हो, तो दुग्ध न मिलावें केवल क्वाथ का ही घन बना लेवें। यदि ताजी दारुहल्दी के मूल में से रसांजन बनाया जाय, तो विशेष लाभ पहुँचाता है। आयुर्वेद-प्रकाश में दुग्ध चौथा हिस्सा मिलाने को लिखा है।

रसांजन उष्ण, कड़वा, चरपरा, रसायन और छेदन गुणवाला है। कफ, विष, नेत्रविकार और व्रण दोष को दूर करता है।

(२६) **एरण्ड तैल निकालने की विधि**–लगभग १० सेर या अधिक छिलके निकले हुए अरंडी के बीजों को कड़ाही में भून, कूटकर मैदा जैसा चूर्ण करें फिर एक हांडी में भर, १५ गुना जल मिलाकर उबालें। अच्छी तरह उबलने पर नीचे उतारकर हांडी को ठण्डी होने दें। बाद में ऊपर से नितरे तैल को सम्हाल पूर्वक निकाल लें। पुनः हांडी को चूल्हें पर चढ़ा, जल को उबाल कर तैल निकाल लें। पहले समय निकाला हुआ तैल औषधि के लिये उपयोगी है दूसरे समय का तैल दीपक जलाने लायक होता है।

(३) अभाव वर्ग

एक औषधि के अभाव के समय, समान गुणवाली दूसरी औषधि उपयोग में लेना, उसे प्रतिनिधि कहते हैं। प्रतिनिधि उपयोग के विषय में शास्त्रकारों ने नियम बनाया है उस नियमानुसार ही प्रतिनिधि औषधि ली जाती है। अनेक औषधियों को मिलाकर प्रयोग तैयार करने में प्रायः मुख्य और गौण, ऐसे दो विभाग होते हैं। मुख्य औषधि वह कही जाती है, जिसके बिना औषधि प्रयोग तैयार न हो सके, अथवा इच्छित लाभ न दे सके। गौण औषधियों वे हैं, जिनके अभाव में समान गुण वाली औषधि मिलाने पर प्रयोग द्वारा इच्छित लाभ की प्राप्ति हो सके। अतः रोग को दूर कर स्वास्थ्य प्रदान करना अथवा शारीरिक और मानसिक निर्बलता दूरकर बल की वृद्धि करना, यह मुख्य औषधि का कार्य है, और मुख्य औषधि के दोष अथवा उग्रता का शमन करना, उपद्रवों को दूर करना, गुण वृद्धि और शीघ्र लाभ पहुँचाने में सहायता करना ये गौण औषधियों के कार्य हैं।

जैसे–हिंग्वष्टक चूर्ण में हिंगु मुख्य औषधि है, शेष ७ औषधियाँ गौण सहायक हैं। जैसे–हिंगु न हो, तो हिंग्वष्टक चूर्ण तैयार नहीं हो सकेगा और कोई गौण औषधि न होवे, तो उसके स्थान में प्रतिनिधि की योजना हो सकती है। किसी-किसी प्रयोग में एक से अधिक औषधियाँ भी मुख्य रहती हैं। कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, खरलीय रसायन और इतर अनेक प्रयोगों में एक से अधिक औषधियाँ मुख्य हैं। जैसे–मल्लचन्द्रोदय रस, पंचामृत पर्पटी, अश्वकंचुकी रस, अमृतसंजीवनी वटी, त्रिफला-पिप्पली चूर्ण, दशमूलाद्यरिष्ट, चन्दन बलालाक्षादि तैल, इत्यादि औषधियों में एकाधिक मुख्य औषधियाँ हैं।

जहाँ अनेक औषधियों में संयोगजन्य गुण उत्पन्न होता है, वहाँ पर उनमें से किसी को भी गौण नहीं कह सकते। जैसे–रसायन चूर्ण में गिलोय, गोखरू और आँवले के संयोग से रसायन के समान गुण उत्पन्न होता है, ऐसे स्थान में किसी के अभाव में प्रतिनिधि नहीं लिया जायेगा एवं त्रिफला, त्रिकटु, चातुर्जात, पंचलवण दशमूल आदि औषधियों में प्रायः सब समान प्रभाव वाली अर्थात् मुख्य औषधियाँ मानी जाती हैं। ऐसे निश्चित् औषधियों के मिश्रण से निश्चित् गुण की उत्पत्ति होती है। अतः उनके स्थान में प्रतिनिधि का उपयोग नहीं करना चाहिये।

शास्त्र में प्रायः प्रयोग नाम में मुख्य औषधि का सम्बन्ध रखा है, जिससे मुख्य औषधि कौनसी है, इस बात का सहज में बोध हो सकता है। जैसे–कस्तूरी भैरव रस, द्राक्षारिष्ट, खदिरारिष्ट, वासाद्य घृत, अमृताद्य तैल, हिंग्वादि चूर्ण, कुटजादि वटी, इन सबमें क्रमशः कस्तूरी, द्राक्षा, खदिर, वासापत्र, अमृता, हिंगु, कुटज ये सब मुख्य हैं।

परन्तु आयुर्वेदीय वाङ्मय में इस नियम का सर्वांश में पालन नहीं हुआ। कतिपय प्रयोगों में मुख्य औषधि का सम्बन्ध नाम के साथ नहीं रखा। जैसे–बच्छनाभ प्रधान अनेक औषधियाँ ज्वराकुंश रस, ज्वर केशरी वटी आदि एवं श्वासकुठार रस, कृमिमुद्गर रस, चन्द्रप्रभा वटी, आरोग्यवर्धिनी, अमरसुन्दरी वटी, लक्ष्मीनारायण रस, अग्नि रस इत्यादि में रोग सम्बन्ध, गुण सम्बन्ध, और सामान्य संज्ञा की प्रतीति होती है। कतिपय प्रयोगों में औषधि का सम्बन्ध नाम में रखा गया है। जैसे–चन्द्रप्रभा वटी में चन्द्रप्रभा संज्ञा औषधि दर्शक मानें; गुणदर्शक न मानें। चन्द्रप्रभा में (कपूर, कचूर, शतावरी या वायविडंग) औषधि गौण हैं। मुख्य औषधि शिलाजीत और गूगल है एवं हारीत संहिता में चन्दनाद्यवलेह, भैषज्य रत्नावली का शुक्रमेह और प्रदर पर चन्दनादि चूर्ण, निघण्टु रत्नाकर का ग्रहणी रोग पर चन्दनादि चूर्ण, इन सब में चन्दन आद्य होने पर भी सामान्य औषधि है, इन प्रयोगों में चन्दन के स्थान पर गौण औषधि मिला दी जाय, तो भी प्रयोग में विशेष क्षति नहीं पहुँचेगी। इस तरह योगरत्नाकर के तालीसादि चूर्ण में तालीसपत्र गौण है। मुख्य भांग या हरड़ है। उपर्युक्त बातों को समझकर जिस प्रयोग में जिनको गौण सहायक औषधियाँ मानी जाय, केवल उनके ही अभाव में समान गुण (रसवीर्य-विपाक आदि) युक्त अन्य प्रतिनिधि औषधि मिलाई जाती है।

द्रव्य शोधन प्रकरण

आयुर्वेद शास्त्र के नियमानुसार द्रव्यों का शोधन करना अर्थात् निर्दोषकर गुण वर्द्धन करना, अनावश्यक, बाधक अंश, विजातीय द्रव्य, अथवा मल को दूर करना या उसमें स्थित दोष को घटाकर गुण की वृद्धि करना आदि हेतुओं में से किसी एक या अनेक हेतुओं की सिद्धि के लिये औषध द्रव्य पर जो संस्कार किया जाता है, उसे शोधन कहते हैं।

बच्छनाभ में हृदय को अवसाद करने का धर्म उपस्थित है, उस धर्म को नियमित करने के लिये बच्छनाभ का शोधन गोमूत्र में किया जाता है, अर्थात् बच्छनाभ में गोमूत्र का प्रवेश कराया जाता है। शिलाजीत, खरिया मिट्टी आदि का शोधन पत्थर आदि विजातीय द्रव्यों को दूर करने के लिये होता है। पारद का शोधन विविध प्रकार के मल, धातु मिश्रण को दूर करने और गुण वृद्धि के हेतु से होता है। सुवर्ण आदि धातु का शोधन विजातीय द्रव्य और मल दूर करने तथा सुगमता से मारण योग्य बनाने के लिये होता है।

धातु (Metals) और उपधातुओं (Alloys) का शोधन करने से वे अन्य द्रव्यों के मिश्रण रूप दोष से मुक्त हो जाती हैं एवं उन की भस्म भी अल्प परिश्रम से तैयार होती है यदि धातुओं के शोधन में परिश्रम कम करें तो, भस्म बनाने में अधिक श्रम पहुँचता है, और भस्म भी सदोष बनती है। जितना शोधन अच्छा होता है, भस्में उतनी ही अधिक गुणयुक्त होती हैं ऐसे ही रत्नोपरत्न का शोधन करने से उसकी भस्म जल्दी बनती है और विशेष लाभदायक होती है।

सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, बंग आदि जिन धातुओं का शोधन और मारण करना हो, वे धातु दूसरे धातु के मिश्रण से रहित लेनी चाहिये। दूसरी धातु का मिश्रण होने से नाना प्रकार के विकार होने की सम्भावना रहती है।

रसेन्द्र चिन्तामणि में लिखा है कि-

मुक्तादिष्वविशुद्धेषु न दोषः स्याच्च वस्तुतः। तथाऽपि गुणवृद्धिः स्याक्छोधनेन विशेषतः॥

अर्थात् मुक्ता और रत्न आदि सबका शोधन दोष निवारणार्थ नहीं किया जाता। शोधन करने पर गुणवृद्धि होती है इसलिए आचार्यों ने शोधन दर्शाया है।

विष और उपविष शोधन, उनकी उग्रता या मारकता को दूर करने के हेतु से किया जाता है। परिपक्व हुए बिना रस रक्त आदि धातुओं में फैलना विष का स्वभाव है। पर शोधित विषों की उग्रता बहुत कम हो जाने से वे (शुद्ध विष) मानव प्रकृति को हानि नहीं पहुँचा सकते।

कच्चा सोहागा और फिटकरी पित्तोत्पत्ति में प्रतिबन्ध करते हैं। पित्तोत्पत्ति बन्द होने पर पाचन क्रिया का कार्य रुक जाता है। इस दोष को दूर करने के लिये फूला बनाया जाता है। इसे ही शोधन कहा है। कच्ची हींग उग्र होने से गले में हानि पहुँचाती है, वमन लाती है। अतः हींग को भूनकर प्रयोग में लेने का विधान किया है।

इस रीति से महर्षियों ने मानव शरीर और शक्ति का विचार कर द्रव्यों को शुद्ध करके ही उपयोग में लेने का नियम बनाया है। इस ग्रन्थ में औषधियों की जो शोधन और मारण विधि लिखी है, वह किस-किस ग्रन्थ के आधार से लिखी गई है, यह भी सूचित कर दिया है। धातुओं की शोधन और मारण विधि प्राचीन ग्रन्थों में नाना प्रकार की लिखी है, उनमें से हमने जिनका अनुभव किया है मात्र उन्हीं को इस ग्रंथ में स्थान दिया गया है। अतः नये अनभिज्ञ चिकित्सक भी निर्भय रूप से यहाँ लिखी विधियों को प्रयोग में ला सकते हैं।

(१) **सुवर्ण और रौप्य शोधन**-शुद्ध सोना और चाँदी के पतरे अग्नि में तपा-तपाकर तैल, छाछ, काँजी, गोमूत्र और कुलथी के क्वाथ में ७-७ बार बुझाने से शुद्ध होते हैं। (र.र.स.)

(२) **लोह शोधन**-लोहे के सूक्ष्म चूर्ण को तपा-तपाकर तैल, गोमूत्र, छाछ, कांजी और कुलथी के क्वाथ में ७-७ बार बुझाने से शुद्ध होता है। (र.र.स.)

पुरानी रेती या सुनार की जन्त्री को अग्नि में तपा वायु में रखकर ठण्डी करें (जल से न बुझावें)। फिर काट रेती से घिसकर चूर्ण करें, अथवा लोहे के कारखाने में लोहे का चूर्ण तैयार मिल जाता है, उसे उपयोग में लें।

(३) **ताम्र शोधन**-तांबे (बारीक बिजली के तार) को अग्नि में गरम करके तैल, छाछ, कांजी, गोमूत्र, कुलथी के क्वाथ, अनारदाने के रस तथा आक के पत्तों के रस में ७-७ बार बुझावें। फिर इमामदस्तें में कूटकर सूक्ष्म चूर्ण करें। पश्चात् एक हाँडी में गोमूत्र भर, उसमें इमली और नमक डाल, उसके साथ इस चूर्ण को १२ घण्टे तक उबालें। शीतल होने पर चूर्ण को निकालकर जल से धो लेने से ताम्र, भस्म करने लायक शुद्ध हो जाता है। बिजली के तार का तांबा शुद्ध होता है। पर जो तांबे के पतरे आते हैं, वे शुद्ध नहीं होते बिजली का तार न मिले, तो नीले थोथे में से तांबा निकाल लेवें। नीलेथोथे में से ताँबा निकालने की विधि ताम्र भस्म के साथ में लिखी है।

(४) **वङ्ग (कलई) शोधन**-कलई को कड़ाई में डाल, तेज आँच द्वारा गलाकर रस करें। फिर लोहे की कलछी से थोड़ा-थोड़ा (२ से ४ तोले) निकालकर एकाध मिनट हवा लगने पर बुझाते जायँ। प्रथम तैल में तीन बार बुझावें। तैल में बुझाने के समय कलई के सब रस

को एक ही बार डाल दिया जाय, तो भी हरज नहीं। किन्तु छाछ, काँजी आदि में एक साथ न डालें। तैल के पीछे छाछ, कांजी, गोमूत्र और कुलथी के क्वाथ में क्रमशः तीन-तीन बार बुझावें। छाछ आदि पदार्थों में बहुत सम्हालकर बुझावें। कारण, कलई उछलकर शरीर पर लग जाती है। इसलिए कलछी हाथ में पकड़ दूर से ऊँचा हाथ रखकर बाहर की वायु लगने पर बुझाते जायँ। यदि कड़ाही में रही हुई कलई के रस में जल, छाछ अथवा गोमूत्र की एक बूंद भी गिर जायेगी, तो एक दम कलई उछलकर बाहर आ जायेगी। इसलिए सम्हाल रखें। शोधन हो जाने पर, कड़ाही में कलई का रसकर थोड़ा तैल डालकर एक गोल चक्की बना लेवें, उसमें से कागज जैसे पतले पतरे बनाकर चौथाई-चौथाई इंच के छोटे-छोटे टुकड़े करा लेवें।

भस्म बनाने के लिए पाट की कलई लें। बरतनों को लगाने की कलई में शीशा, जसद आदि धातुओं का मिश्रण रहता है। पाट की कलई शुद्ध होती है।

सूचना-शोधन के समय तैल को अलग निकालते जाय, जब मैल ज्यादा इकट्ठा हो जाय, तब उसमें नौसादर और गुड़ मिला, रसकर, शुद्ध कलई निकाल लें।

जिनको ज्यादा कलई शोधन करनी हो, वे तक्र आदि में बुझाने के समय गड्ढे में रखे हुए पात्र पर चक्की के ऊपर का पाट रखें फिर उसके छेद में से रस डालें जिससे कलई के उड़ने का भय बिल्कुल न रहे। अथवा ४ फीट (लगभग २॥ हाथ) बाँस या लोहे की नली बनाकर दीवार की तरह बाँधें। ऊपर का भाग जमीन से २ हाथ ऊँचा रहे और नीचे का भाग लगभग १। हाथ ऊँचा रहे, इस तरह नली को बाँधें। पश्चात् नीचे के भाग में छाछ, गोमूत्र आदि से भरा पात्र रखें। जब कलई का रस हो जब उसे दूसरी कड़ाही में निकाल कर, नली के ऊपर से डालने से सब कलई नली द्वारा नीचे के बरतन में चली जायेगी। इस तरह शोधन करने में उछलने का भय बिल्कुल नहीं रहता। कभी-कभी बाँस फट जाता है। इसलिए दो नली और तैयार रखें और रस डालने के समय नली के नीचे हाथ अथवा पैर न आ जाय, यह सम्हालें।

(५) **शीशा शोधन**-शीशे का शोधन कलई के समान करें।

सूचना-शोधन में भूल होने पर शीशा बन्दूक की गोली की तरह ऊँचा उछलता है। कड़ाही में पानी की बूंद न गिर जाय, इसका ध्यान रखें।

(६) **जसद शोधन**-जसद को कड़ाही में डालकर तेज अग्नि पर रस करें। रस होने पर दुग्ध में बुझावें। इस तरह २१ बार गोदुग्ध में बुझाने से जसद शुद्ध हो जाता है। जसद के बुझाने में कलई या शीशे के समान उछलने का भय नहीं है। जसद में से मैल बहुत निकलता है। मैल की अलग भस्म करें। यह नेत्राञ्जन में उपयोगी है। शुद्ध जसद में से खाने के लिये भस्म बना लें।

(७) **जर्मन सिल्वर, काँसी और पीतल शोधन**-जर्मन सिल्वर, काँसी और पीतल को तपा-तपाकर तैल, छाछ, गोमूत्र, कांजी और कुलथी के क्वाथ में ७-७ बार बुझाने से शुद्ध होते हैं। इस तरह शोधन होने पर भी फिर इमली नमक मिले हुए गोमूत्र में तीन घन्टे तक दोला यंत्र विधि से उबाल लेने से विशेष शुद्ध होते हैं। जर्मन सिल्वर, काँसी और पीतल में रहे हुए ताम्र के दोष शमनार्थ शोधन जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक लाभदायक भस्म बनेगी।

काँसी और पीतल का शोधन और मारण ताम्र के समान होता है और गुण भी ताम्र के समान ही हैं, ऐसा शास्त्रकारों का कथन है।

(८) **मिश्र धातुयें तथा उनका शोधन**-ताम्र, कलई, शीशा, पीतल और काँसी, इन पांच धातुओं के मिश्रण से जर्मन सिल्वर बनता है। ताम्र में चतुर्थांश कलई मिलाने से काँसी बनती है, तथा ६६ भाग ताम्र के साथ ३४ भाग जसद मिलाने पर पीतल बनती है। दो धातु मिश्रित होने पर दोनों के मूलगुण रहते हैं और संयोगजन्य नया गुण भी उत्पन्न होता है।

वर्तमान में ताम्र ९ भाग और कलई १ भाग मिलाकर काँसी बनाते हैं। ताम्र और निकल मिलाकर जर्मन सिल्वर बनाते हैं। जो जर्मन सिल्वर चाँदी सदृश उज्जवल श्वेत वर्ण का है वही उत्तम माना जाता है। ताम्र ९ भाग में स्फटिक सत्व १ भाग मिलाकर कृत्रिम सुवर्ण बनाते हैं। इन सबका शोधन भी पीतल शोधन के समान होता है।

(९) **मंडूर शोधन**-सौ वर्ष पुराने मंडूर को अग्नि पर तपा-तपाकर ७ बार गोमूत्र में बुझाने से उसकी शुद्धि होती है। मंडूर शोधन के लिये बहेड़े की लकड़ी जलानी चाहिये। यदि बहेड़े की लकड़ी न मिले, तो बबूल की लकड़ी लेवें। (र.र.स.)

सूचना-नया लोहकीट, मण्डूर भस्म बनाने के लिये काम में नहीं लेना चाहिये। नये लोहकीट में शास्त्रकारों ने दोष दिखाये हैं।

(१०) **सुवर्णमाक्षिक** (Chalco Pyrite) शोधन-सोनामाखी का चूर्ण ३ भाग, सैंधा नमक १ भाग और नींबू का रस ५ भाग मिलाकर एक कड़ाही में डालकर, तेज अग्नि पर लोहे की कलछी से चलाते रहें। नींबू का रस सूखने के पश्चात् जब कड़ाही खूब लाल हो जाय, तब अग्नि देना बन्द करें। कड़ाही शीतल होने पर सोनामाखी में जल मिला, मल-मलकर धोवे। ४-६ बार धोने से सैंधानमक निकल जायेगा। फिर सूर्य के ताप में सुखा लेने से सुवर्णमाक्षिक शुद्ध हो जाती है। जल सम्हालपूर्वक निकालें अन्यथा सुवर्णमाक्षिक भी जल में चली जायेगी।

औषधि के लिए अति तेजस्वी सोने के समान चमकवाली सुवर्णमाक्षिक को उपयोग में लें। जो निस्तेज हो, उसमें गुण बहुत कम होता है। कसौटी पर रगड़ने से जिसकी स्वर्ण समान रेखायें हों और टुकड़ा तोड़ने पर भीतर सुवर्ण समान तेजस्वी हो, उसे अच्छी मानी है। किन्तु

वैसी अभी नहीं मिलती। अमेरिका से यह अच्छी आती है।

(११) **मन: शिला** (Realgar Red Arsenic) **शोधन**–मैनसिल के चूर्ण को मोटे कपड़े की थैली में भरकर, बकरी के मूत्र के साथ दोलायन्त्र में ३ अहोरात्र तक मन्द-मन्द आँच दें। फिर बकरी के पित्त की ७ भावना देवें अथवा तीन घण्टे तक हल्दी के क्वाथ में दोलायन्त्र से उबालें। पश्चात् अदरक के रस में तीन घण्टे खरल करके धूप में सुखा लेवें।

(१२) **सुरमा शोधन**–सफेद या काले सुरमे के सूक्ष्म चूर्ण को नींबू के रस-केले के खम्भे के रस, भाँगरे के रस (या त्रिफला के काढ़े) में ७-७ बार ३-३ घण्टे खरल करके सूर्य के ताप में सुखा लेने से शुद्ध होता है।

(१३) **नौसादर शोधन**–नौसादर के चूर्ण को जल में मिला, कपड़े से पीतल की कड़ाही में छान, मंदाग्नि से जल को सुखा लेने से उसकी शुद्धि होती है।

सूचना–यदि लोहे की कड़ाही में नोसादर पकाया जायेगा, तो उसमें लोहे का रंग मिल जाने से नौसादर दूषित हो जायेगा।

(१४) **तुत्थ शोधन**–२० से ४० तोला तूतिया को बड़े नींबू के रस में खरल कर लघुपुट में पकावें फिर तीन दिन दही के पानी की भावना देने से शुद्धि होती है।

नीलाथोथा दो प्रकार का होता है–खान में से निकलने वाला और कृत्रिम। खान वाला उत्तम है। उसी को औषधि के लिये उपयोग में लेना चाहिए।

(१५) **मल्ल** (White Arsenic) **शोधन**–सफेद संखिया के चने समान टुकड़े कर, बकरे के मूत्र या चौलाई के रस में १ दिन मंदाग्नि पर दोलायन्त्र से उबालकर धो लेने से शुद्ध होता है।

संखिया ४ प्रकार का होता है–सफेद, काला, लाल और पीला। औषधि के लिये विशेष करके सफेद संखिया ही व्यवहार में आता है। सफेद की अपेक्षा अन्य विशेष जहरी हैं। सफेद संखिये में जो बिल्लोरी काँच के समान चमकीला हो, उसे अच्छा माना है। संखिया पुराना होने पर चमक और गुण कम हो जाते हैं।

(१६) **हरताल** (Yellow Arsenic, King's Yellow) **शोधन**–तपकीया हरताल को जौकूटकर दोलायन्त्र की विधि से कांजी, पेठे के रस, तिल्ली के तैल और त्रिफला के क्वाथ में तीन-तीन घण्टे तक उबालें। फिर कपड़े में बांधकर १२ घण्टे तक चूने के पानी पर मन्दाग्नि से भाप देने से हरताल शुद्ध होती है।

दूसरी विधि–हरताल के चूर्ण को १६ गुने चूने के जल में ७ दिन खरल कराने या तिलों के क्षार के जल में ३ घण्टे दोलायन्त्र से स्वेदन कराने पर शुद्ध हो जाती है। इस प्रकार से शोधन करने पर मारण के समय हरताल में रहे हुए गन्धक और सोमल के उड़ने पर अंकुश आता है।

औषधि रूप से उपयोग करने के लिये सुवर्ण के समान तेजस्वी वर्ण की वरकी हरताल लेनी चाहिये। पीली निस्तेज पिण्ड हरताल अथवा थोड़ी चमक वाली हरताल से इच्छित लाभ नहीं मिलता। अच्छी हरताल में संखिया विशेष परिमाण में होने से उसमें गुण भी विशेष होता है।

(१७) **हिंगुल** (Cinnabar) **शोधन**–रूमी सिंगरफ को १२ घण्टे नींबू के रस में खरल करें। रस बिल्कुल सूख जाने पर भेड़ अथवा भैंस के दुग्ध में १२ घण्टे खरल कर सुखा लेने से हिंगुल शुद्ध होता है।

स्व. पं. श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य के मतानुसार हिंगुल को पहले ३ घण्टे गोदुग्ध में खरल करें। फिर नींबू के रस की ७ भावनायें दें। इस तरह शोधन करना विशेष लाभदायक माना जायेगा।

अनेक प्रत्यक्ष क्रिया–अनुभवियों के मतानुसार हिंगुल को भेड़ या भैंस के दूध के साथ ७ दिन तक मर्दन कराने के पश्चात् ७ दिन तक रहने देवें। फिर धोकर नीम के पानों के स्वरस या निम्बू के रस के साथ ७ दिन तक मर्दन करा, फिर औषध रूप से प्रयोजित करें। यह हिंगुल द्विगुण गंधक जारित के समान लाभ पहुँचाता है।

शास्त्र में सिंगरफ को ७-७ दिन तक नींबू के रस और भेड़ के दुग्ध में खरल करने को लिखा है। जितना अधिक खरल हो उतना ही हितकर माना जाता है। नींबू के रस से सिंगरफ में रहा हुआ पारद दोष मुक्त होकर प्रदीप्त बनता है। दुग्ध से पुष्ट बनता है तथा सिंगरफ से पारा सरलतापूर्वक छूटकर निकलता है।

ऊपर चढ़ा हुआ सिंगरफ रससिंदूर सदृश होने से थोड़े ही शोधन में दोषमुक्त होकर शुद्ध बन जाता है। इसलिए हमने स्वल्प शोधन को ही लिखा है। भूतकाल में खनिज सिंगरफ को विशेष उपयोग में लाया जाता था। परन्तु वर्तमान में अशुद्ध पारद और गन्धक या गन्धक के तेजाब (Sulphuric acid) के संयोग से बने हुए कृत्रिम सिंगरफ का उपयोग होता है। कृत्रिम सिंगरफ में भी रूमी सिंगरफ हितकर है, और जो सिंगरफ, कम पारद और अधिक गन्धक मिलाकर तैयार किया जाता है, और जो सख्त व मैले रंग वाला होता है, उसे खाने की औषधि में नहीं मिलाना चाहिये।

हिंगुल कड़वा, कसैला और चरपरा होता है। नेत्ररोग, कफपित्त विकार, उबाक, कुष्ठ, ज्वर, कामला, प्लीहा वृद्धि, आमवात और सेन्द्रिय

विष आदि विकारों को नष्ट करता है। सामान्यत: कज्जली को शीतल, शामक और हिंगुल को उष्ण, उत्तेजक माना है। इस हेतु से शुष्क कास की औषधि में हिंगुल की योजना नहीं की जाती। शुद्ध हिंगुल में रससिन्दूर के समान किन्तु न्यून गुण हैं। कभी-कभी अकेले हिंगुल को रससिन्दूर के स्थान में विभिन्न अनुपानों के साथ दिया जाता है। मात्रा ½ से 2 रत्ती।

(१८) **गन्धक शोधन**-आंवलासार गन्धक और घृत समान भाग लेकर लोहे की कड़ाही में गरम करें। रस होने पर तुरन्त उतार कर चार गुने दुग्ध में डाल दें। गन्धक डालने के पहले दुग्ध के बरतन के ऊपर एक कपड़ा बाँधे। फिर उस पर पिघला हुआ गन्धक डालें। दुग्ध के अभाव में मट्ठा अथवा त्रिफला का काढा लिया जाता है। एकाध घण्टे के बाद जब गन्धक पैंदे में बैठ जाय, तब ऊपर से सम्हालकर घृत और दुग्ध निकाल लें। पश्चात् गन्धक को निकाल छोटे-छोटे टुकड़े कर अच्छी रीति से गरम जल से धोकर धूप में सुखा लेने से गन्धक शुद्ध होता है अथवा शोधित गन्धक के चूर्ण को कड़ाही में डाल ऊपर से जल भर दें। पश्चात् चूल्हें पर चढ़ाकर गन्धक मिले जल को गरम करें। जल उबलने लगे, तब जल ऊपर-ऊपर से कलछी से निकालते जायें और शीतल जल डालते जायें। घृत का अंश बिल्कुल निकल जाय, तब तक जल को निकालते जायें। बाद में कड़ाही को उतार, गन्धक को सुखा लेने से शुद्ध हो जाता है।

गन्धक के शोधन में जो घृत लिया जाय, उसे सम्हालकर निकाल लें और फिर उसे चूल्हें पर चढ़ाकर दुग्ध अथवा छाछ का अंश जला डालें। केवल घृत शेष रहने पर उतारकर छान लें। यह घृत मालिश करने में उपयोगी है। कितने ही आचार्यों ने गन्धक को ऊपर लिखे अनुसार ७ बार शोधन करने को लिखा है। अधिक बार शोधन करने के लिये बार-बार घृत और दुग्ध नया लेना चाहिये। शुद्ध गन्धक अनेक रोगों में खिलाने और लगाने के लिये उपयोग में आता है।

सूचना-यदि गन्धक का रस होने के बाद ज्यादा समय तक कड़ाही चूल्हे पर रहेगी, तो गन्धक लाल होकर बिगड़ जायेगा। इसलिए रस होने पर तुरन्त कड़ाही को उतार लेना चाहिये। तमाम गन्धक एक साथ पिघल जाय इसके लिये उसको कूटकर समान टुकड़े कर लें। यदि प्रमादवश गन्धक लाल हो जाय, तो इसका उपयोग पर्पटी बनाने में हो सकता है।

अनुपान-रक्त शोधनार्थ गन्धक और मिश्री समभाग मिलकर बारीक खरल करें। इसमें से ३-३ माशे लेकर ऊपर दूध पीवें। इस तरह दिन में २ समय १५ दिन तक सेवन करने से रक्त शुद्ध होकर खाज-खुजली, फोड़ा, फुन्सी आदि विकार शान्त हो जाते हैं। केवल ३ या ७ दिन तक गन्धक सेवन करना हो, तो ४-६ माशे गन्धक भी ले सकते हैं। अधिक मात्रा से किसी को पेचिश जैसा असर होवें, तो गन्धक २-४ दिन बन्दकर, फिर कम मात्रा में पुन: लेना आरम्भ करें।

नेत्र रोग और दृष्टि की कमजोरी दूर करने के लिये शुद्ध गन्धक, त्रिफला घृत और शहद मिलाकर सेवन करें और भोजन में केवल दूध भात लें।

मलावरोध दूर करने के लिये ६ माशे गन्धक को २॥ तोले गुलकन्द के साथ लेवें और ऊपर थोड़ा दूध या गुनगुना जल पीवें।

प्रमेह रोग में शुद्ध गन्धक १ से २ माशे तक को गुड़ के साथ दिन में २ बार एकाध मास तक सेवन करें।

इस प्रकार और रोगों में भी उचित अनुपान की योजना कर लेनी चाहिये।

उपयोग-रक्तविकार, फोड़ा-फुन्सी, खाज, खुजली, कुष्ठ, वातविकार, कफदोष, ज्वर, आम, मलावरोध, मन्दाग्नि, अरुचि, उदरशूल, उदररोग, अजीर्ण, प्रमेह आदि रोगों को दूर करता है। गन्धक उष्णवीर्य, अग्नि-प्रदीपक तथा वीर्य वर्द्धक है।

गन्धक सेवन करते समय, नमक, खटाई, तैल, मिर्च, शराब, द्विदल, (चना, उड़द, अरहर आदि) धान्य और अपथ्य आहार का त्याग करें। दाहयुक्त रोगी को गन्धक विशेष अनुकूल रहता है।

नव्य मतानुसार अल्प मात्रा में रसायन, स्वेदजनक, कफ नि:सारक, पित्तनि:सारक और अधिक मात्रा में विरेचक है। गन्धक उत्तम सेन्द्रिय विषघ्न और कीटाणुनाशक है। गन्धक मुख के उत्पन्न रस में द्रवीभूत नहीं होता। सेवन करने पर इसका आमाशय में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। यह आमाशय की श्लेष्मिक कलापर कुछ भी असर नहीं पहुँचाता। अन्त्र में जाने पर उसकी श्लैष्मिक कला और मांसपेशियाँ उत्तेजित होती हैं और अन्त्र की परिचालन क्रिया बढ़ती है, जिससे वह मृदु विरेचन क्रिया दर्शाता है। साथ में वायु उत्पन्न होती है, जिससे पाचन-काल में आवाज और मन्द-मन्द उदरपीड़ा होती है। दस्त ढीला और बिना वेदना के साथ आ जाता है। अधिक काल तक इसका सेवन करते रहने से आमाशय की श्लैष्मिक कला में भी प्रतिश्याय सदृश अवस्था उत्पन्न हो जाती है, फिर पाचन-क्रिया बिगड़ती है। कितने ही चिकित्सकों के मतानुसार यह हृदय की गति को बढ़ाता एवं प्रस्वेद लाता है। गन्धक सेवन करने पर शोषण होकर स्वेद, नि:श्वास, स्तन्य-मूत्र और मल के साथ बाहर निकलता रहता है। यदि शरीर पर चांदी का जेवर हो, तो वह गन्धक के योग से काला हो जाता है।

गन्धक का उपयोग नव्य मतानुसार बद्धकोष्ठ, प्रवाहिका, अर्श, गुदनलिका निर्गमन, गुदद्वार विदारण, गुदद्वार की कण्डू तथा गुदनलिका संकोच (Stricture of the Rectum) रोग में मृदु विरेचन देने के लिये होता है यह छोटे बालक और वयोवृद्ध के अर्श की तीव्रावस्था में उदरशुद्धि के लिये विशेष उपकारक है।

इनके अतिरिक्त विसूचिका रोग में कीटाणुनाशार्थ, जीर्ण उपदंश, जीर्ण सुजाक, रक्तविकार, आदि पर रक्तशोधनार्थ, एवं मासिक धर्म में प्रतिबन्ध

होने पर वातवाहिनियों के उत्तेजनार्थ व्यवहृत होता है। इसका विद्रधि, तारुण्यपिटिका, दद्रु, ब्यूची, पामा आदि रोगों में उदर सेवन स्थानिक प्रयोग भी होता है। बाह्य प्रयोग में लेप, मलहम और धावन के रूप से उपयोग होता है।

शीशा धातु-जनित विष से विषाक्त होने पर इसका उपयोग अच्छा लाभ करता है। पारद विकार से मुख आने और पक्षाघात होने पर विरेचन दिया जाता है एवं संक्रामक कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए कमरे में इसका धुआं भी किया जाता है।

(१९) **पारद शोधन**-इसका शोधन कूपीपक्व रसायन में लिखा है। सिंगरफ में से निकला हुआ पारद शुद्ध होता है इसलिए औषधि बनाने के उपयोग मे लिया जाता है। सिंगरफ में से पारद निकालने की विधि "आयुर्वेदीय परिभाषा" प्रकरण में लिखी है।

(२०) **रसकर्पूर शोधन**-रसकर्पूर दोलायन्त्र से १२ घण्टे तक १६ गुने घृत में मन्दाग्नि पर उबाल लेने से शुद्ध होता है।

(२१) **अभ्रक शोधन**-अभ्रक को कड़ाही में डाल तेज अग्नि पर तपा करके दूध, कांजी, त्रिफला के क्वाथ अथवा गोमूत्र में ७ बार बुझाने से शुद्ध होता है। इन सब में गोदुग्ध विशेष गुणकारक है। फिर खरल में सूक्ष्म चूर्ण करके, चौथा हिस्सा धान्य मिला, एक कम्बल में बांध, एक बरतन में खूब जल अथवा कांजी डालकर तीन दिन तक भिगो दें। चौथे रोज हाथ से अथवा पैर से मल-मलकर अभ्रक को कम्बल में से छानकर निकाल लेवें। मसलने के समय कम्बल वाली पोटली को जल में ही रखनी चाहिये। बार-बार जल निकालते रहे और नया जल डालते जायें ताकि सब अभ्रक जल में छन जाय। फिर थोड़े समय तक जल स्थिर रहने से अभ्रक पैंदे में बैठ जाती है, उसे सम्हालकर ले लेवें। ऊपर का पानी सम्हालकर निकालना चाहिये, जिससे अभ्रक निकल न जाय अन्त में अभ्रक को धूप में सुखा लेवें। यह शुद्ध धान्याभ्रक कहलाती है। (र.र.स.)

अभ्रक ४ प्रकार का होता है-सफेद, लाल, पीला और काला। वर्तमान में इनके अतिरिक्त हरा अभ्रक भी अनेक खानों में से निकलता है। काले अभ्रक में भी चार उपजाति हैं। नाग, पिनाक, दर्दुर और वज्र। इनमें से वज्राभ्रक मात्र लेने की शास्त्रकारों की आज्ञा है। अन्य अभ्रक के पतरे बड़े होते हैं किन्तु वज्राभ्रक के पतरे बहुत छोटे होते हैं। अग्नि में डालने पर किसी भी प्रकार का शब्द नहीं करते एवं इसके पतरे बिखरते भी नहीं हैं।

(२२) **चाकमिट्टी शोधन**-खड़िया मिट्टी के चूर्ण को २४ घण्टे जल में भिगोकर कपड़े से छान लें। बार-बार जल मिलाते जाये और छानते जाये। जिससे सब मिट्टी जल में छन जायेगी और कपड़े पर पत्थर का अंश शेष रह जायेगा। जब ४-६ घण्टे बाद मिट्टी नीचे बैठ जाय, तब सम्हालपूर्वक ऊपर से जल निकाल डालें और उसे सुखा लेवें।

(२३) **गेरूशोधन**-सोनागेरू (Kidney Iron ore) को गाय के घृत में भून लेने से शुद्ध होता है। (यो. र.)

जो सुनार के काम में आता है वह सुवर्ण गैरिक (सोना गेरू) ही औषधि कार्य में उपयोग में आता है। अन्य गेरू विशेष लाभदायक नहीं है।

सोनागेरू आवश्यकता पर अकेला ही उपयोग में लिया जाता है। सोनागेरू शीतल, नेत्र के लिये हितकर, कसैला और रक्तपित्तनाशक है। विषविकार, हिचकी, वमन और रक्त की उष्णता को दूर करता है।

मात्रा-२ से ४ रत्ती दिन में ३ बार शहद या दुग्ध के साथ।

(२४) **अग्नि तापी शिलाजीत शोधन** (Black Bitumen) आधा सेर त्रिफला को कूटकर ३२ सेर पानी में औटावें और चौथाई जल रहने पर उतार कर छान लें। इस छने हुए जल में तीन पाव शिलाजीत डाल देवें, और २४ घण्टे भीगने दें। फिर पानी को उबाल ऊपर-ऊपर से शिलाजीत युक्त साफ जल को नितार लें। जल कड़ाही में औटाने से रबड़ी जैसा गाढ़ा हो जाय, तब कड़ाई को चूल्हे पर से नीचे उतार लें। अगर शिलाजीत पत्थरों के साथ रह गई हो तो पुनः उपरोक्त विधि से जल में मिला उबालकर निकाल लें।

हरिद्वार से बदरीनाथपुरी के रास्ते में शुद्ध शिलाजीत बेचने वाले व्यापारियों की सैकड़ों दुकानें देखने में आती हैं। उनमें से २-४ व्यापारी कदाचित् शास्त्रोक्त विधि से कुछ सूर्यतापी शिलाजीत तैयार करते होंगे। शेष सब मन घड़न्त रीति से तैयार की हुई अग्नितापी को ही सूर्यतापी के स्थान में देकर ठगते हैं। कितने ही स्वार्थी लोग शिलाजीत में गोमूत्र मिलाकर उबाल लेते हैं। कोई गोमूत्र में बाँझ वृक्ष का गोंद और गुड़ मिलाकर कृत्रिम शिलाजीत तैयार करते हैं। सूक्ष्म रीति से जाँच कराने पर गुड़ आदि की मिलावट ज्ञात हो जाती है। शास्त्रोक्त विधि से तैयार की हुई शिलाजीत बहुत थोड़ी निर्माणशालाओं में मिलती होगी। ऋषिकेश से बदरीनाथ के रास्ते में बहुत थोड़े दिन धूप में तेजी रहती है। ठण्ड और वर्षा वाले दिन विशेष रहते हैं। इस हेतु से वे सूर्यतापी शिलाजीत बहुत थोड़ी तैयार करा सकते हैं। २-४ बड़े-बड़े व्यापारी यात्रा के दिनों में सूर्यतापी शिलाजीत तैयार कराने के लिये मई और जून में (१-१ ॥ मास मात्र) सूर्य के ताप में यात्रियों की श्रद्धा को दृढ़ कराने के लिये यन्त्र को रखवाते हैं। जो व्यापारी प्रतिवर्ष मनों के हिसाब से शिलाजीत बिक्री करते हैं। वे कदाचित् २-४ सेर भी सूर्यतापी शिलाजीत तैय्यार कर लें तो क्या?

सूर्यतापी शिलाजीत शोधन विधि-पहले शिलाजीत को प्रथम विधि में लिखे अनुसार त्रिफला के १६ गुना गरम जल में मिलाकर २४ घण्टे भिगो देवें। बाद में कड़ाई को चूल्हे पर चढ़ाकर २-३ उफान आने तक उबालें, तत्पश्चात् नीचे उतार लेवें। शीतल होने पर जब जल नितर जाय तब ऊपर से साफ नितरे हुए जल को एक कलई किये हुए भगोने में छानकर भर लेवें उसे सूर्य की धूप में रखने से रोज शाम

को या दूसरे दिन सुबह, ऊपर के भाग में दूध की मलाई के समान शिलाजीत की मलाई आ जाती है। उस मलाई को खुरपे या कलछी से अलग बरतन में निकालकर सुखा लेने से शिलाजीत शुद्ध बन जाती है। शिलाजीत का भगोना, जिसमें रोज मलाई उतारी जाती है उसमें यदि मलाई आती हो और तेज धूप के कारण से जल सूख जाय या कम हो जाय, तो पहले समान जितने त्रिफला के क्वाथ की आवश्यकता हो, उतना मिला लें। जब शिलाजीत जल के ऊपर न आवे, तब शेष कचरे को फेंक दें।

तीसरी विधि–(सूर्यतापी) विशेषत: शिलाजीत शोधनार्थ कुछ चिकित्सक शार्ङ्गधर संहिता के पाठ के अनुसार त्रिफला-क्वाथ के स्थान पर केवल गरम जल ही लेते हैं। शिलाजीत के पत्थरों को जल में एक पहर रख देते हैं। फिर पत्थरों को फेंक देते हैं और जल को छानकर रूई या कपड़े की बत्ती द्वारा दूसरे पात्र में नितार लेते हैं। एक-एक बूंद करके जल टपकता रहता है। उसमें शिलाजीत शुद्ध निकल जाता है और धूल, पत्थर आदि कचरा तलस्थ रह जाता है। फिर नितरे हुए जल को सूर्य के ताप में सुखा लेने पर शिलाजीत शुद्ध हो जाती है। इस तरह तैयार की हुई शिलाजीत त्रिफला-क्वाथ से शोधन की हुई शिलाजीत की अपेक्षा लाभदायक है, क्योंकि त्रिफला से शोधन की हुई शिलाजीत में त्रिफला का अंश मिल जाने से बहुत वजन बढ़ जाता है। परन्तु जल से शुद्ध की हुई शिलाजीत में किसी का भी मिश्रण नहीं रहता।

सूचना–मच्छर, मक्षिका, धूल, वृक्षों के पत्ते आदि गिरने से बचाने के लिये शिलाजीत के पात्र पर पतला वस्त्र बांध देना चाहिये।

शिलाजीत के गुण–शिलाजीत में स्नेह और लवण गुण होने से वातघ्न, सर गुण होने से पित्तघ्न, तीक्ष्ण गुण होने से श्लेष्मघ्न और मेदोघ्न, चरपरी और तीक्ष्ण गुण के हेतु से दीपन, कड़वा रस होने से रक्त विकार नाशक तथा चरपरा, तीक्ष्ण और उष्ण गुण होने से कृमिघ्न है। शिलाजीत स्निग्ध होने से पौष्टिक, बल्य, आयुवर्द्धक, वृष्य, विषनाशक मंगल (रसायन) और अमृत रूप (सत्ववर्धक) गुणों की प्राप्ति कराती है। शुद्ध शिलाजीत स्रोतस, धातु, इन्द्रिय और बुद्धि की शोधक और वर्णकर गुणयुक्त और वृष्य होने से मेध्य भी होती है।

भगवान् आत्रेय के मतानुसार शिलाजीत अनम्ल (खट्टी नहीं है) कसैली तथा विपाक में चरपरी है, अति उष्ण या अति शीतल नहीं है। यह रसायन, वृष्य और सम्पूर्ण रोगों की नाशक है। रोग शमनार्थ आवश्यकतानुसार वातघ्न, पित्तघ्न, कफघ्न, द्विदोषघ्न या त्रिदोषघ्न औषधियों के क्वाथ की भावना देने से परम वीर्योत्कर्ष को पाती है। महर्षि आत्रेय कहते हैं कि–

न सोऽस्ति रोगो भुवि साध्यरूप: शिलाह्वयं यन्न जयेत् प्रसह्य।

अर्थात् संसार में रसादि धातु की विकृति जनित ऐसा एक भी रोग नहीं है, जो शिलाजीत के विधिपूर्वक सेवन से नष्ट न हो सके।*

भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं, कि सब प्रकार की शिलाजीत कड़वी, चरपरी, कुछ कषाय रसयुक्त, सर (वात और मल-प्रवर्त्तक या सर्वत्र पहुँच जाने वाली), विपाक में चरपरी, उष्णवीर्य, कफ और मेद का शोषण करने और मल का छेदन करने वाली है। शिलाजीत के सेवन से प्रमेह, कुष्ठ, अपस्मार, उन्माद, श्लीपद, कृत्रिम विष, शोष (क्षय), शोथ, अर्श, गुल्म, पाण्डु और विषमज्वर आदि रोग थोड़े ही समय में दूर हो जाते हैं। ऐसा कोई रोग नहीं है, जिसे शिलाजीत हनन न कर सके। बहुतकाल से मूत्र में आने वाली शर्करा (ककड़ी) और पथरी का भेदन करके उसे बाहर निकाल देती है।

रसरत्न समुच्चयकार ने लिखा है कि, शुद्ध शिलाजीत के सेवन से ज्वर, पाण्डु, शोथ, मधुमेह, सब प्रकार के प्रमेह, अग्निमान्द्य, मेदवृद्धि, राजयक्ष्मा, अर्श रोग, गुल्म, प्लीहावृद्धि, सब प्रकार के उदररोग, हृदयशूल और सब प्रकार के त्वचा के रोग, ये सब निश्चयपूर्वक जड़मूल से नष्ट हो जाते हैं। अधिक कहां तक कहें, देह को नीरोग और सुदृढ़ बनाने के लिये शिलाजीत सर्वोत्तम रसायन है। अभ्रकादि महारस, गन्धक आदि उपरस, सूतेन्द्र (पारद), माणिक्य आदि रत्न और सुवर्ण आदि धातुओं में जरा, मृत्यु रोग समुदाय को जीतने के गुण हैं, वे सब गुण शिलाजीत में भी होने का निम्न श्लोक में कहा है–

रसोपरस-सूतेन्द्र रत्न-लोहेषु ये गुणा:।
वसन्ति ते शिलाधातौ जरा-मृत्यु-जिगीषया॥

सब प्रकार के जीर्ण दु:खदायी रोग, मेदोवृद्धि और मधुमेह के लिये शिलाजीत को अति हितकर माना है। इनके अतिरिक्त चोट लगने पर शिलाजीत का लेप भी किया जाता है। शिलाजीत के सेवन से अकाल मृत्यु का भय दूर होता है और आयु की वृद्धि होती है। यह बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सगर्भा, प्रसूता सबके लिये लाभदायक है।

आधुनिक विज्ञान के विचार से शिलाजतु पेराफीन जातीय द्रव्य है जिससे पेट्रोल भी निकलता है। अभ्रकादि खनिज विज्ञान देखें।

---

* रोग २ प्रकार के होते हैं–रस रक्त आदि धातुओं में विकृति होकर पैदा होने वाले यकृत वृक्क आदि यन्त्रों के भीतर स्थित उपाङ्गों की रचना दूषित होकर उत्पन्न होने वाले आहार-विहार की नियमितता का भङ्ग, उनमें प्रतिकूलता, दूषित वायु मण्डल वाले स्थानों के निवास या जनपद ध्वंसक वायुमण्डल बन जाने से उत्पन्न रोगों की जीर्णावस्था व चिरकारी अवस्था (Chronic stage) वाले रोगों पर शिलाजीत सफलतापूर्वक कार्य करता है।

शस्त्र आदि की नोक से या अश्मरी आदि में किये गये अस्त्राघात से, तीव्रमारक विष प्रयोग से यन्त्रस्थ सूक्ष्मनाड़ियाँ अथवा अवयवों के भेद और शराब, गांजा आदि के अत्यधिक परिमाण में सेवन या जीर्ण व्यसन से ओज (Cerabro-spival fluid) की रचना विकृति हो जाने पर उत्पन्न रोगों पर शिलाजीत, पारद, स्वर्ण आदि के उपचार से रोग का दमन होता है किन्तु शमन नहीं होता।

विविध भावना–शिलाजीत को जिन द्रव्यों की भावनायें दी जायें, उनके अनुसार गुण की वृद्धि होती है, अतः शास्त्र में औषधियों के क्वाथ या स्वरस की भावना देने का निम्नानुसार विधान किया है–

वातरोग शमनार्थ–रास्ना, दशमूल, खरैटी, पुनर्नवा, एरण्ड, सौंठ और मुलहठी आदि औषधियों के क्वाथ की भावना दें।

पित्तरोग शमनार्थ–मुनक्का, शतावरी या मल्लिका पुष्प, परवल, त्रायमाणा, गिलोय और जीवनीयगण की औषधियों की भावना दें।

कफरोग नाशार्थ–त्रिफला, बच, बायबिडंग, करंज, नागरमोथा और बृहत् पंचमूल आदि औषधियों की भावना दें।

वातपित्त शमनार्थ–लघुपंचमूल, सोंठ, द्राक्षा, गम्भारी और अश्वगन्धाकी भावना देनी चाहिये। इस तरह गिलोय और खरैटी के स्वरस की भावना दी जाती है।

वातकफ शमनार्थ–नागरमोथा, कूठ, बच, त्रिफला, देवदारू, बायविडंग, पंचकोल, हल्दी, कालीमिर्च और अतीस की भावना दें।

पित्तकफ शमनार्थ–पाठा, परवल, निम्ब, त्रिफला, नागरमोथा, कूठ, सप्तपर्ण, त्रायमाण, गिलोय, अतीस आदि औषधियों की भावना दें।

इस तरह भिन्न-भिन्न रोग शमनार्थ रोगनाशक औषधियों की भावना दी जाती है या रोगनाशक अनुपान के साथ शिलाजीत सेवन करायी जाती है।

मात्रा १ रत्ती से १ माशा तक, दिन में १ अथवा २ बार, रोगानुसार अनुपान के साथ देवें। मेदोवृद्धि, शोथ, मधुमेह, क्षय, अश्मरी, मूत्राघात आदि जीर्ण रोगों में मात्रा १ माशा तक शनैः शनैः प्रकृति और अग्निबल का विचार करके बढ़ानी चाहिये।

अनुपान–

१-**ज्वर शमनार्थ**–नागरमोथा और पित्तपापड़े का क्वाथ।

२-**शोष रोग में**–मयूर मांस का रस।

३-**रक्तपित्त पर**–मुलहठी का क्वाथ।

४-**कार्श्य रोग में**–दुग्ध।

५-**मेदोवृद्धि पर**–जल मिश्रित शहद।

६-**बुद्धिवृद्धि के लिये**–गो दुग्ध।

७-**असाध्य शोथ में**–गोमूत्र।

८-**पाण्डुसह उदर-रोग पर**–भैंस का मूत्र।

९-**अश्मरी पर**–वीरतर्वादिगण का क्वाथ।

१०-**कुष्ठपर**–खदिर क्वाथ।

११-**विषहरणार्थ**–सोंठ, मिर्च, पीपल और स्वर्णमाक्षिक भस्म।

१२-**धातुक्षीणता में**–केशर और मिश्री मिला दूध।

१३-**पांडुरोग पर**–लोहभस्म और त्रिफला।

१४-**मूत्र रोग में**–छोटी इलायची और पीपल का चूर्ण।

१५-**मूत्राघात**–वीरतर्वादिगण का क्वाथ।

१६-**मधुमेह पर**–शिलाजीत को सालसारादिगण के क्वाथ की ७ भावनायें देवें। फिर इसे अग्नि बल के अनुसार सालसारादिगण के क्वाथ के साथ या गोमूत्र के साथ देवें।

१७-**प्रमेह पर**–शिलाजीत और बंगभस्म समभाग मिला दूध के साथ सेवन करावें।

१८-**शुक्रमेह पर**–(अ) शिलाजीत २ तोले, बंगभस्म २ तोले, लोहभस्म १ तोला और अभ्रक भस्म ६ माशे मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। एक-एक गोली प्रातः सायं दूध या प्रकृति के अनुकूल अनुपान के साथ देते रहने से शुक्रमेह और स्वप्न दोष दूर होते हैं।

(आ) शिलाजीत २॥ तोले, लोहभस्म १ तोला, केशर ६ माशे, कस्तूरी ३ माशे और अम्बर ३ माशे मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। सुबह शाम दूध या चन्दन के शर्बत के साथ सेवन करने से शुक्रमेह और स्वप्न दोष दूर होते हैं तथा पाचनशक्ति, स्फूर्ति और स्मरणशक्ति की वृद्धि होती है।

१९-**बहुमूत्रपर**-शिलाजीत, बंगभस्म, छोटी इलायची के दाने और वंशलोचन, इन चार को समभाग मिलाकर शहद के साथ खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। प्रातः सायं २-२ गोली धारोष्ण दूध या शीतल मिर्च और बड़े गोखरू के क्वाथ के साथ सेवन कराने से* बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, शर्करा, प्रमेह और धातुविकार दूर होकर, रोगी पुष्ट और तेजस्वी बन जाता हैं।

२०-**मूत्रजठरपर**-शुद्ध शिलाजीत, मिश्री और कपूर के साथ देने से मूत्राघात (मूत्र जठर और मूत्रातीत) रोग दूर होता है।

२१-**क्षयपर**-(अ) त्रिफला, गिलोय, दशमूल, स्थिरादि कषाय (वयः स्थापन कषाय) और काकोल्यादिगण के क्वाथों की भावना वाली शिलाजीत २ से ४ रत्ती बकरी के दूध में दिन में दो बार दें।

(आ) शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक भस्म, लोहभस्म, त्रिकटु और शहद को मिलाकर चटायें। ऊपर से बकरी का दूध पिलावें।

२२-**त्रिदोषज शोथपर**-शिलाजीत आधा से १ माशा तक त्रिफला क्वाथ के साथ देवें।

२३-**कुम्भकामलापर**-गोमूत्र के साथ सेवन करावें।

२४-**उरुस्तंभपर**-शिलाजीत को गूगल, पीपल और सोंठ के साथ मिला दशमूल क्वाथ या गोमूत्र के साथ सेवन करावें।

२५-**आयुवृद्धि के लिए**-मिश्री मिले हुए गोदुग्ध के साथ एक वर्ष या अधिक समय तक सेवन करावें। १ रत्ती से आरम्भ करके शनैः शनैः मात्रा १ माशे तक बढ़ावें।

२६-**रक्त दबाव वृद्धि पर**-रक्तदबाव अति बढ़ जाने पर शिलाजीत का उपयोग होता है। २-२ रत्ती शिलाजीत को काली सारिवा ६ माशे और मुलहठी १ तोले के क्वाथ के साथ दिन में २ बार देवें तथा रात्रि को स्वादिष्ट विरेचन या पंचसकार अथवा अन्य सामान्य रेचक-चूर्ण ४-६ माशे जल के साथ देते रहने से रक्त दबाव एक सप्ताह में कम हो जाता है।

२७-**अर्दितपर**-शुद्ध शिलाजीत १-१ रत्ती और सारिवा २-२ रत्ती मिला, सुबह और दोपहर को देवें और कब्ज को दूर कराने के लिए रात्रि को सैंधानमक मिली हुई हरड़ का चूर्ण २ माशे देते रहें। लग-भग १ मास देने पर अर्दित वात दूर होता है।

२८-**शिरदर्द पर**-बृहदन्त्र, कमर, नितम्ब आदि के वात प्रकोप से ज्वर सहित शिरदर्द उत्पन्न हो जाता हो और उसका बार-बार दौरा होता हो, तो शिलाजीत १/२ रत्ती, अमृतासत्व १ रत्ती, मजीठ २ रत्ती मिलाकर, दिन में ४ बार आम के मुरब्बे के साथ देते रहें।

अपथ्य-शिलाजीत के सेवनकाल में स्त्री प्रसंग, लालमिर्च, विदाही तथा भारी भोजन, तैल, खटाई, गुड़, कुलथी, मलावरोध करने वाले पदार्थ, अधिक नमक, सूर्य के ताप का अधिक सेवन, रात्रि में जागरण, दिन में शयन, मल-मूत्रादि के वेग को रोकना, मांस, मछली, शराब, व्यायाम, तेज वायु का सेवन मानसिक संताप और प्रकृति के प्रतिकुल या रोग में हानिकर पदार्थों का सेवन न करें। इसमें कुलथी, मकोय और कपोत के मांस का सेवन सदा के लिये त्याग देना चाहिये।

सूचना-जिनके नेत्रों में लाली और उष्णता रहती हो, ऐसे पित्तप्रधान प्रकृति वाले को शिलाजीत सेवन नहीं करानी चाहिए।

(२४)**खर्पर (खपरिया) शोधन**-खपरिया, कारबेल्लक अथवा दर्दुर (दूसरे प्रकार का खपरिया) का ७ दिन तक दोलायंत्र से गौमूत्र में उबाल लेने और केलेमेना प्रिपेटा (Calamina Praparata)-तीसरे प्रकार का खपरिया) को गोमूत्र में ६-६ घण्टे तक खरलकर ७ दिन तक धूप में सुखा लेने से शुद्ध होता है। केलेमेना प्रिपेटा लघुमालिनीवसन्त में अच्छा काम देता है। नेत्र रोग में उपयोगी हैया नहीं, यह अनिश्चित है।

अनेक वर्षों पर्यन्त वैद्य समाज में खर्पर के स्थान पर मतभेद रहा है। सुवर्णमालिनी वसन्त में संदिग्धता के हेतु से खर्पर के स्थान में जसदभस्म का उपयोग होता था। कराची वैद्य सम्मेलन के समय पर अध्यक्ष कविराज प्रतापसिंह जी ने, कारवेल्लक को सच्चा खर्पर सिद्ध किया। तब से कारवेल्लक का विशेष उपयोग हो रहा है। सुवर्णमालिनी वसन्त और नेत्ररोग की औषधि में जहां खर्पर आता है, वहाँ कारवेल्लक का उपयोग निभर्यतापूर्वक हो सकता है। फिर भी कारवेल्लक को सच्चा खर्पर मानने में सन्देह है। कारण, रसरत्नसमुच्चयकार लिखते हैं-

रसश्च रसकश्चोभौ येनाग्निसहनौ कृतौ।
देहलोहमयी सिद्धिर्दासी तस्य न संशय॥

जो रस (पारद) और रसक (खर्पर), इन दोनों को अग्नि में स्थिर कर सकता है, उसके पास देहसिद्धि (अजरामरत्व) और स्वर्ण बनाने की सिद्धि निःसन्देह दासी बनकर रहती है। इस वचन में कहा हुआ अग्नि से उड़ जाना यह गुण वर्तमान में प्रचलित, कारवेल्लक और अन्य खर्पर में नहीं है। श्री कविराज प्रतापसिंह जी आदि विद्वानों की मान्यता है कि, जसद खर्पर में से निकलता है।

(२५) **गोदन्ती शोधन**-गोदन्ती को दोलायंत्र से नींबू, भांगरा या द्रोण पुष्पी के रस में ३ घण्टे तक उबाल लेने से शुद्ध होती है।

---

* थोड़ा-थोड़ा मूत्र दिन में कई बार उतरते रहना और एक साथ अत्यधिक परिणाम से मूत्र त्याग होना। इनमें थोड़े-थोड़े मूत्र त्याग होने पर यह प्रयोग कार्यकारी होता है।

(२६) **मृद्दारश्रृङ्ग शोधन**–बिजौरा और अदरक के रस की ३-३ भावनायें देने से मुर्दासंग शुद्ध होता है।

मुर्दासंग शीशे की उपधातु है। कफ, उपदंश और गुह्येन्द्रिय के रोगों को दूर करती है। छोटे बच्चे को मिट्टी खाने से उपद्रव हुआ हो, उसे मुर्दासंग का जुलाब देने से विरेचन होकर मिट्टी निकल जाती है। मुर्दासंग सेवन से सफेद बाल काले हो जाते हैं। पारद बन्धन में इसका उपयोग होता हैतथा घाव सुखाने के लिये मलहम में भी मिलाया जाता है। इसकी दूसरे प्रकार की शोधनविधि प्रदारान्तक रस की टिप्पणी में दी गई है।

(२७) **काशीश शोधन**–काशीश को भांगरे के रस में ३ घण्टे तक खरल करके धूप में सुखाने से शुद्ध होती है। (र.र.स.)

काशीश की श्वेत और नीली दो जाति है। इनमें से भस्म बनाने के लिये नीली काशीश विशेष लाभदायक है। किन्तु विलायती सल्फेट ऑफ आयरन (Sulphate of Iron) की भस्म बनाई जाये, तो वह सत्वर गुण दिखाती है। हम उसी को उपयोग में लेते हैं।

(२८) **वज्र** (Diamond) **शोधन-हीरा**–कटेली के कन्द में बन्द कर कुलथी और कोदों के धान्य के क्वाथ में ३ दिन तक दोलायन्त्र विधि से उबाल लेने से शुद्ध होता है। (आ.प्र.)

(२९) **माणिक्य** (Ruby) **शोधन**–नींबू के रस में २४ घण्टे तक दोलायंत्र में उबाल लेने से शुद्ध होता है। (र.र.स.)

(३०) **गोमेदमणि** (Agate) **शोधन**–गोमेदमणि को जयन्ती के रस में ३ घण्टेतक दोलायन्त्र से उबाले। पश्चात् तपा-तपाकर आंवले के स्वरस में २१ बार बुझाने से शुद्ध हो जाती है। (शा.सं.)

(३१) **पन्ना** (Emarald) **शोधन**–पन्ना को कुलथी अथवा कोदों (कोद्रव धान्य) के क्वाथ में दोलायन्त्र से १२ घण्टे तक उबाल लेने से शुद्ध होता है। (र.र.स.)

(३२) **वैडूर्य** (Cat's eye) **शोधन**–लहसुनिया-त्रिफला के क्वाथ में २४ घण्टे तक दोलायन्त्र से उबाल लेने से शुद्ध होता है।

(३३) **पुखराज** (Topaz) **शोधन**–कुलथी का क्वाथ और कांजी समभाग मिलाकर उसके साथ पुखराज को दोलायन्त्र में ३ अहोरात्र उबालने से शुद्धि होती है। (र.र.स.)

(३४) **नीलम** (Sapphire) **शोधन**–नीलम-नील के क्वाथ में ३ दिन तक दोलायन्त्र में उबालने से शुद्ध होता है। (र.र.स.)

(३५) **राजावर्त** (Lapis Lazuli) **शोधन**–गोमूत्र, नींबू का रस, जवाखार और पापड़खार मिलाकर दोलायन्त्र से ६ घण्टे तक उबालने से राजावर्त की शुद्धि होती है।

राजावर्त में २ प्रकार हैं–एक जाति में सुवर्ण समान छींटे और दूसरी जाति पर रौप्य समान छींटे रहते हैं। सुवर्ण समान वाला उत्तम है।

(३६) **वैक्रान्त** (Tourmaline) **शोधन**–हीरा शोधन विधि के अनुसार कुलथी के क्वाथ में दौलायन्त्र से शोधन करना चाहिये। फिर वैकान्त को तपा-तपाकर २१ बार घोड़े के मूत्र में बुझाने से शुद्ध होता है। वैक्रांत श्वेत, रक्त पीत आदि भेद से आठ प्रकार के होते हैं। विशेषत: यह सिलोन से आते हैं। उनमें से रसरत्नसमुच्चयकार और अन्य ग्रन्थकारों ने काले रंगवाले को उत्तम माना है, आयुर्वेद प्रकाश में भी षट्कोण या अष्टकोण और काले रंग वाले को श्रेष्ठ दर्शाया है, और उसके नीचे लिखे श्लोक के दोष वाले हीरे को (तोरमल्लीको) ही वैक्रांत कहा है–

"विकृता वज्रखण्डा ये वैक्रांताख्यां भजन्ति ते।
जातय: शोधनं हिंसा गुणास्तेषां तु वज्रवत्॥" आ.प्र. पेज ४७८ संस्करण १९८९

अन्य ग्रन्थकार ने कृष्ण को अति श्रेष्ठ, पीत को सुवर्णादि करण में तथा श्वेत को रौप्यादि करण में उपयोगी माना है, रक्त को सर्वार्थ सिद्धिप्रद तथा अन्य जातियों को निष्फल दर्शाया है।

ज्योतिष शास्त्र ने रत्नों को धारण करने मात्र से ग्रहों की कुदृष्टि से उत्पन्न विविध रोगों का निवारण माना है एवं आयुर्वेद ने रत्नों की पिष्टी और भस्म के सेवन का उल्लेख किया है। ज्योतिष शास्त्र में भिन्न-भिन्न ग्रहों के लिये निम्नानुसार रत्नों की योजना की है।

माणिक्य मुक्ताफल विद्रुमाणि तार्क्ष्य च पुष्पं भिदुरं च नीलम्।
गोमेदकं चाथ विदूरकं च क्रमेण रत्नानि नवग्रहाणाम्॥ (र.र.स.)

ग्रह	रत्न	रंग
सूर्य	माणिक्य (Ruby)	रक्त, उज्वल, पारदर्शक या गुलाबी बैंजनी आभा।

चन्द्र	मोती (Pearl)	श्वेत, पीली, नीली प्रभा।
मंगल	प्रवाल (Coral)	मंदलाल, सादा, अपारदर्शक।
बुद्ध	पन्ना (Emerald)	गहरा हरा पारदर्शक।
गुरु	पुखराज (Topaz)	सफेद, पीला तेजस्वी।
शुक्र	हीरा (Diamond)	सफेद तेजस्वी।
शनि	नीलम (Sapphire)	गहरा नीला।
राहु	गोमेद (Agate)	गोमूत्र सदृश।
केतु	बैडूर्य (Cat'eye) (लहसुनिया)	बिल्ली और बाघ की आँखों जैसा।
राहुकेतु	राजावर्त (Lapis lazuli)	नीला-लाल। सुनहरी अथवासफेदछींटे।

आचार्यों ने जाति और स्वभाव विशिष्ट हीरे का सामर्थ्य भिन्न-भिन्न दर्शाया है। हीरे में स्त्री, पुरुष और नपुंसक जाति हैं। उत्तम जाति का हीरा क्षयरोग नाशक, जरानाशक, रसायन और आयुवर्द्धक माना है। वह औषधि रूप से अधिक व्यवहृत होता है।

हीरों की खान में उत्पन्न विकारयुक्त हीरों के टुकड़े ही वैक्रान्त कहलाते हैं। यथार्थ में वे कनिष्ट हीरे होने से उनके शोधन, मारण और गुण हीरे के समान ही हैं। इस वैक्रान्त को तोरमल्ली तुरमरी भी कहते हैं। तुरमरी शब्द तुर्मेलीन (Tuourmaline) शब्द का अपभ्रंश है।

वर्तमान में अनेक चिकित्सकों ने अभ्रक की खान में से निकलने वाले एक जाति के पत्थरों को वैक्रांत माना है। अन्य स्फटिक को वैक्रान्त कहते हैं।

(३७) **मौक्तिक शोधन**-जयन्ती के रस में ३ घन्टे तक दोलायन्त्र से मोती उबाल लेने से शुद्ध होते हैं। (शा.सं.)

वर्तमान में जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि देशों से बनावटी मोती बहुत आते हैं वे औषधि के काम के नहीं है। बसरा से आने वाले मोती अच्छे हैं। औषधि में प्रायः अनबिंधे मोती और बड़े मोती के चूरे का उपयोग होता है। बिंधने के समय जो चूर्ण जल में गिरता है। यह चूरा काम देता है।

बाजार में मोती के जो छिलके मिलते हैं वे शुक्ति के तेजस्वी अंश में से निकाले हुए हैं। उन्हें खरीद करना हो तो शुक्ति के तेजस्वी अंश की पिष्ठी बना लेना ही अच्छा है। जिससे धन की व्यर्थ हानि न हो।

धन्वन्तरि निघण्टु, राजनिघण्टु, भाव प्रकाश और चक्रपाणिदत्त के मत में जयन्ती जाती को कहते हैं अमरकोषकार ने अरणी को जयन्ती कहा है। इन दोनों में से विषनाशक गुण जाती (चमेली) में अधिक है। अतः मौक्तिक शोधन में अरणी की अपेक्षा जाती विशेष हितकर जानी जायेगी।

दूसरी विधि-पके ताजे नींबू रस में ४ गुना जल मिला, उसमें १२ घन्टे मोती को भिगोकर धो लेने से शुद्ध हो जाते हैं। नींबू के जल में से मोती को सम्भालकर निकालें। कारण मोती में से कुछ चूर्ण होकर नींबू के रस में मिल जाता है। (औ.गु.ध.शा.)

तीसरी विधि-तपा-तपाकर सात-सात बार श्रीकुँवार के रस, चन्दलोई के रस और स्तन्य (स्त्री दूध) में बुझाने से मोती की शुद्धि होती है यदि इस तरह शुद्धि करनी हो, तो तपाने के समय बरतन पर ढक्कन ढक देवें। अन्यथा मोती उछलकर पात्र से बाहर निकल जाते हैं। किसी-किसी समय तो अग्नि में भी गिर जाते हैं। इसलिये बहुत सम्हालकर शोधन करना चाहिये। (शा.स.)

(३८) **शंख और शुक्ति शोधन**-शंख और सीप को मठ्ठे में ३ दिन तक भिगोवें। पात्र को दिन में १२ घण्टे धूप में तथा रात को १२ घण्टे खुला रखना चाहिये। मठ्ठे को रोज बदल देवें। ३ दिन बाद उसे मठ्ठे में से निकाल, जल से धो लेने पर शंख और शुक्ति की शुद्धि होती है।

शंख समुद्र में से निकले हुए बड़े सफेद रंग के, मजबूत देखकर उपयोग में लेवें। मैले रंग के जल्दी टूटने वाले और नदी के छोटे शंखों को उपयोग में न लें।

मोती जिसमें से निकाल लिये हों, ऐसी बड़ी सीपों को उपयोग में लेना चाहिए। शोधन करने के समय सीप के पीछे जो काला भाग होता है, उसे चाकू से दूर करें। केवल सफेद तेजस्वी भाग को ही लें। नदी में उत्पन्न होने वाली छोटी-छोटी सीपों में गुण बहुत कम होता है। अतः उनको न लें।

शुक्ति को गरम कर लेने से उसके पीछे का काला भाग आसानी से अलग किया जा सकता है।

(३९) **प्रवाल (Coral) शोधन**–जयन्ती के रस में दोलायंत्र से ३ घण्टे तक स्वेदन करें। फिर गरम जल से धो लेने से प्रवाल की शुद्धि होती है। (ग्रा.सं.)

अथवा प्रवाल को मठ्ठा, जो अधिक खट्टा न हो, उसमें ३ घण्टे भिगोकर गरम जल से धो लेने पर भी शुद्धि की जाती है। श्वेत वर्णयुक्त और निस्तेज प्रवाल की शाखाओं को निकाल डालें।

(४०) **वराटिका शोधन**–कौड़ियों को मठ्ठा, चूने का पानी अथवा नींबू के रस में भिगो दें। जब कौड़ियों का रंग श्वेत हो जाय, तब निकालकर धो लें। लगभग ७-८ दिन तक भिगोना पड़ता है।

औषध कार्य में पीली कौड़ी का ही उपयोग होता है। वजन की दृष्टि से डेढ़ तोले वजन वाली उत्तम, १ तोले वजन की मध्यम और ३ माशे वजन की कौड़िया कनिष्ठ मानी गई हैं।

(४१) **अकीक (Agate) शोधन**–अकीक को तपा-तपाकर गुलाबजल या अर्क वेदमुश्क अथवा दूध में २१ बार बुझाने से शुद्धि होती है।

(४२) **जहरमोहरा (Serpentine) शोधन**–जहरमोहरा को तपा-तपा कर २१ बार गोदुग्ध या आंवलों के रस में बुझाने से शुद्धि होती है।

(४३) **पिरोजा (Turquoise) शोधन**–पिरोजा को अग्नि में तपा-तपा कर गाय या बकरी के दूध में ३ बार बुझाने से शुद्ध होता है।

(४४) **संगेयसव शोधन**–संगयेसव को तपा-तपाकर २१ बार अर्क गाउजवां या गुलाबजल में बुझाने से शुद्ध होता है।

(४५) **संगेयहूद (हजरुलयहूद) शोधन**–संगेयहूद को तपा-तपाकर ७ बार कुलथी के क्वाथ में बुझाने से शुद्ध होता है।

(४६) **उपपन्ना शोधन**–पन्ना की खान में से निकलने वाले तेजस्वी, नीले रंग के पत्थरों को तपा-तपाकर कुलथी के क्वाथ, गुलाबजल और केवड़े के अर्क में ७-७ बार बुझाने से उनकी शुद्धि होती है।

(४७) **बारहसिंगा शोधन**–बारहसिंगे के छोटे-छोटे टुकड़े कर मठ्ठे में डालें। फिर धूप लगती रहे, ऐसे स्थान पर ३ दिन तक बरतन को रखें। पश्चात् जल से धोकर तेज धूप मे सुखा लेने से इसकी शुद्धि होती है।

(४५) **फिटकरी और सोहागा शोधन**–इनको लोहे की कड़ाही में डाल कर फूला बना लेने से शुद्धि होती है।

(४९) **जयपाल शोधन**–जमालगोटे के बीजों को २४ घण्टे जल में भिगो दें। फिर ऊपर के छिलके उतार कर गिरी निकाल लें। जयपाल वाला हाथ नेत्रों को न लग जाय, यह सम्हालें। कदाचित् भूल से हाथ लग भी जाय तो घी लगा लें। पश्चात् गिरी को १६ गुने दूध में दौलायन्त्र से उबालकर जल से धो लेवें और बीच में से जीभी निकालकर सूर्य के ताप में सुखा लेने से जयपाल शुद्ध होता है।

सूचना–जयपाल के विरेचन और वमन-धर्म उसमें अवस्थित तैल के हेतु से प्रकाशित होते हैं। यदि तैल अत्यधिक कम कर दिया जायेगा तो वह जयपाल मिश्रित औषधि योग्य मात्रा में इच्छित कार्य नहीं कर सकेगी।

(५०) **बच्छनाभ शोधन**–सफेद या काले बच्छनाभ के छोटे-छोटे टुकड़े कर ४ गुने बकरी के दूध में ३ घण्टे उबाल, धोकर छाया में सुखा लेने से शुद्ध होता है। (यो.र.)

बाजार में गोमूत्र की गंधवाला काले रंग का बच्छनाभ आता है। वह श्वेत रंग के बच्छनाभ को गोमूत्र में उबालकर बनाया हुआ है। बच्छनाभ गोमूत्र में एक समय उबल जाने के हेतु से प्रायः शुद्ध है। फिर भी अधिक शोधन करना हो, तो उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर गोमूत्र में एक दिन भिगोकर धो लेवें। गोमूत्र में उबालने के समय बच्छनाभ मे सुई डालकर परीक्षा करें। यदि सुई पार निकल जाय, तो शुद्ध समझें। कसर हो तो आधे घण्टे तक और अग्नि देनी चाहिये।

(५१) **धत्तूर शोधन**–काले धतूरे के पक्के बीजों को गोमूत्र में १२ घण्टे भिगोकर सुखा दें। फिर लकड़ी के डण्डे से कूट या शिलापर पीस, फटककर छिलकों को दूर करने से बीजों की शुद्धि होती है। (यो. र.)

काले धतूरे के पक्के बीज विशेष लाभदायक हैं। काले के अभाव में श्वेत धतूरे के बीज लेवें।

(५२) **कुचिला शोधन**–कुचिले को ७ दिन तक गौमूत्र में भिगोवें। प्रतिदिन गोमूत्र बदलते रहें। फिर छिलका नरम होने पर या कुचिला में सुई लगाने पर निकल जाय, तब छिलकों को उतार देवें और भीतर से जीभी को भी निकाल डालें। पश्चात् कुचिला को १६ गुने दुग्ध में दोलायन्त्र में उबालें। दुग्ध, रबड़ी जैसा हो जाने पर उतारकर धो लेवें अथवा समभाग घृत में भून लेने से भी कुचिला शुद्ध हो जाता है।

यदि ७ दिन भिगोने पर भी छिलके नरम न हों, तो २-३ रोज ज्यादा भिगोवें। किन्तु छिलके नरम होने पर अधिक दिन गोमूत्र में न रखें। अन्यथा गुण कम हो जाता है।

कुचिला शोधन करने पर शेष रहे दुग्ध का मावा बनाकर अफीम छुड़ाने के लिये हमने उपयोग में लिया है। मात्रा अफीम के बराबर देते हैं अथवा कुचिले का शेष घृत अफीम के आधे परिणाम में देते हैं। इन दोनों प्रयोगों से अफीम का व्यसन ५-७ दिन में ही छूट जाता है।

दूसरी विधि-१ सेर कुचिला को कड़ाही में डाल २॥ से पांच तोले तक एरण्ड तैल मिला, मसलकर मन्दाग्नि से भूनते हैं। बार-बार खुरपे से चलाते रहते हैं। कुचिले फूल जाय, तब कड़ाही को उतार लें। कदाचित् एकाध कुचिला उछलकर बाहर निकल जाता है। इस हेतु से सम्हालपूर्वक भूनें। कुचिले को बाहर पत्थर पर रख मुठ्ठी से तोड़ने पर टूट जाता है, तब पक्का माना जाता है। इस कुचिले का उपयोग शुद्ध कुचिले के स्थान पर किया जाता है। छिल्के और जिह्वा न निकालने पर भी बाधा नहीं पहुँचती। कदाचित् कोई कुचिला कच्चा रह गया हो, तो उसे निकाल डालना चाहिये।

कोई-कोई वैद्य बिना शोधन किये और बिना जीभी निकाले बढ़ई से यन्त्र द्वारा कागज जैसे टुकड़े करा, कूटकर उपयोग में लेते हैं। किंतु ऐसे अशुद्ध कुचिले को प्रयोग में लाना, यह शास्त्र मर्यादा के विरुद्ध है।

(५३) **रसाञ्जन शोधन**-बाजार से ली हुई रसोंत को कूटकर जल में २४ घण्टे भिगो देवें, फिर अच्छी तरह मसलकर कपड़े से छान लेवें और जल मिलाने की जरूरत पड़े तो और जल मिला लेवें। छाने हुए जल को सम्हाल कर ऊपर से एक कड़ाही में निकाल लेवें। नीचे की मिट्टी को रसोंत के साथ न आने दें। फिर जल को उबालकर गाढ़ा करें। ऊपर के भाग में रसोंत न लग जाय उसे बार-बार खोलते रहें, नीचे भी न लग जाय इस प्रकार सम्हाल पूर्वक चलाते रहें। अग्नि मन्द देवें। जब रसोंत अवलेह के समान हो जाय या जलने लगे तब कड़ाही को नीचे उतारकर सूर्य के ताप में सूखा लेने की अपेक्षा 'औषधिकृत' में लिखे अनुसार तैयार कर लेना विशेष हितकर है।

(५४) **गुग्गुलु शोधन विधि**- एक पाव त्रिफला और आध पाव गिलोय को जौकूटकर ३-४ सेर पानी में रात को भिगो देवें। सुबह काढ़ा करके आधा पानी रह जाय; जब उतारकर छान लेवें। फिर छने हुए काढ़े को कड़ाही में डालकर चूल्हे पर चढ़ाकर मन्द-मन्द अग्नि दें। कड़ाही के दोनों कुन्दों में एक लम्बी लकड़ी आड़ी पिरो देवें। पश्चात् एक साफ कपड़े में एक पाव भैंसा गूगल बांध, पोटली-सी बना, उसी लकड़ी में बांध कर, कड़ाही में लटका देवें। पोटली का मुँह खुला रक्खें और उसी कड़ाही में से कलछी से काढ़ा भर-भर कर गूगल थैली में डालते रहें। साथ-साथ गूगल को चलाते भी रहें। दस बारह-बार काढ़ा डालने पर सारा गूगल कड़ाही में छन जायेगा। जब कपड़ा खाली हो जाय, तब कपड़े को निकाल लेवें। उसमें गूगल का मैल रहे, उसे फैंक देवें, कड़ाही में जो गूगल मिला काढ़ा है, उसे धीरे-धीरे धार बांधकर निकाल लेने से पैंदे में मैल रह जायेगा। उसे भी दूर करें। केवल नितारे हुए काढ़े को मन्दी आँच पर पकावें। गाढ़ा हो जाय, तब उतार लेवें, शीतल होने पर हाथों में घी लगा गूगल की गोलियाँ बनाकर सुखा लेवें और कड़ाही को गोबर से साफकर लेवें।

टिप्पणी-कितने ही चिकित्सक गूगल का शोधन गिलोय और दशमूलक्वाथ के साथ करते हैं। आम शोधक कार्य गूगल से लेना हो, तब त्रिफला विशेष हितावह माना जायेगा। आम संचय अधिक न हो ऐसे वात रोगियों के लिए गिलोय और दशमूल क्वाथ लाभदायक रहेगा।

(५५) **भांग शोधन**-भांग की पत्ती को जल में उबाल, निचोड़कर, सुखा लेवें फिर कड़ाही में डालकर सेक लेने से शुद्ध होती है।

(५६) **लाङ्गली शोधन**-कलिहारी के छोटे-छोटे टुकड़ों को २४ घण्टे गोमूत्र में भिगो, छाया में सुखा लेने से शुद्ध होती हैं।

(र.चं.)

(५७) **कनेर मूल का शोधन**-कनेर की जड़ के छोटे-छोटे टुकड़े कर पोटली में बाँधकर २ घण्टे तक गोदुग्ध में दौलायन्त्र से उबाल लेने से शुद्ध होती हैं। (र.च.)

(५८) **गुञ्जा शोधन**-सफेद चिरमिटी को दौलायन्त्र में रख काँजी में १ प्रहर उबाल लेने से शुद्ध होती है।

(५९) **भल्लातक शोधन**-पक्के भिलावे जो पानी में डालने से डूब जायें वे ईंट के चूर्ण से घिसने से शुद्ध होते हैं। जब भिलावें का क्वाथ करके पाक आदि में उपयोग करना हो, तब इस तरह शुद्ध कर लें।

दूसरी विधि-भिलावों को एक कपड़े की पोटली में बांधकर भैंस के गोबर में चौगुना जल मिलाकर दौलायन्त्र में मन्दाग्नि से १२ घण्टे तक उबालें। पश्चात् ४-४ प्रहर गोमूत्र और गोदुग्ध में उबालें। बाद में भिलावों को गरम जल से धोकर सबके ऊपर से टोपी को संभालकर दूर करें। फिर भिलावों को नारियल के जल में १२ घण्टे उबाल लेने से भिलावें चूर्ण में मिलाने लायक शुद्ध हो जाते हैं।

टिप्पणी-हम सिर्फ गोमूत्र में उबालकर शोधन करते हैं।

(६०) **अहिफेन शोधन**–अफीम को पानी में धोकर कपड़े की दो तहों में छान लेने से वह पानी में चली जाती है। फिर आग पर औटाकर पानी को गाढ़ाकर लेने से अफीम शुद्ध होती है। ४ तोले अफीम का शोधन करने पर २ तोले रह जाती है। इस तरह की शुद्ध की हुई अफीम को नेत्ररोग की औषधि में मिलानी चाहिये।

नेत्रों की औषधि में अफीम ५-१० वर्ष की पुरानी विशेष हितकर है और नशे के लिये नवीन अफीम अच्छी होती है।

दूसरी विधि–अफीम को अदरक के रस की २१ भावनायें देने से खाने की औषधि में मिलाने योग्य शुद्ध होती है। (यो. र.)

(६१) **लहशुन शोधन**–लहशुन छिलकों को निकाल, कुचलकर ३ दिन छाछ में भिगोवें। रोज छाछ बदल देवें। पश्चात् साफ जल से धोकर छाया में सुखा लेने से लहशुन दुर्गन्ध रहित शुद्ध होता है।

(६२) **एरण्डबीज का शोधन**–अरंड के फलों के ऊपर से छिलके और भीतर से जीभी निकाल दें। पश्चात् ४ गुने नारियल के जल में दोलायन्त्र में मन्दाग्नि पर ३ घण्टे उबालने से शुद्ध होते हैं।

(६३) **हींग शोधन**–हींग घी में भून लेने से चूर्ण में मिलाने के लायक शुद्ध होती है किन्तु, रसायन पारदयुक्त औषधियों में मिलाने के लिये हींग को सूर्य के ताप में कमल के पत्तों के रस में ६ घण्टे तक घोटने से शुद्ध होती है। (यो.र.)

(६४) **उसारे रेवन्द शोधन**–उसारे रेवन्द को अदरक के रस या सोंठ के क्वाथ की ३ भावनायें देने से शुद्ध होती है।

(६५) **समुद्रफेन शोधन**–समुद्र फेन को नींबू के रस में ३ घण्टे खरलकर धूप में सुखा लेने से शुद्ध होता है।

(६६) **सर्पविष शोधन**–काले सर्प के विष को पहले चीनी मिट्टी की प्याली में डाल, सरसों के तैल में मिलाकर सूर्य के ताप में १२ घण्टे रखें। पश्चात् नागरबेल के पान के रस, अगस्त पत्र के रस और कूठ के क्वाथ की ३-३ भावनायें देने से शुद्धि होती है।

द्वितीय विधि–सर्प विष को गोमूत्र में डालकर तीन दिन सूर्य के ताप में रखें। फिर सुखा लेने पर वह शुद्ध हो जाता है। (र.च.)

सर्प विष निकालने वालें साँप को पकड़, मुँह को खोल, ऊपर के भाग से नीचे का भाग थोड़ा टेड़ाकर मुँह को उल्टा कर देते हैं। फिर विष की थैली पर अंगुष्ट को दबाकर विष निकाल लेते हैं। जीवित सर्प में से २-३ मास पर बार-बार विष निकालते रहते हैं। मरे हुए सर्प में विष नहीं निकलता। अनेक सपेरे थैली को चीरकर विष निकालते हैं। परन्तु उस विष में रक्त मिल जाता है। ऊपर कही हुई विधि से दबाकर विष निकालने पर शुद्ध विष सहज में ही मिल जाता है।

सर्प का विष सर्प को क्रोधित कर निकालने से उत्तम पीत वर्ण का विष निकलता हैं। इसके लिये होशियार सपेरा विषधर सर्प को पहले पूँगी नाद पर मस्त करता है। फिर कांच के प्याले पर रबर का आवरण लगा, युक्ति से उसे कटाता है। इससे १०-१५ बिन्दु या इससे भी न्यून विष प्राप्त होता है। सपेरा, सर्प के मुँह और पूँछ को पकड़कर उसके मुँह को अंगुष्ठ और तर्जनी के दबाव से खोल कर रबर के ढक्कन वाला प्याला मुँह में घुसाकर दबाव शिथिल करता है दबाव के शिथिल होते ही सर्प बड़े वेग से दांतों से रबर के आवरण में छेद करता है और विष चू जाता है। इस प्रकार अनेक बार थोड़े-थोड़े दिनों के अन्तराल में विष संग्रह करना चाहिये।

बम्बई के हाफकिन्स इन्स्टीट्यूट और पार्क डेविस के कोबरा फील्ड में यह क्रिया देखकर अनुभव प्राप्त करें। वहाँ शिक्षित सेवक यह कार्य बड़ी खूबी से करते हैं।

सर्प विष थूक के समान निकलता है। फिर थोड़े ही समय में सूखकर गोंद की छोटी-छोटी डली के समान रंग का हो जाता है।

सर्पविष की परीक्षा–तुरन्त मारे हुए किसी पशु के शरीर की बड़ी रक्त वाहिनी को काट दें। फिर बहते हुए रक्त प्रवाह में नीचे की ओर एक सरसों समान विषकण रखने से वह रक्तप्रवाह में तेजी के साथ ऊपर को चढ़ने लग जाता है।

(६७) **पित्त शुद्धि**–पित्ते को कड़वे नीम के पत्तों के स्वरस की ३ भावनायें देकर जल से धो लेने पर उसकी शुद्धि होती है।(र. चं.)

(६८) **गंधाविरोजा शोधन**–शोधन विधि मूत्रकृच्छान्तक रस की दूसरी विधि के साथ में दी गई है।

(६९) **अंडे के छिलकों का शोधन**–अण्डे के छिलकों को सिरका या नमक नौसादर मिलाये जल में भिगो दें। ४-६ दिन में कोमल होने पर भीतर की झिल्ली को सम्हालकर निकाल देने से शुद्ध हो जाते हैं।

नमक और नौसादार मिलाना हो, तो छिलकों की अपेक्षा आठवाँ हिस्सा लेवें। झिल्ली निकालने के पश्चात् शुद्ध जल से धोकर सूर्य के ताप में सुखा लेना चाहिये।

भस्म प्रकरण

स्वर्णतारार ताम्राणिनागबङ्गौ च तीक्ष्णकम्।
धातवः सप्त विज्ञेयास्ततस्तान् शोधयेद्बुधः॥१॥ शा. सं. म. ख. ११
स्वर्ण, रौप्य, पीतल, नाग, बंग, ताम्र और लौहा ये सात धातुएँ जाननी चाहिये।
विद्वान वैद्य इनका शोधन करें।

वक्तव्य–पीतले को मूल धातु कई आचार्यों ने माना है किन्तु यह भ्रमवश हुआ है पीतल मिश्र धातु है। पीतल के स्थान पर जसद को मूल धातु में लेना चाहिये।

माक्षिकं तुत्थकाभ्रौ च नीलाञ्जन शिलालकाः। रसकश्चेति विज्ञेया एते सप्तोपधातवः॥ ५३॥ शा.सं.म.ख, ११

माक्षिक (स्वर्णमाक्षिक-रौप्यमाक्षिक) तुत्थ, अभ्रक, नीलाञ्जन, मनः शिला, हरताल, खपर्र ये सात उपधातुएँ जाननी चाहिये।

धातु उपधातुओं को भस्म बनाने या मारण करने का अर्थ उनके सूक्ष्म परमाणुओं को अत्यन्त सूक्ष्म, निरूत्थ और सेन्द्रिय धर्मक युक्त बनाना है, ताकि सेवन करने पर वे उपकारक हों, देह में शल्य रूप से अपकारक न हों। धातु उपधातुओं के निरिन्द्रय परमाणु अत्यन्त सूक्ष्मतम हो जाये और उनके साथ दी हुई भावना द्रव्यों के गुणवर्द्धक सेन्द्रिय परमाणु मिश्रित हो जाये, ऐसे सूक्ष्मतम सेन्द्रिय स्वरूप की प्राप्ति करना ही भस्म करने या मारण करने का उद्देश्य है अथवा जड़ द्रव्यों की जड़ता को दूर कर, उनमें शरीर के उपयोगी लघुत्व गुण को उत्पन्न करना मात्र, भस्म बनाने का उद्देश्य है।

धातु उपधातुओं की भस्म बनाने अथवा मारण करने का अर्थ इनके धातुत्व को बिल्कुल नष्टकर देना, ऐसा नहीं है, और न यह कदापि संभव ही है। भस्म चाहे जितनी सूक्ष्म बनाई जाए और कदाच पाश्चात्य रसायन शास्त्र की दृष्टि से इनका धातुत्व बिल्कुल नष्ट हो जाय। फिर भी वह अपना मूल स्वभाव (गुणविशिष्टत्व) का त्याग नहीं कर सकती, यह प्रयोगसिद्ध है।

भस्म का अर्थ राख नहीं है। भस्म तथा राख में महत्वपूर्ण अन्तर है। भस्म अति तेजस्वी, वीर्यवान, अति गतिवान् होने से सत्वर फलदायक होती है। भस्म बनाने में सेन्द्रिय-क्षार का संयोजन धातु के साथ इस प्रकार कराया जाता है जिससे भस्म सेन्द्रिय बन जाती है। एलोपैथिक विधि अनुसार बनाई हुई लौह भस्म और आयुर्वेदिक लौह भस्म में यही अन्तर है, विलायती भस्म निरिन्द्रिय है। जबकि आयुर्वेदिक सेन्द्रिय है। इसी बात को अब समझकर डॉक्टरी में सोमल के सेन्द्रिय कल्प बनाये गये हैं। जसद के पुष्प, जसद की राख है, अतः इसे जसद की भस्म कहना बड़ी भारी भूल है। इसका उपयोग भस्मरूप से नहीं किया जा सकता। राख और भस्म के वजन में एवं धात्वीय परमाणुओं में जैसे अन्तर रहता है वैसे ही इनके गुणों में भी अन्तर रहता है।

"धातुओं उपधातुओं में से अनेकों की गुण वृद्धि अधिक पुट देने से होती है" ऐसा अनुभव करके शास्त्रकारों ने नियम बनाये हैं। उदाहरणार्थ– १ पुटी, १० पुटी, १०० पुटी, ५०० पुटी, १,००० पुटी अभ्रक भस्मों में से सभी का उपयोग रोगशमनार्थ या रोगदमनार्थ होकर इनमें प्रायः समान गुण या स्वल्पगुणान्तर होता है। किन्तु उनमें रक्तादि धातुओं और ओज आदि में स्थिरता लाने और देहपोषक सत्व निर्माण कराने में अन्तर पड़ता है। इसी हेतु से सहस्रपुटी अभ्रक भस्मादि को विशेष मान्यता दी गई है।

धातु-उपधातु, ये सब खनिज कहलाते हैं। इनमें सबके गुण धर्म पृथक्-पृथक् हैं। इस सम्बन्ध में आचार्यों ने संक्षेप में निम्न वचनों से स्पष्टीकरण किया है।

सुवर्णः– स्वर्ण स्निग्ध-कषाय-तिक्त-मधुरं दोषत्रयध्वंसनम्।
शीत स्वादु रसायनं च रुचिकृच्चक्षुष्यमायुष्प्रदम्॥ (आ. प्र.)
तुवरं स्वादु तिक्तं च पाके तु स्वादु पिच्छिलम्॥ (आ. प्र.)
मधुरं कटुकं पाके सुवर्णं वीर्यशीतलम्।
सर्वदोष प्रशमनं विषघ्नं गरनाशनम्। (रसे. चि.)

रौप्यः– विपाकमधुरं तुवराम्लसारं शीतं सरं परमलेखनकं च रुच्यम्।(र.र.स.)

रजत का विपाक आचार्यों ने मधुर दर्शाया है किन्तु युगपरिवर्तन और आहार आदि के भेद से वर्तमान में अनुभव अम्ल विपाक का होता है। अम्ल पित्त के रोगियों को रौप्य या कासीस भस्म देने पर वातनाड़ियों पर अमलत्व वृद्धि सदृश असर विदित हुआ।

ताम्र–ताम्रं कषायं मधुरं च तिक्तमम्लं च पाके कटु सार के च॥ (आ.प्र.)

जशदः–जशदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत्।
इसका विपाक मधुर होता है।

वंङ्ग :– इसका विपाक भी मधुर होता है।

नाग:- उष्ण: सरो रजतरञ्जनकृद् व्रणार्शो गुल्म ग्रहण्यतिसृतिक्षणदाँ- शुमाली॥

लोह-इसका विपाक मधुर होता है।

सुवर्णमाक्षिक-इसका विपाक मधुर होता है।

सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम्। (आ.प्र.)

तुत्थ:- तुत्थं तु कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु॥ (आ.प्र.)

इसका विपाक ताम्र के समान कटु होता है।

कांस्य:-कांस्य कषायतिक्तोष्णं लेखनं विशदं सरम्॥ (आ. प्र.)

शिलाजतु:- शिलाह्वं कटु तिक्तोष्णं कटुपाके रसायनम्।

इसका विपाक आचार्यों ने कटु दर्शाया है।

कासीस:- कासीसं द्वयमम्लोष्णं तिक्तं च तुवरं तथा।

इसका विपाक अम्ल होता है।

खपर:-खपरं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु॥ (आ. प्र.)

(ताम्र भेद मानकर ये गुण दर्शाये हैं) इसका विपाक कटु क्षारीय है।

धातु-उपधातु, रत्न-उपरत्न आदि की भस्म बनाने के पहले, शोधन प्रकरण में लिखे अनुसार उनको शुद्ध कर लेवें। जितना शोधन अच्छा होगा, उतनी ही भस्म अधिक सौम्य होती है। धातु-उपधातुओं की भस्म बनाने के लिए अनेक प्रकार की औषधियों की भावनायें दी जाती हैं, जिससे भावना द्रव्यों के रस के क्षार अनुरूप उनके गुणों में वृद्धि हो जाती है।

सुवर्ण, रौप्य, लोह, बंग, जसद, शीशा, मण्डूर, मुक्ता, शुक्ति, प्रवाल, अभ्रक और अन्य रत्नोपरत्न स्वभाव से सौम्य हैं तथा ताम्र, संखिया, हरताल आदि उग्र हैं। परन्तु भावना रूप संस्कार से गुणों में कुछ परिवर्तन हो सकता है। मूल स्वभावपूर्ण रूप से नहीं बदलता। अत: भस्म तैयार करने के पहले किन-किन औषधियों की भावना अनुकूल है, इस बात को सम्यक् प्रकार से जान लेना चाहिये। जैसे रसायन गुण के लिये अभ्रक भस्म को विरेचन और लेखन औषधियों के पुट न्यून परिमाण में और बृहंण औषधियों के पुट विशेष परिमाण में देना चाहिये। किन्तु किसी रोग को दूर करने का उद्देश्य हो, तो उस रोग को शमन करने वाली औषधियों की ही भावना ज्यादा देनी चाहिये। उष्ण, सारक, वातश्लेष्मघ्न, कोष्ठविकारघ्न आदि गुणों के लिये अभ्रक भस्म को अर्कदुग्ध या अर्कपत्र के रस की भावना देना लाभदायक है, ऐसे गुणों के लिये यदि शीतवीर्य, रक्तपित्तशामक और कफ क्षयनाशक अडूसे के पान के स्वरस की भावना दी जायेगी तो लाभ कम होगा। मधुमेह पर लोह भस्म का उपयोग करना हो तो, जामुन वृक्ष की छाल के क्वाथ से ४-६ या अधिक पुट देवें एवं कफनाश के लिये अभ्रक को कटेली आदि कफघ्न औषधियों के पुट देवें। इसी तरह अन्य रोगशामक औषधियों के लिये विचारपूर्वक योजना करें।

वनौषधि द्वारा तैयार की हुई वंगभस्म सौम्य होने से शुक्र स्थान को पुष्ट बनाने में विशेष लाभदायक है और हरताल-मारित वंगभस्म उग्र होने से दूषित रस रक्त धातुओं को शुद्ध करने, जन्तुओं का नाश करने, उपदंश के रोगी के बिगड़े हुए शुक्र को शुद्ध करने के लिये और उपदंशजनित चर्मरोग में विशेष हितकारक मानी गई है। अत: भावना विषयक विचार करके भस्म का उपयोग करना चाहिये। धातु-उपधातु की भस्म निम्न पाँच प्रकार से तैयार होती है-

(१) पारद, गन्धक अथवा सिंगरफ के योग से।

(२) वनौषधियों के स्वरस की भावना द्वारा।

(३) सोमल, हरताल, मैनसिल आदि उग्र द्रव्यों के योग से।

(४) गन्धक, सज्जीखार, शोरा या अन्य क्षार से।

(५) धातुओं के अन्य विरोधी धातु से मारण द्वारा।

इनमें पहले दो प्रकार श्रेष्ठ और निर्दोष हैं। तीसरे प्रकार की विधि से भस्म उग्र बनती है तथा चौथी और पांचवी विधि से बनाई हुई भस्म न्यून गुण युक्त होती है, रसरत्नसमुच्चय और आयुर्वेद प्रकाश में लिखा है कि-

लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना।
मूलीभिर्मध्यमं प्राहु: कनिष्ठं गन्धकादिभि:॥
अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम्।

सुवर्ण आदि धातुओं का पारद योग से मारण श्रेष्ठ, वनौषधियों से मारण मध्यम गुणयुक्त, गन्धक और अन्य क्षार आदि से मारण कनिष्ठ, तथा विरोधी धातुओं से मारण करना हानिकारक है। अन्य आचार्यों ने भी लिखा है-

लोहं सूतयुतं दोषान्त्यजेत्सूतस्तु लोहयुक्।
अत: स्वर्णादिलोहानि विनासूतं न मारयेत्॥

सुवर्णादि धातु पारद संयोग से दोष को त्याग देती है और पारद भी सुवर्णादि के योग से दोष मुक्त होता है। अतः बिना पारद, धातु का मारण न करें।

अन्य प्राचीन आचार्यों ने अपने अनुभव अनुसार लिखा है कि-

न रसेन विना लोहं न लोहं चाभ्रकं विना।
एकत्वेन शरीरस्य बंधो भवति देहिनः॥
चपलेन बिना लोहं यः करोति पुमानिह।
उदरे तस्य किट्टानि जायन्ते नात्र संशयः॥

कोई भी लोह (सुवर्ण आदि की भस्म) बिना पारद मिलाये नहीं देनी चाहिये एवं लोहे के साथ अभ्रक भी मिलाना चाहिये। जब ये ऐक्यभाव को प्राप्त होंगे, तब देही के देह को दृढ़ बनाते हैं। देह में दीर्घकाल पर्यन्त स्थिर रहते हैं।

जो बिना पारदयोग सुवर्ण आदि भस्म का सेवन करते हैं, उनके उदर में निःसन्देह किट्ट संग्रह हो जाता है।

भस्म के साथ पारद मिलने पर पारद और भस्म दोनों के गुण मिल जाते हैं। दोनों द्रव्य दीर्घकालपर्यन्त रक्त आदि धातु में स्थिर रह जाते हैं एवं युवावस्था, शारीरिक बल और मनोबल की रक्षा करते हैं।

जब तक भस्म निरुत्थ न बन जाय, तब तक उपयोग में नहीं लेना चाहिये इस शास्त्राज्ञा का वर्तमान समय में पूर्ण रूप से पालन नहीं होता। यूनानी हकीम तो कच्चे वंग और शीशे को मिश्री के साथ खरल करके ही उपयोग में लाते हैं। उनके सिद्धान्तानुसार कच्ची धातु के उपयोग में कुछ भी हानि नहीं है। अपनी शक्ति अनुसार लाभ ही पहुँचाती हैं। फिर भी अधिक पुट दिये जाय, तो विशेष लाभदायक बनती हैं।

अभ्रक, लोह, मण्डूर, वंग और माक्षिक की भस्में जब तक कच्ची हों, तब तक उनको अग्नि तेज देनी चाहिये। भस्म पक्व हो जाने पर विशेष पुट देना हो, तब अग्नि देनी चाहिये। यदि अन्त में पुटों में अग्नि तेज होगी तो, भस्म कठोर हो जायेगी। मृदु नहीं बनेगी इसके विपरीत नाग, रौप्य और सुवर्ण जब तक कच्चे हों तब तक अग्नि कम देनी चाहिये। अधिक अग्नि देने पर ये फिर से जीवित हो जाते हैं, इनकी भस्म जैसे-जैसे बनती जाय वैसे-वैसे अग्नि बढ़ाते जायं। भस्मों के वर्ण का ध्यान रखना आवश्यक है। उत्तम सुन्दर वर्ण पैदा होना चाहिये। भस्म के वर्ण योग रत्नाकार में लिखे हैं।

भस्म बनाने के लिये धातु, उपधातु आदि औषधियों की टिकिया अथवा गोले का संपुट मजबूत करना चाहिये। जिससे अग्नि की उष्णता, जो संपुट के भीतर प्रवेश करती है, वह शीघ्र नहीं निकल सकती। इस हेतु से भस्म थोड़े ही पुट में विशेष मुलायम हो जाती है।

भस्म का संपुट विशेषतः हाँडियों में करते हैं। यदि भस्म की टिकियाओं को बड़े गोल तवे पर रखकर संपुट किया जाय, तो गजपुट में अग्नि विशेष लगती है। गजपुट आदि में अग्नि देने के बाद तक संपुट स्वांग शीतल न हों, जब तक खड्डे में से न निकालें। अन्यथा भस्म की गरम टिकियाओं को बाहर की शीतल वायु लगने पर भस्म दूषित (कठोर) हो जाती है।

रत्नों की भस्म बनाने के बदले पिष्टी बनाई जाय, तो विशेष लाभ करती है। परन्तु किसी-किसी समय पिष्टी अनुकूल नहीं रहती, तब भस्म दी जाती है। अतः भस्म तथा पिष्टी दोनों के ही बनाने की विधि दी गई है। ४-५ प्रकार के यूनानी पत्थरों की भस्म और पिष्टी विशेष उपयोगी होने से उनकी विधि भी साथ-साथ दी गई है।

सुवर्ण, रौप्य आदि धातुएँ अन्य धातु के मिश्रण से रहित शुद्ध ही लें। दूषित धातु की भस्म से बल वीर्य का नाश और अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है। इन धातुओं का परिचय योगरत्नाकर में निम्न वचनों से दर्शाया है-

स्वर्णं चम्पकवर्णाभं कृष्णत्वं तारताम्रयोः।
कांस्यं धूसरवर्णंस्यान्नागः पारावत प्रभः॥ १॥
वङ्गं शुभ्रत्वमायाति तीक्ष्णं जम्बूफलोपमम्।
अभ्रकं चेष्टिकाभं स्याद्धातूनां वर्णनिर्णयः॥ २॥

औषधि कार्य में मंडूर १०० वर्ष से ज्यादा पुराना ही लेना चाहिये। नये मंडूर की भस्म के सेवन से अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। काशीश भस्म बनाने के लिये विलायती काशीश लिया जाय, तो लाभ अधिक होता है।

भस्म की टिकिया सुखाने के लिये कलई की हुई थाली, एनेमल (लोहे पर सफेदी लगी हुई) की थाली, चीनी मिट्टी के पात्र अथवा पत्थर पात्रों का उपयोग करना चाहिये। पत्थर अथवा धातुपात्र होने से टिकियां जल्दी सूख जाती है। यदि ताँबा या पीतल का पात्र लेना हो, तो कलई किया हुआ ही लेना चाहिये, बिना कलई के पात्र में टिकिया सुखाने से पात्र मेंरखा हुआ नीलाथोथा टिकियों को लगकर भस्म को दूषित बना देता है।

टिकिया बांधने के पश्चात् खरल, बत्ता को और टिकिया जिस थाली में सुखाई हो उस थाली को भी भावना देने के स्वरस से धोकर रस को सुखा लेवें, या दूसरी भावना देने के समय उस रस को मिला लें, जिससे भस्म कम न हो।

जब तक भस्म मुलायम न बने, कच्ची धातु का अंश प्रतीत हो. तब तक लोहे के खरल का उपयोग करें। पत्थर की खरल में कच्ची धातुओं को खरल करने से खरल और भस्म दोनों खराब होते हैं। पत्थर घिसकर भस्म में कुछ अंश मिल जाता है एवं नींबू का रस, लोह विरोधी अन्य स्वरस अथवा नौसादर आदि क्षार युक्त औषध लोह खरल में घोटने से लोह का जंग बनता है, जो औषधि को दूषित बनाता है। इसलिए विचारपूर्वक खरल का उपयोग करना चाहिये।

रत्नों के नाम

वैक्रान्तः सूर्यकान्तश्च हीरकं मौक्तिकं मणिः। चन्द्रकान्तस्तथा चैव राजावर्तश्च सप्तमः॥
गुरुडोद्गारकश्चैव ज्ञातव्या मणयस्त्वमी। पुष्परागो पद्मरागो गोमेदश्च प्रवालकम्॥
वैडूर्यञ्च तथा नीलं एतेऽपि मणयो मता। यत्नतः संगृहीतव्या रसबन्धस्य कारणात्।

रत्नों के नाम–वैक्रान्त, सूर्यकान्त, हीरा, मोती, मणि, चन्द्रकान्त, राजावर्त मरकत (पन्ना) ये आठ रत्न हैं और पुखराज, पद्मराग, (माणिक्य) गोमेद, प्रवाल, वैडूर्य और नीलम ये भी मणि या रत्न हैं। ये रत्न पारद का बन्धन करते हैं, इसलिए इन्हे सावधानी से इकट्ठा करना चाहिये।

हीरा, माणिक्य, मोती, पन्ना, नीलम आदि रत्नों की पिष्टी चीनी-मिट्टी के खरल* (Mortar With Pestle) या सिमाक पत्थर की खरल में घोटनी चाहिये। भस्म और रस आदि औषधियों के लिये टोली, तामड़ालोहिया आदि पत्थरों के खरल आते हैं, ये सब रत्नों के घोटने से खराब हो जाते हैं।

आयुर्वेद प्रकाशकार ने रसपद्धति के वचनों का प्रमाण देकर लिखा है कि, "रौप्य भस्म, नागभस्म और उपधातुओं की भस्मों में से किसी एक अकेली का उपयोग करना विशेष हितकर नहीं है। रससिंदूर या अभ्रक आदि अन्य भस्म के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिये।"

भस्मों के भीतर मूल धातु के साथ विविध वनौषधियों के क्षार का मिश्रण होता है एवं शहद, दूध या क्वाथ आदि विविध, रोगनाशक अनुपान मिलाये जाते हैं। इन क्षार और अनुपान सह भस्म आमाशय मे से ही सूक्ष्म रसायनिकों द्वारा शोषित होकर रक्त में प्रवेश कर जाती है। फिर क्षार और अनुपान के गुणधर्म अनुरूप तत्काल प्रभाव दर्शाती है। इस हेतु से शास्त्र मे विविध अनुपानों की योजना की है तथा भस्म और रसायनों को योगवाहि कहा है।

महाराष्ट्र में आयुर्वेद सेवा संघ ने आयुर्वेदीय औषधि संशोधन कार्य प्रारम्भ किया है। उसने भस्मों का विश्लेषण किया है। उसका विवरण निम्नानुसार हैं–

सुधा (कैल्शियम) दर्शक कोष्ठक :

भस्म	सुधाप्रतिशत	भस्म	सुधाप्रतिशत
कान्तलोह	१.७८	मधुमण्डूर	२.३२
तीक्ष्णलोह	६.७२	मण्डूर	८.३१
तीक्ष्णलोह	८.३१	मण्डूर	१६.१५
तीक्ष्णलोह	१७.८	श्रृंग	१२.६८
नाग	३.६८	मुण्डलोह	१.६
बालमण्डूर	१.६८	स्वयमग्निलोह	३.८२
भौममण्डूर	२.१६	सुवर्णमाक्षिक	१.८४

अभ्रक भस्म विश्लेषण

फुटसिलिकेट्स अभ्रक		अल्युमिनियम ऑक्साइड	आयरन ऑक्साइड	केल्शियम ऑक्साइड	मेग्निशियम ऑक्साइड	वाटर सोल्युबल
कच्चा	५०.६	१२.६	१८.८	४.३४	९.४५	
१००	२७.५	१२.१	३८.०	३.८८	१.८४	१६.२
५००	२६.६	३१.८	१२.१	७.१५	०.५७	
१०००	३१.८७	१७.५	३१.६	१३.४५	५.६	
१०००	२४.८	४१.७	५.०	९.५	१.३	१८.०

* वर्तमान में भारत में जो चीनी मिट्टी की खरलें बनती हैं वे सब कच्ची हैं। बहुत घिसती हैं अतः इनका उपयोग नहीं करना चाहिए। पक्के रत्नों की पिष्टियां पत्थर व लोहे के खरल में बनाना उचित नहीं। कारण कि वे घिस जाते हैं। क्रोमियम लगे खरलों और स्टील के खरलों का सम्हालपूर्वक उपयोग करें। भूतकाल में यह सुविधा न होने से प्राचीन आचार्य पिष्टी न बनाकर भस्म ही विशेषतर बनाते रहे हैं। भस्म भी अनेक पुट देकर जब अंजन जैसी मुलायम हो जाये तब ही इच्छित फलदायी होती है।

मुक्ताप्रवालादि सुधा विश्लेषण

भस्म	सिलिकेट्स	केल्शियम ऑक्साइड	केल्शियम कार्बोनेट	मेग्नेशियम ऑक्साइड	अल्युमिनियम ऑक्साइड
मुक्ता			९५.५		०.९२
प्रवाल	२.१२	३.८६	९१.१	३.०	
शुक्ति	०.४५		९५.२	०.४९	
शंख	०.७५	१.९६	९६.७	१.२१	
वराटिका		०.९७	९९.५	स्वल्प	

भस्म तैयार करने मे जो भावना द्रव्य लिया जाता है, वे अनिश्चित् होने पर, अग्निप्रमाण अनिर्णित होने पर और मूल द्रव्यों के भेद से सुधा आदि के परिमाण में न्यूनाधिकता हो जाती है। अतः मूलद्रव्य भावना द्रव्य, अग्नि आदि के विशेष विधान की आवश्यकता उत्पन्न हुई है ताकि औषधि गुण निश्चित दर्शा सके।

भस्मों की कसौटी के लिये शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, धूम, चन्द्रिका, पुनर्भव, लघुत्व, स्थिरत्व, सूक्ष्मत्व, और विद्रवता ये १२ प्रकार हैं। इन सब परीक्षाओं के अतिरिक्त आधुनिक परीक्षण पद्धति है। आयुर्वेद के महारथियों को चाहिये कि, जैसा इन सबका निर्णय हो वैसा विधि-विधान तैयार करें।

रौप्य, नाग, ताम्र शतपुटी बनाने पर शास्त्र दर्शित पूरा-पूरा लाभ पहुँचाता है एवं अभ्रक लोह सहस्र पुटी बनाने पर उससे दिव्य गुण की प्राप्ति होती है एवं सुधा प्रधान भस्म, मुक्ता, प्रवाल, शुक्ति, शङ्ख, कपर्दिका, कुक्कुटाण्डत्वक्, श्रृङ्ग आदि सौम्य होने से मर्यादित पुट ही सहनकर सकते हैं।

प्राचीन आचार्यो ने उस युग के मानव शरीर, आहार-विहार तथा वायुमंडल आदि को लक्ष्य में रखकर औषधियों के गुणधर्म दर्शाये हैं। जैसे-

महाभारत के समय भीष्मपितामह की आयु १७५ वर्ष, गुरु द्रोणाचार्य की १२५ श्री कृष्ण भगवान की ८९, अर्जुन की ८७ और भीमसेन की ९१ वर्ष की थी; श्रीकृष्ण भगवान् युवा थे इसी हेतु से पितामह ने कहा था कि मैं युवा अर्जुन की समानता कैसे करूँ? इत्यादि।

वर्तमान में मानव शरीर शक्ति, आहार-विहार तथा वायुमंडल में अपेक्षाकृत बहुत अन्तर आ गया है। अतः औषधियों की मात्रा, गुण-धर्मादि में भी काफी अन्तर आ गया है।

(१) सुवर्ण भस्म

प्रथम विधि–विशुद्ध पारद में से चन्द्रोदय बनाने के समय शीशे के तल भाग में गन्धक मिली हुई सुवर्ण की काली भस्म रह जाती है। उसमें जल मिलाकर चीनी के बरतन में दो-तीन घण्टे रख देवें। फिर सम्हालपूर्वक जल को निकाल डालें। पुनः जल मिलावें और दो-तीन घण्टे बाद फैंक देवें। इस तरह ३-४ समय धोने से पानी साफ निकलेगा और सुवर्ण की भस्म मात्र शेष रहेगी। उस सुवर्ण रज (पाउडर) को तुलसी, वनतुलसी (नगदबाघची), सत्यानाशी अथवा कुकरौंधा के २० तोले रस में खरल करें। जब भस्म गाढ़ी होवे, तब एक काँच की प्लेट (तश्तरी) में फैलाकर धूप में सुखावें। फिर सुवर्ण की फैली हुई पपड़ी को खोल संपुट कर १६ इञ्च खड्डे में अग्नि देवें। पुनः तुलसी अथवा कुकरौंधा के रस में घोट संपुट करके फूंक दें। इस तरह ८ पुट देने से मुलायम, हलके वजन वाली और श्यामप्रभायुक्त लाल रंग की भस्म तैयार हो जाती है।

मात्रा–१/४ से १ रत्ती तक, दिन में २ समय, शहद, पीपल और शहद, मक्खम-मिश्री, गिलोय सत्व और शहद, च्यवनप्राशावलेह अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवें। शास्त्रकारों ने भिन्न-भिन्न रोगों के लिये नीचे लिखे अनुपानों की योजना की है।

१. **रसायन गुण के लिये**–(अ) कमलगट्टा (जिभी निकाला हुआ), धान की खील और प्रियंगु के चूर्ण और शहद के साथ सुवर्ण भस्म देवें, ऊपर गोदुग्ध पिलावें।
(आ) काले तिलों के चूर्ण के साथ देवें। ऊपर से नीलकमल के क्वाथ से पकाया हुआ गोदुग्ध पिलावें।
(इ) आँवले के चूर्ण और शहद के साथ देवें।
(ई) शतावरी घृत ६ माशे और शहद ३ मासे के साथ।
(उ) भाँगरे के रस के साथ दें।

२. **उन्माद पर**–ब्राह्मी का स्वरस 3 माशे, बच ३ रत्ती, कूठ और शंखपुष्पी ३-३ माशे और मिश्री ६ माशे के साथ देवें या धमासे के अर्क के साथ देवें।

३. **बुद्धि वृद्धि के लिए**–वच के चूर्ण ३ रत्ती के साथ।
४. **कान्ति वृद्धि के लिये**–पद्मकेसर के चूर्ण के साथ।
५. **तारुण्य प्राप्ति के लिये**–शंखपुष्पी के चूर्ण के साथ।
६. **वाजीकरण के लिए**–विदारीकन्द के चूर्ण के साथ।
७. **राजयक्ष्मापर**–मक्खन, मिश्री और शहद से दें या सुवर्ण भस्म आधा रत्ती, शुद्ध सोनागेरु ३ रत्ती, मोतीपिष्टी १ रत्ती मिलाकर शहद के साथ देने से क्षय में वमन, अतिसार, कृमि, कास, रक्तपित्त, अरुचि, उबाक आदि लक्षण दूर होते हैं।
८. **क्षय में अतिसार पर**–दाड़िमावलेह के साथ।
९. **दाह शमन के लिये**–मिश्री के साथ।
१०. **नेत्रों की निर्बलता में**–पुनर्नवा के चूर्ण के साथ।
११. **जीर्ण नेत्रदाह में**–मुक्तापिष्टी और गिलोय-सत्व के साथ।
१२. **श्वास में**–त्रिकटु और घृत के साथ।
१३. **भयंकर प्रदर में**–चौलाई की जड़ के अर्क के साथ।
१४. **खाँसी में**–हल्दी, पीपल का चूर्ण और शहद के साथ।
१५. **जीर्णकास पर**–द्राक्षासव के साथ।
१६. सुजाक और मूत्रकृच्छ में छोटी इलायची, कर्पूर और मिश्री चूर्ण के साथ।
१७. रजोधर्म शुद्ध करने के लिये–मकोय के अर्क के साथ।

गुणधर्म–रसेन्द्रचिन्तामणि में लिखा है कि–

मधुरं कटुकं पाके सुवर्णं वीर्य शीतलम्। सर्वदोष प्रशमनं विषघ्नं गरनाशनम्॥
अलक्ष्मीकलिपापानां प्रयोग स्तस्य नाशनः। आयुर्मेधा स्मृतिकरः पुष्टिकान्ति विवर्धनः॥
सर्वौषधि प्रयोगैर्ये व्याधयो न विनिर्जिताः। कर्मभिः पञ्चभिश्चापि सुवर्ण तेषु योजयेत्॥

सुवर्ण रस में मधुर, कटु विपाकी, शीतवीर्य, वात, पित्त, कफ, तीनों दोषों को शांत करने वाला विषघ्न, कृत्रिम विषहर तथा दूषित प्रयोगों के फल को दूर करने वाला है। आयु, मेधा और स्मृतिवर्द्धक, पुष्टिदाता और कान्तिवर्द्धक है एवं जो राजयक्ष्मादि रोग पञ्चकर्म और विभिन्न औषधियों के सेवन से भी न गया हो, उस पर सुवर्ण की योजना की जाती है।

संक्षेप में भस्मों के गुण धर्म–रस कामधेनु के लोहविधान के पहले अधिकार में दर्शाये हैं कि–

आरोग्यं भास्करादिच्छेत् सोमाद्धातु समृद्धिताम्। रोगप्रशान्तये सेव्यो देवदेवेश्वरः सदा॥
नागेशो नागबलदो यमाद्यम भयं न हि। शु (श) क्राच्छुक्रसमृद्धिः स्यात् ब्रवीदेवं हि धुंजटिः॥

भास्कर (ताम्र) सेवन अग्निमांद्य आदि दूरकर आरोग्य प्रदान करता है। सोम (रजत) रस, रक्तादि धातुओं को सुदृढ़ बनाता है। रोगों को (क्षय आदि रोगों को) दूर करने के लिए देवदेवेश्वर (सुवर्ण) का सर्वदा सेवन करना चाहिये। हाथी सदृश बल बढ़ाने के लिए नागेश (शीशे) का सेवन हितावह है। आयु बढ़ाने के लिए यम (लोह) भस्म उपकारक है। शुक्र धातु की वृद्धि शुक्र (वङ्ग) भस्म कराती है।

उपयोग–यह भस्म क्षय, धातुक्षीणता, जीर्णज्वर, त्रिदोष वाताबाहिनियों की निर्बलता, पुराना श्वास, कास, दाह, नेत्रजलन, पित्तरोग, पित्तज उन्माद, भूतबाधा, विषविकार, पित्तप्रधान प्रमेह, और नपुंसकता आदि रोगों को दूर करती है। इसमें स्निग्ध, मधुर, कषाय, किंचित तिक्त, शीतवीर्य और रसायन गुण हैं। यह प्रज्ञा, वीर्य बल, स्मृति और कांति को बढ़ाने वाली, वृष्य, पाक काल में मधुर, वृंहण, हृद्य तथा वाणी को स्थिर एवं शुद्धि करने वाली है। सर्व धातुओं में सुवर्ण अधिकतर स्थिर गुणयुक्त निर्मल और प्रसन्नता उत्पादक है।

सुवर्ण भस्म के सेवन से हृदय को शक्ति मिलती है। यह सुवर्ण का हृद्य गुण कुचिला के समान सत्वर वातवाहिनी नाड़ियों को उत्तेजना देने वाला, कर्पूर के समान रक्तवाहिनियों को विकसित करने वाला या पर्णबीज, अर्जुन आदि औषधियों के समान रक्तवाहिनियों को संकुचित करने वाला भी नहीं है किन्तु इसका कार्य रक्त को निर्विष बना रक्त का प्रसादन कर हृदय को पुष्ट बनाना तथा रक्तवाहिनियों और वातवाहिनियों को शक्ति देना है। सुवर्ण का यह हृद्य गुण अन्य औषधियों से विशेष है। इस गुण के लिये अदरक के रस के साथ सेवन करना चाहिये।

विष, उपविष, शरीर में उत्पन्न होने वाला सैन्द्रिय विष, और इसको उत्पन्न करने वाले कीटाणु, इन सबसे शरीर पर होने वाले दुष्परिणाम को दूर करने का अद्‌भुत गुण सुवर्ण में है। जब विष की तीव्रावस्था शमन हो जाती है; और सूक्ष्मावस्था शेष रह जाती है, तब सुवर्ण का उपयोग करने से शरीर पूर्ण रूप से निर्विष हो जाता है। ऐसे प्रसंग पर स्वल्प मात्रा में स्वर्ण बार-बार दिया जाता है। ऐसे ही कृत्रिम विष का तीव्र वेग दूर होने पर शेष विकृति की शांति के लिये सुवर्ण का उपयोग करना चाहिये। कारण सुवर्ण भस्म में जन्तुघ्न और प्रतिविषोत्पादक (विषघ्न) गुण रहते हैं। इस गुण की प्राप्ति के लिये सुवर्ण भस्म का उपयोग कम मात्रा में दिन में ३-४ बार करना चाहिये।

जन्तुघ्न और प्रतिविषोत्पादक गुण के कारण सुवर्ण, क्षय में बहुत लाभ पहुँचाता है। इस हेतु से आयुर्वेद ने सुवर्ण के प्रयोग का क्षयरोग में स्थान-स्थान पर उपयोग किया है। सुवर्ण-मिश्रित औषधि का प्रयोग क्षय की सब अवस्थाओं में होता है। आयुर्वेद ने अवस्था दोष, दूष्य, स्थान आदि का विचार करके सुवर्ण के अनेक प्रयोग निर्माण किये हैं। प्रथम और द्वितीय अवस्था में उनका अच्छा उपयोग होता है तीसरी अवस्था में जब बड़े-बड़े उर:क्षत, बल, मांस का क्षय और भयंकर शक्तिपात आदि लक्षण हो जाते हैं, तब सुवर्ण या अन्य किसी भी औषधि से लाभ नहीं हो सकता। रोग निरोधक शक्ति का अधिक क्षय न हुआ हो, तभी तक सुवर्ण का अच्छा उपयोग होता है।

क्षय रोग में जब ज्वर का वेग तीव्र हो, उस समय सुवर्ण नहीं देना चाहिये एवं सुवर्ण की मात्रा रोगी की शक्ति से ज्यादा होने से क्षय के कीटाणुओं का अधिक नाश होता है, फिर उन मृत कीटाणुओं से सेन्द्रिय विष विशेषांश में उत्पन्न होकर तुरन्त ज्वर बढ़ने लगता है और वह मर्यादा से बाहर हो जाता है। अत: सुवर्ण की मात्रा रोगावस्था और प्रकृति भेद का विचार करके देनी चाहिये। अनेक समय तो सुवर्ण भस्म का प्रयोग इतनी कम मात्रा में किया जाता है कि १/५० रत्ती तक देनी पड़ती है।

बार-बार शुष्क कास, सारे शरीर में व्यथा, सायंकाल में नित्य प्रति सम्हाल रखते हुए भी ज्वर आ जाना और उतने में ही भंयकर शक्तिपात होना, मन अस्वस्थ, उदासीन और क्रोधी बनना इत्यादि लक्षण होने पर सुवर्ण भस्म, शृङ्ग भस्म, प्रवाल पिष्टी और गिलोयसत्व को मिलाकर दूध-मिश्री के साथ देते रहने से थोड़े ही दिनों में प्रकृति सुधरने लगती है। शुष्क कास में शृङ्ग भस्म की मात्रा कम दें।

सहन हो सके उतने अंश में ताप, हाथ पैर में जलन, स्वरभेद, स्कन्ध, और पार्श्व भाग का संकोच, दिन में ३-४ बार पतले-पतले दस्त, अत्यन्त शुष्क कास श्वास, कण्ठ में पीड़ा, कफ के साथ रक्त गिरना इत्यादि लक्षण होने पर सुवर्ण भस्म का उपयोग प्रवालपिष्टी, शृङ्ग भस्म और दाड़िमावलेह के साथ करना लाभदायक है।

उर:क्षत में सुवर्ण का उत्तम उपयोग होता है। ज्यादा रक्तस्राव होता हो तो रक्तपित्त चिकित्सा के साथ-साथ थोड़े परिमाण में सुवर्ण भस्म देते रहने से ज्यादा अशक्ति नहीं आती; रक्त में रहे हुए मधुरत्व, स्निग्धत्व, प्रसन्नत्व, आदि गुणों की न्यूनता की पूर्ति सुवर्ण द्वारा हो जाने से शक्तिपात नहीं होता और रोग सत्वर काबू में आ जाता है।

निर्जन्तुक क्षय की सब अवस्थाओं में शरीर के घटकों के क्षय को रोकने के लिये सुवर्ण का प्रयोग लाभदायक है। रस, रक्त आदि धातुओं के अनुलोम क्षय (रस क्षय Sprue) और प्रतिलोम क्षय, इन दोनों में सुवर्ण भस्म का उपयोग जीवनीयगण की औषधि के साथ करने से शीघ्र लाभ पहुँचता है।

उन्माद रोग में पैत्तिक और श्लैष्मिक लक्षण अधिक होने पर सुवर्ण भस्म का उपयोग भली भाँति होता है अर्थात् सर्वाङ्ग में दाह, असहिष्णुता, बालक का रोना या सामान्य आवाज भी सहन न होना; प्रकाश, उष्णता और उष्ण पदार्थ के स्पर्श से दु:ख का भान होना, हाथ-पैर पटकते रहना, अति व्याकुलता, मुख, नेत्र, कपोल, अंगुलियों आदि पर शोथ, जोर-जोर से चिल्लाना दूसरों को मारने के लिये दौड़ना, नग्न रहना, वीभत्स चेष्टा करना इत्यादि पैत्तिक लक्षण हों या मन की विलक्षण चंचलता, बार-बार दिङ्मूढ़ हो जाना, जड़ता, अन्नपर अरुचि, स्त्री-सम्बन्धी बातों पर प्रेम, एकान्त में रहने की इच्छा, जीवन से उपरामता इत्यादि श्लैष्मिक लक्षण प्रतीत होते हों तो, सुवर्ण भस्म को धमासा के क्वाथ या अर्क के साथ देने से लाभ होता है।

अनेक मास की पुरानी खाँसी और श्वास में जब पित्त की प्रधानता या वात पित्त की प्रधानता हो, तब सुवर्ण भस्म, द्राक्षारिष्ठ या द्राक्षासव के साथ देने से अच्छा लाभ पहुँचता है।

राजयक्ष्मा रोग में सेन्द्रिय विष-दोष-दुष्टी का परिणाम लघु अन्त्र और बृहदन्त्र पर होने से फिर वे दुष्ट हो जाते हैं। बार-बार बुदबुदे वाले पतले दस्त होते रहते हैं। क्वचित् दस्त के साथ रक्त भी जाता है। कितने ही रोगियों के सारे उदर में दोष दुष्टी का प्रकोप हो जाने से बहुत दस्त लगते हैं और भयंकर अशक्ति आ जाती है। इस अवस्था में सुवर्ण भस्म दाड़िमावलेह के साथ देनी चाहिये।

सुवर्ण के योग से रक्तप्रसादन कार्य अच्छा होता है। त्वचा मुलायम और तेजस्वी बनती है। त्वचागत पित्तविकार अच्छी तरह से शमन हो जाता है। मुखमण्डल पर कांति बढ़ जाती है, क्षुद्र कुष्ठ या त्वचा के रोग नष्ट हो जाते हैं, एवं महाकुष्ठ के उत्पादक कीटाणुओं का सुवर्ण के सेवन से विनाश होता है। इस प्रकार कुष्ठ रोगों में भी सुवर्ण का उपयोग लाभदायक होता है।

पैत्तिक प्रमेह रोग में सुवर्ण भस्म का उपयोग अच्छा होता है।

आंत्रिक ज्वर आदि मुद्दती बुखारों में औषधि की दो प्रकार की योजना की जाती है। पहला कार्य रक्त में रहे हुए ज्वरोत्पादक कीटाणुओं का नाश कर सेन्द्रिय विष को जलाकर रक्त को निर्विष करने का है। दूसरा कार्य हृदय आदि इन्द्रियों को भलीभाँति कार्यक्षम बनाने का है। ये दोनों कार्य सुवर्ण भस्म के योग से सहज हो जाते हैं।

सुवर्ण में उत्तम वृष्य गुण है। अत: इस भस्म के सेवन से अण्डकोष की ग्रन्थियाँ बलवान बनती हैं और नपुंसकता दूर होती है।

सुवर्ण का उपयोग नेत्र के पुराने जिद्दी रोगों में बहुत अच्छा होता है। विशेषत: भापणी के नीचे बाजरी के समान दाने हो जाना, नेत्र लाल रहना, नेत्र, हृदय, हाथ, पैर आदि में दाह और व्याकुलता आदि पित्त प्रधान लक्षण अधिक होने पर सुवर्ण भस्म का सेवन मुक्तापिष्ठी और गिलोयसत्व के साथ करना हितकर है।

सुवर्ण का उपयोग वात, पित्तदोष और रस, रक्त, माँस, शुक्र ये दूष्य तथा हृदय, वातवाहिनियाँ, रक्तवाहिनियाँ, नेत्र, श्वसनेन्द्रिय, लघुअन्त्र, बृहदन्त्र, अण्डकोष और मनोदेश इत्यादि स्थानों पर अधिकांश में होता है। (औ. गु. ध. शा.)

गुरु भोजन और अति भोजन करने वालों की अन्त्र में विष संग्रहीत होता है। अत्यधिक बढ़ जाने पर जब अत्यधिक भोजन किया जाता है, तब वह प्रकुपित होकर समग्र भोजन को विष रूप बना देता है। फिर वमन, विरेचन, हिक्का, उदर पीड़ा, देह में स्थान-स्थान पर शीतपित्त के ददौरे, अतिज्वर, घबराहट आदि उपस्थित होते हैं। ऐसे समय पर पहले शोधन (वमन विरेचन) देकर सुवर्ण भस्म १/१६ रत्ती चौलाई की जड़ १ तोले के क्वाथ के साथ दिन में दो बार देने से शेष उपद्रव वमन, हिक्का, निद्रानाश आदि दूर हो जाते हैं। भोजन में मुनक्का का फाण्ट देने से सत्वर लाभ होता है।

सूचना–राजयक्ष्मा रोग में सुवर्ण भस्म की मात्रा १/३२ से १/१६ रत्ती तक देनी चाहिये। यदि इतने से भी ज्वर बढ़ जाय तो मात्रा इससे भी कम करें। अधिक मात्रा देने से क्षय के कीटाणु अधिक परिमाण में एक साथ मरकर ज्वर को बढ़ा देते हैं। जब क्षय रोग में ज्वर तीव्र (९९० डिग्री से अधिक) हो तब स्वर्ण का उपयोग नहीं करना चाहिये।

अमृतीकरण–सुवर्ण भस्म का अमृतीकरण करने पर हल्के वजन वाली मुलायम तथा लाल रंग की सुंदर बन जाती है।

दूसरी विधि–सुवर्ण को शुद्ध करके १ तोला वर्क तैयार करें। पश्चात् सत्यानाशी के रस में २४ घण्टे खरलकर टिकिया बाँधकर धूप में सुखा लेवें। बाद में सम्पुट कर ३० आरण्यकण्डों में फूंक देवें। स्वांग शीतल होने पर पुनः निकालकर सत्यानाशी के रस में खरलकर टिकिया बाँधकर फूंक देवें। इस विधि से ४ से ६ पुट देने से काले रंग की मुलायम स्वर्ण भस्म तैयार हो जाती है। फिर तुलसी के रस के ८ १० फुट देने पर लाल रंग की मुलायम भस्म बन जाती है। (पं. गंगादत्तजी पंत, काशीपुर)

मात्रा और उपयोग–पहली विधि के अनुसार।

भावना दृष्टि से जिन औषधियों की भावना दी जाय, उनके गुण शामिल होते हैं। इस भस्म को लाल बनाना हो तो ४-६ पुट चौलाई के रस के देने चाहिए।

(२) रौप्य भस्म

प्रथम विधि–शुद्ध चाँदी के कंटकवेधी पतरे और शुद्ध पारद दोनों २०-२० तोले लेकर **नीबू के रस** में खरल करें। पारा मिल जाने पर २० तोले शुद्ध गंधक मिलाकर कज्जली करें। पश्चात् २० तोले शुद्ध हरताल मिला **नींबू के रस** में खरलकर गोला बनावे। सूखने पर २० तोले गन्धक को **नींबू के रस** में खरलकर गोले के ऊपर लेप करें। लेप सूखने पर कपरौटी की हुई छोटी हाँडी में मजबूत बन्दकर २ सेर कण्डों की आंच दें। प्रारम्भ में अधिक कण्डों की अग्नि नहीं देनी चाहिये। हाँडी स्वांग शीतल होने पर चाँदी को निकाल पुनः २ तोला हरताल मिला, नींबू के रस में खरलकर गोला बनावें। फिर गोले को सुखा, हाँडी में बन्दकर २ सेर कण्डों के चूरे की आँच दें। इस तरह दसवाँ हिस्सा हरताल मिला-मिलाकर २०-३० पुट देवें। हल्का गुलाबी रंग आने पर अन्त में **घीकुंवार** के रस में खरल करके एक बड़ा गजपुट दें।

सूचना–५-७ पुट होने पर कण्डे का चूरा बढ़ाना चाहिए। २० पुट होने से ५ सेर कण्डे की अग्नि सहन हो सकती है।

अनेक ग्रन्थकारों ने मात्र ३ पुट में ही भस्म हो जाने का लिखा है परन्तु ३ पुट में निरुत्थ भस्म नहीं बन सकती।

मात्रा–१/२ से १ रत्ती तक, दिन में २ बार शहद, मलाई-मिश्री, गोदुग्ध, सितोपलादि चूर्ण, नागकेशर और मक्खन, आंवले का मुरब्बा, त्रिफला अथवा अन्य रोगानुसार अनुपान के साथ दें। रौप्यभस्म के साथ में अभ्रक, लोह या अन्य अनुकूल भस्म को मिलाकर उपयोग करना विशेष लाभदायक है।

अनुपान–१. **प्रमेह पर**–रौप्य भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, अदरक का रस २ माशे और शहद ४ माशे के साथ।

२. **पित्त प्रधान प्रमेह पर**–हरताल मारित रजत भस्म १ रत्ती, दाल-चीनी, इलायची और तेजपात के चूर्ण के साथ।

३. **क्षय में ज्वर**–हरताल मारित रौप्य भस्म को त्रिकटु और शहद के साथ।

४. **तिमिर में**–रौप्य भस्म और लोह भस्म १-१ रत्ती, पीपल २ रत्ती और ६ माशा शहद मिलाकर देवें।

५. **वातशमनार्थ**–अभ्रकभस्म, इलायची, वंशलोचन, गिलोयसत्व और शहद के साथ रौप्यभस्म देवें।

६. **पित्तविकार पर**–आंवले के मुरब्बे के साथ।

७. **वातपित्त विकार पर**–त्रिफला के चूर्ण के साथ।

८. **उन्माद, शिरोरोग, पित्तप्रमेह, ज्वर और दाहपर**–इलायची, घृत और मिश्री के साथ।

९. **२० प्रमेहों पर**–१ तोला ईसबगोल की भूसी को आधे सेर गोदुग्ध में खीर बनाकर उसमें एक छटांक मिश्री मिलावें। फिर इसे खीर के साथ देवें या शहद, मलाई या मक्खन के साथ देकर ऊपर से खीर खिलायें। २२ दिन में प्रमेह दूर होता है। क्षुधा लगने पर भोजन करें, चाहे प्रातः काल भोजन छोड़ दें। मात्र शाम को ही भोजन करें अथवा रौप्य भस्म और शिलाजीत के साथ शहद मिलाकर देवें ऊपर आवंले का स्वरस या हिम पिलावें।

गुणधर्म–यह भस्म नेत्ररोग, क्षय, गुदा के रोग, पित्त-प्रधान कास, जीर्ण प्रमेह, पाण्डु, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, धातुक्षीणता, अपस्मार, हिस्टीरिया और वातपित्त प्रधान विकारों को दूर करती है। मूत्र पिण्डों का शोधन कर उन्हें शुद्ध और बलवान बनाती है। उपदंश अथवा सुजाक हो जाने के पश्चात् अंडकोष और वातवाहिनी नाड़ियों अथवा अन्य स्रोतस् संकुचित होकर नपुंसकता आई हो, तो रौप्यभस्म उत्तम औषध है, यह भस्म वात का शमन करती है। माँसपेशियों और रक्तवाहिनियों का बृंहण करती है एवं आयु, वीर्य, बुद्धि और कांति को बढ़ाती है।

उपयोग–रौप्य भस्म मधुर विपाकवाली, कषाय और अम्ल रसात्मक, शीतल, सारक, लेखन, रुचिप्रद और स्निग्ध है। बृंहण गुण युक्त होने से वात प्रकोप का शमन करती है। यह शमन कार्य कलायखञ्ज और पक्षाघात की जीर्णावस्था में अत्यन्त उत्तम प्रकार का देखने में आता है। रक्तवाहिनीगत वात प्रकोप होने पर शूल, रक्तवाहिनियों का संकोच, रक्त वाहिनी मोटी-सी होना तथा अन्तरायाम, बहिरायाम, खल्ली, कौब्ज आदि वातरोग उत्पन्न होते हैं। इस वातप्रकोप का शमन रौप्य भस्म के सेवन से उत्तम होता है। केवल वात प्रकोप हो तो रौप्य भस्म से लाभ होता है। किन्तु वातप्रकोप के साथ यदि आमानुबन्ध हो तो रौप्य भस्म की अपेक्षा योगराज गूगल का उपयोग विशेष हितकर है। यह अन्तर आयुर्वेद की दृष्टि से अति महत्व का है।

जैसे ताम्र का प्रभाव यकृत, प्लीहा आदि इन्द्रियों में रहे हुए दोष और धातुपर स्पष्ट दीखता है, वैसे ही रौप्य भस्म मूत्रपिण्ड, मस्तिष्क, वात वाहिनियों और वातदोष पर शामक प्रभाव दर्शाती है।

अतिश्रम, अतिवाचन, अतिजागरण, मनन, शोक, भय, आदि का अति योग होने से वातवृद्धि होती है तथा मस्तिष्क की शक्ति भी क्षीण होती है। इन हेतुओं से थकावट, बेहोशी समान भासना, चक्कर आना इत्यादि लक्षण होते हों तो रौप्य भस्म का अच्छा उपयोग होता है, इन कारणों से उत्पन्न शिर दर्द और मस्तिष्क में शूल चलने पर भी रौप्य भस्म लाभदायक है। वेदना कुछ काल तक तीव्र और कुछ काल तक मर्यादा में हो उस पर रौप्य का उपयोग होता है। परन्तु यदि उक्त स्थिति में पित्ताधिक्य हो, पित्त प्रकुपित हुआ हो, तो मुक्तापिष्टी का उपयोग करना चाहिये। अर्थात् वाताधिक्य उपद्रवों में रौप्य और पित्ताधिक्य में मुक्ता देना चाहिये एवं ये लक्षण अस्राभिनोदन (रक्त के दबाव) की वृद्धि होने से हुए हों, तो शिलाजीत का ही उपयोग विशेष हितकर है। शिलाजीत के साथ आरग्वधादि क्वाथ के समान सौम्य विरेचन औषधि भी देनी चाहिये।

रौप्य के उपयोग से वातवाहिनियों के क्षोभ का शमन होता है, जिससे अपस्मार, उन्माद और विशेषत: आक्षेपक की तीव्रावस्था में रौप्य लाभदायक है। स्त्रियों के भूतोन्माद में यदि वातप्रधान लक्षण ज्यादा हो, तो रौप्य भस्म उसे भी शमन करती है।

वातप्रधान और वात-पित्तप्रधान नेत्र रोग में रौप्य भस्म का सेवन गुणदायक है। शोक, क्रोध, श्रम या सूर्य के ताप का अतियोग होने से दृष्टि की विकृति हुई हो तो ऐसे रोगियों के लिए मात्र रौप्य भस्म ही एक औषधि है। नेत्ररोग में हरतालमारित रौप्य भस्म की अपेक्षा सुवर्णमाक्षिक और गन्धक के मिश्रण से या वनौषधि से बनी हुई रौप्य भस्म विशेष लाभदायक है।

क्षयज विशेषत: शुक्रक्षयज व्याधि में वंगभस्म और रौप्यभस्म ये दो औषधियाँ उपयोगी हैं। यदि शुक्रक्षय से वातप्रकोप होकर कमर, पिण्डी आदि स्थानों में खिंचाव या शूल अथवा सामान्य वेदना, मूत्रमार्ग में और शुक्रमार्ग में अतिदाह और व्यथा आदि लक्षण हों, तो रौप्य भस्म का सेवन कराया जाता है। परन्तु शिथिलता, शक्तिपात आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो वंगभस्म उपकारक होती है।

कीटाणुजन्य क्षय में सुवर्ण सर्वोत्तम औषधि है। तथापि सर्वाङ्ग में दाह, विशेषत: नेत्र और मूत्रपिण्डो में जलन आदि लक्षण हों, तो प्रथम रौप्य भस्म दाहशमनार्थ दी जाती है पश्चात् सुवर्ण भस्म देना हितकर है, अथवा दोनों का मिश्रण दिया जाता है।

पित्तज, वातज और वातपित्तज अर्श रोग में रौप्य भस्म का उपयोग किया जाता है। रक्त गिरने पर भी अर्श में रौप्य से अच्छा लाभ पहुँचता है। यदि अर्श के मस्से बहुत बड़े हो गये हों, तो पहले उनको निकलवा देना चाहिये। फिर रौप्य भस्म देवें। रक्तार्श में यदि शूल, वेदना या तीव्र पीड़ा होती हो, तो रौप्यभस्म के सेवन से इनका शमन हो जाता है। यदि दाह बहुत ज्यादा हो और त्वचा भी श्याम, निस्तेज और कठोर हो गई हों, तो गन्धक रसायन सेवन कराना चाहिये।

पित्तज उदर रोग में ज्वर, बार-बार मूर्च्छा, सर्वाङ्ग में दाह, मुंह में जलन का भास, चक्कर, अतिसार, त्वचा और उदर की शिरायें हरी, लाल, पीली हो जाना, ज्यादा प्रस्वेद आना, साथ में त्वचा में दाह और कण्ठ में से धुआं निकलने का भास होना, उदर में जल्दी जल भर जाना या जलोदर हो जाना इत्यादि लक्षणों के साथ वातवाहिनियों और रक्तवाहिनियों में एक प्रकार की विलक्षण व्यथा बनी रहती हो तो रौप्य भस्म का उपयोग करना चाहिये।

अम्लपित्त व्याधि में रौप्य का उपयोग अच्छा होता है। वातज अम्ल पित्त में मुख्यत: उदर या आमाशय की वातवाहिनियों में क्षोभ उत्पन्न हुआ हो, तो रौप्य भस्म का सेवन कराना चाहिये। इस अम्लपित्त व्याधि में थोड़े दिन तक प्रकृति बिल्कुल स्वस्थ रहती है और थोड़े दिनों में पुन: विकार बलपूर्वक उत्पन्न होता है। ऐसे अम्लपित्त रोग में रौप्यभस्म का सेवन लाभदायक है। इसके अतिरिक्त आमाशय की वृद्धि होकर अम्लपित्त रोग हुआ हो और उसमें वेदना तीव्र रहती हो, तो वह भी रौप्यभस्म के सेवन से शमन होती है। परन्तु शिथिलता और इन्द्रियों की अशक्ति अधिक होती है, तो वंगभस्म का सेवन करना चाहिये।

वातप्रधान शुष्ककास में रौप्य भस्म लाभ पहुँचाती है। जब शुष्ककास में पीड़ा, रुक्षता, कण्ठ के भीतर के भाग में भी रुक्ष त्वचा, कण्ठ और उपजिह्वा (घण्टिका) में भी रुक्षता तथा कण्ठ मार्ग में छोटी-छोटी फुन्सियाँ या शोथ-सा हो गया हो, तो रौप्य भस्म का सेवन हितकर है।

पाण्डुरोग में रक्त के भीतर रक्त कणों की न्यूनता हो जाती है। रक्तकणों के न्यून होने में मन पर आघात या मानसिक चिन्ता आदि कारण हों, अथवा वातप्रधान या वातपित्तप्रधान लक्षण प्रतीत होते हों, तो ऐसे पाण्डुरोगियों को रौप्य भस्म का सेवन अति हितकर है।

मानसिक चिंता, शोक या अन्य वातप्रकोपक कारणों से अरुचि उत्पन्न हुई हो, तो रौप्य भस्म का सेवन गुणदायक है। वातप्रकोप के कारण से जठराग्नि मन्द होने पर वात के कार्य को सुव्यवस्थित करने के लिए एवं जठराग्नि की मन्दता दूर करने के लिये रौप्य भस्म उपयोगी है।

शरीर के घटक धीरे-धीरे गलते जाते हों, दूषित होने वाले अवयवों मे दाह और शूल होता हो, उस स्थान की त्वचा काली हो गई हो, क्वचित् ज्वर भी रहता हो या विकार सुजाक, प्रमेह या मधुमेह के उपद्रव रूप हों या अन्य रोगों के उपद्रव रूप हो और वातज या पित्तवातज दुष्टि हो, तो इस कोथ रोग (Gangrene) में रौप्य भस्म का सेवन हितकर है। छोटी इलायची, आँवले, वंशलोचन, अमृतासत्व और शहद से देवें अथवा चोपचीन्यादि चूर्ण के साथ देवें।

यदि फिरंग (उपदंश) और पूयमेह (सुजाक हो जाने के पश्चात् अंडकोष और उसके समीप में रही हुई वातवाहिनियों या अन्य स्रोत संकुचित होकर नपुंसकता आई हो, तो रौप्य भस्म के सेवन से वातवाहिनियों का संकोच दूर होकर अंडकोष में रक्त आदि धातु आवश्यक परिमाण में पहुँच जाती है और नपुंसकता दूर हो जाती है।

रौप्य भस्म बल्य गुण के लिये भी उपयोग में आती है। जब स्रोतसों का संकोच हो जाने से रक्त आदि धातुओं का परिभ्रमण व्यवस्थित रूप से न होता हो, इन्द्रियों को और बाह्य अवयवों को थोड़े-थोड़े श्रम से थकावट आ जाती हो, शक्ति क्षीण हो जाती हो, तब निर्बलता को दूर करने के लिये रौप्य भस्म उत्तम प्रकार से कार्य करती है।

रौप्य भस्म मेध्य (बुद्धिवर्द्धक) है। बुद्धि का कार्य साधक नामक पित्त के योग से सम्यक् होता है। इस पित्त के विकृत होने से बुद्धि के कार्य में अव्यवस्था होती है। ऐसे समय पर साधक पित्त के कार्य को सुव्यवस्थित बनाने के लिये रौप्य भस्म उपयोगी है।

रौप्य भस्म का उपयोग सूतिका ज्वर में बहुत अंशों में होता है। यदि ज्वर मर्यादा में हो, परन्तु सारे शरीर में वेदना, भ्रम, प्रलाप आदि लक्षण ज्यादा परिमाण में हो तो रौप्य भस्म देना हितकर है।

रौप्य भस्म वात और वातपित्त मिश्रित दोष, रस, मांस और अस्थिदूष्य; तथा मूत्रपिण्ड, मस्तिष्क, वातवाहिनी नाड़ियाँ, नेत्र, मांसपेशियाँ, कफस्थान, पचनेन्द्रिय, जननेन्द्रिय, मनोदेश और बुद्धि, इन सब पर विशेष रूप से लाभ पहुँचाती है। (औ. गु. ध. शा.)

✓वात प्रकोप होकर मस्तिष्क में दोष आ जाने पर चक्कर आना, नेत्र में दाह और पुतली भीतर खिंच जायेगी या ऐसी भयंकर पीड़ा होना और मस्तिष्क शूल उपस्थित होना, नेत्र के ऊपर हाथों से दबाने पर अच्छा लगना, बद्धकोष्ठ और अन्त्रवृद्धि न हो, तो शतावर, आँवले, नागरमोथा और गिलोयसत्व के मिश्रण के साथ रौप्य भस्म देनी चाहिये। विशेषतः यह मिश्रण भोजन के प्रारम्भ में घी और शहद से देना विशेष हितावह है।

मधुरा के दूसरे सप्ताह में अन्त्र में प्रदाह विशेष होने पर पतले दस्त होने लगते हैं किसी-किसी को मधुरा दूर होने पर भी अतिसार रह जाता है। फिर आहार-विहार में भी विशेष नहीं सम्हालें तो अधिक भोजन करने और ज्यादा फिरते रहने पर मल मूत्र और शुक्र को धारण करने की शक्ति शिथिल हो जाती है। दिन में ५-७ बार पतले दस्त लगते हैं और बार-बार पेशाब करना पड़ता है। शुक्र भी पतला होकर मूत्र के साथ जाता रहता है। इस विकार पर रौप्य भस्म, रससिंदूर मिलाकर शतावरी घृत के साथ भोजन के प्रारम्भ में दिन में २ बार देने से विकृति दूर हो जाती है।

कभी प्रसूता के बालक की प्रकृति अस्वस्थ हो जाने पर माता को भी मानसिक आघात पहुँचकर उन्माद का असर हो जाता है। प्रलाप, रुदन, भय लगना, हाथ-पैरों में कम्प, निस्तेज मुखमण्डल, उदासीनता, अनिमेष दृष्टि, भोजन की इच्छा न होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर रौप्य १/४ रत्ती मात्रा में दिन में ३ बार ब्राह्मी शर्बत या आँवले के मुरब्बे के साथ देते रहने से विकार का शमन हो जाता है।

दूसरी विधि–शुद्ध चाँदी के वर्क ५ तोले, शुद्ध पारद १० तोले, शुद्ध गन्धक २० तोला और शुद्ध हरताल ५ तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर आतशी शीशी में भर बालुका यंत्र में रखकर तीन दिन तक अग्नि देने से पेंदे में चाँदी की भस्म और गले में तालसिन्दूर बन जाता है। नीचे से मिली हुई चाँदी की भस्म को जल से धोकर गुलाब के फूलों के रस में खरलकर १६ इंच के खड्डे में फूँक दें। इस तरह गुलाब के अर्क के ४ से ६ (५० पुट तक) देने से उत्तम गुलाबी रंग की भस्म बन जायेगी। (रसा.सा.)

मात्रा और उपयोग–पहली विधि के अनुसार।

(३) ताम्र भस्म

विधि–शोधन प्रकरण में लिखे अनुसार अच्छी रीति से शुद्ध किये हुए ताँबे को कूटकर बारीक चूर्ण करें। फिर चौथा हिस्सा शुद्ध पारद मिलाकर तीन घण्टे नींबू के रस में खरल करें। पश्चात् ताँबे के वजन से दुगुनी शुद्ध गन्धक की नींबू के रस में घुटाई करें। उसमें इस पारदयुक्त

ताँबे के चूर्ण को मिलाकर गोला बनावें। पश्चात् मीनाक्षी (मछेछी), खट्टा चूका (चांगेरी) अथवा साँठी को पीसकर चटनी बनावें। इस चटनी का तांबे के गोले पर दो-दो अंगुल मोटा लेप करें। फिर गोले को हाँडी में रख, ऊपर रेत भर, मुँह पर ढक्कन ढककर राख और नमक से संधि बन्द करें। तत्पश्चात् चूल्हे पर चढ़ाकर बारह घण्टे तक आँच दें। पहले मन्द पीछे कुछ तेज अन्त में खूब तेज करें। १२ घण्टे बाद स्वांग शीतल होने पर हांडी को खोल, सम्हालकर रेत और कल्क की राख को दूरकर, ताँबे की भस्म के गोले को निकालें। फिर ६ घण्टे जमीकन्द के रस में खरलकर गोला बना सूरण के भीतर रख, कपड़मिट्टी कर गजपुट में आंच देने से उत्तम प्रकार की मोर के कण्ठ के रंग जैसी, नीली ताम्र भस्म बन जाती है। जमीकन्द के अभाव में नींबू के रस में गोला बनाकर फूंक देवें। (भा. प्रकाश)

वक्तव्य-अनुभव से विदित हुआ है कि इस ताम्र भस्म को दही के साथ खरलकर २० पुट तथा जमीकन्द के रस और सफेद पुनर्नवा के ४०-४० पुट देकर १०० पुटी ताम्रभस्म बनाने से तत्काल गुण दर्शाती है।

ताम्र में स्वभाव सिद्ध विष (वामक धर्म) रहा है। इस हेतु से ताम्रभस्म शतपुटी होने पर भी इसके उग्र स्वभाव का शमन नहीं होता। अतः इसका सूक्ष्म कल्प सेवन कराया जाय, तो सुपाच्य होकर प्रकृति को अधिक अनुकूल होती है। सूक्ष्म कल्प बनाने के लिए १ तोला शतपुटी ताम्रभस्म के साथ ९ तोले दुग्ध शर्करा (१ तोले सुवर्णमाक्षिक सत्व भस्म) मिलाकर ७ दिन खरल करें। फिर उसमें से १ तोला निकाल अन्य दुग्ध शर्करा ९ तोले डालकर ३ दिन खरल करें। पुनः तीसरी बार द्वितीय बार खरल हुई औषधि में से एक तोले को ९ तोले दुग्ध शर्करा के साथ घोटें। इस तरह ६ बार करने पर दश लक्षांश (७×) मात्रा का सूक्ष्म कल्प बनता है। इसका उपयोग २-२ रत्ती मात्रा में दिन में ३ बार करें। इस तरह यह निर्दोष और निर्भय आशुफलप्रद सूक्ष्म कल्प बनता है।

मात्रा-१/४ से १/२ रत्ती दिन में २ बार शहद, पीपल-शहद, पुनर्नवा क्वाथ, अनार दाने का स्वरस, नींबू का रस, दही, कुमार्यासव, शिलाजीत या रोगानुसार अनुपान से देवें।

अनुपान १. कफप्रधान सन्निपात पर-अदरक के रस और मिर्च के साथ।

२. **हिचकी पर**-नींबू का रस या १ रत्ती काकड़ासिंगी और २ रत्ती पीपल के चूर्ण के साथ मिलाकर शहद में दें।

३. **आमसंग्रहणी पर**-सोंठ के चूर्ण और घृत के साथ।

४. **आमातिसार पर**-आंवले का चूर्ण २ माशे और पीपल ३ रत्ती के साथ या सोंठ के चूर्ण और मट्ठे के साथ।

५. **कफ-प्रमेह पर**-गूलर फल के चूर्ण के साथ।

६. **यकृत दाह पर**-मीठे अनार के रस के साथ।

७. **अग्निमान्द्य पर**-पीपल और शहद या हल्दी के साथ खिलाकर ऊपर अदरक का रस पिलावें।

८. **जलोदर में**-शहद के साथ चाटकर ऊपर चित्रकमूल का क्वाथ, कांजी या हल्दी का क्वाथ पिलावें।

९. **गुल्म पर**-अदरक या नागरबेल के पान का रस अथवा कुमार्यासव के साथ दें।

१०. **गुल्म, वातजशूल और विसूचिका में**-त्रिकटु और पञ्चलवण के साथ, अथवा १/१६ रत्ती शुद्ध बच्छनाभ और ४ रत्ती त्रिकटु के साथ।

११. **औदुम्बर कुष्ठपर**-ताम्रभस्म, अपामार्ग का क्षार, सज्जीखार और जवाखार चारों को समभाग मिलार्कर २-२ रत्ती, दिन में ३ बार, शीतल जल के साथ ४९ दिन तक दें। कुष्ठरोगी उड़द, मछली और दूध, दाह करने वाली वस्तुएं, तथा पक्के भोजन का त्याग करें।

१२. विषमज्वर (एकाहिक, द्वितीयक, तृतीयक और चातुर्थिक)पर ताम्र भस्म १/२ रत्ती और शुद्ध वच्छनाभ १ चावल भर मिलाकर शहद के साथ या ताम्र भस्म कालीमिर्च और तुलसी के रस के साथ।

१३. **शूल पर**-ताम्रभस्म और रससिंदूर को अदरक के रस और शहद में दें। कृमिजन्य शूल हो तो, ऊपर से शक्कर मिलाकर तुलसी का क्वाथ पिलावें।

१४. **मलावरोध पर**-शहद में मिलाकर चटावें और ऊपर से जौ या गेहूँ की भूसी का क्वाथ पिला दें।

१५. **त्रिदोषज भंगदर और व्रण पर**-घृत और शहद के साथ।

१६. **अम्लपित्त में**-शक्कर या शहद के साथ देकर मुनक्का और हरड़ १-१ तोले का क्वाथ पिलावें, जिससे २-३ दस्त आ जाय।

१७. सब प्रकार के कुष्ठ, शीतपित्त, उदर्द, खाज, तीक्ष्ण पीड़ासहित कफप्रधान शोथ और कुष्ठ (त्वचा पर काले धब्बे)पर-बाबची के चूर्ण और शहद के साथ।

१८. **मूर्च्छारोग में**-खस और केशर के साथ देकर शीतल जल पिलावें अथवा घृत के साथ दिन में तीन बार देकर जवासा का क्वाथ पिलावें।

१९. **मूत्रकृच्छ में**-इलायची, भाँग और शहद के साथ।

२०. **तीव्र वातजशूल, गुल्म और अपचन पर**-भुनी-हींग, त्रिकटु, मुलहठी, काला नमक और इमली का क्षार, सब एक-एक रत्ती मिला, चूर्ण करके उसके साथ मिलाकर निवाये जल से देवें अथवा बच्छनाभ चौथाई रत्ती, त्रिकटु दो रत्ती मिला नींबू के रस और जल के साथ देवें।

२१. **वातज प्रमेह पर**–गिलोयसत्व, मिश्री और शहद से।

२२. **प्लीहोदर, यकृतोदर, पित्त-शोथ और परिणामशूल पर**–कुमार्यासव, शहद-पीपल या पुनर्नवादि क्वाथ से।

२३. **सब प्रकार के शूल पर**–ताम्रभस्म १/२ रत्ती, शुद्ध गन्धक १ रत्ती और इमली का क्षार १ माशा मिला, गोघृत के साथ चटाकर ऊपर से निवाया जल पिलावें।

२४. **पित्ताश्मरी पर**–करेले के पत्तों के रस के साथ दें।

२५. **हृदय, यकृत् और मूत्रपिण्ड की क्रिया विकृति पर**–पुनर्नवादि क्वाथ के साथ।

गुणधर्म–ताम्रभस्म रस में कषाय, मधुर, तिक्त और अम्ल, विपाक में कटु (चरपरी), सारक, पित्तहर, श्लेष्मनाशक, शीतवीर्य, लघु और लेखन है एवं उदररोग, प्रमेह, अजीर्ण, ज्वर, सन्निपात, कफोदर, प्लीहोदर, यकृद्विकार, परिणामशूल, दाह, हिचकी, अफारा, विबन्ध, उदरशूल, अम्लपित्त, उदरकृमि, गुल्म, अतिसार, संग्रहणी, पाण्डु, पीनस, मांसार्बुद कर्कस्फोट (Cancers and tumours) इत्यादि रोगों को ताम्र भस्म नष्ट करती है।

उपयोग–ताम्र भस्म का मुख्य कार्य शरीर के अनेक प्रकार के पिण्डों की वृद्धि होने पर उनको कम कर पिण्डों को सुदृढ़ बनाने का है। इनमें भी विशेषतः यकृत् और प्लीहा की वृद्धि होने पर इसका अच्छा उपयोग होता है। इसके सेवन से बढ़े हुए घटक झरने लगते हैं, और मृतप्राय घटकों के सजीव घटकों से पृथक् होने पर यह सहायता पहुँचाती है। इनके सेवन करने पर इसे यकृत् और इसके अन्य अवयवों में जाना पड़ता है। यकृत् में विशेषतः पित्ताशय पर इसका उपयोग होता है। पित्ताशय संकुचित हुआ हो या पित्त अधिक गाढ़ा हो गया हो, या पित्ताशय के भीतर के भाग में विकृति हुई हो, इनमें से किसी कारण से उदर में व्यथा होती हो, तो इसका सेवन कराना अति लाभदायक है। ताम्र भस्म के योग से यकृत् पित्त का स्राव होकर उसमें नियमितता आ जाती है। यदि पित्ताशय में यकृत् पित्त के कण या अश्मरी जम जाने से उदर में व्यथा होती हो तो, वह इस भस्म के सेवन से दूर होती है। **इस भस्म का सेवन करेले के पत्तों के रस के साथ करने से** पित्त के जमे हुए कंकड़ (पित्ताश्मरी) धीरे-धीरे टूटने लगते हैं और उदर-व्यथा शमन होती है। यकृत के अनेक विकारों में विशेषतः यकृत के घटकों की वृद्धि होने पर इस भस्म का उपयोग करना चाहिये।

प्लीहा वृद्धि में ताम्र का सेवन अति लाभदायक है। गुल्म तथा अष्ठीला आदि विकारों में गाँठ का क्षरण करने के लिये ताम्र भस्म का उपयोग होता है। गुल्म पर ताम्र का उपयोग कुमार्यासव या अन्य सारक या सूक्ष्म-रेचक औषधि के साथ करना लाभदायक है। एवं आमाशय में उत्पन्न हुए कर्कस्फोट में भी यह हितकर है। मांसार्बुद में यदि वात-प्रधान अथवा कफ-प्रधान दोष हो तो, ताम्र भस्म देनी चाहिये और यदि पित्त प्रधान दोष ग्रन्थि में लीन हुआ हो तो वंगभस्म देनी चाहिये। ताम्र भस्म देने से दोष का स्राव होता है किन्तु रक्तस्राव होता हो तो, ताम्र भस्म नहीं देनी चाहिये। (ऐसे समय पर वंग भस्म ही दी जाती है।)

साधारणतः उदर रोग की उत्पत्ति हृदय, यकृत् और मूत्रपिण्ड (गुरदा) इन तीन स्थानों में विकृति होने पर होती है। इन स्थानों की कफ-प्रधान या कफवात प्रधान विकृतियों को दूर करने के लिये ताम्र भस्म दी जाती है। ताम्र में स्वभावतः मूत्रल गुण नहीं है, अर्थात् जलोदर जैसे रोग में सञ्चित जल को शरीर के बाहर निकालने में इसका स्वतंत्र उपयोग नहीं होता, इसलिए यह पुनर्नवा या अन्य मूत्रल औषध के साथ दी जाती है। विशेषतः ताम्र भस्म के साथ शामक (Sedative) मूत्रल एवं विरेचक औषधि देकर सञ्चित जल को बाहर निकालने का प्रयत्न करना चाहिये। कभी-कभी पित्तप्रधान प्रकृति वालों को ताम्र भस्म से ही विरेचन हो जाता है। यदि इससे विरेचन होते हों तो, पित्त-वृद्धि होकर या पित्त में तीक्ष्णता आदि गुण बढ़ करके होते हैं। अतः पित्त अच्छी रीति से निकालने और पतले जल जैसे विरेचन होने के लिये अमलतास की फली का गूदा या कुटकी की समान विरेचन औषधि का अनुपान देना चाहिये।

ताम्र भस्म के सेवन से रक्त का दबाव बढ़ता है, जिससे अनेकों के कंठ या नाक में से रक्त गिरने लगता है। इसी हेतु से मूत्रपिण्ड विकृति से होने वाले जलोदर में ताम्र भस्म से मूत्रपिण्ड का शोथ बढ़ने लगता है, मूत्रोत्सर्ग क्रिया कम होती है, फिर उदर में जल का संचय अधिक होता है। इसलिए ऐसे समय पर इस भस्म का उपयोग नहीं करना चाहिये। केवल मूत्र पिण्ड के पूयवृक्क (गुरदे में से पीप निकलना) विकार में ताम्र भस्म के उपयोग से पूय की कमी होती है और शनैः शनैः मूत्र पिण्ड पूर्व स्थिति में आ जाता है। अतः इस रोग में इस भस्म का प्रयोग बहुत कम मात्रा में करना चाहिये। हो सके, तब तक वृक्क के रोगों में इसका उपयोग न करना ही अच्छा माना जाता है। उदर रोगों में यकृतोदर, कफोदर, प्लीहोदर इत्यादि में कफप्रधान या कफवातप्रधान दुष्टि हो, तो ताम्र भस्म का उपयोग अच्छी रीति से हो सकता है।

विसूचिका में अनेक दस्त हो जाने पर हाथ पैर की नाड़ियों में अति खिंचाव होने लगता है और पिण्डलियों में भयंकर पीड़ा होती है। वह ताम्र के सेवन से तुरन्त दूर होती है ऐसे समय पर १/८ रत्ती ताम्र भस्म का प्रयोग आधे-आधे घण्टे पर करना चाहिये। यदि साथ-साथ वमन, शूल, भ्रम, ये लक्षण हों तो, वे भी इस योग से कम हो जाते हैं। नाड़ियों का खिंचाव दूर होने पर सुवर्ण माक्षिक भस्म, शंख भस्म, कामदुधा रस आदि वमन निवारक औषधियाँ देनी चाहिये।

ताम्र भस्म का उपयोग अम्लपित्त व्याधि में होता है। बिल्कुल थोड़े परिमाण में अतिशय गरमे जलती हुई पित्त की वमन मात्र होती हो,

चक्कर, उदरपीड़ा ये उपद्रव अति बलिष्ठ और अति त्रासदायक हो, तो ताम्र भस्म का उपयोग हितकर है। यदि अम्लपित्त में बड़ी-बड़ी वमन, अकस्मात् होती हो, तो सुवर्णमाक्षिक देनी चाहिये। वमन कड़वी, खट्टी और मीठी हो, एवं पित्त का संचय अधिक हुआ हो तो, सुवर्णमाक्षिक भस्म दी जाती है। ताम्र भस्म का सेवन कराने में अम्लपित्त के पित्त का स्राव कम, परन्तु पित्त की तीव्रता, तीक्ष्णता और उग्रता अत्यधिक होनी चाहिये। स्मरण रहे कि, पित्तस्राव कराने के लिये ही ताम्र भस्म दी जाती है। यह एक प्रकार की पित्तस्राव कराने वाली विरेचक औषधि है। इसका उपयोग सम्हालकर करना चाहिये और इसके साथ घृत आदि स्नेह देना चाहिये। यकृत्पित्त का स्राव कम होने पर एक प्रकार का अतिसार (श्वेत वर्ण का मल) हो जाता है, उसमें ताम्र भस्म का सेवन हितकारक है।

मदोत्पादक (Deliriant) विष या कृत्रिम विष (गर) जो मदोत्पादक हो या सेन्द्रिय विष उदर में आ जाय तो उसका संशोधन करने के लिये ताम्र भस्म का सेवन हितकर है। सेन्द्रिय विष से यदि मद उत्पन्न होता हो तो भी ताम्र भस्म का सेवन हितकर है। कफप्रधान दोषों में ताम्र भस्म से आमाशय और पक्वाशय का संशोधन उत्तम प्रकार से हो जाता है। इसलिए कफ प्रधान विकृति में शोधन आवश्यक होने पर ताम्र भस्म का उपयोग करना चाहिये।

अन्नद्रवशूल किंवा अन्य कोष्ठशूल में अष्ठीला आदि उदरगत ग्रन्थि बढ़ी हो या, उदरगत ग्रन्थि शूल का कारण हो तो, ताम्रभस्म देनी चाहिये। इसके सेवन से कठिन और उन्नत ग्रन्थि शनैः शनैः छोटी हो जाती है।

पाण्डुरोग में प्लीहा और यकृत्, इन दोनों की अथवा इन दोनों में से एक की वृद्धि होने पर ताम्र भस्म की योजना करनी चाहिये। पाण्डुवर्ण की अपेक्षा निस्तेजता अधिक हो, त्वचा चिकनी सी भासती हो, मुँह पर शोथ का आभास होता हो, और मुख का वर्ण श्वेत हो गया हो, समस्त शरीर से थोड़ा-थोड़ा शोथ, इनमें भी यकृत प्लीहा विकृति कारण हो, तथा पित्त क्षीण हो और कफ वृद्धि हो, तो ताम्र भस्म देनी चाहिये।

कफज गुल्म अथवा अष्ठीला की वृद्धि बहुत जल्दी हो गई हो, तो ताम्र भस्म का उपयोग करना चाहिये।

मांस खाने वालों को होने वाले प्रमेह रोग में अन्य औषधियों की अपेक्षा ताम्र भस्म विशेष हितकर है। ताम्र भस्म के योग से मांस घटकों को पचाने के लिए उपयोगी पित्त की उत्पत्ति होती है। इस तरह ताम्र भस्म का उपयोग प्रमेह रोग में भी होता है।

ग्रहणी विकार में पित्त की उत्पत्ति कम होती है और जो पित्त उत्पन्न होता है उसमें भी तीक्ष्णत्व कम होने से निर्बल होता है। ऐसी अवस्था में जल में मिले हुए बाजरी के आटे के समान सफेद, मैले रंग का और लेसदार दस्त होता है, दस्त में दुर्गन्ध आती है। उबाक आती है, कभी वमन होती है, वह भी लेसदार, फीकी और दुर्गन्धवाली, ऐसे विकार में ताम्र भस्म का प्रयोग बहुत अच्छा होता है।

लौकिक व्यवहार में ताम्र भस्म नपुंसकता नाशक मानी गई है, परन्तु ऐसा गुण अनुभव में नहीं आया।

ताम्र भस्म का कार्य–ताम्र भस्म कफ दोष, रस, रक्त, मांस ये दूष्य, तथा यकृत्, प्लीहा, ग्रहणी, पक्वाशय, बृहदन्त्र और कोष्ठग्रन्थि पर लाभ पहुँचाती है। इसके सेवन से पित्तस्राव अधिक होता है। पित्त में तीक्ष्ण और उष्ण गुण बढ़ते हैं। रक्ताभिसरण क्रिया जोर से होने लगती है। रक्तस्राव ज्यादा होता है। यह कफ दोष पर अधिक उपयुक्त कार्य करती है। (औ. गु. ध.शा.)

किसी कारणवश रक्त में विकार होकर मांस ग्रन्थियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। ये ग्रन्थियाँ भिन्न-भिन्न स्थानों में हाथ, पैर, मस्तिष्क, उदर आदि पर हो जाती है। ये दुःखती नहीं किन्तु धीरे-धीरे बढ़ती जाती और नयी-नयी उत्पन्न होती रहती हैं। इन ग्रन्थियों के नाश और नयी उत्पत्ति को रोकने के लिये ताम्र भस्म अर्कक्षीर चूर्ण (आक के दुग्ध को सूखाकर किये हुए चूर्ण) ४-४ रत्ती के साथ दिन में ३ बार शहद में मिलाकर देते रहने और बाहर बच्छनाभ ३ माशे, बच और राई १-१ माशे और कर्पूर ५ रत्ती के चूर्ण को गोंद के जल में मिलाकर लेप करते रहने से १-२ मास में ग्रन्थि नष्ट हो जाती है।

सूचना–ताम्र भस्म, अत्यन्त उग्र, तीक्ष्ण, उष्ण, भेदी और पित्तस्रावी है। अतः इसका प्रयोग अति सम्हालकर करना चाहिये। क्वचित् इसके सेवन से पित्तस्राव अधिक होकर अतिसार हो जाय, तो भय मानकर उसे बन्द न करें। जिस रोगी को शुष्क कास, दाह या वृक्कप्रदाह और जिसे शांत निद्रा न आती हो उसे यह भस्म नहीं देनी चाहिये।

ताम्र भस्म निरुत्थ ही उपयोग में लेनी चाहिये। कच्ची भस्म का उपयोग कदापि नहीं करना चाहिये। कच्ची भस्म के सेवन से भ्रम, प्रलाप, वमन, क्वचित् ज्वर, अतिसार, शूल और रक्तस्राव आदि विकार उत्पन्न होते हैं। यदि उग्रतादि दोषों के हेतु से उत्पन्न विकारों को शमन करने की आवश्यकता हो तो, मुक्तापिष्टी अति लाभदायक है।

ताम्र भस्म सेवन काल में मिर्च आदि चरपरी वस्तुएं, तैल, खटाई, सम्पूर्ण पित्तवर्द्धक वस्तुएँ, अग्निसेवन, सूर्य के ताप में घूमना और रोग विरुद्ध अपथ्य भोजन, इत्यादि का त्याग करें एवं बालक, वृद्ध, क्षयरोगी, सूतिका, गर्भिणी, रक्तार्श के रोगी और मूत्रपिण्ड के सूजन युक्त उदर रोगी को ताम्र भस्म न दें।

ताम्र भस्म की परीक्षा–थोड़े से दही में ताम्र भस्म मिलाकर कांच की शीशी में १२ घण्टे रहने दें। फिर दही के रंग में नीलापन दीखे, तो भस्म को दोष वाली समझकर सूरण अथवा अन्य औषध के रस में खरल करके पुनः गजपुट में फूंक देनी चाहिये।

ताम्र भस्म सूर्य की किरणों द्वारा देखने से चन्द्रिका रहित मालूम होने पर पूर्णपक्व जाने। चन्द्रिका हों, तो और २-३ पुट देवें। सदोष

भस्म से वमन, रक्तविकार, कुष्ठ आदि विविध विकार उत्पन्न होते हैं।

दूसरी विधि–नीलाथोथा एक सेर लें। बारीक पीसकर एक लोहे की कड़ाही में डालें। फिर उसे बथुवे के रस में भिगो देंवे २४ घण्टे बाद रस को निकाल ताम्र खुरचकर निकाल लेवें। फिर नीलाथोथा और जो रस निकला है उसे पुनः कड़ाही में डाल साथ में बथुवे का और रस मिला देवें, २४ घण्टे बाद फिर निकालें। इस तरह ३-४ बार करें। प्रायः एक सेर नीलाथोथा में से आधा पाव ताम्र निकलता है फिर ताम्र को खरल में नींबू के रस के साथ ३ घण्टे तक घोंटकर धो लेवें। पश्चात् आक के दूध में खरल कर टिकिया बनाकर सुखा लें। फिर उन टिकियाओं को थूहर के डण्डे में रख, कपड़मिट्टी कर गजपुट में फूंक दें। पश्चात् भस्म को निकाल वनभोगी के रस में खरलकर टिकिया बनावें, फिर उसकी लुगदी रख, कपड़-मिट्टी कर गजपुट में फूंक देने से ताम्र भस्म मैले सफेद रङ्ग की हो जाती है।

या बथुवे के समान नीले थोथे को ४ गुने त्रिफला के साथ १६ गुने जल में भिगोकर ४० दिन तक तेज सूर्य के ताप में रख देवें। जल घट जाने पर पुनः मिलावें। पश्चात् जल को स्याही रूप से या व्रण प्रक्षालन के कार्य में लेवें, और कड़ाही में लगे हुए ताम्र की भस्म बना लेवें।

मात्रा व उपयोग–पहली विधि के अनुसार।

तीसरी विधि–शुद्ध ताम्रचूर्ण, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक, तीनों २०-२० तोले, शुद्ध हरताल १० तोले और शुद्ध मैनसिल ५ तोले लें। पहले ताम्र और पारद को नींबू के रस के साथ खरल करें। ताम्र चूर्ण के श्वेत बनने पर जल से धो गन्धक मिलाकर कज्जली करें। पश्चात् हरताल और मैनसिल को मिलाकर खरल करें। फिर सराव में भरकर मजबूत कपड़मिट्टी करें। इस संपुट को धूप में सुखा बालुका यन्त्र में रख, मुंह को अच्छी तरह बन्द कर चूल्हे पर चढ़ाकर १२ घण्टे अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर यन्त्र में से संपुट को निकाले। पश्चात् सम्हालकर भस्म के गोले को निकालकर खरल कर लें। इस भस्म को "सोमनाथी ताम्र भस्म" कहते हैं। (र.र.स.)

वक्तव्य–इस सोमनाथी ताम्रभस्म को जमीकन्द, दही और सफेद पुनर्नवा के क्रमशः १०-१० पुट दे देने से अधिकतर लाभ देने वाली निर्दोष भस्म बनती है।

मात्रा–१/२ से १ रत्ती दिन में २ बार शहद-पीपल जवाखार और घृत अथवा अदरक के रस के साथ दें।

गुण–यह भस्म परिमाणशूल, कास, श्वास, मन्दाग्नि, गुदा के रोग, अनेक प्रकार के पाण्डु, प्लीहावृद्धि, उरःक्षत, मलमूत्रावरोध, उदर-रोग, वात रक्त और कफ-प्रधान रोगों को नष्ट करती है। शेष गुण प्रथम विधि के अनुसार है।

सूचना–इस भस्म का उपयोग परीक्षा करने पर करे। सदोष हो, तो फिर से पकावें।

(४) लोह भस्म

प्रथम विधि–शुद्ध लोह चूर्ण (या १० पुटी लोह भस्म) २० तोले, सफेद सङ्खिया, तबकिया हरताल, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद, प्रत्येक ४-४ तोले और शुद्ध कर्पूर २ तोले ले। पहले लोह चूर्ण या लोहभस्म के साथ सोमल १ तोले और कर्पूर १॥ माशे मिला घी कुँवार के रस में ३ घण्टे खरलकर, २-२ तोले की टिकिया बाँधकर तेज धूप में सुखावें। पश्चात् मिट्टी के कूँजे में बन्दकर ५ सेर कण्डों की आँच दें। दूसरी बार उसी लोह में हरताल १ तोला और कर्पूर १॥ माशा मिला घीकुंवार के रस में ३ घण्टे तक खरलकर ५ सेर कण्डों में फूंक देवें। तीसरी बार गन्धक १ तोला और कर्पूर १॥ माशा मिला, घीकुँवार के रस में खरलकर टिकिया बाँधकर उपरोक्त प्रकार से आँच दें। चौथी बार पारद १ तोला और कर्पूर १॥ माशा मिलाकर उपरोक्त रीति से खरल करके आंच दें। इसी क्रम में १६ बार आँच दें। फिर भस्म को लोहे की कड़ाही में डाल, समभाग वीरबहुँटी, मिलाकर नीचे मन्द-मन्द आँच दें और हिलाते रहें। जब वीरबहुँटी जल जायँ, जब भस्म को तवे से ढक दें और तीन घन्टे तक तीव्र अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल लें। यह लोहभस्म अति मुलायम खील हो जाती है। इस भस्म को अनेक चिकित्सकों ने बाजीकरण लोहभस्म भी नाम दिया है। (अ.यो.)

सूचना–१६ पुटों के स्थान में ६४ पुट दिये जायँ तो भस्म विशेष लाभदायक बनती है। वीरबहुँटी में कंकड़, मिट्टी या अभ्रक मिला हो तो निकाल देना चाहिये। अन्यथा भस्म दूषित हो जायेगी।

भूतकाल में लोहा बनता था, उसकी भस्म विशेषतः वारितर हो जाती थी। वर्तमान में विदेश से विशेष शुद्ध लोहा आता है। उसकी भस्म वारितर नहीं बनती। अतः वारितर न होने पर सदोष नहीं माननी चाहिए।

मात्रा–४ चांवल से १ रत्ती तक। रोज सुबह ४० दिन तक, मक्खन अथवा मलाई से लपेटकर खावें, ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें। अथवा लोहभस्म, पूर्ण चन्द्रोदय रस (या रससिंदूर) और वृद्धदण्ड चूर्ण मिलाकर मिश्री मिले दूध के साथ दिन में दो बार देवें या लोह भस्म, शुद्ध कुचिला के चूर्ण १ रत्ती और अश्वगन्धादि चूर्ण २ माशे के साथ मिलाकर दूध के साथ देवें।

उपयोग–यह लोहभस्म नपुसंकता, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, मूत्रदोष, पाण्डु और शारीरिक निर्बलता को दूर करने में अक्सीर है। इसके अतिरिक्त यकृत्वृद्धि, प्लीहावृद्धि आमाशय वृद्धि को भी दूर करती है।

लोहभस्म का प्रभाव रक्त पर सत्वर पहुँचता है, जिससे पाण्डु रोगादि अनेक व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। परन्तु इस भस्म में भावना ऐसे उग्र द्रव्यों की दी गई है, कि यह भस्म रक्ताभिसरण क्रिया में शिथिलताजन्य या शुक्रोत्पादक कोषों की निर्बलता के हेतु से नपुंसकता आई हो, तो यह विशेष लाभदायक होती है। यह भस्म अण्डकोष, वीर्यस्थान, शुक्रवाहिनियों और अन्य नसों को कुछ उत्तेजना देती है।

लोहभस्म के गुणों का विशेष विवेचन दूसरी विधि के साथ किया गया है। वह इस भस्म के लिए भी समझ लेना चाहिये।

शास्त्रकारों ने लोह भस्म के विवेचन में लिखा है–

आयुः प्रदाता बलवीर्यकर्त्ता रोगापहर्त्ता मदनस्य कर्त्ता। अयः समानं न हि किंचिदस्ति रसायनं श्रेष्ठतमं नराणाम्॥

लोहभस्म आयुवर्द्धक, बल और वीर्य को बढ़ाने वाली, रोगों का नाश करने वाली और कामोत्तेजक गुण वाली है। इस लोहभस्म के समान उत्तम रसायन रूप अन्य एक भी औषधि मनुष्यों के लिए नहीं है।

अपथ्य–लोहभस्म अथवा लोहभस्म मिश्रित औषध सेवनकाल में तिल का तैल, उरद के बने हुए पदार्थ, राई, शराब, खट्टे पदार्थ, अनूप देश के जीवों का मांस, ककारपूर्वक द्रव्य (कूष्माण्ड, ककड़ी, कलिंग अर्थात् तरबूज, करौंदा, कशेरू, करीर, ककोड़ा, कर्कन्धु अर्थात् छोटे बेर, कांजी, कुलथी, कड़वा तैल, करेला, कैथ, कासल शाक अर्थात् नाड़ीशाक, कुक्कुट अर्थात् मुर्गे का मांस और कंगनी आदि) सूर्य के ताप में भ्रमण, मैथुन, धुम्रपान, विदाही पदार्थ, तेज मिर्च, लहशुन, प्रकृति-विरुद्ध, देशविरुद्ध, कालविरुद्ध संयोग के विरुद्ध या रोग में अपथ्य हो, ऐसे आहार-विहारों का त्याग करना चाहिये।

सूचना–६४ पुटी लोह भस्म के उग्र होने से इसका उपयोग उष्णकाल में और अति तेज पित्तवालों के लिए नहीं करना चाहिये या सम्हालकर करना चाहिये। इस भस्म के सेवन करने वालों को दूध घृत आदि पौष्टिक पदार्थ ज्यादा मात्रा में लेने चाहिए।

दूसरी विधि–शुद्ध लोहे का बारीक चूर्ण ४८ तोला और बारहवां भाग सिंगरफ मिला घीकुंवार के रस में १२ घण्टे घुटाईकर, २-२ तोले की टिकियां बाँधकर तेज धूप में सूखावें। फिर सरावसम्पुट में बन्द कर के गजपुट में फूँक दें। इस तरह १२ बार गजपुट दें। बराबर सिंगरफ मिलाते जायें यदि लोह चूर्ण मोटा हो तो, पहले त्रिफला, गोमूत्र और केले अथवा घीकुंवार के रस के ४-६ पुट देना चाहिये। फिर सिंगरफ के पुट देवें। अन्त में जामुन की छाल के क्वाथ के ३ पुट देने से नीले रङ्ग की उत्तम लोह भस्म बनती है।

मात्रा–१ रत्ती से २ रत्ती तक दिन में २ बार, पीपल और शहद, मक्खन मिश्री, त्रिफला, घृत-मिश्री मलाई या च्यवनप्राशावलेह में मिला चाटकर ऊपर से मिश्री मिला हुआ दूध पीवें अथवा रोगानुसार अन्य अनुपान के साथ लें। लोह भस्म में संग्राही गुण होने से मलावरोध हो, तो च्यवनप्राशावलेह या त्रिफला के साथ देना चाहिए।

अनुपान १. प्रमेहपर–हरड़ और गोखरू २-२ माशे, तालमखाने ४ माशे तथा मिश्री ६ माशे के साथ दें। ऊपर शीतल जल पिलावें या ३ माशे त्रिफला के चूर्ण के साथ मिला शहद के साथ देकर गिलोय का स्वरस पिलावें।

२. **दारुण अश्मरीपर**–शहद के साथ देवें ऊपर से ४ तोले गोखरू का क्वाथ पिलावें।

३. **कफयुक्त श्वास**–रससिंदूर मिश्री या त्रिकटु शहद से।

४. **जीर्णज्वर में**–शहद और पीपल के साथ।

५. **वातवृद्धि**–लहसुन और घृत के साथ।

६. **पित्तज्वर में**–शहद के साथ।

७. **कफ पित्तज्वर में**–अदरख के रस के साथ।

८. **पाण्डुपर**–लोहभस्म को ७ दिन तक गोमूत्र में खरलकर ३-३ रत्ती, दिन में २ बार दूध के साथ देनी चाहिए।

९. **मण्डल कुष्ठ, पामा और खुजली पर**–आँवला, शक्कर और नीम पञ्चाङ्ग के साथ २१ दिन ३-३ रत्ती दिन में २ बार।

१०. **उदावर्त में**–शक्कर के साथ।

११. **सर्वाङ्गशूल में**–शम्बूकभस्म और शक्कर के साथ देकर ऊपर निवाया जल पिलावें।

१२. **श्वास और हिक्का पर**–कचूर, पुष्करमूल और आँवलों का चूर्ण २ माशे, लोहभस्म २ रत्ती और शहद ३ माशे दें।

१३. **उदरशूल पर**–गोमूत्र में पकाई हुई छोटी हरड़ का चूर्ण गुड़ के साथ दें। ऊपर निवाया जल पिलावें।

१४. **८० प्रकार के** वातपर–निर्गुण्डी के रस के साथ।

१५. **कफवृद्धि में**–शहद, पीपल या कज्जली और शहद के साथ।

१६. **पित्तरोग में**–दालचीनी, इलायची और तेजपात के साथ।

१७. **रक्तपित्त पर**–चातुर्जात और मिश्री के साथ या आँवला, पीपल और मिश्री के साथ मिलाकर अदरक के रस में दें।

१८. पाण्डु और हलीमक पर पुनर्नवा के रस से अथवा नागरमोथा के चूर्ण के साथ देकर खैर की छाल का क्वाथ पिलावें।

१९. **२० प्रकार के प्रमेहों पर**–हल्दी, पीपल और शहद के साथ।

२०. **मूत्रकृच्छपर**–शिलाजीत के साथ।

२१. **मन्दाग्नि में**–नागर बेल के पान के साथ।

२२. **रसायन के लिए**–त्रिफला और शहद के साथ।

२३. **धातुदोष पर**–त्रिकटु, भारङ्गी और शहद के साथ।

२४. **बलवृद्धि के लिये**–पुनर्नवा के चूर्ण और गोदुग्ध के साथ।

२५. **कास पर**–वासा स्वरस, पीपल, मुनक्का और शहद के साथ।

२६. **त्रिदोषज शूल पर**–त्रिफला चूर्ण, घृत और शहद के साथ।

गुणधर्म–लोह भस्म रस में कषाय, विपाक में मधुर, बल्य, रूक्ष, लेखन, गुरु, सारक, रक्त मांस पौष्टिक, चक्षुष्य, वृष्य, आयुवर्द्धक तथा योगवाही होने से उष्ण-शीत वीर्य है। एवं यकृत् प्लीहावृद्धि, पाण्डु, पित्तविकार, पित्तज और कफज प्रमेह, उन्माद, धातु निर्बलता, संग्रहणी, मन्दाग्नि, प्रदर, मेदवृद्धि, कृमिरोग, कुष्ठ, उदररोग, उदरशूल, आमविकार, क्षय, विष, हृदयरोग, श्वास-कास, अर्श, नेत्र की उष्णता, रक्तपित्त आदि रोगों को नष्ट करती है।

उपयोग–लोह भस्म सेवन से रक्त-कण बढ़ते हैं। रक्त की निस्तेजता दूर होती है। इसलिये लोह भस्म का उपयोग पाण्डुरोग में होता है। पाण्डु रोगी के लिये लोहभस्म प्रशस्त और प्रसिद्ध औषधि है।

पाण्डु रोग में भी विशेषत: पित्तज पाण्डु और हलीमकपर लोह भस्म का उपयोग उत्तम प्रकार से होता है। कृमिजन्य पाण्डु रोग में अन्य कृमिघ्न औषधि के साथ लोहभस्म देने से लाभ होता है। आँतों में उत्पन्न होने वाले कितने ही प्रकार के कीटाणुओं से पाण्डु रोग की उत्पत्ति होती है। ऐसे पाण्डु रोग में लोहभस्म को वायविडंग और अजवायन के फूलों(थाईमोल) के साथ देने से अच्छा कार्य करती है।

वातवाहिनियों, मांसपेशियों या स्नायुओं के संकोच अथवा वातविकार के कारण तीव्र वेदना उत्पन्न होती हो, उसका शमन करने के लिये वाजीकरण लोहभस्म और सिंगरफ से मारण की हुई लोहभस्म अति उपयोगी है। परिमाण से अधिक रक्तस्राव होने से रक्तवाहिनियों, मस्तिष्क अथवा अन्य अवयवों में शून्यता आ जाने तथा घबराहट, निर्बलता, चक्कर आदि लक्षण प्रतीत होने पर इसका सेवन अति हितकर है। यदि वे उपद्रव रक्तपित्त में हुए हों, तो लोहभस्म रक्तचन्दनादि क्वाथ के साथ दें; अथवा चरकोक्त लोहासव का सेवन करावें।

पित्तप्रकोप होना, जिसमें नेत्र लाल-लाल हो जाना, मुँह और हाथ पैरों पर तुरन्त प्रस्वेद आ जाना, शरीर लाल हो जाना, थोड़े समय बाद घबराहट होकर शरीर निस्तेज और गरम हो जाना, सारे शरीर तथा रक्तवाहिनियों में अति वेग से रक्तप्रवाह बढ़ना, हृदय की गति और नाड़ी के वेग में वृद्धि हो जाना, मानसिक बेचैनी होना और त्वचा उष्ण हो जाना इत्यादि पित्तप्रकोप के लक्षण होने पर, लोह भस्म उत्तम प्रकार से सत्वर कार्य करती है।

पित्ताशय को आवश्यक रक्त न मिलने अथवा पित्त के परिमाण में कमी हो जाने से अपचन, आफरा, बार-बार खट्टी और खराब डकार आना तथा चिकनी पित्त-कफमिश्रित थोड़ी-थोड़ी वमन होना इत्यादि लक्षण होने पर लोहभस्म अति उपयोगी है।

अतिसार अथवा ग्रहणी रोग में ग्रहणी और पक्वाशय अशक्त हो जाने सेबार-बार बड़े-बड़े दुर्गन्धयुक्त श्वेत या मैले रंग के दस्त अनायास ही होते रहते हैं। ऐसे अतिसार में लोहभस्म का शक्तिवर्धक औषध रूप से उपयोग होता है। संग्रहणी में यदि अत्यन्त अशक्तता और बल मांस विहीनत्व आ गये हों, तो लोहभस्म का उपयोग करने से बल की वृद्धि होकर निर्बलता दूर हो जाती है।

रक्तार्श के रक्त गिरने के प्रारम्भ में लोहभस्म का उपयोग नहीं करना चाहिये। फिर भी पित्तार्श अथवा वातार्श के प्रारम्भ में विशेषत: जब अधिक क्षीणता आ गई हो; तब लोहभस्म का उत्तम रीति के उपयोग होता है एवं रक्तार्श में रक्त बहुत बह जाने के बाद हृदय-व्यथा, शोथ, पाण्डुता आदि लक्षण होने पर लोह भस्म (दूसरी विधि वाली) का उपयोग अति हितकर माना गया है।

लोह भस्म में कषाय गुण होने से कफनाशक है, परन्तु उसके साथ पाण्डुता रूप लक्षण होना चाहिये। हृदय व्यथा होने पर यदि श्वास हो, तो लोह भस्म का अच्छा उपयोग होता है एवं पित्तप्रधान तमक श्वास में भी इस भस्म से अच्छा लाभ होता है। जब कि छाती में खूब श्वास भरा हुआ मालूम देता हो; साथ में निस्तेजता, बेचैनी और नाड़ी तेज हो; ऐसी परिस्थिति में लोह भस्म का सेवन अत्यन्त हितकारक हैं।

विषम ज्वर अथवा ठण्ड लगकर आने वाले ज्वर अधिक दिन तक रहने या अधिक ज्वर होने पर भोजन करते रहने से प्लीहावृद्धि हो जाती है; एवं क्विनाइन युक्त औषधि को ज्यादा मात्रा में सेवन करने से घबराहट, श्वास, मुँह पर शोथ-सा हो जाना; मुखमण्डल श्वेत और निस्तेज होना, कान में बधिरता आना आदि लक्षण होते हैं। इस पर लोह भस्म के सेवन से उत्तम लाभ होता है। परन्तु जिनसे लोहभस्म सहन न हो सके, उनको स्वर्णमाक्षिक भस्म दी जाती है। प्लीहावृद्धि में पाण्डुता अधिक होने पर लोह भस्म का सेवन विशेष लाभदायक है।

लोहभस्म सर्वाङ्ग शोथ विकार में अत्यन्त उपयोगी औषधि है। सर्वाङ्ग में शोथ,त्वचा के नीचे के भाग में लसीका का संचय हो जाना, यहाँ तक कि शोथ पर अंगुली दबाने से गहरा गड्ढा हो जाता है, फिर भरने में समय लगता है, तथा अत्यन्त पाण्डुता, अतिशय घबराहट, मुँह पर अधिक शुष्कता, सारे शरीर की शिराएं उड़ती हों ऐसा आभास होना, रोगी से पूरा बोला भी न जाय, मूत्र सामान्य रीति से ठीक रहता हो, परन्तु मूत्राशय अशक्त होने से पेशाब अनेक समय करना पड़ता हो, ऐसे प्रकार के शोथ रोग में यदि यकृत् प्लीहावृद्धि का अनुबन्ध हो,

लोहभस्म का प्रभाव रक्त पर सत्वर पहुँचता है, जिससे पाण्डु रोगादि अनेक व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। परन्तु इस भस्म में भावना ऐसे उग्र द्रव्यों की दी गई है, कि यह भस्म रक्ताभिसरण क्रिया में शिथिलताजन्य या शुक्रोत्पादक कोषों की निर्बलता के हेतु से नपुंसकता आई हो, तो यह विशेष लाभदायक होती है। यह भस्म अण्डकोष, वीर्यस्थान, शुक्रवाहिनियों और अन्य नसों को कुछ उत्तेजना देती है।

लोहभस्म के गुणों का विशेष विवेचन दूसरी विधि के साथ किया गया है। वह इस भस्म के लिए भी समझ लेना चाहिये।

शास्त्रकारों ने लोह भस्म के विवेचन में लिखा है–

आयुः प्रदाता बलवीर्यकर्त्ता रोगापहर्त्ता मदनस्य कर्त्ता। अयः समानं न हि किंचिदस्ति रसायनं श्रेष्ठतमं नराणाम्॥

लोहभस्म आयुवर्द्धक, बल और वीर्य को बढ़ाने वाली, रोगों का नाश करने वाली और कामोत्तेजक गुण वाली है। इस लोहभस्म के समान उत्तम रसायन रूप अन्य एक भी औषधि मनुष्यों के लिए नहीं है।

अपथ्य–लोहभस्म अथवा लोहभस्म मिश्रित औषध सेवनकाल में तिल का तैल, उरद के बने हुए पदार्थ, राई, शराब, खट्टे पदार्थ, अनूप देश के जीवों का मांस, ककारपूर्वक द्रव्य (कूष्माण्ड, ककड़ी, कलिंग अर्थात् तरबूज, करौंदा, कशेरू, करीर, ककोड़ा, कर्कन्धु अर्थात् छोटे बेर, कांजी, कुलथी, कड़वा तैल, करेला, कैथ, कासल शाक अर्थात् नाड़ीशाक, कुक्कुट अर्थात् मुर्गे का मांस और कंगनी आदि) सूर्य के ताप में भ्रमण, मैथुन, धुम्रपान, विदाही पदार्थ, तेज मिर्च, लहशुन, प्रकृति-विरुद्ध, देशविरुद्ध, कालविरुद्ध संयोग के विरुद्ध या रोग में अपथ्य हो, ऐसे आहार-विहारों का त्याग करना चाहिये।

सूचना–६४ पुटी लोह भस्म के उग्र होने से इसका उपयोग उष्णकाल में और अति तेज पित्तवालों के लिए नहीं करना चाहिये या सम्हालकर करना चाहिये। इस भस्म के सेवन करने वालों को दूध घृत आदि पौष्टिक पदार्थ ज्यादा मात्रा में लेने चाहिए।

दूसरी विधि–शुद्ध लोहे का बारीक चूर्ण ४८ तोला और बारहवां भाग सिंगरफ मिला घीकुंवार के रस में १२ घण्टे घुटाईकर, २-२ तोले की टिकियां बाँधकर तेज धूप में सूखावें। फिर सरावसम्पुट में बन्द कर के गजपुट में फूँक दें। इस तरह १२ बार गजपुट दें। बराबर सिंगरफ मिलाते जायें यदि लोह चूर्ण मोटा हो तो, पहले त्रिफला, गोमूत्र और केले अथवा घीकुंवार के रस के ४-६ पुट देना चाहिये। फिर सिंगरफ के पुट देवें। अन्त में जामुन की छाल के क्वाथ के ३ पुट देने से नीले रङ्ग की उत्तम लोह भस्म बनती है।

मात्रा–१ रत्ती से २ रत्ती तक दिन में २ बार, पीपल और शहद, मक्खन मिश्री, त्रिफला, घृत-मिश्री मलाई या च्यवनप्राशावलेह में मिला चाटकर ऊपर से मिश्री मिला हुआ दूध पीवें अथवा रोगानुसार अन्य अनुपान के साथ लें। लोह भस्म में संग्राही गुण होने से मलावरोध हो, तो च्यवनप्राशावलेह या त्रिफला के साथ देना चाहिए।

अनुपान १. प्रमेहपर–हरड़ और गोखरू २-२ माशे, तालमखाने ४ माशे तथा मिश्री ६ माशे के साथ दें। ऊपर शीतल जल पिलावें या ३ माशे त्रिफला के चूर्ण के साथ मिला शहद के साथ देकर गिलोय का स्वरस पिलावें।

२. **दारुण अश्मरीपर**–शहद के साथ देवें ऊपर से ४ तोले गोखरू का क्वाथ पिलावें।

३. **कफयुक्त श्वास**–रससिंदूर मिश्री या त्रिकटु शहद से।

४. **जीर्णज्वर में**–शहद और पीपल के साथ।

५. **वातवृद्धि**–लहसुन और घृत के साथ।

६. **पित्तज्वर में**–शहद के साथ।

७. **कफ पित्तज्वर में**–अदरख के रस के साथ।

८. **पाण्डुपर**–लोहभस्म को ७ दिन तक गोमूत्र में खरलकर ३-३ रत्ती, दिन में २ बार दूध के साथ देनी चाहिए।

९. **मण्डल कुष्ठ, पामा और खुजली पर**–आँवला, शक्कर और नीम पञ्चाङ्ग के साथ २१ दिन ३-३ रत्ती दिन में २ बार।

१०. **उदावर्त में**–शक्कर के साथ।

११. **सर्वाङ्गशूल में**–शम्बूकभस्म और शक्कर के साथ देकर ऊपर निवाया जल पिलावें।

१२. **श्वास और हिक्का पर**–कचूर, पुष्करमूल और आँवलों का चूर्ण २ माशे, लोहभस्म २ रत्ती और शहद ३ माशे दें।

१३. **उदरशूल पर**–गोमूत्र में पकाई हुई छोटी हरड़ का चूर्ण गुड़ के साथ दें। ऊपर निवाया जल पिलावें।

१४. **८० प्रकार के** वातपर–निर्गुण्डी के रस के साथ।

१५. **कफवृद्धि में**–शहद, पीपल या कज्जली और शहद के साथ।

१६. **पित्तरोग में**–दालचीनी, इलायची और तेजपात के साथ।

१७. **रक्तपित्त पर**–चातुर्जात और मिश्री के साथ या आँवला, पीपल और मिश्री के साथ मिलाकर अदरक के रस में दें।

१८. पाण्डु और हलीमक पर पुनर्नवा के रस से अथवा नागरमोथा के चूर्ण के साथ देकर खैर की छाल का क्वाथ पिलावें।

१९. **२० प्रकार के प्रमेहों पर**–हल्दी, पीपल और शहद के साथ।

२०. **मूत्रकृच्छपर**–शिलाजीत के साथ।

२१. **मन्दाग्नि में**–नागर बेल के पान के साथ।

२२. **रसायन के लिए**–त्रिफला और शहद के साथ।

२३. **धातुदोष पर**–त्रिकटु, भारङ्गी और शहद के साथ।

२४. **बलवृद्धि के लिये**–पुनर्नवा के चूर्ण और गोदुग्ध के साथ।

२५. **कास पर**–वासा स्वरस, पीपल, मुनक्का और शहद के साथ।

२६. **त्रिदोषज शूल पर**–त्रिफला चूर्ण, घृत और शहद के साथ।

गुणधर्म–लोह भस्म रस में कषाय, विपाक में मधुर, बल्य, रूक्ष, लेखन, गुरु, सारक, रक्त मांस पौष्टिक, चक्षुष्य, वृष्य, आयुवर्द्धक तथा योगवाही होने से उष्ण-शीत वीर्य है। एवं यकृत् प्लीहावृद्धि, पाण्डु, पित्तविकार, पित्तज और कफज प्रमेह, उन्माद, धातु निर्बलता, संग्रहणी, मन्दाग्नि, प्रदर, मेदवृद्धि, कृमिरोग, कुष्ठ, उदररोग, उदरशूल, आमविकार, क्षय, विष, हृदयरोग, श्वास-कास, अर्श, नेत्र की उष्णता, रक्तपित्त आदि रोगों को नष्ट करती है।

उपयोग–लोह भस्म सेवन से रक्त-कण बढ़ते हैं। रक्त की निस्तेजता दूर होती है। इसलिये लोह भस्म का उपयोग पाण्डुरोग में होता है। पाण्डु रोगी के लिये लोहभस्म प्रशस्त और प्रसिद्ध औषधि है।

पाण्डु रोग में भी विशेषत: पित्तज पाण्डु और हलीमकपर लोह भस्म का उपयोग उत्तम प्रकार से होता है। कृमिजन्य पाण्डु रोग में अन्य कृमिघ्न औषधि के साथ लोहभस्म देने से लाभ होता है। आँतों में उत्पन्न होने वाले कितने ही प्रकार के कीटाणुओं से पाण्डु रोग की उत्पत्ति होती है। ऐसे पाण्डु रोग में लोहभस्म को वायविडंग और अजवायन के फूलों(थाईमोल) के साथ देने से अच्छा कार्य करती है।

वातवाहिनियों, मांसपेशियों या स्नायुओं के संकोच अथवा वातविकार के कारण तीव्र वेदना उत्पन्न होती हो, उसका शमन करने के लिये वाजीकरण लोहभस्म और सिंगरफ से मारण की हुई लोहभस्म अति उपयोगी है। परिमाण से अधिक रक्तस्राव होने से रक्तवाहिनियों, मस्तिष्क अथवा अन्य अवयवों में शून्यता आ जाने तथा घबराहट, निर्बलता, चक्कर आदि लक्षण प्रतीत होने पर इसका सेवन अति हितकर है। यदि वे उपद्रव रक्तपित्त में हुए हों, तो लोहभस्म रक्तचन्दनादि क्वाथ के साथ दें; अथवा चरकोक्त लोहासव का सेवन करावें।

पित्तप्रकोप होना, जिसमें नेत्र लाल-लाल हो जाना, मुँह और हाथ पैरों पर तुरन्त प्रस्वेद आ जाना, शरीर लाल हो जाना, थोड़े समय बाद घबराहट होकर शरीर निस्तेज और गरम हो जाना, सारे शरीर तथा रक्तवाहिनियों में अति वेग से रक्तप्रवाह बढ़ना, हृदय की गति और नाड़ी के वेग में वृद्धि हो जाना, मानसिक बेचैनी होना और त्वचा उष्ण हो जाना इत्यादि पित्तप्रकोप के लक्षण होने पर, लोह भस्म उत्तम प्रकार से सत्वर कार्य करती है।

पित्ताशय को आवश्यक रक्त न मिलने अथवा पित्त के परिमाण में कमी हो जाने से अपचन, आफरा, बार-बार खट्टी और खराब डकार आना तथा चिकनी पित्त-कफमिश्रित थोड़ी-थोड़ी वमन होना इत्यादि लक्षण होने पर लोहभस्म अति उपयोगी है।

अतिसार अथवा ग्रहणी रोग में ग्रहणी और पक्वाशय अशक्त हो जाने सेबार-बार बड़े-बड़े दुर्गन्धयुक्त श्वेत या मैले रंग के दस्त अनायास ही होते रहते हैं। ऐसे अतिसार में लोहभस्म का शक्तिवर्धक औषध रूप से उपयोग होता है। संग्रहणी में यदि अत्यन्त अशक्तता और बल मांस विहीनत्व आ गये हों, तो लोहभस्म का उपयोग करने से बल की वृद्धि होकर निर्बलता दूर हो जाती है।

रक्तार्श के रक्त गिरने के प्रारम्भ में लोहभस्म का उपयोग नहीं करना चाहिये। फिर भी पित्तार्श अथवा वातार्श के प्रारम्भ में विशेषत: जब अधिक क्षीणता आ गई हो; तब लोहभस्म का उत्तम रीति के उपयोग होता है एवं रक्तार्श में रक्त बहुत बह जाने के बाद हृदय-व्यथा, शोथ, पाण्डुता आदि लक्षण होने पर लोह भस्म (दूसरी विधि वाली) का उपयोग अति हितकर माना गया है।

लोह भस्म में कषाय गुण होने से कफनाशक है, परन्तु उसके साथ पाण्डुता रूप लक्षण होना चाहिये। हृदय व्यथा होने पर यदि श्वास हो, तो लोह भस्म का अच्छा उपयोग होता है एवं पित्तप्रधान तमक श्वास में भी इस भस्म से अच्छा लाभ होता है। जब कि छाती में खूब श्वास भरा हुआ मालूम देता हो; साथ में निस्तेजता, बेचैनी और नाड़ी तेज हो; ऐसी परिस्थिति में लोह भस्म का सेवन अत्यन्त हितकारक हैं।

विषम ज्वर अथवा ठण्ड लगकर आने वाले ज्वर अधिक दिन तक रहने या अधिक ज्वर होने पर भोजन करते रहने से प्लीहावृद्धि हो जाती है; एवं क्विनाइन युक्त औषधि को ज्यादा मात्रा में सेवन करने से घबराहट, श्वास, मुँह पर शोथ-सा हो जाना; मुखमण्डल श्वेत और निस्तेज होना, कान में बधिरता आना आदि लक्षण होते हैं। इस पर लोह भस्म के सेवन से उत्तम लाभ होता है। परन्तु जिनसे लोहभस्म सहन न हो सके, उनको स्वर्णमाक्षिक भस्म दी जाती है। प्लीहावृद्धि में पाण्डुता अधिक होने पर लोह भस्म का सेवन विशेष लाभदायक है।

लोहभस्म सर्वाङ्ग शोथ विकार में अत्यन्त उपयोगी औषधि है। सर्वाङ्ग में शोथ,त्वचा के नीचे के भाग में लसीका का संचय हो जाना, यहाँ तक कि शोथ पर अंगुली दबाने से गहरा गड्ढा हो जाता है, फिर भरने में समय लगता है, तथा अत्यन्त पाण्डुता, अतिशय घबराहट, मुँह पर अधिक शुष्कता, सारे शरीर की शिराएं उड़ती हों ऐसा आभास होना, रोगी से पूरा बोला भी न जाय, मूत्र सामान्य रीति से ठीक रहता हो, परन्तु मूत्राशय अशक्त होने से पेशाब अनेक समय करना पड़ता हो, ऐसे प्रकार के शोथ रोग में यदि यकृत् प्लीहावृद्धि का अनुबन्ध हो,

तो ताम्र भस्म और लोहभस्म मिलाकर देना अति प्रशस्त है।

पाचन शक्ति की निर्बलता या सर्वत्र धातु परिपोषण क्रम (Meta bolism)की अशक्ति के कारण शरीर में सेन्द्रिय विष का संचय होता है। यह विष लोह भस्म के सेवन से नष्ट हो जाता है।

पैत्तिक और श्लैष्मिक प्रमेह में लोह भस्म का उपयोग होता है। इसके सेवन से प्रमेह रोग में आई हुई निर्बलता दूर होती है। जिस रोगीको मूत्र बार-बार न होता हो, परन्तु कम समय और प्रत्येक समय अधिक परिमाण में होता है तथा त्वचा निस्तेज हो; उसे लोह भस्म का सेवन हितकर है। परन्तु बार-बार पेशाब थोड़ा-थोड़ा होता हो, अन्तर में दाह हो और त्वचा चिकनी हो, तो जसद भस्म देनी चाहिये।

गुल्म, अष्ठीला, प्लीहा और यकृत्वृद्धि में रक्त के रक्ताणु न्यून होकर पाण्डुता आई हो, तो लोह या मण्डूर भस्म की योजना करनी चाहिये।

किसी भी महाव्याधि से मुक्त होने के पश्चात् रोगी का बल कम हो जाता है। रक्त के रक्ताणु निर्बल हो जाते हैं एवं बड़े रोग में दोष प्रकोप से लड़ाई और धातुसाम्य प्रस्थापित करते रहने से सब इन्द्रिय समूह बिल्कुल थक जाते हैं; तथा बलमाँस-क्षीणत्व की प्राप्ति होती है। यह क्षीणता लोहभस्म के सेवन से सत्वर कम हो जाती है विशेषत: रक्त की अशक्तता के कारण निर्बलता आई हो, तो नि:सन्देह लोह भस्म का उपयोग कराना चहिये। इस दृष्टि से लोह भस्म बलकर है।

पित्तप्रधान कुष्ठ रोग में दोषों के कारण से रक्त और त्वचा दुष्ट हुए हों तो लोह भस्म सेवन कराना अति हितकर है। पित्तप्रधान कुष्ठ में दाह, लाली तथा त्वचा, अंगुली, फाले या व्रणों में से जल के समान पतला स्राव, थोड़ा घाव होने पर पक जाना, फूटना, उसमें से दुर्गन्धयुक्त चिकना पीप निकलना, कभी-कभी अंगुलियों की त्वचा निकल जाना, टूट जाना आदि लक्षण होते हैं। इस रोग में यदि त्वचा पर व्रण लाल, काला-सा हो, उसमें छोटी-छोटी फुन्सियां हों, खाज चलती हो और दाह आदि लक्षण हों, तो लोह भस्म और त्रिफला चूर्ण या अन्य कुष्ठघ्न औषधि देनी चाहिये अथवा आरोग्यवर्धिनी देनी चाहिये या कुष्ठ रोग में पहले प्रधान लक्षणात्मक दोष शमन की योजना करने के पश्चात् अन्य जिस दोष का अनुबंध हो अथवा अनुबंध वाला दोष शेष रहा हो, उसकी योजना की जाती है। इस न्याय से पित्तदोष की चिकित्सा करने से कुष्ठ रोग का शमन होना शक्य है।

लोहभस्म रसायन है अर्थात् इसके सेवन से रस आदि सब धातुओं की प्रशस्त उत्पत्ति होती है, जिससे सब इन्द्रियाँ और घटक उत्तम प्रकार से पुष्ट होते हैं। यह भस्म रसायन विधान से अर्थात् चढ़ते उतरते क्रम से सेवन करनी चाहिए अथवा शिलाजीत, अभ्रक भस्म, सुवर्ण भस्म, त्रिफला इनमें से किसी के साथ सेवन करनी चाहिये।

इस शरीर में सब धातुओं को योग्य परिमाण में आवश्यक द्रव्य यथासमय पहुँचाने वाली धातु रक्त है। रक्त धातु के रक्तकण और घटक शरीर-पोषण के लिए विशेष उपयोगी है। ये सब लोह भस्म के सेवन से सुदृढ़ होते हैं। इस तरह अन्य पाञ्चभौतिक द्रव्य भी शरीर पोषण के लिए आवश्यक हैं। वह भी इसके सेवन से शुद्ध और सुदृढ़ होते है। इस दृष्टि से विचार करें, तो लोह भस्म के सेवन से देह अतिदृढ़ होती है। इससे देह सिद्धि होती है, यह कथन बिल्कुल सत्य है।

बड़े मनुष्य के लिये लोहभस्म और छोटे बच्चों के लिए मंडूर भस्म हितकर है। निरोगी मनुष्य को बिना हेतु निर्बलता का भास होता है, तो लोह भस्म का सेवन कराना चाहिए। इस दृष्टि से शास्त्रकारों ने लोह भस्म को मन और शरीर से निरोगी मनुष्य के लिये दीर्घायु प्राप्त कराने वाली उत्तम रसायन औषधि कहा है वह युक्त ही है। आयु को नदी के ओघ सदृश मान लें, तो जब तक उसे आवश्यक अनुकूलता मिलती रहेगी, तब तक जीवित ओघ चलता ही रहेगा। यह सुविधा इसके सेवन से पूर्ण होती रहती है। अतएव लोह भस्म को दीर्घ जीवन प्राप्त कराने वाली कहा है। यह शास्त्र-वचन युक्ति युक्त ही है।

यदि वातवाहिनियों या रक्तवाहिनियों के संकोच से शूल उत्पन्न हुआ हो तो लोह भस्म के सेवन से रक्ता भिसरण-क्रिया की वृद्धि होकर शूल का शमन हो जाता है। यदि शूल आमवात अथवा वातरक्त जन्य हो, तो महायोगराज गूगल, आक्षेपक समान हो, तो महावातविध्वंसन रस, वातपित्तप्रधान आक्षेप रहित शूल हो, तो सूतशेखर, और पित प्रधान हो, तो ताप्यादि लोह देना चाहिए।

लोहभस्म अंडकोषों को शक्ति देती है। इस हेतु से अंडकोष की निर्बलता से उत्पन्न नपुन्सकता और हीनवीर्यता इसके सेवन से दूर होती है अलावा सब धातुयें पुष्ट और शुद्ध होने से शरीर की कान्ति बढ़ती है, तथा सब अवयव बलवान बनते हैं। बिशेषत: उदर उत्तम बलवान होने पर अर्थात् कोष्ठ के अवयव प्रतिकारक्षम होने पर, सेन्द्रिय विष का प्रभाव अधिक नहीं पड़ता। इस दृष्टि से लोह भस्म विषहर है।

यदि लोहभस्म सामान्य मुण्ड लोह में से बनाई जाय तो मृदु बनती है जिससे कोमल प्रकृति के सुकुमार रोगियों को देने में अच्छी उपयोगी होती है। कोष्ठगतशूल, आमजन्यशूल और अर्श के काराण से ज्यादा रक्त बह जाने के पश्चात् शूल पर मुण्डलोह भस्म अच्छा लाभ पहुँचाती है एवं प्रमेह रोग में जिनसे लोह भस्म सहन नहीं होती, उनके लिये मुण्डलोहभस्म का सेवन हितकर होता है।

कामला विकार में पित्त, पित्ताशय में से कोष्ठ में नहीं जाता, किन्तु रक्त में मिल जाता है। ऐसे समय पर पित्ताशय प्राय: निर्बल होता है। त्वचा, नख, मूत्र आदि पीले होते हैं। इस विकार में यदि निर्बलता अधिक है, तो मुण्डलोहभस्म का सेवन विशेष हितकर हैं।

आमवात का विकार अच्छा हो जाने पर इस रोग के कारण उत्पन्न हुई निर्बलता नष्ट करने के लिए आमविकार के मूल कारण आम की उत्पत्ति को रोकना चाहिए। इस आम की उत्पत्ति अग्नि की मन्दता के हेतु से होती है। जब पाचक अग्नि (पाचक पित्त) सबल और कार्यक्षम

हो जाय, तब नया आम नहीं बनता। पित्त को कार्यक्षम बनाने का यह कार्य मुण्डलोहभस्म से होता है। ऐसे ही पाचकपित्त की अशक्ति के कारण कोष्ठशूल, मन्दाग्नि आदि विकार उत्पन्न हुए हों, तो वे भी मुण्डलोह से दूर होते हैं।

मुण्डलोह भस्म की विशेषता–अन्य लोह भस्म में ग्राही गुण, अधिक है, जिससे शौच शुद्धि बराबर नहीं होती। अत: जिनको मलावरोध रहता हो, उनको कान्त लोह भस्म मलावरोध में वृद्धि करती है, किन्तु मुण्डलोहभस्म में ग्राही गुण या विरेचक गुण नहीं है। फिर भी कोष्ठशोधक है, अर्थात् कोष्ठ की शक्ति और क्रिया को बढ़ाकर उसमें से मल को उत्तम प्रकार से नि:सरण कराती है। इसलिए ऐसे बद्धकोष्ठ के पाण्डु रोगियों अथवा अशक्त व्यक्तियों को मुण्डलोहभस्म का सेवन हितकर है।

लोहभस्म पित्त और वात दोष, रक्त, मांस विशेषत:, और सामान्यत: सब धातु, इन दूष्यों, और हृदय, यकृत् पचनेन्द्रिय तथा बृहदन्त्र, इन स्थानों में विशेष लाभ पहुँचाती है। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना–रक्तार्श के रक्त गिरने के आरम्भ में लोहभस्म नहीं देनी चाहिए। लोह भस्म अति मुलायम होने पर रस रक्त आदि के साथ शीघ्र मिल सकती है। अत: लोह भस्म मुलायम हो जाय; तब तक गजपुट देते रहना चाहिए। अपक्व लोह भस्म आंवलों पर मसलने से आँवले का रंग काला हो जाता है ऐसी लोह भस्म सेवन नहीं करना चाहिये।

तीसरी विधि–शुद्ध लोहे का सूक्ष्म चूर्ण ३० तोले, शुद्ध पारद १० तोले और शुद्ध गन्धक २० तोले लें। पहिले पारद और लोह के चूर्ण को मिला घीकुंवार के रस में ६ घण्टे खरलकर जल से धो लें। फिर गन्धक मिलाकर कज्जली करें, और १२ घण्टे घीकुंवार के रस में खरलकर गोला बांधे। पश्चात् एरण्ड के पत्तों में लपेट ऊपर सूत बाँधकर तांबे के डिब्बे में रखें। सन्धि पर मिट्टी का मजबूत लेप करके सूर्य के ताप में ६ घण्टे सुखावें। फिर अनाज के कोठे के भीतर ४० दिन तक दबा देने से भस्म तैयार हो जाती है। ४१वें रोज भस्म को निकाल कपड़े से छानकर खरलकर लें। यह भस्म काले रंग की वारितर और मुलायम हो जाती है। इस भस्म का नाम शास्त्रकारों ने "सोमामृत लोह भस्म" रखा है। (र.र.)

मात्रा और उपयोग–दूसरी विधि के अनुसार।

चौथी विधि–शुद्ध सूक्ष्म लोह चूर्ण को कुकरौंधे के रस में १२ घण्टे तक खरल करके गजपुट दें। इस तरह पुन: पुन: खरलकर १० पुट देने से लाल नीले रंग की मुलायम भस्म तैयार होती है। इस तरह जामुन की छाल के क्वाथ, बबूल की फली के रस, हस्तीशुण्डी के रस, अपक्व आंवलों के रस और गोमूत्र आदि औषधियों के पुटों से भी लोह भस्म बन जाती है।

मात्रा और उपयोग–दूसरी विधि के अनुसार।

(५) वङ्ग भस्म

प्रथम विधि–शुद्ध कलई के कागज जैसे पतले पतरे बनाकर नख के मुताबिक बारीक-बारीक टुकड़े करें। फिर गोबरी लगभग २॥ सेर वजन वाली लेवें। जिसमें चारों और एक-एक इञ्च भाग को छोड़कर बीच में गहरा एक इञ्च का खड्डा करें। पश्चात् उसमे इमली की छाल का चूर्ण और तिल मिलाकर तैयार किया हुआ चूर्ण लगभग १० तोले डालें। फिर कलई के छोटे-छोटे टुकड़ो को एक-एक करके चारों और बिछा दें। पुन: ऊपर से इमली की छाल वाला चूर्ण लगभग १० तोले डालकर उस पर कलई के टुकड़ों को बिछावें। इस तरह ३ से ४ तह करें। एक गोबरी की जोड़ी में लगभग १०-१२ तोले कलई बन्द करनी चाहिये, तथा सब मिलकर इमली का चूर्ण तिल मिला हुआ लगभग ४०-५० तोले डालना चाहिये। ऊपर और नीचे इमली वाला चूर्ण ही रखें। इस तरह चूर्ण और कलई के पतरे रखकर समान गोलाई वाली भीतर से खड्डा की हुई दूसरी गोबरी ऊपर ढककर गोबर से दोनों की संधि बन्द करें। सूख जाने पर एक कढाई या परात में नीचे ऊपर लगभग १ सेर गोबरी रखकर निर्वात स्थान में अग्नि देवें। ठण्डा होने पर सम्हालकर कलई की भस्म के एक-एक फूल को चुन लेवें। फिर भस्म को लोहे की खरल में खरलकर कपड़े से छान लें। जो भस्म कच्ची रही होगी, वह कपड़े के ऊपर रह जायेगी, उसे अलग कर दें। पक्की भस्म, जो छनकर नीचे जाती है, वह चूने के समान सफेद रंग की मुलायम और बहुत हल्की होती है।

इमली-तिल के बदले में भांग मिलाने से भी भस्म उत्तम बनती है। गोबरी के बदले में टाट में लपेट करके अग्नि देने से भी भस्म हो सकती है। टाट में लपेट कर भस्म करना, हो तो टाट का दृढ़ गोला बना चारों और ५ सेर गोबरी रख, निर्वात स्थान में अग्नि देने से भस्म तैयार हो जाती है। टाट के गोले की ऊँचाई ८-९ इञ्च से अधिक नहीं रखनी चाहिये। १०-१२ तोले कलई की एक बार भस्म करें। ज्यादा मात्रा में कलई लेने से कच्चा भाग विशेष रह जाता है जो कच्ची भस्म शेष रह जाय, उसकी भस्म तीसरी विधि के अनुसार बनाई जाती है। (आ.प्र.)

सूचना–कच्ची भस्म को लोहे की खरल में खरल करनी चाहिये। पत्थर की खरल में घोटने से खरल खराब होती है।

मात्रा– १ से २ रत्ती तक, दिन में २ समय, मलाई-मिश्री, बादाम की खीर, ईसबगोल की भूसी-मिश्री, मक्खन मिश्री या रोगानुसार अनुपान के साथ देनी चाहिये।

अनुपान–१. **प्रमेह में**–शहद के साथ देकर शुद्ध गन्धक पुराना गुड़ मिलाकर खिलावें, या मोचरस और हल्दी का चूर्ण मिलाकर शहद के साथ, अथवा अभ्रक भस्म और शिलाजीत के साथ या गिलोयसत्व और शहद के साथ।

२. **मूत्राघात में**–वंगभस्म, शिलाजीत, गिलोय-सत्व, सब ३-३ रत्ती और मिश्री ९रत्ती मिलाकर शहद के साथ।

३. **मुख दुर्गन्ध नाश के लिये**–कपूर के साथ।

४. **कान्तिवृद्धि और पुष्टि के लिये**–जायफल और गोदुग्ध या शहद के साथ कुछ दिनों तक सेवन करानी चाहिये।

५. **कफप्रधान प्रमेह में**–तुलसी के पत्तों के साथ या मिश्री और शहद के साथ देनी चाहिये।

६. **गुल्म में**–सोहागे के फूले के साथ सेवन करनी चाहिये।

७. **रक्तपित्त और ऊर्ध्वश्वासपर**–हल्दी के चूर्ण और शहद के साथ दिन में २ या ३ बार कुछ दिनों तक देते रहें।

८. **पित्तशमन के लिये**–मिश्री के साथ।

९. **वीर्यस्तम्भन के लिये**–नागरबेल के पान में या भाँग अथवा कस्तूरी के साथ प्रातः सायं दिन में दो बार देनी चाहिये।

अथवा वंशलोचन, छोटी इलायची के दाने, मुलतानी मिट्टी, तीनों १-१ तोला तथा बंगभस्म ६ माशे मिलाकर खरल करें। फिर उसमें से १॥ से ३ माशे तक दिन में २ बार आँवले के जल के साथ देवें। रात्रि को आँवला १ तोला १० तोले जल में भिगो सुबह मसलकर छान लेंवे एवं सुबह भिगोकर शाम को उपयोग में लेवें। इस तरह ७ दिन तक वंगभस्म का सेवन कराने से घोर वीर्यस्राव में आशातीत लाभ पहुँचता है। यह प्रयोग ग्रीष्म आदि ऋतुओं में निर्भयता पूर्वक किया जाता है। शीतकाल में देना हो, तो आँवले के जल को निवाया करके उपयोग में लें।

१०. **मन्दाग्नि में**–पीपल के साथ।

११. **दाह पर**–नींबू के रस के साथ।

१२. **अजीर्ण पर**–आँवला अथवा सुपारी के साथ।

१३. **अस्थिगत ज्वर पर**–सितोपलादि चूर्ण, मक्खन और शहद, या गिलोय सत्व और शहद के साथ।

१४. **कुष्ठ पर**–निर्गुण्डी के पत्तों के रस के साथ।

१५. **वातरोग में**–अजवायन अथवा असगन्ध के साथ।

१६. **उदरव्यथा में**–छोटी हरड़ के साथ।

१७. **वातगुल्म में**–मट्ठा के साथ।

१८. **श्वास में**–जायफल, लोंग और शहद के साथ।

१९. **स्वप्न दोष में**–१ तोला ईसबगोल की भूसी के साथ।

२०. **बहुमूत्र में**–सितोपलादि चूर्ण और शहद के साथ।

२१. **सुजाक पर**–वंगभस्म, मोतीपिष्ठी, चांदी का वर्क, इलायची और वंशलोचन को मिलाकर शहद के साथ।

२२. **नासूर में**–नागबला के साथ।

२३. **जीर्णज्वर पर**–पीपल और शहद के साथ।

२४. **चर्मरोग में**–खदिर छाल क्वाथ के साथ।

२५. **उपदंशजनित शुक्रदोष पर**–हरताल मारित वंगभस्म २-२ रत्ती चोपचीन्यादि चूर्ण के साथ एक दो मास तक देवें।

२६. **कृमि पर**– शहद के साथ चटाकर ऊपर पूतिकरंज का रस अथवा पीपलामूल को दही के तोड़ में मिलाकर पिलावें।

गुणधर्म–वंगभस्म, लघु, सर, रुक्ष, तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, रुचिकर वर्णकारक, कफघ्न, किंचित् वातप्रकोप और किंचित् पित्तकारक गुण वाली है। सब प्रकार के प्रमेह, कफ, कृमि, मन्दाग्नि, वमन, क्षय, पाण्डु, श्वास और नेत्र रोगों को दूर करती है। शरीर के बल को बढ़ाती है। कलई में तीक्ष्ण और उष्ण गुण रहता है, इस हेतु से वंग भस्म वातघ्न है। परन्तु रूक्षत्व आदि गुणों के कारण क्वचिंत् वात प्रकोपकारक भी होती है, तथा यह भस्म गुरु (जड़) होने से अनेक कफप्रधान प्रकृति वालों की पचन-क्रिया पर ज्यादा लाभ प्रतीत नहीं होता।

वंगभस्म के मुख्य गुण धर्म के वर्णन में शास्त्रकारों ने कहा है–

"वङ्गं भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः।"*

उपयोग–वंगभस्म के गुणधर्म का उक्त वर्णन बिल्कुल यथार्थ है। इसे अधिकरण सूत्र कहो तो भी कह सकते हैं। कारण, वंग के गुणों

---

* यह कथन २४ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य पालन करने वाले नीरोग गृहस्थी के लिये है। वर्तमान में जन्म से दुर्बल कृश और रुग्ण देह वाले विभिन्न व्यसन रखने वाले चटपटे आहार विहार करने वालों के लिये नहीं है और न उनको शास्त्र कथित पूरा लाभ ही मिल सकता है।

की मालिका इस केन्द्र के चारों और गूंथी हुई है। शुक्र और शुक्र-स्थान की अशक्तता प्राप्त होने के जो अनेक कारण हैं, उन पर वंग भस्म का उत्तम उपयोग होता है। यह मुख्यत: शुक्रस्थान को शक्ति प्राप्त कराने वाली होने से उस स्थान की निर्बलता को दूर करती है। इस शिथिलता में भी अनेक प्रकार हैं। फिर भी सब प्रकार के शैथिल्य के मूल में प्राय: वातवाहिनियों का शैथिल्य होता है। यह शैथिल्य वातवाहिनियों या मांसपेशियों को प्राप्त होने का कारण विशेषत: अति स्त्री सेवन अथवा अन्य रीति से वीर्य का दुरुपयोग होता है। इस तरह बार-बार वातवाहिनियों और स्नायुओं का उपयोग होते रहने से वे बिल्कुल शक्तिहीन बन जाते हैं। किसी-किसी समय तो परिणाम यहां तक आ जाता है कि मन में स्त्री की भावना मात्र हुई या स्त्री का दर्शन हुआ या श्रृंगार चेष्टा मात्र मन में आई, बस तुरन्त शुक्रस्खलन हो जाता है। स्वप्नावस्था में ग्राम्य धर्म का चित्र मन में आया, बस तत्काल किंचित् क्षोभ होकर वीर्यस्राव हो जाता है ऐसे विकारों में वंगभस्म का उपयोग अच्छा होता है।

कितने ही मनुष्यों का तो शुक्रस्खलन नियमित रोज रात्रि को होता ही रहता है। इसका दुष्परिणाम उतने दूर पर पहुँच जाता है कि, कितने ही बिल्कुल पागल हो जाते हैं। कितनों को ही अर्द्ध पागलावस्था प्राप्त हो जाती है। कितने ही नपुंसक, कितने ही शुष्क मुरदार, कितने ही जन्म रोगी, तथा अनेक दीन, हीन और अपने जीवन से बिल्कुल उपराम हुए हों, ऐसे बन जाते हैं। अनेकों को झटके आते रहते हैं। किसी सुन्दरी का दर्शन होने के साथ मन में विकृत्ति होने लगती है। यहां तक कि झटके आकर मुँह में झाग आने लगते हैं और जब शुक्रस्राव हो जाता है; तब इन विकारों का शमन होता है। इन सब प्रकार के विकारों में वंगभस्म का उत्तम उपयोग होता है। स्वप्नावस्था के समान पेशाब के साथ शुक्रस्राव होता हो, तो भी वंगभस्म के सेवन से लाभ हो जाता है।

वंग भस्म के गुण के लिये शास्त्र में लिखा है कि-

"सिंहो यथा हस्तिगणं निहन्ति तथैव वङ्गोखिलमेहवर्गम्"

अर्थात् जैसे सिंह हाथियों के समुदाय का नाश करता है; वैसे ही वंगभस्म समस्त प्रमेह वर्ग का दमन करती है। यथार्थ में विचार किया जाय तो वंग भस्म समस्त प्रमेहों पर पूर्ण रूप से लाभ नहीं पहुँचा सकती। विशेषत: वातज प्रमेहों पर इसका उपयोग न करना, यही अच्छा मालूम होता है। सान्द्र, अच्छ, इक्षु, हस्ति आदि प्रमेहों पर इसका उपयोग ज्यादा होता है। विशेषत: प्रारम्भ से दुष्ट मित्रों के सानिध्य से बार-बार शुक्रपात कराने की आदत होने से निस्तेज निर्बल और शुष्क रोगियों को होने वाले सब जाति के प्रमेहों पर वंगभस्म का उत्तम उपयोग होता है; अर्थात् शुक्रपात अथवा शुक्रक्षय यह प्रमेह का निमित्त कारण होवे, तो ऐसे रोगियों के शुक्रस्थान को शक्ति देने के लिये वंगभस्म उत्तम औषधि है।

वृद्धावस्था में प्रमेह का विकार होने पर बार-बार मूत्रोत्सर्ग ज्यादा परिमाण में होने लगता है। वृद्धावस्था के कारण मूत्रपिण्ड, मूत्रवहस्रोत और मूत्राशय, सब अवयव निर्बल होकर थक जाते हैं, जिसमें बार-बार पेशाब करना पड़ता है। इस विकार में वंग का अच्छा उपयोग होता है। यदि तरुणावस्था में शुक्रस्राव का अतियोग इस विकार का कारण हो, एवं वृद्धावस्था में वातप्रधान लक्षण ज्यादा हों, तो वंगभस्म के साथ वात शामक औषधि की योजना करनी चाहिए।

बस्ति (मूत्राशय) के मुख के पिण्ड (पौरुषग्रन्थि) की विकृति होने से मूत्रकृच्छ में बस्ति के मुख के पास मूत्र आने पर जलन होने लगती है। उसमें एक प्रकार की सांद्रता होती है। इस विकार पर वंगभस्म का अच्छा उपयोग होता है। यदि रोग बहुत बढ़ गया हो, तो शस्त्रकर्म (आपरेशन) ही कराना पड़ता है।

यह उपद्रव बहुधा प्रमेह के पश्चात् उत्पन्न होता है। वंगभस्म में मेहनाशकत्व गुण होने से वंग का उपयोग इस विकार पर भी होता है। प्रमेह के विकार में सब दोष और मेद, मांस आदि सब शरीर के घटकों में विकृति हो जाती है। फिर उस हेतु से धातु परिपोषण क्रम बिगड़ता है; जिससे मल भाग शरीर में संचित होता रहता है। उसे बाहर निकालने के लिये बार-बार मूत्रोत्पत्ति और मूत्रोत्सर्ग होते हैं। वंगभस्म के सेवन से यह शारीरिक घटकों की ह्रास सदृश विकृति कम होती है; तथा मूत्रोत्पत्ति और मूत्रोत्सर्ग की अधिकता दूर होती है। यदि मधुमेह के रोग में यह विकृति है, तो वंगभस्म की अपेक्षा नाग भस्म का उपयोग विशेष लाभदायक है। परन्तु मधुमेह में भी शुक्रपात रूप कारण क्री प्रधानता हो, तो वंगभस्म या वंगनाग मिश्रण का सेवन हितकर है। अनुपान रूप से गुड़मार अर्क देवें।

यदि मैथुन के अतियोग या अन्य रीति से अधिक शुक्रपात के हेतु से क्षयरोग उत्पन्न हुआ हो, तो उसकी बढ़ी हुई अवस्था में भी वङ्गभस्म लाभ पहुँचाती है। यदि यह कारण न होने पर छाती बिल्कुल (पोकल) निर्बल हो गई हो; छाती का संकोच हो जाने का आभास होता हो; एवं अति कष्ट से सफेद, पीला, दुर्गन्ध युक्त कफ गिरना आदि लक्षण हों, तो भी उन पर वंगभस्म के अच्छे उपयोग होने के अनेक उदाहरण मिले हैं। इस स्थान में वंग में रहा हुआ विशिष्ट धर्म अर्थात् क्षयनाशक धर्म का उपयोग होता है। वङ्ग भस्म के साथ श्रृङ्गभस्म और रससिन्दूर मिश्रित करके अथवा पृथक-पृथक भी दिये जाते हैं।

वंग कृमिघ्न होने से कृमिजन्य ज्वर, कृमिज हृद्रोग, अथवा कृमिजन्य अन्य रोग पर इसका अच्छा उपयोग होता है। कृमिजन्य ज्वर के लक्षण प्राय: विषमज्वर के समान होते हैं। अनेक समय कृमिजन्य ज्वर और सन्त आदि विषमज्वर के निदान में कठिनता हो जाती है, परन्तु कृमि के विशिष्ट लक्षणों से इस ज्वर का परिचय हो जाता है। कृमिजन्य ज्वर में उदरपीड़ा; बार-बार उबासी आना, उबाक और वमन होना

आदि लक्षण ज्यादा होते हैं। यह ज्वर अनेक समय तो ४०-४२ दिन तक रहता है। ऐसे विकार में बड़े उदर कृमि नहीं होते। बारीक, गोल, चपटे अथवा धान्य के अंकुर सदृश छोटे होते हैं। वंग भस्म का उपयोग इन सब छोटे कृमियों पर होता हैं। वंग भस्म के सेवन से कृमि मूर्च्छित हो जाते हैं या परिपोषक द्रव्य के अभाव से मर जाते हैं; परन्तु वे गिरते नहीं हैं। इसलिये वङ्गभस्म के साथ आरग्वधादि क्वाथ या सनायका क्वाथ देवें, जिससे कृमि बाहर निकल जायं।

शुक्रपात के भयंकर दुष्ट स्वभाव के कारण अनेक नवयुवकों की पाण्डु रोगी के समान स्थिति हो जाती है। कोई भी कार्य करने का उत्साह नहीं होता। शरीर निस्तेज, पीला-सा, शुष्क और कृश हो जाता है। पाचन शक्ति मन्द हो जाती है। इस पाण्डुता में रक्तकणों की साक्षात् न्यूनता नहीं होती; परन्तु यह पाण्डुता शुक्रधातु की निर्बलता के कारण से होती है; अर्थात् शुक्रोत्पत्ति करने के लिये जो आवश्यक रक्त की और वातवाहिनियों का प्रेरक है, उस आवश्यक प्राणवायु की अनुकूलता चाहिये। इन सबका पहिले अतियोग हुआ है। फलतः वे सब क्षीण होने से रक्त बलहीन हो जाता है। इसी कारण से त्वचा और सब अंगों में पाण्डुता आ जाती है। ऐसी स्थिति में लोहभस्म, नागभस्म और जसदभस्म की अपेक्षा वंगभस्म का उपयोग विशेष लाभदायक है। इस पर वंगभस्म, प्रवालभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म का मिश्रण अथवा वंग, शिलाजीत और लोहभस्म का मिश्रण देना चाहिए। यदि केवल मानसिक निर्बलता ही हो और पाण्डुता न हो; तो वंगभस्म और अभ्रक भस्म का मिश्रण ब्राह्मी के अवलेह या अर्क के साथ देना चाहिये।

मैथुनातियोग किंवा अधिक शुक्रपात के कारण कास रोग उत्पन्न होता है; वह शुष्क और त्रासदायक होता है। अनेक समय खाँसते-खाँसते चक्कर आ जाता है। इस रोग में अत्यन्त निर्बलता होती है। इनमें भी यदि पहिले उपदंश रोग हो गया हो और कास के साथ श्वास रोग भी हो, तो हरतालमारित वंगभस्म का अच्छा उपयोग होता है। उपदंश के विष पर वंग का साक्षात् कार्य यदि न होता हो, तो भी उसका शुक्रस्थानपर जो परिणाम हुआ है उस पर इसका कार्य होता है।

वंगभस्म मन्दाग्निनाशक और दीपन-पाचन है। यह दीपनत्व शंख या वराटिका के समान या हींग, अजवायन, चित्रक आदि के समान अथवा नींबू, इमली आदि के समान नहीं है। इन सब द्रव्यों का कार्य साक्षात् पाचक पित्त के गुणों को बढ़ाकर होता है। वंग का कार्य भी पाचक पित्त के गुण बढ़ा करके होता है। फिर भी यह गुणवृद्धि साक्षात् पित्त पर कार्य करके नहीं होती। वंगभस्म पित्तज है, परन्तु साक्षात् कार्य नहीं होता। वंग का कार्य प्रारम्भ में शुक्र स्थान पर होता है। शुक्र स्थान के बलवान होने से देह के समस्त अवयवों को बल की प्राप्ति होती है। इस तरह परम्परागत पचनेन्द्रिय संस्थान सशक्त बनती है; और मन्दाग्नि दूर होती है।

शुक्र की निर्बलता-जनित अग्निमांद्य रोग अन्य प्रकार के अग्निमांद्य रोगों की अपेक्षा अति भयंकर त्रासदायक होता है। इस प्रकार अन्न पर ज्यादा अरुचि हो जाती है। अनेकों को अन्न की वास भी सहन नहीं होती। ऐसी परिस्थिति में वंगभस्म अच्छा काम करती है। इस प्रकार और उसके परिणाम स्वरूप वमन रोग में वंग का अच्छा उपयोग होता है।

उदर में कर्कस्फोट (Cancer) उत्पन्न होने से यदि वमन होती रहती हो तो उसमें वंगभस्म लाभदायक है। वंग से कर्कस्फोट के विष प्रकोप का शमन होता है। इस रोग में आयुर्वेदीय औषधि उपयोगी है-वंग और ताम्र। इनमें ताम्र उग्र होने से कफ प्रधान अथवा वातकफप्रधान दोष में लाभदायक है। वंग इनसे अन्य दोषप्रकोप में देनी चाहिये। कर्कस्फोट की रक्तवाहिनियों की विकृति वंगभस्म के सेवन से दूर होती है। इस विकृति पर नागभस्म का भी उपयोग होता है।

हस्तमैथुन आदि के व्यसन का अतियोग या अन्य रीति से अधिक शुक्रपात के पश्चात् शक्तिपात होता है, उसे वंगभस्म दूर करती है। इसके सेवन से इन्द्रिय समूह को शक्ति प्राप्त होने पर दुष्ट लालसा भी स्वयमेव न्यून हो जाती है।

वंगभस्म उत्तेजक औषधि नहीं है। फिर भी शक्तिवर्द्धक है, और इसी गुण के हेतु से वह वृष्य मानी गई है। शुक्रपात के अतियोग से नपुंसकता आई हो, तो उसे यह दूर करती है। कितने ही मनुष्यों में पुरुषत्व होने पर भी मन की भावना रति के प्रतिकूल होती है, अर्थात् रति करने में प्रेम नहीं है; और अनेकों को अण्डकोष आदि इन्द्रियों की वृद्धि योग्य परिमाण मे न होने से पुरुषत्व में कुछ न्यूनता रहती है। इन सब प्रकारों में वंगभस्म अच्छा काम करती है।

वंगभस्म शुक्रस्थान और शुक्रधात, दोनों को शक्ति और पुष्टि देने वाली है। अतः इसके सेवन से शुक्रस्थान सशक्त बनता है, और शुक्रधातु सम और यथायोग्य उत्पन्न होने लगती है। परिणाम में सब धातुयें पुष्ट हो जाती हैं। समस्त देह को पुष्टि की प्राप्ति होती है। शुक्र धातु का कार्य, बल और बुद्धि उत्पन्न करने का है। इन कार्यों की सिद्धि से सारा शरीर और सब इन्द्रियां प्रबल हो जाती हैं। सब धातुएँ और इन्द्रियाँ सबल और दृढ़ होने से देह का वर्ण सुन्दर हो जाता है। शरीर तेजस्वी, स्फूर्तिवान् और बलवान् प्रतीत होता है; बुद्धि तेजस्वी बनती है, और स्मरण-शक्ति बढ़ जाती है।

वंगभस्म का कार्य पूय उत्पन्न करने वाले जन्तुओं पर जन्तुघ्न है। व्रण में से पूय गाढ़ा पीले रंग का निकलता हो, ऐसे रोगियों की व्रण रोपणार्थ अन्य क्रिया करने के साथ वंगभस्म का सेवन कराने से सत्वर ज्यादा लाभ होने के अनेक उदाहरण मिले हैं।

शुक्रधातु के २ कार्य हैं-गर्भ संजनन और बुद्धिवर्धन। गर्भसंजनन के लिये उपयोग न होने पर जो वीर्य संचित रूप से रहता है, उससे

बुद्धि और स्मरण शक्ति को लाभ पहुँचता है। इस दृष्टि से वंगभस्म को शुक्र वृद्धिकर बुद्धि और प्रज्ञा बढ़ाने वाली कहा है, यह योग्य ही है।

स्त्रियों के जननेन्द्रिय-सम्बन्धी विकारों पर वंगभस्म का अच्छा उपयोग होता है। बीजाशय/बीजाधार (Overy) की फलवाहिनियों की अशक्ति से स्त्री जननेन्द्रिय निर्बल रहती हो, और इसी कारण से मासिक धर्म न आता हो, तो वंगभस्म और लोहभस्म एलुआ के साथ मिला, गोली करके देनी चाहिये अथवा वंगभस्म का सेवन कन्यालोहादि वटी के साथ कराना चाहिये।

वन्ध्यापन दूर करने के लिए वंगभस्म का उपयोग होता है। वंध्यत्व अनेक कारणों से होता है उनमें से यदि स्त्रियों के बीज-कोषों में उत्पन्न होने वाला स्त्री बीज-डिम्ब (Ova) निर्बल हो, या बीजाधार अशक्त होने से बलवान स्त्री-बीजों की उत्पत्ति न हो सकती हो, अथवा स्त्रियों की मनोवृत्ति विकृत होने से वंध्यत्व रहता हो, प्रदर का विकार अतिशय बढ़ जाने से निर्बलता रहती हो, पूयमेह (सुजाक) के हेतु से अत्यन्त अशक्ति आकर बन्ध्यत्व आया हो, अथवा फिरंग (उपदंश) के ससंर्ग से अन्तरेन्द्रिय की शिथिलता, व्रण या अन्य विकृति हो जाने के पश्चात् बन्ध्यत्व आया हो, तो इन सब दोषों पर वंग भस्म के उपयोग से अच्छा लाभ पहुँचता है। गर्भाशय और बीजाधार सुदृढ़ होते हैं, रज शुद्ध होती है, बीज सबल होते हैं, निर्बलता दूर होती है। मन बलवान बनता है और गर्भ धारण हो जाता है।

अनेक स्त्रियों को रजोदर्शनकाल में बस्ति भाग (गर्भाशय) में भंयकर शूल चलता है। इसमें अनेक कारण है। इनमें बीजाधारों की शिथिलता, रजस्राव रुकरुक कर होना या रजस्राव का बिल्कुल बाहर न होना, भीतर ही संचित होते रहना, इन कारणों से बस्ति भाग में पीड़ा होती हो, तो वंगभस्म के सेवन से लाभ हो जाता है। विशेष करके क्रोधी, दुराग्रही, निर्बल मन वाली, कोमल प्रकृति और कोमल स्वभाव वाली अशक्त स्त्रियों को वंगभस्म विशेष हितकर है।

वंगभस्म जीर्ण त्वचा के रोगों पर भी अच्छा प्रभाव दिखाती है। हरताल मारित वंगभस्म का उपयोग उपदंशजनित त्वग्रोग में अधिक होता है। त्वचा के रोगों में भी पुराना ब्यूची (Eczema) रोग जिसमें बहुत खाज आती रहती है, त्वचा काली और शुष्क हो जाती है, या छोटी-छोटी फुन्सियाँ और पीले-पीले फोड़े होकर पतला, पीले रंग का जल जैसा स्राव या पूय जैसा गाढ़ा स्राव होता रहता है। इस रोग पर बाह्य उपचार के साथ वंगभस्म का सेवन कराने से सत्वर लाभ पहुँचता है। विकार जितना जीर्ण हो, उतना ही वंगभस्म का कार्य अधिक स्पष्ट होता है। मात्रा १/१०० रत्ती जितनी सूक्ष्म देना चहिये। (औ. गु. ध. शा. के आधार से)

वंगभस्म कफ और पित्त दोष, रस, रक्त, मांस, अस्थि और शुक्र दूष्य एवं आमाशय, यकृत्, प्लीहा, अन्त्र, त्वचा, वातवाहिनियाँ, वृक्कस्थान, मूत्राशय, गर्भाशय, मूत्रेन्द्रिय, शुक्रस्थान, वृषण, हृदय, फुफ्फुस, मनोदेश और बुद्धि, इन स्थानों पर प्रभाव दिखाती है। इनमें शुक्रस्थान पर अपना विशेष प्रभाव पहुँचाती है।

देह का योग्य विकास होने के पहिले लड़कियों का पुरुष समागम होता है, तब स्थानिक शिथिलता उत्पन्न होती है। उस हेतु से प्रदर रोग उत्पन्न हुआ हो, पतला स्राव होता रहता हो, तो वंगभस्म, फिटकरी के फूले, माजूफल और बबूल की कच्ची फली के चूर्ण को मिला वर्ति बनाकर योनि में रखने से शिथिलता दूर होकर प्रदर रोग निवृत्त हो जाता है साथ में वंगभस्म, रस सिंदूर और बबूल की फली के चूर्ण का सेवन कराया जाय, तो बिशेष लाभ पहुँचता है।

यदि वात पित्त प्रकोप सह प्रदर उत्पन्न हुआ हो, स्राव पतला, उष्ण झागयुक्त हो, देह में स्थान-स्थान पर वातज पीड़ा होती रहती हो, देह निस्तेज और निर्बल हो गई हो, तो वंगभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, गोदन्ती भस्म तथा असगंध, शतावर और गोखरू के चूर्ण को मिलाकर प्रातः सायं दूध के साथ देते रहने से कुछ दिनों में रोग शमन हो जाता है।

कीटाणुजन्य कर्णपाक होने पर कान में से पूय निकलकर जहाँ लग जाता है, वहाँ पर ही फोड़े हो जाते हैं। एवं बाह्य उपचार करने पर दीर्घकाल तक अच्छा नहीं होता। एक स्थान के फोड़े नष्ट होते हैं, उतने में दूसरे स्थान में फोड़े तैयार हो जाते हैं। धीरे-धीरे विष अधिकाधिक स्थान में फैलता जाता है। ऐसे विकार पर बाह्य उपचार (दशांग लेप आदि) के साथ अन्तरोपचार के लिये वंगभस्म का सेवन कराना विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

कभी कर्णपाक शमन हो जाने पर कान के पीछे कफमेदज ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है, उसका उपचार न करने पर वह बहुत बढ़ जाती है। उस पर वंगभस्म १ रत्ती और ताम्र भस्म १/४ रत्ती मिला उसमें से ३ भाग कर ४-४ घण्टे पर दिन में ३ बार शहद के साथ देते रहने और ग्रन्थि पर निवाये सरसों के तेल का मर्दन दिन में दो बार करते रहने से थोड़े ही दिनों में ग्रन्थि बैठ जाती है।

वातवृद्धि से उत्पन्न वाताक्षेप पर वंगभस्म १-२ रत्ती और लोंग, जायफल दालचीनी, इन तीनों की काली राख ४ रत्ती मिलाकर २-२ घण्टे पर २-३ बार देने से चमत्कारिक लाभ हो जाता है।

दूसरी विधि-शुद्ध कलई को एक कढ़ाही में डालकर चूल्हे पर चढ़ावें। कलई का रस होने पर उसमे पलास-पुष्प (केसूला) का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालते जायं और लोहे की कलछी से हिलाते रहें। चलाने के लिए कलछी पर लकड़ी का दस्ता लगवा लेने से हाथ नहीं जलेगा। ६ घण्टे तक तेज अग्नि देने से भस्म सफेद हो जाती है। फिर अग्नि देना बन्द करें, और भस्म को कड़ाही में एक थाल रखकर ढक देवें। ठण्डा होने पर कपड़े से छानकर कच्ची भस्म को अलग करें। पक्की भस्म को घीकुंवार के रस में ६ घण्टे खरलकर दो-दो तोले की टिकिया

बनावें। प्रत्येक टिकिया को आक के पत्तों में पलेटकर ऊपर डोरा बांधे, फिर हाँडी में बन्दकर गजपुट देने से एक ही पुट में भस्म सफेद हो जाती है। इस भस्म को अधिक मुलायम और विशेष गुणप्रद बनाने के लिए १० पुट देना चाहिए। (वै.चि.सा.)

मात्रा–१ से ३ रत्ती तक, दिन में २ समय, मलाई और मिश्री के साथ या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह भस्म प्रमेह, प्रदर, धातुक्षीणता, बहुमूत्र, वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, श्वास, रक्तपित्त, पाण्डु आदि रोगों को दूर करती है। स्त्रियों के गर्भाशय के दोष, अत्यार्तव और कष्टार्तव में भी लाभदायक होने के साथ वातनाशक और शुक्रवर्द्धक है। विशेष वर्णन प्रथम विधि में लिखा है।

तीसरी विधि–१ सेर शुद्ध कलई को कड़ाही में डालकर रस करें। फिर हल्दी, अजवायन, जीरा, इमली की छाल और पीपल (अश्वत्थवृक्ष) की छालका अलग-अलग चूर्ण एक-एक सेर लेवें। पहिले थोड़ा-थोड़ा हल्दी का चूर्ण डालते जायें और बड़े कलछे से चलाते रहें, अग्नि तेज देवें। हल्दी के चूर्ण के समाप्त हो जाने पर अजवायन का चूर्ण डालते जायें, पश्चात् जीरा, इमली की छाल और पीपल की छाल का चूर्ण अनुक्रम से डाले। इस तरह सब चूर्ण समाप्त होने पर कलई की भस्म हो जाती है। फिर कड़ाही में भस्म को इकट्ठी कर ऊपर से मिट्टी का सराव ढक देवें और लगभग ६ घण्टे तक तेज अग्नि देने से भस्म सफेद रंग की हो जाती है। पश्चात् कड़ाही ठंडी होने पर भस्म को कपड़े से छान लेंवे। सेर भर कलई में से किसी-किसी समय १-२ तोले जितनी छोटी-छोटी कच्ची कलई की गोलियां रह जाती है उनको अलग करें। भस्म का रङ्ग लगभग खड़िया मिट्टी जैसा सफेद होता है। (र.च.)

वक्तव्य–इस भस्म को घीकुंवार के रस में खरलकर दूसरी विधि में लिखे अनुसार १० गजपुट दें, तो मुलायम और तत्काल फलप्रद बन जाती है।

मात्रा और उपयोग–प्रथम विधि के अनुसार।

चौथी विधि–दूसरी या तीसरी विधि की वंगभस्म के साथ १२वाँ हिस्सा, हरताल मिला घीकुंवार के रस में १२ घण्टे तक खरलकर, टिकिया बना, सराव सम्पुट करके गजपुट की अग्नि दें। स्वाँग शीतल होने पर पुनः हरताल मिला घीकुंवार के रस में खरल करके गजपुट दें। इस रीति से ७ गजपुट देने से काले रंग की मुलायम उत्तम भस्म तैयार हो जाती है।

मात्रा–१/२ से १ रत्ती रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह भस्म हरताल के योग से तैयार होने से उग्र स्वभाववाली है जिसका शुक्र उपदंश आदि रोग से दूषित हो गया हो उसके लिये यह अति हितकर है। सब प्रकार के प्रमेह, पुराना रक्तदोष, त्वचादोष, कृमिविकार, मांसार्बुद, पुराना ब्यूचीरोग, सूक्ष्म ज्वर, जीर्णज्वर, पूयमेह (सुजाक), मन्दाग्नि आदि रोगों को दूर करने में अन्य प्रकार की वंगभस्म की अपेक्षा यह अधिक हितकर है। शेष गुण प्रथम विधि में लिखे हैं।

(६) त्रिवंगभस्म।

प्रथम विधि–शुद्ध कलई, शुद्ध शीशा और शुद्ध जसद, तीनों १५-१५ तोले लेकर कड़ाही में डालकर तेज अग्नि पर रस करें। फिर घीकुंवार के मूल के डंडे से घोटते रहें। जब तीनों धातुओं का चूर्ण हो जाय; तब हल्दी का चूर्ण २। सेर लेकर, थोड़ा-थोड़ा डालते जायें और डंडे से चलाते रहें। फिर भस्म को तवे से ढककर १२ घण्टे तेज अग्नि देवें। स्वाँग शीतल होने पर भस्म को छानकर हल्दी के क्वाथ और घी कुँवार के रस की १४-१४ भावना देवें। बार-बार १२-१२ घण्टे खरल करके छोटी-छोटी टिकिया बाँधें। फिर सूर्य के ताप में सुखा, सम्पुट कर गजपुट अग्नि देवें। इस तरह २८ पुट देने से मुलायम, सुन्दर, पीले रंग की उत्तम भस्म बनती है। (औ.गु.ध.शा.)

वक्तव्य–२८ पुटी भस्म अच्छा लाभ पहुँचाती है। तथापि इसे १०० पुटी बनायी जाय, तो अधिकतर गुणप्रद बन जाती है।

मात्रा–१ से २ रत्ती शहद, बनप्सा, शर्बत नीलोफर, आंवले का मुरब्बा, दूध, घृत या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

गुणधर्म–त्रिवङ्ग भस्म प्रमेह, बहुमूत्र, धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, मासिक धर्म विकृति, नपुसंकता, बीजाशय की निर्बलता, मधुमेह और प्रमेह पिटिका आदि को नष्ट करती है।

उपयोग–त्रिवंगभस्म शक्तिदायक होने से नपुंसकता, मांसपेशियों और रक्तवाहिनियोगत वात पर उत्तम लाभदायक है। यह भस्म प्रमेहों में इक्षुमेह, हरिद्रामेह और लालामेह पर अधिक गुण पहुँचाती है। इसके सेवन से बार-बार मूत्रोत्सर्ग की शंका होना, मूत्र की उत्पत्ति ज्यादा होना ये विकार दूर होते हैं। मूत्रोत्सर्ग क्रिया पर इसका मुख्य उपयोग होता है। इसी हेतु से मधुमेह में भी इसका उपयोग किया जाता है; परन्तु अकेली नागभस्म के सेवन से मधुमेह में प्रायः अधिक लाभ होता है। मधुमेह सन्धिवात के पश्चात उत्पन्न हुआ हो; या मधुमेही रोगी को बहुत समय पहिले सन्धिवात हुआ हो, अथवा शिरदर्द, उदर पीड़ा या अन्य जीर्णरोग पहिले से रहा हो और पश्चात् मधुमेह की उत्पत्ति हुई हो, तो नाग की अपेक्षा त्रिवंग अधिकतर हितकारक है। मधुमेह की अत्यन्तावस्था प्राप्त हो गई हो और उस में प्रमेह पिटिका (अदीठ, फोड़ा आदि) हो गई हो, तो त्रिवंग और नाग की अपेक्षा अकेले शिलाजीत का ही उत्तम उपयोग होता है।

त्रिवंग उत्तम वाजीकरण है। नपुंसकता को दूर करने में अच्छी उपयोगी है। अति वीर्यपात या अति स्त्री सेवन से मांसपेशियां शिथिल हो नपुसंकता हुई हो, बार-बार स्वप्नामेह होने से नपुंसकता आई हो, या कामेच्छा तृप्त करने की बढ़ी हुई लालसा से नपुंसकता आई हो, आदि

कारण होने पर त्रिवंग का उपयोग उत्कृष्ठ है।

यह भस्म वीर्यवर्द्धक होने से जननेन्द्रिय की मांसपेशियों को शक्ति प्रदान करती है। इस कारण नपुंसकत्व न होने पर भी स्वप्नावस्था में या अन्य कारणों से स्वतः शुक्रस्राव होता हो, उस विकार पर त्रिवंगभस्म का उत्तम उपयोग होता है। नपुंसकत्व का एक प्रकार ऐसा है कि, पहिले पुरुषार्थ प्रतीत होता है, परन्तु स्त्री दृष्टिगोचर होने पर तुरन्त नष्ट हो जाता है। भीतरी घबराहट, लज्जा और चिन्ता अधिक होना आदि लक्षण होते हैं। इस विकार पर यह लाभदायक है।

स्त्रियों के बन्ध्यत्व में त्रिवंग का उपयोग होता है। गर्भाशय या योनिमार्ग में शारीरिक प्रतिबन्ध आने से बंध्यत्व आया हो, तो उस प्रतिबन्ध को बाह्य क्रिया या शस्त्र से दूर करना ही अच्छा है। ऐसा प्रतिबन्ध न हो, बीजाधारों (Ovaries) को अशक्ति या संकोच अथवा फलवाहिनियों (Oviducts) की अशक्ति या संकोच, किंवा इन अवयवों का पूरा विकास न होने से बंध्यत्व आया हो, तो इसके सेवन से लाभ हो जाता है। जब बीजाकोषों का विकास नहीं होता, तब शरीर सुन्दर नहीं दीखता, नितम्ब भाग पूर्ण भरा हुआ नहीं भासता, बिल्कुल शुष्क बैठा हुआ होता है। ऐसे ही छाती भी योग्य परिमाण में उठी हुई नहीं दीखती; संकुचित होती है। मासिक धर्म प्रारम्भ हो जाने पर भी चेहरे पर योग्य स्त्रीभाव नहीं आता, इन लक्षणों से अन्तर अवयव पूर्ण विकसित नहीं है ऐसा जानकर त्रिवंग का सेवन कराना चाहिये।

यह भस्म स्त्रियों की प्रजनेन्द्रिय को उत्तम शक्तिदायक है। ज्यादा संतति या थोड़े-थोड़े समय में संतानोत्पत्ति होने और बार-बार गर्भपात होने का स्वभाव हो जाने से स्त्रियों की अंतरेन्द्रिय मे निर्बलता आ जाती है, इस कारण बाह्य अवयव और शरीर भी कमजोर हो जाते हैं, ऐसे समय पर त्रिवंग भस्म का उत्तम उपयोग होता है।

बाल अवस्था में असमय पर मासिक धर्म प्रारम्भ होने या किशोरावस्था में अधिक पुरुष-समागम होने से स्त्रियों की अंतरेन्द्रिय पीड़ित और निर्बल हो जाती है। इस कारण से गर्भ नहीं रहता और कदाचित रह जाय, तो भी गर्भ की वृद्धि योग्य परिमाण में न होकर गर्भस्राव या गर्भपात हो जाता है। प्रसव पूर्ण समय पर नहीं होता। यदि पूर्ण समय पर प्रसव हुआ हो, तो भी संतान बिलकुल कृश और टेढ़ी-बांकी जन्मती हैं। ऐसी स्त्रियों की अंतरेन्द्रियों को शक्ति देने और कार्यक्षम बनाने के लिए त्रिवंग भस्म का सेवन लाभदायक माना है।

कामेच्छा मर्यादा बाहर होने से या अधिक समय पुरुष-समागम होने से स्त्रियों के योनि मुख में, सफेद चिपचिपा या पतला स्राव (श्वेतप्रदर) होता है; यह स्राव कतिपय समय इतना अधिक होता है, कि इस स्राव के कारण स्त्री लाचार हो जाती है, इनमें से अनेकों के मन में उपभोग चित्र आने पर तत्काल अतिस्राव हो जाता है; एवं अनुषंगिक कृत्य देखने, सुनने या स्मरण आ जाने पर भी स्राव हो जाता है। इस रोग में त्रिवंग का अच्छा उपयोग होता है।

छोटी लड़कियों की खराब आदत के कारण या ऋतुस्नाता होने के पहिले पुरुष समागम होने से अंतरेन्द्रिय निर्बल हो जाती हैं, जिससे थोड़े-थोड़े श्रम से थक जाती है। योनिमुख में से जल जैसा पतला स्राव सारे दिन होता रहता है। यह स्राव त्रिवंग भस्म के सेवन से बन्द हो जाता है, और शरीर में बल भी आ जाता है। अनुपान रूप से गिलोयसत्व, शीतल मिर्च और गोखरू का चूर्ण देवें। ऊपर से दिन में दो बार दूध पिलावें।

मांसपेशियों और रक्तवाहिनियों की विकृति से सर्वाङ्ग में विशेषतः मस्तिष्क में शूल चलता रहता है। भीतर से रक्तवाहिनियों का आकुंचन होता है, और शूल भी चलता है। क्वचित् ऊपर से रक्तवाहिनी मोटी बनकर अशक्त हो जाती है एवं जीवनीय शक्ति का इन रक्तवाहिनियों के ऊपर का अधिकार नष्ट होने से हाथ-पैर उठाना या अन्य क्रिया करना अशक्यप्रायः हो जाता है। हाथ-पैर की शक्ति नष्ट होने से हाथ-पैरों में कम्प होता है, और शरीर कुब्ज बन जाता है। इस विकार पर त्रिवंग भस्म का अच्छा उपयोग होता है।

त्रिवंग भस्म वात और वातपित्त दोष, रक्त, मांस, अस्थि और शुक्र ये दूष्य तथा मगज, वातवाहिनियां, वातवहमण्डल, शुक्र स्थान, गर्भाशय, अण्डकोष और स्त्री बीजकोष, इन स्थानों में विशेष लाभ पहुँचाती है। (औ.गु.ध.शा.)

दूसरी विधि-शुद्ध कलई, शुद्ध शीशा और शुद्ध जसद तीनों १५-१५ तोले लेकर कड़ाही में तेज अग्नि पर रस करें। रस होने पर हल्दी, इमली की छाल और पीपल की छाल का चूर्ण अलग-अलग ६०-६० तोले लेकर क्रमशः थोड़ा-थोड़ा चूर्ण डालते जायें और बड़ के डण्डे से चलाते जायें। एक प्रकार का चूर्ण समाप्त होने पर दूसरा और तीसरा चूर्ण डालें। फिर भस्म को तवे से ढक १२ घण्टे तक तेज अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर भस्म को छान बड़ की जटा के क्वाथ के ७ और घीकुंवाररस से ७ पुट देने से उत्तम पीले रंग की १४ पुटी मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा और उपयोग-पहली विधि के अनुसार।

(७) जसद भस्म

विधि-शुद्ध जसद १ सेर कडाही में डाल, चूल्हे पर चढ़ाकर तेज आँच देवें; और लोहे के कलछे से चलाते रहें। आग की लपेट उठने पर नीम के पत्तों का स्वरस २० तोले डालें। फिर आग की लपटें उठें, तब पुनः २० तोले रस डालें। इस तरह ४ समय में एक सेर स्वरस

डालें। पश्चात् कड़ाही में मिट्टी अथवा लोहे का ढक्कन ढ़ककर ३ घण्टे अग्नि देने से भस्म हो जाती है। कड़ाही ठंडी होने पर भस्म को कपड़े से छान ६ घण्टे घीकुंवार के रस में खरल कर छोटी-छोटी टिकिया बनावें। पश्चात् सूर्य के ताप में सुखा सराव-सम्पुट में रखकर गजपुट दें। इस तरह ३० गजपुट देने से भस्म मुलायम और गुणकारी बनती है।

सूचना–स्वरस निकालने के पहिले पत्तों को जल से धो लेवें। फिर कूट, स्वरस-यन्त्र से बन्दकर वाष्प पर पकाकर यथाविधि स्वरस निकाल लेवें।

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में २ समय, मक्खन-मिश्री, दूध घृत, मिश्री या मलाई के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान से। नेत्ररोग में अंजनार्थ २ रत्ती जसद भस्म १ तोला गाय के मक्खन में मिलाकर लेवें।→ आहार एवं नेत्रोग, नेत्रशुक्लता देखो।

गुणधर्म–जसद भस्म कषाय और अति शीतल गुणवाली है। रसवाहिनी और रसवाहिपिण्ड की विकृति में यह भस्म उत्तम औषधि मानी गई है, और कफ पित्त शामक है। जसद भस्म नेत्ररोग, दाह, प्रदर, पित्तप्रमेह, खाँसी, अतिसार, संग्रहणी, धातुक्षय, जीर्णज्वर, आदि रोगों को दूर करती है। नेत्रों को अत्यन्त हितकर है। इस भस्म के सेवन से प्रमेह, पाण्डु और श्वास के रोग दूर होते हैं।

उपयोग–ज्वर रोग जिसमें सारे शरीर में दाह और व्याकुलता हो और क्षय की प्रथमावस्था में सूक्ष्म ज्वर रहता हो, इन दोनों पर जसद भस्म का अच्छा उपयोग होता है। कण्ठरोग, गंडमाला, अपची, अन्तरेन्द्रिय में शोथ, इन सब व्याधियों में इस भस्म के सेवन से लाभ होता है।

आंतों में शोथ होने पर एक प्रकार का अतिसार होता है, साथ में वमन भी होती है। इस अन्त्रशोथ के हेतु से ज्वर भी आता है। उदर में भयंकर शूल चलता है। इस रोग में जीभ फटी हुई या धुले और रंगे हुए चमड़े के समान मुलायम रहती है। आवाज बिल्कुल क्षीण हो जाती है। रोगी बिल्कुल कृश हो जाता है। हाथ उठाने की भी शक्ति नहीं रहती। ऐसी भयंकर स्थिति में भी जसद भस्म का बहुत अच्छा उपयोग होता है। इस रोग में जसद भस्म १ रत्ती को ६ रत्ती मिश्री के साथ मिलाकर ६ भाग करें और २-२ घण्टे पर एक-एक पुड़िया को छाछ या दूध के साथ देते रहने से सत्वर लाभ होने लगता है। छाछ या दूध सहन न कर सकें, ऐसे रोगी को, घी का दूध या चावल की खीलों का यूष देने से लाभ पहुँच सकता है। इसके साथ तालमखाने का जल देते रहने से अन्त्र को अच्छी सहायता मिलती है। (किसी को आँतों में शोथ आने पर उस स्थान में स्पर्श भी सहन नहीं होता; ज्वर १०१°-१०२° रहता है। बार-बार वमन होना, अति तृषा, पतले दस्त लगते रहना, निद्रानाश और अति अशक्ति आदि लक्षण उपस्थित होते हैं; उन पर यह जसद भस्म मिश्री के साथ दी जाती है। साथ ही पर दशाँग लेप लगाया जाता है।) Appendicitis? Pancreatitis?

कंठ में रही हुई गांठों का जीर्ण शोथ और पुराने कंठ रोग में तो जसद भस्म अच्छी लाभदायक है। वलय, वृन्द और वलास इन कंठ रोगों में तो जसद भस्म का उपयोग नहीं होता; परन्तु स्वरघ्न, विदारिका, गिलायु; अधिजिह्व, उपजिह्व, इन विकारों पर जसद भस्म का उपयोग होता है इनके अतिरिक्त स्वरसाद और स्वरभंग, इन विकारों में जसद भस्म का अच्छा उपयोग होता है। यदि ये विकार उपदंशजनित हों, तो जसद भस्म का उपयोग नहीं करना चाहिये। क्षयजन्य या कफजन्य अथवा रसवहापिण्ड (लसिका ग्रन्थियों) की विकृति में उपद्रवस्वरूप उत्पन्न हुए हो, तो जसद भस्म के सेवन से लाभ हो जाता है।

जन्मकाल में बालकों की शरीर रचना में न्यूनता रह जाने पर किसी को स्तन, पीठ, मस्तिष्क आदि प्रदेश पर ग्रन्थि हो जाती है। फिर उसमें से रस निकलता है या रस न निकलते हुए भी ग्रन्थि रसौली के सदृश बढ़ती जाती है। उस पर जसद भस्म, प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व शहद के साथ देवें और ग्रन्थिभेदन लेप (दन्तीमूल, चित्रकमूल की छाल, सेहुंड का दूध, आक का दूध, गुड़, गोंदवी, कासीस और सेंधा नमक) का लेप करने से गांठ बिखर जाती है।

पोथकी, अभिष्यंद, वर्त्म, शुण्डिका आदि नेत्र रोगों पर जसद भस्म का उत्तम उपयोग होता है। इन रोगों में अंजन के लिये १ रत्ती जसद भस्म को आधे तोले शतधौत गोघृत या मक्खन में मिलाकर दिन में दो बार प्रातः सायं अंजन करना चाहिये। इस अंजन से वर्त्मनिका या पलकों के पास पड़ा हुआ व्रण भी भर जाता है। - Blepharitis! Aunti-Azmir Aaa!

✓ नाड़ी व्रण, भगन्दर, दुष्टव्रण आदि विकारों में अन्य उपचार के साथ इस भस्म का सेवन कराने से अच्छा लाभ पहुँचता है।

जसद भस्म का उपयोग क्षय की विशिष्ट अवस्था में होता है जब उरःक्षत होकर फुप्फुस का कुछ भाग नष्ट हुआ-सा भासता है, सारे शरीर में विष फैलकर रक्त दूषित होकर तीव्र ज्वर आता है; प्रातःकाल के समय प्रस्वेद आता है; अंग गल जाता है, बल मांस का क्षय हो जाता है, ऐसे समय पर शिलाजतु के साथ इस भस्म का सेवन कराना लाभदायक है। इस औषधि के योग से क्षय में नया विष बनाने की क्रिया कम हो जाती है और रोगी को शांति मिलती है।

जसद भस्म प्रमेह में उपयोगी है। मेह के अन्य प्रकार और मधुमेह, इनमें आयुर्वेद की दृष्टि से अन्तर है। इस भस्म का उपयोग प्रमेह और मधुमेह दोनों में होता है, विशेषतः पित्तभूयिष्ठ लक्षण होने पर इसका उपयोग करना चाहिये। अङ्ग टूटना, हाथ पैरों में दाह, सारा शरीर गरम रहना, अधिक तृषा, परन्तु उसका थोड़े जलपान से शमन हो जाना, शरीर में स्थान-स्थान पर सुई चुभाने के समान पीड़ा होना, जिह्वा कठोर और शुष्क हो जाना, कंठ में रही हुई गांठों पर शोथ-सा हो जाना, भंयकर थकावट, थोड़ा-सा काम करने पर थक जाना, मूत्र में मधु

(शर्करा) का परिमाण मर्यादा में होने पर भी थकावट अधिक आना मस्तिष्क से अस्वस्थता विस्मृति, विचार शक्ति का ह्रास, थोड़ा-सा विचार करने पर मन उपराम हो जाना, मस्तिष्क गरम-सा हो जाना, अनेक समय विचार करते करते मन शून्य हो जाना इत्यादि लक्षण पित्तजन्य क्षार, नील, काल, पीत (हारिद्र), रक्त, मंजिष्ठ, इन ६ जाति के प्रमेहों में होते हैं। इन सब पर इसका उत्तम उपयोग होता है।

मधुमेह की आधुनिक उत्पत्ति अनुसार इन्सूलिन (Insuline) नामक मधुपिण्डों में से निकाला हुआ द्रव्य मधुमेह में उपयोगी है। इन्सूलिन की पूर्ति कम हो जाने पर रक्त में शक्कर (मधु)अधिक हो जाती है। पश्चात् वह रक्त में से मूत्र द्वारा बाहर निकलती है। इस हेतु से इन्सूलिन शरीर में बाहर से डालने पर प्रकृतितः कभी उत्पन्न हुए भी या उत्पन्न न हुए जो इन्सूलिन द्रव्य, वह बाहर से मिल जाने पर उसका शर्करा (मधु) नियमन का कार्य अच्छी रीति से हो सकता है। मधुमेह में मूत्र में मिलने वाली या रक्त मे संचित होने वाली शर्करा अग्न्याशय (Pancreas) से उत्पन्न अन्तःस्राव (Internal Secretion) अर्थात इन्सूलिन द्रव्य के अभाव का परिणाम है। यह आधुनिक मान्यता है।

सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर अन्य उपाय भी मधुमेह में करने की आवश्यकता है अर्थात् अग्न्याशय में मधुद्रावक द्रव्य का अभाव क्यों हुआ? इस बात का निर्णय दोष-दूष्य के विचार से अधिक स्पष्ट हो सकता है। जब दोष दूष्यों के वैषम्य के कारण से ही यह उत्पन्न हुआ है तब दोष-दूष्यों की विषमता दूर करना ही इसके नाश का अन्तिम और श्रेष्ठ उपाय है। इस उपाय के लिये जसद भस्म उपयोगी औषध है।

जसद भस्म शीतपित्त नया और पुराना रोग, दोनों पर दी जाती है। **रोग चाहे जितना उग्र हो, या धातुओं में लीन हो गया हो, जसद भस्म के सेवन से थोड़े ही समय में दूर हो जाता है।** शीतपित्त पीड़ितों को चाहिए कि कच्चा दूध अति गरम दूध-चाय तथा अधिक मिर्च का सेवन न करें। साधारण गरम दूध और मर्यादित मात्रा में निवायी चाय ले सकते हैं।

पाण्डुरोग में हाथ पैर का टूटना, रसवाहिनी और रसवहपिण्डों की विकृति अधिक हो और पित्त दोष की प्रधानता हो, तो जसद भस्म का उपयोग करना चाहिये।

गले की गांठ या उदरग्रन्थि बढ़ने पर श्वास का दौरा होता हो, या श्वास रोग और इन गांठों का साहचर्य हो, तो जसद भस्म का सेवन कराना चाहिए। अनुपान शहद-पीपल या सितोपलादि अवलेह।

जसद भस्म कफ और पित्त दोष, रस और मांस दूष्य, तथा रसवाहिनी, रसवहाग्रन्थियां, आँत, कण्ठ, नेत्र, वृक्क, अग्न्याशय, यकृत और उदर पर लाभ पहुँचाती है। (औ.गु.ध.शा. के आधार से)

सूचना-जसद भस्म जल पर तैरने लगे और नींबू के रस में डालने से बुदबुदे न उठें, उसे निरुत्थ समझना चाहिये।

दूसरी विधि-पहली विधि अनुसार कड़ाही में तैयार कर कपड़े से छानी हुई जसद भस्म को नींबू का रस, हल्दी का क्वाथ और घीकुंवार का रस, इन ३ औषधियों की क्रमशः ३-३ भावना देकर बार-बार गजपुट देने से उत्तम प्रकार की भस्म तैयार होती है।

वक्तव्य-इस भस्म को कतिपय चिकित्सक ९ पुट के स्थान में ४२ और १०० पुट देते हैं। कम से कम २१ पुट देने से भी अधिक गुणवाली होती है।

मात्रा और उपयोग-पहली विधि अनुसार। प्रथम विधि की अपेक्षा यह भस्म अधिक गुणदायक होती है।

(८) नाग भस्म

प्रथम विधि-एक सेर शुद्ध शीशे को कड़ाही में डाल चूल्हे पर चढ़ाकर तेज अग्नि दें। रस होने पर शुद्ध मैनशिल थोड़ा-थोड़ा डालते जाय, और ताजे अडूसे के मोटे डंडे से चलाते रहें इस रीति से धीरे-धीरे समान मैनशिल डाल देने से धूल जैसी सूक्ष्म भस्म हो जाती है। पश्चात् लोहे के तवे से भस्म ढककर ६ घण्टे तक तेज अग्नि देवें। फिर कड़ाही ठण्डी होने पर उतार, छानकर कच्ची भस्म को अलग निकाल देवें। पश्चात् छनी हुई शीशा भस्म में १ सेर शुद्ध गन्धक मिलाकर ६ घण्टे नींबू के रस में खरलकर शिवलिङ्ग के सदृश लम्बा गोला बनाकर सूर्य ताप में सुखावें। फिर सराव संपुट में रखकर १० सेर गोबरी के चूरे की अग्नि देने से भस्म तैयार हो जाती है। फिर इस भस्म में अष्टमांश मैनशिल मिला-मिलाकर अडूसे के पत्तों के रस के साथ १२ घण्टे तक खरलकर २१ गजपुट देने पर आशु फलप्रद बनती है।

मात्रा-१/२ से १ रत्ती, दिन में २ समय, शहद, दूध; मक्खन, मिश्री, सितोपलादि चूर्ण और घृत, हल्दी, आँवला और शहद या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

अनुपान-१-घोर प्रदर पर वंशलोचन, जीरा, इलायची और मिश्री।
२-आमातिसार में-सोंठ और सौंफ का चूर्ण।
३-गुल्म में-सोंठ और काला नमक।
४-कफ, वायु और जलोदर पर-अजवायन, पीपल और शहद
५-उपदंश पर-शीतलचीनी और इलायची का चूर्ण।
६-धातुक्षीणता पर-मक्खन और मिश्री।
७-मधुमेह में-शिलाजीत।

गुणधर्म–नागभस्म तिक्त, मधुर, उष्ण वीर्य, रूक्ष, विपाक में कटु, लघु, वृष्य, चक्षुष्य, कफ वातहर है तथा उदर कृमि, प्रमेह, [illegible] गुल्म, प्लीहावृद्धि, प्रदर, अतिसार; ज्वर, रक्तगुल्म, आमाशय वृद्धि से होने वाला अम्लपित्त, मन्दाग्नि, अपची, गण्डमाला, धातुक्षय, श्वासनलि की सूजन से होने वाली खांसी, आमवात, निर्बलता, शिरदर्द, यकृत् दोष, श्वास रोग, सब प्रकार के मूत्र रोग, धनुर्वात आदि वातरोग, पाण ये सब रोग दूर होते हैं, इस नागभस्म के सेवन से रस धातु से लेकर शुक्र धातु तक, सब धातु-क्रम से पुष्ट होकर उत्तम शक्ति आती है स अवयव पुष्ट होकर अग्नि प्रदीप्त होती है।

उपयोग–जब आमाशय का आकार बढ़ने से अम्लपित्त हो जाता है तब प्राय: दाह, अतिशय तृषा, तुरन्त वमन करने की इच्छा होना इत्या लक्षण होते हैं। **ये विकार अन्त:, परिमार्जन से कम हो जाते हैं। इसलिये एक समय अन्त: परिमार्जन (वमन आदि शोधन) करके नागभ देने से सत्वर लाभ पहुँचता है। नागभस्म के योग से आमाशय के आकुंचन होने में सहायता मिलती है। उदर में व्रण होकर अम्लपि समान उत्पन्न हुआ विकार भी नागभस्म के सेवन से दूर हो जाता है। इस रोग में रोगी अत्यन्त क्षीण हो जाता है। यदि रोग जीर्ण हो ही तो नाग भस्म का उपयोग अवश्य करना चाहिए।**

अपची और गण्डमाला रोग में गांठ सूज जाती है, यह उतने ही दोषों की दुष्टि नहीं है, परन्तु यह विकार प्राकृतिक है, अर्थात् सारे शरी में दोष दुष्टि फैलने पर होता है इस विकार में ऐसी अवस्था आती है कि, सब धातुयें शुष्क और त्वचा भी शुष्क हो जाती है। अस्थि पर त्वच लपेटी हुई हो, ऐसी बाह्य अवयवों की अवस्था भासती है। कण्ठमाला-अपचीकी गांठ कठोर या सूजी हुई और ऊपर अधिक उठी हुई भासत हो तो, **उस पर अन्य औषधियों की अपेक्षा इस भस्म का उपयोग अच्छा होता है। इसके सेवन का आरम्भ होने पर थोड़े ही दिनों में [illegible] की कठोरता का ह्रास होता है।** सब धातुएँ शनै:शनै पुष्ट होने लगती है। इस तरह यह गण्डमाला के उत्पादक विकार को कम कराने के लि भी उपयोगी है। नागभस्म प्राकृतिक रोग की उत्तम औषधि है। प्राकृतिक रोग के दो प्रकार हैं। पहले प्रकार में रोग अति दृढ़ जड़ वाला, दीर्घका पर्यन्त रहने वाला, त्रास देने वाला, एवं एक समय मिट जाने पर पुन: पुन: उठने वाला होता है। क्वचित् कुछ काल तक बिल्कुल नष्ट हो जा का भास होता है परन्तु थोड़ा-सा कारण मिलने पर पुन: दर्शन देता है।

दूसरे प्रकार का रोग न्यूनाधिक परिमाण में एक-सा बना रहता है। पहले प्रकार की व्याधियाँ उन्माद आदि है। दूसरे प्रकार के रोग मधुमेह गण्डमाला, क्षय आदि हैं। **इसमें नित्य टिकने वाले दूसरे प्रकार के रोगों पर नागभस्म का अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्रथम प्रकार के रोगों में अभ्र भस्म तथा द्वितीय प्रकार के रोगों में नाग भस्म लाभदायक है।**

नाग भस्म का उपयोग मधुमेह में उत्तम होता है। **मधुमेह विकार** सारे शरीर में व्यापक दोष और सब धातुओं की विकृति होने पर उ होता है। आयुर्वेद की दृष्टि से मधुमेह में वात, पित्त, कफ, तीनों दोष और रस, रक्त, माँस, मेद, वसा, लसिका, मज्जा, शुक्र और ओज सब धातुएं दुष्ट हो जाती हैं। इन सबकी क्रिया परस्पर एक दूसरे पर होने के पश्चात् मधुमेह उत्पन्न होता है। **इस सिद्धान्त के अनुक्रम से चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् त्रिदोष अथवा चैतन्याणुभवन क्रिया में जो विकार हुआ हो, उसे दूर करना प्रथम कर्त्तव्य है।** इस तरह जब त्रिदोष में उत्प हुई विकृति दूर होती है, तभी उस-उस अणु की बनी हुई पृथक्-पृथक् धातुओं मे से दुष्टी दूर होती है। त्रिदोष में इस रीति की दुष्टी के दो प्रकार हैं। एक अब्धातु उत्पादक, दूसरी अब्धातु शोषक। मधुमेह में पहले प्रकार की दुष्टी होती है। नाग भस्म का उपयोग इस प्रथम प्रका की दुष्टी के शमनार्थ होता है। **इसका सेवन करने पर प्रथम तृषा कम होती है। द्वितीय कार्य मधु (शर्करा) कम करने का है, वह भी [illegible] होने लगता है। यह कार्य इस भस्म में शक्तिवर्द्धक गुण होने से सत्वर प्रतीत होता है। ऐसे समय पर गोदुग्ध मात्र या पथ्य रखने से [illegible] शीघ्रता से अच्छा लाभ पहुँचता है।** मधुमेह में अन्य (कोथ आदि) उपद्रवों के शमन के लिए इस भस्म के साथ शिलाजीत देने से ही विशे फायदा होता है।

मधुमेह के अनेक रोगी स्थूल और अनेक कृश होते हैं। स्थूल रोगों में मेद की दुष्टि अधिक होती है। ऐसे रोगियों का शरीर के परिमाण की अपेक्षा बल भी कम होता है। **मेदस्वी मधुमेही रोगियों के लिए नागभस्म का उपयोग ज्यादा हितकर है और कृश रोगियों को दाह आदि लक्षण अधिक परिमाण में होने पर जसद भस्म लाभदायक है।**

नाग भस्म कोष्ठशूल पर उपयोगी है। यह शूल एक विशिष्ट प्रकार का होना चाहिए। इसमें अंत्र और सब कोष्ठगत अवयव बिल्कुल अशक्त हो जाते हैं और उनका व्यापार शिथिल हो जाता है। यह शूल वातप्रधान या वातपित्तानुबन्धी होता है। इस रोग में थोड़ी-थोड़ी वमन अधिक त्रास से होती है और वमन का वेग मन्द होता है। **ऐसे समय पर नागभस्म का अच्छा उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त रङ्ग के कारखाने में काम करने वालों को जो उदरशूल उत्पन्न होता है, उसमें भी नागभस्म लाभदायक है।**

बद्धकोष के हेतु से शौचशुद्धि नहीं होती। यह विशेषत: आँतों की निर्बलता के कारण से होता है। इसका हेतु अनेक समय शुक्रक्षीण होने से बद्धकोष्ठ होता है, एवं अन्य धातुओं में क्षीणता हो जाने से भी कोष्ठबद्धता होती है। इसमें शौच का वेग निर्बल हो जाता है। वेग

उत्पन्न होने पर भी अन्त्र की बहिनि:सरण शक्ति न्यून हो जाने से मल प्रवृत्ति नहीं होती, ऐसे प्रकार के बद्धकोष्ठ में नाग भस्म उत्तम कार्य करती है, आंतों को शनै:शनै: सबल बना कर नियमित मलत्याग कराती है।*

अस्थिगत व्रण में इस भस्म का अच्छा उपयोग होता है। अस्थि-धातु की पुष्टि के लिये पार्थिव आदि घटकों की यह पूर्ति करती है।

मज्जागत दोषों के योग से अस्थि क्षीण और नरम होकर टेढ़ी-बांकी हो जाती है तथा मज्जा भी दुष्ट हो जाती है। अस्थियों के संधिस्थान में हड्डी बड़ी-सी या दबी-सी भासती है। कभी-कभी इस विकार के प्रारम्भ में और पश्चात् में भी भयङ्कर वेदना होती है अस्थि और संधि स्थानों में तीव्र शूल उत्पन्न होता है। ज्वर, वमन, बेचैनी आदि लक्षण होते हैं। **ऐसी दशा प्रसूतावस्था और सगर्भावस्था में भी हो जाती है। यह विकार अस्थिमज्जागत वातप्रकोप से होता है, ऐसा आयुर्वेद का सिद्धान्त है।** इस पर नागभस्म का अच्छा उपयोग होता है।

अनुपान–आँवले, गोखरू और मिश्री का चूर्ण देवें।

अशक्ति से मलावरोध होकर अर्शरोग उत्पन्न हुआ हो, तो वह नागभस्म के सेवन से दूर होता है। इस रोग में शोथ होकर भीतर का हिस्सा बाहर निकलता है। वह प्रयास करने से भीतर नहीं जाता, बाहर ही रहता है। अर्श के मस्से बिल्कुल मुलायम और निर्बल होते हैं। शौच के समय मल को बाहर निकालने की भी शक्ति नहीं रहती कृत्रिम उपायों से शौच शुद्धि करनी पड़ती है। ऐसे विकार में स्नायुओं का शैथिल्य हो तो नागभस्म देनी चाहिये। परन्तु शुक्र के अति दुरुपयोग के कारण अशक्ति, मलावरोध और अर्श हुए हों, तो नागभस्म की अपेक्षा वंग भस्म का उपयोग विशेष हितकर है।

पित्तज गुल्म और रक्तज गुल्म, इन विकारों पर नाग भस्म का शक्तिवर्द्धक रूप से उपयोग होता है। पित्तगुल्म के प्रारम्भ-काल में ही नागभस्म का सेवन कराया जाय तो अधिक वृद्धि नहीं होती। रक्तगुल्म के प्रारम्भ में तो किसी भी प्रकार की योजना नहीं की जाती। रक्तगुल्म जीर्ण होने पर (१० मास हो जाने पर) ही उसका साध्यत्व होता है। ("रक्तगुल्मपुराणत्वं सुख साध्यस्य लक्षणम्")।

ग्रहणी और अतिसार, इन व्याधियों में शरीर बल क्षीण हुआ हो, तो रोग को दूर करने के लिये जो प्रतिकार होना चाहिये, वैसा रोग निवारक शक्ति से नहीं होता जिससे रोग दीर्घकाल-पर्यन्त बढ़ता जाता है। रोगी दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक क्षीण होता जाता है। ऐसे समय पर यदि ज्वर आदि लक्षण न हो तो नाग भस्म दी जाती है।

नागभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और सुवर्णभस्म, ये सब औषधियां जीवनीय (जीवन के लिये उपकारक) हैं। ये सब भस्में शरीर के घटकों में नया जीवन उत्पन्न करती हैं, और घटकों को अन्नादिकों में से मूल अंश को उत्तम प्रकार के शोषण करने की शक्ति प्रदान करती है। यह इन औषधियों में विशेष गुण है। **इनमें नागभस्म माँसपेशी आदि के लिये जीवनीय है। अत: इनकी शक्ति क्षीण होने पर नाग भस्म का उपयोग करना चाहिये।**

नागभस्मका वृष्यत्व (नपुंसकत्व नाशक) गुण जन्मषण्ढों के लिये तो प्रतीति में नहीं आता। परन्तु मधुमेह के समान क्षीणता उत्पन्न करने वाले रोगों से यदि षण्ढता आई हो, तो नागभस्म के सेवन से दूर होती है। यदि यह नपुंसकत्व स्नायुओं की निर्बलता के कारण आया हो तो भी नागभस्म का उपयोग होता है एवं अंडकोष की ग्रन्थियों की निर्बलता से यह रोग उत्पन्न हुआ हो, तो इसके साथ शिलाजतु और स्वर्ण भस्म आदि औषध का उपयोग करना चाहिये। पुष्पधन्वा रस में नाग भस्म है, यह रस नपुंसकत्व दूर करने में उत्तम है।

यदि वातवाहिनी या मानसिक क्षीणता आदि कारणों से पाण्डु रोग उत्पन्न हुआ हो, तो अभ्रक भस्म का सेवन अधिक लाभदायक है। रक्तस्राव या रज: स्राव की अधिकता से या मिट्टी खाने से या कृमि आदि कारणों से रक्त के रक्ताणु न्यून होकर पाण्डुरोग उत्पन्न हुआ हो, तो लोह भस्म उपयोगी है, परन्तु अणुभवन क्रिया या धातुपरिपोषण क्रिया, हृदय आदि सब इन्द्रियां निर्बल हो जाने से पाण्डुरोग हुआ हो, तो नागभस्म उत्तम कार्य करती है। इस भस्म को लोह भस्म और अभ्रकभस्म के साथ मिलाकर भी दे सकते हैं।

जीर्ण पक्षाघात के रोग में अधिक अबलत्व, विशेष करके शाखाश्रित रक्त वाहिनियां, स्नायु, कण्डरा, सब में ज्यादा निर्बलता आई हो और इसी कारण से हाथ पैरों और अंगुलियों की शक्ति क्षीण हो गई हो, तो नागभस्म देनी चाहिये।

मधुमेह, अन्य मेह और क्षीणता उत्पन्न करने वाली अन्य व्याधियों के अन्त में भ्रम-सा होना, यह लक्षण होता है। मन में निकम्मे-निकम्मे विचार आकर मन शून्य-सा हो जाता है। यह स्थिति ज्ञानेन्द्रियां अशक्त होने अथवा रक्त की पूर्ति न होने या निर्बल हो जाने से होती है। कितने ही रोगी विचारों में लीन हो जाते हैं, कितने ही अनैच्छिक कर्म ही भूल जाते हैं, व्यवस्थापूर्वक नहीं कर सकते जैसे-पेशाब करने की इच्छा उत्पन्न हुई है, फिर भी उठने की अनिच्छा या इसके लिये मिनटों या घण्टों तक विचार करते रहना; इस रीति से मूत्र को रोकने से शून्य-सी अवस्था हो जाती है। परन्तु उतना होने पर भी मूत्रोत्सर्ग की सुध नहीं। **ऐसे प्रकार के रोगियों पर नागभस्म का इतना अच्छा उपयोग होता**

---

* नागभस्म अन्न को बल देता है, किन्तु इसके सेवन करने पर तुरन्त लाभ नहीं पहुँच सकता। अति कम मात्रा में अन्न को सबल बनाने वाली अन्य औषधि अभ्रक भस्म और कुमारिला के साथ मिला देना चाहिये और पथ्यपालन सह शान्तिपूर्वक सेवन करनी चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो रात्रि को मल को आगे सरकाने वाली इसबगोल की भूसी या अन्य औषधि भी देते रहना चाहिये।

कम पुट वाली नागभस्म अधिक मात्रा में अधिक दिनों तक नहीं दी जाती, अन्यथा प्रतिक्रिया होकर रक्ताणुओं को हानि पहुँच जाती है। वृद्धों को बिना नागा लम्बे समय तक देने पर पाण्डुता आ जाती है।

स्व. ठा. नाथूसिंह जी

है कि, अनेक समय एकाथ दिन में ही मनुष्य के विचारों में मग्न हो जाने वाली स्थिति दूर होकर मन और इन्द्रियां कार्यक्षम हो जाते हैं। मधुमेह की अंतिम अवस्था में संन्यास (मूर्च्छा) रूप उपद्रव की प्राप्ति होती है। इसमें नागभस्म अनेक औषधियों में से एक उत्तम औषधि है। अनेक समय इसके सेवन से संन्यास के अति त्वरित होने के उदाहरण देखने में आये हैं।

हृदय और फुफ्फुस अशक्त होने से एक प्रकार की शुष्क त्रासदायक कास, जिसमें आवाज गहरी हो जाने के समान खांसना होता है। इस कास रोग में कफ बिल्कुल नहीं गिरता। बार-बार खांसी का वेग उठता रहता है। ऐसे रोग में नागभस्म अच्छा काम देती है। चिकित्सकों को कर्कस्फोट (Cancer) में नाग भस्म का उपयोग करके देखना चाहिये। वातप्रधान कर्कस्फोट होने पर विशेष उपयोग हो सकेगा। वेदना अधिक हो, तो नागभस्म अच्छा कार्य करती है।

नागभस्म वात-विशेषत: व्यानवायु दोष, रस से लेकर शुक्रपर्यन्त सातों धातु, ये दूष्य और मस्तिष्क, वातवाहिनियाँ (संज्ञावाहिनी और आज्ञावाहिनी), स्नायु, आमाशय और अन्त:स्रावक पिण्ड इन स्थानों पर विशेष लाभ पहुँचाती है। (औ.गु.ध.शा.)

नाग भस्म के लिए शास्त्र में लिखा है, कि-

नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति
व्याधिं विनाशयति जीवनमातनोति।
वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति
मृत्युं च नाशयति सन्ततसेवित स:॥

नागभस्म का सतत सेवन करने से सौ हाथी के समान बल की प्राप्ति होती है; सब रोगों का विनाश होता है; आयु की वृद्धि होती है; जठराग्नि प्रदीप्त होती है, कामोत्तेजना होती है; एवं मृत्यु का भी नाश होता है।

सूचना-किसी-किसी समय नागभस्म से कोष्ठशूल उत्पन्न होता है। ऐसे समय पर थोड़े दिनों के लिये भस्म बन्द कर देनी चाहिये। यह भस्म अच्छी निरूत्थ न हुई हो, तो उपयोग में नहीं लेनी चाहिये। कच्ची भस्म से उदरशूल होने की विशेष संभावना है।

दूसरी विधि-एक सेर शीशे को कड़ाही में डाल चूल्हे पर चढ़ा तेज अग्नि देकर रस करें। फिर आक के फूल थोड़े-थोड़े डालते जायें और आक की जड़ों के डण्डे से चलाते रहे। ४ सेर आक के फूल लगभग ४ घण्टे डालने से भस्म हो जाती है। पश्चात् कड़ाही पर ढक्कन ढ़ककर ६ घण्टे तक तेज अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर कड़ाही उतार कर भस्म को कपड़े से छान लेवें। कच्चे भाग को अलग निकाल डालें और छनी हुई भस्म में बारहवां हिस्सा मैनशिल मिलाकर अडूसे के पत्तों के रस में ६ घण्टे खरलकर छोटी-छोटी टिकिया बाँध, सूर्य के ताप में सुखा, गजपुट देवें। इस तरह १० गजपुट देने से पीले रंग की उत्तम नागभस्म तैयार होती है। (वै.चि.सा.)

वक्तव्य-श्री वैद्यराज सुखरामदासजी टी, ओझा इस प्रकार की भस्म बनाते थे। वे मिट्टी के कपाल में अर्कमूल के डण्डे से शीशे को घोटते थे। भस्म होने पर घीकुंवार के रस में ३ घण्टे खरल करा पेड़े के समान एक टिकिया बाँधते थे। उसे मिट्टी के तवे के बीच में ५ सेर गोबरी की निर्धूम कुटी हुई अग्नि के भीतर रख बाटी सदृश पका लेते थे। इस तरह ४०-५० और १०० पुट देकर भस्म बनाते थे। अधिक पुट देने पर यह भस्म अधिक लाभप्रद बनती है।

मात्रा-१/२ रत्ती से १ रत्ती तक दिन में दो समय देवें।

अनुपान-सुजाक में बिहीदाने के लुआब के साथ अथवा गिलोय के रस और शहद के साथ। रक्तार्श में अनार के रस के साथ। इस तरह और अनुपानों की योजना करें। विशेष उपयोग पहली बार में लिखे अनुसार करना चाहिये।

सूचना-इस भस्म के सेवन-काल में खटाई को बिल्कुल छोड़ दें।

तीसरी विधि- लोहे की कड़ाही में शुद्ध शीशे का रसकर पलास मूल के डण्डे से ४ प्रहर घोटते रहें अग्नि तेज देते रहने से लाल रंग की भस्म तैयार होती है। (र.च.)

मात्रा, अनुपान और उपयोग-पहली विधि में लिखे अनुसार।

वक्तव्य-श्री वैद्यराज सुखरामदास टी, ओझा इस प्रकार की अनेक भस्म वर्षों तक बनवाते रहते थे। वे कड़ाही में पलास या बड़ के डंडे के शीशे को घोटकर बनाते थे। फिर घीकुंवार के रस में खरलकर २-२ तोले की टिकिया बांधते थे। उनको सुखा सराव सम्पुटकर गजपुट देते थे। गजपुट देने पर शीशा सजीव होता है और कुछ नीचे राख में चला जाता है। यदि कड़ाही में तवे से ढ़ककर ६ घण्टे अग्नि देवें तो शीशा सब कड़ाही में ही रह सकेगा। पुन: डण्डे से घोट भस्मकर ऊपर की विधि अनुसार गजपुट देवें। इस तरह ४० पुट तक शीशा सजीव होता रहता है। शीशा मृत होने पर ६० पुट और दे देने से मुलायम शीशा भस्म बन जाती है।

यह भस्म मधुमेह में आधा से १ रत्ती मक्खन के साथ १० दिन तक देने से मूत्र के साथ शक्कर का जाना बन्द हो जाता है। फिर १० दिन छोड़कर पुन: १० दिन तक दें। मधुमेह के कई रोगियों को यह भस्म दी है और परिणाम में अच्छा लाभ पहुँचाने का अनुभव यहाँ हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रदररोग, नेत्र रोग और कफज मेह पर भी सफलता सह प्रयोजित होती है।

(९) पारद भस्म

विधि–शुद्ध पारद एक तोले को कपरौटी की हुई अंग्रेजी पक्की आतशी शीशी में (Flask) डालकर ऊपर से ५ तोले एसिड सल्फ्यूरिक (गन्धक का तेजाब) डालें। शीशी को खुले मैदान में सिलगते हुए कोयलों की अंगीठी पर धर दें। आधे घण्टे बाद शीशी के मुँह से धुआं निकलना बन्द होने पर उठा लें, और ठण्डी होने पर शीशी से श्वेत रंग की पारद भस्म निकाल लें। भस्म का वजन २ माशे बढ़ जाता है। (खू. चि.)

डाक्टरी में इस भस्म को परसलफेट आफ मर्करी (Persulphate of mercury) कहते हैं। इसकी बनाने की विधि रस कर्पूर में देखें।

मात्रा–एक से चार चावल तक मुनक्का में रखकर निगल जायें। अथवा फीके दलिये (मिश्री अथवा नमक रहित) में रखकर निगल जायें। दांत को भस्म लगेगी को दांत निर्बल जो जायेगा।

उपयोग–यह भस्म उपदंश (Syphilis)और कुष्ठ को दूर करने में अति उपयोगी है। उपदंश में ३ से ७ दिन और कुष्ठरोग में १५ से २० दिन देनी पड़ती है। उपदंश दूर हो जाने के बाद भविष्य में पारद का विकार कभी देखने में नहीं आया। उपदंश में १ समय और कुष्ठ के रोगी को दिन में २ समय देनी चाहिए।

सूचना–(१) किसी को वमन, विरेचन हो, तो भय न मानें।

(२) जिनको मसूढे या दांतों में से पूय निकलता हो, उनको यह भस्म न दें, अन्यथा दाँत गिर जायेगा।

(३) तिजाब शुद्ध लें। जल या तैल मिला हुआ न लेवें।

(४) दूध दही से बने हुए पेड़ा, बर्फी, कलाकन्द आदि पदार्थ उपयोग में न लें। घृत का सेवन खूब करें। फीका दलिया मात्र (थूली) और मूंग की दाल खावें। नमक, मिर्च, खटाई न लें।

(५) यह भस्म अन्य धातुओं की भस्म के साथ मिलाने में उपयोगी नहीं है। कारण खटाई लगने से पारा पुनः मूल रूप से आ जाता है। उपदंश के हजारों रोगियों को हमने दी है; किसी को हानि नहीं हुई।

(६) इस भस्म को चीनी मिट्टी के प्याले में डाल ऊपर जल भर दें। ३ घण्टे बाद जल को निकाल देवें। फिर ८-१० बार जल मिला-मिलाकर धोवें, जिससे गन्धक के तेजाब की अम्लता निकल जायेगी। फिर भस्म को सुखा लेने से पीले रंग की बन जाती है। इस पीत भस्म को ४ गुने मक्खन में मिला कर मलहम बना लेवें। इसमें से रात्रि को सोने के समय काँच की सलाई से अञ्जन करने से नेत्र में जल स्राव होना और रोहें कटना, दोनों विकार दूर हो जाते हैं।

पारद भस्म द्वितीय विधि–कूपीपक्व प्रकरण में वर्णित बुभुक्षित पारद सरल विधि द्वारा बुभुक्षित किया हुआ एवं पूर्णचन्द्रोदय (शत गुण गंधक जारित) प्रकरण में उल्लिखित अभ्रक सत्व ग्रासित पारद १० तोले लेकर कठगूलर के दूध में घुटाई करें। ३ दिन घुटाई करने के बाद उसका गोला बनालें, पश्चात् १ मिट्टी के सम्पुट में दोनों भागों में कठगूलर के दूध में पिसी हुई असली हींग का मोटा लेप करके सुखा लें। पश्चात् सम्पुट के नीचे के पात्र में २ तोला सुवर्णमाक्षिक सत्व भस्म बिछा दें। इस पर ऊपर वाली पारद गोली रख दें। पुनः उस पर २ तोले सुवर्णमाक्षिक सत्व की भस्म रखकर सम्पुट बन्द कर, कपड़मिट्टी कर दें। संपुट को सुखाकर ३० कण्डों की आंच द्वारा पुट लगा दें। इससे भस्म हो जाती है। (वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

सूचना–यदि पारद वास्तव में अग्निस्थाई व पक्षच्छिन्न हो गया हुआ लिया है तो पुट देने से भस्म पूर्ण मात्रा में मिलेगी। ४ तोला वजन सुवर्णमाक्षिक सत्व भस्म का भी शामिल रहेगा। अन्यथा पारद अधिकांश में उड़ कर मात्र माक्षिकसत्व भस्म ही शेष रहेगी। वह पारद भस्म नहीं मानी जायेगी। पूरे वजन वाली पारद भस्म मानी जायेगी।

मात्रा–१ चावल से १/२ रत्ती तक, मक्खन, मलाई, बादाम के हलवे के साथ।

उपयोग–यह भस्म उत्तम रसायन वाजीकरण तथा वयः स्थापक तथा अनेक दुस्साध्य व्याधियों को नष्ट करने में चमत्कारी गुणप्रद होती है।

(१०) सुवर्णमाक्षिक भस्म

विधि–शुद्ध सोना माखी को कुलथी के काढ़े में १२ घण्टे खरलकर टिकिया बांध, सूर्य के ताप में सुखावें। पश्चात् सरावसंपुट करके गजपुट में फूंक दें। इस तरह अरण्डी के तैल, मठ्ठे और बकरे के मूत्र में क्रमशः खरलकर एक-एक गजपुट देने से भी भस्म तैयार होती है। फिर भी बकरे के मूत्र के ३ पुट ज्यादा देने पर भस्म विशेष लाभदायक बनती है।

मात्रा–१ से ३ रत्ती दिन में ३ बार दूध, शहद, गुलकन्द, गिलोयसत्व, त्रिफला, कुटकी, मक्खन-मिश्री या रोगानुसार अनुपान से दें।

अनुपान–१. मसूरिका पर कचनार की छाल के क्वाथ के साथ देने से अन्तर्गत विष बाहर निकालता है।

२. पाण्डु, हलीमक, कामलापर–शहद-पीपल या मूली के रस से

३. स्वप्नदोष, जीर्णज्वर, मस्तकशूल, पित्तप्रमेह और मूत्रकृच्छ पर मक्खन-मिश्री या शहद-मिश्री के साथ।

४. वमन पर-जीरा, मिश्री और शहद के साथ।

५. निद्रानाश में-सोंठ और आंवलों के मुरब्बे के साथ।

६ वृद्धावस्था की निर्बलता, कुष्ठ, प्रमेह, पाण्डु और क्षय पर गोदुग्ध के साथ।

गुणधर्म-यह भस्म पाण्डु, कामला, जीर्णज्वर, निद्रानाश, मस्तिष्क की उष्णता, पित्तविकार, नेत्रजलन, नेत्र की लाली, वमन, उबाक, व्रण दोष, पित्त प्रमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ, शीर्षशूल, विषविकार, अर्श, उदर रोग, कण्डु, कुष्ठ, कृमि और अश्मरी आदि रोगों को दूर करती है। कफपित्तविकृति में यह भस्म विशेष लाभदायक है।

उपयोग-सुवर्णमाक्षिक, यह लोह-ताम्र का सौम्य कल्प है।* सुवर्ण माक्षिक भस्म स्वादु, तिक्त, वृष्य, रसायन, योगवाही, शामक, शक्तिवर्द्धक, पित्तशामक, शीतवीर्य, स्तम्भक और रक्तप्रसादक है। इसके योग से रक्तप्रसादन होने से रक्ताणु सुदृढ़ होते हैं और रक्त धातु सशक्त बनती है। लोह के अन्य कल्पों में जो उष्णता और तीव्रता आदि गुण है, वे इस भस्म में नहीं है। यह कल्प अति सौम्य होने से कोमल प्रकृति, सुकुमार और अशक्त स्त्री-पुरुषों के लिये निर्भय रूप में उपयोग में आता है।

केवल पित्तविकृति अथवा कफपित्त संसर्गज विकृति में माक्षिक का अच्छा उपयोग होता है। इसलिये इस भस्म का पित्तज शीर्षशूल, पित्तज अम्लपित्त पित्तज परिणामशूल, पित्तज गुल्म, इन व्याधियों पर अवस्था-भेद और अनुपान भेद से उपयोग होता है।

पित्तज शीर्षशूल में सूतशेखर का भी उपयोग होता है, परन्तु सूतशेखर देने में मुख्य लक्षण भ्रम (चक्कर) होना चाहिये। सूतशेखर वातपित्तात्मक विकारों में उपयोगी होता है। परन्तु जिस शीर्षशूल में उबाक, मुंह में कड़वापन, कोई भी अच्छा प्रिय पदार्थ खाने में रुचि न हो और वमन होने पर शीर्षशूल कम हो जाना आदि लक्षण हों उस पर सुवर्णमाक्षिक भस्म का अच्छा उपयोग होता है। जीर्ण शीर्ष शूल में भी अच्छा इलाज हो जाने के अनेक उदाहरण मिले हैं।

बार-बार चक्कर आना, विचार करते-करते मन गुम हो जाना और चक्कर आना एवं सूर्य के ताप में फिरने, किसी भी उष्णवीर्य पदार्थ के सेवन, जागरण, मगज के थोड़े श्रम, शक्ति से थोड़ा ज्यादा विचार होने आदि थोड़ी-थोड़ी बातों से चक्कर आ जाना, इस सब प्रकार के चक्कर पर सुवर्णमाक्षिक भस्म देनी चाहिये। अनुपान रूप से अनार का रस, मोसम्बी का रस, या अनार शर्बत आदि का उपयोग करें।

नेत्रशोथ, लाली, नेत्रदाह ये सब अधिक, परन्तु परिमाण में वेदना कम, अथवा नेत्र के और दोष कम होने पर भी भयंकर दाह होना, यहाँ तक कि रोगी की ऐसी इच्छा हो कि, नेत्र पर बर्फ बाँध दूं या शीतल जल छिड़कता ही रहूँ; इन सब लक्षणों का कारण पित्तदोष ही है। वात अथवा कफ की प्रधानता नहीं है। ऐसे पित्ताभिष्यन्द और रक्ताभिष्यन्द रोग में सुवर्णमाक्षिक भस्म का सेवन लाभदायक है। खाने और अंजन करने, दोनों रीति से उपयोगी है। इस तरह उपयोग करने से भली-भाँति रक्तप्रसादन हो जाता है। पित्तप्रधान जीर्ण नेत्र रोग (मोतियाबिन्दु, लिंगनाश और भांपणी के नीचे बड़ी-बड़ी फुन्सियाँ हो जाना और माँस बढ़ना, इन विकारों) को छोडकर शेष नेत्र रोगों में माक्षिकभस्म का सेवन कराया जाता है। माक्षिकभस्म के साथ प्रवाल पिष्टी मिलाकर दिन में दो बार देते रहने और रात्रि को सोते समय त्रिफला चूर्ण १-१ माशा शहद के साथ देते रहने से नेत्र-लाली और अन्य जीर्ण दोष शमन हो जाते हैं।

आगन्तुक कारण क्रोध आदि, अतिजागरण और अतिगरम पदार्थ के सेवन से पित्तवृद्धि होकर रोग के वेग की वृद्धि हो जाती है। थोड़ी हलचल करने पर घबराहट हो जाती है। इस पर माक्षिकभस्म का अच्छा उपयोग होता है।

पित्त दोष दुष्टी होने के पश्चात् उसका आश्रय, रक्त, रक्तवाहिनियाँ और हृदय, स्थान दुष्ट होते हैं। इन दोष, दूष्य और स्थान दुष्टी के कारण अनेक प्रकार के भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। फिर जब ये रोग जीर्ण होते हैं; तब हाथ, पैर और मुँह पर शोथ आता है। यह माक्षिक के योग से अच्छा हो जाता है। सुवर्णमाक्षिक हृद्य, स्तम्भन और रक्त-प्रसादन होने से, इन विकारों पर अच्छा कार्य करती है। यह पर्णबीज की जाति की औषधि है, परन्तु पर्णबीज में बेचैनी लाने का गुण होने से, वह लेने पर अनेकों का मन खराब हो जाता है और वमन हो जाती है। माक्षिक ऐसी न होने से वह शरीर में ठहरती है, पचन हो जाती है और अपना हृदय कार्य अच्छी रीति से करती है।

रक्त में विदग्ध पित्तमिश्रित होने से पित्त के तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल और द्रवत्व गुण बढ़ जाते हैं। इस हेतु से रक्तवाहिनियों की त्वचा पतली हो जाती है। इस तरह रक्तपित्त से जब रक्त में उष्णता आदि गुण बढ़कर और रक्तवाहिनियों की अन्तस्त्वचा पतली होकर रुधिरवाहिनियां फूटती हैं, और उनमें से रक्त स्राव शुरू हो जाता है, तब वह आयुर्वेद के मतानुसार रक्तपित्त रोग कहलाता है। यह व्याधि अधोमार्ग और ऊर्ध्वमार्ग, दोनों और से प्रवृत्त होती है। इस पर माक्षिक का अच्छा उपयोग होता है। इसके साथ प्रवालपिष्ठी, हल्दी और सोनागेरू मिश्रित करके देने से अति शीघ्र और अच्छा लाभ होता है, इस रोग में केवल माक्षिक के सेवन से अच्छी चिकित्सा होने के भी अनेक उदाहरण मिले हैं।

* सुवर्णमाक्षिक में २ प्रकार है। १ ताम्र प्रधान; २ लोह प्रधान। ताम्र प्रधान को (Copper Pyrites)और लोह प्रधान को (Iron Pyrites) कहते हैं। लोह प्रधान से ताम्र प्रधान का मूल्य चारगुना अधिक रहता है। ताम्र प्रधान को सौम्य ताम्र कल्प और लोहप्रधान को सौम्य लोह कल्प कह सकते हैं।
ताम्रप्रधान सुवर्णमाक्षिक यकृत् प्लीहा, वृक्क, तीनों के लिये विशेष उपकारक है। उसके भीतर लोह तत्व भी सूक्ष्मांश में मिला हुआ है।

भोजन में केवल दुग्धाशन कराना चाहिये विशेषत: बकरी का दूध अधिक हितकर है। माक्षिक अधो रक्तपित्त की अपेक्षा ऊर्ध्व रक्त पित्त में ज्यादा उपयोगी है। (Cerebral Stroke)

आमाशय बढ़ने (आमाशय की अन्तस्त्वचा विकृत होने) एवं उदर में व्रण होने से अम्लपित्त रोग हो जाता है। आयुर्वेद में इन सबका अन्तर्भाव अम्लपित्त में (मतान्तर में उदरशूल में) किया है। इन अम्लपित्तों में कर्कट ग्रन्थि और उदरव्रण, इन दोनों को कम (छोड़) करके शेष अम्लपित्त में माक्षिक भस्म उत्तम कार्य करती है। उदर की आकृति बढ़ने से होने वाले अम्लपित्त में अपना स्तम्भक शामक और स्वादुगुण पहुँचाकर पित्त का नियमन करती है, और साम्यावस्था को स्थापित करती है। अन्तर पिच्छल त्वचा विकृत होने से होने वाले अम्लपित्त में माक्षिक के लवणत्व अंश का उपयोग होता है। उदर में पित्तोत्पादक अथवा रसोत्पादक पिण्ड की विकृति होने से उत्पन्न रोग में माक्षिक भस्म में रहे हुए लोह अंश और बल्यत्व गुण के कारण से आकुञ्चन होकर तथा बल की प्राप्ति होकर कार्य होता है। इनके अतिरिक्त अम्लपित्त ज्यादा बढ़ने, अथवा पित्त की तीव्रता ज्यादा बढ़ने से होने वाली उदरपीड़ा अथवा शिरदर्द, जो वमन होने पर कम हो जाता हो, उस पर सुवर्णमाक्षिक लाभदायक हैं। यदि वान्ति होने पर भी अच्छा न लगना, और शूल अधिक होना, ये लक्षण हों, अर्थात् वात पित्त ससंसर्गज दुष्टि हो, तो इसकी अपेक्षा सूतशेखर विशेष लाभदायक है।

अम्लपित्त में कोई भी चिकित्सा प्रारम्भ होने से पहले अन्त: परिमार्जन (वमन आदि संशोधन) करना अच्छा है। यह अपनी प्राचीन पद्धति अनुसार या नूतन पद्धति अनुसार किया जाय, तो भी चल सकता है। अम्लपित्त अत्यन्त ज्यादा परिमाण में बढ़ हो गया हो; और उसी से उदर में व्रण होकर रक्तवाहिनियां टूटकर वमन होने लगती हो, वमन में रक्त आता हो, तो इस विकार में सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल पिष्ठी, गिलोयसत्व और सोनागेरू मिलाकर देना लाभदायक है।

सुवर्णमाक्षिक को सर्वसामान्य रूप में शक्तिवर्द्धक मान करके भी उपयोग होता है। इसमें लोह का अंश होने और यह लोह सौम्य होने से माक्षिक में शीतल शक्तिवर्द्धक गुण आया है। इस हेतु नाक में से रक्त गिरने और रक्त गिरकर चक्कर आने पर सुवर्णमाक्षिक अनन्तमूल, रक्तचन्दन और पद्मकाष्ट के कषाय के साथ दी जाती है।

निर्बलता, ज्यादा विचार या मनोव्याघात, इनमें से किसी भी कारण से भ्रम होता हो और चक्कर आता हो, इनमें से कभी-कभी तो भ्रम अत्यन्तावस्था तक चला गया हो, इतने तक कि वह मनुष्य पागल हो गया है, ऐसा दूसरों को भासता हो, **ऐसे बढ़े हुए लक्षणों में भी सुवर्णमाक्षिक कूष्माण्ड के रस के साथ देने से सत्वर लाभ पहुँचाता है।**

पैत्तिक-उन्माद रोग में जब-तक रोग नहीं बढ़ा है, तब तक सुवर्णमाक्षिक का अच्छा उपयोग हुआ है, और उसे जटामांसी, नेत्रबाला और रक्तचन्दन कषाय के साथ देनी चाहिए।

शराब के अतियोग होने से मदात्यय व्याधि होकर चक्कर आने लगते हैं। वमन होना, वमन में रक्त आना, नेत्रलाल हो जाना, दृष्टि मन्द होना, मंदाग्नि, निद्रानाश, मुँह और सारा शरीर निस्तेज हो जाना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं। **इस स्थिति में माक्षिक भस्म कुटकी, पुनर्नवा और गिलोय के क्वाथ के साथ देने से लाभ होता है।**

रक्तार्श या पित्तार्श में रक्त बहुत चले जाने से सम्पूर्ण शरीर की रक्तवाहिनियां तड़तड़ उड़ने लगती है; शरीर निस्तेज हो जाता है; कितनों ही को शोथ आ जाता है; ऐसे समय पर माक्षिकभस्म का अच्छा उपयोग होता है। इस भस्म के सेवन से रक्त की उष्णता और पतलापन कम हो जाता है। अनुपान में मिश्री, नागकेशर, तेजपात और इलायची देवें।

अपचन-जनित विसूचिका में वमन बन्द करने के लिये माक्षिकभस्म का अच्छा उपयोग होता है। परन्तु माक्षिक का उपयोग विसूचिका की विषघ्न औषधि के साथ करना चाहिये। **सुवर्ण माक्षिकभस्म और सूतशेखर का मिश्रण बार-बार अदरक के रस के साथ चटाया जाता है।**

विसूचिका रोग शमन हो जाने पर निर्बलता रह जाती है तथा अवशिष्ट लक्षणों में विशेषत: चक्कर, बार-बार वमन होना, कभी-कभी पतले दस्त हो जाना आदि लक्षण रहने पर माक्षिकभस्म और शंखभस्म मिश्रित कर आम के या आँवले के मुरब्बे के साथ देनी चाहिये।

सुवर्णमाक्षिक स्वादु, रसोत्पादक, तिक्त और बल्य है। इस बल्यत्व गुण के कारण से रस आदि धातुओं की योग्य परिमाण में उत्पत्ति कराती है। इस हेतु से यह रसायन भी है।

बस्ति के नियामक स्नायुओं की अशक्ति से बस्ति (मूत्राशय) में जितना चाहिये उतने परिमाण में मूत्र भरा नहीं रह सकता; बूंद-बूंद टपकता रहता है। इस विकार में माक्षिक और शिलाजतु मिलाकर उपयोग होता है। **पेठा, अश्वगंधा और मंजिष्ठा के साथ देना चाहिये।**

वातज या वातपित्तज हृदयेन्द्रिय की चंचलता, बार-बार घबराहट, उबासी आना, प्रस्वेद, दाह, सर्वाङ्ग में कम्प आदि लक्षण होने पर सुवर्णमाक्षिक देनी चाहिये। यह भस्म हृदय पर शक्तिदायक होने से जीर्ण हृद्रोग में भी लाभदायक है। हृदयरोगों में हृदय के परदों (Valves) की विकृति मात्र में यह कुछ भी उपयोगी नहीं है। शेष सब वातज और वातपित्तात्मक रोगों में हितकर है।

कंठशालूक (गले की गांठ Tonsils) लालापिण्ड (Salivary Glands) कण्ठ इत्यादि भागों में विकार होने पर वेदना, शोथ, लाली, दाह आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो माक्षिकभस्म दी जाती है। **यदि तीव्र ज्वर हो, तो माक्षिक भस्म नहीं देना चाहिये, अन्यथा हानि**

होती है।

शीतज्वर में अनेक दिनों तक क्विनाइन का सेवन किया हो, क्विनाइन सेवन करने पर प्लीहावृद्धि हुई हो; फिर प्लीहावृद्धि से उदर बढ़ गया हो; शरीर में शोथ, घबराहट, वमन आदि लक्षण भी उपस्थित हुए हों; तो ऐसी स्थिति में सुवर्णमाक्षिक का अच्छा उपयोग होता है। क्विनाइन के दुष्ट परिणाम को शमन करने के लिए यह उत्तम औषधि है। क्विनाइन के अति योग या क्विनाइन सहन न होने से उत्पन्न होने वाले निद्रानाश, बधिरता, नेत्रदाह; मस्तिष्क की निर्बलता, यकृद् विकार, मूत्र में पीलापन, मूत्र में दाह आदि लक्षणों को शमन करने में इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है। यह कार्य औषधि प्रभाव से होता है।

हृदयेन्द्रिय की व्याधि से उत्पन्न शोथ या शीतज्वर के पश्चात् फीकापन होकर आई हुई पाण्डुता और पाण्डुता से उत्पन्न शोथ या अन्य कारण से पाण्डुता आकर आई हुई सूजन, साथ-साथ घबराहट, चक्कर, भ्रम, शीर्षशूल आदि लक्षण होने पर माक्षिक अच्छी उपयोगी है।

पित्तोत्पादक, तीव्र, दाहकारक, गर (अन्तरोत्पन्न विष) के कारण या विरुद्ध अन्नपान के कारण पित्तप्रकोप अधिक होने पर माक्षिक का बहुत अच्छा उपयोग होता है; परन्तु गरघ्न चिकित्सा (संशोधन) करने के पश्चात् माक्षिक देनी चाहिये।

सर्वाङ्ग में बारीक-बारीक फुन्सियाँ होना, खाज चलना, सर्वाङ्ग, नाखून, त्वचा, ओष्ठ आदि निस्तेज हो जाना, इस तरह अनेक समय रक्तस्राव के पश्चात् या अतिसार के पश्चात् ज्यादा अशक्ति आकर त्वचा पर छोटी-छोटी फुन्सियां होना; त्वचा रूक्ष और कठोर होकर उसमें खाज चलना आदि विकारों पर सुवर्णमाक्षिक का बहुत अच्छा उपयोग होता है। अनुपान अनन्तमूल का क्वाथ दें। इस चर्मरोग में ताप्यादि लोह का भी उपयोग होता है।

मूत्रातिसार (मधुमेह का पूर्व लक्षण विशेष रूप में न होने पर उत्पन्न हुआ मेह समान विकार) जिसमें मूत्र पीला, त्वचा पीली और फीके नाखून आदि लक्षण होते है; साथ-साथ दिन-रात ज्यादा परिमाण में और अधिक बार पेशाब होता है। ऐसी परिस्थिति में सुवर्णमाक्षिक भस्म अति लाभदायक है। जामुन के रस के साथ देनी चाहिये और पित्तज प्रमेहों पर अनुपान रूप में गिलोयरस देना चाहिये।

शुक्रक्षय या रजः क्षय के विकार में वंगभस्म के साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म देने से ज्यादा लाभ होता है। त्रासदायक प्रदर विकार में भी माक्षिक मधुकाद्यवलेह या शर्बत बनफशा के साथ देने से उत्तम कार्य होता है। यदि रूग्णा अति कृश हो गई हो, तो गोदन्ती भस्म भी साथ में मिला देनी चाहिये।

त्वचा पर कालापन आकर उस पर छोटी-छोटी फुन्सियां हो जाना, हाथपैर की अँगुलियाँ मोटी होकर शून्य-सी हो जाना; उनका स्पर्शज्ञान नष्ट हो जाना, शरीर पर लाल-काले चकते उठना; ऐसे विकार में सुवर्णमाक्षिक भस्म गंधक रसायन के साथ मिश्रित करके देनी चाहिये अथवा सुवर्णमाक्षिक मात्र तुलसी के रस में देनी चाहिये।

सुवर्णमाक्षिक भस्म पित्तज कामला रोग में उत्तम कार्य करने वाली औषधि है। सब प्रकार के कामला रोगों पर औषधि का उत्तम उपयोग होता है। प्रवाल भस्म, शुक्तिभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म का मिश्रण कर मूली के रस के साथ देने से अति उत्तम कार्य होता है।

सुवर्णमाक्षिक भस्म पाचक और रंजक पित्त, ये दोष, रस, रक्त, मज्जा और शुक्र, ये दूष्य; शिर, नेत्र, हृदय, आमाशय, यकृत, अन्त्र, बस्ति, अन्तःस्रावक पिण्ड (Ductless Glands), त्वचा, अंडकोष और मनोदेश, ये स्थान, इन सब पर लाभ पहुँचाती है। (औ.गु.ध.शा.)

आक्षेपक वात के झटके बार-बार आते हों, उनके साथ वमन भी होती हो जो आक्षेप दूर होने पर भी रह जाती है। उस पर सुवर्णमाक्षिक और सितोपलादि मिलाकर आम के मुरब्बा के साथ दिन में ४ बार ३-३ घण्टे पर देने से वमन की सत्वर निवृत्ति होती है।

अधिक धूम्रपान, उष्ण आहार अथवा अधिक नेत्र श्रम के हेतु से नेत्र की वातनाड़ियां दूषित होती है। फिर दृष्टि मन्द हो जाती है। किसी को नेत्र में दाह होने लगता है, किसी को एक वस्तु ही दो वस्तुएँ भासती है। इस विविध दृष्टिविकृति पर सुवर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती, त्रिफला चूर्ण १ माशा, घी २ माशा और शहद ३ माशे मिलाकर प्रातःकाल और रात्रि को सेवन कराने से थोड़े ही दिनों में लाभ हो जाता है।

सूचना-इस भस्म में चमक नहीं रहनी चाहिये। सूर्य के ताप में देखने पर चमक दीखे, तो कच्ची समझकर पुनः १-२ पुट दें।

नूतन और तीव्र ज्वर में इस भस्म का उपयोग नहीं करना चाहिये। इस भस्म के सेवन करने वालों को अम्ल विपाक वाले पदार्थ, कबूतर का माँस, कुलथी, नये चांवल और खट्टे पदार्थों का त्याग करना चाहिये।

दूसरी विधि-शुद्ध सुवर्णमाक्षिक, बकरे का मूत्र, मट्ठा, गोघृत और बिजौरे का रस १-१ सेर लेवें। सुवर्णमाक्षिक को कड़ाही में डाल चूल्हे पर चढ़ाकर तेज अग्नि देवें और क्रमशः बकरे के मूत्र आदि को मिलाकर जला डालें। फिर भस्म को ढककर ६ घण्टे तेज अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर भस्म को निकाल अरण्डी के तैल के ३ पुट देने से भस्म सुन्दर और मुलायम बन जाती है।

मात्रा और उपयोग-पहली विधि के अनुसार।

(११) मण्डूर भस्म

विधि-शुद्ध मण्डूर को चौगुने त्रिफला के क्वाथ के साथ कड़ाही में मिलाकर पकावें। त्रिफला का क्वाथ सूख जाने पर भस्म हो जाती

है। जब मण्डूर और कड़ाही दोनों का रंग लाल हो जाय तब अग्नि देना बन्द करें। स्वांग शीतल होने पर भस्म को निकाल, गोमूत्र और घीकुंवार के रस के ३-३ पुट देने से विशेष गुणकारी और मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा– १ से ३ रत्ती, दिन में दो बार पीपल-शहद, आम का मुरब्बा, कुमार्यासव या अन्य अनुपान के साथ। बालकों को माता के दूध में।

शोथरोग में–मूत्रल औषधि के साथ।

त्रिदोषज शूल पर–त्रिफला का चूर्ण, घृत और शहद के साथ।

गुणधर्म–मण्डूर भस्म कसैली और शीतवीर्य है। पाण्डु, शोथ, प्रमेह, संग्रहणी, हलीमक, कामला और कुम्भकामला का नाश करती है।

उपयोग–मण्डूर भस्म बालक और कमजोर शरीर वाले को लोह भस्म की अपेक्षा विशेष हितकारी है। छोटे बालकों की निर्बलता, प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, मिट्टी खाने से होने वाला पाण्डु, स्त्रियों के गर्भाशय और बीज कोषों की निर्बलता, युवावस्था होने पर भी मासिक धर्म न आना आदि विकृतियाँ इसके सेवन से नष्ट होती है एवं यह हलीमक, कामला और कुम्भकामला को भी दूर करती है।

मण्डूर शीतल, सौम्य और कषाय गुणवाला है। जो गुण लोह में हैं, वे ही गुण मण्डूर के भीतर न्यून अंश में रहे हैं। मण्डूर भस्म लोह भस्म की अपेक्षा शरीर में सत्वर पचन होती है और सम्मिलित हो जाती है। इसके अतिरिक्त मण्डूर (लोह किट्ट) का किट्टत्व अनेक वर्षों पर्यन्त रह जाने से इसका रक्त पर विशेषत: रक्ताणुपर सत्वर अच्छा परिणाम होता है। यह भस्म छोटे-मोटे बच्चों के लिये अधिक उपयोगी है; यह इसका विशेष गुण है।

मण्डूर के योग से रक्त में रक्ताणु ज्यादा उत्पन्न होते हैं। अनेक भिन्न-भिन्न कारणों से रक्त के रक्ताणु कम होने पर जब रक्त फीका बन जाता है और त्वचा का वर्ण पाण्डु हो जाता है तब पाण्डु रोग कहलाता है। इस रोग में रक्ताणुओं की न्यूनता हो जाने से हृदय के वेग की वृद्धि हो जाती है। इस कारण से नाड़ी तेज हो जाती है। नाड़ी के ठोके ज्यादा होते हैं। कारण जितने रक्ताणु रक्त में होंगे, उतने ही सारे शरीर में शीघ्र-शीघ्र फैलते रहेंगे। शारीरिक इन्द्रियों और घटकों को इन रक्ताणुओं का सान्निध्य प्राप्त होता रहे और उसके द्वारा प्राणतत्व की पूर्ति होती रहे, इसी कारण से पाण्डु रोग में नाड़ी तेज हो जाती है। इसलिये रक्ताणुओं की वृद्धि करके इस विकृति को दूर करना चाहिये। यह कार्य आयुर्वेद के मतानुसार लोहभस्म अथवा मण्डूर के योग से रंजक पित्त सम्यक् बनकर होता है। किन्तु आधुनिक शास्त्र कहते हैं कि, मज्जा धातु भी रक्ताणुओं को बढ़ाने के लिये उत्तेजित होनी चाहिये। उससे भी रक्ताणु उत्पन्न होते हैं। कुछ भी हो; मण्डूर रक्ताणुओं को बढ़ाता है, यह कथन बिल्कुल सत्य है। पैत्तिक पाण्डु रोग में इस भस्म का विशेष उपयोग होता है। इसके कषायत्व गुण के कारण नाड़ी का वेग भी मर्यादा में आ जाता है और पाण्डुता कम हो जाती है। पाण्डु रोग पर कोई भी औषधि लें, उसमें न्यूनाधिक परिमाण में लोह अथवा विशेषत: मण्डूर भस्म अवश्य होती है।

कामला विकार में पित्त लक्षण ज्यादा होने पर मण्डूर भस्म का उत्तम उपयोग होता है। हाथ, पैर, नेत्र और मूत्र में पीलापन, मूत्रेन्द्रिय के चारों ओर की त्वचा काली-सी होना, मल सफेद मैले रंग का होना इत्यादि लक्षण हों तो, मण्डूर भस्म अवश्य देनी चाहिये। अनुपान कुमार्यासव या मूली का रस और मिश्री। इस भस्म के साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म मिला देने से और भी अच्छा कार्य होता है।

पाण्डुरोग जीर्ण होने अथवा बढ़ने पर एवं कुम्भ कामला अधिक दिन रहने पर सर्वांग शोथ उत्पन्न होता है। त्वचा के नीचे जल का संचय होता है। इसमें रक्ताणुओं की न्यूनता ही कारण है। यह शोथ नेत्र, उदर, गाल और हाथ-पैर के ऊपर के भाग में होता है। शोथ पर जोर में अंगुली दबाने से खड्डा हो जाता है। वह बहुत समय तक नहीं भरता। ऐसे रोग में पाण्डु रोग के लक्षण होने पर अथवा पाण्डुता कारण होने पर मंडूर भस्म अति उत्तम कार्य करती है। मंडूर के सेवन से रक्ताणुओं की वृद्धि होती है। रक्ताणु बढ़ने पर हृदय की गति नियमित और बलवान् बनती है, जिससे रक्त का पतलापन कम होकर त्वचा के नीचे संचित हुआ जल रक्त में शोषित हो जाता है और शोथ का शमन हो जाता है। यह शोथ कामला के पश्चात् भी हो सकता है। कामला जब ज्यादा दिन तक रह जाता है तब पाण्डुरोग के समान शोथ उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था में मंडूरभस्म के साथ पुनर्नवा और शिलाजीत का उपयोग अति हितकर है।

कामला रोग अधिक दिन टिकने पर सारे शरीर में शुष्कता आ जाती है, त्वचा कठोर काली-सी हो जाती है, हाथ पैरों में स्थान-स्थान पर त्वचा फट जाती है, उसे कुम्भकामला कहते हैं। उस पर भी मण्डूर का उत्तम उपयोग होता है। यकृत् के अनेक विकारों में कामला उत्पन्न हो जाता है। यकृत् के माँसार्बुद से कुम्भ कामला हुआ हो तो मण्डूर की अपेक्षा ताप्यादि लोह, ताम्र भस्म और वंगभस्म का ज्यादा उपयोग होता है। यथार्थ में तो यह प्रकार साध्य होना अति दुष्कर है।

पाण्डु रोग के लाघकर, आलस, पालिक, कुम्भस आदि अनेक प्रकार हैं। इन सब पर न्यूनाधिक लक्षणों के उपस्थित होने पर मंडूर भस्म का उपयोग होता है। पाण्डुरोग में जब त्वचा का वर्ण हरा, श्याम, पीला, काला होकर बल उत्साह नष्ट हो जाता है, आलस्य, मन्दाग्नि, अरुचि, क्वचित् दुर्गन्ध युक्त वमन, दाह, तृषा, भ्रम, चक्कर, नेत्र पर बोझ-सा लगना, सूक्ष्म ज्वर, पौरुष कम हो जाना, अंग टूटना, आदि लक्षण हो जाते हैं, तब हलीमक कहलाता है। इस रोग में भी मंडूर भस्म का उत्तम उपयोग होता है।

तरुण स्त्रियों के हारिद्रक(पाण्डु) रोग में मण्डूर का उत्तम उपयोग होता है। यदि यह विकार मानसिक कारणों से हो, तो अभ्रक भस्म देनी चाहिये। अन्य कारणों से हो तो लोहभस्म अथवा मण्डूर भस्म योग्यतानुसार देना चाहिये।

छोटे बच्चों को यकृद्वृद्धि और प्लीहावृद्धि रोग होने पर उस रोग की नाशक योजना के साथ शक्तिवर्द्धक और रक्तवर्द्धक रूप से मंडूर भस्म का उपयोग करना चाहिये। मंडूर भस्म मात्र देने की अपेक्षा लघुमालिनी बसंत के साथ देना विशेष हितकर है। फुफ्फुसावरण के जीर्ण विकास में पाण्डुता विशेष होने पर भी लघुमालिनी और मंडूर मिश्रण विशेष लाभदायक होता है।

बालकों के अस्थिवक्रता रोग में प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व के साथ मण्डूर भस्म देना विशेष लाभदायक है। इस मिश्रण का २-२ मास के बच्चों के लिये भी उपयोग हुआ है।

बालकों और स्त्रियों को मिट्टी खाने से होने वाले पाण्डुरोग की उत्पत्ति मिट्टी आँतों में संचित हो जाने से होती है। इस विकार में मंडूर भस्म लाभदायक है। पहिले मिट्टी का विरेचन कराने के पश्चात् मण्डूर भस्म देनी चाहिये। पित्तात्मक और कफात्मक दोनों प्रकार के रोगों पर इसका उपयोग होता है।

कितनी ही लड़कियों की आयु बड़ी होने पर अङ्ग नहीं भरता, और न रजोदर्शन होता है चेहरा और सर्वाङ्ग निस्तेज रहता है, गाल कुछ सूजे से रहते हैं और सूक्ष्म ज्वर आता रहता है इत्यादि लक्षण किसी एक रोग के कारण से नही होते। इसके अनेक कारण हैं।

(१) कन्या का बाल्यावस्था में अति कमजोर रहना।

(२) मृद्वस्थि या देह को निर्बल बनाने वाला प्राकृतिक रोग।

(३) अतिसार, संग्रहणी आदि में से अन्त्र की कोई चिरव्याधि।

(४) यकृत्-प्लीहा के रोग।

इत्यादि कारणों से रोग हो जाने पर उनका अधिक त्रासदायक प्रादुर्भाव उस काल में न हुआ हो, प्रथम व्याधिमात्र हो जाने से धातु क्रिया एक समय अशक्त और विकृत् हुई हो, जिसके परिणामस्वरूप निर्बलता एक समान टिकी हो, संक्षेप में पूर्व विकार के परिणाम के हेतुओं से रक्त जितना सुदृढ़ चाहिये उतना न हुआ हो, इनमें से एक या अनेक हेतुओं से लड़की का अंग पुष्ट नहीं बनता एवं स्त्री-बीच कोषों और गर्भाशय आदि अवयवों का योग्य विकास न होने से रजोदर्शन नहीं होता। इस वस्तु स्थिति के लिये अन्य भी कारण हो सकते हैं। यदि उपरोक्त कारण हों, तो मण्डूर को त्रिफला और घृत में मिला पश्चात् शहद मिलाकर देनी चाहिये।

शीतसह ज्वर अथवा विषमज्वर या अन्य प्रकार का ज्वर अनेक दिनों तक आता रहने से पाण्डुता उत्पन्न हुई हों, उस पर मंडूर का उत्तम उपयोग होता है।

तीव्र पाण्डु रोग का प्रारम्भ प्रायः ज्वर आकर होता है। क्वचित् साथ-साथ ज्वर भी बहुधा एक समय होता है, वमन होती है, अनेकों को एक समान पतले पतले दस्त होते रहते हैं, तथा चेहरा निस्तेज, श्वेत फीके रंग का हो जाता है। इस विकार में मंडूर का उपयोग होता है। इस अवस्था में मण्डूर के साथ प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व या अमृतारिष्ट देना चाहिये।

ज्यादा रक्तस्राव होने पर आई हुई पाण्डुता में मंडूर भस्म का उपयोग माक्षिकभस्म के साथ किया जाता है। रक्तस्राव के समान ज्यादा रजःस्राव हो जाने या प्रसूतावस्था में अधिक रक्तस्राव हो जाने से पाण्डुता आई हो, तो भी मंडूर का उपयोग करना चाहिये; विशेषतः पाण्डुता और शोथ एक साथ होने से मंडूर का अच्छा उपयोग होता है।

कृमिजन्य पाण्डुरोग में पहले अजवायन का फूल (थाईमल) और कर्पूर के समान कृमिघ्न औषधि देनी चाहिये, पश्चात् मंडूर भस्म अकेली या त्रिफला के साथ देनी चाहिये।

रक्त का परिमाण न्यून हो जाने या रक्त में रक्ताणुओं का ह्रास हो जाने से अनेकों की मानसिक स्थिति विलक्षण हो जाती है। वे अधिक विचार नहीं कर सकते स्वभाव क्रोधी और संशयी बन जाता है। थोड़ा-सा भी इच्छाविरुद्ध कार्य होने पर सहन नहीं होता। मस्तिष्क और नेत्र में निर्बलता आ जाती है। बेहोशी या जड़ता रहती है। ऐसी स्थिति में मंडूर भस्म देने से उत्तम कार्य होता है।

मंडूर भस्म रञ्जक पित्तदोष, रक्त, मांस, मज्जा ये दूष्य; तथा यकृत; प्लीहा, फुफ्फुस, हृदय और अग्न्याशय ये स्थान; इन सब पर विशेष लाभ पहुँचाती है। (औ. गु.ध.शा.)

दूसरी विधि-शुद्ध मंडूर ३२ तोले लेकर १२८ तोले गोमूत्र में पचन करें। सूखा चूर्ण हो जाने पर ६४ तोले गोदुग्ध मिलाकर पचन करें। फिर कड़ाही में मंडूर को मिट्टी के तवे से ढककर ६ घण्टे तक तीव्र अग्नि देने से मंडूर भस्म तैयार होती है। इस भस्म को "क्षीर मण्डूर" भी कहते हैं। (वृ.मा.)

मात्रा और उपयोग-प्रारम्भ में लिखे अनुसार यह भस्म परिणाम शूल के लिये विशेष उपकारक है।

सूचना-मण्डूर से किसी को उबाक या वमन हो जाय, तो सुवर्णमाक्षिक भस्म के साथ मिलाकर देने से दोष शमन होकर गुण की वृद्धि होती है।

तीसरी विधि (मधु मंडूर)–उपरोक्त मंडूर भस्म को त्रिफला के क्वाथ की ३, गोमूत्र की ३, घीकुंवार के रस की ४ और पंचामृत औषध (गिलोय, मूसली, सोंठ, गोखरू और शतावरी) के क्वाथ की ७ भावना देवे। प्रत्येक भावना के अन्त में गजपुट देवें। इस तरह 17 भावना देने से उत्तम प्रकार की मंडूर भस्म तैयार होती है।

मात्रा–२ से ४ रत्ती तक, शहद और पीपल के साथ।

उपयोग–इस भस्म के सेवन से पाण्डु, गुल्म, प्लीहा, संग्रहणी, आमवृद्धि, सूतिकारोग, कृमिरोग, अरुचि, श्वास, कास, रक्त की निर्बलता, श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, कुम्भकामला, सूजन, आँतों की निर्बलता, धातुक्षीणता और हृदय रोग दूर होते हैं। इसे स्त्रियों और बालकों को निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं। विशेष विवेचन प्रथम विधि के साथ। यह प्रथम विधि की अपेक्षा विशेष लाभदायक है।

(१२) मण्डूरमाक्षिक भस्म

विधि–शुद्ध मंडूर और शुद्ध सुवर्णमाक्षिक २०-२० तोले मिला गोमूत्र में १२ घण्टे खरलकर टिकियाएं बांधकर सूर्य के ताप में सुखावें। फिर सराव संपुट करके गजपुट देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल पुनः गोमूत्र में खरल करके गजपुट देवें। इस तरह ३ गजपुट देने से मुलायम भस्म तैयार होती है। इस भस्म को अनेक वैद्य "भौम मण्डूर" भी कहते हैं।

मात्रा–१ से ३ रत्ती शहद, दूध-मिश्री या अनार के शर्बत के साथ।

उपयोग–यह भस्म सगर्भा स्त्रियों का पीलापन, पित्ताधिक संग्रहणी, पांडु, कामला, परिणाम शूल, शिरदर्द आदि को दूर करती है। जिनको मंडूर मात्र अनुकूल रहता हो उनके लिये और सगर्भा स्त्रियों के लिये यह भस्म विशेष उपयोगी है। इस भस्म में सुवर्णमाक्षिक और मंडूर दोनों के मिश्रित गुण अवस्थित हैं।

(१३) अभ्रक भस्म

प्रथम विधि (सहस्त्रपुटी अभ्रक भस्म)–शुद्ध धान्याभ्रक में निम्न ७२ औषधियों में से जो-जो मिल जायें, उनकी १६-१६ भावनायें देकर १००० पुट पूरे करें। प्रत्येक भावना के अन्त में छोटी-छोटी टिकिया बना सूर्य के ताप में सुखा संपुट करके गजपुट दें। इन औषधियों के अतिरिक्त किसी रोग विशेष को शमन करने वाली औषधियों की भावना देनी हो, तो भी हो सकता है। यदि रसायन गुण के लिये अभ्रक भस्म तैयार करना हो, तो भावना देने की औषधियों में तीक्ष्ण और लेखन गुणवाली औषधियों को कम लें और विरेचक औषधियों की भावना भी अधिक नहीं देनी चाहिये।

आक का दूध, थूहर का दूध, बड़ की जटा का क्वाथ, घीकुंवार का रस एरंडी के पत्तों का रस, नागरमोथा का क्वाथ, गिलोय का स्वरस, छोटी कटेली का क्वाथ, बड़ी कटेली का क्वाथ, गोखरू का क्वाथ, भांग का क्वाथ, कुकरोंधा का स्वरस, सहदेई का रस, नागबला का क्वाथ, अतिबला का क्वाथ, खिरैटी का क्वाथ, तुलसी का रस, शालपर्णी का क्वाथ, पृश्निपर्णी का क्वाथ, कसोंदी के पत्तों का स्वरस, अरणी की छाल का क्वाथ; बेल के पत्तों का क्वाथ, देवदारू का क्वाथ, कालीमिर्च का क्वाथ, अदरक का स्वरस, पीपल का क्वाथ, चित्रकमूल का क्वाथ, इन्द्रायण की जड़ का क्वाथ, लोध का क्वाथ, कुटकी का क्वाथ, जामुन की छाल का क्वाथ, आंवले का स्वरस, हरड़ का क्वाथ, बहेड़ों का क्वाथ, अडूसे का स्वरस, तेंदू की छाल का क्वाथ, अपामार्ग का क्वाथ, मौलसरी सतवन की छाल का क्वाथ, धतूरे के पत्तों का स्वरस, सफेद सरसों क्वाथ की छाल का क्वाथ, भांगरे का स्वरस, गोदुग्ध, अगस्त्य के पत्तों का रस; बड़ी तोरई का रस, गोमूत्र, पाढ़ल का क्वाथ, तालीस पत्रका क्वाथ, केले के खम्भे का रस, बकरे का रक्त मुसली का क्वाथ, असगन्ध का क्वाथ, दूर्वा का क्वाथ, देवदाली पञ्चांग का क्वाथ, मेछेछी (मत्स्याक्षी) का रस, मकोय का रस, पुनर्नवा का रस, शंखपुष्पी का रस, नागरबेल के पानों का रस, खैर की छाल का क्वाथ, ब्राह्मी का रस, जटामांसी का क्वाथ, धमासे का क्वाथ, अमलतास की फली का क्वाथ, आकाश बेल का क्वाथ, चमेली के पत्तों का क्वाथ, काले जीरे का क्वाथ, गोरखमुण्डी का क्वाथ, मूषाकर्णी के पत्तों का स्वरस, भारंगी का क्वाथ, शतावरी का रस, विदारीकन्द का रस, इन ७२ औषधियों में से जो-जो मिल जाय, इनके पुट १००० पर्यन्त दें। इन औषधियों के अतिरिक्त अन्य रोगनाशक औषधियों का भी पुट दे सकते हैं, प्रतिकूल औषधियों का पुट नहीं देना चाहिए।

सूचना–गजपुट में गोबरी कम डाली जायेगी, तो २००-४०० पुट तक भी अभ्रक की चमक नहीं जाती और अग्नि अच्छी तरह देने पर केवल ७ पुटों में ही अभ्रक की भस्म निश्चन्द्र हो जाती है।

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में २ समय।

अनुपान–१–प्रदर में सोनागेरु २ रत्ती और गिलोयसत्व ४ रत्ती के साथ ऊपर चांवलों का धोवन पिलावें।

२–**पित्तप्रकोप में**–सोनागेरू, गिलोयसत्व और शक्कर के साथ देकर मिश्री मिला दूध पिलावें। या प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व के साथ दें।

३–**पित्तप्रधान प्रमेहों पर**–सोना गेरू, गिलोयसत्व, पीपल और शहद के साथ या गिलोय स्वरस और मिश्री के साथ।

४–**नेत्रों की निर्बलता में**–त्रिफला का चूर्ण और शहद के साथ।

५–**श्वास, कास, कफवृद्धि, जीर्णज्वर, भ्रम, प्रमेह, संग्रहणी, पाण्डु, क्षय, विषविकार, कामला और गुल्म में**–पीपल, शहद के साथ।
६–**क्षय, पाण्डु, संग्रहणी, शूल, आम, कुष्ठ, श्वास, प्रमेह, कास, मन्दाग्नि और उदर व्यथापर**–वायविडङ्ग और त्रिकटु के साथ।
७–**बीस प्रकार के प्रमेहों पर**–शिलाजीत और शहद, पीपल अथवा हल्दी, पीपल और शहद के साथ।
८–**क्षय पर**–आध रत्ती सुवर्ण के वर्क और सितोपलादि चूर्ण या च्यवनप्राशावलेह अथवा सितोपलादि चूर्ण और शहद के साथ।
९–**धातुवृद्धि के लिये**–सुवर्ण के वर्क या चांदी के वर्क और आँवलों के मुरब्बे के साथ या लोंग और शहद के साथ।
१०–**रक्तपित्त पर**–हरड़ और शक्कर, या इलायची और मिश्री के साथ।
११–**क्षय, पाण्डु और अर्श पर**–त्रिकटु, त्रिफला, चातुर्जात, मिश्री और शहद के साथ।
१२–**प्रमेह और मूत्रकृच्छ**–इलायची, गोखरू, भूमि आंवला और मिश्री के साथ देकर ऊपर गोदुग्ध पिलावें।
१३–**जीर्णज्वर में**–गिलोयसत्व और मिश्री अथवा शहद-पीपल।
१४–**अर्श पर**–नागरबेल के पान में भिलावा और अभ्रकभस्म डालकर खिलावें।
१५–**वातरोग में**–सोंठ, पुष्करमूल, भारंगीमूल और असगन्ध के चूर्ण तथा शहद के साथ।
१६–**पित्तरोग में**–गोदुग्ध और मिश्री या **चातुर्जात और मिश्री के साथ।**
१७–**कफरोग में**–कायफल, पीपल और शहद के साथ।
१८–**शुक्रस्तम्भन के लिए**–भांग के साथ।
१९–**रक्त, माँस और अन्य धातुओं की निर्बलता में**–लोहभस्म और शहद पीपल के साथ।
२०–**संग्रहणी में**–अनार शर्बत या कुटजादि अवलेह के साथ।
२१–**कफज्वर और कास पर**–अभ्रकभस्म, श्रृङ्गभस्म, मुलहठी और सितोपलादि मिलाकर शहद के साथ दिन में ३ बार।
२२–**नूतन कफकास पर**–शृङ्गभस्म और लवंगादि चूर्ण के साथ।

गुणधर्म–अभ्रकभस्म कषाय, मधुर, शीतल, योगवाही, आयुवर्द्धक और धातुवर्द्धक होने से त्रिदोष, व्रण, प्रमेह, कुष्ठ, प्लीहावृद्धि, उदरग्रन्थि, विष और कृमि आदि रोगों को दूर करती है, शरीर को दृढ़ बनाती है और वीर्य की वृद्धि करती है। इसके सेवन से युवावस्था की प्राप्ति होती है, और सौ स्त्रियों से रमण करने की शक्ति उत्पन्न होती है। इसके सेवन करने वालों के पुत्र दीर्घायु और इन्द्र सदृश पराक्रमी होते हैं, तथा अकाल मृत्यु की भीति भी दूर होती है।

इनके अतिरिक्त यह क्षय, पाण्डु, ग्रहणी शूल, आम, श्वास, अरुचि, दुर्जर कास, मन्दाग्नि, उदर व्यथा, कामला, ज्वर, गुल्म, अर्श आदि रोगों को अनुपान भेद से दूर करती है।

उपयोग–अभ्रक भस्म वातवाहिनी नाड़ियों में क्षोभ या निर्बलता, श्वास, उर:क्षत, क्षय (Phthisis) की प्रथमावस्था, मानसिक दुर्बलता, अपस्मार, उन्माद, हृदरोग (Heart Disease) पुरानी खाँसी, प्रसूति रोग, पाण्डु रोग, धातुक्षीणता, संग्रहणी और ज्वर आदि सब रोगों में सफलतापूर्वक लाभ पहुँचाती है।

आनन्दकन्द सप्तमोल्लास के अन्त में अभ्रक के गुण धर्म के सम्बन्ध में लिखा है कि :

षड्रसस्सर्वरोगघ्नस्त्रिदोषशमनः परः।
वीर्यायुष्यबलप्रज्ञाकान्तिरूपविवर्धनः।।
वपुर्दार्ढ्यं स्थैर्ययुक्तो वलींपलितमृत्युहा।
रुच्यो वृष्यो लघुश्शीतो मेध्यास्निग्धो रसायनम्॥
अभ्रकं दीपनं ग्राहि श्रेष्ठं पारदबन्धनम्।
पक्षजित्सूतराजस्य भस्मीभूताभ्रसत्वकः॥
अभ्रस्य पत्रं रोगघ्नं तच्च सत्वं दृढङ्करम्।
मृदुसत्वं हरेन्मृत्युन्द्रुतिस्तांश्च दरिद्रताम॥

अभ्रक षड्रसयुक्त होने से सर्व रोगों की नाशक, तीनों दोषों की शामक श्रेष्ठ औषधि है। यह वीर्य, आयु, बल, प्रज्ञा, कान्ति और रूप को बढ़ाने वाली है। यह देह को दृढ़ और सुस्थिर अवस्थायुक्त बनाती है एवं बलीपलित और मृत्यु का नाश करती है।

अभ्रक रुचिवर्द्धक, वृष्य, लघु, शीतवीर्य, मेधाप्रद, स्निग्ध, रसायन, दीपन, ग्राही और श्रेष्ठ पारदबन्धक है। अभ्रक सत्व की भस्म पारद का पक्षच्छेदन करती है अर्थात् तीव्राग्निपर रखा हुआ पारद भी उड़ नहीं सकता।

अभ्रपत्र की भस्म रोगहर है और सत्व की भस्म देह को दृढ़ बनाने वाली है। जो सत्व की मृदु भस्म बनी हो, तो मृत्यु को दूर भगाती है एवं धातुवादार्थ अभ्रक सत्व की द्रुति बनायी हो तो (कनिष्ठ धातुओं का सुवर्ण बनाकर) दरिद्रता का नाश करती है।

सगर्भा स्त्री को प्रवाल और सितोपलादि चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म ३-४ मास तक सेवन कराने से गर्भ बलवान और निरोग बनता है। क्षयरोगी, जो बिल्कुल, हाड़पिंजर हो गये हों, जिनके जीवन की आशा भी न रही हो, डाक्टर और हकीमों ने जिनको जवाब दे दिया हो, वैसे रोगी भी सहस्र पुटी अभ्रक, सुर्वणभस्म और च्यवनप्रशावलेह के योग से बिल्कुल तन्दुरुस्त हो गये हैं।

अभ्रक भस्म मस्तिष्क, वातवह मंडल, वातवाहिनियां, फुफ्फुस, हृदय और शरीर के सब भागों में मांस-पेशियों के लिये बल्य, जीवनीय और शामक गुण दर्शाती है। कफस्थान (उरः) के लिये बल्य है। अभ्रक कफ और वात दोष और रस, रक्त, माँस, अस्थि, इन दूष्यों के विकारों में लाभदायक है। अभ्रक भस्म का सेवन करने के समय शहद में पाव-आध घण्टे तक खरल करके उपयोग में लिया जाय, तो धातुपरिपोषण क्रम और अन्तःस्राव पर त्वरित लाभ होता है।

अभ्रक भस्म के मुख्य कार्य-चित्परमाणुओं को तरल और तरलतर बनाने में सहायता करना, संचालक इन्द्रियों को शक्ति देना और इनके पोषक द्रव्यों की पूर्ति करना, वातवाहिनी नसों के क्षोभ को दूर करना तथा स्नायु शैथिल्य, इन्द्रियों की दुर्बलता, और वातवाहिनियों की क्षीणता दूर कर शरीर संचालक प्राणों को उत्तेजना देना, और सब इन्द्रिय समूह को कार्यक्षम बनाना आदि कार्य हैं।

अभ्रक भस्म उत्तम रसायन, वृष्य, मेधाजनक और योगवाही है। रसायन गुणयुक्त होने से रस आदि धातुओं को सुदृढ़ बनाने में बहुत सहायक है। यद्यपि अभ्रक का वृष्यत्व प्रत्यक्ष नहीं है तथापि अप्रत्यक्ष रूप से सब धातुओं की समता होने पर वृष्यत्व उत्पन्न होता है। यह वृष्यत्व विशेषकाल स्थायी और श्रेष्ठ प्रकार का है।

अभ्रक भस्म योगवाही है, अर्थात् (१) अन्य औषधियों के गुणों को बढ़ाती है (२) अन्य औषधियों के गुणों में बाधा न पहुँचाते हुए सम्मिलित औषधि के दोष को दूर करती है, (३) और दोष दूर करते हुए गुण में वृद्धि करती है। इन तीन गुणों के हेतु से अभ्रक का उपयोग अत्यन्त विरुद्ध प्रकार के भिन्न-भिन्न योगों में किया जाता है, और परिणाम में अभ्रक-मिश्रित सब प्रयोग वीर्यवान बनते हैं।

अभ्रक का मुख्य कार्य तरल और तरलतर परमाणु बनाने का है। अतः संचालक इन्द्रियों के भीतर जो तरल परमाणुओं की न्यूनता हुई हो, उसे यह दूर करती है। किसी भी रोग में शारीरिक घटक और परमाणु शनैः शनैः क्षीण होते जाते हों इन्द्रियों की शक्ति का शोषण होता रहता हो और इनकी कार्यक्षमता का ह्रास होता हो, ऐसे शोष रोग में अभ्रक का उत्तम उपयोग हुआ है। अनेक बार घटक निर्बल होकर क्षीण हो जाते हैं और अनेक बार सड़कर मृतवत् हो जाते है। इनमें से जहाँ घटक क्षीण हुए हों, वहां पर यह उपयोगी है, सड़े हुए घटकों पर इसका कार्य उतना अधिक नहीं हो सकता।

अनेक व्यक्तियों को ऐसा सन्देह हो जाता है कि मुझे क्षय हो गया है। फिर बार-बार उदासीन से रहते हैं, किसी कार्य में उत्साहित नहीं होते, आनन्द के प्रसंगों में भी वे चिन्तातुर और व्याकुल रहते हैं। ऐसे मनुष्यों को थोड़े ही दिनों तक अभ्रक का सेवन कराने पर उनके मन और इन्द्रियां सबल बन जाती हैं। तथा वे स्वस्थ हो जाते हैं।

मस्तिष्क की निर्बलता जब अत्यधिक हो जाती है, कार्य करने का उत्साह नष्ट हो जाता है, बार-बार चक्कर आता है, कपाल पर प्रस्वेद आता रहता है, मन अस्थिर रहता है, रोगी निस्तेज, चिन्ताग्रस्त, क्रोधी स्वभाव वाला और शुष्क हो जाता है, तब अभ्रकभस्म का सेवन करने से थोड़े ही दिनों में प्रकृति स्वस्थ हो जाती है। मुखमण्डल पर पाण्डुता प्रतीत होती हो और धमनियां कूदती हों, तो लोह भस्म देनी चाहिये और मानसिक निरुत्साह हो तो अभ्रक भस्म देनी चाहिये।

अपस्मार, उन्माद, स्मृतिनाश, बुद्धिविभ्रम इन सब में मानसिक यन्त्र निर्बल हो जाते हैं। रस आदि धातुओं में से आवश्यक पोषण पदार्थ इन इन्द्रिय समूहों से ग्रहण नहीं हो सकता। इस हेतु से ऐसी परिस्थिति उपस्थित होती है। इन विकारों में मानस यंत्र को पोषण पूर्ण रूप से मिल जाय तो ये सब रोग शमन हो जाय। परन्तु वर्तमान में चिकित्सा इस तत्व के अनुसार नहीं करते। केवल रोगशामक औषधि से वातवाहिनियों का क्षोभ निवृत्त करते हैं। इस हेतु से चिकित्सा फलप्रद नहीं होती। उपरोक्त तत्व को लक्ष्य में रखकर चिकित्सा करें तो अच्छा लाभ पहुँचता है, ऐसा अनुभव हुआ है।

जब किसी इन्द्रिय के घटकों को योग्य पोषण नहीं मिलता, तब वह क्षीण होती है। सामान्यतः घटकों के लिए आवश्यक द्रव्य रस में से शोषणकर उसे अपना बना लेने का शारीरिक परमाणुओं का प्रयत्न सतत् चालू रहता है, उसका अभाव होने पर इन्द्रिय क्षीण होती जाती है। इस वैगुण्यका निवारण अत्यन्त वीर्यवान् तथा रस-रक्त आदि सब धातुओं को ओज और तेज सम्पर्क औषधद्वारा हो सकता है, ऐसी औषधि अभ्रक भस्म है।

अभ्रक भस्म के सेवन से थोड़े ही दिनों में शारीरिक परमाणुओं को ओज की प्राप्ति हो जाने से वे सुदृढ़ बन जाते हैं। ऐसे समय पर स्मृतिकेन्द्र की क्षीणता नष्ट कर उसे पूर्व स्थिति की प्राप्ति कराना, यही सच्ची चिकित्सा कहलाती है।

अभ्रक भस्म से मन का तरल अंश शनैःशनै सबल हो जाता है। फिर संज्ञावाहिनियों और आज्ञावाहिनियों की क्षीणता कम होने लगती है। तत्पश्चात् अपस्मार आदि की क्षोभ प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है।

अपस्मार और उन्माद की जीर्णावस्था में जब रोगी निस्तेज, डरपोक, निर्बल और चिन्तातुर हो गया हो, स्मरण शक्ति नष्ट हो गई हो, तब

अभ्रक भस्म एक से आधे मास तक सेवन कराने से रोगी की इन्द्रियाँ बलवान् बन जाती है, रोग शमन हो जाता है।

अर्धाङ्गवात की जीर्णावस्था में रक्त वाहिनियों की विकृति और मानसिक क्षोभ होते हैं, तब रोगशामक औषधि के साथ अभ्रक भस्म उपयोग करने से सत्वर लाभ होता है।

छोटे बालकों की बुद्धि का विकास, आयु के परिमाण से यदि न हुआ हो, या मूढ़ता बढ़ती जाती हो, शरीर कृश, निर्बल और निस्त रहता हो, शुद्ध बोल भी न सकता हो या अच्छी रीति से न चल सकता हो तथा मुँह में लार गिरती हो, तब अभ्रक भस्म से लाभ हो ज है। यदि माता-पिता को उपदंश रोग होने के पश्चात् बालक का जन्म हुआ हो, तो अभ्रक भस्म, गन्धक रसायन (प्रथम विधि वाली) चाहिये। बार-बार वमन होती हो, तो प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व को मिला देना चाहिये। कफ विकृति अधिक हो, तो श्रृङ्गभस्म और की कमी में मंडूर भस्म मिश्रित करनी चाहिये।

मस्तिष्क के किसी एक भाग का उचित विकास न होने से बाल्यावस्था में वैगुण्य उपस्थित होता है। इस हेतु से बालक मस्तिष्क सीधा नहीं रख सकता। उसका हाथ पैर पर अधिकार न होने से वह चल नहीं सकता एवं अच्छी तरह बोल भी नहीं सकता ऐसी स्थि में अकेली अभ्रक भस्म या अन्य सहायक औषधि के मिश्रण सहित सेवन कराने से बालक स्वस्थ हो जाता है।

अभ्रक में रसायन गुण होने से धातु-परिपोषण क्रम को सुव्यवस्थित करती है। इसी कारण से पाण्डु, रक्त पित्त, अम्लपित्त, क्षतक्षय आ तीव्र और जीर्ण व्याधियों में इसके सेवन से लाभ होता है।

रक्त में रक्ताणुओं की न्यूनता और मानसिक चिंता के कारण नवयुवती स्त्री को हारिद्रकरोग हुआ हो, ज्वर रहता हो, शरीर पीला, शुष्क निस्तेज हो, तथा कभी-कभी वमन आदि लक्षण होते हों, तो अभ्रक और लोह मिलाकर देने से रोग थोड़े ही दिनों में चला जाता है।

पाण्डु रोग में मानसिक चिंता कारण हो, अथवा अर्श में बार-बार रक्त जाने से पाण्डुता आई हो, तो इसका उपयोग लाभदायक है। ऐसे अन्त्र में निर्बलता आने पर गुद त्रिवली पर बोझा आकर शोथ आ गया हो। फिर शौच में रक्तस्राव होकर निर्बलता आई हो तो अभ्रक का उपय करने से अन्त्र बलवान हो रोग का शमन होता है। किन्तु यकृत के समीप रुधिराभिसरण के दबाव में वृद्धि होने से इस स्थिति की प्राप्ति हुई तो अभ्रक के सेवन से यथोचित लाभ नहीं हो सकेगा। ऐसी परिस्थिति में विरेचन या रक्त के दबाव की शामक औषध की योजना करनी चाहि

अनेक बार रक्तार्श उत्पन्न होकर पुराना हो जाता है। फिर बार-बार रक्त गिरता रहता है। इस रक्त गिरने के अभ्यास को नष्ट करने लिये अभ्रक भस्म घटित औषधि का उपयोग किया जाता है। अभ्रक से अर्श के मस्से तो नष्ट नहीं होते परन्तु रक्त गिरना कम हो जाता और शरीर में निर्बलता नहीं आती।

अर्श के मस्से का आपरेशन कराने के पश्चात् अनेक समय भगन्दर या नाड़ी व्रण हो जाता है। ऐसे समय पर व्रण को भरने के लिये अभ्र का सेवन सहायक होता है। ऐसे ही जीर्ण व्रण रोग में शारीरिक शक्ति बनाये रखने वाली और व्रण को सत्वर भरने में सहायता पहुँचाने वा औषधियों में अभ्रक भस्म उत्तम औषधि है।

यदि फुप्फुसों की अशक्ति से कफ विकार हुआ हो, एवं आघात, मानसिक चिंता, ज्वर ज्यादा समय तक रहने या अन्य कारण से ह निर्बल हो गया हो, तो फुप्फुस और हृदय को शक्ति देने वाली औषधियों में अभ्रक भस्म, सब से उत्तम है। इस तरह किसी भी रोग में रो की बोलने की शक्ति क्षीण हो गई हो, तो अभ्रक भस्म से लाभ पहुँचता है। यदि अशक्तता की अपेक्षा, अनिच्छा हेतु की प्रधानता हो, ऐसे स्वर भेद में जसद भस्म देनी चाहिए।

आयुर्वेद में कहे हुए निर्जन्तुक, अनुलोम और प्रतिलोम क्षय में अभ्रक भस्म को श्रृंग भस्म और गिलोयसत्व के साथ देते रहने से रो शमन हो जाता है, अर्थात् अभ्रक से अणुभवन क्रिया सुधरकर घटकों का ह्रास नष्ट हो जाता है। परन्तु आधुनिक युग में फैले हुए कीटाणुज क्षय की सब अवस्थाओं में अभ्रक भस्म का उपयोग होता ही है, ऐसा नहीं कह सकेंगे। प्रथमावस्था में ज्वर बिल्कुल कम रहता हो, उ समय तो अभ्रक भस्म का उपयोग निःसंदेह होता है। इस प्राथमिक अवस्था में फुप्फुस और अन्य शारीरिक घटकों को सबल बना देने से क्ष के विष की प्रगति का अवरोध हो जाता है।

जीर्ण कफप्रकोप, जीर्ण कास, कफात्मक और कफ-वातात्मक-जीर्णश्वास जिसमें श्वास-वाहिनियाँ विकृत हो गई हों, और उनमें व्रण हो ग हो, अति खांसने पर सफेद चिकना कफ निकलता हो, थोड़े श्रम में प्रस्वेद आता हो, रोगी अत्यन्त अशक्त हो गया हो, तो ऐसा समय क कफघ्न अनुपान के साथ शहद, पीपल के साथ अभ्रक भस्म देने से रोग निर्मूल हो जाता है।

हृदय की निर्बलता से एवं वयोवृद्ध और निर्बल मनुष्यों को वर्षाऋतु में या शीतकाल में बादल होने पर श्वास रोग हो जाता है, कि ही को बैठने से श्वास शमन हो जाता है, और थोड़े परिश्रम से श्वास भर जाता है, उन सबके लिये अभ्रक अति लाभदायक है।

पाण्डु-रोगिणी स्त्रियों को श्वास वाहिनियों का संकोच होने से अतिशय घबराहट और श्वास रोग हो जाता है। पंखे से हवा करने पर अच्छ लगता है, अन्यथा दिन-रात बेचैनी रहती है। शीतल या उष्ण औषधि सहन नहीं होती ऐसे समय पर श्वासवाहिनियों को विकसित करने वा और पित्त को शमन करने वाली औषधियों में अभ्रक भस्म उत्तम है। ऐसे प्रसंग पर कार्य कर औषधियाँ अभ्रक भस्म रुद्रवन्ती, शिलाजीत, चन्द्रप्र

और आरोग्यवर्धिनी है। उनमें मानसिक क्षोभ दूर करने के लिये अभ्रक है, विष मूत्र द्वारा बाहर निकालने और विकार का शोषण करने के लिये रुद्रवन्ती, शिलाजीत और चन्द्रप्रभा है, एवं मलशुद्धि की आवश्यकता हो, तो आरोग्यवर्धिनी का उपयोग किया जाता है। इन सब प्रयोगों में जीर्ण दोष या स्वभाव को नष्ट करने के लिये बार-बार शहद के साथ अभ्रक का सेवन कराना चाहिये।

हृदय की अशक्ति के कारण से बार-बार थोड़े परिश्रम से श्वास भर जाता हो, नाड़ी क्षीण, मन्द और बार-बार अनियमित रहती हो, तो अभ्रक के सेवन से प्रकृति स्वस्थ हो जाती है। यदि रक्तवाहिनियों की दीवार पतली हो गई हो फिर उन स्थानों में रक्त संगृहीत हो गया हो, तो इस विकार में एवं इससे उत्पन्न रक्तपित्त में भी यह हितकर है। प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व मिलाना अधिकतर लाभदायक है। यदि इस रोग की उत्पत्ति उपदंश से हुई हो, तो अनुपान अनन्तमूल का अवलेह अथवा रक्तशोधक अरिष्ट या रक्तशोधक क्वाथ दें।

अभ्रक भस्म निमोनिया रोग में दालचीनी के साथ देने से रोग के कारण भूत कीटाणुओं को नष्ट करती है। लोहभस्म के साथ देने से रक्ताणुओं को बढ़ाती है। इस कारण पाण्डुरोग में अभ्रक भस्म, लोहभस्म, त्रिफला और शहद मिलाकर दिया जाता है।

अभ्रक भस्म हृदयोत्तेजक है, फिर भी कुचिला अथवा कपूर के समान हृदय उत्तेजक नहीं है। अभ्रक भस्म तो हृदय के स्नायुमय घटकों को शक्ति देकर हृदय को उत्तेजना देती है। इस कारण हृदय-विकार से होने वाले शोथ रोग में इसके सेवन से लाभ होता है।

उदर की अशक्ति और पित्तोत्पादक पिण्ड की अशक्ति के कारण से पित्त की उत्पत्ति सम्यक न होती हो, फिर इसी से अपचन और मन्दाग्नि रोग हुआ हो, तो पित्तोत्पादक पिण्ड और उदर के अवयवों को शक्ति देकर रोग को दूर करने का काम अभ्रक करती है।

अरुचि अर्थात् जिसमें भोजन करने में प्रीति न हो, स्वादिष्ट वस्तु भी बेस्वादु लगती हो, यह विकार उदर विकृति और अशक्ति होने के पश्चात् या अरुचि रूप उपद्रव क्षय, पाण्डु, कामला, ज्वर आदि रोगों के पश्चात् हुआ हो, तो इस भस्म का उपयोग लाभदायक है।

जीर्ण अम्लपित्त रोग में यदि सूतशेखर आदि औषध से लाभ न होता हो सर्वदा उबाक बनी रहती हो, उदर में पीड़ा रहती हो और वमन के साथ रक्त निकलता हो, परन्तु उदर में कर्कस्फोट न हो तो अभ्रक भस्म का उपयोग करना हितकर है एवं पेट की आकृति बढ़ गई हो, और भोजन के पश्चात् वमन हो जाती हो, तो अभ्रक भस्म का उपयोग वंगभस्म के साथ करना लाभदायक है।

क्षय रोग के अतिसार में अन्य जन्तुघ्न औषधि के साथ अभ्रक के उपयोग से लाभ होता है। उस समय अभ्रक भस्म, मुक्ता-पिष्टी, शंख भस्म और वराटिका भस्म का मिश्रण घृत के साथ दिया जाता है। ऐसे ही आंत्र की निर्बलता के कारण से बहुत दिनों पुराने त्रासदायक अतिसार में बार-बार झाग सहित थोड़ा-थोड़ा दस्त होता हो अन्त्र की साधारण शक्ति क्षीण हो गई हो, तो अभ्रक भस्म का उपयोग वराटिका भस्म, सोंठ का चूर्ण और घृत (या शहद)के साथ करना हितकारक है। ग्रहणी की अशक्तता के कारण से जीर्ण ग्रहणी रोग में यदि अंत्र में स्थान-स्थान पर व्रण हो गये हों, बार-बार रक्त गिरता हो तो अभ्रक भस्म का उपयोग पर्पटी के साथ करना चाहिये।

उदर में रसवाहिनी और रसोत्पादक पिण्ड की विकृति अथवा रसवहन कार्य में प्रतिबन्ध होने से उदर-ग्रन्थियाँ बढ़ गई हों, साथ-साथ मन्द-मन्द शूल घण्टों तक बार-बार चलता रहता हो, रोगी अशक्त हो जाता हो, मन्द ज्वर मलावरोध और अपचन भी रहते हों तो अभ्रक भस्म उपयोग हितकारक माना गया है।

छोटी आँत और बड़ी आँत की निर्बलता के कारण मलावरोध रहता हो, फिर रोग जीर्ण होने पर मल में दुर्गन्ध, रक्तविकार, फोड़े-फुन्सियाँ, छोटे-छोटे दूषित रक्त के मण्डल आदि भीषण स्वरूप की प्राप्ति हुई हो तो इस भस्म का सेवन रक्तशोधक अनुपान के साथ हितकर है।

मूत्राशय की अशक्ति के कारण बूंद-बूंद मूत्र होता रहता हो और बार-बार पेशाब करना पड़ता हो अथवा मूत्र में रक्त भी जाता हो एवं मूत्रकृच्छ का रोग जीर्ण हुआ हो, तो इस भस्म के सेवन से मूत्राशय बलवान बन जाता है। मधुमेह में अभ्रक को शिलाजीत और जामुन के बीज की गिरी के साथ देते रहने से शक्ति क्षीण नहीं होती और व्याधि-बल भी धीरे-धीरे न्यून होकर अनेकांश में रोग दब जाता है।

वातवाहिनियों की निर्बलता के कारण या मानसिक आघात पहुँचने से नपुसंकता आई हो, वह अभ्रक भस्म के सेवन से दूर होती है। अभ्रक भस्म जननेन्द्रिय के स्नायु, जननेन्द्रिय के घटक, जननेन्द्रिय को उत्तेजना देने वाली, वातवहानाड़ियों के केन्द्र और वातवाहिनियाँ इन सबको शक्ति देकर नपुंसकता को दूर करती है।

योगवाही होने से अभ्रक भस्म का कार्य संयोजित द्रव्य अनुसार त्वरित और मन्द वेगवाला हो जाता है। लक्ष्मीविलास रस (सन्निपात नाशक और हृदय पौष्टिक रसायन) में कर्पूरादि औषधि का संयोग होने से यह तीव्र और शीघ्र गुण करती है। आरोग्यवर्द्धिनी में ताम्र आदि औषधि संयुक्त होने से गुण शनै-शनै दर्शाती है। लक्ष्मीविलास में उत्तेजक कार्य और आरोग्यवर्द्धिनी में निर्बल बने हुए घटकों को दूर कर नये सबल घटकों को तैयार करने का कार्य अभ्रक भस्म के संयोग से होता है। इस तरह संयोगजन्य कार्य न्यूनाधिक परिमाण में और पृथक्-पृथक् रूप में होता है।

अभ्रकभस्म का उपयोग कफकास पर उत्तम होता है। किन्तु शुष्क कास में व्यवहृत नहीं होती। फुफ्फुस प्रणालिकाएं और वायुकोष निर्बल बनने पर उनमें कफ संग्रहीत हो जाता है। उसके साथ कण्ठ में शुष्कता हो, तो शुष्क कास चलती रहती है और सरलता से कफ नहीं निकलता।

---

* अभ्रक में गुणाधिक्य होने का कारण उसके प्राकृतिक संगठन में वज्रलोह (Metellic Iron) का होना है। इसलिए सूक्ष्मकण वाले ढेलेदार अभ्रक की भस्म लेवें।

रोगी अति बेचैन हो जाता है, प्रस्वेद आ जाता है, कण्ठ सूखता है, फिर थोड़ा कफ गिरता है। ऐसी अवस्था में अभ्रक भस्म, शृङ्ग भस्म, छोटी इलायची के दाने और प्रवालपिष्टी १-१ रत्ती, गिलोयसत्व और वंशलोचन २-२ रत्ती मिला, उसकी ४ मात्रायें बनाकर दिन में ४ बार आम के मुरब्बे के साथ सेवन कराने पर पहले ही दिन से आराम होने लगता है।*

सूचना-अभ्रक भस्म किसी को भी हानि नहीं पहुँचाती; फिर भी किसी-किसी को इसकी मात्रा ज्यादा लेने से नाड़ी का वेग बढ़ जाता है और रक्ताभिसरण क्रिया भी ज्यादा वेग से होने लगती है। ऐसे समय पर अभ्रक भस्म थोड़े दिनों के लिये बन्द कर देनी चाहिये। पश्चात् थोड़े परिमाण में सेवन करानी चाहिये और मुक्ता या प्रवालपिष्टी साथ में मिला लेनी चाहिये।

अभ्रक भस्म को १० से १००० गजपुट तक देने का शास्त्रविधान है। जितने अधिक पुट देने में आवें उतने परिमाण में गुण की वृद्धि होती है। अभ्रक के सेवन करने वाले अकाल मृत्यु से बच जाते हैं अनुपान भेद से यह सब रोगों पर उपयोगी है। इसलिये इसे मनुष्य लोक का अमृत माना है।

श्वेत अभ्रक को अंग्रेजी में **माइका (Mica)** और कृष्ण अभ्रक को बायोटाइट (Biotite) कहते हैं। रसायन शास्त्र की दृष्टि से अभ्रक डबल सिलिकेट आफ् एल्युमिना एण्ड पोटाश-सोडियम (Double Silicate of Alumina of Potash-Sodium) है। कतिपय जाति में लोह का अंश मिलता है और कितने ही प्रकार के अभ्रक में मैगनेशिया प्राप्त होता है।

विविध अभ्रक का रासायनिक विश्लेषण-

1. **श्वेताभ्र**-K_2O, $3AL_2O_34SiO_2$ (२ पोटाशियम ऑक्साईड, ३ एल्युमिनियम ऑक्साईड, ४ सिलिकन ऑक्साईड)।

2. **कृष्णाभ्र-वप्राभ्र**-$3MgO$, $Al_2O_23SiO_2$ (३ मेगेनेशियम ऑक्साइड एल्युमिनियम ऑक्साइड और ३ सिलिकन ऑक्साईड) कृष्णाभ में कुछ न कुछ लोह का अंश रहता है।

श्वेताभ्र-Muscovite (मस्कोवाईट) Potash Mica.

कृष्णाभ्र-Biotite (बायोटाइट) Ferromagnesian Mica.

रासायनिक पृथक्करण-(१) सिलिका, (२) लोह, (३) एल्युमिनियम, (४) पोटेशियम, (५) मैगनेशियम ये तत्व पाये जाते हैं।

(औ.गु.ध.शा.)

शास्त्रविधि के अनुसार अभ्रक में से सत्वपातन कराया जाता है। उस सत्व में एल्युमिनियम व सिलिका की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। कुछ लोह होता है। अत: रसाचार्यों ने विशुद्ध पारद का पक्षच्छेदन कराने के लिये विधिवत् ग्रासमान, गर्भ-द्रुति व जारणक्रिया हेतु अभ्रकसत्व को प्रमुखता दी है। यथा-

मुक्त्वैकमभ्रसत्वं नान्य: पक्षापकर्तनसमर्थ:॥

हमने इस प्रकार जो अनुभव किया है उसे चन्द्रोदय के प्रकरण में दर्शाया है।

दूसरी विधि-(१०० पुटी)-शुद्ध धान्याभ्रक को आक का दूध, थूहर का दूध, धतूरे के पत्तों का रस, केले के खम्भे का रस, चित्रकमूल का क्वाथ, नागरमोथा का क्वाथ, शतावरी का क्वाथ, गोखरू का क्वाथ, कौंच का क्वाथ, गिलोय का स्वरस, नागरबेल के पानों का रस, गोदुग्ध, गोमूत्र, घीकुंवार का रस और बड़ के अंकुरों का क्वाथ, इनके रस या क्वाथ के साथ १२-१२ घण्टे खरल करके छोटी-छोटी टिकिया बांधें। पश्चात् सूर्य की तेज धूप में सुखा, संपुट करके गजपुट दें। इस रीति से इन सबके क्रमश: ७-७ पुट देने से १०५ पुटी भस्म तैयार होती है। सहस्रपुटी के अभाव में यह भस्म उपयोग में आती है।

मात्रा और उपयोग-प्रथम विधि के अनुसार।

तीसरी विधि-(५० पुटी अभ्रक भस्म) शुद्ध धान्याभ्रक को नागरमोथे का क्वाथ, पुनर्नवा का रस, कसोंदी के पत्तों का रस, नागरबेल के पानों का स्वरस, आक का दूध, गोमूत्र, लोध का क्वाथ, सफेद मूसली का क्वाथ, गोखरू का क्वाथ, कौंच का क्वाथ, केले के खम्भे का रस, तालमखानों का क्वाथ, घीकुंवार का रस और बड़ की जटा का क्वाथ, इन १४ औषधियों की क्रमश: ४-४ भावनायें देवें। बार-बार टिकिया बांध सूर्य के ताप में सुखा संपुट करके गजपुट दें। इस रीत से प्रत्येक भावना के पश्चात् गजपुट देने से ५६ पुटी अभ्रक भस्म तैयार होती है।

मात्रा और उपयोग-प्रथम विधि के अनुसार।

चौथी विधि-(२० पुटी) धान्याभ्रक को कुकरौंधा के स्वरस में खरलकर छोटी-छोटी टिकिया बाँध तेज धूप में सुखा; एक हांडी में बन्द करके गजपुट की अग्नि दें। इस प्रकार के १० गजपुट देने के बाद आक के पत्तों के रस के ७ और बड़ के अंकुरों के क्वाथ के ३ गजपुट देने से अति मुलायम २० पुटी अभ्रक भस्म बन जाती है।

मात्रा और उपयोग-पहिली विधि के अनुसार।

पाँचवी विधि-"औषधिकृति" में कहे अनुसार अभ्रक को निश्चन्द्र बना आक के दूध (अभाव में पत्तों के रस) में १२ घण्टे खरलकर छोटी-छोटी टिकिया बाँधें। सूर्य की तेज धूप में सुखा सम्पुटकर मात्र एक गज पुट देने से ही लाल रङ्ग की निर्दोष भस्म बन जाती है।

सूचना–जब तक अभ्रक का चमकीला अणु नष्ट न हो जाय तब तक उस भस्म को व्यवहार में नहीं लेना चाहिये अन्यथा हानि करती है।
मात्रा, अनुपान और उपयोग–पहिली विधि के अनुसार।
उत्तम अभ्रक भस्म के लक्षण–जो भस्म निश्चन्द्र, अरुण वर्ण, मृदु, सूक्ष्म तथा चुंबक द्वारा ग्राह्य होती है।

(१४) कासीस भस्म

विधि–हरे रंग के विलायती कासीस (Ferri Sulph) को भांगरे के रस में १२ घण्टे तक खरलकर टिकियां बांधकर, सूर्य के ताप में सुखाये। फिर सम्पुट करके गोबरी के चूरे का लघुपुट देवें। इस तरह 3 पुट देने से लाल रङ्ग की मुलायम भस्म बन जाती है। अन्य कासीस की भस्म ऐसी मुलायम और लाल नहीं बनती है। विलायती कासीस ४० तोले में से भस्म केवल १० तोले बनती है क्योंकि कासीस के भीतर रहे हुए ऑक्सिजन का काफी अंश उड़ जाता है और अपना गुण भस्म को दे देता है। कासीस लोह एवं गंधक का यौगिक है।

मात्रा–१ से ३ रत्ती तक दिन में २ समय।
अनुपान–नष्टार्त्तव में एलवा और हींग के साथ।
गुल्म, शूल और पाण्डु में–त्रिफला और घृत के साथ।
कफ, आम, उदररोग, प्लीहा में–शहद पीपल के साथ।
मधुमेह में–जामुन की गुठली के चूर्ण के साथ।
संग्रहणी में–नागकेशर और मिश्री के साथ।
गर्भाशय और बीजाशय के दोष में–शर्बत बनप्सा के साथ।
नेत्र रोग में–त्रिफला और घृत या त्रिफला और शहद के साथ।

गुणधर्म–यह भस्म पांडु, क्षय, मूत्रकृच्छ, पथरी, यकृत् वृद्धि, प्लीहोदर, नेत्ररोग, उदरवात युक्त संग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका, मधुमेह, आम विकार, कफ प्रकोप, अर्शशूल, वातजगुल्म और स्त्रियों के गर्भाशय दोष को दूर करने में उपयोगी है। किसी रोग के हेतु से या चिन्ता से अकाल में आई हुई निर्बलता को दूर करके शरीर को सुदृढ और कांतिवान् बनाती है।

लोह कासीस मिश्रगुण–

कासीस भस्म कान्तस्य चोभयं भागतः समम्।
वरा विडङ्गसंयुक्तं घृतक्षौद्रप्लुतं प्रगे।
भक्षितं हन्ति वेगेन पाण्डुयक्ष्माणमेव च॥
प्लीहागुल्मे गुदे शूलं मूत्रकृच्छ्राण्यशेषतः।
सेवितं सर्वरोगघ्नं रसायनविधानतः॥
अग्निसंधुक्षणं कुर्याद् बलीपलितनाशनम्।
आमाजीर्णभवान् रोगान् निहन्त्येव न संशय॥

उपयोग–कासीम भस्म किंचित् उष्ण, कषाय तथा अम्ल गुणयुक्त है। नेत्रों के लिये हितकर है। आमसंशोषक और कफनाशक होने से मन्दाग्नि को दूर करके अग्नि प्रदीप्त करती है, तथा रक्त में रहे हुए रक्ताणुओं की वृद्धि करती है। शतधौत घृत के साथ मिलाकर अभिष्यंद(नेत्र की लाली ,पूयाभिष्यंद, नेत्रव्रण, नेत्र की पुतली का व्रण आदि रोगों में अंजन करने में उपयोगी है। इस भस्म में कषाय गुण होने से यह रक्तप्रसादन कार्य करके नेत्रविकार का शमन करती है। यह कार्य केवल मृदु त्वचा पर और सुकुमार इन्द्रियों पर बहुत अच्छी प्रकार से होता है।

कासीम भस्म आमसंशोषक होने से अग्नि को प्रदीप्त करती है। यह कार्य रसायन विधान से घृत और शहद के साथ लेने से प्रतीत होता है। कासीस भस्म मात्र के सेवन से आम का पाचन होता है। पचनेन्द्रिय अथवा पचनेन्द्रिय की सन्निधि के भाग के रक्त धातु में विकृति अथवा रक्त की प्राप्ति उस इन्द्रिय के लिये न्यून होना, यह मन्दाग्नि और आम संजनन के अनेक कारणों में से एक कारण हो सकता है। पित्त का आश्रय या आधार रक्त है और पित्त आश्रयी अथवा आधेय है। इस कारण रक्त का परिमाण न्यून होने पर पित्त धातु से उत्पन्न होने वाले पाचक द्रव्य की उत्पत्ति भी न्यून हो जाती है। रक्त की यह न्यूनता इस भस्म के सेवन से दूर होती है।

कासीस भस्म अग्निप्रदीपक है, अर्थात् पाचक रस का पाचकत्व कम होने पर पचनेन्द्रिय को उत्तेजना देकर पाचक-रस की तीव्रता प्रस्थापित कराने वाली औषधि है। पाचन-क्रिया पचनेन्द्रिय के भिन्न-भिन्न रसों के परिमाण के ऊपर और उसके घटकों पर अवलम्बित है। यह कार्य पित्त धातु के योग से होता है और कासीस भस्म का कार्य पित्तधातु में साम्य लाने का है। अतः इसके सेवन से पचनेन्द्रिय और पाचक रस व्यवस्थित होता है।

अन्त्र में रहे हुए आम पर इस भस्म का कार्य होता है इसलिए आमजन्य अजीर्ण या जीर्ण; अजीर्ण रोग और उनसे होने वाले विकार

पर यह उपयोगी है।

शरीर अकाल में-निर्बल और निस्तेज हो जाने पर भस्म का सेवन कराया जाता है। यदि अकाल में बाल पककर सफेद हो जाते हैं और वृद्धावस्था के समान कमजोरी की प्राप्ति होती है, तो कासीस भस्म, लोहभस्म और त्रिफला, तीनों को मिलाकर परिस्थिति अनुसार योग्य परिमाण में घृत और शहद के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। यह योग पाण्डुरोग की प्रथमावस्था में भी दिया जाता है। बार-बार अजीर्ण होने की आदत हो और पाण्डुता आई हो तो इस योग का अवश्य प्रयोग करना चाहिये।

धातुगत पचन अर्थात् रस और रक्त में आवश्यक अंश को लेकर उसमें से अपने अंश को बढ़ाने की प्रत्येक धातु की प्रवृत्ति नियमित रीति से हो रही है। उसमें शिथिलता आ जाय तो प्रत्येक धातु क्षीर्ण होने लगती है। ऐसी परिस्थिति में रोगी के शरीर में क्षय के कीटाणु होने ही चाहिये, ऐसा नियम नहीं है। इस विकार पर इस भस्म का उपयोग करना चाहिये। उपरोक्त योग इसमें अति प्रशस्त है।

वातज गुल्म और शूल पर कासीम भस्म का उपयोग होता है। यह अग्नि प्रदीपन करके गुल्म और शूल को नष्ट करती है।

बृहदन्त्र में सेन्द्रिय विष का रूपान्तरित करने वाली औषधियों में कासीस भस्म की गणना होती है। इस स्थान पर दो प्रकार की औषधियां उपयोगी हैं- आरोग्यवर्द्धिनी, वराटिका भस्म, ताम्रभस्म आदि उष्ण, तीक्ष्ण और रसायन गुणयुक्त औषधियां और दूसरी कासीस भस्म के समान कषाय रसात्मक और शामक रसायन औषधियां इनमें से कासीस भस्म का उपयोग विशेषतः सेन्द्रिय विष के योग से दाह होने पर अच्छा होता है। दाह के साथ उदर में वात भी उत्पन्न होता है। दुष्ट अपानवायु बराबर निकलता हो और उदर में गुड़-गुड़ाहट आदि लक्षण हों तो कासीस भस्म का उपयोग किया जाता है।

जीर्ण व्रणों में कासीस भस्म का उपयोग होता है। यदि व्रण रक्त और मांस धातुगत हो; उसमें पित्त-दुष्टी के लक्षण हों तो इस भस्म का सेवन कराना चाहिये। दाह, लाल व्रण, किनारी पर शोथ, भीतर से स्राव कम होना, बार-बार रक्त आते रहना इत्यादि लक्षण होने पर बाह्य उपचार के साथ इस भस्म का सेवन लाभदायक है।

कासीस भस्म वात और कफ दोष; रस और रक्त दूष्य तथा यकृत्, प्लीहा, आमाशय, ग्रहणी और नेत्र स्थान, इन सब पर लाभ पहुँचाती है। इसके सेवन से रक्त के रक्ताणुओं की वृद्धि होती है। यह इसका विशेष धर्म है। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना-कासीस भस्म से किसी-किसी को वमन होती है और चक्कर आता है। ऐसा होने पर मात्रा कम करें और सुवर्णमाक्षिक मिलाकर देवें।

कासीस में गन्धकाम्ल के रूप में गन्धकांश रहता है; इसलिये भस्म होने पर लिटिमिस पेपर से परीक्षाकर अम्लनाश होने तक पुट देते रहना चाहिये। निरम्ल भस्म से वमनादिक नहीं होते। (संशोधक)

(१५) कासीस-गोदन्ती भस्म

विधि-विलायती हरा कासीस और गोदन्ती १०-१० तोले मिला घीकुंवार के रस में ६ घण्टे घोटकर छोटी-छोटी टिकियां बांधें। फिर टिकियों को सुखा, संपुट करके गजपुट में फूंक देवें। इस रीति से दो-तीन पुट देने से सिंदूर जैसी लाल भस्म हो जाती है।

मात्रा-१ से ३ रत्ती। मिश्री और दूध या शहद के साथ दें। विषम ज्वर में अदरक के रस और शहद के साथ।

उपयोग-यह भस्म आमप्रकोप से उत्पन्न नवीन ज्वर, मलेरिया (विषम ज्वर), जीर्णज्वर, पांडु, श्वेतप्रदर, मन्दाग्नि और आमवृद्धि को दूर करके शरीर में रक्त की वृद्धि करती है। सगर्भा और प्रसूता स्त्रियों और बालकों के लिए भी हितकारी है। मलेरिया आने से ४ घण्टे पहले एक मात्रा और दूसरी मात्रा दो घण्टे पहिले देने से ज्वर रुक जाता है।

कासीस भस्म के विवेचन में दर्शाये गुणों से विशेष गुण इस भस्म में रहते हैं। क्योंकि गोदन्ती का संमिश्रण हो जाने से कतिपय नूतन गुणों की उत्पत्ति होती है। कितने ही नाजुक प्रकृति के रोगी, पित्तप्रधान प्रकृतिवाले, बालक, प्रसूता और सगर्भा स्त्री आदि को विषमज्वर आने पर तीव्र औषधि नहीं दें सकते, उनके लिए कासीस गोन्दती भस्म अदरक के रस और शहद के साथ दिन में २ या ३ बार देने से लाभ पहुँच जाता है।

विषमज्वर प्रकुपित होने पर उसका विष मांस आदि धातुओं में लीन हो जाता है। फिर तीव्र दवा देने पर रोगी की व्याकुलता बढ़ती है और अनेकों को कान, ऑख और वृक्क आदि अवयवों पर बुरा असर पड़ता है एवं रक्तदबाव भी बढ़ जाता है। ऐसे रोगियों को कासीस गोन्दन्ती भस्म देते रहने से कुछ दिनों में दूषित तीव्र औषधियों का विष और रोगविष जल जाता है फिर ज्वर शमन होकर शरीर सबल हो जाता है।

विषमज्वर जीर्ण होने पर सुवर्ण वसन्त और लघुवसन्त आदि औषधियां उत्तम कार्य करती हैं, किन्तु आम प्रकोप से पीड़ित रोगियों को वसन्त की अपेक्षा कासीस गोदन्ती भस्म विशेष हितावह होती है। यदि धातुओं की क्षीणता अधिक हो तो सुवर्ण वसन्त के साथ, कासीस गोदन्ती भस्म मिला देने से सत्वर लाभ होता है।

---

* प्लीहा अत्यधिक बढ़ गई हो, नाभि तक पहुँच गई हो, उस पर एक अनुभवी महात्मा कासीस ६-६ माशे १०-१० तोले दही के साथ देते थे। स्थूल दृष्टि से मात्रा अत्यधिक भासती है। किन्तु इस प्रयोग से डाक्टरों से ऑपरेशन कराने की अनुमति दिये हुए अनेक रोगी भी मात्र ४ दिन के प्रयोग से स्वथ्य हो जाने

विषमज्वर अधिक दिन रहने पर प्लीहा बढ़ जाती है और मंद-मंद ज्वर बना रहता है। थोड़ा-सा अपथ्य या आहार-विहार में भूल होने पर ज्वर बढ़ जाता है। उन रोगियों को पथ्य पालनसह कासीस गोदन्ती भस्म ४ से ६ रत्ती मात्रा में अमृतारिष्ट के साथ थोड़े दिनों तक देते रहने पर प्लीहागत कीटाणु और विष नष्ट होकर स्वास्थ्य की प्राप्ति हो जाती है।*

मसूड़ों में पूय (Pyorrhoea) होने पर भोजन के साथ पूय आमाशय में जाता है फिर आमाशय और लघु अन्त्र आदि भाग दूषित हो जाते हैं। पश्चात् अग्निमांद्य, उदरशूल, बेचैनी, पांण्डुता, शिर में भारीपन और निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं तथा शांत निद्रा भी नहीं मिलती। ऐसे रोगियों को चाहिए कि दूषित दाँत निकलवा देवें अथवा दाँतों का स्थानिक योग्य उपचार करावें। इसके साथ कासीस गोदन्ती भस्म का उदर सेवन कराने पर सब उपद्रव दूर होकर शरीर स्वस्थ हो जाता है।

आमाशय, अन्त्र, वृक्क अथवा अन्य स्थान में क्षत हो जाने पर रक्त में पूय प्रवेश होता है। फिर हल्लास, उदर में वेदना, पाण्डुता, शारीरिक कृशता, अग्निमांद्य और मन्द-मन्द ज्वर रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं और निर्बलता शनैःशनैः बढ़ती जाती है। यदि पूय का प्रवेश अधिक मात्रा में होता है, तो पूयज्वर (Pyaemia) की संप्राप्ति होती है। फिर दिन में २-३ बार शीत लगती है, ज्वर बढ़ जाता है और स्वेद आकर ज्वर कम हो जाता है, किन्तु शरीर निर्बल हो जाता है। इस विकार में कासीस गोदन्ती भस्म सफलतापूर्वक प्रयुक्त होती है।

मासिकधर्म में विकृति होने पर अनेक युवतियों को बाहर निकलने योग्य दूषित रजका स्राव योग्य प्रमाण में नहीं होता। कुछ न कुछ अंश में रक्त में शोषित हो जाता है। फिर गर्भाशय शोथ या बीजाशय शोथ, श्वेतप्रदर, पाण्डुता, दृष्टिमांद्य, शिरदर्द, कटिवेदना आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। इस रोग में कासीस गोन्दती भस्म को अशोकारिष्ट या कुमार्यासव के साथ देते रहने पर २-३ मास में मासिक धर्म की शुद्धि होती है और नियमित बन जाता है।

अधिक धूम्रपान से पाचन क्रिया विकृति होने से रसोत्पत्ति होकर अथवा कीटाणुओं का आक्रमण होने पर गलग्रन्थियाँ बढ़ जाती है और वात प्रकोप से बार-बार आक्षेप आने लग जाते हैं। इस विकार पर कासीस गोन्दती भस्म को जसद भस्म या बसंतमालती के साथ मिलाकर देने से थोड़े ही दिनों में विकार दूर हो जाता है।

(१६) गोदन्ती भस्म

विधि-४० तोले गोदन्ती (Gypsum) के टुकड़ों को श्रृङ्गभस्म के प्रकरण में लिखे अनुसार आक के पत्तों की लुगदी या गंवारपाठे के गूदे में संपुटकर गजपुट अग्नि देने से सफेद रंग की मुलायम भस्म तैयार होती है।

मात्रा-२ से ८ रत्ती, सुदर्शन चूर्ण के क्वाथ, मिश्री या शहद के साथ दें। बालकों को एक रत्ती भस्म माता के दूध या शहद के साथ दें।

उपयोग-इस खनिज में प्रचुर मात्रा में केल्शियम तथा गंधकांश गंधकाम्ल के रूप में रहता है। इसकी भस्म पित्तज्वर, आमज्वर, शिरदर्द, जीर्णज्वर, विषमज्वर,स्त्रियों के श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, रक्तस्राव और सूखी खांसी में अति लाभदायक है। दाह, तृषा, रक्तदबाव (H.B.P.) वृद्धिजन्य शिरदर्द, निद्रानाश व्याकुलता आदि लक्षणों को तुरन्त शमनकर देती है।

मस्तिष्क को शांत और हृदय को सबल बनाती है। बालकों के ज्वर, कास श्वास, हड्डियों की निर्बलता, अग्निमाँद्य, दूध फैंकना, कब्ज और जीर्ण आदि पर निर्भयतापूर्वक बहुत उपयोग में आती है। बढ़े हुए विषमज्वर में सुदर्शन चूर्ण के क्वाथ या अर्क के साथ देने से तुरन्त लाभप्रद होती है। सन्निपात में तुलसी के स्वरस और शहद के साथ २-२ घण्टे पर देते रहने से चेतना आ जाती है और त्रिदोषज लक्षण शान्त हो जाते हैं।

रक्तप्रदर पर गोदन्ती भस्म दिन में तीन बार आंवले और ईसबगोल तथा श्वेतप्रदर में संगजराहत भस्म, जीरा और माजूफल के साथ मिलाकर दिन में ३ बार दी जाती है। शिरःशूल, सूर्यावर्त, आंधाशीशी और मस्तिष्क में उष्णता रहने पर १-१ माशा भस्म १ तोला घी और १ तोला शक्कर के साथ मिलाकर दिन में २ या ३ बार देने से लाभ हो जाता है। किन्तु शिरःशूल के रोगी को कफ की अधिकता रहती हो तो, गोदन्ती के साथ आध-आध रत्ती समीरपन्नग रस मिला देने से सत्वर लाभ पहुँचता है।

गोदन्ती भस्म में जीर्ण ज्वर, विषमज्वर, पित्तप्रकोप और प्रदर को दूर करने का गुण अमृतासत्व के सदृश होने से आजकल कुछ चिकित्सक अमृतासत्व के स्थान पर (प्रतिनिधि रूप से) गोदन्ती भस्म का उपयोग करते हैं। यह सगर्भा और बालकों के लिये अति निर्भयता से प्रयोग की जा सकती है। यदि जीर्णज्वर में पित्तप्रकोप अधिक हो, शुष्क कास भी रहती हो, तो प्रवालपिष्टी मिला लेवें और अनुपान स्वरूप शर्बत बनफ्शा मिलाकर दिन में २-३ बार देवें।

गोदन्ती भस्म यह निर्भय औषधि है। विषमज्वर में उपयोगी है और बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता सबको इसे दे सकते हैं। अनुपान रूप से महासुदर्शन चूर्ण का फाण्ट ४-८ रत्ती सोडाबाईकार्ब मिलाकर पिलाना विशेष हितावह रहता है। क्वचित् रोग निरोधक शक्ति निर्बल होने या विषप्रकोप अधिक होने पर अकेली गोदन्ती भस्म काम नहीं देती। उस समय संजीवनी वटी साथ मिलाकर उक्त सुदर्शन फाण्ट के अनुपान से देना चाहिये।

मलेरिया दिनों तक रहा हो या बार-बार सताता हो। ऐसे रोगियों को गोदन्ती के स्थान पर हरताल गोदन्ती भस्म का प्रयोग आशुफलप्रद

सिद्ध हुआ है। श्वास का दौरा होने पर गोदन्ती से कोई लाभ नहीं पहुँचता। किन्तु मन:शिला मिश्रित गोदन्ती और श्वास दमन चूर्ण का प्रयोग करने के एक घण्टे के भीतर श्वास कष्ट का दमन हो जाता है।

वक्तव्य–भस्म बनाने के लिये गोदन्ती उज्वल, पारदर्शक अच्छी देख कर उपयोग में लेनी चाहिये। मैले रंगवाली कच्ची गोदन्ती हानिकारक है। अच्छी गोदन्ती की बनाई हुई भस्म बालक, सगर्भा स्त्री, प्रसूता, वृद्धा आदि सबके लिये लाभदायक है। इन सब में बालकों के लिये यह उत्तम औषधि है। स्तन्यदोष से जिन बच्चों का शरीर कृश हो गया हो, उनको यह भस्म थोड़े दिनों तक देते रहने से शरीर पुष्ट और तेजस्वी बन जाता है।

गोदन्ती यह गन्धक का योगिक होने पर भी हरताल के समान लाभ पहुँचाती है। इसलिये गोदन्ती को गोदन्ती हरताल भी कहते हैं। गोदन्ती का उपयोग अधिक मात्रा में बार-बार करते रहने से यकृत को हानि पहुँचती है। इसलिये मात्रा कम देनी चाहिये।

रत्नों के सम्बन्ध में विशेष परिचय

रत्नों का उपयोग आयुर्वेद ने औषधरूप से किया है और ज्योतिष शास्त्र में धारण करने की विधि पर प्रकाश डाला है। कई नास्तिकजन इस बात को स्वीकार नहीं करते। किन्तु विश्व के विभिन्न देशों के इतिहास में रत्नों का अनुचित व्यवहार करने पर हानि होने के कई उदाहरण अङ्कित हैं।

सूचना–ज्योतिष शास्त्र ने रत्नों की धारण करने के नियम बनाये हैं। उस नियम को समझकर के रत्नों को धारण किया जाता है। बिना समझे रत्न का धारण करने पर हानि पहुँच जाती है। जैसे कि जन्म पत्रिका में रवि ऊँचे स्थान में हो और माणिक्य को धारण किया जायेगा, तो परिणाम में हानि पहुँचेगी। इस तरह अन्य रत्नों के लिए भी समझ लेना चाहिए।

नव्य रत्न चिकित्सकों के मतानुसार रत्नों का वीर्य और गुणधर्म संक्षेप में निम्नानुसार है।

जीवनीय व शक्तिप्रद	**उष्ण**	**शीतल**
हीरा	माणिक्य	मोती
श्वेत पुखराज	प्रवाल	पन्ना
नीलम		

कुछ विद्वानों ने रत्नों का चिकित्सा में प्रयोग होमियोपैथी की विधि से किया है। इन परीक्षकों में डॉ. विनयतोष भट्टाचार्य M.A.Ph.D. राजरत्न ज्ञानज्योति, ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट (बरोड़ा) के भूतपूर्व अध्यक्ष विशेष अनुभवी थे। उन्होंने जीवन का अधिक काल इन औषधियों से निर्मित सत्वों द्वारा सेवा कार्य में व्यतीत किया है। उनके मतानुसार अन्य औषधियों की अपेक्षा रत्नों के सत्वार्क का प्रयोग विशेष सफलताप्रद है। यहाँ पर उनके अनुभव अनुसार गुणदर्शन कराया जा रहा है–

रत्न चिकित्सा (Gem Therapy) के लेखक के मतानुसार–

ज्योतिष शास्त्र में विभिन्न ग्रहों के स्वाद पृथक्-पृथक् दर्शाये हैं, ग्रहों का स्वाद ही ग्रहरत्नों का स्वाद माना जाता है। ज्योतिष शास्त्र में माणिक्य कटु, मोती कषाय, प्रवाल तिक्त, श्वेत पुखराज मधुर, हीरा अम्ल, नीलम लवण और पन्ना सर्व स्वादयुक्त माने गये हैं।

आयुर्वेद शास्त्र के मतानुसार–

मधुर, अम्ल और लवण रस वायु शामक हैं।

मधुर, तिक्त और कषाय रस पित्त शामक होते हैं।

कटु, तिक्त और कषाय रस कफ शामक हैं।

आयुर्वेद शास्त्रानुरूप गुण–माणिक्य कटु होने से कफशामक, मोती कषाय रसात्मक होने से पित्त और कफ दोनों को शान्त करता है। प्रवाल तिक्त होने से पित्त और कफ दोनों का शमन करता है। पन्ना में छःहों स्वाद मिश्रित होने से वात, पित्त, कफ तीनों का शामक, श्वेत पुखराज मधुर है, इसलिए वात और पित्त को शान्त करता है। हीरा अम्ल होने से और नीलम लवण रसात्मक होने से वातशामक माने हैं।

रत्नों की किरणों के गुणधर्म–ज्योतिष शास्त्र के अनुसार वातनाड़ियाँ और वातनाड़ी संस्थान (Nervous System) का अधिपति शनैश्चर है। वह वात की क्रिया को अधिकार में रखता है, तथा मज्जा धातु का अधिपति मंगल है वह पित्त और ऋणात्मक शक्तियुक्त है। ज्योतिष शास्त्र के मत में रस और रक्त स्थान में विभेद नहीं माना गया है। उन दोनों के ऊपर चन्द्र का अधिकार है जो धनात्मक शक्तियुक्त और शीतल गुण धर्म युक्त है।

विविध रंग प्रधान रत्न-किरणों का देह के भीतर अवस्थित रक्त, मांस आदि संस्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है। जैसे कि–

१. रस-रक्त संस्थान नारंगी रंग के अधिकार में है।

२. माँस संस्थान पर हरे रंग की किरणों का अधिकार है।

३. मेद संस्थान और सब ग्रन्थियों पर आसमानी रंग प्रधान किरणों का अधिकार है।

रत्न	प्रवर्तित किरण वर्ण	किरण वीर्य	किरण परीक्षण फल	त्रिदोष	त्रिभूत	रोगोपकारक गुण
हीरा	नीला	शीतल	धनात्मक (Positive)	क़फ	जल	कफ-प्रधान ज्वर, प्रवाहिका, संग्रहणी, दृष्टिमांद्यादि नेत्र रोग, वातविकार, पक्षवध, उन्माद, निद्रानाश, हिस्टीरिया, बालकों का धनुर्वात, आक्षेप, वातप्रधान सन्निपात, बधिरता, आशुकारी कास, नाड़ीव्रण, प्रदर, रजोरोध, नासारक्तस्राव, दन्तशूल।
माणिक्य	रक्त	उष्ण	ऋणात्मक (Negative)	पित्त	अग्नि	पाण्डु, निर्बलता, अन्त्रावरण, बालकों कापक्ष वध, श्वेताणुवृद्धि विकार, चित्तक्षोभ (Melancholia) नक्तान्ध्य, शक्तिक्षय, तिल, जतुमणि, न्यच्छ, व्यंग।
पन्ना	हरित्	शीतल	धनात्मक	कफ	जल	श्वास, रक्तदबाव (H.B.P.) विकार, हृदयरोग, विद्रधि, कर्कस्फोट (Cancer) वातनाड़ी-क्रिया-विकृति, वातनाड़ीशूल, सूर्यावर्त, वातप्रकोप, शीर्षशूल, शीतपित्त, अम्लपित्त, चक्कर आना, इन्फ्लुएञ्जा।
नीलम	बैंजनी	समशीतोष्ण (वातहर)	उदासीन (Neutral)	वात	वायु	चर्मरोग, चिरकारी प्रदर, गृध्रसी, अपस्मार, मस्तिष्क कलाप्रदाह, मूत्रयन्त्र की निर्बलता, वातनाड़ी वेदना आमवातज शूल, क्षत, श्वेतकुष्ठ, रक्ताभिसरण ह्रास (L.B.P.) संधिवात (सांधे जकड़ना), प्रवाहिका, मांसपेशियों में खिंचाव, वातज शीर्षशूल, रक्तपित्त, अपतानक, अर्बुद।
मोती	पीताभ	शीतल	धनात्मक	कफ	जल	उष्णता (दाह), चिरकारी श्वास, कीटाणुज्वर, कफप्रधान कास, चिरकारी आमवात, मूत्राशय प्रदाह, पित्ताशयाश्मरी मानसिक संकल्प ह्रास, विसूचिका, युवकों का उन्माद, रक्तस्राव, रक्तपित्त, मासिकधर्म विकृति, राजयक्ष्मा, गुदभ्रंश।
प्रवाल	पीत	उष्ण	ऋणात्मक	पित्त	अग्नि	आमवात, शुष्कार्श, वातार्श, मलावरोध, स्फूर्तिह्रास, बधिरता, मधुमेह, अजीर्ण, आध्मान, महाकुष्ठ, यकृद्विकार, वातनाड़ी-क्रियाह्रास, चर्मरोग; आमाशय विकृति, मज्जाक्षय, ब्यूची, मानसिक शक्तिक्षय।
श्वेत पोखराज और स्फटिकमणि	आसमानी (हल्कानीला)	शामक (विषघ्न)	उदासीन	वात	वायु	स्वरयन्त्रप्रदाह, कण्ठविकार, गलग्रन्थिप्रदाह, (Tonsillitis) गलगण्ड (Goitre), तृषारोग, मोतीझरा, रक्तज्वर, वान्ति, अपचन (विदग्धाजीर्ण), अतिसार, प्रवाहिका, विसूचिका, अर्श, कामला, नेत्राभिष्यन्द, वातनाड़ीविकृति, दन्तशूल, आर्तवशूल, निद्रानाश, मानसक्षोभ, शीतला, सन्यास, कुक्कुरकास।

४. अस्थिसंस्थान पर रक्त वर्ण की किरणों का आधिपत्य है।
५. मज्जा पीतवर्ण की किरणों से तथा वातसंस्थान बैंजनी किरणों से पुष्ट होते हैं।
६. शुक्रसंस्थान नीलवर्ण की किरणों द्वारा सबल बनता है।

इस विवेचन से विभिन्न संस्थानों के रोगों का निवारण करने और उनको संपुष्ट बनाने के लिए किन-किन रत्नों का उपयोग किया जाये तथा प्रबल आपत्ति काल मे कौनसी किरणों की योजना की जाय इसका ज्ञान होता है।

१. बैंजनी वर्ण का ह्रास होने पर वातनाड़ियां पीड़ित होती है।
२. नीलवर्ण की न्यूनता होने से शुक्र विकृत होता है।
३. आसमानी वर्ण की कमी होने से ग्रन्थियां शिथिल हो जाती है।
४. हरे रंग की न्यूनता होने से माँस संस्थान प्रभावित होता है।
५. पीतवर्ण की न्यूनता हो जाने पर मज्जा धातु दूषित होती है।
६. नारंगी रंग कम होने पर रक्त में विकृति आती है।
७. रक्त वर्ण के ह्रास से अस्थिसंस्थान में विकार उत्पन्न हो जाता है।

सूर्य के ताप, विविध भोजन, पेय, विशुद्ध वायु आदि से जीवों को नियमित वर्ण प्राप्त होते है। किन्तु जब नैसर्गिक रोग-निरोधक शक्ति (Natural immunity) निर्बल हो जाय या कीटाणु या विष का देह में प्रवेश हो जाय, तब जीवों की उन वर्णों की किरणों की ग्रहण शक्ति शिथिल बन जाती है। ऐसी परिस्थिति में रत्न अथवा अन्य औषधि द्रव्य या रोगशामक विशुद्ध वायुमण्डल और आहार-विहार द्वारा रोग निवारण और स्वास्थ्य संरक्षण कर लेना चाहिए।

आयुर्वेद और यूनानी में रत्नों का उपयोग पिष्टी और भस्म रूप से होता है उससे रत्नों का नाश होता है। ज्योतिष शास्त्र में रत्नों के धारण से रोग निवारण और स्वास्थ्य रक्षा होने को दर्शाया है। उससे रत्न नष्ट नहीं होते, किन्तु लाभ सत्वर नहीं मिलता। इस तरह दोनों प्रकार के प्रयोगों में भेद है।

डॉ. वि. भट्टाचार्य ने होमियोपेथी की विधि अनुसार तीसरे मार्ग का अवलम्बन लिया है। जिसमें रत्न नष्ट नहीं होते एवं लाभ भी शीघ्र मिलता है। यह विधि निम्नानुसार है-

१ ड्राम विशुद्ध सुरासार एल्कोहल (Absolute Alcohol) या विशुद्ध मद्य सार (Rectifed Spirit) को भली प्रकार से साफ की हुई एक बोतल में भरें। उसके भीतर हीरा, माणिक्य, पन्ना, पुखराज, नीलम, मुक्ता प्रवाल या स्फटिक इनमें से कोई भी एक, आधे से १ रत्ती(१/९६ तोला) डालें। मोती डालें तब १ मोती डालें। इस तरह प्रवाल शाखा का १ टुकड़ा डाले। फिर नया डाट लगा शीशी को बन्दकर पेटी के भीतर १ सप्ताह रख देवें। फिर बाहर निकालकर शीशी को कुछ समय तक हिलावें। पश्चात् रत्न को बाहर निकाल लेवें। फिर उसमें होमियोपेथी की विधि से बनी हुई नं. २० की दुग्ध-शर्करा की गोलियाँ डालकर ऊपर नीचे घुमाकर गोलियों को भिगो देवें। कुछ घण्टों के पश्चात् इन गोलियों को स्वच्छ श्वेत कागज पर सुखा देवें उन्हें शीशी में भरकर लेबल लगा देवें।

इस प्रकार से गोलियां वर्ण प्रधान रत्न के अनुरूप गुणधर्म दर्शक बन जाती हैं। रत्न जैसा का वैसा मिल जाता है।

क्वचित् एकाधिक वर्ण का ह्रास होने पर रत्न मिश्रण का प्रयोग किया जाता है। इसलिए नीलम, हीरा, श्वेत पुखराज और पन्ना चारों को मिलाकर सुरासार तैयार किया जाता है। इसी तरह उक्त सातों रत्न मिलाकर सुरासार बना लिया जाता है।

नीलम, हीरा, श्वेत पुखराज और पन्ना प्रधान वर्ण द्रव्य में उन सबका गुण आता है जो जीर्ण मुद्दतीज्वर और विविध प्रकार के नूतन तीव्रज्वर में अपना चमत्कार दर्शाता है। इस तरह सप्त रत्नों के गुणधर्म आकर्षित कराये सुरासार युक्त गोलियां अति जीर्ण और घातक रोगों में व्यवहृत होती हैं। इन सब रत्न मिश्रित सुरासारों से निर्मित गोलियों का उपयोग एक-एक दिन के अन्तर पर किया जाता है।

मात्रा-सामान्यतः, एक समय में ४ गोली हैं। दिन में ३ बार दी जाती हैं। फिर चिकित्सक रोग, रोगी, ऋतु, शक्ति आदि का विचार करके मात्रा और समय निर्णय करें, उसे विशेष अच्छा मानेगे।

यह विवेचन (Gem Therapy)और उसका हिन्दी अनुवाद 'रत्न चिकित्सा' के आधार से लिखा है। विशेष देखना हो, वे मूल ग्रन्थ देखें।

(१७) वज्र (हीरा) भस्म

प्रथम विधि-हीरा (Diamond) यह शुद्ध कोकिल (Carbon) जाति का खनिज है। इसकी कठोरता को १० संख्या से व्यक्त करते हैं। अब तक के ज्ञात द्रव्यों में यह सबसे कठोर द्रव्य है। इसकी भस्म बनाना सहज नहीं है। शास्त्रों में भस्म बनाने के अनेक विधान लिखे

+ हीरे की रज दो प्रकार की आती है। एक औषधोपयोगी, दूसरी रासायनिक कार्योपयोगी। जिस पर (Only for chemical use) लिखा हो। उसका उपयोग

हैं सिद्धि एक या दो योगों से मिलती है।

प्रथम हीरा शोधन–नीचे लिखा विधान शास्त्र परम्परा से अनेक बार का अनुभूत है। हीरे की रज+ (DIamond Dust) को सुनार की सोना पिघलाने की एक मूषा में रख खूब तेज आंच पर लालकर शुद्ध पारद भरे हुए चीनी के कटोरे में बुझावें। मलमल के कपड़े से छानकर हीरक रज प्राप्त करें। इस प्रकार सो बार करने से हीरा शुद्ध होकर भस्म के योग्य बन जाता है। हीरे की रज न मिले तो कण भी इस विधि से भस्म योग्य हो जाते हैं। हीरे का बारीक चूर्ण बेलजियम से आता है। संसार में सबसे अधिक हीरे को व्यवस्थित आकार देने के लिये घिसाई का कार्य बेलजियम में होता है। भारतवर्ष में पन्नास्टेट (बुन्देलखण्ड) और दक्षिण हैदराबाद में भी यह कार्य अल्पमात्रा में होता है।

हीरा भस्म विधान–शुद्ध हीरक को शुद्ध ताल (हरिताल), शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल, सुवर्णमाक्षिक भस्म, समान भाग में मिलाकर सीमाक की खरल में बड़े बेर (राजकोल)और पिप्पली छाल के क्वाथ की ७-७ भावना देवें। प्रत्येक बार सुखाकर गजपुट दें। इस तरह भस्म होने तक १४ या अधिक गजपुट देते रहें।

वक्तव्य–सुवर्णमाक्षिक भस्म केवल एक ही बार मिलावें। शेष द्रव्य अन्य पुटों में बराबर देते रहें।

यह भस्म अत्यन्त उग्र होती है। अतः अति सम्हालपूर्वक उपयोग में लेनी चाहिये। (स्व. वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह जी)

वक्तव्य–हम हीरा के मूल्यवान् कणों की भस्म बनाते हैं। इस कणों का शोधन मृदुता आने तक किया जाता है अन्यथा पुट देने के लिए लोहे या पत्थर की खरल में घोटा जा सकेगा। हीरे को शिला, ताल, हिंगुल आदि के साथ मिला औषध रस डालकर एक जीव करें, फिर टिकिया बना (या बिना टिकियां बनाये) सम्पुट कर अग्नि देवें।

सम्पुट के लिए दृढ़ मुद्रा करें जिससे कि भीतर का पारद और मल्ल बाहर न निकल जाय।

हीरे के साथ ताल, हिंगुल, शिला आदि मारक रूप से जो मिलाये जाते हैं, वे सब प्रभावित हो जाते हैं। जिससे ताल, हिंगुल आदि का उड्डयनशील धर्म दब जाता है।

दूसरी शोधन विधि–शुद्ध किये हुए हीरे के कणों को अभ्रक के पतरे पर रख, अग्नि में तपा-तपाकर मेंढक के मूत्र में लगभग २५ बार बुझाते जायें तथा गदहे या घोड़े के मूत्र मे करीब २०० बार बुझाने से हीरे का रंग बदल जाता है। चमक मिट जाने तक तपा-तपाकर बुझाते रहें। अभ्रक के पतरे सहित हीरे के कणों को मेंढ़क के मूत्र में डुबाने से हीरे के कणों को एक पतरे से दूसरे पतरे पर रखने में आसानी रहती है। इन कणों को चीमटे से उठाना चाहिये। हाथ न लगावें अन्यथा हीरे का जहर अंगुलियो में प्रवेश कर जाता है। फिर वहां पर कुष्ठ के समान सफेद दाग हो जाते हैं। बार-बार अभ्रक का पतरा बदल देना चाहिये।

मूत्र लेने के लिए एक बड़े मेंढक के चारों पैर बांधकर काँसी की थाली में चित रखकर थाली को अंगारों पर टेढी रखें। मेंढक की पीठ को उष्णता लगने पर वह मूत्रकर देता है। बाद में मेंढक को खोल दें। एक ही बड़े मेंढक के मूत्र से हीरा निस्तेज हो जाता है।

द्वितीय विधि (धातुवादोपयोगी भस्म)–उपरोक्त विधि से ४-६ माशे हीरे के कणों को निस्तेज कर सुनार की सोहागा मिली हुई मिट्टी की छोटी कटोरी में नीम का आधा पत्ता रख, उन पर हीरे के कणों को रखें। बाद में नीम का आधा पत्ता ऊपर रखकर दूसरी समान नापवाली कटोरी ढ़ककर मजबूत कपड़मिट्टी कर सूर्य के ताप में सुखा लेवें। फिर एक मिट्टी के घड़े में चारों ओर अनेक छिद्र कर २॥ सेर बबूल के कोयले भरें। उसके बीच में संपुट रखकर अग्नि देने से भस्म तैयार हो जाती है। स्वांग शीतल होने पर संपुट में से सम्हाल कर भस्म निकाल लेवें। इस भस्म को हींग और सैंधानमक मिलाये हुए कुलथी के क्वाथ में खरलकर टिकिया बनावें। पश्चात् सरावसंपुट करके २-३ गोबरी की अग्नि देवें। इस तरह करीब २३ पुट में हीरे की भस्म बन जायेगी। (श्री. पण्डित नन्ने मिश्र)

तीसरी शोधन विधि–हीरे के कण १ तोले को लोहे की कटोरी या कलछी में रखकर गरम करें*। फिर गुलाबजल में बुझावे। पुनः बिना हाथ लगाये निकाल गरम करके बुझावें। इस तरह १०८ बार बुझाने से हीरे के कणों का सरलता से चूर्ण हो सकता है। उसका चूर्ण करने पर चूर्ण काला, चमकीला, चंद्रिकायुक्त-सा होता है। इसे गुलाबजल में खरलकर टिकिया बना संपुट कर २ सेर गोबरी की अग्नि देवें। फिर निकाल उसी तरह खरलकर अग्नि देवें। इस तरह १४ पुट देवें। फिर घीकुंवार के रस के १४ पुट देवें। कमी हो तो घीकुंवार के २१ पुटतक देने पड़ते हैं। इस तरह २८ से ३५ पुट देने पर चन्द्रिका रहित मुलायम और मैले लाल रङ्ग की भस्म तैयार हो जाती है। (र.यो.सा.)

मात्रा–१/१०० से १/२० रत्ती, दुग्ध शर्करा के साथ या अन्य औषधियों के साथ मिलाकर देवें।

हीरे के गुण–आयुष्प्रदं झटिति सद्गुणदं च वृष्यं
दोषत्रयप्रशमनं सकलामयघ्नम्।
सूतेन्द्रबंधवधसतगुणकृत् प्रदीप्तं
मृत्युञ्जयं तदमृतोपममेव वज्रम्॥ (र.र.)

---

* उत्तम जाति के कण होने पर पहले १०० बार मेंढक मूत्र में, फिर १०० बार गर्दभ मूत्र में बुझावें। तत्पश्चात् १०० बार गुलाब जल में बुझावें। अन्यथा हीरा मृदु नहीं होता एवं भस्म भी सत्वर नहीं बनती।

हीरा आयु को बढ़ाता है; तत्काल विभिन्न प्रकार के गुणों को पहुँचाता है, एवं वृष्य, तीनों दोषों का शामक तथा समग्र रोगों का नाशक है। इसके अतिरिक्त पारद को बांधता है, भस्म बनाता है और उसके रसायनादि गुणों को बढ़ाता है। हीरा अग्नि प्रदीपक है। मृत्यु को नष्ट करता है। संक्षेप में हीरा अमृत सदृश उपकारक है।

हीरा भस्म देह के भीतर होने वाले पूयक्षत, अर्बुद, कर्कस्फोट (Cancer) गुल्म आदि पर सफलतासह कार्य करती है।

हीरा भस्म १ रत्ती के साथ सुवर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी और अभ्रक भस्म २-२ माशे मिलाकर ४८ पुड़ी बनालें। प्रतिदिन सुबह १ पुड़ी मलाई-मिश्री के साथ देने से कर्कस्फोट आदि ग्रन्थियां गलकर नष्ट हो जाती है।

रसकामधेनु में रसमार्तण्ड के उद्धरण अनुसार रत्नों के मुख्य गुण संक्षिप्त में निम्न शब्दों में दर्शाये हैं-

वज्रंतु सर्वामयपर्वतेषु वज्रोपमं मौक्तिकमग्निवृद्धिम्। श्रीपद्मरागोऽङ्गिषु पद्मरागमङ्गे तनोत्येव विशेषतस्तु॥
सुशक्रनीलो रसबन्धनेष्टः संसेवितो नेत्र विकार-हारी। गारुत्मतं सर्वविषे प्रशस्त मिष्टं च सर्वेषु रसायनेषु॥
पातालसिद्धिं गगने चरत्वं करोति सूतोऽथ तरक्षुयुक्तः। वैदूर्यरत्नाद् वरशुक्रवृद्धि बलप्रवृद्धि जठरानलस्य॥
सकृत्रिमस्थावरजङ्गमानि श्री पुष्परागश्च विषाणि हन्यात्। गोमेदयोगाद् बलरूपवृद्धिं सूवीर्य वृद्धिं बलविक्रमौ च॥
पुष्टि कान्ति बल वीर्य वर्द्धनं विद्रुमं तु, कफवातपित्तजित्। रक्तरोगहरणं क्षतक्षयाक्ष्यामयघ्नमुदितं कषायकम्॥
सर्वाणि रत्नानि च दीपनानि रसेन्द्रयुक्तान्यमृतोपमानि। यो यस्य वर्णः खलु दृश्यते हि तादृग् विधं तस्य वपुर्विधत्ते॥

वज्र (हीरा) सब रोगरूपी पर्वतों को नष्ट करने में वज्र के समान कार्य करता है।

मुक्ता अग्नि को प्रदीप्त करता है।

पद्मराग (माणिक्य) देह को माणिक्य के रङ्ग के समान तेजस्वी बना देता है।

शक्रनील (नीलम)रस बन्धक है। नेत्र रोगों को दूरकर दृष्टि को तेज बनाता है।

गारुत्मत् (पन्ना) सब प्रकार के विषों को नष्ट करता है एवं सब रोगों में रसायन गुण दर्शाता है। इनके अतिरिक्त पन्ना-जारित पारद पाताल-सिद्धि(पृथ्वी के अन्तर्गत रहे हुए पदार्थों को देखने की शक्ति) और आकाश में गमन करने की शक्ति (समाधि सिद्धि) प्रदान करता है।

वैड्र्य (पुखराज) शुक्रवर्द्धक और अग्नि प्रदीपक है। पुष्पराग कृत्रिम विष सह स्थावर और जंगम विष को भी दूर करता है।

गोमेद कान्तिप्रद, बल और साहस शक्तिप्रद है। विद्रुम (प्रवाल) पुष्टि, कान्ति, बल और वीर्यवृद्धिकर है तथा कफ, वात और पित्त तीनों को जीतने वाला है। इस तरह रक्त-विकार, क्षत-क्षय और नेत्र रोग आदि का नाशक और कषाय (रक्तस्रावस्तम्भक) आदि गुणप्रद है।

सब रत्न अग्निदीपक हैं एवं पारद युक्त (या रत्न जारित पारद) होने पर अमृत तुल्य फलप्रद है।

उपयोग-वज्र भस्म सब प्रकार के वातरोग, पित्तप्रकोप, कफवृद्धि, त्रिदोष शोष, क्षय, भ्रम,भगंदर, प्रमेह, मेद, पाण्डु, उदररोग, नपुंसकता आदि रोगों को दूर करती है। क्षय की दूसरी अवस्था में तो लाभ पहुँचाता ही है, परन्तु तीसरी अवस्था में भी वज्रभस्मवाला रसायन त्वरित लाभ पहुँचाता है। विविध रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करता है; वातवाहिनियों और उनके केन्द्र स्थान को दृढ़ बनाता है और जीवनीय शक्ति को सबल बनाता है। इन कारणों से वज्रभस्म मिश्रित प्रयोग अनेक रोगों में उपकार दर्शाते हैं। संक्षेप में वज्रभस्म शारीरिक और मानसिक निर्बलता को दूर कर शरीर को वज्र समान बलवान और कान्तिवान् बनाती है तथा आयु की वृद्धि करती है।

हीराभस्म उत्तम हृद्य, उत्तेजक और शूलहर होने से हृच्छूल(Angina Pectoris) जिसमें छाती में तीक्ष्ण शूल चलकर मूर्च्छा आ जाती है तथा मिथ्या हृच्छूल (Angina Pectoris Vasomotiria)जो हृदय यन्त्र के बाहर चलता है, दोनों पर तत्काल गुण दर्शाती है। धमनी में यदि रक्तसंग्रह हो गया हो या अवरोध होता हो, तो उसे भी यह दूर करती है एवं वातनाड़ियों को बल देकर रोग को निवृत्त करती है।

(१८) माणिक्य भस्म (कुश्ता याकूत)

प्रथम विधि-शुद्ध माणिक्य (Ruby) को दृढ़ लोह खरल में पीस, सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर पत्थर के पक्के खरल या चीनी मिट्टी के खरल में समभाग गन्धक, मैनसिल और हरताल को मिला, कटहल के रस में १२ घण्टे घोट, टिकिया बाँधकर सूर्य के ताप में सुखावें। फिर सराव संपुटकर २ सेर उपलों की अग्नि दें। इस रीति से १० बार अग्नि देने से उत्तम भस्म बन जाती है। सुनार जिस सराव को सोहागा और मिट्टी मिलाकर बनाते हैं उसका उपयोग करना चाहिये।

वक्तव्य-माणिक्य, पन्ना, नीलम, पुखराज आदि रत्न जिसकी भस्म या पिष्टी बनानी हो, उत्तम जाति के पक्के दाने लेना चाहिए, जो बाजार में खरड़ के नाम से बिकते हैं, वे कच्चे हैं। उनसे रत्नों के यथोचित गुण नहीं मिल सकेंगे। वैद्यराज पं. श्री सुखरामदास टी. ओझा माणिक्यादि रत्नों की भस्म कई बार बनाते थे। वे माणिक्य, पन्ना, पुखराज, नीलम, वैक्रान्त, गौमेदमणि, राजावर्त और वैडूर्य में से जिसकी भस्म बनानी हो, उसे ४० तोले लेकर सुवर्ण गलाने की मूसा के भीतर भरते थे। फिर तीव्राग्नि में रखकर खूब तपाकर गुलाबजल में बुझाते थे। उसे निकाल पुनः मूसा में भर, तीव्राग्नि में रखकर खूब तपाकर गुलाबजल में बुझाते थे। इस तरह गुलाबजल या केवड़े के अर्क में ५० से १०० बार तक बुझाकर गुलाबजल में एक सप्ताह खरलकर छोटी-छोटी टिकिया बना सम्पुटकर १० सेर गोबरी की अग्नि देते। इस तरह ७ पुट देने पर उत्तम

भस्म होती है। यह विधि उत्तम है। इस प्रकार से बनाई हुई भस्म तत्काल अपना प्रभाव दर्शाती है।

विशेष–माणिक्य का रङ्ग लाल होता है। जो माणिक्य लाल रङ्ग का होने पर भी बैंगनी आभावाला हो उसे उत्तम माना है। गुलाबी रङ्गवाले को न्यून माना है। यह रत्न कठोर है। इसकी कठोरता हीरे से कुछ कम है। इस रत्न के टुकड़े गोल, त्रिकोण, चौकोण, अष्टकोण आदि होते हैं। भस्म बनाने के लिये छोटे कणों का उपयोग होता है।

मात्रा–अनुपान और उपयोग–दूसरी विधि के अनुसार।

दूसरी विधि–शुद्ध माणिक्य को तपा-तपाकर १०० बार बुझाकर फिर चूर्ण करके गुलाबजल में १५ दिन तक खरल करने से पिष्टी तैयार होती है। यह पिष्टी भस्म के स्थान पर उपयोग में आती है। अनेक यूनानी हकीम केवड़ा, चन्दन और गुलाब को साथ में मिलाकर अर्क निकालते हैं। फिर माणिक्य की खरड़ को उस में १०-२० समय बुझा, उसी अर्क में खरल करके पिष्टी बना लेते हैं।(रसा. सा.सं.)

मात्रा–आधी के १ रत्ती तक; मलाई के साथ दिन में एक से दो बार अथवा सुवर्ण के वर्क और शहद या खमीरे गांवजवांसे या एलादिमन्थ के साथ।

आचार्यों ने निम्न वचन से माणिक्य आदि रत्नों की पिष्टी को भस्म की अपेक्षा अधिक गुणप्रद माना है।

रत्नानां शोधनं श्रेष्ठं मारणं न गुणप्रदम्।
भस्मना वीर्यहानिः स्यात्तस्मात्तानि विशोधयेत्॥

अर्थात् रत्न मणियों की भस्म बनाने पर वीर्य ह्रास होता है, पिष्टी बनाने में नहीं।

गुणधर्म–माणिक्यं दीपनं वृष्यं कफवातक्षयार्तिनुत्। भूतवेतालपापघ्नं कर्मजव्याधिनाशनम्॥ (र.र.स.)

माणिक्य शीतवीर्य, दीपन, वृष्य, कफघ्न, वातहर, राजयक्ष्मानाशक, भूतोन्माद का नाशक एवं पापकर्म से उत्पन्न व्याधियों का दूर करता है एवं सूर्य ग्रहण की पीड़ा को शान्त करता है।

उपयोग–माणिक्य वातनाड़ी पौष्टिक होने से भूतोन्माद, वातविकार, स्मृतिह्रास, निद्रानाश और मस्तिष्क की उष्णता को दूर करने में सहायता पहुँचाता है। यह पिष्टी राजयक्ष्मा और अन्य कीटाणु प्रधान घातक रोगों के कीटाणुओं का नाश करके शक्ति प्रदान करती है। संक्षेप में यह वात, पित्त, कफ तीनों दोषों की विकृति को दूर कर रसादि सब धातुओं को सबल बनाती है।

मधुमेह जनित निर्बलता पर मुक्तपिष्टी और गुड़मार के अर्क के साथ माणिक्य पिष्टी देते रहने से निर्बलता दूर होती है; मस्तिष्क और हृदय सबल बनते हैं तथा रक्त में से विष कम होता है।

जो माणिक्य भस्म उत्तम जाति के मूल्यवान् कठोर कणों से बनाई जाती है, उसी में उपरोक्त गुण पाये जाते हैं। खरड़ से बनी भस्म से बहुत कम लाभ मिलता है।

(१९) गोमेदमणि भस्म।

प्रथम विधि–मैनसिल, हरताल और गन्धक को समभाग लें और सबके बराबर शुद्ध गोमेदमणि (Onyx) का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर कटहल के रस में १२ घण्टे खरलकर २ सेर आरण्य कण्डों की आंच देवें। इस रीति से ८ पुट देने से भस्म बन जाती है (रसेन्द्र चिन्तामणि) (र.र.स.)

मात्रा–१ से २ रत्ती मलाई, एलादि मन्थ या शहद के साथ देवें।

गुणधर्म–गोमेद कफपित्तघ्नं क्षयपाण्डुक्षयङ्करम्।
दीपनं पाचनं रुच्यं त्वच्यं बुद्धिप्रबोधनम्॥ (र.र.स.)

गोमेदमणि कफपित्तघ्न, क्षय और पाण्डु रोग का नाशक, दीपन, पाचन, रुचिकर, त्वचा पौष्टिक, मुखमण्डल पर तेजी लाने वाला और बुद्धिवर्द्धक है। यह बल्य, वीर्यवर्द्धक, आयुवर्द्धक और राहुग्रह की पीड़ा का शामक है।

उपयोग–गोमेदमणि शीतवीर्य, मस्तिष्क बलवर्द्धक और हृदय पौष्टिक है। अपस्मार, चित्तविभ्रम (मानसिक उदासीनता), उन्माद, पक्षाघात, अर्दित और निद्रानाश में अपना प्रभाव विशेष रूप से दर्शाती है। हृदय की निर्बलता और धड़कन को दूर करती है। मस्तिष्क में उग्रता बढ़ने पर यह कस्तूरी, केशर और शहद के साथ दी जाती है।

दूसरी विधि–माणिक्य में कही गई रीति से चन्दन, गुलाब के फूल और केवड़े को मिला अर्क निकाल, उसमें घोटकर पिष्टी बना लेवें।

मात्रा और उपयोग–पहिली विधि के अनुसार। भस्म की अपेक्षा पिष्टी विशेष सौम्य होती है।

(२०) तार्क्ष्य (पन्ना) भस्म (कुश्ता जमुर्रद)

प्रथम विधि–मैनफल के रस में अलसी और सोंठ को पीसकर कल्क बनावें। इस कल्क के बीच में शुद्ध पन्ना को रख, संपुट कर २ सेर गोबरी में फूंक दें। इसी रीति से २० पुट देने से उत्तम प्रकार की भस्म बनती है। पन्ना बिखर जाय तब मैनफल के रस में टिकिया बाँध,

संपुट करके गजपुट देना चाहिये। (रसा.सा.सं.)

दूसरी विधि–शुद्ध पन्ना के बारीक चूर्ण में समभाग मैनसिल, हरताल और गन्धक मिला कटहल के रस में खरलकर, टिकिया बांध, सूर्य के ताप में सुखाकर २ सेर आरण्य कण्डों की अग्नि दें। इस रीति से ८ पुट देने से उत्तम प्रकार की भस्म बनती है। (र.र.स.)

यूनानी हकीम पन्ना को घीकुंवार के रस में खरलकर टिकिया बांध, १० सेर आरण्य कण्डों में केवल एक ही समय फूंककर भस्म को उपयोग में लेते हैं।

तीसरी विधि–माणिक्य पिष्टी के समान पिष्टी बना लेवें।

मात्रा–आधा से १ रत्ती, शहद और पीपल के साथ देवें।

ज्वरछर्चिदं विष-श्वास-सन्निपाताग्निमांद्यनुत्।
दुर्नाम-पाण्डु शोफघ्नं ताक्ष्र्यभोजोविवर्द्धनम्॥ (र.र.सा.)

उपयोग–यह भस्म ओजवर्द्धक है। ज्वर, सन्निपात, वमन, तृषा, विषविकार, अम्लपित्त, श्वास, कास, पाण्डु, मलावरोध अर्श और शोथ आदि को दूर करती है तथा अग्निप्रदीप्त करके ओज को बढ़ाती है, यह शीतल गुणवाली है। इसलिए उष्ण प्रकृति वाले के लिये अति हितकर है, आमाशय और हृदय की निर्बलता को दूर करती है, क्षय, बहुमूत्र और मधुमेह में लाभदायक है, आयु और स्मरणशक्ति की वृद्धि करती है, भूतबाधा और बुधग्रहकी पीड़ा को शांत करती है। इस भस्म को सर्प विष की उत्तम औषधि माना है।

(२१) वैडूर्य भस्म

विधि–वैडूर्य (लसुनिया) की माणिक्य में लिखी विधि अनुसार भस्म अथवा पिष्टी बना लेवें।

यह रत्न अन्य रत्नों की अपेक्षा न्यून महत्व वाला है। यह रत्न हरे-पीले, सफेद, सोना सदृश, काले-नीले, आदि अनेक रंग के मिलते हैं। इस रत्न को वस्त्र आदि पर घिसने से विद्युत् उत्पन्न होती है।

मात्रा–आधी से १ रत्ती, घृत-मिश्री या रोगानुसार अनुपान के साथ।

वैर्दूयं रक्त पित्तघ्नं प्रज्ञायुर्बलवर्द्धनम्।
पित्तप्रधानरोगघ्नं दीपनं मलमोचनम्॥

उपयोग–यह भस्म पित्त विकार और रक्तपित्त में गिरने वाले रक्त को शांत कर अग्नि को प्रदीप्त करती है और आयु को बढ़ाती है। क्षय और संग्रहणी में अति लाभदायक है। केतुग्रह की पीड़ा को दूर करती है।

(२२) पुष्पराग (पुखराज) भस्म

विधि–शुद्ध पुखराज के सूक्ष्म चूर्ण में समभाग गन्धक, हरताल और मैनसिल को मिलाकर पक्के कटहल के रस में १२ घण्टे खरलकर, टिकिया बाँध सूर्य के ताप में सुखा संपुटकर ५ सेर गोबरी की अग्नि देवें। इस रीति से ८ पुट देने से भस्म हो जाती है अथवा माणिक्य में लिखी रीति से पिष्टी बना लेवें। (र.र.स.)

मात्रा–आध से १ रत्ती, शहद या रोगानुसार अनुपान के साथ।

गुणधर्म–पुष्परागं विषच्छर्दि-कफ-वाताग्निमान्द्यनुत्।
दाहकुष्ठास्रशमनं दीपनं पाचनं लघु॥ (र.र.स.)

उपयोग–यह भस्म हरताल और मन:शिला के योग से बनने पर उग्र बनती है। यह भस्म कीटाणु नाशक, पित्तवर्द्धक और बल्य है। पिष्टी बनाने पर सौम्य होती है। पुखराज विषविकार, वमन, वातप्रकोप, कफविकार, दाह, रक्तविकार, अर्श, कुष्ठ और मन्दाग्नि को दूर करता है तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है। क्षय और धातुशोष में अति हितकर है। स्थावर, जंगम विष और कृत्रिम विष जो धातुओं मे लीन हो गया हो, उसे यह दूर करता है। पुखराज से गुरुग्रह की बाधा दूर होती है।

(२३) नीलमणि (नीलम) भस्म

विधि–पुष्पराग में लिखी रीति से भस्म या पिष्टी बना लेवें। यह रत्न माणिक्य की खान में से मिलता है। इससे विविध आकार के स्फटिक निकलते हैं। यह काश्मीर, पटियाला, ब्रह्मदेश, लङ्का, (सीलोन) और श्याम देश में मिलता है। इसकी कठोरता हीरे से कम और माणिक्य के करीब समान होती है।

मात्रा–१/२ से १ रत्ती, दिन में २ बार, शहद और पीपल के साथ अथवा मक्खन मिश्री के साथ।

गुणधर्म–श्वास-कासहरं वृष्यं त्रिदोषघ्नं सुदीपनम्।
विषमज्वर दुर्नामपापघ्नं नीलमीरितम्॥

उपयोग–यह भस्म वृष्य, आयुवर्द्धक, बल्य, पाचक और त्रिदोषघ्न है। उन्माद, वातरोग, श्वास, कास, त्रिदोष, विषमज्वर और अर्श आदि रोगों को दूर करती है, अग्नि प्रदीप्त करती है और सर्व धातुओं को पुष्ट बनाती है। नीलम धारण या सेवन से शनिग्रह की बाधा दूर होकर आयु और कांति बढ़ती है।

(२४) राजावर्त भस्म

प्रथम विधि–शुद्ध राजावर्त को इमामदस्ते में कूट, समभाग गन्धक मिला बिजौरे के रस में १२ घण्टे खरलकर, टिकिया बनाकर सूर्य के ताप में सुखायें। फिर संपुटकर गजपुट में फूकें। इस रीति से ७ पुट देने से उत्तम मुलायम मैले लाल रंग की भस्म बन जाती है। (र.र.स.)

मात्रा–१ से २ रत्ती। दिन में २ से ३ बार, मलाई-मिश्री, मक्खन-मिश्री अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देनी चाहिये।

गुणधर्म–प्रमेह क्षय-दुर्नाम-पाण्डु श्लेष्मानिलापहः। दीपनः पाचनो वृष्यो राजावर्तो रसायनः॥ (र.र.स.)

उपयोग–राजावर्त शीतल, गुरु, दीपन, वृष्य और रसायन है। इस हेतु से यह भस्म पित्तप्रकोप, अतिसार, अर्श, क्षय, पाण्डु, कफदोष, वातविकार और पित्त-प्रधान प्रमेह आदि रोगों को दूर करती है और पाचनशक्ति बढ़ाती है।

दूसरी विधि–शुद्ध राजावर्त को कूट, सूक्ष्म चूर्णकर सेव के स्वरस के साथ १४ दिन तक खरल करें। फिर खरल में सेव का स्वरस पिष्टी के ऊपर एक अंगुल रहे उतना भर देवें और सम्हाल कर ३-३ घण्टे तक ३ दिन घोटते रहें। बाद में स्वच्छ स्वरस ऊपर-ऊपर से निकल सके, उतना निकाल लेवें। फिर खरल करके पिष्टी बना लेवें। (पं. नन्ने मिश्र)

मात्रा–१ से २ रत्ती तक, दिन में २-३ बार, शहद, खमीरा गावजवां, गुलकन्द अथवा आंवलों के मुरब्बे के साथ देवें।

उपयोग–यह पिष्टी क्षयरोग में कफ, दाह और पित्तवृद्धि होकर होने वाले अतिसार; अर्श, पाण्डु, पित्तप्रमेह और शारीरिक निर्बलता को दूर कर शरीर को बलवान् बनाती है, तथा मदात्यय रोग में निद्रा न आना, अरुचि, नेत्रलाली, दाह, बेचैनी आदि लक्षणों को शमन करती है। उन्माद, चित्त-विभ्रम, चक्कर आना आदि को भी दूर करती हैं।

(२५) वैक्रान्त भस्म।

विधि–शुद्ध वैक्रान्त को सावधानी से कूट या खरलकर बारीक चूर्ण करें, फिर समभाग गन्धक मिला, खट्टे नींबू के रस में राजावर्त्त के समान खरलकर गजपुट दें। इस रीति से ८ पुट देने से मुलायम, मैले लाल रंग की भस्म तैयार होती है। मुलायम न हो तो दो पुट अधिक देने चाहिये। (आ. प्र.)

मात्रा–१/८ से १/२ रत्ती तक, रोगानुसार अनुपान के साथ।

गुणधर्म–वैक्रान्त (तोरमल्ली) के गुणवर्णन में आचार्यों ने लिखा है कि:-

भस्मत्वं समुपागतो विकृतको हेम्ना मृतेनान्वितः,
पादांशेन कणाऽऽज्यवेल्लसहितो गुञ्जामितः सेवितः॥
यक्ष्माणं जरणञ्च पाण्डुगुजदं श्वासञ्च कासामयं,
दुष्टाञ्च ग्रहणीमुरःक्षतमुखान् रोगाञ्जयेद्देहकृत्॥ (र.र.स.)

वैक्रान्त भस्म के साथ सुवर्ण भस्म चतुर्थांश मिलावें। फिर आध-आध रत्ती को पीपल और वायविडङ्ग के चूर्ण के साथ मिला, थोड़े घी के साथ सेवन करें।

यह वैक्रान्त यक्ष्मा, वृद्धावस्था की निर्बलता, पाण्डु, अर्श, श्वास, कास, दुष्ट ग्रहणी, उरःक्षत और मुखरोग आदि को दूर करता है एवं देह को सबल बनाता है।

उपयोग–वैक्रान्त को उत्तम गुण के हेतु से हीरे का उपरत्न माना जाता है। इसकी भस्म त्रिदोषघ्न, षड्रस युक्त और रसायन गुणवाली है। सब धातुओं की निर्बलता, उदररोग, पाण्डु, ज्वर, श्वास, कास, धातुविकार, क्षय, प्रमेह, वात, पित्त और कफ प्रकोप को दूर कर आयु की वृद्धि करती है। हीरा भस्म के अभाव में वैकान्त भस्म ली जाती है।

(२६) मुक्ता भस्म

प्रथम विधि–२ तोले शुद्ध मोती को सीमाक की खरल में घोटकर सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर पत्थर के पक्के खरल या चीनी मिट्टी के खरल में १२ घण्टे घीकुंवार के रस में घोट टिकिया बनाकर धूप में सुखावें। पश्चात् सराव संपुटकर २ सेर गोबरी की आंच देवें। दूसरी बार गाय के दूध में खरलकर, टिकिया बाँध, सराव सम्पुट करके २ सेर आरण्यकण्डों की अग्नि देने से श्वेत मुलायम भस्म तैयार होती है।

मात्रा–आध से १ रत्ती तक, दिन में २ बार, दूध-मिश्री, मलाई, मक्खन, गुलकन्द, आँवलों का मुरब्बा, च्यवनप्राशावलेह या अन्य रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुणधर्म–मुक्ताफलं लघु हिमं मधुरं च कान्ति-
दुष्ट्याग्निपुष्टकरणं विषहारि भेदि।
वीर्यप्रदं जलनिधेर्जनिता (र.र.स.)

उपयोग–मुक्ताभस्म कफ, पित्त, क्षय, कास, श्वास, अग्निमांद्य, दाह, उन्माद, वातरोग, नपुंसकता आदि रोगों को दूरकर शरीर को पुष्ट बनाती है और आयु की वृद्धि करती है।

अग्निपुटी मुक्ता भस्म की अपेक्षा मोतीपिष्टी बनाना विशेष हितकर है। अग्नि पुटी भस्म का उपयोग शंख, वराटिका, शुक्ति की अपेक्षा तो अधिक लाभप्रद होता है, परन्तु अत्यधिक अन्तर नहीं है। अतः गुलाबजल में खरल कर मुक्ता पिष्टी तैयार करने की पद्धति अच्छी है। पिष्टी में सच्चे मुक्ता के गुण दीखते हैं।

दूसरी विधि–मोती को पहले सीमाक की खरल में सूक्ष्म चूर्ण कर सीमाक की या चीनी मिट्टी की खरल में गुलाबजल के साथ २१ दिन तक खरल करने से पिष्टी तैयार हो जाती है।

मात्रा–आधी से १ रत्ती। दूध, गुलकन्द, चन्दन का शर्बत, गुलाब का शर्बत या सितोपलादि चूर्ण, चाँदी के वर्क और शहद के साथ।

उपयोग–यह पिष्टी नेत्ररोग, धातु क्षीणता, क्षय, उरःक्षत, हृदय की निर्बलता, खाँसी, जीर्णज्वर, हिक्का, भ्रम, नाक में से रक्त गिरना, मस्तिष्क की निर्बलता, नेत्रदाह, शिरदर्द, पित्तवृद्धि, दाह, प्रमेह और मूत्रकृच्छ, आदि दोषों को दूर करती है। मोती के सेवन से पित्त की तीव्रता और अम्लता कम होती है तथा नेत्र ज्योति बढ़ती है। यह पिष्टी शीतवीर्य और मूत्रल है। मूत्रमार्ग और सर्वाङ्ग का दाह और पित्त वृद्धि का शमन करती है। निद्रानाश के समय किसी भी रोग में मुक्ता पिष्टी से निद्रा लाने में सहायता भी मिलती है।

अत्यन्त त्रास, अत्यन्त क्रोध, अति जागरण, अति अभ्यास, अति मानसिक श्रम, अति उष्ण पदार्थ सेवन, सूर्य के ताप का सेवन इन कारणों से मस्तिष्क को त्रास होता है। यह शिथिलता और मामूली कारण से क्रोध करना, विचारहीनता, ऊँचा शब्द, कठोर स्पर्श, तीव्र बास, थोड़ा बेस्वादु भोजन, विचित्र या भयानक रूप, तेज आवाज, स्पर्श आदि विषयों का असहनत्व, थोड़े विचार में ही मस्तिष्क फिर जाना, सर्वाङ्ग और मस्तिष्क में दाह, निद्रानाश इत्यादि अधिक बढ़े हुए विकारों पर मुक्तापिष्टी का उपयोग बहुत अच्छा होता है।

मानसिक आघात पहुँचने या शराब, गाँजा, धतूरा आदि तीक्ष्णवीर्य, उष्ण और विकाशी पदार्थों के अति सेवन से मस्तिष्क की विकृति होकर उन्माद का विकार विशेषतः पित्तज उन्माद होने से मुक्तापिष्टी का बहुत अच्छा उपयोग होता है। इस विकार में मुक्तापिष्टी और सुवर्णमाक्षिक भस्म अथवा मोती और प्रवाल पिष्टी का मिश्रण कुष्माण्ड पाक, ब्राह्मीलेह अथवा घृत के साथ देना चाहिये। ऐसे ही भूतोन्माद में भी अति त्रास देने वाले, क्रोधी और लड़ाकू रोगियों के लिये भी मुक्ता उत्तम औषध है।

मुक्ता के उत्तम शीतवीर्य धर्म का गर्मी के दिनों में होने वाले दाह पर अच्छा उपयोग होता है। कितने ही श्रीमन्त लोग गर्मी के दिनों में बहुत व्याकुल हो जाते हैं। अर्थात शरीर की बाह्य उष्णता के साथ समधर्म होने की पात्रता कम होकर समस्त शरीर विशेषतः संज्ञावाहिनियों की बाह्य शिरायें (अन्तमार्ग) बिल्कुल मुदु हो जाती हैं। इस स्थिति में दाह शामक अन्य औषधियों की अपेक्षा मुक्ता का उत्तम उपयोग होता है। कारण यह पिष्टी वातवाहिनियों के लिये भी शामक गुण दर्शाती है।

गर्मी के दिनों में तेज धूप, अग्नि के पास ज्यादा समय काम करने, धूप में ज्यादा समय फिरने, अधिक जागरण करने या अपथ्य आहार से, नाक, मुँह, गुदा, मूत्र या अन्य मार्ग से रक्त गिरने लगता है। साथ-साथ हाथ पैर और सर्वाङ्ग में दाह, व्याकुलता आदि लक्षण होते हैं, तब रक्तस्राव बन्दकर मस्तिष्क को शान्ति देने के लिये इस पिष्टी का उत्तम उपयोग होता है।

उपदंश या सुजाक होने के पश्चात् पित्तप्रकोप होकर मूत्रमार्ग का दाह होने या अन्य कारणों से पित्त बढ़कर मूत्र का दाह होने अथवा मूत्र की तीव्रता, तीक्ष्णता आदि बढ़ने के हेतु से मूत्रमार्ग में दाह होने पर मुक्ता का सेवन अति हितकारक है।

रक्त ज्यादा जाने से उत्पन्न अन्तर्दाह अथवा अन्य कारणों से उत्पन्न अन्तर्दाह में मुक्ता लाभदायक है। परन्तु स्त्रियों के योनिस्राव में अथवा इसके पश्चात् उत्पन्न अन्तर्दाह में मोती की अपेक्षा वंगभस्म का विशेष उपयोग होता है। प्रतमक श्वास रोग में अन्तर्दाह होता हो, तो मोती पिष्टी का उपयोग हितकर है।

बार-बार नेत्र दुखने की आदत, उसमें भी नेत्र खूब लाल होना, नेत्रों में से गरम-गरम भाप निकलना और गरम-गरम अश्रु गिरते रहना इत्यादि लक्षण होने पर मोती का बहुत अच्छा उपयोग होता है।

पित्तज और कफ-पित्तज कास-विकार में यदि दाह आदि लक्षण हों, तो मुक्तापिष्टी देनी चाहिए।

क्षय रोग में दाह, व्याकुलता, अधिक ज्वर, अधिक तृषा आदि लक्षण हों, तो मोती पिष्टी देनी चाहिये। क्षय की बिल्कुल प्रथमावस्था में ही जिस तरह प्रवाल पिष्टी का उपयोग होता है, उस तरह मोती का उपयोग दाह विशिष्ट अथवा पित्त प्रधान लक्षण होने पर किया जाता है।

मोती शीतवीर्य (शामक) और हृदय पौष्टिक है। अतः जब हृदय अतिशय निर्बल हो जाने से हृदयेन्द्रिय का वेपन होता रहता है। तब मुक्ता का उपयोग बहुधा नहीं होता है या सम्हालपूर्वक कम मात्रा में होता है।

श्वास के कितने ही मेदों वृद्धि युक्त रोगियों को मौक्तिक पिष्टी ज्यादा लाभ पहुँचाती है। घबराहट, उदर में आग, सारे शरीर में दाह इसमें

भी हाथ पैर में अधिक जलन, भयंकर शोष, तृषावमन आदि लक्षण हों और पंखे से वायु करने से अच्छा मालूम होता तो अन्य औषधियों की अपेक्षा इससे श्वास रोग का दमन त्वरित होता है।

पित्तज अम्लपित्त के कारण कण्ठ में दाह, मिर्च लगने के समान गले में दाह होना, गरम, खट्टी और कड़वी वमन, वमन के साथ नेत्रों में जलन हो जाना और भयंकर त्रास होना, मुँह में छाले हो जाना आदि विकृति में मुक्तापिष्टी का उत्तम उपयोग होता है। यदि अम्लपित्त में मन्दाग्नि और दाह हो तो इसका अवश्य ही उपयोग करना चाहिये।

दाहयुक्त अतिसार में पीले रंग के गरम जल जैसे बड़े-बड़े दस्त होना, इस हेतु से उदर, लघुअन्त्र और गुदामार्ग में दाह होता हो तो मुक्ता के उपयोग से पित्त की विषमता दूर होकर साम्यावस्था प्रस्थापित होती है और अतिसार बन्द हो जाता है।

अतिसार के समान रक्तार्श में जलन, वेदना, गरम-गरम रक्त गिरना, पश्चात् भयंकर जलन होना आदि लक्षण होते हैं। क्वचित् इस जलन के कारण से रोगी मूर्छित भी हो जाता है। ऐसे समय पर मोती का बहुत अच्छा उपयोग होता है।

मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात में मूत्र के साथ रक्त जाता हो और जलन होती हो तो मोतीपिष्टी का बहुत अच्छा उपयोग होता है। अनुपान में कुकरोंधे का रस विशेष अनुकूल रहता है।

अत्यार्त्तव या योनिमार्ग में रक्तपित्त रोग के कारण रक्त गिरना, दाह, खाज और भयंकर त्रास होना आदि विकारों में मोती पिष्टी को धारोष्ण दूध या गुलकन्द के साथ देनी चाहिये और योनि में शतधौत घृत का पिचु रखना चाहिए।

यदि योनि मार्ग में अन्य समय में दाह, पुरुष समागम के समय भयंकर वेदना और जलन, क्वचित दाह के कारण से स्त्री के साथ समागम करना ही अशक्य हो जाना इत्यादि लक्षण हों तो भी मोती का उत्तम उपयोग होने के अनेक उदाहरण मिले हैं।

अनुलोम क्षय (रसक्षय संग्रहणी) में रसादि धातु से आरम्भ होकर उत्तरोत्तर रक्त आदि सब धातुएँ क्षीण हो जाती हैं। इस कारण से शरीर कृश और अशक्त हो जाता है, साथ-साथ अतिसार बड़े-बड़े गरम जल जैसे दस्त बार-बार होते हैं। मुँह में छाले और सारे शरीर में दाह होता है। ऐसे लक्षण होने पर मुक्तापिष्टी का उत्तम उपयोग होता है। इस रस क्षय में मुक्ता के सेवन से दाह कम होता है। साथ-साथ रस आदि सब धातुएं पुष्ट होकर धातु-परिपोषण क्रम उत्तम प्रकार से सुधर जाता है; शरीर पुष्ट बनता है; शक्ति आती है और शरीर का वर्ण उत्तम बनता है।

मुक्ता रसायन शास्त्र की स्थूल दृष्टि से चूने का कल्प है। परन्तु जीवन रसायन की दृष्टि से चूना, मोती, प्रवाल, शंख, कौड़ी, सीप ये सब भिन्न-भिन्न गुण करने वाली स्वतन्त्र औषधियां हैं।

मुक्ता पित्तदोष (विशेषत: उष्ण, तीक्ष्ण और अम्ल गुण की वृद्धि में), रस, रक्त, मांस, अस्थि ये दूष्य, त्वचा, हृदय, क्लोम (प्यास के लिये स्थान), यकृत, प्लीहा, अन्त:स्रावक ग्रन्थियाँ और अन्य ग्रन्थियाँ इन सब पर लाभ पहुँचाती हैं।

(औ.गु.ध.शा.)

(२७) प्रवाल भस्म

प्रथम विधि–१६ तोले प्रवाल शाखा लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर ४ तोले कज्जली मिला घीकुंवार के रस में १२ घण्टे घुटाई करके छोटी-छोटी टिकिया बनावें। फिर धूप में सुखा संपुट में बन्द कर गजपुट में फूंक देने से गुलाबी झांई वाली सफेद भस्म बन जाती है। (चि.च.)

मात्रा–१ से २ रत्ती। दिन में दो समय, सितोपलादि चूर्ण और शहद, गिलोय का सत्व और शहद, गुलकन्द, मलाई-मिश्री, मक्खन-मिश्री या अन्य रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

१. **शुष्क कास में**–शक्कर के साथ।
२. **कफज कास में**–कफ को बाहर निकालने के लिये शक्कर के साथ, कफ सुखाने के लिये शहद के साथ।
३. **जीर्ण ज्वर पर**–सितोपलादि चूर्ण और शहद के साथ।
४. **जीर्ण ज्वर, कास, श्वास, हिक्का और उदरवात पर**–हरड़ और शहद के साथ।
५. **नवीन ज्वर में**–(पित्तज्वर) सुदर्शन चूर्ण के क्वाथ के साथ।
६. **धातुक्षय में**–पके केले के साथ।
७. **कृशता पर**–नागरबेल के पान के साथ।
८. **हारिद्रमेह पर**–चावल के धोवन और मिश्री के साथ।
९. **प्रदर पर**–धारोष्ण गोदुग्ध या आंवले के रस के साथ।
१०. **वातरोग पर**–तुलसी के रस, मिश्री और शहद के साथ।
११. **पित्तज कास में**–अनार के रस और मिश्री के साथ।

१२. **अस्थिभङ्ग में**–शहद के साथ।

१३. **पित्तप्रकोप और भ्रम पर**–प्रवाल पिष्टी, आंवलों का मुरब्बा, घृत और मिश्री सबको मिलाकर देवें।

१४. **उरःक्षत पर**–सितोपलादि चूर्ण, घी और शहद के साथ।

१५. **मूत्रकृच्छ्र पर**–चावल के धोवन के साथ।

१६. **नेत्रजलन और खुजली पर**–घृत और शक्कर के साथ या मिश्री मिले धारोष्ण दुग्ध के साथ।

१७. **मस्तकशूल पर**–बादाम की खीर के साथ।

१८. **पित्तजोद्भव पाण्डु पर**–घी शक्कर के साथ।

१९. **रक्तपित्त पर**–आंवले के मुरब्बे में।

२०. **मस्तिष्क की निर्बलता पर**–बादाम की खीर में।

२१. **धातुक्षीणता में**–मलाई के साथ देवें।

प्रवाल के गुणधर्म–रस कामधेनुकार ने निम्न शब्दों में दर्शाया है।

पुष्टिकान्तिबलवीर्यवर्धनं विद्रुमं तु कफवातपित्तजित्।
रक्तरोगहरणं क्षतक्षयाक्ष्यामयघ्न मुदितं कषायकम्॥

उपयोग–प्रवाल भस्म क्षय, रक्तपित्त, कास, धातुदोष, मूत्रविकार, विषविकार, भूतबाधा, शिरोरोग, नेत्रदाह, रक्तार्श, कामला, यकृद् विकार, यकृद्दोष जनित वमन आदि रोगों को दूर करती है।

मुक्ता, प्रवाल, वराटिका, शुक्ति, शंख ये सब सेन्द्रिय चूने के कल्प हैं। इनमें प्रवाल चूने का कल्प होने पर भी अति सौम्य और शीतवीर्य है। किन्तु अग्निपुटी प्रवाल में प्रवालपिष्टी की अपेक्षा सौम्यत्व गुण कम है और दीपनत्व गुण ज्यादा है।

प्रवाल भस्म या प्रवालपिष्टी नींबू के रस के साथ देने से उत्तम पाचन होता है। अग्निमांद्य या अग्निसाद, अरोचक ये विकार पित्त-दुष्टि और कफ-दुष्टि से भी होते हैं। पित्तदुष्टी से हों तो प्रवाल भस्म, कामदुधारस, या प्रवालपञ्चामृत रस देना चाहिये। कफदुष्टी से हो, तो अग्निकुमार, हिंग्वादि चूर्ण इत्यादि औषधि उपयोगी होती है। विशेषतः मुंह में बेस्वादुपना, मुंह में विलक्षण गन्ध, कण्ठ में विदाह, मुँह में फोड़े आदि लक्षण होने पर प्रवाल भस्म देनी चाहिये। इसके योग से पाचक पित्त का उत्तम और व्यवस्थित स्राव होकर पचनक्रिया की वृद्धि होती है और अग्निमांद्य दूर होता है।

अनेक समय अग्निमांद्य आदि रोगों के परिणाम स्वरूप रसाजीर्ण हो जाता है। उसमें अन्न सामने आया कि, उस पर अरुचि आने लगती है, अनेकों को अन्न की बास भी सहन नहीं होती, अनेक भोजन का नाम लेने पर रोने लगते हैं, ऊबाक सदा के लिये बनी रहती है, उदर जड़ समान हो जाता है, इन पर अग्नि पुटी प्रवाल सत्वर लाभ पहुँचाती है।

प्रवाल भस्म उत्तम दीपन औषधि है। इसके योग से उदर में पाचक रस का उत्तम कार्य होता है। पित्त-दुष्टी से अग्निसाद उत्पन्न होने से प्रवाल भस्म का अच्छा उपयोग होता है। इस भस्म के योग से पित्तधातु (आमाशयिक रस Gastric Juice) की दुष्टि दूर होकर साम्य प्रस्थापित होता है। इस तरह दीपन कार्य भी इस औषधि से होता है। (पित्त प्रकार का विवेचन, औषध गुणधर्म विवेचन पुस्तक में किया है)।

आमाशय अथवा पक्वाशय में शूल, दाह, अपचन आदि हेतु से पतले दस्त होते हैं। ऐसे लक्षण होने पर प्रवाल भस्म का उत्तम उपयोग होता है।

(औ.गु.ध.शा. के आधार से)

ज्वर जीर्ण होने पर निर्बलता अधिक आ जाती है एवं ज्वर धातु में लीन हो जाता है। जब मज्जागत ज्वर बनता है, तब चक्कर आना, मन्द-मन्द ज्वर बना रहना, सांधो-सांधो में दर्द-सा होना, हाथ पैरों की नाड़ियाँ खिंचना, अरुचि, खाने पर वान्ति हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। उस पर प्रवाल भस्म १ रत्ती, गिलोयसत्व २ रत्ती, आँवले, गिलोय और नागरमोथा ४-४ रत्ती शहद के साथ देवें। इस तरह दिन में २ या ३ बार शहद में देने से ज्वर निवृत्त हो जाता है।

दूसरी विधि–२० तोले प्रवाल, २० तोले सूखी मेंहदी के पत्ते, १० तोले मिश्री, तीनों को मिला हांडी में संपुट करके गजपुट दें। दूसरे दिन हांडी को निकालकर प्रवाल को चुन लें। फिर भैंस का दूध मिला, ३ घण्टे तक घुटाई कर, छोटी-छोटी टिकिया बना, धूप से सुखाकर संपुट करें। हाँडी बड़ी लेनी चाहिये, कारण टिकिया गजपुट देने से फूल जाती है। यह भस्म चूना जैसी मुलायम बन जाती है।

(ब्र. स्वा. सदानन्द गिरीजी)

मात्रा और उपयोग–पहली विधि के अनुसार।

तीसरी विधि–प्रवाल का सूक्ष्म चूर्ण कर गुलाबजल से २१ दिन तक १२-१२ घण्टे घुटाई करें। इसे चन्द्रपुटी प्रवाल भस्म या प्रवाल पिष्टी कहते हैं। कितने ही चिकित्सक केवल ७ दिन तक खरल करते हैं, परन्तु जितनी ज्यादा खरल होती है, उतना ही गुण अधिक होता है। पिष्टी अच्छी प्रकार से खरल होने पर वारितर हो जाती है और सत्वर लाभ पहुँचाती है।

सूचना–शुद्ध प्रवाल को पहिले इमामदस्ते में कूटकर एक लोहे के खरल में खरल करें। पश्चात् २१ दिन तक गुलाबजल में चीनी मिट्टी के खरल में घोटना चाहिए। सामान्य पत्थर के खरल में घोटने से खरल घिसकर पत्थर के अणु पिष्टी में मिल जाने से पिष्टी दूषित हो जाती है।

मात्रा और अनुपान–पहली विधि के अनुसार।

उपयोग–प्रवालपिष्टी क्षय, पित्त विकार, रक्तपित्त, कास, श्वास, विष, भूतबाधा, उन्माद, नेत्ररोग इन सबको दूर करती है। प्रवाल मधुर, अम्ल, कफपित्तादि दोषों की नाशक, शुक्र और कांति की वर्द्धक है। यह पिष्टी भस्म की अपेक्षा विशेष पित्तशामक, पित्तविकारघ्न और सौम्य होने से पित्तयुक्त शुष्क कास, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, अम्लपित्त, नेत्रदाह, वमन आदि विकारों में विशेष हितकर है तथा यह मधुर और अम्ल होने पर भी दीपन, पाचन है। प्रवाल मुधर है अर्थात् मिश्री समान मधुर नहीं परन्तु प्रवाल का परिणाम मधुर रस के अनुसार शामक, बृंहण प्रसादन आदि होता है। प्रवाल के शामक, शीतवीर्य और प्रसादन गुण का उपयोग भिन्न-भिन्न रोगों में उत्तम प्रकार से होता है।

ज्वर के आरम्भ में आमावस्था हो तो लंघन कराना चाहिये। लंघन के पश्चात् पाचन औषधि रूप से प्रवाल का बहुत अच्छा उपयोग होता है। ज्वरादि पाचक कषाय के स्थान में प्रवालपिष्टी दे सकते हैं। ज्वर का वेग तीव्र होने पर प्रवाल का अच्छा उपयोग होता है। पित्त प्रधान ज्वर से दाह, तृषा, प्रस्वेद, शीर्षशूल, निद्रानाश, प्रलाप, चक्कर, वमन आदि लक्षण हों तो यह बहुत अच्छा कार्य करती है। ऐसे समय पर इसे गिलोयसत्व के साथ देना चाहिये। अन्य संक्रामक ज्वर या विषम ज्वर में पित्त-प्रधान लक्षण अधिक होने पर (ज्वर रोग तीव्र होने पर) अर्थात् १०३०-१०६० तक होने पर प्रवालपिष्टी का ही उपयोग करना चाहिये। उतना अधिक पित्तज्वर होने पर त्रिभुवन कीर्ति समान तीव्र और स्वेदल औषधि न देना ही अच्छा माना जायेगा। यदि देना हो तो सम्हालपूर्वक दें। और उसके साथ या स्वतन्त्र रूप से प्रवालपिष्टी दें। पित्तप्रधान सन्निपात ज्वर में सन्निपात-दोषघ्न औषधि देने के साथ पित्त दोष कम होने और ज्वरवेग को मर्यादा में लाने के लिये प्रवालपिष्टी की योजना अवश्य करनी चाहिये।

शीतला, छोटी माता रोमांतिका, अन्य संक्रामक ज्वर या कीटाणुजन्य दूषितज्वर या आगन्तुक ज्वर में रोगी को भयंकर दाह, व्याकुलता और तीव्र ज्वर हो तो प्रवाल की योजना करनी चाहिये एवं सेन्द्रिय विष की तीव्रता से उत्पन्न ज्वर में भी प्रवाल दी जाती है। प्रवाल के सेवन से विषप्रकोप और ज्वर, दोनों शांत हो जाते हैं। संक्षेप में जब-जब ज्वर में पित्त की प्रधानता हो तब-तब इसका उत्कृष्ट उपयोग होता है।

क्षय की बिल्कुल प्रथमावस्था से लेकर तीसरी अवस्था तक प्रवाल पिष्टी का उपयोग होता है। क्षय के प्रारम्भ में बहुधा सारे शरीर में नाड़ियाँ खिंचना, शुष्क कास, और मन्द ज्वर आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्था की शंका होने के साथ प्रवालपिष्टी देना आरम्भ कर देने से सब अरिष्ट टल जाते हैं। परन्तु यह अवस्था विशेषत: अनेकों के लक्ष्य में नहीं आती। जब एक समान ज्वर और कास बढ़ने लगते हैं; और रोगी क्षीण होता जाता है; तब इस राजयक्ष्मा का संशय होने लगता है। इस अवस्था में ज्वर ज्यादा, शुष्कता, शुष्क कास, फुफ्फुस दूषित होने के भरपूर लक्षण अर्थात् श्वास, कास, फुफ्फुसों में व्यथा आदि चिन्ह जिन रोगियों में दीखने लगे उनको प्रवालपिष्टी देना लाभदायक है। ऐसे समय पर प्रवाल को श्रृङ्गभस्म और गिलोयसत्व के साथ देना चाहिये। क्षय की तीसरी अवस्था में भी यह मिश्रण देना हितकर है। जब ज्वर अधिक त्रासदायक, भयंकर कास, उर:क्षत होकर उसमें से रक्त गिरना, पीला-हरा और दुर्गन्धयुक्त कफ, सर्वाङ्ग में विशेषत: कपाल पर स्वेद आना, बहुधा प्रात:काल प्रस्वेद आना, बेचैनी और तृषा अधिक, रोगी की मुख-काँति निस्तेज और त्रस्त तथा भयंकर क्षीणता आदि लक्षण हो गये हों तो भी प्रवाल को सुवर्ण भस्म और अमृतासत्व के साथ उपयोग में लेना लाभदायक है। इतना लक्ष्य में रखें कि तीसरी अवस्था में किसी भी औषधि का निश्चित रूप से उपयोग नहीं होता। फिर भी प्रवाल से वेदना में न्यूनता होती है।

चन्द्रपुटी प्रवाल रक्तपित्त में बहुत उपयोगी होने वाली औषधि है। रक्तपित्त विकार पित्तप्रकोप से उत्पन्न होता है। पहले पित्त दोष का विदाह होता है, फिर पित्त के आश्रय रक्त का भी विदाह होता है..... (पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम्)। रक्त का विदाह होने से रक्त दुष्ट होकर उसमें पित्त का उष्णत्व गुण बढ़ जाता है, जिससे रक्तवाहिनियां दुष्ट होकर पतली हो जाती हैं और उनका स्थितिस्थापकत्व गुण न्यून हो जाता है। पश्चात् इनमें से फूटकर रक्त, बाहर आने लगता है। यह रक्त मुँह, नाक, गुदा, योनि या रोम-रोम में से निकलने लगता है। कितनों ही को स्राव चालू ही रहता है और कितनों ही को थोड़े समय रुक-रुककर स्राव होता रहता है। इस रोग में भिन्न-भिन्न प्रकृति में भिन्न-भिन्न दोषों के अनुषंग से पृथक-पृथक लक्षण उत्पन्न होते है। इसमें १ विशेष दोष के अनुषंग के अनुरोध से अन्य औषधि दे सकते हैं। परन्तु इसके मूल में रहा हुआ विदग्ध पित्त, प्रवालपिष्टी के योग मात्र से ही नियमित होता है। इस पिष्टी के योग से पित्त की उष्णता आदि गुण शमन होकर उसमें साम्यावस्था उत्पन्न होती है एवं रक्त का प्रसादन भी हो ही जाता है। इस रोग में प्रवाल को सुवर्णमाक्षिक भस्म और हल्दी के साथ देना चाहिये। हल्दी में स्तम्भक गुण है; इस कारण से रक्तपित्त के बिल्कुल प्रारम्भ में हल्दी को न देना यह अच्छा है। रक्तपित्त संकर अर्थात उपद्रव रूप से रक्तस्राव होता हो, (आंत्रिक सन्निपात आदि रोगों में) तो प्रवाल अच्छा कार्य करती है।

रक्तपित्त में एक प्राकृतिक भेद हिमोफाइलिया (Haemophilia) है। वह यह है कि कितने ही लोगों की प्रकृति ऐसी होती है कि

जरा कहीं लगा, घाव हुआ या गरमी के दिनों में नाक में से रक्तस्राव हुआ हो तो रक्तप्रवाह जल्दी बन्द नहीं होता। रक्त का जो मुख्य धर्म रक्ताशय में से बाहर निकलने के साथ तुरन्त जम जाना, और दृढ़ हो जाना, वह नष्ट हो जाता है, जिससे घावों में से रक्त निकलता ही रहता है। यह विकार या ऐसी प्रकृति स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में ज्यादा दृष्टिगोचर होती है। यदि स्त्रियों की यह प्रकृति हो, तो उनको मासिक धर्म के समय रज:स्राव अधिक होता है, और अधिक दिन तक रहता है। इस हेतु से उनको अति त्रास होता है। ऐसी प्रकृति वाले रोगी और निरोगी मनुष्यों को प्रवाल अति उपयोगी होती है। प्रवाल को सुवर्णमाक्षिक भस्म के साथ दीर्घकाल तक देने से अमृत सदृश लाभ हो जाता है।

रक्तपित्त के तीव्र विकार में प्रवाल बहुत परिमाण में बार-बार देना चाहिये। परन्तु जीर्ण विकार और प्राकृतिक भेद में प्रबाल बहुत कम मात्रा में देने से अच्छा उपयोग होता है। अनुपान भिन्न-भिन्न अनुषंगों में भिन्न-भिन्न देना चाहिये।

अनेक व्यक्तियों को प्रकृति-भेद से बार-बार नाक में से रक्त गिरता रहता है, इनमें बहुतों के तो यह केवल गरमी के दिनों में ही ज्यादा जाता है। बहुत-सी स्त्रियों के मासिकधर्म के समय नाक में से रक्त गिरने लगता है और बहुत-सी स्त्रियों के सगर्भावस्था में रक्त गिरता है। इन सब प्रकार की विकृति में प्रवालपिष्टी अमृत रूप में है। ज्यादा समय तक लेने से यह जीर्ण विकृति दूर हो जाती है।

प्रवाल विशेषत: पित्तजन्य कास में अच्छी लाभदायक है। उदर में विदाह, सूक्ष्म ज्वर, मुंह में शुष्कता और कड़वापन, भयंकर तृषा, व्याकुलता, पीली, खट्टी और गरम वमन, विशेषत: खाँस-खाँसकर ऐसी वमन होना, निस्तेजता, सर्वाङ्ग में विशेषत: हाथ पैरों में भयंकर जलन, कितने ही समय तो जलन यहां तक बढ़ जाती है कि व्याकुल हो जाना, हाथ-पैरों पर मिर्च लगने के समान वेदना होना; सब त्वचा शुष्क हो जाना आदि लक्षण युक्त पैत्तिक कास में प्रवाल-पिष्टी मीठे अनार के रस अथवा मिश्री के साथ देनी चाहिये।

अधिजिह्वा, उपजिह्वा या गलशुण्डिका इन विकारों से कण्ठ में जलन होती है, शुष्क त्रासदायक खांसी आती है, तथा खांसते-खांसते गरम और कड़वी वमन हो जाती है। इन पर प्रवाल का अच्छा उपयोग होता है।

छोटे बच्चों की काली खांसी में प्रवालपिष्टी बहुत उत्तम औषधि है।

विशेषत: खांसी बहुत जोर की हो; खाँसी के कारण नाक, मुँह और कान से रक्त गिरता हो; साथ-साथ बच्चे का मुँह लाल हो जाता है, चेहरा फूला हुआ अथवा सूजा हो; ऐसे लक्षण प्रतीत होने पर इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है। कारण इसके योग से कण्ठ और सप्तपथ (Pharynx) का क्षोभ त्वरित उपशम हो जाता है। काली खांसी पर प्रवालपिष्टी, शृङ्गभस्म, वंश-लोचन, इलायची के दाने और अमृतासत्व का मिश्रण विशेष गुणदायक है।

उर:क्षतजन्य कास में प्रवाल उत्तम लाभदायक है। उर:क्षत में शुष्क कास, विदाह, रक्त गिरना आदि लक्षण होने पर प्रवालपिष्टी अवश्य देनी चाहिये। जिससे क्षतरोपण में भी सहायता मिले। कतिपय समय इसके साथ लाजा अथवा उसका रस देना पड़ता है। तब कितने ही समय प्रवाल मात्र से कार्य हो जाता है।

सगर्भा स्त्रियों को होने वाली कास और उसके साथ वमन, प्रवालपिष्टी के योग से शमन हो जाती है। सगर्भावस्था में स्त्री को अपने शारीरिक घटकों में से बालक के अस्थिपोषणार्थ अस्थि उत्पन्न करने वाला द्रव्य देना पड़ता है। उसका परिणाम स्त्री के रक्त, पचनेन्द्रिय और अस्थि पर होता है, जिससे वह स्त्री निस्तेज हो जाती है। चलने से उसके पैर दुखने लगते हैं। घुटनों पर शोथ आ जाता है। थोड़ा खाया हुआ भी सुख से नहीं पचता। पेट फूल जाता है और वमन होती है। ऐसी अवस्था में या ऐसी जिन की प्रकृति हो उन पर यह बहुत अच्छा कार्य करती है। जिस स्त्री के बालक जन्म से बार-बार रोने वाले, निर्बल, निस्तेज और दुर्बल होते हैं और जिनकी त्वचा में स्थान-स्थान पर सल पड़ते हों, वे थोड़े ही समय में जीवन त्याग देते हैं। ऐसी स्त्रियों को गर्भावस्था के प्रारम्भ से अन्त तक गिलोयसत्व और प्रवालपिष्टी, सितोपलादि चूर्ण के साथ देने से बहुत अच्छा लाभ होता है। माता की ऐसी निर्बल स्थिति में सन्तान के अस्थि, मांस और रक्त के अंश को योग्य परिमाण में पोषण नहीं मिलता। यह विकार प्रवाल के सेवन से दूर होता है। गर्भपाल रस का कार्य इसकी अपेक्षा अलग प्रकार का है।

रसक्षय (अनुलोमक्षय) में प्रवालपिष्टी अति हितावह है। इसके योग से आद्य रस आदि धातु से पचन की वृद्धि होकर सब धातुएँ उत्तम प्रकार से बनती हैं।

पित्ताभिष्यन्द विकार में नेत्रों में लाली, जलन, वेदना, नेत्र फूलने के समान ऊपर आ जाना और रात्रि व दिन में दाह के कारण निद्रा न आना, आदि लक्षण होते हैं। इस पर प्रवालपिष्टी का उत्तम उपयोग होता है। इस रोग में प्रवाल और सुवर्णमाक्षिक भस्म को मिलाकर मिश्री और घृत या दुग्ध के साथ देना चाहिये।

नेत्र, हाथ पैर, मूत्र इन सब में दाह (पूयशुक्र या पूयप्रमेह का दाह छोड़ कर) मूत्र का वर्ण लाल अथवा बहुत पीला, सर्वाङ्ग और त्वचा में भी दाह हो, विशेषत: गर्मी के दिनों में उष्ण पदार्थों के सेवन से या जागरण से इन विकारों की उत्पत्ति हुई हो तो प्रवालपिष्टी का उपयोग करना चाहिये। इस अवस्था में मुक्तापिष्टी भी उपयोग होती है। परन्तु यह अति शीतवीर्य होने में अत्यन्त तीव्र दाह में उपयोगी है।

प्रवाल का उपयोग पित्तोन्माद और भूतोन्माद पर भी होता है। उन्माद का कारण प्रथम मानसिक और पश्चात् शारीरिक होता है अथवा

प्रथम शारीरिक कारण उपस्थित होकर पश्चात् वह मनोदेश को दूषित करता है; परिणाम में उन्माद उत्पन्न होता है। गर विष, तीव्र शराब, गांजा आदि के सेवन से घोर शारीरिक दोष उत्पन्न होकर उन्माद हो जाता है। यह दूसरे प्रकार के उन्माद का उदाहरण है। केवल मानसिक आघात-शोक ओर मनोव्याघात से असह्य मानसिक क्लेश होकर उन्माद होता है। उसे पहले प्रकार का उन्माद कहेंगे। जो दूसरे प्रकार का उन्माद है जिसमें पित्तदुष्टी हेतु है; तीव्र शराब या तीव्र विष के सेवन से पित्तदुष्टी होती है; यह प्रवालपिष्टी के सेवन से दूर होती है। इसी रीति से उन्माद पर प्रवाल अन्य शामक औषध के साथ लाभदायक है।

कोष्ठगत सेन्द्रिय विष (गर) के योग से विशेषत: उस में पित्त दुष्टी होने पर उन्माद होता है। कितने ही रोगी बिल्कुल पागल हो जाते हैं, ऐसे विकार में प्रवालपिष्टी के साथ आरोग्यवर्द्धिनी, चन्द्रप्रभा या शिलाजीत देना चाहिये।

भूतोन्माद में पित्त का अनुषंग हो, तो प्रवालपिष्टी देनी चाहिये। विशेषत: क्रोधी, लड़ाकू, साहसी और दूसरों को संताप देने वाली स्त्रियों को यह औषधि बहुत उपयोगी होती है। उन्माद के झटके के साथ नाक से रक्त गिरना, चेहरा बिल्कुल लाल हो जाना, शिरायें खिंच जाना आदि लक्षण होने पर प्रवाल का बहुत अच्छा उपयोग हुआ है।

बालकों के अस्थिमृदुता रोग (Rickets) पर प्रवालपिष्टी अति उपयुक्त है। बिल्कुल छोटे ३-४ मास के बच्चों से लेकर बड़े बच्चों तक सब के लिये यह उपयोगी है। इस रोग में बालकों मे नितम्ब (चूतड़) आदि स्थानों पर सल (सिकुड़न) पड़ जाना, पैर और हाथ की, इनमें भी विशेषत: पैर की हड्डी मुड़ जाना, बार-बार थोड़े-थोड़े दस्त होना, ज्वर भी रहना आदि लक्षण होने पर प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व को मिलाकर देना चाहिये। यदि खांसी हो तो श्रृङ्ग भस्म भी मिला देवें। प्रवालपिष्टी चूने का सेन्द्रिय सौम्य कल्प होने से अस्थि-मार्दव रोग में इसका अच्छा उपयोग होता है। इस रोग में चूने की न्यूनता मूल कारण है। जिस-जिस द्रव्य की इस विकार में न्यूनता हुई है, उसी द्रव्य की प्रवालपिष्टी के संयोग से प्राप्ति हो जाती है। इस रोग की प्रथमावस्था से लेकर अन्तिमावस्था पर्यन्त प्रवाल का उत्तम उपयोग होता है।

पारिगर्भिक रोग में बालक अति अशक्त हो जाते हैं। वमन, कभी-कभी अतिसार, अत्यन्त कृशता, ज्वर रहना, सारे दिन रोते रहना, आदि लक्षण होते हैं, इस पर प्रवाल अति उपयोगी है। यदि अपचन और अतिसार हो, तो सर्वाङ्गसुन्दर रस देना चाहिए।

बालकों के दांत आने के समय होने वाले विकारों में प्रवाल अति उपयुक्त है। विशेषत: यह रोग ज्यादा दिन तक रहा हो, ज्वर, वमन, पीले पतले दुर्गन्धयुक्त दस्त आदि लक्षण हों, तो प्रवाल देनी चाहिये। जिन बच्चों के दांत अति कठोर हों, उनके लिये भी प्रवाल अति उपयोगी है। यदि दन्तोद्भव, विकार में वातप्रधान लक्षण और दस्त का रंग हरा, दधिकण्युक्त पतला हो तो कनकसुन्दर रस देना चाहिये।

बालक के स्तनपान के कारण अनेक सुकुमार स्त्रियों का शरीर ज्यादा कृश, निस्तेज और निर्बल हो जाता है। हाथ पैरों की संधियों में पीड़ा होने लगती है। कितनी ही स्त्रियों की संतानें एक पीछे एक, मृद्वस्थि रोग से मरती हैं। ऐसे दोषों में प्रवाल का सेवन अधिक प्रशस्त है।

पित्तदोष की दुष्टी को दूर करके उस में साम्यावस्था प्रस्थापित करने का धर्म प्रवाल का अति महत्व का है; जिससे पित्तजन्य विशेषत: पित्त के तीक्ष्ण, उष्ण आदि गुण बढ़ने से उत्पन्न हुए अनेक विकारों में इस पिष्टी का अति उत्तम उपयोग होता है। पैत्तिक शीर्षशूल, वमन, दाह आदि पित्तप्रधान लक्षण हों तो प्रवालपिष्टी देनी चाहिये।

पित्तज अम्लपित्त में बार-बार अत्यन्त कड़वी, पीली, दाहयुक्त वमन चक्कर, व्याकुलता, शिरदर्द आदि लक्षण हों तो प्रवाल देवें।

प्रवालपिष्टी से पित्त की तीव्रता और अम्लता दूर होकर दाह शमन हो जाता है। अर्थात् प्रवाल के योग से माधुर्य उत्पन्न होता है। कामदुधा रस से भी यह कार्य होता है; परन्तु वह मल स्तम्भक है।

प्रवालपिष्टी शुक्रस्थान की विकृति में भी उपयोगी है। शुक्रदोष कहने की अपेक्षा, शुक्रस्थान के दोष में उपयोगी है, ऐसा कहना अधिक उपयुक्त होगा। ग्रन्थिशुक्र या पूयशुक्र आदि पर इसका लाभ बहुत थोड़ा होता है। परन्तु थोड़ी धूप लगी, अग्नि के पास बैठे, थोड़ा-सा जागरण किया, किञ्चित् उत्तेजक पदार्थ, गरम मसाला या खटाई खाई हो तो रात्रि को स्वप्नावस्था में शुक्रस्राव होता है। इस पर अच्छा उपयोग होता है।

खराब आदतों के कारण शुक्रस्थान इतने निर्बल हो जाते हैं कि मन को थोड़ा-सा आघात भी सहन नहीं होता। स्त्री विषयक बात मन मात्र में आई कि तुरन्त शुक्रस्राव होने लगता है। वस्तुत: ऐसे लोगों को सच्ची कामेच्छा का बोध ही नहीं है। इन्द्रियों की लालसा मात्र होती है। यह इन्द्रिय लालसा या मन की खराब स्थिति यहां तक बढ़ जाती है कि कुछ कह नहीं सकते। स्त्री जाति में से चाहे बहन बेटी क्यों न हों, कोई दुष्टिगोचर हुई कि, तुरन्त इच्छा न होने पर भी मन में विकृति होकर शुक्रस्राव हो जाता है। स्त्रियों के जेवरों की आवाज सुनी कि शुक्रस्राव हुआ। किसी सुन्दरी का दर्शन हुआ कि मन विकृत होकर शुक्रस्राव हो जाता है। यह स्थिति विशेषत: मानसिक स्थिति प्रवालपिष्टी के योग से अति उत्तम प्रकार से सुधर जाती है। वंगभस्म शुक्रस्थान को शक्तिदायक है और प्रवाल शामक है। इस कारण अनेक समय इन दोनों को मिश्रित करके देने की आवश्यकता रहती है।

जीर्ण सुजाक और उपदंश रोग का परिणाम मूत्र मार्ग पर होने से बार-बार मूत्र दाह होता है। मूत्र का रंग पीला-लाल हो जाता है। बहुत गरम हो जाता है। साथ-साथ सारे शरीर में विशेषत: हाथ पैर और नेत्रों में अधिक दाह, दाँतों से रक्त गिरना, बार-बार मसूड़े फूल आदि लक्षण होते हैं। इस प्रकार में प्रवाल-पिष्टी अनन्तमूल के साथ देने से उत्तम उपयोग होता है। यदि स्त्रियों को भी अति पुरुष प्रस जीर्ण सुजाक या उपदंश के विकार के पश्चात् मूत्रमार्ग का ऐसा ही विकार हुआ हो तो उनको भी प्रवाल देनी चाहिए।

सुजाक उपदंश या अन्य कारणों से स्त्रियों के अपत्यमार्ग पर दाह होकर स्फोट उत्पन्न हो जाते हैं, फिर गर्भाशय में दाह होता है। इस का से गर्भाशय का कार्य भी यथोचित रूप से न होकर गर्भास्राव या गर्भपात हो जाता है या समय के पहले प्रसव हो जाता है। ऐसे लक्षण होने प्रवालपिष्टी का अति उत्तम उपयोग होता है।

स्त्रियों के गर्भाशय और योनिमार्ग में अनेक प्रकार की विकृतियां होने से प्रदर रोग की उत्पत्ति होती है। भीतर की रक्त वाहिनियां पू जाने से रक्त प्रदर होता है। श्वेत प्रदर रोग में स्राव रक्तवाहिनियों में से न होकर श्लैष्मिक कला में से होता है। इसकी चिकित्सा करने समय भीतर में क्या विकृति हुई है। यह अच्छी रीति से जान करके उपचार करना चाहिये। उपचार दो रीति से किया जाता है।-(१) उत्त बस्तिद्वारा योनि मार्ग की शुद्धि और स्वच्छ बनाना तथा (२) पेट में औषध देकर। प्रदर में जल समान बिल्कुल पतला, दुर्गन्ध युक्त भयंक गरम दाहयुक्त स्राव होना, जहां प्रदर का जल लगे वहां पर फुन्सियाँ हो जाना या त्वचा फटकर उसमें पीड़ा होना, खुजली चलना, दाह हो (क्वचित जलन यहाँ तक बढ़ जाती है कि संसार कर्म अशक्य हो जाता है) और भयंकर त्रास होना, इत्यादि लक्षण हो तो उस पर प्रवालपि देनी चाहिए। प्रवाल को उशीरासव के साथ देने से उत्तम लाभ हो जाने के अनेक उदाहरण मिले हैं। इस तरह उपरोक्त लक्षण वाले रक्तप्र और अत्यार्तव में भी इसके सेवन से अच्छा लाभ पहुँचता है। रक्त प्रदर पर प्रवाल पिष्टी, सुवर्णमाक्षिक भस्म और वङ्गभस्म मिलाकर दाड़िमावले के साथ दी जाती है।

रक्तार्श और पित्तार्श, दोनों प्रकार के अर्श में पित्त लक्षण अधिक होने पर प्रवालपिष्टी का उपयोग करना चाहिये। इन दोनों प्रकार के लि प्रवाल, गिलोय सत्व और नागकेशर को मिलाकर मक्खन मिश्री अथवा बकरी के दूध के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

विष शमन हो जाने के पश्चात् विष का परिणाम (लेश) शेष रह जाता है। यह अनेकों को आजन्म त्रास देता है, विशेषत: सोमल, रसकपू आदि तीक्ष्ण और तीव्र विष का परिणाम अति त्रासदायक होता है। विष का लक्षण तीव्र नहीं होता, परन्तु व्याकुलता बनी रहती है, लकुशंक खूब गरम होती है, उदर, छाती, पीठ, किंबहुना सर्वांग में दाह, हाथ पैरों में ज्यादा जलन, नाक में से बार-बार रक्त गिरना और मस्तिष्क फिरना, ऐसे लक्षण होते हैं। इस पर प्रवाल अति लाभदायक है (अनुपान रूप से धमासा और गोखरू १-१ तोले और मिश्री दो तोले मिल अष्टमांश क्वाथ कर १-१ तोला गोघृत मिलाकर दिन में ३ बार देते रहें) प्रवाल पित्त दोष के तीक्ष्णत्व, उष्णत्व, अम्लत्व आदि गुणों की वृद्धि को शमन करने में उपयोगी है। अस्थि, मज्जा, शुक्र, रक्त, मांस ये दूष्य और आमाशय, पचनेन्द्रिय, वातवह मंडल, मनोदेश इन सब स्थानों पर असर पहुँचाती है। (औ.गु.ध.शा.)

यकृत् पित्त (पित्ताशय में से निकलने वाला पित्त) तीव्र हो जाने और अधिक मात्रा में निकलने पर पैत्तिक शूल उत्पन्न होता है। यह शूल भोजन के पहिले रहता है। भोजन कर लेने पर ठहर जाता है। नलिका की श्लैष्मिक कला में व्रण हो जाने से या छिल जाने से बाहर से दबाने पर दर्द होता है। उस विकार पर प्रवालपिष्टी, अमृतासत्व के साथ मिला आंवलों के रस में भोजन के १ घण्टे पहिले दिन में दो बार देने से शूल शमन हो जाता है। साथ में पित्त नलिका की श्लैष्मिक कला की विकृति को दूर करने के लिये रोज रात्रि को भोजन करने के प्रारम्भ में १-१ तोला त्रिफला घृत लेते रहना चाहिये।

(२८) शुक्ति भस्म।

विधि-शुद्ध मोती की सीप के ऊपर लगे हुए उज्वल भाग को हांडी में घीकुंवार का गूदा ऊपर नीचे रख सम्पुटकर गजपुट दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल पुनः नींबू के रस में ६ घण्टे खरलकर टिकिया बाँध संपुटकर गजपुट देने से मुलायम सफेद रंग की उत्तम भस्म बन जाती है। २० तोले सीप हो तो ८० तोले घीकुंवार का गूदा लेवें।

मात्रा-१ रत्ती से ३ रत्ती, दिन में २ बार, मक्खन मिश्री अथवा शहद या पान में अथवा सितोपलादि चूर्ण, घी और शहद मिलाकर देवें।

गुणधर्म-शुक्ति भस्म अग्नि प्रदीपक तथा पंक्तिशूलहर है। शेष गुण मुक्ता के समान शीतल, मस्तिष्क पौष्टिक और हृद्य है, किन्तु कुछ कम परिमाण में है।

उपयोग-यह भस्म क्षय, खाँसी, जीर्णज्वर, नेत्रदाह, उदरवात, पित्तजगुल्म, श्वास, हृद्रोग (पित्तप्रकोपज), पित्तप्रधान अरुचि, पित्तज परिणाम शूल, यकृतशूल, पित्तज वमन, पित्तातिसार, अम्लपित्त, विदग्धाजीर्ण उद्गार (डकार आना), रक्तप्रदर और निर्बलता को दूर करती है। शुक्ति में मुक्ता की अपेक्षा न्यून गुण है।

शुक्ति भस्म में शंखभस्म की अपेक्षा तीव्रता कम है। वस्तुतः शुक्ति, शंख, वराटिका तीनों भस्में स्थूल रसायनशास्त्र की दृष्टि से एक ही प्रकार की हैं। तीनों ही चूने के सेन्द्रिय कल्प हैं। परन्तु जीवन रसायन शास्त्र या गुणधर्म शास्त्र की दृष्टि से तीनों में कुछ-कुछ अन्तर है। शंख और वराटिका में अधिक साधर्म्य एवं शुक्ति और मुक्ता में भी विशेष साधर्म्य हैं। इस हेतु से सीप यदि मोती पिष्टी के अनुसार केवल शीत भावनापुट विधि से की हो तो उसका धर्म मुक्ता से किञ्चित् न्यून देखने में आवेगा। परन्तु उस रीति से शुक्तिपिष्टी बनाने का रिवाज नहीं है। शुक्ति भस्म गजपुट विधि से तैयार करते हैं। यह कुछ उग्र बनती है, फिर भी वराटिका और शंख भस्म से उग्रता न्यून ही है। इसी हेतु से शुक्ति भस्म छोटे बच्चों, सुकुमार तथा नाजुक प्रकृति के स्त्री पुरुषों को दी जाती है।

शुक्ति के सेवन से स्वादुता उत्पन्न होती है, जिससे अम्लपित्त, पित्तजशूल परिणाम शूल, और अन्नद्रवशूल में पित्त की तीव्रता कम होती है।

अम्लपित्त में शुक्ति और माक्षिक का अच्छा उपयोग होता है। विदग्धाजीर्णमें दूषित डकारें बहुत आती हो और कण्ठ में दाह होता हो, तो शंख की अपेक्षा शुक्ति विशेष हितकर है। रसाजीर्ण की तीव्र और जीर्ण अवस्था में नाजुक मनुष्यों को शुक्ति से ज्यादा लाभ होता है।

पित्तातिसार में बार-बार दस्त होते हों, दस्त का रंग पीला, नीला, अथवा लाल-नीला हों, साथ में विलक्षण तृषा, बार-बार चक्कर आना, मूर्च्छा, सर्वाङ्ग में दाह, गुदा के बाहर के अंश में त्वचा का फटना, छोटी-छोटी फुन्सियां हो जाना आदि लक्षण हों तो शुक्ति भस्म देनी चाहिये। अनुपान दाडिमावलेह, आम का मुरब्बा, मक्खन या अनार शर्बत।

पित्तजन्य वमन में शुक्ति का उपयोग होता है। अत्यन्त गरम-गरम कड़वी पीली, नीली वमन, कण्ठ में जलन, उदर में दाह, नेत्र के समक्ष अन्धकार चक्कर आना आदि लक्षण हों तो यह हितावह है।

पित्तगुल्म में यह भस्म हितकर है। मुँह, नेत्र और सारा शरीर लाल हो जाना, ज्वर, तृषा, अन्न का पाचन होने पर कोष्ठ में भयंकर शूल, व्रण के समान गुल्म पर हाथ या अन्य वस्तु का स्पर्श सहन न होना आदि लक्षणों से युक्त आदि की वृद्धि होकर नहीं होता।

रक्तगुल्म में शुक्ति का उपयोग होता है। केवल उसमें अन्य दोष की अपेक्षा पित्ताधिक्य होना चाहिये। पित्त शीर्षशूल में भी इसका उपयोग होता है। मूत्रकृच्छ, दांत या अन्य मार्ग से रक्तस्राव होने की प्रकृति हो, तो शंख या वराटिका भस्म दी जाती है। परन्तु कोमल प्रकृति वालों के लिए इस भस्म का उपयोग करना चाहिये।

शुक्ति से कोष्ठगत वात का शमन होता है। कोष्ठगत वात के साथ श्वास हो तो भी इसका उपयोग लाभदायक है। हृदय में वात की रुकावट होना, हृदय में वात के योग से बोझा-सा मालूम होना, पीड़ा होना, शूल चलना, कोष्ठ में जलन होने के समान भासना, हाथ-पैर शून्य से होकर झनझनाहट होना, हाथ-पैर में शीतलता का भास होना इत्यादि लक्षण होते हैं। डकार आने पर व्यथा कम हो जाती है या बिल्कुल शमन हो जाती है ऐसी स्थिति में शंख तथा वराटिका की अपेक्षा शुक्ति का अधिक उपयोग होता है।

अरुचि में, विशेषतः पित्तप्रधान अरुचि में, शुक्ति का उपयोग किया जाता है इस भस्म के सेवन से मुंह की बेस्वादुता, मुंह में से दुर्गन्ध आना, मुँह कड़वा, खट्टा, खारा या चरपरा हो जाना, मुंह में से गरम-गरम भाप निकलना ये सब लक्षण दूर होते हैं।

शुक्ति भस्म पित्त और किञ्चित् कफ दोष, रस, रक्त, मांस, अस्थि ये दूष्य और आमाशय, यकृत, प्लीहा और ग्रहणी इन सब पर लाभ पहुंचाती हैं। (औ.गु.ध.शा.)

द्वितीय विधि (मुक्ताशुक्तिपिष्टी)-शुद्ध शुक्ति के उज्ज्वल भाग को इमामदस्ते में कूटकर बारीक चूर्ण करें। फिर २१ दिन तक गुलाबजल में खरलकर पिष्टी बना लेवें। यह प्रयोग श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने वैद्य समूह को दिया है।

मात्रा-१ से २ रत्ती, मक्खन मिश्री या सितोपलादि और शहद के साथ।

सूचना-मुक्ता, प्रवाल, शुक्ति, वराटिका, शंख इनकी भस्मों में क्षार रूप होने से सूखी औषधियों के साथ सेवन करने पर किसी-किसी के मुख में छाले हो जाते हैं। अतः घी मिलाकर सेवन करें या गिलोयसत्व और शहद को अच्छी तरह मिला लें। अथवा मुक्तापिष्टी या प्रवालपिष्टी सेवन करें।

(२९) वराटिका (कपर्दिका) भस्म।

विधि-शोधन की हुई पीली रंग की ४० तोले कौड़ियों को निर्धूम तेज अग्नि मे लाल हो जायें, तब तक रखें। अच्छी रीति से फूल जाने पर सम्हाल पूर्वक उठा घीकुंवार या नींबू रस में डूबा दें। पश्चात् उसी रस में खरलकर दो-दो तोले की टिकिया बना सूर्य के ताप में सुखा संपुटकर गजपुट अग्नि देने से वराटिका भस्म तैयार हो जाती है।

मात्रा-२ से ४ रत्ती, दिन में दो से तीन समय, घृत-मिश्री, तक्र, निवाये जल, नींबू का रस, शहद, नागरवेल के पान या अन्य अनुकूल

अनुपान के साथ देवें। कान पकने पर भस्म डाल ऊपर नींबू का रस डालें।

गुणधर्म–रसे रसायने प्रोक्ता परिणामादिशूलनुत्।
ग्रहणी क्षयरोगघ्नी वीर्योष्णा दीपनी मता॥
वृष्या दोषहरा नेत्र्या कफवातविनाशिनी।
रसेन्द्रजारणे शस्ता विडमध्ये सदा हिता॥
स्थूली वराटिका प्रोक्ता गुरुश्च श्लेष्मपित्तला॥ (र.रा.सु.)

उपयोग–यह भस्म परिणामूशल, अन्नद्रवशूल, रसाजीर्ण, अम्लपित्त, रसक्षय, आफरा, श्वास, गुल्म, उदरवात, मन्दाग्नि, जीर्णज्वर, नेत्ररोग और कान से पीप निकलना आदि रोगों को दूर करती है। इस भस्म में पित्त की अम्लता को कम करने का मुख्य गुण होने से इसके सेवन से नेत्र की उष्णता भी शांत होती है।

कपर्दिका भस्म चूने का सेन्द्रिय कल्प है। इसमें सेन्द्रियत्व होने से अन्य निरिन्द्रिय कल्प की अपेक्षा सत्वर और सुख पूर्वक शरीर में शोषण हो जाती है। कपर्दिका भस्म उदर में स्वादुता उत्पन्न करती है। शंख और शुक्ति की अपेक्षा वराटिका में यह गुण विशेष रूप से रहा है। इस हेतु से कोष्ठगत वातवृद्धि होकर आफरा आना, पेट दुखना, पेट में शूल चलना, भोजन जहाँ का तहाँ स्थिर-सा रह जाना, बार-बार शुष्क डकार या दुर्गन्धयुक्त भोजन की बास वाली डकार आना, व्याकुलता, विशेषतः वातल, जड़ और तले हुए पदार्थों के सेवन से अजीर्ण हो जाना आदि लक्षणयुक्त अपचन में वराटिका भस्म का उपयोग हितकर है। यदि इस स्थिति में ज्यादा वमन भी होती हो और वमन के साथ आफरा बढ़ता हो और शूल ज्यादा चलता हो तो इसे अनार के रस या दाड़िमावलेह के साथ देनी चाहिये। ऐसे ही रसाजीर्ण होने की जिनकी प्रकृति हो उनको भी यह भस्म देना हितकर है।

परिणामशूल–विशेषतः पित्तज, वातज, अथवा वातपित्तज होने पर इस भस्म का सेवन कराना चाहिये। परिणामशूल में बहुत करके ग्रहणी स्थान में ज्यादा विकृति होती है। वराटिका से यह दुष्टि दूर होती है। इस रीति से मुद्रिका द्वार पर व्रण हो और वह बहुत न बढ़ा हो तो व्रणरोपण रूप महत्व का कार्य इससे हो जाता है।

अन्नद्रवशूल में यह भस्म हितकारक है। अन्नद्रवशूल में वातप्रकोप के कारण से आफरा होता हो तो कपर्दिका भस्म और शङ्ख भस्म को मिलाकर देना चाहिए।

अम्लपित्त के प्रारम्भ काल में झागयुक्त खट्टी वमन होती हो तो वराटिका भस्म दी जाती है। साथ में स्वर्णमाक्षिक भस्म देने से ज्यादा लाभ होता है।

ग्रहणी रोग के बिल्कुल प्रारम्भकाल में और आमातिसार में आम पाचन के लिये कपर्दिका भस्म का उपयोग होता है। प्रारम्भ में एक दो उपवास करा कपर्दिका अथवा जिसमें यह भस्म मिली हो ऐसी जातिफलादि वटी, ग्रहणीकपाट रस या अन्य औषधि देनी चाहिए। जातिफलादि और ग्रहणी कपाट में अफीम मिलाई जाती है। जिससे वे तीव्र स्तम्भक हैं। इसलिये इनका उपयोग बहुत सम्हालपूर्वक करें। आमातिसार और ग्रहणी में तीव्रशूल अर्थात् आमजन्यशूल हो तो कपर्दिका से अति उत्तम कार्य होता है; किन्तु ग्रहणी रोग की जीर्णावस्था में इसका उपयोग अच्छा नहीं होता। विशेषतः रक्तमिश्रित आम गिरते हों तो इस औषधि का उपयोग न करना ही अच्छा माना जायेगा। नूतन रोग में भी रक्तमिश्रित आम पर कपर्दिका नहीं देनी चाहिये। यदि देनी हो तो अन्य स्तम्भक और रक्तप्रसादक औषध के साथ देनी चाहिये।

रसक्षय के प्रारम्भ में जब थोड़ा भोजन करने पर भी पचन न होता हो, मीठी, खट्टी और खाये हुये भोजन की विकृत डकार बार-बार आती हो; मलावरोध भी रहता हो; तब इस भस्म से लाभ हो जाता है।

रक्तपित्त और क्षतक्षय पर वराटिका, प्रवाल और सोनागेरू मिलाकर देना चाहिये। इनमें चूना और माधुर्य उत्पादक धर्म होने से, रक्त और रक्तवाहिनियों का स्तम्भन होकर रक्त गिरना बन्द हो जाता है।

जीर्ण अग्निमांद्य में वराटिका भस्म घृत या अन्य पाचक औषधि के साथ देनी चाहिये। जीर्णज्वर और प्लीहावृद्धि में मन्दाग्नि हो तो भी इसका उपयोग हितकर है।

चिपचिपा, स्फोटयुक्त, तीव्र कर्णस्राव हो तो वराटिका का उपयोग करना चाहिये। कान में थोड़ी वराटिका भस्म डालें, फिर गरम कर शीतल किया हुआ तैल, बिल्वादि तैल या क्षार तैल डालना चाहिये और वराटिका भस्म दूध के साथ सेवन करानी चाहिये।

अग्निदग्ध त्वचा पर वराटिका भस्म का उत्कृष्ट उपयोग होता है। वराटिका भस्म, मुर्दासंग, सोनागेरू, गिलोयसत्व, श्वेत चन्दन और वंशलोचन सब को समभाग मिला अरंडी के तैल में खरलकर मृदु ब्रुश या रूई के फोहे से जले हुए स्थान पर मोटा-मोटा लेप करें। जैसे-जैसे लेप लगाते जायेंगे; वैसे वैसे शीतलता होती जायेगी; फोड़े नहीं उठेंगे और त्वचा उत्तम प्रकार से अच्छी हो जाती है।

वराटिका भस्म पित्तशामक, विशेषत: पित्त की अम्लता शामक, कोष्टस्थ वातहर, शूलघ्न और पाचक है। इसका कार्य यकृत, प्लीहा, आमाशय और ग्रहणी पर होता है। पित्तदोष तथा रस और क्वचित् रक्त, इन दूष्यों पर लाभ पहुँचाती है। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना–वराटिका भस्म के सेवन से जिह्वा फट जाती है। इस हेतु से घृत या गिलोयसत्व और शहद या अन्य औषधि के साथ मिलाकर लेनी चाहिए।

(३०) शंख भस्म

विधि–शुद्ध शंख के टुकड़ों को कोयलों की तेज अग्नि पर अच्छी तरह तपाकर नींबू के रस में बुझा देने पर भस्म हो जाती है। फिर उसे खरलकर बोतलों में भर लेवें।*

यदि इस भस्म का उदररोग अथवा नारु रोग पर उपयोग करना हो, तो आक के पीले पानों के रस में ६ घण्टे खरलकर टिकिया बना संपुट करके गजपुट देना चाहिये।

मात्रा–१ से ४ रत्ती, दिन में दो समय अजीर्ण पर नींबू के रस और मिश्री अथवा गरम जल के साथ या १ रत्ती हींग और ६ माशे घृत के साथ दें। अतिसार और संग्रहणी में बेल के मुरब्बे के साथ। नेत्र के फूले पर दिन में २ समय अंजन करें। हिक्का में १ रत्ती काकड़ासिंगी और २ रत्ती पीपल चूर्ण के साथ १-१ घण्टे पर ३-४ बार दें। त्रिदोषज शूल पर काला नमक, भुनी हींग और त्रिकटु के साथ मिलाकर निवाये जल के साथ देवें।

उपयोग–यह भस्म उदरवात, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, गुल्म, मन्दाग्नि, अतिसार, अजीर्ण, अफारा, शूल, संग्रहणी और नेत्र के फूले आदि रोगों में अति उपयोगी है। स्नायु (नारु) निकला होवे तब १-१ माशे भस्म दिन में २ समय चार दिन तक देते रहने से रक्त में रहे हुए (किन्तु बाहर न निकले हुए) नारु जल जाते हैं।

शंख भस्म एक प्रकार का क्षार है। क्षार के गुणधर्म बहुत अंशों में इस भस्म में प्रतीत होते हैं। शंख और वराटिका में गुण-सादृश्य अधिक है। कारण, दोनों चूने के सेन्द्रिय कल्प हैं। तथापि शंख में कुछ पृथक् गुण भी हैं। उन्हीं को यहां पर दिखाया है। शंख भस्म में ग्राही अर्थात् स्तम्भक गुण है; जिससे अतिसार में, विशेषत: पक्वातिसार में अच्छी उपयोगी है। पक्वातिसार में शंखभस्म, सोहागे का फूला, अफीम और जायफल को योग्य परिमाण में मिश्रण करके देना अति हितकर है। इस योग को शंखोदर कहते हैं। ग्रहणी के विकार में शङ्खभस्म का उपयोग होता है। विशेषत: ग्रहणी में बार-बार विरेचन होते हों, कोष्ठशूल हों और शूल के वेग के साथ पतले थोड़े-थोड़े दस्त होते हों तो शंखभस्म का अच्छा उपयोग होता है।

पैत्तिक कोष्ठशूल, पित्तज अतिसार और कफपित्तज कोष्ठशूल में शंखभस्म का उपयोग योग्य अनुपान के साथ लाभदायक रहता है। उदर में वात उत्पन्न होकर आफरा-सा हो जाना, शूल निकलना, कोष्ठ की क्रिया स्तम्भित-सी होकर अन्न जहां का तहाँ स्थिर हो जाना, मीठी या जली हुई अथवा अन्न की दूषित स्वाद वाली डकार आना आदि लक्षण होने पर शंखभस्म के उपयोग से उदरवात का शमन होकर अन्न पचन होने लगता है और आफरा तत्काल दूर होता है।

अन्न पचन ठीक न होने से आमाशय या पक्वाशय में शूल उत्पन्न होने पर शंखभस्म घृत या नींबू के रस के साथ देनी चाहिये। ऐसे ही रसाजीर्ण के पुराने रोगियों के लिए भी शंखभस्म अति लाभदायक है। किन्तु उष्ण प्रकृति वाले रोगी को यह भस्म नहीं देनी चाहिए।

शंख भस्म का उपयोग यकृत और प्लीहा की क्रिया मन्द होने से उत्पन्न होने वाले विकारों में अच्छा होता है। यकृत और प्लीहावृद्धि में क्षार का अच्छा उपयोग होता है। किन्तु मलावरोध हो तो इसके साथ एलुवा या अन्य विरेचक औषधि का उपयोग करना चाहिये अथवा अन्य क्षार देना चाहिये। उदरस्थ गुल्म और अष्ठीला रोग पर शंखभस्म अति उपयोगी है। अपामार्ग क्षार, जवाखार और अन्य क्षारों की अपेक्षा इस भस्म में तीव्रता न्यून है।

कालज (ऋतु परिवर्तन से होने वाला) अतिसार, अपचनजनित और कीटाणु जनित विसूचिका (कालेरा) में तीव्रता कम होने पर इस भस्म का अच्छा उपयोग होता है। कालेरा की सुधारवाली अवस्था में (जुलाब, वमन आदि लक्षण कम होने पर) थोड़े-थोड़े परिमाण में दस्त होने और निर्बलता शेष रहने पर शंखभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म का उत्तम उपयोग हुआ है।

नेत्र के फूले में शंखभस्म उपयोगी है। इसके अंजन से फूले नष्ट होते हैं। इस स्थान में इसके रोपण धर्म का उपयोग हुआ है।

तरुण स्त्री-पुरुषों के मुखदूषिका (तारुण्यपिटिका-मुँह पर फुन्सियां हो जाना) में शंखभस्म खिलाने से उत्तम उपयोग होता है।

---

* शुद्ध शंख के टुकड़ों को ७॥सेर गोबरी के भीतर अग्नि देने से श्वेत मुलायम भस्म बन जाती है।

शंखभस्म पित्तदोष, रस, रक्त और अस्थि ये दूष्य, एवं यकृत् प्लीहा, ग्रहणी, पक्वाशय, बृहदअन्त्र, कोष्ठग्रन्थि, पचनेन्द्रिय, नेत्र और मुख ये स्थान इन सब पर असर पहुँचाती है। (औ.गु.ध.शा.)

अम्लपित्त रोग में अपचन, उदर में भारीपन, खट्टी वान्ति और कण्ठ में दाह रहता हो, तब भोजन पश्चात् शंखभस्म के साथ नारिकेल क्षार और नौसादर मिलाकर घी या नींबू के रस के साथ देने से विशेष लाभ होता है। किन्तु जिनको भोजन के बाद दाह बढ़ जाता हो, मुखपाक भी रहता हो, उनको भोजन के पश्चात् ३-३ घण्टे पर शंखभस्म, शुक्तिभस्म, और अमृतासत्व मिलाकर अनार के शर्बत के साथ देवें।

हिक्का रोग में वेग बढ़ गया हो, शिरदर्द, दाह और वातपित्तप्रधान लक्षण प्रतीत होते हों तो शंखभस्म १-१ घण्टे पर देते रहने और सोंठ का कपड़छान चूर्ण सुंघाते रहने से हिक्का रोग एक ही दिन में शमन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त यह भस्म पित्तविदग्धज उदावर्त रोग में लाभदायक है, इस रोग में शूल, आफरा, दाह, पतले दस्त, व्याकुलता, शिरदर्द, आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इन पर भस्म का सेवन पुराने गुड़ के साथ कराने से थोड़े ही दिनों में रोग दूर हो जाता है।

(३१) अकीक भस्म

प्रथम विधि-रत्न रूप पक्के उपयोगी अकीक को इमामदस्ते में कूटकर चूर्ण करें। फिर सिरके से जब तक लोहांश की कालिमा नष्ट न हो, तब तक धोना चाहिये। फिर गुलाबजल या घीकुंवार के रस में खरलकर टिकिया बांध सम्पुट कर गजपुट देने से भस्म हो जाती है फिर दूध में खरलकर टिकिया बाँधकर गजपुट देवें। दूध की भावना के बाद गजपुट में रखने से सम्पुट में भस्म फूलती है। इसलिए सम्पुट थोड़ा खाली रहे, ऐसा बड़ा सराव लेना चाहिये। इस तरह ३ पुट देने से भस्म मुलायम बन जाती है। कितने ही चिकित्सक इसे चौथा पुट दूध का भी देते हैं।

अकीक पिष्टी-शुद्ध अकीक को गुलाबजल में ७ दिन खरल करके पिष्टी बना लेवें।

मात्रा-१ से ३ रत्ती, दिन में २ समय शहद या मक्खन या मलाई के साथ।

उपयोग-यह भस्म शीतवीर्य है। हृदय की सब प्रकार की निर्बलता, उष्णता, हृदयरोग, मस्तिष्क की उष्णता, नेत्ररोग, रक्तप्रदर आदि को दूरकर शरीर को बलवान बनाती है। उर:क्षत, चक्कर आना, थूंक में रक्त आता हो तो उसे बन्द करती है तथा फुफ्फुसों के व्रणों का रोपण करती है, एवं मस्तिष्क को शांत और सबल बनाती है। इसलिए चित्त विभ्रम होकर उत्पन्न उदासीनता (Melancholia) और हिस्टीरिया में दी जाती है। रक्तस्राव के रोध के लिए अकीक पिष्टी, तृणकान्तमणि पिष्टी, अभ्रक भस्म और अमृतासत्व मिलाकर देने से सत्वर लाभ पहुँचाती है। हृदय की निर्बलता में अकीक पिष्टी, जहरमोहरा पिष्टी, मोती पिष्टी तथा अभ्रक भस्म १००० पुटी तथा अर्जुन छाल के चूर्ण का सेवन लाभप्रद होता है।

(३२) जहरमोहरा भस्म

विधि-हलके वजनवाले जहरमोहरा को इमामदस्ते में कूट, कपड़छन चूर्ण तैयार करें। फिर दूध में ६ घण्टे खरलकर टिकिया बाँध, सूर्य के ताप में सुखा सम्पुट कर गजपुट देने से भस्म बन जाती है।

मात्रा-१ से ४ रत्ती। दिन में ३ समय शहद के साथ।

उपयोग-यह भस्म शीतल, पचन-संस्थान के लिए बल्य और हृदय-पौष्टिक है। बालकों के हरे पीले दस्त, अपचन जनित विसूचिका, वमन, अतिसार आदि को दूर करती है। वातवाहिनियों तथा हृदय को बलवान बनाती है। कॉलेरा [Cholera] में आध-आध घण्टे पर देते रहें। बालकों को आध-आध रत्ती माता के दूध के साथ देवें।

स्त्रियों के अति रज:स्राव और निर्बलता में जहरमोहरा पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, अभ्रक भस्म, अमृतासत्व और कासीस गोदन्ती भस्म मिलाकर शहद के साथ दिन में २ या ३ बार देते रहने से रोग निर्मूल हो जाता है।

रक्तदबाव वृद्धि से शिर में भारीपन, नेत्र में लाली, घबराहट आदि लक्षण प्रकट हों तो जहरमोहरा पिष्टी, सोडाबाई कार्ब और गुलकन्द के साथ दिन में ३ या ४ बार देने से दबाव कम हो जाता है। कीटाणुजनित तीव्र वान्ति होती हो, बार-बार वमन होती रहे तथा द्रव्य दुर्गन्धयुक्त हो, तो मयूरपुच्छ भस्म और जहरमोहरा पिष्टी २-२ रत्ती मिला पोदीने के अर्क के साथ आध-आध घण्टे पर देते रहना चाहिए। कीटाणुओं को नष्ट करके वान्ति के वेग को शमन करने और आमाशय को निर्दोष तथा सबल बनाने के लिये यह उत्तम औषध है।

(३३) तृणकांतमणि (कहरवा) पिष्टी

विधि–कहरवा का बारीक चूर्ण कर गुलाबजल में ४-६ दिन खरल करने से पिष्टी हो जाती है। (सि.भे.म.मा.)

मात्रा–२ से ६ रत्ती, जल के साथ दिन में ३ समय दें।

उपयोग–यह पिष्टी पित्तविकार, प्रवाहिका, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, अन्त्र के रोग, अर्श और रक्तपित्त आदि रोगों में रक्त का प्रवाह बन्द करने के लिये उत्तम और निर्भय है। मस्तिष्क में कीड़े पड़ जाने के कारण निरन्तर शिर में दर्द बना रहना, नाक में से रक्त गिरना, नाक में से दुर्गन्ध आना, मन्द-मन्द ज्वर रहना, अरुचि दाह, प्रस्वेद, चक्कर आना, आदि लक्षण होने पर तृणकान्तमणि पिष्टी दी जाती है। इससे नाक से कीड़े गिरने लगते हैं और थोड़े ही दिनों में दर्द शान्त हो जाता है।

अर्श का रक्तास्राव बन्द करने के लिये इस पिष्टी के साथ लाल बोलकी पर्पटी मिला द्राक्षावलेह के साथ देना विशेष हितकारक होता है। यदि निर्बलता अधिक हो और कब्ज न रहता हो तो इस पिष्टी के साथ अभ्रकभस्म, अमृतासत्व और नागकेसर का चूर्ण मिश्रित कर देना चाहिये।

यूनानी हकीम कहरवा २ से ४ रत्ती तक देते हैं। कहरवा मस्तिष्क के लिये हानिकारक मानते हैं। अधिक मात्रा में लेने से शिरदर्द हो जाता है। पित्तवृद्धि से हृदय के वेग की वृद्धि हुई हो तो तृणकान्तमणि पिष्टी लेने से शमन हो जाती है। सगर्भा स्त्री के गले में कहरवा की माला पहनाने से हृदय की निर्बलता दूर होती है और गर्भस्राव या गर्भपात नहीं होता। इस पिष्टी को घाव पर भुरकाने से रक्तप्रवाह बन्द होकर घाव भर जाता है।

सूचना–तृणकान्तमणि अधिक मात्रा में लेने से मस्तिष्क में पीड़ा हुई हो तो शर्बत बनप्सा पिलावें।

(३४) पिरोजा भस्म

विधि–४० तोले पिरोजे को इमामदस्ते में चूराकर सिरके से धोकर लोहांश निकाल दें। फिर सावधानी से सीमाक की खरल में गिलोय स्वरस के साथ १२ घण्टे खरलकर २-२ तोले की टिकिया बनावें। उनको सूर्य के ताप में सुखाकर गजपुट अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल घीकुंवार के रस में १२ घण्टे खरलकर टिकिया बना सुखाकर गजपुट देने से मुलायम और गुणदायक भस्म बन जाती है।

मात्रा–आधी रत्ती से २ रत्ती तक। गाय के मक्खन अथवा घी और काली मिर्च के चूर्ण के साथ मिलाकर दिन में २-३ समय दें।

गुणधर्म–पिरोजा कसैला, मधुर, दीपन और सारक है। इसकी बनी हुई भस्म रक्तशोधक, विषघ्न, चर्म रोगनाशक और रक्तदबाव शामक होती है। यह उन्माद, अपस्मार, जीर्ण वातरोग, विस्फोटक, व्रण, विद्रधि और विष विकार को दूर करता है।

उपयोग–पिरोजा के सेवन से विस्फोटक के फोड़े और विभिन्न चर्म रोग शीघ्र शान्त होते हैं। विष-विकार में भी यह उपयोगी है एवं स्थावर जंगम विष और संयोगजन्य विषविकार को भी दूर करके शरीर को निरोगी बनाता है। रक्तदबाव बढ़ा हो, तब अन्य शामक औषधि के साथ इसे मिला देने से रक्तदबाव का सत्वर ह्रास होता है।

(३५) हरताल भस्म

प्रथम विधि–क्षार जल से शुद्ध की हुई तपकिया हरताल ५ तोले को आक के दूध में ७ दिन तक खरलकर पूरी जैसी चौड़ी टिकिया बना सूर्य के ताप में सुखावें। फिर एक हांडी में छानी हुई पीपल या ढाक की राख भर ऊपर हरताल की पूरी के चारों और शहद लगाकर रख देवें। फिर उस पर ४-५ अंगुल अपामार्ग पंचांग की राख दबा देवें। इस हाँडी को चूल्हे पर रख बेर की लकड़ी की २४ घण्टे क्रमशः मंद, मध्य और तीव्र अग्नि देवें तथा देखते रहें कि हरताल का धुआं राख में से तो नहीं निकलता। यदि धुआं निकले तो तुरन्त और थोड़ी अग्नि मन्द करें। फिर स्वांग शीतल होने पर ऊपर में लगी हुई राख को सम्हालपर्वूक हटाकर अर्धपक्व हरताल भस्म को निकाल लेवें। फिर पुनर्नवा के जल में १२ घण्टे खरलकर टिकिया बनावें उसे सुखा सराव सम्पुटकर २ सेर गोबरी के चूर्ण की अग्नि में फूंक देने से मुलायम सफेद भस्म बन जाती है।

तालभस्म परीक्षा–तालं मृतं तदा ज्ञेयं वन्हिस्यं धूमवर्जितम्।
सधूमं नमृतं प्राहुर्वृद्धवैद्या इति स्थितिः॥

यह भस्म शास्त्र मर्यादा से निषिद्ध प्रकार से मारित हो अथवा अर्धपक्व रही हो तो उपयोग नहीं करना चाहिए। परिपक्व भस्म को ही उपयोग में लेवें। अन्यथा निम्न विकारों की उत्पत्ति कराता है–

हरित च हरितालं चारुता देहजातां

सृजति च बहुशोषानङ्गसंकोचपीड़ाम्।
वितरति कफवातौ कुष्ठरोगं विदध्या -
दिदमशितमशुद्धं मारितं चाऽप्यसज्य्क।।

भावार्थ–अपक्व हरताल भस्म के सेवन से रक्तविकार, शोष, नपुंसकता, कफवातरोग व कुष्ठ रोग होते हैं।

मात्रा–१ से २ चावल तक। प्रातः सायं या आवश्यकता पर देवें।

अनुपान– १. **विषमज्वर और कफवात-प्रधान ज्वर पर**–अदरक का रस।
२. **कुष्ठ में**–बावची के चूर्ण अथवा मंजिष्ठादि अर्क के साथ।
३. **तमक श्वास में**–शहद और पीपल के चूर्ण के साथ।
४. **ज्वर, क्षय और पाण्डु पर**–शक्कर के साथ।
५. **प्रसूता के शूल और वातरोग पर**–अदरक के रस में।
६. **शैत्य पर**–केशर और जावित्री के साथ।
७. **संधिवात में**–चोपचीन्यादि चूर्ण और शहद के साथ।
८. **रक्तविकृति में**–आमाहल्दी के साथ।
९. **कुष्ठ और वातरक्त पर**–गिलोय के क्वाथ के साथ।
१०. **वातरोग में**–शक्कर के साथ।

हरताल गुणधर्म–हरीतालं कटुस्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम्।
कण्डूकुष्ठार्शरोगासृक्कफ पित्तमरुद्गदान्।।
शोधितं हरितालं तु कान्तिवीर्य विवर्द्धनम्।
कुष्ठादिपापरोगघ्नं जरामृत्युहरं परम्।।
वातश्लेष्महरं रक्तभूत्तनुत्पुष्पहृत्स्त्रियाः।
सुस्निग्धपुष्णं कटुकं दीपनं कुष्ठहारि च।। (र.रा.सु.)

यह भस्म विविध उपद्रवों सह वातरक्त, सब प्रकार के कुष्ठ, फिरंग जनित कुष्ठ, विसर्प, कण्डु, पामा, विस्फोटक, ८० प्रकार के वातरोग, कफरोग, प्रमेह और गुदा के रोगों को दूर करती है। इस भस्म के सेवन काल में नमक और खटाई को त्याग देना चहिये।

उपयोग–यह भस्म गलत्कुष्ठ (Nodular Leprosy), सुप्तकुष्ठ (Nervous Leprosy) ब्यूची, उपदंश (Syphillis), उलट-उलटकर बार-बार आने वाला ज्वर (Relapsing Fever), शीताँग सन्निपात; श्वास, कफप्रकोप आदि पर अति हितावह है।

हरताल भस्म स्निग्ध, उष्ण, कटु, अग्निदीपक और कुष्ठघ्न है। यह एक उत्कृष्ट रसायन होने से रसायन विधान के अनुसार सेवन करने पर जरावस्था की निर्बलता को नष्ट करती है; कान्ति बढ़ाती है तथा अकाल मृत्यु को दूर करके आयु की वृद्धि करती है।

वातरक्त पर यह भस्म अच्छी उपयोगी है। विशेषतः वातप्रधान वातरक्त और कफप्रधान वातरक्त पर अधिक लाभदायक है। वातरक्त का प्रारम्भ पैर अथवा हाथ के अंगुष्ट के पास से होता है पहले अंगूठे सूजते हैं, उनमें पीड़ा होती है, पश्चात् धीरे-धीरे सारे शरीर में वातरक्त का प्रादुर्भाव होता है। वातरक्त और कुष्ठ दोनों रोग भिन्न हैं। दोनों के दोष-दूष्य में महदन्तर है। वातरक्त होने पर सर्वाङ्ग में, संधियों, धमनियों और अंगुलियों में बार-बार अति त्रासदायक शूल, हाड़-हाड़ टूटने के समान पीड़ा, शोथ, शोथ में भी त्वचा फटीसी हो जाना, त्वचा का रंग मैला, काला या काला सफेद हो जाना, हाथ या पैर की वातवाहिनियों का संकोच होना, हाथ या पैरों की अंगुलियां टेढ़ी होना, हाथ-पैर का सन्धि बन्धन भीतर से खिंचना (जिससे चलनादि क्रिया यथोचित न होना), सारा अंग अकड़ जाना, कम्प आना, शोथ वाला भाग शून्य-सा हो जाना, स्पर्श का बोध न होना, शीतल जल, शीतल वायु, शीतल भोजन आदि पर रुचि न होना, शीत-स्पर्श आदि से रोग की वृद्धि होना, इन लक्षणों युक्त वातप्रधान वातरक्त पर घी के साथ तालभस्म सेवन करानी चाहिये।

यदि वातरक्त रोग में शोथवाले भाग में व सारे शरीर मे जड़ता, शीतलता, शक्ति नाश और शून्यता, हाथ पैर पर अग्नि स्पर्श आदि के असर का भी भान न होना, हाथ पैरों की त्वचा स्निग्ध सी भासना, सारे शरीर में खुजली चलना, शरीर शीतल और वेदना कम, ये कफप्रधान लक्षण हों, तो हरताल भस्म को काँटेवाले करंज के पत्तों के रस में घी या मिश्री मिलाकर देनी चाहिये।

पित्तप्रधान वातरक्त में हरताल का उपयोग नहीं करना चाहिये अन्यथा रोग का त्रास बढ़ता है और पित्तप्रकोप होकर रक्तपित्त हो जाता है।

वातरक्त के समान वातरक्त के उपद्रवों में भी हरताल उपयोगी है। अनिद्रा, अरुचि, श्वास, वातजन्य मांसकोथ (पित्तजकोथ हो तो ताप्यादि

लोह,) मस्तिष्क की शिरा खिंचना, बार-बार मूर्च्छा, बेहोशी, दृष्टिमांद्य, शूल ज्यादा निकलना, तृषा, ज्वर, विचारों में लीन-सा हो जाना, सारे शरीर में थरथर कम्प, हिक्का, पंगुता, विसर्प, शोथ पककर फूटना, शोथस्थान में सुई चुभने के समान पीड़ा, चक्कर आना, थकावट, अंगुलियां टेढ़ी हो जाना, शरीर पर फोड़े, फुन्सीयाँ हो जाना, शिरदर्द, शिराओं का संकोच, इन सब त्रासदायक उपद्रवों को भी ताल भस्म दूर करती है। इन उपद्रवों में बार-बार बेहोशी या मूर्च्छा हो जाना अति कष्टप्रद है। इसे असाध्य कहें तो भी बाधा नहीं।

वातरक्त का विकार अति त्रासदायक और दीर्घकाल टिकने वाला है। कुछ दिन तक अच्छा हो गया, ऐसा भासता है, परन्तु थोड़ा-सा कारण मिलने पर पुनः बलपूर्वक उभर आता है। सारे लक्षण विलक्षण वेग सह उपस्थित होते हैं। कितने ही रोगियों को वातरक्त शमन होकर विसर्प, ब्यूची, फोड़े-फुन्सियां खाज सारे शरीर में सूखी खुजली, स्थान-स्थान पर रक्त दूषित होकर चकत्ते हो जाना, गांठें हो जाना, सारा शरीर काला हो जाना इत्यादि लक्षण होते हैं। इन सब पर ताल भस्म अच्छा लाभ पहुँचाती है। अनुपान रूप से अनन्तमूल, चोपचीनी आदि रक्तशोधक औषध देनी चाहिये।

तालभस्म का उपयोग वातरक्त के समान कुष्ठ रोग में भी होता है। आयुर्वेद ने अनेक त्वचा के रोगों का कुष्ठ में अन्तर्भाव किया है। इसमें पामा, कच्छू, दद्रु आदि उपकुष्ठ (त्वचा के रोगों) में हरताल की अपेक्षा गन्धक रसायन का ही उपयोग करना अच्छा है। यदि इनमें भी कोई रोग जीर्ण, दृढ़ मूलवाला और अति त्रासदायक हो, तो उस पर हरताल का उपयोग मंजिष्ठादि अर्क के साथ किया जाता है। शेष महाकुष्ठों में दोष-दूष्यों को देखकर हरताल का उपयोग करना चाहिये। ताल भस्म कुष्ठ रोगों में अति प्रशस्त औषधि है। मात्र पित्तप्रधान दुष्टि या केवल रक्तविशिष्ठ दुष्टि होने पर ताल भस्म का चाहिए वैसा उपयोग नहीं होता। शेष वात-कफ, इन दो दोष प्रधान दुष्टि और त्वचा, मांस, लसीका, ये दूष्य होने पर कुष्ठ रोग में तालभस्म अमृतरूप है। योग्य परिमाण और अवस्था में तालभस्म की योजना की जाय, तो कुष्ठ रोग निःसन्देह दूर होते हैं।

त्वचा काली या लाल-काली, शुष्क, कठोर, स्थान पर फटीसी और अत्यन्त वेदना युक्त हो ऐसे कुष्ठ को वात-प्रधान से उत्पन्न हुआ समझकर उस पर ताल भस्म का उपयोग करना चाहिये। कपाल, उदुम्बर, मंडल, सिध्म, काकण, पुंडरीक, ऋष्यजिह्व ये सात महाकुष्ठ हैं। इनमें उदुम्बर कुष्ठ में दाह, लाली, खाज, अत्यन्त वेदना और रोंगटे मुर्झाये हुये मलिन-से होते हैं, तथा कुष्ठ का भाग पक्के गूलर के फल के समान लाल ऊपर उठा हुआ होता है। मात्र इस कुष्ठ पर ताल भस्म नहीं दी जाती। शेष महाकुष्ठों पर दोष दूष्यों का विचार करके देनी चाहिये।

जिस कुष्ठ का रंग श्वेत या लाल हो, स्थान गाढ़ा और प्रस्वेद आता ही रहता हो तथा ऊपर उठा हुआ और तेजस्वी मण्डल समान जो भासता हो, वह मण्डल कुष्ठ है। इस कुष्ठ को कष्टसाध्य माना है तथापि इस पर भी तालभस्म का उपयोग होता है।

जिस कुष्ठ की त्वचा फटी-सी, किनारी लाल वर्ण की भीतर का भाग काला, अति वेदना वाला और लम्बा मण्डल हो वह ऋष्यजिह्व है। जिस कुष्ठ का भाग श्वेत-सा, काला वर्ण का, किनारी लाल और कमल के पत्ते के समान सर्वाङ्गपर फैला हुआ और ऊपर उठा हुआ हो, उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहा जाता है। जिस कुष्ठ का वर्ण बिल्कुल गुञ्जा के समान लाल और भयंकर वेदना वाला हो, वह काकण कुष्ठ है। इन सब पर ताल भस्म का सेवन हितकर है।

फिरंग रोग की तीव्र और जीर्ण, दोनों अवस्थाओं में हरताल का अच्छा उपयोग होता है। इस रोग की प्रथमावस्था में चट्टा कहीं भी न हो ऐसी स्थिति में तो पारदभस्म, रसकपूर और अमीररस इन सबका ही उपयोग अच्छा होता है। परन्तु तमाम उपद्रवों का प्रादुर्भाव हुआ हो अथवा होने की सम्भावना हो तो ताल भस्म का उपयोग करना चाहिये। यदि उपदंश का विष दोष दूष्यों में अधिक गहरा न गया हो; तब तक तो पारद कल्प का उपयोग हितकर है। परन्तु जब विष गहराई में जाकर त्वचा, मांस आदि दूष्यों को दूषितकर देता है; तब तालभस्म का उपयोग अच्छा होता है। तीव्र विकार में पारद तथा जीर्णावस्था में तालभस्म और मल्लकल्प की औषधियाँ अवस्था क्रम से उपयोग में ली जाती है। विकार में दोष-दूष्यादि के तारतम्य को देखकर औषधि योजना की जाती है अर्थात् पित्तदोष और रक्त दूष्य (इनकी प्रधानता) होने पर पित्तशामक और रक्तप्रसादन करने वाली औषधि (अनुपान) के साथ हरताल देनी चाहिये।

उपदंश के भी अनेक उपद्रव होते हैं-उपद्रव अर्थात् व्याधि के पश्चात् उत्पन्न होने वाले अन्य स्पष्ट रोग। ऐसे उपदंश के अनेक उपद्रवों में गलत्कुष्ट और गुदशूक (मांसकीलक-Condyloma), इन दोनों पर हरताल का विशेष अच्छा प्रभाव पड़ता है। अन्य उपद्रवों पर हरताल का उपयोग नहीं होता, ऐसा नहीं। परन्तु अन्य विकारों पर भी हरताल हितावह ही है। हरताल अन्य कुष्ठ की अपेक्षा उपदंशजन्य कुष्ठ पर सत्वर अच्छा लाभ पहुँचाती है। उपदंशज कुष्ठ और अन्य कुष्ठ, इनमें बहुत अन्तर है। यह कुष्ठ उपदंश के पश्चात् होता है। अन्य कुष्ठ के समान-इसमें अपने दोष-दूष्य नहीं होते। कुष्ठ के अवस्थाभेद अथवा जाति और लक्षण के अनुरोध से भेद नहीं होते। केवल एक ही प्रकार के लक्षण होकर और बढ़कर अन्त में गलत्कुष्ठ की प्राप्ति हो जाती है। प्रथमतः कान की पाली, नाक के अग्रभाग और गाल पर लाल चकत्ते हो जाते हैं। पश्चात् सारे शरीर पर वैसे चकत्ते होने लगते हैं। हाथ पैरों की अँगुलियाँ सूज जाती हैं। हाथ पैरों की संवेदना-शक्ति कम होती

जाती है; अर्थात् चुटकी भरने या अग्नि स्पर्श का भी बोध नहीं होता। संज्ञावाहिनियाँ बधिर हो जाती हैं। पश्चात् शोथ फूटने लगते हैं। उनमें से पूय निकलता रहता है। सारा शरीर सूज जाता है। सम्पूर्ण चेहरा और अङ्ग आदि भयानक विचित्र दीखने लगते हैं। इस अवस्था में भी हरताल का अच्छा उपयोग होता है। परन्तु गलत्कुष्ठ में जब तक शोथ फूटकर उसमें से पूय मात्र निकलता रहता है। तब तक ही औषधि या अन्य उपचार हो सकता है। एक समय अवयव जीर्ण होकर खण्डशः टूटकर गिरने लगे तब जैसा चाहिये वैसा उपयोग नहीं होता। यही मार्ग आनुवंशिक कुष्ठ को भी लागू होता है।

वातादिक दोषों के दुष्ट होने से होने वाला कुष्ठ निज और उपदंशज कुष्ठ दोनों में अनेक समय रोग बढ़ने पर वातवाहिनियाँ दुष्ट होकर स्पर्शासहत्व होता है अर्थात् थोड़ा-सा आघात होने पर भी भयंकर पीड़ा होने लगती है, थोड़ा-सा धक्का भी सहन नहीं होता, सहनशक्ति नष्ट होने से सारे शरीर से झनझनाहट होती रहती है, अनेक समय तो रोगी रोने लगता है या कतिपयों की वातवाहिनियाँ आकुंचित हो जाती हैं; जिससे स्नायु और मांस का भी संकोच हो जाता है। जिस भाग में दुष्टी हुई होगी; वह भाग सूखने के समान हो जाता है। इस प्रकार के लक्षणों में हरताल भस्म का उपयोग अच्छा होता है एवं उपदंश के उपद्रव रूप उत्पन्न हुये प्रमेह और अर्श रोग भी हरताल भस्म से अच्छे हो जाने के अनेक उदाहरण हैं।

उलट-उलट कर बार-बार आने वाले ज्वर (परिवर्तित ज्वर) पर हरताल का विशेष उपयोग होता है एवं साधारण शीतपूर्वक ज्वर (विषमज्वर और कफ प्रधानज्वर) पर भी यह दी जाती है।

सन्निपात में कफ और वातप्रकोप दूर करने के लिये इसका उपयोग होता है। इसके सेवन से शीत और बेहोशी जल्दी शमन होती है, वातवाहिनियां सशक्त बनती हैं और रोगी सचेत हो जाता है। सन्निपात में अदरक के रस के साथ देनी चाहिये।

यह भस्म वात और कफ दोष, रस, रक्त, मांस ये दूष्य तथा त्वचा, शाखा (हाथ-पैर), यकृत्, इन स्थानों पर अधिक लाभ पहुँचाती है। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना-पित्तप्रधान कुष्ठ और पित्तप्रधान वातरक्त में हरताल नहीं देनी चाहिये। हरताल भस्म के सेवन काल में सूर्य का ताप, नमक, खटाई, मिर्च, तैल आदि हानिकर वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिये। आवश्यकता पर भोजन में थोड़ा सैंधा नमक और काली मिर्च मिला लें।

बद्धकोष्ठ या मूत्रावरोध रहने पर हरताल विशेष लाभ नहीं पहुँचा सकती। अतः पहले कोष्ठ-शुद्धि कर लेनी चाहिये।

जीर्ण विकार में मात्रा कम देनी चाहिये एवं बार-बार १०-१५ दिन के पश्चात् ३-३ रोज सेवन बन्द करना चाहिये; जिससे औषधि सत्व रस, रक्त आदि में अच्छी रीति से मिल जाय।

दूसरी विधि-जल से शोधित तपकिया हरताल २ तोले और शुक्ति भस्म २ तोले की ३ घन्टे घींकुवार के रस में खरल कर पूरी जैसी टिकिया बनाकर धूप में सुखावें। फिर सराव में संपुट कर २ सेर कण्डों की अग्नि देवें। शीतल होने पर निकाल लेवें। इसमें से हरताल कुछ उड़ जाती है तो भी काम अच्छा देती है। (र.त.)

मात्रा-१/२ से २ रत्ती। दिन में २ समय।

उपयोग-यह भस्म कुष्ठ, नवीन ज्वर, जीर्ण ज्वर और विषम ज्वर को दूर करती है। विषम ज्वर आने के ३ घण्टे पहले ३ माशे मिश्री के साथ देवें। पुनः दो घण्टे बाद देवें। इसे कुष्ठ रोग पर विशेष हितावह माना है।

(३६) मल्ल भस्म

प्रथम विधि-१६ तोले शोरे को वर्षा के जल में खरल करके पोली नली बनावें। फिर उसमें उतना ही हाथी दांत का बुरादा भर हँडिया में रखकर चूल्हे पर चढ़ावे। नीचे अग्नि देने से दोनों मिश्रित होकर निर्धूम भस्म बन जायेगी। फिर नीचे उतार पीसकर भस्म को बोतल में भरें। इस भस्म में से २ तोले भस्म को सराव में रख ऊपर १ तोला मल्लका टुकड़ा रखें। पुनः ऊपर २ तोले भस्म डाल सराव संपुटकर लावक पुट देवें। अर्थात ९ इञ्च ऊँचाई वाली तुषों की या गोबरी के चूर्ण की अग्नि में फूँक देने से सफेद मुलायम भस्म बन जाती है। (र.त.)

वक्तव्य-(अ) यह मल्ल भस्म, तेजस्वी सफेद रंग की बन जाती है, कुछ क्षार मिल जाने से वजन बढ़ जाता है। परन्तु काम अच्छा देती है। मल्ल भस्म के बाहर क्षारमिश्रित मलिन सफेद रंग वाली भस्म लगी रहती है जो सरलता से बिखर जाती है। उसे हटा देनी चाहिये।

(आ) जिस भस्म में से मल्ल पूरा-पूरा उड़ जाय, वह निर्धूम बन जाती है। मल्ल जिसमें पूर्णांश में रहा हो, वह निर्धूम नहीं बनती। उसका निर्णय, रोगियों को कितना लाभ हुआ है? उस पर से करना चाहिये।

मात्रा-आधे चावल से एक चावल तक। मुनक्का में रखकर निगल जायँ। ऊपर दूध में घी मिलाकर पीवें अथवा पहिले घी पिलाकर औषधि

देवें। अन्य रोगों में रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–इस भस्म के सेवन से कास, श्वास, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, उपदंश, चर्मरोग, आमवात, शीतज्वर, कोढ़, पक्षाघात और नामर्दी आदि रोग नष्ट होते हैं।

सामान्यतः सोमल तीक्ष्ण और उष्ण-वीर्य होने से कफ और आम का शमन करता है पित्त की वृद्धि करता है तथा रक्ताभिसरण क्रिया को बढ़ाता है। कीटाणुनाशक होने से रक्त, मांस, अस्थि और मज्जा में रहे हुए विषम ज्वर, उपदंश और कुष्ठ आदि के कीटाणुओं को नष्ट करता है तथा उपदंश से उत्पन्न उपद्रव, गुदशूक (Condyloma), नासाव्रण, तालुव्रण, पक्ष्मव्रण, नेत्रव्रण, नाड़ीव्रण, अतिसार, अन्त्रविकार, पक्षाघात आदि को भी दूर करता है। फुफ्फुस हृदय और वातवाहिनी को उत्तेजना देता है। यदि कफ प्रधान सन्निपात में आरम्भ से ही सोमल का उपयोग किया जाय, तो रोग का बल नहीं बढ़ सकता। बेहोशी, गले मे कफ का बोलना, नाड़ी मन्द, शरीर शीतल और भ्रम आदि लक्षण हों, कफ को बाहर फेंकने की वातवाहिनियों में शक्ति न रही हो, ऐसे समय पर सोमल अपना प्रभाव तत्काल दिखाता है। किन्तु यदि ज्वर १०१ डिग्री से ज्यादा हो, नेत्र लाल हों, पित्त-प्रधान अन्य लक्षण भी प्रतीत होते हों, तो ऐसी स्थिति में सोमल का उपयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा रक्ताभिसरण क्रिया के वेग की वृद्धि होकर मस्तक पर रक्त अधिक चढ़ता है जिससे व्याकुलता बढ़ जाती है।

सूचना–कास श्वासादि रोगों में अधिक कफवृद्धि होने पर सोमल की मात्रा कम देनी चाहिये। अन्यथा कफप्रकोप, हृदयावरोध, नेत्रदाह, उदरपीड़ा, शिरदर्द, संधिस्थानों में पीड़ा, वृक्क स्थान में उष्णता इत्यादि विकृतियाँ होने लगती हैं एवं पेशाब थोड़ा और पीला होकर ज्वर हो जाता है। कदाच ऐसा हो तो मोती और शिलाजीत देकर उपद्रव को शमन करें। तत्पश्चात् ३ दिन के बाद आवश्यकता हो तो पुनः स्वल्प मात्रा मे सोमल देना आरम्भ करें।

द्वितीय विधि–संखिया, कलमीशोरा, चूना, सीप भस्म, सोहागा का फूला हर एक दो-दो तोले और नौसादर सलाई वाला १६ तोले लेवें। सबको महीन-पीस आठ तोले आक के दूध में खरलकर दो-दो तोले की टिकियाँ बना सराव सम्पुट में रख कपड़मिट्टी करें। सूखने पर २॥ सेर कंडों की अग्नि देने से काले रंग की भस्म बन जाती है। भस्म वजन से कम उतरती है पर लाभ अच्छा करती है। (धन्वन्तरि)

मात्रा–आधी रत्ती से एक रत्ती तक, अदरक के रस या दूध मिश्री अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह भस्म वातव्याधि, अर्द्धाङ्गवायु, गठिया, जीर्णज्वर, नया वातज्वर, कफज्वर, सन्निपात आदि को मिटाती है। निमोनिया रोग में खूब फायदा करती है; स्वेद लाकर ज्वर को घटाती है एवं गलगण्ड और बवासीर में भी लाभदायक है।

तृतीय विधि–सफेद संखिया १ तोला और शुक्तिभस्म दो तोले लेकर आक के पत्तों के रस में १२ घण्टे घोटकर टिकिया बांधे। फिर सुखा संपुटकर दो सेर गोबरी की अग्नि में फूंक देवें।

मात्रा–आध-आध रत्ती। दिन में दो बार, शहद के साथ देवें।

उपयोग–यह भस्म कफपित्तात्मक श्वास, खाँसी, मन्दाग्नि, उदररोग रक्तविकार, नारू और चर्मरोग में लाभदायक है। अत्यधिक शराब पीने पर होने वाली उबाक, वमन, आमाशय-दाह और बेचेनी आदि को दूर करती है।

सूचना–श्वास के रोगी को सुबह १ से २ तोले घी पिलाकर भस्म देवें। शाम को घी पिलाने की जरूरत नहीं है अथवा घी के बदले शहद और पीपल के साथ देकर ऊपर दूध पिलावें।

(३७) शृङ्ग भस्म

विधि–बारहसिंगे के सीगों के शुद्ध सूखे टुकड़ों के वजन से ४ गुने आक के पत्तों को कूटकर लुगदी बनावें। इसमें से आधी लुगदी कपड़े पर बिछा ऊपर बारहसिंगे के सीगों के टुकड़े रख, शेष आधी लुगदी को ऊपर रख पोटली बाँधकर मजबूत, कपड़मिट्टी करें। पोटली के सीगों के टुकड़े एक दूसरे से न मिल जायँ यह सम्हालें। कपड़मिट्टी सूखने पर गजपुट देने से सफेद रंग की मुलायम भस्म हो जाती है। कदाचित् भस्म में से कोई टुकड़ा काला या कच्चा रह जाय तो उसे आक के रस में ३ घण्टे खरलकर टिकिया बना संपुट करें दूसरी बार गजपुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है। (ब्र. स्वा. सदानन्दगिरिजी)

उपर्युक्त विधि से घीकुंवार के गर्भ को बिछा उसमें सींगों के टुकड़े रख कर भी भस्म बनाई जाती है किन्तु यह भस्म अपेक्षाकृत न्यून गुण वाली होती है।

सूचना–शुष्क कास में श्रृङ्ग भस्म नहीं देनी चाहिये। आक के पत्तों की लुगदी की अपेक्षा घीकुंवार के गर्भ में संपुट करके बनाई हुई भस्म सौम्य होती है। यद्यपि तीक्ष्ण रोगों में उग्र भस्म लाभदायक है तथापि कोमल प्रकृति वालों के लिये सौम्य भस्म हितकर है।

मात्रा–१ से ३ रत्ती। १ दिन में २ समय कफ को बाहर निकालने के लिये मिश्री के साथ। पतले कफ के शोषण के लिये शहद या नागरबेल के पान के साथ शूल पर पीपल के चूर्ण और शहद के साथ। क्षय के ताप में प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व के साथ। मृद्वस्थि

रोग में प्रवालपिष्टी या गोदन्ती के साथ। श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) पर श्रृङ्गभस्म, मोर की चन्द्रिका की भस्म और १-१ तोला अष्टांगावलेह के साथ देकर ऊपर सोंठ मिली हुई चाय पिलावें।

उपयोग-श्रृङ्ग भस्म श्वास, खांसी, पार्श्वशूल, फुफ्फुस सन्निपात निमोनिया (Pneumonia fever), बालकों का पसली रोग (Broncho pneumonia) नया फुफ्फुसावरण शोथ (उरस्तोय Pleurssy), वातश्लेष्मज्वर (Influenza), जीर्णज्वर, निद्रानाश, सेन्द्रियविष जनित अस्थिविकार, राजयक्ष्मा में ज्वर, जुकाम, हृदयशूल, मन्दाग्नि, वृक्कव्रण, दाँत में से पूय निकलना (Pyorrhoea) और बालकों के अस्थिवक्रता रोग (Rickets) आदि का शमन करती है।

श्रृङ्ग भस्म का मुख्य गुण ज्वरघ्न, शक्तिवर्द्धक, कफस्राव का नियमन करना, फुफ्फुसों में रहे हुए कफ दोष की साम्यावस्था स्थापित करके फुफ्फुस कोषों को शक्ति देना, हृदय को शक्ति देना, क्षय की प्रथमावस्था में क्षय के कीटाणुओं का नियमन कर क्षय को बढ़ने न देना इत्यादि है। इसमेंसे अन्तिम कार्य श्रृङ्ग भस्म के योग से फुफ्फुस के अथवा अन्य स्थान के शारिरिक घटक सुदृढ़ होकर क्षय के कीटाणु या क्षयजन्य विष नष्ट होने पर होता है। श्रृङ्ग भस्म से क्षय का विष बिल्कुल नष्ट हो जाता है, ऐसा नहीं। क्षयजन्य विष को निर्विष करने वाली अथवा क्षयज कीटाणुओं को मारने वाली कीटाणुनाशक औषधि सुवर्णभस्म है। परन्तु श्रृङ्गभस्म का उपयोग ऊपर लिखे अनुसार (कीटाणुओं की वृद्धि को रोक देना) होने से क्षय हो जाने का सन्देह होने पर तुरन्त श्रृङ्गभस्म और प्रवाल भस्म को मिलाकर देते रहने से क्षय नहीं होता और क्षय रोग से बच जाता है। ऐसे समय पर इस भस्म को १ रत्ती से प्रारम्भ कर क्रमशः ६ रत्ती तक बढ़ानी चाहिये।

श्वासनलिका में से कफ का परिणाम से अधिक स्राव होता हो तो उसे श्रृङ्ग भस्म नियमित कर कफविकार को दूर करती है। वासा (अडूसा) श्वासवाहिनियों में कफस्राव ज्यादा कराने वाला है। मुलहठी श्वासवाहिनियों के उपताप का शमन करती है अर्थात् यह मधुर चिपचिपा, पतला और कोमल रस उत्पन्न करने वाली होने से उपताप कम हो जाता है। जब कण्ठदाह, कण्ठशोथ, फुन्सियां और उपजिह्वा आदि के दोष से खाँसी आती है तब बहेड़े में स्तम्भक के गुण होने से यह उपयोगी होता है। इस रीति से खांसी के पृथक्-पृथक् कारणों के अनुरोध से भिन्न-भिन्न औषधि उपयोग में ली जाती है।

श्रृङ्गभस्म वातजन्य शुष्क कास में नहीं देनी चाहिए अन्यथा श्वासवाहिनियाँ शुष्क होकर खांसी बढ़ जायेगी। परन्तु बालकों की काली खांसी (Whooping cough) और उसके समान संक्रामक कास में श्रृङ्गभस्म का अच्छा उपयोग होता है। फुफ्फुसों या श्वासवाहिनियों के प्रदाह के पश्चात् उत्पन्न होने वाली खांसी में एवं कफ संचयजनित कास में श्रृङ्गभस्म उत्तम लाभदायक है। साँभर के सींगों की अपेक्षा छोटे बच्चों के लिये हिरण के सींगों की भस्म विशेष उपयोगी है। हिरण के सींगों की भस्म साँभर सींगों के समान की जाती है।

फुफ्फुस सन्निपात (निमोनिया Pneumonia) के पश्चात् प्रायः उरस्थ कफ संचय ज्यादा होता है। यह संचय अनेक समय कई दिनों तक त्रास पहुँचाता है। कफ दुर्गन्धयुक्त चिपचिपा, पीले रंग का निकलता है। ऐसे कफ को सत्वर निकाल देना चाहिये, तथा फिर से नयी दूषित कफ की उत्पत्ति को रोकने के लिये भीतर के अवयवों को निर्दोष और बलवान बनाना चाहिये। इन सब कार्यों के लिये उत्तम औषध की योजना करें, तो श्रृंगभस्म और रससिन्दूर को मिला अडूसा, मुलहठी, बहेड़ा और मिश्री के क्वाथ के साथ दिन में ३ बार देना चाहिये तथा पञ्चगुण तैल और नारायण तैल को मिला गुनगुना कर; छाती पर मालिश करने और गरम जल से सेक करने पर सत्वर लाभ होता है।

कतिपय समय इस प्रकार का कफस्राव-न्यून होने पर या कफ की दुर्गन्ध न्यून होने पर भी अन्तर में कोई एकाध भाग दुष्ट बना हुआ शेष रह जाता है; जिससे कुछ काल के पश्चात् उस भाग में दोष संचय की वृद्धि होती है और दोष बढ़कर ज्वर आने लगता है। इस प्रकार के ज्वर में त्रास ज्यादा नहीं होता, तथापि रोगी की शक्ति क्षीण होती जाती है। ऐसी परिस्थिति में अन्य ज्वरघ्न औषधि की अपेक्षा श्रृङ्गभस्म विशेष हितकर है। उसके साथ रस सिन्दूर स्वल्प परिमाण में मिलाकर देने से फुफ्फुसों में से मलद्रव्य और दोष-दुष्टी नष्ट होने से अच्छी सहायता मिल जाती है। यह दुष्टी दूर होने पर सूक्ष्म ज्वर स्वयमेव शमन हो जाता है।

श्रृङ्गभस्म हृदयपौष्टिक है। हृदय के शूल का विकार जीर्ण होने पर हृदय में विशेष विकृति न हो; हृदयेन्द्रिय मात्र की सामान्य निर्बलता ही कारण हो और स्नायु निर्बल हुए हों तो ऐसी स्थिति में श्रृङ्गभस्म को घी के साथ अवश्य देनी चाहिये। अनेक दिवसों के उपवासों या मार्ग चलने के कारण या मस्तिष्क का श्रम अतिशय होने से हृदय में निर्बलता आई हो तो भी श्रृङ्गभस्म हितकर है। ऐसी अशक्ति के समय थोड़ा-सा कारण मिलने पर उत्पन्न होने वाली घबराहट, हृदय के वेग की वृद्धि, कान में आवाज और नाड़ियाँ उड़ती हों, ऐसा रोगी को भास होता हो, तो श्रृङ्गभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म का मिश्रण देना लाभदायक है। हृदय की निर्बलता से उत्पन्न कास, रक्त में आई हुई निर्बलता, मुँह और सारे शरीर पर आया हुआ कफजन्य शोथ अथवा शोथ समान मुँह फूला हुआ-सा भासना आदि विकृति में यह हितकारक है।

श्रृङ्गभस्म का उपयोग करके निर्जन्तुक क्षय एंव जन्तुजन्य क्षय दोनों पर अनेक समय अनुभव किया है। इसके योग से क्षय रोग के ज्वर और कास दोनों जल्दी दूर होते हैं। इतना ही नहीं, क्षय के कीटाणुओं का नियमन, वृद्धि न होने देना, ऐसा राजयक्ष्मा के कीटाणुओं पर भी

परिणाम होता है। इस भस्म का सेवन आरम्भ होने पर उसी समय से क्षय के कीटाणुओं का आगे बढ़ने वाला पैर पीछे पड़ता है। राजयक्ष्मा में रोगी बिल्कुल घबरा न गया हो, बलमांस विहीनत्व न हुई हो, तो श्रृङ्गभस्म का बहुत अच्छा उपयोग होता है। क्षय की बिल्कुल प्रथमावस्था में इस भस्म का उपयोग करने लगे तो रोगी बहुत करके अच्छा हो ही जाता है। इस कारण से क्षय रोग में श्रृङ्गभस्म अनेक औषधियों में से एक उत्तम औषधि है, ऐसा कहने में अतिशयोक्ति नहीं है। क्षय रोग मे अभ्रकभस्म, सुवर्णभस्म और श्रृङ्गभस्म तीनों एकत्र करके देने से सत्वर लाभ पहुँचता है। तद्वत् शरीर में रहे हुए सूक्ष्म ज्वर पर भी इसका उपयोग अच्छा होता है।

बालकों की बालशोष व्याधि जिससे बहुत कमजोर, हाथ-पैर शुष्क और पेट घड़े के समान हो जाता है; इस पर श्रृङ्गभस्म और प्रवालपिष्टी के मिश्रण का अच्छा उपयोग होता है।

मूत्रपिण्ड के विकार पूयवृक्क और वृक्कव्रण में वंगभस्म या अन्य औषधि के साथ श्रृङ्ग देने से पूय सत्वर सूखने लगता है। रोगी को अधिक त्रास होता हो, तो वह कम होकर रोग शीघ्र काबू में आ जाता है।

श्रृङ्ग भस्म विशेषतः कफदोष; रस, रक्त, अस्थि, मज्जा इन दूष्यों और श्वसनेन्द्रिय, हृदय, वृक्क (मूत्रपिण्ड) इन स्थानों पर लाभ पहुँचाती है। (औ.गु.ध.शा.)

श्रृङ्ग भस्म १ रत्ती और शुद्ध नौसादर ४ रत्ती गुनगुने जल के साथ देने से नूतन प्रतिश्याय में कफस्राव जल्दी होकर थोड़े ही समय से प्रतिश्याय और सिरदर्द दूर हो जाता है।

कास रोग के साथ कितनों ही को श्वासरोग भी होता है। रोग जीर्ण होने पर बार-बार कास चलती रहती है और १०-२० बार खांसने पर कफ गिरता है, कभी-कभी झागदार वान्ति हो जाती है; बोलने में श्वास भर जाता है; और शीतकाल में बैठे-बैठे रात्रि काटनी पड़ती है। गर्मी के दिनों में त्रास कम रहता है। इस विकार पर श्रृङ्गभस्म २ रत्ती के साथ रस सिंदूर १ रत्ती मिला तुलसी के रस और शहद के साथ दिन में २ बार देते रहने से शनै-शनैः छाती सबल होकर कास और श्वास दोनों रोग निवृत्त हो जाते हैं।

यदि श्वास रोग में कफ संगृहीत हो जाने से अति त्रास हो तो, तो श्रृङ्गभस्म के साथ मल्लसिंदूर (दूसरी विधि) और त्रिकटु मिलाकर ४-४ घण्टे शहद के साथ देते रहें और ऊपर चाय पिलाते रहें तो एक दिन में घबराहट दूर हो जाती है। किन्तु जितना कफ अधिक गाढ़ा हो उनको मल्लसिंदूर न देकर श्रृङ्ग, अभ्रक; समीरपन्नग और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर ४-४ घण्टे पर देना चाहिये। समीरपन्नग मिलाने से कफ सरलता से बाहर निकल आता है।

सेन्द्रिय विष या कीटाणुओं के रक्त में प्रवेश होने पर नखों की रचना अव्यवस्थित और विकृत होने लगती है। बहुधा फिरङ्ग रोग के विष से ऐसा होता ही है एवं उदर मे सूक्ष्म कृमि दीर्घकाल पर्यन्त रह जाने पर भी नख बैठे हुए, विकृत और अनियमित मोटे-से बन जाते हैं। उस पर यह भस्म दोपहर के भोजन के समय अमृतासत्व, नागरमोथा और आँवले के चूर्ण के साथ सेवन करा ऊपर भृंगराज तैल ६ माशे पिलाया जाता है। इस तरह सेवन करने पर १-२ मास में नखविकृति दूर हो जाती है।

निद्रानाश-उत्तेजक भोजन, चाय, कॉफी आदि उत्तेजक पेय, या अति उग्र औषधि सेवन पर निद्रा नहीं आती। कईयों को बिल्कुल शान्ति नहीं मिलती एवं कईयों को अशान्त निद्रा मिलती है। इस निद्रानाश पर श्रृङ्गभस्म ४-४ रत्ती दिन में २ बार शहद के साथ दी जाती है। यदि रोगी अम्ल पित्त, दाह आदि से पीड़ित भी हो, तो सूतशेखर और कामदुधा भी मिला लिया जाता है।

(३८) संगेयशव भस्म

विधि-शुद्ध संगेयशव को गावजवां के क्वाथ में ६ घण्टे खरल कर २-२ तोले की टिकिया बना सूर्य के ताप में सुखा, सराव में ऊपर नीचे गावजवां का कल्क रख, सम्पुट करके सुखा लेवें। बाद मे गजपुट अग्नि देवें। इस रीति से ६ समय गजपुट देने से भस्म मुलायम हो जाती है। (वैद्यराज पं. श्री गंगादत्तजी पन्त)

दूसरी विधि-(संगेयसव पिष्टी) शुद्ध संगेयशव को गावजवां के क्वाथ में १४ समय बुझा, अर्क गावजवां या केवड़ा के साथ ७ दिन खरल करके पिष्टी बना लेवें।

मात्रा-१ से ३ रत्ती। दिन में २ समय, शहद के साथ देवें।

उपयोग-यह भस्म हृदय की धड़कन और उष्णता को दूर करके हृदय को बलवान बनाती है। निद्रानाश, हिस्टीरिया, मूर्च्छा, वातवाहिनियों की निर्बलता, मस्तिष्क की उष्णता, स्वेदाधिक्य, आमाशय की अशक्ति और धातु की निर्बलता को दूर करती है तथा स्मरणशक्ति को बढ़ाती है।

हृदय निर्बल हो जाने पर हृदय स्पन्दन बढ़ जाता है। मुखमण्डल निस्तेज हो जाता है। पचन क्रिया मन्द बन जाती है। थोड़ा-सा परिश्रम

करने से श्वास भर जाता है। अनेकों को शिर में भारीपन हो जाता है। कितनों ही को कफवृद्धि होती है। उसके लिये संगेयशव भस्म, जहरमो पिष्टी, रससिंदूर और लवंगादि चूर्ण का मिश्रण कर मक्खन मिश्री के साथ देना हितकर है।

संगेयशव को जल में पीस, दूध-मिश्री मिलाकर भी पिलाया जाता है। अनेक मुसलमान संगेयशव का ताबीज बनाकर हृदय के रक्षण लिये बालकों के गले में बाँधते हैं।

(३९) संगजराहत भस्म

विधि–गावजवाँ क्वाथ में १४ समय बुझाये हुए गोदन्ती के समान उज्ज्वल संगजराहत के टुकड़े ४० तोले को ऊपर नीचे हांडी में २ घीकुंवार के गूदे के बीच में रख संपुट कर, गजपुट देवें। स्वांग शीतल होने पर भस्म निकाल कर पीस लेवें।

मात्रा–४ से ८ रत्ती तक दिन में दो समय देवें।

अनुपान–पूयमेह में मक्खन के साथ सुबह २१ दिन तक। प्रदर में चावल के धोवन के साथ। अंतड़ी के क्षत और शोथ होकर र और पूय सहित अतिसार हुआ हो तो गिलोय सत्व और शहद या मठ्ठे अथवा बकरी के दूध के साथ। उर:क्षत जीर्णज्वर, रक्तपित्त और रक्त कफकास में मलाई, मिश्री अथवा समान सोनागेरू मिलाकर अनार शर्बत के साथ। छुरी आदि लगने से होने वाले रक्तस्राव को बन्द कराने लिये घाव के ऊपर इस भस्म को दबा देनी चाहिये।

उपयोग–यह भस्म पूयमेह (सुजाक), श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, धातुदौर्बल्य, उर:क्षत, अतिसार, मुंह के छाले, दाह, रक्तपित्त आदि को करती है। दंतमंजन मे मिलाने से दांतों को सफेद बनाती है और पूय को बन्द करती है। कर्ण स्राव में इस भस्म को कान में डाल ऊपर नी का रस २-२ बूंद डालते रहने से थोड़े ही दिनों में आराम हो जाता है।

(४०) संगेयहूद (हिजरलयहूद) भस्म

विधि–शुद्ध संगेयहूद को धमासे की लुगदी में रखकर संपुट करें। २० तोले संगेयहूद के लिये ८० तोले धमासे की लुगदी लेवें। सं सूखने पर गजपुट में फूंक देवें। स्वांग शीतल होने पर संपुट में से संगेयहूद को निकाल, मूली के पत्तों के रस में १२ घण्टे घोट, छोटी छोटी टिकिया बाँध, सूर्य के ताप में सुखा लेवें। फिर सराव-संपुटकर, गजपुट देने से मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा–२ से ४ रत्ती, शर्बत-बजूरी या शक्कर के जल के साथ, १-१ घण्टे बाद या आवश्यतानुसार २-३ बार दें।

उपयोग–अश्मरी, शर्करा, मूत्रावरोध आदि को दूर करती है। मूत्राशय की पथरी को तोड़कर मूत्र के साथ बाहर निकाल देती है। अश्म बहुत बड़ी हो तो इसे अधिक मात्रा में ८-९० दिन तक रोज सुबह देते रहने से बिना ऑपरेशन पथरी कटकर रोग शमन हो जाता है।

द्वितीय विधि–बड़े बिच्छू ५ नग लेकर उनको कूटकर मध्य में एक तोला हिजरलयहूद रखकर २ मिट्टी के प्यालों में बन्द करके कपरो करके ५ सेर जंगली उपलों की आंच दें, शीतल होने पर निकाल लें, और बिच्छु की राख समेत पीस लें।

मात्रा–१ रत्ती, शीरा तुख्म खरपजा, शीरा तुख्म खयारैन, शीरा गोखरू प्रत्येक ३ माशा, शरबत बजूरी दो तोला के साथ प्रयोग करें

गुण–वृक्क तथा मूत्राशय की पथरी में अत्यन्त उपयोगी है। वृक्कशूल तथा मूत्रावरोध में भी लाभकारी है।

वक्तव्य–अनेक हकीम संगेयहूद को जल के साथ घिस करके उपयोग में लेते हैं। ऐसे ही पिष्टी बनाकर भी प्रयुक्त करते हैं।

(४१) पीतल भस्म

विधि–२० तोले शुद्ध पीतल के पतरे के छोटे-छोटे टुकड़े करें। फिर मैनसिल और गन्धक २०-२० तोले को नींबू के रस में खरल टुकड़ों पर लेपकर सुखा लेवें। यदि पीतल का बुरादा कर लिया हो तो मैनसिल और गंधक मिलाकर नींबू के रस में खरल कर गोला बाँ फिर सूर्य के ताप में सुखा गोले को या उन लेप किये हुये टुकड़ों को सराव संपुटकर गजपुट अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल, पु उपरोक्त विधि अनुसार मैनसिल; गन्धक केसाथ मिला नींबू के रस से खरलकर, गोला-बाँध गजपुट देवें। इस तरह ८ गजपुट देवें। पश्च १ पुट बड़े नींबू के रस का देने से भस्म निर्दोष और विशेष लाभदायक बनती है। (र.र.स.

वक्तव्य–मात्र गन्धक दूनी ली जाय तो भस्म जल्दी बनती है और अधिक मुलायम बनती है। नींबू के रस के १ पुट के स्थान पर क से कम सात पुट देना चाहिए या दही के पुट देना चाहिये, तभी इच्छित लाभ पहुँच सकता है।

मात्रा–१/२ से १ रत्ती शहद, मीठे अनारदानों के रस या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुणधर्म–पीतल भस्म उष्णवीर्य और शीतल है। रूक्ष, लवण रसवाली, तिक्त (कड़वी) और दीपन-पाचन है। रक्तपित्त, श्वेत कुष्ठ, यकृ के दोष, प्लीहावृद्धि, दाह, तृषा, रक्तविकार, प्रमेह, अर्श, संग्रहणी, शूल, पाण्डु और कृमिरोगों का नाश करती है। विशेषत: कफपित्त जन

रोगों में यह व्यवहृत होती है।

उपयोग–इस भस्म का व्यवहार चिकित्सक वर्ग बहुत कम करते हैं। इस भस्म में ताम्र और जसद भस्म के मिश्रित गुण हैं; यह भस्म ताम्र समान उग्र या जसद समान शीतल भी नहीं है। जिन रोगियों से उदर रोग में ताम्र सहन नहीं होती एवं रसायनियों की विकृति में तथा शूल, संग्रहणी आदि में जसद भस्म लाभ नहीं पहुँचा सकती, उन रोगियों के लिये पीतल भस्म लाभदायक है।

(४२) कांस्य भस्म

विधि–शुद्ध कांसी के २० तोले बुरादे के साथ समान गन्धक और चौथा हिस्सा हरताल मिला, नीबूं के रस में खरलकर गोला बना, सूर्य के ताप में सुखा मजबूत संपुट करके ५ सेर आरण्य कण्डों की अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल पुनःपुन उपरोक्त विधि से ५-५ सेर आरण्य कण्डों की अग्नि देवें। इस रीति से ५ पुट देने के पश्चात् ४ गजपुट देने से उत्तम मुलायम भस्म तैयार होती है।(र.र.स.)

वक्तव्य–गुणवृद्धि के लिये ९ पुट देने के पश्चात् समान भाग दही में खरलकर गजपुट देवें। इस तरह और ३ पुट देने पर भस्म निर्दोष और तत्काल फलप्रद बनती है।

मात्रा–१ रत्ती से २ रत्ती तक। दिन में दो समय। शहद, गुलकन्द अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–काँसी भस्म लघु , तिक्त (कड़वी), उष्ण, लेखन, दृष्टि शुद्ध करने वाली, दीपन, हितकर और विशेषतः वातपित्तजनित रोगों की नाशक है। कृमि, कुष्ठ और रक्त विकार आदि रोगों का दमन करती है। कांस्य भस्म से त्वचा मुलायम बनती है। बहुमूत्र, प्रमेह, मूत्रकृच्छ और अन्य मूत्र रोगों में लाभदायक और नेत्र के लिये हितकर है।

इस भस्म में ताम्र और वंग के गुण सम्मिलित हैं। यह नेत्रों के लिये अति हितकर है। रक्तस्रावयुक्त रोग-रक्तपित्त, अर्श, रक्तातिसार, रक्तवमन, कफ में रक्त आना, मूत्र में रक्त जाना आदि पर प्रयुक्त होती है। आम का शोषण करती है, आंत में संचित सेन्द्रिय विष और कीटाणुओं को नष्ट करती है। अन्तरविद्रधि के पूय को सुखाती है, तथा पक्वाशय, मूत्राशय आदि की श्लैष्मिककला को मुलायम करती है।

सूचना–कांस्य भस्म प्रातः लेने के ३ घण्टे बाद भोजन करें। सायंकाल को भी ३ घण्टे का अन्तर रखें। कांस्य भस्म के सेवन करने पर ३ घण्टे तक घी वाला पदार्थ न खायें। रोग के कारण दूध अपथ्य न हो, तो अधिक मात्रा में सेवन करें। नींबू और तिल तैल का सेवन; रोग में अपथ्य न हो, तो कर सकते हैं।

(४३) वर्तलोह भस्म

विधि– शुद्ध वर्तलोह (जर्मन सिल्वर) को कांस्य भस्म में लिखी विधि से गंधक और हरताल मिला-मिलाकर नींबू के रस या अर्क दुग्ध के साथ खरलकर ५ गजपुट देने से भस्म बन जाती है। (र.र.स.)

मात्रा–१ से २ रत्ती शहद, शहद-पीपल, घृत, गिलोय-सत्व या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–काँसी, ताँबा, पीतल, कलई और शीशा इन ५ धातुओं के मिश्रण से भस्म बनती है। जिससे इस भस्म में पांचों के मिश्रित गुण और संयोग-जन्य गुण रहते हैं। इस भस्म को शास्त्रकारों ने शीतल, अम्ल, चरपरी, रूक्ष, कफपित्तनाशक, रुचिकर, त्वचा के रोगों को नाश करने वाली, कृमिघ्न, नेत्रों के लिये हितकर तथा योगवाही माना है। अनुपान भेद से अनेक रोगों का शमन कर सकती है। फिर भी इस भस्म का उपयोग बहुत कम अंश में होता है।

सूचना–इस भस्म के सेवन काल में खट्टे पदार्थ नहीं खाने चाहिये।

(४४) तुत्थ भस्म

विधि नीले थोथे की ३-४ तोले वजन की १ डली और २० तोले अरीठा लें। अरीठों के ऊपर के छिलके का सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर समान नापवाले दो सरावों में से एक में आधा चूर्ण नीचे, आधा ऊपर रख बीच में नीलाथोथा रखें। पश्चात् दूसरा सराव ऊपर ढककर कपड़मिट्टी करें। सराव संपुट में खाली जगह न रहनी चाहिये। संपुट सूखने पर १॥ सेर गोबरी की आँच देने से भस्म हो जाती है।

(श्री. पं. रामनाथजी त्रिवेदी)

मात्रा–३ से ६ रत्ती, रोटी अथवा बाटी के गर्भ में रखकर निगल जायें, ऊपर ले ५ से १० तोले घी पीवें। लगभग दो घण्टे पीछे एक दस्त होने पर पुनः ५ तोले घी पीवें। दूसरी बार दस्त होने पर फिर पांच तोले घी पीवें। इस रीति से उदर शुद्धि हो, विष विकार शमन हो, वमन, बेचैनी दूर हो, इसलिए सहन हो सके उतनी मात्रा में बार-बार घृतपान करते रहें। जब अच्छा विरेचन लगकर दस्त में केवल घी निकलें,

तब चावल-मूंग की खिचड़ी खावें।

घी किसी किसी को १०-१२ समय पिलाना पड़ता है। जल व खिचड़ी के सिवाय दूसरी वस्तु न देवें। दूसरे दिन भी केवल खिचड़ी खिलावें फिर प्रकृति के अनुकूल भोजन करें।

गुणधर्म-तुत्थ भस्म, लेखन, भेदन, कण्डूनाशक, ज्वरघ्न, रक्तविकार हर, कुष्ठघ्न और अर्शोहर है।

उपयोग-तुत्थ भस्म उपदंश, सुजाक, कुष्ठ, रक्तविकार, चर्मरोग, व्रण, विद्रधि विषम ज्वर, सर्पदंश और जंगम विष को दूर करती हैं। अजंन करने पर नेत्र के शुक्र, बेल, मांस वृद्धि आदि को नष्ट करती है। सुजाक के क्षत को भरने के लिए २ रत्ती तुत्थ भस्म को ६ औंस उबाले हुए जल में मिलाकर पिचकारी लगायी जाती है। विषमज्वर के वेग को दूर करने के लिए ज्वर आने के ४ घण्टे पहले १ रत्ती भस्म ६ माशे शक्कर के साथ ले लेवें। फिर २ घण्टे बाद दूसरी मात्रा लेने से ज्वर रुक जाता है।

तुत्थ भस्म के सेवन से उपदंश रोग एक ही दिन में चला जाता है। अशुद्ध रस कपूर वाली औषधि के सेवन से, नाना प्रकार के उपद्रव उत्पन्न हो गये हों, उनके लिए यह औषधि लाभदायक है।

उपदंश रोग में मांस तक दूषित हो गये हों, पित्त प्रकोप विशेष परिमाण में हो ऐसे समय पर तुत्थ भस्म अति उपयोगी है एवं विष विकार, दूषी विष प्रकोप, हृदयदाह, हृदयशूल, कुष्ठ, चित्रकुष्ठ, अम्लपित्त, मलावरोध और अर्श आदि को वमन और विरेचन करा, दूर करती है और शरीर को शुद्ध करती है।

सर्प विष पर नेत्र में अंजन करने से बेहोशी और निद्रा नहीं आने देती। जल मिश्रित करके सुँघाने से मस्तक में गया हुआ जहर नाक में से टपक-टपक कर दूर हो जाता है। खिलाने से वमन विरेचन होकर दूर होता है और दंशस्थान में नौसादर का चूर्ण डालते रहे जिससे जहर दूषित रक्त के साथ बाहर निकलता रहे। दंशस्थान के ऊपर की ओर बन्धन बंधा हो, वहाँ तक नौसादर मिले जल में कपड़ा भिगो-भिगोकर बार-बार पोंछते रहें; जिससे जहर वाला रक्त साफ होता रहे।

कितने ही चिकित्सक तुत्थ भस्म के साथ और औषधियाँ मिलाकर उपदंश -कुठारवटी बना लेते हैं जो बहुत अच्छा लाभ पहुँचाती है। वैद्यराज श्रीरामसिंहजी चौहान (शेगांव) नीलेथोथे को ४ गुने आम के अचार के साथ खरलकर टिकियाँ बांधते थे। फिर लघु गजपुट देकर भस्म बना लेते थे, जो लाल काली भस्म बनती है। फिर वह भस्म, कत्था और छोटी हरड़ ५-५ तोले तथा समुद फेन २॥ तोले मिला ६० नींबू के रस के साथ खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाते हैं। इन गोलियों में से एक-एक या दो-दो रोग और रोगी की शक्ति अनुसार प्रातःकाल १ समय अथवा प्रातःसायं दिन में दो समय अचार के आधे नींबू के साथ देते हैं। ऊपर से २० तोले दही पिलाते हैं। फिर ५-७ उड़द के बड़े तैल में तले हुए खिलाते हैं। इस तरह उपयोग करने पर विविध उपद्रवों सह असाध्य उपदंश रोग नष्ट हो जाता है। नया उपदंश, जीर्ण उपदंश, कोथसह उपदंश जिसमें मूत्रेन्द्रिय का मांस गल गया हो, उपदंशजनित कुष्ठ, विद्रधि, नाड़ीव्रण, मस्से आदि उपद्रव इन गोलियों के सेवन से नष्ट हो जाते हैं। नया विकार ५-७ दिन में दूर हो जाता है तथा बढ़े हुए जीर्ण विकार के लिए १४ दिन औषधि देनी पड़ती है।

यदि कच्चा रसकर्पूर या हिंगुल का धूम्रपान करने या अपथ्य सेवन करने पर रसायन फूट निकला हो या भयंकर दाह होता हो; तो उन रसायनसेवियों को पहले जुलाब देकर उदर शोधन करें। फिर एक दिन रोटी या भात के साथ गोजिह्वा (जंगली गावजवाँ) का शाक खिलावें। तत्पश्चात् इन गोलियों का सेवन कराने से रसायन कालीन विष और उपदंशज विकृति दोनों दूर होते हैं। वैद्यराज श्रीरामसिंह जी ने इस औषधि का हजारों रोगियों पर उपयोग किया है। किसी को हानि नहीं पहुँची। यह अति निरापद और उत्तम औषधि है।

सूचना-इन गोलियों के सेवन करने पर १मास तक दूध नहीं लेना चाहिये। शक्कर, गुड़, मांस और मैथुन का दो मास तक त्याग करना चाहिये तथा आम और चने के पदार्थों को एक वर्ष तक छोड़ देना चाहिये।

यदि किसी ने इस औषध-सेवन काल में आहार-विहार नियमों को भंग किया तो सांधों-साधों में दर्द हो जाता है; एवं कितने ही की संधियों पर शोथ भी हो जाता है। यह उपद्रव सोंठ और नमक के सेवन से ४-६ दिन में शान्त हो जाता है।

दूसरी विधि-शुद्ध नीला थोथा, शुद्ध गन्धक और सोहागे का फूला, तीनों २-२ तोले मिला, लकुच (कटहर Artoearpus Lakoocha) के पक्के फल के रस में १२ घण्टे खरलकर टिकिया बनावें। सूर्य के ताप में सुखा, सराव सम्पुट कर कुक्कुट पुट देने से भस्म हो जाती है। (र.र.स.)

मात्रा-४ से ८ रत्ती दही, जीरा-मिश्री या गुलकन्द के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवें। वमन-विरेचन के लिये १ माशा भस्म को गुनगुने जल के साथ देनी चाहिये।

उपयोग-यह भस्म सब प्रकार के दोष, विष विकार, हृदयरोग, शूल, अर्श, कुष्ठ, अम्लपित्त, मल की गांठ बंध जाना इत्यादि को दूर करती है; वमन और विरेचन कराती है, तथा चित्री (सफेद कुष्ठ) और दूषी विष को नष्ट करती है।

सूचना-नीलाथोथा सहन न होने से कुछ विकार हो जाय, तो ३ नींबू का रस या चावल की खीलों (लाजा) का क्वाथ लेवें।

(४५) हरताल गोदन्ती मिश्रित भस्म

विधि–५ तोले उत्तम बरकी हरताल के एक टुकड़े को पीले फूल वाली हुलहुल (कागला का खेत) के १ सेर स्वरस में डालकर एक मिट्टी की हाँडी में भरें। हाँडी को छोटे चूल्हे पर चढ़ाकर १२ घण्टे तक बहुत मन्द आँच देवें। कदाज बीच में रस समाप्त हो जाय तो और डालें। पश्चात् एक सराव में गोदन्ती भस्म २५ तोले के बीच हरताल को रख ऊपर दूसरा सराव ढककर, मजबूत कपड़मिट्टी करें। उसे सूर्य के ताप में सुखाकर ५ सेर आरण्य कण्डों की आँच दें। स्वाँग शीतल होने पर निकाल घीकुंवार के रस में १२ घण्टे खरलकर गोला बाँध सुखा, संपुटकर ५ सेर कण्डों की अग्नि दें। इस रीति से ३ बार गजपुट देने से भस्म तैयार हो जाती है। टिकिया कठोर प्रतीत होती है, परन्तु पीसने से भस्म मुलायम हो जाती है। (श्री पं. नन्हें मिश्र)

मात्रा–१/२ से ४ रत्ती तक, दिन में ३ बार देवें।

अनुपान–सन्निपात में अरदक का रस और शहद मिलाकर चटावें। एक ही बार देना हो, तो ४ से ८ रत्ती तक देवें। अधिक समय देने के लिये २-२ रत्ती २-२ घण्टे पर देते रहें। बालकों की काली खाँसी में डंडा थूहर के पत्तों को गरमकर निकाले हुए रस के साथ आधी-आधी रत्ती दिन में २ समय देते रहने से ३-४ दिन में खांसी शांत हो जाती है। विषम ज्वर में तुलसी, सहदेई या द्रोणपुष्पी के रस के साथ देवें। इस तरह अन्य रोगों के लिए रोगानुकूल अनुपान की योजना करें।

उपयोग–यह भस्म नूतन ज्वर, शीतज्वर (Malaria), श्वसनक (Pneumonia), प्रलापक सन्निपात (Typhus), मोतीझरा (Typhoid Fever), उलट-उलटकर आने वाला ज्वर (Releapsing Fever), कुष्ठ, रक्तविकार, विस्फोटक, उपदंश, वातरक्त, श्वास, कास, बालकों की काली खांसी आदि रोगों को दूर करती है। सन्निपात में तुरन्त अपना प्रभाव दिखाती है। **हरताल की उग्रता का गोदन्ती के संयोग से शमन हो जाने से इस भस्म का उपयोग निर्भयतापूर्वक होता है।**

(४६) शम्बूक (घोंघा) भस्म

विधि–शम्बूक (छोटी शंखों) का शोधन (शंख शोधन में लिखी विधि से) करें। फिर कूट सूक्ष्म चूर्ण कर पित्तपापड़ा के क्वाथ में ३ दिन खरलकर टिकिया बाँध, सूर्य के ताप में सुखावें। सूखने पर सराव सम्पुट कर गजपुट अग्नि देने से सफेद रङ्ग की मुलायम भस्म बन जाती है। इस तरह नदी में उत्पन्न छोटी-छोटी सीपों की भस्म भी शम्बूक भस्म के समान की जाती है।

सूचना–मीठे जल में उत्पन्न छोटे शंखों की भस्म अधिक गुणप्रद नहीं होती।

मात्रा–१ से ६ रत्ती, दिन में २ समय दें।

अनुपान–१. **परिणामशूल पर** - गुनगुने जल के साथ।

२. **विषम ज्वर में** - तुलसी के रस के साथ।

३. **संग्रहणी और रक्तातिसार में** - बेल के मुरब्बे के साथ।

४. **मन्दाग्नि पर** - घृत या शहद के साथ।

५. **अजीर्ण में** - नींबू के रस के साथ।

६. **गुल्म पर** - जवाखार या अपामार्ग क्षार के साथ।

उपयोग–यह भस्म कफज्वर, ठण्ड सहित विषम ज्वर (मलेरिया), अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी, कफपित्तात्मक परिणामशूल, मन्दाग्नि, शीतपित्त, विस्फोटक आदि को दूर करती है। शम्बूक भस्म के सेवन से अन्त्र के क्षतों का रोपण सत्वर होता है। इस हेतु से प्रवाहिका प्रधान संग्रहणी में विशेष उपयोगी है। अंजन करने से नेत्र रोग और फूले का नाश होता है। यह भस्म शीतल, नेत्र पीड़ानाशक, तीक्ष्ण, ग्राही, दीपन और पाचन है। फोड़े पर लगाने में भी उपयोगी है। विशेष गुण शंखभस्म के समान किन्तु न्यून हैं। इसको १ माशा सैंधानमक मिला ६ माशे शहद के साथ लेने से दुःसह संग्रहणी नष्ट होती है।

सूचना–परिणाम शूल में मद्यपान, मैथुन, व्यायाम, ईर्ष्या, भारी भोजन तथा मल-मूत्र आदि वेगों का धारण, सबका त्याग करावें।

(४७) कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म

विधि–५ तोले अण्डों के शुद्ध छिलकों को कूट चूर्ण कर एक सराव में डाल भीग जाय इतना चाँगेरी का रस मिला देवें। पश्चात् दूसरा सराव ढ़क सन्धि लेपकर ५ सेर गोबरी की अग्नि में फूँक दें। स्वांग शीतल होने पर संपुट को खोलकर मुलायम श्वेत भस्म निकाल लेवें। अग्नि कम लगने पर रंग श्याम हो जाता है। ऐसा होने पर पुनः चाँगेरी के रस में खरलकर टिकिया बना अग्नि में फूँक देने से उत्तम, श्वेत

रंग की मुलायम भस्म बन जाती है। इस भस्म के साथ १॥ तोले सिंगरफ मिला घी-कुंवार के रस में १२ घण्टे खरलकर टिकिया बना, सूर्य के ताप में सुखा, संपुटकर गजपुट अग्नि देवें। इस तरह पुनःपुनः १॥-१॥ तोले सिंगरफ मिला, खरलकर आँच देने से ४ पुट में अत्यन्त मुलायम और गुणदायक भस्म बन जाती है। इस भस्म को श्वेत भस्म और श्वेताण्ड भस्म भी कहते हैं। (धन्वन्तरि)

यदि सब पुटों में हिंगुल मिलाते हैं, तो भस्म का रंग कुछ श्याम हो जाता है। मात्र पहले पुट में ही हिंगुल मिलाते हैं तो रंग सफेद बनता है। हम हिंगुल के स्थान में अग्नि स्थायी पारद पिष्टी को मिलाकर भस्म बनाते हैं, वह अधिक गुणदायक बनती है।

मात्रा–१ से ४ रत्ती, मक्खन-मिश्री, मलाई दूध, च्यवनप्राशावलेह, आँवलों के रस या अनार के रस के साथ।

उपयोग–यह भस्म उत्तम सुधाकल्प, हृदयपौष्टिक रसायन, रससंस्थान के लिए बल्य, मांसवर्द्धक और वाजीकरण है। अनेक भाँति के शुक्रविकार को दूर करती है। प्रमेहों में गुणदायक है। कफप्रकोप, वातविकार, शुक्र की निर्बलता और पतलापन, स्वप्नदोष, हृदय और मस्तिष्क की निर्बलता तथा नपुंसकता को दूर करती है।

स्त्रियों के रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, बहुमूत्र और सोमरोग को नष्ट करती है। स्त्रियों को प्रसव के पश्चात् कुछ दिनों तक सेवन कराने से वे सुदृढ़, सुरूपवान, बलवान् और कुमारी सदृश बन जाती है।

छोटी आयु होने पर भी अनेक संतानों को जन्म देने से देह निर्बल हो गया हो ऐसी माताओं को कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म का सेवन आशीर्वाद रूप में होता है।

इस भस्म का २१ दिन तक पथ्य-पालन (ब्रह्मचर्य) सह सेवन करने से निस्तेज और वृद्ध मनुष्य तेजस्वी तथा सबल बन जाता है। रक्ताणुओं की वृद्धि होती है, पाचन शक्ति प्रबल हो जाती है, और मानसिक प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। बहुधा यह भस्म सब प्रकृति व आयुवालों को लाभ पहुँचाती है।

जिन माताओं की आयु छोटी होने पर भी अनेक संतानों की माता बन चुकी हों और योग्य पोषण न मिलने से शरीर निर्बल हो गया हो, ऐसी माताओं को कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर सेवन कराने से एक दो मास में ही शरीर सबल बन जाता है।

(४८) शुभ्रा भस्म

विधि–१० तोले श्वेत फिटकरी को ३ घण्टे भेड़ के मूत्र में खरल कर टिकिया बना, सूर्य के ताप में सुखा लेवें। फिर ६० तोले या अधिक जल रह सके, उतने बड़े मिट्टी के सराव में रख संपुट कर गजपुट में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर मुलायम श्वेत वर्ण की भस्म बन जाती है। ध्यान रहे संपुट का पात्र छोटा होगा, तो फूट जायेगा। अधिक मात्रा में बनानी हो तो कड़ाही में डालकर तीव्राग्नि पर चढ़ाकर बनाना चाहिये।

मात्रा–१ से ४ रत्ती, शक्कर, शहद, शरबत बनप्शा या रोगानुसार अनुपान के साथ दिन में २-३ बार देते रहना चाहिये।

उपयोग–यह भस्म पार्श्वशूल, न्यूमोनिया में शूल, कटिशूल, जीर्णकाली खाँसी, राजयक्ष्मा में वमन, रक्तवमन, कफ के साथ रक्त का आना, वेगपूर्वक खाँसी का चलना, अधिक खाँसी के हेतु से पार्श्वपीडा होना, सुजाक, मासिक धर्म में अधिक रक्त जाना, रक्तप्रदर, श्वित्र (कुष्ठ), विसर्प, योनिशिथिलता आदि विकारों को दूर करती है। आन्त्रिक ज्वर, नागविषजन्यशूल, जीर्ण अतिसार आदि में हितकर है।

यह भस्म उत्तम प्रभावशाली है। [illegible] यह रक्तवाहिनियों की परिधि को संकुचित करती है और नाड़ियों के भीतर रहे हुए दोष को बाहर निकालने में सहायता पहुँचाती है, बढ़े हुए श्वास और कास के वेग को सत्वर घटाती है। सेवन करने केसाथ ही अनेक बार आवेग का दमन हो जाता है। न्यूमोनिया की द्वितीयावस्था में फुफ्फुसकोष लसीका स्राव से भर जाते हैं, फुफ्फुस पत्थर-सा कठोर बन जाता है, प्रारम्भ में कफ पतला निकलता है, फिर चिकने पीले रङ्ग का निकलने लगता है, किसी-किसी को रक्त भी आता है और शूल भी चलता है, इन दोनों अवस्थाओं में कफ का संशोधन होकर अनेक उपद्रव इस भस्म के सेवन से शमन हो जाते हैं।

अनेकों को जीर्ण श्वास रोग में कफ चिकना; पीला आता है, सरलता से बाहर नहीं निकलता; उनको यह भस्म अच्छा लाभ पहुँचाती है।

कतिपय रोगियों को राजयक्ष्मा रोग में खाँसी के प्रकोप से दुर्दम वान्ति होती रहती है; उसे यह भस्म सत्वर बन्दकर देती है।

काली खाँसी चिरकारी दुःखदायी व्याधि है। इस विकार से बालक अति निर्बल बन जाता है। भोजन करने पर तुरन्त खाँसी चलकर वमन हो जाता है और बालक अति व्याकुल हो जाता है। इस तरह बार-बार खाँसी का वेग प्रबल होकर बच्चों को व बड़े मनुष्यों को भी वमन होती हो तो उनको भी यह भस्म देने से वमन बन्द हो जाती है और कीटाणुओं का नाश होकर थोड़े ही दिनों में खाँसी की निवृत्ति हो जाती है।

मधुरा रोग में अन्त्रस्थ श्लैष्मिककला शिथिल बन जाती है, उसमें क्षत हो जाते हैं। क्वचित् दस्त में रक्त भी आने लगता है। ऐसे समय पर यह भस्म १-१ रत्ती शक्कर के साथ दिन में ४ या अधिक समय देने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है, क्षत दूर होता है, श्लैष्मिक कला सबल होती है और अन्त्र विकार का भी शोधन हो जाता है।

नाग (सीसा) धातुजन्य उदरशूल होने पर इस भस्म का उपयोग अफीम और कर्पूर के साथ ३-३ घण्टे के अन्तर पर किया जाता है। फिर रात्रि को या सुबह मृदु विरेचन देकर कोष्ठ को शुद्ध कर लिया जाता है। नाग विष जन्यशूल में अन्य औषधियाँ भी दी जाती हैं; परन्तु यह शुभ्राभस्म महौषध मानी गई है।

चिरकारी अतिसार दिनों तक रहने पर अन्त्र शिथिल हो जाते हैं, तब दाड़िमावलेह, लघुगंगाधर या अन्य ग्राही अनुपान के साथ शुभ्रा देने से अन्त्रमार्ग संकुचित होकर नियमित कार्य करने लगता है।

पूयमेह में यह भस्म छोटी इलायची, शीतल मिर्च और मिश्री के साथ देने एवं पिचकारी द्वारा फिटकरी के जल से मूत्र प्रसेक नलिका को धोते रहने से ३-४ दिन में ही तीव्र व्यथा शमन हो जाती है। इस तरह नूतन, तीव्र श्वेत प्रदर रोग में भी यह भस्म १ माशा जवाखार और घी के साथ मिलाकर दिन में ३ बार देने से तीव्रता और दाह शमन हो जाता है।

मासिक धर्म में अधिक स्राव होने पर इस भस्म का दिन में तीन बार मोलसरी की छाल के चूर्ण के साथ प्रयोग करने और फिटकरी के जल की गर्भाशय में उत्तर बस्ति देने से सत्वर लाभ हो जाता है।

सूचना–इस भस्म का अधिक मात्रा में अधिक दिनों तक उपयोग नहीं करना चाहिये। अतियोग होने पर आमाशय और अन्त्र की श्लैष्मिकला में उग्रता और प्रदाह की प्राप्ति होती है।

लाल फिटकरी की भस्म–श्वेत फिटकरी के समान ही लाल फिटकरी की भस्म की जाती है। यह आन्त्रिक ज्वर में हितकर है। इसके अतिरिक्त लाल फिटकरी २ तोले में १ तोला सिंगरफ मिला १ दिन घीकुंवार के रस में खरल कर टिकिया बांधें, फिर दृढ़ सराव संपुट कर २॥ सेर गोबरी में फूंक कर भस्म तैयार करें। यह आन्त्रिक ज्वर, ज्वर के पीछे की निर्बलता, शारीरिक निर्बलता, कास, रक्तस्राव, प्रमेह और शुक्र की निर्बलता, आदि पर विशेष हित कारक है। सिंगरफ मिला रक्तस्फटिका की भस्म के उपयोग से हमने अनेक बार लाभ उठाया है।

फिटकरी का फूला–यदि फिटकरी का फूला बनाकर उपयोग में लिया जाय, तो नेत्रपुष्प पर अंजन रूप से प्रयोजित होता है। नेत्रस्राव होने पर ४ रत्ती फूलों को २।। तोला गुलाब जल में मिलाकर प्रातःसायं नेत्र में २-२ बूंदें डालते रहने से नेत्रस्राव बन्द हो जाता है एवं कर्णपाक में फूले के सूक्ष्म चूर्ण को प्रातःसायं कान में डालने और सम्हालपूर्वक साफ करते रहने से थोड़े ही दिनों में रोग निवृत्त होता है।

कच्ची फिटकरी–कच्ची फिटकरी की मात्रा १ से २ रत्ती तक आवश्यकता पर १-१ घण्टे पर दी जाती है। कच्ची फिटकरी में ग्राही, रक्तरोधक, वमनकारक और क्षत आदि का दाहक गुण अधिक है। शरीर के किसी स्थान पर लगाने से उस स्थान को आकुंचित करती है। उस स्थान की शिरा आदि की परिधि का ह्रास कराती है। वह स्थान कठिन और पाण्डु वर्ण का हो जाता है एवं उस स्थान से रस स्राव आदि क्रिया बन्द हो जाती है। मुख और कण्ठ में यह स्थानिक संकोचक क्रिया दर्शाती है। मुँह में डालने पर स्वाद अतिशय कसैला लगता है, और कण्ठनलिका शुष्क हो जाती है। खाने पर आमाशय में रक्त-रस (Plasma) को संयत और श्लेष्मिक कला का आकुंचन करती है एवं आमाशय और अन्त्र के श्लैष्मिक स्राव का ह्रास कराती है। रसस्राव होता हो, तो उसका रोध होता है। परन्तु इस निग्रह क्रिया की अपेक्षा स्थानिक संकोचन क्रिया अति प्रबल होती है। अन्त्र में फिटकरी का देह में शोषण नहीं होता। फिर वमन कराने का प्रयत्न करती है।

शीशा गलाने के कारखानों, टाईप डालने की फाउंड्रियों तथा प्रिंटिंग प्रेसों में काम करने वाले कम्पोजिटरों को असावधानी से अंगुलियों के मुँह में लग जाने या श्वास द्वारा नाग विष मुँह में चला जाता है तब शूल होता है। यह नाग विषज शूल की महौषध है। ५-५ रत्ती मात्रा में २-२ घण्टे पर ३-४ समय देने से नागविषज शूल की निवृत्ति होती है। इस तरह जीर्ण प्रवाहिका और जीर्ण अतिसार में २ से ५ रत्ती तक बीजाबोल के चूर्ण में मिलाकर दिन में ३ समय दी जाती है। अर्श के रक्तस्राव को बन्द करने के लिए इसके जल की पिचकारी देते हैं। कण्ठरोहिणी में प्रतिश्याय के शमनार्थ फिटकरी का स्थानिक प्रयोग होता है। चूर्ण लगाया जाता है, या कुल्ले कराये जाते हैं। तीव्र विकार हो, तो फिटकरी के चूर्ण को कण्ठ में फूंक देना चाहिये। चिरकारी विकार मे कुल्ले ही कराने चाहिये।

उपजिह्वा का प्रदाह (Uvulitis), कण्ठशालूक (Tonsillitis), पर और रक्तज्वर में गले के भीतर क्षत होने पर फिटकरी के चूर्ण को शहद में मिलाकर लगाते हैं।

पारद-जनित मसूड़ों की शिथिलता, मुख से विष-लार गिरने; क्षत और रक्तस्राव होने पर फिटकरी के जल से कुल्ले कराये जाते हैं।

जुकाम (चिरकारी प्रतिश्याय) में फिटकरी के फूले का नस्य रूप से प्रयोग करने से श्लेष्मस्राव बन्द हो जाता है।

मूत्राशय में से रक्तस्राव, गर्भाशय में से रक्तस्राव, श्वेतप्रदर और पूयमेह में फिटकरी के धावन की पिचकारी लगाने से रक्त, दूषित रस और पूय का स्राव कम हो जाता है।

[illegible] रोग में फिटकरी के गाढ़े क्षार से धोने पर खुजली की निवृत्ति हो जाती है। योनिदाह होने पर फिटकरी को जल में मिला पिचकारी लगाकर धोने से दाह का शमन होता है।

योनि में से कमल बाहर निकल आने पर १ तोला फिटकरी और ४ तोले माजूफल के चूर्ण को मिला छोटी-छोटी पोटली बांध योनि में धारण करने पर कमल का निकलना बन्द हो जाता है। पोटली को लम्बे डोरे से बांधनी चाहिये, जिससे डोरा लटका रहे। नया रोग होने पर प्रयोग हितकर है। जीर्ण विकार में इस औषधि प्रयोग से लाभ नहीं होता।

विविध चक्षुप्रदाह में फिटकरी महोपकारक है। २ रत्ती कच्ची फिटकरी या ४ रत्ती फूले को २॥ तोले गुलाबजल में मिलाकर प्रातःसायं २-२ बूँद डालते रहने से नेत्रप्रदाह शमन हो जाता है। बालकों के पूययुक्त चक्षुप्रदाह में फिटकरी के जल की बूदें डाली जाती हैं। इस तरह फिटकरी नेत्र रोग में बाहर के लेप के लिये भी प्रयोजित होती है। फिटकरी को कड़ाही में अग्नि पर रखें; रस होने पर जम्बीरी नींबू का रस थोड़ा-थोड़ा डालते जायँ; जिससे काले रंग का कीचड़ बन जायेगा। फिर गुनगुना रहने पर नेत्र के चारों और लेप कर देने से, एवं इसकी पुल्टिस नेत्र पर बांध देने से रक्त संग्रह का जल्दी निवारण होकर विकार नष्ट हो जाता है।

राजयक्ष्मा की दुर्दमन वमन में भस्म के अभाव में फिटकरी का चूर्ण २ से ५ रत्ती मिश्री में मिलाकर देने से वमन बन्द होती है।

ब्यूची रोग में फिटकरी और अफीम को जल में मिलाकर लेप करने से ब्यूची के कीटाणु नष्ट होते हैं, और रक्तस्राव बन्द होता है।

ताजा चोट के रक्तस्राव पर फिटकरी चूर्ण डाल पट्टी बांध देने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है और घाव भी नहीं पकता।

दंतवेष्टज शोथ पर फिटकरी को गुनगुने जल में मिलाकर कुल्ले करने से शोथ की निवृत्ति होती है। रक्तस्राव बन्द होता है, तथा दाँत और दाढ़ दृढ़ होते हैं।

मुख पाक में फिटकरी को गुनगुने जल में मिलाकर आलोडन लेने से गुदभंग शुद्ध होता है।

क्षौर कराने पर फिटकरी के गोले (जो घिसकर चिकना किया हो) को मुखमण्डल पर फिरा लेने से उस्तरे की तेजी या कीटाणु आदि से उत्पन्न विकृति नष्ट हो जाती है। इस हेतु से फुन्सियां या अन्य विकार की उत्पत्ति नहीं होती।

पित्तप्रकोप में फिटकरी ६ माशे जल में मिलाकर पिला देने से वमन होकर विष की निवृत्ति हो जाती है।

वर्षा का जल या कभी प्रवास में मलिन जल मिलने पर जल मे किञ्चित् फिटकरी डाल देने से दोष तले में बैठ जाता है; या ऊपर आ जाता है। छान लेने से जल स्वच्छ हो जाता है।

फिटकरी के चूर्ण में अर्कदुग्ध मिला ३ घण्टे सुखा बारीक चूर्ण बना लेवें। फिर दन्तमञ्जन रूप से उपयोग करने से दांत और दाड़ का दर्द शमन होता है और मसूड़े दृढ़ होते हैं।

सूचना-फिटकरी की आभ्यान्तरिक अधिक मात्रा देने पर आभ्यन्तरिक; और स्थानिक अधिक मात्रा से स्थानिक, उग्रता होती है। स्थानिक लेप को अधिक समय तक रखा जाय, तो प्रदाह की उत्पत्ति होती है। यह प्रदाह बाह्य त्वचा पर नहीं होता; श्लैष्मिक कला या क्षत स्थान पर होता है।

नेत्र की श्लैष्मकला के तीव्र प्रदाह में कच्ची फिटकरी का उपयोग नहीं करना चाहिये।

४ माशे या इससे अधिक मात्रा मे सेवन करने पर उबाक, वमन, आमाशय में संकोच जन्य वेदना और विरेचन की उत्पत्ति होती है।

कुछ दिनों तक प्रतिदिन नियमपूर्वक सेवन करते रहने से आमाशय में भारीपन और वेदना प्रतीत होती है; तथा आमाशय का रक्तस्राव कम हो जाने से ज़ठराग्नि मन्द हो जाती है।

(४९) स्फटिकमणि भस्म

विधि-राजावर्त की विधि से शुद्ध किये हुए स्फटिकमणि को इमामदस्ते में कूट; समभाग गन्धक मिला १२ घण्टे नींबू के रस में खरलकर २-२ तोले की टिकिया बनाकर सूर्य के ताप में सुखावें। फिर सम्पुटकर गजपुट देवें। इस तरह ७ पुट देने से मुलायम, मैले, लाल रंग की भस्म बन जाती है।

मात्रा-१ से २ रत्ती, दिन में २ बार, मक्खन-मिश्री, मलाई या वासावलेह के साथ सेवन करावें।

उपयोग-स्फटिकमणि भस्म रस में मधुर, विपाक मधुर, शीतवीर्य, बल्य, चक्षुष्य, हृद्य, ज्वरघ्न, उरःक्षतहर और दाह शामक है। ज्वर, दाह, रक्तपित्त, उरःक्षत, रक्तवमन, विष प्रकोप और रक्तस्राव को रोकने के लिये सहायक औषधि के रूप में इसका प्रयोग होता है।

(५०) नीलाञ्जन भस्म

विधि–४० तोले शुद्ध नीले सुरमे को रीठे के रस या क्वाथ में ३ दिन खरल कर पेड़ा बना लें। फिर ८० तोले रीठे की लुगदी के भीतर रख संपुट कर गजपुट अग्नि देने पर १ पुट में ही भस्म बन जाती है। इस भस्म को अधिक गुणप्रद बनाने को हम पुनः घीकुंवार के रस के ३ पुट और देते हैं।

मात्रा–१ से २ रत्ती, पीपल का चूर्ण और शहद के साथ देकर ऊपर मुलहठी १॥–२ माशे का फाण्ट अथवा निवाया जल पिलावें।

गुणधर्म–नीलाञ्जन भस्म शीतल, श्रेष्ठ वामक और कफनिःसारक है। श्वास, कास, कफप्रकोप, पार्श्व में जल संचय (Pleurisy), पार्श्वशूल आदि को दूर करती है एवं अंजन करने पर दृष्टिमांद्य, अर्म (बेल), शुक्र, मांसवृद्धि, नेत्रदाह आदि का नाश करती है।

उपयोग–नीलाञ्जन का उपयोग उदर सेवन रूप से आचार्यों ने बहुत कम किया है। सामान्यतः स्वप्न दोष पर कोई-कोई चिकित्सक इसकी योजना करते हैं, एवं श्वास, कास पर कफ निःसारक रूप से प्रयोजित करते हैं। यह श्वास रोग का दौरा होने पर भी तत्काल लाभ पहुँचाता है। कफ निःसारण करा संगृहीत कफ को दूर कर वेग का दमन कराता है। फिर छाती, फुफ्फुस कोष और श्वास नलिका आदि कफ से मुक्त हो जाते हैं तथा हृदय की बढ़ी हुई गति भी मर्यादित हो जाती है।

(५१) कर्कट भस्म

विधि–सुखाये हुए स्वच्छ केकड़ों को हंडिया के भीतर ४ गुने घीकुंवार के गूदे या धमासे की लुगदी मे रख संपुटकर, गजपुट में देने से एक पुट में ही भस्म बन जाती है।

मात्रा–४ से ८ रत्ती तक, शर्बत बनप्सा, वासावलेह अथवा एलादिमंथ के साथ दिन में २ या ३ बार।

उपयोग–यह कर्कट भस्म शीतल, अस्थिपौष्टिक, कीटाणुनाशक, रोपण और रक्तरोधक है। राजयक्ष्मा रोग में होने वाले फुफ्फुस क्षत का रोपण कराने तथा रक्तवमन अथवा रक्तष्ठीवन होता हो, तो उसे रोकने, स्वरयन्त्र और श्वासनलिका के मार्ग को साफ करने एवं शुष्क कास का दमन कराने के लिए यह व्यवहृत होती है।

इस भस्म का उपयोग श्रृङ्ग भस्म, प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण के साथ करने पर विशेष लाभ पहुँचता है। रक्तस्राव को दूर कराने के लिए शुभ्रा भस्म मिलायी जाती है।

(५२) कान्तलोह भस्म

विधि–सर्वप्रथम कान्त लोह का सूक्ष्म चूर्ण करके तपा-तपाकर क्रमशः तैल, गौमूत्र, छाछ, कांजी, कुलथी में सात-सात बार बुझाकर शुद्ध कर लें। इसके बाद ७ पुट घृतकुमारी के तथा ७ पुट जामुन की छाल के देने पर कान्त लोह भस्म तैयार हो जाती है।

अगर भस्म में कुछ विकृति हो तो अधिक पुट भी दिए जा सकते हैं।

कान्तलोह एक प्रकार का पत्थर है जिसकी यहाँ भस्म तैयार की जाती है।

गुण–कान्तलोह भस्म धातुक्षीणता, शोथ, संग्रहणी, रक्तक्षय औरतज्जन्य पाण्डु रोग पर गुणकारी है।

मात्रा–१ रत्ती शहद पीपल के साथ या च्यवनप्राशावलेह के साथ देवें।

(५३) कूर्मास्थि भस्म

विधि–कूर्मास्थि को मट्ठे (छाछ) में १२ घण्टे रखकर स्वच्छ जल से साफ करके सुखा देते हैं उसके पश्चात् समान घृतकुमारी का गूदा लेकर गजपुट में फूंक देते हैं। जिससे श्वेत कूर्मास्थि भस्म तैयार हो जाती है।

गुण –यह भस्म हड्डियों को बल प्रदान करती है, बालक, सगर्भा, प्रसूता क्षय पीड़ित रोगी जिनकी अस्थियाँ कोमल बन जाती हैं या पीड़ित हो जाती हैं उनको इस भस्म के सेवन से लाभ पहुँच जाता है। अपस्मार वालों को भी हितकर है।

मात्रा–२ से ४ रत्ती दिन में २ या ३ बार शहद और गिलोयसत्व के साथ।

(५४) मधुमण्डूर भस्म १७ पुटी

विधि–रसतन्त्रसार प्रथम भाग के मण्डूर भस्म की तीसरी विधि में वर्णित है। इसी का नाम मधुमण्डूर है। इसमें १७ पुट लगते हैं।

* * *

कूपीपक्व रसायनाधिकार

रसायन शास्त्र में रस पारद का नाम है, और अयन मार्ग को कहते हैं। इसलिये जिन-जिन औषधियों में पारद है वे सब रसायन कहलाती हैं एवं जिस औषधि से जरा और व्याधि का नाश होकर बल, ओज, मेधा आदि की वृद्धि होकर शरीर सुदृढ़ बने और आयु स्थिर हो, उसे रसायन कहते हैं। ये सब गुण पारद में विद्यमान होने से पारद-मिश्रित औषधियों को रसायन कहा है। शुद्ध पारद अतिशय चंचल और अक्षय वीर्यवान् है। पारद अति सूक्ष्म परमाणु रूप बनकर शरीर में सब स्थानों में अति शीघ्र पहुँचकर इच्छित लाभ की प्राप्ति कराता है। पारद युक्त औषधियों की मात्रा स्वल्प है; वे अरुचि भी नहीं करती और असाध्य रोगों को भी सत्वर शमन करती है। इसलिये शास्त्रकारों ने रसयोगों को अन्य औषधियों से श्रेष्ठ माना है।

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः। क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधिभ्योऽधिको रसः॥ (र.र.स.)

भूतकाल में महर्षियों ने अति परिश्रम करके पारद को अनेक प्रकार से प्रयुक्त किया है। उन्होंने अनेक प्रकार की शरीर स्वास्थ्यकर औषधियों की योजना, सुवर्ण बनाने की विधि, आयुष्य-वृद्धि और नाना प्रकार की सिद्धि प्राप्त करने की रीति निर्माण की है। उनमें से साधारण औषधि बनाने की कुछ विधियाँ वर्तमान समाज में प्रचलित हैं; और अन्य दिव्य क्रियायें भारत सन्तानों के दुर्भाग्यवश प्रायः लुप्त हो गई हैं। प्राचीन आचार्यों ने पारद के अनेक प्रकार के दिव्य गुणों का अनुभव करके संस्कृत भाषा में गुणों के अनुसार अनेक नाम रखें हैं। उन नामों का उल्लेख कोश ग्रन्थों में मिलता है; किन्तु उनके अलौकिक गुणों की प्राप्ति करने की विधि का लोप हो गया है।

प्राचीन ग्रन्थों के अनुरूप खनिज पारद के चार प्रकार होने का भास होता है। लाल, पीला, काला और सफेद। लाल पारा निर्बलता दूर करके शरीर को पुष्ट बनाता है। पीला सुवर्ण आदि धातुओं में उपयोगी है। काला सिद्धि की प्राप्ति कराता है और श्वेत सब रोगों का नाश करता है। इस चार जाति के पारद में से वर्तमान में श्वेत पारद को काम में लाते हैं। शेष ३ प्रकार के वर्ण युक्त पारद, रस वैद्य जारण आदि क्रिया करके बना लेते हैं।

मूर्च्छित (कज्जली किया हुआ) पारा सब प्रकार के रोगों का नाश करता है। जारित पारद (पूर्णचन्द्रोदय रस आदि) वृद्धावस्था को दूर कर शरीर को तेजस्वी बनाता है। बद्ध पारा (पारद की आणविक गोली) आकाश गमन आदि की सिद्धि देता है। मारा हुआ पारद (पारद भस्म) अजर-अमर बनाता है, और क्रामित तथा रंजित (क्रामक एवं रंजन संस्कार किया हुआ) पारद पराभक्ति और मुक्ति की प्राप्ति कराता है। मनुष्य और पशुओं के असाध्य रोग जो दूसरी औषधि से दूर न हो सकें, वे भी पारद से नष्ट होते हैं। इसी हेतु से पारद को अन्य औषधियों से श्रेष्ठ कहा है।

साध्येषु भेषजं सर्वमीरितं तत्ववेदिभिः। असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽतःश्रेष्ठ मुच्यते॥

भूमि में से निकले हुए पारद में मल, विष, अग्नि, गिरिदोष और चपलता दोष स्वभाव सिद्ध रहते हैं। कलई और शीशे के सम्बन्ध से दो प्रकार के संयोगजन्य आगन्तुक दोष भी मिले हुए हैं। इन ७ दोषों में से मल से मूर्च्छा, विष से मृत्यु, अग्नि से शरीर में दाह (संताप), गिरिदोष से जड़ता, चपलता से वीर्यनाश, कलई के योग से कुष्ठ, रक्तविकार और शीशे के सम्बन्ध से नपुंसकता की प्राप्ति होती है। इसलिए पारद को शुद्ध करके उपयोग में लेना चाहिए। साधारण रोग दूर करने वाली औषधियों में सिंगरफ में से निकाला हुआ पारद मिलाया जाता है। गन्धक पारद के दोष को खा जाता है। इसलिए सिंरगफ से निकले पारद को शुद्ध माना है। किन्तु रसायन या दिव्य गुणों की प्राप्ति की चाह हो; असाध्य रोग दूर करना हो; तो पारद के आठ संस्कार कर बुभुक्षित ओर पक्षच्छिन्न करना चाहिए।

पारद का शोधन ३ उद्देश्यों से होता है। १. शारीरिक रोग निवारणार्थ उसके लिए ८ संस्कार करने पर चल सकता है, अथवा साधारण शोधन करने या हिंगुल से पारद उड़ा लेने पर भी निर्भय रूप से उपयोग में आता है। किन्तु अष्ट संस्कारित पारद की अपेक्षा हिंगुलोत्थ पारद से गुण प्राप्ति न्यूनांश में होती है।

२. रसायन रूप से शोधन और गुण वृद्धि के लिए आचार्यों ने १८ संस्कार करने की आज्ञा की है। अशुद्धि शेष रहने या गुणाधान कम होने पर पारद रसायन गुण अर्थात् वृद्धावस्था की निर्बलता या रोग से आक्रांत बनी हुई शारीरिक दुरवस्था को दूर करके युवावस्था सदृश्य की प्राप्ति नहीं कर सकेगा।

रसायन रूप से पारद भस्म का प्रयोग अधिकतर होता है। वह भस्म गन्धक जारण करके अभ्रक सुवर्ण के ग्रास देकर पक्षच्छिन्न और बुभुक्षित बनाये हुए पारद की ही बनायी जाती है। अन्यथा निरुत्थ नहीं बन सकेगी।

३. धातुवाद के लिये पारद शोधन में भी अधिक कष्ट दर्शाया है। किन्तु नाग, वङ्ग का योग करा देने पर सुविधा भी बहुत मिल जाती है। धातुवाद में जो बीज निर्माण कराया जाता है, उसके शोधन में तो अत्यन्त सम्हालने का आदेश दिया है। बाह्यद्रुति क्रिया सिद्ध कर लेने पर धातुवाद की सिद्धि सहज मिल जाती है।

धातुवाद इस ग्रन्थ का विषय नहीं है। इसके लिए विशेष जानना हो तो इस संस्था के प्रकाशित रसहृदयतन्त्र, रसशास्त्र प्रवेशिका, रसोपनिषत्, रस तत्व विवेचन आदि ग्रन्थ देखें।

रसायने तु या शुद्धिः सा व्याधावपि कीर्तिता। रसायनस्य या शुद्धिः सैव कष्ठतरा मता॥

अष्टादश संस्कार वाली शुद्धि जो रसायन के लिये कही है, वह कठिनतर है। वही सब व्याधियों में हितकारक है।

शुद्ध पारद के संयोग द्वारा दो प्रकार से रसायन तैयार किये जाते हैं-(१) अग्नि संस्कार द्वारा; (२) अग्नि संस्कार रहित (गन्धक आदि औषधियों के साथ खरल करके)। पहिले प्रकार में दो भेद हैं-कूपीपक्व और पर्पटी। इनमें से कूपीपक्व रसायन का इस प्रकरण में विवेचन करेंगे। अग्नि संस्कार रहित को खरलीय रसायन कहते हैं। उसका विवेचन पृथक् प्रकरण में आगे किया जायेगा।

कूपीपक्व रसायन बनाने के लिये सिद्ध भ्राष्टी (भट्टी), बालुकायन्त्र अग्नि देना, डाट बन्द करना, बोतल तोड़ना इत्यादि कार्यों के लिये निश्चित् विधि का उपयोग होता है। यदि मनगढ़न्त रीति से कार्य किया जायेगा, तो कूपीपक्व रसायन नहीं बन सकेगा। भट्टी जैसी वर्तमान में प्रचलित है, वैसी भूतकाल में नहीं थी। पहिले सामान्य चूल्हे पर कूपीपक्व रसायन बना लेते थे, परन्तु उसमें लकड़ी का खर्च अधिक होता था एवं कभी-कभी अकस्मात् बोतल फटने से कार्य करने वाले को चोट लग जाती थी या पारद मिश्रित गन्धक का जहरी धूआँ श्वास के साथ फुफ्फुस में प्रवेश कर हानि पहुँचा देता था। इस कारण वर्तमान में विद्वानों ने विशेष अनुकूल भट्टी का प्रबन्ध किया है। इसमें बोतल न फूटने के लिये अनेक अनुकूल साधनों की योजना की है।

पारद मिश्रित अनेक औषधियां बालुकायन्त्र द्वारा कांच की शीशी में तैयार की जाती है, उनको कूपीपक्व रसायन कहते हैं। उन कूपीपक्व रसायनों की कृति अन्य सब प्रकार की औषधि-कृतियों की अपेक्षा श्रेष्ठ और शीघ्र फलप्रद मानी है। कूपीपक्व रसायन में पारद और गन्धक मुख्य द्रव्य हैं। इनको तैयार करने के लिए पारद, गन्धक और अन्य औषधियाँ विशुद्ध मिलानी चाहिये। दूषित औषधियों के उपयोग से लाभ के बदले हानि होने की संभावना है।

सुवर्ण वंग को छोड़कर शेष कूपीपक्व रसायन प्रायः वात और कफ प्रकृति वालों को विशेष अनुकूल तथा पित्त प्रकृति वालों को कम अनुकूल है। पित्त प्रकृति वालों को पित्तवर्द्धक ऋतु में या पित्तप्रकोप में देने की आवश्यकता हो तो दूसरी शीतल औषधि मुक्ता, प्रवाल, वंशलोचन आदि मिश्रित करके दें; और थोड़े दिन देकर ४-६ रोज बन्द करें; फिर पुनः देवें।

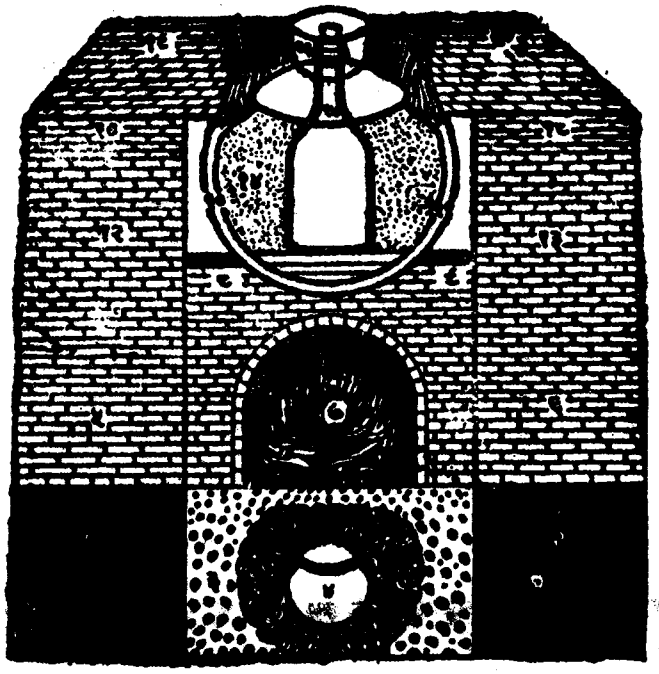

(भ्राष्ट्री विवरण पृष्ठ ११८-११९ में नीचे देखें)

सिद्ध भ्राष्ट्री-कूपीपक्व रसायन के लिये भट्टी बाहर से चौकोर और भीतर से गोल बननी चाहिये। नीचे गोलाई कुछ कम रखें जिससे अग्नि की लपटें पात्र को अच्छी तरह से लगें। पहले २८ इंच चौकोर जमीन में ८ इंच का गहरा गड्ढा खोदकर गोबर मिट्टी से अच्छी तरह पोत लेवें। बीच में गोल भाग रहे इस तरह सम्हालकर दीवार बनावें। नीचे चौकोर २८ इंच और ऊपर २५ इंच रक्खें, इसलिये जमीन पर से दीवार भीतर की ओर कुछ मुड़ती हुई भी बनानी पड़ेगी। जमीन के बराबर दीवार हो, पर बराबर बीच में एक मुंह लकड़ी डालने के लिए ७ इंच चौड़ा और आठ इंच ऊंचा रखें। मुंह के ऊपर भी दीवार बनानी पड़ेगी। उसकी ऊँचाई गड्ढे में से २४ इंच और जमीन से १६ इंच रहेगी। मुटाई ६ इंच ऊपर के भाग में रहे ऐसी सावधानी रखकर बनावें। नीचे की मुटाई ७॥ इंच रहेगी, ऊपर के भाग की दीवार चारों और ६-६ इंच मोटी रहने से बीच में १२ इंच गोलाकार जगह बालुका यन्त्र रखने के लिये खाली रहेगी।

मुँहवाली दीवार छोड़कर शेष तीनों दीवारों में जमीन से १० इंच ऊंचाई पर पैरों के अंगूठे जैसे मोटी ९-९ इंच लम्बी लोहे की छड़ें रख देनी चाहिये। इन छड़ों का ३-३ इंच जितना भाग मिट्टी के भीतर

१-२. जमीन के भीतर दीवार। नींव में चौड़ाई ७॥ इंच। जमीन तक ऊंचाई ८ इंच।
३. जमीन में कोयला गिराने और सम्पुट रखने का स्थान। १३ इंच गोलाई।
४. भस्म का सम्पुट।
५-६. दीवार। जमीन तक चौड़ाई ७ इंच। लोहे की छड़ी तक ऊंचाई १० इंच।

रहेगा और ६-६ इंच दीवार में दब जायेगा। जो ३-३ छड़ें भट्टी के भीतर दीखती हैं उन्हीं पर बालुका यन्त्र रहेगा। छड़ों के ऊपर दीवार ६ इंच है, जिससे बालुका यन्त्र की थोड़ी किनारी बाहर दीखती रहेगी।

इस भट्टी के भीतर और बाहर मिट्टी का लेप (पलस्तर) कर देने से भट्टी कई वर्षों तक अच्छी रहती है। २४ औंस की खाली बोतल के लिये ऊपर वाली भट्टी की लम्बाई-चौड़ाई लिखी है। बड़ी बोतल अथवा विलायती आतशी शीशी (Flask) के लिये भट्टी बनानी हो, तो इस विधि के अनुसार बड़ी बनावें।

जमीन में जो ८ इंच गहरा गड्ढ रखा है, उसमें लोह अथवा अभ्रक का संपुट थोड़ी गोबरी के बीच में रखा जाता है। गोबरी जल जाने के पीछे लकड़ी के कोयलों से संपुट पकता रहता है। ३ गजपुट जितनी आंच एक समय में लग जाती है। कदाचित बीच के समय में संपुट निकालना हो तो दूसरी दीवार में एक मुँह बना लेना चाहिये।

इस भट्टी में ३ दिन आंच लगने पर भी कोयला अधिक संगृहीत न होने से काम करने वालों को विशेष त्रास नहीं होता। एक साथ में दो कार्य (भस्म और कूपीपक्व रसायन) हो जाते हैं एवं अकस्मात् शीशी फूट जाय तो भी यन्त्र भट्टी के भीतर रहने से काम करने वालों को हानि नहीं पहुँच सकती है। इस भ्राष्ट्री का उपयोग हमारी रसायनशाला में अनेक वर्षों से होता है।

सूचना-(१) भट्टी बनाने के लिये मकान अधिक खिड़की और दरवाजे वाला तथा ऊंचा होना चाहिए, जिससे धूआं और अग्नि की उष्णता से काम करने वालों को विशेष बाधा न पहुँचे एवं अकस्मात् किसी समय शीशी फूट जाय, तो भी काम करने वाले अपना रक्षण कर सकें।

(२) आवश्यकता पर शीशी को उठाने में उपयोगी हो ऐसी एक मोटी संडासी, एक चीमटा और एक लोहे की शलाका तैयार रखनी चाहिये। लोहे की शलाका छाते की ताड़ी की या छाते की ताड़ी से दुगनी मोटी१॥ हाथ लम्बी और ऊपर के भाग में लकड़ी का दस्ता लगी होनी चाहिये, एवं शलाका के नीचे के भाग को थोड़ा पतला बनवा लेना चाहिये।

(३) मिट्टी को एक खेलड़ी (घड़े के नीचे का आधा भाग) पैंदें में छेद वाली जिस छेद में शीशी का मुख बराबर आ जाय-ऐसी बालूका यन्त्र पर रखनी चाहिये, जिससे कभी उफान आ जाय तो भी औषधि रक्षण हो जाय, अन्यथा रेत में गिरकर औषधि निकम्मी हो जाती है। साथ ही खेलड़ी होने से बोतल के ऊपर के भाग में अग्नि की लपट से नुकसान भी नहीं पहुँचता।

(४) भट्टी बिल्कुल खुले भाग में नहीं बनानी चाहिये, अन्यथा वर्षा ऋतु में वर्षा का भय और गर्मी के दिनों में धूप का त्रास भोगना पड़ेगा तथा खुले भाग में किसी-किसी समय विषम वायु लगने से अग्नि भी बराबर नहीं लगेगी।

(५) लोहे की छड़ें जो दीवार में रखने की हैं, वे पतली होंगी, तो बालुका यन्त्र के बोझ और अग्नि की लपटें लगने से मुड़ जायेंगी।

बालुका यन्त्र-मिट्टी अथवा लोहे की हांड़ी भट्टी के भीतर आ जाय और चारों ओर एक-एक अंगुल जगह खाली रहे ऐसी लेनी चाहिये। १-१ अंगुल जगह होने से अग्नि लपटे चारों ओर समान लगती रहती हैं और धूआं निकलता रहता है। हांडी लगभग १२ इंच ऊँची और चौड़ाई शीशी को भीतर रखने पर चारों और लगभग २ इंच जगह खाली रहे, वैसी लेनी चाहिये। कितने ही मिट्टी के बरतन तेज आँच के समय गल जाते हैं और लोहे के बरतन में मन्दाग्नि के समय भी आँच तेज लग जाने की सम्भावना है। इसलिये समयानुकूल लोह-पात्र अथवा मिट्टी की पक्की हांडी लेवें। यदि लोहपात्र या मिट्टी की पक्की हांडी हो तो उस पर दो तीन कपड़मिट्टी कर लें और मिट्टी के बरतन के मुँह परे लोहे का तार बांधें, जिससे फूटने का भय न रहे। लोहे के बर्तन में अथवा मिट्टी की हांडी के पैंदे में बराबर बीच में एक पैसा आ जाय उतना बड़ा छेद करालें और छेद करके अन्दर ३ इंच गोल कटा हुआ अभ्रक अथवा केलु (Tile) का पतला टुकड़ा रखकर चारों ओर थोड़ी मिट्टी (शीशी स्थिर रहने और रक्षण के लिये) लगा दें। मिट्टी सूखने पर कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी अभ्रक के टुकड़े पर सीधी रख कर, चारों और थोड़ी मिट्टी लगावें। पश्चात् यन्त्र में शीशी के इर्द-गिर्द रेत भरें। कितने ही चिकित्सक 2 इंच चौड़ा छेद करते हैं एवं अभ्रक

८-९. लोहे के डण्डे (Iron Bars) दीवार में ६ इंच। भट्टी में २ इंच। तीसरा डण्डा पिछली दीवार में नहीं दीखता।

१०-११. वालुका यन्त्र के चारों और आध-आध इंच खाली जगह वह अग्नि की लपटें और धुआं बाहर निकलने के लिये रखी है।

१२-१३. लोहे की साँटी के ऊपर बनी हुई दीवार। ऊंचाई ६ इंच। ऊपर के भाग में चौड़ाई ६ इंच।

१४. बालुकायन्त्र, जिसमें अभ्रक के पतरों के ऊपर शीशी रखी है।

१५. शीशी के कण्ठ का भाग, जो यन्त्र से बाहर प्रतीत होता है।

१६. शीशी के ऊपर मिट्टी के घड़े के नीचे का आधा हिस्सा पहिनाया है। यह औषधि उफान आकर बाहर न निकलने और अग्नि द्वारा कण्ठ से लगी हुई औषधि की रक्षा के लिए रखा है।

१७-१८. भट्टी के ऊपर की दीवार। चौड़ाई २५ इंच।

१९-२०. पिछली दिवार, जो भाग आगे से दीख सकता है।

का पतरा भी नहीं रखते। उस विधि से योजना करने पर रसायन जल्दी पकती है। किन्तु इससे यंत्र से बालुका निकल जाने का तथा शीशी को हानि होने का भय रहता है।

परिष्कृत भ्राष्ट्री चित्र

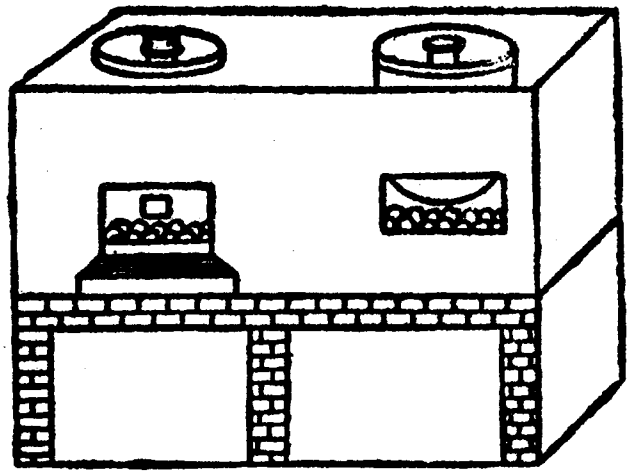

बालु रेत नदी में से मंगाकर बहुत मोटी और बहुत बारीक निकाल, मध्यम परिमाण की उपयोग में लें। समुद्र के किनारे की खारी रेत को न लेवें। रेत भट्टी में ३-४ समय काम देती है। किसी समय अकस्मात् बालुका यन्त्र टूट जाय, तो भी रेत के लिये दौड़ना न पड़े, इसलिये एक दो पीपा अधिक भरकर तैयार रखें। यन्त्र में शीशी रखने के बाद पैंदे की मिट्टी सूखने पर रेत शीशी के गले तक भरें। शीशी के गले के ऊपर का भाग खाली रखें। रेत भरने के समय शीशी के मुंह पर डाट लगा दें ताकि शीशी में रेत न गिरे। कज्जली भरने के समय काँच की कीप (Funnel) या कागज के चोंगा को शीशी पर रख करके भरें, ताकि कज्जली रेत में न गिरे।

आतशी शीशी–कूपीपक्व रसायन बनाने के लिये शीशी समतल वाली अथवा नीचे से फूली हुई लेनी चाहिये। तले में खड्डे वाली शीशी न लें। विलायती शराब की पक्की शीशी चल सकती है। विलायती पक्की आतशी शीशी (Flask) के फूटने का डर बहुत कम रहता है। किन्तु अग्नि तेज लगने पर वह मुड़ जाती है, यदि उसे लेना हो तो १ सेर जल रहे उतनी बड़ी लें। एक साथ में ज्यादा गन्धक मिलाकर कूपीपक्व रसायन बनाना हो तो विलायती अथवा देशी बड़ी शीशी में से अनुकूल रहे उसको उपयोग में लेवें।

शीशी के ऊपर में एक-एक बालिश्त के छोटे-छोटे कपड़े के टुकड़ों को मिट्टी में भिगोकर कपड़मिट्टी करें। ७ कपड़मिट्टी करके शीशी को उपयोग में लेवें। पतली आतशी शीशी हो, तो ३ कपड़मिट्टी ज्यादा करें। एक कपड़मिट्टी सूखे तब दूसरी करें। एक साथ ७ या १० कपड़मिट्टी नहीं करनी चाहिये। कारण क्वचित पतली शीशी मिट्टी के बोझ से टूट जाती है एवं एक साथ की हुई, कपड़मिट्टी मजबूत भी नहीं होती। ७ कपड़मिट्टी में लगभग आधे से पौन इंच तक मौटाई शीशी पर होती है। बार-बार ज्यादा मिट्टी नहीं लगानी चाहिये।

कपड़मिट्टी करने में छनी हुई चिकनी मिट्टी के साथ थोड़ा गोबर और घोड़े की लीद मिला लेने से विशेष मजबूती होती है अथवा भिगोकर छानी हुई मिट्टी ८ सेर, रेत २ सेर, राख १ सेर, नमक ऽ॥ सेर मिलाकर कीचड़ करें। फिर छोटे-छोटे (८-९ इंच के) कपड़ों को भिगोकर शीशी पर लपेटें अथवा मुलतानी मिट्टी से कपड़मिट्टी करें। कितने ही चिकित्सक कपड़े के स्थान पर रूई को मुल्तानी मिट्टी में मिलाकर एक ही कपड़मिट्टी करते हैं, वह भी दृढ़ होती है।

सूचना–शीशी में औषधि तीसरे हिस्से से आधे भाग के भीतर रहे, उतनी भरें। शेष जगह खाली रखें। ज्यादा औषधि भरने से क्वचित् उफान आकर औषध बाहर निकल जाती है। शीशी में कज्जलीयुक्त औषधि बिल्कुल सूखी डालें। गीली औषधि से शीशी फूटने का भय रहता है।

अग्नि देने की विधि–अग्नि देने के लिये बबूल की सूखी लकड़ी हाथ के कांड़े जैसी मोटी लें। पहले लकड़ी इकट्ठी करके रखें, जिससे रात्रि के समय एकाएक लकड़ी लाने के लिए दौड़ना न पड़े। तीन दिन अग्नि देने के लिए लगभग ५ मन लकड़ी लगेगी। पहले दिन लगभग १ मन, दूसरे दिन १॥ मन और तीसरे दिन २॥ मन लकड़ी का साधारण अनुमान है। यदि चूल्हा ठीक नहीं होगा, तो लकड़ी ज्यादा जलेगी। अन्त में तेज अग्नि दी जाती है वह नियम से कम लगेगी, तो औषधि कच्ची रह जायेगी और अति तेज हो जायेगी तो शीशी गल जायेगी या औषधि जलकर उड़ जायेगी इसलिये मर्यादानुसार अग्नि दें। इस बात को लक्ष्य में रखें कि विलायती पतली शीशी को अग्नि थोड़ी मन्द देनी पड़ती है, अग्नि तेज होने पर उसके गलने का भय है; सादी काली शीशी को तेज अग्नि ज्यादा परिमाण में देनी पड़ती है। लाल रंग

की पक्की शीशी अधिक तेज अग्नि सहन कर लेती है।

अग्नि प्रथम मन्द, फिर मध्य और अन्त में तेज दें। अग्नि देने के दो तीन घण्टे के बाद यन्त्र गरम होकर शीशी में से गन्धक का धूआं निकलना शुरू होता है। ६ घण्टे बाद गन्धक पिघल जाती है; तब अग्नि थोडी तेज करें। यदि अग्नि ज्यादा तेज हो जायेगी तो शीशी में उफान आकर कज्जली बाहर निकल जायेगी। कभी ऐसा होकर कज्जली बाहर निकलने लगे तो भट्टी में से लकड़ी बाहर खींच लें और तुरन्त लोहे की शलाका को शीशी में चलावें जिससे उफान तुरन्त बैठ जाय। जो भूल हो जायेगी और १५-२० मिनट निकल जायेंगे तो ऊपर छप्पर में शीशी उछलकर घर जला देगी और काम करने वालों को भी बाधायें पहुँचेगी अथवा कज्जली रेत में गिरकर निकम्मी हो जायेगी।

लगभग १२ घण्टे पीछे जब धूआँ ज्यादा परिमाण में जोर से निकलता दीखे; तब लोहे की सलाका को अग्नि में तपा, शीशी के मुँह में डालकर परीक्षा करें। बराबर रस हो जाने पर मुँह पर गन्धक की बत्ती जलती रहेगी अन्यथा बत्ती तुरन्त बुझ जायेगी। बत्ती चालू रहे तो ताप और थोड़ा तेज करें। बत्ती जलने की शुरूआत हो जाने के बाद लगभग १२ घण्टे तक बत्ती जलती रहती है। पहले बत्ती मुँह पर दीखती है, वह कुछ सयम पीछे गले के भीतर चली जाती है। जिस तरह औषधि पकती जाय और धुआँ कम होता जाय, उस तरह अग्नि थोड़ी-थोडी तेज करनी चाहिये; जिससे समय पर औषधि तैयार हो जाय।

जब सब गन्धक जलकर बत्ती बन्द हो जाती है और धूंआ थोड़ा-थोड़ा निकलता हुआ देखने में आता है, तब लोहे की शलाका को तपाकर बार-बार आध-आध घण्टे पर शीशी में डालकर गले को साफ करते रहें। यदि औषधि में क्षार मिलाया हो तो गन्धक में से क्षार निकलकर बार-बार गले में लगता रहता है। कदाच इस क्षार से मुँह बन्द हो जाय तो शीशी के फट जाने या उछल जाने का भय रहता है। इसलिए सावधानी से लोहे की तप्त शलाका से गले में लगे हुए क्षार को गिराते रहें। इस तरह बार-बार मुँह को साफ किया जायेगा, तो औषधि में क्षार का मिश्रण कम होगा; और औषधि भी जल्द पकेगी।

इस बात को भी स्मरण में रखें कि शलाका से बार-बार तलस्थ औषधि का चालन नहीं करना चाहिये। केवल गले को साफ करें। तप्त शलाका से तलस्थ औषधि का बार-बार चलन न करने से औषधि के पाक में थोड़ा अधिक समय लगता है तथापि औषधि बनने में जितना समय अधिक लगता है उतना ही गुण अधिक होता है।

औषधि पाक का निश्चय करने के लिए तप्त शलाका को चला बाहर निकाल कर तुरन्त सूंघें। यदि गन्धक की गन्ध बिल्कुल न आती हो तो समझ लें कि औषधि का पाक हो गया। पाक तैयार होने लगे तब बोतल के भीतर शलाका को न चलावें। कारण आसन्न पाक के सामय बार-बार शलाका से औषधि चालन करते रहने से तैयार हुई औषधि में से पारद का अंश उड़ने लगता है।

सूचना-(१) यदि औषधि में नौसादर या कोई क्षार मिलाया हो तो धूआँ निकलने की शुरूआत में ही शीशी के मुंह को साफ करते रहें। कारण, नीचे रहा हुआ क्षार धूआं निकलने के प्रारम्भ से ही ऊपर चढ़ने लगता है।

(२) यदि अग्नि कम लगेगी तो पैदें में कच्चा द्रव्य रह जायेगा और ऊपर नली में लगी हुई औषधियों को भी खोलने में कठिनता होगी।

(३) बार-बार बोतल के भीतर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये, अन्यथा नेत्र ज्योति को हानि पहुँचती है तथा श्वासनलिका में विकार हो फुफ्फुस दुर्बल हो जाते हैं।

डाट लगाने की विधि-सब गन्धक जलकर, और धूआं बन्द होकर जब औषध ऊपर से लाल दीखती है, तब चूना शहद मिला उसमें कपड़े का टुकड़ा भिगो, ईंट या चाक के डाट के ऊपर लपेटकर शीशी पर लगा दें। कदाचित् थोड़ा धूआं रह जाने के कारण किसी समय जोर से डाट उड़ जाय तो घबराना नहीं चाहिये। आधा घण्टा बाद पुन: डाट लगा दें। डाट लगाने के बाद मुंह पर एक कपड़े की पट्टी चूना और शहद में डुबोकर लगा दें, जिससे सन्धि अच्छी तरह से बन्द हो जाय। शीशी पर लगाने के पहिले १।-१॥ इंच लम्बा डाट चाक अथवा ईंट के टुकड़े को घिसकर पहले से तैयार कर लें। १ इंच डाट शीशी के भीतर जाय, शेष भाग बाहर रहे: वैसा डाट होना चाहिए।

परीक्षा के लिये शीशी के भीतर तप्त लोह शलाका डालने से औषधि पक गई हो तो एक दम लाल अग्नि की लपट उठती है। गन्धक रहने पर लपट में नीला रङ्ग भासता है। यदि सोमल, हरताल या मैनसिल मिश्रित औषधि होगी तो लाल बत्ती नहीं बनेगी, सफेद बनेगी। इस तरह परीक्षा करके लाल या सफेद बत्ती दीखने पर डाट लगा दें। यदि डाट समय पर नहीं लगाया जायेगा तो चन्द्रोदय आदि औषधि में से बहुत भाग उड़ जायेगा।

अनेक बड़े-बड़े कविराज शीशी पर डाट नहीं लगाते केवल आंच कम कर देते हैं। विशेष करके पत्थर के कोयलों की अग्नि देते हैं, जिससे औषधि जल्दी (केवल १०-१२ घण्टे में) तैयार हो जाती है। डाट न लगाने की जो विधि है उसमें, औषधि कुछ कम निकलती है वे लोग लोह शलाका से औषधि चालन नही करते और पाक-काल में ६ माशे शोरा डालते हैं, जिससे गले में सत्वर औषधि लग, मुँह बन्द होकर ऊपर में औषधि पकती है, फिर ऊपर में औषधि शुष्क होने से वे लोग अग्नि बन्द कर देते हैं। इस तरह तैयार की हुई औषधि न्यून गुणयुक्त होती है।

अनेक नव विज्ञानवादी वैद्य विद्युत (Electric) की भट्टियों पर भी कूपीपक्व रसायन तैयार करते हैं जो कि अति शीघ्र बन जाते हैं किन्तु वे रस गुण प्रभाव के विषय में अपेक्षाकृत न्यून माने जाते हैं।

शीशी के मुँह पर डाट लगाने के समय नवीन वैद्यों को चाहिये कि धुआँ न दीखे तब ऐसा ही एक समय डाट लगा देवें। आधे घण्टे पीछे डाट निकाल कर देखने से, धूओं रहा होगा तो एक दम निकल जायेगा। धूआं नहीं होगा तो डाट के मुंह पर थोड़ी-सी पारा वाली औषधि लग जायेगी। ऐसा निश्चित् कर तुरन्त डाट लगा देना चाहिये। मुंह पर डाट लगाने के पीछे एकाध घण्टा अग्नि मन्द करें। पश्चात् धीरे-धीरे तेज करते जायें। अन्त में तेज अग्नि १२ से ३६ घण्टे तक देने से औषधि तैयार हो जाती है।

औषधि निकालने की विधि–अग्नि बन्द करने के दो दिन बाद यन्त्र स्वांग शीतल होने पर नीचे उतारकर शीशी निकालें। ऊपर की कपड़मिट्टी साफकर शीशी को तोड़ें। तोड़ने के लिये एक सूतली का टुकड़ा मिट्टी के तैल में भिगोकर शीशी का पेट बांधकर जलावें। जब अग्नि बुझने लगे, तब सूतली की जगह पर थोड़ा बूंद-बूंद जल टपकावें, जिससे शीशी के दो टुकड़े हो जायेंगें। छोटे-छोटे टुकड़े होकर औषधि में काँच न मिल जाय, इस बात की सम्हाल रखें। यदि कांच का टुकड़ा औषधि के साथ रखकर खाने आने में आ जाय, तो अन्तड़ी में से रक्तस्राव होने लगता है। शीशी तोड़ने के समय साफ जमीन पर एक बड़ी थाली में शीशी को रखकर तोड़े। शीशी में से धूआं निकलकर, श्वासोच्छवास में न चला जाय, यह भी सम्हालें, अन्यथा कास श्वास रोग हो जाता है।

शीशी के मुख पर जो तैयार औषधि की नली लगती है, उसे सम्हालकर निकालें। यदि नली पर थोड़ा मैलवाला भाग हो, तो उसे चाकू से खोलकर अलग रखें। उसे दूसरी बार जब उस प्रकार की औषधि तैयार करनी हो तब कज्जली में मिलालें। जो नीचे पैंदे में थोड़ी गन्धक की काली राख शेष रह जाती है, यह निकम्मी है। बजनदार राख हो, तो उसमें पारद का अंश रहता है। अग्नि कम लगने से नीचे पैंदे में वजनदार नीली, काली भस्म का गठ्ठा शेष रह जाय, तो उसे दूसरे समय कज्जली में मिलाकर औषधि बना लेनी चाहिये।

यदि सोना कज्जली में मिलाया हो तो उसकी काली भस्म बनकर पैंदे में रह जाती है। उसे ३-४ समय सुवर्ण भस्म में कही विधि से जल द्वारा धोकर भस्म बनालें या एसिड के योग से शोधन कर शुद्ध सुवर्ण बनालें।

औषध-परीक्षा–जो कूपीपक्व रसायन बोतल में से सरलतापूर्वक खुल जाय, वह पक्का माना जाता है, जिस रसायन को खोलने में अधिक परिश्रम पड़े, एक साथ विशेषांश में न खुले, अति कठिनता से थोड़ा-थोड़ा खुले, वह अपक्व माना जाता है। यदि भली भाँति से परिपक्व न हुआ हो, ऐसे रसायन का सेवन किया जायेगा तो मुंह में थूंक का प्रवाह बढ़ना, मसूड़े में शोथ आना और दांत हिलना आदि विकार उत्पन्न हो जायेंगे।

जो रसायन कच्चा रह गया हो उसे दूसरी बार समभाग गन्धक मिला आतशी शीशी में पर २४ घण्टे अग्नि देकर तैयार कर लेना चाहिये।

पारद शोधन विधि–शास्त्र में पारद शोधन के १८ संस्कार कहे हैं। उनमें ८ संस्कार औषध कार्य के हेतु से कहे हैं। शेष संस्कार गुणाधान कराने के लिए कहे हैं। अतः स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन (अधःपातन, ऊर्ध्वपातन और तिर्यक्पातन) बोधन, नियमन और सन्दीपन इन आठ संस्कारों का यहां वर्णन किया है।

(१) **स्वेदन विधि**–चित्रकमूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, सैंधानमक, राई, मूली और अदरक, सबको समभाग मिलाकर ४० तोले लें। फिर पारद ८ तोले में मिलाकर कांजी के साथ ३ दिन खरल करके गोला बांधें। पश्चात् भूर्जपत्र अथवा केले या कमल के पत्तों में अच्छी रीति से लपेट ऊपर सूत बांधकर, चौगुने मजबूत कपड़े की थैली में रखें और कांजी से २-३ इंच ऊपर रहे, उस तरह लटकावें। कांजी पारद को न लगे केवल वाष्प लगता रहे उस तरह दोलायन्त्र विधि से तीन अहोरात्र स्वेदन करें। बार-बार कांजी डालते जायें। लगभग १ मन कांजी लगेगी। इसलिए पहिले से कांजी आवश्यकतानुसार तैयार करा लेनी चाहिये। फिर पारद को निकाल डमरूयन्त्र में डालकर ४-५ तोले उड़ालें। शेष पारद हाँडी शीतल होने पर स्वयमेव काष्ठादि औषधियों की राख से अलग हो जायेगा। कदाचित् राख में कुछ अंश शेष रह जाय तो डमरूयन्त्र द्वारा पुनः उड़ा लें। इस तरह पारद को स्वेदित कर लेने पर प्रथम संस्कार पूर्ण होता है।

(२) **मर्दन विधि**–लाल ईंट का चूर्ण, हल्दी, रसोईघर का धुआँ, कंबल या ऊन की काली राख और कड़वी तूम्बी के बीज सबको पारद से १६ वाँ-१६वाँ हिस्सा लें, पारद के साथ मिला, नींबू का रस डाल-डालकर ३ दिन तक खरल करें। पश्चात् डमरूयन्त्र द्वारा उड़ा लेने से पारद शीशे के दोष से मुक्त हो जाता है।

पश्चात् उस पारद में इन्द्रायण के मूल का चूर्ण और अङ्कोल के मूल का चूर्ण १६ वाँ, १६ वाँ हिस्सा मिला कांजी के साथ १ दिन खरलकर, डमरूयन्त्र द्वारा उड़ा लेने से पारद वंगदोष से भी मुक्त हो जाता है।

(३) **मूर्च्छन विधि**–पारद को घीकुंवार के रस, त्रिफला के क्वाथ और चित्रकमूल क्वाथ में ७-७ दिन तक अनुक्रम में मर्दन करें। घीकुंवार से मल का नाश, त्रिफला से दाहनाश और चित्रकमूल से विषदोष दूर होता है। इस रीति से २१ दिन तक खरल करने से पारा मूर्च्छित होता है। कई आचार्यों ने १-१ दिन मर्दन करने का विधान किया है।

(४) **उत्थापन विधि**–मूर्च्छित पारद को पहले कांजी डाल दोलायन्त्र से ३ दिन स्वेदन करें। पश्चात् १२ घण्टे नींबू के रस के साथ सूर्य के ताप में खरल करें। फिर डमरूयन्त्र द्वारा तीव्राग्नि देकर पारद को उड़ा लेवें।

(५) **पातन संस्कार**–उर्ध्व, अधः और तियक् भेद से त्रिविध है।

ऊर्ध्वपातन विधि–पारद में १/३ भाग तांबे का चूर्ण मिला लोहे के खरल में नींबू के रस के साथ ताँम्बे में मिल जाय, तब तक अर्थात् ६ घण्टे खरलकर गोला बनावें। डमरूयन्त्रद्वारा पारद को उड़ा लें।

अधः पातन विधि–हरड़, बहेड़े, आंवले, चित्रकमूल, नमक, राई और संहिजने की छाल सबको समभाग मिलाकर पारद से आधा लें। फिर इन औषधियों और पारद को घीकुंवार के रस के साथ मिलाकर खरल करें। जब पारद का कण देखने में न आवे तब मिट्टी के घड़े में लेपकर डमरूयन्त्र बनालें। लेप वाले घड़े को ऊपर रखें। नीचे का घड़ा जमीन में दबा दें। ऊपर के घड़े का केवल चतुर्थांश भाग जमीन से ऊपर रखें। नीचे का घड़ा जल में डूबा रहे और ठंडा जल बार-बार बरतन के चारों और जा सके, इसलिये एक बांस की नली दो हाथ लम्बी जमीन में दबावें। जिसका १ मुँह नीचे के घड़े के साथ लगा रहें, और दूसरा जमीन के ऊपर घड़े से १-१॥ हाथ दूर रहे। इस नली को जल से भरी रखें, नली खाली होती जाय, वैसे-वैसे जल डालते जायँ। इस तरह योजना करके ऊपर के घड़े पर गोबरी जलावें। १२ घण्टे मध्यमाग्नि देने से पारद नीचे आ जाता है, अथवा भूधर यन्त्र द्वारा पारद का अधः पातन करें।

तिर्यक् पातन विधि–पारद को चतुर्थांश धान्याभ्रक में मिला, कांजी के साथ १२ घण्टे खरल करें। पश्चात् (सुराही के आकार के फूले हुए पेट वाले और लम्बी गर्दन वाले) मिट्टी के दो घड़े लेवें। इसमें से एक घड़े के भीतर लेपकर, दूसरा समान मुँह वाला घड़ा मिलाकर, डमरूयन्त्र बनावें अर्थात् दोनों के मुंह को मिलाकर मजबूत कपड़मिट्टी से बन्द करें। पारेवाला घड़ा चूल्हें पर रखें और दूसरा खाली घड़ा जल से भरी हुई कड़ाही या बाल्टी में रखें। कड़ाही को भी थोड़ी ऊँची रखें। बार-बार उस पर जल छिड़कते रहें अथवा गीला कपड़ा फेरते रहें या खाली घड़े में आधे भाग तक जल भरे पारद वाले घड़े के ऊपर कपड़मिट्टी करें और भीतर सोहागा और लाख का रस चारों तरफ लगा ले कि, पारद वाले घड़े पर जल वाला कपड़ा फिराने से भी वह न फूटे ऐसी योजना नहीं होगी तो पारद बहुत-सा उड़ जायेगा अथवा चौड़े मुँह वाले २ घड़े और बाँस नलिका की योजना करके तिर्थक् पातन यन्त्र बना लें।

वर्तमान में विदेश से लम्बी मुड़ी हुई गर्दन वाली शीशी (Retort) आती है, उसके मुँह के साथ अन्य शीशी (Receiver) को जोड़ पारद भर स्पिरिट लैम्प पर तिर्थक्पातन कर लेने से पारद की हानि नहीं होती और सरलता से शोधन क्रिया हो जाती है। ऐसा आधुनिक आचार्य ने लिखा है। हमारे द्वारा अनुभव करने पर वृथा परिश्रम हुआ। पारद ऊपर उड़ उड़कर बार-बार गिरता रहता है।

(६) **बोधन (रोधन) विधि**–अमृतबान के भीतर सैंधानमक ४० तोले के साथ पारद १६० तोले मिलावें। उसमें जल २०० तोले डालें। फिर अमृतबान पर मुखमुद्रा कर जमीन में १ सप्ताह दबा देने पर या पृथक् रख देने पर पहले के संस्कारों द्वारा जो षंडता या कदर्थता आई हो, वह दूर हो जाती है एवं पारद वीर्यवान् बन जाता है। १ सप्ताह बाद पारद को अलग निकाल लें।

(७) **नियमन विधि**–गन्धनाकुली (सर्पाक्षी अभाव में रास्नामूल) का कन्द, कच्ची खट्टी इमली, बांझ कटाली (बांझ ककोड़ी) का कन्द, भांगरा, नागरमोथा और धतूरे के बीज समभाग लेकर क्वाथ करें। इस क्वाथ में १२ घण्टे तक दोलायन्त्र विधि से पारद को स्वेदन देने से पारद की चंचलता दूर होकर स्थिर हो जाता है। फिर निकालकर निवायी कांजी से धो लेवें।

(८) **संदीपन विधि**–सैंधानमक, समुद्रनमक, छिलका दूर की हुई राई, छिला लहसुन, कच्चा सोहागा, फिटकरी, कासीस, संहिजने की छाल, कालीमिर्च, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, और चित्रकमूल सब को समभाग लेकर चूर्ण करें। पारद के वजन से चूर्ण दुगुना मिला नींबू के रस में ७ दिन खरलकर गोला बनावें। ऊपर भोजपत्र लपेट कर सूत बांधे। फिर मजबूत कपड़े की थैली में रखकर दोलायन्त्र विधि से तीन दिन खट्टी कांजी के साथ स्वेदन करे। कांजी बार-बार डालते जाय। पश्चात् गरम कांजी से धोकर एक दिन नींबू के रस में कांच के प्याले में १२ घण्टे सूर्य के ताप में रखें। दूसरे दिन गरम जल से धो लेने से पारद सम्पूर्ण दोषों से मुक्त हो जाता है। यह उज्ज्वल एवं ग्रासार्थी बन जाता है।

सूचना–धोने के समय कुछ पारद जल में मिल जाता है, उसे जल स्थिर होने पर तले से निकाल लेना चाहिये। जो पारद कांजी आदि में मिल गया हो, उस मिश्रण को उबाल गाढ़ाकर फिर पारद को उड़ा लेना चाहिये।

पारद पर ८ संस्कार करने में अधिक समय और श्रम की आवश्यकता है, तथा पारद में से बहुत भाग उड़ भी जाता है। तथापि ८ संस्कार किये पारद से बहुत लाभ प्राप्त होता है। इस अष्ठ संस्कारित पारद में से पूर्ण चन्द्रोदय आदि रसायन तैयार करने से शास्त्र में लिखे अनुसार फल की प्राप्ति हो सकती है।

पारद बुभुक्षित सरल विधि–अष्टसंस्कारित पारद को आक का दूध, थूहर का दूध, धतूरे के पत्तों का रस, कलिहारी के मूल का क्वाथ, कनेर के मूल का क्वाथ, सफेद गुञ्जाफल का क्वाथ और अफीम का रस (अफीम से १६ गुना जल मिलाकर तैयार किया हुआ जल) इन ७ उपविषों में अनुक्रम में ७-७ दिन तक खरल करें, बार-बार एक-एक विष में खरलकर पारद को डमरूयन्त्र द्वारा उड़ा लेवें। पश्चात् दूसरे विष में खरल करें। फिर चतुर्थांश बीरबहुँटी और सोहलवां हिस्सा सैंधानमक मिला नींबू के रस में ७ दिन खरलकर डमरूयन्त्र द्वारा उड़ा लेवें। फिर अन्तर्धूम विधि से १६ गुणा गन्धक जारण करके विधिपूर्वक सुवर्ण आदि का ग्रास देने पर पारद को सुवर्ण आदि धातुओं के भक्षण योग्य मुख की प्राप्ति होती है। (८ संस्कार मात्र)

अन्तर्धूम विधि से षोडश गुण गन्धक जारण।

विधि–संस्कारित पारद ५ तोले, शुद्ध गन्धक ८० तोले लें। प्रथम ५ तोले पारद में ५ तोले गन्धक मिलाकर कज्जली बना लें। इसको ७ कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भर डाट लगाकर बालुका यन्त्र में चढ़ाकर मन्द, मध्य व तीव्र क्रम में अग्नि देकर जारण करें। स्वांग शीतल होने पर शीशी को उतार कपड़मिट्टी हटाकर गले में लगे सिन्दूर को एकत्रकर, खरलकर में डालकर बारीक चूर्ण बनाकर समान भाग (५ तोले) गन्धक पुनः मिलाकर कज्जली बना लें तथा इसी उक्त विधि से बालुका यन्त्र में पका लें। इस प्रकार शेष १४ गुना गन्धक १४ बार में जारण करा लें। डाट बन्द शीशी में जारण कराने से अन्तर्धूम जारण कहलाता है।

अनेक रसवैद्य बिना छिद्र वाले डमरूयन्त्र में ५ तोले पारद व ८० तोले गन्धक को एक साथ डालकर मन्दाग्नि से गन्धक का जारण करा लेते हैं।

अनेक वैद्य भूधरयन्त्र में, कोई गौरीयन्त्र में कोई कच्छपयन्त्र द्वारा षड्गुण या षोड्श गुण गन्धक का जारण कराते हैं, वह भी अन्तर्धूम कहलाता है।

बहिर्धूम गन्धक जारण की अपेक्षा अन्तर्धूम विधि से जारण किये गये पारद में गुण वैशिष्ट्य होता है।

सुवर्ण ग्रास–अष्टसंस्कारित पारद जिसे सप्त उपविषों के साथ संदीपन विधि से क्षुधित तथा गन्धक जीर्ण कराया है, उसके साथ सेंधानमक, सज्जीखार, नवसादर आठवां-आठवां हिस्सा तथा सुवर्णभस्म १८ वां हिस्सा मिलावें फिर नींबू के रस में ३ दिन खरल करें। फिर दोलायन्त्र में भरकर काञ्जी या नींबू रस डाल-डालकर १२ घण्टे स्वेदित करें। पश्चात् सुवर्ण माक्षिकसत्व भस्म चौथा हिस्सा और सुवर्णभस्म ८वाँ हिस्सा तथा सेंधानमक, सज्जीखार, नौसादर ८-८वां हिस्सा डालकर तप्त खरल में ७ दिन तक खरल करें। फिर चने का क्षार और नींबू रस आवश्यकतानुसार बार-बार डालते रहें।

पश्चात् थैली में भर, गरम कांजी के भगोने में डुबा-डुबाकर धो लेवें। जिससे मल, क्षार आदि जल में निकल जायेगा। फिर पारद को कपड़े से पोंछ साधारण गरम मिट्टी के पात्र में डाल, मर्दन करके सुखा लेवें। फिर वजन करने पर पारद का वजन होगा, उतना पारद मिलेगा। सुवर्ण को पारद पचन कर लेगा।

फिर अधिक ग्रास देना हो तो इसी विधि से देवें। इस प्रकार सुवर्णग्रास युक्त पारद के साथ पुनः सुवर्णमाक्षिकसत्व भस्म और अभ्रकसत्व भस्म के ६ ग्रास दिये जायें तो चन्द्रोदय तलस्थ ही बनता है। अभ्रक का ग्रास न देने पर पूर्णचन्द्रोदय कण्ठस्थ बनता है।

श्रीभगवान् गोविन्दपादाचार्य जी और उनके अनुयायी सब आचार्यों ने पहले अभ्रकसत्व भस्म का ग्रास देने का विधान किया है, उससे पारद पक्षच्छिन्न होता है। जिससे अग्नि देने पर अन्य पारद के समान उड़ नहीं सकता। फिर सुवर्णग्रास देने की आज्ञा की है। यथार्थ में यह मार्ग अधिक हितावह माना जायेगा। पक्षच्छिन्न पारद!

सुवर्णग्रास देने या अभ्रक सुवर्णग्रास देने के पश्चात् पूर्ण चन्द्रोदय(विशेष) बनाना हो, तो ११ गुणे से १०० गुणे तक गन्धक का जारण करना चाहिए।

जो पारद डमरूयन्त्र से दो समय उड़ाया हुआ जर्मनी से आता है वह शुद्ध होने से सामान्य मलहम आदि में, एवं साधारण कूपीपक्व रसायन बनाने में बिना शोधन किये उपयोग में लेना चाहें तो भी चल सकता है। हम सामान्य औषधियों के लिए कल्याण रसायनशाला में पारद अष्ट संस्कारित का उपयोग करते हैं एवं विशेष औषधियों के लिए गन्धकजारित बुभुक्षित और पक्षच्छिन्न किया हुआ मिलाते हैं।

रसायन (पारद-मिश्रित औषधि)सेवन में पथ्य–घृत, सेंधानमक, धनियां, जीरा और अदरक आदि मसालों के द्वारा संस्कार किये हुए पदार्थ चौलाई, परबल, रामतोरई आदि शाक, गेहूँ, पुराने शालि चांवल, दूध, दही, हंसोदक (धूप और चांदनी में रखा हुआ जल) और मूंग का यूष ये सब पदार्थ सेवन करने चाहिये। (र.र.स.)

पारद सेवन करने वाली के लिये अपथ्य–बड़ी कटेली, बेल, पेठा, बेत के अंकुर, करेला, उड़द, मसूर, मटर, कुलथी, सरसों, तिल तथा लंघन, उद्वर्त्तन (उबटन), स्नान, मुर्गे का मांस, मद्य, आसव, अनूप देशों के जीवों का मांस, कांजी, केले के पत्ते और कांसी के बर्तन में भोजन करना, गुरुपाकी (भारी), विष्टम्भकारक, अत्यन्त तीक्ष्ण और अत्यन्त गरम भोजन, ये सब पदार्थ और क्रियाएँ पारद सेवन करने वाले मनुष्यों को त्याग देनी चाहिये।

ककारादि गण–कटेरी के फल, कांजी, सालई वृक्ष का शाक या कछुए का मांस, तेल, राई, नींबू, निर्मली, तरबूज, पेठा, ककडी, मोर और मुर्गे का मांस, करेला, बांझककोड़ा, बैंगन और कैंथ इन पदार्थों के समूह को ककारादिगण कहते हैं। इस गण का देवीशास्त्र में वर्णन किया गया है।

कांगनी, कन्दूरी, बेर, मुर्गा, मोर और सूअर का मांस, कुलथी, कटेरी फल, सरसों का तैल, काली गलक नामक मछली, कछुए का मांस, मटर, पीपल, पेठा करेला, निर्मली के फल, बांझककोड़ा, ककड़ी, अरहर और कांजी यह ककारादिगण श्रीकृष्णदेव नामक आचार्य ने कहा है।

जिस रस में ककारादि गण के पदार्थों के सेवन का निषेध किया गया हो, उस रस पर इनको ककारादि गण के पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये और अन्यान्य गुणहीन पदार्थों को भी त्याग देना चाहिये। (र.र.स.)

समे गन्धे तु रोगघ्नो द्विगुणे राजयक्ष्मजित्।
जीर्णे तु त्रिगुणे गन्धे कामिनीदर्पनाशकः।।
चतुर्गुणे तु तेजस्वी सर्वशास्त्रार्थसिद्धिदः।
भवेत् पञ्चगुणे सिद्धः षड्गुणेमृत्युजिद् भवेत्॥

गन्धक जारित पारद के गुण–अन्तर्धूम विधि के समान गन्धक जारण करने से पारद का गुण कई गुना बढ़ता है और सर्वसाधारण रोगों का नाश करता है। दुगुना गन्धक जारण करने पर कफ, क्षय और कुष्ठ को दूर करता है। तिगुना गन्धक जारण करने से नपुन्सकता और दुर्बलता दूर करता है। चार गुने गन्धक जारण करने से वृद्धावस्था की निर्बलता को दूर कर शरीर को तेजस्वी बनाता है। पांच गुना गन्धक जारण करने से क्षय का नाश करता है। और संकल्पसिद्ध बनाता है। छः गुना गन्धक जारण करने से इस पारद के समक्ष कोई भी रोग नहीं टिक सकता। यह सम्पूर्ण रोगों का नाशक है एवं मनुष्य को मृत्युजित् बनाता है अर्थात् अकाल मृत्युनाशक होता है।

नव्य चिकित्सकों के मतानुसार पारद-मिश्रित औषधि खाने (प्रेआइल आदि के इञ्जेक्शन करने) और मलहम लेप आदि बाह्यप्रयोग करने पर पारद रक्त में मिलकर रक्तशोधन करता है; रक्ताभिसरण क्रिया बढ़ाता है, और रक्त में रक्ताणुओं की वृद्धि कराता है। रक्ताणुओं की वृद्धि के लिये अति न्यून मात्रा में कुछ दिनों तक सेवन करना चाहिये। किन्तु यदि दूषित पारद का सेवन किया जाय या शुद्ध पारद का अत्यधिक काल तक निरन्तर व्यवहार किया जाय अथवा मात्रा अधिक ली जाय तो रक्ताणुओं का नाश होता है; मांस तन्तु (Fibrin)न्यून हो जाता है तथा कितने ही विपरीत लक्षण भी प्रकाशित होते हैं, यथा मुँह में छाले, मुँह का स्वाद पित्त-प्रकोप-सूचक होना, दांतों की जड़ में शिथिलता और वेदना होना, लाला स्राव में वृद्धि और मुँह से दुर्गन्ध निकलना, नाक से उष्ण निःश्वास निकलना, कण्ठ में लसीका ग्रन्थियों की वृद्धि, पारद शोषित हो जाने पर शरीर की समस्त ग्रन्थियों के स्राव की वृद्धि होना; अति प्रस्वेद आना, किसी-किसी को दस्त पतला होना, किसी को वृक्क स्थान में पीड़ा, चलते समय हाथ पैर का कम्प, देह में शुष्कता और निस्तेजता का आना आदि प्रकट होते हैं।

क्वचित् वात संस्थान आक्रान्त होने पर पैर और मस्तिष्क की मांसपेशियों से स्पन्दन होना अथवा पक्षाघात के प्रारम्भिक लक्षण या मन्द वेदना होती है। किसी को प्रलाप होता है। अतः पारद का व्यवहार दीर्घकाल तक करना हो तो बीच-बीच में थोड़े-थोड़े दिन बन्द करते रहना चाहिये। डाक्टरी पारद कृति में जितना हानि भय है, उतना आयुर्वेदिक कृति में नहीं है। फिर भी सम्हालते रहना, यह लाभदायक है।

बड़े मनुष्य की अपेक्षा बालक-बालिकाओं को पारद विशेष सहन होता है। बाल्यावस्था में पारद मिश्रित औषधि सेवन करने से थोड़े ही दिनों मे शरीर मोटा बन जाता है।

सूचना–आयुर्वेदिक विधि से शोधित पारद और शुद्ध पारद प्रधान औषधि से किसी को हानि नहीं पहुँचती है फिर भी पारद सेवन काल मे १०-१० दिन पर मसूड़ों को देख लें कि, मसूड़ों पर नील-वर्ण की रेखाएँ तो नही हैं। एवं लाला निःसरण वृद्धि तो नहीं हुई है? ऐसा कदाच प्रतीत हो तो तत्काल औषधि बन्द कर देनी चाहिये एवं इसके विपरीत प्रवाल, मुक्ता, सुवर्णमाक्षिक, अमृतासत्व, सितोपलादि, च्यवनप्राश आदि प्रकोपशामक औषधि का सेवन करना चाहिये। आवश्यकता पर पहिले विरेचन ले लेना चाहिये।

[illegible] पारद की अपेक्षा विशेष शोधित पारद मिलाने से रसायन गुण में वृद्धि होती है, अत्युत्तम पारद होता है। इससे भी बुभुक्षित पारद मिलाने पर रसायन अत्यधिक गुण प्रदान करता है। [illegible] पारद को प्राचीन आचार्य बुभुक्षित पारद कहते थे, पक्की और खरल में रसायन बना कर उपयोग करते थे, उसी तरह वर्तमान में भी बुभुक्षित पारद का ही उपयोग किया जाना चाहिये शास्त्र वर्णित सूत्र [illegible] होना चाहिये।

शतगुण गन्धक जारित, माक्षिकाभ्रसत्व, सुवर्ण ग्रासित–

(१) पूर्ण चन्द्रोदय रस (विशेष) तलस्थ

प्रथम विधि–अष्ट संस्कारित विशुद्ध पारद २० तोले, शुद्ध गंधक २००० तोले, सुवर्ण भस्म २॥ तोले, अभ्रक सत्व ५ तोले, सुवर्णमाक्षिक सत्व ५ तोले लें।

(वैद्य-बद्रीनारायण शास्त्री)

सर्वप्रथम–अष्टसंस्कारित २० तोले पारद को इसी प्रकरण में लिखित सरल बुभुक्षा विधि से बुभुक्षित करलें। पश्चात् पारद को पक्की, पत्थर की खरल में डालकर अष्टमांश बिड व नींबू का रस मिलाकर १ दिन भर घोटे, दूसरे दिन पारद से $\frac{1}{64}$ भाग अभ्रक सत्व थोड़ा नींबू का रस डालकर घोटें। फिर इसमें $\frac{1}{64}$ भाग सुवर्णमाक्षिक सत्व थोड़ा शहद व नींबू का रस डालकर घोटें तथा गोला बनालें। इसे सेंधानमक व जवाखार १॥-१॥ तोले को नींबू के रस से घुटे हुए लेप से लिप्त चौलड़ कपड़े पर गोले को रखकर पोटली बना, मजबूत मिट्टी की हांडी में काँजी भरकर दोलायन्त्र विधि से १ दिन भर स्वेदित करें। फिर यन्त्र ठण्डा होने पर गर्म पानी से धोकर पारद को निकाल लें। इसी प्रकार शेष ग्रास भी

दोलायंत्र विधि से दें।

इसी विधि से उक्त पारद में $\frac{1}{32}$, $\frac{1}{16}$ और $\frac{1}{8}$ भाग अभ्रकसत्व तथा सुवर्णमाक्षिक सत्व ५-५ तोले का जारण करने से पारद शक्तिशाली एवं निश्चल बनता है। पश्चात् इसी विधि से २॥ तोले सुवर्ण का जारण कर लें यह पारद अति दिव्य गुणप्रद बन जाता है।

यथाहि रसशास्त्रेषु-

गगन जारयेदादौ सर्वसत्वमतः परम्।
ततो माक्षिकसत्व च सुवर्ण तदनन्तररम्॥ (रसार्णव)

वर्तमान समय में अभी तक समगुण से लेकर २६ गुना गंधक जारित पारद द्वारा पूर्णचन्द्रोदय बनता रहता है। कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन, कालेड़ा को ही सर्व-प्रथम यह अनुभव करने का श्रेय प्राप्त हुआ है कि शतगुण गंधक जारित, अभ्रक, सुवर्ण, माक्षिक ग्रासित पारद द्वारा पूर्णचन्द्रोदय रस तैयार करवाकर अपने अनुभव को लेख बद्धकर वैद्यवरों एवं जन-समाज की सेवा में समर्पित किया है। वैसे इस नूतन कार्य को अभूतपूर्व प्रयास इसलिए नहीं कहा जा सकता कि शास्त्रों में शतगुण तक गंधक जारण करने का विधान आया है। यथाहि-

तप्तं तप्तं शतधा पलाण्डु रसे निषिक्तमन्ते च पञ्चधाजले।
दुग्धे निषिक्तं गन्धकमष्टगुणं शतगुणं वा जारयेत्॥

उक्त विधि से निष्पन्न दिव्य पारद को डमरू यन्त्र की नीचे की हांडी में डाल कर ऊपर ४० तोले शुद्ध गंधक डालें तथा इस हांडी पर, पैंदे के बीच में १ इंच व्यास के गोल छिद्र वाली हाँडी रख, मुँह से मुँह मिलाकर सन्धि पर कपड़मिट्टी कर सुखाकर चूल्हे पर चढ़ाकर मन्द-मन्द आँच देना प्रारम्भ करें। धीरे-धीरे गन्धक जलने पर धूंआ निकलता रहेगा, इसका ध्यान रखें। गंधक जारण होकर धूंआ निकलना कम हो जाने पर ऊपर की हांडी के छेद में से २० तोला गन्धक और डाल दें। इस प्रकार क्रमशः ५०० तोले गन्धक का जारण हो जाने पर इस पारद मिश्रण को दोलायंत्र वाली नीचे की हांडी में से निकाल कर इसे ७ कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भरें, बालुका यंत्र में चढ़ाकर चन्द्रोदय विधि से पकालें। यन्त्र स्वांग शीतल होने पर उतार कर शीशी में से चन्द्रोदय को निकालें। यह २५ गुना गन्धक जारित चन्द्रोदय बना है।

२. तदुपरांत इस चन्द्रोदय को पुनः दूसरे डमरूयन्त्र में ४० तोले शुद्ध गंधक सह भरकर चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि से जारण करें। इस प्रकार ५०० तोले गंधक और जारण करें। गन्धक जारण हो जाने पर मिश्रण को निकाल कर चन्द्रोदय विधि से बालुका यन्त्र में चढ़ाकर चन्द्रोदय बना ले। यह ५० गुना गन्धक जारित चन्द्रोदय बना है।

३. पुनरपि इस चंन्द्रोदय को डमरूयंत्र में ४० तोले गन्धकसह चढ़ाकर उक्त विधि से ५०० तोले गन्धक का और जारण करें, तथा इसे वालुकायंत्र में रखकर चन्द्रोदय विधि से पकाकर चन्द्रोदय बनालें। यह ७५ गुना गंधकजारित चन्द्रोदय बना है।

४. फिर इस चंद्रोदय को डमरूयंत्र में ४० तोले गंधक सह चढ़ाकर उक्त विधि से ५०० तोले गन्धक का क्रमशः जारण करलें। इस प्रकार ४ बार में २००० तोले गन्धक का जारण पूरा हो जाता है। अब इस मिश्रण को निकाल कर कूपीपक्व रसायन निर्माण विधि से पाक करके चन्द्रोदय बनालें। हमारे अनुभव व शास्त्रों के आदेश से यह सिद्ध है कि पारद में १०० गुना गन्धक जारण करने पर वह उत्तरोत्तर अधिक गुणवान् व शक्तिशाली बन जाता है।

यथाहि-यथास्याद् जारणा बह्नी तथा स्याद् गुणदो रसः।

सूचना-१. गन्धक जारणहितार्थ अपने-अपने अनुभवों के अनुसार इष्टिका यन्त्र, गौरीयन्त्र, कच्छपयन्त्र, बालुकायन्त्र, भूधरयन्त्र, खर्परयन्त्र अथवा मूषायन्त्रों का विभिन्न उपयोग किया जा सकता है।

२. बालुकायन्त्र द्वारा १-१ बार में १-१ गुना गन्धक १०० बार जारण करने से अति व्यय, परिश्रम, समय आदि का खर्च अत्यधिक होता है। बार-बार शीशियाँ बदलना, कपड़मिट्टी करना लम्बे समय तक पाक क्रिया करना होता है। इस क्रिया में ३ वर्ष से कम समय नहीं लगेगा जबकि हमें लगभग २ वर्ष का समय लगा है।

३. डमरूयन्त्र में जारण करते समय मन्दाग्नि देना चाहिए जिससे जारण क्रिया ठीक व योग्य होती है।

इस पूर्ण चन्द्रोदय को अष्टसंस्कार युक्त, बुभुक्षित पारद, माक्षिकसत्व, अभ्रकसत्व तथा सुवर्ण के ग्रास देकर १०० गुना गन्धक जारण करके बनाया गया है। अतः यह शास्त्रोक्त गुण प्रदर्शक बनता है।

मात्रा-१/४ रत्ती से १ रत्ती तक, दिन में २ बार दूध या मलाई के साथ।

सेवन विधि-शतगुण गन्धक जारित पूर्णचन्द्रोदय ३ माशे, कस्तूरी ३ माशे, अभ्रक भस्म १००० पुटी ३ माशे, शुद्धकपूर १ तोला, केशर १ तोला, अकरकरा १ तोला, समुद्रशोष १ तोला, हरी छोटी पीपल १ तोला लें। इनको क्रमशः खरलकर बारीक चूर्ण बना स्वच्छ शीशी में भर लें अथवा नागरबेल के पान के रस में १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनालें।

मात्रा-१/२ से २ रत्ती तक, दिन में २ बार, दूध मक्खन या मलाई से लें अथवा रोगानुसार अनुपान से सेवन करें।

उपयोग-यह पूर्णचन्द्रोदय रस हृदयपौष्टिक, बाजीकरण, रसायन, बल्य, रक्तप्रसादक, जन्तुघ्न, सेन्द्रिय विषशामक और योगवाही है। राजयक्ष्मा, कफप्रकोपजन्य व्याधियों और शुक्र की निर्बलता के नाश करने में अत्यन्त लाभदायक है। वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, धातुक्षीणता, मानसिक निर्बलता,

नपुंसकता, हृदय की निर्बलता, जीर्णज्वर, क्षय, श्वास, प्रमेह, विषविकार, मन्दाग्नि, अपस्मार आदि को दूर करके बलवीर्य की वृद्धि करता और आयु को बढ़ाता है।

इस चन्द्रोदय का सेवन यदि रतिकाल में या रति के अन्त में किया जाय, तो सौ मदोन्मत्त स्त्रियों के गर्व का हरण योग्य बल देता है। इस रसायन के सेवनकाल में घी, औटाकर गाढ़ा किया हुआ दूध, मांस, मांस रस, उड़द के पदार्थ और अन्य आनन्दवर्द्धक आहार विहार पथ्य है। इस रसायन का एक वर्ष पर्यन्त सेवन करने पर कृत्रिम, स्थावर या जंगम किसी भी प्रकार का विष बाधा नहीं पहुँचा सकता। जिस तरह मृत्युञ्जय क्रिया या मन्त्र के अभ्यास से मृत्यु का निवारण होता है, उसी तरह मनुष्यों को इस रसायन के नित्य सेवन से जरा और मृत्यु का भय नहीं सता सकता।

सुवर्ण और सुवर्ण मिश्रित औषधियां हृदय को शक्ति देती और रक्त को निर्विष बनाती है। सुवर्ण योगवाही होने से हेमगर्भ पोटली रस आदि उत्तेजक औषधियों के संयोग से हृदय पर उत्तेजक गुण और शामक असर दर्शाता है। पूर्णचन्द्रोदय रस में भी उत्तेजक गुण रहता है। सुवर्ण के योग से इस रसायन का उपयोग कीटाणुजन्य क्षय में होता है। राजयक्ष्मा की द्वितीयावस्था में अनेक समय उत्तम उपयोग होने के उदाहरण मिले हैं। इस रसायन का क्षय के कीटाणुओं पर साक्षात् परिणाम होता है। अतः क्षय की तीव्र अवस्थाओं में यह सत्वर लाभ पहुँचाता है।

केवल राजयक्ष्मा का संशय उत्पन्न होने पर ही पूर्ण चन्द्रोदय रस का सेवन प्रारम्भ किया जाय, तो उत्तेजक होने से कुछ समय तक रक्तवाहिनियों, स्रोतों और रक्त आदि धातुओं पर उत्तेजकता दर्शाता है, जिससे कभी-कभी लक्षण बढ़ जाने का भास होता है। परन्तु जैसे-जैसे सुवर्णक्षार का रक्त में मिश्रण होता जाता है, वैसे-वैसे रक्त सबल बनता जाता है और शनैः शनैः क्षय कीटाणु नष्ट होते जाते हैं। क्वचित्, पूर्णचन्द्रोदय के सेवन से ज्वर बढ़ जाता है ऐसा होने पर पूर्णचन्द्रोदय की मात्रा कम कर देनी चाहिए।

यह कल्प शारीरिक घटकों (Tissues) का नाश नहीं करता, केवल शरीर को हानि पहुँचाने वाले कीटाणुओं का नाश करता है। इस दृष्टि से कीटाणु नाशक औषधियों में पूर्णचन्द्रोदय रस उत्तम औषधि है। यह रसायन जीर्ण उरःक्षत में रक्त गिरने की अवस्था में रक्त को शक्ति देकर रक्तवाहिनियों को सुदृढ़ बनाता है एवं व्रणरोपण रूप महत्व का कार्य भी करता है। क्षय की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में उत्पन्न होने वाले उरःक्षत में से अनेक में इस कल्प का उपयोग होता है।

कीटाणुजन्य अन्य व्याधियों में रक्त में मिले हुए कीटाणुओं को नष्ट कर रक्त को सबल बनाने का इस रसायन में मुख्य धर्म है। इस हेतु से आन्त्रिक सन्निपात, फुफ्फुस सन्निपात, फुफ्फुसावरण शोथ (उरस्तोय) और इस तरह के अन्य संक्रामक ज्वरों में जब हृदयक्रिया कीटाणुओं के विष के हेतु से विकृत, मन्द या क्षीण होती है, तब अन्य किसी भी औषधि की अपेक्षा पूर्ण चन्द्रोदय रस देना विशेष हितकारक है। जब आयु-वृद्धि के साथ शरीर की वृद्धि नहीं होती, तब शरीर नाटा या ठिंगना प्रतीत होता है, मुखमण्डल निस्तेज और सूजा-सा भासता है; त्वचा, नाखून आदि शुष्क प्रतीत होते हैं; जननेन्द्रिय और नितम्ब भाग की वृद्धि न होने से आयु वृद्धि होने पर भी युवा स्त्री सामान्य छोटी लड़की सदृश दीखती है; अर्थात् इन इन्द्रियों का व्यवहार आयु अनुसार नहीं होता और इसी तरह स्तन आदि इन्द्रियो का विकास भी नहीं होता। पुरुषों के अण्डकोषों का यथोचित विकास न होने से योग्य शुक्रोत्पत्ति क्रिया नहीं होती, शरीर का तेज नहीं भासता, समस्त अवयवों की योग्य वृद्धि न होने से अवयव संकुचित जैसे भासते हैं, स्फूर्ति नहीं रहती; नेत्र पर निस्तेजता भासती है और नाड़ी मन्दगति से चलती है। इस स्थिति में दो आयुर्वेदिक औषधियां उत्तम कार्य करती हैं एक पूर्णचन्द्रोदय रस, दूसरी आरोग्यवर्द्धिनी। वातप्रधान विकार वालों को आरोग्यवर्द्धिनी और कफप्रधान विकृतिवालों को पूर्णचन्द्रोदय रस उपयोगी है।

किसी भी कारण से आई हुई इन्द्रिय-शिथिलता को यह रसायन दूर करता है। यहां पर इन्द्रिय का अर्थ ज्ञानग्रहण-सामर्थ्य और आज्ञा प्रदान सामर्थ्य क्रिया है। शरीर अवयव इन्द्रियों के अधीन हैं। जैसे नेत्र नेत्रेन्द्रिय के अधीन है, जिह्वा रसनेन्द्रिय के और त्वचा त्वगिन्द्रिय के अधिकार में रहती है। इन ज्ञानेन्द्रियों के सामर्थ्य से मनुष्य को शब्द, स्पर्श, रूप, और गन्ध गुण का बोध होता है। इनकी शिथिलता होने पर नेत्र में दर्शन-क्रिया और कर्ण से श्रवण क्रिया यथोचित नहीं होती। यह शिथिलता वात और पित्त धातुओं की विकृति के हेतु से होती है। धातुओं का कार्य जिस तरह शरीर अवयव और शरीर घटकों पर होता है, उस तरह बुद्धि, मन, मनोदेश और ज्ञानेन्द्रिय पर भी होता है। फिर धातु-साम्य प्रस्थापित होकर इन्द्रियों की शिथिलता दूर होती हे और शरीर अवयव व्यवस्थित रूप से काम करने लग जाते हैं।

ज्ञानेन्द्रिय के समान अन्य अवयवों में रही हुई इन्द्रिय (शक्ति) का पराभव हो जाता है; वह भी इससे उत्तेजित हो जाती है। इस हेतु से नपुंसकता प्राप्त होने पर पूर्णचन्द्रोदय से लाभ होता है। इसके सेवन से इन्द्रियशैथिल्य का नाश होता है और मन स्फूर्ति की प्राप्ति होती है।

इस रस में कर्पूर अत्यधिक मात्रा में मिलाया है एवं जायफल, समुद्रशोष आदि अन्य औषधियों के संयोग से वृष्यत्व गुण अत्यधिक परिमाण में बढ़ जाता है। योग्य विचार किया जाय, तो यह गुण नहीं किन्तु दोष माना जायेगा। कारण इस गुण की प्राप्ति होने पर पुरुष को कामवासना के अतिरिक्त अन्य विचार ही नहीं आता। रति लालसा की तृप्ति नहीं होती। इस हेतु से अत्यन्त कामोत्तेजक औषधि का उपयोग करना हो तो सम्हालपूर्वक ही करना चाहिये।

कृत्रिम विष (गर), शरीर में उत्पन्न विष या स्थावर, जंगमात्मक विष इनकी तीव्रता होने पर विषघ्न चिकित्सा करने के पश्चात् उसके

पित्त अंश का प्रकोप दीर्घकाल तक न रहने के लिये पूर्ण चन्द्रोदय का सेवन हितकर है। इस रसायन से रक्त का प्रसादन होकर शरीर निर्विष बनता है। (औ.गु.ध.शा.)

सन्निपात में कफप्रकोप होने पर पूर्णचन्द्रोदय रस का अच्छा उपयोग होता है। कफ दूषित और संग्रहीत हो जाने पर रोगी के कमरे में जाने के साथ दुर्गन्धि का भास होता है, कण्ठ में घर-घर आवाज, नेत्र में लाली, कोष्ठबद्धता, कफ और दस्त में रक्तस्राव, निद्रानाश, जिह्वा काली और कांटेदार, चित्तविभ्रम, प्रलाप आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। क्वचित् किसी को मस्तिष्कावरण का प्रदाह होता है, उस स्थिति में कण्ठ हिलाना, बरुनी के भीतर शोथ और अधिक उन्माद जैसे बर्ताव आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। ऐसी अवस्था में पूर्ण चन्द्रोदय, श्रृंगभस्म, प्रवालपिष्टी और सुवर्णमाक्षिक भस्म मिलाकर शहद के साथ दिन में ३ बार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिया जाता है। इनके अतिरिक्त मुलहठी, बहेड़ा, मुनक्का, अडूसा और मिश्री का अष्टमांश क्वाथ करके देते रहने से कफ शुद्धि सत्वर होने में सहायता मिल जाती है। (इस विकार में उदर शुद्धि के लिये तीव्र विरेचन कदापि नहीं देना चाहिये।)

सूचना-पूर्णचन्द्रोदय रस के सेवन समय में यकृत् सबल है, तो घृतयुक्त मधुर पदार्थ विशेष रूप से लेने से विशेष लाभ पहुँचता है। जिसकी नाड़ी और हृदयगति मन्द हो और कफप्रधान प्रकृति हो उसके लिये यह रसायन विशेष अनुकूल रहता है। पित्त-प्रधान प्रकृति वाले, जिनकी नाड़ी और हृदय की गति में विशेष तेजी रहती हो, अन्तर में उष्णता रहती हो, उनको यह रसायन नहीं देना चाहिये।

पूर्णचन्द्रोदय रस (सामान्य)

दूसरी विधि-पक्षच्छिन्न और बुभुक्षित किया हुआ पारद १६ तोले, सुवर्ण के वर्क २ तोले और शुद्ध गन्धक ३२ तोले लेवें। पहले पारद और सुवर्ण वर्कों को मिलाकर ३ दिन तक नींबू के रस में खरल करें। रोज प्रातः एक-एक तोला सेंधानमक साथ में मिला लेवें। चौथे रोज पारद को ३-४ समय जल से धोकर क्षार दूर करें। पश्चात् गन्धक मिला, कज्जली पर लाल कपास के फूलों के रस (फूलों का रस स्वरस यन्त्र से निकालें) और घीकुंवार के रस की ३ दिन तक भावना दें, सुखा, आतशी शीशी में भरकर ६० घण्टे तक आंच देवें। लगभग ३६ घण्टे में डाट लगाना पड़ेगा। फिर २४ घण्टें तीव्र अग्नि देने से औषधि पक जाती है। पारद बुभुक्षित नहीं होगा, तो तल भाग में सुवर्ण की काली भस्म शेष रह जायेगी और चन्द्रोदय कण्ठस्थ हो जायेगा। पक्षच्छिन्न होने पर चन्द्रोदय तलस्थ बनेगा। (रस.चि.)

कपास का वृक्ष जो अनेकों वर्षों तक जीवित रहता है, उसके लाल फूलों का स्वरस लेना चाहिये। वर्षायु कपास के फूलों का रस उपयोगी नहीं है।

पारद को अष्ट संस्कार से विशुद्ध करने की विधि, सत्वपातन विधि, ग्रास देने की विधि, कांजी निर्माण विधि तथा चन्द्रोदय की अनुभूत विधि विस्तार से समझाकर पृथक् 'रसतत्व विवेचन' पुस्तिका द्वारा दी गई है। अतः यहाँ संक्षेप में ही वर्णन किया है।

सेवन विधि-चन्द्रोदय और कर्पूर ४-४ तोले खरल करके मिला लेवें। बाद मे जायफल, समुद्रशोष (वृद्धदारु) के बीज, लौंग ४-४ तोले और कस्तूरी ३ माशे मिला खरल करके बोतल में भर लेवें।

बाजार में कपूर, मिक्सचर्ड केम्फर, प्यौर केम्फर, रिफाइण्ड केम्पर, तीन जाति का मिलता है। इनमें से रिफाइण्ड केम्फर या भीम सेनी कपूर (वृक्ष में ही परिपक्व होता है) उसे उपयोग में लेना चाहिये। यह भीम सेनी कपूर विशेष लाभदायक है।

(२) चन्द्रोदय, अभ्रकभस्म, शुद्ध कपूर, केशर, अकलकरा, समुद्रशोष, छोटी पीपल प्रत्येक १-१ तोले और कस्तूरी ३ माशे मिलाकर खरलकर शीशी में भर लेवें अथवा नागरबेल के पान के रस में १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बन लेवें।

चन्द्रोदय मिश्रण की मात्रा-१ से ३ रत्ती दिन में १ या २ बार शहद या नागरबेल के पान के साथ लेवें अथवा गोली खाकर ऊपर में दूध पीवें। ज्वरादि रोगों में हृदयपौष्टिक रूप से देना हो, तो दिन में २ या ३ समय आधे से १ रत्ती चन्द्रोदय को शहद पीपल के साथ मिलाकर दें।

उपयोग एवं अनुपान-प्रथम विधि के अनुसार।

तीसरी विधि-शुद्ध पारद १६ तोले, शुद्ध गन्धक ३२ तोले तथा सुवर्ण रज(या सुवर्ण वर्क) २ तोलें, लेवें। पहले पारद-गन्धक की कज्जली करके स्वर्ण मिलावें फिर ३ दिन निम्बू के रस में खरलकर कपड़मिट्टी की हुई शीशी में भरें इसे बालुकायन्त्र में रख २४ घण्टे अग्नि देकर पूर्णचन्द्रोदय बना लेवें। यह कण्ठस्थ ही बनेगा।

मात्रा, उपयोग, अनुपान-द्वितीय विधि के अनुसार।

(२) रससिन्दूर (षड्गुण)

प्रथम विधि-शुद्ध पारद १६ तोले और शुद्ध गन्धक ९६ तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर घीकुवांर के रस की भावना दें, सुखा आतशी

शीशी में भरकर बालुकायन्त्र में ४ अहोरात्र अग्नि देने से रससिंदूर तैयार हो जाता है। लगभग ६० घण्टे पर डाट लगेगा, पश्चात् २४ घण्टे तीव्र अग्नि देने से रसायन परिपक्व हो जाता है। एक साथ ६ गुना गन्धक जारण करने की अपेक्षा दो-दो गुना गन्धक तीन समय जारण किया जाय, तो रससिंदूर अधिक लाभदायक बनता है।

यदि उक्त परिमाण वाले पारद गधंक को निश्छिद्र डमरूयंत्र अथवा शीशी में मुंह बंद करके मंदाग्नि द्वारा पकाकर रससिंदूर बनाया जायेगा, उसे अन्तर्धूम षड्गुण गंधक जारित रससिंदूर कहेंगे। यह विशेष प्रभाव गुणों वाला होगा।

मात्रा-१ से २ रत्ती दिन में दो बार, अभ्रक भस्म, पीपल और शहद के साथ या रोगानुसार अनुपान के साथ।

विविध अनुपान-

१. **वातरोग में**-पीपल, शहद माँसरस, तैल या लहसुन के साथ।

२. **पित्त रोग में**-आँवले के चूर्ण और मिश्री के साथ।

३. **कफ रोग में**-अदरक के रस और शहद के साथ।

४. **रक्तविकार में**-शहद अथवा हल्दी और मिश्री के साथ।

५. **अतिसार और पेचिश में**-चौलाई रस, कच्चे बेलफल या लौंग, हिंगुल, अफीम और भाँग के साथ।

६. **कामला, पाण्डु और मन्दाग्नि**-त्रिकटु, त्रिफला और वासा के स्वरस के साथ।

७. **मूत्रकृच्छ पर**-शिलाजीत, इलायची और मिश्री के साथ।

८. **धातुवृद्धि के लिये**-लौंग, केशर मिले नागर बेल के पान में या विदारीकन्द के चूर्ण के साथ।

९. **वमन शमन के लिये**-भांग और अजवायन के ३-३ रत्ती चूर्ण के साथ अथवा लाजाचूर्ण के साथ।

१०. **उदर रोग पर**-कालानमक, हल्दी, भाँग और अजवायन के चूर्ण १॥ माशे के साथ।

११. **कृमि पर**-२ रत्ती पलासफल के चूर्ण और गुड़ में।

१२. **मन्दाग्नि पर**-कालानमक और अजवायन के साथ।

१३. **बलवृद्धि के लिये**-गिलोयसत्व के साथ।

१४. **हृदय की निर्बलता पर**-पीपल और शहद के साथ।

१५. **वातज प्रमेह पर**-शहद पीपल के साथ।

१६. **पित्तज प्रमेह पर**-त्रिफला और मिश्री के साथ।

१७. **कास, श्वास और शूल पर**-त्रिकटु, भारङ्गी और शहद या शहद और पीपल या भांगरे के रस के साथ।

१८. **मन्दाग्नि, मलावरोध और हृदय रोग पर**-पीपल, चित्रकमूल, हरड़ और काले नमक के साथ।

१९. **शुक्रवृद्धि के लिये**-कपूर आधा रत्ती, लौंग और केशर, जावित्री, अकरकरा, पीपल और भांग २-२ रत्ती तथा मिश्री १ माशा के साथ १ से २ रत्ती रससिंदूर देवें अथवा केले के साथ।

२०. **सब प्रकार के ज्वरों पर**-लौंग, चिरायता, हरड़ और काले नमक के साथ या जीरा और पीपल के साथ।

२१. **ज्वर की सन्निपातावस्था** में स्थिति देखकर चतुःसमचूर्ण (चन्दन, अगर कस्तूरी और केशर) के साथ या निर्गुण्डी के पत्तों के रस के साथ।

२२. **रक्तपित्त में**-शक्कर युक्त द्राक्षा के साथ

२३. **राजयक्ष्मा में**-घृत के साथ।

२४. **धातुक्षय में**-कसौंदी और अदरक के स्वरस के साथ।

२५. **अरुचि में**-बिजौरे के रस के साथ।

२६. **मदात्यय में**-नीम के मद (जल) और शक्कर के साथ।

२७. **मूर्च्छा में**-नारियल के जल या पित्तपापड़ा के क्वाथ से।

२८. **अपस्मार में**-कल्याण घृत के साथ।

२९. **विसूचिका में**-सोंठ, जीरा और जावित्री के साथ।

३०. **अजीर्ण और हडफूटन में**-धनियाँ तथा सोंठ के क्वाथ से।

३२. **ग्रहणी में**-चांगेरी का रस, भूनीहरड़ या सोंठ के साथ।

३२. **पीनस में**–कालीमिर्च के चूर्ण के साथ।

३३. **कुष्ठों में**–बावची और पुंवाड़ के बीज अथवा खेर के क्वाथ के साथ।

३४. **मुखपाक में**–सफेद चन्दन के क्वाथ से।

३५. **वातरक्त में**–तालमखाने के चूर्ण के साथ।

३६. **दन्तरोग में**–दन्तधावन वृक्षों के रस में।

३७. **विबन्ध में**–एलुवा के चूर्ण के साथ।

३८. **हिचकी और आध्मान में**–कुलथी के क्वाथ से।

३९. **हृद्रोग, रक्तस्राव और उदर रोग में**–अर्जुन छाल के रस और शहद के साथ।

उपयोग– धातुक्षीणता, हृदय रोग, कफप्रधान प्रमेह, क्षय, श्वास, कास, वातरोग, उदररोग, मूर्छा, अर्श, भगन्दर, पाण्डु, दुष्टव्रण, शूल, वमन, ज्वर, संग्रहणी, सन्निपात, मन्दाग्नि, मगज की निर्बलता, स्त्रियों के गर्भाशय के दोष, शोथ, गुल्म, प्लीहाविकार और त्रिदोष प्रकोप आदि रोगों पर अति लाभदायक है।

रससिन्दूर का कार्य विशेषत: फुफ्फुस और श्वासवाहिनियों पर होने से कफस्रावी औषधियों के साथ देने से दूषित कफ, जो संचित हुआ हो व सरलता से छूटकर बाहर आ जाता है। कफ धातु निर्दोष बनती है और फुफ्फुस शोथ नष्ट होकर फुफ्फुस बलवान् बनते हैं। इसलिये कफ प्रधान सन्निपात, फुफ्फुस सन्निपात (Pneumonia) इन्फ्लुएञ्जा, श्वास रोग, जीर्ण कफकास और जुखाम में कफ संचय होने पर विषघ्न और कफघ्न रूप में रससिंदूर का उपयोग हितकर है।

कफस्राव कराने के लिये रससिंदूर के उत्तेजक गुण का कार्य होता है। इस कफप्रकोप के विरुद्ध जब शुष्क कास हो तब इस रसायन का उपयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिये। अन्यथा कास बढ़ जायगी, क्षोभ अधिक होगा। शुष्क कास युक्त अवस्था में प्रवालपिष्टी, ब्राह्मी, मुलहठी, इलायची आदि शामक कफस्रावी औषधि देनी चाहिये।

कफसंचय होकर कास हो रही हो तो रससिंदूर को कफस्रावी अनुपान के साथ देने से कफस्राव दूर होता है और कास भी कम हो जाती है। यदि कफ संचय को दूर न किया जाय तो भीतर के स्रोत दुष्ट हो जाते हैं। फिर ज्वर की उत्पत्ति हो जाने की संभावना रहती है। ऐसा अनेक बार श्लैष्मिक सन्निपात (Influenza)में होता है। श्लैष्मिक सन्निपात की तीव्रावस्था नष्ट होकर जब पुन: पूर्व स्थिति की प्राप्ति होती है तब फुफ्फुसों के किसी स्थान में कफसंचित रह जाता है तो कुछ समय में पूयमय दुर्गन्ध युक्त बन जाता है, फिर कफ हरा पीला दुर्गन्धमय निकलता है, जो पूय भाव की प्राप्ति न हो सके तो कफ श्वेत, चिपचिपा और गाढ़ा निकलता है। इस तरफ कफ विकृति होने पर ज्वर आने लगता है। यह ज्वर कफसंचय और कफ दुष्टि के अनुरूप न्यूनाधिक परिमाण में होता है। इस विकृति पर रससिंदूर और श्रृङ्ग भस्म मिलाकर दिये जाते हैं।

कितने ही मनुष्यों को बार-बार प्रतिश्याय हो जाता है, उनको विशेषत: नासिका की श्लैष्मिक कला, स्वरयन्त्र और ग्रसनिका में क्षोभ उत्पन्न होकर जुकाम हो जाता है। ऐसी प्रकृति वालों को रससिंदूर का सेवन कराने से क्षोभ दूर होकर व्याधि निवारण हो जाता है।

उरस्तोय (Pleurisy) होने पर फुफ्फुसारवण में जल संचय होता है। इस जल की विकृति होने पर ज्वर आने लगता है। यदि जल संचय अधिक हो तो शस्त्रक्रिया द्वारा निकलवा देना चाहिये और जल संचय मर्यादा में हो तो रससिंदूर, आरोग्यवर्द्धिनी, श्रृङ्गभस्म और लघुमालिनी वसन्त के साथ मिलाकर देना चाहिये। कफवृद्धि और ज्वर होने पर रससिंदूर अच्छा उपयोगी होता है।

उर:क्षत में यदि रक्त न पड़ता हो पीला दुर्गन्ध वाला कफ मात्र गिरता हो तो वासावलेह या अन्य व्रणरोपण औषधि के साथ रससिंदूर देने से शीघ्र क्षत भर जाता है, ऐसे ही कीटाणुजन्य क्षय आदि रोगों में सुवर्ण के वर्क और अभ्रक के साथ रससिन्दूर देने से कीटाणुओं का नाश होता है और शारीरिक शक्ति का रक्षण होता है। यद्यपि कीटाणुजन्य क्षय की तृतीयावस्था में उर:क्षत होने से किसी भी औषधि का उपयोग नहीं होता परन्तु द्वितीयावस्था पर्यन्त या तृतीयावस्था के आरम्भकाल में कफ की प्रधानता होने पर सुवर्ण, अभ्रक भस्म और रससिंदूर से लाभ होने के अनेक उदाहरण मिले हैं। इस स्थान पर रससिंदूर का उपयोग कीटाणुनाशक रूप से होता है।

रससिंदूर हृदय के बल को बढ़ाता; रक्तभिसरण क्रिया को उत्तेजना देता और स्नायुओं को दृढ बनाता है। इस कारण जब हृदय बल के संरक्षण की आवश्यकता हो तब अनेक रोगों में इसका उपयोग होता है।

विष्टब्धाजीर्ण या आमाजीर्ण के कारण होने वाले जीर्ण मन्दाग्नि रोग पर रससिंदूर का प्रयोग विशेष हितकर है एवं जीर्ण आमातिसार या जीर्ण आमसंग्रहणी में भी कफ की प्रधानता हो तो कुटजारिष्ट या अन्य ग्राही औषधियों के साथ रससिंदूर देना लाभदायक है।

रससिंदूर कफ दोष, रस, रक्त और मांस ये दूष्य एवं फुफ्फुस, श्वासवाहिनी हृदय और आमाशय आदि कफ स्थानों पर विशेष प्रभाव दिखाता

है। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना-पित्तप्रधान प्रकृतिवालों को पित्तप्रधान शुष्क कास में या अन्य पित्तप्रधान रोग में रससिंदूर का उपयोग नहीं करना चाहिये।

दूसरी विधि-शुद्ध पारद १६ तोले और शुद्ध गन्धक ३२ तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर घीकुवांर के रस की भावना दें। आतशी शीशी में भर तीन दिन और अग्नि देकर औषधि सिद्ध करें। इस रसायन को द्विगुण गन्धक जारित रससिंदूर कहते हैं। (र.च.)

तीसरी विधि-शुद्ध पारद १६ तोले और शुद्ध गन्धक १६ तोले मिलाकर कज्जली कर बड़ के अंकुरों के क्वाथ या घीकुंवार के रस की भावना दें फिर कपड़मिट्टी की हुई शीशी में भर, ४८ घण्टे अग्नि देकर बालुकायन्त्र द्वारा तैयार करें। इस रसायन को समगुण गन्धक जारित रससिंदूर कहते हैं। (यो.र.)

(३) मल्लसिन्दूर

प्रथम विधि-शुद्धसोमल ५ तोले, शुद्ध पारद १० तोले और शुद्ध गन्धक १० तोले लें। पहिले पारद और गन्धक की कज्जली करें, फिर सोमल का बारीक चूर्ण मिलाकर ६ घण्टे खरल करें। पश्चात् घीकुंवार के रस की भावना दें, आतसी शीशी में भरें, बालुकायन्त्र में रख ३६ से ४८ घण्टे अग्नि देकर औषधि को सिद्ध करें।

मल्लसिन्दूर बनाने में बार-बार सावधानीपूर्वक शीशी का गला साफ करते रहना चाहिये। लगभग १२ घण्टे बाद जब गन्धक का धूआँ बन्द होकर सोमल का धूआँ निकलने लगे और तप्त शलाका से बत्ती सफेद रंग की दीखे तब तुरन्त डाट लगा देवें। देर होगी तो सोमल उड़ जायगा और जल्दी होगी तो डाट धूंए के बल से उड़ जायगा। डाट लगाने के पश्चात् २४ से ३६ घण्टे तक औषधि का विचार करके तेज अग्नि देनी चाहिये। जब तक गन्धक का धूंआ रहता है तब तक शीशी में काला कीचड़ जैसा दिखाई देता है। गन्धक जल जाने पर ऐसा कीचड़ नहीं रहता। मल्लसिंदूर काले चमकते रंग का कठोर होता है। औषधि का पाक होते समय इसके धूएं से बचना चाहिये।

मात्रा-पाव से आधी रत्ती तक, दिन में दो समय शहद और पीपल के साथ। अथवा खरलीय रसायन प्रकरण में लिखें अनुसार मल्लसिन्दूर वटी बनाकर प्रयोग में लावें।

उपयोग-मल्लसिंदूर श्वास, कास, सन्निपात, उन्माद, अपतन्त्रक, हिस्टीरिया, आमवात, बालकों का डब्बारोग, विसूचिका, वातरोग, प्रमेह और दस प्रकार के कफ रोगों का नाश करता है।

मल्लसिंदूर तीक्ष्ण और उग्रवीर्य है। फुफ्फुस, वातवाहिनी और हृदय पर उत्तेजक असर पहुँचाता है। इस रसायन का उपयोग कफवृद्धि और आमवृद्धि से उत्पन्न दोष और वातप्रकोप पर होता है। जब कफोल्वण सन्निपात, जीर्णश्वास या कास के तीक्ष्ण कफप्रकोप में, देश और ऋतु के प्रतिकूल होने से या प्रकृति निर्बल होने से मल्लभस्म या मल्लपुष्प का अधिक उग्रता के कारण न दिया जाय, वहां पर मल्लचन्द्रोदय और मल्लसिन्दूर देने में अधिक भय नहीं रहता। मल्लसिन्दूर कफ और आम का शमन करके रोग की शांति भी कर देता है।

ज्वर १०० डिग्री से अधिक न हो, सर्वांग में प्रस्वेद, श्वास की घड़-घड़, छाती में कफसंग्रह नाड़ी में क्षीणता, तन्द्रावृद्धि आदि लक्षण उपस्थित होने पर मल्लसिन्दूर दिया जाता है। यदि वाताक्षेप के झटके साथ में हों तो मल्लसिन्दूर के बदले पंचसूत देना चाहिये। इस तरह शुष्क कफ और श्वास हो तो समीरपन्नग हितकारक माना जाता है।

उपदंशजनित पक्षाघात और अन्य हेतु से उत्पन्न पक्षाघात में बार-बार आनेवाले आक्षेप को रोकने के लिये यह रसायन उत्तम लाभदायक है। इसके सेवन से विष और किटाणु नष्ट हो जाते हैं जिससे झटके आने में प्रतिबन्ध होता है।

हिस्टीरिया पर-मल्लसिन्दूर, कस्तूरी, केशर, कुचिला, सफेदमिर्च और अकरकरा के साथ देवें। ऊपर जटामांसी का अर्क पिलावें। इसी तरह इसके सेवन से हिस्टीरिया का दौरा रुक जाता है।

जीर्णपक्षाघात पर-मल्लसिन्दूर, शुद्ध कुचिला और असगन्ध को मिलाकर दिन में दो बार घी शहद से देवें, ऊपर रास्नादि अर्क पिलावें।

यह रसायन कीटाणुनाशक होने से रक्त में रहे हुए जीर्णज्वर और परिवर्तित ज्वर के कीटाणुओं को नाश कर, ज्वर का शमन करता है। जीर्ण आमवात में जब तीक्ष्ण प्रकोप न हो, ज्वर साधारण रहता हो, तब कोष्ठ शुद्ध करके मल्लसिन्दूर देना लाभदायक है। अजीर्णजनित, कीटाणु रहित विसूचिका और कीटाणुजन्य विसूचिका में भी जब जीवनीय शक्ति के रक्षण की आवश्यकता हो तब इस रसायन का उपयोग लाभदायक है। इसके सेवन से हृदय में उत्तेजना आती है, नाडी का वेग बढ़ता है, शीतलता कम होती है और आमाशयस्थ दोष की निवृत्ति होती है।

बालकों के पसली रोग में फुफ्फुस और श्वासनलिका कफ से बहुत भरे हों, गले में कफ घर-घर कर बोल रहा हो, किन्तु ज्वर की कमी हो तो अन्य रोगशामक औषधि के साथ १/१६ रत्ती मल्लसिन्दूर मिला देने से सत्वर लाभ पहुँचता है।

सूचना-

१. पित्तप्रधान रोग में इस रसायन का उपयोग न करें। ग्रीष्म ऋतु में संभल कर प्रयोग करें।

२. ज्वर की उष्णता बहुत बढ़ी हो, तब यह रसायन न दें।

३. वृक्क विकार के रोगी जिनकों मूत्रशुद्धि न होती हो उनको यह रसायन नहीं देनी चाहिये।

४. सोमलवाला धूआँ आँख को न लगे यह सम्हालें। जब तक गन्धक जलता है तब तक सोमल नहीं उड़ता। गंधक जल जाने पर सम्हालना चाहिये।

५. **मल्लचन्द्रोदय**–मल्लसिन्दूर बनाने के समय पारद के साथ पारद से चौथा हिस्सा सुवर्ण मिलाया जाय तो मल्लचन्द्रोदय कहलाता है। मल्लचन्द्रोदय, सुवर्ण के संयोग के कारण मल्लसिन्दूर की अपेक्षा कुछ सौम्य किन्तु अधिक प्रभावशाली होता है। यदि मल्लचन्द्रोदय में बुभुक्षित पारद के साथ सुवर्ण मिलाकर बनाया जाय तो वह मल्लचन्द्रोदय अधिक गुणदायी होता है।

दूसरी विधि–शुद्ध सोमल ५ तोले, शुद्ध पारा १० तोले, गन्धक २० तोले और रसकर्पूर १० तोले मिला, कज्जली करके घीकुंवार के रस की भावना देवें। पश्चात् सुखा, शीशी में भर, उपरोक्त विधि से बालुकायन्त्र में ३६ से ४८ घण्टे अग्नि देकर मल्लसिन्दूर बना लेवें।

मात्रा–पाव से आध रत्ती, घृत और शहद या अदरक का रस और शहद के साथ।

उपयोग–उपदंश (फिरंग), पक्षाघात, कुष्ठ, रक्तविकार, फिरंग अनुबन्ध युक्त मृगी, सन्निपात, कफादिसह तमक श्वास, कास, जीर्ण प्रतिश्याय और सन्धिवात आदि सब प्रकार के वातरोगों का नाश करता है।

पहिली विधि के मल्लसिन्दूर की औषधियों के साथ रसकपूर को मिलाकर इस रसायन को तैयार किया है। अतः इस रसायन में रसकपूर का गुण भी सम्मिलित हुआ है। यह रसायन प्रलापक, भुग्ननेत्र, कफष्ठीवी आदि कफोल्वण सन्निपात में नाड़ियों और फुफ्फुसों के भीतर रहे हुए दूषित कफ को बाहर निकालने में सहायता पहुँचाता है; कीटाणुओं का नाश करता है तथा फुफ्फुस और हृदय को उत्तेजना देकर रोग का शमन करता है।

जब ज्वर कफप्रधान सन्निपातिक है, ऐसा निर्णय हो जाय, तभी से योग्य अनुपान के साथ मल्लसिन्दूर का प्रयोग करने से सन्निपात की सर्वअवस्थाओं में रोगी को अधिक त्रास नहीं होता और सन्निपात का बल अधिक नहीं बढ़ता है। परन्तु औषधि सेवन के साथ लंघन आदि पथ्याचार की भी आवश्यकता है। कण्ठ में कफ की घर-घर आवाज थोड़ी-सी कास, नेत्र आधे खुले या नेत्र की पुतली ऊँची चढ़ी हुई तन्द्रा-सी अवस्था, प्रलाप, भ्रम, बेहोशी, बेसुधी, बीच-बीच में कुछ निद्रा लग जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हों, और ज्वर मर्यादा में हो तो मल्लसिन्दूर देना चाहिये।

न्यूमोनिया और इन्फ्लुएञ्जा की कफ संचयावस्था में यह रसायन अधिक लाभदायक है। कफसञ्चय होने पर जब फुफ्फुसों की अशक्ति या फुफ्फुसों की वातवाहिनियों की अशक्ति के हेतु से कफ को बाहर निकालने में त्रास होता हो तो ऐसी अवस्था में इस रसायन का प्रयोग करना चाहिये।

इन्फ्लुएञ्जा के अन्त में फुफ्फुसों के बल का क्षय होने पर श्वासोच्छवास मन्द और मन्दतर होता जाता है। ऐसे समय पर मल्लसिन्दूर का अच्छा उपयोग होता है। मल्लसिन्दूर से हृदय और फुफ्फुसों को उत्तेजना मिलती है एवं इन अवयवों को नियंत्रण करने वाले वातवहानाड़ी केन्द्र और वातवाहिनियाँ भी उत्तेजित होती हैं, जिससे रोगी की गिरती हुई हालत सुधरने लग जाती है। किन्तु पित्त की प्रधानता होने से थूक के साथ रक्त गिरता हो और उदर में दाह, वमन आदि लक्षण हों, तो मल्लसिन्दूर नहीं देना चाहिए।

ज्वर-वेग अधिक होने पर इस रसायन का प्रयोग नहीं करना चाहिये अन्यथा रक्ताभिसरण क्रिया बढ़कर मस्तिष्क में रक्त का दबाव अधिक हो जाता है।

यदि आँत्रिक सन्निपात (मोतीझरा) में न्युमोनिया या कफ-प्रकोप प्रलाप, भ्रम, तन्द्रा, आदि लक्षण हों तो १-२ मात्रा मल्लसिंदूर की देनी चाहिए।

मल्लसिन्दूर उत्तम कफसंशोषक है। इस हेतु से फुफ्फसों में कफ संचय, श्वासोच्छवास में घर-घर आवाज, श्वास ग्रहण या त्याग में कष्ट, नाड़ी मन्द, कपालपर प्रस्वेद, हाथ-पैर शीतल, तन्द्रा, बेसुधि, नेत्र की पुतली ऊपर चढ़ी हुई तथा जिह्वा के जड़ होने से उच्चारण स्पष्ट न होना आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो रोगी का जीवन अनिश्चित हो जाता है। ऐसी अवस्था में यदि उरस्य कफ में न्यूनता हुई तो रोगी के बच जाने की आशा है। यह कार्य मल्लसिन्दूर से होता है।

परिवर्तित ज्वर में यदि समवायी कारण कफदोष हो, तो मल्लसिन्दूर का सेवन कराने से उसके कीटाणुओं (Spirochaeta Obermeieri) का नाश होकर रोग शमन हो जाता है। (औ.गु.ध.शा.)

उपदंश और सुजाक रोग का शमन होने पर भी उसके विष का असर रह जाता है; जिससे रक्तविकार, संधिवात, पक्षाघात, गुदशूक, नेत्रदाह,

कुष्ठ, व्रण आदि अनेक उपद्रव बार-बार होते रहते हैं। इन उपद्रवों के मूलकारण रूप विष को यह रसायन शमन कर देता है; जिससे शरीर निरोग बन जाता है।

सूचना–जब जीर्ण उपदंश आदि रोगों में इस रसायन को १५ दिन से अधिक दिन तक सेवन कराना हो, तब १५ दिन के बाद ५-७ रोज इस औषधि को बन्दकर प्रवाल आदि शीतल और विषनाशक औषधि सेवन करनी चाहिये। पश्चात् पुनः १५ दिन तक इस रसायन को लेवें। इस रीति से बीच-बीच में छोड़कर सम्हालपूर्वक लेवें। किसी को नेत्र पर सूजन, नेत्र लाली या दाह बढ़ जाय तो इस औषधि को तुरन्त बन्द करें।

उपदंश और सुजाक रोगी को मल्लसिन्दूर के साथ शिलाजीत भी दिया जाय तो विशेष हितकर है।

(४) तालसिन्दूर

विधि–शुद्ध हरताल ५ तोले, शुद्ध पारा १० तोले और शुद्ध गन्धक १० तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर घीकुवाँर के रस में खरलकर सुखा, आतशी शीशी में भर, बालुकायन्त्र में रखकर ४८ घण्टे की अग्नि देने से तालसिन्दूर तैयार होता है। तालसिन्दूर में मल्लसिन्दूर के समान १२ से १५ घण्टे बाद सफेद बत्ती दीखने पर डाट लगाया जाता है। डाट लगाने के बाद ३६ घण्टे तक तीव्र अग्नि देनी पड़ती है क्योंकि हरताल जल्दी नहीं उड़ती। तालसिन्दूर में यदि पहिले पारे के साथ सुवर्णरज, या सुवर्ण के वर्क मिलावें तो वह **'तालचन्द्रोदय'** कहलाता है। (रसा.सा.संग्रह)

सूचना–घीकुंवार के रस की भावना मूलग्रन्थ में नहीं है; परन्तु हितकर होने से हमने बढ़ाई है। गन्धक जल जाने पर डाट तुरन्त लगा देना चाहिये अन्यथा हरताल उड़ने लगती है।

मात्रा–१ से २ रत्ती अदरक का रस और शहद या घी के साथ लेवें अथवा खरलीय रसायन प्रकरण में लिखे अनुसार लवंगादि तालसिन्दूर या मंजिष्ठादि तालसिन्दूर बनाकर उपयोग में लेवें।

उपयोग–यह रसायन कुष्ठ, वातरक्त, उपदंश, रक्तविकार, त्वचादोष, शोथ, श्वास, क्षय, कास, उरःक्षत, कफप्रधान जलोदर, विषमज्वर, परिवर्तित ज्वर आदि रोगों को दूर करता है। इस रसायन में मुख्य द्रव्य हरताल है। हरताल रस और विपाक में कटु (चरपरी) स्निग्ध, कषाय रस वाली, कफघ्न और कुष्ठघ्न है। हरताल के ये सब गुण इस रसायन में आते हैं। यह तालसिन्दूर, ताल भस्म और तालपुष्प की अपेक्षा कम उग्र होने से तालभस्म या तालपुष्प का उपयोग जहां न हो सके, वहां पर इसका उपयोग निर्भयतापूर्वक हो सकता है। इस रसायन में कुष्ठघ्न, कफघ्न और कण्डुघ्न गुण होने से कफप्रधान और कफवातप्रधान कुष्ठरोग, उपदंशज कुष्ठ रोग, उपदंशज अन्य उपद्रव, रक्तविकार, सन्धिवात, वातरक्त, त्वचादोष आदि में अच्छा काम देता है एवं कफघ्न गुण के कारण, फुफ्फुस कोषों के स्रोतों में कफ भर जाने से जब हृदय की मन्दगति, सारे शरीर में शूल, अरुचि, व्याकुलता और निर्बलता आ जाती है, तब यह रसायन अति लाभदायक है।

कफघ्न और जन्तुघ्न गुण होने से यह रसायन श्वास, कास और क्षय की प्रथम या द्वितीयावस्था में फुफ्फुस और स्रोतों का शोधन, ताप का शमन और कीटाणुओं को नष्ट करना, इन सब कार्यों में सहायता पहुँचाता है। जब तक क्षय के प्रारम्भ में शुष्क कास हो जब तक इसे उपयोग में नहीं लेना चाहिये। कदाचित उपयोग में लेना हो तो प्रवालपिष्टी मिला लें तथा कफस्राव होने पर तालसिन्दूर का उपयोग करना हो तब शृङ्गभस्म और मिश्री के साथ देने से कफ और कीटाणुओं का नाश सत्वर होता है।

यह रसायन ज्वरघ्न, जन्तुघ्न, कफघ्न और उष्ण होने से शीतांग सन्निपात बार-बार उलटकर आने वाले परिवर्तित ज्वर, तृतीयक, चातुर्थिक आदि विषमज्वर और शीत सहित आने वाले जीर्ण ज्वरों में कीटाणुओं को नष्ट करता है; आम और दूषित कफ को जला देता है और रक्त को निर्विष बना कर ज्वर को दूर करता है। एवं विष-निवृत्ति हो जाने पर जीर्णज्वर से उत्पन्न वातप्रकोप, धनुर्वात, आक्षेप, शूल आदि लक्षण भी निवृत्त हो जाते हैं।

इस रसायन में उष्ण, यकृद्बल्य और हृदयोत्तेजक गुण होने से यकृत् या हृदय-विकृति से उत्पन्न शोथ और जलोदर रोग में इसे देने पर हृदय और यकृत् क्रिया बढ़ जाती है। जिससे रक्ताभिसरण क्रिया सबल बनती है और दुष्ट रस का शोषण हो जाता है।

उरः स्थान में कफ संगृहीत होने से स्रोतों का अवरोध हुआ हो; फिर उस हेतु से हृदय की क्रिया में मन्दता, सारे शरीर में शूल चलना, अरुचि, जिह्वा पर श्वेत मल का आवरण, उबाक, हाथ-पैर शून्य हो जाना, जड़ता, पैरों में भारीपन, हाथ पैरों के तलों की शक्ति का ह्रास होना आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो तालसिंदूर का उपयोग किया जाता है। (औ.गु.ध.शा. के आधार से)

अनेक वातप्रकोप और कफप्रकोप के रोगियों को जब वृक्कविकार होने से मल्लसिन्दूर या मल्लमिश्रित अन्य औषधि सहन नहीं होती तब इस तालसिंदूर का सेवन कराया जाता है।

इस रसायन के सेवन काल में भोजन में घी अधिक लें। मिर्च, तैल, नमक, गुड़ और खटाई का त्याग करें। कुष्ठरोग में नमक और दूध का भी निषेध है। शोथ रोग में नमक नहीं देना चाहिये।

(५) शिलासिन्दूर

विधि–शुद्ध मैनसिल ५ तोले, शुद्ध पारद १० तोले और शुद्ध गन्धक १० तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर घीकुंवार के रस की भावना दें, सुखा आतशी शीशी में भर बालुकायन्त्र में रखें, २॥ दिन अग्नि देकर मल्लसिन्दूर में लिखी विधि से शिलासिन्दूर बना लेवें। शलाका से सफेद बत्ती दीखने पर डाट लगावें। फिर ३६ घण्टे तक अग्नि तेज देवें। स्मरण रखें कि मैनसिल अत्यन्त कठोर पदार्थ होने से मन्दाग्नि देने से नहीं उड़ता। इस औषधि में सुवर्ण वर्क या सुवर्ण रज मिलाने पर शिलाचन्द्रोदय कहलाता है। शिलासिन्दूर का रंग कालसयुक्त चमकदार होता है। (आ.नि.मा.)

मात्रा–एक से दो रत्ती, शहद के साथ देवें या शिलासिन्दूरवटी बनाकर उपयोग में लेवें।

उपयोग–इस रसायन के सेवन से श्वास, कास, मेद, कुष्ठ, विसर्प, कण्टमाल रक्तविकार आदि दोष दूर होते हैं।

इस रसायन में मुख्य औषधि मैनसिल है। मैनसिल गुरु, वर्ण्य, सारक, उष्ण, लेखन, कटु (चरपरे) विपाकवाला, तिक्त (कडुवा) और स्निग्ध है तथा विष, श्वास, कास, भूतबाधा और रक्तविकार नाशक है। ये सब गुण इस रसायन में प्रतीत होते हैं। इसमें कटु लेखन, कफघ्न गुणयुक्त होने से मेद का शमन होता है तथा नाड़ियों में रहे हुए कफ को जलाकर श्वास और कास को दूर करता है।

मेदोवृद्धि होने पर उदर्य्याकला पर मेद का अत्यधिक संग्रह हो जाता है। थोड़ा-सा चलने पर श्वास भर जाता है; प्रस्वेद में दुर्गन्ध आती है, क्षुधा और तृषा के वेग को सहन करने की शक्ति का ह्रास हो जाता है तथा आलस्य और निद्रा बढ़ जाते हैं। उस पर इस रसायन के सेवन से पचनक्रिया सबल बनती है; शनैः शनैः मेद पचन होता है और रोग निवारण में सहायता मिल जाती है। रोगी को चाहिये कि भोजन में घी, शक्कर और चावल यथासंभव परिमाण में कम करें, बार-बार भोजन न करें, तथा शक्ति अनुसार शारीरिक श्रम (घूमना-फिरना या और कुछ कार्य करना) चालू रखें।

इस रसायन में कीटाणुनाशक और विषघ्न गुण होने से यह कण्ठमाल, अपची, रसौली, विसर्प, कफप्रधान कुष्ठ, ब्यूची, रक्तवाहिनियों में [illegible] स्थान पर रक्त जम जाना, रक्तविकृति और त्वचाविकृति आदि व्याधियों में लाभदायक है। इसके सेवन से कण्ठमाल, कुष्ठ आदि के कीटाणु नष्ट होते हैं; विष की निवृत्ति होती है; दुष्ट कफ और दुष्ट आम का शोषण होता है तथा रक्त का प्रसादन होकर उक्त रोगों का शनैः शनैः निवारण होता है। कण्ठमाल, अपची और गलगण्ड रोग बहुत पुराने न हुए हों; जब तक रक्त में विषप्रकोप अत्यन्त न बढ़ गया हो; तब तक औषधियों से लाभ होता है। रोग अति बढ़ जाने पर बहुधा औषधि सेवन करने पर भी उसकी निवृत्ति नहीं हो सकती।

यह रसायन उत्तेजक, जन्तुघ्न, सारक और स्निग्ध होने से आमाशय और अन्त्र में संगृहीत आम, जन्तु और विष को नष्ट करता है एवं अन्त्रशक्ति को सबल बनाकर कोष्ठबद्धता को दूर करता है। इसमें भूतबाधाशामक गुण होने से वातवाहिनियों के क्षोभ से होने वाले उन्माद रोग में रोगशामक अन्य औषधियों के साथ शिलासिन्दूर को मिला देने से सत्वर लाभ पहुँचता है। (औ.गु.ध.शा.)

(६) माणिक्य रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल और शुद्ध शीशा ८-८ तोले लें। शीशे को कड़ाही में गलाकर पारा मिलावें। फिर गन्धक मिलाकर कज्जली करें। पश्चात् मैनसिल मिला ६ घण्टे खरलकर घीकुंवार के रस की भावना देवें। सूखने पर आतशी शीशी में भर, बालुकायन्त्र में रखकर २॥ दिन अग्नि देवें। स्वांगशीतल होने पर शीशी के गले में लगे हुए माणिक्य के समान लाल रंग के सिन्दूर को निकाल लेवें। (र.चं.)

सूचना–कितने ही ग्रन्थकारों ने इस रसायन में हरताल भी मिलायी है। हम बिना हरताल मिलाये तैयार करते हैं। नीचे जो शीशा भस्म बच जाती है, उसे अधिक पुट देकर उत्तम नागभस्म बना लेते हैं।

मात्रा–आध से एक रत्ती, मक्खन और मिश्री, शहद या नागरबेल के पान अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह रसायन क्षय रोग में ज्वर और कास दूर करके शरीर का वजन और बल बढ़ाता है एवं कास, श्वास, धातुक्षीणता आदि रोगों को भी दूर करता है। इसके सेवन से शुक्रस्तम्भन होता है; विविध रोग दूर होते हैं; राजयक्ष्मा नष्ट होता है और वृद्धों को शक्ति मिलती है।

शुष्क कास जो बार-बार आध-आध घण्टे तक आती रहती है; जिसमें कफ सरलता से नहीं निकलता और रात्रि को सोने के समय रोगी को त्रास पहुँचता है; उस पर यह रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है। इस रसायन के योग से कफ सत्वर छूट जाता है। उरस्तोय में फुफ्फुस आवरण के भीतर जल भरना, शुष्क कास होना और ज्वर बढ़ना आदि लक्षणों को शमन करता है। क्षय रोग में कफ को पतलाकर सत्वर बाहर निकालता है और बढ़े हुए ज्वर को कम करता है।

यकृत् पित्त का अम्लत्व गुण बढ़ने पर यकृत् में पीड़ा, पित्त का स्राव, पतले दस्त, मूत्र का कम होना, मुँह में छाले, ज्वर आना इत्या लक्षण होते हैं। ये सब इस रसायन के सेवन से दूर होते हैं।

वृद्धावस्था में बहुमूत्र बहुधा वातवाहिनियों की विकृति के कारण होता है। मूत्र का विशिष्ट गुरुत्व (Specific Gravity) कम हो से बार-बार थोड़ा-थोड़ा पीले रंग का पेशाब होता रहता है; विष या क्षार रक्त में शेष रहता है; जिससे शरीर निर्बल बनता जाता है। विकार इस रसायन के सेवन से शांत हो जाता है। कारण, इस औषधि के योग से मूत्रपिण्ड; मूत्रवहनलिका और मूत्रवह स्रोतों को उत्तेज मिलती है; वातवाहिनियाँ सबल बनती हैं और योग्य परिमाण में क्षार का निःसरण होता है।

इस रसायन का कार्य उत्तेजक और शक्तिवर्द्धक होने से वृद्ध और निर्बलों के लिये अमृतरूप है। यह रसायन कफ और वात दोष; रस रक्त और मांस, ये दूष्य; तथा यकृत, फुफ्फुस, आमाशय, वातवाहिनियाँ और मूत्रस्थान इन सब पर विशेष असर पहुँचाता है।

(७) सुवर्णबङ्ग

विधि–शुद्ध कलई ५ तोले, शुद्ध पारद ५ तोले, शुद्ध गन्धक ५ तोले, नौसादर ४ तोले और कलमीशोरा १ तोला लेवें। पहिले कड़ा में कलई का रस करके पारद मिलावें फिर सैंधानमक का जल मिलाकर दो दिन खरल करने के बाद ५-७ बार जल से धो, क्षार का अं निकालकर सुखा दें। पश्चात् गन्धक मिलाकर कज्जली करें। तत्पश्चात् नौसादार और शोरा मिला खरल कर आतशी शीशी में भरें। फिर बालुकायन्त्र में रख २४ घण्टे अग्नि देकर औषधि तैयार करें। शीशी के गले में पहिले क्षार लगता है; इसलिये सावधानीपूर्वक बार-बार तप्त शलाका से गला साफ करते रहें। ८-१० घण्टे में गन्धक जारण हो जाने पर डाट लगाकर १६ घण्टे अग्नि देने से औषधि तैयार हो जाती है। इस सुवर्ण बंग को मस्क मृगांक भी कहते हैं। शीशी को तोड़ने से पैंदे में से सुवर्ण के समान केशरिया, पीला तेजस्वी, हल्के वजन वाला सुवर्ण वंग और गले में से क्षार और वंगसिन्दूर मिलेंगे। ये तीनों औषधियाँ उपयोग में आती हैं। (रसा.सा.सं.)

सूचना–सुवर्ण बंग को अग्नि अधिक तेज नहीं देनी चाहिये, अन्यथा शोरे में अग्नि लग जाती है। जिससे बंग जलकर काली हो जाती है। कदाचित भूलवश अग्नि लग जाय तो तुरन्त शीशी के मुंह पर दो चार मिनट के लिये डाट लगा देना चाहिये जिससे अग्नि बुझ जायगी।

यदि गन्धक जीर्ण होने पर शोरा डालें, तो बोतल में अग्नि लगने का भय नहीं रहता। इस रसायन का रंग गिन्नी गोल्ड जैसा कुछ लाल प्रभायुक्त पीला होता है। यदि रंग शुद्ध सुवर्ण जैसा पीला बनाना हो तो सुवर्ण बंग को कपड़े में रख गरम जल में डुबो, तुरन्त निकालकर सुखा देवें। इस प्रकार धोने पर रंग में कुछ न्यूनता आती है किन्तु क्षार निकल जाने से गुण वृद्धि भी होती है।

सुवर्णबंग काली हो जाय, तो उसे २-४ बार जल से धो, सुखा, पुनः कज्जली नौसादर मिला, विधि अनुसार बना लेंवें।

मात्रा–२ से ३ रत्ती। शहद मलाई या मक्खन-मिश्री के साथ।

उपयोग–यह औषधि बल्य, प्रमेहघ्न, कान्ति, मेधा तथा अग्नि बल को बढ़ाने वाली है। मधुमेह, प्रमेह, स्वप्नदोष, खाँसी, धातुक्षीणता आदि दोष दूरकर शरीर को बलवान् बनाती है। क्षार, शहद में देने से सूखी खाँसी गीली हो जाती है तथा मन्दाग्नि, यकृत्दोष और मूत्रकृच्छ्र दूर होते हैं। बंगसिन्दूर मलाई या मक्खन के साथ देने से कास और श्वास को दूरकर शरीर को पुष्ट बनाता है।

बंगभस्म की अपेक्षा सुवर्णबंग का रंग तो सुन्दर है और संसार में महिमा भी बहुत गाई है; परन्तु हमें सुवर्णबंग के गुण में वंगभस्म की अपेक्षा विशेषता का अनुभव नहीं हुआ, ऐसा रसयोगसागरकार का कथन है। हमें भी वैसा ही अनुभव मिला है। इसके विरुद्ध औषधगुणधर्म शास्त्र का लेख है। सत्य क्या है। इस बात का निर्णय चिकित्सक वर्ग ही करेंगे।

इस सुवर्णबंग का उपयोग जीर्ण पूयमेह में अच्छा होता है। पूयमेह के लीन विष को यह दूर करता है और अपने रसायन गुण के हेतु से शरीर को सबल बनाता है। एवं पूयमेहयुक्त उपदंश, नपुंसकता, चर्मविकार आदि को भी दूर करता है।

यह सुवर्णबंग रक्त में संचित विष को मूत्रद्वारा बाहर निकला देती है। मूत्रेन्द्रिय और मूत्रयन्त्र को बलवान बनाती है तथा मूत्राशय विकृति शनैः शनैः दूर करती है। पचनेन्द्रिय में विकार होने पर सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति होती है एवं वृक्कयन्त्र निर्बल हो जाने पर विष बाहर नहीं निकल सकता है। परिणाम में बहुमूत्र या प्रमेह (मधुमेह के अतिरिक्त प्रमेह) हो जाते हैं। फिर रोगी शनैः शनैः गलता जाता है। इन पर विष की उत्पत्ति रोकने और संचित विष को बाहर निकालने वाली औषधि देनी चाहिये। ये दोनों कार्य इस रसायन से होते हैं। यदि भूल से स्तम्भक औषधि दे दी जाय तो लाभ के स्थान पर हानि पहुँचती है।

प्रमेह और पूयमेह दोनों रोगों की प्रतीति मूत्रस्थान में होती है; परन्तु दोनों में अति भिन्नता है। मूत्रोत्पत्ति और मूत्रोत्सर्ग कराने वाले अवयवों में निज दोष विकृति होने पर प्रमेह रोग की उत्पत्ति होती है और पूयमेह की प्राप्ति अण्डाकृति कीटाणु गोनोकोकस (Gonococcus) द्वारा होती है। यह पूयमेह किसी स्त्री या पुरुष को होने पर उससे संसर्ग करने वाले अन्य पुरुष को हो जाता है। इस व्याधि में मूत्रनलिका के भीतर प्रदाह, शोथ, व्रण और पूयोत्पत्ति हो जाती है। इसकी तीव्रावस्था में तो इस औषधि का उपयोग नहीं होता, परन्तु पूय की कमी होने

इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है। आंतरिक क्षति की पूर्ति होती है तथा दाह, हाथ पैर टूटना, मूत्रावयव में जलन और व्याकुलता आदि की निवृति होती है।

जीर्णावस्था में सुवर्णबंग, प्रवालपिष्टी, शिलाजीत, गन्धाविरोजा और अमृतासत्व मिलाकर दिन में दो बार देते रहने से विष शमन होकर आरोग्य की प्राप्ति हो जाती है। यदि पूय बिल्कुल न आता हो तो सुवर्णबंग, रौप्यभस्म, वंशलोचन और अमृतासत्व मिलाकर मलाई-मिश्री के साथ दिया जाता है।

यह रसायन पूयमेह युक्त उपदंश की द्वितीयावस्था और तृतीयावस्था में अच्छा उपयोगी होता है। इसके साथ अष्टमूर्ति रसायन या मल्लसिन्दूर (दूसरी विधि) की योजना करनी चाहिये। इसके सेवन से शरीर पर उत्पन्न पिटिका और धब्बे जल्दी अच्छे हो जाते हैं। प्रथमावस्था में तो पारद भस्म, अमीररस और व्याधिहरण रस विशेष हितकारक है तथा द्वितीय और तृतीयावस्था में जब विकार अस्थि तक पहुँच जाता है तब अष्टमूर्ति रसायन और उपदंश सूर्य विशेष हितकर माने जाते हैं। उस समय सुवर्ण वंग से लाभ नहीं होता। परन्तु जीर्ण लीन उपदंश विकार में सुवर्णवंग को सारिवा और मञ्जिष्ठादि क्वाथ या अर्क के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

अन्य प्रकार के विष से उत्पन्न चर्मरोगों में सुवर्णवंग का अच्छा उपयोग होता है। इस हेतु से पुराना पामा रोग, बार-बार होने वाले व्रण, प्रस्वेद स्रावयुक्त ब्युची, अरुंषिका आदि त्रासदायक और जमकर बैठे हुए त्वचा रोगों में इस रसायन का अच्छा उपयोग होता है। इस प्रकार के रोगों में ७ दिन तक देवें। फिर ७ दिन छोड़ दें। पुनः ७ दिन दें और ७ दिन बन्द करें। इस तरह औषध देते रहना चाहिये। कितने ही पूयमेह के रोगियों को नपुन्सकता की प्राप्ति होती है यह नपुन्सकता इस सुवर्णवंग के सेवन से दूर होती है।

सुवर्णवंग सन्धिवात पर उत्तम औषधि है। संधिवात और आमवात में महदन्तर है। पूयमेह, उपदंश, दंतवेष्ठ (Pyorrhoea) आदि विकारों से उत्पन्न सन्धिवात में पूय हेतु है तथा आमवात में आम हेतु है। आमवात में महायोगराज गूगल, रास्नादि कषाय, श्योनाक छाल आदि आमनाशक औषधियां लाभदायक हैं। सन्धिवात में पूयनाशक गुणप्रद सुवर्णवंग उपयोगी है। यदि पूयमेह का रोगी जीर्ण होने पर शोथ उत्पन्न हुआ हो तो वह भी इस औषधि के सेवन से निवृत्त होता है। इस तरह पूयमेह से उत्पन्न नेत्र के पूयाभिष्यन्द रोग में भी इसका उत्तम उपयोग होता है।

सुवर्णवंग का उपयोग पित्तप्रधान कास में उत्तम होता है। सूखी खांसी, कंठ में दाह, खांस-खांसकर वमन हो जाना, नेत्र, कण्ठ और नाक में से स्राव होना, दाह, चक्कर, स्वरयन्त्र ग्रसनिका, उपजिह्वा, मुख के आगे का हिस्सा ये सब लाल हो जाना इत्यादि लक्षण होने पर सुवर्णवंग को आम के मुरब्बे के साथ देने से सत्वर लाभ होता है।

किसी भी स्थान में वात या पित्त की दोषज वृद्धि, विशेषतः पित्तज वृद्धि होने पर वंगेश्वर बहुत अच्छा काम करता है। इसी प्रकार किसी ग्रन्थि की वृद्धि होने पर भी वंगेश्वर दिया जाता है।

धातु परिपोषण-क्रम में शरीर की क्षति की पूर्ति करना यह मुख्य कार्य है। नित्य होने वाले शारीरिक व्यापार से जो क्षति होती है, वह धातु के उत्पादन द्वारा पूर्ण होती है। इस तरह धातुसाम्य बना रहता है। इसी साम्य पर आरोग्य का आधार है। परन्तु कभी-कभी अनेक भिन्न-भिन्न कारणों से इस न्यूनता की पूर्ति नहीं होती है, बल्कि अधिकाधिक ह्रास होता जाता है। इस तरह शरीरस्थ रक्त आदि धातुओं का परिमाण भी न्यून होने लगता है। प्रतिदिन उत्पत्ति कम और नाश अधिक होते रहने से देह शुष्क हो जाती है। इस स्थिति के अनेक कारण हैं जो कारण हों, उसे निर्णीत कर दूर कर देना चाहिये, परन्तु जब कोई निश्चित कारण नहीं मिलता और शरीर कृश होता जाता है तब सुवर्णवंग देना, यह उत्तम मार्ग है। इससे शारीरिक व्यापार नियमित बनता है और शारीरिक कृशता कम होने लगती है। इस दृष्टि से यह रसायन जीवनीय औषध है।

इस रसायन के साथ शिलाजतु, लोहभस्म, प्रवालपिष्टी मिश्रित करने का भी रिवाज है। इनके मिश्रण से अच्छा लाभ होता है। तथापि इनकी अपेक्षा वङ्गेश्वर को स्वतन्त्र देना विशेष हितकर है।

सुवर्णवंग शक्तिवर्द्धक, धातु-परिपोषण-क्रम नियमित करने और सुधारने वाली, पूयनाशक, जीर्ण सुजाक और उपदंश में लाभदायक है एवं यह मूत्रेन्द्रिय को निर्विष बनाती है।

यह रसायन पित्त, वात ये दोष, रक्त, माँस ये दूष्य तथा मूत्रेन्द्रिय, जननेन्द्रिय, मूत्राशय और वृक्क स्थान पर लाभ पहुँचाता है।

(औ.गु.ध.शा.)

श्वेतप्रदर जनित निर्बलता आने तथा पाण्डुता और उष्णता रहने पर सुवर्ण वंग, सुवर्णमाक्षिक भस्म और गोदन्ती भस्म मिलाकर मधुकाद्यवलेह के साथ देने से प्रदर और उससे उत्पन्न सब उपद्रव दूर हो जाते हैं।

कास रोग में कफ को बाहर निकालने के लिए सुवर्णवंग, वासाक्षार, मुलहठी और बहेड़े के चूर्ण के साथ दी जाती है एवं बार-बार कास आती रहती हो तो जहरमोहरा पिष्टी और लोहबान पुष्प के साथ देने के सत्वर लाभ पहुँचता है। अग्निमांद्य, घबराहट, कफ की उत्पत्ति को

रोकने के लिये पीपलामूल और शहद के साथ देने से रात्रि को कास कम हो जाता और घबराहट दूर होती है।

त्वचागत वायु कुपित होने पर चर्मकील रोग हो जाता है। इसके मस्से त्वचा के रंग के कठिन, छोटे-छोटे और कभी-कभी समीप-समी अनेक हो जाते हैं। फिर रोगी दीर्घकाल तक उपचार नहीं करते। ऐसे जीर्ण रोगपर पीलू के पानों की पुल्टिस या लेप लगाते रहने के सा सुवर्णबंग १/४ रत्ती यवक्षार और त्रिफला चूर्ण २-२ रत्ती मिला दिन में २ बार भोजन के बाद देते रहने से सत्वर लाभ हो जाता है। य नये-नये उत्पन्न होते हैं तो वे बन्द हो जाते हैं।

दूसरी विधि- नौसादर, सैंधानमक और पारद तीनों औषधियाँ ५-५ तोले मिला खरलकर डमरूयन्त्र में बन्द करें। फिर ४ प्रहर तक अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर यन्त्र को खोलकर ऊपर लगे हुए पारद मिश्रित नोसादर फूलों को ले लेवें। इन फूलों के बराबर शुद्ध कलई को रे से किया हुआ चूर्ण (या भस्म) और दोनों के बराबर शुद्ध गन्धक मिलाकर कपड़मिट्टी की हुई आतिशी शीशी में भरें। पश्चात् बालूका य में रखकर १।। से २ दिन तक अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर सुवर्ण के सदृश सुवर्णवंग (मृगांक) को निकाल लेवें कितने ही ग्रन्थका ने इसे '**मस्क मृगांक**' और '**सुवर्णराज वङ्गेश्वर**' नाम भी दिया है। (र.यो.सा.)

मात्रा-२-२ रत्ती, इलायची के चूर्ण और शहद के साथ।

उपयोग-किसी ग्रन्थकार ने लिखा है कि यह भस्म सुवर्ण भस्म से सौगुना लाभ पहुँचाती है। यह वृष्य, आयुवर्द्धक और कामोत्तेज है। सब प्रकार के प्रमेह और मधुमेह का नाश करती है।

(८) समीरपन्नग रस

विधि-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सोमल, शुद्ध मैनसिल और शुद्ध हरताल प्रत्येक १०-१० तोले लेकर कज्जली करें। फिर तुलसी के रस या घीकुंवार के रस की तीन दिन तक भावना देकर सुखा आतशी शीशी में भरकर ५० से ६० घण्टे तक अग्नि देने से काला तेजस्वी और कठोर समीरपन्नग रस शीशी के गले में तैयार होता है। लगभग १६ घण्टे तक मन्दाग्नि देने से गन्धक जारण होता है। फिर डाट लगाकर ३६ घण्टे तेज अग्नि देनी पड़ती है। मूल ग्रन्थकार ने ८ प्रहर तक क्रमाग्नि देकर तलस्थ रसायन बनाने को लिखा है। (औ.गु.ध.शा.)

वक्तव्य-कितने ही चिकित्सक २॥ तोले स्वर्ण वर्क मिला ४८ घण्टे की मन्दाग्नि देकर तलस्थ रसायन बनाते हैं। उसे '**स्वर्ण समीरपन्नग**' कहते हैं उसमें सुवर्ण मिल जाने और मन्दाग्नि पर पाक होने से रसायन की उग्रता विशेष नहीं होती। उपयोग करने पर वह विशेष गुणदायक विदित हुआ है। यदि पारद पक्षच्छेदित और बुभुक्षित किया हुआ इस प्रयोग में मिलावें तो तत्क्षण गुणदायक बनता है।

मनः शिला तलस्थ समीरपन्नग में मिलाना चाहिए। कण्ठस्थ बनाना हो तो न मिलावें अन्यथा कुछ औषधि कण्ठस्थ और कुछ तलस्थ रह जाती है।

मात्रा-१/२ से २ रत्ती तक। दिन में २ से ३ समय, नागरबेल के पान में या अदरक के रस और शहद के साथ। श्वासावरोध या श्वास में कफस्राव कराने के लिये वासा के पत्ते, मुलहठी, बहेड़ा, भारङ्गी और मिश्री के क्वाथ के साथ देवें।

उपयोग-यह रसायन त्रिदोष और निमोनिया में घबराहट, सन्धिवात, उन्माद, कास, श्वास, ज्वर, जुकाम आदि रोगों को शान्त करता है इसमें सोमल, हरताल और मैनसिल मिलाया है। ये तीनों अत्यन्त उग्र और उष्णवीर्य हैं। तीनों में भी सोमल की ही प्रधानता है; फिर भी मल्लभस्म, मल्लपुष्प और मल्लसिन्दूर की अपेक्षा यह रसायन कम तीव्र है। जहाँ मल्लभस्म देने से हानि होने का भय रहता है वहां पर समीरपन्नग देने में अधिक भय नहीं है।

इस रसायन में सोमल मिला हुआ है, तथापि इस रसायन की बड़ी मात्रा देने पर (सोमल का परिमाण अधिक हो जाने पर भी) विष विकार के लक्षण प्रतीत नहीं होते। उग्रता की यह न्यूनता रासायनिक सम्मिश्रण से होती है। समीरपन्नग, मल्लसिन्दूर और पंचसूत तीनों सोमल प्रधान औषध हैं। अतः तीनों वीर्यवान हैं, तीनों के गुण धर्म में साधर्म्य हैं और वैशिष्ट्य भी। मल्लसिन्दूर अत्यन्त तीक्ष्ण, विस्फोटकारी और श्लैष्मिक कला पर उग्रता उत्पादक है। पंचसूत में मल्लसिन्दूर की अपेक्षा तीक्ष्णता न्यून है और श्लैष्मिक कला को कम हानि पहुँचाता है तथा संचित कफ का शोषण करके रूपान्तर कराता है। समीरपन्नग मल्लकल्प होने पर भी दोनों की अपेक्षा कम तीव्र गुणयुक्त, कम स्फोटोत्पादक और कम दाहक है।

समीरपन्नग, श्वासवाहिनियों और फुफ्फुस कोषों के भीतर श्लेष्मिककला पर शोथ न लाकर कफ का स्राव कराता है और दोष निकल जाने पर उस स्थान के घटकों को सशक्त बनाने में सहायक होता है।

समीरपन्नग के प्रयोग से श्वासनलिका के अन्तर में उत्पन्न दुष्ट व्रण कफात्मक या वातात्मक होने पर, कफस्राव कराकर उसे नष्टकर देता है। इस हेतु से जीर्णकास या कफाधिक विकार में वात और कफ की प्रधानता होने पर समीरपन्नग का अच्छा उपयोग होता है।

मल्लसिन्दूर से कफ का शोषण होता है; कण्ठ और श्वासवाहिनियाँ शुष्क हो जाते हैं। पंचसूत से संचित कफ में से दुर्गन्ध कम होती

का जलद्रव्य का रूपान्तर होकर कफ कम हो जाता है। समीरपन्नग से श्वासवाहिनियाँ और फुप्फुस कोष उत्तेजित होते हैं; कफ छूटकर कफस्थान की शुद्धि होती है। इस हेतु से जिस स्थान पर कफस्राव कराना इष्ट हो; उस स्थान पर और कफवातज कास-श्वास में समीरपन्नग का अच्छा उपयोग होता है।

यदि उरस्तोय और कुक्षिशूल हों तो वहाँ पर समीरपन्नग की अपेक्षा पञ्चसूत अधिक हितकारक है। कारण; उरस्तोय में संचित द्रव्य का रूपान्तर और संशोषण कराने के महत्व का गुण जैसा पंचसूत में है वैसा समीरन्नग में नहीं है।

वातकफभूयिष्ठ श्वास रोग में समीरपन्नग का अच्छा उपयोग होता है। पंचसूत का अधिक उपयोग नहीं होता है। ऐसे श्वास में समीरपन्नग देने पर तत्काल कफस्राव होने लगता है। इसके लिये समीरपन्नग १/२ से १ रत्ती और सोहागे का फूला ३ रत्ती मिलाकर शहद के साथ देवें। ऊपर मुलहठी, बहेड़ा, मिश्री और अडूसे के पत्ते का क्वाथ पिलावें। आवश्यकता पर क्वाथ आधा-आधा घण्टे पर २-३ बार देवें। यह क्वाथ श्वास वेग शामक और कफस्राव कराने वाला है। यह क्वाथ रसायन के साथ सम्मिलित होने से कफ जल्दी-जल्दी निकलने लगता है और श्वास का वेगशमन हो जाता है। तीक्ष्ण वेगशमन होने पर फिर उसे नागरबेल के पान में देने से आंतरिक शक्ति प्रबल बनती है।

समीरपन्नग उत्तेजक और बलवर्द्धक होने से पाण्डु और विषमज्वर के पश्चात् आयी हुई निर्बलता में अति कम मात्रा (१/८ रत्ती) में दिन में दो बार लोहभस्म के साथ मिलाकर देने से अच्छा लाभ पहुँचाता है।

जीर्णकास में अनेक प्रकार हैं। कितने ही व्यक्तियों को यह विकार वर्षाऋतु में उत्पन्न होता है। कितनों ही को शीतकाल में और किसी-किसी को उष्णऋतु में हो जाता है। जैसे कारण हों, उनके अनुरूप दोष प्रकुपित होते हैं। कभी व्याधि कुछ काल तक शमन हो जाने का भास होता है। दोष धातुओं में लीन हो जाता है, जिससे पुनः पुनः विवक्षित दोष-प्रकोप काल में उनके लक्षणों से युक्त होकर आक्रमण करता है। उदाहरणार्थ-शीतलवायु में रहना, लूणेवाले मकान अर्थात् जिनकी दीवारों से लवण निकलता रहता हो, ऐसे स्थान में या सीलयुक्त मकान में रहना आदि कारणों से कफभूयिष्ठ कास हो जाती है। इस प्रकार की कास तत्काल कम हुई तो अच्छा; अन्यथा दोष लीन हो जाता है। फिर सामान्य प्रतिकूलता होने पर (रोग की अनुकूलता मिलने पर) रोग बार-बार आक्रमण करता रहता है। इस हेतु से मकान सदोष हो तो मकान का त्यागकर देना चाहिये अन्यथा वर्षा की शीतल वायु लगने पर एवं शीतकाल में वर्षा होने पर बार-बार व्याधि त्रास देती रहती है; शनैः शनैः रोग जीर्ण होता जाता है और जीवनीय शक्ति को निर्बल बनाता है। फिर चाहे स्थान परिवर्तन करें चाहे जितना पथ्यपालन करें तो भी रोग से मुक्ति नहीं मिलती क्योंकि दोष का अत्यन्त सूक्ष्म अंश बीजरूप में देह में दृढ़ हो जाता है। यथार्थ में जिस समय पहली बार दोष दुष्ट होकर कासोत्पत्ति हुई है; उसी समय इन सबका विशिष्ट सम्मिलन हुआ है। फिर इस सम्मिलन के अनुरोध से दोष-दूष्य संयोग का परिणाम शारीरिक घटक पर होता है; इसी हेतु से बार-बार समान लक्षण उपस्थित होते रहते हैं।

विपरीत कारणों से उत्पन्न हुई शारीरिक परिस्थिति में दोष-दूष्य संयोग दबा हुआ रहता है। परन्तु उसके बीजों को थोड़ी-सी अनुकूलता मिलने पर अपना प्रभाव दर्शा देते हैं।

जिस तरह घास के बीज ग्रीष्मऋतु के ताप से अग्नि से जल जाने पर भी वर्षा ऋतु में पुनः सजीव हो जाते हैं। उसी तरह इस रोग के बीज भी पुनः रोग स्वरूप को धारण करते रहते हैं। इस दृष्टि में यह रोग प्राकृतिक बन जाता है। प्राकृतिक रोग अनेक हैं। इनमें जीर्ण कास अति त्रासदायक है। कफस्थान का स्वभाव कफस्राव कराने का हो जाने पर बार-बार श्लैष्मिक कला में से कफस्राव होता रहता है। जीर्ण कासविकार में श्वासनलिका, श्वास प्रणालिका, श्वासवाहिनी जाल और फुप्फुस कोषगत श्लैष्मिक त्वचा, ये सब दुष्ट हो जाते हैं। कला में कुछ उग्रता आती है या सूक्ष्म-सूक्ष्म व्रण होते हैं। अतः कफ संचय होने पर उपचार करने से कफस्राव हो जाता है और किञ्चित् काल स्वस्थता का भ्रम होता है। किन्तु रोगबीज जैसा का वैसा ही सुप्तावस्था में रह जाता है। ऐसी स्थिति में बीज को ही नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिये।

प्राकृतिक रोग के अन्य भी अनेक प्रकार हैं। इन में से एक चर्मरोग भी है। कितने ही कण्डू, पामा, ब्यूची, दाद, चर्मदल, विस्फोटक, पिटिका आदि पीड़ित रोगियों को बाल्यावस्था में उत्पन्न चर्मरोग समग्र जीवन पर्यन्त त्रास देता रहता है। कभी-कभी एक रूप में एक स्थान में होता है तो दूसरी बार दूसरे रूप में अन्य स्थान पर हो जाता है। इनकी खुजाने की रीति, चलने की शैली, मन्दता, अस्थिरता, मानसिक चंचलता और बर्ताव में कुछ उतावलापन भासता है। ऐसे जीर्ण रोग में एक प्रकार की विशिष्टता प्रतीत होती है। वह यह है कि कास और चर्मरोग क्रमशः आक्रमण करते रहते हैं। जब तक त्वचा सबल है; तब तक कास कम रहती है या बिल्कुल नहीं रहती। फिर चर्मरोग दब जाने पर आंतरिक दोष से कफभूयिष्ठ विकार बलवान् बन जाता है। त्वचा पर स्फोट रूप से उत्पन्न होने वाले लक्षण और भावी कफ के लक्षण, दोनों एक ही प्रकार के दोष-दूष्य विकृति से उत्पादित होते हैं। इस तरह कफ और कफवात प्रकोप से उत्पन्न इन विकारों में समीरपन्नग अच्छा उपयोगी है। समीरपन्नग दिन में एक बार ही देना चाहिये; और अन्य कोई भी औषध नहीं देना चाहिए। अन्य औषध मिला देने से समीरपन्नग के कार्य में प्रतिबन्ध होता है।

यह रसायन उपदंश या पूयमेह के उपद्रवरूप सन्धिवात, रक्तविकार, त्वचारोग, जीर्ण पक्षाघात और अन्य उपद्रवों का नाश करता है। अर्दित, जिह्वास्तम्भ, धनुर्वात या अन्य वातरोगों में जब कफ दोष सम्मिलित हुआ हो तब इस समीरपन्नग के सेवन से अच्छा लाभ पहुँचता है। वात

आक्षेप के लिये भी समीरपन्नग अति हितकर है। इस तरह स्तम्भ, संकोच, शूल आदि विकारों में भी यह अच्छा उपयोगी है। बृंहण अनुपान के साथ देना चाहिये। कफप्रधान उन्माद में भी वात कफ वृद्धि का शमन करके रोग को दबा देता है। रसाजीर्ण में प्रायः पित्त स्राव कम होता है। उदर में जड़ता, अन्नविद्वेष, उबाक, मुँह में मीठापन, चिपचिपा थूंक, उदर में वातसंचय आदि लक्षण होने पर समीरपन्नग अति उपयुक्त है।

विसूचिका रोग में वमन-विरेचन अधिक हो जाने पर शक्तिपात हो जाता है। हाथ पैरों में शीतलता, नाड़ी अति मन्द हो जाना, निश्चेष्टता और सर्वांग प्रस्वेदपूर्ण हो जाता है। ऐसी स्थिति में सोंठ और कायफल की मालिश कराई जाती है तथा समीरपन्नग रस, मण्डूरभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म और प्रवालपिष्टी मिला तुलसी का रस, अदरक का रस और शहद मिलाकर १०-१० मिनट पर देते रहने से रोगी सचेत हो जाता है और देह उष्ण हो जाती है। फिर सूतशेखर और संजीवनी वटी देने से रोगी की स्थिति सुधर जाती है।

मलावरोध दीर्घकाल तक रहने पर कीटाणुओं की आबादी दृढ़ हो जाती है। फिर उस हेतु से किसी-किसी में आक्षेप आने लगता है। तीव्रावस्था में छाती की धड़-धड़, श्वासोच्छवास में कष्ट, शिरदर्द और घबराहट आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। झटकों की इस तीव्रावस्था में समीरपन्नग १/४ रत्ती मात्रा में लहसुन के रस के साथ दिन में ३ बार देने और गुनगुने चन्दबलालाक्षादि तैल की मालिश करने पर रोगशमन हो जाता है। किन्तु पहले एरण्ड तैल से उदर शुद्धिकर लेवें।

सेन्द्रिय विष प्रकोप या बार-बार अत्यधिक भोजन करने की आदत वालों का आमाशय शिथिल हो जाता है। फिर भोजन जब तक न किया जाय जब तक एक पीछे एक डकार आती रहती है। अधिक डकारें आने से छाती में वेदना, अग्निमांद्य, अशक्ति आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर समीरपन्नग, शंखभस्म और मुलहठी के चूर्ण को आम के मुरब्बे में मिला लेवें। फिर भोजन के समय थोड़ा-थोड़ा ग्रास के साथ मिलाकर सेवन कराने से थोड़े ही दिनों में लाभ हो जाता है।

छाती में कफ सूख जाने पर वात प्रकुपित होकर शूल चलने लगता है, यह शूल खाँसी आने पर चलता है। वात प्रकोप होने से भीतर कफ सूखकर सूखी खाँसी हो जाती है। इस रोग पर समीरपन्नग, मुलहठी सत्व, अदरक के रस और शहद के साथ मिला भोजन के साथ सुबह-शाम देते रहने से शूल निवृत्त हो जाता है और कफ छूटकर बाहर निकल जाता है।

समीरपन्नग कटु रसात्मक, कटुविपाकी, उष्ण, तीक्ष्णवीर्य, उत्तेजक, बल्य कफघ्न, कफवातघ्न और त्वचा के रोगों का नाशक है। इसका कार्य कफ और कफवात दोष, रस, रक्त और मांस ये दूष्य एवं उर, आमाशय, यकृत्, प्लीहा, वातवाहिनियां, वातवाहिनियों के केन्द्र स्थान, मस्तिष्क और त्वचा, इन स्थानों पर होता है।

वक्तव्य-इस रसायन को अनेक चिकित्सक मंद-मंद अग्नि देकर तल भाग में ही सिद्ध करते हैं। उसमें कालापन अधिक रहता है और कण्ठस्थ रसायन की अपेक्षा उग्रता भी अधिक होती है।

दूसरी विधि-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोमल और हरताल, चारों को समभाग मिला तुलसी के रस की ३ भावना दें, बालुकायन्त्र में रख २४ घण्टे मन्दाग्नि देकर तलस्थ रसायन बना लें। (र.चं.)

मात्रा और उपयोग-पहली विधि के अनुसार।

यह रसायन प्रथम विधि की अपेक्षा वातवाहिनियों के विकृति जनित रोगों पर सत्वर लाभ पहुँचाता है। इस द्वितीय विधि वाले ऊर्ध्वलग्न रसायन का उपयोग स्वामी श्री हरि शरणानन्दजी ने अर्धांगवात और गृध्रसीवात पर शहद के साथ अनेक बार किया है। अर्धांगवात पर इससे जितना लाभ होता है उतना अन्य किसी भी औषध से नहीं होता। इस तरह पुराने से पुराने गृध्रसी रोगी इससे अच्छे हो गये हैं। अर्धांगवात और पक्षाघात में रक्त का दबाव बढ़ जाता है। उसे कम करने के साथ रोग निवृत्त करता है।

पहली विधि की अपेक्षा यह रसायन उग्र और रंग में अधिक श्याम होता है। इसको अनेक वैद्य हेमगर्भपोटली रस के समान वातकफप्रधान सन्निपात में तुलसी के रस में घिसकर पिलाते हैं।

सूचना-इस समीरपन्नग को शीशी में बन्दकर तैयार करना हो, तो डाट बन्द करें किन्तु मुखमुद्रा लगाकर पक्का बन्द न करें। अग्नि बहुत मन्द दें या बीच-बीच में बन्द कर दें। आध-आध या १-१ घण्टे पर डाट को खोलकर फिर लगालें। जिससे कुछ धूआँ एकत्र हुआ हो वह निकल जायगा। अन्यथा गन्धक का धूआं अत्यधिक परिणाम में संचित होने पर शीशी फूट जायगी। जब गन्धक का जारण हो जाय, तब रसायन को पाक हुआ मानना चाहिये। अग्नि पाक होने में कभी २-४ घण्टे अधिक और कभी २-४ घण्टे कम समय लगता है।

यदि तलस्थ समीरपन्नग का रंग काला तेजस्वी न आया हो और अधिक सख्त न बना हो, तो कच्चा समझकर पुनः ४-६ घण्टे आवश्यकतानुसार मंदाग्नि देकर परिपक्व बना लेवें। इस रसायन में कसर रह जायगी तो थोड़े ही दिनों में काले नमक के समान दुर्गन्ध आने लगेगी और रसायन के ऊपर सफेद क्षार लग जायगा। ऐसे दूषित रसायन में पुनः गन्धक मिला भावना दें, बालुकायन्त्र में रख; अग्नि देकर उड़ा लेना चाहिये।

(९) सुवर्णभूपति रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक १-१ भाग; ताम्रभस्म २ भाग; अभ्रक भस्म; लोहभस्म; कान्त लोहभस्म (अभाव में लोहभस्म); सुवर्णभस्म, रजतभस्म और शुद्ध बच्छनाभ १-१ भाग लेकर सबको मिला लेवें। फिर हंसराज के रस में १२ घण्टे मर्दन करके सुखा लेवें। पश्चात् आतशी शीशी में भर, चाक मिट्टी का डाट लगा, मजबूत बन्दकर, बालुकायन्त्र में रख; दो प्रहर मन्दाग्नि देकर औषधि पाक करें। पैंदे में ही औषधि मिलकर जम जाती है। रेता और शीशी के ऊपर का भाग अच्छी तरह गरम हो जाय तब अग्नि देना बन्द करें। स्वाँगशीतल होने पर पैंदे में से सुवर्णभूपति रस निकाल लेवें। (यो.र.)

मात्रा–१ से १॥ रत्ती अदरक के रस और मिश्री के साथ या पीपल और शहद के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह रसायन सन्निपात और क्षय की दूसरी अवस्था में लाभदायक है। आमवात, धनुर्वात, शृंखलावात (लंगड़ापन) ऊरुस्तम्भ (आह्यवात) पंगुवात, कम्पवात, कटिवात, मन्दाग्नि सब प्रकार के शूल, गुल्म, उदावर्त्त, भयंकर संग्रहणी, प्रमेह, उदररोग, अश्मरी, मलावरोध, मूत्रविबंध, भगन्दर, कुष्ठ, विषविकार, बढ़ा हुआ विषप्रकोप, विद्रधि, श्वास, कास, अजीर्ण, सब प्रकार के ज्वर, कामला, पाण्डु, शिरोरोग आदि कफ वात प्रधान रोग अनुकूल अनुपान के साथ सेवन करने से दूर होते हैं। यह महाराष्ट्र की अति प्रसिद्ध औषधि है।

सुवर्ण भूपति में सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, लौह और अभ्रक इन भिन्न-भिन्न गुण वाली धातुओं का संयोग होने से यह वात, पित्त और कफ तीनों दोषों के विकारों को शमन करने में प्रभावशाली है। सन्निपात में कफ से श्वासनलिका अति आच्छादित न हुई हो, वात या पित्तप्रकोप अधिक हो, कफविकृति न्यूनांश में हो, ऐसे सन्निपातों में यह लाभ पहुँचाता है। क्षय की दूसरी अवस्था तक इसका उपयोग होता है। क्षय में सूक्ष्म मात्रा देने से कीटाणुओं का नाश, वातप्रकोप, ज्वर और कास का शमन तथा बल की वृद्धि होकर शांति प्राप्त होती है।

इस रसायन में ताम्र का परिमाण अधिक होने से यकृत्, प्लीहा और वृक्क स्थान को शुद्ध करना, संचित सेन्द्रिय विष को बाहर फेंकना एवं कफ और आम पाचन करना ये गुण विशेष रूप से मिलते हैं। इसके सेवन से अजीर्ण, उदरशूल, सारे शरीर में चलने वाले शूल और आमवात का शमन होता है।

इस तरह रौप्य के प्रभाव से वातवाहिनियाँ और वातप्रकोप पर लाभ पहुँचता है। विविध प्रकार के कम्प, कलायखंज, आक्षेपकवात, चक्षुगत वात विकार, वातवृद्धि होकर चक्कर आना, मूर्च्छा, शुष्क कास और शूल आदि पर व्यवहृत होता है। कभी साथ में कुचिला मिला दिया जाता है और दशमूल क्वाथ या रास्नादि क्वाथ अनुपान रूप से दिया जाता है।

आहार-विहार में दीर्घकाल पर्यन्त अनियमितता होने से आमाशय, यकृत्, फुफ्फुस, हृदय या शुक्राशय आदि यन्त्र शिथिल हो जाते हैं। तब इनके व्यापार में न्यूनता न होने के लिये वातवाहिनियों के तन्तु लम्बे और पतले बनकर इन सब आशयों का संरक्षण करते हैं। परन्तु जब इन वातवाहिनियों की शक्ति का क्षय हो जाता है तब पक्षाघात आदि विविध वातरोगों का आक्रमण होता है। इन वातरोगों में भी तीव्रावस्था दूर होने पर वात, पित्त, कफ तीनों धातु, सब आशय और वातवाहिनियों को सबल बनाकर रोग को पूर्णांश में दूर करने के लिये यह रसायन अति उपयोगी है।

जब पाचनक्रिया में विकृति होने से सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति होती है और फिर इसी हेतु से धमनियों में फिरने वाले रक्त में मलिनता आ जाती है; रक्त शैरिक भाव को प्राप्त होता है तब वाताक्षेप उपस्थित होता है। इस अवस्था में पचनक्रिया सुधारकर और सेन्द्रिय विष को नष्ट कर आक्षेप को दूर करने का कार्य इस सुवर्ण-भूपति से होता है।

इनके अतिरिक्त मानसिक आघात पहुँचने पर वातप्रकोप हो जाता है उसे भी यह सुवर्णभूपति रस दूर करता है। इससे वातकफ-प्रधान उरुस्तम्भ और वातवाहिनी की विकृति से होने वाले वातरोग, यकृत् और आन्त्र दोष से उत्पन्न वातरोग, उदावर्त, शिरोरोग, गुल्म, उदररोग, कास और श्वास भी दूर होते हैं।

इस औषधि में वात आदि तीनों दोषों को नियमित करने और सेन्द्रिय विष को नष्ट करने का गुण होने से यह मधुमेह को छोड़कर शेष सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करती है। कच्चे आम को प्रस्वेद, मूत्रद्वारा बाहर निकालती है और जलाती भी है, जिससे दिनों तक बने रहने वाले नूतन ज्वर और जीर्णज्वर का शमन होता है, तथा मल-मूत्रावरोध अजीर्ण नष्ट होता है।

संयोगजन्य ग्राही और दीपन-पाचन गुण होने से अतिसार का शमन करने में यह उपयोगी है। इसके अतिरिक्त इस औषधि का वियोजन पर्पटी के समान अन्त्र में होता है। अतः अन्त्रशोथयुक्त ग्रहणी, वात, पित्त और कफोल्वण ग्रहणी, अन्त्र व्रण युक्त रक्तज ग्रहणी या पूयमय ग्रहणी, अन्त्रक्षय (संग्रहणी) इन सबको नष्ट करता है एवं इस रसायन में लोह का मिश्रण होने से यह रक्त में रक्ताणुओं की वृद्धिकर पाण्डु और कामला को भी दूर करता है।

सब रोगों के मूल, वात, पित्त और कफ दोष एवं रस, रक्त आदि दूष्यों की विकृति है इन सब पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से इस रसायन का असर होता है। आमाशय, यकृत्, प्लीहा, हृदय, अन्त्र, फुफ्फुस, रक्तवाहिनी, वातवाहिनी, मस्तिष्क, मांसग्रन्थियाँ, पिपासास्थान, वृक्कस्थान, वीर्यस्थान आदि शरीर संरक्षण निमित्त महत्व के सब स्थानों को सुवर्णभूपति बल देता है। अतः शास्त्र में लिखा है कि "सर्वरोगविनाशाय सर्वेषां

स्वर्णभूपतिः'' अर्थात् सब रोगों के विनाश के लिये सुवर्णभूपति सब से उत्तम औषध है।

(१०) अष्टमूर्ति रसायन

विधि–शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक ६ तोले, सिंगरफ १ तोला, मैनसिल १ तोला, सोमल १ तोला, हरताल ६ माशे, रसकपूर ९ तोले मुर्दासंग ६ माशे, फिटकरी का फूला १ तोला, सुवर्ण के वर्क ६ माशे और चाँदी के वर्क ६ माशे लेवें। सबको मिलाने से वजन २१ तोले होता है। पारद के साथ सुवर्ण, रौप्य, और गन्धक क्रमशः मिला कज्जली करें। पश्चात् अन्य औषधियों को मिलाकर आतशी शीशी में भरें। फिर बालुकायन्त्र में रखकर लगभग ३० घण्टे की मन्द, मध्यम और तीव्र अग्नि देकर रसायन सिद्ध करें। लगभग १० से १२ घण्टे बाद गन्धक का धूँआँ निकल जाने पर तुरन्त डाट लगा २० घण्टे तक तीव्र अग्नि देंवे। स्वांग शीतल, होने पर शीशी के गले में लगे हुए अष्टमूर्ति रसायन को निकाल लें। (औ.गु.ध.शा.)

मात्रा–१ से २ रत्ती तक अदरक के रस में घिस, शहद मिलाकर दिन में २ बार देवें।

उपयोग–यह रसायन जीर्ण उपदंश, परिवर्तित ज्वर, विषमज्वर, सन्निपात, क्षय, संन्यास (रक्तज मूर्च्छा) भूतोन्माद, अपस्मार, मूत्राघात, कलायखंज (लंगड़ापन) अपतानक, अपतंत्रक तथा धनुष्कम्प आदि वातविकारों को दूर करती है।

यह रसायन जीर्ण फिरंग (Syphilis) रोग के उपद्रवों के शमन के लिये अत्युत्तम औषधि है। जिस फिरंग रोगी के विकार अस्थिपर्यन्त पहुँच गये हों, अस्थि व्रण, दाँतों में क्षत, मसूड़े में सूजन, तालु में व्रण, मुँह से लार गिरना, इत्यादि उपद्रव हो गये हों, ऐसे कृश और क्षीण रोगी को यह लाभदायक है एवं फिरंग रोग के अनुबन्ध से हुए क्षयरोग, मस्तिष्क में रक्त दबाव बढ़कर संन्यास हो जाना, प्रसूता के बालक मर जाना, उन्माद, अपस्मार, वातबस्ति या वातकुंडली, मूत्राघात, कलायखंज (जिसमें मनुष्य सीधा खड़ा नहीं रह सकता) अपतानक, अपतंत्रक, धनुष्कंप और आयाम आदि वातविकार और अन्य रोग जो फिरंग के विष से उत्पन्न हुए हों, वे अष्टमूर्ति रसायन के सेवन से शमन हो जाते हैं। यदि आक्षेपक वातरोग निरनुबन्ध, स्वतंत्र जीर्णावस्था में हों, अर्थात् फिरंग आदि रोग का संबन्ध न हो तो भी इनके आक्षेप के शमन के लिये यह रसायन अच्छा उपयोगी हैं।

बार-बार उलट-उलटकर आनेवाले परिवर्तित ज्वर (Relapsing Fever) में रोगी बहुत कृश, दुर्बल और हताश हो गया हो, सारे शरीर में दाह होता हो, शरीर का रंग काला हो गया हो, नाखून विकृत और नीले रंग के हो गये हों, स्थान-स्थान पर रक्त के धब्बे होते हों, छोटी-छोटी फुंसियाँ सारे शरीर में हो गई हो, ऐसे विकार में इस रसायन को उत्तम प्रकार का माना है।

कृष्ण ज्वर जिसमें त्वचा बिल्कुल काली हो जाती है; शीत लगकर ज्वर आता है, पीले झागवाली वमन, मूत्र पहिले लाल रंग का पश्चात् काला अथवा अत्यन्त लाल या अत्यन्त काला होना इत्यादि लक्षण हों और ज्वर जीर्ण हो जाने से शरीर दुर्बल हो गया हो; ऐसे रोगी को अष्टमूर्ति रसायन नवजीवन प्रदान करता है।

जीर्णज्वर में शरीर कृश हो या आँत्रिक सन्निपात में वातप्रधान लक्षण अधिकांश में प्रतीत होते हों तथा शरीर कृश और दुर्बल हो, उन रोगियों को अष्टमूर्ति देना लाभदायक है। किन्तु इस सन्निपात में रक्तस्थ दोष विशेषतः हों, अर्थात् दाह, रक्तवमन, मोह, शरीर पर मंडल आदि हों तो इस रसायन के साथ या पश्चात् प्रवाल, मुक्ता या अन्य शीतल औषधि भी देनी चाहिये।

उन्माद के विशेषतः भूतोन्माद के आक्षेप में इस रसायन का अनेक बार बहुत अच्छा उपयोग हुआ है। इसके सेवन से मस्तिष्कगत वातवाहिनियों के केन्द्र पर तत्काल असर पहुँचता है; हृदय-क्रिया उत्तेजित होती है और सेन्द्रिय विष नष्ट होकर उन्माद शमन हो जाता है।

उपदंश का विष रक्त में लीन होने से गर्भाशय और उससे सम्बन्ध वाले अवयवों में विकृति होने पर प्रसव काल में अति त्रास होता है और संतान भी जीवित नहीं रहती। कदाच जीवित रही, तो उसे उपदंशज विष से विविध व्याधियाँ होती हैं, यह दशा बार-बार प्रतीत होती रहती है; ऐसी स्थिति में उन्माद उत्पन्न होता है तो रोगिणी हताश; दीन, कृश और निर्बल हो जाती है। उसकी इच्छा के विरुद्ध थोड़ासा हुआ कि मूर्च्छित हो जाती है और आक्षेप आते हैं। ये सब लक्षण होने पर अष्टमूर्ति रसायन अति उत्तम कार्य करता है।

कलायखंज होने पर मनुष्य सीधी रीति से नहीं चल सकता, पैर टेड़े पड़ते हैं, सन्धि बन्धनों में शिथिलता आ जाने से चलने पर विलक्षणता भासती है, पैर की शक्ति नष्ट हो जाती है। रोगी बड़े कष्ट से चलता है; अच्छी तरह खड़ा भी नहीं रह सकता; पैर काँपते रहते हैं। इस रोग में त्रिकास्थि के ऊपर रहे हुये कटि कसेरुकाओं में से पहली और दूसरी कसेरुका के भीतर सुषुम्णामुख और उसके समीप रही हुई वातनाड़ियों की विकृति भासती है। इस रोग में अनेक निमित्त कारणों में एक कारण उपदंशज विष भी है। यदि उपदंशजनित सम्प्राप्ति हो, तो अष्टमूर्ति देना चाहिये। इससे लाभ होने के अनेक उदाहरण मिले हैं।

अष्टमूर्ति रसायन शक्तिवर्द्धक, ओजस्कर, हृदयोत्तेजक, जन्तुघ्न, बल, मांसवर्द्धक और आक्षेपघ्न है। वात और कुछ पित्त दोष; रक्त, मांस, अस्थि और मज्जा ये दूष्य एवं सहस्रार, शिरोब्रह्म, सुषुम्णा, सुषुम्णामुख, अन्य नाड़ीचक्र, वातवाहिनियाँ, स्नायु, फुफ्फुस, हृदय और वृक्क इन पर विशेष असर पहुँचाता है। (औ.गु.ध.शा.)

(११) व्याधिहरण रस

प्रथम विधि–शुद्ध पारद, गन्धक, सोमल, हरताल, मैनसिल, रसकपूर, इन सबको ५-५ तोले मिला घीकुंवार के रस में ३ दिन खरल करके सुखा देवें। पश्चात् आतशी शीशी में भर, बालुकायन्त्र में रख ५२ घण्टे अग्नि देकर व्याधिहरण रस तैयार करें। गन्धक लगभग १६ घंटो में जारण होता है। गंधक जल जाने पर डाट लगाकर ३६ घण्टे तक मंद मध्यम और तीव्र अग्नि देवें। अन्त में अग्नि खूब तेज देने पर ही औषधि उड़ती है, अन्यथा मैनसिल आदि द्रव्य तल भाग में रह जाते हैं। (रस.सा.सं.)

मात्रा–१/२ से १ रत्ती, दिन में २ समय शहद या घी के साथ।

उपयोग–इस रसायन के सेवन से नये और पुराने फिरंग रोग नष्ट हो जाते हैं एवं फिरंगजनित रक्तविकार, संधिवात, कुष्ठ, नासाव्रण, नाड़ीव्रण आदि उपद्रव दूर होते हैं। उपदंश जीर्ण होने से विष हड्डी तक फैल गया हो तो भी इसके थोड़े से ही दिनों के सेवन से विष नष्ट होकर सम्पूर्ण शरीर नीरोग बन जाता है।

दूसरी विधि–शुद्ध पारद ८ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले और रस कपूर १६ तोले लें। सबको यथाविधि मिला, कज्जली कर बालुकातन्त्र में रखकर २४ घण्टे अग्नि देकर रसायन बना लेवें। (नि.र.)

वक्तव्य–अन्य ग्रन्थकार ने इस रसायन को प्रसारणी के रस में खरल करके बालुकायन्त्र में रखने का लिखा है तथा नाम भगन्दरहर रस दिया है।

मात्रा–१ से २ रत्ती तक। नागरबेल के पान में अथवा घृत या शहद के साथ, दिन में २ समय देवें।

उपयोग–यह व्याधिहरण रस प्रथम विधि की अपेक्षा सौम्य है। यह रसायन उपदंश, उसके व्रण आदि उपद्रव और नपुंसकता आदि रोगों को दूर करता है एवं हृदयशूल, वातश्लेष्म विकार और वलीपलितका भी नाश करता है। इस रसायन में प्रधानगुण रसकर्पूर का है। रसकर्पूर अति तीव्र होने से अनेकों के मुंह आ जाते हैं। यह दोष इसमें न होने से नये उपदंश पर निर्भय रूप से उपयोग में आता है। इससे उपदंश रोग उपद्रवसहित शमन हो जाता है। उपदंश होने के पश्चात् सारे शरीर पर लाल चट्टे, स्वरभेद, मुंह में व्रण, गुदशूल (गुदा पर अनेक अंकुर निकलना) गांठ होना, बाल गलना, ज्वर, शिरदर्द, निद्रानाश, पांडु, नेत्रलाली, बार-बार नेत्र आ जाना, नेत्रों में छोटे-छोटे दाने हो जाना, अस्थिगत व्रण, वृक्कशोथ, नाखूनों का टेढ़ा हो जाना, संधिवात, वृषण पर शोथ आदि उपद्रव १ से २ वर्ष के भीतर हुये हों, बहुत गहरे न हों तो ये दूर हो जाते हैं।

उपदंश के विष का परिणाम गर्भ, गर्भाशय पर तथा सन्तान पर भी होता है। इस हेतु से सन्तानों को विविध चर्मरोग, अस्थिरोग, माँसगत रोग, ग्रन्थि वृद्धि, यकृत वृद्धि आदि हो जाते हैं। इनकी उत्पत्ति को रोकने के लिये विष प्रकोप होने के पहले इसका उपयोग करना चाहिये। यदि अस्थिपर्यन्त दोष चला गया हो तो व्याधिहरण (प्रथम विधि) देने से रक्त, गर्भाशय आदि शुद्ध होते हैं।

व्याधिहरण रसायन का परिणाम वात, पित्त, कफ तीनों धातुओं और रस, रक्त आदि सप्त दूष्यों पर होता है। यह रसायन उपदंश विषघ्न और बल्य है। (औ.गु.ध.शा. के आधार पर)

(१२) पञ्चसूत रस

विधि–शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध हिंगुल ८ तोले, सुवीर (सोमल) २ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, रससिंदूर ६ तोले और रसकर्पूर ८ तोले लेवें। सबको मिला कज्जलीकर, छोटी दूधी के रस की ३ भावना दें, सुखा, आतशी शीशी में भरें। पश्चात् मन्द, मध्यम, तीव्राग्नि क्रमशः देवें। ६-८ घण्टे पर डाट लगाकर २७ घण्टे तीव्राग्नि देने से बोतल के कण्ठ पर औषधि लग जाती है। (औ.गु.ध.शा.)

मात्रा–१/२ रत्ती शहद, अदरक के रस, तुलसी के रस या मुलहठी, बहेड़ा वासा के पत्ते और मिश्री के क्वाथ से दिन में २ से ३ बार।

उपयोग–यह रसायन श्वास, कास, आम से उत्पन्न शूल, दुष्ट वातविकार फुफ्फुसावरण शोथ (उरस्तोय-Pleurisy) सन्निपात आदि घोर रोगों को नष्ट करता है।

पञ्चसूत का मुख्य गुण कफशोषक है। यह विशेषतः फुफ्फुसावरण और अन्य स्थान में सञ्चित दोषों का शोषण करता है। मल्लसिंदूर और पञ्चसूत दोनों कफशोषक और उत्तेजक हैं। किन्तु पञ्चसूत में मल्लसिंदूर के सदृश तीक्ष्णता और उष्णता नहीं है। जब वातवाहिनियों की क्रिया में शिथिलता होकर व्यत्यय होता है या अन्य प्रकार का दोष उत्पन्न होता है, ऐसे वात रोग में पञ्चसूत उत्तम औषधि है।

फुफ्फुसावरण शोथ होने से शारीरिक क्रिया शिथिल होती है, हृदय बिल्कुल अशक्त हो जाता है। फिर रोग जीर्ण होने पर फुफ्फुसावरण में जल का संचय होने लगता है। इस रोग को उरस्तोय या कुक्ष्युदर भी कहते हैं। इस स्थिति में कुक्षिशूल, शुष्ककास और ज्वर भी रहता है। किसी-किसी को इतना त्रास होता है कि रोगी खाँस नहीं सकता। इस तीव्र अवस्था के पश्चात् जलसञ्चय होता है। (फुफ्फुसावरण के समान कभी-कभी मस्तिष्क के आवरण में भी शोथ आकर जल संचय होता है) पंचसूत इस जल का शोषक, जल को रूपान्तर कराने वाला कफ

को निर्दोष करके साम्यावस्था में प्रस्थापित करने वाला तथा ज्वर, शोथ और पीड़ा को हरने वाला उत्तम रसायन है।

फुप्फुस सन्निपात (निमोनिया) के वेग का शमन होने पर यदि फुप्फुसकोषों में कफ संग्रह होने लगता है तो फुप्फुसों की क्रिया का प्रतिबन्ध होता है। श्वासोच्छवास में घर-घर आवाज निकलती है। उस पर पंचसूत बहुत अच्छा काम देता है। कारण कि पंचसूत हृदय और फुप्फुसों को उत्तेजना देता है, उनकी क्रिया को सुधारता है और फुप्फुसों में संचित कफ का शोषण करके रूपान्तर करता है। किन्तु निमोनिया में रक्त गिरता हो तो पंचसूत नहीं देना चाहिये।

पंचसूत उत्तम हृदयोत्तेजक है। अनेक बार हृद्य औषधियों के सूचिकाभरण (इन्जेक्शन) लेने से रोगी निराश हो गये हों उन रोगियों की जीवन रक्षा पंचसूत और समीरपन्नग से होने के उदाहरण मिले हैं। यथार्थ में पंचसूत में समीरपन्नग की अपेक्षा हृद्य गुण कुछ न्यून है तो भी कफ स्थानों पर पोषक गुण विशेष प्रकार का है।

श्वासवाहिनियों में कफसंचय होकर श्वासोच्छवास में प्रतिबन्ध; घर-घर आवाज, श्वास रुकना, छिन्न श्वास, नाड़ी का विषम वेग आदि लक्षण होने पर पंचसूत देने से वह श्वासवाहिनियों में संगृहीत कफ को अति सत्वर सुखाकर सरलता से नाड़ियों को शुद्ध करता है। किन्तु समीरपन्नग का कार्य इससे विपरीत है। समीरपन्नग कफस्राव कराने और कफ को बाहर फेंकने के लिये श्वासवाहिनी को शक्ति की प्राप्ति कराने में सहायता करता है। इसके अतिरिक्त समीरपन्नग का कार्य वातवाहिनियों पर भी होता है।

पंचसूत का उपयोग कफयुक्त श्वास रोग में होता है। किन्तु शुष्क कासयुक्त पित्तश्वास में उपयोग करना हानिकर है। पंचसूत से कफ का शोषण अधिक होकर श्वास बढ़ जाता है। समीरपन्नग से कफ खुलकर श्वास-वेग कम हो जाता है। तन्द्रा और मूर्च्छा में कफाधिक्य और जड़ता का लक्षण हो तो पंचसूत देना लाभदायक है, जीर्ण पक्षाघात में जब तीव्रावस्था दूर होती है, तब पंचसूत देने से सत्वर लाभ होने लगता है।

छोटे बच्चों को स्कन्दग्रह, अहिपूतना आदि बालग्रहों के विकार, मस्तिष्क के आवरण की विकृति से अर्थात् मस्तिष्क में रहे हुए वात की विकृति के कारण से हुए हों, तब तीव्र विकार शमन होने के पश्चात् कफप्रधान लक्षण होने पर पंचसूत अमृत समान गुणदायी है।

बालग्रह के अनेक कारण हैं। इनके १० कारण मुख्य हैं। (१) उदर और अन्त्र की विकृति या वातसंचय, (२) दन्तोद्भव, (३) कृमि, (४) मूत्र द्वार की त्वचा चिपक जाने से मूत्रोत्सर्ग में प्रतिबन्ध, (५) कर्णपाक, (६) मृद्वस्थि, (७) शीतला, विस्फोटक, रोमान्तिका आदि तीव्र पिटिका युक्त ज्वर, (८) काली खांसी, (९) मस्तिष्कावरण शोथ, (१०) धनुर्वात या अपस्मार का पूर्व रूप। इनमें से उदर या अन्त्र में वातसंचय विकृत दुग्ध या विकृत आहार से होता है। फिर बालग्रह सदृश आक्षेप बार-बार आते हैं। ऐसी परिस्थिति में उदरस्थ वातप्रकोप शमनार्थ पंचसूत देना चाहिये।

माता के दुग्ध की विकृति या माता की मानस विकृति से बालकों को पेचिस या आक्षेप हुए हों या कीटाणुजन्य विष प्रकोप से पेचिस की प्राप्ति हुई हो, तो दुग्ध विकृति, कीटाणु प्रकोप और वातसंचय, इन सबके निवारण के लिये सरल, सौम्य विरेचन और किंचित् यकृदुत्तेजक गुणयुक्त औषधि देनी चाहिये। ये सब गुण पंचसूत में अवस्थित हैं। पंचसूत सौम्य रेचन (सारकगुण) करता है और यकृत् को थोड़ी उत्तेजना भी देता है। ऐसे निराशाजनक स्थिति प्राप्त छोटे बच्चों के प्राण का रक्षण इस पंचसूत से हुआ है। इस रसायन का कार्य यकृत् पर उत्तेजक होने से तीव्र यकृत् विकार में भी उपयोग होता है।

अन्त्र और कोष्ठ में स्थित जन्तुजन्य विष को पंचसूत दूर करता है। इसलिये गर्भपात, तीव्र यकृत्संकोच और अन्त्रस्थ जन्तुजन्य विकृति से उत्पन्न उदरवात रोग में तीव्र लक्षण होने पर पंचसूत का उपयोग किया जाता है। जीर्ण व्याधि में इसका उपयोग नहीं होता।

पंचसूत कफवात और कफप्रधान दोष, रस, रक्त और मांस ये दूष्य; और फुप्फुस, फुप्फुसावरण आदि कफ स्थान, पक्वाशय, बृहदन्त्र, ग्रहणी, सहस्रार, सहस्रावरण, वातवाहिनियां और स्नायु इन सब पर विशेष प्रभाव दिखाता है। इसका मुख्य कार्य संशोषक है। फुप्फुसावरण आदि स्थानों में संचित द्रव का शोषण करता है।

सूचना–पंचसूत तीव्र औषधि होने से सम्हालपूर्वक उपयोग करना चाहिये। पित्तभूयिष्ठ विकार में पंचसूत देने से मुँह आना, मसूड़े सूजना, रक्त गिरना इत्यादि उपद्रव होते हैं, इस हेतु से इसका आंत्रिक सन्निपात (मोतीझरा Typhoid Fever) में उपयोग नहीं करना चाहिये। कदाचित् आवश्यकता हो तो शामक औषधि के साथ करें।

(१३) त्रिपुर भैरव रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल और रसकर्पूर १०-१० तोले, नौसादर १ तोला और फिटकरी का फूला ५ तोले मिला, कज्जली कर आतशी शीशी में भरें। फिर बालुकायन्त्र में रखकर दो दिन अग्नि देवें। प्रारम्भ से ही क्षार गले में लगता रहता है। अतः गला बार-बार साफ करते रहना चाहिये। गन्धक का धूआँ निकल जाने के बाद डाट लगाकर २४ घण्टे तक तीव्राग्नि देने से सुन्दर लाल रंग का त्रिपुरभैरव सिद्ध होता है।

(वै.सा.सं.)

मात्रा–आधी से २ रत्ती; दिन में २ समय, घी के साथ।

उपयोग–त्रिपुरभैरव रस उपदंशजन्य विकार, रक्तविकार, नाड़ीव्रण, कण्ठमाला और पक्षाघात आदि को दूर करता है एवं संधिवात, नेत्रविकृति, अस्थिगतव्रण, गांठ, छाती और पसलियों में शूल चलना, इत्यादि का भी शमन करता है।

इस रसायन का उपयोग विशेषत: उपदंशजनित विकार पर होता है। इस रसायन के अतिरिक्त पारद भस्म, रसकर्पूर, व्याधिहरण, अष्टमूर्ति और मल्लसिंदूर, आदि अनेक औषधियाँ उपदंश रोग के लिये लिखी हैं। परन्तु इन सबके उपयोग और गुणों में कुछ-कुछ अन्तर है। थोड़े ही दिनों के उपदंश रोग में पारद भस्म उपयोगी है प्रथमावस्था के लक्षणों तक व्याधिहरण रस (दूसरी विधि) लाभ पहुँचाता है, यह त्रिपुरभैरव रस प्रथमावस्था और द्वितीयावस्था के उपदंश रोग और उनके उपद्रवों को शमन करने में उपयोगी है। अष्टमूर्ति, व्याधिहरण (प्रथम विधि) और मल्लसिंदूर (दूसरी विधि) तृतीयावस्था में भी हितकर है।

उपदंशजन्य और उपदंश रहित उत्पन्न जीर्ण; अस्थिगत व्रण, अस्थियों के अन्तभाग मोटे हो जाना, छाती में दर्द, अस्थियों में कीटाणु उत्पन्न होने तथा उपदंशज अन्य विकारों में यह रसायन उपयोगी है।

इसके अतिरिक्त वातप्रधान और कफप्रधान सन्निपात में अन्य औषधि तैयार न होने पर इसको प्रयुक्त किया जाता है।

पक्षवध, अर्दित आदि रोगों पर यह रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है। परन्तु तीव्रावस्था का ह्रास होने पर यह उपयोगी होता है।

सूचना–त्रिपुरभैरव रसायन में फिटकरी का फूला ही मिलाना चाहिये। यदि कच्ची फिटकरी मिलाई जायगी तो गला बन्द होकर शीशी फूट जायगी।

(१४) संघात सिन्दूर रस

विधि–कूपीपक्व रसायन बनाने में शीशी तोड़ने के समय चन्द्रोदय, रससिन्दूर, मल्लसिन्दूर आदि में काँच के टुकड़े मिल गये हों; ऐसे चूर्ण में समभाग गन्धक मिला लोहे की खरल में घीकुंवार के रस के साथ खरल करके आतशी शीशी में भरें। फिर बालुकायन्त्र में ३६ घण्टे अग्नि देकर औषधि उड़ा लेने से काँच के सब टुकड़े नीचे रह जाते हैं और रसायन ऊपर लग जाती है। इस सिन्दूर में सब प्रकार के रसायन होने से सबके गुण सम्मिलित होते हैं। (र.सा.)

मात्रा–१ से २ रत्ती, रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

उपयोग–इस रसायन का उपयोग द्विगुण गन्धकजारित रससिन्दूर के समान होता है। रससिन्दूर से यह अधिक उत्तेजक है।

सूचना–रसकर्पूर मिश्रित औषधियों में से रसायन अलग बनाना चाहिये और उसका उपयोग व्याधिहरण के समान करना चाहिये।

(१५) हरगौरी रस (सुवर्ण)

द्रव्य–अष्टसंस्कारित पारद ५० ग्राम, शुद्ध गन्धक ३०० ग्राम, अभ्रकसत्व तथा सुवर्णमाक्षिक सत्व २५-२५ ग्राम, नागभस्म १२॥ ग्राम एवं सुवर्ण वर्क ६, १/४ ग्राम लें।

विधि–पारद को खरल में डालकर सोने के वर्क १-१ मिलाते हुये घोटते जायें फिर शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली बनाकर ३ दिन घोटें। चौथे दिन प्रथम अभ्रक सत्वरज डालकर १ दिन, सुवर्णमाक्षिक सत्वरज डालकर १ दिन भर घोटें फिर नागभस्म डाल घोंटकर मसृण कज्जली बना, कुमारी रस की भावना दें। धोकर सुखा लें। इस कज्जली को डमरूयन्त्र में भरकर चूल्हे पर चढ़ा मन्दाग्नि से गन्धक जारण करें। यन्त्र शीतल होने पर सब द्रव्य को निकाल आतशी शीशी में भर बालुकायन्त्र द्वारा शेष गन्धक का जारण कर पका लें।

(वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

मात्रा–१/२ से २ रत्ती तक। रोगानुसार विविध अनुपानसह दें।

उपयोग–अकाल जरा-व्याधि, दुराग्रही जीर्णरोग, धातुक्षय, वीर्याणुओं (Spermotozoa) का क्षय या न्यूनता, बन्ध्यत्व नाशक तथा बाजीकरण, रसायन है। रससिद्ध भिक्षु गोविन्दपादाचार्य ने इसे "दैन्य दुखजित्" देह लोह सिद्धिप्रद बतलाया है। इसे मैंने बनाकर प्रयोग किया है।

* * *

पर्पटी प्रकरण

रसायन कल्प में पर्पटी को अति महत्व की औषधि माना है। पारद और गन्धक की कज्जली या उसके साथ अन्य औषधियों को मिल अग्निसंस्कार करके पर्पटी बनाई जाती है। पारद गंधकयुक्त पर्पटी विशेष करके अन्त्र के विकारों को दूर करने में अति उपयोगी है। अन्त्र में रही हुई दुर्गन्ध को दूर करती है; कीटाणुओं का नाश करती है, और अन्त्र की शक्ति को बढ़ाती है। अन्त्र-विकृति को दूर करने में अन्य औषधकृ की अपेक्षा पर्पटी जैसी सौम्य, विशेष हितकर और शीघ्र लाभदायक है। पर्पटी बनाने से कज्जली और अन्य औषधियों का वियोजन आमाश में नहीं होता, परन्तु ग्रहणी, पक्वाशय और बृहदन्त्र में होता है। इस हेतु से ग्रहणी रोग में पर्पटी अपना प्रभाव विशेष दिखाती है।

पारदयुक्त सब प्रकार की पर्पटियाँ जन्तुघ्न, पाचक, व्रणशोधक, व्रणरोपक, शक्तिवर्धक है, और अन्य जो-जो औषधियाँ मिलाई जाती जाय उनके और भी गुण सम्मिलित होते हैं। लोहपात्र में पर्पटी तैयार करने से पर्पटी में लोह का गुण आता है। लोहपात्र में संयोग से रक्त के रक्ताणुओं की वृद्धि होने में सहायता मिलती है। ताम्रपात्र में तैयार करने से यकृत् प्लीहा और वृक्कस्थान की निर्बलता को दूर करने और पित्तविसर्ज क्रिया को सुधारने के गुणों से युक्त बनती है। अत: जिस धातु के पात्र का उपयोग किया जाता है, उस धातु का गुण पर्पटी के साथ कुछ अंश में संयुक्त होता है।

पर्पटी के लिए श्रेष्ठ पारद–जो पारद पक्षच्छिन्न और बुभुक्षित किया है, वह लिया जायगा तो पर्पटी आशु फलप्रद बनती है। ऐसा प न हो तो अष्ट संस्कारित और षड्गुण गन्धक जीर्ण लेना चाहिए। ऐसा भी न हो तब हिंगुलोत्थ पारद को निम्नानुसार विशेष शुद्ध करके प्रयोग करना चाहिये।

पर्पटी के लिए हिंगुलोत्थ पारद शोधन विधि–पारद को घीकुँवार के रस में मर्दन करने से मल दोष, त्रिफले के क्वाथ में मर्दन क से अग्निदोष और चित्रकमूल के क्वाथ में खरल करने से विषदोष दूर होता है। इस प्रकार पारद के दोषों को दूरकर उसे अरणी के पत्तों, एर के पत्तों, अदरख के और मकोय के पत्तों के रसों में पृथक्-पृथक् मिलाकर क्रमश: पत्थर की खरल में मर्दन करके शोषण करें। इस रीति से पारद की विशेष शुद्धि करने पर पर्पटी विशेष गुण दर्शाती है।

पर्पटी के लिए गन्धक चूर्ण विधि–शुद्ध गन्धक के चाँवलों के समान छोटे-छोटे टुकड़े कर पत्थर की खरल में भांगरे के रस की ७ बार भावना देवें, और ७ बार धूप में सुखावें। फिर एक कड़ाही में थोड़े घी के साथ गन्धक मिलाकर अग्नि पर रखकर रस करें (पिघलालें)। उस गंधक से चार गुना भांगरे का रस एक पीतल के भगोनें में भरें। भगोना इतना बड़ा लेवें कि आधा भर जाय, उस भगोने पर स्वच्छ कपड़ा बाँध फिर गंधक का रस होने पर तुरन्त उस भगोने पर डाल देवें। पश्चात् गन्धक को निकालकर धो लेने से पर्पटी के योग्य गंधक की शुद्धि होती है। भाँगरे की भावना से यकृदुत्तेजक गुण की वृद्धि होती है जो संग्रहणी आदि व्याधियों में हितावह है, तथा पर्पटी मुलायम बनती है, कठोरता नहीं आती।

पर्पटी बनाने के लिये कड़ाही अथवा कलछी में घी लगाकर कज्जली आदि औषधि डालें। पश्चात् चूल्हे पर चढ़ा लोहे की या ताँबे की शलाका से सम्हालपूर्वक चलावें और बेर की लकड़ी के निर्धूम कोयलों की मंद आँच पर पिघलाकर रस करें। फिर जमीन पर गोबर फैला, ऊपर केले के पत्ते बिछा उस पर तैयार किया हुआ रस डाल, एक केले का पत्ता ढक, उसके ऊपर और गोबर डालकर दबा देवें। थोड़े समय बाद शीतल होने पर पर्पटी को निकाल लें। कलछी में शेष कठिन भाग लगा रह जाय उसे ग्रहण न करें। पर्पटी का रङ्ग मयूरशिखा के समान श्याम हो जाय, वह उत्तम मानी जाती है।

श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य के मतानुसार चूल्हे पर एक तवा रखें; उस पर एक अंगुल मोटा बालु का स्तर बिछावें, उस पर कड़ाही रखें व पिघला कर उक्त विधि से पर्पटी बनावें। इस तरह पर्पटी बनाने पर गुण अधिक करती है।

पर्पटी बनाने में मृदु, मध्यम और खर तीन प्रकार के पाक होते हैं। मुदु बनने पर बिखर जाती है और अच्छी रीति से नहीं टूटती। मध्यम पाक होने पर चमकदार चांदी के समान टुकड़े बन जाते हैं। खर पाक हो जाय तो रूक्ष, चिकनी और कुछ ललाई युक्त दीखती है, और मध्यम पाक में पारद दृष्टिगोचर होता है, किन्तु खर पाक होने से पारद कुछ अंश में उड़ जाता है, और शेष रहता है, वह भी सदोष होता है। अत: मृदु और मध्यम पाक युक्त का सेवन करना चाहिये और खरपाक को विष समान मानकर त्याग देना चाहिये। इसी कारण से कलछी में शेष लगी हुई खर पाक वाली पर्पटी का त्याग करने का विधान किया है।

पर्पटी सेवन में अपथ्य–पारद मिश्रित पर्पटी सेवन करने वाले को तीक्ष्ण वायु, धूप, क्रोध, मानसिक चिन्ता, आहार के समय की विषमता, व्यायाम, अत्यन्त परिश्रम, स्नान और अत्यन्त बोलना, ये सब अहितकारक हैं। पके हुए केले के फल, वक्कल और जड़, नीम आदि सम्पूर्ण कड़वे पदार्थ, गरम, आनूप, देश के जीवों का माँस तथा जलचर जीवों का मांस, पक्षियों का माँस, मछली, काली मछलियों में गड़क नामक

मछली, खट्टे पदार्थ, दही और शाक आदि पदार्थ भक्षण नहीं करने चाहिए। पर्पटी का सेवन करते हुए स्त्रियों से प्रेमवार्ता भी नहीं करनी चाहिए एवं गुड़, खांड, ईख रस के बने हुए पदार्थ, ईख (गन्ने), करेले के पत्ते, फल और बेल आदि नहीं खाने चाहिये।

पर्पटी सेवन करने के समय अन्न और नमक का सेवन न किया जाये तो अच्छा। यदि ऐसा न हो सके तो नमक मिश्रित भोजन २ घण्टे तक नहीं करना चाहिये। सैंधा नमक मिश्रित मट्ठे के लिए अधिक बन्धन नहीं हैं, तथापि अनुपान रूप में मट्ठा लेना हो तो उसमें नमक न मिलाया जाय, तो अच्छा है, क्योंकि पारद नमक के साथ संयोग होने पर पारद लवण (मर्करी क्लोराइड) बनकर हानि पहुँचाता है या योग्य लाभ नहीं पहुँचा सकता।

पर्पटी सेवन में पथ्य-(जो अन्न का त्याग नहीं कर सकते उनके लिये) थोड़े घी, जीरे, धनिये और अन्यान्य मसालों के द्वारा सिद्ध किये हुये, सैंधा नमक मिले हुये व्यंजनादि, पुराने शालि चावलों का भात, काले बेंगन, पाढ़ के पत्तों का शाक, बथुआ, साबुत मूंग, केले के पत्ते, परवल, सुपारी, अदरख, मकोय के पत्तों का शाक, लवा, बतक, तीतर और मोर का माँस, मुद्गर, रोहित और काली मछली, समभाग जल मिलाकर सिद्ध किया हुआ दूध, ये सब पदार्थ हितकारी हैं।

पर्पटी सेवन काल में ब्रह्मचर्य का आग्रहपूर्वक पालन करना चाहिये। शराब, सिगरेट, चाय आदि का व्यसन हो तो जितना हो सके उतना कम या बिल्कुल बन्द कर दें। चाय पीना हो, तो ठण्डी करके ही पीवें। व्यसन का त्याग हो सके, तो विशेष हितावह माना जायगा। रोगी पूर्ण विश्रांति ले, तो लाभ जल्दी पहुँचता है।

इस पर घृत थोड़ा खाना चाहिये और पथ्य में यथेच्छ सात्विक आहार देना चाहिये। भूख लगने पर अवश्य भोजन करें। यदि आधी रात को भूख लगे तो उस समय भी दूध देना चाहिये। बहुत क्या कहें, रोगी को जब-जब भूख लगे तब ही निर्भय होकर बार-बार दूध पिलावें। कदाचित् भोजन के समय का उल्लंघन होने से ज्वर या विरेचन हो जाय तो समभाग अथवा अधिक जल मिलाकर सिद्ध किया हुआ दूध पिलाना चाहिये। वमन होने पर नारियल का जल या दूध देवें। स्वप्न में वीर्यपात हो जो जाये तो दुग्धपान करावें।

भूख उत्पन्न हुई है या नहीं, इसकी परीक्षा इस प्रकार करनी चाहिये। जब शरीर शक्तिहीन हो, मस्तक में शूल और झनझनाहट आदि लक्षण उपस्थित हों तब निश्चय ही भूख लगी समझनी चाहिये।

(१) रस पर्पटी

विधि-शुद्ध पारद और शुद्ध आँवलासार गन्धक दोनों ५-५ तोले मिला कज्जलीकर लोहे की कड़ाही या कलछी में डालकर ऊपर लिखी विधि से पर्पटी बना लें। (र.का.)

वक्तव्य-आचार्यों ने गन्धक को भाङ्गरे के रस में ७ दिन तक मर्दन करा, रोज सूर्य के ताप में सुखा लेने का विधान किया है। एवं शुद्ध अष्ट संस्कारित पारद को भी जयन्ती (मतान्तर में जयापत्र-भांग, एरण्ड पत्र) भृङ्गराज और काकमाची, इनके रस से ३-३ दिन तक स्वेदन करावें। फिर पारद, गन्धक को मिलाकर विधिवत् कज्जली करके पर्पटी बनावें।

मात्रा-१ से ३ रत्ती तक, ३ बार, शक्ति अनुसार धीरे-धीरे बढ़ा कर शहद या हींग और जीरे के साथ या घृत अथवा दूध के साथ देवें। जल के बदले में दूध ही दें, तथा नमक, जल और अन्न छुड़ा दें। अति तृषा लगती रहे तो, जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलावें। पर्पटी के बाद सुपारी का टुकड़ा खिलावें। इस रीति से ४० दिन तक सेवन कराना चाहिये। लक्षण और उपद्रव भेद से एवं दूध अनुकूल न हो ऐसे रोगियों को दुग्ध कल्प के स्थान पर तक्र कल्प का सेवन भी करा सकते हैं।

उपयोग-संग्रहणी, अन्त्रव्रण, अन्त्रशोथयुक्त अतिसार, अपचन, शूल, बवासीर आदि रोगों का शमन करती है।

जब पित्तस्राव कम होने से भोजन का परिपाक ठीक नहीं होता, या अन्तड़ी में शोथ होने से बार-बार थोड़े पतले दस्त होते रहते हैं, जिनमें कुछ अंश अपक्व अन्न का होता है, पाचन क्रिया विकृत हो जाती है, दस्त में अम्ल या पूतिगन्ध होती है, रोगी की जिह्वा पर श्वेत मल की तह आ जाती है, जिह्वा की किनारी लाल होती है, पचनेंद्रिय संस्थान दूषित हो जाता है, तब रस पर्पटी विशेष हितकर होती है।

गर्मी के दिनों में, दूध जल्दी विकृत हो जाता है। ऐसा विकृत दूध पिलाने पर बालक के उदर में कृमि उत्पन्न होकर अतिसार हो जाता है। दस्त चांवलों के धोवन या खड़िया मिट्टी के सदृश होता है, क्वचित् वमन भी होता है, ज्वर बहुधा नहीं होता। ऐसे लक्षण प्रतीत होने पर बालसंजीवन रस अति हितकर है। परन्तु जब बालसंजीवन से लाभ नहीं पहुँचता तब रस पर्पटी दी जाती है, यदि बालकों को प्रवाहिका रोग होता है, तो बालसंजीवन रस काम नहीं दे सकता। ऐसे समय पर बालअतिसारहर चूर्ण के साथ रस पर्पटी ही लाभ पहुँचाती है।

यदि अतिसार में कृमिका अनुबन्ध हो तो पहले कृमिघ्न औषध और एरण्ड तैल देकर कोष्ठ शोधन करना चाहिये। फिर रसपर्पटी देने से सत्वर लाभ पहुँचता है।

जीर्ण अतिसार रोग में अन्त्र की ग्राही शक्ति अति न्यून हो जाती है, ऐसे समय पर अफीम या अन्य स्तम्भक औषधि द्वारा अन्त्र की श्लैष्मि कला को काम चलाऊ शक्ति देने या मल को रोकने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार की औषधियों की क्रिया अस्थिर होने से सच्चा ला नहीं होता। क्वचित् थोड़े ही समय में अतिसार प्रबल वेगपूर्वक फिर हो जाता है। किन्तु रसपर्पटी देने से अन्त्र की शक्ति की वृद्धि होक रोग निर्मूल हो जाता है।

उपदंश रोग में उपद्रव रूप से अतिसार हो जाता है; ऐसे रोगियों के लिए केवल अतिसार की चिकित्सा करने से रोग-निवृत्ति नहीं होती उपदंश के विष को भी नष्ट करना चाहिए। ये दोनों कार्य रस पर्पटी के योग से उत्तम प्रकार से होते हैं। अन्त्र में शोथ होने पर एक प्रक का विष प्रकोप होकर ज्वर उपस्थित होता है। उस ज्वर में समान वायु प्रकुपित होता है। ज्वर आने के पश्चात् सब अवस्था पूर्ण होने में से ६ सप्ताह लगते हैं। उस विकार में आगे शोथ की कमी होकर अन्त्रव्रण हो जाते हैं। ऐसे ज्वर का आन्त्रिक ज्वर (मधुरा) के भीतर अनेकां में साम्यता है। इस प्रकार के ज्वर में महत्व का लक्षण अतिसार है। यह अतिसार अति त्रासदायक और दीर्घकाल स्थायी होता है। बार-बा बड़े-बड़े दस्त लगते रहते हैं। दस्त का रंग सफेद या पीला सा होता है। ऐसे अतिसार पर रस पर्पटी उत्तम कार्य करती है। रस पर्पटी सेवन से शोथ कम होता है; व्रण भर जाते हैं, गुदा में फटी हुई त्वचा आदि की विकृति दूर होती है, विष नष्ट होता है, तथा समान वा का साम्य होकर अनुलोम होता है। (औ.गु.ध.शा.)

जीर्ण अतिसार में रसपर्पटी, जातिफलादि चूर्ण और लघु गंगाधर चूर्ण मिलाकर दिन में ३ बार देते रहने से थोड़े ही दिनों में अच्छा प पहुँच जाता है।

जीर्ण आमातिसार पर रसपर्पटी, लघु गंगाधर चूर्ण, हिंग्वष्टक चूर्ण और कूड़े की छाल के चूर्ण के साथ मिलाकर दिन में तीन बार म के साथ देते रहने पर आमोत्पत्ति कम होकर पचन-क्रिया बलवान् बन जाती है।

सूचना–रसपर्पटी, पित्तप्रकोपजनित रोगों के अनुकूल नहीं रहती। कारण यह स्वयं पित्तवर्द्धक है। इस पर्पटी के सेवन काल में विदा पदार्थ तैल, केला और स्त्री सेवन आदि का आग्रहपूर्वक त्याग करना चाहिये। तथा जो इस प्रकरण के प्रारम्भिक वक्तव्य के भीतर पथ्यापथ्य लिखा है, यदि उसका आग्रहपूर्वक पालन किया जाय तो लाभ अधिक पहुँचता है।

(२) सुवर्ण पर्पटी

विधि–शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले और सुवर्ण भस्म या सुवर्ण के वर्क एक तोला लेवें। पहिले पारद और सुवर्ण के वर्क को मिला नींबू के रस में ६ घण्टे खरलकर गरम जल में ३ समय धो लेवें। फिर गन्धक मिलाकर कज्जली करें। सुवर्ण भस्म मिलाना हो तो पारद गन्धक की कज्जली के साथ मिला लेवें। पश्चात् कड़ाही में थोड़ा घी डालकर उपरोक्त विधि से पर्पटी बना लेवें। (र.चं.)

पारद के स्थान पर रससिंदूर मिलाया जाय तो सुवर्ण पर्पटी का वर्ण रक्त होता है। मल में श्वेत वर्ण और दुर्गन्ध होने पर यकृत् का स्राव अधिक कराना इष्ट हो तब रससिंदूर वाली पर्पटी विशेष हितावह है, किन्तु शुष्क कास हो तब इसे न दें।

मात्रा–१ से २ रत्ती दिन में २ समय, त्रिकटु और शहद के साथ देवें। मात्रा २ रत्ती तक शनैः शनैः बढ़ानी चाहिये। संग्रहणी में प्रवालपंचामृत २-२ रत्ती और त्रिकटु-शहद के साथ या दाड़िमावलेह के साथ।

उपयोग–यह पर्पटी पित्तशोधक, कीटाणुनाशक और बलवर्द्धक है। सब प्रकार की संग्रहणी, शोष-क्षय, कास, श्वास, प्रमेह, शूल, अतिसार मन्दाग्नि और पाण्डु रोग का नाश करके जठराग्नि को प्रदीप्त करती है, और बल-वीर्य बढ़ाती है।

पर्पटी कल्प में सुवर्ण पर्पटी अति महत्व की अग्रगण्य औषधि है। **बिल्कुल अस्थिपंजर और मरणोन्मुख रोगियों को भी यह स्वस्थ बना है। सुवर्ण पर्पटी के साथ में दूध विशेष लाभदायक है।**

जिस जीर्ण और त्रासदायक अतिसार में उदर के भीतर पीड़ा नहीं होती, परन्तु नल को खोलने पर जिस तरह जल की धारा गिरती है उस तरह बड़े-बड़े दस्त लगते रहते हैं, शौचकाल में बल नहीं लगाना पड़ता, एक साथ घड़ा खाली करने सदृश जुलाब दिन में ४-५ बार होते रहते हैं। उस अतिसार में अन्त्र की ग्राहक-शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाती है, तथा यकृत् रस और अन्त्र रसस्राव में अधिक होते हैं। रोगी अतिशय क्षीण, कृश, दुर्बल, केवल अस्थिपंजरवत् बन जाता है। बोलने की शक्ति भी नहीं रहती, एवं बलमाँस विहीनता की अत्यन्तावस्था होती है। ऐसी अवस्था में भी सुवर्ण पर्पटी जादू सदृश कार्य करती है। ऐसे अनेक रोगियों का प्राण इसने बचाया है।

ऐसे अतिसार से उत्पन्न उपद्रव रूप कास, श्वास, पाण्डुता, हिक्का या केवल निर्जन्तुक अनुलोम-प्रतिलोम क्षय जिसमें क्रमशः रसधातु से शुक्रपर्यन्त या शुक्र से रसपर्यन्त धातुएँ क्षीण होती हैं। इन सब पर यह पर्पटी अच्छी उपयोगी है। सुवर्ण पर्पटी देने योग्य रोगियों की मानसि स्थिति का केवल विचार करना चाहिये। मानसिक स्थिति अविकृत हो, तो सुवर्ण पर्पटी निःसन्देह लाभ पहुँचाती है।

संग्रहणी-अनुलोमक्षय में विशेषत: जिह्वा से लेकर गुदनलिका पर्यन्त समस्त पचनेन्द्रिय संस्थान की श्लैष्मिक कला पर सूक्ष्म-सूक्ष्म स्फोट हो जाते हैं। ये स्फोट विस्फोट सदृश तीव्रतर नहीं होते, किन्तु इससे विलक्षण प्रकार के सौम्य होते हैं। इस हेतु से रोगियों को बड़े सफेद रंग के और गरम-गरम दस्त लगते हैं। जिह्वा का स्वाद नष्ट हो जाता है, जिह्वा लाल कांटे वाली हो जाती है। कितने ही रोगियों की जिह्वा फटी-सी भासती है। जिह्वा के नीचे के हिस्से में, गाल, कण्ठ और समस्त मुँह के भीतर त्वचा लाल हो जाती है। नमक या जल का स्पर्श भी सहन नहीं होता। कईयों को लार अधिक निकलती है। कुछ काल तक मुखपाक होता है, फिर अच्छा हो जाता है। ऐसा क्रम, विष शेष रहे; तब तक वर्षों पर्यन्त चलता है। मुखपाक शमन होने पर दस्त भी न्यून हो जाते हैं, और रोग निवृत्त होने का भ्रम हो जाता है। परन्तु किञ्चित् निमित्त कारण मिलने पर पुन: समस्त लक्षण पूर्ववत् प्रकट होते हैं। इस रोग में अन्न का रस ही अच्छा नहीं बनता, जो बनता है, उसका भी संशोषण आमाशय और अन्त्र स्फोटयुक्त होने से यथोचित् नहीं होता। इस हेतु से योग्य पोषण के अभाव में रोगी दिन-प्रतिदिन कृश, अनुत्साही और निस्तेज होता जाता है।

इस व्याधि के मुख्य कारण विषयक विद्वानों में मतभेद है। कितने ही विद्वानों की मान्यता अनुसार इसका कारण यकृत् के पित्तस्राव की विकृति है। इस हेतु से आधुनिक विद्यावाले गोरोचन, मत्स्य पित्त या बैल के पित्त को दही मट्ठे के साथ देते रहते हैं।

आयुर्वेद के मतानुसार किसी भी रोग में इस तरह के रासायनिक द्रव्य की अपेक्षा उसके उत्पादक और नियामक त्रिधातु और त्रिदोष को विशेष महत्व दिया है। इस दृष्टि से यकृत् का पित्तस्राव कम होने या अन्य उत्पत्ति अनुरूप अन्त:स्राव की न्यूनता होने से अन्त्र में विकृति हुई हो, उस तरह मान लें, तो भी आयुर्वेद की दृष्टि अनुसार यह स्थिति पित्तदोष से मानी है। जब पित्तदोष की दुष्टता दूर हो, और पित्त का सम्यक् नियमन होकर उसके बढ़े हुए अम्लत्व, उष्णत्व और द्रवत्व गुण न्यून हों तब यह व्याधि स्वयमेव शमन होती है। यह महत्व का कार्य सुवर्ण-पर्पटी करती है। किन्तु यकृत् या अन्य पित्त स्थान के मन्दत्व के हेतु से उस स्थान से अन्त्र में पित्तस्राव ही कम जाता हो, तो पंचामृत पर्पटी देना चाहिये।

अन्त्र में क्षय के कीटाणुओं की उत्पत्ति हो, तो हाथ-पैंरों पर शोथ आ जाता है। कास, श्वास आदि उपद्रव होते हैं तथा शरीर कृश और निस्तेज बन जाता है। ऐसे संग्रहणी अनुलोमक्षय और प्रतिलोमक्षय में मानसिक अवस्था अधिकृत है तो इस पर्पटी के सेवन से अवश्य लाभ पहुँचता है। अनुपान रूप से दाड़िमावलेह देवें।

यह सुवर्ण पर्पटी शीतल होने से पित्त प्रधान विकार में अच्छा काम देती है। जब यकृत् में से पित्त की उत्पत्ति पूरी होने पर भी स्राव न्यूनाँश में होता हो, अथवा अन्य अन्त:स्राव की न्यूनता से अन्त्र में विकृति उत्पन्न हुई हो; मल बहुत ज्यादा परिमाण में एक साथ निकलता हो और दस्त की संख्या अधिक न हो तब सुवर्ण पर्पटी पित्त धातु को प्रकृतिस्थ (नियमित) बनाने के लिये महत्त्व का कार्य करती है।

सुवर्णप्रधान इस रसायन में संग्रहणी के अतिरिक्त पित्तज प्रमेह, पाण्डु, पित्तप्रधान उदरशूल, उन्माद, शोष, राजयक्ष्मा आदि रोगों में लाभ होता है। इसका सविस्तार वर्णन सुवर्ण भस्म में किया है।

अन्त्रक्षय के रोगी को ज्वरसह मुखपाक रहता हो, खट्टी डकारें आती रहती हों, तो सुवर्ण पर्पटी के साथ यशद भस्म, अतीस का चूर्ण तथा लवंग चतु:सम चूर्ण (लवंग, जायफल, जीरा और सोहागे का फूला) मिलाकर देना चाहिये।

ग्रहणी में क्षत (Duodenal Ulcer) होने पर विशेषत: पित्तज परिणामशूल उत्पन्न होता है। फिर भोजन के ३-४ घण्टे बाद वान्ति हो जाती है। वान्ति अति खट्टी होती है, तृषा अधिक लगती है, वान्ति होने पर फिर दर्द नहीं रहता, शौच शुद्धि नहीं होती, अन्त्र में क्षत हो जाने के बाद उदर पर दबाने में व्यथा होती है, जिह्वा लाल होती है, नेत्र पीले भासते हैं। उस विकार पर सुवर्ण पर्पटी, कामदुधा रस और संगजराहत भस्म मिलाकर दिन में ३ बार देते रहने तथा कब्ज रहे, तो स्वादिष्ट विरेचन का उपयोग करते रहने पर रोग निवृत्त हो जाता है। यदि उदर में वात संचय होता हो, तो बबूल के कोयले की काली राख ४ रत्ती मिला देना चाहिये।

(३) ताम्र पर्पटी

विधि-शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले और ताम्रभस्म २ तोले लेवें। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर ताम्रभस्म मिला, यथाविधि रस करके पर्पटी बना लेवें। (र.यो.सा.)

ग्रन्थकार ने ताम्र पर्पटी तैयार होने पर भाँगरे का रस, अडूसे के पत्तों का रस, त्रिकटु का क्वाथ, त्रिफला का क्वाथ, अदरक का रस, सहिंजने के मूल का क्वाथ, तेजपात का क्वाथ, कटेली का रस, बच्छनाभ का क्वाथ और चन्दन का क्वाथ इनकी ७-७ भावना देने को लिखा है। रोगानुरूप भावना देकर प्रयुक्त करें, तो लाभ सत्वर पहुँचता है।

मात्रा-१ से २ रत्ती, दिन में ३ समय।

अनुपान–ग्रहणी रोग में सेका हुआ जीरा ४ रत्ती, धोयी भांग १ रत्ती, छोटी इलायची का चूर्ण २ रत्ती मट्ठे के साथ दें। उदरशूल पर एरण्ड तैल के साथ। कुष्ठरोग में खैर के क्वाथ के साथ। अर्शरोग में नागकेशर के चूर्ण, मक्खन और मिश्री के साथ।

उपयोग–यह पर्पटी संग्रहणी, प्लीहावृद्धि, यकृतवृद्धि, वातश्लेष्मज्वर, सन्निपात, वृक्कशूल, वातरक्त, कुष्ठ, वातपित्त प्रकोप, शोथ, मन्दाग्नि, अतिसार, पाण्डु आदि रोगों का नाश करने में हितकर है।

इस ताम्र पर्पटी में ताम्रभस्म प्रधान है। ताम्र का असर विशेषतः यकृत् प्लीहा और मूत्रपिण्ड पर होता है, जिससे उन पिण्डों की विकृति से हुए रोगों में ताम्र पर्पटी लाभ पहुँचाती है। एवं पित्तविसर्जन क्रिया में प्रतिबन्ध होने के कारण उत्पन्न होने वाले अतिसार, संग्रहणी आदि रोगों में ताम्र पर्पटी विशेष लाभदायक है। इस पर्पटी में विशेष गुण ताम्र का है। उसका वर्णन ताम्र भस्म में पहिले हो गया है।

क्वचित् यकृद्वृद्धि जीर्ण होने पर त्रासदायक अतिसार होने लगता है, ऐसे समय पर यकृद्वृद्धि और अतिसार, दोनों को दूर करने का कार्य ताम्र पर्पटी के सेवन से होता है।

(४) विजय पर्पटी

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और ताम्रभस्म ४-४ तोले और शुद्ध बच्छनाभ १ तोला लेवें। पहिले पारद गन्धक की कज्जली करें। पश्चात् ताम्रभस्म और बच्छनाभ का चूर्ण कर मिला गोघृत मे कल्क बना, लोहे की कलछी में मन्दाग्नि पर रस करें। रस रक्त-वर्ण का होने पर केले के पत्ते पर डालकर पर्पटी बना लेवें। इस रसायन को अन्य ग्रन्थकार ने ''महाविजय पर्पटी'' कहा है। (र.का.)

मात्रा– १/२ रत्ती से १ रत्ती, दिन में २ से ३ बार।

अनुपान–ग्रहणी रोग में पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल तथा सोंठ) और शहद। राजयक्ष्मा में शहद-पीपल। शूल में एरण्डी का तैल। उदरवात पर घींकुवार का रस। सन्निपात में अदरक का रस, पाण्डु में त्रिफला का जल। दाद में बावची का रस, प्रमेह में त्रिफला और शहद। कुष्ठरोग में खदिर की छाल का क्वाथ।

उपयोग–यह पर्पटी सन्निपात में उष्णता, रक्त के दबाव की वृद्धि (H.B.P.) नाड़ी की गति बढ़ना, अतिसार, बेहोशी, आदि प्रकोपों को दूर करके तुरन्त रोग को शमन करती है। ऐसे ही ग्रहणीशूल, उदरवात, प्रमेह और कुष्ठ आदि रोगों को दूर करती है।

उपरोक्त ताम्र पर्पटी का गुण इस पर्पटी में है, और बच्छनाभ के गुण-शरीर में से दोषों को प्रस्वेद और मूत्र द्वारा बाहर निकालना, वेदना शमन करना, नाड़ी की बढ़ी हुई गति को कम कर देना इत्यादि वे इस पर्पटी मे सम्मिलित होते हैं। मन्दाग्नि और यकृत्, प्लीहा, मूत्रपिण्ड आदि की विकृति के बाद में ज्वर सहित अतिसार या ग्रहणी रोग उत्पन्न हुआ हो, ऐसे समय विजय पर्पटी रोग को यथा शक्य तुरन्त नष्ट करती है।

यदि यकृत् और प्लीहा की विकृति के बाद फुफ्फुस विकृत होकर राजयक्ष्मा हुआ हो तो पर्पटी मूलकारणरूप इन स्थानों को सशक्त बनाकर और ज्वर को दूर करके राजयक्ष्मा का शमन करती है एवं यकृत् प्लीहा की विकृति से चलने वाले शूल, उदरवात, पाण्डु और कफज प्रमेह तथा कुष्ठ आदि रोगों को भी नष्ट करती है।

सूचना–ताम्र भस्म और बच्छनाभ दोनों अधिक परिमाण में होने से बहुत कम मात्रा में इस पर्पटी का उपयोग करना चाहिये।

(५) लोह पर्पटी

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और लोहभस्म तीनों को समभाग लेवें। पारद गन्धक की कज्जली करके लोह भस्म मिलावें। पश्चात् पूर्वोक्त रीति से पर्पटी बना लेवें।

यदि लोह पर्पटी में गन्धक द्विगुण लिया जाय तो पर्पटी अधिक सौम्य बनती है। वह प्रसूता और छोटे बालकों के लिये विशेष उपकारक है। (भै.र.)

मात्रा–१ से ३ रत्ती, दिन में ३ समय, जीरे के चूर्ण और मट्ठे के साथ या धनिये, जीरे के क्वाथ से दें। मात्रा १ रत्ती से प्रारम्भ कर शनैःशनैः बढ़ावें।

उपयोग–यह पर्पटी संग्रहणी, अतिसार, पाण्डु, कामला, आमवात, कुष्ठ, शूल, प्लीहावृद्धि, आमाशय की निर्बलता, मन्दाग्नि, उदावर्त, शोथ और स्त्रियों के प्रसूति रोग में संग्रहणी व अतिसार को दूर करती है।

लोह पर्पटी में रस पर्पटी और लोह भस्म के गुण मिले हुए हैं। लोहभस्म का मुख्य गुण रक्ताणुओं को बढ़ाने का है। यह रस पर्पटी की अपेक्षा इसमें लोह अधिक है। लोह पर्पटी पाण्डु रोगी को विशेष अनुकूल रहती है। जब ग्रहणी रोग के साथ प्लीहावृद्धि, पाण्डु रोग, कामला या रक्त में रक्ताणु की न्यूनता हो, तब यह लोह पर्पटी अच्छा काम देती है। दीपन-पाचन गुण होने से यह पर्पटी मन्दाग्नि, आमवात,

शूल, पित्तज प्रमेह और उदरवात आदि रोगों का भी शमन करती है। रक्त में रहे हुए दूषित अणुओं का नाश करके शुद्ध रक्ताणु को बढ़ाती है। इस हेतु से पित्तप्रधान कुष्ठरोग में भी लाभ पहुँचाती है, और शोथ दूर होता है एवं यह पर्पटी प्रसूता के जीर्ण या मन्द ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, आमशूल, प्लीहावृद्धि, यकृत्वृद्धि, पाण्डु, मन्दाग्नि, अम्लपित्त, आमवात इत्यादि को भी दूर करती है।

(६) बोल पर्पटी

विधि–शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गंधक २ तोले और बीजाबोल (या हीरा दोखी गोंद) ४ तोले लेवें। बीजाबोल को थोड़ा दूध का हाथ (मूण) लगालें। फिर कलछी में कज्जली का रस बना, बोल का चूर्ण मिलाकर तुरन्त केले के पत्तों पर पर्पटी बना लेवें। एक आध मिनट देरी होगी, तो बोल जलकर पर्पटी न्यून गुणयुक्त बन जायगी। दूध न लगाने पर पर्पटी कठोर बनती है और बोल का सत्व भी कुछ जलता है। (यो.र.)

वक्तव्य–रसयोगसागरकार ने 'रक्तारि रस' का पाठ लिखा है। उसमें भी पारद गन्धक और बोल यह ३ औषधियां हैं। इसके अनुवाद के अन्त में बोल को बीजाबोल की अपेक्षा बीजक निर्यास (हीरा दोखी गोंद, खूनखराबा Kino) को लेना विशेष हितावह माना है। हीरादोखी रक्तस्राव का रोध करने में आशु फलदायी है।

मात्रा–२ से ८ रत्ती मिश्री और शहद, मक्खन-मिश्री, गुलकन्द, अशोकारिष्ट या अन्य रोगानुसार अनुपान के साथ दिन में २ से ३ समय देवें। मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये।

उपयोग–यह बोल पर्पटी बोलबद्ध रस की अपेक्षा रक्तातिसार, रक्तपित्त, रक्तार्श (खूनी बवासीर) रक्तप्रदर, अत्यार्त्तव आदि रोगों में रक्तस्राव बन्द करने के लिये सत्वर लाभ पहुँचाती है। बोल पर्पटी के प्रयोग से रक्तवाहिनियां संकुचित होती है; जिससे रक्तपित्त, उर:क्षत, अर्श और स्त्रियों के रक्तप्रदर आदि रोगों में भी रक्त को बन्द करने के लिये इस पर्पटी के साथ अकीकपिष्टी और तृणकान्तमणिपिष्टी मिला देने से विशेष लाभ होता है।

कई चिकित्सक बोल पर्पटी में बीजाबोल के स्थान पर हीरादोखी गोंद (खून खराबा) लेते हैं। हीरादोखी मिलने पर रक्तस्राव सत्वर रुक जाता है।

दूसरी विधि–शुद्ध पारद २ तोले और शुद्ध गन्धक २ तोले मिलाकर कज्जली करें। कज्जली को कलछी में डाल रसकर काले बोल (एलुवा) का चूर्ण ४ तोले मिला तुरन्त केले के पत्ते पर डालकर दबा देवें। (औ.गु.ध.शा.)

मात्रा–१ से ६ रत्ती दिन में २ बार शहद और घी या शहद और मिश्री के साथ दें, या मुनक्का में रख निगलवा देवें।

उपयोग–यह पर्पटी स्त्रियों के दूषित रक्त का स्राव करा गर्भाशय को शुद्ध और बलवान् बनाती है। यद्यपि गर्भाशय में से रक्तस्राव कराने के लिये कपासमूलत्वक् का क्वाथ या अरिष्ट दिया जाता है; परन्तु कपासमूलत्वक गर्भाशय को उत्तेजित करके उसमें से रक्तस्राव कराता है; परन्तु वह रक्तस्राव स्वयमेव बंद नहीं होता। यह दोष इस पर्पटी में नहीं है। यह पर्पटी दूषित रक्त का स्राव करा फिर स्तम्भन क्रिया भी कराती है। इस हेतु से इसके प्रयोग में रक्तस्राव का अतिरेक नहीं होता।

इस पर्पटी में पित्त स्थान में से पित्त का सम्यक् विसर्जन कराने का गुण है। इस हेतु से यकृत् पित्त का स्राव सम्यक् न होने से उत्पन्न होने वाले अतिसार, आनाह आदि विकार तथा आमाशय में पित्त स्राव योग्य न होने से उत्पन्न अपचन आदि विकारों को यह दूर करती है।

जिस तरह यकृत् की निर्बलता से उत्पन्न विविध व्याधियों में यह पर्पटी लाभ पहुँचाती है; उस तरह अन्त्रस्थ वातवाहिनियों को भी शक्ति प्रदान कर पुर:सरण क्रिया को उत्तेजित कराती है। इस हेतु से कोष्ठबद्धता में यह पर्पटी अच्छा कार्य करती है। विशेषत: उपदंशज बद्धकोष्ठ पर अच्छा गुण दर्शाती है।

इसके अतिरिक्त यह गर्भाशय को सबल बनाती है। अत: गर्भाशय विकृति और तरुण स्त्रियों को होने वाले हारिद्रक और हलीमक पाण्डु में उपयोगी है एवं नष्टार्त्तव और पीड़ितार्त्तव में भी इस बोल पर्पटी से अच्छा लाभ होता है। (औ.गु.ध.शा.)

(७) पंचामृत पर्पटी

विधि–शुद्ध पारद, लोह भस्म, अभ्रक भस्म और ताम्रभस्म २-२ तोले और शुद्ध गन्धक ८ तोले लें। सबको मिला, कज्जली कर यथाविधि पर्पटी बना लें।
(यो.र.)

मात्रा–१ से ३ रत्ती दिन में २ से ३ बार, कूड़े की छाल, पीपल के चूर्ण और शहद के साथ मिलाकर चाटें या भूनी हींग, सैंधानमक और जीरे के साथ देवें। अन्त्रक्षय में आध-आध रत्ती जसद भी मिलाते रहें मात्रा १ रत्ती से आरम्भ करके धीरे-धीरे बढ़ावें।

सूचना–कोमल प्रकृति वालों को मात्रा न बढ़ावें एवं जिनको मट्ठा अनुकूल न हो उनको पंचामृत पर्पटी का सेवन नहीं करावें।

उपयोग–यह पर्पटी आम और रक्तयुक्त प्रवाहिका, संग्रहणी, अतिसार, अग्निमांद्य, वमन, बवासीर, ज्वर, कृमि, सूजन, क्षय, पाण्डु, अम्लपित्त और प्रसूता स्त्रियों के ताप, अतिसार, संग्रहणी, शिरदर्द और सूजन को दूर करती है।

सब कज्जली युक्त पर्पटियों में पञ्चामृत पर्पटी श्रेष्ठ है। इस पर्पटी के कार्य मध्यकोष्ठ में पचनेन्द्रिय को शक्ति देना, अंतड़ी के दोष नाश करना और जन्तुघ्न, ये तीनों प्रकार के हैं। इसका वियोजन भिन्न-भिन्न स्थानों में होता है। ग्रहणी में थोड़े भाग का शोषण होने से तत्रस्थ उपताप का शमन होता है। कुछ भाग यकृत् और पक्वाशय में शोषण होकर लाभ पहुँचाता है। इनमें से ताम्रभस्म विशेषतः यकृत् में जाकर अपना कार्य करती है, और लोहभस्म पक्वाशय में स्तम्भक और शक्तिदायक असर पहुँचाती है। पारद गन्धक और लोह का कार्य बृहदन्त्र की शक्ति बढ़ाने के लिए होता है। अभ्रक भस्म श्वसनेन्द्रिय, श्वासवह स्रोतस्, श्वासवह केन्द्र, धातुपरिपोषणक्रम और मनोदेश को लाभ पहुँचाती है।

पंचामृत पर्पटी पित्तप्रधान रोगों में भी दी जाती है। कारण, **ताम्र पित्त निःसरण करता है, और पित्तमार्ग का प्रतिबन्ध मिटाता है।** पित्तस्थान के मन्दत्व के हेतु से पित्त की उत्पत्ति और स्राव न्यूनांश में होता हो, तो पर्पटी विशेष हितकर है। जीर्ण संग्रहणी, जीर्ण क्षयजन्य अतिसार, जीर्ण अम्ल पित्त से उत्पन्न अतिसार और रक्तरहित अतिसार में रोगी की प्रकृति के अनुसार मट्ठे या दूध के साथ देने से रोग को शीघ्र मिटाती है।

क्षयजन्य जीर्ण अतिसार और जीर्ण संग्रहणी में पंचामृत पर्पटी का उत्तम उपयोग होता है। अति क्षीण हुए रोगियों को सुवर्ण भी दी जाती है। परन्तु सुवर्ण पर्पटी जब अधिक ज्वर न हो एवं रोगी की मानसिक अवस्था विचलित न हो, तब दी जाती है। केवल क्षयजन्य विष के हेतु से अन्त्र में विकृति होकर अतिसार उत्पन्न हुआ हो, फिर उससे रोगी अत्यन्त क्षीण हुआ हो और बलमांसविहीनता की प्राप्ति हुई हो तो सुवर्ण पर्पटी का उत्तम उपयोग होता है। सुवर्ण पर्पटी क्षय के विष की नाशक और स्तम्भक है। इसमें शोधन गुण बिल्कुल नहीं है। पञ्चामृत पर्पटी में कुछ अंश में शोधनगुण भी रहता है। यह गुण भी कोमल प्रकृति वालों पर प्रतीत होता है। अतः शोधन गुण की आवश्यकता होने पर पञ्चामृत पर्पटी दी जाती है।

पञ्चामृत पर्पटी का कार्य निर्जुन्तकरण, विषघ्न और धातु-परिपोषण क्रम को व्यवस्थित करने का है। इसी हेतु से फुफ्फुस, यकृत, अन्त्र तीनों स्थानों में से जहाँ क्षय विकृति हुई हो, वहाँ पर यह अपना लाभ पहुँचाती है। यदि यह विकृति जन्तुजन्य विष प्रकोप से हुई हो और समस्त शरीर में फैल गई हो उस हेतु से शरीर कृश हो तथा प्रबल अतिसार भी हो, तो सुवर्ण पर्पटी देनी चाहिये। सुवर्ण पर्पटी का कार्य विशेषतः अन्त्रविकृति पर होता है, और पञ्चामृत पर्पटी के कार्यक्षेत्र अन्त्र, यकृत और फुफ्फुस प्रदेश, ये तीन हैं।

संग्रहणी–अनुलोमक्षय की संप्राप्ति, यकृत के पित्त की उत्पत्ति न्यून होने या अन्त्र में पित्तस्राव न्यून होने से हुई हो, तो यह पर्पटी दी जाती है। जब संग्रहणी में दस्त सफेद रङ्ग का बाजरे के आटे के घोल सदृश, दुर्गन्धयुक्त होता हो और दस्त के समय अधिक किंछना पड़ता हो तथा मानसिक-आघात होने पर रोग बढ़ जाता हो, तो पञ्चामृत पर्पटी हितकारक है। **बड़े-बड़े जुलाब, क्षय के कीटाणु और बलमांसविहीनता आदि लक्षण हों तो सुवर्ण पर्पटी देनी चाहिये।**

वक्तव्य–पं. श्री यादवजी त्रिक्रमजी आचार्य ने लिखा है कि इस पञ्चामृत पर्पटी में वङ्ग भस्म और यशदभस्म २-२ तोले मिलाकर सप्तामृत पर्पटी बनायी है। वह पंचामृत पर्पटी से अधिक गुणकारी है। **अन्त्रक्षय में सप्तामृत पर्पटी अकेली या सुवर्ण पर्पटी के साथ मिलाकर देने से विशेष लाभ होता है। हमने भी इसका अनुभव किया है और अब रोगियों को सफलतापूर्वक देते रहते हैं।**

यदि अम्लपित्त के रोगी को पर्पटी देनी हो तो जहरमोहरा पिष्टी और द्राक्षावलेह मिलाकर देनी चाहिये। अधिक अग्निमांद्य हो, आमाशय का पचन कार्य अति कम हो तो पंचामृत पर्पटी के साथ एरण्ड ककड़ी सत्व (Papsin) मिला देने से लाभ पहुँचता है।

यदि संग्रहणी के रोगी को शीतसह ज्वर रहता हो, अति अशक्ति आगई हो, पचनशक्ति भी अतिमन्द हो तो पंचामृत पर्पटी के साथ अभ्रक भस्म, सप्तपर्णघन, एरण्ड ककड़ी का सत्व (Papsin) और जातिफलादि चूर्ण मिलाकर देनी चाहिये।

वातज ग्रहणी होने पर तालुशोष, चक्कर आना, अति निर्बलता, कानों में शब्द होना, हाड़-हाड़ दुःखना, शूल चुभाने समान वेदना, स्वादिष्ट भोजन की चाह होना, गुदा में काटने के समान पीड़ा होना, आफरा आना, झागयुक्त मल गिरना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस विकार पर पञ्चामृत पर्पटी को काला नमक मिले हुये मट्ठे के साथ देनी चाहिये।

दूसरी विधि–शुद्ध गंधक ८ गोले, शुद्ध पारद ४ तोले, लोहभस्म २ तोले, अभ्रक भस्म १ तोला और ताम्रभस्म ६ माशे लें। सबको यथाविधि मिला, कज्जलीकर पर्पटी बना लेवें।

(र.का.)

मात्रा–१ से ४ रत्ती। दिन में ३ समय, 'कूड़ाकी छाल, पीपल और शहद या शहद और गौघृत के साथ या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

१ रत्ती से आरम्भ कर मात्रा शनैःशनै बढ़ावें।

उपयोग–यह पर्पटी नाना प्रकार की ग्रहणी, अरुचि, दुष्ट बवासीर, वमन, जीर्ण अतिसार, ज्वरातिसार, रक्तपित्त, क्षय आदि रोगों को दूर करती है। यह वृष्य, हृद्य, आयुवर्द्धक वलीपलित नाशक और सब रोगों को दूर करने वाली है। अग्नि प्रदीप्त करती है; जिससे पुनः नूतन रोग की उत्पत्ति की शंका ही नहीं रहती।

पहिली विधि और दूसरी विधि में औषधियाँ समान हैं, केवल मात्रा में अन्तर है। पहली विधि में ताम्र अधिक होने से अधिक उष्ण है, इसमें ताम्र कम होने से यह सौम्य है। ग्रहणी में जब पित्त प्रवेश न्यून होता हो; मल का रंग श्वेत हो, यकृत, प्लीहा और वृक्कस्थान को अधिक बल देना हो, और पित्तस्राव अधिक कराना इष्ट हो तब पहली विधि वाली पर्पटी उपादेय है। जब इन कार्यों की आवश्यकता कम हो, मल में पीलापन हो; पित्त की अधिकता हो तथा हृदय पर उत्तेजक और बल्य असर एवं कफ निर्दोष कराने और रक्तवृद्धि की आवश्यकता विशेषांश में हो; तब यह दूसरी विधि उपयोगी है। इस रीति से अन्य रोगों के लिये भी किंचित् अन्तर पड़ता है।

(८) प्राणदा पर्पटी

विधि–शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, लौहभस्म, नाग भस्म, वंगभस्म, कालीमिर्च, शुद्ध बच्छनाभ प्रत्येक २-२ तोले और शुद्ध गन्धक १४ तोले लेवें। पारद, गन्धक की कज्जली के साथ और औषधियों के सूक्ष्म चूर्ण को मिला लोहे की कड़ाही में थोड़े घृत के साथ डालकर बेर के कोयलों की अग्नि पर रक्खें। सम्हालपूर्वक लोहाशलाका से चलाते रहें। रस होने पर पर्पटी बना लें। (नि.र.)

मात्रा–१/२ से १॥ रत्ती। शहद-पीपल या रोगानुसार अनुपान के साथ दें। ग्रहणी रोग में मात्रा १/२ रत्ती से आरम्भ करके शनैःशनै बढ़ावें किन्तु १॥ रत्ती से अधिक न बढ़ावें। कारण इसमें हृदय अवसादक बच्छनाभ मिला हुआ है।

उपयोग–प्राणदा पर्पटी, पाण्डु, प्रवाहिका, संग्रहणी, ज्वरातिसार, खांसी, क्षय, प्रमेह और मन्दाग्नि को दूर करती है।

यह पर्पटी आमपाचक, उष्ण, जन्तुघ्न और ज्वरहर है। आम कफ को जलाती है तथा नूतन उत्पत्ति को रोकती है, सेन्द्रिय विष को प्रस्वेद और मूत्र द्वारा बाहर निकालती है, अग्नि को प्रदीप्त करती है, तथा ज्वरातिसार, प्रवाहिका, कफ कास, क्षय रोग में अतिसार, अग्निमांद्य और कफ प्रमेह को नष्ट करती है।

आमाशयिक रस में जब लवणाम्ल (Acid Hydro Chloric) की उत्पत्ति कम हो जाती है, तब आमोत्पत्ति बढ़ जाती है। ऐसी अवस्था में अपथ्य भोजन, अधिक भोजन, देर से पचने वाला भोजन या भोजन पर भोजन किया जाये, तो आम की अधिक वृद्धि हो जाती है। फिर मल के साथ थोड़ा-थोड़ा आम निकलता रहता है और कुछ मल अन्त्र की दीवार के भीतर चिपकता रहता है। जब अन्त्र में आम का संग्रह बढ़ जाता है, तब द्रवाँश के शोषण में प्रतिबन्ध होता है। फिर द्रव अधिक हो जाने पर आमातिसार की संप्राप्ति हो जाती है। उस समय अरुचि, क्षुधानाश, व्याकुलता, उबाक, वमन (किसी को खट्टी वमन) और निद्रानाश आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। फिर आमोत्पत्ति को रोकने और अतिसार को दूर करने वाली औषधि दी जाती है। किन्तु बार-बार आहार-विहार में भूल होने पर रोग जीर्ण हो जाता है, और थोड़े-थोड़े दिन पर (आम का संग्रह होने पर) आक्रमण होता रहता है। ऐसी स्थिति में तक्र के अधिकारी को तक्र कल्प कराया जाता है तथा प्राणदा पर्पटी का सेवन चतुःसम चूर्ण (लोंग, जायफल, सौंठ और सोहागे का फूला) के साथ कराया जाता है।

यदि मुखपाक, अम्ल वान्ति, दाह आदि लक्षण हो, तो तक्र कल्प नहीं कराना चाहिये। दुग्ध कल्प कराना चाहिये। किन्तु प्रवाहिका हो, तो दुग्ध कल्प भी रोगी से सहन नहीं होता। ऐसी अवस्था में लघु भोजन के साथ २-४ मास तक प्राणदा पर्पटी का सेवन कम मात्रा में कराया जाता है। भोजन के पश्चात् दिन में २ बार जीराकाद्यरिष्ट या चविकासव, जो अधिक अनुकूल हो, वह एक या दोनों मिलाकर देते रहना चाहिये। हो सके तो जल को उबाल, शीतल करके लेने की सूचना कर देवें, जिससे आमोत्पत्ति में सत्वर लाभ हो सके।

कितने ही रोगियों को आम संग्रहणी के साथ पेचिश होती है। जिससे बार-बार उदरशूल होकर आम मिश्रित थोड़ा-थोड़ा मल त्याग होता रहता है। ऐसी स्थिति में प्राणदा पर्पटी के साथ कुटजादि वटी मिला देनी चाहिये। भोजन के पश्चात् कुटजारिष्ट देनी चाहिये, तथा तक्र (या अजा दुग्ध) का सेवन भी कराते रहना चाहिये।

यदि उदर में तीव्र वेदना हो तथा मल में आम और रक्त भी गिरता हो, तो प्राणदा पर्पटी के साथ अफीम प्रधान जातिफलादि वटी (प्रवाहिका) थोड़ी-थोड़ी मात्रा में मिला देना चहिये।

यदि आम संग्रहणी ५-७ वर्ष से अधिक पुराना हो गया हो, शारीरिक शक्ति अति क्षीण हो गई हो, रस रक्त आदि सब धातुएं क्षीण हो गई हों, और रोगी बार-बार अपथ्य सेवन कर लेता हो, तो कोई भी औषधि लाभ नहीं पहुँचा सकती। फिर भी अपथ्य सेवन से आशुकारी आमातिसार का आक्रमण हुआ हो, तो एरण्ड तैल से उदर शुद्धि करके प्राणदा पर्पटी का ४-६ दिन तक सेवन कराने पर रोग का शमन हो जाता है।

(९) शीतल पर्पटी

विधि–कलमीशोरा २० तोले और गन्धक का शुद्ध तिजाब (Acid Sulphuric) २ तोले लेवें। दोनों को पात्र (जिसमें उबल सके ऐसे पात्र) में डालकर निर्धूम कोयलों की मन्द अग्नि पर रख और सम्हालपूर्वक लौह शलाका से चलाते रहें। गन्धक का धूआं श्वास में न आ जाय, इसका ध्यान रखें। धूआं निकल जाने पर जब पतला रस सफेद रंग का बन जाय, तब पात्र को नीचे उतार कर उसी में ही चारों और पर्पटी को फैला देवें, फिर शीतल होने पर पर्पटी खोलकर निकाल लें। (स्व. पं. बंशीधरजी आयुर्वेदाचार्य)

मात्रा–६ से १२ रत्ती। सुबह जीरे के चूर्ण के साथ देकर थोड़ा शीतल जल पिलावें। आवश्यकता पर एक घण्टे बाद दूसरी मात्रा दें।

उपयोग–यह पर्पटी मूत्रकृच्छ् या अन्य किसी कारण से उत्पन्न हुए मूत्रावरोध को सत्वर दूर करती है एवं अम्लपित्त, वमन, उदरशूल, वृक्कशूल, अजीर्ण, यकृद्विकार आदि में भी हितकर है।

अम्लपित्त रोगी को भोजन कर लेने के बाद हृदय में शूल होता हो तो यह पर्पटी भोजन के बाद दिन में दो बार शीतल जल के साथ देनी चाहिये। इसके सेवन से दूषित पित्त का रूपान्तर होता है। मूत्र साफ आता है और दाह, शूल और बेचैनी दूर होती है।

आयुर्वेद के मतानुसार शोरा अति उष्ण, तीष्ण, अग्निप्रदीपक, दाहक, शोषक, वातनाशक और पित्तकारक है। प्लीहा, मूत्रकृच्छ, नेत्ररोग, वातरक्त, कुम्भकामला, श्वास, शूल, आध्मान, पिटिका आदि में हितावह है।

डाक्टर वसु लिखते है कि, शोरे का सेवन अल्प मात्रा में करने पर लालानि:सारक, अग्निप्रदीपक, बल्य, शैत्यकारक, रसायन (परिवर्तक), पित्तनि:सारक और क्षारनाशक है। यह क्षुधा को बढ़ाता है और दाह विष:क्रिया की उत्पत्ति कराता है फिर मुँह के भीतर की श्लैष्मिक कला पीली हो जाती है।

शोरे के उक्त गुण इस पर्पटी में अवस्थित हैं। अत: अत्यधिक मात्रा में इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(१०) मल्लपर्पटी (पर्पटी रस)

विधि–सफेद राल १६ तोले और सोमल २ तोले लेवें। प्रथम लोहे की कड़ाही में थोड़ा घी लगा राल का रस तैयार करें। फिर नीचे उतार तुरन्त सोमल का चूर्ण मिला देवें। पश्चात् केले के पत्ते पर फैलाकर पर्पटी को दबा दें। (सि.भै.म.)

मात्रा–१/२ से १ रत्ती। शहद के साथ दिन में दो बार।

उपयोग–मल्लपर्पटी कफज्वर, वातज्वर और ज्वर के उपद्रवरूप वातभ्रम (चक्कर आना), श्वासावरोध, कफवृद्धि और हृदयावरोध आदि दोषों को दूर करती है।

इस पर्पटी में सोमल आता है अत: यह तीक्ष्ण और उष्णवीर्य है। इसका फुफ्फुस, हृदय और वातवाहिनियों पर उत्तेजक पणिाम होता है। अत: जब वातप्रकोप से मंद-मंद ज्वर या अन्य विकार होते हों तब यह अच्छा काम देती है। विशेष वर्णन मल्ल भस्म में देखें।

सूचना–पित्त प्रकोप में इस औषधि का उपयोग न करें, ज्वर का वेग अधिक बढ़ रहा हो, उस समय यह औषधि न दें। वरना अस्राभिनोदन (रक्त के दबाव की वृद्धि) होकर मस्तक में रक्त बहुत बढ़ जायगा और बेहोशी, भ्रम आदि लक्षण बढ़ जायेंगे। अत: ज्वर कम होने पर देवें।

(११) अभ्र पर्पटी

विधि–अभ्रक भस्म १ भाग, शुद्ध पारद २ भाग और शुद्ध गन्धक ४ भाग लेवें। सबको यथा-विधि मिला, कज्जली कर विधिवत् पर्पटी बना लेवें।

मात्रा–१ से ३ रत्ती। त्रिकटु और शहद के साथ देवें।

उपयोग–यह पर्पटी कफ प्रधान कास, क्षय रोग में अतिसार, सगर्भा स्त्री के अतिसार, संग्रहणी, श्वास, अरुचि, पाण्डु और कफप्रधान रोगों को नष्ट करती है। अनेक बार यह पर्पटी लोह पर्पटी के साथ मिलाकर व्यवहृत होती है।

राजयक्ष्मा रोग में भी कफ निगलने में आने पर अन्त्र में क्षयकीटाणु लग जाता है। फिर अतिसार भी हो जाता है। उन रोगियों को तथा अन्त्रक्षय से पीड़ित रोगियों तथा सगर्भा के ग्रहणी रोग में यह अभ्र पर्पटी अच्छा लाभ पहुँचाती है। इसका सेवन दूध के साथ एवं मट्ठे के साथ हो सकता है। ज्वर रहता हो तब दूध देवें। ज्वर न हो और मट्ठा अनुकूल हो उन रोगियों को मट्ठे का सेवन कराना चाहिए।

सगर्भा को अभ्र पर्पटी देने से प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण भी गर्भ के संरक्षणार्थ देते रहना चाहिए।

सूचना–गरम-गरम चाय, दूध और गरम-गरम भोजन का भी त्याग करना चाहिए। भोजन मधुर और हल्का देना चाहिये। क्षार, खटाई, तीक्ष्ण पदार्थ, बेंगन और दाल का त्याग कराना चाहिये।

* * *

खरलीय रसायन

रस पारद को कहते हैं। इस कारण से जिन-जिन औषधियों में पारद या पारद के मूल खनिज द्रव्य सिंगरफ को मिलाया जाता है; उन सबका रस प्रकरण में अन्तर्भाव होता है और वे सब रस-रसायन कहलाते हैं। रसायन के २ विभाग, कूपीपक्व और पर्पटी पहले प्रकरण में लिख चुके हैं। इस कारण इस प्रकरण का नाम "खरलीय रसायन" रखा है। पारदयुक्त औषधि को जितने अधिक परिमाण में खरल किया जाय, उतने ही पारद के परमाणुसूक्ष्म होते हैं, जिससे लाभ भी उतना ही शीघ्रता से पहुंचता है। पारद युक्त औषधि विशेष समय तक सेवन करने से अरुचि उत्पन्न नहीं होती एवं दीर्घकाल तक गुणयुक्त रहती है और थोड़ी मात्रा में शीघ्र लाभ पहुँचाती है।

अनेक औषधियाँ पारदमिश्रित न होने पर भी रसायन समान गुणयुक्त होने से उन औषधियों का इसी प्रकरण में समावेश किया है।

पारा, गन्धक और विषैली वस्तुओं को शुद्ध करके ही औषधि योग में मिलाना तथा खाने के लिये आंवलासार गन्धक ही उपयोग में लेना चाहिये। दंडागन्धक खाने के लिए हितकर नहीं है।

फिटकरी और सोहागा का फूला करके उपयोग में लेना चाहिये एवं हींग को घी में भूनकर ही मिलाना चाहिये।

औषधि तैयार करने में पारद, गन्धक, धातु, भस्में और काष्टादिक वस्तुएँ साथ में हों तो पहले पारद और गन्धक को मिला १२ घण्टे खरलकर कज्जली करें, फिर भस्में मिलावें पश्चात् विषैली वस्तुएँ और अन्त में काष्ठादि वस्तुओं का कपड़छान चूर्ण मिलावें। पाठ में शिलाजीत, अफीम और गूगल हों तो इनको थोड़ा जल में मिला एक रस करके मिलाना चाहिये।

यदि रसायनों के गुण की वृद्धि करना हो तो पारद या कज्जली को पहिले रोगशामक औषधियों के क्वाथ या स्वरस की भावना देवें। फिर प्रयोग तैयार करें। जैसे-ज्वर दूर करने के लिये ज्वरघ्न औषधियों के क्वाथ की भावना, पित्त प्रकोप में पित्तशामक, वातवृद्धि में वातहर, कफनाश के लिये कफस्रावी, कुष्ठनाश के लिये कुष्ठघ्न, अतिसार होने पर ग्राही एवं मधुमेह को दूर करने के लिये गुड़मार, जामुन की छाल या न्यग्रोध आदि वर्गवाले द्रव्यों की भावना देने से रसायन सत्वर लाभ पहुँचाती है।

वनस्पति द्रव्यों को उसी द्रव्य के स्वरस की भावनायें देने से उस द्रव्य में गुण वृद्धि होती है। यह अनुभव आमलकी रसायन आदि औषधियों के प्रयोग से मिलता है। वनस्पति के समान तैल, घृत, उपधातु आदि के साथ संयोग विश्लेष (शोधन द्वारा मलत्याग), काल संस्कार और युक्ति से नूतन गुणाधान भी कराया जाता है। यह औषधि रस-रक्त आदि में सत्वर शोषित हो जाती है। फिर थोड़ी ही मात्रा में अधिक फल प्राप्ति कराती है। इस आयुर्वेदिक सिद्धान्त को महर्षि-आत्रेय ने कल्पस्थान के १२वें अध्याय में निम्न वचनों में दर्शाया है।

भूयश्चैष बलाधानं कार्य स्वरसभावतैः।
सुभावितं ह्यल्पममि द्रव्यं स्याद् बहूकर्मकृत्॥
स्वरसैस्तुल्यवीर्यैर्वा तस्माद् द्रव्याणि भावयेत्।
अल्पस्यापि महार्थत्वं प्रभूतस्याल्पकर्मताम्॥
कुर्यात्संयोगविश्लेषकालसंस्कारयुक्तिभिः॥

इस नियम को लक्ष्य में रखकर औषधियों को अनुकूल द्रव्यों के स्वरसों की भावनाएँ देने का आचार्यों ने विधान किया है। रोगशामक समान कार्यकारी द्रव्यों की भावना शास्त्रीय मर्यादा अनुरूप जितनी अधिक दी जायेंगी, उतनी ही गुणवृद्धि होती है। भावना देने में आलस्य करने पर गुण लाभ कम मिलता है और देर भी होती है।

रस या गुटिका प्रभृति औषधियों में जहां पर भावना देने के लिये वनौषधि का साक्षात् स्वरस मिल सकता हो, वहाँ पर अच्छी रीति से औषधि आर्द्र हो जाय, रबड़ी सदृश हो जाय; उतना स्वरस मिला सूखने तक खरल करने को एक भावना कहते है। जिस द्रव्य की भावना देनी हो, उसे भाव्य द्रव्य के (जिस औषधि को भावना देनी हो उसके) समान लेकर ८ गुने जल में मिला क्वाथ कर अष्टमांश शेष रहने पर भावना दें। यदि उतने क्वाथ से भी द्रव्य में अच्छी रीति से गीलापन न आता हो, तो क्वाथ करने को औषधि दुगुनी लेकर क्वाथ करें।

जब रसायन या अन्य कोई औषधि खरल में हो और घुटाई चालू न हो, या रात्रि के समय घुटाई बन्द रहे, तब मोटे कार्डबोर्ड या लकड़ी के ढक्कन से खरल को ढक देना चाहिये जिससे बीच में बत्ता खड़ा रह सके। इस रीति से औषधि बन्द रहने से बाहर का कचरा या सूक्ष्म जन्तु नहीं गिरेंगे। इसके अतिरिक्त भावना के लिए मिलाया हुआ रस निकम्मा सूखकर औषधि में अनावश्यक क्षार की वृद्धि नहीं होगी। जैसे-सुवर्णमालिनी बसंत की घुटाई अधिक दिनों तक नहीं होती। उस औषधियुक्त खरल को यदि रात्रि के समय न ढके तो उस में नींबू के रस के क्षार का परिमाण अधिकांश में हो जायगा जिससे औषधि का गुण न्यून हो जायगा। भावना में मिलाने का रस उतने अंश में मिलावें कि, जिसमें से बहुत हिस्सा शाम तक घुटाई करने में सूख जाय। अधिक रस बार-बार शेष रह जाने से औषधियों में कुछ अंश में विकृति हो जाती है।

औषधियों को भावना देने के पश्चात् गोलियां बनाकर छाया में जहाँ कूड़ा कचरा न उड़ता हो ऐसे स्थान पर सुखावें, और सूख जाने पर

साफ अच्छी डाट वाली शीशियों में भर देवें। यदि गोलियां थोड़ी गीली भर दी जायेंगी, तो उस औषधि में विक्रिया होकर थोड़े ही दिनों में दुर्गन्ध आने लगेगी एवं औषधि अच्छी सूख जाने पर भी खुली रखी जायगी तो उसमें से सत्वाँश उड़ता रहने से औषधि थोड़े ही दिनों में हीनवीर्य हो जायगी।

रसायन वाली औषधियों को घोटने के लिए पक्के पत्थर के खरल का उपयोग करें। लोहे के खरल में क्षारयुक्त औषधि मिलाने अथवा नींबू आदि के रसों की भावना देने से औषधि में लोहे का जंग मिल जाता है, तथा औषधि काली पड़ जाती है।

(१) विश्वतापहरण रस (विषमज्वर)

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, ताम्रभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, और अकलकरा इन औषधियों को समभाग लेकर खरल करें। फिर करेले के पत्तों के रस में १२ घण्टे घोटकर आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें। (आ.नि.मा.)

मात्रा–१ से २ गोली जीरा-मिश्री, ६-६ रत्ती के साथ दें। ऊपर जल पिलावें।

उपयोग–यह रसायन विषमज्वर, धातुगतज्वर, अपचनजनितज्वर, जीर्णज्वर, द्वन्द्वजज्वर, वातज्वर और कफज्वर को दूर करने में अति उपयोगी है। अनेक दिनों तक स्थिर रहने वाले ज्वर इससे थोड़े ही दिनों में चले जाते हैं। नूतन और जीर्णज्वर जिनमें शीत रहता है; उन ज्वरों में इससे सत्वर लाभ होता है। मुद्दतीज्वर जो रस-रक्त, माँस आदि धातुओं के आश्रित होकर कुपित होता है, नाना प्रकार के उपद्रवों को आरम्भ करता है, उनको सम्पूर्ण उपद्रवों सहित थोड़े ही दिनों में दूर कर देता है। यकृत् प्लीहावृद्धि को कम करता है, कच्चे आम को जलाता है। पाचनक्रिया को बढ़ाता है, और विषम ज्वर के कीटाणुओं को नष्टकर ज्वर को निवृत्त करता है।

मलेरिया के कितने ही रोगी बार-बार क्विनाइन लेते हैं। फिर क्विनाइन लेते हुए ज्वर निवृत्ति नहीं होती। ४-६ रोज में पुन:पुन मलेरिया आता रहता है। किसी-किसी को क्विनाइन लेने पर निद्रानाश, मूत्रोत्पत्ति का ह्रास, घबराहट, रक्तस्राव आदि उपस्थित होते हैं। ऐसे रोगियों को इस रसायन के सेवन से लाभ हो जाता है।

डाक्टरी में क्विनाइन मलेरिया के लिये सर्वोत्तम औषधि मानी गई है, किन्तु रक्त-दबाव वृद्धि पीड़ित वृक्क रोगी और पित्त प्रधान प्रकृति वालों को मलेरिया आने पर क्विनाइन नहीं देना चाहिए, क्योंकि इन दिशाओं में क्विनाइन देने से ज्वर १०५° तक बढ़ जाता है, जिससे अति व्याकुलता, निद्रानाश, हृदय की धड़कन बढ़ना, उबाक आना, आमाशय में पित्त अति खट्टा होकर ऊष्ण बन जाना, खट्टी-खट्टी वमन होना, वमन होने पर कण्ठ में दाह और और नेत्रों में जल आना, मूत्र में जलन होना, दिन में मूत्रावरोध होना और रात्रि में थोड़ा-थोड़ा पेशाब होते रहना, प्यास अत्यधिक लगना, मुँह कड़वा रहना आदि लक्षण उपस्थित रहते हैं। भूलवश क्विनाइन दिया गया हो तो ऐसी अवस्था में तुरन्त सूतशेखर और प्रवालपिष्टी देकर व्याकुलता शमन करनी पड़ती है, फिर दूसरे दिन से विषम ज्वर के शमनार्थ सप्तपर्णघनादि वटी या विश्वतापहरण रस दोनों में से एक औषधि देनी चाहिए। हृदयस्पन्दन में तेजी हो या उत्तेजक औषधि देने पर तेजी बढ़ जाती हो ऐसे रोगी को सप्तपर्णघनादि वटी भी नहीं दे सकते क्योंकि, उसमें कुचिला मिला हुआ है।

अति उग्र न हो, शनै:शनै: स्थिर कार्य करे, ऐसी औषधि विश्वतापहरण रस हैं। इस रसायन के आरम्भ होने पर उसी दिन से संताप कम होता है, निद्रा आती है, मानसिक प्रसन्नता रहती है, और रोगी को विश्वास हो जाता है कि यह औषधि मुझे लाभ पहुंचावेगी। फिर २-४ दिन में ज्वर को दूरकर शरीर को स्वस्थ बना देती है।

पथ्य रूप में हम रोगी को सुबह-शाम औषधि लेने के १ घण्टे बाद दूध पिलाते हैं और दोपहर को मोसम्मी देते हैं। मल की शुद्धि होती रहती है, तो मोसम्मी का रस देते हैं। अन्यथा मोसम्मी ही खिलाते हैं।

(२) शीतभंजी रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, सोहागे का फूला, शुद्ध बच्छनाभ, सोंठ, मिर्च और पीपल, सब समभाग मिला चित्रकमूल के क्वाथ की ३, अदरक के रस की ७ और नागरबेल के पान के रस की ३ भावनायें देकर मिर्च के समान गोलियां बनावें। (आ.नि.मा.)

मात्रा–१ से २ गोली। अदरक के रस और शहद या गुनगुने जल के साथ, दिन में २ बार देवें।

उपयोग–यह रस कफज्वर, शीतांग, त्रिदोष, सततज्वर आदि को दूर करने में अति उपयोगी है। कफ और ठण्डी को दूर करके १५-२० मिनट में शरीर को गर्म बनाता है एवं सतत् रहने वाले ज्वरों में उष्णता का शमन करके शरीर को शीतल बनाता है।

विश्वतापहरण रस की अपेक्षा इस रसायन में चित्रकमूल आदि दीपन द्रव्यों की भावनाओं के कारण से आमशोषण करने का गुण अत्यधिक परिमाण में है। शीतभंजी रस नाड़ियों में भरे हुए कफ (मल) को सत्वर दूर करता है, और पचनक्रिया को सुधारता है। यह रसायन सन्निपात की तन्द्रा में सुंघाने में भी उपयोगी है।

विषमज्वर के कितने ही रोगियों से क्विनाइन सहन नहीं होती। उनको क्विनाइन देने पर रक्तदबाववृद्धि, निद्रानाश, नाक से रक्त गिरना, नेत्रों में लाली, मूत्रावरोध, बधिरता और व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उनको शीतभंजी देना चाहिए। यद्यपि क्विनाइन देने से मलेरिया के कीटाणु सत्वर नष्ट होते हैं। इस रसायन से उतना जल्दी लाभ नहीं पहुँचता तथापि यह भीतर की शक्ति को सबल और रक्तादि धातुओं को निर्विष बनाता है। यह कार्य क्विनाइन से नहीं होता।

इस रस में ताम्रभस्म होने से यकृत-प्लीहा पर विशेष असर पहुँचाता है। यकृत प्लीहा बढ़े हों तो वृद्धि का ह्रास होता है तथा पित्तस्राव योग्य परिमाण में होने लगता है, जिससे अन्त्र में रहे हुए कीटाणु और आमविष का नाश होकर अन्त्र शुद्ध होता है। फिर ज्वर सरलता में दूर हो जाता है। कफ ज्वर आने पर श्लेष्मा की वृद्धि, वायु सहन न होना, रोंगटे खड़े होना, क्षुधानाश, त्वचा चिपचिपी होना, जिह्वा पर सफेद मेल की तह जम जाना, मस्तिष्क में भारीपन, हृदय में घबराहट, शरीर में जड़ता, आलस्य, उबाक, निद्रावृद्धि, हाड़-हाड़ फूटना, मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर यह रस आशु-फलप्रद है। इस तरह कफप्रधान सन्निपात में भी इस रस के सेवन से अच्छा लाभ पहुँचता है।

वक्तव्य-जब मस्तिष्क में रक्त दबाव वृद्धि, नेत्रों में लाली, ज्वर १०४° या अधिक, अधिक स्वेदोत्पत्ति, दाह, तृषावृद्धि, व्याकुलता और अति तेज नाड़ी आदि लक्षण हों तब इस रस का प्रयोग हो सके तब तक नहीं करना चाहिये। उस अवस्था में सूतशेखर विशेष हितावह है।

इस रस का उपयोग श्री वैद्यराज पं. कांतिलालजी आचार्य अनेक वर्षों से अधिक परिमाण में, सफलतापूर्वक अनेक रोगों पर सर्वदा करते रहे हैं।

श्रीयुत पं. कांतिलालजी के अनुभव अनुसार यह रस मुख्य वात और कफ प्रकोप और गोण-पित्त पर उत्तम कार्य करता है। इस रसायन के सेवन से शान्त निद्रा प्राप्त होकर उन्माद और प्रलाप का शमन हो जाता है। पचनसंस्थान में रहे हुए आम का पचन होता है और शौच आकर उदर साफ हो जाता है। इस तरह मूत्रावरोध और अफारा आया हो तो वह भी दूर हो जाता है। रक्त में संगृहीत ज्वर-विष को जलाकर तुरन्त ज्वर का शमन कर देता है। सूतिका को वातप्रकोप होकर उन्माद हो गया हो तो उसे भी दूर कर देता है।

प्रतिदिन आने वाले विषमज्वर पर सुदर्शन क्वाथ के साथ शीतभंजीरस देने से क्विनाइन के सदृश हानि नहीं होती। आमपचन होकर ज्वर दूर हो जाता है।

अपचनजन्य ज्वर को यह शीघ्र दूर कर देता है। प्रतिश्यायसह ज्वर (Influenza) पर यह रस बनप्सा के क्वाथ के साथ देने से तत्काल अपना प्रभाव दर्शाता है। ज्वरावस्था में रोगी को लंघन कराना चाहिये।

कफप्रधान श्वास में होने वाली घबराहट को दूर करने के लिये यह व्यवहृत होता है। आक्षेपक वात का बार-बार दौरा होने पर इस रस की ३-४ मात्रा २-२ घण्टे पर देने से दौरा रुक जाता है। पत्थर, लकड़ी, शलाकादि नाक में प्रवेश हो जाने पर शीतभङ्गी रस सुँघाने से २-४ छींक आकर प्रवेशित वस्तु निकल जाती है। सन्निपात की तन्द्रा में शीतभङ्गी रस का नस्य देने से थोड़े ही समय में सुधि आ जाती है। इस तरह इस रस का उपयोग अन्य रोगों पर भी किया है।

दूसरी विधि-वङ्गभस्म, नागभस्म, पीला सोमल, शुक्ति भस्म और शुद्ध नीला थोथा। इन ५ औषधियों को समभाग मिला करेले के पत्तों के रस की ७ भावनाएं देकर मूंग समान गोलियां बनावें। (र.का.)

मात्रा-१-१ गोली। जीरा और मिश्री के साथ। पाली के ज्वर में ज्वर आने के ६ घण्टे के पहिले एक मात्रा और ३ घण्टे पहिले दूसरी मात्रा दें। जीर्ण ज्वर में दिन में दो बार दूध पिलाकर गोली निगलवा देवें।

उपयोग-यह रस विषमज्वर, संतत, सतत, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक, शीतज्वर, जीर्णज्वर, कफ, श्वास, आम, मंदाग्नि को दूर करता है। इस औषधि के सेवन से अनेक दिनों से आने वाले और बार-बार उलट कर आने वाले ज्वर दूर हो जाते हैं।

यह रसायन विषमज्वर, विभिन्न कृमि कीटाणु जन्य ज्वर और आमविषज ज्वर पर तत्काल गुण दर्शाता है। नूतनावस्था में पीड़ितों एवं जीर्णावस्था पीड़ित दोनों प्रकार के कई रोगियों को दिया गया है। तुरन्त रोग के कारण को नष्ट करके रोग को दूर करता है। यह वैद्यों को यश दिलाने वाली श्रेष्ठ औषधि है।

कफ प्रधान, जीर्ण श्वास रोग में यह रस दूध की मलाई और मिश्री के साथ कुछ दिनों तक देते रहने से रोग को जड़ मूल से दूर करता है, और शरीर सबल बना देता है। रोग दूर हो जाने पर पचन-क्रिया अनुरूप दूध की मलाई २ से ४ तोले तक या मक्खन १ से २ तोले तक शक्कर मिलाकर २-४ मास तक लेते रहने से लीन विष नष्ट होता है और बल-वृद्धि होती है। परिणाम में फिर से रोग का आक्रमण नहीं होता।

(३) सूतराज रस

विधि-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ और सोहागे का फूला १-१ तोला और गाय की छाछ में शुद्ध किये हुये धतूरे के बीज ४ तोले लेवें। सबको खरल में एक दिन तक घोटें। फिर धतूरे के बीज और बच्छनाभ के क्वाथ की ३-३भावनायें तथा त्रिकटु के क्वाथ की

५ भावनाएँ देकर उड़द के बराबर गोलियाँ बाँधे। इस औषधि को "मृतप्राणदायी सूतराज" कहते हैं। (र.यो.सा.)

मात्रा–एक से दो गोली। दिन में २ समय। जल, अदरक के रस और मिश्री या तुलसी के रस के साथ। ज्वर सहित अतिसार में नागरमो का क्वाथ, ग्रहणी और अर्श में मिश्री और शहद, वातप्रकोप में त्रिकटु और चित्रकमूल का क्वाथ, कम्पवात, अपबाहुक, एकांगवात, अपस्मा और उन्माद में शुद्ध धतूरे के बीज ५ नग और मिश्री का अनुपान दें। इस रीति से अन्य अनुपानों की योजना कर लेनी चाहिये।

उपयोग–यह रस शीताँग सन्निपात, कफज्वर, वातज्वर, वातश्लेष्मज्वर (Influenza) फुफ्फुस सन्निपात (Pneumonia), प्रतिश्याय, क प्रकोप से उत्पन्न समस्त रोग, ज्वरातिसार, आमातिसार, कफप्रधान नया ग्रहणी रोग, अर्श, कम्पवात, अपबाहुक, एकांगवात, अपस्मार और उन्मा को नष्ट करने में अति उपयोगी है।

इस रस के सेवन से नाड़ियों में संगृहीत कफ और अन्तड़ी में रहे हुये आम का शोषण होता है, तथा मल मूत्रावरोध दूर होकर अग्नि प्रदीप्त होती है, फिर आमाशय, फुफ्फुस, अन्त्र और मूत्राशय शुद्ध होकर अपनी-अपनी क्रिया को नियमित करने लगते हैं। तथा ज्वर शम हो जाता है।

इस रस के सेवन में दूध, दूध के बने पदार्थ, मट्ठा, चांवल और शक्कर आदि पदार्थ पथ्य माने जाते हैं। फिर भी रोग और प्रकृति का विचार करके भोजन देना चाहिये।

सूचना–इस रस में बच्छनाभ की मात्रा अधिक है, अतः निर्बल हृदय वालों को यह रस अति कम मात्रा में देना चाहिये। कारण बच्छनाभ हृदय की गति को शिथिल करता है।

(४) कस्तूरी भैरव रस

विधि–शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बच्छनाभ, सोहागे का फूला, जावित्री, जायफल, काली मिर्च, पीपल और कस्तूरी सब समभाग लें। कस्तूरी को छोड़ शेष औषधियाँ मिलाकर ब्राह्मी के क्वाथ में ३ दिन खरल करें। फिर कस्तूरी मिलाकर ३ घण्टे नागरबेल के पान के रस में खरल करके मिर्च के समान गोलियाँ बांधे। भावना देने को मूल ग्रन्थकार ने नहीं लिखा, अनुकूल समझकर हमने बढ़ाया है। (र.रा.सु.)

वक्तव्य–इस रसायन के पाठ में बम्बई के सुप्रसिद्ध वैद्यराज आयुर्वेद मार्तण्ड स्व. श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य १ भाग 'कर्पूर' भी मिलाते थे। कर्पूर मिलाने से प्रयोग विशेष लाभप्रद बन जाता है। कुचले का सत्व (स्ट्रि कनिया) इसमें १/१६ रत्ती प्रति मात्रा में मिला देने से हृदय पर उत्तम प्रभाव होता है। कस्तूरी भैरव का प्रयोग विशेषतया शीतांगकाल में होता है। कर्पूर मिलाने से कस्तूरी और हिंगुल का कार्य प्रबलतर होता है। परिणाम में शीत तुरन्त दूर होकर उत्तेजना आ जाती है और हृदय नियमित कार्य करने लगता है, नाड़ियों को बल मिलता है।

मात्रा–२ से ३ गोली; दिन में २ से ३ समय, जल या रोगानुसार अनुपान के साथ देनी चाहिये।

उपयोग–यह रस ज्वर की तरुणावस्था में आम-पाचन और ज्वर-शमनार्थ दिया जाता है। इस औषधि के सेवन से १४ दिन के मुद्दती ताप, प्रलापक सन्निपात (Typhus Fever) और २१ दिन के मुद्दती ताप, आंत्रिक सन्निपात (Typhoid Fever) में रोगी की शक्ति स्थिर रहती है और समय पूरा होने पर ज्वर चला जाता है। जिन रोगियों के जीवन की आशा छूट गई हो; ऐसे मोतीझरे के अनेक रोगी ब्राह्मी क्वाथ के साथ इस औषधि के सेवन से सुधर गये हैं। यह रसायन कोमल प्रकृति वालों और बालकों के लिये भी हितकर है। कफ और वातप्रधान सन्निपात में प्रलाप, शीत, निद्रानाश या वातप्रकोप को दबावे के लिये अच्छा काम देता है। प्रसूता के धनुर्वात, कम्प, दाँत भिचना, श्वास, कास और हृदयावरोध को सत्वर दूर करता है। हिस्टीरिया, अपस्मार, उन्माद और मूर्च्छा में मस्तिष्क को शान्त रखता है और हृदय को भी सबल बनाता है।

इस कस्तूरी भैरव रस में कस्तूरी और बच्छनाभ दोनों की मात्रा अधिक है। इन दोनों में से पहले कस्तूरी का कार्य आरम्भ होता है। सामान्यतः बालकों, नाजुक प्रकृति की स्त्रियों आदि के प्रलापक सन्निपात में कस्तूरी भैरव देने पर १५-२० मिनट तक कस्तूरी से किञ्चित् उत्तेजना बढ़ती है। फिर प्रतिक्रिया होकर शामक अवस्था आने लगती है। १ घण्टे के भीतर प्रलाप आदि लक्षण शान्त हो जाते हैं और निद्रा आने लगती है। यदि १ मात्रा से उचित परिणाम न आया हो तो आवश्यकता अनुसार दूसरी मात्रा भी १ घण्टे बाद दे सकते हैं।

रोगी का हृदय अति निर्बल हो, दिनों तक ज्वर बना रहा हों, फिर विषप्रकोप होकर मन्द-मन्द प्रलाप उपस्थित हुआ हो तो ऐसी अवस्था में इस कस्तूरी भैरव की अपेक्षा बृहत् कस्तूरी भैरव (रसतन्त्र, द्वितीय खण्ड) दिया जाय, तो वह विशेष उपकारक होता है।

(५) सूचिकाभरण रस

विधि–रससिन्दूर, शुद्ध सर्पविष और कस्तूरी को समभाग मिला धतूरे के रस में १२ घण्टे खरल करके चूर्ण बना लें। (र.यो.सा.)

वक्तव्य–(१) रससिंदूर के स्थान पर बुभुक्षित पक्षच्छेदित पारद से बना हुआ चन्द्रोदय या मल्लचन्द्रोदय का उपयोग करने पर इच्छित औषध प्रभाव प्रतीत होता है।

(२) मूल ग्रन्थ में धतूरे के रस में खरल करने का विधान है। उस स्थान पर अदरक और तुलसी के रस की क्रमशः भावना देना विशेष उपकारक होता है।

उपयोग–सुई के अग्र भाग से थोड़ा-सा (१/३२ रत्ती) निकाल, शिर के बालों को अलग कर, रक्त निकालकर उसमें मिला देने से तथा उतने ही परिमाण में मिश्री के साथ मिलाकर खिला देने से सन्निपात की बेहोशी और इन्द्रियों की शून्यता आदि तत्काल दूर होते हैं। मूर्च्छित व हृदयावसाद के रोगियों में इंजेक्शन जैसा तुरन्त प्रभाव दिखाता है।

सूचना–दाह होने पर शर्बत या मिश्री मिला दूध पिलावें।

नोट–असली सर्पविष हाफकिन्स इंस्टिट्यूट-बम्बई से प्राप्त किया जा सकता है।

(६) ज्वर केसरी वटी

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हरड़, बहेड़ा, आँवला और शुद्ध जमालगोटा सब समभाग मिला, १२ घण्टे भाँगरे के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। (भै.र.)

निघण्टुरत्नाकर में भांगरे के स्थान में द्रोणपुष्पी के रस की भावना देने को लिखा है। वह ज्वर शमन में विशेष लाभप्रद होने से हम द्रोणपुष्पी के रस की भावना देते हैं।

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में २ समय, ५ से ७ कालीमिर्च के साथ निगल जायें, ऊपर एक घूंट जल पीवें। बालकों को सरसों के बराबर दें। मूलग्रन्थकार ने अनुपान भिन्न-भिन्न लिखे हैं। सब प्रकार के ज्वरों पर नारियल का जल। पित्त ज्वर में शक्कर। सन्निवात में कालीमिर्च। दाहज्वर में पीपल और जीरा।

उपयोग–ज्वर केसरी रस नूतन ज्वर, वातज्वर, पित्तज्वर, दाहज्वर, विषमज्वर, सन्निपात, भूतानुबन्धयुक्त ज्वर, प्लीहावृद्धि से आने वाला ज्वर, पित्तप्रधान कुष्ठ, गुल्म, मलावरोध, मन्दाग्नि, अजीर्ण, शोथ, शूल तथा पित्त और रक्त दोष को शांत करता है।

बहुधा अनेक प्रकार के ज्वरों की उत्पत्ति मलावरोध होने पर होती है। मलावरोध होने पर आम और सेन्द्रिय विष की वृद्धि होती है। फिर आम और विष को जलाने के लिये जीवन संरक्षक शक्ति उष्णता को बढ़ा देती है। उसे शास्त्रकारों ने ज्वर संज्ञा दी है। इस ज्वर में प्रकृति और लक्षण भेद से विविध प्रकार होते हैं। यदि मलावरोध ज्वर का हेतु है तो फिर चाहे किसी भी जाति का ज्वर हो, वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज या त्रिदोषज, सबके मूल हेतु रूप मलावरोध को दूर करने तथा ज्वर को शमन करने के लिये यह निर्भय औषधि है।

सूचना–यह औषधि बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री-पुरुष सबको देने में उपयोगी है। सिर्फ सगर्भा स्त्री और अतिसार के रोगी को नहीं देनी चाहिये।

(७) नारायणज्वरांकुश रस

विधि–शुद्ध सोमल, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध बच्छनाभ, शुद्ध धतूरे के बीज, वराटिका भस्म, सोहागे का फूला, भांग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल सब समभाग लें। पहिले पारद और गन्धक की कज्जली करके क्रमशः सोमल और हरताल मिलावें। फिर आधे घण्टे घुटाई करने के बाद बच्छनाभ और अन्त में सब वस्तुओं का बारीक चूर्ण मिला, अदरक के रस में तीन दिन तक घुटाई करके ज्वार के दाने के समान गोलियाँ बनावें। (यो.र.)

मात्रा–१-१ गोली। दिन के तीन समय जल के साथ दें। ज्वर होने पर उतारने और ज्वर न हो तब रोकने के लिये दिन में ३ समय देवें।

उपयोग–नारायणज्वरांकुश सब प्रकार के विषम ज्वर (ठण्ड लगकर आने वाले ताप) सन्निपात, जीर्णज्वर और विसूचिका को नष्ट करता है। कफप्रधान और वातप्रधान ज्वर में उपयोगी है।

सूचना–इस औषधि में सोमल है, इसलिये खान-पान में अपथ्य नहीं करना चाहिये। जीर्णज्वर में अवश्य घी और दूध देना चाहिये। नूतन ज्वर में औषधि देकर कपड़ा ओढ़ा देने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

यह रस ज्वर के तीव्र वेग में, ग्रीष्म और शरद ऋतु में तथा पित्तप्रधान प्रकृति वालों को नहीं लेना चाहिये।

(८) महाज्वरांकुश रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध बच्छनाभ तीनों एक-एक भाग, धतूरे के शुद्ध बीज ३ भाग और सोंठ, कालीमिर्च पीपल तीनों दो-दो भाग लेवें। सबको यथा-विधि मिला, अदरक और नींबू के रस की १-१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोली बांधें। (व.रा.)

मात्रा–१-१ रत्ती अदरक के रस और शहद के साथ देवें।

कफप्रधान ज्वर में महाज्वरांकुश श्रृङ्गभस्म, कफकुठार और नौसादर मिलाकर दिन में ३ बार देवें और ऊपर पिप्पल्यादि क्वाथ पिलावें।

उपयोग–यह रसायन वेदनाशामक, ज्वरघ्न और पाचक है। वात-ज्वर, कफज्वर, द्वन्दजज्वर, त्रिदोषजज्वर और अन्य विषमज्वरों–एकाहिक,

द्वयाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि का नाशक है। यह रस बिना ठण्ड के ज्वर और लगातार रहने वाले और घटने बढ़ने वाले ज्वरों में उपयोगी है। ज्वर के साथ उत्पन्न अजीर्ण, पतले दस्त होना, पेट में दर्द होना, पेट में वायु (आफरा) होना इत्यादि विकारों को भी दूर क है। जीर्ण सन्धिवात (आमवात) में यह रस लाभदायक है।

इस रस के सेवन से कुछ प्रस्वेद आता है, वेदना शमन होती है और आम पचन होकर ज्वर दूर हो जाता है।

अजीर्ण या असात्म्य भोजन से पचनेन्द्रिय संस्थान के कार्य की विकृति हो कर उत्पन्न ज्वर पर इस रस का उत्तम उपयोग होता है। विशेष वेदना सहन न करने वाले अधीर और चञ्चल प्रकृति के रोगी को यह दिया जाता है।

सर्वांग में कम्प, ज्वरवेग असमान, निद्रानाश, बार-बार छिकें आना, शरीर अकड़ जाना, हाथ पैर टूटना, सन्धि-सन्धि में वेदना, मस्ति और कपाल में दर्द, मुँह में बेस्वादुपन, मलावरोध, सारे शरीर में भारीपन, हाथ-पैर शून्य हो जाना, कान में आवाज आना, दांत भिंचना, व्याकुल शुष्क कास, उबाक, थोड़ी-थोड़ी वमन, रोंगटे खड़े होना, तृषा, चक्कर आना, प्रलाप, मूत्र का रंग पीला-लाल या काला-सा हो जाना, उदर शूल, अफारा, बार-बार उबासी आना तथा लक्षण वृद्धि होने पर असहनशीलता, रोगी का बड़-बड़ करते रहना (पूछने पर रोगी कहता है प्रलाप करने पर अच्छा लगता है) इत्यादि वातप्रधान लक्षण होने पर यह महाज्वराँकुश रस दिया जाता है। ज्वर का मन्द वेग, अङ्ग में जड़ आलस्य, निद्रावृद्धि, अङ्ग अकड़ा हुआ भासना, कपड़ा उतारने पर शीत लगना, मुंह में बार-बार पानी आना, उबाक, वमन, उदर में भारीप नेत्र के समक्ष अन्धकार, सूर्य के ताप में बैठने या अग्नि से तापने की इच्छा, सूर्य के ताप में बैठने से अच्छा लगना, खांसी, अरुचि, बेचै आदि कफप्रधान लक्षण होने पर इस महाज्वरांकुश का अच्छा उपयोग होता है।

कफवातज्वर होने पर अंग में जड़ता और अति गीलापन, मस्तिष्क अकड़ा हुआ भासना, हाड़-हाड़ फूटना, तन्द्रा, जुकाम के समान ना में श्लेष्म की उत्पत्ति होना, खाँसी, प्रस्वेद न आना, हाथ पैर और नेत्रों में दाह, भय लगना, क्रोध उत्पन्न होना, थकावट-सी लगना आदि लक्ष में ज्वर विशेषतः मर्यादित होता है। इस पर यह रस लाभदायक है।

सतत् विषमज्वर अर्थात ७ या १० दिन तक रहने वाले ज्वर में अतिजड़ता, हाथ-पैर टूटना, अति प्यास (यह प्यास उष्ण जल या सों लौंग आदि उष्ण पदार्थ के सेवन से कम होती है) आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस ज्वर में, एक दिन छोड़कर आने वाले तृतीयक ज्वर यह महाज्वरांकुश हितकर है।

अजीर्ण या अपथ्य सेवन से ज्वर आने पर कोष्ठ विकृति होती है। फिर उबाक, लालास्राव, उदर सेवन से वायु भर जाना, अरुचि, उ में मन्द-मन्द शूल, थोड़ा-थोड़ा दस्त लगते रहना, अग्निमाँद्य किसी भी प्रकार के भोजन की इच्छा न होना,शारीरिक उत्ताप मर्यादित होना, संधि संधि में वेदना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस ज्वर पर महाज्वरांकुश रस का अच्छा उपयोग होता है। (औ.गु.ध.शा.)

(९) रत्नगिरी रस

विधि–शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हिंगुल, लौंग और जायफल समभाग मिलाकर अदरक के रस की २ भावनाएं देवें। फिर एक-एक रत्ती क गोलियां बना लेवें। (आ.नि.मा.)

मात्रा–१ से ३ गोली। बच्चों को १/४ से १/२ रत्ती तक देवें।

अनुपान–धनिया और मिश्री को जौकुट चूर्ण कर आधा-आधा तोला लेकर १ छटांक जल में एक घण्टे तक भिगो देवें। फिर मसल छानक औषधि के साथ पिला दें। जीर्ण ज्वर में दूध के साथ दें।

उपयोग–यह औषधि बड़े मनुष्य और बच्चों के बने रहने वाले ज्वर को उतारने के लिए अमोघ है और निर्यभयतापूर्वक दी जाती है

इस रस को धनिया-मिश्री के हिम के साथ देने पर स्वेदल गुण दर्शाता है। रक्त में रहे हुए विष को जलाकर प्रस्वेद के साथ बाहर निकाल देता है एवं कोष्ठ में सञ्चित आमविष का पचनकर ज्वर के मूल को नष्टकर देता है।

इस रत्नगिरी रस में बच्छनाभ न होने से निर्बल हृदय वालों के लिये यह विशेष उपयोगी है। मुद्दती ज्वर में जब बच्छनाभ वाली औषधि देने से हानि की संभावना हो तब इस रत्नगिरी रस का उपयोग अति हितकर होता है।

इस रत्नगिरी का उपयोग वातरोग, उदरवात, गुल्म आदि पर भी होता है। वातरोग पर इस रस की ३-३ गोलियां दिन में ३ बार गुनगुने जल अथवा शहद, पीपल के साथ देनी चाहिये।

खेतों में कार्य करने वालों और ग्रामों में फिरने वालों को अनेक स्थानों में वर्षा ऋतु के भीतर अस्वच्छ जल पीना पड़ता है और ऋतु प्रकोप के हेतु से भी पाचन क्रिया योग्य कार्य नहीं करती। फिर अनेकों को आम संगृहीत होकर ज्वर आ जाता है। इन रोगियों को रत्नगिरी रस देने से विष जलकर थोड़े ही समय में ज्वर का शमन हो जाता है।

मिथ्या आहार-विहार, अपचन और ऋतु प्रकोप आदि कारणों से आम और मल संगृहीत होकर ज्वर आ जाता है। इस ज्वर को दूर करने के लिये पहिले आरग्वध आदि औषधियों के क्वाथ या ज्वर केसरी से आम और मल को दूर कर धातुओं को निर्मल बनाना चाहिये। किन्तु

अनुभवहीन डाक्टर और उनके अनुयायी उसे विषम ज्वर मानकर क्विनाइन आदि देते रहते हैं। परिणाम में ज्वर विष कुपित होकर धातुओं में लीन हो जाता है। फिर बहुत दिनों तक कष्ट देता रहता है। सामान्यतः शिरदर्द, नेत्रों में निस्तेजता, जिह्वा मललिप्त होना, अति थकावट, अग्निमांद्य, अरुचि, मूत्र में पीलापन, मलावरोध आदि लक्षण भासते हैं एवं २-४ घण्टों के लिये ज्वर प्रतिदिन बढ़ जाता है। यदि ऐसी अवस्था में क्विनाइन देते रहें तो मस्तिष्क में उष्णता, बधिरता, वृक्कों के कार्य में प्रतिबन्ध होकर मूत्रावरोध होना, निद्रानाश आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं। इन रोगियों को रत्नगिरी रस धनिया, मिश्री के फाण्ट या हिम के साथ देने से ४-६ घण्टों के भीतर धातुओं में लीन ज्वर बाहर आ जाता है। २-४ घण्टे तक ज्वर १०२° से १०४° तक बढ़ जाता है। फिर स्वेद लाकर विष को बाहर निकाल देता है और ज्वर का शमन कर देता है।

प्रसवावस्था में योग्य सम्हाल न रखने से पचनशक्ति का विचार किये बिना गुड़-घी खिलाते रहने से प्रसूता को ज्वर आ जाता है। सामान्यतः ज्वर १०२° रहता है। शिरदर्द, व्याकुलता, अरुचि, उदर में भारीपन, जननेन्द्रिय से जल स्राव होते रहना, किसी-किसी को पतले दस्त हो जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी रुग्णाओं को रत्नगिरी रस देने से आम विष शीघ्र जल जाता है और ज्वर निवृत्त हो जाता है।

(१०) अश्वकंचुकी रस

विधि-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, शुद्ध सोहागे का फूला, शुद्ध हरताल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और शुद्ध जमालगोटा सब समभाग मिलाकर भांगरे के रस में २१ दिन तक घुटाई करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (र.रा.सु.)

मात्रा-एक से चार गोली। सुबह जल के साथ देवें। बालक को आधी गोली देनी चाहिये।

उपयोग-ज्वरकेसरी वटी में सोहागा और हरताल मिलाने पर अश्वकंचुकी रस तैयार होता है। इस रसायन में भांगरे के रस की जितनी अधिक भावना लगती है उतनी ही सौम्यता आती है तथा दाहक और विरेचक गुण कम होता है। भांगरे के रस की अधिक भावना-से यकृत को अधिक लाभ पहुँचता है एवं जमालगोटे की उग्रता शमन होकर दाह, उबाक और वमन करने की शक्ति का ह्रास होता है तथा हरताल की उग्रता भी कम होती है।

इस अश्वकंचुकी रस को अश्वचोली और घोड़ाचोली भी कहते हैं। सामान्यतः जनता की मान्यता है कि यह रस सब रोगों पर उपयोगी है। परन्तु शास्त्रदृष्टि से विचार करने पर यह मान्यता भ्रमयुक्त भासती है। इतना सत्य है कि यह रस अत्यन्त वीर्यवान और प्रभावशाली है तथा अनुपान भेद से अनेक रोगों में हितकारक है।

यह रस तीक्ष्ण, उग्र, ज्वरघ्न, सारक, विकाशी, व्यवायी, प्रमाथी, क्षरण करने वाला, लेखन और दोष संघात का भेदक और योगवाही है। कफ, वातकफ और पित्तकफ दोष को दूर करता है। अनूप देश में (वर्षा और वृक्ष अधिक हों, ऐसे देश में) अधिक हितकर है; और जांगल देश में कम उपयोगी है।

कफ प्रकोप होकर उदर में अफारा, उबाक बनी रहना, श्वास और कास उपस्थित होना इन लक्षणों के साथ तन्द्रा होने पर इस औषधि का उपयोग करना चाहिये। इस तरह आमाशय और उरः स्थान में कफवृद्धि होकर वर्षाऋतु प्रारम्भ या मध्य में उत्पन्न होने वाले श्वास और प्रतिवर्ष वर्षाऋतु में आक्रमण करने वाले श्वास पर इस रस का उपयोग होता है। जिस श्वास में कफप्रधान लक्षण होते हैं; बार-बार गाढ़ा और सफेद रंग की बड़ी-बड़ी कफ की गाँठ पड़ती रहती हैं, श्वासरोग तीव्र नहीं होता एवं घबराहट भी अधिक नहीं होती ऐसे लक्षण होने पर इस औषधि का उपयोग होता है।

छः मास के शिशु को पसली रोग होने पर उसकी छाती भारी हो जाती है; श्वासोच्छवास जल्दी-जल्दी चलता है; इस रोग में प्रत्येक श्वास के साथ उदर में खड्डे पड़ते हैं। बालक अति व्याकुल हो जाता है, ज्वर-वेग सामान्य होता है; कोष्ठ शुद्धि नहीं होती। इस विकार मे माता के दूध के साथ या करेले के पत्तों के रस के साथ यह रस दिया जाता है। बालक को उत्पन्न होने वाले श्वसनक सन्निपात (न्यूमोनिया)में, श्लेष्म संचय अधिक होने पर श्वासोच्छ्वास का वेग बढ़ जाता है; इस पर इस घोड़ाचोली का उपयोग किया जाता है। इस विकार की प्रथमावस्था में इस औषधि का उपयोग करने से कफ का लेखन होता है, और रोगबल बहुत अंश में कम हो जाता है। रोगी सहसा दगा नहीं देता एवं कितने ही रोगियों की प्रकृति समय के पहिले ही सुधरजाने के उदाहरण मिले हैं। छोटे बालक के समान बड़े मनुष्यों को भी कफप्रधान दोष होने पर इस औषधि से लाभ पहुँचता है।

बार-बार कफ (आम) मिश्रित वमन होना, उदर में जड़ता, मुंह में जल आते रहना, लालास्राव, मधुर और झागयुक्त गाढ़ी वमन होना, आलस्य, मुखपर शोथ-सा भासना आदि लक्षण होने पर अश्वकंचुकी रस का उपयोग किया जाता है।

छोटे बालकों की यकृत् वृद्धि में यह औषधि उत्तम लाभ पहुंचाती है। इस विकार में प्रधान रूप से कफवृद्धि के लक्षण होने चाहिये।

यकृत् में जड़ता तन्द्रा, नेत्रों में भारीपन, कास (इतनी अधिक कास होती है कि छाती सर्वदा भरी हुई भासती है) कण्ठ में घर-घर आवा मल में पाण्डुता, समस्त शरीर में पाण्डुता, मुख, हाथ-पैर आदि कुछ फूले हुए भासना आदि लक्षण होने पर अनूप देश में रहने वालों के लि यह औषधि उत्तम लाभप्रद है। यदि इस रोग में पित्तप्रधान लक्षण अधिक प्रस्वेद, दाह, शुष्क कास, देह में उष्णता, मल मूत्र में पीलापन आ हों तो इस औषधि का उपयोग नहीं करना चाहिये।

यकृत्वृद्धि समान कफप्रधान प्लीहावृद्धि में भी यह औषधि लाभदायक है। इस रोग की अन्त्यावस्था को प्राप्त रोगी भी इस औषधि सेवन से अच्छे हो जाने के उदाहरण मिले हैं। बड़े मनुष्य की यकृद्वृद्धि (शराब के अतिरिक्त मनुष्य की यकृद्वृद्धि) में यदि कफप्रधान तो इस रस का अच्छा उपयोग होता है।

वर्तमान में इस औषधि के दुरुपयोग के भी उदाहरण मिलते हैं। रोग के दोष दूष्य संयोग यथातथ्य विचार न करते हुए केवल व्या प्रत्यनीक चिकित्सा करने पर विपरीत परिणाम आता है। जैसे-यकृद्वृद्धि में कफविकृति के लक्षण और पित्त प्रकोप के लक्षण भी होते पित्तविकार के लक्षण प्रतीत होने पर इस औषधि का उपयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा रोगी को हानि होती है।

जीर्ण यकृद्वृद्धि यदि अन्त्यावस्था को प्राप्त न हुई हो और शराब का व्यसन इसका कारण न हो तो, इसका उपयोग करना चाहिये। क्वचि संग्रहणी रोग में उपक्रम योग्य न होने या उपक्रम योग्य होने पर भी कीटाणु प्रकोप से यकृद्वृद्धि हुई हो और यह रोग जीर्ण हो गया तो कुरैया की छाल का अर्क या कुटजारिष्ट और अश्वकंचुकी रस का मिश्रण अति उपयोगी होता है। इसमें भी कफप्रधान लक्षण होना चाहिये

बालकों के यकृतोदर या प्लीहोदर मे कफप्रधान लक्षण होने पर जलोदर उत्पन्न हो जाने के पश्चात भी इस औषधि ने अनेक रोगियों क जीवन प्रदान किया है। रोगी को तन्द्रा, आलस्य, पाण्डुता, बद्धकोष्ठ, मल में आम आना, मल चिकना और गाढ़ा होना, मुख, उदर और हाथ-पैर पर सूजन और मूत्र परिमाण की अपेक्षा अधिक होना आदि लक्षण होते हैं, इस व्याधि के कारण दीर्घकाल का शीतज्वर, मृदुभक्षण या बार-बार उदर में कृमि होने का अभ्यास, बद्धकोष्ठ, मधुर, स्निग्ध और जड़ भोजन या माता के दूध मे विकृति आदि हैं। परन्तु जलोदर के कारण में हृदय या वृक्कस्थान की विकृति हो तो इस औषधि का उपयोग नहीं करना चाहिये।

मध्यम कोष्ठशूल बहुधा जीर्ण आमसंचय या कफजन्य स्रोतसावरोध से होता है और यह शूल कोष्ठबद्धतासह होता है। यह विकार अधिक बैठे रहने वाले या आलसी, स्निग्ध भोजन करने वाले और मांसाहारी मनुष्यों को होता है। इस रोग के रोगी की आँतों में मल-संचय के हेतु से पुराःसरण क्रिया मन्द होती है। मलावरोध बना रहता है। फिर पचन क्रिया मन्द होती है और रसोत्पत्ति योग्य नहीं होती। रस का शोषण योग्य न होने से परिणाम में रक्त आदि धातु को उचित पोषण नहीं मिलता; उदर बढ़ जाता है तथा रोगी बिल्कुल निर्बल हो जाता है। इस अवस्था में घोड़ाचोली का उत्तम उपयोग होता है।

कफ-गुल्म में अश्वचोली का उपयोग होने के अनेक उदाहरण मिले हैं। गुल्म का यह विकार मध्यम कोष्ठशूल के लिये लिखे हुए कारणों से होना चाहिये और अनूप देश में रहने वालों को हो तो अश्वचोली का प्रयोग किया जाता है। यह गुल्म जड़, मोटा और बड़ा होता है, शेष कफप्रधान लक्षण प्रतीत होते हैं।

यह औषधि वातगुल्म या पित्तगुल्म में उपयोगी नहीं है। जीर्ण अतिसार के विकार में बार-बार सफेद चिपचिपा दस्त होता रहता है और उदर में जड़ता भासती है। इस व्याधि में लघु और वृहद्अन्त्र की श्लैष्मिक कला मोटी हो जाती है। उसमें से स्राव होता ही रहता है। यह स्राव कफप्रधान विकृति के हेतु से होता है। जब इस श्लैष्मिक कला की मोटाई कम हो और स्राव कम हो तभी इस अतिसार की निवृत्ति हो सकती है। यदि स्तम्भक, दीपन-पाचन आदि सामान्य अतिसार की चिकित्सा करते रहें तो यह व्याधि महीनों तक बनी रहती है। इसका मूल दोष अन्तर्लीन रहता है। उसे बाहर निकाल दूर करना चाहिये। यह कार्य घोड़ाचोली के योग से अति उत्तम प्रकार से हो जाता है।

केवल स्तम्भक औषध से शल्यरूप संचित दोष अधिकाधिक स्तम्भित होकर दृढ़ होता जाता है और रोग दिन-प्रतिदिन प्रबलतर होता जाता है। इसलिये इस स्थान पर दोष का सम्यक् निर्हरण करना आवश्यक है। यह न्याय नूतन कफातिसार के लिये भी लागू होता है। जीर्ण संग्रहणी में बृहदन्त्र में जहाँ व्रण होते हैं; उस स्थान से श्लैष्मिक कला और रक्त सर्वदा निकलकर मल के साथ गिरते रहते हैं। इस विकार में हो सके तब तक इस हरताल प्रधान उग्र रसायन का उपयोग नहीं करना चाहिये। इस स्थान पर दोष संचित होने पर एरंड तैल या नाराचघृत से कोष्ठ-शोधन करना चाहिये।

आयाम और अपतानक वातविकार में कोष्ठस्थ मलसंचय के हेतु से वातवृद्धि होती है। फिर रोगी को सहसा आक्षेप आने लगते हैं। पश्चात् बेहोशी हो जाती है; मुख में झाग आ जाते हैं, कण्ठ में से घर-घर आवाज निकलती रहती है, मल सञ्चित होने पर उदर कठोर और मोटा हो जाता है, अधोवायु नहीं सरती; क्वचित वमन भी होता है; आक्षेप के झटके बार-बार आते रहने से रोगी व्याकुल हो जाता है; किसी-किसी को इतना बलपूर्वक आक्षेप आता है कि पीठ भी कमान के सदृश मुड़ जाती है। इस वातविकार में पहले कोष्ठशुद्धि करनी चाहिये। इस कार्य के लिए उदर मे स्थित मल और सेन्द्रिय विष को निकालने वाली औषधि में घोड़ाचोली उत्तम है।

भूतोन्माद रोग में रोगी बेसुध और व्याकुल हो गया हो, रोगी की छाती उदर, कण्ठ आदि में कफभूयिष्ठ मलसंचय अधिक होने से संज्ञा नष्ट हो गई हो, कोड़ी प्रदेश के समीप का भाग खूब फैला हुआ हो, कण्ठ मे विलक्षण घर-घर आवाज और प्रत्येक श्वासोच्छवास के साथ मुँह में थूक के बुदबुदे और लाला गिरते हों तो इस अश्वकञ्चुकी को शहद के साथ देने से आश्चर्यकारक लाभ होने के उदाहरण मिले हैं।

मूर्च्छा विकार में विशेषत: पित्त का अनुबंध होने पर केवल पित्तशामक उपचार करने की अपेक्षा पित्तविरेचक औषधि देना विशेष उपयुक्त है। इसके साथ रक्त का दबाव भी कम होना आवश्यक है। यह कार्य त्वरित होना चाहिये। अनेक दिनों तक उपयोग करने पर आरोग्यवर्द्धिनी और चन्द्रप्रभा भी रक्तदबाव को कम करती है। परन्तु तत्काल कार्यकर औषधि अश्वचोली है। इससे मूर्च्छा भी दूर हो जाती है।

यकृद् के विकार से या यकृत की क्रियाविकृति होने से देह पर काले-काले धब्बे उत्पन्न होते हैं। कितने ही समय स्फोट हो जाते हैं। शेष लक्षण कुष्ठ सदृश भासते हैं। परन्तु त्वचा ही शून्यता और कुष्ठ के कीटाणु इन व्याधियों में नहीं होते। इस विकार पर अश्वचोली का उपयोग आश्चर्यजनक हुआ है।

क्षुद्र कुष्ठ अर्थात् चर्म-रोग में उत्पन्न होने वाले धब्बे, व्रण, पिटिका, लसिका स्राव, कण्डु आदि व्याधियों मे हल्दी या त्रिफला के क्वाथ के साथ घोड़ाचोली देने से अच्छा लाभ पहुँचता है।

चातुर्थिक ज्वर में दोष, रस आदि धातुओं से मेद-धातु पर्यन्त पहुँच जाता है। इस विकार में कोष्ठबद्धता, प्लीहावृद्धि आदि विकार होते हैं। यदि चौथे-चौथे दिन पर ज्वर आने के समय कोष्ठ में जड़ता और छाती मे कफसंचय आदि लक्षण हों तथा अनेक दिनों से ज्वर त्रास पहुँचाता हो तो इस रसायन का प्रयोग अगस्त्य के पत्तों के रस के साथ करना चाहिये। इस तरह अन्य प्रकार के विषम ज्वरों में भी तीव्रावस्था दूर होने के पश्चात् जीर्णावस्था प्राप्त होने पर प्लीहावृद्धि, अग्निमाँद्य और पाण्डुता आदि लक्षण होने पर घोड़ाचोली देनी चाहिये।

कोष्ठस्थ मलसंचय से शीर्षशूल और उसके साथ नेत्रशूल और आमाशय में कफसंचय होने पर शूल अधिक तीव्र न हो और मलसंचय अधिक हो तो इस औषधि का उपयोग करना चाहिये।

शरीर में रस-ग्रन्थियों की वृद्धि और साथ-साथ कफ-दोष की वृद्धि होने पर कोष्ठ में सूक्ष्म-सूक्ष्म शूल चलता रहता है। कोष्ठ में ग्रन्थियां बढ़ने सदृश भासती हैं। कोष्ठ जड़ हो जाता है इस स्थिति मे अश्वचोली उपयोगी है। इस विकार में जसद भस्म भी व्यवहृत होती है। शरीर में दाह, हाथ-पैर टूटना, सूक्ष्म ज्वर और पित्तवृद्धि के लक्षण हों तो जसद भस्म देवें। कफ-प्रकोप में अश्वचोली और पित्तवृद्धि मे जसदभस्म यह दोनों में अन्तर है। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना-यह रस पित्तप्रधान, प्रकृतिवाले को नहीं देना चाहिये। पित्तप्रधान रोग और पित्तप्रधान ऋतु मे कदाचित् उपयोग करना हो तो शीतल औषधि (या अनुपान) के साथ मिलाकर देना चाहिये।

गर्भिणी, सूतिका, छोटे बच्चे और अति वृद्ध मनुष्य के साधारण ज्वर में इसका उपयोग नहीं होता। ऐसे ही रक्तपित्त, उर:क्षत, मूत्रकृच्छ् और मूत्राघात के रोगी को यह अश्वकंचुकी रस नहीं देना चाहिये।

(११) त्रिभुवन कीर्ति रस

विधि-शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध बच्छनाभ, सोंठ, मिर्च, पीपल, सोहागे का फूला और पीपलामूल प्रत्येक समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। पश्चात् तुलसी, अदरक और धतूरे के रस की क्रमश: ३-३ भावनाएं देकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (यो.र.)

त्रिभुवनकीर्ति रस के पाठ में वृद्ध परम्परा अनुसार औषधि गुणधर्म शास्त्रकार ने जीरा और सौंफ ये दोनों औषधिया अधिक मिलाई हैं तथा हमने गुण विवेचन भी उसके अनुसार ही लिखा है।

कितने ही चिकित्सक धतूरे के रस की भावना के स्थान में पीले धतूरे (सत्यानाशी) के स्वरस की भावना देते हैं, उनकी मान्यता है कि सत्यानाशी की भावना देने से मलेरिया पर विशेष लाभ होता है। कोष्ठबद्धता हो तो दूर करता है तथा कफस्राव अधिक कराता है। हमारे यहाँ धतूरे के रस का ही उपयोग होता रहता है।

मात्रा-१ से २ गोली। दिन में २ समय, अदरक के रस और शहद के साथ या अन्य रोगानुसार अनुपान के साथ देवें। सन्निपात में आवश्यकता पर ३-३ घण्टे बाद एक-एक गोली देते रहना चाहिए। कफप्रधान ज्वर मे सुवर्णबंग और अर्कमूलत्वक् के साथ मिलाकर शहद से दिन में २ या ३ बार दें।

उपयोग-यह रस कफघ्न, ज्वरघ्न, स्वेदल और वेदनाहर है। वातप्रधान और कफप्रधान नूतन ज्वर, वातकफज्वर (Influenza), ठंड देकर आने वाले संतत ज्वर और सततज्वर एवं कफप्रधान सन्निपात को नष्ट करता है। रोमांतिका (छोटी माता) में जब त्रास बढ़ गया हो कुछ दाने बाहर दीखते हों तब भीतर का विष बाहर लाने के लिए सहायक औषधि के साथ इस रस का उपयोग करने से ३-४ दिनों में ही रोग-शमन हो जाता है। ऐसे ही कफ प्रधान शोथ, कंठ में रही हुई गांठ का शोथ, श्वासनलिका का उपताप या अन्य कफविकार और वात प्रकोप से आने वाले ज्वर, इनको यह रस सत्वर दूर करता है।

यह त्रिभुवनकीर्ति रस वातज्वर, कफज्वर और वातकफात्मक ज्वर में अत्युत्तम औषधि है। यह रस बच्छनाभ प्रधान औषधियों में एक अत्युत्तम

कल्प है। इसका उपयोग वातात्मक, कफात्मक, और वातकफात्मक ज्वर इन दोषप्रधान विषमज्वरों में और सन्निपातिक ज्वरों में होता है। य
कल्प तीक्ष्ण गुण युक्त होने से पित्तप्रधान सन्निपात या पित्तप्रधान अन्य ज्वर में प्रयुक्त नहीं करना चाहिये। कदाच उपयोग करना पड़े तो प्रवालपि
या अन्य कोई पित्तशामक औषधि मिलाकर कम मात्रा में करना चाहिए।

रोमान्तिका या अन्य कफप्रधान शोथ और अन्तरेन्द्रिय के उपताप से उत्पन्न ज्वर (कण्ठ में स्थित ग्रन्थियों के शोथ या अन्य आन्तरि
वेदना से उत्पन्न ज्वर) में कफप्रधान दोष होने पर यह औषधि अप्रतिम कार्य करती है।

त्रिभुवनकीर्ति रस में ज्वरनाशक धर्म बच्छनाभ का है, किन्तु बच्छनाभ में हृदय अवसादक दोष है। उसे दूर करने के लिये स्वेदन औ
ज्वरघ्न गुण बढ़ाने के लिये अन्य द्रव्यों का संयोग करा तुलसी, अदरक और धतूरे के पत्तों के रस की भावना दी है। इन भावनाओं के हे
से वातकफनाशक कल्प बना है।

त्रिभुवनकीर्ति की योजना अति सावधानीपूर्वक की है, फिर भी बच्छनाभ का धर्म उसमें रहे हुए उग्र विष के हेतु से तत्काल प्रतीति
आता है। इस बच्छनाभ के हेतु से ही रोगी की नाड़ी मन्द होती है। यद्यपि नाड़ी की गति विशेष मन्द न होने के लिये इस औषधि में पीपलामूल
पीपल, सोंठ, कालीमिर्च, तुलसी का रस और अदरक का रस इन हृदय पौष्टिक औषधियों की योजना की है तथापि बच्छनाभ का स्वभाव पूर्ण
में दूर नहीं होता।

त्रिभुवनकीर्ति रस का सेवन करने पर तत्काल हृदय, मस्तिष्क स्थित हृदय केन्द्र, त्वचा और वृक्क के ऊपर परिणाम होता है। नाड़ी
वेग और बल का ह्रास होता है। त्वचा और स्वेद ग्रन्थियां उत्तेजित होती हैं, आध घण्टे में ही प्रस्वेद आने लगता है, मूत्र का परिमाण ब
जाता है, हृदय के स्पन्दन और बल न्यून हो जाते हैं, नाड़ी शिथिल होती है, श्वासोच्छवास क्रिया मन्द होती है, सब स्थानों की वेदना
ह्रास होता है, वातवाहिनियों के अन्तिम सिरे संज्ञाशून्य हो जाते हैं तथा उपताप और शोथ में रक्त स्वआशय में वापस आने की महत्व की क्रिया
भी इस रस के योग से होती है।

सर्वांग में कम्प, नाड़ी का विषम वेग, नाड़ी तीव्र और दृढ़ होना, शिर में विलक्षण वेदना, जड़ता, बार-बार छींकें आना, अंग जकड़ जाना,
मस्तिष्क, छाती, पीठ आदि में शूल चलना, किञ्चित् चलने पर शूलवृद्धि होना, उष्ण जल या उष्ण पदार्थ सेवन की इच्छा, उष्ण पदार्थ सेव
से अच्छा लगना, मुंह में बेस्वादुपन, पैरों में ऐंठन, कान में से आवाज निकलना, शुष्क त्रासदायक और असह्य वेग युक्त कास, कास के सा
कण्ठ में पीड़ा होना, कास के हेतु से छाती और पीठ में शूल चलना, कण्ठ ग्रन्थियां सूज जाने से कास आना, कण्ठ बैठ जाना, इतने त
कि बोलने में दर्द होना) स्वर यन्त्र, ग्रसनिका, कण्ठ और मस्तिष्क में शूल चलना, रोंगटे खड़े होना, सन्धि-सन्धि में दर्द, नासिका के भीत
वेदना, इन लक्षणों से युक्त नूतन ज्वर (किन्तु निराम ज्वर) में त्रिभुवनकीर्ति रस का उपयोग होता है। जब तक लालास्राव आदि सामज्वर के
लक्षण हों, तब तक यह रस नहीं देना चाहिये।

ज्वर वेग तीव्र न हो मन्द हो, सर्वाङ्ग में अतिशय जड़ता, चलने की इच्छा का अति अभाव, आलस्य, आफरा, उदर जकड़ जाना, अतिश
निद्रा, सारे शरीर में मन्द-मन्द वेदना, कास, छाती भारी और जकड़ी हुई, नाक और मुंह में से कफस्राव, जुकाम, कण्ठ में दर्द, हाथ पैर
टूटना, सन्धि-सन्धि में पीड़ा मस्तिष्क जकड़ जाना, गरदन में दर्द, प्रस्वेद न आने से शिथिलता और जड़ता भासना ये लक्षण होने पर त्रिभुवनकीर्ति
की योजना करनी चाहिये।

विषम ज्वरों में संतत और सततज्वर में इस औषधि का उपयोग होता है। अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर में शीतभंजी, महाज्वरांकुश,
नारायण ज्वरांकुश आदि उपयोगी हैं। सततज्वर ८-१० दिनों तक रहता है, बीच में नहीं उतरता। संततज्वर दिन में कुछ समय के लिये उत
जाता है, फिर आ जाता है। पीठ में पीड़ा होकर ज्वर का प्रारम्भ होना, नाड़ी का विषम वेग, प्रस्वेद कम आना, सर्वाङ्ग में व्यथा, बेहोशी
न होना, प्रलाप करने पर अच्छा लगना, शांत रहने पर व्याकुलता, मुख में शुष्कता, शीतल की अपेक्षा उष्ण जलपान की इच्छा, उष्ण जलपान
से तृषा कम होना और कुछ अच्छा लगना ये लक्षण होने पर इसे तुलसी के रस और शहद या तुलसी के क्वाथ के साथ देवें।

इस रस का उपयोग श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपात (न्युमोनिया और इन्फ्लुएञ्जा) में उत्तम प्रकार से होता है। (न्युमोनिया में इस रस
के साथ अभ्रकभस्म, श्रृङ्गभस्म और चन्द्रामत रस मिलाकर देने से अच्छा लाभ पहुँचता है।) आन्त्रिक सन्निपात में विशेषतः पित्तप्रकृति के रोगी
को यह औषधि देने पर अधिक त्रास होता है। आन्त्रिक सन्निपात में ज्वर-वेग अधिक हो तथा नाड़ी तीव्र और दृढ़ होने पर क्वचित त्रिभुवनकीर्ति
रस को प्रवालपिष्टी, गिलोयसत्व और सितोपलादि चूर्ण के साथ मिलाकर दिया जाता है।

श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपात में ज्वर वेग मर्यादा में हो, मन्द, भारी नाड़ी, अङ्ग में अतिशय व्यथा, कमर और पीठ में से शूल निकलना
और पीड़ा होना, शीतल वायु, शीतल जल और शीतल उपचार से दुःख होना और सब लक्षण बढ़ जाना, मस्तिष्क में भारीपन मन्द वेदना,
कण्ठ में दर्द होना और कुछ शोथ-सा भासना, खांसी, पसलियों में पीड़ा होना, खांसी आने पर अधिक पीड़ा होना, श्वास लेने में व्यथा, खाँसने
पर छाती दब रही है, ऐसा आभास होना आदि लक्षण होने पर त्रिभुवनकीर्ति रस का उपयोग करना चाहिये।

वातकफ-प्रधान श्लैष्मिक सन्निपात (Influenza) में त्रिभुवनकीर्ति का उत्तम उपयोग होता है। घबराहट, दाह आदि पित्त लक्षण न हों, वक्षान्न में मन्द शूल, अंगुलियों की सन्धि, और शरीर की सब संधियों में दर्द, हाथ-पैर टूटना, जुकाम होकर फिर सूखी त्रासदायक खाँसी, कण्ठ की श्लैष्मिक कला में क्षोभ, क्वचित् यह क्षोभ बढ़कर फुफ्फुस या फुफ्फुसावरण का शोथ उत्पन्न होना और उसके साथ में अन्य आनुषंगिक लक्षण उपस्थित होना आदि चिह्न होने पर त्रिभुवनकीर्ति रस उत्तम प्रकार से उपयोगी होता है।

रोमान्तिका रोग जैसा प्रतीत होता है, ऐसा मामूली नहीं है। इसकी पिटिका पूर्णांश में बाहर नहीं आई तो भविष्य में भिन्न-भिन्न प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। सूक्ष्म पिटिकाएं, नेत्र से जलस्राव, बार-बार छींके आना, जुकाम, नाक में से पतला श्लेष्मस्राव, ज्वर, मुँह में लाल दाने होना और व्याकुलता से सब रोमान्तिका के सामान्य लक्षण हैं। इस अवस्था में त्रिभुवनकीर्ति रस देने से रोमान्तिका का विष बाहर आ जाता है। इस विकार में बहुधा ३-४ दिन में, ज्वर, कास आदि बढ़ जाते हैं। श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपात के लक्षण कुछ-कुछ भासते हैं तथा पिटिकाएँ आधी बाहर आ जाती हैं, ऐसी बढ़ी हुई परिस्थितियों में भी त्रिभुवनकीर्ति रस का उत्तम उपयोग होता है। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना-पित्तप्रधान ज्वर में यह औषधि न दें। कदाच देनी पड़े तो प्रवालपिष्टी या अन्य पित्तशामक औषधि मिलाकर देवें।

(१२) त्रैलोक्य चिन्तामणि रस

विधि- रससिंदूर, हीराभस्म, सुवर्णभस्म, रौप्यभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, मुक्ताभस्म, शंङ्खभस्म, प्रवालभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल इन १३ औषधियों को समभाग मिलाकर चित्रकमूल के क्वाथ के साथ ४ दिन तक खरल करें। पश्चात् आक का दूध, निर्गुण्डी का क्वाथ, जमीकन्द का रस और थूहर का दूध इन चार द्रव्यों में ३-३ दिन तक क्रमशः खरल करें। फिर शुद्ध पीले रंग की बड़ी कौड़ियों में इसे भरे और सोहागे को आक के दूध में खरल करके कौड़ियों के मुंह को बन्द करें। सब कोड़ियों को दो सरावों में भर, कपड़मिट्टी कर सुखाकर गजपुट देवें। स्वाँग शीतल होने पर कौड़ीसह इस औषधि को खरल करें और इसके साथ समान परिमाण में रससिंदूर और रससिंदूर का चतुर्थांश वैक्रान्त भस्म मिलाकर सहिंजने के मूल के क्वाथ की ७, चित्रकमूल [illegible] २१, अदरक के रस की ७ और जम्भीरी नींबू या बिजौरे के रस की ७ भावनाएं दें। फिर शुष्क चूर्ण बनाकर सोहागे का फूला, शुद्ध बच्छनाभ और कालीमिर्च तीनों उक्त चूर्ण से १/४-१/४ भाग तथा लौंग, सोंठ, हरड़, पीपल, जायफल ये प्रत्येक बच्छनाभ से चतुर्थांश मिलाकर बिजौरे के रस और अदरक के रस की १-१ भावना से यह रस सिद्ध होता है। (यो.र.)

सूचना-रससिंदूर, हीराभस्म आदि १-१ तोला लेने पर इसका वजन ९ सेर लगभग हो जाता है। अतः इसी मान से न्यूनाधिक भी बनाया जा सकता है।

मात्रा-१/२ से २ रत्ती तक, शहद-पीपल या अदरक के रस और शहद अथवा सोंठ के क्वाथ और गुड़ के साथ देवें।

उपयोग-यह रसायन अनेक रोगों को दूर करने के लिये विविध अनुपानों के साथ दिया जाता है। यह अग्नि, बल, तेज और वीर्य को बढ़ाता है विष का हरण करता है और शरीर को दृढ़ बनाता है। इसके सतत सेवन से अकाल मृत्यु और वृद्धावस्था दूर होती है तथा शरीर पुष्ट होता है। कास, क्षय, श्वास, वात, विद्रधि, पाण्डु, शूल, ग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, प्लीहा, जलोदर, अश्मरी, तृषा, शोफ, हलीमक, उदररोग, लूताविष, मूत्रकृच्छ, भगन्दर, विविध ज्वर, अर्श, कुष्ठ, अनेक साध्य और कष्ट साध्य व्याधियाँ इसके सेवन से दूर होती हैं।

त्रैलोक्यचिन्तामणि तीक्ष्ण और उष्ण है। आन्तरिक अवयवों में विशेषतः हृदय, फुफ्फुस, वातवाहिनियां और वातवाहिनी केन्द्र को तत्काल उत्तेजित करता है, तथा शरीर में नूतन बल का संचार कराता है। इस दृष्टि से यह रस बल्य, वीर्यवर्धक, ओजस्कर और जीवनीय है। इसका उपयोग करने के समय इस बात पर लक्ष्य देना चाहिये कि पित्तदोष की वृद्धि तो नहीं हुई है? अथवा पित्तदोष का साथ में अनुबन्ध तो नहीं है? कफदोष की वृद्धि, कफ का अनुबन्ध या कफात्मक दोष प्रकोप होने पर इस औषध का उपयोग उत्तम प्रकार से होता है।

श्लैष्मिक सन्निपात (Influenza) और श्वसनक सन्निपात (Pneumonia) तथा श्लैष्म वृद्धि के विविध प्रकारों पर इस रसायन का अच्छा उपयोग होता है। विशेषतः इन रोगों की अन्तिम अवस्था में इस औषधि का उपयोग करना चाहिये।

जिस तरह अन्य उत्तेजक औषधियाँ उत्तेजना बढ़ाकर फिर विपरीत अवसादकता की प्राप्ति कराती हैं उस तरह इस औषधि के उत्तेजक कार्य के पश्चात् पुनः हृदय या नाड़ी में क्षीणता नहीं आती। यह इस औषधि में महान् सद्गुण है। इसके सेवन से हृत्संनिध भाग में रक्त वाहिनियाँ विकसित होकर हृदय का कार्य उत्तम प्रकार से होता है।

इसका उपयोग हृदय के शूल पर उत्तम प्रकार का होता है। कफप्रधान या कफवात प्रधान दोष पर यह प्रयुक्त होता है।

रक्त दबाव या आवश्यक प्राण वायु की पूर्ति में न्यूनता होने पर अन्तरावयवों को दुर्बलता प्राप्त होती है फिर वे अपना कार्य नियमित नहीं कर सकते। इस स्थिति में त्रैलोक्यचिन्तामणि उपयोगी है।

अकस्मात् अपवात या मानसिक आघात होने पर जब हृदय की क्रिया क्षीण होती है और नाड़ी मंदता, प्रस्वेद, चक्कर, बेहोशी, भयंकर

व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, तब ऐसी परिस्थिति में त्रैलोक्य चिन्तामणि का कार्य अति उत्तम होता है। कारण, हृद्य औषधियों में इस रस का स्थान बहुत ऊंचा है। इसका प्रभाव हृदय, फुफ्फुस और मध्यम कोष्ठ पर अधिकार रखने वाली सब वातवाहिनियों के केन्द्रस्थान और सहस्रारपर होता है। इन सबको यह रसायन शक्ति प्रदान करता है और सबको प्राणवायु की प्राप्ति भलीभांति कराता है। इस हेतु से सब इन्द्रियां उत्तेजित होती हैं।

श्वसनक और श्लेष्मिक सन्निपात स्वतन्त्र होने एवं वात कफ ज्वर, आँत्रिक ज्वर या अन्य ज्वर के उपद्रव रूप में उत्पन्न होने पर उर:स्थान में शोथ और फिर कफ संचय, यह वस्तु स्थिति प्रतीत होती है। इन सन्निपातों में प्रारम्भ में कुछ दिनों तक दोष दूष्यों का विवेक करना पड़ता है। परन्तु उपद्रव उत्पन्न हो जाने पर बहुधा एक ही अवस्था प्राप्त होना संभव है। वह यह कि उर:स्थान में कफसंचय होकर फुफ्फुसों के कोषसमूह और श्वासवाहिनियां कफ से रुद्ध होते हैं। उनको आवश्यक प्राणवायु नहीं मिल सकता। परिणाम में हृदय के चारों और रक्त की सम्यक् पूर्ति नहीं होती इस कारण में वातवाहिनियों से मिलने वाली वायु की पूर्ति भी इन अवयव समूहों को अच्छी तरह नहीं होती। आगे उस कफ का संचय बढ़कर श्वसनमार्ग, रक्ताभिसरण मार्ग और वातमार्ग सब रुद्ध होकर रोगी कालवश हो जाता है। इस स्थिति में यह रस उत्तम कार्य करता है। इसके योग से श्वासवाहिनियां उत्तेजित होकर संचित कफ को बाहर फेंकने लगती हैं। हृदय के समीप रक्तवाहिनियां विकसित होकर अभिसरण क्रिया सम्यक् करने लगती हैं और वातवाहिनियां उत्तेजित होकर सर्वत्र प्राणवायु पहुँचाने लगती हैं। इस तरह त्रैलोक्यचिन्तामणि का कार्य तीनों प्रकार से होने लगता है।

हृदयशूल होने पर स्तम्भ, सर्वाङ्ग में भारीपन, हाथ-पैर में शून्यता, हाथ-पैर भारी हो जाना, जिह्वा में शून्यता आना, पीठ और सर्वाङ्ग में झनझनाहट, मुँह में जल आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस हृच्छूल का कारण शीतोपचार या वर्षाऋतु में वर्षा हो जाने पर शीतलवायु हो, अथवा कासश्वास विकार के पश्चात् श्लेष्म संचित होकर या अनेक दिनों तक रहने वाले सन्निपातिक ज्वर के अन्त में कफसंचय होकर अथवा मनोव्याघात के बिना कफ संचय उपस्थित हुआ हो, तो त्रैलोक्यचिन्तामणि का प्रयोग करना चाहिए।

यह रस अग्नि को बढ़ाता है; परन्तु यह कार्य हिंग्वष्टक के सदृश उत्तान स्वरूप का दीपन कार्य नहीं है। हिंग्वष्टक या अम्लरस से आमाशय की श्लैष्मिक कला और पित्तोत्पादक ग्रन्थियाँ केवल उसी समय के लिए उत्तेजित होकर पाचक पित्त का स्राव कराते हैं। यह कार्य अधिक काल के लिए नहीं है। इसके विपरीत त्रैलोक्यचिन्तामणि का कार्य अति प्रभावशाली, वीर्यवान् और स्थिर होता हे। इस रसायन का कार्य आमाशय, ग्रहणी, यकृत्, अग्न्याशय और अन्त्र पर होता है। इतना ही नहीं आंत में रही रसांकुरिकाओं (संशोषियों Intestinal Villi) की संशोषण क्रिया, रस-रक्त में मिलने के पश्चात् उसकी रूपान्तर क्रिया, एवं रक्त में से उत्तरोत्तर धातु बनाने की क्रिया सब पर इसका परिणाम होता है। इन सबसे कफ विकृति विशेषत: कफ के गाढ़ापन, चिकनापन और स्थिरपन ये गुण बढ़कर नाड़ियाँ रुद्ध हो गई हों, और उसके हेतु से रक्त और प्राणवायु की योग्य पूर्ति न होने से मंदाग्नि हुआ हो, तो त्रैलोक्यचिन्तामणि रस देने से कफ की विकृति नष्ट होती है। फिर पाचक अग्नि प्रदीप्त होकर योग्य पचन करने लगती है। इस दृष्टि से मूल ग्रन्थ में 'अग्निं दीपयते' यह गुणधर्म दर्शाया है।

स्नायुओं के योग से विविध क्रियायें सरलतापूर्वक योग्य होने पर शरीर सबल रहता है। परन्तु स्नायुओं की क्रिया योग्य तब हो सके, जब उन पर और वातवाहिनियों पर वायु का कार्य उत्तम रीति से होता रहे। जब कफसंरोध से वायु का सम्यक् कार्य नहीं होता तब निर्बलता की प्राप्ति होती है। ऐसी अवस्था में त्रैलोक्यचिन्तामणि देने से कफसंरोध दूर होता है, वायु का कार्य योग्य रूप से होने लगता है तथा बल की वृद्धि होती है।

शारीरिक शुक्र से सत्वरूप ओज* कल्पना आयुर्वेद ने स्पष्ट की है। इसके समान कल्पना आधुनिक वैद्यक में नहीं मिलती। यह ओज हृदय में है और समग्र शरीर में फैला हुआ है। इसकी सुस्थिति पर शारीरिक सब व्यापार अवलम्बित हैं। ओज अच्छी तरह उत्पन्न कर उसे सारे शरीर में फैलाने का कार्य इस त्रैलोक्यचिन्तामणि द्वारा होता है। इसी गुण के हेतु से हृदय जब क्षीणतर होने लगता है तब तत्काल उत्तेजना देने के लिये इस रसायन का उपयोग किया जाता है।

शरीर में उत्पन्न होने वाले विविध सेन्द्रिय विष का रक्त में शोषण होकर कफप्रधान या कफवातप्रधान लक्षण उत्पन्न होने पर इस औषध का उत्तम उपयोग होता है। कफप्रधान कास और श्वास में रस रसायन का अच्छा उपयोग होता है।

पक्षाघात की अन्तिम अवस्था या अन्य वातव्याधि के अन्त में रोगी अत्यन्त क्षीण, दुर्बल और ओजयक्षययुक्त होने पर इस रस की योजना करनी चाहिये।

संक्षेप में, त्रैलोक्यचिन्तामणि रस हृद्य, ओजस्कर, अग्निप्रदीपक, बलवर्द्धक और धातु साम्य लाने वाला है। अत्यन्त वीर्यवान् और तीव्र होने पर इसका उपयोग विशेषत: कफप्रधान और कफवातप्रधान विकृति पर होता है। जब स्रोतस कफ में रुद्ध होती है तब इस रस का उपयोग करना चाहिये।

(औ. गु. ध. शा. के आधार से)

---

* ओज यह मस्तिष्कस्थ हृदय के भीतर रहता है। उसे ब्रह्मवारि (Cerebro Spinal fluid) संज्ञा दी गई है। (स्व. ठा. श्री नाथूसिंह जी)

(१३) जयमंगल रस

विधि–सिंगरफ से निकाला हुआ पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला, ताम्रभस्म, बंगभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, सेंधानमक और सफेद मिर्च प्रत्येक एक-एक तोला, सुवर्णभस्म २ तोले, लोहभस्म १ तोला और रौप्यभस्म १ तोला लेवें। सबको यथाविधि मिला, खरलकर धतूरे के पत्तों के रस, हारसिंहार के पत्तों के रस, दशमूल के क्वाथ और चिरायते के क्वाथ की क्रमशः ३-३ भावनाएँ देकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनावें। (भै.र.)

मात्रा–१/२ से १ रत्ती तक। दिन में २ से ३ समय, जीरे के चूर्ण और शहद के साथ या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह बड़ी दिव्य औषधि है। जीर्ण ज्वरों को दूर करती है और मस्तिष्क में पहुँची हुई ज्वर की उष्णता को दूर करके उसे शान्त बनाती है। बहुत काल का पुराना महाघौर जीर्णज्वर, साध्य और कष्टसाध्य ज्वर, वात पित्त आदि भिन्न-भिन्न दोषों से होने वाले ज्वर, विषमज्वर, मेदोगत ज्वर, मांसाश्रित ज्वर, अस्थि और मज्जा में रहा हुआ ज्वर, अतंरवेग, और बाह्यवेग वाला उग्र ज्वर, नाना प्रकार के दोषों से उत्पन्न ज्वर, शुक्रगत ज्वर तथा अन्य ज्वरों को यह रसायन दूर करता है। बलवीर्य की वृद्धि करता है तथा अनेक रोगों को नष्ट करता है एवं रक्त दबाव बढ़ गया हो तो उसे भी कम करता है।

अनेक समय विषमज्वर कई दिनों तक त्रास पहुँचाता रहता हो, मुदती ज्वर औषधि या पथ्य में भूल होने से २-२ मास तक या इससे भी ज्यादा समय का हो गया हो, अन्य किसी भी प्रकार के ज्वर, जीर्ण होकर मांस आदि धातु के आश्रित रहे हुए हों और शीतल उपचार से तथा गरम उपचार से भी बढ़ जाते हों, ऐसे ज्वरों को नष्ट करने के लिये यह रस अद्वितीय है।

इस रस के सेवन से मस्तिष्क में स्थित उष्णता उत्पादक और नियामक केन्द्र स्थान सबल बनते हैं, अन्तर में रहे हुए ज्वर के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, सेन्द्रिय विष जल जाता है, निद्रा आने लगती है। दाह शमन हो जाता है, कफ सरलता सेनिकल जाता है, दुष्ट कफ की उत्पत्ति बन्द हो जाती है, वातवाहिनियां बलवान बनने लगती हैं, मन प्रफुल्लित बनता है एवं क्षुधा प्रदीप्त होने लगती है। परिणाम में थोड़े ही दिनों में शरीर नीरोग, दोष रहित और तेजस्वी बन जाता है।

जब ज्वर-विष रक्त आदि धातुओं में लीन रहता है, वात, पित्त कफ तीनों धातुयें निर्बल हो जाने से जीवनीय शक्ति ज्वरविष या कीटाणुओं को नष्ट करने में असमर्थ हो गई हो, हृदय की शिथिलता के हेतु से बच्छनाभ प्रधान औषधि अनुकूल न रहती हो या अधिक अवसादकता लाती हो तब विषघ्न, ज्वरघ्न, बल्य, हृदय और पचनेन्द्रियों की संशोधक गुणयुक्त औषध की आवश्यकता होती है। ये सब गुण जयमंगल रस में अवस्थित हैं।

जुकाम होने या शीतलवायु लग जाने के बाद कफप्रकोप होकर ज्वर आ जाता है। फिर योग्य उपचार यथा समय न होने या अपथ्य सेवन करने पर कफ दूषित होता है, अति चिपचिपा और दुर्गन्धमय बन जाता है। फिर खांसी चलती रहती है और श्वसन संस्थान में खिंचाव होता। भीतर से कफ की दुर्गन्ध आ रही है, ऐसा बार-बार रोगी को भास होता है। ज्वर १००° लगभग बना रहता है। इस कफ को सरलता से बाहर निकालने के लिये सितोपलादि, लऊकसपिस्तां या कफकर्तन रस आदि की योजना की जाती है। किन्तु नयी कफोत्पत्ति रोकने और ज्वर का दमन करने के लिये साथ-साथ जयमंगल का सेवन करना आशीर्वाद के समान है। इसके सेवन से राजयक्ष्मा की प्राप्ति का भय दूर होता है और रोग सरलता से शमन हो जाता है।

जब राजयक्ष्मा में ज्वर वेग अधिक रहने से व्याकुलता और निर्बलता अधिक आई हो तब, सुवर्ण प्रधान अन्य औषधि का उपयोग नहीं होता परन्तु यह रस न्यून मात्रा में निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। इसके सेवन से क्षय के कीटाणु और विष नष्ट होते हैं और शारीरिक उत्ताप भी मर्यादित रहता है। यदि रक्त दबाव बढ़ा हो तो उसे भी यह कम कराकर समान बनाता है।

बालक, स्त्रियों या कोमल प्रकृति के पुरुष रात्रि को असमय पर या अस्थान पर अकेले चले जाते हैं तब भय से वातवाहिनियों और मनपर आघात होकर अनेकों को ज्वर आ जाता है। प्रलाप, भीति, दुःस्वप्न, जाग्रत अवस्था में भी भय की कल्पना, कम्प, हृदय की चंचलता और उन्माद के लक्षणसह ज्वर प्रतीत होता है। ऐसी अवस्था में जयमंगल रस देने से उत्तम लाभ पहुँचता है।

ज्वर में या बिना ज्वरावस्था में कभी शोक आदि कारणों से मानसिक आघात पहुँचने पर सन्निपातिक ज्वर की संप्राप्ति की जाती है। लक्षण अनेक सान्निपातिक ज्वरों के साथ मिल जाते हैं, कुछ-कुछ भेद भी रहता है। वातवाहिनियाँ, वातवहानाड़ी केन्द्र, सहस्रार और मन आदि शिथिल और दूषित हो जाते हैं। प्रलाप, अरुचि, विचार शक्ति का नाश, निद्रानाश, क्वचित् ज्वर और अतिसार, क्वचित् अतिसार का अभाव, नेत्र में बार-बार अश्रु आना, मुखमंडल निस्तेज हो जाना इत्यादि लक्षण प्रतीत होने पर जयमंगल रस देना चाहिये। जयमंगल रस से हृदय, मन और वातवाहिनियों के केन्द्र स्थान आदि का संरक्षण हेाता है और रोगनिवृत्ति में अच्छी सहायता मिलती है।

(१४) दुर्जलजेता रस

विधि–शुद्ध बच्छनाभ २ तोले, वराटिका भस्म ८ तोले और कालीमिर्च ९ तोले मिलाकर खरल करें। फिर अदरक के रस में ६ घन्टे

खरल करके मूंग के समान गोलियाँ बना लें।

मात्रा–१से ३ गोली। दिन में २ समय, जल के साथ। (यो.र.)

उपयोग–यह रस दुष्ट/जलवायु-जनित ज्वर, जुकामसहित ज्वर, शीतज्वर, अजीर्ण, मंदाग्नि, आमवृद्धि, आफरा, मलावरोध, शूल, श्वास-कास आदि रोगों को दूर करने में अति हितकर है।

इस रस के सेवन से कफदोष-दुष्टि कम होती है। पेशाब साफ आता है, पाचक पित्त की शुद्धि होती है तथा अतिसार और अजीर्ण भी दूर होते हैं।

इस रस का उपयोग वर्षाऋतु में कीचड़ के विष से उत्पन्न ज्वर पर बहुत अच्छा होता है। ज्वर आने पर जड़ता, अङ्गपर गीलापन, मुँह में चिकनापन और मीठापन, अङ्ग अकड़ जाना, उदर में वायु भरा रहना और भारीपन, क्षुधानाश और मीठी और दूषित डकारें आना, मलावरोध, पीठ से कमर तक शूल निकलने के समान भासना, जुकाम, मस्तिष्क में भारीपन आदि कफप्रधान लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसे समय पर इस रस का प्रयोग किया जाता है।

कई रोगियों को तमाखू के अत्यधिक व्यसन, मल्लादि के सेवन, क्विनाईन के अतियोग आदि कारणों से वृक्क स्थान दूषित हो जाने के हेतु से पारद प्रधान औषधि सहन नहीं होती, उनके लिए दुर्जलजेता रस आशीर्वाद के समान तत्काल फलप्रद बनता है। नूतन ज्वर में तो यह व्यवहृत होता ही है, इसके अतिरिक्त जीर्ण ज्वर के समय भी संगृहीत आम प्रकोप और विष को जलाने और ज्वर को निवृत्त करने में कई रोगियों को अत्यधिक अनुकूल रहता है।

आमाशयस्थ कफदोष विकृति होने पर आमाशय के स्राव, अम्लता और पिच्छिलता कम होती है। इस हेतु से उदर में भी भारीपन, क्षुधानाश, उबाक, मुख में मधुर जल आते रहना, थोड़ा भोजन करने पर भी सम्यक् पचन न होना, उदर में आफरा और मन्द-मन्द व्यथा, मल दुर्गन्धयुक्त, पतला अयोग्य मिश्रण वाला हो जाता है और मूत्र में पीलापन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस पर दुर्जलजेता रस दिया जाता है। इस रस के सेवन से स्राव नियमित होता है, कफ-विकृति दूर होती है। फिर अपचन और अतिसार की निवृत्ति होती है।

इस औषधि में पारद न होने पर भी रसायन समान गुण होने से शास्त्रकारों ने इसका "दुर्जलजेता रस" संज्ञा दी है। इस रस को अन्य आचार्यों ने अमृतकला निधि, अमृतवटी और त्रिपुरभैरव संज्ञा दी है।

(१५) हेमगर्भपोटली रस

विधि–शुद्ध पारद, ताम्रभस्म और गन्धक १-१ तोला, सुवर्ण भस्म (या वर्क) चाँदी भस्म, लोहभस्म और रससिंदूर प्रत्येक ६-६ माशे लेकर भेड़ के दूध की ३ भावनाएं देवें। फिर सोगठी (शिखरवाली गोली) बाँधकर सुखावें। इन सोगठियों को पृथक्-पृथक् नये रेशमी कपड़े से दृढ़ बाँध फिर सबको एक साथ गुच्छ के समान एक कपड़े में रख डोरे से बाँधकर हांडी में लटकावें। इस हाँडी के नीचे दण्डागन्धक इतना भरे की गन्धक पिघलने पर उसमें औषधि की पोटली डूब जाय। कपड़े की बत्ती को तैल में भिगोकर ताप देवें। लगभग आध या एक घन्टे में गन्धक पिघलने पर औषधि पचन होने लगती है, फिर आध या एक घण्टे में पाक हो जाता है। पश्चात् पोटली निकालकर शीतल होने देवें। पश्चात् सोगठियों को गरम पानी से धो लेवें और ऊपर लगी हुई गन्धक को चाकू से छीलकर साफ कर लेवें। (वै.चि. सा.)

मात्रा–१/२ से १ रत्ती तक पानी या अदरक के रस में घिसकर पिलावें। दिन में २ से ४ समय, २-२ घन्टे के बाद देवें।

उपयोग–हेमगर्भपोटली रस-त्रिदोष, मूर्च्छा, शीताङ्ग, श्वास, कफ, निमोनिया आदि दोषों को दूर करके रोगी को सचेत बनाता है। श्वसनक सन्निपात (निमोनिया), आंत्रिक सन्निपात (मधुरा) और अन्य सन्निपातों में हृदयक्षीणता, शरीर में अधिक शीतलता, श्वास का वेगमंद और नाड़ी का वेग अधिकाधिक क्षीण होते जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे समय पर इस रसायन का सेवन करने ये सब तीव्र लक्षण सत्वर शमन हो जाते हैं। एवं सन्निपात आदि रोगों में मस्तिष्क शून्य होकर रोगी बेसुध हो जाता है। तब यह औषधि अमृत समान गुण दर्शाती है। हृदय हो उत्तेजना देती है, क्षय, श्वास कफविकार, वातप्रकोप, मन्दाग्नि आदि दोषों को दूर करती है तथा आंतड़ी में उत्पन्न सेन्द्रिय विष को नष्ट करके रोगी को सचेत बनाती है।

दूसरी विधि–शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्धगन्धक २ तोले, सुवर्ण भस्म १ तोले, ताम्रभस्म ३ तोले और समीरपन्नग ६ माशे, इन सबको यथाविधि मिला घीकुंवार के रस में ७ दिन खरलकर सोगठी बाँधे। फिर इसका प्रथम विधि में लिखे अनुसार पचन करें। (औ. गु. ध. शा.)

वक्तव्य–हेमगर्भपोटली रस की इस कृति के साथ हम कासीस भस्म १ तोला भी मिलाते हैं। कासीस भस्म मिलाने से प्राणवायु (ऑक्सीजन) विशेष परिमाण में मिल जाता है।

सामान्य हेमगर्भपोटली रस अष्टसंस्कारित और षड्गुणगन्धक जारित पारद से बनाते हैं। एवं विशेष हेमगर्भपोटली रस पक्षच्छिन्न बुभुक्षित पारद और अभ्रकसत्व भस्म तथा माक्षिकसत्व भस्म मिलाकर बनाते हैं। दोनों के गुणधर्म में महदन्तर हो जाता है। दोनों के प्रयोग कई बार हमें करना पड़ा है।

मात्रा–१/८ से १ रत्ती तक आवश्यकता पर घिसकर देवें।

उपयोग–यह रस अतिशय तीव्र और उष्णवीर्य है। इसका उपयोग अति सम्हालकर करना चाहिये। यह औषधि आयुर्वेद के अमूल्य औषधि रत्नों में से एक उत्तम रत्न है। अनेक बार इस रस ने अत्यन्त पराकाष्ठा को पहुँचे हुए असाध्य और मृत्यु मुख में प्रवेश करने के लिये तैयार रोगियों को जीवन-दान दिया है। इतना होने पर भी इसका दुरुपयोग होने से रोगी को त्रास और बढ़ जाता है। इस रस के सेवन से तत्काल नाड़ी का वेग बढ़ जाता है, नाड़ी के स्पन्दन नियमित होते हैं एवं रक्ताभिसरण क्रिया सबल बनती है।

हेमगर्भ का उपयोग सान्निपातिक ज्वर की अन्तिम अवस्था में बहुत अच्छा होता है। आन्त्रिक सन्निपात (मोतीझरा) श्वसनक सन्निपात (न्यूमोनिया), श्लैष्मिक ज्वर (इन्फ्लुएञ्जा)या अन्य सन्निपात की अन्तिम दशा में शरीर शीतल होने लगता है, श्वास बढ़ जाता है, नाड़ी अति मन्द और छिन्न हो जाती है, तन्द्रा आ जाती है, शरीर पर विशेषत: कपाल पर शीतल प्रस्वेद आता है। यह स्वेद अधिकतर आता है और हाथ-पैर शीतल आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसी अवस्था में यह रस अति उपयुक्त है। यह अवस्था होने पर शारीरिक उत्ताप अति कम होने पर इसका कार्य अति उत्तम होता है। विशेषत: श्लैष्मिक ज्वर और श्वसनक-सन्निपात में तो यह अत्युत्तम माना गया है। परन्तु इस स्थिति में उपयोगी होने वाले हृदयोत्तेजक औषध को श्लैष्मिक आदि सन्निपातों की बिल्कुल प्रथमावस्था या द्वितीयावस्था में देने पर अति हानि होती है। ज्वर भयङ्कर बढ़ जाता है, नाड़ी वेग से चलने लगती है तथा किसी रोगी के मुँह से रक्त गिरने लगता है।

ऋतु परिवर्तन से होने वाले अतिसार (अपचनजनित विसूचिका) और जन्तुजन्य विसूचिका में अत्यधिक दस्त लग जाने पर नाड़ी और हृदय की गति क्षीण हो जाती है, फिर श्वास प्रकोप हो जाता है, उदर देखने पर बैठा-सा भासता है। भयङ्कर तृषा, व्याकुलता, हाथ-पैर और समस्त शरीर शीतल आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। अन्त में नाड़ी बिल्कुल डोरी सदृश कृश, मन्द और छिन्न हो जाती है, क्वचित् नाड़ी हाथ को भी नहीं लगती। इस स्थिति में हेमगर्भ पोटली रस अति उपयुक्त है। यह रस अदरक के रस में घिस, थोड़ा शहद मिलाकर देना चाहिये। जैसे-जैसे मात्रा शोषित होती है वैसे-वैसे प्रकृति सुधरने लगती है।

तमक, प्रतमक, ऊर्ध्व और महाश्वास में हेमगर्भ का अच्छा उपयोग होता है। परन्तु खूब सम्हालपूर्वक कम मात्रा में देना चाहिये।

अपतन्त्रक आदि वातरोग में तन्द्रा, भ्रम, सन्यास आदि लक्षण होने पर कफाधिकता हो तो इसका उत्तम उपयोग होता है।

उरस्तोय और कुक्षिशूल विकार में ज्वर कम होने और नाड़ी की क्षीणता बढ़ने पर हेमगर्भपोटली रस देना चाहिए।

प्रसूता के वातप्रकोप में हेमगर्भ अति उपयुक्त है। प्रसव काल में प्रसव वेदना कम होकर नाड़ी क्षीण होने पर हेमगर्भपोटली रस दिया जाता है। (औ. गु. ध. शा. के आधार से)

सूचना–हेमगर्भपोटली रस का अनधिकारी पर प्रयोग होने से शारीरिक उत्ताप खूब बढ़ जाता है। क्वचित् मृत्यु हो जाने के बाद भी शरीरोष्मा अधिक रहती है। हेमगर्भ देने के पश्चात् जब तक उत्तेजना शमन न हो तब तक अन्य औषधि का कार्य बहुधा नहीं हो सकता। शमन क्रिया प्रारम्भ होने पर आवश्यकता अनुसार अन्य औषधि का प्रयोग हो सकता है।

(१६) पंचवक्त्र रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला, पीपल, कालीमिर्च और शुद्ध बच्छनाभ इन ६ औषधियों को समभाग मिला, काले धतूरे के पत्र के रस में एक दिन खरलकर (टीकाकार के मतानुसार ७ भावनाएँ देकर) मूंग के बराबर गोलियाँ बांधे। (शा. सं.)

मात्रा–१ से २ गोली। दिन में ३ समय अदरक के रस और शहद के साथ देवें, ऊपर त्रिकटु मिला हुआ आक के मूल का कषाय पिलावें।

उपयोग–पंचवक्त्र रस अति उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, व्यवायी और पीड़ाहर है। कफप्रधान सन्निपात में वातानुबन्ध होने पर पंचवक्त्र का उपयोग अति लाभदायक है। पित्तानुबंध में उपयोग नहीं करना चाहिए। कफवातात्मक सन्निपात और वातश्लेष्म ज्वर (Influenza) में यह रस विशेष लाभदायक है। पूयमेह के तीक्ष्ण दर्द, , मूत्रावरोध, पूय और शोथ आदि में पंचवक्त्र रस देने से पेशाब साफ आकर तीक्ष्ण दर्द सत्वर दूर होता है।

श्लेष्म-प्रधान सन्निपात में कफसंचय होने पर इस रस की योजना करनी चाहिये। कफ संचय होने पर कण्ठ में घर-घर आवाज, नाड़ी भारी और तेज श्वासोच्छवास के वेग की वृद्धि, ज्वरवेग मध्यम, भ्रम, प्रलाप, हाथ-पैर पटकना, शिर हिलाते रहना, कफ गिरने पर किञ्चित अच्छा लगना, कफ न निकलने पर अधिक त्रास, तन्द्रा शरीर में भारीपन, त्वचा में गीलापन आदि लक्षण होते हैं। इस पर इस रस का उत्तम उपयोग होता है।

कफज सन्निपात की इस अवस्था में त्रैलोक्यचिन्तामणि, हेमगर्भ, कालकूट, पञ्चसूत, समीरपन्नग, मल्लसिन्दूर इन सबका पृथक्-पृथक् लक्षणानुरोध से उपयोग होता है। पञ्चवक्त्र के लिये विशेष चिह्न यह है कि कफ के साथ वात का अनुबंध होना चाहिये।

श्वसनक सन्निपात (न्यूमोनिया) में बिल्कुल प्रारम्भ में इस औषध का उपयोग उत्तम प्रकार से होता है। तीक्ष्ण पार्श्वपीड़ा होकर चारों ओर फैलना, साथ-साथ श्वास लेने में त्रास, श्वासोच्छवास के साथ वेदना वृद्धि, किञ्चित् चलने पर दर्द होना, स्थिर रहे तब पार्श्व-पीड़ा का बल कम प्रतीत होना, सेक करने पर अच्छा लगना, स्नेह स्वेद उपचार करने पर भी प्रारम्भ में अच्छा लगकर पुन: पीड़ा पूर्ववत् होना। पीड़ित

स्थान पर दबाकर बाँधने से पीड़ा कम भासना, सन्धि-सन्धि में (अंगुलियों के साँधों में भी वेदना, नेत्रपर भारीपन, निद्रानाश, अंग अकड़ जाना, अंगों को स्पर्श भी सहन न होना, मध्यम ज्वर-वेग होने पर भी सहन न होना, मन्द-मन्द प्रलाप और अर्द्ध बेहोशी आदि लक्षण होते हैं। इस सन्निपात ज्वर में पञ्चवक्त्र का उपयोग उत्तम प्रकार का होता है।

वातकफ प्रधान ज्वर और श्लैष्मिक सन्निपात (एन्फ्लुएञ्जा) में वेदना अधिक, तन्द्रा, आलस्य, सर्वांग में पीड़ा, पर्वभेद, देह में गीलापन आदि लक्षण होने पर इस रस का उपयोग करना अति हितकर है। (औ.गु. ध.शा.)

सूचना-७ भावनायुक्त रस से किसी को धतूरे का नशा आये तो दही भात खिलावें या नींबू का रस जल में मिलाकर पिलावें।

(१७) मृत्युञ्जय रस

विधि-नींबू के रस से शुद्ध किया हुआ हिंगुल २ तोले, शुद्ध बच्छनाभ, शुद्ध गन्धक, कालीमिर्च, सोहागे का फूला और पीपल प्रत्येक १-१ तोला लें। सबको यथाविधि मिला अदरक के रस में ३ दिन खरल करके मूंग के बराबर गोलियाँ बनावें। (यो. र.)

मात्रा-१ से ३ गोली दिन में ३ समय अदरक के रस या जल से दें।

विविध अनुपान

सब प्रकार के ज्वरों में-शहद।

वातज्वर में-दही का तोड़।

दारूणसन्निपात में-अदरक का रस।

जीर्णज्वर में-नागरबेल के पान का रस और शहद या पीपल-शहद।

निमोनिया में-तुलसी का रस।

अजीर्ण ज्वर में-जम्भीरी नींबू का रस।

विषमज्वर में-काला जीरा और गुड़।

पक्षाघात और आमवात में-बेलपत्र का स्वरस और शहद।

वातज्वर और कफ ज्वर में-लवङ्गादि पाचन।

लवङ्गादि पाचन-लौंग १ माशा, कालीमिर्च ३ माशे सौंफ, पोदीना, मुलहठी सोंठ और गिलोय १-१ तोला लें। सबको मिला क्वाथकर ३ हिस्से करें। दिन में ३ समय ३-३ माशे मिश्री मिलाकर पिलावें।

उपयोग-कफज तथा वातकफ-प्रधान नवीन ज्वर, विषम ज्वर, जीर्ण ज्वर और सन्निपात का नाश करता है। अतिसार और कृमि रोग में भी उपयोगी है।

इस रस के सम्बन्ध में रसचण्डांशुकार ने लिखा है कि-

अव्यक्तः सिद्धिदः शुद्धो रोगघ्नः कीर्तिवर्द्धनः।
यशः प्रदः शिवः साक्षात् मृत्युञ्जयरसः स्मृतः॥

यह मृत्युञ्जयरसः अव्यक्त, सिद्धिदायक, शरीर शुद्धिकर, रोगहर, कीर्ति को बढ़ाने वाला तथा यश की प्राप्ति कराने वाला तथा लोक कल्याणकारी है।

यह रस कफघ्न और स्वेदल है। अन्त्रस्थ मल और आम का पाचन करता है, तथा विष को पसीना और मूत्र द्वारा निकालकर ज्वर का शमन करता है। पूयमेह (सुजाक) के तीक्ष्ण प्रकोप, मूत्रजलन और मूत्रनलिका के शोथ को १-२ दिन में ही दूर करता है।

कफज्वर में नासिका, कण्ठ, श्वासवाहिनियों और फुफ्फुसों में कफदुष्टि होने पर और वह भी बिल्कुल उत्तान स्वरूप (मामूली ऊपर-ऊपर के) होने पर ज्वर वेग मध्यम, आलस्य, मुख में मीठापन और चिकनापन, बार-बार पेशाब आना, मूत्र का सफेद रंग, अङ्ग में भारीपन, हाथ पैर टूटना आदि लक्षण प्रतीत होने पर मृत्युञ्जय रस को अदरक के रस और शहद के साथ देना चाहिये।

वात कफ प्रधान ज्वर में जुकाम, कास और सारा अङ्ग टूटना ये लक्षण होने पर मृत्युञ्जयरस देना अति उपकारक है।

अपचन से आये हुए ज्वर में इस रस को जम्भीरी नींबू के रस के साथ देने से क्लेदक कफ की शुद्धि होती है, पाचक पित्त-सबल बनता है और अजीर्ण दूर होकर ज्वर की निवृत्ति होती है।

श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपात की प्रारम्भिक अवस्था में कफाधिक्य होने पर इस रस का उपयोग होता है। पित्ताधिकता होने और रक्तमिश्रित कफ आने पर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

मलेरिया में क्विनाइन अच्छा लाभ पहुँचाती है। तथापि किसी-किसी को हानि भी पहुँचा देती है। ऐसे रोगियों को क्विनाइन अधिक दिन देने से ज्वर विशेष प्रकुपित होता है और धातुओं में लीन हो जाता है, फिर जल्दी नहीं छोड़ता। क्विनाइन के समान अपथ्य सेवन करने वालों का मलेरिया ज्वर भी धातुओं में लीन होकर दृढ़ हो जाता है। ज्वर १०१° से १०४° तक बढ़ जाता है। ऐसी अवस्था में अनेकों को शिर

भारीपन, प्रतिश्याय, कफकास आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसके लीन और उत्तान विष को जलाकर ज्वर दूर करने के लिए मृत्युञ्जय रस अधिक हितकारक है। १-१ रत्ती रस को सोंठ, नागरमोथा और धनियां के क्वाथ के साथ दिन में दो बार देते रहने से दूसरे दिन से ज्वर कम होने लगता है। उष्णता अधिक हो तो प्रवालपिष्टी २-२ रत्ती मिला देवें।

सूचना–कफप्रधान घोर तीव्र ज्वर में पूर्ण मात्रा दी जाती है। परन्तु अतियोग होने पर हृदय को हानि पहुँचाती है। स्त्री, बालक, वृद्ध और निर्बलों को मात्रा शक्ति अनुसार देवें। **छोटे बच्चों को भी उचित मात्रा में यह दिया जाता है।**

पित्तप्रधान ज्वर में इस रस का उपयोग नहीं करना चाहिये।

(१८) महामृत्युञ्जय रस

विधि–शुद्ध मल्ल, शुद्ध हरताल, शुद्ध बच्छनाभ और शुद्ध जमालगोटा एक-एक तोला, सोहागे का फूला और सोंठ २-२ तोला, हिंगुल और सफेद कत्था चार-चार तोला लेवें। सबका बारीक चूर्णकर सत्यानाशी के रस में १२ घन्टे खरल करके आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा–१-१ गोली दिन में ३ समय, अदरक के रस के साथ।

उपयोग–महामृत्युञ्जय रस ग्रन्थि के सन्निपात (Plague) को दूर करने में अति उपयोगी है। यह रस हृदय को उत्तेजना देता है, नाड़ियों में रहे हुए कफ, आम का शोषण करता है, मलमूत्रावरोध को दूर करता है तथा लसिका ग्रन्थियों में और रक्त में रहे हुए कीटाणुओं को नष्ट करके प्लेग को दूर करता है एवं अन्य कफ प्रधान सन्निपात में कफ और मल की शुद्धि के लिए भी यह दिया जाता है।

सूचना–ज्वर का वेग भयंकर हो, रक्त गिरता हो तथा दस्त पतला और गरम-गरम होता हो तो यह रस नहीं देना चाहिये।

(१९) गदमुरारि रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्धमैनसिल, लोहभस्म, अभ्रक भस्म और ताम्र भस्म प्रत्येक १-१ तोला तथा शुद्ध बच्छनाभ ३ माशे लेवें। पहिले पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर भस्म और बच्छनाभ मिला, अदरक के रस में १२ घन्टे खरल करके आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनावें। इस रस का नाम अनेक आचार्यों ने "ज्वरमुरारि रस" भी रखा है। (नि. र.)

मात्रा–१-१ गोली दिन में २ समय, निवाये जल, अदरक के रस, तुलसी के रस अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–गदमुरारि रस आमप्रधान जीर्ण ज्वरों का शमन करता है। यह रसायन अनेक दिनों तक रहने वाले ज्वरों में धातुपरिपोषण-क्रम को धीरे-धीरे सुधार कर रोग को शमन करता है। जिन ज्वरों में दोष धातुओं के भीतर लीन रहता हो उनमें ज्वरमुरारि का उपयोग अत्यन्त हितकर है। रसगतज्वर, पित्तज्वर, जिन सन्निपातों की अच्छी रीति से चिकित्सा न हुई हो, ऐसे बहुत समय के पुराने विषमज्वर, क्षय की प्रथमावस्था का ताप, अतिसार सहित जीर्ण ज्वर आदि पर यह रसायन प्रयुक्त होता है।

रसगत ज्वर में अङ्ग में जड़ता, हाथ-पैर टूटना, उबाक, वमन, अरुचि, छाती में भारीपन, मुखमण्डल पर निस्तेजता और कृशता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, ऐसे लक्षण होने पर गदमुरारि रस देना चाहिये।

कफ के साथ रक्त गिरना, थूंक में रक्त आना, रक्त गिरने पर भी श्लैष्मिक या श्वसनक ज्वर के अन्य लक्षण न होना और फुफ्फुस आदि अवयवों की विकृति भी न होना तथा तृषा, अंगों का दाह, निकम्मे-निकम्मे विचार आते रहना, वमन, चक्कर, बेहोशी, प्रलाप, सन्धि-सन्धि में दर्द होना आदि लक्षण होने पर गदमुरारि रस ब्राह्मी के क्वाथ, वासा स्वरस या दूर्वामूल के फाटे के साथ देना चाहिये।

अति तृषा, बार-बार शौच और लघुशंका सर्वांग में दाह, हाथ-पैरों के तलों में जलन, हाथ-पैरों की नाड़ियाँ खिंचना, हाथ पैर पटकना, अतिशय व्याकुलता, पंखे से वायु करते रहने पर कुछ अच्छा लगना आदि लक्षण होने पर ज्वरमुरारि रस नागरमोथा के क्वाथ के साथ देना चाहिये।

अति प्रस्वेद, अति तृषा, बार-बार मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, मुँह से दुर्गन्ध आना, प्रस्वेद द्वारा देह में से दुर्गन्ध निकलना, अरुचि शरीर के किसी भी भाग में स्पर्श सहन न होना आदि लक्षण होने पर ज्वरमुरारि रस शहद और जल के साथ देने से अच्छा लाभ पहुँचता है।

हाथ-पैरों की नाड़ियाँ खिंचना, सर्वाङ्ग में पीड़ा, श्वास, बैचेनी, वमन, अतिसार आदि लक्षण होने पर ज्वरमुरारि रस को प्रवालपिष्टी और श्रृङ्गभस्म के साथ मिला पियाबासा के स्वरस या क्वाथ के साथ दें।

चक्कर आना, हिक्का, खांसी, शीत लगना या शरीर शीतल हो जाना, हाथ पैर शून्य हो जाना, वमन, अन्तर्दाह, हृदय, मूत्राशय और पार्श्वभाग में वेदना, बलपूर्वक दीर्घ श्वास लेना आदि लक्षण होने पर इसे सुदर्शन चूर्ण के क्वाथ के साथ देने से तत्काल लाभ पहुँचता है।

न्युमोनिया, इन्फ्लुएञ्जा और मधुराज्वर अति जीर्ण होने पर तीव्र औषधि नहीं दी जाती। ऐसे समय पर शनैः शनैः कार्य करने वाली सौम्य औषधि देनी चाहिये। ऐसी औषधि गदमुरारि रस है। इस रस का उपयोग कर्णक, भुग्ननेत्र, चितविभ्रम और अभिन्यास सन्निपात की जीर्णावस्था में होता है।

विषमज्वर की योग्य चिकित्सा न होने पर प्रारम्भ से ही चिरकारी होने पर दीर्घकाल स्थायी होता है। इस ज्वर में निश्चित प्रकार का

व्यक्त रूप नहीं होता अर्थात् चातुर्थिक सदृश चौथे रोज या संतत समान सर्वदा ज्वर आता है, ऐसा नहीं। दिन में किसी भी समय अनियमित रूप से आना कभी कम, कभी ज्यादा, कभी शीत लगकर, कभी बिना शीत लगे, कभी तृषा अधिक, कभी तृषा न लगना आदि अनियमितता होती है। ज्वर आने पर सर्वाङ्ग में दर्द, ज्वर चले जाने पर अच्छी तरह चलना-फिरना आदि लक्षण होते हैं। ऐसे ज्वर में विषमज्वर के कीटाणु या सेन्द्रिय विषरूप कारण स्पष्ट प्रकाशित नहीं होता। केवल ज्वर दीर्घ काल तक रहता है। परिणाम में कृशता, ग्लानि, अपचन, निर्बलता, निस्तेजता, मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे विकार में ज्वरमुरारि रस का उपयोग किया जाता है।

क्षय की प्रथमावस्था में सामान्य ज्वर, शुष्क कास, सारे शरीर में दर्द, नाड़ी का तीव्र वेग, तृषा, दाह आदि लक्षण होने पर इस रस के साथ प्रवालपिष्टी और श्रृङ्गभस्म देने से अच्छा लाभ पहुँचता है।

जीर्ण शोफ, भीतर के अवयवों का शोफ, जिसमें खांसी, छाती और पसलियों में शूल होना, निश्चित समय पर सूक्ष्म ज्वर, अङ्ग में भारीपन, कृशता, उदर में मन्द- मन्द दर्द होना, आम गिरना, मल की रचना अच्छी न होना आदि लक्षण गौण हों और प्रधान लक्षण ज्वर हो, तो ज्वरमुरारि रस का उपयोग करना चाहिये। (औ.ग.ध.शा.)

(२०) कालकूट रस

विधि-शुद्ध बच्छनाभ १ भाग, शुद्ध पारद ३ भाग, शुद्ध आँवलासार गन्धक ५ भाग, शुद्ध मैनसिल ६ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग, सोहागा का फूला ६ भाग, शुद्ध हरताल ९ भाग, चित्रकमूल ९ भाग, त्रिकटु १२ भाग, त्रिफला १० भाग, भुनी हींग १ भाग और बच १ भाग लेवें। पहले पारद और गन्धक मिलाकर कज्जली कर ताम्र भस्म, मैनसिल, हरताल, सोहागा और बच्छनाभ क्रमशः मिलावें। बाद में शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला अदरक का रस, चित्रकमूल का क्वाथ, जम्भीरी नींबू का रस, लहसुन का रस, करञ्ज के पत्तों का रस, आक के मूल का क्वाथ, कलिहारी के मूल का क्वाथ, धतूरे के मूल का क्वाथ, नागरबेल के पान का रस, अंकोल के मूल का क्वाथ, संहिजने के मूल का क्वाथ, पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य चित्रकमूल और सोंठ) का क्वाथ, बृहद् पञ्चमूल (बेल, अरनी, श्योनाक, गम्भारी और पाढल की छाल) का क्वाथ, इन १३ औषधियों की १-१ प्रहर तक भावना देकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनावें। (र.यो.सा.)

मात्रा-१-१ गोली अदरक के रस से दिन में ३ बार देवें।

उपयोग-कालकूट रस अनेक ज्वरों और सन्निपातों का नाश करता है। इस औषधि के साथ लिखा है कि इस रस के सेवन के पश्चात् रोगी को स्नान करावें और चन्दन का लेप करें। एवं पथ्य में दही, खजूर आदि तथा ताम्बूल देवें।

यह रस अति तीक्ष्ण, उष्ण विकाशी और व्यवायी है। इसमें मिलाये हुए द्रव्य और विविध उग्र भावनाओं के हेतु से यह अति उग्र बना है। इसका उपयोग करने में खूब सम्हालना चाहिए। जब नाड़ी पूर्ण भरी हुई या डोरी सदृश हाथ को भी न मालूम पड़ने वाली हो, नाड़ी हृदय के अवसादकत्व की साक्षी देती हो तथा किसी स्थान में से रक्तस्राव न होता हो, तब इसका उपयोग करना चाहिये। वरना कालकूट के तीक्ष्णत्व आदि गुणों से रक्तस्राव बढ़ जाता है।

इस रस के सेवन से आध घन्टे में हृदय को अतिशय उत्तेजना आकर नाड़ी के वेग में लगभग २०-३० स्पन्दन बढ़ जाते हैं, फिर रक्त का दबाव भी बढ़ जाता है। अतः नेत्र में लाली लक्षण हों, तो यह रस नहीं देना चाहिए। भूल होने पर कभी-कभी इस रसायन के तीव्रत्व के हेतु से रक्तवाहिनियाँ फटकर रक्तस्राव भी होने लगता है। रोगलक्षण के साथ औषधि की उग्रता और हानि के लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। सन्निपात कहने से उसकी कठिनता अवगत हो जाती है, ऐसे समय पर अनुचित औषधि की योजना होने पर रोगी को त्रास होने का कहना ही क्या? इस हेतु से दुष्परिणाम को अच्छी तरह समझकर इसका उपयोग करें। अतः दुरुपयोग से बचने के लिये इस औषधि से होने वाले दुष्परिणाम और इसके विपरीत जीवनदान रूप लाभ को हमने विस्तारपूर्वक समझाकर लिखा है। जिस स्थान पर हानि का संदेह है, उस स्थान में इसका उपयोग नहीं करना चाहिए।

यह रस कफप्रधान और वातसंसर्गी सन्निपात की सर्वोत्तम औषधि है। इसका मुख्य उपयोग ग्रन्थिक सन्निपात में किया है। और इससे ग्रन्थिक सन्निपात में अच्छा लाभ मिला है। परन्तु इस औषध के अवगुण का विचार किये बिना अधिक मात्रा में बार-बार प्रयोग किया जाय तो हानि होने का भय रहता है।

कफ प्रधान सन्निपात में निम्न लक्षण होने पर कालकूट रस देना चाहिए। नाड़ी अति मन्द और भारी, सारा शरीर जड़, मस्तिष्क अतिशय जड़, यहाँ तक कि मस्तिष्क पर बड़ा पत्थर सदृश भास होना, मस्तिष्क चलाने या उठाने में भी कष्ट होना, मस्तिष्क हिलाने के पहले मस्तिष्क नहीं है ऐसा लगना, जो विचार आवे वह दूसरों का है ऐसी भावना होना, ज्ञान, विज्ञान, संज्ञा आदि सर्व भावनाओं में जड़ता आ जाना अर्थात् अति प्रयत्न से अति समय लगने पर कुछ विचार आना, मस्तिष्क में अधिक पीड़ा न होना, यदि पीड़ा हुई तो वह गम्भीर स्वरूप की होना, नेत्र पर भारीपन, नेत्र में निस्तेजता, नेत्र की पुतली में जड़ता, किसी और दृष्टि न डालने की इच्छा, प्रकाश की चाह, अन्धकार, शीतल जल और शीतल स्पर्श में अप्रीति, कभी-कभी नेत्र में से गाढ़ा चिपचिपा स्राव होना, नेत्र में कुछ मोटा शल्य है ऐसा लगना, कभी-कभी नासिका

श्लेष्मस्राव, नासिका से गंध का बोध न होना, गरम पदार्थ या तमाखू सूंघने पर अच्छा लगना, जिह्वा मोटी और जड़ हो जाने से उच्चारण कष्ट, मन्द निकलना, जिह्वा पर सफेद मेल आ जाना, दांत और जिह्वा पर कुछ शून्यता, जबाड़े में जड़ता और किसी बात पर लक्ष्य देने की इच्छा आदि लक्षण होने पर इस रस का उत्तम उपयोग होता है।

कफवातात्मक विकृति होने पर श्वासोच्छवास अति कष्ट से चलता है, श्वासोच्छवास के मार्ग में कोई खास प्रतिबन्ध नहीं होता, कफस्थान की विकृति कम होने पर भी कफदोष-विकृति अधिक होती है। इस हेतु से श्वासोच्छवास अति धीरे-धीरे चलता है। खांसी भी विशेष नहीं होती या गम्भीर होती है। कफ की गांठ सफेद, गाढ़ी, लेसदार और बड़ी होती है। कफ में मीठा, खट्टा कोई स्वाद नहीं होता, नाड़ी मन्द और भारी होती है। एक मिनट में स्पन्दन संख्या ४० से ५० होती है। ऐसे लक्षण होने पर कालकूट रस अवश्य देना चाहिये

हाथ-पैर जड़, हाथ पैरों में शून्यता, हाथ पैर चलाने में त्रास या अशक्ति, हाथ पैरों में देर-देर से मन्द-मन्द आक्षेप आना (यह आक्षेप वातवाहिनियों की विकृति से आता है) और तन्द्रा आदि लक्षण होने पर कालकूट रस देना चाहिये।

वात कफ प्रधान ज्वर (Influenza) में कफ-संसर्ग और वात के लक्षण होने पर कालकूट रस देना चाहिये। वात लक्षणों का स्वरूप सन्निपात के लक्षणों से पहिले कहा है। इस ज्वर के प्रारम्भ में त्रिभुवन कीर्ति रस का उपयोग गुडूच्यादि क्वाथ (चिकित्सातत्वप्रदीप) के साथ बहुत अच्छा होता है। यदि पहले से ही यह प्रयोग किया जाय तो रोग की वृद्धि नहीं होती। प्रारम्भ में उपेक्षा की जाय तो कफ और वात लक्षण बढ़ जाते हैं। वात लक्षण में दो प्रकार हैं। एक में रोगी को आधी सुध, प्रलाप, भ्रम, अति स्वेद, कण्ठ हिलाते रहना, कभी-कभी बूम मारना और शारीरिक उत्ताप १०२° से १०४° होना आदि लक्षण होते हैं। उस पर महावात विध्वंसन रस देवें। दूसरे प्रकार के वात लक्षणों में मंद प्रलाप, जड़ता, हाल-चाल अति मन्द,मन्द ज्वर, नाड़ी में मन्दता आदि लक्षण होते हैं। इस पर कालकूट तथा स्मृतिनाश और आक्षेप हो तो स्मृति सागर रस देना चाहिए।

कालकूट रस, यह धनुर्वात की प्रशस्त औषधि है। यदि धनुर्वात में कफ प्रधान दुष्टि हो, तो कालकूट उत्तम लाभदायक है। गर्भपात होने के पश्चात् होने वाले धनुर्वात में इस रसायन का उपयोग होता है। गर्भपात होने पर यदि शारीरिक व्यवस्था अच्छी रही तो कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। परन्तु अव्यवस्था होने पर मलिन हाथ या मलिन वस्त्र आदि का संसर्ग होने पर धनुर्वात की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार के धनुर्वात में रक्तस्राव अधिक नहीं होता या बिल्कुल नहीं होता। इस बात का पहले निर्णय कर लेना चाहिये। फिर रक्तस्राव किञ्चित् हो या ना हो तो कालकूट देना चाहिये। इससे शरीर में धनुर्वात के कीटाणुनाशक प्रति विष या प्रतिकारी परिस्थति उत्पन्न होती है।

गर्भपात के पश्चात् जिस संप्राप्ति से धनुर्वात होता है, वही सूतिका के लिए भी लागू होती है। आयुर्वेद कथित उत्पत्ति अनुसार इस विकार की पृथक्-पृथक् अवस्थाओं में लक्षण-भेद से पृथक् पृथक् औषधि-सूतिकारि, सूतिका-भरण, प्रतापलंकेश्वर, ताप्यादि लोह और कालकूट आदि औषधियाँ दी जाती हैं। मक्कलशूल आदि वातप्रधान लक्षण मुख्य हो तो प्रतापलंकेश्वर बार-बार आक्षेप और पित्त प्रधानता होने पर ताप्यादि लोह, धनुर्वात आदि लक्षण स्वल्प और सौम्य होने पर सूतिकाभरणरस, वातकफ प्रधान लक्षण हों तो सूतिकारि और कफ प्रधान जड़ता, बेहोशी आदि पर कालकूट देना चाहिये। इस बात का भी स्मरण रखें कि रक्तस्राव न हो तो ही कालकूट दिया जाता है।

छोटे बालकों को होने वाले पूयमय वृक्कविकार में यह औषधि सैंधानमक और हरड़ के साथ दी है। इस रोग के आरम्भ में ज्वर अधिक होता है, हाथ-पैरों पर शोथ, मुख और सर्वाङ्गका रङ्ग भस्म सदृश तथा मूत्र थोड़ा और लालवर्ण का पूय मिश्रित होता है। फिर आगे तन्द्रा, मन्द आक्षेप, जड़ता और भयप्रद अवस्था की प्राप्ति होती है। इस द्वितीयावस्था में कालकूट रस उत्तम कार्य करता है।

भुग्ननेत्र सन्निपात की तीव्रावस्था में इस रस का अच्छा उपयोग होता है। (औ. गु. ध. शा.)

सूचना-यह रस अति तीव्र होने से सगर्भास्त्रियों को नहीं देना चाहिये। छोटे बच्चों को अति कम मात्रा में सम्हालपूर्वक देवें और बड़े कोमल मनुष्य को भी विचारपूर्वक ही देवें। इसे ज्यादा दिनों तक चालू नहीं रखना चाहिये।

क्वचित् कालकूट रस से कण्ठ में घाव हो जाता है, जिह्वा फट जाती है और अति उष्णता बढ़ जाती है ऐसी संभावना होने पर इसे केपसूल में बन्द करके देना ठीक होगा। अनुपान ऊपर से पिला देना चाहिये।

(२१) लक्ष्मीनारायण रस

विधि-शुद्ध हिंगुल, अभ्रकभस्म, शुद्ध गंधक, सोहागे का फूला, शुद्ध बच्छनाभ, निर्गुण्डी के बीज, अतिविष, पीपल, कूड़ाकी छाल, सैंधानमक प्रत्येक समभाग मिला दन्तीमूल और त्रिफला के क्वाथ की ३-३ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (यो.र.)

मात्रा-१ से २ रत्ती। अदरक के रस और शहद के साथ देवें।

उपयोग-लक्ष्मीनारायण रस दुष्टज्वर, आंत्रिक सन्निपात, विसूचिका, विषमज्वर, अतिसार, ग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, शूल सूतिका रोग वातव्याधि और बालकों के धनुर्वात को दूर करता है।

यह रस उत्तम ज्वरघ्न, स्वेदल (परन्तु अवसादक नहीं) पाचक, सेन्द्रिय विषघ्न और कीटाणुनाशक है। इसका उपयोग रस और रक्तधातुगत ज्वरों पर विशेषतः मुद्दती ताप की तीव्रावस्था में बहुत अच्छा होता है। यह रस स्वेदल होने पर भी हृदय को शिथिल नहीं बनाता। धनुष्कंप,

अपतानक, आक्षेपक आदि वातनाड़ियों के विकृति जनित वातरोगों में ज्वर आने लगता है तब इसे देने से ज्वर और वातप्रकोप दोनों शमन हैं। अनेक बालकों को धनुर्वात के झटके आते हैं, जो बच्चों के लिये विशेष भयप्रद है। उस आक्षेप का शमन इस रस से तत्काल होकर ४ रोज में रोग नष्ट हो जाता है। कुक्षिशूल के विकार में बार-बार शूल चलना, ज्वरदाह, शोथ और बेचैनी आदि लक्षण होने पर इस रस शीघ्र लाभ पहुँचता है।

सूतिका ज्वर अति भयंकर व्याधि है। प्रसवकाल में या पश्चात् किसी कारण वश मलिन हाथ या गन्दे वस्त्रों के संसर्ग से योनिमार्ग कीटाणुओं का प्रवेश होकर व्रण उत्पन्न होते हैं। फिर गर्भाशय और योनिमार्ग में विकृति फैलती है। यदि इसे सत्वर न सम्हाला जाय तो विकार का असर समस्त शरीर में हो जाता है। इसके योग से ज्वर आता है, विशेषत: ज्वर का वेग तीव्र हो जाता है। यदि तीव्र ज्वर साथ शिरदर्द, तृषा, क्वचित् बेहोशी, धनुर्वात आदि लक्षण हों तो लक्ष्मीनारायण रस को दशमूलारिष्ट के साथ देने से वह रक्त में मिश्रित विष को जलाने का और ज्वर को उतारने का अच्छा कार्य करता है। साथ में उत्तरबस्ति द्वारा गर्भाशय, गर्भमार्ग और योनि में उत्पन्न होने सेन्द्रिय विष का भी निरोध कर देना चाहिये। यदि ज्वर का वेग कम हो और वातप्रकोप भयंकर हो तो इस रस को नहीं देना चाहिये। अवस्था में प्रतापलङ्केश्वर दें और गर्भाशय शुद्धि के लिये दशमूलारिष्ट साथ में देना चाहिये। इस तरह सूतिका विषजन्य ज्वर में लक्ष्मीनारा उत्तम ज्वरघ्न और विषघ्न औषध है।

आन्त्रिक सन्निपात (२१ दिन का मुद्दतीताप-मधुरा) के आरम्भ में लक्ष्मी नारायण देने से आन्त्रिक विष का शमन, दोषपाचन और ज्व रूप से उत्तम कार्य होता है। दूसरे तीसरे सप्ताह में दुर्गन्धयुक्त अतिसार सहित ज्वर १०४°-१०५° पर्यन्त बढ़ने पर भी लक्ष्मीनारायणरस, प्रकरण में कही हुई मधुरान्तक वटी के साथ देने से दाह, विषशमन और अतिसार का रोध करने के लिए अच्छा कार्य करता है और बढ़कर रोगी की शक्ति का क्षय नहीं होने देता। लक्ष्मीनारायण की मात्रा अधिक नहीं देनी चाहिये। विष बहुत अधिक हो गया हो तो लक्ष्मीनारा और मधुरान्तक वटी दिन में २ समय तथा प्रवालपिष्टी शहद के साथ दिन में ३ समय देते रहने से कोष्ठ दाह विष, प्रलाप, अतिसार, का वेग आदि सत्वर कम हो जाते हैं।

इस आंत्रिक ज्वर में विचित्र-विचित्र उपद्रव खड़े हो जाते हैं। ऐसे समय पर उपद्रव अनुसार औषध दी जाती है, परन्तु लक्ष्मीनारा को भी बन्द नहीं करना चाहिये।

जिन रोगियों को आन्त्रिक ज्वर में लक्ष्मीनारायण नहीं दिया जाता उनमें से कितनों ही को भयंकर त्रासदायक अतिसार होता है। रोगी कह है कि इस अतिसार की अपेक्षा बद्धकोष्ठ हो जाय तो वह भी अच्छा। अतिसार से शक्ति अधिक क्षीण होती जाती है। अतिसार जल सद पतला दुर्गन्धयुक्त होता रहता है और दस्त लगने के पहले त्रासदायक उदरवात की उत्पत्ति होती है। यह अतिसार भी लक्ष्मीनारायण रस ही बंद होता है।

श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपात एवं अन्य प्रकार के सन्निपातों में उस सन्निपात की नाशक औषधियों के साथ ज्वरघ्न, स्वेदल और सेन्द्रि विषघ्न गुणों के लिये लक्ष्मीनारायण रस दिया जाता है।

विषम ज्वर में जिस औषध में ज्वरघ्न और धातुगत दोषनाशक गुण हों वही उपयोगी होती है। ये दोनों गुण (ज्वर और धातुगत दो को नष्ट करना) इस रसायन में होने से संतत ज्वर (जिसमें ज्वर निरंतर बना रहता है और सर्वांग में जड़ता, मुँह में पानी आना, वमन, उबाक अरुचि, दाह, किंचित् प्रलाप, तृषा, आक्षेप, शिरदर्द, चक्कर, प्यास आदि लक्षण प्राय: रहते हैं) सतत्ज्वर (रोज आकर उतर जाने वाला ज्वर) एकाहिक, तृतीयक (एकांतरा) चातुर्थिक (तिजारी) इन सब प्रकार के विषम ज्वरों में लक्ष्मीनारायण सुदर्शन अर्क या तुलसी के रस के सा देने से धातुगत दोष का शमन होकर ज्वर जल्दी दूर हो जाता है। सततज्वर, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि में ज्वर न हो, तब सप्तप सत्व सदृश औषध देने और ज्वरावस्था में लक्ष्मीनारायण देने से रोग शमन हो जाने के अनेक उदाहरण मिले हैं।

परिवर्तित ज्वर जो वर्षों पर्यन्त बार-बार थोड़े दिन बाद अनियमित समय पर आता रहता है उसमें कफभूयिष्ठ लक्षण हो तो हरताल य सोमल वाली औषध दी जाती है, तथा पित्तप्रधान लक्षण हों, आरम्भ में जोर से ठण्ड लगकर ज्वर आता हो, और साथ-साथ प्यास, बेचैनी दाह, शिरदर्द आदि लक्षण हों, तो हरताल या सोमल कल्प की अपेक्षा लक्ष्मीनारायण रस ही विशेष लाभदायक होता है। परिवर्तित के समा अन्य जाति के कीटाणुजन्य ज्वर में भी पित्ताधिक्य लक्षण हों तो लक्ष्मीनारायण रस देने से कीटाणु नष्ट होकर ज्वर का शमन हो जाता है

आन्त्रिक ज्वर के पश्चात् उत्पन्न होने वाले ग्रहणी रोग में एवं दूषित जल वायु के योग से होने वाले अतिसार में, उदर में दर्द की कम परन्तु बार-बार थोड़ा-थोड़ा आंव और रक्तसहित दस्त होना और ज्वर आदि लक्षण होने पर लक्ष्मीनारायण रस अत्यन्त हितकर है।

तीव्र ज्वर के पश्चात् संग्रहणी हो जाने पर लक्ष्मीनारायण और कनकसुन्दर अति उपयोगी औषधि है। उदर में मन्द-मन्द दर्द होकर बार-बार शौच जाना, शौच में कुछ आम और किंचित् रक्त गिरना, मल कभी बिल्कुल न आना, कभी थोड़ा-सा आना, बार-बार पेशाब आते रहना साथ-साथ ज्वर भी रहना इत्यादि लक्षण होने पर लक्ष्मीनारायण का उपयोग होता है।

कभी-कभी रोगी को लक्ष्मीनारायण रस देने से अति प्रस्वेद आता है, इस हेतु से त्रास अधिक होता है। ऐसे समय पर प्रवालपिष्टी अमृतासत्व ...करके देते रहना चाहिये।

इस लक्ष्मीनारायण रस का कार्य विशेषत: अन्त्र, यकृत् ओर प्लीहा स्थान पर तथा रस, मांस और त्वग्गत स्वेद पिण्डों पर होता है। यह ...की तीव्रता के शमनार्थ अच्छा उपयोगी है। (औ.गु.ध.शा. के आधार से)

कभी-कभी रोमन्तिका रोग शहरव्यापी बन जाता है। एक मकान के भीतर किसी एक बालक को होने पर अन्य बालकों पर भी इस रोग आक्रमण हो जाता है। यह रक्त धातुगत और वातपित्तात्मक ज्वर है। इस रोग की सम्प्राप्ति ३ मास के बच्चे से लेकर ८ वर्ष की आयु बालकों को हो जाती है। ज्वर १०३° से १०४° तक बढ़ जाना, जिह्वा सफेद, नेत्र उभरे हुए, शुष्ककास, किसी को प्रतिश्याय, बहुधा ...दिन से मुखमण्डल और कण्ठ पर पिटिकाएं प्रतीत होती हैं। पाँचवें दिन समस्त देह पर भासती है, इस विकार पर लक्ष्मीनारायण रस, ...वन, प्रवाल, श्रृङ्गभस्म, अमृतासत्व और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर दिन में ३ समय देने और मसूरिका रोग पर कहे हुए निम्बादि क्वाथ ...पिलाते रहने से बिना कष्ट पहुँचाये रोग दूर हो जाता है।

(२२) मधुरान्तक वटी

विधि–मोतीपिष्टी १ माशा, कस्तूरी २ माशे, केशर ३ माशे, जायफल ४ माशे, जावित्री ५ माशे, लवंग ६ माशे, तुलसीपत्र ७ माशे और ...क-भस्म ८ माशे लेवें। सबको मिला ६ घण्टे अदरक के रस में खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा–आधी रत्ती से २ रत्ती तक, दिन में ३-४ समय तीन-तीन घण्टे के अन्तर से, अदरक के रस या जल के साथ देवें।

उपयोग–इस वटी के सेवन से २१ दिन का मुद्दतीताप (Typhoid Fever) में मधुरा के दाने जल्दी निकलकर भर तथा ढल जाते ...। यह वटी मधुरा की सब अवस्थाओं में उपयोगी है। विष का शमन करती है। अन्तड़ी को बलवान बनाती है और दाह को शांत करती ...। अपथ्य सेवन या औषधि में भूल होने पर कभी दाने बाहर नहीं आते, विष भीतर फैल जाने से विविध विकार उत्पन्न होते हैं, ऐसी परिस्थिति ...यह औषधि जादू के समान लाभ पहुँचाती हैं।

आवश्यकता अनुसार द्वितीय और तृतीयावस्था में इसके साथ लक्ष्मीनारायण अथवा सूतशेखर तथा प्रवालपिष्टी योग्य मात्रा में मिला देने से ...ई बिगड़े हुए मोतीझरा के रोगी थोड़े ही दिनों में स्वस्थ हो गये हैं।

(२३) संचेतनी गुटिका

विधि–मल्लभस्म, ताम्रभस्म, सोंठ, पीपलामूल, बायबिडंग, चित्रक, दालचीनी, तेजपत्र, जावित्री, शुद्ध कुचिला, शुद्ध बच्छनाभ, कस्तूरी, सब ...मभाग मिला १२ घण्टे भांगरे के रस में घोटकर चने बराबर गोलियां बना लेवें। (धन्व.)

मात्रा–१-१ गोली। आवश्यकतानुसार गरम जल के साथ, दिन में ३-४ समय ३-३ घण्टे के अन्तर पर देवें।

उपयोग–यह रसायन सन्निपात में बेहोशी दूर करने में अति उपयोगी है। मरता हुआ रोगी भी एक दफा होश में आ जाता है। कफ, आम और वातप्रकोप को यह वटी तत्काल दूर करती है। हृदय की गति को उत्तेजना देती है और त्रिदोष को सम बनाती है।

यह रसायन अति उग्र, उष्णवीर्य, स्वेदल, विकाशी, हृदयोत्तेजक, सेन्द्रिय विषनाशक और कीटाणुनाशक है। जो गुण हेमगर्भ पोटली रस में रहा है, वह इस वटी में है। वातवाहिनियां और रक्तवाहिनियां दोनों को यह वटी लाभ पहुँचाती है। मस्तिष्कगत वातकेन्द्र, हृदय और यकृत को उत्तेजित करती है तथा अन्त्रस्थ और रक्तस्थ विष को नाश करके रोगी को सुधि में लाती है। अत: यह वातप्रधान और कफप्रधान और वातकफप्रधान सन्निपात की गिरी हुई अवस्था में अमृत-सदृश लाभदायक है। यह रस मस्तिष्कगत केन्द्र को उत्तेजित कर बेहोशी को तत्काल दूर करता है। मरणमुख में जाते हुए अनेक रोगी इस रस के सेवन से बच जाने के उदाहरण मिले हैं।

सन्निपात के अतिरिक्त अपस्मार, मूर्च्छा, मानसिक आघात और चोट-जनित बेहोशी, विषप्रकोप, विसूचिका, ज्वर, संग्रहणी, विरेचन आदि कारणों से उत्पन्न शक्तिक्षय को दूरकर तथा हृदय और मस्तिष्क को बल देने में यह संचेतनी वटी सफलतापूर्वक कार्य करती है।

अनुपान–नागरबेल के पान, पोदीना या अदरक का रस और शहद।

सूचना–(१) यदि उदर में दूषित मल भरा है तो औषध प्रयोग करने के पहले ग्लीसरीन या एरण्ड तैल की पिचकारी या बस्ति देकर मल को बाहर फेंक देना चाहिए।

(२) जिन रोगियों के वृक्क निर्दोष न हों, मुख पर शोथ आता रहता हो, उनको यह वटी अधिक मात्रा में या अधिक बार नहीं देना चाहिए।

सूचना–पित्तप्रधान विकार में एवं शरीर उत्ताप अधिक होने पर इस रस का उपयोग नहीं करना चाहिये, वरना मस्तिष्क में रक्तदबाव की वृद्धि होकर लाभ के स्थान में हानि पहुँचेगी।

(२४) लक्ष्मीविलास रस*

विधि–अभ्रक भस्म ४ तोले, शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, कपूर, जायफल, जावित्री, विधारा के बीज, धतूरे के शुद्ध बी गाँजे के बीज, बिदारीकंद, शतावरी, नागबला (गुलशकरी), अतिबला (कंघी), गोखरू, जलबेंत के बीज इन १२ औषधियों को १-१ तो लें। पहिले पारद-गन्धक की कज्जली करके अभ्रक मिलावें। फिर शेष काष्ठादि औषधियों के कपड़छन चूर्ण को मिला, नागरबेल के पान रस में ३ दिन खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। (र. यो. सा.

मात्रा–१ से २ गोली। दिन में ३ समय, दूध, दही, शराब, शहद या अन्य योगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह रसायन सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य, याप्य और प्रत्याख्येय चारों प्रकार के सन्निपातों से उत्पन्न विकारों को नष्ट करता है। इस यह नियम भी नहीं है कि वातप्रधान या पित्तप्रधान दोषों को ही दूर करें। सब प्रकारों पर यह रसायन उपकारक है। कुष्ठ, प्रमेह, नासूर, दुष्टव्र गुदरोग, भगंदर, रक्तमांसाश्रित, कफ-वातप्रधान श्लीपद, मेदगत, धातुगत, जीर्ण अथवा वंशपरंपरागत, गलशोथ, अन्त्रवृद्धि, दारुण अतिसार, आमवा जिह्वास्तंभ, गलग्रह, उदररोग, नासिका, कर्ण, नेत्र और मुख के विकार, कास, पीनस, राजयक्ष्मा, अर्श, स्थूलता (मेदवृद्धि), पसीने में दुर्ग आना, कुक्षिशूल, शिर:शूल, प्रसूता स्त्रियों के मक्कलशूल आदि रोग और पुरुषों के ध्वजभंग आदि रोगों को नष्ट करता है, तथा वृद्धों को तरु की बराबरी कराता है। **इस रस का निरन्तर सेवन करने वालों को इन्द्रिय शैथिल्य और श्वेत केश की प्राप्ति नहीं होती।**

यह लक्ष्मीविलास रस आयुर्वेदीय औषधियों में एक उत्कृष्ट और वीर्यवान औषधि है। यह उत्तम हृद्यबल्य (हृदय को बलवान बनाने वाली और हृदयोत्तेजक है। इस औषधि से तीव्र विकार में शान्तिपूर्वक उत्तेजना और रक्तवाहिनी की विस्फारितता एवं जीर्णविकार में हृद्यगुण मिल है। हृद्यगुण के कारण हृदय की संकोच विकास क्रिया नियमित होने से धड़कन दूर हो जाती है और हृदय को शांति मिलती है। इस औषधि का परिणाम पुरीतती हृदयावरण (Pericardium) वाम और सव्य पार्श्वपटल (बांयी तथा दाहिनी ओर के आच्छादित करने वाले कपाट (Valves और हृदय के अलिन्द निलय (Auricles and ventricles) इन विभागों पर उत्तम प्रकार का होता है।

जिस तरह ब्राण्डी आदि औषधियों से हृदयोत्तेजना के पश्चात् उतने ही बलपूर्वक अवसादकता की प्राप्ति होती है, उस तरह इस रसजनि उत्तेजना के अन्त में प्रतिक्रिया रूप अधिक अवसादकता दृष्टिगोचर नहीं होती। यह गुण विशेष माना जाता है। **इस रस से नाड़ी सुधरने पश्चात् दीर्घकाल पर्यन्त वैसी रहती है।**

श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपात में हृदय की निर्बलता सम्बन्धी संशय होने पर इसका प्रयोग करने से उत्तम कार्य होता है। आगे भ आवश्यकता पर इसके सेवन से कास, श्वास, ज्वराधिक्य, फुफ्फुसप्रदाह, नाड़ी और हृदय का वेग अधिक बढ़ना ये सब लक्षण दूर होते हैं फुफ्फुसशोथ कम होकर श्वास के वेग और कास का शमन होता है। **यदि इस सन्निपात की तृतीयावस्था में कफप्रकोप से पहले में घर-घर अ तन्द्रा और बेहोशी आदि लक्षण उपस्थित हों तो लक्ष्मीविलास न देकर मल्लसिन्दूर, पञ्चामृत या सन्निपातान्तक देना चाहिये।**

आंत्रिक सन्निपात (मधुरा) में हृदयक्षीणता, सर्वाङ्गशूल, भ्रम, प्रलाप, बेहोशी, निस्तेजता, शुष्क कास आदि लक्षण उपस्थित हो अथवा मुद्द पूरी होने पर भी रोग जैसा का वैसा कायम रहे या शुष्ककास आदि लक्षणों की वृद्धि हो तो लक्ष्मीविलास रस देने से अन्त्रदोषघ्न और हृद दोनों प्रकार के परिणाम प्रतीत होते हैं तथा रोगी थोड़े ही दिनों में स्वस्थ हो जाता है।

---

* पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धौ रसगन्धको।
तदर्द्धं चन्द्रसंज्ञस्य जातीकोषफले तथा।
वृद्धदारक बीजञ्च बीजं धुस्तूरकस्य च।
त्रैलोक्यविजयाबीजं विदारीमूलमेव च।
नारायणी तथा नागबलाचातिबला तथा॥
बीजं गोक्षुरकस्याऽपि नैचुलं बीजमेव च।
एतेषां कार्षिकं चूर्णं पर्णपत्ररसै: पुन:॥
निष्पिष्य वटिका कार्या त्रिगुञ्जाफलमानत:।
प्रोक्त: प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना॥
रसो लक्ष्मीविलासोऽस्तु वासुदेवे जगत्पतौ।
अभ्यासाद्यस्य भगवान् (लक्षनारीषु) वल्लभे:॥

इस रस को भी रसेन्द्रचिन्तामणि, रसेन्द्रसारसंग्रह आदि ग्रन्थकारों ने नारदीय लक्ष्मी विलास संज्ञा दी है।

आन्त्रिक सन्निपात के द्वितीय और तृतीय सप्ताह में क्वचित् शुष्क त्रासदायक कास का वेग अति बढ़ जाता है। साथ-साथ नाड़ी क्षीण और मन्द हो जाती है, अन्य लक्षणों में अन्तर नहीं होता फिर भी कास के लिये दुर्लक्ष्य किया जाय तो आगे हृदय और नाड़ी क्षीणतर होते जायेंगे। अतः कास रोग प्रारम्भ होने पर ही लक्ष्मीविलास देते रहने से कास का निवारण होता है और रोगी शनैःशनै स्वस्थ हो जाता है।

आन्त्रिक सन्निपात में क्वचित् भूल-प्रमादवश अवधि बढ़ जाती है। ऐसे समय पर रोगी की स्थिति भयंकर करुणाजनक हो जाती है। मन पर किञ्चिद् विरोधी विचार आने के साथ मन अस्वस्थ हो जाता है, ज्वरविष से लड़ाई करते-करते जीवनीय शक्ति क्षीण हो जाती है, इस हेतु से मस्तिष्क विविध पीड़ाओं से त्रस्त हो जाता है। देहपर अस्थिचर्म शेष रहते हैं। **हृदय अति दुर्बल, क्षीण और मन्द** हो जाता है। **इस अवस्था में लक्ष्मीविलास रस ने अनेकों को जीवन दान दिया है।** इस आन्त्रिक सन्निपात के अन्त में हृदयक्षीणता, नाड़ीमाँद्य, निस्तेज मुखमण्डल, भ्रम, मन्द-मन्द मनोमय प्रलाप आदि लक्षण होने पर लक्ष्मीविलास उत्तम कार्य करता है।

वातश्लेष्म ज्वर (Influenza) में इस औषण का उत्तम उपयोग होता है। बिलकुल प्रथमावस्था में इस रसायन की अपेक्षा गुडूच्यादि क्वाथ (चिकित्सातत्व प्रदीप-प्रथम खण्ड) के साथ त्रिभुवनकीर्ति अधिक हितकारक है। **परन्तु कास, श्वास, नाड़ीमान्द्य, और हृदयविकृति** आदि लक्षण होने पर यही रस उत्तम उपयोगी है।

भयंकर शीत लगने, जलाशय में डूबने या अन्य शीतोपचार करने या अन्य कारण से नाड़ी क्षीणता अथवा वातकफप्रधान ज्वर में प्रबल अङ्गमर्द, सर्वाङ्ग में शूल सदृश वेदना इन लक्षणों के साथ हाथ-पैरों में ऐंठन, हाथ पैर मुड़ जाना, हाथ की अंगुलियों में शून्यता आना, मुख या अन्य स्थान के स्नायु बिल्कुल टेढ़े हो जाना, विलक्षण स्फूरण और नाड़ीक्षीणता हो तो लक्ष्मीविलास देना चाहिये, इन लक्षणों के साथ हृदयाधारिक प्रदेश में शूल हो तो भी यह उत्तम लाभदायक है।

हृदय का अनियमित स्पन्दन या अधिक स्पन्दन होने पर घबराहट और व्याकुलता होती है। घबराहट का अन्य कारण न हो और साथ-साथ किंचित् हृदयशूल हो तो लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये।

घबराहट के हेतु से चेतना शक्ति भीतर खिंचती हो, श्वासावरोध-सा भासता हों, साथ-साथ हाथ पैर शीतल, नाड़ी मन्द और क्षीण, सर्वाङ्ग में विशेषतः कपालपर प्रस्वेद आदि लक्षण हों तो लक्ष्मीविलास रस अप्रतिम लाभ पहुँचाता है। इन घबराहट आदि लक्षणों के साथ शुष्क त्रासदायक कास, बार-बार कास चलना, यत्किंचित् श्रम से खाँसी बढ़ जाना आदि लक्षण हों तथा इनका **हेतु हृदयावरण और हृदय में विकृति** हो तो लक्ष्मीविलास अवश्य देना चाहिये।

इस तरह की बार-बार घबराहट और व्याकुलता बनी रहने के अतिरिक्त हेतुओं से हृदय और नाड़ी-क्षीण होकर रक्ताभिसरण क्रिया मन्द हुई हो, फिर उसी हेतु से सर्वांग में शीतलता और देहका वर्ण बदल गया हो, एक प्रकार का श्याम भस्म सदृश रंग हो गया हो तो उस विकार पर लक्ष्मीविलास रस का उपयोग करना चाहिये।

उक्त लक्षणों के साथ या उक्त लक्षण न होने पर हृदय की अशक्ति के हेतु से प्रारम्भ में बार-बार चक्कर आना, फिर भ्रान्ति, तन्द्रा, बेहोशी आदि लक्षण हो तो भी लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये। **इन लक्षणों के साथ क्वचित् छिन्नश्वास (Cheynestokes Asthma) भी होता है। श्वास की नियमितता नष्ट होकर पहिले जोर-जोर से लम्बा-लम्बा दीर्घश्वास आना, फिर दीर्घ न होकर ऊपर-ऊपर से श्वास चलना, २-२ या ४-४ श्वास के बाद, ४-६ या ८ सैकण्ड के लिए श्वास टूटना, इस अवस्था की प्राप्ति होने पर यह छिन्न-श्वास कहलाता है। यह बिल्कुल असाध्य है, तथापि अति बढ़ा न हो तो लक्ष्मीविलास रस दिया जाता है।**

कास के अनेक प्रकार हैं। इनके शुष्क त्रासदायक कास, साथ-साथ अति घबराहट थोड़ा-सा परिश्रम किया, किञ्चित् चलने का काम पड़ा, कुछ बोझा उठाया या अन्य हेतु से परिश्रम हुआ तो तुरन्त शुष्क कास चलने लगती है, श्वास भर जाता है। हृदय के स्पन्दन बढ़ जाते हैं। इन लक्षणों के साथ क्वचित् थोड़ी सूजन विशेषतः हाथ पैरों पर होती है। **सूजन में एक विशेष प्रकार यह है कि शोथ पर दबाने से वहाँ खड्डा होता है। इस तरह के कास विकार में लक्ष्मीविलास रस अति उत्तम कार्य करता है।**

इन्फ्लुएञ्जा के तीव्र वेग का शमन होने पर दिनों तक **शुष्क कास** रह जाता है। इस कास में कफ अति कम गिरता है। इसमें **यदि घबराहट लक्षण हो** तो लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये।

जीर्ण हृद्रोग के विकार से हृदावरण, हृत्स्नायु, अन्तःपटल (दोनों कपाट) या हृदय की नाड़ियों की विकृति-विशेषतः कफ प्रधान विकृति से अवयव समूह मन्द कार्मकारी होकर सर्वांग में शोथ, थोड़े से श्रम से घबराहट, हृदय क्रिया और स्पन्दन मन्द और अनियमित होना, इस व्याधि के परिणाम में यकृत्, प्लीहा और वृक्क स्थानों को हानि पहुँचना आदि लक्षण होते हैं। इस पर लक्ष्मीविलास दिया जाता है।

कुष्ठ आदि चिरकारी रोग की वृद्धि हृदय या रक्ताभिसरण क्रिया की विकृति से होती हो तो लक्ष्मीविलास का उपयोग करना चाहिए।

प्रमेह के २० प्रकार आयुर्वेद शास्त्र में कहे हैं। यह सब और मधुमेह एक नहीं है। प्रमेह के अनेक कारण हैं। **इनमें मुख्य 'कफकृच्च सर्वम्'** इस प्रधान कारण से उत्पन्न प्रमेह हो, रोगी को तीव्रता के पश्चात् सर्वांग में शैथिल्य, अशक्ति, हृत्य की मन्दता, बिल्कुल **श्रम न होना,**

अधिक बोलने की शक्ति भी न होना, मूत्र का परिमाण अधिक, मूत्र अधिक बार होना, मूत्रवेग के पश्चात् अशक्ति या शक्ति पात-सा भासना आदि लक्षण उपस्थित हों तो लक्ष्मीविलास देना चाहिए।

नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण और भगन्दर ये रोग दीर्घकालस्थायी होते हैं। इनका कारण शारीरिक घटक (Tissues) और इनके चित्परामाणुओं की निर्बलता है। जिनके घटक बलवान और निर्दोष हो, उनके व्रण का सत्वर रोपण हो जाता है। जख्म होने पर बहुधा नहीं पकते और थोड़े समय में भर जाते हैं। निर्बल घटक और शक्तिहीन चित्परमाणु वालों के जख्म जल्दी नहीं भरते और व्रण अधिकाधिक भीतर प्रवेश करता जाता है। घटक और चित्परमाणुओं की निर्बलता में भी अनेक हेतु हैं। इनमें रक्त, रक्ताभिसरण और हृदयी अशक्ति कारण हो तो व्रणरोपक औषधि के साथ लक्ष्मीविलास का सेवन करने से व्रणरोपण कार्य उत्तम प्रकार से होता है।

श्लीपद विकार में गन्धक रसायन, गुग्गुलु-कल्प और लक्ष्मीविलास उत्तम औषधियाँ है। इनमें लक्ष्मीविलास का कार्य व्यापक है। इसके उपयोग में हृदय और रुधिराभिसरण की अशक्ति है या नहीं, इस बात पर लक्ष्य देना चाहिए। गन्धक रसायन त्वग्गत विकार पर व लक्ष्मीविलास रुधिराभिसरण और तदंगभूत विकार पर प्रयुक्त होता है। (गुग्गुल आमविष नाश के लिए प्रयुक्त होता है।)

अग्निमांद्य हो, मुख, जिह्वा, तालु ये सब चिपचिपे रहते हों, उदर में जड़ता, अन्न पर अनिच्छा, भोजन की इच्छा न होना, निस्तेजता, पचनेन्द्रिय को यथोचित रक्त की पूर्ति न होना आदि लक्षण होने पर लक्ष्मीविलास रस देना चाहिए। वातकफ ज्वर के पश्चात् उपद्रवरूप से अग्निमांद्य होने पर भी लक्ष्मीविलास दिया जाता है। किन्तु मुँह में जल आता रहता हो तो अग्नि कुमार रस देना चाहिए।

अग्निमांद्य के पश्चात् अतिसार या बिना अग्निमांद्य अन्य हेतु से उत्पन्न अतिसार में लक्ष्मीविलास दिया जाता है। अतिसार में बड़े-बड़े पतले जल सदृश दस्त होने, प्रत्येक जुलाब के साथ शक्तिपात, ऐंठन या हाथ पैर टूटना, सर्वांग में शीतलता, प्रस्वेद और नाड़ीमांद्य आदि लक्षण होने पर लक्ष्मीविलास रस अति उत्तम औषधि है।

विसूचिका में नाड़ीमांद्य, शीतलता और प्रस्वेद लक्षण होने पर लक्ष्मीविलास रस लाभदायक है।

उदररोग, सर्वांग में शोथ और जलोदर में हृदयावरण या हृदय के कपाट की विकृति हेतु हो तो जीर्णावस्था में लक्ष्मीविलास उपयोगी होता है। हृदय के विकार के साथ या इसके पश्चात् यकृद्वृद्धि, सर्वांग में शोथ; फिर इन रोगों की जीर्णावस्था में जलोदर की प्राप्ति आदि लक्षण होने पर लक्ष्मीविलास रस मूत्रल औषधि-पुनर्नवा, गोखरू और अनन्तमूल या शिलाजीत के साथ देना चाहिए। यदि इन लक्षणों के साथ घबराहट, अति स्वेद, थोड़े श्रम में श्वास भर जाना, उदर में आफरा, मनोग्लानि, भीतर खिंचना, हृदयस्पन्दन की वृद्धि, सर्वांगपर विशेषत: हाथ-पैरों पर सूजन, मस्तिष्क में भारीपन, चक्कर आना, शिरदर्द आदि लक्षण हों, तो भी लक्ष्मीविलास हितकर है।

स्थौल्य, मेदोवृद्धि, विकार की उत्पत्ति में विशेषत: व्यायाम का अभाव और उपचयकारक आहार का अधिक सेवन ये दो कारण होते हैं। इनमें कुछ अपवाद भी मिलते हैं। **इनके अतिरिक्त रक्तवाहिनियों और अण्डकोष की विकृति से भी मेदोवृद्धि हो जाती है।** इस मेदोवृद्धि का परिणाम हृदय पर होता है। हृदय पर मेद बढ़ने लगता है। हृदय के चारों ओर मेद संचय होता है या हृदय के घटकों में मेद के घटक सम्मिलित होकर रहते हैं। इस प्रकार में श्वास भर सर्वांग में प्रस्वेद आते रहना, किसी भी कार्य को करने की अनिच्छा, व्यायाम का बिल्कुल सहन न होना, थोड़ासा श्रम होने पर दम भर जाना, वह इतना कि छाती वायु से भरकर फूली हुई-सी भासना, नासिका से श्वास पूरा न ले सकने के हेतु से मुखद्वारा जोर-जोर से लेना आदि लक्षण होने पर लक्ष्मीविलास रस उपयोगी होता है। **ये सब लक्षण मेद से सब मार्ग आवृत होने पर होते हैं।** इस विकार में मेद के आगे की धातुयें यथोचित नहीं बनती। इस हेतु से शरीर फूला हुआ-सा हो जाता है; इसमें से दुर्गन्ध निकलती रहती है। यह दुर्गन्ध कुक्षि, कटिसन्धि आदि स्थानों में प्रस्वेद आकर फिर सड़कर उत्पन्न होती है। इस विकार में लक्ष्मीविलास लाभदायक है।

कुक्षिशूल, कक्षाशूल और पार्श्वशूल की उत्पत्ति बहुधा फुफ्फुसावरण की विकृति से होती है। विकार आशुकारी होने पर तीव्रशूल और चिरकारी होने पर मन्दशूल होता है। इस विकार की उत्पत्ति शीतलता, शीतल वायु के असह्य आघात से हुई हो, तथा कुक्षि, कक्षा और पार्श्व में तीव्र शूल हो, किसी एक स्थान में सूई चुभाने सदृश वेदना, किसी भी स्थिति में चैन न पड़ना, बराबर दबाकर बैंठना, गरम जल आदि से सेक करने पर वेदना कुछ कम होना, साथ-साथ समग्र छाती या सर्वाङ्ग में वेदना का प्रसार होना या आक्षेप होना आदि होने पर लक्ष्मीविलास रस देना चाहिए।

वातज शिरःशूल में खूब जोर से सुई चुभाने सदृश वेदना होकर पुनः कुछ काल के लिए कम हो जाना अर्थात् आक्षेप सदृश बार-बार शूल चलता हो तो महावातविध्वंसन रस देना चाहिए। परन्तु समान शूल चलता रहे एवं गला, कपाल, भ्रू तथा पीठ की ओर वह फैले, ऐंठन सदृश दर्द, सेकने पर अच्छा लगे, शीतल वायु से वेदना बढ़े आदि लक्षण हों तो लक्ष्मीविलास का उत्कृष्ट उपयोग होता है।

प्रसव के पश्चात् उत्पन्न उदरशूल को व्यवहार में मक्कलशूल कहते हैं। इस पर महायोगराज गूगल, महावातविध्वंसन, प्रतापलंकेश्वर और लक्ष्मीविलास रस उपयोगी औषध है। ऐंठन सदृश वेदना और हृदयशूल या हृदय की अशक्ति हो तो लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये। (आमवृद्धि

महायोगराज गूगल, स्थान-स्थान पर शूल में महावातविध्वंसन और गर्भाशय में संगृहीत दोष पर प्रतापलंकेश्वर)

यह लक्ष्मीविलास रस वृष्य है, अत: यह अण्डकोष की ओर रक्त का दबाव यथोचित न होने से उत्पन्न सामान्य नपुसंकता को (इस तरह अधिक शारीरिक निर्बलता से उत्पन्न नपुंसकता को) दूर करता है।

इस रसासन का उपयोग विशेषत: वात और वातकफ दोष, वायुलघुत्व, शीतलत्व, चलत्व ये गुण, रस रक्त और मांस ये दूष्य हृदयावरण, धमनियाँ, शिराएँ, फुप्फुस और फुप्फुसावरण ये स्थान इन सब पर होता है। (औ.गु.ध.शा. के आधार से)

मधुरा की अन्तिम अवस्था में जब नाड़ी छूटने लगती है, ऐसी आसन्न मृत्यु वाली अवस्था में छिन्न श्वास उपस्थित होता है। उस अवस्था में डाक्टरी चिकित्सा में प्राणवायु (ऑक्सिजन) फुप्फुसों में भरते हैं। किन्तु हृदय क्षीण होने से इसका उपयोग नहीं होता। कारण ऑक्सिजन को ले जाने वाले रक्त कण अति शिथिल मृत-सी स्थिति में होने से वे ऑक्सिजन को योग्य स्थान पर नहीं पहुँचा सकते। उस स्थिति में हृदय से संलग्न रक्तवाहिनियों का विकास कर हृदय को रक्त और वायु की पूर्ति करनी चाहिये। यह कार्य इस लक्ष्मीविलास रस से उत्तम प्रकार से होने के उदाहरण मिले हैं।

न्युमोनिया और अन्य कितने ही सन्निपातों में कितने ही समय अकस्मात् नाड़ी क्षीण होकर प्रस्वेद आने लग जाता है और शारीरिक उष्मा बहुत कम हो जाती है यह लक्षण अनेक बार प्राणघातक होता है। ज्वर का जल्दी उतरना, सर्वाङ्ग का अति प्रस्वेद आकर शीतल हो जाना, नाड़ी अतिमन्द होना, अति घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस लक्षण के प्रारम्भ होने पर लक्ष्मीविलास, श्रृङ्गभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म तीनों १-१ रत्ती को आम का मुरब्बा ६ माशे के साथ मिलाकर ऊपर-ऊपर देते रहें और अर्जुनारिष्ट थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहें तो कुछ भी बाधा न होते हुए रोगी सुधर जाता है।

सूचना-इस रस से क्वचित् किसी को नाड़ी वेग बढ़ जाता है। ऐसा होने पर सुवर्णमाक्षिक भस्म का सेवन कराना चाहिए।

(२५) लक्ष्मीविलास (नारदीय) रस*

विधि-अभ्रक भस्म ४ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, बङ्ग भस्म १ तोला, शुद्ध पारद और शुद्ध हरताल ६-६ माशे, ताम्र भस्म ३ माशे, कपूर, जायफल, जावित्री, विधारे के बीज और धतूरे के शुद्ध बीज १-१ तोला तथा सुवर्ण भस्म ३ माशे लें। पहले पारद गन्धक मिलाकर कज्जली करें, फिर हरताल और अन्य भस्म मिलावें। पश्चात् कर्पूर छोड़कर शेष औषधियों का चूर्ण मिलावें। अन्त में कर्पूर मिला, नागरबेल के पानों के रस में ३ दिन खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (र.यो.सा.)

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २ बार, शहद, मांस रस, शराब या ब्राह्मरसायन या रोगानुसार अनुपान के साथ प्रात: रात्रि को देवे। सन्निपात में आवश्यकता अनुसार १-१ गोली, ३-४ बार २-२ घण्टे पर देवें।

गुणधर्म-यह नारदीय लक्ष्मीविलास रस सुख साध्य, कृच्छ्साध्य, याप्य और असाध्य चारों प्रकार के सन्निपातों से उत्पन्न घोर दारुण विकारों (उपद्रवों) को नष्ट करता है। इसमें यह भी नियम नहीं है कि मात्र वातज या पित्तज रोगों को ही दूर करें। सब प्रकारों पर सफलतापूर्वक कार्य करता है। इसके अतिरिक्त कण्ठ के भीतर के रोग, अन्त्रवृद्धि, अतिसार, कुष्ठ, प्रमेह, कफवातज दीर्घकालीन एवं वंशागत श्लीपद, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, मूत्ररोग, गुदरोग, भगंदर, कास, पीनस, राजयक्ष्मा, अर्शरोग, स्थूलता (मेदोरोग), दैहदौर्गन्ध्य, रक्तविकार, आमवात, जिह्वास्तम्भ, गलशोथ, गलग्रह, उदररोग, कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, अरुचि, मुखरोग, उदरशूल, शिरशूल, मक्कलशूल, स्त्रीरोग, पुरुषों के ध्वजभङ्ग आदि रोगों को यह नारदीय लक्ष्मीविलास दूर करता है। इस रस का निरन्तर सेवन करने वालों को इन्द्रिय शैथिल्य और श्वेत केश की प्राप्ति नहीं होती है।

उपयोग-लक्ष्मीविलास अभ्रक वाले की अपेक्षा इसमें ताम्र भस्म, शुद्ध ताल और सुवर्ण भस्म तीन महत्व के द्रव्य अधिक मिलाये गये हैं। यह रस मस्तिष्क, हृदय, यकृत और आमाशय, चारों पर अपना प्रभाव दर्शाता है। जब यकृत भी निर्बल है, तब अभ्रक वाला लक्ष्मीविलास योग्य कार्य नहीं करता, ऐसी अवस्था में लक्ष्मीविलास का प्रयोग किय जाता है। सेन्द्रिय विष नष्ट करना हो, तो उस पर भी यह अधिक प्रभावशाली है। इस हेतु से यू.पी और बंगाल में इस लक्ष्मीविलास का उपयोग अधिक होता है।

सूचना-कईयों को इस लक्ष्मीविलास के साथ तुरन्त दूध लेने पर अनुकूल नहीं रहता, उनको ब्राह्मरसायन के साथ दिया जाता है। फिर दूध का सेवन १ घण्टे बाद करने में कोई आपत्ति नहीं आती।

---

* पलं वज्राभ्रचूर्णस्य तदर्द्धं गन्धक भवेत्।
तदर्द्धं वङ्गभस्माऽपि तदर्द्धपारदं तथा॥
तस्समं हरितालं च तदर्द्धं ताम्रभस्मकम्।
रससाम्ब्येन कर्पूरं जातीकोषफले तथा॥
वृद्धदारकबीजञ्च बीजं स्वर्णफलस्य च।
प्रत्येक वार्षिकं भागं मृतं स्वर्णञ्च शाणिकम्॥

(२६) ब्राह्मी वटी

विधि–ब्राह्मी (जल नीम) ५ तोले, रससिन्दूर २ तोले, अभ्रक भस्म, बङ्गभस्म, शुद्ध शिलाजीत, कालीमिर्च, पीपल और बायबिडङ्ग प्रत्येक १-१ तोला लेवें। सबको मिला ब्राह्मी के क्वाथ में ३ दिन खरल करके चने के समान गोलियाँ बनावें। ब्राह्मी ५ तोले को उबलते हुए २ तोले जल में मिलाकर क्वाथ करें। १० तोले शेष रहने पर उतारकर छानकर उपयोग में लेवें।

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ समय, दूध के साथ देवें।

उपयोग–यह वटी ज्वर के पीछे की निर्बलता, जीर्णज्वर, मस्तिष्क की कमजोरी, हृदय की निर्बलता, स्मरण शक्ति का अभाव, धातुस्राव आदि विकारों को मिटाती है। ज्वर को उतारने में उपयोगी है। मोतीझरे में विशेष बैचेनी, प्रलाप, अतिसार, उदरशूल आदि लक्षणों में यह वटी हितावह है। वातप्रधान और कफप्रधान सन्निपात में हृदय और मस्तिष्क का रक्षण करती है, तथा दोष के पचन में सहायता पहुँचाती है। अनावश्यक विकारों का शमन कर रात्रि को शान्त निन्द्रा ला देती है।

ज्वर कुछ दिनों तक रह जाने पर रक्त, माँस आदि संस्थानों के भीतर कई कोषाणु (Cells) मृत हो जाते हैं। उसके विष प्रकोप से मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है, एवं निर्बलता दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है। ऐसे रोगियों की देह में से दुर्गन्धयुक्त स्वेद आता है। कई रोगियों के निःश्वास में भी दुर्गन्ध निकलती रहती है। उन रोगियों को यह ब्राह्मी वटी देते रहने से एक सप्ताह के भीतर अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

सूचना–(१) मूत्र में अधिक पीलापन हो, स्वेद और निःश्वास में भी दुर्गन्ध अधिक हो तो इन गोलियों के सेवन के साथ शिलाजीत २-२ रत्ती को पुनर्नवा के फाण्ट के साथ दिन में २ बार देते रहने से जल्दी लाभ पहुँचने का अनुभव मिला है।

(२) जिन रोगियों के पित्तप्रकोप हो, सूखी खाँसी चलती रहती हो तथा रात्रि को शान्त निन्द्रा न मिलती हो, उनको ब्राह्मी वटी नहीं देनी चाहिये। उनको प्रवाल मुक्ता-सितोपलादि मिश्रण या संशमनी वटी जैसी शामक औषधि देना विशेष हितकारक माना जाता है।

(२७) मल्ल पुष्प

विधि–सोमल १० तोले को नींबू रस में १ दिन घोटें। फिर लाल फिटकरी १० तोले मिला, खरलकर मिट्टी की हाँडी में भर ऊपर दूसरी हाँडी उल्टी रखकर डमरूयन्त्र बना लेवें। संधि को अच्छी रीति से बन्द करें। फिर चूल्हे पर चढ़ाकर ६ घण्टे तक मन्दाग्नि दें। बार-बार ऊपर की हाँडी पर गीला कपड़ा बदलते रहें। स्वाँगशीतल होने पर सावधानी से खोलकर ऊपर की हाँडी में से फूल निकाल लेवें। नीचे से फिटकरी का फूला मिले, उसका उपयोग बटी प्रकरण में लिखे अनुसार ज्वरादि वटी में करें। (र.सा.)

मात्रा–१ चावल भर। सोंठ के घासे के साथ, बताशे से अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–मल्लपुष्प श्वास, कास, जीर्णज्वर, कुष्ठ, त्रिदोष, रक्तविकार, निमोनिया, उपदंश, सन्धिवात आदि रोगों का नाश करता है। सन्निपात में भयंकर कफवृद्धि होकर गले में कफ भर जाता है, वह इस मल्लपुष्प के देने से सत्वर दूर हो जाता है।

सूचना–यह औषधि पित्त प्रकृति वाले को १०२° डिग्री से अधिक ताप हो तब नहीं देना चाहिये। इस औषधि के साथ घी-दूध का सेवन ज्यादा करना चाहिये और अपथ्य से दृढ़तापूर्वक बचना चाहिये।

(२८) मलेरिया वटी

प्रथम विधि–गोदन्ती भस्म, शुद्ध हरताल, गिलोय सत्व, वंशलोचन और छोटी इलायची सबको समभाग मिला सहदेवी के रस में १२ घण्टे खरल कर ज्वार के दाने के बराबर गोलियाँ बनावें। (धन्वन्तरि)

मात्रा–पाली के ताप में १ गोली ज्वर आने के ४ घण्टे पहले और २ गोली दो घण्टे पहले शक्कर के साथ दें। अन्य तापों में दिन में २ बार दूध के साथ दें।

उपयोग–यह वटी सब प्रकार के विषमज्वर (मलेरिया), संतत, सतत, एकांतरा तिजारी आदि और अन्य ज्वरों को दूर करती है।

कभी-कभी चातुर्थिक ज्वर छूट जाने पर चौथे-चौथे दिन हिस्टीरिया मिश्रित अपस्मार (Hysteroepilepsy) उपस्थित होता है। रोग तीव्रावस्था में न हो तब जड़ता, प्रलाप, फिर मूर्च्छा, मुँह से झाग निकलना, फिर दाँत भिचना आदि लक्षण होते हैं। शौचशुद्धि नहीं होती। उदर में वेदना होती है। उस पर यह मलेरिया वटी अमृतारिष्ट के साथ सुबह और रात्रि को अश्वकंचुकी रस के साथ देने से रोग शमन हो जाता है। उदर शुद्धि नियमित होती रहे ऐसा भोजन लेना चाहिये एवं अनुपान की योजना भी उसी तरह करनी चाहिये।

दूसरी विधि–क्विनाइन बाई हाईड्रोक्लोराइड ७॥ माशे, गिलोयसत्व २ तोले, वंशलोचन १ तोला, छोटी इलायची के दाने ६ माशे और केशर १ माशा मिलाकर खरल करें। पश्चात् नीम गिलोय २ तोले, धनिया १ तोला, लालचन्दन, पद्माख और नीम की कोमल पत्ती ६-६ माशे मिलाकर क्वाथ करें। इस क्वाथ में औषधि को खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (स्व. डॉ. श्री रामरक्षपालजी शुक्ल)

मात्रा–२ से ४ गोली। दिन में ३ समय, दूध या जल के साथ। जिनको क्विनाइन सहन न होता हो, उनको दूध पिलाकर देवें और ऐसे रोगियों के जीर्णज्वर और मन्द ज्वर में भोजन के बाद देवें।

उपयोग–यह वटी सब प्रकार के विषमज्वर, जिसमें दाह और ठण्डी दोनों रहती हों, ऐसे एकाहिक, द्वयाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि सब ज्वरों का नाश करती है, प्लीहावृद्धि को कम करती है, और शरीर में शान्ति लाती है।

यह मलेरिया वटी जीर्णज्वर में अधिक उपकारक प्रतीत हुई है। पित्तप्रकोप पीड़ित रोगियों को भी निर्भयतापूर्वक दी जाती है। शहरवासी कई रोगियों का उदर पुराने मल और आम से भरा रहता है। उनको ज्वर जीर्ण बनने पर जल्दी नहीं छोड़ता। अतः यह वटी नागरमोथा, सोंठ, बाँफ, गिलोय और छोटी हरड़ के क्वाथ के साथ सेवन कराते रहने पर थोड़े ही दिनों में ज्वर दूर हो जाता है। पचनक्रिया सुधरने लगती है तथा बल आने लगता है।

(२९) मल्लादि वटी (विषमज्वर)

विधि–शुद्ध सोमल और शुद्ध हरताल को समभाग मिलाकर करेले के रस में ३ दिन तक खरल करके १/४-१/४ रत्ती की गोलियां बनावें। (र.यो.सा.)

यद्यपि मूल श्लोक में करेले के रस की भावना लिखी है, परन्तु उसकी जगह ककोड़े का रस लिया जाय तो अधिक काम करता है, ऐसा रसयोग सागरकार का अनुभव है।

मात्रा–१ गोली ज्वर आने के २ या ३ घण्टे पहले तुलसी के पत्ते और कालीमिर्च के साथ या १ गोली को भांग १ रत्ती और छोटी कटेली का चूर्ण १॥ माशे और धतूरे की पत्ती २ इञ्च जितना गोल मिला, कत्था चूना लगे नागरबेल के पान में डालकर खिला देवें। २-३ घण्टे तक जल नहीं पिलाना चाहिये। पुराने बिगड़े हुए जुकाम में मल शुद्ध करने के पश्चात् दूध के साथ, कफवृद्धि में मिश्री के साथ और आमवृद्धि में अदरक के रस के साथ देवें।

उपयोग–यह वटी शीत लगकर आने वाले सब प्रकार के विषमज्वर, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि को एक ही दिन में रोक देती है। जीर्ण प्रतिश्याय, कफवृद्धि, वातवृद्धि से होने वाली अरुचि, मन्दाग्नि, मन्द-मन्द ज्वर, श्वास, कास और आमवृद्धि को दूर करती है।

सूचना–पित्तप्रधान प्रकृतिवाले को और नये जुकाम के रोगी को यह औषधि नहीं देनी चाहिये।

(३०) भूतभैरव रस

विधि–शुद्ध हरताल ९ तोले, शुक्ति भस्म ९ तोले और शुद्ध नीलाथोथा २ तोले मिला, घीकुंवार के रस में ३ दिन खरल करके टिकिया बनावें। सूखने पर मजबूत सराव संपुटकर २।। सेर आरण्य कण्डों की अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल पीसकर बारीक चूर्ण करें।

मात्रा–१ रत्ती चूर्ण को ३ माशे चीनी के बीच में रखकर ताप आने के पहिले २ बार ३ घण्टे पहिले से हर घण्टे खा लेवें। ताप का समय चला जाने पर दही **भात खाने को देवें।**

उपयोग–इस रस से सब प्रकार के विषमज्वर, ठण्ड लगकर आने वाले ताप, एकांतरा, तिजारी आदि एक दिन में दूर हो जाते हैं। इस औषध से कदाच किसी को वमन हो जाय तो भय न मानें।

यह औषधि देने पर गरम दूध या गरम चाय नहीं पीना चाहिये अन्यथा वमन व बेचैनी होने की संभावना है। पित्तप्रकोप वालों को यह रस देने पर शीतल जल या नींबू के रस में जल और शक्कर मिलाकर पिलाने से रस सरलता से पचकर अपना प्रभाव दर्शाता है।

(३१) चन्दनादि लोह (ज्वर)

विधि–रक्तचन्दन, नेत्रवाला, पाठा, खस, पीपल, हरड़, सोंठ, कमलकन्द, आँवला, त्रिमद (नागरमोथा, चित्रकमूल और वायविंडग), ये १२ औषधियाँ १-१ तोला और लोहभस्म १२ तोले मिलाकर खरल करें। (र.सा.सं.)

मात्रा–१ से २ रत्ती शहद के साथ दिन में २ समय देकर ऊपर तुलसी, कालीमिर्च और नागरमोथे का क्वाथ पिलावें।

उपयोग–यह रस सब प्रकार के विषमज्वरों और जीर्णज्वर को दूर करता है। जो ज्वर थोड़े दिन आता है, थोड़े दिन नहीं आता; ऐसे दीर्घकाल तक बार-बार आने वाले ज्वरों में यह चूर्ण अच्छा लाभ पहुँचाता है। इस औषधि का उपयोग निस्तेज मुखमण्डलयुक्त रोगी, जिनको पाण्डुता और प्रमेह भी हो उनके लिये अधिक सफल होता है। एवं इसके सेवन से नेत्र जलन, प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, मन्दाग्नि, पाण्डुता, शिरदर्द, दाह, कृमि आदि दोष दूर होकर शरीर स्वस्थ और बलवान बनता है। यदि रक्त, रक्ताभिसरण और हृदय की निर्बलता के हेतु से जीर्णज्वर बना रहता हो, तो इसके सेवन से सत्वर लाभ पहुँचता है।

(३२) सुवर्ण मालिनीवसंत

विधि–सुवर्ण भस्म १ तोला, मोतीपिष्टी २ तोले, शुद्ध हिंगुल ३ तोले, सफेद मिर्च ४ तोले और शुद्ध खर्पर ८ तोले लेवें। पहिले सुवर्णभस्म (या वर्क) और हिंगुल को मिलाकर एक जीव करें। फिर अन्य वस्तुयें मिला, गाय के कच्चे दूध में से निकाला हुआ मक्खन २॥ तोले मिलाकर

३ घण्टे घुटाई करें। फिर नींबू का रस डालकर चिकनापन दूर होने तक खरल करें। लगभग ८-१० दिन घुटाई करनी पड़ेगी। फिर १-१ र
की गोलियां अथवा १-१ माशे की टिकिया बना लेवें।

वक्तव्य-सुवर्णभस्म के अभाव में कुन्दन अथवा सुवर्ण वर्क लें। मोतीपिष्टी के अभाव में मोतीसीप की भस्म दूनी लें। खर्पर के अभा
में जशदभस्म ४० पुटी लेवें। सिंगरफ को शुद्ध करके उपयोग में लें अथवा द्विगुण गन्धक जारित रससिंदूर मिलावें। अनेक वैद्य मक्खन ४ तो
मिलाकर ४० दिन तक ताजे पक्के नींबू के रस में खरल करते हैं। परन्तु इससे नींबू का खट्टापन अधिक बढ़ जाता है। यदि वर्क मिलावें
सिंगरफ (रससिन्दूर) के साथ २ दिन खरल करके भली भाँति एक जीव कर लें।

इस रसायन में मिलाने के लिये पक्के पीले ताजे नींबू का रस कपड़े की ४ तह से छानकर गिलास में भरें। ८-१० घण्टे बाद कचरा पै
में बैठ जाने पर फिल्टर पेपर से छानकर उपयोग में लेवें। सुवर्णमालिनी वसंत तैयार होने पर (३ माशे कस्तूरी और १ तोला केशर मिलाक
६ घण्टे खरलकर लेने से विशेष लाभदायक बनती है।)

एक तोला सुवर्ण से २० तोले सुवर्णमालिनी बनती है। उसमें ३ माशे कस्तूरी मिलाने से १ रत्ती मात्रा में ९६वां हिस्सा कस्तूरी हो
है। जिससे सगर्भा स्त्री को निर्भयतापूर्वक दे सकते है। फिर भी सगर्भा स्त्रियों को देने के लिये, जिनको कस्तूरी न मिलानी हो, वे न मिलावें

मात्रा-१ रत्ती से २ रत्ती तक। दिन में २ बार, पीपल के चूर्ण और शहद अथवा गिलोयसत्व, पीपल और शहद (या च्यवनप्राशावलेह)
साथ देवें। क्षय की प्रथमावस्था और जीर्ण ज्वर में सुवर्ण वसन्त, अभ्रक भस्म, श्रृङ्ग भस्म और सितोपलादि चूर्ण मिला शहद के साथ दि
में ३ बार देते रहें।

उपयोग-यह रस क्षय, जीर्णज्वर, धातुगत विषमज्वर, प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, मन्दाग्नि, स्त्रियों के प्रदररोग, मगज की निर्बलता, खांसी
धातुक्षीणता, हृदय रोग, मस्तकशूल आदि में हितकर है। पुराने रोगों में शांति पूर्वक सेवन करने से निश्चित लाभ होता है। किसी रोग से अथ
व्यायाम, परिश्रम या वृद्धावस्था के हेतु से आई हुई निर्बलता इस वसन्त के सेवन से निश्चयपूर्वक दूर होती है।

यह रसायन रसवाहिनियाँ, रसोत्पादक पिण्ड, यकृत-प्लीहा आदि विकृति में उत्कृष्ट है। यकृत् और प्लीहा के दोष (वृद्धि अथवा शिथिलता
को दूर करके पचनक्रिया को नियमित बनाती है। यही औषधि का मुख्य कार्य है; इस हेतु से थोड़े समय में शरीर सशक्त हो जाता है। अनुपा
भेद से अनेक रोगों में यह लाभ पहुँचाती है।

बालक, वृद्ध, सगर्भा, स्त्री सबके लिये हितकर है। सब ऋतु में, सब देश में और सब प्रकार की प्रकृति वालों के लिये निर्भयतापूर्व
इस वसन्तमालिनी को प्रयोग में ला सकते हैं। तरुण स्त्रियों के मासिकधर्म में रक्त अधिक जाना और रक्तप्रदर या श्वतेप्रदर के पश्चात् हो
वाली पाण्डुता में यह सुवर्णमालिनी अत्यन्त उत्तम औषधि है।

सुवर्णमालिनी में रसायन, बल्य, क्षयघ्न, कीटाणुनाशक और रक्तप्रसादन गुण है। वातवह मण्डल, सहस्रार, नाड़ीचक्र आदि से लेकर शरी
के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयव समूह पर्यन्त सबको बल देना, यह महत्व का गुण इस रसायन में है। इसका उपयोग आभ्यन्तरिक अवयवों की निर्बलत
से उत्पन्न सब रोगों पर किया जाता है। इसी हेतु से मूलग्रन्थकार ने इसके गुण में केवल "सर्वरोगे वसन्तः" इतना ही कहा है।

कुचिला आदि से क्षणिक उत्तेजना आती है; इससे भी बल की प्राप्ति हुई कहा जाता है। परन्तु विचार करने पर बल और उत्तेजना दो
में महदन्तर है। कुचिले से वातवाहिनियों का स्पन्दन बढ़कर उत्तेजना आती है; वह क्षणिक है; धातुसाम्य पूर्वक नहीं। स्वर्णमालिनी वसन्त
जो बल मिलता है वह स्थिर; धातु साम्य रखकर मिलता है। सब अवयव समूहों को उनके अनुरूप घटक द्रव्य प्राप्त होकर बल की प्राप्ति
होती है। यह नियम है कि आहार परिणामज द्रव्य उस-उस स्थान के धात्वग्नि के योग से पचन होकर उस धातु में आत्मसात् होने पर य
कार्य होता है। पूर्व धातुओं में से परधातु बनती है। उसमें पूर्व धातुयें परधातु के लिये आहार रूप है। इसी हेतु से पूर्व धातुओं में से रूपान्त
होकर परधातु की प्राप्ति होती है। इस तरह धातुओं का पोषण होता है। धातुपोषण व्यवस्थित होने पर बलाधान होता है। सुवर्णमालिनी के यो
से; रस से शुक्र और ओज तक सब धातुओं का पोषण सबके भीतर रहे हुए धात्वग्नि बल के सम्यक् प्रकार से कार्यक्षम बनने पर होता है
धातु परिपोषण क्रम सबल और व्यवस्थित होने पर वात आदि त्रिधातुओं को भी बल की प्राप्त होती है। इसका भी पोषण होना ही चाहिये
त्रिधातुओं के साम्य पर शारीरिक घटक और मण्डल के बल का आधार है। त्रिधातु बलवान और सम होने पर ही सब रस रक्त आदि दूष्य
और वातवह मण्डल आदि बलवान रह सकते हैं। इस तरह इस रस का परिणाम वातवह मण्डल पर शक्तिदायक होता है।

रोगी किसी बड़े त्रासदायक रोग से उठा, ऐसा कहने में तात्पर्य यह है कि रोग के त्रासदायक लक्षण सब दूर हुए हैं। किन्तु रोग के
साथ लड़ते-लड़ते शरीर की सभी धातुयें क्षीण हो जाती हैं, बल भी क्षीण हो जाता है। अग्निमांद्य होने पर अन्न का अच्छा पचन नहीं होता
ऐसी परिस्थिति में सुवर्णमालिनी वसन्त देने का वृद्ध वैद्यों का बर्ताव है। इस तरह "सर्वरोगे वसन्तः" वचन सार्थक होता है।

वसन्तमालती से पाचक रस की उत्पत्ति और क्रिया उत्तम प्रकार से होती है, धातु के अन्तर्गत अग्नि को भी बल की प्राप्ति होती है। इसी
हेतु से अन्न का पाचन योग्य होता है। फिर रस, रक्त आदि धातुएँ सम्यक् प्रकार से बनती हैं, आगे-आगे को धातु सबल होती जाती है, ओज
की वृद्धि होती है, तेज बढ़ता और देह का वर्ण भी सुधर जाता है।

क्षय में–विशेषत: कीटाणुजन्य राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था में शरीर बल बढ़ाने का और क्षय की प्रतिकारक्षमता बढ़ाने का महत्व कार्य सुवर्णमालिनी से होता है। प्रतिकारक्षमता बढ़ने पर क्षय के कीटाणुओं का नाश होता है। यह कार्य सुवर्णमालिनी में रहे हुए सुवर्ण और मुक्ता के योग से होता है।

कफ-क्षय की प्रथमावस्था में शुष्ककास, सूक्ष्मज्वर, विशेषत: सायंकाल को शारीरिक उत्ताप बढ़ जाना, दिन-प्रतिदिन निर्बलता की वृद्धि होना और प्रात:काल के समय प्रस्वेद आना आदि लक्षण होने पर सुवर्णमालिनी वसन्त देना चाहिये। इस अवस्था में इस रसायन का उत्तम उपयोग होने के अनेक उदाहरण मिले हैं। प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण मिला देने से सत्वर लाभ पहुँचता है।

कफक्षय की द्वितीयावस्था में सुवर्णमालिनी बसन्त की अपेक्षा सुवर्णभस्म, पूर्णचन्द्रोदय रस आदि मिश्रण का अधिक उपयोग होता है।

गण्डमाला या अन्य किसी स्थान में–कक्षा, उदर, जंघा के भीतर ग्रन्थि उत्पन्न होकर उसमें से रसस्राव होना, सूक्ष्म ज्वर रहना, आगे ज्वर बढ़ते जाना, त्रासदायक शुष्ककास, सर्वाङ्ग शुष्कता, बाह्य त्वचा बिल्कुल रूक्ष हो जाना, अशक्ति, मांस क्षीणता, हाथ-पैर लकड़ी सदृश बन जाना आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्था में सुवर्णमालिनी वसन्त अति उपयोगी है। यदि उपर्युक्त लक्षणों के साथ मनुष्य मोटा और पुष्ट हो तो जसदभस्म देनी चाहिए।

जीर्णज्वर में प्लीहावृद्धि और मन्दाग्नि आदि विशेष लक्षण होते हैं। इसमें क्षय का कोई सम्बन्ध नहीं होता। अनेक दिनों तक शीतपूर्वक ज्वर एवं आंत्रिक आदि सन्निपातिक ज्वर के पश्चात् जीर्णज्वर रह गया हो तो सुवर्ण वसन्त अति उत्तम कार्य करती है।

जीर्ण और आग्रही शीतपूर्वक ज्वर के कतिपय ऐसे रोगी प्रतीत होते हैं, कि जिनको क्विनाइन, सोमल, लोहकल्प के विविध सिद्ध योगों द्वारा चिकित्सा अनेक बार अनेक दिनों तक सतत हुई हो, फिर भी शीतज्वर न जाता हो, बार-बार अपना अस्तित्व प्रकाशित करता ही रहता हो, रोगी को त्रास पहुँचाता ही रहता हो, इसका कारण यह है कि यह औषधि व्यसन सदृश सात्म्य हो जाने से शरीर में शोषण होकर प्रतिकार क्षमता नही बढ़ा सकती। ऐसी परिस्थिति में सुवर्णमालिनीवसंत से अपूर्व लाभ प्राप्त हो जाने के अनेक उदाहरण मिले हैं। इस प्रकार के विकार में प्लीहा वृद्धि होने पर एक समय सुवर्णमालिनी और दूसरी बार रोहितारिष्ट देने पर अति उत्तम लाभ पहुँच जाता है।

धातुक्षय के दो प्रकार हैं–अनुलोम और प्रतिलोम। रस से शुक्र पर्यन्त धातुक्षीण होने को अनुलोम और शुक्र से रस पर्यन्त क्षय होने पर प्रतिलोम क्षय कहलाता है। रक्तस्राव अधिक होने पर अन्य धातुओं का क्षय होता है। फिर निस्तेजता, अशक्ति और अग्निमांद्य आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। स्त्रियों को रज:स्राव अत्यधिक होने पर या प्रसवावस्था में रक्तस्राव अधिक होने पर भी धातुक्षीणता उत्पन्न होकर निस्तेजता आ जाती है। किसी कारण से धातुक्षीणता होकर बलमांस विहीनत्व को प्राप्त हो, सारा शरीर टूटना, हाथ पैर में जलन, नेत्र में दाह, निरुत्साह, किसी भी कार्य की इच्छा न होना इत्यादि लक्षण प्रतीत हों, तो सुवर्णमालिनी का सेवन करना अतिहितकर है। यदि पाण्डुता भी साथ में आई हो तो सुवर्णमालिनी वसन्त के साथ मण्डूर भस्म या लोहभस्म मिश्रित करके या अलग स्वतन्त्र रूप से देनी चाहिये। यदि पाण्डुता के साथ सर्वाङ्ग में शोथ, सारे शरीर पर मोम लगाने सदृश तेज एवं मुख, गाल आदि पर भी शोथ और तेजी हो, तो लोहभस्म और सुवर्णमालिनीवसन्त देना अधिक हितकर है।

शुक्र का नाश अनेक प्रकार से होता है। अति व्यवाय, अन्यथा व्यवाय (हस्त मैथुन आदि) कारणों से शुक्र नाश होता है। शुक्रक्षीण होने पर ओज की क्षीणता होती है। फिर बलक्षय और अन्य धातु की पूर्ति में न्यूनता होने से धातुओं की क्षीणता की प्राप्ति होती है। परिणाम में सहस्रार आदि बुद्धिन्द्रिय कार्यक्षम नहीं रहती। बुद्धि, स्मृत्ति, धारणशक्ति तीनो मन्द हो जाती हैं। ओजक्षय या शुक्रक्षय होने पर मन मे विविध भ्रम होने लगते हैं। किसी बात की अधिक स्मृति नहीं रहती, रोगी के बोलने में भी रुकावट होती है। विचार करने में थक जाता है। विचार नियमबद्ध नहीं होता। चित्त विभ्रम-सा होकर किसी स्थान पर मूढ़ सदृश बैठा रहता है, या मूक बधिर सदृश देखता रहता है, मस्तिष्क में कुछ विचार ही न हो ऐसा उन्माद रोगी सदृश दीखता है। इसतरह शुक्रधातुक्षीण होने पर अन्य धातुओं में क्षीणता आकर ऐसी परिस्थिति हो जाती है। धातुक्षीण होने पर आभ्यन्तरिक अवयव भी निर्बल और कृश होते जाते हैं। शुक्रधातु, जो सहस्रार और मन बुद्धि को शक्तिदायक है, उसका जितना क्षय अधिक हो, उतनी ही सहस्रार को हानि पहुँचती है। इस प्रकार की विकृति में सुवर्णमालिनी वसन्त अति उत्तम औषध है।

मैथुन लालसा अति बढ़ी हुई हो, परन्तु उसमें अतृप्ति होने पर उस पर लगी हुई चित्तवृत्ति भी एक आपत्ति है। इसका चिकित्सकों से (बिना कहे) निदान होना भी कठिन है। इसमें भी स्त्री रुग्ण हो, तो फिर कहना ही क्या? इस प्रकार में वातवाहिनियां इनके केन्द्र स्थान और इनके चक्र (मण्डल) इन सब में क्षोभ विशेष कारण होता है। इस प्रकार की विकृति में सुवर्णमाक्षिक भस्म या ब्राह्मी, जटामांसी आदि शामक औषधि के साथ सुवर्णमालिनी वसन्त का उपयोग करना चाहिये।

सुवर्णमालिनी वसन्त स्त्रियों के श्वेत प्रदर में भी लाभदायक है। यथार्थ में श्वेतप्रदर में भी अनेक प्रकार है। इनमें गर्भाशय या योनिमार्ग की श्लैष्मिक कला में उष्णता होकर प्रदर हुआ हो, और नया रोग हो, तो सुवर्णमालिनी वसन्त और गिलोय सत्व को शहद के साथ देने से लाभ पहुँच जाता है। बीजाशय विकृति और व्रण आदि हेतु से प्रदर हो, तो प्रदरान्तक लोह, प्रदरान्तक रस आदि औषध का सेवन और बाह्य उपचार भी करना चाहिये।

गण्डमाला बढ़ने पर उससे सूक्ष्म ज्वर आने लगता है; सारा शरीर टूटता है, क्षीणता आती जाती है; ऐसी स्थिति में सुवर्णमालिनी व उत्तम कार्य करती है। यदि ज्वर अधिक हो, तो यह रस नहीं देना चाहिये। सूक्ष्म ज्वर, शुष्क कास, शुष्कता और हाथ पैर टूटना आदि ल होने पर यह वसन्त उत्तम कार्यकारी है।

कण्ठ के सदृश उदर में ग्रन्थि बढ़ने पर यदि मन्द ज्वर आदि उक्त लक्षण हों, तो सुवर्णमालिनी वसन्त अवश्य देना चाहिये। यदि म बलवान् पुष्ट हो और गाँठ बढ़ी हो, तो जसद भस्म देनी चाहिये।

जीर्ण अतिसार, साथ-साथ सर्वाङ्ग में रूक्षता, शुष्कता हो, तो सुवर्णमालिनी वसन्त शक्ति बढ़ाने या कायम रखने के लिये देनी चाहिये। प्रकार के अतिसार में शौच अधिक समय नहीं जाना चाहिये। परन्तु प्रत्येक समय हौज के डाट खोलने पर वेग पूर्वक निकलने वाले जल प्र के सदृश पतला दस्त अधिक परिमाण में एकदम बाहर निकल जाता है। ऐसा होने का कारण अन्त्र की संग्राहक और धारणशक्ति की कमज है। ऐसे अतिसार में सुवर्ण प्रधान लक्ष्मीविलास रस भी सुवर्णपर्पटी प्रधान दिया जाता है। परन्तु लक्ष्मीविलास देने में मल की कमी और अ बार शौच होता है या नहीं, यह देखना पड़ता है।

जीर्ण संग्रहणी के विकार में पर्पटी कल्प मुख्य है। परन्तु बलमांसविहीनत्व होकर अन्त्र की शक्ति का ह्रास होता जाता है, तो शक्ति संरक्षण सुवर्णमालिनी वसंत देना अति लाभदायक है।

जीर्ण-अजीर्ण विकार और इससे उत्पन्न आमविष, फिर होने वाले सामविकार; इस सब में सुवर्णमालिनी वसंत उत्कृष्ट औषध है। व से पाचक अवयवों की शक्ति बढ़ जाती है; पाचक रस का स्राव सम्यक् होता है। फिर आमविष कम होता जाता है। इस उत्पत्ति की दृ से जीर्ण आमवात और उससे उत्पन्न होने वाले व्याधिसंकर (उपद्रव) के विकारों में भी वसंत उपयोगी है।

यह रसायन कफ और पित्तदोष, रस, रक्त, मांस; शुक्र और ओज, ये दूष्य; तथा कोष्ठस्थ अवयव समूह इस सब पर लाभदायक है। (औ.गु.ध.शा.)

जीर्ण ज्वर होने पर नेत्रों में दाह, हाथ-पैरों में जलन, मलावरोध, जिह्वा पर सफेद मल की तह आ जाना, नाड़ी में क्षीणता, पेशाब पीलापन आदि लक्षण हो जाते हैं। इनमें कफ प्रकृतिवाले को सुवर्णमालिनी वसंत आधी-आधी रत्ती के साथ मुलहठी, सितोपलादि चूर्ण औ अमृतासत्व मिलाकर शहद के साथ देना चाहिये, तथा सुबह शठी, खस, छोटी कटेली का मूल, सोंठ, और मिश्री का क्वाथ शहद मिला देवें। तथा आवश्यकता पर रात्रि को उदर शुद्धि के लिये आरग्वधादि क्वाथ या मधुकादि कषाय देना चाहिये।

सूचना-यदि सुवर्णमालिनी से किसी को पित्त बढ़ता हो या रक्तस्राव हो, तो प्रवालपिष्टी साथ में मिला लेनी चाहिये।

किसी-किसी को तीव्र शुष्ककास होने पर सुवर्णमालिनी सहन नहीं होती। उनको पहिले मुक्ता, प्रवाल और गिलोयसत्व या कामदुधा देक अधिक उग्रता का दमन करना चाहिये। फिर सुवर्णमालिनी देने से पूरा लाभ होता है।

(३३) मधुमालिनी वसंत

विधि-सिंगरफ २० तोले लेकर, अनार दानों के रस में ७ दिन खरल करके सूखा चूर्ण बना लेवें। पश्चात् मुर्गी के २० अण्डों के रस के साथ लोहे की कड़ाही में डाल चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि दें और लोहे की कलछी से चलाते रहें। बार-बार रस का शोषण होकर सिंगरफ की गोलियां बनने लगेंगी; उनको कलछी से तोड़ते रहें। जब रस बिल्कुल सूख जाय; तब कड़ाही को चूल्हे पर से उतार लेवें। पश्चात् कचूर सफेद मिर्च, गऊंला (प्रियंगु) प्रत्येक तैयार हुए सिंगरफ के वजन से आधे-आधे परिमाण में और मिला; बड़हर (अथवा अनार) के रस में ७ दिन तक खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनावे। (र.चं.)

मात्रा-१ से २ गोली, मिश्री-घृत या दूध के साथ दें। बालकों के मृद्वस्थि रोग में मण्डूर भस्म और श्रृङ्गभस्म के साथ देवें।

उपयोग-यह रस, बृंहण, बल्य, ओजोवृद्धिकर तथा सूक्ष्म स्रोतों के लिये स्नेहन करने वाला है। यह बालक, सगर्भा, असक्त और सुकुमार के लिये अधिक उपयोगी है।

छोटे बच्चों को गर्भिणी माता का दूध पीने से पारिगर्भिक रोग की उत्पत्ति होती है। इससे बालक का पोषण योग्य नहीं होता। कास, अग्निमांद्य, अरुचि, ग्लानि, चक्कर आदि विकार होते हैं, बालक बार-बार रोता रहता है, देह में बल मांसविहिनत्व की प्राप्ति होती है, उदर बड़ा हो जाता है, तथा हाथ-पैर पतले हो जाते हैं, इस विकार में दीपन पाचन औषधि के साथ इस रसायन का उपयोग करना चाहिये। यदि अग्निमांद्य अधिकांश में है, तो इसका उपयोग विशेष रूप से नहीं होगा। बालक को माता का दूध रोग के निदान परिवर्जन के होने से नहीं पिलाना चाहिये, और मधुमालिनी का सेवन कराना चाहिये।

छोटे बच्चों की अस्थिवक्रता (Rickets)व्याधि में अन्य अस्थिपोषक द्रव्य के साथ में इस रस का उपयोग करना चाहिये। इस रोग में हड्डियां मृदु होकर मुड़ जाती हैं, तथा कृशता, पाण्डुता, मांसक्षीणता और कुब्जता आदि तथा अस्थि धातु में से चूने का परिणाम कम हो जाना, उदर बड़ा, हाथ-पैर पतले, मानसिक विकृति, बालक का क्रोधी या दुराग्रही हो जाना, दाँत आने के समय जिस तरह अवयवों का क्षोभ होता

इस तरह क्षोभ होकर अनेक इन्द्रियों के व्यापार में विकृति होना, पचनेन्द्रिय की क्रिया विकृति होने से कभी अतिसार और कभी कोष्ठबद्धता ना आदि लक्षण होते हैं। उन पर रक्त, माँस और अस्थि की पोषक चिकित्सा करनी चाहिये। अतः मण्डूर भस्म, श्रृङ्गभस्म, सुधाषटक्योग, तोपलादि चूर्ण और मधुमालिनी वसन्त का मिश्रण हितकर है।

गर्भिणी की अस्थि धातु क्षीण होने पर गर्भ की भी अस्थिधातु क्षीण होती है। फिर बालक को आगे मृद्वस्थि रोग हो जाने की सम्भावना ती है। अतः अस्थि धातु के पोषणार्थ सगर्भा को उक्त योग का सेवन कराना चाहिये। जिससे बालक को मृद्वस्थि रोग होने की भीति न रहे।

स्त्रियों की अशक्तता के कारण से गर्भ का योग्य पोषण नहीं होता और सगर्भा स्त्रियां भी दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जाती है। गर्भ की ोग्य वृद्धि नहीं होती एवं रूक्ष आहार-विहार के सेवन से या योनिस्राव अधिकांश में होने से भी गर्भ का योग्य पोषण नहीं होता; गर्भ शनैःशनैः खता जाता है इस अवस्था को किसी आचार्य ने नागोदर और किसी ने उपशुष्क (उपविष्टक) संज्ञा दी है। इस अवस्था में गर्भ और गर्भिणी े पोषण की अत्यन्त आवश्यकता है। इसकी चिकित्सा श्रीवाग्भट्टाचार्य के निम्न वचनानुसार करनी चाहिये।

तयोर्बृंहण-वातघ्न-मधुर-द्रव्य-संस्कृतैः।
घृतक्षीररसैस्तृप्तिरामगर्भाश्च खादयेत्॥

अर्थात् इस अवस्था में बृहंण और वातघ्न गुणयुक्त घी, दूध, मिश्री, अंगूर आदि मधुर द्रव्यों और आम गर्भ (कच्चे गर्भ) से सगर्भा की प्ति करानी चाहिये। यह कार्य मधुमालिनी वंसत के सेवन से उत्कृष्ट रूप से सिद्ध होता है, कारण इसे आम गर्भों की भावना दी है।

स्त्रियों को श्वेतप्रदर विकार में अधिक स्राव होता हो तथा बल, मांस और ओज की क्षीणता हो तो मधुमालिनी वसंत देना चाहिये। इस रह प्रसव के पश्चात् अत्यधिक स्राव होने पर बल क्षय प्रतीत होता हो तो शक्ति लाने के लिये यह रस अति उपयोगी है।

मधुमालिनी वसन्त शीतपूर्वक ज्वर के पश्चात् बल-मांस-विहीनत्व पर उपयोगी है। रक्तकणों के नाश से आई पाण्डुता में मधुमालिनी और ण्डूर भस्म का मिश्रण अधिक हितकर है। परन्तु अधिक कृशता और अधिक बल क्षय पर मधुमालिनी देनी चाहिये।

जीर्णज्वर के विकार में पहले बहुधा शीतपूर्वक ज्वर होता है। यह कम होने पर या अनेक दिन चले जाने पर जीर्णज्वर हो जाता है। इसमें प्लीहा बढ़ जाती है। अग्निमांद्य होता है और रोगी निर्बल बन जाता है। इस विकार में अग्निमांद्य मर्यादित हो और प्लीहावृद्धि और मांसविहीनत्व आया हो तो मधुमालिनी देनी चाहिये।

कोई भी व्याधि दीर्घकाल पर्यन्त रह जाने से बलमाँसविहीनत्व की प्राप्ति होने पर मधुमालिनी वसन्त का उपयोग अवश्य करना चाहिये। यह वसन्तकल्प नाजुक प्रकृति वाले, कृश, बालक और गर्भिणी के लिये शक्तिदायक और मांसवर्द्धक है। केवल अग्निबल का विचार करके इस की योजना करनी चाहिये। (औ.गु.ध.शा. के आधार से)

मज्जाक्षय और शुक्रक्षय होने पर देह निस्तेज हो जाती है तथा सांधोसांधो में पीड़ा, रूक्षत्वक्, चक्कर आना, मलावरोध, स्त्री समागम की अनिच्छा, हृदय में कम्प, बड़ी आवाज भी सहन न होना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। उक्त रोग पर मधुमालिनीवंसत, प्रवालभस्म और अमृतासत्व मिलाकर आम के मुरब्बे के साथ देने से थोड़े ही दिन में व्याधि दूर हो जाती है।

जीर्णज्वर दीर्घकाल तक रह जाने पर ओजक्षय हो जाता है। फिर रोगी डरपोक बन जाता है। एवं अति निर्बलता, शुष्कता, कान्तिहीनता उत्पन्न होती है। ऐसी अवस्था में मधुमालिनी वसन्त का सेवन दूध के साथ कराने पर जीर्णज्वर, ओजक्षय, माँसक्षय, अग्निमांद्य आदि विकार दूर होते हैं।

(३४) लघुमालिनी वसन्त

प्रथम विधि-खपरिया (यशद प्रधान कारबेल्लक या केलेमेना प्रिप्रेटा या यशद भस्म) शुद्ध ८ तोले, सफेद मिर्च ४ तोले और शुद्ध हिंगुल ८ तोला मिला गोदुग्ध में से निकाले हुये २ तोले मक्खन के साथ खरल करें। फिर १०० नींबूओं का रस निकाल, फिल्टर पेपर से छान, थोड़ा-थोड़ा मिलाकर खरल करें। लगभग ५-६ रोज में मक्खन का चिकनापन दूर होने पर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (आ.क.नि.)

मात्रा-१ से २ गोली, शहद, पीपल, दूध या जल के साथ।

उपयोग-इस रस के सेवन से जीर्णज्वर, धातुगतज्वर, विषमज्वर, अतिसार, क्षय, अर्श, ताप, मन्दाग्नि, शूल, वातविकार, प्रदर, रक्तार्श और नेत्र रोग का नाश होता है।

इस लघुवंसत में सुवर्णमालिनी से न्यून गुण हैं। दोनों में खर्पर मुख्य है। रसवाहिनी और रसोत्पादक पिण्ड में विकृति होने पर यह रसायन अमृत सदृश गुणकारी है। जीर्ण विषमज्वर में जब दोष, रस, रक्त, माँस आदि किसी धातु में प्रवेश करता है, तब शुक्रगत ज्वर को छोड़कर अन्य धातुओं में रहे हुए ज्वर को दूर करने में यह लघुवसन्त अच्छा लाभदायक है। जीर्ण ज्वर में प्लीहावृद्धि, रसधातुगत ज्वर, मन्दाग्नि, हाथ-पैर में सूक्ष्म उष्णता रहना इत्यादि दोष होने पर लघुवसन्त अच्छा लाभ पहुँचाता है। जीर्ण शीतज्वर जब क्विनाइन से नहीं जाता तब लघुवसन्त से रक्तकणों की शुद्धि और वृद्धि होकर शमन हो जाता है। शीतज्वर या अन्य ज्वरों के पश्चात् मन्दाग्नि, पतले दस्त या कब्ज और शरीर में आई हुई पाण्डुता पर लघुवसन्त, मण्डूर भस्म के साथ देनी चाहिये।

दूसरी विधि–खपरिया ८ तोले और सफेद मिर्च ४ तोले मिलाकर खरल करें, फिर गौ के दूध का मक्खन १। तोला मिला, नींबू रस में ४ दिन खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बांधे। (यो.र

कई ग्रन्थकारों ने इस रस का नाम ज्वरमुरारि रखा है। रससार संग्रहकार ने इसे रसराज संज्ञा दी है। किसी ग्रन्थकार ने नवज्वरारि व्याधिगजकेसरी नाम लिखे हैं। यह जीर्ण ज्वर और शोष रोग की उत्तम औषध है। बालक, सगर्भा, सूतिका, वृद्ध आदि सबको निर्भयता पूर्व दी जाती है।

मात्रा–१ से २ गोली तक शहद-पीपल या दूध के साथ देवें। सगर्भा को जयन्ती के पुष्प के रस के साथ या दूध के साथ दिन २ बार देवें।

उपयोग–यह औषधि जीर्णज्वर, धातुगतज्वर, विषमज्वर, पित्तविकार, रक्तविकार, रक्तातिसार, नेत्ररोग, प्रदर, रक्तार्श तथा बालकों के बालशो और ताप के पीछे की निर्बलता आदि विकारों को दूर करने में हाथी के लिए सिंह समान है। छोटे बालक और सगर्भा के लिये बसंत अत्य हितकर है।

पहली विधि की अपेक्षा यह अधिक सौम्य है। पहली विधि पित्तप्रधान प्रकृतिवालों को कम अनुकूल रहती है। यह शीतल होने से विशे लाभप्रद है। वसंत का मुख्य कार्य रसवाहिनियों और लसिकाग्रन्थियों पर होता है।

यह रस जीर्णज्वर में उत्कृष्ट औषधि है। जीर्णज्वर में प्लीहावृद्धि, रसगत सूक्ष्म ज्वर और अधिक समय अग्निदौर्बल्य ये लक्षण होते हैं नाड़ी परीक्षा द्वारा ज्वर प्रतीत होता है, उष्णतामापक यन्त्र द्वारा नहीं जाना जाता है। रोगी के हाथ-पैर टूटना, बेचैनी, कुछ शुष्कता आ जाना नेत्रदाह, मूत्र में पीलापन, त्वचा में निस्तेजता, क्षुधानाश, प्लीहावृद्धि, मुहं फूला हुआ-सा निस्तेज पाण्डु वर्ण का हो जाना और थोड़ा खाने पर भी उदर में भारीपन आदि लक्षण होते हैं; उस पर लघुमालिनी वसंत अत्यन्त उपयोगी है।

कभी-कभी जीर्ण शीतज्वर के विकार में केवल शीतज्वरनाशक उपाय दीर्घकाल पर्यन्त करने पर भी लाभ नहीं होता। क्विनाइन सदृश औषध का चक्रपारायण करने पर भी ज्वर नहीं भागता। इसमें एक कारण यह भी है कि क्विनाइन मलेरिया के कीटाणुनाशक होने पर भी यदि उसका अनेक दिनों तक सेवन किया जाय तो वह भी कीटाणुओं को सात्म्य हो जाता है। फिर कीटाणु ढीठ बन जाते हैं। ऐसे समय पर यह वसंतकल्प अति उपकारक है। इस रसायन से अग्निबल की वृद्धि होकर पचन-क्रिया सुधरती है, रस-रक्त, धातुएँ पुष्ट बनती हैं, प्रत्येक धातुकण सबल होता है। फिर आगन्तुक कीटाणुओं को विदा किया जाता है। इस तरह जीर्णज्वर के अनेक रोगियों को इस औषधि ने आरोग्य की प्राप्ति कराई है। रोग प्रभाव से शीतज्वर या पाण्डुता आने पर लघुवसंत और मण्डूरभस्म मिश्रण उत्तम कार्य करता है। पाण्डुरोग की बिल्कुल प्रथमावस्था में इसका उपयोग होता है।

तरुण युवती को होने वाले पाण्डुरोग में इस रसायन का उपयोग होता है। मासिकधर्म में अधिक रजःस्राव, रक्तप्रदर या श्वेतप्रदर के पश्चात् आई हुई पाण्डुता में भी यह रस उत्तम कार्य करता है।

छोटे बच्चे को मिट्टी खाने की आदत हो जाने पर पाण्डुता उत्पन्न होती है। इसमें पहिले मुर्दासंग आदि मृदुविरेचन योग देना चाहिये। फिर लघुवसंत और मण्डूर भस्म मिलाकर दिया जाता है।

कृमिरोग से उत्पन्न ज्वर में भोजन की इच्छा न होना, क्षुधानाश, पाण्डुता आदि लक्षण होने पर पहिले कृमिनाशक औषधि दी जाती है। फिर वसन्त मण्डूर मिश्रण देना चाहिये।

यह रस बालकों को १६ वर्ष की आयु तक बल्यरूप से उपयोगी है। बिल्कुल स्तनपय शिशु को यह वसंत नहीं देना चाहिये। परन्तु अन्न और दूध लेने वाले बालक को यह निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। अतः इस वसंत को बालमित्र उपमा देने में अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सूक्ष्म ज्वर और इसके पश्चात् या इसके साथ अशक्ति, अस्थिमार्दव, रोग से अशक्ति या क्षीरालसक (त्रिदोष-दूषित स्तन्य से होने वाला ज्वर, जिसमें वमन, नाक, मुख आदिका पाक भी होता है)तथा पारिगर्भिक रोग से आई हुई कृशता आदि विकारों में स्नायुओं की निर्बलता को नाश करने वाली और अन्य धातुओं को पुष्ट करने वाली औषधियों में यह बसन्त उत्कृष्ट बल्य है। इस अवस्था में वसन्त मण्डूर मिश्रण का उपयोग करना चाहिये।

जीर्ण ज्वर में अग्निसाद मुख्य लक्षण है एवं जीर्ण ज्वर के पश्चात् या अन्य व्याधि के पश्चात् या अन्य धातुओं की अशक्ति हो जाती है तथा मांस-विहीनत्व की प्राप्ति होती है। इसका कारण भी बहुधा अग्निसाद होता है। अग्नि अर्थात् पचने में सहायक होने वाला पित्तांश यह प्रत्येक धातुओं में रहता है, ऐसा आयुर्वेद का सिद्धान्त है। इस नियमानुसार अग्निसाद का अर्थ इस स्थान पर प्रत्येक धातु के भीतर रही हुई पाचन शक्ति (पचनक्रिया) क्षीण होना। इस तरह रस आदि धातु क्षीण होने में तत्रस्थ धातुकण बनाने की और उसे आत्मसात् करने की शक्ति-क्षीणता होती है। इस अवस्था में वसन्त उत्तम औषधि है। छोटे बच्चों के लिये तो लघुवसन्त अधिक प्रशस्त है। तथापि बड़ी आयु वालों के लिये भी रसाजीर्ण बार-बार होने पर लघु वसन्त अति उपयोगी है। अन्न का विद्वेष, उदर और कौड़ी प्रदेश सर्वदा जड़ रहना, उबाक, मुंह में चिपचिपा पानी आते रहना, निरुत्साह आदि लक्षण होने पर लघुवसन्त देना चाहिये।

पचनेन्द्रिय निर्बल होने पर या अधिक अग्निसाद होने पर अन्न पचन योग्य रूप से नहीं होता। फिर अतिसार हो जाता है। कुछ दिन तक अतिसार रहता है, कुछ दिन नहीं रहता। फिर अतिसार हो जाता है। इस तरह बार-बार लौट-लौटकर आक्रमण करता है। साथ में सूक्ष्म ज्वर, सारा शरीर टूटना, दाह, रसवाहिनियों की विकृति, मुंह में बेस्वादुपन, उबाक, थोड़ा-थोड़ा दस्त लगना, मल सफेद रंग का होना, खट्टी-सी गंध आना, अशक्ति, क्षुधानाश, थोड़ा-सा खाने पर भी न पचना आदि लक्षण होने पर लघुवसन्त देने से जठराग्नि प्रबल होकर अन्नपचन सम्यक् होने लगता है। फिर अतिसार बन्द हो जाता है। यह अतिसार जीर्ण व्याधि रूप ही होता है।

शारीरिक व्यापार योग्य चलने के लिये प्राणवायु की पूर्ति होनी चाहिए और रक्ताभिसरण क्रिया सम्यक् प्रकार से होकर सब अवयवों को आवश्यक रक्त मिलते रहना चाहिये। रक्त सबल न होने पर इन्द्रियों में अशक्ति आती रहती है, या पूरा न मिलने से इन्द्रियां कार्यक्षम नहीं हो सकतीं। इस हेतु से "रक्त जीव इति स्थिति:" यह वचन योग्य ही कहा है। रक्त को सबल बनाने का और सब स्थानों पर पहुँचाने का कार्य वसन्त से उत्तम रूप में होता है। इसलिये भिन्न-भिन्न इन्द्रियों की निर्बलता पर लघुवसन्त अति उपकारक है।

प्रदर में मुख्य श्वेत और रक्त ये दो प्रकार है। इनमें श्वेत प्रदर अपचन या योगिमार्ग की सूक्ष्म ग्रन्थियों के कारण से भी उत्पन्न हो जाता है। यदि अपचन विकार से उत्पन्न हुआ हो तो लघुवसन्त अति उत्तम लाभ पहुँचाता है। यदि सूक्ष्म ग्रन्थियों का क्षोभ हेतु हो तो बंगभस्म और त्रिबंग भस्म अधिक हितकर है। इस प्रकार के प्रदर में जल सदृश पतला स्राव अनजानपन में होता रहता है। मस्तिष्क भ्रमता हो ऐसा भासता है। शिरदर्द, कण्ठ में शुष्कता या चिपचिपापन, श्वसन योग्य न होना, बार-बार दीर्घ श्वास लेना, हृदय के स्पन्दन में वृद्धि, उदर में आफरा, उबाक, अग्निसाद, लघुअन्त्र और बृहदअन्त्र में आफरा, अधिक मलशुद्धि नियमित न होना (कभी मल साफ होता है, कभी अनेक बार दस्त होता है), मल में खट्टी वास आना और मल का रंग सफेदसा हो जाना आदि लक्षण युक्त प्रदर में लघुवसन्त देना चाहिये।

धातुगत ज्वर की आयुर्वेदिक उत्पत्ति अति अभिनव है। ज्वर विविध कारणों से उत्पन्न होता है। किसी भी ज्वरोत्पादक कारण से विकार उत्पन्न होकर रस, रक्त आदि दूष्यों में या स्थूल धातुओं में जाकर पृथक्-पृथक् प्रकार के ज्वरों की उत्पत्ति करता है। यह आयुर्वेदिक उत्पत्ति है। इस पद्धति से रसगत ज्वर, रक्तगत ज्वर आदि विभाग आयुर्वेद ने किये हैं। इनमें से शुक्रगत ज्वर को छोड़, अन्य धातुगत ज्वरों में ज्वर की तीव्रता कम होने पर लघुमालिनी अति उत्तम कार्य करती है। मुंह का बेस्वादुपन, उबाक, शरीर में भारीपन, अंग गलना, बार-बार वमन, अरुचि, मुखमण्डल पर निस्तेजता और दीनता ये रसगत ज्वर के लक्षण हैं। दाह, थूंक में किंचित् रक्त आना, निकम्मे विचार आते रहना या चक्कर आते रहना, वमन, प्रलाप, सर्वाङ्ग में ऐंठन, तृषा, शुष्कता ये लक्षण रक्तगत ज्वर में होते हैं। अतिशय प्रस्वेद, अति शुष्कता, बार-बार मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, प्रस्वेद में सड़ी हुई दुर्गन्ध, अति ग्लानि, अरुचि, सहनशीलता कम हो जाना ये मेदस्थ ज्वर के लक्षण हैं। इन सब पर वसन्त का अति उत्तम उपयोग होता है। इस प्रकार के धातुगत विषम ज्वरों से विषम ज्वरदोष किसी भी धातु में लीन रहता है। इस तरह के धातुगत विषम ज्वर में भी यह अति उत्तम है।

नेत्र रोगों में पोथकी रोग की जीर्णावस्था में वसन्त का अति उत्तम उपयोग हुआ है। जीर्ण पोथकी के हेतु से अग्निमांद्य और कोष्ठदुष्टि हो सकती है, यह विकृति लघुमालिनी वसन्त से उपशमन हो जाती है।

यह वसन्त छोटे बच्चे और गर्भिणी के अबलत्व से उत्पन्न विकारों को दूर करता है। इस हेतु से मूल ग्रन्थकार ने इसके फलश्रुति में "सर्वरोगहर: शिशो:" अर्थात् बालक के सब रोगों को हरण करने वाला कहा है।

कितनी ही स्त्रियों में बार-बार गर्भपात होने की प्रकृति हो जाती है। चौथे मास तक गर्भस्राव होता है, फिर गर्भपात होता है। इसका कारण गर्भाशय की अशक्ति या मानसिक अस्वस्थता होती है। यदि गर्भाशय की अशक्ति हो (गर्भाशय में उपदंश या अन्य रोगजनित विष-विकृति न हो) तो पहले मास से ही लघुमालिनी वसन्त को प्रारम्भ करना चाहिये। यदि मानसिक अस्वास्थ्य कारण है तो गर्भपाल रस। सार्वदेहिक विशेषत: अधिक मांस क्षीणत्व होने पर मधुमालिनी वसंत। उपदंशज विष हेतु है तो अष्टमूर्ति रसायन, अभ्रक और सितोपलादि मिश्रण देना चाहिये। लघु वसंत से गर्भपोषण उत्तम प्रकार से होता है, गर्भोदक भी उत्तम बनता है, विकृत गर्भ निर्माण रूप दोष की निवृत्ति होती है तथा सगर्भा को आने वाला सूक्ष्म ज्वर भी दूर होता है। उरस्तोय विकार में फुफ्फुसारवण के भीतर यदि जल का संचय थोड़े परिमाण में हुआ हो तो लघुवसन्त से संचित जल का शोषण हो जाता है और फुफ्फुसावरण अपने कार्य के लिये सशक्त बन जाता है।

पार्श्वशूल की तीक्ष्ण अवस्था में इसका उपयोग नहीं होता, परन्तु शूल नष्ट होने के पश्चात् जीर्णावस्था में फुफ्फुसावरण की त्वचा मोटी हो जाना, सूखी खांसी और श्वासोच्छवास क्रिया में थोड़ा त्रास होने पर यह औषधि लाभदायक है।

सूचना–यह औषधि अधिक मात्रा में २-३ मास तक देने पर किसी को मुंह आना, गले में दर्द, उदरपीड़ा और मूत्र में लाली आ जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे समय पर कुछ दिनों के लिये इसे बन्दकर दोष शमनार्थ प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व के मिश्रण का सेवन कराना चाहिये। (औ.गु.ध.शा.के आधार से)

(३५) संशमनी वटी

विधि–गिलोय घन १० तोला, लोह भस्म १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला और सुवर्णमाक्षिक भस्म ६ माशे मिलाकर दो-दो रत्ती गोलियां बना लेवें। (वै.चि.सा.

मात्रा–२ से ४ गोली। दिन में २ बार दूध के साथ देवें।

उपयोग–यह वटी जीर्णज्वर, क्षय, पाण्डु, खांसी, प्रदर, वीर्यस्राव धातुक्षीणता, निर्बलता आदि दोषों को दूर करके शरीर में बल बढ़ा है। पित्त प्रकृति वाले, नाजुक प्रकृति वाले, सगर्भा, प्रसूता और बालकों के लिये यह लाभदायक है। वातवाहिनियाँ, माँस, स्नायु ग्रन्थियां अ मस्तिष्क को बलवान बनाती है, स्मरण शक्ति को बढ़ाती है और शरीर में स्फूर्ति लाती है। बिगड़े हुए धातु परिपोषण क्रम को सुधारने, जीर्णज्व को दूर करने और पचन-क्रिया को बढ़ाने में अति हितकर है। सगर्भा, प्रसूता, वृद्ध, युवा और बालक सबके लिये यह वटी निर्भय और अ लाभप्रद है।

धातुओं में ज्वर विषलीन हो जाने पर मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है। व्याकुलता, अग्निमांद्य, अशक्ति, मूत्र में पीलापन, हाथ-पैरों की न में खिंचाव होते रहना, निद्रा शान्त न मिलना, तन्द्रा और मस्तिष्क में भारीपन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे कई रोगियों को संशम वटी का सेवन कराने पर ज्वर दूर होकर शरीर सबल बन गया है तथा मानसिक स्फूर्ति आ गई है।

सूचना–(१) दीर्घकाल तक ज्वर रह जाने पर बहुधा यकृत् निर्बल हो जाता है फिर घी, तैल का पचन अधिक नहीं होता। अत: घ तैल, मावा और मैदा के पदार्थ, मिठाई और कब्ज करने वाले पदार्थ हो सके उतना कम देना चाहिये। गाय का दूध १ या २ ऊफाण आ हुआ हितकर है। अति उबाला हुआ दूध भी नहीं देना चाहिये।

(२) गिलोय का घन बनाने के समय गिलोय २-३ वर्ष की परिपक्व और ताजी लेनी चाहिये एवं घन तुरन्त बनाया हुआ उपयोग में ले चाहिये, गिलोय घन जितना अच्छा होगा उतनी ही औषधि दिव्य गुण दर्शाती है।

(३६) नीलकण्ठ रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला और नीलेथोथे का फूला चारों को समभाग मिला देवदाली के फलों के रस में १ दि खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। (र.यो.सा.

मात्रा–१ से २ गोली। मिश्री और निवाये जल के साथ दें।

उपयोग–यह रस वमन कराने के लिये उपयोगी है। पित्त और ज्वर विष आदि को दूर कर सत्वर ज्वर का शमन कराता है। अम्लपित्त श्वास, विष सेवन, कास, हिक्का आदि रोगों में ऊर्ध्व भाग का शोधन करके शरीर को नीरोग बनाता है। एवं जो-जो रोग पित्त-प्रकोप जनि या कफवृद्धि जनित होने से वान्तिसाध्य हो उन सबके लिये यह रस उपयोगी है।

(३७) इच्छाभेदी रस

विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला, सोंठ और कालीमिर्च १-१ तोला तथा शुद्ध जमालगोटा ३ तोले मिला नींबू के र में ६ घण्टे घुटाई करके १-१ रत्ती की गोलियां बनावे। (भै.र.

मात्रा–१ से २ गोली। सुबह ठण्डे जल या शर्बत के साथ दें।

उपयोग–इस रस की दो गोली से ५-७ जुलाब लगकर आंतें साफ हो जाती हैं। यह रसायन वातविकार, रक्तदोष, त्वचादोष, श्वा कास, हिचकी, गुल्म, उपदंश, कुष्ठ, अजीर्ण, अफारा, शूल, उदर रोग, आमवृद्धि, मलावरोध, कृमि, विस्फोटक, कफ प्रधान जलोदर आदि रो में जुलाब के लिये उपयोग में लिया जाता है। यह रस तीव्र विरेचक, कफवातनाशक, शूलघ्न, विषघ्न, और बड़ी आंत में रहे हुए सेन्द्रिय वि का संशोधक है।

यह रस विरेचन रूप से जलोदर में विशेषत: कफप्रधान जलोदर में उदर्याकला में से सञ्चित जल को बाहर निकालने तथा कफ का शोष कराने के लिये दिया जाता है।

पिष्टमय पदार्थ के खाने से उत्पन्न तीव्र स्वरूप वाले आनाह और आध्मान(कब्ज और अफारा) में इस रस का उत्तम उपयोग होता है यदि आध्मान की जीर्णावस्था हो या बार-बार आध्मान आ जाता हो तो इच्छाभेदी सदृश तीव्र औषधि नहीं देनी चाहिये। यदि मल संश्चित होक शुष्क गट्ठे बन गये हों और इस हेतु से शूल चलता रहता हो पहिले स्नेहन देकर फिर विरेचन देना चाहिये।

अपतानक, अपतन्त्रक और आक्षेपक वातविकार में कफानुबन्ध होने पर कोष्ठशुद्धि और कफ से संरुद्ध स्रोतों को शुद्ध कराने के लिये विरेच औषधियों में इच्छाभेदी उत्तम प्रकार से लाभदायक है।

बृहदन्त्र में मलसंचय अतिशय होने पर सब आंतें दूषित होती हैं। फिर इसमें सेन्द्रिय विष का निर्माण होता है। यह विष अति तीव्र स्वरूप का होता है। उसका सारे शरीर में शोषण हो जाने पर रस, रक्त आदि धातुएँ विकृत होकर कुष्ठ सदृश रोग उत्पन्न हो जाता है। मुख्य कुष्ठ रोग और मलसंचय जनित कुष्ठ सदृश विकार, दोनों में सम्प्राप्ति और लक्षण दृष्टि से महदन्तर है। इस रोग में समस्त देह पर बड़े-बड़े काले या लाल धब्बे हो जाते हैं, खुजली भी आती रहती है। इस विकार पर विरेचन की आवश्यकता होने पर इच्छाभेदी रस उत्तम कार्य करता है। वात और कफ प्रधान प्रकृति वालों के लिये इस इच्छाभेदी की अपेक्षा अश्वचोली का उपयोग विशेष उपकारक है, ऐसा हमें अनुभव मिला है।

हिक्का के विकार में आमाशय में पित्त या कफ संचय खूब हो जाने पर बार-बार हिक्का जनित विलक्षण त्रास होता है। ऐसे समय पर वमन, विरेचन द्वारा आमाशय शुद्धि की अति आवश्कता है। इच्छाभेदी से वमन और विरेचन, दोनों कार्य उत्तम प्रकार से हो जाते हैं।

विरुद्ध भोजन, अध्यशन (भोजन पचन होने के पहिले फिर भोजन) या गरविष सेवन होने पर बार-बार हिक्का आती रहती है और क्वचित् वान्ति भी होती रहती है; उस पर इच्छाभेदी देने से कोष्ठशुद्धि होती है और गर (सेन्द्रिय विष) भी नष्ट होकर व्याधि शमन हो जाती है।

(औ.गु.ध.शा. के आधार से)

रक्तदबाव वृद्धि (Highblood Pressure) होने पर शिरदर्द होता है। मस्तिष्कगत रक्तवाहिनियाँ रक्त से खूब भर जाती हैं। दबाव अति बढ़ने पर खोपड़ी टूट जायगी क्या? ऐसा भ्रम होता है। उस समय सत्वर उपचार न किया जाय तो कोई बड़ी रक्तवाहिनी टूटकर पक्षवध या सन्यास हो जाता है। **इस रोग पर ५-७ जुलाब हो जायें, ऐसा विरेचन दिया जाता है। इस हेतु से इच्छाभेदी रस २ रत्ती और निशोथ चूर्ण ३ माशे मिलाकर शर्बत के साथ देना चाहिये। आध घण्टे पर सौंफ का अर्क ५ तोले देवें।** आवश्यकतानुसार शाम को दूसरी बार विरेचन देवें। इस तरह २-४ दिन तक विरेचन देने से बृहदन्त्र की शुद्धि होकर रक्तदाब कम हो जाता है। **भोजन में खिचड़ी देवें।**

सूचना-(१) यह रसायन नूतन ज्वर का रोगी, अतिसार रोगी, जीर्ण आध्मान के रोगी और बार-बार आफरा आने वाले और कोमल बालक, वृद्ध व सगर्भा को नहीं देना चाहिये।

(२) जमालगोटे में उग्र तैल रहता है। शुद्ध होने पर भी वह पूर्णांश में सौम्य नहीं बनता। **अतः जिनके वृक्कों में उग्रता हो उनको इच्छाभेदी रस बार-बार नहीं देना चाहिये। अन्यथा मुंह पर शोथ आ जायेगा।**

स्थूल मल और अन्त्रस्थ विष को बाहर निकालने में इच्छाभेदी जितना कार्य करता है, उतना कार्य लीन विष पर नहीं करता। लीन विष पर इच्छाभेदी की अपेक्षा निशोथ प्रधान औषधि विशेष उपकारक रहती है।

पथ्य-खिचड़ी-घी अथवा दही भात।

(३८) आनन्द भैरव रस

विधि-शुद्ध हिंगुल, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, सोहागे का फूला, बच्छनाभ और गन्धक इन सबको समभाग मिला, नींबू के रस में १२ घण्टे खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। (भै.र.)

मात्रा-१ से २ रत्ती, दिन में २ बार। जल, छाछ, चावल के धोवन, कूड़े की छाल का चूर्ण या अनार शर्बत के साथ देवें।

उपयोग-इस रस के सेवन से कफज्वर, खांसी, श्वास, जुकाम, अतिसार, मन्दाग्नि, अजीर्ण, ग्रहणी, अपस्मार, वातरोग, प्रमेह, सन्निपात और ज्वरातिसार दूर होते हैं।

यह रस ज्वरहर और स्वेदल है। यह त्रिभुवन कीर्ति की अपेक्षा कम उग्र है। इस रस से पित्त वृद्धि होती है, अतः पित्तज्वर में नहीं देना चाहिये। कफ प्रधान ज्वर में इसका उपयोग किया जाता है। परन्तु कफ ज्वर में भी जब तक आमावस्था हो तब तक इसे नहीं देना चाहिये। लंघन करा, निरामावस्था प्राप्त होने पर यह दिया जाता है। इस रस से कण्ठ के भीतर श्वास-मार्ग की श्लैष्मिक कला पर परिणाम होकर कफ का संशोषण होता है, अतः कफविकार में इसका उपयोग इतने अंश में अच्छा होता है। सर्वांग में जड़ता, देह में गीलापन, मर्यादित ज्वर, ज्वर की अपेक्षा देह में भारीपन, अधिक आलस्य, मुंह में मीठापन, अंङ्ग अकड़ जाना, लंघन करने पर भी उदर में भारीपन, भोजन अभी किया है ऐसा भासना, सारे शरीर में शीतलता और मुंह में जल आना आदि लक्षण होने पर आनन्द भैरव रस अवश्य देना चाहिये।

कफ प्रधान कास की उत्पत्ति जुकाम होकर फिर पक करके हुई हो, कफ की बड़ी-बड़ी गांठें निकलती हों या जुकाम में अच्छी तरह कफ निकलता हो तो यह रस देना अति हितकर है। कितने ही चिकित्सक जुकाम के प्रारम्भ होने के साथ बच्छनाभ प्रधान औषधि देते हैं, इसका परिणाम अनेक बार हानिकारक होता है। अर्धावभेदक आदि शिरोरोग उत्पन्न हो जाने की भीति रहती है। बच्छनाभ का महत्त्व का धर्म, नाक, कण्ठ आदि भाग की श्लैष्मिक कला में से होने वाले स्राव का संशोषण करा कला को शुष्क बनाना है। जब विष को बाहर निकालने के लिए जीवनीय शक्ति ने जुकाम उत्पन्न किया है, तब उसका शोषण कराना इष्ट नहीं है। पहले कफ का स्राव करा फिर कफ पक्व होने पर ही आनन्द भैरव का उपयोग करना चाहिये।

श्वास रोग में कभी-कभी कफ इतनी अधिक बार निकलता है कि रोगी बेचैन हो जाता है। ऐसे समय पर आनन्द भैरव से सत्वर लाभ पहुँचता है। श्वास की अन्य अवस्था में इसका उपयोग नहीं होता।

कफज अरुचि और अग्निमांद्य से उत्पन्न अतिसार में अन्न का सम्यक् पचन न होने से उदर में जड़ता उत्पन्न होकर और अन्त्र की श्लैष्मिक कला में क्षोभ होकर स्राव होता रहता है। इस हेतु से अतिसार की उत्पत्ति हुई हो तो इसकी तीव्रावस्था में आनन्दभैरव का उपयोग होता है। किन्तु जीर्णावस्था में अश्वकंचुकी उपयोगी है।

सन्निपातज ग्रहणी विकार में विशेषत: कफयुक्त आम अधिक गिरना, कफ प्रसेक, भारीपन, अरुचि आदि लक्षण होने पर तथा ग्रहणी का निमित्त कारण शीतोपचार या शीतल वायु में फिरना आदि हो तो आनन्दभैरव देना चाहिये।

शीतोपचार या शीतल वायु से उत्पन्न मध्यम कोष्ठशूल, उदर में वायु की उत्पत्ति, मलावरोध और बार-बार दस्त होने पर शौच शुद्धि न होना आदि लक्षण होने पर आनन्दभैरव का प्रयोग करना चाहिये।

वातज अपस्मार में यह रस आक्षेप को दबाने में सहायक होता है।

आनन्दभैरव रस में काले बच्छनाभ के स्थान पर श्वेत बच्छनाभ मिलाया जाय तो उदकमेह, पिष्ठमेह, शनै:मेह आदि कफज प्रमेहों पर अच्छा लाभ पहुँचता है। इस रस का प्रमेह पर प्रयोग करने में इस बात को सम्हालना चाहिये कि मूत्र में शर्करा बिल्कुल न हो, यदि है तो भी अति कम मात्रा में। मूत्र बार-बार अधिक परिमाण में, मूत्र का विशिष्ट गुरुत्व अति कम और मधुमेह में तृषा, दाह, चिपचिपापन आदि लक्षण न हों, इस स्थिति में आनन्दभैरव रस का अच्छा उपयोग होता है। इन प्रमेहों में मुख्य लक्षण अपचन भी होना चाहिये। अग्निमांद्य इतना हो कि थोड़ा खाने पर भी पचन न हो। इस तरह अपक्व अन्न पक्वाशय और बृहदन्त्र में रह जाने से प्रमेह या मूत्रातिसार उत्पन्न हुआ हो तो उस पर आनन्दभैरव रस देना चाहिये। (औ.गु.ध.शा.)

द्वितीय विधि-शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध बच्छनाभ, कालीमिर्च, सोहागे का फूला और पीपल को समभाग मिला नागरबेल के पान के रस में १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें।

उपयोग-इस विधि का अधिक प्रयोग महाराष्ट्र में कफज कास के निवारणार्थ होता है। दिन में दो बार १-१ गोली जल या शहद-पीपल से देवें। कास के अतिरिक्त मन्द ज्वरसह जुकाम, अपचन, अपचन के हेतु से कुछ बुखार होना दिन में ३-४ बार शौच होना आदि पर भी लाभदायक है।

(३९) कर्पूर रस

विधि-कर्पूर, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध अफीम, नागरमोथा, इन्द्र जौ और जायफल को समभाग मिला ३ घण्टे अदरक के रस में खरलकर १/२-१/२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा-१/२ से १ रत्ती। दिन में ३ बार, जल के साथ देवें।

उपयोग-यह रस ज्वरातिसार, अतिसार, ६ प्रकार के ग्रहणी रोग और प्रबल रक्तातिसार आदि को रोगानुसार अनुपान के साथ देने से सत्वर दूर करता है। विसूचिका में दूषित मल निकल जाने के पश्चात् २-२ घण्टे पर देने से अतिसार और वमन दोनों का निवारण करता है।

पित्तातिसार और इसके साथ ज्वर, तृषा, दाह, चक्कर आदि लक्षण होने पर तथा पीला, नीला और अरुण रंग का मल होने पर इस रस का अच्छा उपयोग होता है। अन्य सब प्रकार के अतिसारों में इतना अधिक लाभ नहीं होता।

संग्रहणी के सब प्रकारों पर इसका उपयोग होता है, ऐसा मूल ग्रन्थकार ने लिखा है। परन्तु पित्तज और वातज ग्रहणी में ही इसका अच्छा व्यवहार होता है, कफज में नहीं होता।

वातज संग्रहणी में भोजन का पचन ठीक नहीं होता। खट्टी बास वाली उग्र डकारें आती रहती हैं, मुंह और कण्ठ सूखते हैं एवं तृषा, नेत्र के पास अन्धकार, कान में आवाज तथा कण्ठ, पार्श्व, जङ्घा, गुल्फ आदि संधि स्थानों में पीड़ा, उदर में सुई चुभाने सदृश वेदना, हृदय में व्यथा, निर्बलता, कृशता, मुंह में बेस्वादुपन, भोजन की इच्छा होती है परन्तु खाने के साथ ही उदर में काटने सदृश पीड़ा होना, रोग के अनुपात से क्षुधा अच्छी लगना, हाथ-पैर गल जाना, अप्रसन्नता, अन्न पचन होने पर आफरा, अनेक समय पतले शौच होना, चिपचिपा आममिश्रित झागयुक्त मल बड़ी आवाज के साथ गिरना, बहुत समय किंछने से मल आना, मल शुद्धि न होना, शौच शङ्का बनी रहना, शोच का वेग बार-बार आना आदि लक्षण होते हैं। थोड़ा किंछने पर शौच होता है और इससे कुछ अच्छा भी मालूम पड़ता है। परन्तु पुन: पुन: शौच आने की इच्छा होती रहती है। इस परिस्थिति में उत्तम शामक औषधि चाहिये, वह कर्पूर रस है। इस रसायन में अफीम, जायफल आदि शामक द्रव्यों से वातवाहिनियों का उत्पन्न हुआ क्षोभ कम होता है, जिससे शौच शङ्का भी कम होती है।

पित्तप्रधान संग्रहणी में नीला-पीला, रक्तयुक्त पतला, दुगन्धमय मल होता है। अधिक वेदना नहीं होती, किंछना भी नहीं पड़ता, परन्तु उदर में दाह, शौच में जलन, मलोत्सर्ग होने पर भी गुदा में दाह, गुदापाक, सर्वांग में दाह, अरुचि, तृषा आदि लक्षण अधिक होते हैं। इस अवस्था में कर्पूर रस अच्छा उपयोगी है।

रक्तातिसार में अफीम समान तीव्र स्तम्भक औषधि की अपेक्षा प्रियंगु, लोध, अर्जुन या धाय के फूल सदृश रक्तस्तम्भक और रक्तप्रसादन करने वाली औषधि देना हितकर है। अफीम तीव्र शामक होने से अन्तरेन्द्रिय का व्यापार अत्यधिक मन्द हो जाता है। फिर इसकी क्रियाशक्ति अनेक बार नष्ट प्राय: हो जाती है। उसे नियमित होने में बहुत काल लग जाता है। अत: इस विकार पर हो सके तब तक अफीम प्रधान औषधि देना यह अच्छा माना जायगा। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना–कर्पूर रस में अफीम और जायफल अति स्तम्भन करने वाली औषधि होने से अतिसार और संग्रहणी की आमावस्था (कच्चे आम) में इसे प्रयोग में नहीं लेना चाहिये।

नये रक्तातिसार के प्रारम्भ में भी इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा अपक्वदोष भीतर ही रह जाने से १-२ मास बाद फोड़े फुन्सी आदि रोग हो जाते हैं।

(४०) अगस्ति सूतराज रस

विधि–शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १-१ तोला, शुद्ध सिंगरफ २ तोले, धतूरे के शुद्ध बीज ४ तोले और शुद्ध अफीम ४ तोले लें। सबको विधिपूर्वक मिला; भांग के रस में ७ दिन खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें। (यो.र.)

मात्रा–१ से २ गोली दिन में ३ समय। अतिसार में जीरा और जायफल के चूर्ण के साथ। मन्दाग्नि, वमन, शूल, कफ और वातविकार में त्रिकटु और शहद के साथ प्रवाहिका में कालीमिर्च और घी के साथ।

उपयोग–अगस्तिसूतराजरस शामक, वेदनाहर, जन्तुघ्न और अन्तड़ी में उत्पन्न होने वाली अब्धातु (जल) की वृद्धि को कम करता है। इसका उपयोग पक्वातिसार और निराम ग्रहणी में विशेष लाभदायक है। इसका उपयोग संग्रहणी, आमातिसार की आमावस्था में नहीं करना चाहिये। लंघन द्वारा आमपाचन कराके फिर इसका उपयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिये।

पक्वातिसार में कफ, वात और कफवातज प्रकोप में इसका अच्छा उपयोग होता है। विशेषत: बड़े-बड़े जुलाब लगना, उदर में आक्षेप सदृश शूल, रह-रह कर शूल चलना और कुछ काल शमन हो जाना आदि लक्षण हों तो अगस्ति-सूतराज रस उत्तम कार्य करता है। इस रोग में झागयुक्त कुछ दुर्गन्धवाली वमन भी होती हो तो अनुपान रूप से त्रिकटु और शहद मिलाना चाहिये।

संग्रहणी के विकार में आमावस्था दूर होने के पश्चात् इसका अच्छा उपयोग होता है। वातप्रधान और कफप्रधान संग्रहणी के रोगी को मट्ठे पर रखकर इस औषधि का उपयोग करते रहने से अच्छा लाभ पहुँचता है। ऐसे अनेक रोगियों को लाभ होने के उदाहरण मिले हैं।

कफप्रधान संग्रहणी में वेदना होती है परन्तु तीव्र नहीं होती। मल दुर्गन्धयुक्त, चिपचिपा कफ सदृश होता है। इस स्थिति में इस रस से अच्छा लाभ होता है। मल की दुर्गन्ध कज्जली और हिंगुल के हेतु से कम हो जाती है; तथा पित्तस्राव योग्य मात्रा में होने से अग्निमांद्य कम होता है। धतूरे के बीज से अन्त:स्राव अर्थात् कफयुक्त अब्धातु स्राव नियमित होता है।

धतूरे से वातप्रधान ग्रहणी में क्षोम और शूल का ह्रास होता है और अफीम के योग से पूर्ण प्रशमन होता है। वातग्रहणी में जो भंयकर शूल होता है उसे अफीम सत्वर दूर करती है। इस औषधि के देने पर बस्ति देने से कार्य जल्दी होता है। विशेष अनुवासन बस्ति (या एरंड तेल की पिचकारी) देनी चाहिए। ग्रहणी में पहिले अग्निमांद्य होने से घृत या अन्य प्रकार के स्नेह का उपयोग नहीं करना अच्छा माना जायगा।

अतिसार या ग्रहणी के अन्त में क्वचित् प्रथमावस्था में उपेक्षा करने पर भी बार-बार दस्त होते रहते हैं। इस हेतु से गुदामार्ग और संपूर्ण कोष्ट की ग्राहक शक्ति बिल्कुल क्षीण हो जाती है फिर मल भीतर नहीं रुक सकता, सत्वर बाहर आ जाता है। इस अवस्था में अगस्तिसूतराज का उपयोग अच्छा होता है।

प्रवाहिका में बिना बोध बार-बार शौच हो जाना, इस तरह अधिक किंछना, अधिक बल से किंछने पर किसी-किसी की गुदा बाहर निकल जाना, किसी-किसी रोगी को वेदना के हेतु से मूर्च्छा आ जाना इत्यादि लक्षण होने पर अगस्तिसूतराज रस का उपयोग बहुत अच्छा होता है। धतूरा अन्त्रस्राव और आक्षेप को कम करता है तथा अफीम वेदना का निवारण करती है।

मूत्रमार्ग से शर्करा (छोटे कंकर) या सिकता (रेत) जाने पर आशयों पर आघात पहुँचता है; जिससे शूल उत्पन्न होता है; यह शूल कितने ही रोगियों में अति भयंकर होता है। सिकता या शर्करा का विद्रावण हो जाय या इनकी उत्पत्ति बिल्कुल न हो और उत्पन्न शर्करासिकता मूत्र मार्ग में से सरलतापूर्वक निकल जाय इस तरह की औषध योजना करनी चाहिये। परन्तु ऐसी चिकित्सा में समय अधिक लगता है और शूल

की त्रासदायक वेदना हो रही है अतः पश्चाच्चिकित्सेत्पूर्णं वा बलवन्तमुपद्रवम्, इस न्यायानुसार बलवान् उपद्रव को पहिले जीतना चाहिये। अ शूल शामक चिकित्सा तत्काल करनी चाहिये। इस स्थान पर अगस्तिसूतराज रस को मूत्रल अनुपान के साथ देना चाहिये। उशीरासव, चन्दनास सारिवासव या अरविन्दासव यह आसव कल्प अनुपानरूप से विशेष अनुकूल रहता है। अगस्तिसूतराज से स्तम्भन होकर मूत्र का परिमाण होने की संभावना है। इसी हेतु से मूत्रल अनुपान की योजना की जाती है।

यकृद् का पित्त अधिक गाढ़ा हो जाने से पित्ताशय में अश्मरी (पत्थरी) बन जाती है। कभी गोल बड़ी एक अश्मरी होती है; कभ कभी २-५ या १०००-२००० या इससे अधिक बाजरी के कण सदृश होती है। इनमें से कोई कण जब पित्तनलिका में होकर ग्रहणी में ज का प्रयत्न करता है, तब शूल की उत्पत्ति होती है। यह शूल वातप्रधान होता है। इसका मूल कारण पित्तस्राव की न्यूनता है। इस हेतु से पि शुष्क होकर जम जाता है। चिकित्सा कारणानुरोध से करनी चाहिये अर्थात् वस्तु स्थिति का परिवर्तन कर पित्त को सम्यक् गुणयुक्त बनाना चाहि यह कार्य ताम्रप्रधान औषधि से होता है। ताम्रभस्म करेले के रस या कुटकी के साथ दी जाती है अथवा सूतशेखर दिया जाता है। परन्तु क शूल इतना भयंकर होता है कि पहिले उपद्रव दूर करने की चेष्टा करनी पड़ती है, ऐसे समय पर शूलजनित वेदना को शमन करने के लि अगस्तिसूतराज रस अति उपयोगी औषधि है। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना-इस औषधि में अफीम का परिमाण ज्यादा है। अतः सम्हालपूर्वक थोड़ी मात्रा में उपयोग करना चाहिये।

(४१) कनकसुन्दर रस

विधि-शुद्ध हिंगुल, कालीमिर्च, शुद्ध गन्धक, पीपल, सोहागे का फूला, शुद्ध बच्छनाभ और धतूरे के शुद्ध बीज सबको समभाग मिल भांग क्वाथ में ४ प्रहर खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनावें। (भै.र.)

मात्रा-१ से २ गोली दिन में ३ बार, मट्ठे के साथ दें।

उपयोग-कनकसुन्दर रस ज्वरातिसार, अतिसार और संग्रहणी को दूर करके अग्नि प्रदीप्त करता है।

यह रस छोटे बालकों के लिये उत्कृष्ट औषधि है। बालकों के दांत निकलने के समय त्रासदायक लक्षणों को कम करने के लिये इ रस का उपयोग अति लाभदायक है।

दांत निकलने के समय विशेषतः वातविकृतिजनित लक्षण उत्पन्न होते हैं। बालक डरपोक बन जाता है, बार-बार रोता रहता है और पचनक्रिय बिगड़ जाती है। फिर इसी हेतु से उदर में अफारा और वमन या अतिसार होते हैं। दस्त बहुधा हरे रंग का होता है, दस्त में दूध पानी पृथ होते हैं, दूध के दधिकण जैसे के वैसे भासते हैं। मानसिक स्थिति अस्थिर हो जाती है। किसी तरह चैन नहीं पड़ता। बच्चा एक से दूस के पास, दूसरे से तीसरे के पास जाने का प्रयत्न करता है। धीरे-धीरे रोना, जोर से रोना, चिल्लाना, काटना, मसूड़ों पर अपनी मुठ्ठी जोर स दबाने का प्रयत्न करना, निद्रानाश और इसी हेतु से नेत्र में भारीपन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस व्याधि पर कनकसुन्दर रस का अति उत्तम उपयोग होता है। दन्तोद्भव ज्वर में यदि ज्वर (शारीरिक ऊष्मा) अति तीव्र न हो तो कनकसुन्दर देना चाहिये। इस रस में रहे हुए धतूर के बीजों से वात प्रकोप का शमन होकर ज्वर की निवृत्ति होती है।

ग्रहणी के विकार में निराम अवस्था होने पर इस रस का उपयोग होता है। जब तक कच्चे आम निकलते हों, तब तक एक दो दिन लंघन करना चाहिये फिर औषध योजना करनी चाहिये। प्रत्येक शौच के समय रक्त मिश्रित थोड़ी आम गिरना इसके साथ उदर में अतिशय शूल निकलना, फिर जोर से किंछने पर कुछ अच्छा लगना, कभी-कभी शौच के लिये बैठे-बैठे देर तक किंछते ही रहना, उठने की इच्छा नहीं होना आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो उस अवस्था में अफीम सदृश स्तम्भक औषधि देने से अन्त्र में रही हुई सूक्ष्म माँसपेशियों का स्तम्भ होकर आम और मल का निःसारण उत्तम प्रकार से नहीं होता। आम और मल में से कुछ अंश शेष रह जाने में वह अधिक प्रबल विकार की उत्पत्ति करता है। कनकसुन्दर देने से उसमें रहे हुए धतूरा और भांग वेदना शमन करते हैं। मांसपेशियों का स्तम्भन नहीं करते और इसके विपरीत मल निःसरण में सहायता करते हैं। हिंगुल जन्तुघ्न गुण के हेतु से विष की निवृति करता है। अतः यह औषधि छोटे बच्चों की संग्रहणी पर बड़े मनुष्यों के संग्रहणी रोग की अपेक्षा विशेष लाभदायक है। बड़ी आयु वाले विशेषतः वातप्रधान प्रकृति वाले रोगियों के लिये यह अधिक उपयोगी है इस रस का उपयोग जीर्ण रोग की अपेक्षा नये रोग पर अधिक होता है।

अतिसार के विकार में वातप्रधान लक्षण होने पर इस औषधि का उत्तम उपयोग होता है। अतिसार में अन्त्र का श्लैष्मिक कला में से स्राव अधिक होता है। इस स्राव को केवल स्तम्भक औषधि के योग से दबाने का प्रयत्न करने पर वह अन्त्र में रह जाता है। फिर कुछ समय में विकृति होकर अतिसार पुनः बढ़ जाता है। इस हेतु से इस रोग में केवल स्तम्भक औषधि न देकर श्लैष्मिक कला में से उत्पन्न स्राव की अधिकता को कम करने वाली औषधि देनी चाहिये। धतूरा इस स्राव को नियमित बनाता है। अतः धतूरा मिश्रित औषधि कनकसुन्दर रस सम्हालपूर्वक

जाता है। वातातिसार और वातकफातिसार दोनों पर इस रस का उपयोग हुआ है।

अनेक दिनों तक अतिसार विकार चालू रहने से कुण्डलिका (Sigmoid Colon) और गुदनलिका (Rectum) की श्लैष्मिक कला से एक प्रकार का पूय सदृश मलिन स्राव मल के साथ होने लगता है। अन्त्र में मल का दबाव होने पर यह स्राव अधिकाधिक होता जाता ऐसी परिस्थिति में बेलफलों के क्वाथ के साथ कनकसुन्दर देने से अच्छा लाभ पहुँचता है।

वातवर्द्धक पदार्थ अधिक खाने से विकृत अन्न रस की उत्पत्ति होती है। फिर अतिसार हो जाता है। इस अतिसार में ज्वर भी रहता है बार-बार डकार आना और उदर में अफारा आदि लक्षण हों तो कनकसुन्दर रस देना चाहिये।

आमाशय बिल्कुल शिथिल हो जाने पर रस में पाचक पित्त की उत्पत्ति ठीक नहीं होती इस हेतु से अन्न पचन भी ठीक नहीं होता। अग्निमाँद्य हो जाता है। शनैः शनैः परिणाम सम्पूर्ण पचन-संस्थान पर होकर सब प्रकार के पाचक पित्त (आमाशय, पित्ताशय, अन्त्र और अग्न्याशय से निःसृतपित्त) सम्यक् उत्पन्न नहीं होते। पचन संस्थान विकृत हो जाता है। इस तरह अग्निमाँद्य से अतिसार का प्रारम्भ हो जाता है। इसमें दुर्गन्धयुक्त बड़े-बड़े दस्त होते हैं। इस विकार में कनकसुन्दर अमूल्य औषधि है। (औ.गु.ध.शा.)

अतिसार, ग्रहणी रोग में बार-बार किंछते रहने पर गुदभ्रंश हो जाता है। किसी को गुदस्थान से शूल भी निकलता है, उस पर यह कनकसुन्दर, गुडूचीसत्त्वामृत पर्पटी और सौंफ के चूर्ण के साथ दिन में २ समय भोजन के बीच में देने से और मठ्ठा पिलाने से विकार थोड़े ही समय में शमन हो जाता है। बाह्य उपचार रूप से भात में घी डालकर सेक करने और माजूफल को शहद में मिला कर लेप करने पर सत्वर लाभ पहुँचता है।

(४२) ग्रहणीकपाट रस

विधि-शुद्ध पारा २ भाग, शुद्ध गन्धक १० भाग, शुद्ध वच्छनाभ १ भाग, शुद्ध अफीम ४ भाग, कौड़ी भस्म ७ भाग, कालीमिर्च ८ भाग और धतूरे के शुद्ध बीज २० भाग लें। सबको यथाविधि मिलाकर खरल करें। फिर पोस्तडोडे के क्वाथ की ३ भावनायें देकर एक-एक रत्ती की गोलियां बनावें। मूलग्रन्थ में भावना देने को नहीं लिखा, हमने अनुकूल समझकर बढ़ाया है। (र.रा.सु.)

मात्रा-१ से २ रत्ती दिन में ३ समय, जीरे का चूर्ण ३ माशे और शहद ६ माशे मिलाकर चटावें अथवा मठ्ठे के साथ देवें।

उपयोग-ग्रहणीकपाट रस उग्र संग्रहणी, भयंकर अतिसार और मन्दाग्नि को दूर करता है और कच्ची आम का पाचन करता है।

यह रस तीव्र वेदनायुक्त संग्रहणी रोग में लाभदायक है। ज्वर, मुखपाक, दाह, उदरपीड़ा होकर बार-बार दस्त आना, गुदा में अति जलन, गुदा बाहर निकलना, आम और रक्तमिश्रित मल थोड़ा-थोड़ा बार-बार शूल सहित निकलना आदि लक्षण होने पर यह रस विशेष लाभदायक है। इस रस से आम का पचन होता है, अग्नि प्रदीप्त होती है, शोथ दूर होता है और थोड़े ही दिनों में संग्रहणी रोग का शमन होता है। इस रस में धतूरे का परिमाण अधिक है जिससे ग्रहणी की पिच्छिल त्वचा में से जो अब्धातुस्राव होता है वह नियमित बनता है। अफीम में स्तम्भक और वेदना शामक गुण होने से बार-बार शौच जाना, शूल होना, इत्यादि विकार शीघ्र बन्द हो जाते हैं। थोड़े दिनों तक नियमपूर्वक ग्रहणी कपाट के सेवन से संग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है। वात संग्रहणी, पित्त संग्रहणी, कफप्रधान संग्रहणी, रक्त और पूयमय संग्रहणी, इन प्रकार के नये रोगों में यह रस अच्छा काम देता है।

सूचना-इस रस में अफीम मिली है। अतः रोगारम्भ में जब तक आम दस्त हों, तब तक इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

दूसरी विधि-शुद्ध पारद; शुद्ध गन्धक, हरड़, अभ्रकभस्म, यवक्षार, सज्जीखार, सोहागे का फूला (मतान्तर में कांच लवण), मोचरस, अतीस, बच और शुद्ध भांग इन ११ औषधियों को समभाग मिला कर १२ घण्टे जम्भीरी नींबू के रस में खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (यो.र.)

मात्रा-१ से ४ रत्ती, दिन में ३ बार, शम्बूक भस्म, घी और शहद के साथ या मठ्ठे के साथ दें। बालकों को मात्रा आधी से १ रत्ती तक दें।

उपयोग-यह रस नये संग्रहणी रोग पर निर्भय और अति हितावह है। इस रोग में कज्जली कल्प, दरद कज्जली कल्प और दरद कल्प (हिंगुल प्रधान औषधि), ये तीनों विकार भेद से प्रयोजित होते हैं। केवल अन्त्र में दोष होने पर कज्जली कल्प, आमाशय और अन्त्र दोनों स्थानों में विकृति होने पर दरद कज्जली कल्प तथा केवल आमाशय में दोषदुष्टि होने पर दरद कल्प का प्रयोग करना चाहिये।

यह रस विशेषतः बालकों को अधिक से अधिक अनुकूल रहता है एवं बड़ी आयु वालों को भी दिया जाता है। जब दस्त सफेद रंग के, अपक्व अन्नयुक्त, सफेद गाढ़े और झाग वाले, आम मिश्रित, किंचित् रक्तयुक्त और योग्य रचना रहित हो, शौच कम समय जाना पड़ता हो परन्तु प्रत्येक समय मल की मात्रा अधिक हो, शौच होने पर त्रास होना, कुछ प्रवाहण, विशेषतः मालूम हुए बिना शौच हो जाना या अकस्मात् शौच होना, शौच के साथ वान्ति में अपक्व और खट्टा दुर्गन्धयुक्त अन्न गिरना इनके अतिरिक्त अधिक शौच होने से ज्वर आना आदि लक्षण होने पर ग्रहणीकपाट देना चाहिये।

बड़ी आयु वाले को मानसिक आघात या शोक से उत्पन्न अतिसार और ग्रहणी रोग पर ग्रहणीकपाट रस का अच्छा उपयोग होता है। शोक और मनोव्याघात जन्य विकार विशेषत: दुश्चिकित्स्य माने गये हैं। इन विकारों में मनोदेश अधिक प्रक्षुब्ध हो जाता है। इस हेतु से शरीर व्याधि उत्पन्न हो जाती है। इस तरह के पीड़ित व्यक्ति को किसी भी स्थान में चैन नहीं पड़ता। एक ही विषय बार-बार मन में आता रहता है, उसी विषय का चिन्तन-सा बना रहता है। इसी हेतु से अन्य इन्द्रियों का व्यापार मन्द हो जाता है, और वात धातु में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। फिर पचनेन्द्रिय संस्थान विकृत होता है। इस विकार पर मनोदेश पर लाभदायक, अभ्रकयुक्त पाचक और अन्त्रप्रदीपक औषधि की आवश्यकता है। यह कार्य इस रस से अत्युत्तम होता है।

राजयक्ष्मा रोग में उपद्रव रूप से उत्पन्न अतिसार या ग्रहणी विकार अधिक भयंकर है। इस विकार में बड़ी आंत बिल्कुल शिथिल हो जाती है और पचनक्रिया मन्द हो जाती है। फिर सफेद रंग के आम मिश्रित दस्त बिना बोध होते रहते हैं, इस विकार पर ग्रहणीकपाट हितकारक है।

कितने ही समय ग्रहणी रोग जीर्ण हो जाने पर या नूतन ग्रहणी रोग के साथ श्वास रूप उपद्रव हो जाता है। इस श्वास पर भी ग्रहणीकपाट का उत्तम उपयोग होता है।

ग्रहणीकपाट में कज्जली कीटाणुनाशक, रसायन और योगवाही है। अतीस शक्तिवर्द्धक, यकृत् के पित्त का स्राव कराने वाली, पाचक और ज्वरघ्न है। अभ्रकभस्म शक्तिवर्द्धक, रसायन, मनोदेशदुष्टिनाशक और क्षय रोग में हितकर है। तीनों क्षार पाचक और यकृदुत्तेजक है, मोचरस उपलेप स्तम्भक और संग्राही है। भाँग संग्राही, दीपक और पाचक है। जम्भीर रस पाचक और अग्निप्रदीपक है। हरड़ दीपन, पाचन और रसायन बच आमशूलघ्न, मनोदोषनाशक और आक्षेपहर है। (औ.गु.ध.शा.

(४३) दुग्ध वटी

विधि–शुद्ध वच्छनाभ १२ रत्ती, शुद्ध अफीम १२ रत्ती, लोहभस्म ५ रत्ती और अभ्रक भस्म ६० रत्ती लें। सबको मिला बकरी के में १ दिन खरलकर १/२-१/२ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (भै.र.

मात्रा–१ से २ गोली। दिन में २ या ३ बार दूध के साथ देवें।

उपयोग–इस औषधि के सेवन से अनेक प्रकार के शोथरोग, शोथयुक्त संग्रहणी, अतिसार, पेचिश, विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डु आदि दूर होते हैं। जिस संग्रहणी के रोगी को सूजन और बुखार रहता हो और मठ्ठा अनुकूल न रहता हो, उसके लिये यह औषधि हितकर इसके सेवन के समय में केवल बकरी के दूध पर रहने तथा नमक और जल न लेने से शोथसह संग्रहणी थोड़े ही समय में दूर होती

सूचना–मलावरोध होकर दूषित मल संगृहीत न हो जाय इस बात की पूर्ण सम्हाल रखें। निर्बल आँतों वालों को मात्रा कम देवें।

(४४) लाही चूर्ण

विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, भुनी हींग, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नेत्रवाला, जायफल, लौंग, कूठ, भुना जी कुलींजन, सोंठ, मिर्च, पीपल, मोचरस, बेलगिरी, कलोंजी, कालानमक, साभंर नमक, बिड़ नमक, समुद्र नमक सबको समभाग मिलावें। सबके समान भुनी भांग मिलावें। पारा गन्धक की कज्जली बनावें। फिर अभ्रक भस्म मिलाकर घोटें। काष्ठौषधियों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण सबको मिलाकर घोट लें। (र.रा.सु.

मात्रा–१ से २ माशे। सुबह शाम जीरा, सोंठ और सैंधानमक मिले हुए गाय के ताजे मठ्ठे के साथ सेवन करे।

उपयोग–यह रस वातज, कफज और आमयुक्त संग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका, उदररोग, मन्दाग्नि आदि को नाशकर पचन शक्ति को बढ़ाता है; तथा संग्रहणी के ज्वर, कास, श्वास, निद्रानाश, अरुचि, निर्बलता आदि उपद्रवों को भी दूर करके शरीर बल का रक्षण करता है।

नूतन आमयुक्त संग्रहणी और उदर के विविध विकारों को दूर करने के लिये यह उत्तम औषधि है। यह चूर्ण पचन-क्रिया की वृद्धि करता है। आम ज्वर, कास, श्वासप्रकोप, निद्रानाश, अरुचि का भी निवारण करता है तथा शूलसह आमातिसार और रक्तातिसार का शमन करता है।

इस रस में मुख्य औषधि भाँग है। इस हेतु से इस चूर्ण में पित्तवर्द्धक, आमपाचक, कफनाशक, वातनाशक, अग्निप्रदीपक और ग्राही अवस्थित हैं। यदि वातप्रकोप और कफवृद्धिजनित संग्रहणी रोग में अग्निमांद्य हो; अथवा अधिक पक्के भोजन के सेवन से मुंह में अरुचि, दुर्डकार आना, उदर में वायु भरा रहना, मल में कच्चे आम आना, शूल चलना, उदर में भारीपन, बार-बार दस्त होने पर भी मलशुद्धि न हो आदि लक्षण प्रतीत हों तो इस चूर्ण के सेवन से पचन क्रिया सबल होकर ग्रहणी रोग का निवारण हो जाता है।

आमप्रधान नूतन संग्रहणी में तीव्रावस्था होने पर ग्रहणीवज्रकपाट, पीयूष वल्ली या अन्य औषधि देनी चाहिये। ३-४ दिन में तीव्रावस्था शा हो जाने के पश्चात् रोगशमनार्थ या अग्निमांद्य को दूर करने के लिये यह चूर्ण दिया जाय, तो लाभ पहुँचता है।

सूचना–इसके सेवन से किसी-किसी को तृषा बढ़ जाती है एवं शक्ति से मात्रा अधिक होने पर मादक असर होता है। ऐसा होने पर का अधिक सेवन करना चाहिए, तथा औषधि मात्रा कम कर देनी चाहिये।

(४५) लघुलाही चूर्ण

विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अजवायन, भुना जीरा, कालानमक, सैंधानमक, भुनी हींग और बिड़नमक ये समभाग और कूड़ाकी छाल (मतान्तर में भुनी हींग) सबके बराबर लें। काष्ठादि औषधियों का बारीक चूर्ण करें। फिर कज्जली मिलाकर खरल करें।

मात्रा–२ से ३ माशे तक, दिन में ३ बार; मठ्ठे के साथ।

उपयोग–कूड़ाछाल प्रधान यह चूर्ण नयी वातज, पित्तज और आमप्रधान संग्रहणी, शूल, अफारा, पेचिश और शूल सहित अतिसार का नाश करता है। अन्त्र की संधारण शक्ति बढ़ाकर अन्त्र को बलवान बनाता है। रक्तातिसार और उदरशूल का शमन करता है; एवं आहार को अच्छी रीति से पचन कराकर मल को बांधता है।

जिसको भाँग अनुकूल न हो; अन्त्र की धारणाशक्ति शिथिल हो जाने से बार-बार दस्त लगते ही रहते हों, तथा उदर में मरोड़ा भी आता हो, उसके लिये कूड़ाकी छाल वाली यह औषधि अति हितकर है।

(४६) शंख वटी

विधि–इमली का क्षार (भस्म) ४ तोले और पाँचों नमक मिलाकर ४ तोले लें। सबको २० तोले नींबू के रस में घोल दें। पश्चात् ४ तोले शुद्ध शंख को तपा-तपाकर बिखर जाय, तब तक उस रस में बुझावें या शंखभस्म मिला लें। बाद में भूनी हींग, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल ४-४ तोले, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, और शुद्ध बच्छनाभ तीनों १-१ तोला लें। पारद गन्धक की कज्जली करके शंखभस्म के साथ मिलावें पश्चात् अन्य औषधियों का कपड़छान चूर्ण मिला, ३ दिन नींबू के रस में खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। (यो.र.)

मात्रा–१ से ४ गोली। दिन में ३ समय जल के साथ देवें।

उपयोग–यह वटी क्षय, ग्रहणी, अजीर्ण और पंक्तिशूल आदि व्याधियों को दूर कर अग्नि को प्रदीप्त करती है।

शंखवटी आयुर्वेद में पाचन औषधियों के भीतर एक उत्तम औषधि है। विष्टब्धाजीर्णजनित आफरा, उदरव्यथा, शूल और व्याकुलता होने पर शंखवटी का उत्तम उपयोग होता है। अधिक भोजन कर लेने पर उदर में भारीपन या उदर में वेदना होने पर शंखवटी अति हितकर है। वातवर्द्धक या जड़ भोजन खाने पर कुछ समय के पश्चात् उदर खूब खिंचने लगता हो ऐसा भासता है, श्वास लेने में प्रतिबन्ध होता है, चलना-फिरना तो प्रायः अशक्य हो जाता है। इस विकार पर शंखवटी देने से आमाशय बन्ध को उत्तेजना मिलती है, एवं आमाशय में अलसीभूत अन्न को आगे गति कराने में सहायता मिल जाती है। इस हेतु से उदर की खिंचाई और व्यथा कम हो जाती है। मध्यम कोष्ठ (लघु अन्त्र) के शूल में भी यही स्थिति होती है, उस पर भी शंखवटी का अच्छा उपयोग होता है। इससे अन्त्र की पुरःसरण क्रिया बढ़ जाती है, अवरोध दूर हो जाता है, और अन्न को आगे-आगे चलाने में सुविधा हो जाती है। इस तरह शूल के हेतु नष्ट हो जाने से शूल स्वयमेव शमन हो जाता है। लघु और बृहद्अन्त्र के संगम स्थान में अपक्व अन्न संचय होकर आनाह और शूल उत्पन्न होने पर शंखवटी का उत्तम उपयोग होता है। ये सब विष्टब्धाजीर्ण की अवस्थाएं हैं, और यह शूल अजीर्ण जनित है।

विदग्धाजीर्ण में कण्ठ में दाह, खट्टी डकार, उदर में जलन भोजन करने के पश्चात् घण्टों तक अन्न जैसा का वैसा पड़ा रहना आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्था में शंखवटी अच्छा लाभ पहुँचाती है।

अपक्व आहार, विदग्धाहार जनित मूर्च्छा, अत्यधिक भोजन, विष्टम्भ कारक अन्न, कच्चे या अर्द्धपक्व भोजन, पक्के भारी भोजन, शीतल पदार्थ या दुर्गन्धयुक्त भोजन का सेवन आदि कारणों से अतिसार हो जाता है। यह अतिसार अन्न विष के हेतु से होता है। इस अन्न विष से विष्टम्भ, वेदना, शिरदर्द, मूर्च्छा, भ्रम, पीठ और कमर अकड़ जाना, जंभाई, हाड़ फूटना, तृषा, ज्वर, छर्दि, प्रवाहिका, अरुचि, अपचन आदि विकार हो जाते हैं। इस अन्न विष से विदाह होकर अन्त्र की श्लैष्मिक कला विकृत होती है, और अब्धातु की वृद्धि होती है। फिर यह अब्धातु (जल) अपक्व आहार में मिश्रित होकर बड़े-बड़े जुलाब लगते हैं। इन जुलाबों के साथ उदर में अफारा भी होता है। सारे उदर में मन्द-मन्द वेदना होती है या शूल चलता है। ये सब अन्न विषजनित क्षोभ से होते हैं। इस अतिसार में शंखवटी उत्तम कार्य करती है।

ग्रहणी रोग की अति तीव्रावस्था में इस औषधि से अधिक लाभ नहीं होता परन्तु इस अवस्था की प्राप्ति होने के पहिले अग्निमांद्य, अजीर्ण, अन्न विष संचय आदि पर इसका अच्छा उपयोग होता है एवं ग्रहणी के तीव्र विकार में भी कफप्रधान लक्षण और शूल होने पर शंखवटी उत्तम लाभदायक है।

अग्निमांद्य में अरुचि और शूल अधिक होने पर शंखवटी का बहुत अच्छा उपयोग होता है। परिणाम शूल में विबन्ध, अफारा और कोष्ठश ये लक्षण होने या अन्न आमाशय में अधिक समय रहकर शूल उत्पन्न होने पर शंखवटी दी जाती है।

जीर्ण बद्धकोष्ठ के विकार में लघु और बृहदन्त्र के संयोग स्थान, अन्त्रपुच्छ, बृहदन्त्र स्थानों में अफारा, कब्ज होकर भयंकर त्रास, शू घबराहट या अस्वस्थता आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो शंखवटी का उत्तम उपयोग होता है।

शंखवटी वात और वातकफ दोष, रस दूष्य तथा आमाशय, यकृत्, प्लीहा, ग्रहणी, लघु अन्त्र, बृहदन्त्र इन स्थानों पर लाभ पहुँचाती

सूचना–इस वटी के अधिक उपयोग से मुखपाक, दांतों में वेदना, क्वचित् अर्श और रक्त गिरना आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

(औ.गु.ध.शा.

(४७) शङ्खोदर रस

विधि–शंख भस्म ४ तोले तथा शुद्ध अफीम, जायफल और सोहागे का फूला १-१ तोला मिलाकर खरल करें। (र.यो.सा.

मात्रा–१/२ से १ रत्ती दिन में ३ से ४ बार, मक्खन-मिश्री या मठ्ठे के साथ। पक्वाशय के शूल पर गुड़ और बेल के क्वाथ के साथ

उपयोग–यह रस रक्तातिसार, रक्तार्श, पक्वातिसार, भयंकर शूल सहित पतले, पीले, लाल या नीले कष्टसाध्य अतिसार, गुदा में जल और अनेक प्रकार के उत्कृष्ट शूल आदि को तत्काल नष्ट करता है एवं आम का पाचन करता है।

शंखोदर रस में स्तम्भक गुण की अपेक्षा वेदनाशामक गुण अति उपयुक्त है। इस हेतु से इसका प्रयोग शूलसह अतिसार, तीव्र पक्वातिसा और निराम संग्रहणी में किया जाता है। अजीर्ण विदग्ध आहार गरविष, कृमि आदि क्षोभक त्रासदायक निमित्त कारणों से उत्पन्न अतिसार म मूल क्षोभक कारण को दूर करना यही इसकी उत्कृष्ट चिकित्सा है। इसके अतिरिक्त कारणों से होने वाले पक्व अतिसार तथा आमातिसार आमसंग्रह की प्रथमावस्था को छोड़ शेष अवस्था में इसका उत्तम उपयोग हुआ है। पित्त या वातव्रकोप से अन्त्र क्षोभ होकर अतिसार हुआ तो इसे उपयोग में लें।

बड़े-बड़े पतले पीले और गरम-गरम जुलाब, नीले लाल रंग के दस्त, अति तृषा, क्वचित् मूर्च्छा, आमाशय आदि में दाह, गुदाद्वार म जलन और परिपाक, शौच के समय अति जलन, रक्त गिरना और व्याकुलता आदि लक्षण होने पर मक्खन मिश्री के साथ इस रस का उपयोग करना चाहिये।

अरुण वर्ण का झाग और झागयुक्त थोड़ा-थोड़ा दस्त होना, अति किछंना बार-बार शौच होना, उदर में भयङ्कर दर्द, भयंङ्कर वेग पूर्वक पेचिश होकर शौच होना तथा शौच के समय अति कष्टदायक असह्य वेदना आदि लक्षण होने पर शंखोदर रस आशु फलप्रद है।

जिस अतिसार में किंछ-किंछकर थोड़े-थोड़े दस्त होते हों, दस्त में विशेषतः आम और कुछ रक्त हो, गुदामार्ग में दाह, गुदा पर स्पर्श भी सहन न हो ये लक्षण हों तो शंखोदर रस देना चाहिये।

यह रस वात, पित्त ये दोष, रस, रक्त, मांस ये दूष्य तथा यकृत्, लघु अन्त्र और बृहदअन्त्र इन स्थानों पर लाभदायक है। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना–इस रस में अफीम होने से कम परिमाण में ही देना चाहिये। कदाचित् किसी को अफीम के नशे का असर हो तो नींबू का रस पिलावें। सगर्भा स्त्री को यह रस नहीं देना चाहिये।

(४८) जातिफलादि वटी

विधि–जायफल, सेंधानमक, शुद्ध सिंगरफ, कौड़ीभस्म, सौंठ, शुद्ध अफीम, धतूरे के शुद्ध बीज और पीपल सबको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। नींबू के रस, धतूरे के बीज का क्वाथ और भांग के क्वाथ की एक-एक भावना देकर आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें। (वै.सा.सं.)

मात्रा–१-१ गोली, दिन में ३ बार, मट्ठे अथवा जल के साथ। वमन सहित अतिसार में नींबू के रस और मिश्री के साथ। अपचन जनित विसूचिका पर हींग और सैंधानमक मिले मट्ठे के साथ।

उपयोग–यह औषधि पक्वातिसार निराम संग्रहणी, अजीर्णजन्य विसूचिका और शूल को दूर करती है। यह शामक, स्तम्भक और पाचक है। अजीर्ण जन्य विसूचिका से पीड़ित छोटी आयु वालों को थोड़ी मात्रा में दी जाती है। नूतन संग्रहणी में आमानुबन्ध न हो तो इसका उपयोग होता है। इसके सेवन से अजीर्णजन्य शूल अतिसार में होने वाले तीव्र शूल और मध्यम कोष्टस्थ शूल शीघ्र शमन होते हैं।

अतिसार में बड़े-बड़े पीले रंग के जुलाब लगना, उदर में शूल या भयंकर पीड़ा होना, पहले प्रत्येक समय पर अधिक शौच बिना त्रास से होना, फिर उदर में दर्द अधिक होना और श्वास भर जाना, खट्टी-खट्टी वमन होना, आदि लक्षण होते हैं। इस पर जातिफलादि वटी नींबू

रस और मिश्री के साथ या मट्ठे के साथ देनी चाहिये।

छोटे बालकों को अजीर्ण जन्य विसूचिका या अतिसार होने पर इस औषधि का उपयोग होता है। यदि शूल तीव्र हो, जुलाब बार-बार बड़े-बड़े लगते हो, व्याकुलता आती हो, परन्तु उदर में अधिक दोष सञ्चय न हों तो इस वटी का उपयोग करना चाहिये।

संग्रहणी में आमानुबन्ध हो और विकार थोड़े ही दिनों का हो तो इस औषधि का उपयोग होता है, किन्तु जीर्ण संग्रहणी और आम संग्रहणी में इसका उपयोग नहीं होता।

विसूचिका में दो प्रकार है-जन्तुजन्य और निर्जन्तुक। जन्तुजन्य विसूचिका में संजीवनी वटी का उपयोग होता है। निर्जन्तुक विसूचिका में विशेषत: अपचन से उत्पन्न होने पर इस जातिफलादि वटी का प्रयोग किया जाता है। आम लक्षण अर्थात् उबाक, मुंह में पानी आना और अफारा आदि लक्षण हों तब यह वटी नहीं देनी चाहिये।

मध्यम कोष्ठस्थ शूल, अपचन से उत्पन्न अतिसार या संग्रहणी में उत्पन्न तीव्र त्रासदायक शूल ये सब विकार इस औषधि से त्वरित प्रशमन होते हैं।

सूचना-अतिसार में जब तक कच्चा आम गिरता हो तब तक इसका या अन्य अफीमयुक्त स्तम्भक औषधि का उपयोग नहीं करना चाहिये।

(४९) हिंगुल वटी

विधि-शुद्ध सिंगरफ, कच्ची हींग, सुपारी के फूल, जावित्री और अफीम २-२ तोले लेकर बारीक चूर्ण करें। फिर चार बड़े पक्के खट्टे अनारों में खड्डा कर औषधि भर ऊपर से बन्द करें। पश्चात् थोड़ा सूत लपेट, जल में गूंदा हुआ गेहूँ का आटा ऊपर में बाटी के समान पाव इञ्च मुटाई जितना लगावें। फिर बाटी की रीति से सेक कर खड्डे में दबा दें और ऊपर से ३० सेर आरणों की निर्धूम कूटी हुई अग्नि डालें। खड्डे में अनार की बाटी पर एक-एक इञ्च धूल अथवा राख डालें। फिर ऊपर निर्धूम अग्नि की गरम राख दबावें। २ दिन बाद अग्नि बिल्कुल शांत हो जाय तब निकाल अनार सहित औषधि को खरल करके चने बराबर गोलियां बनालें। (पं. श्री रामनाथजी त्रिवेदी)

सूचना-अनार के ऊपर का आटा खड्डे में दबा देना चाहिये।

खड्डे में अनार रखने के समय कटा हुआ भाग ऊपर की ओर रहना चाहिये। अन्यथा रस बाहर निकलकर औषधि का गुण बहुत कम हो जाता है।

मात्रा-१-१ गोली। दिन में २ से ३ बार जल के साथ देवें।

उपयोग-यह वटी प्रवाहिका, उदरशूल, रक्तातिसार, पक्वातिसार, संग्रहणी, हैजा, मन्दाग्नि, निर्बलता, बहुमूत्र, वमन, धातुक्षीणता और श्वास आदि रोगों का नाश करती है।

यह वटी स्तम्भक पाचक और वातनाशक है। इससे लघु अन्त्र और बृहदन्त्र में रहे हुए अब्धातु का शोषण, आम का पचन, उदर वात का नि:सरण तथा अन्त्रक्षोभ का शमन होता है, जिससे पक्व अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, नूतन ग्रहणी, अजीर्णजन्य विसूचिका तथा उदरशूल शमन होते हैं। पित्तविकृति और उदर में वायु भरने के कारण मूत्रशुद्धि न होती हो, बार-बार थोड़ा-थोड़ा मूत्र आता रहता हो, तो ऐसा बहुमूत्र रोग भी इसके सेवन से दूर होता है।

हैजे में दूषित मल निकल जाने के पश्चात् दो-दो घण्टे पर १-१ गोली देते रहने से ६-८ घण्टे में रोग निवृत्त हो जाता हैं।

इस हिंगुलवटी के प्रभाव से कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। फिर वमन, अतिसार, प्यास, मूत्राघात (मूत्रोत्पत्ति प्रतिबन्ध) ये सब विकार दूर होते हैं। दीपन पाचन गुण की प्राप्ति होती है और रोगी क्षुधा का अनुभव करता है। रोग शमन होने के पश्चात् अति आवश्यकता पर मात्र मट्ठे या मूंग का यूष देना चाहिये।

क्वचित् उदरकृमिघ्न औषध सेवन से विसूचिका का शमन हो जाने पर उपद्रवभूत या अपचन जनित आमाशय प्रदाह होने पर वमन होता रहता है। उस वमन को दूर करने के लिए यह हिंगुल वटी जल के साथ दिन में ३-४ बार आध-आध या १-१ गोली दी जाती है। आवश्यकता अनुसार काली मुनक्का का जल, बड़ी इलायची या नींबू की सिंकजी दे सकते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में ऋतु परिवर्तन से उत्पन्न अतिसार और ग्रहणी रोग कभी-कभी उग्र बन जाते हैं। इन विकारों में दिन में ५०-१०० बार शौच जाना पड़ता है। बार-बार थोड़ा-थोड़ा शौच जाना, उदर में अति बलपूर्वक मरोड़ आना, प्रवाहण करने पर कुछ आम आना या किंचित रक्तमिश्रित थोड़ा मल गिरना, घबराहट, अति थकावट, बेचैनी, मुख में जल भर जाना, उबाक आना, क्वचित् मन्द ज्वर रहना आदि लक्षण होने पर इस वटी का बहुत अच्छा उपयोग होता है।

जितने अंश में स्तम्भन की आवश्यकता होगी, उतने अंश में स्तम्भन होगा। इस स्तम्भन गुण को मर्यादा में रखने के लिए प्रयोगकार ने इसके भीतर हींग मिलाई हैं। हींग से वायु शुद्धि, दीपन, पाचन, दुर्गन्धहर, कृमिघ्न और कीटाणुनाशक गुणों की प्राप्ति होती है। इस हेतु से पार्वतीय अतिसार, ज्वरातिसार और ऋतु परिवर्तनशील अतिसार में कर्पूर रस की अपेक्षा अनेक रोगियों को हिंगुलवटी अच्छा लाभ पहुँचाती है। इसे सब प्रकृति वालों को निर्भय रूप से दे सकते हैं।

रक्तातिसार होने पर उदर में मरोड़ा आकर रक्तमिश्रित मल गिरना, गुदाद्वार में कांच निकलना, गुदाद्वार में झनझनाहट, मूत्र थोड़ा और लाल हो जाना, नाड़ी कभी तेज, कभी क्षीण हो जाना, दस्त के समय किछंना आदि लक्षण होते हैं। इस पर भी यह रस उपयोगी है। अनुपान रूप से बेल का मुरब्बा, हरड़ का मुरब्बा या कुटजावलेह या अन्य अनुकूल औषधि की योजना करनी चाहिये।

सूचना–जब तक पुराना दूषित मल निकलता हो तब तक यह या अफीम मिश्रित औषधि नहीं देनी चाहिये।

(५०) रामबाण रस

विधि–शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, शुद्ध बच्छनाभ १ भाग, लौंग १ भाग, काली मिर्च २ भाग और जायफल आधा भाग लेवें। इन सबको मिला पक्की इमली के रस में ३ दिन खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियां बना लेंवें। (भै.र.)

अन्य ग्रन्थकारों ने इस रस को इमली के रस की भावना के पश्चात् बिजौरा, सन्तरा, अनार, आक के फूल और अदरक इन सब के रस में १-१ दिन खरल करने का विधान किया है। इस तरह ६ औषधियों की भावना देने से यह रस विशेष लाभदायक बनता है। हम इसी तरह तैयार करा उपयोग में लेते हैं।

इस रस को कफशमनार्थ अदरक के रस में, वातशमनार्थ निर्गुण्डी के रस में, पित्तशमनार्थ धनिये के हिम मे, श्वास पर त्रिकटु और वासा स्वरस के साथ, उदर रोग में सोंठ, सैंधानमक और हरड़ के साथ, शोथ पर पुनर्नवा क्वाथ में, पाण्डु रोग पर गौमूत्र या त्रिकटु और त्रिफला के क्वाथ में, क्षय पर शहद में, विषम वातवेदना और सम्पूर्ण वातविकार में एरण्ड तैल के साथ देना चाहिये।

मात्रा–१ से २ गोली। दिन में ३ बार, मट्ठे या जल से दें।

उपयोग–रामबाण रस उत्तम दीपन, पाचन और ग्राही औषध है। नयी आमसंग्रहणी, अजीर्णजन्य अतिसार, आमवात, मन्दाग्नि, श्वास, कास, ज्वर, वमन, जुकाम तथा कृमि रोग का नाश करता है। यह रस कोष्ठस्थ अब्धातु का शोधन करता है, दूषित अंश को मूत्र और प्रस्वेद द्वारा निकाल देता है तथा पाचनक्रिया बढ़ाता है जिससे आमजनित विविध रोग नष्ट हो जाते हैं।

यह रस विशेषतः वातज विकृति, कफज विकृति और वातकफज विकारों पर लाभदायक है। पित्तप्रकोप में इसका उपयोग नहीं करना चाहिये जब आमाशय के पित्त का स्राव कम होकर अग्नि मन्द हो जाती है, तब अपचन होता है, आम की उत्पत्ति होने लगती है, बार-बार थोड़ा दस्त लगना, उदर में भारीपन बना रहना, उबाक तथा कभी जुकाम हो जाना इत्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर इस रस का सेवन लाभदायक है। इसके सेवन से आमाशय का पित्तस्राव बढ़ जाता है, जिससे अग्निमान्द्य दूर होकर सब विकार शमन हो जाते हैं।

ग्रीष्मऋतु में दोपहर को अधिक फिरने, बिगड़े हुए फल, दूषित अन्न या बासी भोजन करने पर, अपचन होकर अतिसार हो जाता है। बार-बार दस्त लगना, व्याकुलता, तृषा, कण्ठशोष, अरुचि, किसी-किसी को जुकाम भी हो जाना और हाथ पैर टूटना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर रामबाण रस का उपयोग बहुत अच्छा होता है।

यदि अपचन होने से ज्वरोत्पत्ति हुई हो या अग्नि मन्द होने से निर्बलता आकर श्वासरोग हो गया हो अथवा आम और कफ की वृद्धि होकर कास रोग की प्राप्ति हुई हो तो उन सबका मूल कारण (अग्निमांद्य अथवा अजीर्ण) दूर होने से ये नष्ट जाते हैं।

(५१) सिद्धप्राणेश्वर रस

विधि–शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म तीनों ४-४ तोले, सज्जीक्षार, सोहागे का फूला, जवाखार, सैंधानमक, सांभरनमक, समुद्रनमक, बिड़नमक, कालानमक, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, इन्द्रयव, जीरा, कालाजीरा, चित्रकमूल, अजवायन, भूनी हींग, बायविडंग, सोया इन २२ औषधियों को १-१ तोला लें। पहले कज्जली कर भस्म मिलावें। पश्चात् काष्ठादि औषधियों का चूर्ण मिला ६ घण्टे खरलकर लेवें।

मात्रा–२ से ६ रत्ती तक। दिन में ३ समय नागरबेल के पान के साथ देकर ऊपर ५-१० तोला पानी पिलावें।

उपयोग–यह रसायन ज्वरातिसार, अतिसार, ज्वर, त्रिदोषज व्याधि ग्रहणी, रक्तविकार, वातरोग, शूल, परिणाम शूल इन सब विकारों को नष्ट करता है। विशेष गुण वर्णन प्राणेश्वर रस र. तं. सा. द्वितीय खण्ड में किया है।

(५२) नित्योदित रस

विधि–रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म और शुद्ध बच्छनाभ सब समभाग और सबके बराबर भिलावा मिला जमीकन्द के रस में ३ दिन तक खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (र.रा.सु.)

मात्रा–१ से २ गोली। दिन में दो बार, घी लगाकर निगलें। ऊपर दही का मट्ठा बनाकर पिलावें। कब्ज वालों को आध-आध छटांक मक्खन के साथ देना विशेष लाभदायक है।

उपयोग–इस रस के सेवन से अर्श की सूजन, जलन, रक्त गिरना आदि सब दोष दूर होकर मुरझा जाते हैं। यह रस दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक, ज्वरघ्न, रक्त पौष्टिक, वातहर और विषघ्न है।

अर्श रोग में नित्योदित और अर्श:कुठार ये दो रस प्रधान है। इन दोनों के कार्य में कुछ अन्तर है। अर्श:कुठार आमाशय और यकृत् दोनों की विकृति और कठोर कोष्ठ वाले के लिये उपयोगी है, किन्तु यह नित्योदित विशेषत: यकृत् की निर्बलता से उत्पन्न अग्निमांद्य, मलावरोध और आमप्रकोप होने पर तथा रक्तार्श पर विशेष प्रयुक्त होता है।

यकृत् निर्बल होने पर आवश्यक पित्तोत्पत्ति नहीं कर सकता और आम विष का रक्त में प्रवेश होता रहता है। फिर आलस्य, निद्रावृद्धि, तन्द्रा, व्याकुलता मन्द-मन्द ज्वर बना रहना, मल में दुर्गन्ध की उत्पत्ति होना, मल का रंग चाहिये उतना पीला न रहना या सफेद मैला हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं एवं अन्त्र की वातनाड़ियाँ निर्बल बनने पर उदर में वायु उत्पन्न होती रहती है, किसी-किसी को उदर वायु बनी ही रहती है और अति कष्ट से थोड़ी-थोड़ी बाहर निकलती रहती है। इसके साथ कब्ज रहने से अर्श के मस्से पर दबाव आता है। इस हेतु से कठोर मल का घर्षण होने से बार-बार रक्तस्राव होता है, परिणाम में देह में पाण्डुता आ जाती है, मुखमण्डल निस्तेज हो जाता है, नेत्र गड्ढे में धस गये हो ऐसा भासता है, मूत्र बहुधा पीला हो जाता है, जिह्वा पर मल की तह जम जाती है, भोजन करने की रुचि नहीं रहती, मुख का स्वाद मीठा-मीठा भासता है, थोड़ा चलने की या कार्य करने की इच्छा नहीं रहती इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसी अवस्था में यह नित्योदित रस अमृत के सदृश उपकारक है। यदि ज्वर अधिक है तो दही की थोड़ी मलाई के साथ तथा मलावरोध और मन्द ज्वर होने पर (या ज्वर न होने पर) मक्खन के साथ देना चाहिये।

इस रस में रससिन्दूर का मिश्रण शक्तिप्रदानार्थ किया है अर्थात् यह हृदय और यकृत् को सबल बनाता है तथा साथ में रही हुई औषधियों के गुणधर्म की वृद्धि भी कराता है। गन्धक कीटाणुनाशक, विषहर और रक्त शुद्धिकर है। अभ्रक भस्म वातनाड़ी, मांस और मस्तिष्क को पोषण देती है। लोह भस्म रक्त की वृद्धि करती है और रक्त में लाली भी बढ़ाती है अर्थात् रक्त में रक्ताणु और रक्त रंग दोनों की वृद्धि करती है। ताम्रभस्म यकृत् को सबल बनाती है और आवश्यक पित्तस्राव कराकर आम का पचन कराती तथा उदरस्थ दुर्गन्ध का भी नाश करती है। बच्छनाभ रक्त आदि धातुओं में प्रवेशित आम विष को जलाकर ज्वर का शमन करता है। भिलावा और जमीकन्द आमाशय की शक्ति बढ़ाते हैं, पचनक्रिया को सुधारते हैं, उदर में संगृहीत वायु को बाहर निकालते हैं और अन्त्र की परिचालन क्रिया को सबल बनाते हैं। इनके अतिरिक्त घी, मक्खन या मट्ठे का सहयोग होने पर मल को कठोर नहीं होने देते तथा रक्तार्श में गिरने वाले रक्त का अवरोध कराते हैं।

सूचना–रस निकालने, खरल करने और गोलियां बांधने के समय हाथ पर घी लगाना चाहिये।

(५३) अर्श:कुठार रस

विधि–शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, लोहभस्म और अभ्रकभस्म ३-३ भाग, बेलगिरी, चित्रकमूल; कलिहारी, सोंठ, मिर्च, पीपल, पित्तपापड़ा और दन्तीमूल १-१ भाग, सोहागे का फूला, जवाखार, सैंधानमक ५-५ भाग सबको मिला खरल करके ३२ भाग गोमूत्र में पाचन करें। फिर थूहर का दूध ३२ भाग डाल मन्दाग्नि पर पकाकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (यो.र.)

मात्रा–१ से २ गोली २१ दिन तक सुबह कुटजावलेह, गुलकन्द अथवा जल के साथ देवें।

उपयोग–यह रस सब प्रकार की बवासीर-रक्तार्श, वातार्श आदि को छेदन करने में कुल्हाड़ी के समान है। इसके सेवन से मलशुद्धि बराबर होती रहती है, पाचनशक्ति सबल बनती है और सेवन के आरम्भ से दाह का शमन होता है।

अर्श रोग में विशेषत: अग्नि मन्द हो जाती है, उदर में वायु की उत्पत्ति होती है, सरलता से शौच शुद्धि नहीं होती या मलावरोध बना रहता है। यकृत् निर्बल हो जाने से पित्ताशय में से पित्तस्राव कम होता है तथा अरुचि, व्याकुलता और निर्बलता आदि लक्षण भी न्यूनाधिक अंश में प्राय: सभी अर्श रोगियों को होते हैं। इनके अतिरिक्त वातज अर्श में कष्ट या शूलसह दस्त होना, पित्तज अर्श में गुदपाक, दाह, तृषा और रक्तस्रावसह दस्त होना और कफज अर्श में उबाक, मस्तिष्क में भारीपन, निस्तेजमुख मण्डल, आम और कफवृद्धि, मांस के धोवन सदृश मल गिरना आदि लक्षण भी उपस्थित होते हैं। रक्तज अर्श होने पर गुदस्थान पर तीव्र पीड़ा होती है और मल शुष्क हो जाने पर गरम-गरम

रक्तस्राव होता है। इनके अतिरिक्त मिश्रित प्रकोपज अर्श में मिश्रित लक्षण भासते हैं। इन सब प्रकारों पर अर्शकुठार रस लाभ पहुँचाता है।

इस प्रयोग में पारद, गन्धक योगवाही और कीटाणुनाशक है। लोह भस्म रक्त के रक्ताणुओं को रक्त के भीतर रहे हुए लाल कण (Heamoblogbin) को बढ़ाता है तथा शक्ति प्रदान करता है। अभ्रक भस्म हृदय पौष्टिक और मस्तिष्क पौष्टिक है। त्रिकटु और चित्रकमूल यकृत् के बल को बढ़ाने वाले और अग्निप्रदीपक है। कलिहारी आमपाचक, कीटाणुनाशक और अन्त्र-बलवर्द्धक है, बेलगिरी सारक, शिथिल होने पर अन्त्र का आकुञ्चन (बलवर्द्धक) और दाहशामक है। पित्तपापड़ा आमपाचक, विषहर और कीटाणुनाशक है। दन्तीमूल, थूहर का दूध और गोमूत्र विषहर, आमपाचक, दीपन और मल शुद्धिकर है। सोहागे का फूला, जवाखार और सैंधानमक आमविषोत्पत्तिरोधक और आमपाचक है।

रक्तार्श होने पर अनुपान कुटजावलेह और तक्र देना चाहिये। मलावरोध होने पर गुलकन्द, मुनक्का, हरड़ का मुरब्बा या ताजा मट्ठा हितावह है। रोग जीर्ण होने पर यदि विशेष लक्षण प्रतीत न हों तो केवल मट्ठे या जल के साथ अर्शः कुठार रस दिया जाता है।

(५४) जातिफलादि वटी (अर्श)

विधि-जायफल, लौंग, पीपल, सैंधानमक, सोंठ, धतूरे के शुद्ध बीज, हिंगुल और सोहागे का फूला समभाग मिला जम्भीरी नींबू के रस में १२ घण्टे खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावें। (र.सा.सं.)

मात्रा-१ से २ गोली दिन में २ बार, ६ माशे तिल और १ तोला मक्खन या मट्ठे के साथ या जल के साथ देवें।

उपयोग-इस वटी के सेवन से बवासीर का खून गिरना और जलन दूर होते हैं, मलशुद्धि होने लगती है, तथा पचन-क्रिया बलवान बनती है। कुछ दिनों तक इसका सेवन पथ्यपालनसह करते रहने से मस्से मुरझा जाते हैं।

अर्श रोग प्रायः मलावरोध होने, अपथ्य और अधिक मिर्च मसालों का सेवन करने और उदर में अधिक वात प्रकोप होने पर होता है। अतः अर्श रोगी के मूल कारण को दूर करें तो इस सौम्य औषधि से रक्त स्तम्भन हो जाता है। यह वटी उदरस्थ दुर्गन्ध और उग्रता को दूर करती है। अन्त्र प्रदाह को शान्त करती है तथा पचन क्रिया को बल प्रदान करती है। यह बिल्कुल निर्भय औषधि है। इसका प्रयोग सब प्रकृति के मनुष्यों पर सब ऋतुओं में हो सकता है।

सूचना-मलावरोध हो तो उसे दूर करना चाहिये।

(५५) बोलबद्ध रस

विधि-शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, गिलोयसत्व तीनों १-१ भाग और बीजाबोल (या हीरादोखी गोंद) ३ भाग मिला, सेमल के रस या सेमल की छाल के क्वाथ में ३ दिन खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बाँधे। (नि.र.)

मात्रा-२ से ३ गोली। मक्खन मिश्री या शहद के साथ।

उपयोग-बोलबद्ध रस रक्तज अर्श, पित्तज अर्श, पित्तज विद्रधि, भगंदर, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, मूत्रकृच्छ्, प्रमेह और वातरक्त को दूर करता है। इस औषधि के सेवन से नाक, मुँह, गुदा या योनि में से गिरता हुआ रक्त सत्वर बन्द हो जाता है।

बोलबद्ध रस शीतवीर्य और रक्तस्तम्भक है। रक्तवाहिनियों और गर्भाशय को संकुचित और बलवान बनाता है। गर्भाशय, मूत्रेन्द्रिय, पचनेन्द्रिय, रस, रक्त और वातकफात्मक रोगों में शामक और कोथ प्रशमन (सड़ते हुए भाग का संरक्षण) करता है। प्रसव के पश्चात् या मासिक धर्म में अधिक रक्त जाने या अन्य कारण से उत्पन्न श्वेतप्रदर में बोलबद्ध रस का अच्छा उपयोग होता है। इससे गर्भाशय की शिथिलता दूर होती है। यदि जीर्ण क्षोभ हो तो वह भी शमन हो जाता है। इसी हेतु से गर्भाशय मुख या योनि मार्ग में से होने वाला श्लैष्मिक स्राव (श्वेत प्रदर) बन्द हो जाता है। यह रसायन केवल जल सदृश स्राव में उपयोगी होता है। प्रदर का स्राव पीले रंग का हो या दुर्गन्धयुक्त हो तो इससे लाभ नहीं होता। इस रस से गर्भाशय-संकोच में सहायता मिल जाती है। इस हेतु से प्रसव के पश्चात् भी प्रदरयुक्त गर्भाशय कोष्ठशूल में इसका उपयोग किया जाता है एवं गर्भाशय के अन्य प्रकार के विकार में यदि गर्भाशय पर शामक असर पहुँचाने की आवश्यकता हो तो बोलबद्ध प्रयुक्त किया जाता है।

प्रदर का विकार दीर्घकाल के अपचन से उत्पन्न होता है। थोड़ा अधिक भोजन करने या कुछ जड़ पदार्थ खाने पर अपचन होकर प्रदर बढ़ जाता हो, तथा मुख, जिह्वा और मसूड़ों में व्यथा या पकजाने सदृश भासना, मुखपाक, क्वचित् पतले दस्त अधिक होना और उदर में अफारा आदि लक्षण हों तो प्रदर के शमनार्थ बोलबद्ध रस अच्छा उपयोगी है।

प्रदर होने पर भी बार-बार मूत्र में जलन, मूत्र लाल या पीला होना आदि लक्षण हों तो बोलबद्ध का उत्तम उपयोग होता है। इससे मूत्र की उत्पत्ति अधिक होती है, उसका रंग सुधरता है और प्रदर का विकार भी कम हो जाता है।

वृद्धावस्था में गर्भाशय की शिथिलता या गर्भाशय मुख के विकार के हेतु से श्वेत या रक्तप्रदर होना, साथ-साथ श्वास या कास उत्तम औषध है। इसके योग से कफ छूटकर पतला हो जाता है तथा उसमें दुर्गन्ध कम हो जाती है। श्वास, कास में अभ्रक की रस विशेष उपयुक्त है। तीव्र वेग शमन होने पर फिर श्वास को जड़ से नष्ट करने के लिये अभ्रक भस्म देना हितकारक है

जीर्ण कास में दुर्गन्ध युक्त, चिपचिपा सफेद कफ होने पर बोलबद्ध रस अच्छा लाभदायक है। इस औषधि से कफ छूटता है, पतला हो... है और दुर्गन्ध कम होती है।

जीर्ण प्रदर, जीर्ण अजीर्ण रोग, यकृत् सम्यक् कार्यक्षम न होना, त्वचा पर सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिकायें होना, मुँह फूला हुआ-सा भासना, हाथ-पैरों में जलन, बार-बार मुँह आना, कण्ठ में रही हुई गाँठे बढ़ जाना, कुछ भी कार्य करने की अनिच्छा, निस्तेजता, ओज क्षीणता आदि लक्षण होने पर बोलबद्ध रस फलप्रद औषध हैं।

बोलबद्ध रस प्रमेह, विशेषत: कफज प्रमेह के विकारों में हितकर है। इस रस में रही हुई बीजाबोल का कार्य मूत्रेन्द्रिय की श्लैष्मिक कला पर होता है। इस हेतु से प्रमेह में बोलबद्ध रस लाभ पहुँचाता है, तथा यह रस स्त्रियों के गर्भाशय, मूत्रेन्द्रिय, पचनेन्द्रिय, रस, रक्त और वातकफात्मक विकारों में शामक और कोथ प्रशमनकारक गुण दर्शाता है। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना–वायु और पित्त बढ़ाने वाली वस्तुएँ नहीं खानी चाहिये आहार सुपाच्य मधुर और थोड़ा लेना चाहिए।

(५६) अग्निकुमार रस

विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला और शुद्ध बच्छनाभ १-१ भाग, शङ्ख भस्म और कौड़ी भस्म २-२ भाग और कालीमिर्च ८ भाग लेकर बड़े पक्के जम्भीरी नींबू रस में ७ दिन खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनावें। (यो.र.)

मात्रा–१ से ३ गोली, दिन में २ बार, जल के साथ दें।

उपयोग–यह रस अग्नि को प्रदीप्त करता है, तथा वातप्रकोप से उत्पन्न अजीर्ण विसूचिका और कफ रोग दूर करता है। अपचन-जनित उदरवात, गुदमार्ग में वात संचय, गुल्म जनित वात और अन्य कोष्ठस्थ वात विकार का प्रशमन करता है। इस रस में दीपन पाचन और वातघ्न गुण प्रधान है। इस हेतु से अन्त्र में उत्पन्न अन्नविदाह और सड़न को नष्ट करता है। आफरा, उदर शूल, आमाशय, पक्वाशय और ग्रहणी में वायु संगृहीत होना, फिर अपान वायु न निकलने के हेतु से अति व्यथा होना इन सबका तत्काल शमन करता है।

यह रस उष्णवीर्य होने से इसका उपयोग कफप्रधान, वातप्रधान और कफवातप्रधान अजीर्ण में उत्तम होता है। पित्तजन्य अजीर्ण में अग्निकुमार या अन्य किसी तीक्ष्ण उष्ण आदि गुणयुक्त औषधि का सेवन न करना ही अच्छा माना जायगा। पित्त प्रकोप में इसका उपयोग न होकर विपरीत परिणाम की प्राप्ति होती है, अर्थात् पित्त अधिक प्रकुपित होकर उबाक, वमन, व्याकुलता, दाह, आदि विकार सबल बनते हैं।

कफज अपचन में–"अजीर्णं तु कफादामं तत्र शोफोऽक्षिगण्डयो:" आम लक्षण अधिक होने पर पहिले उपवास कराकर आम का पाचन कराना चाहिये। पश्चात् अग्निकुमार देने से सत्वर लाभ होता है। वातप्रधान अजीर्ण में कब्जियत विशेष रहती है। उस पर यह रस दही के जल के साथ देना विशेष लाभदायक है।

यदि उदरशूल तीव्र हो तो घी को पतला कर उसके साथ अग्निकुमार देना हितकर है।

विसूचिका के दो भेद हैं–एक अजीर्णजन्य और दूसरा कीटाणुजन्य। कीटाणुजन्य विसूचिका में लहशुनादि वटिका, संजीवनी, विसूचिकाहर वटी आदि का उपयोग अधिक होता है। परन्तु अजीर्णजन्य विसूचिका के लक्षण में भयंकर उदरशूल, आफरा, मुँह में बार-बार जल भर जाना, बार-बार वमन होना, उदर में जड़ता भासना आदि प्रतीत होने पर अग्निकुमार देना चाहिये। अजीर्णजन्य विसूचिका में कफप्रकोप या पित्तप्रकोप होने पर वमन होती है। इनमें से कफ विकृति से उत्पन्न लेसदार, दुर्गन्धयुक्त वमन होने पर अग्निकुमार का अच्छा उपयोग होता है। खट्टी और गरम छर्दि होने पर पित्तप्रकोप मानकर शंखभस्म, वराटिका भस्म, शुक्ति भस्म आदि का सेवन कराना चाहिये।

प्रतिश्याय होकर उबाक या वमन होना, बार-बार लालास्राव, इनके साथ आफरा आदि लक्षण होने पर नागगुटिका की अपेक्षा अग्निकुमार अधिक उपयोगी है। बार-बार प्रतिश्याय होने का स्वभाव और साथ-साथ अपचन अथवा अपचन होकर प्रतिश्याय होना इन विकारों पर अग्निकुमार उत्तम सफल औषधि मानी गई है।

प्रतिश्याय के पश्चात् होने वाले कास रोग और प्रतिश्याय न होकर श्वासवाहिनियों में कफ संगृहीत होकर उत्पन्न होने वाली कास, साथ-साथ अफारा, उबाक, जिह्वा पर सफेद मलसंचित होना, मुँह का स्वाद नष्ट हो जाना, किसी वस्तु के स्वाद का पूरा बोध न होना, चरपरे पदार्थ पर विशेष प्रीति होना, स्निग्ध और स्वादु अन्न दृष्टिगोचर होने पर मुँह में पानी छूटना आदि लक्षण होने पर अग्निकुमार देना चाहिये, क्योंकि ऊर्ध्वगतिशील कफविकार में अग्निकुमार लाभदायक माना है।

गुदमार्ग की अशक्तता के हेतु से अतिसार (बार-बार थोड़ा मल निकलना) अपानवायु का अवरोध और जड़ता आदि होते हैं। यह विकृति गुदमार्ग का प्रदाह होकर स्तम्भन या धारणाशक्ति की न्यूनता होने पर होती है। गुदा की इस वातरूप विकृति में अग्निकुमार रस का अच्छा उपयोग होता है। कफ गुल्म और कफवातज गुल्म के कारण से उदर में होने वाले वातप्रधान लक्षण अग्निकुमार के सेवन से शान्त हो जाते हैं। इससे गुल्म तो दूर नहीं होता तथापि उत्पन्न वायु शमन होती है।

उदर में आम या कफ संग्रहीत होकर बार-बार उबाक होकर कै होती है। वमन में कुछ मीठे से, चिकने या बेस्वादु जल या झाग निकलते हैं। उदर में जड़ता प्रतीत होती है। चाहे कितनी बार वान्ति हो; फिर भी उदर की जड़ता कम नहीं होती, बल्कि बढ़ती ही जाती है। साथ-साथ अफारा आदि लक्षण होने पर अग्निकुमार रस देना चाहिये। अग्निकुमार से पित्त का यथोचित स्राव होकर उदर में संगृहीत द्रव नष्ट हो जाता है। क्वचित् कफ लीन हो जाने से वमन दिनों तक होती रहती है। ऐसा होने पर पहले अन्तः परिमार्जन (वमन आदि कर्म) करा फिर अग्निकुमार की योजना करनी चाहिये।

अग्निकुमार के योग से द्विदलधान्य, मैदा और पिट्ठी के पदार्थ, पक्का भोजन आदि का पचन सरलता से हो जाता है। इन पदार्थों से अपचन होने और बड़े-बडे जुलाब, उदर में वायु का संचय, गुदा बाहर निकलना आदि लक्षण होने पर यह उपयोगी है। (औ.गु.ध.शा.)

(५७) क्रव्याद् रस

विधि-शुद्ध गन्धक ८ तोले, शुद्ध पारा ४ तोले, ताम्र भस्म १ तोला और लौह भस्म १ तोला लें। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करके भस्में मिलावें। फिर पर्पटी प्रकरण में लिखी विधि अनुसार बेर की लकड़ी के कोयलों की निर्धूम मन्दाग्नि पर कड़ाही में कज्जली का रस कर एरण्डी के पत्तों पर डाल, पर्पटी तैयार करें। शीतल होने पर खरलकर पुनः लोहे की कड़ाही में डाल, चूल्हे पर चढ़ा कर मन्दाग्नि देवें। बार-बार थोड़ा जम्भीरी नींबू का रस डालते जायँ। ५ सेर रस का शोषण करावें। फिर पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ और अम्लबेंत के क्वाथ की ५० भावनायें देवें। पश्चात् सब चूर्ण के समान सोहागे का फूला, सोहागे से आधा कालानमक और सबके बराबर कालीमिर्च का चूर्ण मिला चने के क्षार के साथ ७ दिन तक खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा-२ से ४ रत्ती मट्ठा और सैंधानमक के साथ देवें।

उपयोग-क्रव्याद् रस अत्यन्त दीपन और पाचनशक्ति बढ़ाने वाला है। मध्यम कोष्ठ में सब पचनेन्द्रियों की शिथिलता को दूर करके उन्हें उत्तेजित करता है तथा पचनेन्द्रिय के व्यापार को प्रबल बनाता है। मांस खाने वाले और जड़ान्न खाने वाले लोगों के लिये यह रसायन अति उपयोगी है। मांसाहार या पक्के भोजन का सम्यक् पचन न होने पर उत्पन्न होने वाले अलसक (उदर में भोजन पत्थर सदृश पड़ा रहे और तीक्ष्ण शूल चले, ऐसा अजीर्ण), विलम्बिका (वात कफ दोष से भोजन पत्थर सम होकर उदर में पड़ा रहे, किन्तु तीक्ष्ण पीड़ा न रहे ऐसी अजीर्ण), विसूचिका आदि अजीर्ण विकारों को क्रव्याद् रस मट्ठे और नमक के साथ देने से शीघ्र दूर करता है।

भोजन का सम्यक् पचन न होने से अन्न-रस ठीक तैयार नहीं होता। फिर इस रस का भी योग्य रूपान्तर न होने से आमोत्पत्ति होती है। इस आम का संचय होने पर वह शनैः शनैः विकृतावस्था को प्राप्त होता है। इस हेतु से विविध साम विकारों की उत्पत्ति होती है, इनमें आमाजीर्ण, रसशेषाजीर्ण ये तीव्र प्रकार हैं। आम संचय अधिक होता है तो शूल, अतिसार, ग्रहणी, कोष्ठबद्धता आदि व्याधियों की उत्पत्ति होती है। इन सब विकारों के भीतर दुष्ट आम का पचन करा संशोषण कराना यह कार्य इस रस के योग से उत्तम प्रकार से होता है। पहिले लङ्घन करा फिर क्रव्याद् रस की योजना करनी चाहिये।

धातु परिपोषण क्रम का व्यापार इस तरह होता है कि पूर्व धातु में से परधातुयें अपने अनुकूल अंश का शोषण कर अपने स्वरूप में मिलाती रहती हैं। पर धातु की क्रिया से पूर्व धातु में न्यूनता होती है, फिर वह धातु अपने से पूर्व रही धातु में से सत्व ग्रहण करती है। इस तरह शुक्र, मज्जा, अस्थि, मेद, मांस, रक्त और रस इन धातुओं की क्रियायें सतत होती रहती हैं। इन सबका आधार योग्य आहार रस पर है। यदि इस नियम का भंग होता है तो फिर मेद आदि कोई धातुयें बढ़ती ही जाती हैं और परधातु को पोषण नहीं मिलता। यदि मेद की वृद्धि होती है तो फिर मनुष्य स्थूल (फूला हुआ) बनता ही जाता है। इस स्थौल्य को नष्ट करने के लिये पूर्व धातुओं के सत्व को परधातु के योग्य बनाने का काम पचन क्रिया बढ़ाने पर ही होता है। यह पचन क्रिया बढ़ाने का कार्य क्रव्याद् रस से उत्तम प्रकार का होता है। इस रस से धात्वन्तर्गत पचन-गुण भी बढ़ जाता है।

मध्यकोष्ठ में दीर्घकाल के अजीर्ण रोग से अन्न का कीटाँश या पुराना मल संचित होता है। इस संचय से विविध सेन्द्रिय विष निर्माण होता है। यह विष दीर्घकाल तक अन्त्र में रह जाने पर समस्त शरीर को विकृत बनाता है। विरुद्ध, दूषित और अपथ्य आहार के योग से इस गरविष की उत्पत्ति होती है। बासी, बिगड़े हुए ताम्र आदि धातु के विष से दूषित या सड़ा माँस गर (विष) अधिक बनता है। कृत्रिम विष

अर्थात् निर्विष पदार्थ में से स्वतः विकृत होकर परिवर्तित विष को गर संज्ञा दी है। यह गर विष सदृश ही है। किम्बहुना विष की अपेक्षा भी अधिक भयंकर है। गर के लक्षण दोषानुरोध से भिन्न-भिन्न होते हैं। जिस प्रकार के गरों से कफप्रधान या कफवात प्रधान लक्षण उत्पन्न होते हैं; उन सब पर क्रव्याद् रस का अच्छा उपयोग होता है।

अर्श में दोष कफप्रधान हों, मस्से मोटे सफेद रंग के हों, मस्सों में वेदना, चिपचिपे झागदार मल, शौच जाने की इच्छा बनी रहना आदि लक्षण होने पर क्रव्याद् रस को मट्ठे के साथ देना चाहिये।

जीर्ण अजीर्ण रोग में विशेषतः गुरु और स्निग्ध भोजन अधिक करने से उत्पन्न होने वाले अजीर्ण में आम संचय होकर बार-बार शूल चलता हो, तथा उदर में जड़ता, उदर में दर्द, मुंह फीका रहना और मुखमण्डल सूजा हुआ सा भासना आदि लक्षण हों, तो क्रव्याद् रस की योजना करनी चाहिये इसके योग से आम का पचन होकर शूल निवृत्त हो जाता है।

वातगुल्म और कफगुल्म पर यह रस उपयोगी है।

जीर्णज्वर के पश्चात् प्लीहावृद्धि और अग्निसाद ये दो लक्षण प्रबल हों ज्वरवेग कम होकर आलस्य, तन्द्रा, गुरुता, हृदयोत्क्लेश, वमन, अंग गल जाना, अरुचि आदि लक्षण हों तथा प्लीहा कठोर, स्थिर और बड़ी हो तो क्रव्याद् रस के योग से उत्तम लाभ पहुँच जाने के अनेक उदाहरण मिले हैं। हरड़ के हिम के साथ या कुमारी आसव के साथ क्रव्याद् रस देना चाहिये। जीर्ण प्लीहा वृद्धि में ही इस औषधि का उपयोग होता है। नयी प्लीहावृद्धि, ज्वर-हाथ-पैर में जलन, सब अंग टूटना आदि लक्षण हों तो इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

प्लीहावृद्धि के समान यकृद् वृद्धि में भी क्रव्याद् रस का उपयोग होता है। यकृद्वृद्धि जीर्ण होने पर सब लक्षण कफभूयिष्ठ होने चाहिये।

संग्रहणी के विकार में अन्न का पचन अतिकष्ट से होता हो, तथा मुँह में पानी छूटना, उबाक, अरुचि, मुँह में चिपचिपापन और मीठापन, खाँसी, बार-बार लालास्राव होकर चिपचिपे झाग सदृश थूक निकलना, नाक पक जाने सदृश भासना, जुकाम-सा होना, उदर जड़ और जल भरा-सा भासना, मीठी दुर्गन्धयुक्त डकारें आना, अंग टूटना, देह अति कृश न होने पर भी अति बलहीनता आ जाना, बलक्षय इतना कि थोड़ा चलने में भी दुःख हो, आम मिले कफयुक्त बार-बार दस्त लगना आदि लक्षण हों तो दीपन-पाचन औषध देना चाहिये। ऐसी अवस्था में क्रव्याद् रस उत्तम औषध है।

वाताष्ठीला के विकार में क्रव्याद रस का उपयोग करना चाहिये।

श्वास का विकार कभी-कभी अपचन से उत्पन्न होता है। उदर में अधिकाधिक वायु भरता जाता है, बार-बार डकारें आती हैं फिर भी अफारा कम न होना, मलावरोध, कुछ थोड़ा-सा हल्का भोजन करने पर भी उदर में अफारा आकर कोष्ठबद्धता हो जाना, इस अवस्था में वातघ्न और शौच शुद्धिकर औषध रूप से क्रव्याद् उत्तम कार्य करता है। अपचन के लक्षण न्यून होने पर श्वास-विकृति भी कम हो जाती है।

जलोदर निमित्त कारण स्निग्ध भोजन या मांसाशन होने से अपचन उससे यकृद् वृद्धि होना, इसमें हाथ पैर और मुंह पर शोथ, मुखमण्डल अत्यन्त निस्तेज हो जाना, अङ्ग अत्यन्त गल जाना, जड़ता, सारे शरीर में झनझनाहट, अति निद्रा, उदर अति जड़, उदर में अति खिंचाव, उदर में पानी का संचय, इस हेतु से खांसी चलना, श्वास और थोड़ा-सा चलने में कष्ट होना आदि लक्षण होने पर क्रव्याद् रस का उपयोग करना चाहिये। इस रस का प्रयोग आसव-अरिष्ट के साथ करना चाहिये। यदि जल अधिक संचय हो गया हो तो जलोदरारि रस ऊंटनी के दूध के साथ देना चाहिये।

सूचना–पित्तप्रधान रोगों में एवं पित्तप्रकृति वालों को क्रव्याद् रस का सेवन नहीं करना चाहिये।

(५८) अग्नितुण्डी वटी

विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, हरड़, बहेड़ा, आवंला, सज्जीखार, जवाखार, चीतामूल, सैंधानमक, जीरा, अजमोद, समुद्रनमक, बायविडङ्ग, कालानमक, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल सब समभाग और सबके बराबर शुद्ध कुचिला लें। सबको यथाविधि मिला, नींबू के रस में १२ घण्टे खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनावें। (शा.सं.)

मात्रा–१-१ गोली दिन में २ बार, जल के साथ देवें।

उपयोग–यह रस मन्दाग्नि, अफारा, शूल, आमातिसार, अजीर्ण, **पागल कुत्ते का विष**, निर्बलता, स्वप्नदोष, हृद्रोग, वातरोग और **संग्रहणी में लाभदायक है। सर्वांगशूल और परिणाम शूल का नाश करता है एवं विशेषतः आमवात को नष्ट कर अग्नि प्रदीप्त करता है।**

अग्नितुण्डी वटी शूलघ्न, पाचक और दीपक है। रसाजीर्ण आदि पुराने त्रासदायक विकार में अति लाभदायक है। कफभूयिष्ठ विकार में विशेषतः आमाशयस्थ कफवृद्धि है। फिर कफ में भारीपन, चिपचिपापन आदि दुर्गुण बढ़ने से उत्पन्न कफभूयिष्ठ लक्षणों में विशेष उपयोगी होती है एवं मध्यम कोष्ठगत वात दूषित होकर वायु के शीतल, चलत्व आदि गुणवृद्धि होने पर भी यह वटी हितकर है।

रसाजीर्ण के स्वभाव वाले रोगियों को बहुधा अग्निविद्वेष होता है; सर्वदा उदर में जड़ता और भारीपन भासते हैं, वृत्ति में प्रसन्नता नहीं रहती, क्वचित् उदर की जड़ता इतनी बढ़ जाती है कि उदर पत्थर सदृश कठोर प्रतीत होता है; नेत्रदृष्टि में न्यूनता होती है, किसी भी कार्य को करने में उत्साह नहीं होता, अन्न का परिपाक सम्यक् नहीं होता, डकार मधुर या भोजन के दूषित स्वादयुक्त आती है, भोजन कर लेने पर तुरन्त ही वमन हो जाती है, वमन में खाया हुआ अन्न और मधुर-सा जल निकलता है। आमाशय में पित्त (पाचक रस Gastric Juice) की उत्पत्ति जितनी होनी चाहिये उससे कम होती है, तथा उदर के भीतर की पिच्छिल त्वचा पर श्लेष्मा का आवरण आ जाता है। ऐसी स्थिति में अग्नितुण्डी उत्तम कार्य करती है।

यकृत् अशक्त बनने पर यकृत् में से पित्तस्राव कम होता है या उस पित्त का पाचकत्व गुण न्यून होता है; इस हेतु से अन्न का सम्यक् पचन नहीं होता; मध्यम कोष्ठ में एक प्रकार की जड़ता भासती है; किसी-किसी समय उदर में शूल उत्पन्न होता है एवं अपक्व दूषित अन्न का संचय हो जाने से अतिसार भी हो जाता है; इस अतिसार में दुर्गन्धयुक्त सफेद-सा बिखरा हुआ (अपूर्ण रचना वाला) मल बार-बार आता रहता है। ऐसे लक्षण होने पर अग्नितुण्डी देनी चाहिये।

यकृत्वृद्धि विकार में अग्नितुण्डी वटी का उपयोग होता है। परन्तु बालकों के लिये इस औषधि का उपयोग जितना हो सके उतना कम करना चाहिये। विशेषत: कफप्रधान और कफ-वातप्रधान यकृत्वृद्धि विकार में त्वचा, नेत्र, नख, औष्ठ, मुख आदि श्वेत-निस्तेज हो जाते हैं, गाल फूले हुये भासते हैं, गालों पर एक प्रकार का चिकनापन (या तेज-सा) आ जाता है, यकृत का किनारा मोटा हो जाता है, उस भाग में सर्वत्र जड़ता आ जाती है; आमाशय में जड़ता, पिच्छिलस्राव, उदर में भारीपन भासना, उदर में मन्द-मन्द शूल होना, पाचक अग्नि अति मन्द होना, जल मिले हुये बाजरी के आटे सदृश या जल मिले तिल की खली सदृश सफेद दूषित रचना वाला मल हो जाना आदि लक्षण होते हैं। कोष्ठ में शूल तीव्र नहीं होता, फिर भी बैचेनी अधिक रहती है। इस प्रकार में विशेषता यह है कि सब लक्षणों के साथ एक प्रकार की स्तब्धता आ जाती है। सारे शरीर में जड़ता भासती है। इसी तरह रोगी की मानसिक स्थिति भी जड़-सी होती है। एक प्रकार का बुद्धिमांद्य रहता है, विचार शक्ति न्यून होती है। ऐसे प्रकार में अग्नितुण्डी के उत्तम उपयोग होने के उदाहरण मिलें हैं। इसके साथ कुमार्यासव, वज्रक्षार या अन्य मृदुविरेचन दिया जाय तो बहुत अच्छा उपयोग होता है।

मध्यम कोष्ठ और बृहदन्त्र में पुर:सरण क्रिया मन्द होने पर अन्न जहाँ का तहां रुक जाता है, फिर उदर में जड़ता आ जाती है। उस स्थान में वायु के प्रेरकत्व और पित्त के तीक्ष्ण आदि धर्म से जो भिन्न-भिन्न रस निर्माण होते हैं, उसमें मन्दता आ जाने से अन्न का सम्यक् परिपाक नहीं होता। कुछ न कुछ अंश में आहार दूषित होने लगता है। परिणाम में कोष्ठ में कदाच अधिक तीव्र शूल न हो तो भी मानसिक प्रसन्नता को नष्ट करने वाला एक प्रकार का शूल निकलता रहता है, आहार आगे गति नहीं करता, जहां का तहाँ स्थिर-सा रह जाता है, फिर अफारा आकर उदर खिंचने लगता है। डकार या अधोवायु की प्रवृत्ति सम्यक् नहीं होती। मुंह में बार-बार जल आना, उबाक बनी रहना आदि लक्षण होने पर अग्नितुण्डी का उत्तम उपयोग होता है।

बद्धकोष्ठ का विकार जीर्ण होने पर लघु अन्त्र, शेषान्त्रक (Ilium) और उण्डुक (अन्त्रपुच्छ Appendix) के समीप के प्रदेश में अशक्तता आ जाती है। इस हेतु में अर्द्धपक्व अन्न अन्त्र में आवश्यकता की अपेक्षा अधिक समय तक रह जाता है; एवं पुर:सरण क्रिया सम्यक् नहीं होती। परिणाम में अन्न विकृत होने लगता है। फिर वहां पर शूल निकलता है, जड़ता भासती है, और वह स्थान फूले हुए सदृश बन जाता है। इस विकार में अग्नितुण्डी का उपयोग किया जाता है।

उण्डुक (अन्त्रपुच्छ) प्रदाह (Appendicitis) के विविध निमित्त कारण होने पर भी समवायी (उपादान) कारण दोष प्रकोप ही है। दोषों के विकार भेद के अनुसार लक्षणों में अन्तर हो जाता है। **कफभूयिष्ठ या कफवात भूयिष्ठ प्रदाह में लक्षण तीव्र नहीं होते। ज्वर और शूल मर्यादित होते हैं।** अन्त्रपुच्छ अर्थात् उदर में दक्षिण वंक्षणोत्तरिक प्रदेश (Right Iliac Region) में पत्थर बाँधने सदृश जड़ता होती है, और यह भाग ऊंचा उठ जाता है। **बार-बार उबाक आकर मधुर लेसदार वमन होती है। कितने ही रोगियों को इस स्थान में होने वाला शूल अति तीव्र होता है। उसे सहन करना अति कठिन हो जाता है; परन्तु इसके साथ ज्वर, दाह आदि लक्षण अति मर्यादित होते हैं। इस प्रकार की व्याधि में अग्नितुण्डी का उपयोग अप्रतिम होने के उदाहरण मिले हैं। व्याधि जीर्ण हो जाने पर इसका उपयोग उतना नहीं होता। जीर्ण व्याधि में आरोग्यवर्द्धिनी अधिक हितकारी है।**

कफज उदर रोग में हाथ, पैर, मुख, नेत्र, त्वचा, नख ये सब निस्तेज हो जाते हैं। उदर जड़, ऊपर अधिक उठा हुआ और स्तब्ध भासता है। उदर्य्याकला में अधिक जल संचय होने से पहिले सारे शरीर में शोथ इनमें भी हाथ-पैर पर अधिक और हृदय में क्षीणता आ जाती है; सब यन्त्रों का व्यापार मन्द हो जाने से समस्त शरीर जड़-सा बन जाता है। मूत्रोत्सर्ग पहिले (स्वस्थ) के समान न होने पर भी अच्छा होता है। मूत्र का वर्ण श्वेत या किंचित् पीत-श्वेत होता है। ऐसी स्थिति में अग्नितुण्डी का प्रयोग किया जाता है।

पक्षाघात की प्रारम्भिक तीव्र अवस्था के पश्चात् व्यवहार में लाने योग्य औषधियों में अग्नितुण्डी का समावेश कर सकते हैं। हाथ-पैर में पक्षाघात हो जाने पर वातवाहिनियों का ह्रास हो जाता है, जिससे किसी पदार्थ को उठा लेने की शक्ति नष्ट हो जाती है। झनझनाहट, जड़ता और भारीपन आदि लक्षण भासते हैं। इस स्थिति में अग्नितुण्डी का उपयोग करना चाहिये।

यदि मन, मस्तिष्क (सहस्रार Brain) वातवाहिनी, केन्द्रस्थान आदि में विकृति हुई हो, मन विचार करने में असमर्थ हो गया हो, निकम्मे विचार आते रहते हों, तो स्मृतिसागर अथवा सुवर्णप्रधान औषधि-सुवर्णभूपति या मल्लचन्द्रोदय देनी चाहिये तथा वातवाहिनियां और मांस तन्तुओं में क्षीणता अधिक हो गई हो, अर्थात् वायु की क्षीणता के हेतु से या वातकफ का संयोग हो जाने से वायु के प्रेरकत्व आदि धर्म न्यून होकर वातवाहिनियाँ और स्नायुओं पर अधिकार कम हो गया हो लूलापन आ गया हो तो अग्नितुण्डी वटी देनी चाहिये।

(औ.गु.ध.शा. के आधार से)

कभी अन्त्रपुच्छप्रदाह सामान्य होता है और गोल कृमि उस स्थान के समीप विष फैलाते हैं, तब नाभि के दाहिनी ओर अन्त्रपुच्छ स्थान ऊँचा उठा हुआ भासता है, शौच शुद्धि नहीं होती, विरेचन लेने पर योग्य शुद्धि नहीं होती और उदरशूल में वृद्धि होती है, बार-बार डकार आती रहती हैं, उदर में वेदना रहती है। ऐसे रोगी को अग्नितुण्डी वटी आध-आध रत्ती दिन में ६ बार निवाये जल से देवें और शोथ स्थान पर हल्दी, पुनर्नवा, गूगल और बारहसिंगे के सिंग को घिस निवायाकर दिन में ३ बार लेप करते रहें। इस तरह उपचार करने पर कृमि गिर जाते हैं और थोड़े ही दिनों में अन्त्रप्रदाह दूर होता है।

इनके अतिरिक्त बालकों के कृमि रोग और **पागल कुत्ते के विष की जीर्णावस्था में इस वटी का सेवन कराने से दोष जल जाता है और प्रकृति स्वस्थ हो जाती है।**

सूचना-इस वटी में कुचिला शुद्ध मिलाया जाता है। **फिर भी इस में कुचिला आधे परिमाण में होने से १५ रोज से अधिक एक साथ न दें। फिर १ सप्ताह बाद पुनः दें। मात्रा ज्यादा न दें एवं बार-बार थोड़े दिन छोड़ सेवन कराना विशेष हितकर माना जायगा।**

(५९) कृमिमुद्गर रस

विधि-शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, अजमोद ३ तोले, बायविडंग ४ तोले, शुद्ध कुचिला ५ तोले और पलास के बीज ६ तोले लेवें। सबको यथाविधि मिला शहद के साथ खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (यो.र.)

मात्रा-१ से २ रत्ती। नागरमोथा के क्वाथ के साथ, दिन में २-३ बार देवें। इस तरह ३ दिन सेवन करा चौथे रोज जुलाब देना चाहिये।

उपयोग-कृमिमुद्गर रस अति तीव्र होने से कफज कृमि और पुरीषज कृमि के लिये विशेष उपयोगी है। कृमि के हेतु से अरुचि, अपचन, वमन, ज्वर, मूर्च्छा, आफरा, बार-बार हिक्का आना, छींके आना, पेट में दर्द होना आदि लक्षण होते हो तो कृमिमुद्गर का उपयोग करना चाहिये। कफवृद्धि से उत्पन्न कृमि, विशेषतः आमाशय में उत्पन्न होते हैं और आमाशय में ही रहते है। उनको दूर करने के लिए यह रस अति लाभदायक है। इसके सेवन से अंतडी में रहे हुए कृमि बाहर निकल आते हैं और अंतडी निर्दोष तथा बलवान बन जाती है।

इस रस में कुचिला होने से कोष्ठशैथिल्य और इससे उत्पन्न कृमि को बहार फेंक देने की अशक्ति दोनों को दूर करता है। विशेषतः पक्वाशय और बृहदन्त्र को उत्तेजना मिलने से अशक्ति दूर होती है। अनेक समय कृमिघ्न औषध का इष्ट परिणाम नहीं होता, इसका कारण कोष्ठ में अवयवों की अक्षमता है। कोई भी औषध अपना कार्य ठीक व्यवस्थित करने लगे, तब जीवनीय शक्ति की सहायता की अति आवश्यकता है। यह सहायता अन्तर अवयवों से न मिलने से उचित कार्य नहीं होता या ऐसे ही कहो कि च्युत हुए कृमि फिर वहाँ ही रह जाते हैं। इस बात को लक्ष्य में रखकर आयुर्वेद ने द्रव्यसंयोग योजना अति मार्मिक रूप से की है।

जब कृमियोग से वातक्षीणता के लक्षण उत्पन्न हों, तब कृमिमुद्गर रस का उपयोग किया जाता है। अजमोद और बायविंडग के मिश्रण से पलास बीज का त्रास कोष्ठ में नहीं होता, बल्कि अपना प्रभाव योग्यरूप से दर्शा सकता है।

कफज कृमि विशेषतः आमाशय में उत्पन्न होते हैं। ये कृमि बढ़ने पर आमाशय के सब भागों में फिरते रहते हैं। वे कृमि मोटे होते हैं इनमें कोई गण्डूपद सदृश, कोई धान्य के अंकुर सदृश, कोई अति सूक्ष्म और कोई अति लम्बे होते हैं। ये कृमि सफेद, लाल, काले, नीले या भिन्न-भिन्न रंग के होते हैं। इन कृमियों के हेतु से उबाक, अरुचि अन्न का पचन योग्य न होना, मुँह में पानी आना आदि लक्षण प्रमुख रूप से प्रतीत होते हैं। जब कृमि अति बढ़ जाते हैं या दोषवृद्धि अति हो जाती है, तब सतत् वमन, ज्वर, मूर्च्छा, अफारा, बार-बार हिक्का आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। वे कृमि देह में दीर्घकाल तक रह जाने पर रस आदि धातुओं की उत्पत्ति सम्यक् नहीं होती। फिर मनुष्य कृश हो जाता है। बार-बार जुकाम, छींके आना, खाँसी, उदर पीड़ा आदि विकार होते रहते हैं। इस तरह जीवन अति कष्टमय बन जाता है। इन सब पर कृमिमुद्गर रस का उपयोग किया जाता है। (औ.गु.ध.शा.)

(६०) कृमिकुठार रस

विधि–कपूर ८ भाग, इन्द्रजव, त्रायमाण, अजमोद, बायबिडंग, शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध बच्छनाभ और नागकेशर ये ७ औषधियाँ १-१ भा लेवें। सबको मिला भाँगरे के रस में ६ घण्टे खरल करके सुखावें। पश्चात् सब चूर्ण के बराबर पलाश बीज का चूर्ण मिला, मूसाकर्णी और ब्राह्म (मण्डूकपर्णी) के रस की १-१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (नि.र.)

मात्रा–१ से ३ गोली। दिन में २ बार, सत्यानाशी की जड़ के क्वाथ या शहद के साथ दें। शहद के साथ देना हो तो तीन रोज बा जुलाब देने से कृमि गिर जाते हैं।

उपयोग–गोल और लम्बे कृमियों को छोड़कर सब प्रकार के उदरकृमि, हृदय कृमि, कफज कृमि, पुरीषज कृमि इत्यादि सब जाति के कृमि, कृमि कुठार रस से दूर होते हैं। एवं कृमि के हेतु से उत्पन्न, उदरशूल, शीर्षशूल, पाण्डु और वातरोग का शमन हो जाता है। यदि कृमि के हेतु से छोटे बालकों को खांसी और धनुर्वात हुए हों तो ये भी इस रस से निवृत्त होते हैं।

कृमि की २० जातियाँ आयुर्वेद ने कही हैं। इनके अतिरिक्त वर्तमान में अनेक प्रकार के कृमियों की शोध हुई है। कितने ही कृमि दृश्य हैं और कितने ही अदृश्य अर्थात् अति सूक्ष्म होने से केवल नेत्र के योग से प्रतीत नहीं होते। इन कृमियों से विविध व्याधियों की उत्पत्ति होती है। इन सब व्याधियों में कृमि निमित्त कारण हैं। बाहर से देह में आये हुए कृमियों से दोष प्रकोप और दोष प्रकोप से रोग, यह परम्परा कितने ही स्थानों में प्रतीत होती है। इससे पृथक् कितने ही स्थानों में पहले मलसंचय अधिक होकर कृमि की उत्पत्ति होती है। कफज कृमि और पुरीषज कृमि इसी तरह उत्पन्न होते हैं। कितने ही प्रकार के कृमियों से अतिसार, कोष्ठशूल, आक्षेप आदि होते हैं। यदि कृमि सूक्ष्म, गोल, धान्याँकुर सदृश हों तो उदरशूल, अतिसार और वातविकार की प्राप्ति होती है। ऐसे समय पर यह कृमिकुठार रस उत्कृष्ट औषध है।

अणुवीक्षण यन्त्र से दीखने वाले सूक्ष्म कीटाणुओं से उत्पन्न पाण्डु और अतिसार, साथ में नेत्र, भ्रू भाग, कर्ण के पास तथा हाथ-पैर, नाभि और मूत्रेन्द्रिय आदि पर शोथ, मुख मण्डल निस्तेज सफेद हो जाना तथा आम और रक्तमिश्रित मल आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, इन पर कृमिकुठार का उत्तम प्रयोग होता है।

पक्वाशय और बृहदन्त्र में पुरीषज कृमि उत्पन्न होने से ज्वर, उबाक, नाक और सर्वांग में खुजली, स्थान-स्थान पर शीतपित्त के समान रक्त के धब्बे हो जाना आदि लक्षण होते हैं। इस व्याधि पर कृमिकुठार रस का उपयोग करना चाहिये।

कृमिज हृद्रोग वस्तुतः हृदयविकार नहीं है, परन्तु हृत्संनिध प्रदेश (आमाशय) का है। आमाशय में कफ संचय होने पर या जीर्ण व्रण दीर्घकाल तक रह जाने पर उस में सूक्ष्म-सूक्ष्म कृमि उत्पन्न होते हैं जिससे उदर में अति वेदना, अम्लपित्त के सदृश खट्टी वमन, बार-बार वमन, अन्न का पचन न होना, दिन पर दिन क्षीणता बढ़ती जाना आदि लक्षण होने पर आरम्भ में कृमिनाशार्थ कृमिकुठार का उपयोग होता है। फिर कामदुधा, सूतशेखर आदि प्रयोजित होते हैं। यथार्थ में ये कृमि सत्वर नष्ट नहीं होते। इस हेतु से बार-बार इस रस का उपयोग करते रहना चाहिये।

मध्यम कोष्ठ में भिन्न-भिन्न प्रकार के कृमियों से कभी-कभी क्षय के समान लक्षण भासते हैं। सम्यक् निरीक्षण और उदर परीक्षा करने पर निदान निर्णय होता है। कृमियों का निर्णय होने पर कृमिकुठार देना चाहिये। फिर विरेचन देवें। इस तरह का प्रयोग करने से अनेक रोगियों को जीवन-दान मिला है।

छोटे बालकों को आक्षेप, बड़ी आयु वाले को आक्षेप, शीर्षशूल, कोष्ठशूल, विशेषतः अन्त्रपुच्छ के पास, शूल, बद्धकोष्ठ, पाण्डुता आदि रोगों में कृमि कारण हो सकते हैं। कृमि का निर्णय होने पर कृमिकुठार का उपयोग होता है।

कृमिकुठार में कपूर और पलाश बीज होने से कफस्रावी गुण भी दर्शाता है। इस हेतु से छोटे बालकों के कास रोग में उपयोगी है। यह औषध किंचित् हृद्य भी है।

सूचना–कृमिकुठार रस ज्यादा परिमाण में देने से स्वेद, आलस्य, जंभाई, हाथ पैरों में शून्यता आदि लक्षण होते हैं। अतः मात्रा कम ही देवें।

(६१) ताप्यादि लोह

विधि–हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, बायबिड़ग प्रत्येक २॥-२॥ तोले, नागरमोथा १॥ तोले, पीपलामूल, देवदारू, दारुहल्दी, दालचीनी और चव्य १-१ तोला, *शुद्ध शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक भस्म, रौप्य भस्म और लोह भस्म प्रत्येक १०-१० तोले, मण्डूर भस्म २० तोले और मिश्री ३२ तोले लें। फिर सबको यथाविधि कूट खरल करके मिला लेवें। (औ.गु.ध.शा.)

* मूल ग्रन्थ में शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक भस्म, रौप्यभस्म और लोहभस्म ये चारों भूल से १-१ तोला लिखी गई है। परन्तु गुण विवेचन में मूलग्रन्थकार ने इस औषधि

मात्रा–१ से ८ रत्ती तक। दिन में २ समय, मूली के रस अथवा गोमूत्र के साथ।

वक्तव्य–मूल मराठी ग्रन्थकार ने मात्रा १ से २ रत्ती लिखी है। किन्तु अनेक रोगियों को इतनी कम मात्रा से लाभ नहीं पहुँचता। उनको २ माशा या इससे भी अधिक मात्रा देनी पड़ती है।

उपयोग–यह रसायन शीत ज्वर के बाद होने वाले पाण्डु, स्त्रियों के पाण्डु रोग, हृदय की निर्बलता, थोड़ी-थोड़ी सूजन, भोजन के बाद अफारा, रजोदर्शन की अनियमितता, छोटे बालकों को मिट्टी खाने से होने वाले पाण्डु, कृमिजन्य पाण्डु, अरुचि, वमन, यकृत के ऊपर में होने वाले माँसार्बुद आदि रोगों का नाश करता है। इस रसायन के योग से रक्तकणों की वृद्धि होकर अभिसरण क्रिया सुधरती है और हृदय आदि इन्द्रियां बलवान् बनकर अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं।

प्राचीन शास्त्रकारों ने ताप्यादि लोह का मुख्य उपयोग पाण्डु रोग पर लिखा है। इसकी रचना पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि रक्त की अशक्तता या रक्ताभिसरण क्रिया की मन्दता के कारण से उत्पन्न होने वाले रोगों में इसका उपयोग हो सकता है। आयुर्वेद में जिसको पाण्डुरोग संज्ञा दी है, उस रोग की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न कारण होते हैं। किसी भी प्रकार के रोग, प्रखर आघात से रक्त में रहे हुए रक्ताणुओं का नाश होकर रक्त में एक प्रकार का फीकापन आ जाता है। जिससे त्वचा निस्तेज हो जाती है। मुँह और शरीर पर शोथ आ जाता है। इन लक्षणों से युक्त अवस्था को पाण्डुरोग कहा है। यह अवस्था किसी-किसी समय अन्य तीव्ररोग के उपद्रव रूप भी होती है। इस प्रकार के पाण्डु में इस औषध के योग से रक्तकणों की वृद्धि और दृढ़ता होती है। अभिसरण क्रिया सुधरती है तथा हृदय आदि अभिसरण करने वाली इन्द्रियाँ सशक्त होकर रोग का नाशकर देती है।

अनेक दिनों तक शीतज्वर आ जाने के हेतु से पाण्डुता उत्पन्न हो जाती है, उस पर ताप्यादि लोह का उपयोग होता है। ऐसी अवस्था में लोहभस्म युक्त औषधि देने का शास्त्रकारों ने विधान किया है। आयुर्वेद में केवल लोह भस्म की अपेक्षा मण्डूर वटक, नवायस चूर्ण, त्रिफला लोह आदि लोह मिश्रित औषध देने का रिवाज है और वह उत्तम है। यह ताप्यादि लोह इन औषधियों में से ही एक है।

तरुण स्त्रियों को होने वाले पाण्डुरोग (हलीमक) में इस ताप्यादि लोह का उपयोग होता है। इस पाण्डुरोग में त्वचा का रङ्ग एक प्रकार का हरा-पीला हो जाता है, स्त्री केवल अशक्त, किसी भी बात की इच्छा न होना, किसी काम करने में उत्साह का अभाव, बैठी है तो बैठी ही रहने की इच्छा, हृदय में घबराहट और धड़कन, हृत्स्पन्दन की वृद्धि, हृदय की निर्बलता, हृदय के एक खण्ड में से दूसरे खण्ड में रक्त जाने की क्रिया में विकृति हो जाना, मुंह, हाथ, पैर, नेत्र होंठ और गाल पर थोड़ी सी सूजन, अपचन, थोड़ा-सा खाने पर भी पेट फूल जाना, दूषित डकार आना, यथासमय रजोदर्शन न होना इत्यादि लक्षण होने पर ताप्यादि लोह का उपयोग करना चाहिये।

छोटे बच्चों और बड़ों में से किसी-किसी को मिट्टी खाने की आदत हो जाती है। इसमें पाण्डुरोग हो जाता है। मृद्भक्षणजन्य पाण्डु रोग में पहले मृद् विरेचन रस देना चाहिए। पश्चात् ताप्यादि लोह या चरकोक्त योगराज रस का सेवन कराने से पाण्डुरोग दूर होता है।

कृमिजन्य पाण्डुरोग में हाथ पैर पर शोथ, हृदय में घबराहट, नाड़ी की तेज गति, बेचैनी, मल मलीन-सा आम, झाग और रसयुक्त, शौच कम समय होवे, परन्तु प्रत्येक समय मल ज्यादा निकले, अविपाक, अरुचि, कभी-कभी वमन, उदर में थोड़ा-थोड़ा दर्द, सफेद निस्तेज, रक्तहीन त्वचा, मानसिक अस्थिरता, उत्साह न रहना, शक्तिपात और कृशता आदि लक्षण होने पर उदर में विशेषत: ग्रहणी (Duodenum) में सूक्ष्म सूक्ष्म कृमि है, ऐसा मानना चाहिये। इन कृमियों को नष्ट करने के लिये पहले कृमिघ्न औषधि देनी चाहिये, पश्चात् साथ-साथ ताप्यादि लोह भी देना चाहिये।

ताप्यादि लोह में यकृत्शक्तिवर्द्धक, पाचक और अग्निप्रदीपक चित्रक आदि औषधियाँ होने से इसका उपयोग कामला रोग में भली भाँति होता है। यकृत के ऊपर उत्पन्न होने वाले मांसार्बुद (कर्कस्फोट) के कारण से कामला रोग हुआ तो ताप्यादि लोह थोड़ा-बहुत काम करता है। परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के कामला रोग में ताप्यादि लोह का बहुत अच्छा उपयोग होता है।

सर्वांग में पीलापन, नख, मूत्र, नेत्र और त्वचा ये सब अति पीले उतने परिमाण में कि पहने हुए कपड़े और बैठने की गद्दी की चादर भी पीली हो जाना, मूत्र का रंग अत्यन्त पीला और गंदला, कभी-कभी गंदला होकर अति लाल भी होना, शौच मैला, सफेद रंग का चिकनापन रहित, झागयुक्त पतला होना, अन्न पर अरुचि, मंदाग्नि और बलविहीनत्व आदि लक्षण होने पर ताप्यादि लोह को आम के मुरब्बे के साथ या मिश्री मिले मूली के रस के साथ देने से उत्तम कार्य होता है। इसके साथ अमलतास की फली का गर्भ या अन्य सौम्य विरेचन देना चाहिये।

मूल ग्रन्थोक्त गुण पाठ में 'विशेषाद्हन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च' ऐसे विशेष गुणधर्म दिये हैं। अपस्मार बहुत दिन का हो जाने से उस पर कितना उपयोग होता है, यह प्रश्न विचारणीय है। परन्तु नया विकार हो तो इसका उपयोग बहुत अच्छा होता है। अपस्मार का अर्थ होता है स्मृति का अपाय-तात्कालिक स्मृति नष्ट होना। यकायक झटका आकर बेहोशी, मुँह में झाग आ जाना, मुंह टेढ़ा हो जाना, वीभत्स चेष्टा, हाथ-पैर और सारा शरीर टेढ़ा-मेढ़ा हो जाना, बार-बार नाड़ियाँ खिंचना और प्राय: पूर्वसूचक चिह्न कुछ भी न होते हुए अकस्मात् किसी

भी स्थान में और किसी भी स्थिति में झटका आकर पत्थर समान बेहोश हो जाना आदि लक्षण होने पर ताप्यादि लोह उपयोगी है। अप
भस्म मनोव्याघात जन्य अपस्मार में और ताप्यादि लोह शारीरिक दोष विकृतिजन्य अपस्मार में उपयोगी है।

छोटे बच्चों के बालग्रह (धनुर्वात) में यह औषधि अच्छा कार्य करती है। केवल इसके साथ अरण्डी का तैल अथवा अन्य मृदु विरे
देना चाहिये। बालग्रह का पहला तीव्र झटका आ जाने के पश्चात् इसका विशेष उपयोग होने के अनेक उदाहरण है। जीर्ण बालग्रह, अप
से उत्पन्न बालग्रह उन्माद रोग से पीड़ित माता के बालक को होने वाला बालग्रह, डरपोक, क्रोधी और निर्बल मनवाली माता की सन्तान
वाले बालग्रह इन सब पर ताप्यादि लोह सफल औषधि है। जीर्ण बालग्रह रोग में अनुपान ब्राह्मी का रस देना चाहिये।

इस औषधि में शिलाजीत का परिमाण अधिक होने से इसका उपयोग मूत्र विकार पर होता है। मूत्र में रहे हुए अनेक प्रकार के क्ष
शरीर में संचित हो जाने से उत्पन्न विविध विकारों में विशेषतः वातविकार में उनमें भी जीर्ण वातविकार में औषधि का अच्छा उपयोग हो
है।

शिलाजीत मूत्रल, आमपाचक, रक्तदोषहर और शरीर में संचित मूत्र के क्षारों का वियोजन करके मूत्रद्वारा स्राव कराने वाली सेन्द्रिय औष
है। शिलाजीत सेन्द्रिय द्रव्य होने से देह में जाने के साथ तुरन्त शोषण होकर अपना कार्य करने लगता है। शिलाजीत के इस गुण के हेतु
यह कल्प (ताप्यादि लोह) जीर्ण आमवात और वातरक्त एवं इनसे उत्पन्न होनेवाले स्नायुसंकोच अथवा वातवाहिनियों की शुष्कता इन विका
पर बहुत अच्छा काम देता है।

इसी कारण से प्रमेह आदि रोगों में उत्पन्न कोथ (घटकों का गलना Gangrene)की बिल्कुल प्रारम्भावस्था में ताप्यादि लोह का सेव
करने से आगे होने वाले सब अरिष्ट दूर हो जाते हैं, ऐसा अनुभव है। त्वचा में या त्वचा के भीतर के भाग में भयंकर जलन, कालापन, साथ
साथ सूक्ष्म ज्वर, बेचैनी, घबराहट, मानसिक अस्वथता, प्यास आदि लक्षण अति बढ़ने पर त्वचा बिल्कुल काली-कोलतार (डामर) के समा
रंग वाली हो जाती है। ऐसे समय पर उसके घटकों का गलना यह भी साथ-साथ बढ़ता जाता है। इस तरह कोथ रोग अत्यन्त बढ़ गया
तो इस औषधि का उपयोग ज्यादा नहीं हो सकेगा। परन्तु प्रारम्भ काल में यदि इसकी योजना की हो तो रोग की वृद्धि रुक जाती है औ
शनैःशनैः रोग कम हो जाता है।

शरीर पर भयंकर खाज, छोटी-छोटी फुन्सियाँ होना, त्वचा पर काले धब्बे हो जाना, फुन्सियों का विष फैलकर दाद के समान खाज आ
रहना और यह विकार कभी ज्यादा कभी कम हो जाना, इनमें त्वचा का विकार होना (क्वचित झटका भी नहीं आना) ऐसी स्थिति में ताप्या
लोह अच्छा उपयोगी है। किंबहुना, ऐसे त्वचा रोगों में गन्धक रसायन की अपेक्षा ताप्यादि लोह ही उपयुक्त औषधि है।

आयुर्वेद में अम्लपित्त रोग में अनेक भिन्न-भिन्न कारणों का अर्थात् शरीरा वयव विकृति का समावेश होता है। साधारण रूप से पित्त ज्या
उत्पन्न होने से होने वाला, पित्त ज्यादा तीव्र होने से होने वाला, पित्तोत्पादक पिण्ड का क्षोभ होने से होने वाला, अन्तर व्रण होकर उदर
आकृति बढ़ जाने से होने वाला इस रीति से अम्लपित्त के अनेक प्रकार होते हैं। इनमें से उदर की आकृति बढ़ जाने से होने वाले अम्लपि
में सुबह वमन अवश्य करानी पड़ती है। यह विशेष लक्षण है। तथा कण्ठदाह, उदरदाह, क्वचित् उदरपीड़ा, वमन हो जाने पर अच्छा लग
आदि लक्षण हो तो ताप्यादि लोह मक्खन मिश्री के साथ देना चाहिऐ और अन्तः परिमार्जन (आमाशय शोधन) भी करना चाहिये।

बद्धकोष्ठ (कब्जियत) रोग अन्त्र की निर्बलता के कारण से होता है। अन्न का पचन अच्छी रीति से न होना, मलोत्सर्ग बराबर न होना,
खाये हुए भोजन का विदाह, सेन्द्रिय विष कोष्ठ में संचित होकर आम संचय होना इन कारणों में बद्धकोष्ठ उत्पन्न होता है। इनमें से वर्तमा
में अन्त्र निर्बलता और इस अन्त्र निर्बलता के कारण उसकी संचालन क्रिया कम होकर उत्पन्न मलावरोध अधिकांश में प्रतीत होता है। अन्त्रशक्ति
कम हो जाने से किसी भी प्रकार की विरेचन औषधि का इष्ट परिणाम नहीं होता, बल्कि अनिष्ट परिणाम होता है। कारण, विरेचन औषधि
से अन्त्रशक्ति में न्यूनता और सेन्द्रिय विष की वृद्धि होती है। फिर आम संचय होकर अन्त्र में निर्बलता आ जाती है। इसी कारण से बद्धकोष्ठ
निर्माण होता है। ऐसे रोगी को विरेचन देने से बद्धकोष्ठ बढ़ने का ही अनुभव में आता है। इस कारण से ऐसे रोगी को विरेचन नहीं देना चाहिये।
इसके विपरीत अन्त्र को बलवान बनाकर मलोत्सर्ग कराने वाली औषधि देनी, यही श्रेयस्कर है। इस अवस्था में ताप्यादि लोह के सेवन से शनैःशनै
आतें बलवान बनकर बद्धकोष्ठ की आदत कम हो जाती है। यदि यह ताप्यादि लोह देने पर किसी समय मलावरोध हो जाय और अति आवश्यकता
हो तो बस्ति देनी चाहिये, परन्तु विरेचन नहीं देना चाहिये।

किसी भी अवयव में रक्त का दबाव बढ़ने पर उसका प्रसादन करना, यह ताप्यादि लोह में बड़ा भारी गुण है। यह गुण शिलाजतु, रौप्य
और सुवर्णमाक्षिक के कारण से दृष्टिगोचर होता है। इस हेतु से रक्तज मूर्च्छा, पक्षाघात और आँत्रिक सन्निपात में होने वाले दुष्ट रक्तजन्य वातप्रकोप
के शमनार्थ ताप्यादि लोह अति उपयोगी है।

पक्षाघात के बिल्कुल प्रारम्भिक एक दो दिन में रोगी बेहोश, नेत्र लाल, ज्वर, शक्तिहीनता, हाथ-पैरों की शक्ति बिल्कुल नष्ट हो जाना, ...ता, जिह्वा की बोलने की शक्ति कम हो जाना, अङ्ग का एक ओर का अर्द्ध भाग अकस्मात् शक्तिहीन होकर काष्टवत् हो जाना आदि लक्षणों ...युक्त पक्षाघात में प्रारम्भ में एक-दो दिन बीत जाने के पश्चात् रोग कुछ स्थिर हो जाने पर ताप्यादि लोह का उपयोग करना हितकर है। ...घात की इस अवस्था में ताप्यादि लोह का उपयोग एकांगवीर की अपेक्षा भी अच्छा होता है। परन्तु पक्षाघात की जीर्णावस्था में इस औषधि ...चाहिये वैसा उपयोग नहीं होता। जीर्ण रोग में भी इस औषधि का रक्तप्रसादन कार्य अनुभव में तो आता है, फिर भी कितने ही जीर्ण ...गों में दोष रक्त की अपेक्षा अन्य धातुओं में (गहरे) चले गये होते हैं। इसलिए इस औषधि से इष्ट कार्य नहीं होता।

ताप्यादि लोह का उपयोग रक्तप्रसादन गुण के कारण दुष्ट रक्तजन्य ज्वर, सूतिका ज्वर और पूयजन्य ज्वर में आक्षेपक, झटके, तन्द्रा और ...र्च्छा इन विकारों पर अच्छी रीति से होता है।

इस औषधि में रक्तप्रसादन और बद्धकोष्ठ नाशक गुण होने में अर्शकी प्रारम्भिक अवस्था में उत्पन्न मस्सों पर इसका उपयोग उत्तम होता ...। वे ही मस्से बड़े हो जाने पर या अधिक शोथ आ जाने पर बाह्य उपचार द्वारा निकाल देने के सिवाय अन्य उपाय नहीं है।

धनुर्वात विकार में आयुर्वेद में धनुष्कम्प, अन्तरायाम, बहिरायाम ऐसे भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। अभिघात (चोट), गर्भपात, सूतिकारोग, कटा ...आ घाव कुपित हो जाना इन कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है। यह आयुर्वेद को मान्य है। यह रोग लगे हुए घावद्वारा एक प्रकार का जन्तुजन्य विष शरीर में फैल जाने से उत्पन्न होता है। इस रोग में चिकित्सा करने में दो बातों की ओर लक्ष्य देना पड़ता है। पहली बात यह है कि, जिस स्थान के भीतर इस प्रकार के विषाक्त कीटाणु गये हों, उस स्थान को स्वच्छ करना, दूसरी बात सारे शरीर के स्नायुओं में फैले हुए विष को नष्ट करना। घाव को स्वच्छ कर के शहद मिश्रित रुई का फोहा रखने से प्रथम बात की सिद्धि होती है। दूसरी बात के लिए सारी देह में विष प्रकोप फैला हो और विष की तीव्रता हो तो कालकूट रस लाभदायक है। इस रस का विषाक्त जन्तुओं पर निश्चित उत्तम परिणाम होता है। परन्तु कालकूट रस अति तीव्र है और जितने परिमाण में रक्तप्रसादक कार्य कराना चाहिये उतने अंश में इससे नहीं होता। इस कारण तीव्रावस्था कम करने के लिये कालकूट रस को उपयोग में लें। फिर मन्दावस्था में रक्तप्रसादन करके रक्त को निर्विष करने वाली औषधि देनी चाहिये। ऐसी औषधि ताप्यादि लोह है। इस ताप्यादि लोह के सेवन से धनुर्वात के अवशेष लक्षण और विष नष्ट हो जाते हैं। यह रस कालकूट जितना उष्ण भी नहीं है।

विष प्रयोग में पहले विषनाशक वमन आदि प्रयोग और विष को निर्विष करने वाले साक्षात् प्रतिविषद्वारा जीवनरक्षा करनी पड़ती है, परन्तु आगे उस विष के तीव्रत्व आदि गुणों का लेश-अनिष्ट परिणामस्वरूप असर भीतर रह जाता है जो अनेक दिनों तक (क्वचित् वर्षों तक) त्रास देता रहता है। उस अवस्था में ताप्यादि लोह का उपयोग होता है। इसके सेवन से विष के लेश से दीर्घकाल तक टिकने वाले उत्कर्षक और वृत्तिधर्म नष्ट होने में सहायता मिलती है। यह इस रसायन में महत्व का गुण है।

हृदय की अशक्तता या हृत्स्पंद विकार से उत्पन्न कास रोग में फुफ्फुसों के भीतर विदाह, सूक्ष्म ज्वर, मुंह में शुष्कता (क्वचित् शुष्कता इतनी बढ़ती है कि मनुष्य अत्यन्त बेचैन हो जाता है।) चाहे जितना जलपान करने पर भी तृप्ति न होना, खाँसते-खाँसते पीली, कड़वी, खट्टी और गरम-गरम वमन हो जाना, वेग उत्पन्न होने पर खूब खांसी चलना, मुंह और सर्वाङ्ग निस्तेज और पीला-सा हो जाना, बार-बार खाँसते रहने से मुँह विशेषत: गाल थोड़े से फूले हुए दीखना और घबराहट आदि लक्षण होते हैं, उस पर ताप्यादि लोह दाड़िमावलेह के साथ देना चाहिये।

क्षतक्षय में ऊपर लिखे अनुसार वमन हो जाय ऐसी त्रासदायक खाँसी हो, बार-बार पीला, हरा, गरम, क्वचित् रक्तयुक्त कफ पड़ता हो। तथा **उबाक** अधिक हो तो इस औषधि का उपयोग करना चाहिये।

विषम ज्वर में ज्वर आने का प्रकार, ज्वर निकल जाने की रीति, लक्षणों की जाति इन सब में भूत आदि के समान बिलकुल नियम न होना, **जैसे-आज** थोड़ी ठण्ड लगकर बड़ी जल्दी से ताप आना, ताप भी ज्यादा हो, दूसरे दिन ज्यादा ठण्ड लगकर ताप आना, कभी न आना, कभी **अकस्मात्** आ जाना ऐसी अनियमित ज्वर की अवस्था में वातपित्तात्मक लक्षण अधिक होने पर इसका उपयोग करना चाहिये।

आमाशय, पक्वाशय, ऊर्ध्व और मध्यम बृहदन्त्र में समान वायु का कार्य सम्यक् प्रकार से न होने से बार-बार अपचन होने की आदत पड़ जाती है। साथ साथ अरुचि, उबाक, उदर में जड़ता, अन्न समीप आने पर मुँह में जल आ जाना आदि लक्षण हों एवं मर्यादा में या थोड़े परिमाण में भोजन करने पर भी पचन न होता हो तो उस विकार पर ताप्यादि लोह अच्छा काम करता है।

कालमेह, नीलमेह, हारिद्रमेह, मंजिष्ठमेह, इन प्रमेहों में विशेषत: पित्तप्रधान लक्षण होते हैं। इन पर चन्द्रप्रभा, नागभस्म और ताप्यादि लोह उपयोग में आते हैं। अपचन से होने वाले या इन रोगों वाले रोगियों को अधिकतर अपचन रहती हो, निश्चितता स्थिरता और लक्षणों की दृढ़ता ज्यादा न हो, लक्षणों की चचंलता हो तो इन प्रमेहों में ताप्यादि लोह का सेवन हितकारक होता है।

रक्तकी अशक्तता के कारण से शरीर फूलकर आया हुआ सर्वाङ्ग शोथ अर्श या अन्य मार्ग में रक्तस्राव अधिक होने पर आया हुआ शो यकृत्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, मलावरोध या मूत्रपिण्ड (वृक्क) की विकृति से उत्पन्न शोथ, रक्तस्राव अधिक हो जाने से आई हुई निर्बलता और उ उत्पन्न क्षय, विशेषतः रक्त धातु का क्षय तथा तदन्तर उत्पन्न शोथ इन सब प्रकारों पर ताप्यादि लोह उत्तम कार्य करता है।

संक्षेप में ताप्यादि लोह पाण्डु, कामला, अपस्मार, बालकों के बालग्रह, जीर्ण वात-विकार, कोथ (शरीर के घटकों का गलना), खुज अम्लपित्त, मलावरोध, रक्तदबाववृद्धि, वातप्रकोप, नूतन पक्षाघात, पूयजन्य ज्वर, सूतिकाज्वर, दुष्ट रक्तजन्यज्वर, धनुर्वात, जीर्ण विषप्रकोप, ह की विकृति से होने वाला कासरोग, क्षतक्षय, अनियमित विषमज्वर, जीर्ण-अजीर्ण रोग, पित्तप्रधान प्रमेह, शोथरोग, रक्त में विष अथवा क्षारवृ स्त्रियों के गर्भाशय के दोष, मूर्च्छा, त्वचारोग इत्यादि को दूर करने में उत्तम लाभदायक माना गया है।

ताप्यादि लोह में रक्तप्रसादक, रक्त के रक्ताणुवर्धक, मूत्रल , बल्य, रसायन आक्षेपघ्न, पाचन और दीपन गुण हैं। इसमें सुवर्णमाक्षिक पा दीपन आक्षेपघ्न पाण्डुत्वनाशक (रक्तकणवर्द्धक) बल्य और रसायन है। शिलाजीत रसायन, धातुपरिपोषण, क्रम में सहायक और मेहनाशक रौप्य मूत्रल वृष्य और आक्षेपघ्न है। मण्डूर रक्तवृद्धिकर, रक्तस्तम्भक, रक्तकणवर्द्धक और इस कारण से धातुवर्द्धक है। चित्रक पाचक, अग्निप्रदी वातनाशक और अर्शोघ्न है। त्रिफला रसायन, मृदुसारक और पचनेन्द्रिय को शक्ति देकर पचन क्रिया बढ़ाने वाला है। त्रिकटु पाचक और अ प्रदीपक है। वायबिडंग कृमिघ्न और पाचक है। (औ.गु.ध.शा

(६२) नवायस चूर्ण (लोह)

विधि–सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, बायविडंग और चित्रकमूल ये सब एक-एक तोला और लोहभस्म ९ तो लेवें। सबको मिलाकर एकत्र करें। (च.चि.

वक्तव्य–लोहभस्म के स्थान पर लोह चूर्ण को आँवलों के १६ गुने रस में डाल १ वर्ष पर्यन्त धूप में रखकर सूखा लेने पर वारि मृदु लोहरज बन जाती है, जो विशेष निर्दोष और अधिक लाभप्रद बनती है। इस प्रकार की लोहरज मिलाने पर मात्रा ३ रत्ती से ८ रत्ती त दे सकते हैं।

मात्रा–१से ३ रत्ती। घी और शहद या मट्ठे के साथ दिन में २ बार। धीरे-धीरे मात्रा बढ़ावें। कफ अधिक हो तो अदरक के रस में

उपयोग–यह रस कामला, पाण्डु, शोथ, हृदयरोग, उदररोग, कृमि, कुष्ठ, भगन्दर, मन्दाग्नि, प्रमेह, बवासीर और अरुचि को दूर क है तथा शक्तिवर्द्धक, अग्निप्रदीपक और पाचक है। रक्त में रक्ताणुओं की वृद्धि करता है और यकृत् को शक्ति देकर उसकी क्रिया को सुधारता

शीतल वायु का स्पर्श, जीर्ण अपचन, ज्वर दिनों तक रह जाना इन कारणों से कामला उत्पन्न होने पर नवायस रसायन उत्तम लाभदाय है। इस तरह उत्पन्न कामला में एक दो दिन के भीतर ही पूर्ण लक्षण उपस्थित हो जाते हैं। मंद ज्वर, अरुचि, नेत्र, हाथ-पैर, नाखून, त्व और मूत्र में अति पीलापन, बद्धकोष्ठ, शौच होने पर सफेद-सा मल, तिल की खल को जल में मिलाने सदृश दस्त होना आदि लक्षण प्र होते हैं। इस पर सौम्य विरेचन अमलतास की फली के गर्भ का क्वाथ या अन्य अनुपान देना चाहिये।

दीर्घकालस्थायी अति दुःखदायी ज्वर आ जाने के पश्चात् या अतिसार ग्रहणी या इनके दीर्घकाल टिकने वाले विकार दूर होने पर अ हुई पाण्डुता पर इस नवायसचूर्ण का अच्छा उपयोग होता है। इन विकारों में दोष दूष्य आदि की विकृति को नष्टकर धातुसाम्य प्रस्थापित क के लिये जीवनीय शक्ति को अति परिश्रम करना पड़ता है। इस हेतु से देह में पृथक् अवयव बिल्कुल थक जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में सब लिये शक्तिदायक औषध की आवश्यकता रहती है। नवायस चूर्ण में इस प्रकार की उत्तम योजना है।

अपचन, अग्निमांद्य, पाण्डुता साथ-साथ हृत्स्पंद, थोड़ा सा चलने, बोलने या परिश्रम करने पर हृदय में धड़कन और घबराहट हो जा हाथ-पैर पर शोथ, अनियमित और तीव्र वेगवती नाड़ी, मस्तिष्क और हाथ-पैरों की शिराओं में रक्त की गति बढ़ने से रक्त स्पंदन स्पष्ट प्रती होना, चेतना शक्ति के भीतर खिंचने सदृश भासना आदि लक्षण होने पर नवायस चूर्ण को घृत और शहद के साथ देना चाहिये।

यकृत की क्रिया सम्यक् न होने से उसमें रक्तशुद्धि करने की क्रिया ठीक नहीं होती फिर दोष संग्रहीत होकर रक्त विकृत हो जाता इसका परिणाम त्वचा पर होता है। त्वचा पर काले नीले धब्बे पड़ते हैं, खुजली चलती है। सूक्ष्म पिटिकाएं होती हैं। इन पिटिकाओं के न होने पर उन स्थानों पर काले मण्डल हो जाते हैं एवं मलावरोध, अग्निमांद्य, यकृत पर कुछ शोथ आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस व्या में नवायस चूर्ण को मट्ठे के साथ देना चाहिये।

कफज अर्श में मस्से बहुत मोटे और लम्बे होते हैं। इनमें वेदना कम होती है। वे ऊपर उठ जाते हैं, तथा सफेद, तेजस्वी, गोल, मो और गाढ़े प्रतीत होते हैं, हाथ को कुछ गीले से मालूम पड़ते हैं, ऊपर से खुजली आती है। रोगी इन मस्सों को बार-बार स्पर्श करने खुजाने पर अच्छा मालूम पड़ता है। ये मस्से गोस्तन, कटहल की गुठली या अंगूर के गुच्छे सदृश भासते हैं।

सांथलों में कुछ सूजन, गुदाद्वार और बस्तिमार्ग का नाभि पर्यन्त भीतर आकर्षण हो रहा हो ऐसा भासना, कास, श्वास, उबाक, अरुचि, बार-बार जुकाम हो जाना, बार-बार मूत्रोत्सर्ग होना, अनेक बार मूत्र में दाह होना, कण्ठ में जड़ता आ जाना, मस्सों का त्रास होने पर देह में शीत आने सदृश भासना, अग्निमांद्य, कभी-कभी वमन, आम समान लेसदार सफेद दस्त होना, अति किंछने पर दस्त होना आदि लक्षण होते हैं। मस्से फूटते नहीं मस्सों में से स्राव नहीं होता, अधिक रक्त भी नहीं गिरता, परन्तु सारे शरीर में अति निस्तेजता आ जाती है। इस प्रकार के अर्श रोग पर नवायस चूर्ण का उपयोग अच्छा होता है।

स्निग्ध भोजन करके बैठे रहने या निद्रा लेकर दिन को पूरे करना, गुड़ या गुड़ की विकृति से बने हुए पदार्थों का अति उपयोग, ईख के रस या अन्य मधुर पदार्थों का अधिक सेवन करना इन कारणों से कफप्रमेह होता है। इस प्रमेह में अनेक बार अधिक परिमाण में मूत्रोत्सर्ग होता है। मूत्र का विशिष्ट गुरुत्व अनेक बार कम होता है, इसमें माधुर्य या क्षार की मात्रा भी कम होती है। ऐसी स्थिति में नवायस चूर्ण का उपयोग अच्छा होता है। (औ.गु.ध.शा.)

यकृत वृद्धि होने पर अपथ्य सेवन करने से यकृहुदर के साथ सर्वांगशोथ उपस्थित होता है। उस रोग पर नवायस चूर्ण १-१ माशा गोमूत्र या निवाये जल के साथ दिन में २ बार (सुबह और शाम को) देने तथा भोजन कर लेने पर पुनर्नवासव, अभयारिष्ट और रोहितकारिष्ट तीनों मिलाकर ३ तोले तथा जल ३ तोले मिलाकर लवणभास्कर चूर्ण १॥-१॥ माशे के साथ देते रहने से यकृत्वृद्धि और शोथ सत्वर शमन हो जाते हैं। अधिक मूत्र शुद्धि की आवश्यकता हो तो पुनर्नवा और गोखरू ६-६ माशे को क्वाथ बनाकर रोज सुबह नवायस चूर्ण के साथ देते रहना चाहिये।

(६३) चन्द्रकला रस

विधि-शुद्ध पारा, ताम्र भस्म और अभ्रक भस्म १-१ तोला तथा शुद्ध गंधक २ तोले लेवें। सबकी कज्जली बना नागर मोथा, दाड़िम के दाने, दूर्वामूल, केतकीकी कली, सहदेवी, घृतकुमारी, पित्तपापड़ा, मरुवा और शतावर प्रत्येक के क्वाथ या रस में पृथक्-पृथक् क्रमशः १-१ दिन घोंटे। फिर कुटकी, गिलोयसत्व, पित्तपापड़ा, खस, चमेली के पुष्प, सफेद चन्दन और सारिवा समभाग मिलाकर चूर्ण करें। पश्चात् उपर्युक्त औषधि के बराबर इस चूर्ण को मिला द्राक्षादिगणकी (द्राक्षा, दाड़िम, केला, ताड़का फल, बेलगिरी, जामुन, आम) औषधियों के क्वाथ की ७ भावनायें देकर गोला बनावें। सूखने पर (पत्तों में लपेटकर) अनाज के ढेर में दबा देवें। सात दिन के बाद निकाल पीस, द्राक्षादिगण के क्वाथ की भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (नि.र.)

मात्रा-१ से २ रत्ती। १ दिन में २ बार, जीरा और मिश्री के साथ लेवें, ऊपर दूध पीवें या गुलकन्द के साथ लेवें।

विशेष अनुपान-मूत्र में रक्त जाता हो तो गोखरू, धमासा, धनियां आदि औषधि के हिम के साथ।

नाक से रक्त गिरता हो तो उशीरासव या धारोष्ण दूध के साथ।

क्षय रोग की प्रथमावस्था, ज्वर, प्यास, छाती में दर्द और रक्तवमन में चांदी के वर्क आध रत्ती मिलाकर दाड़िमावलेह के साथ।

रक्त प्रदर में अशोकारिष्ट या पेठे के रस के साथ।

दाह, पेशाब में भयंकर जलन और पेशाब लाल रंग का थोड़ा-थोड़ा होता हो तो ब्राह्मी, अनन्तमूल और पित्तपापड़ा के हिम के साथ।

उपयोग-यह रसायन सब प्रकार के रक्तपित्त, रक्तप्रदर, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, दुस्तर प्रमेह, अम्लपित्त, अन्तर्दाह, बाह्यदाह, भ्रम, मूर्छा, रक्त की वमन और ज्वर आदि रोगों को दूर करता है। यह रसायन शीतल होने पर भी जठाराग्नि को मन्द नही करता। एवं वातपित्तप्रकोप तथा अधोगामी और ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त रोग में ग्रीष्म जैसी उष्ण ऋतु में भी शान्तिदायक है।

यह चन्द्रकला रस ऐसे विविध द्रव्यों के संयोग से तैयार हुआ है कि रक्तवाहिनी के लिये प्रसादक और स्तम्भक, दोनों कार्य करता है। मुख्य कार्य समग्र रुधिराभिसरण और रुधिरवाहिनी पर शामक और प्रसादक है। जब-जब रक्त का दबाव बढ़ने से अन्तर्दाह, बहिर्दाह और रुधिरवाहिनी मोटी होकर चक्कर, मूर्च्छा, भ्रम आदि उत्पन्न होते हैं या रक्त में पित्तमिश्रित होकर रक्तविदग्ध होता है तथा इसी हेतु से अन्तर्दाह और रुधिरवाहिनियों की दीवार की विकृति होकर विविध व्याधियों की उत्पत्ति होती है, उस पर इसका अच्छा उपयोग होता है।

तीव्र सेन्द्रिय विष के योग से रक्त विकृत होकर भ्रम, प्रलाप, ज्वर आदि लक्षण उपस्थित होने पर चन्द्रकला का प्रयोग किया जाता है। इस तरह पित्त की तीव्रता, विशिष्ट सेन्द्रिय विष या विशिष्ट कीटाणु के हेतु से समग्र मूत्रमार्ग विकृत होकर मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात होने पर इस रसायन का सेवन कराया जाता है। इनके अतिरिक्त मस्तिष्क, मध्यम कोष्ठ, मध्यम रोममार्ग, मूत्रमार्ग और विशेषतः रक्त इनमें पित्त के तीक्ष्णत्व और उष्णत्व गुण की वृद्धि होने पर भिन्न-भिन्न व्याधियों पर चन्द्रकला उत्तम औषधि है।

चक्कर, दाह, नेत्र में व्यथा, नेत्र लाल-लाल हो जाना, मस्तिष्क की शिराएँ खिंचना, शिराएँ मोटी, भारी और रक्तपूर्ण होना, असम्बद्ध प्रलाप और ज्वर आदि की उत्पत्ति होना, वृहद्मस्तिष्क, लघुमस्तिष्क, वातवाहिनियों के केन्द्र स्थान तथा इनके समीप के सब स्थानों की रक्तवाहिनियां

मोटी होकर इनका दबाव उन अवयवों पर पड़ने से प्रलाप आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी परिस्थिति में रक्त के दबाव को कम
का महत्व का कार्य इससे सरलतापूर्वक हो जाता है।

इसी प्रकार की अत्यन्त तीव्रावस्था कितने ही सन्निपातिक ज्वरों में भी उत्पन्न हो जाती है। ज्वरोष्मा अतिशय बढ़ जाती है, रोगी बे
हो जाता है, नेत्र लाल हो जाते हैं एवं शिरदर्द, गर्दन को चलाते रहना, बड़ी-बड़ी बूमें मारकर गर्दन इधर-उधर फिराते रहना, मस्तिष्क
या भाले से भेदन करने सदृश दुखना आदि वेदना होती है। चाहे रोगी स्पष्ट समझा न सके, फिर भी मुखमण्डल अतिदीन, भयभीत, बल
और अति व्यथित प्रतीत होता है। प्रारम्भ में रोगी सचेत जब तक रहता है, तब तक उपर्युक्त क्रियायें करता है। ये सब लक्षण सान्निपा
ज्वर के मूल हेतु रूप विविध दोष प्रकोप के योग से होते हैं। अतः इस स्थान में तत्तद्दोनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। एवं उसके
ही चन्द्रकला रस का उपयोग करना चाहिये।

कभी-कभी आंत्रिक ज्वर में मस्तिष्क के भीतर अति उष्णता पहुँच जाती है फिर ज्वर हो जाने पर उन्माद का असर उपस्थित होता
विशेषतः दोपहर को असम्बद्ध प्रलाप करना, नेत्र लाल-लाल भासना, घबराहट, सर्वाङ्ग में प्रस्वेद आदि लक्षण प्रकट होते हैं। उस पर चन्द्र
रस आध रत्ती, भांगरे का रस ३ माशे और आम का मुरब्बा ६ माशे मिलाकर देवें। इस तरह २-३ बार देने से पित्त शमन होकर उन्माद
हो जाता है।

यदि क्षयजन्य विष से इस प्रकार के लक्षण उत्पन्न हुये हो तो चन्द्रकला का उपयोग कहां तक होगा यह निश्चित नहीं कह सकते। प
आंत्रिक सन्निपात की इस अवस्था में चन्द्रकला का उपयोग उत्तम होने के उदाहरण मिले हैं।

सूर्य के ताप में फिरना, अग्नि के समीप अति कार्य करना, शराब या अन्य उष्ण द्रव्य का अति सेवन, व्यायाम आदि के अति योग ह
पर भी रक्त का दबाव बढ़कर ऊपर लिखे अनुसार लक्षण होते हैं। उस व्याधि पर चन्द्रकला का उपयोग करना चाहिये। उस प्रकार में तो केव
चन्द्रकला ही कार्य करता है। परन्तु सान्निपातिक ज्वर में विशिष्ट अवस्था के अनुरोध से अन्य औषधि की योजना भी की जाती है। इस त
इन दोनों अवस्थाओं की चिकित्सा में भेद होता है।

ज्वरोष्मा अधिक बढ़ने पर शिर दर्द होकर नासिका से रक्तस्राव होने लगता है। कितने ही रोगियों को दाह अधिक बढ़ने पर मुंह से र
निकलने लगता है। ऐसे लक्षण होने पर चन्द्रकला रस मिश्री मिले दूध के साथ देकर ऊपर उशीरासव सारिवालेह, हल्दी का अर्क और ज
आदि का मिश्रण देना चाहिये।

कण्ठ में वेदना, दाह, छाती में दर्द, जलन और सूजन आने के समान भासना तथा सर्वांग में दाह, रक्त गिरना, ज्वर, तृषा आदि लक्ष
होने पर चन्द्रकला का दाड़िमावलेह के साथ उत्तम उपयोग होता है।

क्षय रोग के प्रारम्भ या मध्य में रक्तवमन होकर रोग वृद्धि होती है। तब रक्त स्राव सत्वर बन्द होने हेतु और बल के संरक्षणार्थ चन्द्रकल
और चांदी के वर्क को दाड़िमावलेह या अनार शर्बत के साथ देना चाहिये।

ऊर्ध्व रक्तपित्त में चन्द्रकला का उत्तम उपयोग होता है। रक्तपित्त अर्थात् सतत होने वाले रक्तस्राव में पित्त के तीक्ष्णत्व आदि धर्म बढ़ जा
हैं। इस हेतु से रक्तवाहिनियों की श्लैष्मिक कला पतली और विकृत होकर फूटती है फिर उसमें से रक्तस्राव होने लगता है। ऊर्ध्वग रक्तपि
में विशेषतः नाक या मुख में से रक्तस्राव होता है। यह स्राव कुछ काल तक बन्द रहता है और फिर होने लग जाता है। कभी-कभी रक्तपि
उपद्रव रूप से कितनी ही बार स्वतंत्र रोग रूप से होता है। आन्त्रिक सन्निपात में उसके विष प्रभाव से ऊर्ध्वग अधोग और त्वग्गत रक्तपि
हो जाता है। पित्तप्रधान विषयुक्त सर्प के दंश से भी ऐसा ही होता है। इस प्रकार के रक्तपित्त में निमित्त कारण विविध विष है। यह निमि
कारण दीर्घकाल पर्यन्त रहता है। अतः इस विष के नाश की योजना रक्तपित्त चिकित्सा में आवश्यक है। यदि विष कारण न हो केवल शारीरिक
दोष विकृति से ही रोगोत्पत्ति हुई हो तो चन्द्रकला रस अति लाभ पहुँचाता है।

रक्त पित्त के साथ उदर में वेदना आदि लक्षण हों और वेदना होकर वमन द्वारा रक्त निकलता हो, मुँह में शुष्कता, उदर में जलन-स
भासना, सर्वाङ्ग में दाह, तृषा बनी रहना, बार-बार उदर में पीड़ा होकर वमन होना आदि अति पित्त प्रकोपजनित लक्षण प्रतीत होते हों तो उ
पर चन्द्रकला रस का अवश्य उपयोग करना चाहिये।

अधोग रक्तपित्त में उपद्रवभूत और मूलरोग रूप ऐसे दो प्रकार हैं। इसमें मूत्रेन्द्रिय और गुदा से रक्त जाता है। इनमें से गुदा मार्ग से रक्तस्रा
के हेतुओं में दो प्रकार हैं-अन्त्रव्रण, आन्त्रिक सन्निपात, अति भीतर उत्पन्न हुए रक्तार्श और क्षोभक कारणों से अकस्मात् आंतों में कोई शिर
टूट जाना आदि है। क्वचित् अन्य रोग में उपद्रव रूप से भी उत्पन्न भी हो जाता है। उपद्रव भूत होने पर तत्तद्रोगनाशक औषधि के साथ स्वतं
व्याधि पर केवल चन्द्रकला का प्रयोग किया जाता है।

अधोग रक्तपित्त में मूत्रमार्ग से रक्तस्राव होने में मुख्यत: वृक्क स्थानका शोथ, वृक्क स्थानों में से सिकता (रेत) या शर्करा (छोटे कंकड़) नली द्वारा मूत्राशय में उतरना, मूत्राशय, मूत्रमार्ग और वस्ति का क्षोभ और दाह ये सब कारण हैं। इन सब में पित्त दोष की वृद्धि ही कारण है। ऐसे रक्तपित्त की सब अवस्थाओं में चन्द्रकला रस द्वारा विविध अनुपान संयोग से उपयोग होने के उदाहरण मिले हैं। मूत्रपिण्ड के शोथ में अनन्तमूल सदृश शामक, सौम्य और मूत्रल अनुपान देना चाहिये। सिकता, शर्करा को सत्वर बाहर निकालने के लिए तृणपञ्चमूल क्वाथ समान विरेचन तथा मूत्रमार्ग के दाह में दाहशामक और मूत्रल गोखरू, धमासा, धनियां का क्वाथ देना चाहिये।

स्त्रियों के रक्तप्रदर में चन्द्रकला का उपयोग अच्छा होता है। शूलसह रज: स्राव और अत्यार्त्तव इन दो व्याधियों का रक्तप्रदर में अन्तरभाव होता है। स्त्रियों के बीजाशय, गर्भाशय और अपत्यमार्ग में किसी कारणवश क्षोभ होकर रक्तस्राव होने लगता है, उसे रक्तप्रदर कहते हैं। उस में आम, अशोक, कपासमूल तीनों की छाल के क्वाथ के साथ चन्द्रकला देने पर रक्तप्रदर कम हो जाता है। रोग अति प्रबल और भयंकर दु:खदायी हो तो ऊन की काली राख दी जाती है।

रक्तपित्त (Scurvy) होने पर किसी-किसी को दन्तमूल और मसूड़ों में शोथ और वेदना होकर रक्तस्राव होता है एवं कितनों ही को यह त्रास अधिक बढ़ जाता है, फिर त्वचा के रोमरन्ध्रों से बून्द-बून्द रक्त निकलता रहता है। यह विकार अति त्रासदायक और प्राणघातक है। परन्तु इसमें भी सारिवा के क्वाथ के साथ चन्द्रकला के उपयोग से लाभ हो जाता है।

चन्द्रकला रस दाहनाशक है। इसलिये अतिशयदाह होकर उन्माद समान वेग उत्पन्न होता हो मूत्रमार्ग, नेत्र, हाथ, पैर इन सब में दाह, कभी-कभी नाक, मूत्रमार्ग या अन्य मार्ग से रक्तस्राव होना, मूत्र में चिकना श्लेष्म जाना, मूत्र लाल और परिमाण में कम हो जाना आदि लक्षण होने पर ब्राह्मी, अनन्तमूल, पित्तपापड़ा आदि के साथ चन्द्रकला का उपयोग किया जाता है।

पित्तजन्य प्रमेह में विशेषत: कालमेह, नीलमेह, हारिद्रमेह और माँजिष्टमेह में चन्द्रकला उत्तम औषधि है। इन विकारों में मूत्र का रंग क्रमश: काला, नीला, अति पीला और मंजिष्ठ के क्वाथ के सदृश भासता है। सर्वाङ्ग में अतिशय दाह होता है। अति तृषा, मूत्र के परिमाण में कमी परन्तु पेशाब अधिक बार होना, चक्कर आना, शुष्कता, अति दाह, पंखे से निरंतर वायु करते ही रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। पंखे को बन्द करने पर रोगी चिल्लाता है। इस प्रकार के दाह में पित्त का तीक्ष्णत्व धर्म बढ़कर रक्ताश्रित और त्वगाश्रित होता है। इस पर चन्द्रकला का उपयोग अच्छा होता है।

पित्त के तीक्ष्णत्व और उष्णत्व धर्म की वृद्धि होने पर उनको चन्द्रकला रस नष्ट करता है तथा पित्त का साम्य प्रस्थापित करता है। यह रस दाहनाश, मूत्रल, शामक, कोष्ठस्थ पित्त का योग्य परिमाण में स्राव कराने वाला, यकृत को शक्ति देकर पित्त साम्य लाने वाला, सहस्रार, वातवाहिनियों के केन्द्र स्थान, वातवाहिनियों आदि स्थानों के क्षोभ को शमन करने वाला और सौम्य है। इस तरह शीतल गुण होने पर भी अग्निमांद्य नहीं करता। समस्त शरीर में उत्पन्न क्षोभ, दाह और वेदना को शमन करता है। यह कफप्रधान और कफवातप्रधान विकारों का निवारण करने वाली उत्तम वीर्यवान् औषधि है। सूतशेखर पित्त के विस्रत्व, सरत्व, द्रवत्व और अम्लत्वधर्म, वृद्धिजन्य विकारों में पित्तसाम्य प्रस्थापित करने में उपयोगी है और चन्द्रकला पित्त के तीक्ष्णत्व और उष्णत्व धर्म बढ़ने पर लाभदायक है। यह इन दोनों में अन्तर है।

(औ.गु.ध. शा.)

जख्म का योग्य उपचार न करने पर कीटाणुओं का प्रवेश होकर आक्षेपक वात हो जाता है। फिर उसके उपचार में भूल होने पर (गलत इञ्जेक्शन देने पर) रोग अति भयंकर रूप धारण कर लेता है। सारे शरीर में फुन्सियां, त्वचा लाल हो जाना, निद्रानाश, ज्वर, दाह, घबराहट, सारे शरीर में सुई चुभाने के समान वेदना, कर्णबाधिर्य, वातप्रकोप, हृदय में भारीपन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उसकी चिकित्सा सत्वर न की जाय तो पक्षवध या मृत्यु होने का भय रहता है। ऐसी स्थिति में मूलकारणरूप कीटाणु और विष को नष्ट करने के लिये चन्द्रकला रस, प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व मिलाकर दिन में ३ बार दाड़िमावलेह के साथ देने, व्रण का बाह्योपचार करने और रोगी को केवल गोदुग्धपर रखने से सत्वर विष शमन हो जाता है। व्रण शोधनार्थ निम्बपत्र, सत्यानाशी और शमीपत्र का मलहम अति लाभदायक सिद्ध हुआ है। विष शमन होने पर फिर शेष लक्षण रहे उसके लिये महायोगराज गूगल आदि का सेवन कुछ काल तक करते रहना चाहिये।

(६४) महामृगांक रस

विधि–सुवर्णभस्म १ भाग, पारद भस्म २ भाग, मुक्ता भस्म ३ भाग, शुद्ध गंधक ४ भाग, सुवर्णमाक्षिक भस्म ५ भाग, रौप्य भस्म ६ भाग, प्रवाल भस्म ७ भाग और सोहागे का फूला २ भाग लें। सबको यथाविधि मिला, बिजौरे के रस में ३ दिन खरलकर गोला (पेड़ा) बना, सूर्य की तेज धूप में सुखावें। फिर सैंधानमक भरे हुये घड़े के भीतर रख, घड़े के मुँह पर सराव ढक, मिट्टी से बन्द करके १२ घन्टे मन्द और मध्याग्नि देकर गन्धक का जारण करें। स्वांग शीतल होने पर गोले को निकाल ६४ वाँ हिस्सा हीरा भस्म या १६वां हिस्सा वैकान्त भस्म मिला, खरल करके शीशी में भर लें।

(र.चं.)

वक्तव्य–महामृगाङ्क रस का गोला निकालने पर मैले लाल रंग का होना चाहिए। यदि गन्धक जारण पूरा न हुआ हो तो पुनः ३ घण्टे या अधिक समय अग्नि देकर गन्धक का जारण कर लेना चाहिये।

गोले का रंग रक्ताभ हो जाना चाहिये। गंधक रह जाने पर रंग काला रहता है। ऐसा हो तो पुनः ४-६ घण्टे अग्नि देवें। भूल से अग्नि तेज दी जायेगी तो सब पारद उड़ जायेगा और गुण कम हो जायेगा।

मात्रा–आध रत्ती से १ रत्ती तक। दिन में २ बार, कालीमिर्च और घृत अथवा शहद पीपल के साथ।

उपयोग–यह रस नाना प्रकार के उपद्रवसहित क्षय, ज्वर, गुल्म विद्रधि, मन्दाग्नि, स्वरभेद, कास, अरुचि, मूर्च्छा, भ्रम, आठ प्रकार के महारोग, ग्रहबाधा, पाण्डु, कामला और पित्त प्रकोपजनित रोगों को नष्ट करता है। यह औषधि क्षय की अवस्थाओं में लाभ पहुँचाती है। मस्तिष्क में शान्ति उत्पन्न करके निद्रा लाती है। मानसिक बेचैनी दूर करती है। कीटाणुओं को नष्टकर तथा विष को जलाकर ताप का शमन करती है। शरीर में शक्ति बढ़ाकर थोड़े ही दिनों में रोगी को आशातीत लाभ पहुँचा देती है।

जिन रोगियों के अस्थि संस्थान में अति निर्बलता आई हो या जिन रोगियों को निद्रानाश, वृक्कविकृति, वातवाहिनियों में क्षोभ और शुक्रक्षय आदि लक्षण हों उन क्षय रोगियों के लिये यह रस अमृत के समान हितकारक है।

सूचना–इस रस के सेवन-काल में शक्तिवर्द्धक और शुक्रवर्द्धक भोजन करना चाहिये। पारद के विरोधी करेला और ककारादि वर्ग के पदार्थ, हींग, बैंगन, बेल, अधिक नमक, क्षार और तीक्ष्ण पदार्थों का त्याग तथा ब्रह्मचर्य का आग्रहपूर्वक पालन करना चाहिये।

(६५) हेमगर्भपोटली रस

प्रथम विधि–शुद्ध पारा ४ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, सुवर्ण का वर्क १ तोला और ताम्रभस्म ३ तोले लेवें। सबको यथाविधि मिला घीकुंवार के रस में ३ दिन तक घुटाई करके सोगठी (शिखरवाली गोलियां) बांधे। भलीभाँति सूखने पर नये अच्छे रेशमी कपड़े पर थोड़ा गन्धक बिछा, ऊपर सोगठी को रखकर बांधे। फिर सब सोगठियों को एक साथ डोरे से मजबूत बांध एक मिट्टी की छोटी हाँडी में पोटली के समान वजन में डण्डा गन्धक डालकर ऊपर पोटली रखें और थोड़ा गंधक ऊपर रख हाँडी के मुँह पर ढक्कन लगाकर बन्ध करें। ढक्कन में एक छोटा छेद रखें, जिससे उसमें लोहे की शलाका डालकर परीक्षा कर सके। फिर बालुकायन्त्र में रखकर लगभग १॥ घण्टा मन्दाग्नि दें। नीचे गन्धक का रस होकर औषधि पकने पर हांडी को उतार ले। फिर तुरन्त गर्म जल से सोगठियों को धो लें।

मात्रा–आधा रत्ती से १ रत्ती। पीपल और शहद के साथ।

उपयोग–यह रस कफ सहित भयंकर कास, श्वास, क्षय, कफप्रकोप, वातरोग, संग्रहणी आदि रोगों को नष्ट करता है। पित्तविसर्जन क्रिया में दोष उत्पन्न होकर संग्रहणी युक्त क्षय हुआ हो उसमें पित्त विकृति को सुधार, क्षयज संग्रहणी को दूर करता है।

दूसरी विधि–शुद्ध पारा और सुवर्ण वर्क ४-४ भाग मिलाकर बारीक पीसें। फिर १२ भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली करें। पश्चात् मोतीपिष्टी १६ भाग, शंखभस्म २४ भाग और सोहागे का फूला १ भाग मिला, पक्के ताजे नींबुओं के रस में २ दिन खरलकर पेड़े के समान गोला बनाकर सुखा लें। बाद में उसे सराव में रखकर दृढ़ संपुट करें। संपुट सूखने पर एक हांडी में सैंधानमक के भीतर दबा चूल्हे पर चढ़ा ३ अहोरात्रि मध्यम अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर बाहर निकालकर खरल कर लें। यह रसायन कुछ गुलाबी आभा वाला सफेद रंग का होता है। यदि रंग श्याम रह गया हो तो अग्नि कम लगी ऐसा मानकर एक दिन तक फिर आंच देवें। (शा.सं.)

मात्रा–१ से २ रत्ती। कालीमिर्च २९ नग के चूर्ण के साथ गोघृत और शहद में मिलाकर चाटें।

उपयोग–यह रस क्षय, कास, श्वास, कफसंग्रहणी और वातज अतिसार आदि रोगों को दूर करता है। क्षय में ज्यादा ताप (१०० डिग्री अधिक) न हो तब यह देना चाहिये। यह रसायन क्षय की सब अवस्थाओं में लाभदायक है। क्षयरोग, पित्तप्रकोप, मुखपाक, शुष्ककास, अतिसार आदि लक्षणों सह उपद्रव रूप से उत्पन्न संग्रहणी तथा बिना राजयक्ष्मा उत्पन्न संग्रहणी को भी यह दूर करता है और पाचनशक्ति को बढ़ाती है। उदर में वातप्रकोप हो, पित्त में अम्लता और उष्णता बहुत बढ़ गई हो, अन्त्र की संधारण शक्ति निर्बल हो तब इस रसायन का उपयोग अत्यन्त हितावह है। अपची, कण्ठमाल में भी यह लाभदायक है।

(६६) लक्ष्मीविलास (सुवर्णयुक्त)

विधि–सुवर्ण भस्म, रौप्यभस्म, अभ्रक भस्म, ताम्रभस्म, वंगभस्म, लोहभस्म, मण्डूर भस्म, कान्तलोह भस्म, (अभाव में लोहभस्म) नागभस्म, शुद्ध बच्छनाभ और मुक्ताभस्म इन ११ औषधियों को १-१ तोला और रस सिंदूर को ११ तोले लें। सबको मिलाकर शहद के साथ खरलकर पूरी सदृश पतली बड़े थाल समान चौड़ी दो पर्पटी बनाकर सूर्य की धूप में सुखावें। ३-४ दिन में सूखने पर सराव संपुट करके तार्क्ष्य पुट अर्थात् ४-५ वनगोबरी की अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल चित्रकमूल के क्वाथ में ८ प्रहर खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें।

सूचना–अग्नि उतनी ही देनी चाहिये कि रस का वर्ण लाल रहे। अधिक अग्नि लग जाने पर वर्ण काला हो जाता है और पारद उड़ जाता है। फिर वजन कम हो जाता है।

मात्रा–१/४ से १ रत्ती। दिन में २ बार देवें।

अनुपान–क्षय में प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व। नपुंसकता में वंग भस्म, **शोथ में मकोय का अर्क। शक्ति वृद्धि के लिये शहद**–पीपल या **च्यवनप्राशावलेह, प्रतिश्याय में कालीमिर्च मिला गुनगुना दूध।**

उपयोग–यह रस त्रिदोषज क्षय, पाण्डु, कामला, वातरोग, सूजन, प्रतिश्याय (जुकाम, नजला), शुक्र क्षय, अर्श, शूल, कुष्ठ, मन्दाग्नि, सन्निपात, श्वास, कास आदि रोगों को नष्ट करता है, शरीर को तारुण्यरूपा लक्ष्मी की प्राप्ति कराता है तथा शक्तिवर्द्धक, क्षयरोग निवारक और क्षय के कीटाणुओं (Tuberculosis) को नष्ट करने वाला है। इसका उपयोग आयुर्वेदीय चिकित्सकगण शक्तिवर्द्धक गुण की प्राप्ति के लिये विशेष करते हैं। जिस तरह जलाभाव से मरणोन्मुख अवस्था प्राप्त वृक्ष के मूल में जलसिंचन होने पर वह प्रफुल्लित होकर फल-पुष्प-वर्ण आदि से सुविकसित होता है, तद्वत् इस रसायन के सेवन से जीवन-प्रदीप सुप्रकाशित हो जाने का अनुभव होता है।

क्षय की बिल्कुल प्रथमावस्था में इसका प्रयोग करने पर शक्तिपात दूर होता है। रक्त आदि धातु त्वरित वृद्धिगत होने लगती है, बल बढ़ने लगता है। इस तरह क्षय की द्वितीयावस्था में भी इसका अच्छा उपयोग होता है। केवल तृतीयावस्था में बड़े-बड़े उर:क्षत हो जाते हैं तब इस रसायन का विशेष उपयोग हुआ हो ऐसा नहीं जाना गया।

राजयक्ष्मा के निमित्त कारण–वेगरोध, धातुक्षय, साहस और विषमाशन (आहार-विहार में विषमता) है। निश्चित्त कारण दोषप्रकोप है। इनमें क्षय अर्थात् रस-रक्त आदि धातुओं के ह्रास होने से उत्पन्न राजयक्ष्मा में इस लक्ष्मीविलास का उत्तम उपयोग होता है। यदि क्षय के कीटाणु मूल कारणरूप हों तो भी शारीरिक घटकों की शक्ति ह्रास हुए बिना इन कीटाणुओं को देह में बढ़ने का स्थान नहीं मिलता। अतिशय-रक्तस्राव, शुक्रस्राव या रज:स्राव होने पर या दीर्घकाल का अति रज:स्राव विकार होने पर जब अन्य हेतुओं से धातुक्षय अधिक होता है तब ही क्षय कीटाणुओं को उपयुक्त क्षेत्र की प्राप्ति होती है, फिर उस रोग का विस्तार होता है।

माँसक्षीणता, कृशता, दुर्बलता और मर्यादित ज्वर होने पर क्षय रोगी को लक्ष्मीविलास देना चाहिये। ऐसी अवस्था में इसे प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व के साथ देना चाहिये या सुबह यह रसायन और सायंकाल को ज्वर शामक अन्य औषधि दें। प्रात: काल को अधिक ज्वर हो तो इस रस का उपयोग नहीं करना चाहिये। त्रैलोक्य चिन्तामणि या जयमंगल रस देना चाहिए।

क्षय के अतिरिक्त जीर्ण कफकास रोग में भी इस रसायन का उत्तम उपयोग होता है। रोग अति जीर्ण हो रोगी अतिकृष, बलमाँसविहीन हो गया हो, त्वचा शुष्क हो गई हो, कफ चिकना, गाढ़ा पीला और दुर्गन्ध युक्त निकलता हो, त्रासदायक कास, साथ-साथ श्वास लक्षण प्रतीत होते हों, ऐसे युवा और हाड़पिंजर सदृश बने हुए शक्तिहीन श्वास रोगियों को यह औषधि अति उपयोगी होती है। इसके सेवन से जीवनीय शक्ति सबल होती है। फिर वह सरलता से रोग के विष या कीटाणुओं के साथ युद्ध कर सकती है।

किसी भी इन्द्रिय के बल और आकृति का यथासमय योग्य विकास न हुआ हो तो उस इन्द्रिय में समय के पहले क्षीणता और अशक्ति आती जायेगी। उससे अपना व्यापार उचित नहीं हो सकेगा। फिर बलात्कार से परिश्रम करते रहने से शक्ति का क्षय अधिक और पूर्ति कम ऐसी स्थिति प्राप्त होती है। उस अवस्था में फुफ्फुसों की क्रिया सम्यक् न होने पर कफ दोष दूषित होकर कास रोग उपस्थित होता है, क्वचित् साथ में श्वास विकार भी होता है। इस तरह फुफ्फुसों के समान हृदय अशक्त होने पर श्वास, हाथ पैरों में ऐंठन, हाथ पैर और मुख पर क्वचित् शोथ और कितने ही बार वार्तालाप करते रहने में ही श्वास भार जाना, आवाज बिल्कुल भीतर खिंचना और अति परिश्रम से उच्चारण होना आदि लक्षण होते हैं। उस पर यह रस अच्छा लाभदायक है। अभ्रक प्रधान लक्ष्मीविलास में हृदयोत्तेजक गुण विशेष है। तब इस रससिल्दूर प्रधान लक्ष्मीविलास में शक्तिवर्धक गुण अधिक है। यह उत्तेजक होने पर भी अधिक हृदयोत्तेजक नहीं है। हृदय की अशक्ति से रुधिराभिसरण क्रिया ठीक न होने से सर्वांग में अशक्ति आ जाती है ऐसी अवस्था में यह अति हितकर जाना गया है।

आमाशय की अशक्ति के हेतु से आमाशय रस (पाचकाम्ल रस Gastric juice) की उत्पत्ति योग्य नहीं होती, अर्थात् पाचक-रस निर्माण करने वाले सूक्ष्म कोष समूह असक्त हो जाने से आमाशयस्थ पित्तोत्पत्ति सम्यक् नहीं होती फिर भोजन का पचन भी ठीक नहीं होता। ग्रहणी, अग्न्याशय यकृत् और लघु अन्त्र सब निर्बल होने से, इन सबसे उत्पन्न पाचक रस भी सबल नहीं होता। इस हेतु से भी अन्न का पाचन चाहिये वैसा नहीं होता। अन्न का विदाह हो जाता है। भोजन-परिपाक योग्य न होने से रसोत्पत्ति भी ठीक नहीं होती। फलत: शारीरिक सजीव घटकों को पोषण नहीं मिलता, लंघन होने लगता है। फिर इनकी वृद्धि या स्थिति में प्रतिबन्ध होता है। रोगी दिन-प्रतिदिन क्षीण और कृश होता जाता है। थोड़ा-सा भोजन करने पर भी उदर में भारीपन हो जाता है। अन्न पर अरुचि होती है। ऐसी परिस्थिति में लक्ष्मीविलास का अच्छा उपयोग होता है। इसके योग से समस्त पचनेन्द्रिय संस्थान के पित्तोत्पादक कोषाणु सशक्त बनते हैं। अन्न का विदाह होना बन्द हो जाता है, उत्तम रीति से परिपाक होने लगता है, और नूतन अणुभवन क्रिया (Anabolism) नियमित होने लगती है।

यकृत की अशक्ति में यकृत् में से उत्पन्न होने वाले पित्त (Bile) स्राव निर्माण पूरे परिमाण में न होने से पक्वाशय (लघुअन्त्र) में अ
का पचन और रस का संशोषण सम्यक् नहीं हो सकता। इस हेतु से देह में पाण्डुता प्राप्त होती है तथा उदर में अफारा, अपचन, उदर में भारीप
आँतों में गुड़गुड़ाहट, आंतों में मन्द-मन्द व्यथा होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन सब में अग्निमाँद्य प्रधान होता है। ऐसे विकार प
यह रस उत्तम कार्य करता है।

कामला आशुकारी और चिरकारी दो प्रकार के होते हैं। चिरकारी कामला में यकृत् के कोषाणुओं (Cells) के भीतर धातु क्रिया में विकृ
होती है फिर पित्त विकृत होकर रक्त और रस धातुओं में मिश्रित होता है। परिणाम में कामला की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार के कामल
में अशक्ति अधिक होती है। यह रोग दीर्घकाल तक रहता है। सर्वांग में पीलापन, मूत्र में आशुकारी कामला की अपेक्षा कुछ कम पीलापन
अग्निमांद्य, कभी वमन और दिन-प्रतिदिन मांसविहिनत्व में वृद्धि होना आदि लक्षण अधिक होते हैं, इस प्रकार के रोग में लक्ष्मीविलास र
उत्तम कार्य करता है।

वातविकार में अनेक भेद हैं। इस रोग के कारण विविध हैं और लक्षणों में भी नाना प्रकार की विचित्रता रहती है। इस विकार में मुख्
आशुकारी और चिरकारी ऐसे दो विभाग हैं। आशुकारी में पक्षाघात, अपतानक, आक्षेपक आदि और चिरकारी में कलायखंज, सर्वांगवात, गृध्रसी
विश्वाची, खल्ली आदि व्याधियों का अन्तर्भाव होता है। इनमें से वातस्थान की अशक्ति के हेतु से उत्पन्न चिरकारी विकार में यह रस लाभदायक
है। आशुकारी पक्षाघात आदि की तीव्रावस्था में यह उपयोगी नहीं है। परन्तु जीर्णावस्था और साथ-साथ सर्वांग में अशक्ति आने पर यह उपयुक्
है एवं शीर्षशूल, कर्णनाद किसी भी इन्द्रिय की अशक्ति से अपना कार्य सम्यक् प्रकार से न होना, कोई शारीरिक अवयव केवल अशक्ति से
सूखकर पतले हो जाना, स्मृतिनाश आदि विकार और उपरोक्त चिरकारी विकार में यह रस अति उपयुक्त है।

हृदय की निर्बलता से आने वाले सर्वांग शोथ में मूत्रल अनुपान के साथ इस रसायन का प्रयोग करने से हृदय सबल बनकर तथा र
त्वचा में से संचित रस का रक्त में आकर्षण होकर शोथ शमन हो जाता है।

प्रतिश्याय के एक दुष्ट प्रकार में नाक में से जलस्राव सतत होता रहता है, रात-दिन प्रवाह चालू रहता है। रात्रि में निद्रा के भीतर भी
जलस्राव होता रहता है। यह केवल जल है परन्तु गाढ़ा हो जाता है। यह स्राव नासास्थित रसवाहिनियों और श्लेष्मिक कला में से होत
रहता है।

इस पर किसी प्रकार से नियंत्रण नहीं हो सकता। कभी-कभी कुछ काल के लिये जुकाम बन्द हो जाता है। परन्तु जब होता है सब
स्राव निरन्तर कुछ दिनों तक होता रहता है। इस पर इस रस का उपयोग होता है। इसके सेवन से रसवाहिनियाँ और श्लैष्मिक कला में नियंत्रण
शक्ति प्राप्त होती है। फिर बार-बार जुकाम नहीं होता।

नपुंसकता में अनेक कारण हैं। इनमें से एक कारण अण्डकोष में कोषाणुओं का पुम्बीज और ओज बनाने की शक्ति का ह्रास है। कोषाणुओं
की अशक्ति के हेतु से रक्ताभिसरण क्रिया ठीक नहीं होती। फिर शुक्र में से ओज (शुक्रधातु में जो विशिष्ट ओज) योग्य नहीं बनता इस हेतु
से नपुंसकता की प्राप्ति होती है। रोगी बिल्कुल निस्तेज और शक्तिहीन भासता है, मुखमण्डल उदास रहता है। सर्वदा विचारों में डूबा हुआ
प्रतीत होता है। किसी भी कार्य के लिये उत्साह नहीं होता। मुख पर किसी भी प्रकार की मनोवृत्ति स्पष्ट प्रतीत नहीं होती। इस पर वंगभस्म
के साथ लक्ष्मीविलास देने से पुंसत्व की वृद्धि होकर उत्साह आ जाता है। इसके सेवन से अण्डकोष सबल बनता है, पुम्बीज और ओज प्रवृत्ति
में सहायता मिलती है। नपुंसकत्व नष्टवीर्यत्व और शीघ्रपतन, तीनों विकृतियाँ नष्ट होकर तारूण्य-लक्ष्मी की पुनः प्राप्ति होती है।

इसका उपयोग सन्निपात की तीव्रावस्था में नहीं होता, फिर भी उसके उतरने पर उसके संकट या उपद्रव को दूर करने में यह लाभदायक
है। विविध विषम ज्वरों में संतत ज्वर उतरने पर श्लैष्मिक और श्वसन सन्निपात में ज्वर वेग दूर होने पर, आन्त्रिक ज्वर में शारीरिक उत्ताप
बिलकुल कम होने पर, अन्य प्रकार के ज्वर का वेग शमन होने पर नाड़ी में क्षीणता सर्वांग में चिपचिपापन और शिथिलता, हृदय में क्षीणता,
श्वास अधिक होने पर भी रोगी को पूर्ण सुध न होना ऐसी घातक स्थिति में यदि नाड़ी का वेग क्षण-क्षण में चेतना होना कम हो रहा हो
तो उस समय हेमगर्भ उपयुक्त है। परन्तु यह प्रबल मारक अवस्था दूर हो जाने पर शारीरिक उत्ताप कम हो, शीत अधिक हो, नाड़ी क्षीण
हो, नाड़ी स्पन्दन कम हो, उस स्थिति में लक्ष्मीविलास अति उपयोगी है। कभी-कभी सन्निपात ज्वरों की शीतांगवाली भयप्रद अवस्था में रोगी
८-१० दिन तक रह जाता है। ऊस पर यह रस अपूर्व कार्य करता है। इसने अनेकों को पुनर्जन्म की प्राप्ति करा दी है।

अतिसार रोग में आमाशय से बृहदन्त्र के अन्त भाग तक अब्धातु की वृद्धि होकर बड़े-बड़े जुलाब होते रहते हैं। परन्तु मलक्षय के विकार
में मल-प्रवृत्ति बराबर होती रहती है, थोड़ा-थोड़ा मल निकलता ही रहता है, बिल्कुल स्तम्भन नहीं होता। उस पर लक्ष्मीविलास उत्तम लाभ
पहुँचाता है। इस तरह क्षय रोग में उपद्रवरूप अतिसार पर भी यह लाभदायक है। केवल शारीरिक उष्णता मर्यादा में होनी चाहिये।

संक्षेप में यह रस किसी भी हेतु से निर्बलता आ जाने पर सब इन्द्रियों और अवयवों को योग्य परिमाण में पोषक द्रव्य की प्राप्ति करा
सशक्त बनाने वाली मूल्यवान औषधि है। इस हेतु से शरीर क्षयकारी अनेक व्याधियों में इसका उपयोग होता है। (औ.गु.ध.शा.)

श्वसनक ज्वर (न्युमोनिया) में यह रस लाभदायक है। इस रस के साथ मयूर के चन्द्रिका की भस्म, दालचीनी, मुलहठी और बहेड़े का चूर्ण मिला अदरक के रस और शहद के साथ प्रातः काल देते रहना चाहिये। यदि निर्बलता अधिक हो तो १/४ रत्ती कस्तूरी भी मिला देना चाहिये। रात्रि को समीरपन्नग रस देते रहें। इस तरह उपचार करने पर रोग निर्विघ्न दूर हो जाता है।

(६७) चन्द्रामृत रस

विधि–त्रिकटु (सौंठ, मिर्च, पीपल) त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला) चव्य, धनियाँ, जीरा, सैंधानमक ये १० औषधियाँ एक-एक तोला लें, बारीक कूटकर बकरी के दूध में ६ घन्टे खरलकर फिर शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और लोहभस्म २-२ तोले, सोहागे का फूला ४ तोले और कालीमिर्च का चूर्ण २ तोले मिलावें। पहले पारदगन्धक की कज्जली करें, फिर भस्म और चूर्ण क्रम से मिला ३ घण्टे बकरी के दूध में खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (र.र.)

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २-३ बार , बकरी के दूध, वासास्वरस, कुलथी के क्वाथ, कमल के रस, शहद-पीपल या अदरक के रस के साथ।

उपयोग–यह रस वातपित्तप्रधान, वातश्लेष्म प्रधान पित्त श्लेष्म प्रधान वातिक और पैत्तिक कास, रक्तयुक्त कास, शुष्ककास, कफयुक्त कास, श्वासयुक्त कास, ज्वरसह, श्वास, तृषा, दाह, भ्रम, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, कृमि, हृदरोग, पाण्डु, जीर्णज्वर आदि रोगों को दूर करता है। खाँसी की तीक्ष्ण व्याधि को एक-दो दिन में शांतकर देता है, तथा अग्नि, बल और वीर्य की वृद्धि करता है।

फुफ्फुसों में कफ अति संग्रहीत हुआ हो और ज्वर भी रहता हो, तो मुलहठी, अडूसा, गिलोय, भारंगी, मोथा और छोटी कटेली को समभाग लें, बारीक चूर्ण करके १॥-१॥ माशे शहद के साथ भोजन के बाद लें, या इसका क्वाथ अनुपान रूप से लेने से फेंफड़े निर्दोष और बलवान बनते हैं। इस रस का हमने भिन्न-भिन्न प्रकार से कास रोग में अनेक बार प्रयोग किया है।

यह अति प्रभावशाली सिद्ध औषधि है।

(६८) कफकुठार रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, ताम्रभस्म और लोहभस्म सब समभाग लें। पहले पारद-गंधक की कज्जली करके भस्म मिलावें। बाद में त्रिकटु का कपड़छन चूर्ण मिलाकर छोटी कटेली के फलों के रस में ६ घण्टे खरल करें। पश्चात् कुटकी के क्वाथ और धतूरे के पत्तों के रस की १-१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (र.रा.सु.)

मात्रा–१ से २ गोली, नागरबेल के पान के साथ देवें।

उपयोग–कफकुठार रस अत्यन्त तीक्ष्ण है। छाती में बहुत कफ का संग्रह हो गया हो, बार-बार खांसी आकर थोड़ा-थोड़ा कफ गिरता हो और ज्वर हो, तब खांसी का वेग कम कराने, कफस्राव कराने और श्वासवाहिनी पर शामक असर पहुँचाने में यह हितकर है।

कफकुठार का उपयोग उद्रिक्त कफ और तज्जन्य कासस्ह ज्वर पर होता है। जब कफ छाती से संग्रहीत होने से बार-बार खांसी चलकर अति गाढ़े चिपचिपे कफ की बड़ी-बड़ी गांठे निकलती रहती हैं, तब औषध योजना करने में बड़ी कठिनाई होती है। खाँसी अति त्रासदायक और बार-बार आती रहने से कभी-कभी अफीम प्रधान औषध देना पड़ती है। अफीम में स्तम्भक और शामक गुण होने से खांसी कम मालूम पड़ती है, परन्तु परिणाम में हानि अधिक होती है। कारण दुष्ट कफ भीतर में अधिक दुष्ट बनकर अपायकारी बन जाता है। इस हेतु से ऐसी त्रासदायक कास में अफीम सदृश केवल शामक औषधि नहीं देनी चाहिये। कफस्रावी और श्वासवाहिनियों पर शामक असर पहुँचाने वाली धतूरा-मिश्रित औषधि उपयुक्त होती है। इस रस में धतूरे के अतिरिक्त छोटी कटेली और कुटकी मिश्रित होने से उत्तेजना देकर कफस्राव कराना और कफ को पतला बनाकर घबराहट दूर करना, ये दोनों कार्य इससे सरलता पूर्वक होते हैं।

कफ अधिक संग्रहीत रहने से कुछ समय में प्रकुपित होकर ज्वरोत्पत्ति कराता है। ऐसे समय पर कफ जितना-जितना कम होता है, उतना-उतना ज्वर का बल भी घटता जाता है। इस ज्वर में ज्वरवेग अधिक होने पर भी नाड़ी का वेग तीव्र नहीं होता। समस्त शरीर गीला-सा और भारी मालूम पड़ता है। आलस्य अधिक आता है। सारा अङ्ग विशेषतः छाती अकड़ जाती है। आगे-आगे खाँसी का बल भी जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे छाती में शूल भी चलने लगता है। खाँसने पर शूल अधिक होता है, और पसलियाँ ऊपर खिंचकर घबराहट-सी होती है। कफ गिर जानेपर वेदना कम होती है, रोगी अशक्त और निस्तेज हो जाता है। ऐसा होने पर इस रस का अच्छा उपयोग होता है।

कफकुठार रस में ताम्र वेदनाशामक, आक्षेपनाशक और कफोत्पत्ति कम कराता है। धतूरा खांसी का वेग कम करके कफ बाहर निकालने में सहायता पहुँचाता है, वातवाहिनियों के लिये शामक है, और अन्तः स्राव को नियमित करता है। कटेली उत्तेजक और कफस्रावी है। कुटकी कफ पतला बनाने वाली और वामक (कफ बाहर निकालने में सहायक) है। पीपल कफस्रावी है। सोंठ और मिर्च पाचक और दीपक है। लोहभस्म शक्तिवर्द्धक है, तथा कज्जली योगवाही और रसायन है। (औ.गु.ध.शा.)

(६९) अग्निरस

विधि–शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, पीपल ३ तोले, हरड़ ४ तोले, बहेड़ा ५ तोले और अड़ूसे के पत्ते ६ तोले लेवें। सब यथाविधि मिला, बबूल की अन्तर्छाल के क्वाथ की २१ भावनायें देकर सूखा चूर्ण बना लें, अथवा २-२ रत्ती की गोलियाँ बांधे।(र.र.स.

अनेक ग्रन्थकारों ने इस अग्नि रस में भारंगी ७ तोले मिलाकर "भागोत्तर वटी" संज्ञा दी है।

यदि अग्निरस के सेवन के समय २-२ रत्ती भारंगमूल मिला लिया जाय तो कफस्थान की शक्ति अधिक बढ़ती है, जिससे कफ सरल से बाहर निकल जाता है। शुष्क कास के रोगियों के लिये भारंगमूल नहीं मिलाना चाहिये।

मात्रा–४ से ६ रत्ती, दिन में ३ बार शहद मिलाकर चटावें। सुबह शाम ऊपर बकरी का दूध पिलावें। दोपहर को दूध न दें।

उपयोग–यह रसायन कफयुक्त कास, श्वास, क्षय और उर:क्षत में अति लाभदायक सौम्य औषध है। क्षय में या जीर्ण कास रोग में क के साथ रक्त आता हो; या फुफ्फुसों पर चोट लग जाने से थूक में रक्त आता हो तब यह औषधि अच्छा लाभ पहुँचाती है। श्वासवाहिनि में से कफस्राव शीघ्र कराती है। कंठ और जिह्वा के दोष को शमन करती है और रक्त निकलना बन्द करती है। बार-बार कास चलती रह हो, ऐसी शुष्क कास में भी यह लाभदायक है। यह रस शामक होने से कास के वेग का ह्रास करता है।

(७०) लवंगादि तालसिन्दूर

विधि–कूपीपक्व रसायन प्रकरण में लिखे अनुसार तैयार किया हुआ तालसिंदूर और बिना मिश्री मिला लवंगादि चूर्ण ५-५ तोले मिलाक खरल करें। फिर ५ तोले लवंगादि चूर्ण का क्वाथ कर, उसकी ३ भावनायें देकर मूंग के समान गोलियां बनावें। (आ.नि.मा.)

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ से ३ बार, अदरक के रस और शहद के साथ अथवा नागरबेल के पान में देवें।

उपयोग–यह रस फुफ्फुसों के वायुकोष्ठ और श्वास प्रणालियों को सबल बनाता है, उनसे संग्रहित कफ को बाहर निकालता है और नूत कफोत्पत्ति को रोक देता है। यह लवंगादि तालसिंदूर श्वास, क्षय, कास, उर:क्षत आदि फेफड़े और हृदय के सब रोगों को दूर करता है। भोज में घी अधिक लेवें और पथ्य का आग्रहपूर्वक पालन करें। विशेष गुण तालसिन्दूर के वर्णन में लिखे हैं, किन्तु इस रसायन में तालसिन्दूर क उग्रता, लवंगादि चूर्ण के संयोग से शमन होकर लवंगादि चूर्ण के संयोग से अग्नि दीपन, कफनि:सरण, शुष्ककास शमन आदि गुणों की वृद्धि होती है।

(७१) श्वासकुठार रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, सोहागे का फूला और मैनसिल १-१ तोला और कालीमिर्च ८ तोले लेवें। पारद गन्धक की कज्जली करके बच्छनाभ, सोहागा और कालीमिर्च अनुक्रम से मिलावें। कालीमिर्च एक-एक डालते जायं और खरल करते जायँ। पश्चात् सोंठ, कालीमिर्च और पीपल १-१ तोले का बारीक चूर्ण मिला लेवें। कितने ही चिकित्सक इस रस को नागरबेल के पान के रस में खरल करके गोलियाँ बनाते हैं।

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में २ बार, नागरबेल के पान, अदरक के रस और मिश्री अथवा छोटी कटेली के साथ देवें।

उपयोग–यह रस श्वास, कास, मन्दाग्नि और वातश्लेष्म प्रधान रोगों को नष्ट करता है। सन्निपात, मूर्च्छा, अपस्मार, बेहोशी आदि में सुंघा से रोगी सुध में आ जाता है। फुफ्फुस आवरण शोथ (कुक्ष्युदर उरस्तोय) में जब तक जल उत्पन्न नहीं होता तब तक यह लाभ पहुँचा सकता है एवं सूर्यावर्त, आधा शीशी और दुस्सह शिरदर्द, प्रतिश्याय, ११ प्रकार के क्षय, हृद्रोग, शूल, दारुण स्वरभेद आदि में रोगानुसार अनुपान के साथ देने से उन रोगों को दूर करता है।

श्वासकुठार का उपयोग स्वतन्त्र श्वास रोग पर अच्छा होता है। मूलभूत श्वास रोग के अतिरिक्त अन्य कारणों से अन्य रोगों के पूर्वरूप उपद्रव या लक्षण रूप से गौण श्वास विकार भी होते हैं। हृद्रोग या सर्वाङ्गशोथ दोनों रोगों में श्वास की संप्राप्ति हो जाती है; ऐसे लक्षण रूप श्वास में इस रस का उपयोग नहीं होता।

वृद्धावस्था में या तरुणावस्था में ही कास और उसके साथ श्वास होने पर इसका उपयोग होता है। इस श्वास में घबराहट अधिक होती है। श्वासोच्छवास वेगपूर्वक चलता है। श्वास की अपेक्षा उच्छवास् लम्बा होता है। श्वास का वेग उत्पन्न होने पर रोगी बिल्कुल बेचैन हो जाता है। समीप में रहे हुए खम्भे या मनुष्य को पकड़कर बैठने से चैन पड़ेगा। ऐसा उसे भासता है। इस हेतु से जो कुछ हो उसे पकड़ लेता है। कफ छूटने के लिए जो पदार्थ मिले उसे मुंह में रखता है। इस श्वास का निश्चित कारण नहीं। किसी को शीतलवायु या शीतकाल के हेतु से, तथा कितनों ही को वर्षाकाल, शीतकाल, वर्षा या बर्फ गिरकर फिर शीतल वायु चलना आदि कारणों से श्वास हो जाता है। किसी-किसी को ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की प्रखर उष्णता के हेतु से श्वास वृद्धि होती है। इस तरह आहार-विहार के भेद से भी दौरा हो जाता है।

किसी को किञ्चित् अम्ल मट्ठे से श्वास वृद्धि होती है और इसके विपरीत किसी-किसी को प्रकृति भेद से ऐसे मट्ठे से श्वास रोग में लाभ पहुँचता है।

प्रतिश्याय होकर श्वासवाहिनियों में कफ का प्रादुर्भाव होने पर कुछ समय में कफावरोध होता है। फिर श्वास उत्पन्न होने पर इस औषध का उपयोग करना चाहिए। इस रोग में श्वासवेग होने पर बार-बार चक्कर आकर नेत्रों के समीप अन्धकार आता रहता है तथा अग्निमाँद्य, कास आदि लक्षण होते हैं। कफ न पड़े तब तक अधिक त्रास होता है, बार-बार खाँसी आती रहती है। कफ गिरने पर कुछ समय तक अच्छा लगता है। कण्ठ में कुछ वस्तु लगी हो ऐसा भासता है। कास वेग और श्वास वेग होने पर मुँह से बोलना भी कठिन हो जाता है। निद्रा बिल्कुल नहीं आती। क्वचित् आंख लगी तो थोड़े ही समय में श्वास का वेग पुनः बढ़कर ज्यादा घबराहट हो जाती है। यह घबराहट कफावरोध के हेतु से होती है। रोगी पलंग पर सीधा लेट नहीं सकता। बैठे रहने में कुछ अच्छा लगता है या आगे पीछे आधार रख लेने में कुछ शांती मालूम पड़ती है। यदि जरा-सा शयन किया तो तत्काल वेग वृद्धि होकर बैठा होना पड़ता है। गरम जल, गरम-गरम चाय, सेक, अंगीठी, ओढ़ने के लिए गरम वस्त्र आदि से अच्छा लगता है। जरा-सी ठंड लगने पर श्वास-वेग और व्याकुलता बढ़ जाती हैं। श्वासवेग अधिक होने पर नेत्र आधे मिच जाते हैं। नेत्र की पुतली कुछ ऊपर चढ़ी हुई भासती है। प्रस्वेद आना (विशेषतः कपालपर) मुँह में शुष्कता, आवाज न निकलना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे श्वास में श्वासकुठार रस लाभदायक है।

आकाश में बादल घिर आने, वर्षा होने तथा शीतल और आर्द्र वायु चलने पर श्वास सहज बढ़ जाता है। इस तरह गीली जमीन पर बैठने, शीतल भोजन या कफवर्द्धक भोजन करने पर श्वास बढ़ जाता है। शीतवीर्य और शीत स्पर्श वाली वस्तुओं से कफ बढ़कर श्वास हो जाता है। इस प्रकार के श्वास विकार में श्वासकुठार का अच्छा उपयोग होता है। इस प्रकार के रोगों पर समीरपन्नग भी लाभदायक है।

श्वास के अतिरिक्त मोह, मूर्च्छा, भ्रम आदि में बेहोशी होने पर नस्यरूप से इसका उपयोग किया जाता है। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना-(१) पित्तज श्वास कास में इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

कभी-कभी श्वासकुठार से कितने ही रोगियों को उष्णता बढ़ जाती है। ऐसे समय पर प्रवालपिष्ठी और गिलोयसत्व या दाड़िमावलेह अथवा मिश्री मिले दूध का सेवन कराना चाहिये।

(७२) श्वासरोगान्तक वटी

विधि-शुद्ध सोमल १ तोला, श्रृङ्ग भस्म ११ तोले, सोहागे का फूला और सफेद मिर्च का चूर्ण २-२ तोले लें। सबको मिला नागरबेल के पान के रस में ३ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा-१ से २ गोली। दिन में २ बार शहद, मिश्री मिले हुए दूध अथवा घृत के साथ देवें।

उपयोग-नया और पुराना श्वासरोग, जिसमें कफ बहुत गिरता हो, श्वास नलिकाऐं कफ से भारी रहती हों, थोड़ा-सा परिश्रम करने पर श्वास रुकने लगता हो, ऐसे रोग में इस वटी से जल्दी लाभ पहुँचता है। जिन रोगियों की पचनक्रिया अधिक दूषित न हुई हो उन रोगियों को विशेषतः जीर्ण रोग में घी के साथ दिया जाता है। घी २-४ तोले मिलाया जाता है।

स्व. पं. सुखरामदासजी टी. ओझा सफेद सोमल १ तोला, सफेद कत्था २ तोले और रसोईघर का धूआँ १ तोला मिला नागरबेल के पान के रस में १२ घन्टे खरल करा आध-आध रत्ती की गोलियां बनाते थे। इनमें से १ से ४ गोली कफप्रधान श्वास रोगी को शीतल जल के साथ देते थे। भोजन के साथ घी, कड़वे तैल के पकोड़े, आम का आचार और शाक में भी सरसों का तैल देते थे। दूध-दही नहीं देते थे। क्वचित् रोगी को दूध लेना हो तो थोड़ा देते थे। कड़वा तैल जितना सेवन करें, उतना अधिक कफस्राव होता है ऐसा उनका कथन था।

सूचना-पित्तप्रधान प्रकृतिवालों को यह वटी न दें। वृक्क स्थान सदोष होने से योग्य मूत्रोत्पत्ति न होती हो तो भी यह रसायन न देवें। यकृत् निर्बल होने से पित्तस्राव न्यून हो तो घी अधिक न दें, दूध पिलावें।

दूसरी विधि-शुद्ध बच्छनाभ, शुद्ध सिंगरफ, सोहागे का फूला और पीपलामूल २-२ तोले, पीपल, सफेद मिर्च, मुनक्का, छोटी हरड़ और मुलहठी ५-५ तोले, काली तम्बाखू के डंठल के कोयले १० तोले और केशर ६ माशे लें सबको कूट कपड़छान चूर्ण कर नागरबेल के पान के रस में १२ घण्टे खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा-१ से २ गोली दिन में ३ बार। जल, शहद अथवा नागरबेल के पान के साथ देवें।

उपयोग-यह वटी तमाखू के व्यसन से होने वाले श्वास और कास को दूर करती है। कफजन्य कास, श्वास और शूलपर शीघ्र लाभ पहुँचाती है। जुकाम, अरुचि, मन्दाग्नि, मलावरोध, सूक्ष्म ज्वर और अतिसार को भी नष्ट करती है।

सूचना-तमाखू के डंठल के छोटे-छोटे टुकड़े कर मिट्टी के बर्तन में रखकर जलावें। निर्धूम होने पर ढक्कन से ढक दें, वरना राख हो जायेगी। जिस दिन कोयले करें उसी रोज गोलियाँ बना लेनी चाहिये।

(७३) मल्लादि वटी (श्वास-कास)

विधि–शुद्ध सोमल, वंशलोचन, इलायची और जावित्री २-२ तोले को मिला गुलाबजल में २ दिन खरल करके ज्वार के दाने ब गोलियाँ बनावें।

मात्रा–१-१ गोली दिन में २ बार। दूध के साथ देवें।

उपयोग–इस वटी के सेवन से कफ, श्वास, जुकाम, जीर्णज्वर, वमन, प्रमेह और वातविकार आदि रोग दूर होते है। इस औषध में सो की उष्णता अन्य शीतल औषधियों के योग से कम हो जाती है। इस हेतु से जिन रोगियों को उग्र औषधि सहन न होती हो उनको भी दे सकते हैं।

अधिक धूम्रपान करने या अन्य कारण से कफ प्रकोप होकर श्वसन संस्थान में दीर्घकाल से अधिक कफ संग्रहीत रहता हो, तब कफ पी और चिपचिपा बन जाता है यह बड़े कष्ट से थोड़ा-थोड़ा निकलता रहता है। श्वासनलिका और कण्ठ में कफ चिपका ही रहता है। बाहर निका की इच्छा होने पर भी निकाल नहीं सकते। ऐसी अवस्था में इस मल्लादि वटी का सेवन दूध की मलाई या गोघृत के साथ कराने से व सरलता से बाहर आ जाता है, एवं कफ की उत्पत्ति भी कम हो जाती है। यह वटी जीर्णवात प्रकोप पर अच्छा लाभ पहुँचाती है, हृदय सबल बनाती है और निर्बलता को दूर करती है। इस वटी का उपयोग पं. सुखरामदासजी टी. ओझा प्राणाचार्य भी जुकाम और कफ प्र पर अनेक वर्षों तक करते रहे थे।

(७४) श्वासदमन चूर्ण

प्रथम विधि–शुद्ध मैनसिल, भूनी हींग, बायविडङ्ग, कूठ, कालीमिर्च और सैंधानमक समान भाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (र.र.स

मात्रा–४-४ रत्ती, दिन में २ बार। दौरा होने पर २-२ घण्टे से २-३ बार शहद और घी के साथ दें।

वक्तव्य–अन्य आचार्यों ने इसे कफकेसरी संज्ञा दी है।

उपयोग–इस औषधि के सेवन से श्वास, हिक्का और कास में लाभ पहुँचता है। हृदयावरोध और श्वास की रुकावट तुरन्त कम हो जा है, तथा हिक्का और कफयुक्त कास नष्ट होती है। घबराहट होने पर यह औषधि तुरन्त फल दर्शाती है।

इस औषधि का उपयोग आक्षेप काल में श्वास वेग के दमनार्थ अधिक होता है। यद्यपि एफेड्रिन (Ephendrine) जो सोम (Ephedr Vulgaris) का क्षारीय सत्व है, उसकी अपेक्षा अति कम कार्य करती है। परन्तु अति उग्र औषधियों का सेवन करने पर सच्चा रोग दम नहीं होता, आजीवन बार-बार उनका सेवन करना पड़ता है। इसके विपरीत आयुर्वेदिक औषधि का सेवन तत्काल लाभ नहीं पहुँचा सकत कुछ समय लगता है, परन्तु रोग निरोधक शक्ति को शिथिल नहीं बनाता। कुछ काल तक आयुर्वेदिक औषधि का पथ्यपालन सह सेवन कर पर सदा के लिये रोग निवारण हो जाता है।

इस औषधि में आक्षेपहर मुख्य औषधि कूठ है और हींग सहायक है मनः शिलादि शेष औषधियां कफघ्न है। यदि अपचन, अफारा शूल और घबराहट हों, तो वे भी दूर हो जाते हैं। आक्षेपकाल में इस औषधि का सेवन १-१ घण्टे पर ३ बार और आक्षेप न होने पर दि में २ या ३ बार कराया जाता है।

जिस तरह यह चूर्ण श्वास के आक्षेपकाल में व्यवहृत होता है, उस तरह हिक्का और हृदय विकारसह श्वासारोध (Cardiac Asthma पर भी व्यवहृत होता है।

यह चूर्ण पित्तवर्द्धक होने से अम्लपित्त विकार, मुखपाक, कण्ठशोथ या अन्य पित्तप्रधान, विकारसह श्वास कास पर प्रयुक्त नहीं होता। ए बिना घी मिलाये इस चूर्ण का सेवन नहीं कराया जाता, अन्यथा कण्ठ में प्रदाह हो जाता है।

दूसरी विधि–शुद्ध मैनसिल ८ तोले और गोदन्ती भस्म २० तोले को मिलाकर खरल करें। (श्री पं. कांतिलाल जी आचार्य)

मात्रा–२-२ रत्ती, दिन में २-३ बार। अथवा आवश्यकतानुसार १-१ घण्टे पर ३ बार शहद या घी-शहद के साथ देवें। आवश्यकत पर सैंधानमक मिला लेवें।

उपयोग–यह रस पित्तप्रकृति वालों को कफ प्रकोपज श्वासप्रकोप होने पर श्वास वेग दमनार्थ दिया जाता है। इस औषधि से सरलता से कफ बाहर निकलता है तथा श्वासावरोध और व्याकुलता दूर होती है। पहली विधि की अपेक्षा यह औषध सौम्य है। तीव्र आक्षेप हो तब रसतन्त्रसार के द्वितीय खण्ड में लिखा हुआ तालीस सोमादि चूर्ण दिया जाता है। सामान्यतः उष्ण प्रकृति, उष्ण ऋतु, तमाखू के व्यसनी मुखपाक और अम्लपित्त वाले रोगियों को यह कृति विशेष अनुकूल रहती है।

(७५) हिक्कान्तक रस

विधि–सुवर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी, ताम्रभस्म और लोहभस्म को समभाग मिला बिजौरे के रस की ३ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा–१ से ३ रत्ती, बिजौरे के रस, शहद और काले नमक से या कारणानुसार अनुपान के साथ २-२ घण्टे पर २-३ बार देवें।

उपयोग–यह रस हिचकी को निःसन्देह शमन करता है। इस रसायन का नाम 'रसचंडाँशु' कार ने सुवर्णभस्मादि योग लिखा है।

यह रस यमला, गम्भीरा और महाहिक्का तीनों पर प्रयोजित होता है। इनमें विशेषतः यमला पर अधिकतर फलदायी है। इन तीनों हिक्काओं की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न कारणों से होती है। अतः मूल कारण की ओर लक्ष्य देकर अनुपान और पथ्य की योजना करनी चाहिये।

इन तीनों में से यमला की उत्पत्ति उदरस्थ अवयवों (अन्ननलिका, आमाशय, लघुअन्त्र, बृहदन्त्र, यकृत या उदर्य्याकला) के प्रदाह या गर्भधारण आदि कारण से महाप्राचीरापेशी का आक्षेप होने पर होती है। आमाशय प्रदाह होने पर मुखपाक, छाती में जलन, खट्टी वमन होते रहना, अरुचि और आमाशय में भारीपन आदि, लघु अन्त्र का प्रदाह होने पर अतिसार आदि। बृहदन्त्र के क्षतयुक्त प्रदाह होने पर प्रवाहिका, रक्तातिसार आदि तथा इन सबमें प्रदाह फैल जाने पर मिश्रित लक्षणोंसह यमला हिक्का की उपस्थिति होती है। उदर्य्याकला के व्यापक प्रदाह में उदर पर पीड़नाक्षमता (दबाने पर अधिक पीड़ा) आध्मान, शूल, बद्धकोष्ठ, वमन, शीतल स्वेद आदि लक्षणोंसह हिक्का उपस्थित होती है। गर्भधारण से हिक्का हुई हो तो उसके अनुसार लक्षण मिलते हैं।

यमला के इन सब विकारों पर हिक्कान्तक रस उपकारक है। आमाशय प्रदाह होने पर हींगु, सोंठ, नमक आदि उग्र उपचार लाभ नहीं पहुँचा सकता। शामक उपचार ही करना चाहिये। अतः मूलग्रन्थकार ने बिजौरे का रस, शहद और काले नमक (मात्रा १-२ रत्ती) के अनुपान की योजना की है। उसके साथ देवें, किन्तु जिनका अम्ल अनुपान सहन न हो, उनको त्रिफला चूर्ण और शहद के साथ दिया जाता है।

लघुअन्त्र प्रदाह में दाड़िमावलेह या विजयावलेह के साथ, आमाशयप्रदाह और लघुअन्त्रप्रदाह दोनों होने पर जीरकाद्यरिष्ट या कनकासव के साथ अथवा हरड़ प्रधान तालीसादि चूर्ण के साथ देना चाहिये। बृहदन्त्रप्रदाह में कुटजारिष्ट कुटजावलेह के साथ देना विशेष हितावह है। रक्तातिसार हो तो आवश्यकता अनुसार ग्रहणी कपाट रस या कर्पूर रस मिला देना चाहिये।

अन्त्र में दूषित मल, कीटाणु कृमि या विष उपस्थित हैं तो पहले दो तीन दिन तक आरोग्यवर्द्धिनी (त्रिफला फाण्ट के साथ) देकर उदर को शुद्ध करना चाहिये। फिर हिक्कान्तक रस देने से लाभ पहुँचता है।

उदर्य्याकला का व्यापक प्रदाह हो तो वेदना शमनार्थ पूरी मात्रा में अफीम देते रहना चाहिये। उसके साथ हिक्का शमनार्थ हिक्कान्तक रस पोस्तदाने के लेह या कर्पूर रस के साथ देते रहना चाहिये।

गम्भीरा हिक्का की सम्प्राप्ति फुफ्फुसान्तराल में उत्पन्न अर्बुदों के दबाव से महाप्राचीरापेशी का आक्षेप होने पर होती हैं। इनमें सौम्य अर्बुदजन्य दबाव हो या धमनी में अर्बुद का दबाव हो तो हिक्कान्तक रस से सत्वर लाभ पहुँचता है। सच्चे अर्बुदों पर अनुपान कट्फलादि क्वाथ में शहद, हींग और अदरक का रस मिलाकर देने से श्वासावरोध, पार्श्वशूल आदि लक्षणों सह हिक्का का निवारण होता है। धमन्यर्बुद (Aneurysm) हो तो शहद और लहशुन का स्वरस या हरड़ का क्वाथ अनुपान रूप से देना चाहिये। सच्चे अर्बुद का दबाव होने पर गात्रनीलिमा उपस्थित होती है जो धमन्यर्बुद में नहीं होती। इस पर से दोनों का विभेद हो जाता है।

महाहिक्का मस्तिष्कप्रदाह (Encephalitis Lethargica) मस्तिष्कार्बुद (Cerebraltumour)से होती है। इनमें मस्तिष्कप्रदाह कीटाणुजन्य रोग है। इनमें मुख्य लक्षण मस्तिष्क के पिछले खण्ड में शिरदर्द, चक्कर आना, रोंगटे खड़े होना, प्रारम्भ में १०२° से १०५° तक ज्वर तथा सर्वांगिक निर्बलतासह हिक्का होती है। उस पर मूलरोग शामक औषधि, सूतराज रस या महावातविध्वंसन रस के साथ हिक्कान्तक रस देते रहने से लाभ पहुँचता है।

यदि यमला की उत्पत्ति गम्भीर व्यापक उदर्य्याकला प्रदाह से हो, गम्भीरा की उत्पत्ति फुफ्फुसान्तरालन के घातक अर्बुद से हो तथा महाहिक्का की उत्पत्ति मस्तिष्कस्थ घातक अर्बुद से हुई हो तो इस मूल कारण का निवारण नहीं हो सकेगा जिससे लक्षण रूप या उपद्रव भूत हिक्का शमन नहीं होती। फिर भी हिक्कान्तक रस का सेवन (हरड़ मिश्रित लघुमंजिष्ठादि क्वाथ के साथ) कराते रहने से हिक्का के वेग का शमन होता है और रोगी का चित्त प्रसन्न रहता है। इस तरह इन असाध्य हिक्काओं में भी हिक्कान्तक रस का उपयोग सफल माना जाता है।

सूचना–प्रादाहिक हिक्का होने पर जल गरम करके शीतल किया हुआ देवें। कुआँ या नदी का ताजा जल देने पर प्रदाह और हिक्का बढ़ जाते हैं।

(७६) वान्तिहृद्रस

विधि–लोहभस्म, शंखभस्म, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद, सबको ५-५ तोले लेकर कज्जली करें। पश्चात् घीकुँवार, धतूरे के पत्ते चांगेरी के रस की १-१ भावना देकर गोला बनावें। सूखने पर ७ कपड़मिट्टी करके २ सेर गोबरी में फूँक दें। स्वांग शीतल होने पर खर कर लें। (र.च

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में ३ या अधिक बार शहद के साथ दें। ऊपर पीपल वृक्ष की राख को जल में भिगोकर उसका नितरा हु जल पिलावें। कृमि रोग में वमन होती हो तो बायबिडंग, अजवायन के चूर्ण और शहद के साथ दें।

उपयोग–यह वान्तिहृद् रस जीर्ण वमन रोग, अपचन जनित वमन, पित्तप्रकोपज वमन और कृमिरोग का नाश करता है।

वमन के लक्षण अनेक रोगों में भिन्न-भिन्न उपस्थित होते हैं सामान्यतः वान्ति के कारण ३ प्रकार के हैं–

(१) आमाशय और तत्सन्निध अवयवों की स्थानिक विकृति।

(२) वातवाहिनियां, वातवहा नाड़ीकेन्द्र या मानसिक विकृति।

(३) दोषदूष्य संयोगजन्य, वृक्क, गर्भाशय आदि अन्य स्थानों की विकृति से उत्पन्न विकार।

इनमें से पित्तजन्य आमाशय विकृति पर विशेषतः पित्त के तीव्रत्व, अम्लत्व और द्रवत्व गुण बढ़ने पर वान्तिहृद् रस का उपयोग कि जाता है। जीर्ण विकार, कण्ठ में जलनसह अत्यधिक मात्रा में कै होना, साथ-साथ अफारा, भोजन करने पर तुरन्त वमन, अङ्गकान्ति निस्त हो जाना आदि लक्षण होने पर वान्तिहृद् रस उत्तम औषधि है।

दूषित अन्न, बासी दुर्गन्धयुक्त भोजन, गर विष, फटा हुआ दूध या ताम्र आदि धातुओं के पात्र में रखा हुआ भोजन आदि के सेवन कै होने लगती है। ऐसे समय पर प्रारम्भ में वमन आदि क्रिया द्वारा संशोधन कराना चाहिये। फिर विष अनुसार प्रतियोगी विषघ्न उपचार क चाहिये। इस पर इस वान्तिहृद् रस का उपयोग नहीं होता। केवल निज रोगों में यह रस उपयोगी है।

अम्लपित्त, पित्तज परिणामशूल, अन्नद्रवशूल आदि व्याधियों में बार-बार त्रासदायक वमन होने पर इसका उपयोग होता है। एवं वीभ पदार्थ के दर्शन, भोजन में मक्षिका आदि का प्रतीत होना या अन्य मानसिक कारण से उत्पन्न छर्दि में भी यह कुछ अंश में उपयोगी है

सर्वांग में शोथ, पाण्डुरोग, हृदयरोग, यकृत्वृद्धि और जीर्ण ज्वर आदि जीर्ण व्याधियों में स्थानिक विकृति होकर वमन होती हो तो वान्ति रस का उत्तम उपयोग होता है। विशेषतः पित्तप्रधान विकार होने पर बहुत अच्छा लाभ पहुँचाता है।

जीर्ण कृमिज हृद्रोग और कृमिज पाण्डु रोग पर इस औषधि का उपयोग करके निर्णय करना चाहिये। कृमिजन्य तीव्र विकार में तो इस उपयोग नहीं होता, ऐसा अनुमान है।

संक्षेप में यह रस पित्तघ्न, आमाशय के पित्त को शमन करने वाला, जीर्ण रोग में हितकर, पाचक, कृमिघ्न और बल्य है। (औ.गु.ध.श

सूचना–यह रस दूषित भोजन और विष भक्षण से वमन होने पर एवं उपदंश और जीर्ण सुजाक के रोगवाले को नहीं देना चाहिये यह औषधि मलावरोध के रोगी एवं सगर्भा स्त्री को भी नहीं देनी चाहिए।

तीव्र वमन के रोगी को एक साथ अधिक जल न पिलावें। यदि पीपल (अश्वत्थ की) छाल को जला, श्वेत भस्म बना, १६ गुने में भिगो ३ घन्टे बाद ऊपर से साफ जल नितारकर मिट्टी के घड़ें में भर लेवें, उसमें से थोड़ा-थोड़ा जल आवश्यकतानुसार पिलाते रहें विशेष हितकर माना जायेगा।

(७७) रसादि चूर्ण

विधि–शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, कपूर ३ तोले, शुद्ध शिलाजीत ४ तोले, खस ५ तोले, श्वेतमिर्च ६ तोले और मि ७ तोले मिलाकर खरल करें। (भै.र

मात्रा–१ से २ रत्ती, शीतल जल के साथ दिन में ३ बार दें।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन से अत्यन्त बढ़ी हुई तृषा शमन होती है। इस कारण से यह औषधि तृषा रोग एवं अन्य रोग के तृषा उपद्रव में उपयोग में ली जाती है। मधुमेह, विसूचिका, अतिसार, मदात्यय, दाह और विष प्रकोप आदि रोगों में और अन्य कारण से तृषा बढ़ पर इस औषधि का उपयोग करने से अब्धातु की प्रवृत्ति नियमित होकर तृषा शमन हो जाती है।

(७८) कुमुदेश्वर रस

विधि–ताम्रभस्म ४ तोले और वनौषधि से मारित वगंभस्म २ तोले मिला, मुलहठी के क्वाथ की ७ भावनायें देकर आध-आध रत्ती गोलियां बनालें (र.चं.

मात्रा–१-१ गोली, दिन में ३ बार लेवें। ऊपर से निम्न चन्दनादि क्वाथ पिलावें।

चन्दनादि क्वाथ–सफेद चन्दन, अनन्तमूल, नागरमोथा, छोटी इलायची और नागकेशर १-१ तोला और धान की खील (लाह्या) ५ तोले मिला कर १६ गुने जल के साथ, आधा जल रहे तब तक उबालकर छान लें। फिर मिश्री और मधु मिलाकर थोड़ा-थोड़ा पिलावें।

आम प्रकोप से तृषा लगती हो जो मुलहठी के क्वाथ के साथ देवें।

उपयोग–इस रसायन के सेवन से पित्तप्रकोप, आम प्रकोप या मधुमेह आदि रोग या अन्य किसी कारण से उत्पन्न हुई तृषा शमन होती है एवं वमन होती हो वह भी दूर होती है।

यह रस मूलग्रन्थ में तृषा चिकित्सा में दिया है। तृषा स्वतन्त्र रोग नहीं है, किन्तु उपलक्षण है। इस औषध के पाठ और भावना का विचार करने पर यह केवल पित्तज तृषा के लिये उपकारक है, ऐसा नहीं, मधुमेहजन्य तृषा और आमज तृषा पर भी उपयोगी है। मधुमेह विकार एवं यकृत् की अशक्ति उत्पन्न होने से बार-बार अधिक मूत्रोत्सर्ग होता हो और रोगी कृश होकर ओजक्षय विशेष रूप से हुआ हो तो भी इस रस के सेवन से लाभ पहुँच जाता है।

शुक्रस्खलन की आदत हो जाने पर अपचन और कोष्टबद्ध आदि विकार उपस्थित होते हैं, फिर थोड़ा-सा जड़ सेवन करने पर वह पचन नहीं होता, और अपचन बढ़ने पर बार-बार शुकस्राव होता रहता है। मुखमण्डल उदास प्रतीत होता है। जीवन पर बिल्कुल निराशा-सी हो जाती है। यह रोग वर्तमान में बहुत बढ़ गया है। इस पर कुमुदेश्वर से जल्दी लाभ पहुँचता है। (औ.गु.ध.शा.)

(७९) राजावर्त रस

विधि–राजावर्त भस्म, पारद भस्म (रससिंदूर), ताम्रभस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म चारों समभाग मिला, थोड़े घी के साथ मन्दाग्नि पर घृत शोषण होकर औषध संमिश्रण हो जाने तक पका लेवें। (र.चं.)

मात्रा–१ से २ रत्ती। दिन में २ बार, मक्खन-मिश्री या मिश्री, घी और शहद के साथ देवें।

उपयोग–यह रस मदात्यय रोग, दाह, शिरदर्द और पित्तविकार को दूर करता है तथा हृदय को सबल बनाता है।

मदात्यय रोग में शारीरिक और मानसिक निर्बलता तथा निस्तेजता आ जाती है। रोगी का मुखमण्डल मलीन हो जाता है। निद्रानाश, प्रलाप, नेत्र में लाली, दाह, शीत लगना, कम्प होना, भयदर्शन होना, हृदय में विविध प्रकार के संशय होना, अतिप्रस्वेद आना, निःश्वास में दुर्गन्ध निकलना, आमाशय में उग्रता आ जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। क्वचित् रोगी अधिक सुरापान कर लेवें तो उसके हृदय में चोरी, डाका, नरहत्या, व्यभिचार आदि दुर्दमनीय कार्य की लालसा उत्पन्न हो जाती है। इस विकार से हृदय में मेद वृद्धि, वृक्कविकृति, ध्वजभंग, उन्माद, मस्तिष्क विधान में विकृति, मृगी, पक्षाघात आदि होकर आयुक्षय होता है। इस विकार में निद्रानाश, दाह, व्याकुलता आदि लक्षण होने पर इस रस का अच्छा उपयोग होता है। इस रस के सेवन से मस्तिष्क और हृदय सबल बनते हैं, जिससे दाह, अति प्रस्वेद और आमाशय की उग्रता आदि लक्षण शमन हो जाते हैं। फिर रोगी शनैः शनैः रोगमुक्त होकर बलवान और तेजस्वी बन जाता है।

(८०) कामदुधा रस

विधि–मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, शुक्ति भस्म, वराटिका भस्म, शंखभस्म, सुवर्णगैरिक (सोनागेरू) और गिलोयसत्व इन ७ औषधियों को समभाग मिलाकर खरल कर लें। (र.यो.सा.)

मात्रा–१ से ३ रत्ती तक। दिन में २ बार, जीरा-मिश्री के साथ। अम्लपित्त में आँवलें के चूर्ण और घृत के साथ।

उपयोग–कामदुधा रस शीतवीर्य, क्षोभनाशक और शक्तिदायक है तथा पचनक्रिया, रुधिराभिसरण, वातवहन क्रिया और मूत्रमार्ग पर शामक असर पहुँचाता है। कामदुधा से जीर्णज्वर, पित्तविकार, अम्लपित्त, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, चक्कर, उन्माद, अपस्मार, मस्तकशूल, सोमरोग, प्रदर, रक्त गिरना शीघ्र दूर होते हैं। मगज की निर्बलता, मूत्रदाह, मुखपाक, रक्तार्श, सगर्भा स्त्री की वमन, मानसिक त्रास इत्यादि भी शमन होते हैं।

कामदुधा रस शीतवीर्य होने से इसका शामक परिणाम पचनक्रिया, रुधिराभिसरण, वातवहन क्रिया और मूत्र मार्ग पर होता है। इसके योग से इन सब अवयव समूहों में उत्पन्न दाह कम हो जाता है। इसका कार्य भ्रम, चक्कर आदि विकारों से लेकर उन्माद की परिस्थिति पर्यन्त मस्तिष्क के विकार, आमाशय से लेकर सब महास्रोतों के विकार, मूत्राघात, मूत्रोत्सर्ग, मूत्रकृच्छ्र आदि मूत्रविकार तथा सामान्य रक्तस्राव और नाक में से रक्तस्राव से लेकर रक्तपित्त की भयङ्कर स्थिति तक रुधिराभिसरण क्रिया, सब पर भिन्न-भिन्न रीति से होती है।

इस औषधि में प्रधानतः सुधाकल्प होने से इसका उपयोग सामान्य शक्तिवर्द्धक रूप से भी होता है। जीर्णज्वर से उत्पन्न शक्तिपात चाहे जितना अधिक हो तो भी इससे दूर होता है। शंख, वराटिका भस्म के योग से प्लीहावृद्धि नष्ट होकर प्लीहा को मूल स्थिति की प्राप्ति होती है। मन्दाग्नि दूर होकर क्षुधा उत्तम प्रकार से लगती है। शीतसह ज्वर में कड़वी औषधियों का उपयोग बहुत किया जाता है। इनमें क्विनाइन

का अधिक उपयोग होने पर बधिरता, मन्दाग्नि, भ्रम, अरुचि, अन्न की इच्छा कम हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न होने पर कामदुधा उत्तम ला पहुँचाता है। [illegible] सुवर्णमालिनी भस्म का सिक्षण करना चाहिये।

पित्त विदग्ध होने पर रक्त भी विदग्ध होता है फिर इस हेतु से रक्तवाहिनियों की श्लैष्मिक कला विकृत होकर दीवार पतली हो जा है। पश्चात् रक्तवाहिनियां फूट-फूटकर रक्त बाहर निकलने लगता है। इस परिस्थिति में चूने का अंश बहुत कम हो जाता है। इस रक्तपित्त- साथ सर्वाङ्ग में दाह, चक्कर, नेत्र खोलने पर सारा संसार फिरता हुआ भासना, मूत्र में दाह, जहां से रक्त गिरता हो वहां से रक्त गरम-गर निकलना और वहाँ पर दर्द होना इत्यादि पित्तप्रधान रक्तपित्त होने पर कामदुधा का उत्तम प्रयोग होता है।

पित्तभूयिष्ठ या वातभूयिष्ठ शीर्षशूल में कामदुधा अच्छा लाभ पहुँचाता है। कितनों ही को शिरदर्द दिनों तक होता रहता है। शिरदर्द हो होकर वमन होने पर शिरदर्द कम होता है। इस अवस्था में कामदुधा रस देना चाहिये। यदि वमन हो जाने पर भी शिरदर्द रहता हो तो सूतशेख देना चाहिये।

पित्तप्रधान शीर्षशूल में रोगी अति क्रोधी, व्याकुल, जरा-सा कारण मिलने पर शिर को कूटने वाला, असहनशील, एवं जोर से हँसना, जो से बोलना, बालकों का रोना, बाजे आदि की आवाज, पक्षियों का कलरव आदि सहन न होना, रोगी की मानसिक स्थिति अत्यन्त नाजुक जाना आदि लक्षण होते हैं। ऐसे रोगी को सूतशेखर की अपेक्षा कामदुधा अधिक हितकर है। इस विकार में पित्तप्रकोप होता है, वह कामदुध से शमन हो जाता है। सूतशेखर से पित्त की उत्पत्ति नियमित बनती है अर्थात् पित्त अधिक तीव्र गति से या अधिक परिमाण में उत्पन्न न होता। कामदुधा से पित्त की तीक्ष्णता और अम्लता कम होकर पित्त की प्रबलता नष्ट होती है। अतः जब पित्त की तीक्ष्णता के हेतु से त्रा होता हो तब कामदुधा का उपयोग करना चाहिये।

जागरण, अति मानसिक श्रम, अति विद्याभ्यास, सूर्य के ताप या अग्नि का अधिक सेवन आदि कारणों से नेत्रों में त्रास पहुँचता है ए शिरदर्द होने लगता है उस पर कामदुधा रस अति लाभदायक है। यदि क्षोभ बढ़ जाने पर मस्तिष्क की विचार और धारणशक्ति कम हो जा हो तो उस अवस्था में कामदुधा सदृश क्षोभनाशक और शक्तिदायक औषधि की ही योजना की जाती है।

आमाशयस्थ पित्त में वृद्धि होने पर जलन, खट्टी डकारें, शिरदर्द, चक्कर आदि लक्षण होकर खट्टी और कड़वी वमन हो, उसे अम्लपि कहते हैं। इस विकार में पित्तस्राव आवश्यकता से अधिक होता है या पित्त की तीव्रता बढ़ जाती है। पित्त का स्राव अधिक होने से भोज खट्टा हो जाता है और खट्टी वान्ति होती है, ऐसे समय पर सूतशेखर का प्रयोग अधिक होता है। परन्तु पित्त की तीव्रता अधिक होने पर वम होने में अधिक त्रास होना, पित्त थोड़ा-थोड़ा निकलना आदि लक्षण होने पर कामदुधा का प्रयोग करना चाहिये। अनुपान रूप से आँवले क चूर्ण और घी या नागकेशर का चूर्ण और घी मिला देना चाहिये, जिससे पित्त की तीव्रता से बाधा न पहुँचते हुए अम्लपित्त शमन हो जा है। यह अम्लपित्त रोग बढ़ जाने पर पित्त की तीव्रता और भोजन के विदाह से आमाशय की श्लैष्मिक कला में क्षोभ और दाह होते हैं। फि क्वचित् सूक्ष्म-सूक्ष्म व्रणों की उत्पत्ति होती है। इस तरह के अम्लपित्त जनित विकारों पर कामदुधा का उत्तम उपयोग होता है।

यह रसासन शीतवीर्य (शामक) होने से पित्त की तीक्ष्णता का शमनकर उसे सौम्य बना देता है। इस औषध में गेरु अति शामक औ स्तम्भक औषधि होने से पित्त का स्राव भी कम हो जाता है। कामदुधा के योग से रक्त और रक्तवाहिनियों का प्रसादन होता है फिर क्षोभ दूर हो जाता है। पित्तातिसार और रक्तातिसार पर कामदुधा की शामकता प्रतीत होती है। इस औषधि के योग से अन्तस्त्वचा का क्षोभ शम हो जाता है। रक्तातिसार और पित्तातिसार में लघु अन्त्र और बृहदन्त्र की अन्तस्त्वचा का क्षोभ हो जाता है। उदर में दाह होता रहता है। ज पीने की बार-बार इच्छा होना, शौचादि जाने पर गुदा में जलन ये सब पित्तप्रकोपजनित लक्षण होने पर कामदुधा रस उत्तम कार्य करता है

विदग्ध पित्त के योग से रक्त का विदाह होता है। इस हेतु से रक्त में तीक्ष्णत्व आदि पित्त के धर्मों की वृद्धि हो जाती है। ऐसे गुणवाल रक्त जब रक्तवाहिनियों में वहन करता रहता है तब रक्तवाहिनियों की अन्तस्त्वचा अधिकाधिक पतली होती जाती है। फिर कुछ क्षोभोत्पाद कारण मिलने पर रक्तवाहिनियां फूटकर उनमें से रक्तस्राव होने लगता है। इन सब में विदग्धपित्त कारण है, और रक्तपित्त कार्य है इस पर प्रवालमुक्त आदि औषध का उपयोग होता है। परन्तु इनमें स्तम्भकपना न होने से कितनी ही विशेष अवस्था में कामदुधा की योजना करनी चाहिये। बार बार रक्त पड़ते ही रहना, रक्तस्राव बन्द हुआ भी तो बहुत थोड़े समय के लिये। एक स्थान पर बन्द होने पर अन्य स्थान पर पुनः प्रारम्भ हो जाना, रक्त में जमकर संधान करने की क्रिया मन्द हो जाने से रक्त गिरते रहना, सर्वाङ्ग में दाह, हाथ-पैर, नेत्र और मूत्र में जलन, पंखे से वायु ढालते ही रहना, मस्तिष्क फिरता हुआ सा रहना, घर, आकाश आदि फिरने का भास होना, कभी चक्कर विकार बढ़कर मूर्च्छा आ जाना आदि लक्षण होने पर कामदुधा उत्तम कार्य करता है।

पित्तदोष की विकृति से पचन-क्रिया विकृति होती है। फिर उदर में सेन्द्रिय विष का निर्माण होता है, यह पित्त-गुणभूयिष्ठ होता है। इसका प्रकोप होने पर उन्माद सदृश विकार उत्पन्न होता है। इस घोर दोष संचय का परिणाम मनोवृत्ति पर होता है, जिससे अल्पसत्व मनुष्य का मन चंचल होता है। उसमें चल विचलता होकर विभ्रमावस्था की प्राप्ति हो जाती है। इसे ही उन्माद कहते हैं। इस विकार में बुद्धि का विभ्रम, मन की अस्थिरता, दृष्टि की अस्थिरता, चंचल और व्याकुल नेत्र, धैर्य नाश, इच्छानुसार असम्बद्ध प्रलाप, हृदय में अकस्मात् शून्यता आ जाना, बार-बार चक्कर आना, चक्कर आकर बेहोशी आ जाना, आदि लक्षण होने पर कामदुधा रस उत्तम कार्य करता है।

हृदय के विकार में पित्तप्रकोप के लक्षण अधिक होने पर कामदुधा का उपयोग करना चाहिये। इसमें हृदय और नाड़ी की गति बढ़ना, बार-बार चक्कर आना, हृत्स्पन्द और अन्य पित्त-लक्षण बढ़ जाना आदि विकार प्रतीत होते हैं ऐसी परिस्थिति में कामदुधा हितकारक है।

सर्वाङ्ग शोथ में व्याकुलता, चक्कर, अकारण थकावट, उबाक, वमन, शिरदर्द, उदर में दाह आदि पित्तलक्षण प्रकाशित हों, इस विकार में यदि मूत्र का परिमाण अति कम हो तथा मूत्र लाल, गाढ़ा हो तो तीव्र क्षारप्रधान मूत्रल औषध लाभ नहीं पहुँचा सकती। तीव्र औषधि देने पर वृक्कों का दाह अधिक बढ़कर शोथवृद्धि हो जाती है। अतः शामक औषध का उपयोग किया जाता है। यदि शामक मूत्रल औषधि दी जायेगी तो वृक्कों को अधिक कार्य करना पड़ता है। वह भी कितनी ही अवस्था में इष्ट नहीं होता। केवल क्षोभनाशक, शीतवीर्य, प्रसादन औषध का अधिक उपयोग होता है। यह कार्य कामदुधा से होता है। कामदुधा शीतवीर्य होने से मूत्रपिण्डों को होने वाला त्रास विशेषांश में कम हो जाता है। यह शामक होने से रक्त का प्रसादन करके शोथ कम कराता है। अतः वृक्कविकार जनित पित्तप्रधान सर्वांग शोथ में कामदुधा की योजना करनी चाहिये।

गवीनियों (Ureters) में से मूत्र निकलने के समय दाह और वेदना होना, स्रोत से स्फोटयुक्त फटी-सी हो जाना आदि लक्षण होने पर कामदुधा का प्रयोग कराना चाहिये।

स्त्रियों के रक्तप्रदर में कामदुधा उपयोगी है। सगर्भावस्था में कड़वी, खट्टी जलती हुई वमन होती हो तो वह भी कामदुधा रस के सेवन से शमन हो जाती है।

बालकों की काली खांसी पर उपयोगी औषधियों में कामदुधा रस उत्तम औषधि है। अति निर्बलता आने पर आमाशय में अधिक उग्रता होने पर अन्य औषधियाँ जब निष्फल हो जाती हैं तब यह लाभ पहुँचा देता है। (औ.गु.ध.शा.)

(८१) गंधक रसायन

प्रथम विधि–शुद्ध गंधक को गाय के दूध, चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर) का क्वाथ, गिलोय का स्वरस, हरड़, बहेड़ा, आंवला इनका अलग-अलग क्वाथ, भाँगरे का रस और अदरक का रस इन वस्तुओं की आठ-आठ भावनायें दें, सुखाकर बारीक चूर्ण करें। (यो.र.)

कितने ही चिकित्सक आठ-आठ भावनाओं के स्थान पर केवल एक-एक भावना देते हैं। अधिक भावनायें देने से गुण में वृद्धि होती है।

मात्रा–आध से १ माशे तक दिन में दो बार, समभाग मिश्री मिलाकर दूध के साथ सेवन करें। कुष्ठ रोग में दारुहल्दी, हल्दी, मजीठ, अनन्तमूल, आँवला गोखरू, गिलोय, काले खैर की छाल, चोपचीनी और नीम की निबोली के क्वाथ के साथ एक मास तक सेवन करें। फिर एक मास छोड़ देवें। पुनः प्रारम्भ करें। इस तरह ३ वर्ष तक सेवन करने से कुष्ठ शमन हो जाते हैं।

उपयोग–इस गन्धक रसायन के सेवन से वीर्य की वृद्धि और शरीर की दृढ़ता होती है, पाचनशक्ति बलवान् बनती है। खाज, कुष्ठ और उग्र विषदोष दो मास के सेवन से नष्ट हो जाते हैं। घोर अतिसार, ग्रहणी, रक्त और शूल सहित ग्रहणी, जीर्णज्वर, प्रमेह, वातरोग, उदररोग, अण्डकोष वृद्धि और सोमरोग को यह रसायन दूर करता है। ६ मास सेवन करने से बाल काले हो जाते हैं और युवावस्था के समान बल की प्राप्ति होती है। संक्षेप में यह रसायन अनेक व्याधियों को दूर करता है। बिल्कुल मरण तुल्य शरीर वालों को भी बलवान, नीरोग और दीर्घ आयु वाला बनाता है। वीर्य की वृद्धि करता है। वात, पित्त और कफ तीनों दोषों में से बढ़े हुए को घटाता है और घटे हुए को बढ़ाता है। जीर्णज्वर, जीर्ण रोग, राजयक्ष्मा, प्रमेह, पाण्डु, क्षय श्वास, अर्श आदि रोगों को दूर करके शरीर को तेजस्वी बना देता है।

इस गन्धक रसायन के साथ यदि रससिंदूर या सुवर्ण भस्म का सेवन किया जाय तो बलवृद्धि के लिये विशेष लाभ पहुँचता है।

इस गन्धक रसायन के गुण पाठ में अनेक प्रकार की व्याधियों के नष्ट करने का लिखा है, परन्तु इसको एक विशेष प्रकार की दोष-दूष्यों की संगति चाहिये। इसका कार्यक्षेत्र रक्त और त्वचा है। किसी भी कारण से रक्त दूषित हुआ हो, तो उसे शुद्ध बनाना यह धर्म इसमें मुख्य है। ऐसे शरीर मे संचित हुए विकृत द्रव्यों का रूपान्तर और भेदन करके शुद्ध बनाने का कार्य भी करता है।

रक्त की अशुद्धि के हेतु से रस आदि सप्त धातुओं में मलिनता उत्पन्न होने पर उनका धर्म अर्थात् आवश्यक तत्वों के संशोषण और रूपान्त करके आत्मसात् करने का गुण मन्द हो जाता है। फिर रक्त का संशोधन कर धातुओं के इस धर्म को पुनः प्रस्थापित करेन की आवश्यक है। यह कार्य इस रसायन से उत्तम प्रकार से साध्य होता है।

समस्त शरीर में संचारित विशेष प्रकार का विष दीर्घकाल पर्यन्त रह जाने से सप्तधातुओं में लीन होकर विविध प्रकार की चिरकारी औ जिद्दी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार के दोष-दूष्यों के जीर्ण संयोग में यह अमृतवल्ली के सदृश कार्य करता है।

इस स्थान पर विष दो प्रकार के विवक्षित हैं-(१) स्थावर जंगमात्मक तीव्र, (२) शरीर के भीतर शारीरिक सूक्ष्म कोषाणुओं से उत्पन्न होने पर तीव्र या मन्द- सामान्य विष और उपदंश, सुजाक आदि रोगों के विशिष्ट विष। इन दोनों प्रकार के विषों की जीर्णावस्था में इस रसाय का उत्तम उपयोग होता है।

गन्धक रसायन जिन रोगों में उपयोगी होता है उन रोगों में मुख्य लक्षण दाह होना चाहिये। मूत्र में जलन, हाथ-पैरों में दाह, उदर दाह, शरीर में दाह, मस्तिष्क के भीतर, कण्ठ, जिह्वा आदि पर दाह, शौच जलता हुआ होना, अधोवायु उष्ण निकलना, किञ्चित चलने-फिर पर सर्वाङ्ग में जलन-सी हो जाना, हाथ-पैर किसी स्थान पर रखने पर दाह होना, हाथ पैरों पर शीतल जल की पट्टी रखने की इच्छा हो आदि लक्षण होने पर पित्त की तीक्ष्णता समझनी चाहिये। ये लक्षण किसी विशिष्ट विष (संक्रामक कीटाणु) का देह में संचय होने पर ही होते हैं। उपदंश की जीर्णावस्था में गन्धक रसायन के अतिरिक्त उपदंश सूर्य, अष्टमूर्ति रसायन, मल्लसिंदूर, व्याधिहरण आदि औषधियाँ दी जाती हैं। परन्तु ये सब दाह अत्यधिक होने पर उपयोग में नहीं आती। उपदंशसूर्यादि मल्लप्रधान औषधियाँ उपदंश के कीटाणुओं के लिये मारक हैं तो भी विविध दोष-दूष्य संयोगों के अनुरोध से आयुर्वेद की दृष्टि से विविध चिकित्सा करनी पड़ती है। यह उपदंशज विष अथवा पूयशुक्र (Gonorrhoea) जनित विष, क्षुद्र कुष्ठजनक सेन्द्रिय विष या अन्य सेन्द्रिय विष इनमें से किसी के योग से पित्तदोष बढ़कर पित्त रक्तस्थित होने पर दाह के उपरोक्त लक्षण होते हैं। इस दोष-दूष्य संयोग में यह विशेष उपयोगी है।

त्वचा पर सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिका या स्फोट, अतिशय शुष्क खुजली होना, शौच-शुद्धि न होना, देह पर अति खुजाने से उस स्थान पर दाह होना, कभी रक्त निकल जाना आदि लक्षण होने पर इसे मिश्री के साथ देना चाहिये। शुष्क कण्डू के सदृश दीर्घकाल स्थायी और त्रासदायक पामा पर भी इसका अच्छा उपयोग होता है।

खुजली के विशिष्ट प्रकार के कीटाणु (Parasites) होते हैं जो अति जिद्दी और त्रासदायक होते हैं। गंधक रसायन के सेवन से इन कीटाणुओं को पोषण मिलना बन्द हो जाता है। इस हेतु से रक्त और त्वचा में कीटाणु का बल न्यून होकर रोग शमन होने लगता है। इसके सेवन से दो-तीन दिनों के भीतर पामा आदि के फोड़े बड़े हो जाते हैं, जिससे किंचित् विकार बढ़ने का भ्रम होता है, परन्तु यह सचमुच में इसके लागू होने के चिह्न हैं। वर्षानुवर्षपर्यन्त त्रास भोगने वाले रोगी गन्धक रसायन के सेवन से सुधर गये हैं। जितना विकार जीर्ण हो उतना ही यह अधिक कार्य करता है।

पामा सदृश अन्य क्षुद्र कुष्ठ में भी गन्धक रसायन का उपयोग होता है। मात्रा १-२ रत्ती तक। जैसे-जैसे रोग बल कम हो, वैसे-वैसे मात्रा कम करनी चाहिये। यहां तक कि एक सप्ताह में एक बार केवल एक ही रत्ती, त्वचा साफ होने तक देते रहना चाहिये।

मस्तक पर फोड़े होकर उनमें से दुर्गन्धयुक्त गांठ निकलना, सफेद या पीला पूयस्राव होना आदि विकारों पर गन्धक रसायन की अपेक्षा रसपर्पटी अधिक हितकर है। परन्तु इन फोड़ो में ही शुष्कता, कण्डू, ऊपर सफेद त्वचा निकलते रहना, खुजाने पर अतिशय दाह होना आदि लक्षण हों तो उस पर यह अप्रतिम औषध है। मस्तक पर इन्द्रलुप्त होने पर मस्तक में जलन होती हो तो इसका उपयोग उत्तम प्रकार से होता है।

महाकुष्ठ में विशेषतः पित्तप्रधान महाकुष्ठों में इस रसायन का उत्तम उपयोग होता है। परन्तु इनमें में भी विशेष लक्षण दाह होना चाहिये। कुष्ठ शुष्क और न फूटा हुआ हो एवं इसका विष रक्त और त्वचा पर्यन्त प्रवेशित हो, देह पर उत्पन्न धब्बे या स्फोटों में लाली, खुजली और दाह विशेष हो तथा सर्वत्र त्वचा में कुछ-कुछ जलन होती हो तो इसे देना चाहिये। इस कुष्ठ पर अनुपान रूप से विवेचन के प्रारम्भ में लिखा हुआ दार्व्यादि क्वाथ देने से कुष्ठ दूर होने के उदाहरण मिले हैं। यह प्रयोग सतत तीन वर्ष पर्यन्त करना पड़ता है।

पामा दब जाने पर अनेक बार विविध विकारों की उत्पत्ति होती है। कितनी ही बार तो पामा और अन्य विकार घटमाल के समान एक पीछे एक क्रमशः होते और मिटते रहते हैं। अर्थात् पामा मिटने पर दूसरा रोग उत्पन्न होता है और उसे शमन करने पर पामा तैयार हो जाता है। यह रोगानुबंध क्रम दीर्घकालपर्यन्त सतत् चलता रहता है। ऐसे विकारों पर यह उत्तम कार्यकर औषध है। क्वचित् पामा बिल्कुल शमन होकर दूसरे रोग के निदानार्थकर होती है। फिर से पामा की उत्पत्ति नहीं होती परन्तु नया उत्पन्न रोग दीर्घकाल पर्यन्त त्रास देता रहता है। अतिसार, संग्रहणी, शीर्षशूल, मुखपाक, उदर में वायु की गुड़गुड़ाहट और दाह आदि विकारों में से कोई उत्पन्न होने पर यह लाभदायक है। मात्रा अति

कम देने से अति उत्तम कार्य होता है।

उपदंश का जीर्ण विष, अन्य दूषि विष, पारद विष (दूषित रसकपूर का सेवन, हिंगुल का धूम्रपान या अन्य) और जंगम विष की जीर्णावस्था आदि कारणों से घोर अतिसार या संग्रहणी रोग होना, साथ में रक्त और आम जाना, उदर में कतरने के सदृश या शूल के समान वेदना आदि लक्षण होने पर यह अत्यन्त उपयुक्त है।

उपदंश या अन्य सेन्द्रिय विष की जीर्णावस्था में उत्पन्न प्लीहा-वृद्धि और अग्निमाँद्य के साथ में यदि सर्वांग में दाह हो तो गन्धक का उपयोग करना चाहिये।

प्रमेह और मधुमेह ये स्थूल और अति कृश मनुष्यों को भी हो जाते हैं। स्थूल मनुष्य को गुग्गुलु, शिलाजतु, त्रिफला आदि अधिक हितकर है तथा कृश मनुष्यों में जिनको जननेन्द्रिय-सम्बन्धी रोग हो जाने से ये विकार हुए हों उनको गन्धक रसायन देना चाहिये।

उपदंश आदि रोगों का विष जीर्ण हो जाने पर वातवाहिनियों पर असर पहुँचाता है, तब वातवाहिनियों की विकृति होकर सर्वांगवात, पक्षाघात अथवा अन्य शारीरिक व्यापार को नष्ट करने वाला रोग उत्पन्न होता है। ऐसे विकारों पर यह उत्तम कार्य करता है। इस शारीरिक व्यापार की न्यूनता का परिणाम अन्त्र पर होने पर अन्त्र बिलकुल अशक्त हो जाती है। फिर कोष्ठबद्धता, मल में सुपारी के सदृश गांठे हो जाना, गांठों को बाहर निकालने की शक्ति अन्त्र में न रहना, उदर में अशक्ति और दाह आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं उस पर पहले स्नेहन करा फिर गन्धक रसायन का उपयोग करना चाहिये।

उपदंश की जीर्णावस्था में सांधों में शोथ, दांतों में से रक्तस्राव, सारे शरीर में स्थान-स्थान पर गांठें होना, रक्तवाहिनियाँ मोटी-मोटी हो जाना, खड़े रहने की शक्ति नष्ट होना, हाथ पैरों में कम्प होना, कभी-कभी विकार की तीव्रता बढ़ने से जमीन पर पड़े रहना, छाती और सर्वांग में शूल चलना, हृदय में खुजली चलना, सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिकायें निकलना आदि लक्षण होने पर गंधक रसासन उत्तम काम करता है।

पूयशुक्र की जीर्णावस्था में सर्वांङ्ग में दाह, अण्डकोष बढ़कर उसमें पीड़ा होना, उस पर थोड़ा शोथ आ जाना, मूत्रोत्सर्ग करने पर मूत्रप्रसेक नलिका में दाह होना, मूत्राशय के मुख या मूत्रप्रसेक नलिका पर दबाने से पीड़ा होना, उसमें से थोड़ा-थोड़ा पूय निकलना आदि लक्षण होते हैं। इस पर गन्धक रसायन ने अनेक बार उत्तम लाभ पहुँचाया है। कभी पूयशुक्र के विष से नेत्रों में शूल, समग्र शरीर में शूल और दृष्टिनाश आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। उन्हें भी यह रसायन दूर करता है। ऐसी तीव्रावस्था में गन्धक रसायन के साथ खखसा के फूल ६-६ माशे और प्रवालपिष्टी १-१ रत्ती मिलाकर दिन में ३ समय देते रहने से लाभ त्वरित होता है। साथ में बाह्य उपचार भी करते रहना चाहिये।

अबुधजन स्त्रियों के पूयशुक्र और प्रदर दोनों को अज्ञान के हेतु से एक ही मान लेता हैं। जब कि पूयशुक्र-मूत्रवाहिनी और मूत्राशय का रोग है तथा प्रदर अपत्य मार्ग, गर्भाशय और बीजाशय का रोग है। पूयशुक्र में स्राव मूत्रमार्ग से और प्रदर में स्राव अपत्यमार्ग से होता है। पूयशुक्र रोग जीर्ण होने पर उसके कीटाणु अपत्य मार्ग गर्भाशय में पहुँचकर उसे दूषित करते हैं। फिर गर्भाशय में भी पूयस्राव होने लगता है। परन्तु इस स्राव और प्रदर के स्राव में अत्यधिक अन्तर है। यह स्राव पीला, दुर्गन्धयुक्त और दाहक होता है। साथ में जलन, सर्वाङ्ग में दाह, शिथिलता, हाथ-पैर टूटना आदि पित्तप्रधान लक्षण होते हैं। इस प्रकार के विकार में यह उत्तम उपयोगी है।

अर्श रोग अनेक वस्तुओं से होता है। यदि कोष्ठबद्धता से उत्पन्न हो तो आरोग्यवर्द्धिनी हितावह है। बड़ी अन्त्र के कुण्डलिका-भाग (Sigmoid) और उण्डुक (Caecum) में शिथिलता आने से त्रिवली पर दबाव आकर अर्श उत्पन्न हुए हों, उसकी किनारी सूज गयी हो, गरम-गरम जल गिरता हो, कुण्डलिका और उण्डुक में दाह, व्याकुलता आदि लक्षण हों तो इसका उत्तम उपयोग होने के अनेक उदाहरण मिले हैं।

अर्श रोग आनुवंशिक भी होता है। इस तरह अन्य रोगों में उपद्रव रूप से हो जाता है। किसी-किसी रोगी में अर्श, कास और श्वास, किसी-किसी में अर्श और संग्रहणी एवं कितने ही रोगियों में अर्श और अपस्मार, इस तरह विकारों के द्वन्द्व अर्थात् एक शमन होने पर दूसरा घटमाल सदृश क्रमशः होता रहता और मिटता रहता है। इन द्वन्द्वों पर गन्धक रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है।

नेत्र की किनारी लाल-लाल हो जाना, भीतर से तीक्ष्ण वाष्प निकलना, नेत्र में अतिशय खुजली चलना, दाह, फिर पूयाभिष्यन्द भी हो जाता है। यदि इसमें मूल कारण, पारद का अधिक सेवन अथवा सुजाक या उपदंश विष हो तो इसका उपयोग करना चाहिये।

नासाव्रण शुष्क और दाहयुक्त, उपजिह्व-अधिजिह्व दाहयुक्त छोटे बच्चों को होने वाला तालुकण्टक, तालु के भीतर छिद्र हो जाना, कण्ठ में पिटिका हो जाने से शुष्क कास चलना और दाह विकार होने पर गन्धक रसायन का उत्तम उपयोग होता है।

जीर्ण नाड़ीव्रण, जीर्ण अस्थिव्रण, जीर्ण मांसगत व्रण इन रोगों में पूय कम हो परन्तु दाहयुक्त लसीका स्राव, व्रण स्थान पर भयंकर जलन, वह इतनी अधिक कि रात-दिन व्याकुलता बनी रहना, व्रण के प्रत्येक किनारे की और मिर्च लगाने के सदृश जलन आदि लक्षण होने पर इससे अति सत्वर लाभ होने के उदाहरण मिले हैं।

दन्तव्रण (Pyorrhoea) या दंतपुप्पुट होने पर मसूड़े में जलन, मसूड़े पर जरा-सा धक्का लगने पर रक्तस्राव होना, दाहयुक्त पूय निकलना, फिर यही विकार जीर्ण होने पर अग्निमांद्य, छर्दि, शूल, विष अन्त्र में जाने पर ग्रहणी, अतिसार, यकृत् आदि इन्द्रियों के चिरकारी विकार हो

जाना, पश्चात् इनसे दूष्योदर होना, जिसमें घबराहट, मूत्र बिल्कुल कम हो जाना, मूत्र लाल हो जाना, सर्वाङ्ग में दाह आदि लक्षण होते उन पर यह उत्तम कार्य करता है। अन्य प्रकार के दूष्योदर में भी यदि पित्त लक्षण अधिक हों, तो इसका अप्रतिम उपयोग होता है।

विशेष किसी भी प्रकार के स्पष्ट कारण न होने पर रोगी दिन-प्रतिदिन निर्बल होता जाता है और बलमांस विहीनत्व की प्राप्ति होती अन्तरेन्द्रिय में जो-जो अवयव समूह अशक्त होते जाते हैं कितनी ही सूक्ष्म जांच की तो भी रोग का विशिष्ट कारण नहीं मिलता। असात्म्येन्द्रिया संयोग समान सामान्य कारण मिलता है। ऐसे रोग में उत्पन्न हुए बलमांसविहीनत्व नष्ट हुए वीर्य, लुप्त हुई शक्ति, मन्द हुई अग्नि, शिथिल हु स्नायु इन सबको सम-स्थिति में लाकर योग्य कार्यक्षम बनाने की शक्ति गन्धक रसायन और षड़गुणबलिजारित रससिन्दूर में है। सेवन यो रोगी की अवस्था रससिन्दूर के विवेचन में दी है। पित्तप्रधान लक्षण पर गन्धक रसायन और कफप्रधान पर रससिन्दूर लाभदायक है। (अ गु.ध.शा.के आधार से)

पथ्य–शक्कर, साठी चांवल, गोघृत, केला, सैंधानमक, आम के पक्के मधुर फल, दालचीनी, पुराना शहद, मांस, नागरबेल का पान, सुपा कत्था आदि।

अपथ्य–नमक, खट्टे पदार्थ, शाक-भाजी, सब प्रकार की दालें, चाय, कॉफी, तेल, गुड़, बीड़ी या सिगरेट पीना, स्त्री-प्रसंग, सवा पर बैठना और कसरत और अग्नि सेवन और सूर्य के ताप से हो सके उतना बचना चाहिये।

गन्धक रसायन में मुख्य द्रव्य गन्धक है। गन्धक का सेवन करने पर उसमें से गन्धक मल, मूत्र, दुग्ध, स्वेद और निःश्वास द्वारा बि परिवर्तन हुए निकल जाता है मल में ५५ से ८०% और मूत्र में १० से ४०% निःश्वास में दुर्गन्ध निकलने से उसमें और स्वेद में निकल से पहने हुये चांदी के जेवरों में और त्वचा पर श्यामता आ जाती है।

गन्धक अन्त्र की परिचालन क्रिया को उत्तेजित करता है, मल को मुलायम बना देता है, उदर में गन्धकमय हाइड्रोजन गैस उत्पन्न करत है जिससे अपान वायु और दस्त में दुर्गन्ध आती है।

गन्धक विष का दूरवर्ती असर–गन्धक का शोषण रक्त में सल्फाइड्स (द्विविद्ध प्रतिक्रिया युक्त गन्धक मिश्रण) और गन्धकात्मक हाइड्रोज रूप से होता है जो प्रबल विष है। वह पहले रक्त रंग का ह्रास करता है फिर रक्त रंग का विश्लेषण। परिणाम में देह पर नीलता, बेहोशी और मांसपेशियों की शिथिलता आती है। अतः गन्धक का सेवन अधिक मात्रा में नहीं करना चाहिये।

किन्तु गन्धक में से गन्धक रसायन बनाने पर गन्धक की तीव्रता का कुछ अंश में शमन होता है। जिससे रक्त के भीतर रक्त रंग को हा नहीं पहुँचाती। उदर में हाइड्रोजन की उत्पत्ति नहीं होती और मांसपेशियों के बल का ह्रास नहीं होता। मन्दगति से स्थिर कार्य होता रहता है। चिरकारी जीर्ण रोग में गन्धक की अपेक्षा गन्धक रसायन का उपयोग कम मात्रा में ज्यादा समय तक करने पर दुराग्रही स्थिर रोगों में भी अच्छा परिणाम आता है।

गन्धक रक्त में जाने पर वहाँ रहे हुए त्वचा रोगोत्पादक (ब्यूची, पामा, कण्डू आदि रोगों के) कीटाणुओं का नाश करता है।

अन्त्र में जाकर वहाँ पर अवस्थित हानिकर कीटाणु और आमविष को जला देता है। अपचन, प्रतिश्याय, अन्त्रप्रसेक, शीशा (नाग) विष, **जीर्ण आमवात, कातरक, संधिप्रदाह और आम विष से उत्पन्न अनेक रोगों में विकार को जलाने के लिये गन्धक उपयोगी है।**

यकृत् प्रदाह पित्ताशयप्रदाह आदि रोगों में यकृत् को अधिक कार्य नहीं देना चाहिये। इसलिये घृत तैल आदि का सेवन कम किया जाता है। इसके अतिरिक्त यकृत् उत्तेजित न हो यह भी सम्हालना पड़ता है। इस हेतु से सोंठ, मिर्च, पीपल आदि उत्तेजक औषधियाँ या उत्तेजक भोजन भी नहीं दिया जाता है। ऐसी अवस्था में गन्धक रसायन का उपयोग शामक अनुपान नींबू, संतरा, मोसम्बी या अनार के स्वरस के साथ कराना चाहिये।

यदि आमाशय में अम्लता की वृद्धि या उग्रता आई हो, रक्त की प्रतिक्रिया अम्ल हो और अपचन प्रधान विकार हों तो रक्त को क्षारीय बनाये ऐसा मिश्रण बनाकर गन्धक रसायन का सेवन कराया जाता है। मुक्ता, प्रवाल, शुक्ति, शंख, वराटिका आदि सुधाकल्प मिश्रण अति हितकारक है। इस दृष्टि से प्रवाल पंचामृत मिला दिया जाता है। भोजन में चावल का सेवन कम कराया जाता है। खट्टे फल, खट्टा दही, गरम-गरम भोजन छुड़ाया जाता है। आमाशय रस अम्ल बनने पर आँवला और पेठा दोनों हितकर हैं। अतः अनुपान रूप से आँवलों का या पेठे का शर्बत दिया जाता है।

त्वचा रोग होने पर सर्वदा कोष्ठशुद्धि होती रहे वैसी औषधि और भोजन देना चाहिये। इस हेतु से त्वचा रोग पर गन्धक रसायन का सेवन गुलकंद या आँवलों के मुरब्बे के साथ कराया जाता है।

कफवृद्धि हो या आमवृद्धि हो, ऐसी अवस्था में शहद, पीपल का योग सत्वर गुणदायी होता है।

सूचना–कदाचित् शक्ति से अधिक परिमाण में गन्धक रसायन का सेवन होगा तो उदर में मरोड़े हो जायेंगे। इसलिये थोड़े परिमाण में ज्यादा दिन तक लेना अच्छा है अथवा मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये।

(८२) उन्मादगजकेसरी रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और शुद्ध मैनसिल १-१ तोला और धतूरे के शुद्ध बीज ३ तोले लेवें। सबको यथाविधि मिला बच और रास्ना के क्वाथ की ७-७ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां अथवा सूखा चूर्ण बना लेवें। रसराजसुन्दर में रास्ना के स्थान में ब्राह्मी की भावना लिखी है शेष पाठ समान हैं। (यो.र.)

मात्रा–१ से ४ रत्ती तक। दिन में २ बार, मक्खन-मिश्री अथवा घृत और सफेद मिर्च के साथ देवें।

उपयोग–यह रस उन्माद, अपस्मार, भूतोन्माद और ज्वर आदि को दूर करता है। इन्द्रिय, मन और बुद्धि को प्रसन्न तथा सब धातुओं की विकृति को शमन करके प्रकृति साम्य बनाता है। जब वातप्रकोप अधिक हो, शरीर रूक्ष, कृश, शुष्क हो गया हो, त्वचा का रङ्ग कुछ श्याम प्रतीत होता हो, भोजन जीर्ण होने पर व्याधि का बल बढ़ता हो, उस अपस्मार में यह रसायन लाभदायक है। इन तीव्र लक्षणों में रास्नायुक्त भावना लाभदायक है और जिसको ज्वर, दाह, निद्रानाश और बुद्धिविकृति विशेषांश में हों, वातप्रकोप आदि चिन्ह सामान्य हों, उसके लिये ब्राह्मी की भावना हितकर है।

भूतोन्माद, जिसमें पहले के प्राप्त ज्ञान की स्मृति आने पर विद्वतापूर्ण व्याख्यान देना या वार्तालाप करना, उन्माद के वेग का समय अनिश्चित रहना, और कफोन्माद, जिसमें अरुचि, निस्तेजता, तन्द्रा, अतिनिद्रा, वमन, लालास्राव आदि लक्षण हों, इन दोनों प्रकार के उन्माद में ब्राह्मी की भावना वाला रसायन अच्छा काम देता है एवं मानसिक चिन्ताजनित और पित्तप्रधान उन्माद जिसमें क्रोध, निद्रानाश, रक्तवर्ण, दौड़ा-दौड़ी या मारपीट करना आदि लक्षण हों उसमें यह रसायन बहुत थोड़ी मात्रा में ब्राह्मी घृत या ताजे दूध के साथ देना चाहिये अथवा ताप्यादि लोह का सेवन कराना चाहिये।

सूचना–भोजन पथ्य दें। सूर्य के ताप या अग्नि का सेवन, धूम्रपान और मानसिक चिन्ता को छुड़ा दें तथा मन को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करें।

(८३) भूतभैरव रस (उन्माद)

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध तपकिया हरताल, शुद्ध मैनसिल, लोह भस्म, शुद्ध काला सुरमा और ताम्रभस्म प्रत्येक १-१ तोला और शुद्ध गन्धक १२ तोले लेवें। पहले पारद-गन्धक मिलाकर कज्जली करें। फिर और औषधियां मिला मनुष्य मूत्र, गोमूत्र या बकरे के मूत्र में दही जैसा प्रवाही बनाकर कड़ाही में डाल मन्दाग्नि पर औषधि को पका लेवें। (यो.र.)

मात्रा–२ से ४ रत्ती तक। दिन में २ बार गोघृत में मिलाकर चटावें। आवश्यकता हो तो थोड़ा शहद मिला देवें और ऊपर से त्रिकटु (सोंठ, मिर्च और पीपल) का क्वाथ बना, हींग और घी मिलाकर (अथवा छोंककर) पिलावें अथवा धतूरे के ५ शुद्ध बीजों के साथ खिलाकर ऊपर आध छटांक घी पिलावें। धतूरे के बीजवाला अनुपान अन्नदोष वाले स्थूल रोगी के लिये विशेष हितकर है।

उपयोग–भूतभैरव रस से भूतोन्माद, मानसिक चिन्ताजन्य उन्माद, अपस्मार, हिस्टीरिया आदि वातवाहिनियों से सम्बन्ध वाले सब रोग शांत होते हैं। इस औषधि से मलावरोध दूर होता है, निद्रा आने लगती है तथा थोड़े ही दिनों में उन्माद दूर हो जाता है।

(८४) वातकुलान्तक रस

विधि–कस्तूरी, शुद्ध मैनसिल, नागकेसर, बहेड़ा, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल, इलायची और लौंग २-२ तोले लें। पहले पारद-गन्धक की कज्जली करें फिर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला जल (ब्राह्मी के क्वाथ) में खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। (रसे. सा. सं.)

मात्रा–१-१ गोली। दिन में २ या ३ बार जटामांसी के क्वाथ से दें।

उपयोग–वातकुलान्तक रस महा घोर अपस्मार, हिस्टीरिया, मूर्च्छा, आक्षेपयुक्त विविध वातरोग, निद्रानाश, प्रबल हिक्का, धनुर्वात, सूतिका रोग में आक्षेप आदि को दूर करता है और मन को प्रसन्न बनाता है एवं सन्निपात न्यूमोनिया आदि रोगों में बुद्धिभ्रंश, मूर्च्छा, कम्प, आक्षेप, प्रलाप आदि उपद्रवों को शमनकर निद्रा लाने के लिये भी यह रस हितकर है।

हिस्टीरिया में निद्रानाश को दूर करने के लिये यह महौषध है। मानसिक विकृतिजन्य अपस्मार में अभ्रकभस्म आध-आध रत्ती मिलाते रहने से त्वरित लाभ होता है। मानसिक व्याघातजन्य मूर्च्छा में भी अभ्रक भस्म के साथ देना विशेष हितकर माना गया हैं एवं बालकों के दांत आते समय तीव्र आक्षेप (रक्ताधिक्य न हो तो) कण्ठ, आमाशय, अन्त्र, मूत्रनलिका, पित्ताशय, पित्तनलिका, महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) आदि के आक्षेप का यह रस तत्काल शमन करता है। धनुर्वात, बालकम्प हृदयकम्प आदि वातवाहिनियों की विकृति पर यह अति हितावह है।

(८५) निद्रोदय रस

विधि–रससिंदूर, वंशलोचन और अफीम तीनों ६-६ माशे, धाय के फूल और आंवले २-२ तोले लेवें। सबको मिलाकर भांग के रस की तीन भावनायें देवें। फिर बीज निकाली हुई मुनक्का १२ तोले मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। (र.यो.सा.)

मात्रा–१ से ४ गोली तक। सांयकाल को दूध के साथ दें। यदि मलावरोध रहता हो तो सुबह सारक औषधि से उदरशुद्धि करा ले

उपयोग–जब किसी रोग में निद्रा न आती हो तब इस रसायन केसेवन से शांत निद्रा आ जाती है। शुक्र स्तम्भन होता है तथा वर्ण और तेज आदि की वृद्धि होती है। कई रोगियों को फुफ्फुस संस्थान में विकृति उग्रता होती है अथवा कफप्रकोप होता है। उनको भस्म भी ४-४ रत्ती दिन में २ या ३ बार देते हैं। वह भी निद्रा लाने में सहायक बनता है।

एलोपैथी में कई औषधियां प्रबल निद्राप्रद हैं। उनसे वातसंस्थान पर अति घातक असर पहुँचता है और रोगनिरोधक शक्ति भी निर्बल जाती है, किन्तु इस निद्रोदय रस का प्रयोग अति निर्भय और शान्त निद्रा लाने में सफल है। इससे निद्रा से जागने पर रोगी मानसिक प्रस बलवृद्धि का अनुभव करता है।

सूचना–रोगी को मलावरोध हो तो पहले एरण्ड तैल या ग्लिसरीन की पिचकारी लगाकर मल को दूर करें फिर निद्रोदय रस देवें पुनः कब्ज न हो, यह सम्हालते रहना चाहिये।

(८६) अमरसुन्दरी वटी

प्रथम विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, शुद्ध बच्छनाभ, रेणुक बीज (सम्भालु के बीज), सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, ब आंवला, पीपलामूल, चित्रकमूल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, बायबिडङ्ग, अकलकरा और नागरमोथा सब १-१ तोला लें। पा गन्धक की कज्जली करके लोह भस्म और बच्छनाभ मिलावें। फिर शेष औषधियों का बारीक चूर्ण और ४० तोले गुड़ मिलाकर १-१ की गोलियाँ बना लेवें। गुड़ की चासनी में चूर्ण मिला लेने से गोलियां अच्छी बनती हैं। (नि.र

मात्रा–१ से ३ गोली। दिन में २ या ३ बार, जल के साथ देवें।

उपयोग–यह औषधि अपस्मार, सन्निपात, श्वास, कास, अर्श और अनेक वातरोगों को दूर करती है। स्त्री, बालक, वृद्ध आदि को अज ज्वर, तथा कफप्रधान सन्निपात आदि में निर्भयतापूर्वक दी जाती है। इस औषधि का अजमेर जिले में अधिक उपयोग होता है। हमने भी अ समय उपयोग करके लाभ उठाया है। नूतन प्रतिश्याय, जीर्ण प्रतिश्याय, आमज्वर, कास आदि रोगों पर यहाँ पर जन-समाज में अमरसुन्दरी सुविख है। सूतिका को निर्भय होकर देते हैं। इससे सूतिका के वातप्रकोप के चिह्न-मूल, दांत भिंचना, व्याकुलता आदि भी शान्त हो जाती है।

दूसरी विधि–इस रस का नाम अनेक ग्रन्थकारों ने 'विजयभैरव' रस रखा है, ऐसा रसयोगसागर पर से जाना जाता है। निघण्टु रत्ना के पाठ (प्रथम विधि) में पीपलामूल और दालचीनी है। उस स्थान पर रसयोगसागर में (द्वितीय विधि) अभ्रक और ताम्र भस्म है। शेष समान है।

मात्रा–१ से २ गोली तक।

अनुपान–कफप्रधान रोगों पर अदरक के रस और शहद के साथ और सन्निपात में तुलसी के रस या अदरक के रस के साथ देवें

उपयोग–कास, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, सूतिकारोग, ग्रहणी, मन्दाग्नि, शूल, पाण्डु, और हाथ पैरों के रोगों पर यह गुटि प्रशस्त है। अभ्रकभस्म और ताम्र भस्म के योग से यह रस आशुफलप्रद बनता है।

अभ्रक और ताम्र मिलाने से श्वसन संस्थान, हृदय और यकृत् को उत्तेजना मिलती है। जिससे कफयुक्त कास, श्वास, परिणामशूल प्लीहावृ यकृद्वृद्धि, पाण्डु, विषमज्वर, नूतन अजीर्ण ज्वर, तृतीयक ज्वर, जीर्ण ज्वर, सूतिका ज्वर, सूतिका के वात और कफप्रकोप, दांत भिंचना, श्व कास, अतिसार, ज्वर, अरुचि, सन्निपात, प्रलाप आदि उपद्रव, कफप्रधान सन्निपात, कफगुल्म, वातगुल्म, कफपित्तगुल्म, यकृद्विकारयुक्त संग्र रोग, पाण्डु, हाथ पैरों की नसें खिंचना, चक्कर, वातवृद्धि, अर्श और अपस्मार आदि रोगों को दूर करता है।

(८७) महावातविध्वंसन रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, नागभस्म (शतपुटी), वंगभस्म, लोह भस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, पीपल, सोहागे का फूला, कालीमि सोंठ ये ११ औषधियां १-१ तोला तथा शुद्ध बच्छनाभ ४॥ तोले लेवें। पहले कज्जली करके भस्म मिलावें। पश्चात् शेष औषधियों का कपड़ चूर्ण मिला त्रिकटु क्वाथ, त्रिफला का क्वाथ, चित्रकमूल का क्वाथ, भांगरा स्वरस, कूठ का क्वाथ, निर्गुण्डी के पत्तों का स्वरस, आक का दू आंवले का स्वरस, अदरक का रस और नींबू का रस सबकी ३-३ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (र.चं

मात्रा–१ से २ गोली दिन में ३ बार, तीव्र वात रोग पर अदरक के रस, भांगरे के रस या शहद के साथ और आमवात पर अर के तैल, घी या गुनगुने जल के साथ दें।

उपयोग–यह रस वातविकार, शूल, कफ प्रकोप से होने वाले रोग, ग्रहणी, सन्निपात, मूढ़ता, अपस्मार-मन्दाग्नि, शरीर शीतल होना, पित्त प्लीहावृद्धि, कुष्ठ, अर्श, स्त्रियों के गर्भाशय की विकृति से होने वाले रोगों को नष्ट करता है।

महावातविध्वंसन रस वातवृद्धि और वातवाहिनियों के क्षोभ को शमन करने वाली उत्तम शामक औषधि है एवं इसमें शूलघ्न गुण भी विशेष

है। यह रसायन वातवाहिनियों के क्षोभ में उपयोगी होने से अपतानक, अपतन्त्रक, आक्षेप और तीव्र वेग वाले आशुकारी पक्षाघात में वातवृद्धि लक्षण अधिक होने पर इसके सेवन से वात प्रकोप का शमन होकर वातसाम्य प्रस्थापित होता है। किसी भी निमित्त से उत्पन्न किसी भी ग में वातवाहिनियों में क्षोभ होने पर तीव्रावस्था में महावातविध्वंसन उपयोग में आता है। केवल वातविकृति होने पर यह दिया जाता है परन्तु वातपित्तात्मक दुष्टि हो तो सूतशेखर रस देना चाहिये। इन दोनों में यह अन्तर है

वातवाहिनियों के कार्य में किसी कारण से प्रतिबन्ध होने पर वातक्षोभ होता है। फिर किसी भी अवयव में शूल निकलता है। उस पर यह रस दिया जाता है। यद्यपि आमवात और सन्धिवात की जीर्णावस्था में तो योगराज गूगल और गोक्षुरादि गूगल हितकर हैं तथापि जब बिच्छू के काटने के समान अत्यन्त तीव्र वेदना, शोथ स्थान में भयंकर वेदना, शूल, बेचैनी, प्रलाप आदि लक्षण हों तब आमशोषक और वेदनाशामक ये दोनों कार्य इस महावातविध्वंसन के सेवन से होते हैं। रोगी को थोड़े ही समय में बहुत लाभ हो जाता है। आमवात की तीव्रावस्था में यह अप्रतिम औषधि है।

मानसिक रोगों में वातक्षोभ होकर वेदना होती है। अपस्मार, उन्माद, मनोव्याघात आदि विकारों में होने वाली वेदना स्वतः संवेदनाजन्य है। इन रोगों पर विशेषतः द्राक्षारिष्ट या अभ्रक प्रधान औषधि दी जाती है। किन्तु जो शूल शारीरिक दोषों से विशेषतः वातदुष्टि से उत्पन्न होता है, उस पर इस रसायन का प्रयोग है। इससे वात प्रकोप दूर होकर वातसाम्य प्रस्थापित होता है। इसी हेतु से किसी भी प्रकार के शूल में इसका उत्तम उपयोग होता है। स्थान भेद और दूष्य भेद से अनुपान भेद कर लेना चाहिये।

केवल वातक्षोभ से शिरदर्द होता हो, वह अति त्रासदायक होता है। उस समय व्याकुलता बनी रहती है, शरीर में कील गाड़ने सदृश वेदना होती है, रोगी गर्दन इधर-उधर फिराता रहता है, बिलकुल चैन नहीं पड़ता। निरर्थक विचार आते रहना विशेषतः मस्तिष्क की दाहिनी ओर में अतिशय व्यथा होना आदि लक्षण होते हैं। इस व्यथा के मारे रोगी शिर पीटता है और रो देता है। इस तरह कुछ समय तक दर्द होकर स्वयमेव कम हो जाता है, अर्थात् वेदना सहन हो सके उतनी होती है। फिर पहले के समान तीव्रवेदना होने लगती है। इस तरह बार-बार आक्षेप सदृश तीव्रवेग उत्पन्न होता रहता है। ऐसे शीर्षशूलपर महावातविध्वंसन रस लाभदायक है।

शीर्ष शूल के समान कुक्षिशूल, उरः शूल, पार्श्वशूल इनमें भी अकस्मात् तीव्र वेदना होने लगती है। फिर कुछ समय के लिये वेदना कम होकर रोगी को अच्छा लगता है। पुनः शीर्षशूल सदृश तीव्र असह्य वेदना हो जाती है। छुरा मारने के सदृश दर्द होता है जिससे रोगी रोने लगता है। फिर वेदना शमन हो जाती है। इस प्रकार के रोगों पर **महावातविध्वंसन** कफघ्न अनुपान के साथ देना चाहिये।

हृदय के शूल में उक्त प्रकार के आक्षेप सदृश वेदना होने पर भी यह रसायन देना चाहिये। परन्तु जब तीव्र वेदना हृदय में से निकल, बांयें हाथ की ओर फैलती हो और साथ में घबराहट, प्रस्वेद आदि लक्षण प्रतीत होते हों तब यह नहीं दिया जाता। स्वल्प मात्रा में सूतराज रस अथवा मुक्ता या प्रवाल प्रधान शामक औषधि देनी चाहिये। यदि वातक्षोभ से छाती या पीठ में शूल निकलता है तो महावातविध्वंसन का उपयोग करना चाहिये। इस तरह फुप्फुसप्रदाह के प्रारम्भ में छाती में शूल चलती हो और वेदना वातक्षोभ से होती हो, वेदना के साथ ज्वर और शोथ मर्यादा में हो, उस पर भी यह रस देना चाहिये।

उदरशूल केवल वातक्षोभ से होने पर महावातविध्वंसन रस उपयोगी है। उदर में पीड़ा, यह विकार अति चमत्कारी है, इसमें उदर के भीतर विविध अवयव, उनकी क्रिया और उनमें उत्पन्न विकार तीनों का सम्बन्ध रहता है। इस हेतु से इसके कारण के निर्णय में अति त्रास होता है। उदर परीक्षा करने में पचनेन्द्रिय के विकार, मूत्रपिण्ड, मूत्रमार्ग या मूत्राशय का विकार, अन्त्रविकृति और उसमें शल्य तथा सर्वकोष्ठ में व्यापक वातवाहिनियों मे विकृति, सगर्भा स्त्री रोगिणी होने पर गर्भाशय विकार सबका विचार करना पड़ता है। इनमें वातक्षोभज शूल हो तो इसका प्रयोग किया जाता है। यह शूल भी आक्षेप सदृश बड़े जोरों से उत्पन्न होता है ओर उतने ही वेग से शमन होता है।

श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपात की प्रथमावस्था में यदि कफविकृति सामान्य और वातप्रकोप अधिक हो तो महावातविध्वंसन रस लाभदायक है। परन्तु जब गले में कफ की घर-घर आवाज होती रहती है तब इस रस से अधिक लाभ नहीं होता।

आंत्रिक सन्निपात (मधुरा), ग्रन्थिक सन्निपात (प्लेग) और संधिक सन्निपात में बेहोशी, कण्ठ चलाते रहना, प्रलाप, चित्तविभ्रम, नेत्र भरे हुए भासना, जिह्वा शुष्क, (क्वचित् जिह्वा काली हो जाती है), जिह्वा पर कांटे ऐसी वातक्षोभयुक्त अवस्था में, महावातविध्वंसन रस के समान निश्चयपूर्वक लाभ करने वाली दूसरी औषधि नहीं है।

प्रसूता स्त्रियों के ज्वर न होने पर मक्कलशूल होता है, जिसमें भयंकर शिरदर्द, बस्ति, कोष्ठ और गर्भाशय में अति तीव्र शूल या आक्षेप के समान वेदना, गर्भाशय में से निकलकर बस्ति और उदर में फैल जाना आदि लक्षण होते हैं। इस पर यह रसायन अति उत्तम लाभदायक है।

महावातविध्वंसन का कार्य वातवाहिनियां, वातवह मण्डल और वातस्थानों पर क्षोभनाशक होता है। यह रस वातदोष तथा मांस और अस्थि

इन दूष्यों पर लाभ पहुँचाता है। इसमें कज्जली रस कीटाणुनाशक और योगवाही है। नाग, बंग और लोह शक्तिवर्द्धक और बल्य के हे से वातशामक है। ताम्र आक्षेप नाशक वातशामक है। अभ्रकभस्म वातवाहिनियों पर बल्य और शामक असर पहुँचाती है। सोहागा कीटाणुनाश और शामक है तथा बच्छनाभ अवसादक, क्षोभनाशक और शूलघ्न है। (औ.गु.ध.शा. के आधार से)

गृध्रसी रोग (Sciatica) को डाक्टरी में वातनाड़ी शूल (Neuralgia)के अन्तर्गत माना है। इस रोग के प्रारम्भ मे बेचैनी, पैरों मे झनझनाहट, नाड़ियों का खिंचाव आदि होता है। फिर नितम्ब प्रदेश, जङ्घा के सामने या पीछे या बाहर शूल उत्पन्न होता है। इस रोग में यन्त्रणा असह्य होती है। निद्रा नहीं आती, इस स्थिति में कितने ही सप्ताह या मास निकल जाते हैं। इस रोग में किसी को ज्वर आ जाता है, ज्वर १०२-१०३ या १०५ डिग्री तक बढ़ जाता है। फिर वमन, घबराहट, भयंकर शिरदर्द, छाती में वेदना और बेहोशी आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्था में महावातविध्वंसन रस १/२ रत्ती, आम का मुरब्बा ३ माशे और भांगरे का रस १ तोला मिलाकर उसमें से थोड़ा-थोड़ा चाटण ३-४ बार देवें। इस तरह दो बार चाटण तैयार करके देते रहें तथा विषगर्भ तैल, तापिर्न तैल और कपूर मिलाकर मालिश करते रहने से वेदना शमन हो जाती है।

(८८) वातगजांकुश रस

विधि-रससिंदूर, लोहभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध बच्छनाभ, बड़ी हरड़, काकडासींगी, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अरणी की छाल और सोहागे के फूले को समभाग लेवें। फिर यथाविधि मिला गोरखमुण्डी और निर्गुण्डी के पत्तों के रस की ३-३ भावनायें देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा-१-१ गोली। दिन में २ बार, पीपल के चूर्ण के साथ लेकर ऊपर मजीठ या हरड़ का काढ़ा पीवें। अथवा अनुपान रूप से रास्ना, गिलोय, देवदारु और अरण्डी की जड़ का क्वाथ थोड़ा गूगल मिलाकर गुनगुना कर पीवें।

उपयोग-यह रस अनेक वातरोगों को दूर करता है। त्रिदोषज भयंकर वातश्लेष्मात्मक गृध्रसी रोग को ७ दिन में दूर करता है। एवं क्रोष्टु शीर्षक (वातरक्तात्मक गोड़ेकी बादी), अपबाहुक (वातश्लेष्मात्मक बाहु की बादी), उरुस्तम्भ (श्लेष्म, मेद और वातप्रकोप से उत्पन्न आढ्यवात), हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ (वातकफात्मक कण्ठ की बादी), पक्षाघात (कफविकृति सहित उत्पन्न होने वाला अर्धाङ्गवात), इनके लिये यह अत्युत्तम औषधि है।

वातरोग में जब तक कफ या आमसह कफ का सम्बन्ध हो तब नूतन और जीर्णावस्था दोनों में यह रसायन लाभ पहुँचाता है। केवल वातविकृति पर महावातविध्वंसन, वातपित्तात्मक विकृति मे सूतशेखर और आम का अधिक सम्बन्ध हो तो योगराज गूगल उपयोगी है। किन्तु जब कफानुबन्ध और आमविष की वृद्धि हो तब इस रसायन से बहुत हित होता है।

इस रस का उपयोग अन्य वातरोगों की अपेक्षा गृध्रसी पर अधिक होता है। तीव्रशूल चलता हो और उदर में भारीपन रहता हो तो अनुपान रूप से हरड़ का क्वाथ दिया जाता है।

कभी अति असह्य वेदना होती है, शान्ति से निन्द्रा भी नहीं मिलती ऐसी अवस्था में समीरगज केसरी १/४ रत्ती का प्रातः सायं सेवन कराया जाता है। फिर वेदना मर्यादित बनने पर वातगजांकुश देते रहने से रोग को जड़मूल से नष्ट कर देते हैं।

नूतनावस्था और जीर्णावस्था में वेदना के दमनार्थ वातशूलान्तक बाम की मालिश कराने से लाभ मिल जाता है।

सूचना-बाहर से शीत न लगे यह सम्हालें। मलावरोध न रहने देवें। अम्ल पदार्थों का एवं अम्ल विपाक वाले पदार्थों का सेवन हो सके उतना कम करें।

(८९) समीरगजकेसरी

विधि-शुद्ध हिंगुल, शुद्ध कालीमिर्च, शुद्ध अफीम और शुद्ध कुचिला इन सबको समभाग मिला, अदरक के रस में ६ घण्टे खरल करके १/४ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। मूलग्रन्थ में हिंगुल नहीं है। किन्तु हमने गुणवृद्धि के कारण मिलाया है। (र.चं.)

मात्रा-१ से २ गोली, नागरबेल के पान या जल के साथ। मलावरोध रहता हो तो रात्रि को छोटी हरड़ का चूर्ण या अन्य सारक औषधि देवें।

उपयोग-यह रस जीर्ण वातविकार, आमवात, कटिशूल, जुकाम, अरुचि, उदरशूल, संग्रहणी आदि रोगों को दूर करता है तथा कुब्जता, लंगड़ापन, गृध्रसी रोग, अपबाहुक, शोथ, अपतानक, अपस्मार, विसूचिका (हैजा) आदि को नष्ट करता है। जब नाड़ियों में रहे हुए मल, कफ, मेद या आम का शोषण करना हो, वातवाहिनियों के क्षोभ को दूर करना हो, हृदय को उत्तेजना और बल देना हो तथा मस्तिष्क को शांत बनाना हो तब यह रस अमृत के समान गुणदायी है। किन्तु तीव्र आक्षेप होता हो तब इसे न दें, महावात विध्वंसन रस देना चाहिये।

जीर्ण जुकाम और नजले में धातु अधिक दूषित होती है जिससे पीला या सफेद गाढ़ा नासास्राव होता रहता है तथा विष मस्तिष्क में

र नेत्र और मगज को हानि पहुँचाता है। उसका इस रस के सेवन से निग्रह हो जाता है। नये तीव्र प्रकोप में इसका सेवन नहीं कराना
; तीव्रता शमन होने पर यह दिया जाता है।

कीटाणुप्रकोप या अग्निमाँद्य और रसशेषाजीर्ण में कच्चा रस शेष रहकर आम बनता है तब थोड़ा-थोड़ा आमसहित दस्त होता है। फिर आम
ार-विहार के दोष से कुपित होकर नाड़ियों में जाकर आमवात को उत्पन्न करता है। भयंकर वेदना होती है और हृदय की गति शिथिल
जाती है। उसकी जीर्णावस्था में समीरगजकेसरी देने से दोष का शोषण होकर नाड़ी शुद्ध हो जाती है तथा शूल, आमातिसार और आमवात
नष्ट हो जाते हैं।

सूचना–यदि कोष्ठ में दूषित मल शेष हो तो उदरशुद्धि करने के पश्चात् इस औषध का उपयोग करना चाहिए।

गृध्रसी शूल की उत्पत्ति नितम्ब में वातनाड़ीप्रदाह होने पर होती है। नितम्ब प्रदेश से जो गृध्रसी नाड़ी (Sciaticnerve) चरण की ओर
करती है, उसके भीतर वेदना का अनुभव होता है और पैरों में नाड़ी का खिंचाव होता है। इस हेतु से निद्रा भी नहीं आती। अनेक रोगियों
निरुपाय होकर पैर के निम्न भाग पर कपड़े की पट्टी खींचकर बांधनी पड़ती है। इस वेदना के दमनार्थ समीरगजकेसरी का सेवन कराया
ता है।

गृध्रसी शूल के समान इस रस का उपयोग पित्ताशयशूल, वृक्कशूल, उपान्त्रशूल और अन्त्रशूल आदि पर भी होता है। बहुधा इन शूलों में
मन होती रहती है। रोगी अति व्याकुल हो जाता है। अफीम प्रधान औषधि का सेवन करने पर वेदना के शमन में सहायता मिल जाती है।

हृदय विकारज श्वास (Cardiac Asthma) होने पर रोगी को असह्य व्याकुलता होती है, बहुधा श्वसन मार्ग या फुफ्फुस के भीतर कफ
कोप नहीं होता, श्वास लेने में कष्ट होता है, नि:श्वास पूरा लिया नहीं जाता और सुखपूर्वक स्थिर बैठ भी नहीं सकता। ऐसी स्थिति में समीरगजकेसरी
-२ घण्टे पर २-३ बार देने से श्वासावरोध दूर हो जाता है।

चिन्ता, शोक, पश्चात्ताप आदि से मानसिक आघात होने और उन्माद की प्रथमावस्था में अघटित विचारों की परम्परा दृष्टि समक्ष खड़ी हो
जाती है। कभी-कभी रोगी शोकाकुल या क्रोधाविष्ट होकर मरने का विचार करता रहता है। उसे बिल्कुल निद्रा नहीं आती, पचन क्रिया बिगड़ती
है, मलावरोध या अतिसार हो जाता है, हाथ पैरों में शक्ति नहीं रहती, उत्साह भंग हो जाता है। इस अवस्था में समीरगजकेसरी का सेवन
सुबह शाम कराया जाता है। शाम को साथ में या रात्रि को मृदुविरेचन वटी भी दी जाती है। परिणाम में रोगी को निन्द्रा आ जाती है, उत्तेजना
दूर होती है और सुबह शौच शुद्धि होती है।

३०-३५ वर्ष की आयु वाली स्त्री को किसी कारण से निर्बलता न आने पर भी मासिक धर्म असमय में बन्द हो जाता है। ऐसी स्थिति
में सन्तानों की चाहना वाली स्त्रियों के मन पर आघात होता है। जिससे शोकोन्माद (Malencholia) की संप्राप्ति होती है। रुग्णा सब बात
सुन लेती है; किन्तु उत्तर नहीं देती या अति देर से थोड़े शब्दों में उत्तर देती है, मुखमण्डल पर उदासीनता बनी रहती है। इन लक्षणों के
साथ यदि अति मलावरोध और अग्निमाँद्य न हो गया हो तो समीरगजकेसरी देते रहने से देह सबल बनती है, मासिकधर्म साफ आने लगता है और
उन्माद दूर हो जाता है।

वक्तव्य–यदि कोई विशेष रोग हो तो उसे प्रथम दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये।

(९०) बृहद् योगराज गुग्गुलु

विधि–सोंठ, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चित्रकमूल, भुनी हींग, अजमोद, सरसों, जीरा, कलौंजी, रेणुकबीज, इन्द्रजौ, पाठा, बायविडङ्ग
गज-पीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, बच और मूर्वा ये बीस औषधियाँ एक-एक तोला, त्रिफला ४० तोले, शुद्ध गूगल ६० तोले तथा वं
भस्म, चाँदी भस्म, नागभस्म, शतपुटी लोहभस्म, अभ्रकभस्म, मंडूर भस्म और रससिंदूर प्रत्येक १६-१६ तोले लें। पहिले गूगल को जल
मिला गरमकर अवलेह जैसा बना लें। फिर काष्ठादि वस्तुओं का कपड़छन चूर्ण डालें। बाद में भस्मों को मिलावें। तत्पश्चात् पत्थर की खरल
में थोड़ा-थोड़ा घी अथवा एरण्ड तैल मिलाकर कूटें, कुटाई जितनी अधिक होगी गुण उतना ही बढ़ेगा। १००० या अधिक चोटें दें। मुलायम
हो जाने पर मटर के समान गोलियाँ बाँधें।* (शा.सं.)

मात्रा–२ से ४ गोली दिन में २ बार दें।

अनुपान–वातव्याधि में रास्नादि क्वाथ या जल। तीव्र व्याधि में योगराज गूगल १ से ३ माशे को १ छटाँक अरंडी के तैल में मिल
गरमकर, आधा सेर गरम दूध और १ छटाँक मिश्री मिलाकर पिलावें। इस अनुपान से भयंकर वातव्याधि भी एक सप्ताह में नष्ट होती है।

पित्त विकार में काकोल्यादि (काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक ऋषभक, मुद्गपर्णी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकड़ासिंगी, वंशलोचन पद्माख
पुण्डरीक, ऋद्धि, वृद्धि, मुनक्का, जीवन्ती और मुलहठी इनमें से मिल सके उतनी औषधियों के क्वाथ) के साथ देवें।

---

* कई प्राचीन आचार्य गूगल को जल में गरम नहीं करते थे, किन्तु घी मिला-मिलाकर कूटते थे और साथ में औषधियों का चूर्ण मिलाते जाते थे। यह विधि अधि
गुणप्रद जानी जायेगी।

कफ विकार में आरग्वधादि क्वाथ, प्रमेह में दारुहल्दी का क्वाथ, पाण्डु में गोमूत्र, मेदवृद्धि में शहद, कुष्ठ में निम्ब पंचांग का क्वाथ महामञ्जिष्ठादि अर्क पीड़ितात्तर्व में अशोकारिष्ट या महामंजिष्ठादि अर्क; पूय प्रधान रोगों पर नीम की अन्तरछाल और निर्गुण्डीमूल या पान क्वाथ, वातरक्त में गिलोय का क्वाथ, शूल और शोथ पर पीपल का क्वाथ, चूहे के विष पर पाठे का क्वाथ, नेत्रपीड़ा पर त्रिफला का क्वा समस्त उदर रोगों में पुनर्नवादि क्वाथ के साथ दें। इसी तरह अन्य अनुपानों की योजना करें।

उपयोग–यह रस वातव्याधि, आमवात, वातरक्त, अर्श, कुष्ठ, संग्रहणी प्रमेह, नाभिशूल, भगन्दर, उदावर्त्त, क्षय, गुल्म, अपस्मार, श्वा कास, मन्दाग्नि, अरुचि, उरोग्रह, पुरुषों के धातुविकार और स्त्रियों के गर्भाशय के दोषों को दूर करता है। बन्ध्या स्त्री को पुत्र की प्राप्ति कराता

महायोगराज में पाचक, अग्निदीपक, वातनाशक, आमदोषघ्न, रसायन, योगवाही और धातु-परिपोषक क्रम को नियमित बनाने वाली औषधि होने से यह उत्कृष्ट प्रयोग बना है। यह रसायन आमवात, वातरक्त और आमयुक्त रोगों में विशेष उपयोगी है। यह आमदोषघ्न औषधियों में उ कोटि की औषधि है। जिस-जिस वातविकार में आमानुबन्ध है, उस-उस वातरोग और उससे उत्पन्न अन्य रोगों पर यह बहुत अच्छा कार्य कर है। आमविकार की दो उत्पत्ति आयुर्वेद ने दी है। पहली पाचनकाग्नि के अबलत्व से आद्य रस धातु अपक्व रहकर दुष्ट हो जाती है दूस अत्यन्त दुष्ट दोषों के परस्पर मूर्च्छन होने पर उनमें से जो विष तैयार होता है उसे भी आमविष संज्ञा दी है। जिन-जिन रोगों में ये आम विष कारणभूत है; उन-उन रोगों को आमरोग-आम-प्रधान रोग कहते हैं। इस तरह आम की व्याख्या व्यापक की है। इस प्रकार के सामरो में यह उत्तम कार्य करता है। इसके सेवन से पाचक अग्नि सम्यक् कार्य करती है; जिससे संचित आम का पचन और नया आम बनने प्रतिबंध होता है। इस रीति से रोग के मूल को नष्ट करता है और दोषदुष्टि, वातादि धातुविकृति को भी दूर करता है।

मूल ग्रन्थ में इस रस का उपयोग सब प्रकार की वातव्याधियों पर लिखा है। किन्तु विशेषत: उपयोग जीर्ण आमवात में अच्छा होता है नूतन आमवात में भी उपयोगी तो होता है परन्तु तीक्ष्ण अवस्था निकल जाने के पश्चात बार-बार संधियों में सूजन आना या रोग बढ़कर स्था मोटे और कमजोर हो जाना, नाड़ियां आमयुक्त मोटी हो जाना, सारे शरीर में शूल निकलना इत्यादि लक्षण होने पर यह रस उत्तम कार्य करता है

जीर्ण वातव्याधि, जिसमें रसादि धातु की विकृति से उत्पन्न हुए आम सहित वातविकार हो उसमें इससे अच्छा लाभ होता है। इसका का जहाँ दोष धातुओं के भीतर लय भाव को प्राप्त हुआ हो ऐसे आमवात, पक्षाघात, बार-बार आयाम, आक्षेपक, खल्ली, गृध्रसी इनकी जीर्णावस्था में ही विशेष कार्यकर होता है।

वातार्श में शुष्क और रुक्ष मस्से हों तो इस रस के सेवन से पीड़ा का शमन होता है। वातज प्रमेह, जिनमें वात कार्य में अनियमितत कारण हो और आमज प्रमेह जो अपचन के जीर्णविकार आमसंचय होकर होता है इन दोनों प्रकार के विविध प्रमेहों के लिए यह गूगल अति हितकर है।

आमज प्रमेहों का उल्लेख यद्यपि प्राचीन ग्रंथों में नहीं है तथापि अपचन के जीर्ण विकार के पश्चात् आम संचय होकर प्रमेह हो जाने अनेक उदाहरण मिले हैं। अधिक शक्कर, अधिक द्विदल धान्य या मेदे का पदार्थ खाने वालों को इस प्रकार का प्रमेह होता है। अन्न रस जो एक प्रकार की शक्कर है उसका परिमाण बढ़ जाने पर उसका संशोषणकर रूपान्तरित करने का कार्य यकृत् का है। परन्तु यकृत् में आमविका से विकृति हो जाने या स्रोतोवरोध हो जाने से रूपान्तर नहीं करा सकता। फिर वह अभिसरण मे मिश्र होने से प्रमेह की उत्पत्ति हो जाती है। इस पर यह रस अच्छा कार्य करता है।

कुष्ठ रोग में आमानुबन्ध होने पर यह रस लाभदायक है। जीर्ण क्षुद्र कुष्ठ, पामा या कच्छु सदृश क्षुद्र दबकर वातविकार उत्पन्न होने प महायोगराज गूगल अति उपयोगी है।

आमोत्पत्ति, आमसंचय और तज्जन्य वातप्रकोप होकर रक्त में विकृति होना यह वातरक्त का हेतु है। वातरक्त की उत्पत्ति, बिना आमसंच नहीं हो सकती। विशेषत: इस रोग के प्रारम्भ में उदराध्मान, अपचन, आमाशय और अन्त्र में शूल या वेदना, बार-बार मलावरोध फिर अतिसार मूत्र का परिमाण स्वल्प हो जाना, मूत्र में प्रचुर मात्रा में कठोर पदार्थ जाना, शारीरिक और मानसिक बल का ह्रास, स्वभाव में उग्रता आ जाना आदि लक्षण होते हैं। सामान्यत: पचनेन्द्रिय को आम जनन की जीर्ण व्याधि लगी रहती है। इस हेतु से वातरक्त का रोगी बहुधा सदा के लिए पीड़ित रहता है। वातरक्त और आमवात दोनों भाई हैं। वातरक्त का प्रारम्भ हाथ या पैर के अंगूठे से होता है। पहिले अंगूठे सूजते हैं, फिर शूल के सदृश वेदना होती है और सूजन आने लगती है। सब अंगुलियां मोटी-मोटी हो जाती है, एवं क्षुधामांद्य, अति पिपासा, मूत्र लाल, स्वच्छ और थोड़े परिमाण में होना, शूल, स्फुरण, कम्प, रुक्षता, काले धब्बे, न्यूनाधिक शोथ, वातवाहिनियों और संधिस्थानों का अकड़ना और खिंचना, अत्यन्त पीड़ा, ठण्डी और शीत सहन न होना इत्यादि लक्षण होते हैं। इस रोग को महायोगराज गूगल नष्ट करता है। वातरक्त से उत्पन्न विविध रोग संकर शीर्षशूल, मन्यास्तम्भ, हनुस्तंभ इनको भी दूर करता है। किन्तु वातरक्त में जब निद्रा न आना, माँसकोथ, मांस सड़ना आदि उपद्रव होने लगते हैं तब इस रसायन का उपयोग नहीं होता। यद्यपि वातरक्त में अमृता गूगल और कैशोर गूगल का उपयोग भी होता है। तथापि नूतन विकार और तीव्रावस्था में उपयोगी है और महायोगराज गूगल जीर्णवस्था में विशेष उपयोगी है। यह इसके गुणों में अन्तर है।

कोष्ठस्थ आमसंचय से नाभि प्रदेश में बार-बार शूल उत्पन्न होना, मलावरोध, मलसंचय, अरुचि, मल, आममिश्रित होना आदि लक्षण होने

ग्रह रसायन उत्तम लाभदायक है। भगन्दर जो एक मार्गी हो अधिक गहरा न हो, विशेषतः वातज अथवा आमवातज हो उस पर गूगल वाली ध लाभदायक है। नूतन विकार में सप्तविंशतिको गुग्गुल और जीर्ण व्याधि में महायोगराज लाभदायक है। भगन्दर में जो शतपोनक और शंबूकावर्त ो कठिन हैं। ये बहुधा शस्त्र साध्य हैं।

उदावर्त रोग में यदि स्थूलान्त्र में मलावरोध या अपक्व अन्न दोष शेष रहने से अवरोध होकर पेट में अफारा, अपानवायु और शौच प्रवृत्ति निरोध, हृदय के समीप में शूल, मुंह में पानी आना, बेचैनी, मूत्र प्रवृत्ति न्यून, बस्ति मूत्र से भर जाना, परन्तु अवरोध के हेतु से मूत्रोत्सर्ग होना, श्वास, कास, दाह, प्यास, वमन, ज्वर, हिक्का, तन्द्रा, शिरदर्द, भ्रम, कर्णनाद, सर्वाङ्ग में पीड़ा इत्यादि लक्षण होने पर पहिले तीक्ष्ण बस्ति से मलशुद्धि करके महायोगराज गूगल दिया जाय अथवा एरण्ड तैल में मिलाकर दिया जाय तो उत्तम कार्य करता है।

वातगुल्म में विशेषतः आमानुबन्ध हो, कण्ठ और मुंह में शुष्कता, बार-बार शीत ज्वर आता हो, अधोवायु की मन्द प्रवृत्ति, मलसंचय, अपचन हो जाने पर गुल्म के स्थान पर पीड़ा, चल गुल्म, घड़ी में छोटा, घड़ी में बड़ा होना, रुक्ष, चरपरे और कड़वे पदार्थ सहन न होना, र आदि में वेदना होना, मुंह और कण्ठ में शुष्कता, त्वचा का वर्ण बदल जाना, शीतसह ज्वर आना इत्यादि स्थिति में महायोगराज गूगल ो घी के साथ देना चाहिये। इस रोग में रुक्ष, चरपरे और कड़वे पदार्थ सहन नहीं होते; अतः इनका त्याग करना चाहिये।

मन्दाग्नि और बद्धकोष्ठ से सेन्द्रिय विष संचित होकर अनेक व्याधियां उत्पन्न होती हैं। उदर में विशेषतः बृहदन्त्र में मल संग्रहीत होता । सेन्द्रिय विष उत्पन्न होकर शरीर में शोषित होने लगता है। फिर विविध व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। इन सबमें कारण कोष्ठस्थ आम विष ा घोर अन्न-विष है। इनका भी हेतु अग्निमांद्य है। इस प्रकार के अग्निमांद्य पर, इस रस को भाँगरे के रस (६ माशे) के साथ देने से अति उत्तम कार्य करता है।

आमवात से हृदग्रह होता है, तब हृदय जकड़ा-सा भासता है; हृदय को किसी ने दृढ़ बांध दिया हो ऐसा भास होता है। इस विकार र यह रस उपयुक्त है।

पक्षाघात आदि जीर्ण विविध वातरोगों पर यह रस, प्राचीन वृद्ध परम्परानुसार रास्नादि कषाय के साथ दिया जाता है। वातविकार में आमानुबन्ध होने पर रास्नादि कषाय देने पर निःसन्देह उत्तम कार्य होता है।

आमवातज और वातरक्त शीर्षशूल, दन्तशूल, कर्णशूल, पृष्ठशूल, सन्धिशूल, अस्थिशूल, मूत्रमार्ग में शूल तथा आमवातज हृदयरोग और उससे उत्पन्न श्वास, कास पर यह लाभदायक है।

स्त्रियों के आर्त्तवशूल, अनार्त्तव, साथ में पाण्डुता, नाम मात्र का मासिक धर्म, भयंकर त्रास के साथ आना, कमर पीठ, पेट में भयंकर वेदना इन पर महायोगराज लाभदायक है। वात की अधिकता के कारण गर्भधारण में प्रतिबन्ध होता हो तो इसके साथ वंगभस्म देना चाहिये। प्रसवकाल में अकस्मात् वेदना बन्द होकर गर्भ के बाहर निकलने की क्रिया रुक जाने पर यह गूगल काम देता है। केवल यह कार्य अप्रत्यक्ष है अर्थात् किस नियमानुसार होता है, यह निर्णय नहीं हो सका।

आंत्रिक सन्निपात में यदि सर्वाङ्ग में जड़ता, हाथ-पैरों की संधियों में शोथ समान आभास होना और जड़ता, जीभ मोटी और जड़, कंठ जड़, नेत्रों पर परदा-सा आ जाना और जड़ हो जाना, भांफणी खोलने और बन्द करने में परिश्रम, छाती भर जाना, नाड़ी का वेग मन्द, मन्द-मंद कोष्ठशूल, उदर में जड़ता के समान लगना, उन्माद के सदृश थोड़ा प्रलाप, क्वचित बेहोशी, मन स्थिति मन्द होना इत्यादि लक्षणों की उत्पत्ति हो जाय तो महायोगराज उत्तम कार्य करता है। (यह आमविष और वातप्रकोप को नष्टकर मधुरा को दूर करता है। इस रोग पर अनुपान रूप से भाँगरे का रस देना चाहिये।)

जहरी चूहे के काटने से उसके विष का असर शनैःशनै शरीर पर होता है। बहुधा काटने के पश्चात १५-१६वें दिन दंशस्थान पर सूजन आती है। शरीर पर लाल-काले धब्बे, ज्वर, तृषा, उबाक, इत्यादि लक्षण होते हैं। उसमें इसे पाठे अथवा बंध्या कर्कोटकी (ककोड़ा) के मूल के क्वाथ के साथ देना चाहिये। ततैया या मधुमक्षिका के विष पर महायोगराज लगाने में और खिलाने में उपयुक्त है।

यह रसायन विशेषतः वातदोष, रस और आम इन दूष्य तथा यकृत, प्लीहा, अन्त्र, हृदय और संधि स्थानों पर कार्य करता है।

(औ.गु.ध.शा. के आधार से)

मस्तिष्क में सेन्द्रियविष पहुँच जाने पर भ्रम चक्कर रोग उत्पन्न होता है। चक्कर आने पर नेत्र के समक्ष अधंकार हो जाता है। रोगी खड़ा रहे तो गिर जाता है। कितने ही रोगियों को यह चक्कर ५-१० मिनट तक रह जाता है। उस रोग पर महायोगराज गूगल, प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व मिलाकर शहद से दें और ऊपर धमासे का क्वाथ पिलाते रहने से लाभ हो जाता है।

(९१) एकाङ्गवीर

विधि-रससिंदूर, शुद्ध गन्धक, कांतलोह भस्म, वंगभस्म, नागभस्म शतपुटी, ताम्रभस्म शतपुटी, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल इन ११ औषधियों को समभाग मिला त्रिफला, त्रिकटु, निर्गुण्डी, अदरक, चित्रकमूल, सुहिंजने की छाल, कूठ, आंवला, कुचिला, आक का मूल, हारसिंगार और एरंडमूल इन १२ द्रव्यों के क्वाथ या रस की पृथक्-पृथक् ३-३ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। (नि.र.)

मात्रा–१ से २ गोली। दिन में ३ बार, रास्नादि अर्क के साथ दें।

उपयोग–यह रस पक्षाघात, अर्दित, धनुर्वात, अर्धांगवात, गृध्रसी, विश्वाची, अपबाहुक आदि वात रोगों को निःसंदेह दूर करता है। यह रसायन अत्यन्त तीक्ष्ण होने से वातप्रधान और वातकफप्रधान विकृति में हितकर है। इसमें बृंहण, वातप्रशमन, जीवनीय, रसायन, विषघ्न और कीटाणुनाशक गुण अवस्थित हैं। बार-बार आक्षेप आता हो, ऐसे अर्धांगवात, पक्षाघात, गृध्रसी आदि रोगों को यह दूर करता है।

पक्षाघात का अर्थ साधारणतः ऐच्छिक मांसपेशियों की क्रिया अथवा क्षमता का लोप होना है। इसमें सार्वांगिक या स्थानिक चेतनाशक्ति का लोप या ह्रास हो जाता है। संचालन और चेतना, उभय का लोप होने पर पूर्ण पक्षाघात और इन दोनों में से एक लोप होने पर आंशिक या अपूर्ण पक्षाघात कहलाता है। पक्षाघात के अनेक भेदों में जो अर्धांगवात (Aemiplegia) है, त्रासदायक दीर्घ कालस्थायी और संतापकारक है। विशेषतः उपदंश आदि रोगों से जिनकी रक्तवाहिनियां और वातवाहिनियाँ दूषित हो जाती हैं, उनको यह होता है। क्वचित विषप्रकोप और शीत आदि कारणों से भी होता है। निर्बल हृदयवाले असहनशील मनुष्यों का मन के विरुद्ध कुछ बर्ताव या वार्तालाप होकर तत्काल सारे शरीर में विकृति हो जाती है। फिर दूषित रक्तवाहिनियों में रक्तसंचय अधिक होता है। परिणाम में मस्तिष्क और वातवह केन्द्र में रक्तभार की वृद्धि होकर पक्षाघात हो जाता है, रक्तवाहिनियाँ फूटकर रक्तस्राव हो जाता है। यदि रुधिर संग्रह ज्ञान-केन्द्र के समीप में होता है तो रोगी का ज्ञान सर्वांश या न्यूनांश में नष्ट हो जाता है। इस विकार में शरीर की संचालन क्रिया पर अधिकार नहीं रहता। स्नायुओं के बल शारीरिक सञ्चालन आदि व्यापार होता रहता है, परन्तु स्नायुओं पर अधिकार कम हो जाने से व्यापार शिथिल हो जाता है और रोगी विगलित-सा हो जाता है। चलने फिरने में प्रतिबन्ध होता है, इसी हेतु से आयुर्वेद ने इस रोग की गणना वातविकृति में की है।

इस व्याधि में सामान्यतः अवस्था के भेद से दो प्रकार की चिकित्सा की जाती है। तीव्र अवस्था में रक्तवाहिनी फूटकर स्राव होता है, अतः इसका प्रसादन और फूटी हुई रक्तवाहिनी के घटक नये तैयार हो जायें, ऐसी योजना करना, ये दो कार्य करने चाहिये। जीर्णावस्था में रक्तवाहिनी फूटने या फूलने की आदत को नष्ट करनी चाहिये। आयुर्वेद में रक्तप्रसादक औषधियों में ताप्यादि लोह, सुवर्णमाक्षिक भस्म, शिलाजतु और गुग्गुलु मुख्य हैं। इनके योग से रक्तवाहिनियों की टूटी हुई सन्धि मिल जाती है। फिर कुछ काल तक अच्छा रहता है। परन्तु फिर पहिले के समान कारण मिलने पर पक्षाघात का झटका आता है। इस झटके को रोकने, आक्षेपक विष को नष्ट करने और रक्तवाहिनी की फूटने की आदत को दूर करने के लिये कोई औषधि देनी चाहिये। आयुर्वेद की पद्धति के अनुसार रक्त का वहन कार्य वायु के प्रेरकत्व हेतु से होता है। वायु का उद्रेक अधिक होने पर रक्त का उद्वहन कार्य भी अधिक वेग से होता है। इस उद्वहन कार्य को मर्यादित करने से रक्तवाहिनी की फूटने की आदत दूर होती है यह कार्य एकांगवीर से उत्तम होता है। अर्धाङ्गवायु के समान पक्षाघात, कभी-कभी एक हाथ, एक पैर, कमर के नीचे का भाग, मुख की एक ओर अन्य किसी स्थान में होता है। इन सब पर भिन्न-भिन्न अनुपान के साथ इसका उपयोग होता है।

देह के किसी भी भाग में अभिघातज या अन्य व्रण होने के पश्चात् व्रण चिकित्सा के अनुरोध से उचित चिकित्सा न होने पर उसमें धनुर्वात उत्पादक विशिष्ट कीटाणुओं का प्रवेश हो जाता है जो वातप्रकोप का निमित्त कारण बनता है। फिर स्नायु और रक्तवाहिनियों में प्रवेशित वायु सारे शरीर को धनुष के सदृश मोड़ देती है, उसे धनुर्वात कहते हैं। इसके ही लक्षणानुरोध से अपतानक, आयाम आदि संज्ञा दी जाती है। इस रोग की प्रथमावस्था में बड़े-बड़े आक्षेप आकर सारा शरीर मुड़ जाता है, दाँत भिंचते हैं। शुद्धि होने पर कण्ठ से निगलने की शक्ति नहीं रहती। इस अवस्था में काल कूट रस अच्छा उपयोगी है परन्तु तीव्रावस्था शमन हो जाने पर सर्वांग में पंगुता आई हो और स्नायुओं की शक्ति क्षीण हो गई हो, तो एकांगवीर का उपयोग होता है।

गृध्रसी रोग में नितम्ब से लेकर कमर, जंघा, टखने और पैर तक बार-बार शूल निकलना, सारा पैर तंग हो जाना, पैर पंगु-सा हो जाना, क्वचित् अति तीव्र वेदना होना, पैर जकड़ जाना और थोड़ा समय खड़े रहने पर उसमें स्पन्दन होना आदि लक्षण होते हैं। इस रोग में वातप्रधान लक्षण अधिक होने पर एकांगवीर रस देना चाहिये।

हाथ की अंगुलियों से वेदना बढ़ते-बढ़ते हाथ बिल्कुल भारी हो जाना, अंगुलियों से कुछ कार्य न होना, थोड़ा-सा कुछ उठाया या पकड़ा कि अंगुलियों में झनझनाहट होकर वस्तु गिर जाना, वस्तु कब गिरी यह भी बोध न रहना आदि अवस्था होने पर भी एकांगवीर का अच्छा उपयोग होता है। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना–वातरोग में जब पित्तानुबन्ध हो तब इस औषधि का उपयोग नहीं करना चाहिये, अथवा सम्हालपूर्वक प्रवालपिष्टी या शिलाजीत आदि औषधि के साथ सेवन कराना चाहिये।

(९२) मल्लसिन्दूर वटी

विधि–पहिली विधि वाला मल्लसिंदूर, सोंठ, मिर्च, पीपलामूल, अकलकरा, जायफल, इलायची, लोंग और केशर प्रत्येक १-१ तोला लेवें। काष्ठादिक औषधियों को कूट बारीक कपड़छन चूर्ण करें। फिर मल्लसिंदूर को खरलकर थोड़ा-थोड़ा चूर्ण डाल धीरे-धीरे सब चूर्ण मिला देवें। पश्चात् नागरबेल के १०० पानों का रस मिला खरल करके १/४-१/४ रत्ती की गोलियां बनावें। (आ.नि.मा.)

मात्रा–१ से २ गोली दिन में २ बार। नागबेल के पान, अदरक के रस, भांगरे के रस और कालीमिर्च या अन्य अनुपान के साथ दें।

उपयोग–इस वटी के सेवन से वातरोग, उन्माद, कफदोष, श्वास, त्रिदोष आदि दूर होते हैं। जिनके शरीर में कफ या मेद अधिक हो, थोड़ा चलने से भी श्वास भर जाता हो, पचनशक्ति मन्द हो, उदर में वायु की गुड़गुड़ाहट होती रहती हो, हृदय की गति और नाड़ी अतिमंद हो, निद्रा और आलस्य आते हों, स्मरणशक्ति बहुत निर्बल हो गई हो उनके लिये यह अत्यन्त लाभदायक है।

जीर्ण विषमज्वर, जो सूक्ष्मांश में रहता हो और किसी-किसी समय बढ़ जाता हो, वह इस रसायन से दूर हो जाता है।

उन्माद, अपस्मार और हिस्टीरिया की जीर्णावस्था में यह मल्लसिंदूर वटी ब्राह्मी और जटामांसी के क्वाथ के साथ देने से अच्छा लाभ पहुँचता है।

मल्लसिंदूर नं. २ मिलाकर इस रस को तैयार किया हो, तो उपदंशज उपद्रव एवं सन्निपात के कफप्रकोप और बेहोशी में भी अच्छा काम देता है तथा वातप्रकोप, पक्षाघात, कम्पवात, अर्धाङ्गवात, सर्वाङ्गवात, वातवाहिनियों की निर्बलता आदि में हितकर है।

सूचना–यदि मलावरोध रहता हो तो सुबह १ दस्त साफ लाने वाला मृदु विरेचन रात्रि को आवश्यकतानुसार देते रहने चाहिये। औषधि के साथ में रोगानुकूल पथ्य का पालन करें। अपथ्य सेवन करने पर यद्यपि औषधि से हानि नहीं होती तथापि लाभ पूरा नहीं मिलता या अधिक समय लगता है।

(९३) लाङ्गल्यादि लोह

विधि–कलिहारी का शुद्ध मूल, हरड़, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, मुनक्का और शुद्ध गूगल, सब समभाग मिला बारीक चूर्ण कर सब के समान लोहभस्म मिला लें। पश्चात् बिजौरे के रस और त्रिफले के क्वाथ की ३-३ भावनायें देकर, १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। (रसे.सा.सं.)

मात्रा–१ से २ गोली, शहद के साथ दिन में २ बार। ऊपर लघु मंजिष्ठादि क्वाथ पिलावे।

उपयोग–लांगल्यादि लोह, पैरों के तलों में घाव होकर पीप निकलना, सारे शरीर में स्थान-स्थान पर त्वचा फूट-फूटकर रक्त और पीप निकलना, तथा घुटनों तक या सर्वांग में फूटे हुये साध्य और दुःसाध्य वातरक्त को नष्ट करता है।

(९४) आमवात प्रमथिनी वटी

विधि–कलमीशोरा, आक की जड़ की छाल, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, ५ औषधियों को समभाग मिला ३ दिन अमलतास के क्वाथ में खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। (र.यो.सा.)

मात्रा–१ से २ गोली, सुबह ६ माशे से १ तोले तक निसोत के क्वाथ के साथ तथा शाम को अदरक के रस और शहद के साथ देवें।

उपयोग–यह औषधि आमवात, आमवातज रोग, कफवृद्धि, कफप्रकोप से होने वाले रोग, सबको शमन करती है। तीव्र आमवात में जब बिच्छू काटने के समान तीव्र दर्द हो तब एवं जीर्ण अवस्था में व्यथा उत्पन्न होने पर यह व्यवहृत होती है।

सूचना–रोगी को गुड़, शक्कर के पदार्थ कम से कम खाना चाहिये। ठंडी न लग जाय एवं कब्ज न हो, यह सम्हालना चाहिये।

भोजन हल्का, जल्दी पचने योग्य लेना चाहिये।

तीव्र वेदना में वातशूलान्तक बाम की मालिश हितावह है। सामान्य वेदना हो तब पंचगुण तैल की मालिश करानी चाहिये।

(९५) शूलवज्रिणी वटी

विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लोह भस्म २-२ तोले, ताम्र भस्म, सोहागे का फूला, भुनी हींग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला शठी (कचूर) दालचीनी, इलायची, तेजपात, तालीसपत्र, जायफल, लोंग, अजवायन, जीरा और धनियाँ सब एक-एक तोला लेकर बारीक चूर्ण करें। पहले कज्जली और भस्म मिलाकर फिर उसके साथ चूर्ण मिलावें। पश्चात् बकरी के दूध में १२ घण्टे खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा–१ से ४ गोली, दिन में ३ बार। बकरी के दूध या जल से दें।

यह वटी दिव्य है। शूल विशेषतः वातप्रकोप होने पर होता है तथापि अनुबंध भेद से वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और कफपित्तजनित, पचन संस्थान, श्वसन संस्थान आदि में उत्पन्न सब प्रकार के शूल-शूल ही कहलाते हैं। पंक्तिशूल (परिणाम शूल), आमशूल, पार्श्वशूल, हृदयशूल, शिरःशूल और अन्य रोगों मे उपद्रवरूप शूलों को यह वटी शमन करती है तथा पाचन क्रिया को नियमित बनाती है। यह वात को शमन करती है तथा आम कफ का शोषण करती हैं एवं पित्तशुद्धि करके रक्तकणों को बढ़ाती है। अधोवायु और मल मूत्रावरोध को दूर करती है और अन्त्रक्रिया को नियमित बनाती है। इस रीति से मूल त्रिधातुओं को नियमित बनाकर रोगोत्पादक दोष को नष्ट करती है; जिससे अग्नि प्रदीप्त होकर शास्त्रकथित सब रोग नष्ट होते हैं तथा शरीर नीरोग, बलवान और तेजस्वी बन जाता है।

उपयोग–शूलवज्रिणी आठों प्रकार के शूल, गुल्म, यकृत वद्धि, नया और पुराना आमवात, यकृत या प्लीहावृद्धिसह पाण्डुरोग, कामल कण्ठावरोध, दूषित जल भरने से होने वाली वृषण-वृद्धि श्लीपद रोग, कफप्रधान कास श्वास, व्रण, रस, रक्त और मांसस्थित दोषयुक्त नये कु छोटे-छोटे उदर कृमि, त्वचा में उत्पन्न होने वाले कृमि, हिचकी, अरुचि, अर्श संग्रहणी, अतिसार, विसूचिका, खुजली, मन्दाग्नि, तृषारोग पीनस को दूर करती है। रोग चाहे एक दोषज, द्विदोषज, या त्रिदोषज हो सबका नाश करती है। नित्य सेवन करने से बुद्धि, कान्ति और अ की वृद्धि होती है।

(९६) हिंगुल रसायन

प्रथम विधि–हिंगुल की ५ तोले की डली को इन्द्रायण फल के भीतर रख ऊपर कपड़मिट्टी करें। मिट्टी का लेप १-१ अंगुल मो करें। फिर अग्नि में डालकर पकावें। मिट्टी अच्छी तरह पक जाने पर गोले को निकाल लेवें। स्वांगशीतल होने पर हिंगुल को सम्हालपर्व निकाल इन्द्रायण के दूसरे फल में बन्दकर पुनः पकावें इस तरह २१ बार पकाने से उत्तम प्रकार का हिंगुल रसायन बन जाता है।

मात्रा–२ से ४ चावल, दिन में २-३ बार। नागरबेल के पान में दें।

उपयोग–इस रसायन के सेवन से प्रसूता के रोग दूर होते हैं। गर्भाशय में दूषित रक्त रह जाने या कीटाणु प्रवेश हो जाने पर ज्वर, मक्कलशू धनुर्वात संधिवात, अर्दित, शिरदर्द, अरुचि, अग्निमांद्य, व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर इसका सेवन कराने से गर्भाशय उत्तेजना आकर दूषित रक्त बाहर निकल जाता है; कीटाणु नष्ट होते हैं। जिससे ज्वर आदि लक्षण शमन हो जाते हैं। तथा अग्नि, देह-बल कान्ति और उत्साह की वृद्धि होती है।

कतिपय चिकित्सक इन्द्रायण के स्थान पर बैंगन लेते हैं। बैंगनवाला रसायन अग्निमांद्य, अतिसार, ग्रहणी, अर्श और वातप्रकोप को दूर कर है तथा इन्द्रायण वाले में अन्त्रशोधन गुण विशेष होते हैं।

दूसरी विधि–लौंग के ४० तोले चूर्ण को प्याज के रस के साथ चटनी की तरह पीस, गिलास जैसा आकार बनाकर सुखा लेंवे। पश्चा प्याज का रस ५ सेर निकाल फिर उस गिलास को एक कड़ाही में रखें, और उसमें हिंगुल २० तोले की डली रखकर कड़ाही को चूल पर चढ़ावें; ऊपर प्याज के रस का बर्तन लटका देवें। बर्तन के पैंदे में एक छोटा-सा छेद करें, जिससे धीरे-धीरे रस की एक-एक बूंद हिंगु के ऊपर टपकती रहें। अग्नि इस तरह दें कि रस गिरते ही सूख जाय इस रीति से ५ सेर रस १२ घण्टों में पूरा हो जायगा। बाद में हिंगु को पीसकर बोतल में भर लेवें। (आ.नि.मा. के आधार से)

मात्रा–आध से १ रत्ती तक दिन में २ बार शहद या रोगानुसार अनुपान के साथ।

उपयोग–इस रसायन के सेवन से उदरशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, वमन, जीर्णज्वर, विसूचिका, अतिसार, आमवृद्धि, कफवृद्धि, कृमि, वातदोष आदि दूर होकर शरीर लाल बन जाता है। प्रसूता के अतिसार, अरुचि और वात वृद्धि को भी यह नष्ट करता है। निर्बल मनुष्य को सेवन करा में यह रससिंदूर की अपेक्षा विशेष लाभ पहुँचाता है।

तीसरी विधि–अशुद्ध सिंगरफ २० तोले, भिलावा ८० तोले, गौघृत, एरण्ड तैल और शहद ६०-६० तोले लें। सिंगरफ के छोटे-छो टुकड़े करें एवं भिलावे को जौकुट करें। इस भिलावे के चूर्ण में से आधाचूर्ण एक मोटे पैंदे की कड़ाही में बिछा ऊपर सिंगरफ की डलिय अलग-अलग जमा उन्हें शेष भिलावें के चूर्ण से ढक दें और ऊपर से घृत, तैल तथा शहद डाल, चूल्हे पर चढ़ा, ४ घण्टे सामान्य अग्नि दें। जब आधा जल जाय तब अर्धावशेष पर घास को जलाकर कड़ाही में आग लगा दें, जिससे भिलावे जलकर भस्म हो जायेंगे। स्वांग शीतल होने पर कड़ाही उतार ऊपर-ऊपर से राख हटाकर पैंदे से सावधानीपूर्वक सिंगरफ की डलियाँ निकाल लेवें।(श्री पं. राधेश्याम जी गोस्वामी)

मात्रा–आध से ३ रत्ती। कपूर ½ रत्ती तथा जायफल, जावित्री और लौंग १-१ रत्ती का कपड़छन चूर्ण और शहद के साथ दिन में २ बार दें। अथवा २-३ बादाम की गिरी के साथ आध से १ रत्ती हिंगुल रसायन को पीस, थोड़ा शहद मिलाकर दिन में २ बार चटावें अथवा अदरक के रस और शहद के साथ या रोगानुसार अनुपान से देवें।

सूचना–(१) इस औषध के सेवनकाल में दही और मठ्ठे का अधिक प्रयोग करना चाहिये। जब-जब प्यास लगे, तब-तब मठ्ठे को ही उपयोग में लें। ग्रीष्मकाल में दिन में १-२ समय जल भी पी लेवें। भोजन में मट्ठे के साथ ज्वार-बाजरे की थोड़ी रोटी ले सकते हैं। ग्रहणी रोग में हितकर शाक भी ले सकते हैं।

(२) भिलावे को कूटने के समय हाथ न लगावें। कड़ाही में लोहे की कलछी से हिलावे और गोला बांधने के समय तैल लगाकर गोला बांधें अन्यथा हाथ पर फाला हो जाता है।

(३) भिलावे का धूआं शरीर को न लगे इस बात का ध्यान रखें।

उपयोग–इस रसायन के सेवन से संग्रहणी, आमातिसार, शूल, जीर्ण ज्वर, सन्निपात, वातरोग, सन्धिवात, रक्तविकार, कृमिदोष आदि दू होते हैं, अग्नि प्रदीप्त होती है; हृदय सबल होता है; शरीर लाल बनता है और उत्साह की वृद्धि होती है। अनुपान भेद से अनेक वातज औ कफज रोगों पर उपयोग में आता है।

कई चिकित्सक १ से ५ रत्ती तक औषध और कर्पूरयुक्त अनुपान को रोगी के बलाबल को देखकर दही (भैंस का) आधा सेर में मिलाकर देते हैं। ४० दिन तक दही का ही भोजन कराते हैं। इससे संग्रहणी सम्बन्धी विकार दूर होकर शरीर पुष्ट होता है। बाद में क्रमशः अन्न सेवन कराया जाता है।

(९७) गुल्मकुठार रस

विधि–वंगभस्म, अभ्रक भस्म, लोहभस्म और नागभस्म शतपुटी ५-५ तोले तथा ताम्रभस्म २० तोले मिला जम्भीरी नींबू के रस में ३ दिन खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें। (यो.र.)

मात्रा–१ से २ गोली दिन में २ बार। शहद, आम का मुरब्बा, अदरक का रस, जवाखार और सज्जीखार के साथ दें। रक्त गुल्म और पित्तज गुल्म में चातुर्जात के क्वाथ के साथ दें।

सूचना–इस रस में ताम्रभस्म का परिमाण आधा होने से अधिक मात्रा में सेवन नहीं कराना चाहिये। जिन रोगियों को उबाक या बेचैनी हो उनको आंवले, अनार या नींबू का रस अनुपान रूप से देना चाहिये। ताम्रभस्म अच्छी होने पर भी आमाशय की श्लैष्मिक कला में अधिक उत्तेजना लाकर बेचैनी, उबाक आदि लक्षणों को उत्पन्न करती है। अतः सम्हालपूर्वक उपयोग करें।

उपयोग–यह रस गुल्म, अजीर्ण, आमविकार, पित्तज अम्लपित्त, हृदयशूल, पार्श्वशूल, उदरशूल आदि व्याधियों को दूर करता है। इस औषध में पारद न होने पर भी संयोगजन्य गुण रस समान होने से इसे गुल्म कुठार रस संज्ञा दी है। इसका उपयोग जीर्ण रोग में और क्षीण रोगियों के लिये होता है।

शोक या मानसिक आघात से अपचन होकर अग्निमांद्य होता है वह अति त्रासदायक और विलक्षण स्वरूप का होता है। ऐसे अग्निमांद्य के अनेक दिनों तक रह जाने पर उससे वातक्षोभ होकर वातगुल्म की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार के गुल्म में अन्य लक्षणों के साथ दैन्य, मानसिक अस्थिरता, किसी भी बात में प्रीति न होना, निराशा, निस्तेजता, कृशता, मुखमण्डल की कांति अति बदली हुई भासना आदि होने पर इस औषध का अच्छा उपयोग होता है।

मांसाश्रित गुल्म और साथ में ज्वर, अत्यन्त तृषा, जलपान करने पर भी तृषा बनी रहना, शीतल जल और शीतल पदार्थ की अति इच्छा, मुख और देह पर एक प्रकार की लाली, भोजन की पच्यमान अवस्था में तीव्रशूल, बार-बार अति प्रस्वेद आना, अन्न का विदाह, गुल्म अति कठोर न होना, गुल्म पर स्पर्श सहन न होना, व्रण शोथ के समान स्पर्श करने पर वेदना वृद्धि होना, गुल्म पर थोड़ा-सा आघात लगने पर भयंकर पीड़ा होना क्वाचित् अधिक पीड़ा से बेहोशी आ जाना आदि लक्षणयुक्त पित्तप्रधान गुल्म पर इसका उपयोग चातुर्जात के क्वाथ के साथ करना चाहिये। दोष अति तीव्र होने पर मंजिष्ठा, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा, रास्ना के क्वाथ और मुनक्का के साथ देना चाहिये।

स्त्रियों को होने वाले रक्तगुल्म और गर्भ दोनों के निर्णय होने में अनेक बार भ्रम होता है। कारण, रक्तगुल्म गर्भ के सामन शनैःशनैः बढ़ता जाता है। गर्भ धारण होने पर जैसे लक्षण प्रतीत होते हैं वैसे ही लक्षण वमन होना, अंग गलना, उदर में जड़ता, मुख म्लान हो जाना और रजोदर्शन न होना आदि उपस्थित होते हैं। दोनों में अन्तर केवल इतना ही रहता है कि गर्भ के चौथे मास से गर्भ में एक प्रकार का स्पन्दन-स्फुरण होता है और गुल्म में ऐसे स्पन्दन या हलचल कुछ भी नहीं होते। गुल्म बस्ति के समीप एक स्थान में गाढ़ा चिपका हुआ वर्धिष्णु रहता है। इस भेद पर से कभी-कभी अनुमान हो जाता है। यदि सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय तो रक्तगुल्म और पित्तगुल्म के लक्षणों में अनेकांश में साम्य होने पर भी निर्णय हो जाता है। ज्वर, तृषा, शरीर पर लाल धब्बे उठना, उदर-पीड़ा, दाह, कण्ठ में जलन, दूषित डकार, खट्टी वमन, प्रस्वेद में एक प्रकार की दुर्गन्धि आदि लक्षण गर्भ धारण में नहीं होते। ये लक्षण होने पर रक्तगुल्म मानकर गुल्मकठार की योजना करनी चाहिये।

शास्त्रकारों ने रक्तगुल्म की चिकित्सा दस मास हो जाने पर कराने को दर्शाया है। इस तरह 'रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्' इस वचन में रक्तगुल्म जितना जीर्ण हो उतना सुखसाध्य होता है ऐसा ही कहा है। परन्तु ये दोनों सूचनायें विशेष सावधानी रखने के लिये हैं, यदि रक्तगुल्म का निःसन्देह निर्णय हो जाय तो तुरन्त चिकित्सा प्रारम्भ कर देने से रक्तगुल्म की आगे होने वाली वृद्धि रुक जाती है और चिकित्सा-पथ सुकर बन जाता है। किन्तु जब निर्णय न हो तब आचार्यों की उक्त सूचना का अवलम्बन अवश्य लेना चाहिये।

क्वचित् रक्तगुल्म और गर्भ दोनों एक साथ प्रतीत होते हैं। गर्भाशय में गर्भ वृद्धि होती है और बीजाशय में रक्तगुल्म बढ़ता है। ऐसी स्थिति में रक्तगुल्म अधिक बढ़ने पर गर्भाशय को प्रतिबन्ध होता है, जिससे गर्भ वृद्धि में बाधा पहुँचती है। रक्तगुल्म अधिक न बढ़ने देने का कार्य जो अति महत्व का है वह इससे गर्भ को किसी भी प्रकार का त्रास न होकर उत्तम प्रकार से होता है। इसके साथ अनुपान रूप से उशीरासव, सारिवासव या अन्य सौम्य पित्तशामक औषध की योजना करनी चाहिये। गुल्मरोग या अन्यत्र पित्तजन्य विदग्धाजीर्ण बार-बार होने की आदत वालों को यह रस देना चाहिये।

पित्तज अम्लपित्त में कण्ठ में जलन, खट्टी डकारें, उदर में दाह और अफारा, बार-बार डकारें आना, शौच शुद्धि न होना, उदर में भारीपन,

अन्त्र में गुड़गुडाहट बार-बार अम्लपित्त होने की आदत होकर बल हानि का भास होना आदि लक्षण होने पर गुल्मकुठार की योजना कर चाहिये। इस अवस्था में अदरक के रस और शहद के साथ या स्वल्प जवाखार और सज्जीखार के साथ देवें।

पित्तज परिणामशूल में हृदय के समीप, पार्श्वभाग और उदर में अन्नपचन होने के समय बार-बार शूल चलना, उदर में अफारा आदि ल होने पर गुल्म कुठार देना चाहिये।

(औ.गु.ध.शा.)

(९८) गुल्मकालानल रस

विधि-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, ताम्रभस्म और सोहागे का फूला प्रत्येक २-२ तोले, जवाखार १० तोले, नागरमोथा, पीपर सोंठ, कालीमिर्च, गजपीपल, हरड़, बच और कूठ ये ८ औषधियाँ १-१ तोला लेवें। सबको विधिपूर्वक मिलाकर पित्तपापड़ा, अदरक, अपामा (आंधीझाड़ा) नागरमोथा और पाठा के क्वाथ की क्रमशः ७-७ भावनायें देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (भै.र.

मात्रा-१ से २ गोली। हरड़ के क्वाथ के साथ, दिन में २ बार दें।

उपयोग-इस रस का विशेष उपयोग वातगुल्म, वातकफज गुल्म और कफपित्तज गुल्म पर होता है। पित्तगुल्म में विशेषतः लाभदाय नहीं है।

अन्त्र के भीतर जो भिन्न-भिन्न प्रकार की ग्रन्थिरूप रुग्णावस्था प्राप्त होती है; उसे आयुर्वेद में गुल्म संज्ञा दी है। केवल मांसवृद्धि या अन्य कारणों से अन्त्र में गांठ बढ़ना, इसी की गुल्म संज्ञा नहीं है। अन्त्र में बार-बार वायु संचित होकर उसके योग से गांठ सदृश अफारा आते रहना और कम हो जाना, उसे भी गुल्म कहा है। माँसल सौत्रिक तन्तु एक दूसरों के जाल के सदृश संलग्न होकर उसमें से गांठ उत्पन्न होना, भीतर की ओर मेद के सदृश और बाहर श्लैष्मिक कला रूप गांठ बढ़ना या केवल आफरा आकर गांठ की उत्पत्ति होना ये सब गुल्म के पृथक-पृथक रूप हैं। एक को पित्तगुल्म, दूसरे को कफगुल्म और तीसरे को वातगुल्म संज्ञा दी है। द्वन्द्वज गुल्मों में दो दोषों का संकर होता है। स्त्रियों को होने वाला रक्तगुल्म इन गुल्मों से पृथक है। रक्तगुल्म बीजाशय (Ovary) या गर्भाशय (Uterus) में होता है वह पित्तगुल्म की जाति का है। इसके लक्षण में सदृशता है।

इस रस का उपयोग विशेषतः वातगुल्म पर होता है, ऐसा ग्रन्थकार ने प्रतिपादन किया है। वातगुल्म अर्थात अन्त्र में उत्पन्न अफारा; यह गुल्म बहुत जल्दी कम ज्यादा होता रहता है; मलावरोध, अपानवायु का अवरोध, कण्ठ और मुख में शुष्कता, बीच-बीच में शीत लगना, सूक्ष्म-ज्वर-सा भासना, छाती, उदर, पार्श्व और मस्तिष्क आदि भागों में कभी-कभी शूल निकलना, अन्नपचन हो जाने पर उदर खिंचना थोड़ा-सा खा लेने पर अच्छा न लगना, श्रम सहन न होना, रूक्ष पदार्थ खाने पर त्रास अधिक होना आदि लक्षण होने पर गुल्मकालानल रस को घी के साथ देना चाहिये।

इस औषधि का उपयोग पित्तज गुल्म पर कितने अंश में होता है इस विषय में संशय है। पित्तज गुल्म की बिल्कुल प्रथमावस्था में गुल्म का परिपाक न हुआ हो; पित्तगुल्म में होनेवाले ज्वर, पिपासा आदि लक्षण पूर्ण रूप से उत्पन्न न हुए हों, ऐसे समय पर पित्तसञ्चय विरेचन द्वारा कम कराने के लिये इस औषधि का उपयोग मधुर और शामक अनुपान के साथ करना चाहिये।

कफज गुल्म, कफवातज गुल्म और कफपित्तात्मक गुल्म पर इसका उपयोग किया जाता है। विशेषतः इन गुल्मों में स्तैमित्य, शीतपूर्वक ज्वर, अंग टूटना, उबाक; अरुचि, खांसी, अंग में भारीपन, सर्वांग में शीत लगना; गुल्म और उसके चारों और बिल्कुल मन्द वेदना, गुल्म कठिन, उठा हुआ गोल, मोटा, समान किनारीवाला; विशेषतः यकृत प्लीहा इन दो अवयवों को छोड़कर मध्य कोष्ठ में गुल्म उत्पन्न होना आदि लक्षण होते हैं। इन गुल्मों पर इस औषध में रहे हुए यवक्षार, हरताल और ताम्र के क्षार गुण के योग से कफज गुल्म के दृढ़ बने घटक झरने लगते हैं, और गुल्म शनैःशनैः कम होने लगता है। यदि गुल्म बहुत बढ़ गया हो, दीर्घकाल का पुराना हो, तो औषधियों से लाभ नहीं होता। उस पर अस्त्र चिकित्सा ही करनी चाहिये।

रक्तगुल्म बिल्कुल स्वतंत्र व्याधि है। उसकी संप्राप्ति भी स्वतन्त्र होने से उस पर इस रस का उपयोग नहीं होता।

इस रस से जीर्ण शीतज्वर (Malarial Fever) और उससे उत्पन्न प्लीहा वृद्धि, अग्निमाँद्य, यकृद्वृद्धि आदि पर भी लाभ पहुंचने की संभावना है! केवल इन विकारों में कफदोष की प्रधानता होनी चाहिये।

(औ.गु.ध.शा.)

(९९) प्रवालपंचामृत रस

विधि-प्रवाल २ तोले तथा मोती, शंख, मोती की सीप और कोड़ी १-१ तोला मिला कूट पीसकर बारीक चूर्ण करें। पश्चात ६ तोले आक के दूध में खरल करके गोला बनावें। फिर संपुटकर गजपुट अग्नि देने से मुलायम भस्म तैयार होती है।

कितने ही वैद्य आक के दूध के बदले में गोदुग्ध का उपयोग करते हैं। यह विशेष सौम्य और विशेष पित्तशामक होता है। आक के दूध वाला योग थोड़ा उग्र रहता है। इस औषधि में पारद नहीं है, परन्तु रस के समान गुण होने से शास्त्रकारों ने 'प्रवालपञ्चामृत रस' का नाम रखा है।

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन मे २ बार, शहद और पीपल, गुलकन्द से या मात्र शहद, नींबू के रस अथवा अनार के साथ देवें।

उपयोग–यह रस आनाह, गुल्म, उदररोग, प्लीहा, बद्धोदर, कास, श्वास, मन्दाग्नि, कफ वातप्रकोप से होने वाले रोग अजीर्ण, उद्‌गार, हृद्‌रोग, ग्रहणी, अतिसार, बालकों के ग्रह-उपद्रव, प्रमेह, सब प्रकार के मूत्ररोग, मूत्रकृच्छ, अश्मरी इन सबको दूर करता है।

प्रवालपंचामृत का कार्य विशेषत: मध्यम कोष्ठ, यकृत्, प्लीहा और संग्रहणी पर अच्छा होता है। पाचक पित्त के द्रवत्व धर्म में कमी होने से पेट में अन्न का बोझा होता हो या अफारा आता हो, उसे यह रसायन दूर करता है।

पाचक पित्त में द्रवत्व धर्म बढ़ने पर अन्नपचन होने का धर्म कम हो जाता है। फिर अन्न-विदाह और अपचन होने लगते हैं। इस हेतु से कभी-कभी उदर में अफारा भी आता है। बार-बार दूषित खट्टी डकारें, भोजन करने के कुछ समय पश्चात पेट में भारीपन, उदर खिंचना, उदर पर पत्थर बाँधने सदृश जड़ता, शूल या वेदना बहुधा न होना, मध्यम कोष्ठ में आहार जैसा का वैसा पड़ा रहा हो ऐसा भासना आदि लक्षण होने, बैचेनी पर प्रवालपञ्चामृत को नींबू के रस के साथ या अन्य अम्ल वर्ग के साथ देना चाहिये। जीर्ण-विकार में मात्रा कम और दीर्घकाल पर्यन्त देनी चाहिये। कण्ठ में दाह, खट्टी डकारें आदि पित्त के अम्लता के लक्षण अधिक हो, तो अनार के रस या दाड़िमावलेह के साथ देना चाहिये।

इसी तरह आनाह (मलावरोध) के हेतु से मध्मय कोष्ठ में वातगुल्म समान न्यूनाधिक अफारा आता है यह वायु बृहदन्त्र में संगृहीत होती है। इस पर इस रस का अच्छा उपयोग होता है।

पित्तगुल्म के प्रारम्भ में थोड़ा ज्वर, तृषा, मुखमण्डल और समस्त शरीर लाल हो जाना, भोजन करने के दो घण्टे पश्चात् भयंकर उदरशूल, प्रस्वेद आना, अन्न के विदाह के हेतु से कण्ठ में जलन, उदर में दर्द स्थान पर स्पर्श भी सहन न होना आदि लक्षण होने पर प्रवालपंचामृत को घी के ऊपर रहे हुए प्रवाही सत्व या आंवलों के क्वाथ (या फाँट) के साथ देने से उत्तम लाभ होता है।

उदर रोग में यकृद् वृद्धि हेतु हो और पित्तप्रधान लक्षण-नेत्र, त्वचा, नाखून और मूत्र में पीलापन, मुख, हाथ और पैर पर थोड़ी सूजन, उदर में वायु भरा रहना, उदरवृद्धि उदर में किंचित जलसंचय, यकृत बढ़ने से किनारी मोटी हो जाना, बार-बार घबराहट, तृषा, हाथ, पैर, नैत्र और मस्तिष्क आदि संतप्त सदृश भासना, मूत्र थोड़ा और अति पीला या लाल रंग का हो जाना, मल कच्चा, सफेद और दुर्गन्धयुक्त हो जाना, मलशुद्धि सम्यक् न होना, कभी-कभी कण्ठ में दाह और घबराहट होकर वमन होना आदि लक्षण मुख्य होने पर प्रवालपञ्चामृत का उपयोग अति हितावह है। अनुपान रूप से ताजे दही का जल देने से पित्तप्रकोप जल्दी शमन होता है। इस तरह प्लीहा वृद्धि के पश्चात् उत्पन्न उदर रोग में भी पित्तप्रधान लक्षण होने पर यह अच्छा उपयोगी है।

कास और श्वास रोग में अति घबराहट, अन्न का विदाह, बेचैनी, शीतल पदार्थ और शीतल वायु की इच्छा व अच्छा लगना, दूध, अनारदाने आदि पित्तशामक वस्तु अच्छी लगना, अग्नि सेवन या उष्ण उपचार से पीड़ा अधिक होना आदि लक्षण होने पर प्रवालपंचामृत का उपयोग करना चाहिये।

जीर्ण अग्निमांद्य होने पर पचनेन्द्रिय संस्थान अशक्त हो जाता है, जिससे पाचक रस का व्यवस्थित निर्माण नहीं होता। अपचन, उदर में वायु भरी रहना, अफारा, दूषित डकार, रस की उत्पत्ति सम्यक् न होने से रक्त आदि धातुओं में क्षीणता आकर शरीर कृश और अशक्त हो जाना आदि लक्षण प्रतीत होतें हैं। उस पर प्रवालपंचामृत का उपयोग उत्तम होता है।

पित्त की विकृति से अतिसार उत्पन्न हुआ हो, फिर उसी से संग्रहणी हो गई हो, तो भी प्रवालपंचामृत का प्रयोग करना चाहिये। ऐसी स्थिति में पंचामृत पर्पटी और सुवर्ण पर्पटी भी दी जाती है। परन्तु उनमें पारद-मिश्रित कज्जली होने से पित्त दोष की तीव्रता और अम्लता बढ़ती है। इससे विरुद्ध रस से पित्त प्रधान अतिसार और ग्रहणी में पित्तप्रकोप का शमन होकर सत्वर रोग निवारण होता है।

प्रमेह के विकार में जीर्ण अपचन कारण हो या तीव्र पित्तदोष की प्रधानता हो, तो प्रवालपंचामृत उत्कृष्ठ कार्य करता है। अतिशय तृषा, इस तरह मूत्र का परिमाण अधिक और बार-बार होना, मूत्र काला, नीला, अति पीला या अति लाल होना, चिपचिपा प्रस्वेद, सर्वांग में और हाथ पैरों के तलों में दाह, बार-बार कण्ठ सूखना, जलपान करने पर भी सन्तोष न होना आदि लक्षण होने पर प्रवालपंचामृत रस देना चाहिये।

(औ.गु.ध.शा. आधार से)

(१००) प्रभाकर वटी

विधि–सुवर्णमाक्षिक भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, वंशलोचन, शुद्ध शिलाजीत, सबको समभाग मिला अर्जुन की छाल के क्वाथ में ३ दिन तक खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। (भै.र.)

मात्रा– १ से २ गोली तक दिन में दो बार, शहद के साथ लेवें। ऊपर दूध अथवा अर्जुन छाल का क्वाथ पीवें।

उपयोग–इस रस से हृदय-शूल, हृदय की धड़कन(Palpitation) हृदयपेशीवेष्टन (Fibrillation), हृदयावरोध, हृदय के आवरण का दाह आदि सब दोष दूर होकर हृदय बलवान बनता है, एवं पित्तकास, दाह, खट्टी डकार, मन्दाग्नि, चक्कर आना, शरीर की निस्तेजता आदि विकार भी नष्ट होते हैं।

अग्निमांद्य, रक्त की न्यूनता, रक्त की निर्बलता, नाडीवाहिनियों की विकृति, मानसिक आघात, वृक्कविकार, वात या पित्त दोष प्रकुपित हो विषमज्वर या अन्य संक्रामक व्याधियां आदि कारणों से हृदय अशक्त हो जाने पर इस बटी का अच्छा उपयोग होता है। इससे घबराहट, धड़क दाह आदि दूर होकर हृदय सबल बन जाता है। उत्साह, कांति, स्फूर्ति, बल और वीर्य की वृद्धि, होती है।

(१०१) त्रिनेत्र रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और अभ्रक भस्म को समभाग मिलाकर खरल करें। फिर सूर्य के ताप में अर्जुन वृक्ष की छाल की क्वा की २१ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। (यो.र.

मात्रा- १ से २ गोली; दिन में ३ बार; शहद के साथ लेवें।

उपयोग–त्रिनेत्र रस सब प्रकार के हृद्रोग (वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और कृमिज) और फेफड़ों के दोषों को दूर करता है।

हृदय में से निकली हुई रक्तवाहिनियों को यह रसायन संकुचित करके दृढ़ बनाता है। हृदय की उष्णता, शूल और कृमि का नाश क है। फुफ्फुस और मांसग्रन्थियों को पुष्ट बनाता है; बल, कांति और स्मरण शक्ति को बढ़ाता है एवं हृदयवेग के बढ़ने से होनेवाली मन्दा मेदवृद्धि, शूल, शोथ, प्रमेह, प्रदर, अपस्मार, कुष्ठ, उदररोग, दुष्टव्रण, भगंदर आदि व्याधियों को दूर करता है।

(१०२) हेमनाथ रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध आंवलासार गन्धक, सुवर्णभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रत्येक १-१ तोला तथा लोह भस्म, कपूर, प्रवाल भस्म अ वंग भस्म प्रत्येक ६-६ माशे लें। पहले पारद और गन्धक की कज्जली करें। फिर शेष औषधियों को मिला अफीम का रस (अफीम को गुने जल में मिलाकर एक उफान आवे तब तक गरम करें।) केले के खम्भे का रस और गूलर का रस (गूलर के वृक्ष के मूल में खड्डा क एक भड़ा रखें, ऊपर ढक्कन से ढककर मिट्टी दबा देवें। भड़ा भर जाने पर दूसरे रोज सुबह निकाल लेवें) इनकी क्रमशः ७-७ भावनायें दे एक-एक रत्ती की गोलियां बना लें। (भै.र.

इस रस में पारे और गन्धक के बदले में षड्गुण गन्धक-जारित रससिन्दूर मिलाने से विशेष लाभ होता है, ऐसा मूलग्रन्थकार ने लिखा

मात्रा–१ से २ रत्ती, दूध मिश्री या धात्री घृत के साथ।

उपयोग–यह रसायन दारुण बहुमूत्र, सब प्रकार के प्रमेह, मधुमेह, सोमरोग, क्षय, उरःक्षत, स्वप्नदोष, श्वास, कास और संग्रहणी आ को दूर करता है।

सूचना–अनेक निर्बल अन्नवालों को अफीम के हेतु से बद्धकोष्ठ हो जाता है। इसलिये औषधि की मात्रा प्रकृति का विचार करके चाहिये।

(१०३) मूत्रकृच्छ्रान्तक रस

विधि–शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक १-१ तोला, जवाखार ४ तोले लें। सबको यथा विधि मिलाकर खरल करें। (र.सं.

मात्रा–१-२ मात्रा प्रातःकाल मिश्री और मट्ठा या लस्सी के साथ दें।

उपयोग–यह रस मूत्रकृच्छ्र को दूर करता है तथा पेशाब को साफ लाता है। मूत्राशय में अश्मरी की छोटी-छोटी कंकड़ियाँ (शर्करा सकता) हो गई हो, वे भी निकल जाती हैं।

दूसरी विधि–आधी बटलोई को जल से भर, उसके मुख को पतले कपड़े से ढककर डोरे से बाँध दें। फिर कपड़े पर ३ छटांक गन्धाबि फैला बटलोई को चूल्हे पर चढ़ाकर मन्द आँच दें। जब पानी की भाप से गन्धाबिरोजा पिघलकर और कपड़े से छनकर बटलोई के अन्दर जाय; तब बटलोई को चूल्हे से उतार लें। शीतल होने पर तलभाग में जमे हुए बिरोजे को निकाल लें। फिर यह गन्धाबिरौजा ४ तोले मकरध्वज या षड्गुण गन्धकजारित रससिंदूर ८ माशे मिलाकर खरल करें। (र.सा.

मात्रा–२-२ माशे दिन में दो बार ताजा दूध, जल या मिश्री के साथ सेवन करें।

उपयोग–इसके सेवन से दारुण मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) नष्ट हो जाता है। ८-१० रोज में मूत्रप्रसेक नलिका से भीतर का घाव मिट जाता पीप आना बन्द होता है और मूत्रप्रवाह का भी निवारण होता है। जीर्णरोग में ज्यादा दिन तक सेवन करना चाहिये।

सूचना–यदि मकरध्वज या रससिंदूर न मिले, तो केवल शुद्ध किया हुआ गन्धाबिरोजा भी लाभ पहुँचा सकता है।

(१०४) वसन्तकुसुमाकर रस

विधि–प्रवाल पिष्टी, रससिंदूर, मुक्तापिष्टी और अभ्रक भस्म ४-४ भाग सुवर्णभस्म और रौप्यभस्म २-२ भाग, लोह भस्म, नागभस्म शतपुटी और वंगभस्म ३-३ भाग लेवें। सबको अच्छी तरह मिला अडूसे का रस, हल्दी का क्वाथ, ईख का रस, कमल के फूलों का रस, मालती पुष्प का रस, गाय का दूध, केले के खम्भे का रस, कस्तूरी और चन्दन का फाण्ट* सबकी पृथक्-पृथक् ७-७ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। इस रस को अनेक चिकित्सक खस और नेत्रबाला के क्वाथ की भावना भी देते हैं। + (र.यो.सा.)

वक्तव्य–इस योग में हम अम्बर ४ तोले मिलाते हैं एवं कस्तूरी की भावना के स्थान पर अन्त में केसर और कस्तूरी २-२ तोले मिला १ दिन केवड़े के अर्क में खरलकर गोलियां बांधते हैं।

मात्रा–१ से ३ रत्ती। दूध-मिश्री, मलाई या मक्खन-मिश्री के साथ।

विशेष अनुपान– (१)क्षय में कालीमिर्च का चूर्ण और शहद।

(२) प्रमेह में हल्दी, शक्कर और शहद।

(३) रक्तपित्त में चन्दन का चूर्ण और मिश्री या अडूसे का रस, मिश्री और शहद अथवा मोगरा या सेवती का रस।

(४) पुष्टि के लिये चातुर्जात या अगर और सफेद चन्दन का चूर्ण १ माशे के साथ मिला शहद के साथ लेवें।

(५) वमन में शङ्खपुष्पी का रस।

(६) अम्लपित्त में शतावरी का स्वरस, शक्कर और शहद।

(७) प्रमेह पिटिका में शिलाजीत।

(८) मानसिक निर्बलता में त्रिजात का क्वाथ।

(९) मस्तिष्क की निर्बलता पर कूष्माण्डावलेह।

(१०) शुक्रवृद्धि के लिये शतावरी, असगंध और मिश्री।

उपयोग–वसन्तकुसुमाकर रस अंडकोष, हृदय, मस्तिष्क, पचनेन्द्रिय, जननेन्द्रिय और फुफ्फुसों के लिये पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक, कामोत्तेजक, मधुमेहघ्न और मानसिक निर्बलता का नाश करने वाला है। जीर्ण मधुमेह और उसके उपद्रव रूप हृद्विकार, श्वास, कास, इन्द्रिय दौर्बल्य आदि एवं प्रमेहपिटिका (अदीठ Carbuncle) शुक्रक्षय के पश्चात् की निर्बलता, जरा सा विचार आते ही शुक्रपात होना, नपुसंकता, मूत्रपिण्ड की विकृति, स्मरण शक्ति मन्द होना, भ्रम, निद्रानाश, जीर्णरक्तपित्त, हृदय की निर्बलता, शुष्ककास, थोड़ा परिश्रम होने पर श्वास भर जाना, वृद्धावस्था में श्वास, कास, हृदय या यकृत् की विकृति, जीर्ण सर्वांग शोथ, स्त्रियों के नूतन प्रदर, जीर्ण श्वेतप्रदर, सबको शमन करने में यह उपयोगी है।

यह रस मधुमेह में अत्यन्त हितकर है। अति व्यवाय (स्त्रीसेवन) और ओजक्षय से होने वाले जीर्ण मधुमेह में निर्बलता, मानसिक दौर्बल्य; दिन-प्रतिदिन बढ़ने वाला शब्द-स्पर्श आदि गुणों की ग्राहक इन्द्रिय शक्ति का क्षय; जोर की आवाज और अधिक प्रकाश का सहन न होना, बात-बात में क्रोध उत्पन्न होना; अनिश्चित वृत्ति; विचार करने की शक्ति कम हो जाना, इन्द्रिय शैथिल्य इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हों, तो वसन्कुसुमाकर अत्यन्त हितकर है। मधुमेह से उत्पन्न उपद्रव हृद्विकार, श्वास, कास, प्रमेहपिटिका, मूर्च्छा, संन्यास आदि को भी दूर करता है। प्रमेहपिटिका होने पर शिलाजतु के साथ देना चाहिये। मधुमेह के अन्त में उत्पन्न संन्यास और शक्तिपात को दूर करने के लिये यह रस अमृत रूप है।

अति व्यवायशोषी के मनोदौर्बल्य, इन्द्रियशैथिल्य और शारीरिक निर्बलता बढ़ने पर स्त्री दर्शन या आवाज मात्र से मन में विकृति, शरीर निस्तेज हो जाना, जिसमें जननेन्द्रिय बिल्कुल शिथिल हो जाना आदि लक्षण होते हैं, उनमें यह अत्यन्त लाभदायक है।

अत्यन्त व्यवाय से हृदयदौर्बल्य, शुष्क त्रासदायक कास, श्वास, थोड़े परिश्रम में श्वास भर जाना, धमनी अथवा हृत्पटलका विकार, क्वचित् मूत्रपिण्ड का विकार, इन सब पर यह उपयोगी है।

अधिक मगज के श्रम से शिरदर्द और चक्कर आकर मानसिक निर्बलता बढ़ गई हो; तथा मस्तिष्क, वातवाहिनियां और इनके केन्द्र स्थानों

---

* चन्दन का फाण्ट–चन्दन के चूर्ण १ तोले को १६ तोले उबलते जल में डालकर २-४ घण्टे मन्द आंच पर रहने दें। फिर नीचे उतार कर ढकन में ढक दें। पश्चात् लगभग १६ से २० घण्टे बाद छानकर उपयोग में लेवें।

सूचना–चन्दन को अधिक उबालकर क्वाथ न करें। अन्यथा अधिकांश सुगन्ध युक्त द्रव्य उड़ जाता है।

रस क्वाथ और दूध को दोहरे गाढ़े कपड़े से छान लेना चाहिये। नहीं तो व्यर्थ वजन बढ़ जायेगा और रसायन हीन गुणयुक्त हो जायेगा।

+ श्री वैद्यराज पं. सुखरामदास जी टी. ओझा बसन्तकुसुमाकर में नीलम पिष्टी, अकीकभस्म, संगेयसव भस्म, लाजवर्द रत्न की भस्म और माणिक्यभस्म २-२ तोले मिलाकर केसर की ७ भावनायें देते थे। इनके अनुभव अनुसार इस तरह बना हुआ रस अपेक्षाकृत अधिक हृद्य और सद्यः फलदायी बनता है। मधुमेह में जब अधिक निर्बलता आ जाती है, तब यह तुरन्त उपकार दर्शाता है।

की विकृति के लक्षण विचार करने पर मन का गुम हो जाना, बाहर की आवाज सहन न होना; व्याकुलता बनी रहना, विचार करने में त्रास होना, आदि प्रतीत होते हों; परन्तु रक्तदबाव न बढ़ा हो, तो यह रसायन हितकारक है। अनुपान रूप से त्रिजात का क्वाथ या पेठे का रस देना चाहिये। इन लक्षणों के साथ निद्रानाश हो; और निद्रानाश का हेतु विविध विचार कल्पना हो, तो उसे भी यह दूर करता है।

जब रक्तपित्त नाक, मुँह, गुदा, मूत्रमार्ग आदि से रक्तस्राव अधिक बल पूर्वक होता हो, तो चन्द्रकला (या चन्दप्रभा), प्रवाल, मुक्ता मिश्रण दिया जाता है। परन्तु जब प्रारम्भिक वेग नष्ट होकर रोग जीर्ण हो जाता है, या रक्तपित्त की आदत हो जाती है, अथवा भोजन में किंचित् अन्तर होने या सूर्य का ताप लगने पर नाक की शिरायें फूटकर रक्तस्राव होने लगता है; ऐसे रक्तपित्त में पित्त का विदग्धत्व अधिक होता है। इस आदत को मिटाने में यह उत्तम औषधि है।

कितनी ही स्त्रियों को कहीं भी आघात लगा कि रक्तस्राव होने लगता है; फिर वह जल्दी बन्द नहीं होता। मासिक धर्म में जाने वाला रक्तस्राव सत्वर नहीं रुकता। इतना ही नहीं, कभी सूई लग जाय, तो उससे भी रुधिरस्राव होना; फिर वह भी जल्दी बन्द नहीं होता। इस प्रकार के प्राकृतिक रक्तपित्त (Haemophilia)पर वसन्तकुसुमाकर अति उत्तम कार्य करता है अनुपान रूप से मोतिया के फूलों का लेह देवें।

वसन्तकुसुमाकर का परिणाम अण्डकोष पर बल्य होता है, अतः यह उत्तम वृष्य औषध है। छोटी आयु से दुष्ट आदत हो जाने या युवावस्था में अति व्यवाय आदि कारणों से उत्पन्न इन्द्रिय शैथिल्य, मन में कामविकार उत्पन्न होने के साथ वीर्यस्खलन, स्त्री सम्बन्धी विचार आने अथवा नूपुर या कंकण की आवाज सुनने मात्र से स्खलन आदि लक्षण हों, या नपुन्सकता आई हो, तो यह अति उपयोगी है।

वृद्धावस्था में उत्पन्न जरा काम में यह औषध उत्तम उपयोगी है। जरावस्था में यह स्वाभाविक काल परिणाम है, यह एक पक्ष है। वृद्धावस्था में भी यह रोग ही है, यह दूसरा मत है। यह दूसरा मत आयुर्वेद को मान्य है। जरावस्था के कारण अनेक हैं। इनमें सब अवयव समूहों की विशेषतः अन्तःस्रावक पिण्डों की शक्ति कम-कम होती जाना, यह भी एक कारण है। फिर अन्तस्थ अवयव समूह अशक्त हो जाता है। इसका परिणाम हृदय और फुप्फुसों पर होकर श्वास-कास होते हैं। इस पर वसन्तकुसुमाकर उपयोगी है।

सर्वाङ्ग शोथ, वातज (हृदय-विकृतिजन्य), पित्तज (यकृद्विकृतिजन्य), कफज (वृक्कविकारजन्य) और सर्वज (व्याधि संकर होकर तीनों स्थान दुष्ट होने), इस तरह ४ प्रकार के शोथ आयुर्वेद में कहे हैं। इनमें पुनः तीव्र और जीर्ण, ऐसे दो भेद हैं। इनमें से तीव्र विकार में इसका उपयोग नहीं होता। परन्तु जीर्ण विकार में विशेषतः वातज और पित्तज पर, इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

स्त्रियों की जननेन्द्रिय के विकार में इसका उपयोग होता है। यह औषधि छोटी आयु की अपेक्षा बड़ी आयु में विशेष लागू होती है। व्यवाय के अतियोग से उत्पन्न प्रदर, सर्वाङ्ग शैथिल्य, हृदय की अशक्तता, वातवाहिनियां और वातवह मण्डल की शिथिलता, क्रोधी स्वभाव आदि लक्षण होने पर यह अति उत्तम लाभ पहुंचाती है। प्रदर रोग दीर्घकाल पर्यन्त चालू रहता है। तब निरुत्साह, कृशता, निस्तेजता, शक्तिपात आदि हो जाते हैं। इस पर यह अच्छा उपयोगी है।

संक्षेप में यह रस बल्य, वृष्य, मधुमेहघ्न, मानसिक निर्बलता तथा वातवहमण्डल, सहस्रार और वातवाहिनी केन्द्र की अशक्ति को दूर करने वाला है।

(औ.गु.ध.शा. के आधार से)

सूचना-वसन्तकुसुमाकर अत्यन्त कामोत्तेजक होने से बढ़ी हुई कामोत्तेजना वाले को नहीं देना चाहिये, अन्यथा उसके मन पर बहुत खराब असर होकर शुक्रक्षय अधिक करने की प्रवृत्ति हो जायेगी।

(१०५) त्रिविक्रम रस

विधि-ताम्रभस्म १० तोले को बकरी के १० तोले दूध में मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। दूध सूख जाने पर १० तोले पारद और १० तोले गन्धक की कज्जली मिलाकर खरल करें। पश्चात् काले फूलों वाली निर्गुण्डी की छाल के क्वाथ में ३ दिन खरल करके गोला बनावें। फिर सूखा, सराव-सम्पुट में बन्द कर मजबूत ५-७ कपड़ मिट्टी करें। सूखने पर बालुका यन्त्र में रखकर १ प्रहर तीव्राग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर औषध को निकाल कर खरल कर लेवें।

(र.र.स.)

सूचना-रस सिद्ध होने पर गन्धक जल जाता है और पारद का सिंदूर बन जाता है। यदि गन्धक रह गया हो तो पुनः १-२ घण्टे अग्नि देनी चाहिये।

मात्रा-आध से २ रत्ती शहद के साथ दिन में १ बार सुबह, ऊपर ६ माशे बिजौरे के मूल को जल में घिसकर पिलावें; या हरड़, बहेडा, पाषाणभेद धमासा, धनियां, गोखरु और ककड़ी के बीज के मगज का क्वाथ दें।

वक्तव्य-त्रिविक्रम लेने पर यदि बेचैनी होती हो तो पीले पक्के नींबू का रस, शक्कर और थोड़ा जल मिलाकर पी लेवें।

इस रस का सेवन करने पर १ घण्टे तक गरम चाय या गरम दूध नहीं लेना चाहिये।

उपयोग–इस रस के सेवन से मूत्रपिण्ड और मूत्राशय में स्थित अश्मरी, शर्करा, वृक्कशूल आदि रोग एक मास में नष्ट होते हैं। पथरी कट-कटकर मूत्र द्वारा निकल जाती है।

(१०६) पाषाणवज्रक रस

विधि–शुद्ध पारद १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर कज्जली करें। पश्चात् सफेद पुनर्नवा के रस में ३ दिन तक खरल पर गोला बांधकर सुखावें। फिर सराव सम्पुट में बन्द कर भूधर यन्त्र में १२ घण्टे तक अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर गोले को निकाल कर खरल कर लें।

मात्रा–४-८ रत्ती रोज सुबह समभाग पाषाणभेद का चूर्ण तथा सूर्यावर्त क्षार २-२ रत्ती मिलाकर लेवें। ऊपर गोपाल ककड़ी (एरण्ड ककड़ी-पपीता) के ४ तोले मूल का क्वाथ शहद मिलाकर पीवें अथवा कुलथी का क्वाथ पीवें। रात्रि को गोखरु, वंशलोचन और नागर मोथे का क्वाथ लें।

उपयोग–इस रस के सेवन से अश्मरी एक सप्ताह में कट-कटकर निकल जाती है। वृक्कस्थान में शूल निकलता हो तो वह भी इस औषध के सेवन में शमन हो जाता है।

अश्मरी के भेदन और उत्पत्ति को रोकने के लिये विशेषतः त्रिविक्रम रस और पाषाणवज्रक रस ये दो रसायन व्यवहृत होते हैं। यकृत् निर्बल होने पर पित्त का स्राव योग्य न होता हो तब यकृद्बल्य औषधि देनी चाहिये। ताम्रभस्म यकृद् को उत्तेजना देती है और सबल बनाती है। इस हेतु से ऐसी अवस्था में त्रिविक्रम रस विशेष उपकारक है किन्तु अधिक धूम्रपान करने वालों के वृक्क जब योग्य कार्य नहीं करते और यकृत्पित्त दूषित हो जाता है तथा शराब के व्यसन वालों को यकृत् में अधिक रक्तसंग्रह हो जाता है तब मूत्रजनन गुणयुक्त औषधि विशेष व्यवहृत होती है। इसलिए ऐसी अवस्था में पाषाणवज्रक रस अधिक हितावह होता है। इस रसायन के सेवन से यकृत्पित्त की रचना सुधरती है और नयी उत्पत्ति बन्द हो जाती है। अधिक वमन होकर आमाशय में उग्रता आई हो वह भी शांत हो जाती है। वृक्क और मूत्राशय दोनों स्थानों पर यह औषधि कार्य करती है।

सूचना–यदि अश्मरी वातज (ओक्झलेट) हो और पुरानी हो गई हो तो इस औषधि के सेवन से नहीं टूटती। पित्तज और कफज टूट जाती है।

(१०७) अश्विनीकुमार रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, सोहागे का फूला, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध अफीम, शुद्ध बच्छनाभ, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पीपलामूल और लौंग ये १५ औषधियाँ १-१ तोला लेवें। पहले पारद गन्धक की कज्जलीकर हरताल, बच्छनाभ, अफीम, जमालगोटा और सोहागा क्रम में मिलावे। बाद में और औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला कर गाय के ३२ तोले दूध के साथ खरल करें। फिर ३२ तोले गोमूत्र में और ३२ तोले भांगरे के रस में खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा–१ से २ गोली दिन में २ बार। रोगानुसार अनुपान के साथ दें। पित्तमेह में हल्दी, मूत्रकृच्छ् में जीरे, पुष्टि के लिये शहद और ज्वर में अदरक के रस और शहद के साथ देवें।

उपयोग–इस रस के सेवन से पित्तजमेह, मूत्रकृच्छ् और पित्तप्रधान विषम ज्वरों का नाश होता है तथा बल की वृद्धि होती है। आमाशय (मेदा) पक्वाशय (छोटी आंत) और मलाशय (बड़ी आंत) में दोष संचय होने से भीतर अब्धातु (जल) की वृद्धि होकर होने वाला जुकाम, नजला, बहुमूत्र, प्रमेह, कोष्ठशूल, कोष्ठशूलज अतिसार और ज्वर आदि रोग दूर होते हैं।

आमाशय, पक्वाशय और बृहदन्त्र में दोषसंचय होने पर सेन्द्रिय विष संगृहीत होता है, फिर विविध विकार उत्पन्न होते हैं। इन पर यह रसायन लाभदायक है। बद्धकोष्ठ में इसका उपयोग नहीं होता, परन्तु मल संगृहीत होने से अब्धातु बढ़कर उत्पन्न होने वाले विकार इस औषध के योग से निवृत्त होते हैं। कोष्ठस्थ सेन्द्रिय विष का परिणाम अन्य स्थान में होकर उत्पन्न होने वाले प्रमेह और प्रतिश्याय को भी यह दूर करता है। इसके सेवन के कोष्ठस्थ सेन्द्रिय विष का शमन होता है, पचनक्रिया बढ़ जाती है, कोष्ठ सबल होता है, और मलसंचय बाहर निकलकर कोष्ठ शुद्धि हो जाती है।

कोष्ठस्थ मलसंचय प्रमेह का प्रमुख कारण है। प्रमेहों में भी विशेषतः पित्तदोष के द्रवत्व धर्म की वृद्धि होकर उत्पन्न होने वाले प्रमेहों में अर्थात् कालमेह, नीलमेह, मांजिष्ठमेह और हारिद्रमेह में मूत्र का वर्ण काला, नीला, लाल या पीला होने पर इसका उपयोग होता है। मूत्र के उक्त रङ्ग बार-बार मूत्रोत्सर्ग होने पर भी मूत्रशुद्धि न होने का भास होना, तृषा विशेषतः शीतल जल अधिक पीने की इच्छा, हाथ पैरों के तलों में दाह सर्वाङ्ग में जलन, सर्वांग में विशेषतः बगल आदि स्थानों में चिपचिपे दुर्गन्धमय प्रस्वेद में से गन्धक जलने के सदृश बास आना आदि लक्षण होने पर हल्दी के साथ अश्विनीकुमार देना चाहिये।

मूत्रकृच्छ्र में बार-बार मूत्रोत्सर्ग की शंका होती है। बहुत पेशाब होगा ऐसा लगता है। परन्तु पेशाब करने के लिये वेग उत्पन्न होने प्रयत्न करने और बलपूर्वक किंछने पर भी मूत्रप्रवृत्ति योग्य नहीं होती। मूत्रप्रसेक नलिका में दाह, क्षोभ या शोथ अधिक न होने पर भी लक्षण हों तो अश्विनीकुमार अनेक उत्तम औषधियों में से एक है।

कोष्ठ में मलसंचय होकर कोष्ठशूल, अतिसार और ज्वर होने पर अश्विनी कुमार का उत्तम उपयोग होता है। तीव्र त्रासदायक शूल, उ में शूल, उदर में छुरे के मारने के सदृश वेदना, उदर में दर्द होकर मरोड़ा आना और बार-बार शौच जाने का भास होना, शौच जाने पर प्रवाह करने पर थोड़ा जल मय किंचित् मल निकलना, इस तरह के त्रास के हेतु से ज्वर आना, ज्वर अधिक नहीं होता परन्तु मन्दज्वर में भी अधिक होने आदि लक्षण होने पर अश्विनीकुमार उत्तम औषधि है।

विषम ज्वरों में एकाहिक, अन्येद्यु, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरों में यदि पित्तदोष का प्राधान्य हो तो भिन्न-भिन्न अनुपान के साथ अश्विनीकुम रस देना चाहिये। (औ.गु.ध.शा.के आधार से)

(१०८) हरिशंकर रस

विधि-अभ्रक भस्म और रससिंदूर २-२ तोले और नीलेथोथे का फूला १ तोला मिलावें। फिर आंवले के स्वरस और हल्दी के क्वा में ७-७ दिन तक खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा-१ गोली से प्रारम्भ कर ३ गोली तक बढ़ावें। अनुपान में जल, त्रिफला और शहद, अडूसे के रस, मिश्री और नागरबेल का पा अथवा तिल का तैल लें।

उपयोग-यह रस जीर्ण और नूतन पूयमेह को नाश करता है। पूय प्रमेह (Gonorrhoea) मेह की तीव्र वेदना, पेशाब में आता हु रक्त और पीप, पेशाब में जलन आदि लक्षणों को दूर करता है। गोली देकर ऊपर ४ तोले तैल या आँवलों का फाण्ट या नींबू का रस पिला से वमन, घबराहट कुछ भी नहीं होती और २-४ घण्टे में ही तीव्र जलन की शांति होती है। तैल पीने वाले को घी, शक्कर, हींग और बेस की वस्तुएं नही देना चाहिये।

आंवलें के स्वरस की अधिक भावना से नीले थोथे की वमन कराने की शाक्ति का दमन होता है और औषधि पूरा लाभ करती है यदि आंवले के स्वरस की भावना कम दी जायगी तो औषधि सेवन से बेचैनी उत्पन्न होगी।

सूचना-इस औषधि के सेवन के पश्चात् ३ घण्टे तक भोजन, दूध, चाय या काफी कुछ न लें। आवश्यकता हो तो थोड़ा ठण्डा जल पीवें।

(१०९) बृहद्वंगेश्वर रस

विधि-वंग भस्म, शुद्ध गन्धक, रौप्य भस्म, कपूर और अभ्रक भस्म १-१ तोला तथा सुवर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी ३-३ माशे लेकर यथाविधि मिला लें। फिर भांगरे के रस में ३ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (रसे.सा.सं.)

वक्तव्य-रौप्यभस्म १०० पुटी, वङ्ग भस्म चतुर्थ विधि की, विशेष पुटयुक्त अभ्रक भस्म सहस्त्रपुटी पाठ में लिखे हुए परिमाण में तथा अम्बर, रौप्य भस्म से आधे परिमाण में मिलाने पर यह औषधि आशुफलप्रद बनती है। हम बृहद्वंगेश्वर (विशेष) इस प्रकार से बनाते हैं।

मात्रा-१ से २ रत्ती तक। दिन में २ बार गाय या बकरी के दूध अथवा दही या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग-यह रसायन साध्य और असाध्य प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमक, रक्तपित्त, वातपित्त और कफप्रधान संग्रहणी, आमदोष, मन्दाग्नि, अरुचि, बहुमूत्र, मूत्रातिसार, स्तम्भन का अभाव और सोम रोग आदि को दूर करता है, शरीर को पुष्ट बनाता है; बल, ओज, तेज, वर्ण और रुचि उत्पन्न करता है। वीर्योत्पत्ति और वृद्धि के लिये यह अति लाभदायक है। शुक्रस्थान और उससे सम्बन्ध वाली वातवाहिनियों को सुदृढ़ बनाता है। तथा शुक्रक्षयजन्य हृदय की निर्बलता को दूर कर हृदय को पुष्ट बनाता है। यह रस बालक, युवा और वृद्ध सबके लिये हितकारक है। अति व्यवाय से उत्पन्न शुक्रक्षय की यह उत्तम औषधि है।

बृहद्वंगेश्वर रस के गुणधर्म रसेन्द्रसार संग्रहकार ने जो दर्शाये हैं वे सब ब्रहचर्य और पथ्य के पालन सह सेवन करने पर प्रतीत होते हैं। विशेषत: यह रस शनै:शनै रस रक्त आदि सब धातुओं को सबल बनाकर जीवन शक्ति प्रदान करता है। तथापि इस रस का अधिक प्रभाव मूत्र संस्थान, वातसंस्थान, मस्तिष्क और हृदय पर प्रतीत होता है।

अधिक शुक्रपात, वृद्धावस्था की निर्बलता, किसी रोग, विशेष के अधिक दिनों तक रह जाने से आई हुई कृशता, प्रतिलोम क्षय, शोष, शुक्र के अति योग से उत्पन्न शुक्र क्षय, पुस्तकों का अधिक पठन-मनन आदि से आई मस्तिष्क की निर्बलता (या उन्माद जैसी मानसिक स्थिति या स्मृति ह्रास), शुक्रक्षय से उत्पन्न विविध जाति के वातप्रकोप इन पर यह रस जादू के समान कार्य करता है।

शुक्रक्षय के हेतु से होने वाले वातवाहिनियों के क्षोभ में उन्माद, व्याकुलता, चित्त की अशान्ति, कार्य करने के उत्साह का अभाव, स्मृतिनाश, शरीर के विविध भागों में वायु का आक्षेप आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसमें सुवर्ण, रौप्य, वङ्ग मिश्रित औषधि सफल होती है। इन तीनों औषधियों का योग्य मात्रा में इस प्रयोग के भीतर मिश्रण होने से इन सबके कारण रूप शुक्र और वातवाहिनियों को बल प्रदान करके रोग का नाश कर देता है।

शुक्र के अति दुरुपयोग से यकृत् भी निर्बल होता जाता है। जिससे घृत-तैल का पचन कम होता है। इस परिणाम का बोध न होने से अनेक अनभिज्ञ मनुष्य शक्ति बढ़ाने की इच्छा से घी का सेवन अत्यधिक करते हैं। जिसके फलस्वरूप अनेकों विभिन्न प्रकार के प्रमेह; मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, मूत्रातिसार आदि से पीड़ित होते हैं। कईयों को कामला, हलीमक की संप्राप्ति होती है। इस विकारावस्था में पचन-क्रिया बढ़ाने के लिए पित्तवर्द्धक, उष्ण क्षारादि लेते हैं। फिर कई रक्तपित्त से पीड़ित हो जाते हैं। कई मनुष्यों को आमवृद्धि और अपचन होकर धातुगत ज्वर, पाण्डु, संग्रहणी, अग्निमांद्य, अरुचि आदि की संप्राप्ति होती है। इन सबका मूल शुक्रक्षय होने पर बृहद्वंगेश्वर रस का सेवन अमृत के समान उपकार दर्शाता है।

सूचना-(१) इस रस के सेवन के साथ चन्दनबलालाक्षादि तैल की मालिश नियमित कराते रहें तो उससे भी रक्ताभिसरणक्रिया में वृद्धि होकर तथा मांस और वातनाड़ियाँ सबल बनकर शीघ्र लाभ पहुँचने में सहायता मिल जाती है।

(२) यदि सिगरेट, बीड़ी, गांजा, शराब, गरम-गरम चाय का व्यसन हो तो छोड़ देना चाहिए। भोजन में अति मिर्च मसाला नहीं लेना चाहिए। भोजन सरलता से पच सके वैसा लघु पथ्य नियमित समय पर लेना चाहिए।

(३) सब प्रकार की मानसिक चिन्ताओं को श्री हरिचरणों में समर्पित कर देनी चाहिए। जिस तरह मन प्रसन्न रहे, उस तरह प्रयत्न करना चाहिए।

(११०) प्रमेहान्तक वटी

प्रथम विधि-वंशलोचन, शुद्ध शिलाजीत, रूमीमस्तंगी, ईसस (कुंदरू) राल, शीतलमिर्च, इलायची और हल्दी सब औषधियों को समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर चन्दन के तैल में मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (आ.नि.मा.)

वक्तव्य-इस वटी में तैल की मात्रा अत्यधिक होती है। इस हेतु से हम १६ तोले औषधियों में २ तोले चन्दन का तैल मिलाते हैं। फिर २ तोले रसोंत का जल कर उसमें ३ घण्टे खरल करके गोलियां बांधते हैं।

मात्रा-२-२ गोली दिन में ३ समय। जल के साथ देवें। सुबह के समय २ माशे कतीरा गोंद के साथ में देने में सत्वर लाभ पहुँचता है।

उपयोग-यह वटी पूयप्रमेह, पेशाब में जलन, पेशाब में पीप आना; पेशाब बूंद-बूंद आना, मूत्रनलिका में शोफ इत्यादि दोषों पर अति उपयोगी है। एक दो दिन में जलन शान्त होती है और पीप तथा शोथ ५-७ दिन में दूर होते हैं। नये सुजाक की वेदना इससे तत्काल दूर होती है। यदि रोग बढ़ गया हो तो निर्मूल नहीं करती परन्तु दर्द को शान्त कर देती है।

दूसरी विधि-वंगभस्म १ तोला, लोहभस्म १ तोला, शुद्ध शिलाजीत १॥ तोला, अकलकरा ३ माशे, नारियल की गिरी १ तोला, छुआरा १ तोला, केशर ४ माशे, बादाम की गिरी ९ माशे, जायफल १ तोला और मिश्री ३ तोले लें। पहिले वंग भस्म आदि तीन दवाइयों को अलग रख शेष ७ द्रव्यों को कूटकर, कपड़छन चूर्ण करें। फिर चूर्ण के साथ वंग और लोहभस्म खरलकर शिलाजीत के साथ जल में घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (चि.चं.)

मात्रा-२ से ४ गोली। दिन में २ बार, जल के साथ देवें।

उपयोग-यह वटी प्रमेह रोगों में उपयोगी है। थोड़े दिन सेवन करने से प्रमेह के दोष निर्मूल होकर वीर्य की शुद्धि होती है। बहुमूत्र, स्त्रियों का सोमरोग, वृद्धावस्था में मूत्राशय की शिथिलता के कारण से बार-बार पेशाब करना, मूत्र में जलन, पीलापन और मूत्रदोष के कारण शिरदर्द, चक्कर आना, अरुचि, मन्दाग्नि, निर्बलता को नष्टकर शरीर को नीरोग और सुदृढ़ बनाती है।

तीसरी विधि-कच्चा बिरोजा १ सेर लेकर १०१ बार जल मिलाकर धोवें। फिर संगजराहत का कपड़छन चूर्ण १ सेर मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बांधे। (श्री पं. मंगूलालजी)

मात्रा-१-१ गोली। दिन में २ बार दें। रात्रि को तुख्मबालुंगा १ तोला को कोरे मिट्टी के बरतन में गुड़ के शर्बत में भिगो दें। गुड़ का शर्बत इतना करें कि सुबह पेट भर जाय। सुबह छानकर शौच जाने से पहिले पी लें। फिर १ घण्टे बाद ताजे जल के साथ १ गोली लें और शाम को शौच जाने के बाद १ गोली जल के साथ लें शाम को गुड़ का शर्बत न लें।

सूचना-सुबह औषधि लेने पर ३ घण्टे तक भोजन न करें।

उपयोग-सुजाक (Gonorrhoea) नये और पुराने रोग इस गोली के १७ दिन सेवन से दूर होते हैं। भोजन में बेसन की रोटी, घी,

चावल और बूरा मात्र लेवें। नमक और दूध का त्याग करें।

चौथी विधि–हीरादोखी गोंद १५ तोले, अफीम १ तोला, दालचीनी ४ तोले, जसदभस्म का सल्फेट आफ जिंक (Zine Sulpha १२ तोले और कपूर ६ तोले लेवें। सबको मिला जल के साथ खरल करके करके २-२ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा–२-२ गोली। दिन में ३ बार जल के साथ देवें।

उपयोग–सुजाक रोग जीर्ण होने पर पीप आना, मूत्रप्रसेक नलिका, शोथ, जलन, मन्दाग्नि, संधिवात, नेत्र की कमजोरी आदि उपद्रव हैं। इनका शमन इस वटी के सेवन से हो जाता है और रक्त में रहे हुए कीटाणु भी नष्ट होते हैं। शांतिपूर्वक पथ्य पालनसह कुछ समय औषधि लेनी चाहिये।

(१११) जातिफलादि वटी (मधुमेह)

विधि–जायफल, जावित्री, लौंग, केसर, धतूरे के शुद्ध बीज, शुद्ध अफीम सब समभाग लें। शुद्ध शिलाजीत सबके समान और लोहभ शिलाजीत से आधी लें। सबको यथाविधि मिला शिलाजीत के जल में खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियां बना लें। (धन्वन्तरि

मात्रा–१ से २ गोली। दिन में २ बार, गुड़मार के अर्क या चूर्ण और गाय के दूध के साथ देवें।

उपयोग–यह वटी मधुमेह में पेशाब की शक्कर और प्यास कम करके दर्द को दूर करती है। अतिसार और मूत्रातिसार में भी हित है। इसका कार्य बढ़ी हुई तृषा का शमन करने, इक्षुमेह और मधुमेह में मूत्र के साथ जाने वाली शर्करा को कम करने और मूत्र को नियमि बनाने का है। मूत्रातिसार में बार-बार आध-आध घण्टे पर पेशाब आता है, उसे यह नियमित बनाती है। वृद्धावस्था में मूत्राशय की निर्बलता के कारण बार-बार थोड़ा-थोड़ा मूत्र आना, मधुमेह होना, ४० वर्ष से बड़ी आयु वालों को मधुमेह जीर्ण होने पर बार-बार जलपान और बा बार लघुशंका होना, शरीर निस्तेज, निर्बल और कृश हो जाना, मानसिक उत्साह का नष्ट हो आदि लक्षण होते हैं। उस पर यह अच्छा कार्य करती है। मधुमेह जीर्ण होने पर प्रमेह पिटिका (अदीठ Carbuncle) उत्पन्न हुआ हो उसे भी यह नष्ट करती है।

इस औषध से हृदय, वातवाहिनी और मस्तिष्क पर उत्तेजक, शामक और पोषक असर होता है। यकृत् की शक्कर बनाने की निरंकुश क्रि मर्यादित होती है, तथा शरीर; इन्द्रिय और मन तीनों सबल होकर रोग को शनैः शनैःनष्ट करती है।

इस औषधि में अफीम-तिक्त, शर्करा का रूपान्तर करने वाली सप्तधातुशोषक, उत्तेजक, बलदायक, मादक, स्वेदजनक, तृषाशामक और स्तम्भ है। लोहभस्म मधुर-कसैले गुण वाली, तृषाशामक, स्तम्भक, यकृत् स्थान, रक्त और शुक्र को बल देने वाली है। शिलाजीत तिक्त गुण वाल कटुविपाकी रसायन, कफमेदघ्न, मूत्र और धातु परिपोषक क्रम को नियमित करने वाला है। धतूरे के बीज हृद्य, पीड़ाशामक, नाड़ीशोधक, माद और अफीम की बद्धकोष्ठ करने की शक्ति को कम करने वाले हैं। जायफल, जावित्री, लौंग और केसर हृद्य, वृष्य, तृषाशामक और स्निग्ध हैं

(११२) चन्दनादि लोह (प्रमेह)

विधि–सफेद चन्दन, सेमल के फूल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत अनन्तमूल, कृष्ण अनन्तमूल, नागरमोथ खस, मुलहठी, आंवला, सनाय, वंशलोचन, भांरगी, देवदारु, बड़ी हरड़ का छिलका, इन १८ औषधियों को समभाग मिला कूटकर कपड़छ खूब महीन चूर्ण करें। फिर सबसे दुगुनी लोहभस्म मिलाकर खरलकर लेवें। (भै.र.)

मात्रा–२ से ३ रत्ती तक। दिन में २ बार शहद के साथ दें।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन से अनेक प्रमेह, श्वास, कास, जीर्णज्वर, अर्श और कामला आदि रोग नष्ट होते हैं। जब मस्तिष्क में उष्णता पेशाब में पीलापन, निस्तेजता, गाढ़ निद्रा कम आना, आलस्य बना रहना, मन्द-मन्द ताप रहना, उत्साह का अभाव होना, पचनशक्ति मन्द होना श्वास, कास आदि लक्षण उपस्थित हों तब इस चूर्ण के सेवन से सत्वर लाभ होता है।

इस रसायन में प्रधान औषधि लोहभस्म हैं। लोहभस्म के साथ अन्य औषधियां दीपन-पाचन और मूत्र संस्थान पर उपकारक मिलायी है इस हेतु से यह रस हृद्य, यकृद् बल्य, रक्तपौष्टिक, रक्तप्रसादन, दीपन, पाचन और मूत्रजनन बना है। इस गुणों के हेतु से यह प्रमेहादि रोग का उपकारक होता है।

वातज, पित्तज और कफज प्रमेहों की उत्पत्ति प्रायः अपचन, पाण्डुता, और रक्तविकृति होने पर होती है। इन प्रमेहों में पेशाब के सा श्लेष्मा, वसा, विविध क्षार, शुक्र, रक्त, रक्तरंग, पित्त और मज्जा द्रव्य जाता है। इनमें से पित्तज और कफज मेहों पर चन्दनादि लोह का उपयो होता है।

वक्तव्य–यदि अग्निमांद्य और पाण्डुता के साथ जीर्ण मलावरोध भी हो, तो इस रस का अच्छा उपयोग नहीं होता। ऐसी अवस्था में पहले

र और पचनसंस्थान के शोधनार्थ आरोग्यवर्द्धिनी त्रिफला के फाण्ट के साथ दी जाती है एवं हस्तमैथुनादि कृत्रिम उपायों द्वारा शुक्रमेह की प्राप्ति हुई हो तो भी इस रसायन का उपयोग नहीं करना चाहिये। उस पर पहले वीर्य शोधन वटी और फिर वृद्धदण्ड चूर्ण या वीर्यस्तम्भन टी का प्रयोग करना विशेष लाभप्रद रहता है।

कामला रोग की संप्राप्ति प्राय: पित्ताशय नलिकाप्रदाह या पित्तनलिका में अवरोध होने पर होती है, कामला उत्पन्न होने पर नेत्र की श्लैष्मिक ला में पीलापन, मूत्र में पीलापन और मल प्राय: सफेद मैले रंग का तथा रक्त में पित्त अधिक मिल गया हो तो त्वचा में पीलापन आदि क्षण प्रकाशित होते हैं। इसकी प्रारम्भावस्था में उपचार के २ प्रकार हैं। पापड़खार (या सोडाबाईकार्ब) को दही या नींबू के रस में मिलाकर पला दें और रोगी को दही भात पर रखें। किन्तु जिन रोगियों को ज्वर, शोथ, संधिवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त या कफप्रधान श्वास रोगादि हों तो उनके लिये क्षार और तक्रप्रधान उपचार नहीं होता। उन रोगियों को चन्दनादि लोह या अन्य लोह कल्प दिया जाता है और दूध पर या दूध भात पर रोगी को रखा जाता है यदि पित्तनलिका में अवरोध हो और पित्ताशय में वेदना होती हो तो अनुपान रूप से मूली के पानों का रस २ तोले दिया जाता है।

श्वास रोग की उत्पत्ति कफ-धातु की विकृति और पचनसंस्थान की विकृति होने पर अधिक होती है। किसी-किसी को रक्त के भीतर मूत्र में जाने वाले मल द्रव्य का संग्रह होता है। फिर पाण्डुता आकर श्वास उपस्थित होता है। मूत्र में पीलापन, हृदय में धड़कन होना, थोडा-सा परिश्रम करने पर श्वास भर जाना, निर्बलता, मुखमण्डल पर निस्तेजता, शारीरिक उत्ताप कम रहना, शीत और उष्ण सहन न होना, अग्निमांद्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे विकार पर चन्दनादि लोह व्यवहृत होता है।

मूत्रविष या आमविष जब रक्तादि धातुओं में लीन होता है तब मन्द-मन्द ज्वर दीर्घकाल तक बना रहता है। इस प्रकार के ज्वर में थोड़ा परिश्रम करने पर या रात्रि को शारीरिक उत्ताप प्राय: बढ़ जाता है। रात्रि को ९९° तक हो जाता है। सुबह ९७° या इससे भी कम होता है। अग्निमांद्य, मलावरोध, कफप्रकोप, कास, शिरदर्द, आलस्य बना रहना, पेशाब में पीलापन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस विकार पर चन्दनादि लोह (प्रमेह) या चन्दनादि लोह (ज्वर) का प्रयोग होता है। यह चूर्ण मूत्रशुद्धि कराने में विशेष सहायक है। ज्वर पर लिखा हुआ चन्दनादि लोह आमपाचन और दीपन गुण विशेष दर्शाता है। अत: जो विशेष सहायक हो उसका प्रयोग करना चाहिये।

अर्श रोग की उत्पत्ति प्राय: अजीर्ण रोग के पश्चात् मल मूत्रावरोध गुदनलिका और बृहदन्त्र की श्लैष्मिक कला में उग्रता, उदर में वायु भरा रहने और रक्त में विषवृद्धि होने पर होती है। यह औषधि मूल कारणरूप मूत्रावरोधादि को दूर करती है और रक्त का प्रसादन करती है। इस हेतु से पित्तज अर्श रोग वालों के लिये हितावह है। तक्र अनुकूल हो तो तक्र के साथ चन्दनादि लोह का सेवन कराना चाहिये।

(११३) त्र्यूषणाद्य लोह

विधि-सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चव्य, चित्रक, बिड़नमक, बावची, सैंधानमक, कालानमक और लोहभस्म ये १३ औषधियां समभाग लें। काष्ठादि औषधियों के कपड़छन चूर्ण के साथ लोह भस्म मिला खरलकर बोतल में भर लें। (यो.र.)

मात्रा-१-१ माशा। दिन में २ बार, घी और शहद के साथ दें।

उपयोग-यह औषधि मेदरोग (Obesity) प्रमेह, कफवृद्धि और इस कारण से होने वाले कुष्ठ आदि को दूर करती है। आहार-विहार में नियम का आग्रह नहीं है। फिर भी सुबह-शाम घूमने को निकले तथा घृत, शक्कर और चावल नहीं खायें तो लाभ जल्दी होता है। यह लोह अग्नि को प्रदीप्त करा और मेदोवृद्धि की उत्पत्ति को ह्रास करा शरीर को बलवान और तेजस्वी बनाता है।

सूचना-इस त्र्यूषणाद्य लोह के सेवन के साथ शिलाजतु ४-४ रत्ती का सेवन भी किया जाय तो लाभ अधिक मिलता है।

(११४) प्लीहान्तक वटी (लोह)

विधि-फिटकरी का फूला, सोहागे का फूला, गिलोयसत्व, लोह भस्म और शंख भस्म १-१ तोला तथा एलुआ और शुद्ध गन्धक २-२ तोला लें। सबको मिला घीकुंवार के रस में १२ घण्टे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा-२ से ३ गोली दिन में २ बार निवाये जल के साथ दें।

उपयोग-यह वटी प्लीहावृद्धि में अति प्रभावशाली है। एवं यकृद्वृद्धि, उदरशूल, कामला प्लीहावृद्धि से होनेवाला ज्वर और मलावरोध को दूर करती है। बालक और बड़े सबको लाभदायक है। बहुत बढ़ी हुई तिल्ली भी थोड़े ही दिनों में कट जाती है और पचन क्रिया सुधर जाती है। इस वटी के सेवनकाल में गुड़, शक्कर वाले भोजन का त्याग करना चाहिये।

(११५) आरोग्यवर्द्धिनी वटिका

प्रथम विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म १-१ तोला, त्रिफला ६ तोले, शुद्ध शिलाजीत ३ तोले, [illegible] गूगल ४ तोले, चित्रकमूल की छाल ४ तोले और कुटकी २२ तोले लें। सबको यथाविधि मिला नीम के पत्तों के रस में ३ दिन खरल [illegible] १-१ रत्ती की गोलियां बांधें।* (र.र.स.)

वक्तव्य–नीम पान को कूट स्वरस यन्त्र में भरकर उबालें। नरम होने पर निचोड़कर रस निकाल लें। इस प्रकार के रस का उपयोग [illegible]

मात्रा–१ से ४ गोली, दिन में २ बार। दूध, जल, त्रिफला के हिम। शोथ पर पुनर्नवा का क्वाथ, पुनर्नवादि क्वाथ, या मूत्रलक्वाथ, कब्ज [illegible] रक्तविकार में स्वादिष्ट विरेचन। इस तरह अन्य विकारों पर रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह वटी कुष्ठ तथा वात, पित्त कफोद्भूत विविध ज्वरों का नाश करती है। यह गुटिका पाचक, दीपन, पथ्यकारक, हृद्य, मेदो [illegible] मलशुद्धिकर, अत्यन्त क्षुधावर्द्धक और सामान्यतः सब रोगों में हितकारक है। श्री नागार्जुन योगी ने सब रोगों के प्रशमन के लिये यह [illegible] की है।

इस गुटिका का मुख्य उपयोग कुष्ठ रोगों में होता है इसके गुण पाठ के प्रारंभ में ही 'हन्ति कुष्ठान्यशेषतः' कहा है। फिर विविध ज्व [illegible] आदि रोगों पर उपयोग होने का उल्लेख किया है। ऊपर-ऊपर से विचार करने पर परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध भासमान व्याधियों में किस त [illegible] आरोग्यवर्द्धिनी कार्य कर सकेगी, ऐसा प्रश्न उत्पन्न होता है। अतः इस विषय में कुछ अधिक विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण करना चाहिये।

कुष्ठ की सम्प्राप्ति आयुर्वेद के मतानुसार वात आदि तीनों दोष, अत्यन्त दुष्ट होकर त्वचा, रक्त, माँस और अब्धातु के दुष्ट होने पर हो [illegible] है। द्रव्य संग्रह सप्तक से कुष्ठ की उत्पत्ति होती है। वात आदि दोष जो कहे हैं उनमें भी वातविकृति पहिले होने से वात आदि लिखा [illegible] फिर अन्य-अन्य दोष प्रकुपित होकर रक्त, मांस और अब्धातु शनैः शनैः दुष्ट होने पर कुष्ठ रोग निर्माण होता है।

७ महाकुष्ठ और ११ क्षुद्र कुष्ठ, बृहदन्त्र की विकृति होने पर उत्पन्न होते हैं। बृहदन्त्र का कार्य सम्यक् न होने से उनमें मलावरोध उपस्थि [illegible] होता है फिर बृहदन्त्र और लघु अन्त्र में वायु दुष्ट होती है। इस तरह पचनार्थ आवश्यक पित्त विकृत होता है। बृहदन्त्र में पुराःसरण क्रिया व्यवस्थि [illegible] होने में सहायक कफ द्रव्य दूषित हो जाता है। फिर मल के आगे सरकने में देरी होती है। परिणाम में सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति होकर [illegible] अन्तस्त्वचा और रक्तमांस आदि धातुओं में शोषण हो जाता है, या सूक्ष्म परमाणुओं में शोषित होकर धातुओं को दुष्ट बनाता है। फिर उस स्थ [illegible] में वातविकृति होती है; वह शनैः शनैः समस्त शरीर में व्याप्त हो जाती है और वह प्रकुपित दोष कुष्ठ को उत्पन्न करता है। लघु अन्त्र [illegible] बृहदन्त्र ये वायु के प्रमुख स्थान हैं।

आरोग्यवर्द्धिनी की रचना सामान्यतः लघु अन्त्र और बृहदन्त्र की विकृति को नष्ट करने वाली है। बृहदन्त्र और पक्वाशय में स्वयं [illegible] से उत्पन्न सेन्द्रिय विष के हेतु से आरोग्यवर्द्धिनी कुष्ठ रोग में लाभ पहुंचाती है। कुष्ठों में जब गलत्कुष्ठावस्था की प्राप्ति होती है, तब इस [illegible] उपयोग नहीं होता। बिल्कुल प्रथमावस्था में इसकी योजना करने से अति जल्दी और निश्चित सफलता मिल जाती है। यह वटी देने पर रो [illegible] को केवल दुग्धाहार पर रखना चाहिये, (यह औ.गु.ध.शा.का मत है) औषधि देने पर बस्ति का उपयोग करना चाहिये। प्रारम्भ में कुछ दि [illegible] केवल जलपान दें, लंघन करें तो दुग्धाहारी की अपेक्षा भी अधिक लाभ होता है। आरोग्यवर्द्धिनी का उपयोग सब कुष्ठों पर होता ही है। प [illegible] विशेषतः वातप्रधान और वातकफ प्रधान कुष्ठ कपाल मण्डल, एक कुष्ठ, किटभ, विपादिका, चर्मदल और असलकपर अधिक लाभ पहुँचता [illegible] कुष्ठ में हरताल भस्म भी विशेष उपयोगी हैं। परन्तु बद्धकोष्ठ, अग्निमांद्य, मूत्रावरोध आदि लक्षण अधिक होने पर हरताल का उपयोग [illegible] होता।

शरीर पर विवर्ण, रूक्ष और कठोर धब्बे, त्वचा के स्पर्श-ज्ञान का लोप होना, बार-बार रोंगटे खड़े होना, अति प्रस्वेद आना ये त्व [illegible]

---

* मूल ग्रन्थ में आरोग्यवर्द्धिनी का पाठ निम्नानुसार एक ही है। किन्तु वर्तमान में वैद्य समाज शब्दार्थ भेद करके ४४ तोले, १४० तोले, ३६ तोले मिश्रण के ३ प्र [illegible] बनाते हैं।

रसगन्धकलोहाभ्रशुल्वभस्मसमांशकम्।
त्रिफला द्विगुणा योज्या त्रिगुणं तु शिलाजतु ॥ १॥
चतुर्गुणं पुरं शुद्धं चित्रमूलं च तत्समम्।
तिक्ता सर्वं समाज्ञेया सर्वं संचूर्ण्य यत्नतः ॥ २॥
निम्बवृक्षदलांभोभिर्मर्दयेन्द्विदिनावधि।
ततश्च वटिकाः कार्या राजकोलफलोपमाः ॥ ३॥

विकृति के लक्षण हैं। इस अवस्था में धब्बे अतिशय लाल और पके हुए गूलर के फल के सदृश उठे हुए हों तो आरोग्यवर्द्धिनी का कुछ भी उपयोग नहीं हो सकेगा। ऐसे समय पर गन्धक रसायन का कुछ उपयोग होता है। भयंकर कण्डू, खुजाने पर धब्बे होना, उनमें पूय पड़ना आदि लक्षण होने पर आरोग्यवर्द्धिनी मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ देने से उत्तम उपयोग होता है। धब्बे कठोर, मुंह में भयंकर शुष्कता, धब्बे के स्थान पर कठोर त्वचा निकल आना, या फूटने के सदृश कठोर हो जाना, उन पर छोटी-छोटी पिटिकाएं होना, सुई चुभाने के सदृश या फूटने के सदृश वेदना होना आदि लक्षण होने पर हल्दी का क्वाथ या दुग्ध के साथ आरोग्यवर्द्धिनी देनी चाहिये। ये सब लक्षण मांसाश्रित दोष के हैं रोग इससे आगे बढ़ जाने पर इस औषध का उपयोग नहीं होता है।

वातपित्त कफोद्भूत नाना प्रकार के ज्वरों में इस गुटिका का उपयोग होता है। इस स्थान पर प्रत्येक दोष से उत्पन्न भिन्न-भिन्न ज्वर होना चाहिये। इस स्थान पर संक्रामक और सान्निपातिक ज्वर विवक्षित नहीं हैं। अर्थात् संतत आदि ज्वर और आन्त्रिक आदि सन्निपातों में इस रसायन का उपयोग नहीं होता। केवल पित्तविकृति अथवा केवल कफविकृति से उत्पन्न ज्वर पर इस वटी का प्रयोग करना चाहिये। यह दोष स्थूल धातुगत होने पर जो विविध ज्वर उत्पन्न हुए हो उन पर इसका उपयोग होता है।

आरोग्यवर्द्धिनी का कार्य विशेषतः वृहदन्त्रशोधक और सेन्द्रिय विषनाशक होने से वृहदन्त्र या समस्त मध्यम कोष्ठ में स्थित दोषों से उत्पन्न अनियमित ज्वरों पर इसका उपयोग होता है। बद्धकोष्ठ जनित ज्वर, अपचन-जनित ज्वर दीर्घकाल तक बार-बार उलटकर आनेवाला ज्वर और पित्त के वैषम्य से उत्पन्न ज्वरों पर यह हितकर है।

बार-बार मुंह में जल छूटना, झागयुक्त बड़ी-बडी वमन होना, उदर में जड़ता, क्षुधामांद्य, भोजन करने पर तुरन्त वमन होना, खाँसी, सफेद चिपचिपां कफ गिरना आदि लक्षणों के साथ मलमूत्रोत्सर्ग सम्यक् न होते हों तो आरोग्यवर्द्धिनी देनी चाहिये।

यह गुटिका पाचनी अर्थात् मल आदि का पचन कराने वाली है। मल आदि जितना अंश रूपान्तर योग्य हो उतने का रूपान्तर कराती है। इसका अर्थ यह है कि बृहदन्त्र और लघुअन्त्र में बहुत अन्नांश अपक्व रह जाता है; मध्यम अन्त्र में कितना ही किट्ट और कुछ सारभाग शेष रह जाता है। इनमें से उपयोगी अंश का सम्यक् रूपान्तर करा संशोषण कराना चाहिये। शेष किट्ट भाग को तुरन्त शरीर के बाहर फेंक देना चाहिये। वर्तमान में किट्ट को सत्वर बाहर निकाल देने के लिये स्निग्ध विरेचन का उपयोग होता है। परन्तु उसका इष्ट परिणाम तुरन्त नहीं आता, ऐसी परिस्थिति में इस को त्रिफला के हिम के साथ देना अधिक हितकारक है। अति जीर्ण बद्धकोष्ठ में मध्यम अन्त्र में जड़ता आकर मलसंचय अति होने पर उक्त कल्प उपयोगी है।

यह गुटिका दीपनी अर्थात् पाचन रस को उत्तम प्रकार से और योग्य परिमाण में उत्पन्न करने वाली है। पाचक आदि पित्त का परिमाण कम होने पर पित्त में पाचकांश कम होने पर अपचन उत्पन्न होता है। यह विकार वर्त्तमान में बढ़ गया है। इस विकार में पाचक अर्थात् अम्ल औषधि का उपयोग किया जाता है; परन्तु उसका परिमाण सामयिक होता है। यह व्याधि इस तरह की औषध से यथार्थ में दूर नहीं होती और सच्ची क्षुधा भी नहीं लगती। आरोग्यवर्द्धिनी का कार्य प्रसाद धातुओं पर उनके वैषम्य को नष्ट करने के लिये होता है; इससे धातु सबल बनती है, उनको शक्ति की प्राप्ति होती है और वे अधिक कार्यक्षम होती हैं। इन प्रसाद धातुओं की क्रिया पर भिन्न-भिन्न रसों का परिणाम अवलम्बित हैं, उन-उन रसों की उत्तम उत्पत्ति सम्यक् धातुकार्य से होती है और कार्य भी उत्तम प्रकार से होने लगता है। इस तरह इसका दीपन कार्य स्थिर स्वरूप का होता है। इस वटी का कार्य केवल पाचक रस उत्पत्ति करना ही नहीं है; अन्य स्थूल धातुओं के भीतर पूर्व धातुओं में से परधातुनिर्माण या रूपान्तर होने में कारणभूत जो धात्वन्तर अग्नि है, उसे प्रदीप्त करने का भी है।

आरोग्यवर्द्धिनी हृद्य है। हृद्य के दो अर्थ आयुर्वेद में मिलते हैं; हृदय को हितकारक और मन को प्रिय (मन को हर्ष देने वाला) गुणधर्म-शास्त्र में इसका दूसरा अर्थ विवक्षित नहीं है; प्रथम अर्थ ही इष्ट है। इसका कार्य हृदय की निर्बलता में उत्तम प्रकार से होता है। हृदयेन्द्रिय में स्पष्ट विकृति होने पर इसका उपयोग हुआ हो ऐसा प्रतीति में नहीं आया। परन्तु हृदय की अशक्ति और उससे उत्पन्न शोथ पर उपयोग हुआ है। इस अवस्था में आरोग्यवर्द्धिनी और पुनर्नवा ये दो शोथघ्न औषधि अति प्रशस्त है। इसका हृद्य परिणाम जीर्ण अवस्था में प्रतीत होता है। अभ्रक मिश्रित लक्ष्मीविलास, समीरपन्नग और सूतशेखर के समान तीव्र विकार में हृदय को उत्तेजना देकर हृद्यत्व उत्पन्न करना, यह कार्य इससे नहीं होता परन्तु जीर्ण सर्वांग शोथ के समान विकार पर इसका प्रयोग होता है। सर्वांग शोथ में हृदय को शक्ति देना (शक्ति का संरक्षण करना) और मूत्र-मार्ग से जलांश को निकाल देना, ये दोनों कार्य इससे होते हैं। इस तरह पाण्डु रोग में हृद्य कार्य प्रतीत होता है यकृद्वृद्धि में हृदय अशक्त होने पर आरोग्यवर्द्धिनी दी जाती है।

मेदोवृद्धि दो प्रकार से होती है। रुधिरवाहिनियों में कठोरता आकर रक्त में बल कम होने पर मेद अधिक उत्पन्न होता है और निकष्ठमणि (बाल ग्रैवेयक ग्रन्थि Thymus Gland) निर्बल बनने पर पचन-व्यापार मन्द होकर मेदोत्पत्ति होती है। आयुर्वेद की उपपत्ति के अनुसार धातुक्रिया

के योग से मेदोपर्यन्त धातुएं क्रमशः बनती जाती हैं। उसमें मेद आवश्यकता से अधिक बनता है। परिणाम में मनुष्य बिल्कुल निर्बल बन जा है, उस पर आरोग्यवर्द्धिनी का कार्य मेदोविनाशक होता है। यह कार्य दीपन-पाचन आदि व्यापार को अच्छी तरह बढ़ाकर होता है। साथ इससे मेद का रूपान्तर होकर अन्य धातु भी उत्तम रूप से बनने में सहायता मिल जाती है।

मलशुद्धि और विरेचन में महदन्तर है। विरेचन कर्म का परिणाम सामयिक और तीव्र स्वरूप का होता है। इस हेतु से उदर आदि व्याधि शिरःशूल, जड़ता, स्पन्द आदि तीव्र रोगों में जब तत्काल मध्यम कोष्ठ को शुद्ध करने की आवश्यकता हो तब विरेचन का प्रयोग करना प है। तीव्र विकार न होने पर निद्रानाश आदि चिरकारी रोगों में तीव्र विरेचन का प्रयोग नहीं होता। कितने ही विकार ऐसे चमत्कारिक और द्वेषी होते हैं कि उनका कुछ वर्णन नहीं हो सकता। रोगी को भयंकर त्रास होता रहता है, परन्तु क्या होता है, यह स्पष्ट रूप में बाहर नहीं जाना जाता। अङ्ग टूटता है, परन्तु स्पष्ट ज्वर नहीं रहता। काम करना पड़ता है, किन्तु उत्साह नहीं होता, भोजन करना पड़ता है, पर क्षुधा लगकर रुचिपूर्वक नहीं खाया जाता। चाहे वैसा रुचिकर और स्वादिष्ट भोजन आगे आया, स्वाद नहीं आता। हंसना, विनोद करना, स होते हैं, परन्तु मन में प्रेम नहीं होता, केवल देहधर्म, समझकर सब क्रियाएं होती रहती है। मुख मण्डल पाण्डुवर्ण का निस्तेज, शुष्क-सा उत्साहहीन हो जाता है, देह-भार भूत-सी भासती हैं, ये सब लक्षण न्यूनाधिक परिमाण में मलावरोध से होते हैं। इस मलावरोध के अने कारण हैं। ऐसे विकार में विरेचन का उपयोग नहीं होता, बल्कि उसमें अपाय होता है। मल-शोधन करने वाली सौम्य औषध देनी चाहिये यह कार्य आरोग्यवर्द्धिनी से होता है।

मलावरोध के अनेक प्रकारों में से एक प्रकार में बृहदन्त्र के भीतर मल संचय होकर ऊपर-ऊपर तह लग जाती है। फिर मलावरोध सेन्द्रियविष उत्पन्न होकर शुष्क हो जाती है, जिससे बृहदन्त्र की दीवारें कठोर बन जाती हैं। दीवारों की मृदुता और कार्यकारित्व न्यून होत है। ये दोनों अति त्रासदायक हैं। ऐसी स्थिति में विरेचन का उपयोग नहीं होता। बस्ति देकर अन्त्र शौधन करना अति हितावह माना जाता है एक ओर बस्ति से तथा दूसरी ओर आरोग्यवर्द्धिनी से शोधन करने से मल की तह पृथक् होने में सहायता मिल जाती है एवं मल की शुष्क तहों के पीछे संचित विष निर्विष होने लगते हैं। फिर बृहदन्त्र मुलायम और कार्यक्षम होती है। आरोग्यवर्द्धिनी के साथ अनुपान रूप से त्रिफल या अन्य संशोधक औषध देनी चाहिये।

मलावरोध की आदत नष्टकर मलशुद्धि करना यह एक प्रकार है। दूसरे प्रकार का मलशोधन भी आरोग्यवर्द्धिनी से हो जाता है। दांतों संचित मल, नाक में संचित किट्ट और दुर्गन्ध ये संगृहीत होने पर मुंह में से दुर्गन्ध निकलना, नाक में शुष्कता आना, दांतों पर मल क शुष्क तह होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस विकार पर भी इसका अच्छा उपयोग होता है।

दन्तपुप्पुटक (Pyorrhoea)में वात कफप्रधान लक्षण प्रतीत होने पर आरोग्यवर्द्धिनी का उपयोग हुआ है।

पुरुष जननेन्द्रिय के चारों ओर मणि के ऊपर त्वचा के नीचे सर्वदा एक प्रकार का दुर्गन्धयुक्त मल संगृहीत हो जाता है। कितने ही मनुष्य में यह मल अति संगृहीत होता है और उसमें अति दुर्गन्ध फैलती रहती है। पुरुषों के समान स्त्री जननेन्द्रिय से भी ऐसी दुर्गन्ध निकलती रहती है एवं शरीर, बगल, जांघ आदि स्थानों से भी कितनों ही में दुर्गन्ध निकलती है। ये सब लक्षण उन-उन स्थानों में विकृत मलसञ्चय से होते हैं। इन सब पर बाह्य शुद्धि के साथ आरोग्यवर्द्धिनी का बहुत अच्छा उपयोग होता है। इस तरह अन्य धातुओं में मल संगृहीत होने पर इसका उपयोग करना चाहिये।

अग्निमांद्य में क्षुधा न लगने पर आरोग्यवर्द्धिनी उपयोगी है। प्रभावशाली कुशल चिकित्सक विविध रोगों में इसकी योजना करके निःसंदेह लाभ उठा सकता है।

यह गुटिका विविध व्याधियों के मूलरूप त्रिदोष-विकृति और पचनेन्द्रिय संस्थान की अशक्ति को दूर करती है। अतः मूलग्रन्थकार ने औषध के गुण-पाठ में 'बहुनात्र कि मुक्तेन सर्वरोगेषु शस्यते' और 'सर्वरोग-प्रशमनी' कहा है। इस वटी का उपयोग सब रोगों में होता है। यह वचन शास्त्र दृष्टि से सुसंगत नहीं भासता, परन्तु ग्रन्थकार की भावनानुसार उनके पचन की व्यवस्था करने पर स्पष्टीकरण हो जाता है।

निकण्ठमणि की विकृति होने पर देह की वृद्धि में प्रतिबन्ध हो जाता है। समस्त शरीर गले हुए बैंगन के सदृश शक्तिहीन और नरम-सा भासता है। अगुलियां मोटी, पैर छोटे, बेडौल और भारी तथा शारीरिक शक्ति का अभाव हो जाने से स्त्री-पुरुषों को युवावस्था प्राप्त होने पर भी योग्य चिह्न न दिखना आदि लक्षण भासते हैं। उस पर इस वटी का प्रयोग हुआ है।

सर्वांग शोफ विशेषतः निकण्ठमणि की विकृति से उत्पन्न होने पर उसमें विशेष प्रकार के चिह्न होते हैं। अति शोथ, मुख, कण्ठ और हाथ-पैरों के टखनों पर विशेष शोथ, अग्निमांद्य, नाड़ी की मन्द गति, सारे शरीर में सब व्यापार मन्द हो जाना आदि लक्षण भासते हैं। इस पर आरोग्यवर्द्धिनी का उपयोग होता है।

जलोदर के विकार में इस वटी के मूत्रल और मल शुद्धिकारी गुण का उपयोग होने के अनेक उदाहरण मिले हैं।

वृक्क-विकृति में उत्पन्न सर्वांग शोफ की तीव्रावस्था में पुनर्नवा, कृष्ण सारिवा और रेचक क्षार (गोमूत्र क्षार या मेगनेसिया सल्फास आदि) प्रश्रण तथा तीव्र मूत्रल औषध आदि दिये जाते हैं। परन्तु तीव्रावस्था निकल जाने पर आगे चन्द्रप्रभा, ताप्यादि लोह और आरोग्यवर्द्धिनी देना हितकर होता है। यदि बद्धकोष्ठ और अपचन ये मुख्य लक्षण हों तो आरोग्यवर्द्धिनी का प्रयोग करना चाहिये।

प्रमेह के विकार में अपचन और बद्धकोष्ठ, ये मुख्य कारण या मुख्य लक्षण हों तो उस पर इसका आवश्यक उपयोग होता है।

बद्धकोष्ठ का परिणाम आमाशय और पक्वाशय पर तो होता ही है और अनेक समय फुफ्फुसों पर भी होता है। बद्धकोष्ठ से शौच शुद्धि न होने पर बृहदन्त्र फूलता है तथा सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति होती है फिर वातप्रकोप होकर श्वास के सदृश विकार हो जाता है। ऐसे श्वास रोग पर आरोग्यवर्द्धिनी का उपयोग हुआ है। अत्यन्त त्रासदायक बद्धकोष्ठ और उसके साथ उतना ही त्रासदायक श्वास, इस युग्म पर यह उत्तम औषधि है। श्वासकुठार या समीरपन्नग का ऐसे बद्धकोष्ठसह श्वास रोग पर उपयोग नहीं होता।

संक्षेप में आरोग्यवर्द्धिनी बद्धकोष्ठ और कोष्ठगत वात की नाशक, पाचक, दीपक, मूत्रल, आमपाचक, हृद्य, अन्त्र के सेन्द्रियविष और कीटाणुओं की नाशक है। इन गुणों के हेतु से यह वटी मध्यम कोष्ठांतर्गत वातप्रधान, कफभूयिष्ठ और क्षीण पित्त दोषों पर उपयोगी है। यह शोथघ्न, मूत्रल, वातानुलोमक, कोष्ठगत वातशामक, सम्यक् पित्तस्रावक, सेन्द्रिय विषघ्न और गरनाशक गुण दर्शाती है। कुष्ठ, विषमज्वर, अपचन, जीर्ण बद्धकोष्ठ, हृदय की अशक्तता, मेदोरोग, मलसंचय, देह में से दुर्गन्ध आना, अग्निमांद्य, सर्वांग शोफ, प्रमेह और श्वास पर प्रयोजित होती है। (औ.गु.ध.शा.)

श्री वैद्यराज यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने 'सिद्धयोगसंग्रह' में लिखा है कि आरोग्यवर्द्धिनी उत्तम पाचन, दीपन, शरीर के स्रोतों का शोधन करने वाली, हृदय को बल देने वाली, मेद को कम करने वाली और मलों की शुद्धि करने वाली है। यकृत्, प्लीहा, बस्ति, वृक्क, गर्भाशय, अन्त्र, हृदय आदि शरीर के किसी अन्तरावयव के शोथ, जलोदर, जीर्णज्वर और पाण्डु रोग में इस योग से विशेष लाभ होता है।

यकृत् की वृद्धि के कारण शोथ हो तो पुनर्नवाष्टक क्वाथ में रोहिड़ा की छाल और शरपुंखा मूल १-१ भाग अधिक मिलाकर उसके अनुपान से इसका प्रयोग करें। वृक्कशोथ जन्य सर्वांग शोथ हों तो मूत्रल कषाय के साथ देवें। हृद्रोगजन्य शोथ हो तो आरोग्यवर्द्धिनी के साथ डिजिटेलिस पत्र के चूर्ण १/२ से १ रत्ती और जंगली प्याज (बनपलाण्डू) का चूर्ण १-२ रत्ती मिलाकर पुनर्नवादि या दशमूल क्वाथ से देवें।

जीर्ण फुफ्फुसधरा कला (फुफ्फुसावरण) शोथ में इसके साथ श्रृङ्ग भस्म ४-८ रत्ती मिलाकर भारंगमूल, पुनर्नवा, देवदारु और अडूसे के क्वाथ के साथ इसका प्रयोग करें।

मेद कम करने के लिये रोगी को केवल गाय के दूध पर रखकर शार्ङ्गधरोक्त महामंजिष्ठादि क्वाथ के अनुपान से इसका सेवन करावें।

पुनर्नवाष्टक कषाय-पुनर्नवा मूल, हरड़, नीम की अन्तर्छाल, दारु हल्दी, कुटकी, परवल पंचांग, गिलोय और सोंठ। इनको समभाग मिलाकर किया हुआ क्वाथ। (शा.सं.)

वक्तव्य-पाण्डु रोग में यदि दस्त पतले और अधिक होते हो तो उसका प्रयोग न करके पर्पटी योगों का प्रयोग करना चाहिये। सर्वाङ्ग (सर्वसर) शोथ में और उदर रोगों में विशेषत: जलोदर में रोगी को केवल गाय के दूध के पथ्य पर रखकर इसका प्रयोग करना चाहिये।

यकृद् विकार में आरोग्यवर्द्धिनी के साथ अपामार्ग भस्म और नौसादर मिला देने से विशेष लाभ पहुँचता है। मलावरोध, अग्निमांद्य और मन्द-मन्द उदरशूल बना रहता हो तो ऐसी अवस्था में आरोग्यवर्द्धिनी के साथ वज्रक्षार मिला दिया जाता है।

मेदोवृद्धि में देह मोटी हो जाती है; परन्तु बल नहीं होता। थोड़े परिश्रम में श्वास भर जाता है, क्षुधा और तृषा के वेग को रोकने में अति कष्ट होता है, समय पर भोजन न मिलने पर विविधि प्रकार के वातप्रकोप के लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्था में आरोग्यवर्द्धिनी, शिलासिंदूर और बावची के चूर्ण के साथ दिन में दो बार देने और ऊपर त्रिफला का फाण्ट पिलाते रहने से शनैः शनैः मेद कम हो जाती है।

रक्त दबाव वृद्धि होने पर कितने ही रोगियों को नेत्रशूल उत्पन्न होता है। साथ-साथ नेत्र में लाली, शिर में दर्द, निद्रा बिल्कुल नहीं आना, मलावरोध और अति व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे रोगियों को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में आरोग्यवर्द्धिनी अमलतास के गूदा से सिद्ध किये हुए दूध के साथ दिन में ३-४ बार देते रहने से थोड़े ही दिनों में विकार शमन हो जाता है।

रक्त दबाव वृद्धि होने पर किसी-किसी स्त्री को मासिक धर्म के दिनों में अति रक्तस्राव होता है। यदि रक्त दबाव वृद्धि होने पर भी रक्तस्तम्भन औषध देकर रक्तस्राव का रोध किया जाय तो भयंकर शिरदर्द और हड़फूठन उपस्थित होते हैं। अत: मूल कारण को दूर करना चाहिये। उसके लिये आरोग्यवर्द्धिनी तथा चन्द्रप्रभा मिलाकर अमलतास से सिद्ध किये हुए दूध के साथ दिन में दो बार देते रहने से रक्तस्रावसह रक्तदबाव निवृत्त हो जाता है। फिरङ्ग (उपदंश) रोग दूर हो जाने पर भी उसका विष, रक्त आदि धातुओं में लीन होकर रह जाता है। यह मौका मिलने

पर विविध प्रकार के उपद्रव उपस्थित करता है। इनमें से पचनेन्द्रिय संस्थान में (अन्त्र में) व्रण की प्राप्ति हो जाय तो संग्रहणी रोग हो है। फिर अन्त्रक्षय के समान लक्षण प्रतीत होते हैं। पतला, सफेद दस्त दिन में २-३ होना किन्तु मल अत्यधिक गिरना, फिर अति नि आना, शारीरिक कृशता, दस्त के समय उदर में पीड़ा होना, पेशाब में पीलापन आदि लक्षण भासते हैं। उस पर आरोग्यवर्द्धिनी दिन में चौलाई के मूल, बाकेरी मूल और दूर्वामूल का रस या क्वाथ अथवा अन्य रक्तशोधक क्वाथ के साथ देने और खदिरादि तैल का पान से थोड़े ही दिनों में रोग निवृत्त हो जाता है।

यकृत् में से पित्तस्राव कराने वाली या पित्ताशय में से निकलने वाली नलिका के मार्ग में अवरोध होने पर कामला होता है। रोध न होने पर कामला धीरे-धीरे होता है। फिर नेत्र, पेशाब, त्वचा, नख और मुखमण्डल पीले हो जाते हैं तथा दाह, अन्न का अपचन, मलाव तृषा, घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोग पर आरोग्यवर्द्धिनी २-२ रत्ती और कुटकी का चूर्ण ३-३ माशे मिलाकर मूली के के साथ दिन में ३ बार देने से विकार सत्वर शमन हो जाता है।

यदि कामला रोग की उत्पत्ति दही और घी के अत्यधिक सेवन से हुई हो, अधिक अभिष्यन्दी पदार्थ के सेवन से मार्गावरोध, यकृत् मेद संचय और यकृत् की अधिक वृद्धि हो गई हो, फिर दस्त में तिलपिष्टनिभ मल गिरता हो उदर में अफारा रहता हो तथा मुख, नेत्र, आदि पीले हों तो आरोग्यवर्द्धिनी मूली के रस के साथ दी जाती है। दही और घी जनित अफारा और मार्गावरोध होने पर रोगी को तक्र ही रखना चाहिए।

इस आरोग्यवर्द्धिनी का हिक्का रोग पर प्रयोग किया गया है और तत्काल लाभ होने के उदाहरण मिले हैं।

सूचना-सगर्भा स्त्री को एवं दाह, मोह, तृषा, भ्रम और पित्तप्रकोपयुक्त रोगी को आरोग्यवर्द्धिनी नहीं देनी चाहिए।

दूसरी विधि-शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, ताम्रभस्म सब १-१ तोला, त्रिफला १० तोले, चित्रकमूल २० तोले, गूगल २० तोले शुद्ध शिलाजीत १५ तोले और कुटकी ७० तोले लें। शिलाजीत को थोड़े से जल में घोल करके मिलावें, फिर तीन दिन नीम के पत्तों के रस में घुटाई कर सुखा चूर्ण बनाकर बोतल में भर लेवें।

आमातिसार (Chronic Ulcerative Colitis) रोग जीर्ण होने पर मलावरोध रहता हो तो इस विधि वाली आरोग्यवर्धिनी २ रत्ती मात्रा में आवश्यकतानुसार तक्र मण्डूर के साथ दी जाती है। इसी तरह पुराने मलावरोध के रोगी के लिए यह हितावह है।

मात्रा-१-३ माशे, दिन में १ या २ बार। सुबह और रात्रि को दूध या जल के साथ दें।

उपयोग-इस दूसरी विधि में भी गुण पहली विधि के अनुरूप हैं। जब उदररोग, शोथ, रक्तविकार और कुष्ठ आदि रोगों में मूत्रल विरेचन गुण की ज्यादा आवश्यकता हो तब पहली विधि की अपेक्षा इस दूसरी विधि से सत्वर लाभ होता है।

(११६) जलोदरारि रस

विधि-शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, मैनसिल, हल्दी, शुद्ध जमालगोटा, त्रिफला, त्रिकटु और चित्रकमूल ये १० औष २-२ तोले लेवें। पहिले पारद गन्धक की कज्जली करके मैनसिल मिलावें। फिर शेष औषधियों का बारीक चूर्ण मिला, दन्तीमूल के क सेहुण्ड (थूहर) के दूध और भांगरे के रस की सात-सात भावनायें देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनायें। (भै.

मात्रा-एक-एक गोली, दिन में १ या २ बार। दशमूल क्वाथ या ऊंटनी के दूध के साथ देने से जल के समान पतले जुलाब हो तीव्र शूल और सर्वांग शोथयुक्त जलोदर का नाश होता है। इसके सेवन से जलोदर के अनेक रोगी सुधर गये हैं। यह अति दिव्य औषध

भोजन में मात्र ऊंटनी का दूध या दूध-भात देने से थोड़े ही दिनों में जलोदर दूर होता है। यकृत् क्रिया नियमित होती है, कोष्ठाग्नि प्र होती है और आमवृद्धि दूर होती है।

सूचना-यदि वृक्क-विकार से सर्वांग शोथ हुआ हो तो इसका उपयोग न करें, आरोग्यवर्द्धिनी का उपयोग करना चाहिये। हृदयेन्द्रिय रचना में विकृति हो गई हो या जिस रोगी को पहिले संग्रहणी रोग हो गया हो और आंतों में क्षत या उग्रता रहती हो, उसे भी जलो रस नहीं देना चाहिये।

(११७) लोकनाथ रस

विधि-शुद्ध बुभुक्षित और पक्षछेदित पारद और शुद्ध गन्धक २-२ तोले लेकर कज्जली करें। पश्चात् शुद्ध पीली कौड़ियां ८ तोले ल उनमें कज्जली भरें और १ तोला कच्चे सोहागे को गाय के दूध में खरलकर उससे कौड़ियों के मुंह को बन्द करें। फिर दो सरावों के

भोतकर उनमें शंख के शोधन किये हुये छोटे-छोटे टुकड़े ८ तोले के बीच में कौड़ियों को रख, मजबूत संपुट करें। सूखने पर एक हाथ लम्बे गड्ढे में जंगली कण्डों की अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर शंख और कौड़ियों सहित औषध को खरलकर लेवें। (शा.सं.)

मात्रा-१ से २ रत्ती तक। दिन में १ या २ बार देवें।

अनुपान-वातरोग में कालीमिर्च का चूर्ण और घृत, पित्त की विकृति पर मक्खन, कफरोग में शहद या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग-यह रस अतिसार, क्षय, अरुचि, ग्रहणी, कृशता, मन्दाग्नि, कास, श्वास और गुल्म को नष्ट करता है। जब कफवृद्धि या कफप्रकोप कर रोग उत्पन्न होता है तब कफ निकालने, कफशोषण और रूपान्तर कराने के लिये लोकनाथ रस उपयोगी है।

लोकनाथ रस का क्षय रोग में उत्पन्न होने वाली गांठ अथवा गांठ के क्षय में अधिक प्रयोग होता है। यह रसायन गले के पास में होने वाली गाँठ की अपेक्षा पेट में होने वाली गांठ पर अधिक लाभदायक है। कांख में होने वाली गांठ में भी हितावह है। इसके योग से गांठ धीरे-धीरे कम हो जाती है। किसी-किसी समय पित्ताधिक रोग होने पर इस औषधि के कारण से ज्वर बढ़ जाता है। ऐसे समय पर पित्तघ्न अनुपान की योजना करनी चाहिये। जब गांठ पककर फूट जाती है, तब इसका उपयोग कितना होता है, यह अनिश्चित है।

क्षय में उर:क्षत न हुए हों या अधिक बड़े न हों, फुफ्फुसों में मोटापन मात्र और जड़ता आई हों; कफदोष का प्राधान्य हो एवं कास, अरुचि, मन्दाग्नि, मुँह से लार गिरना, कण्ठ बैठ जाना, गला जड़ होना आदि लक्षण हों तो लोकनाथ विशेष लाभदायक है।

कफ प्रकोप से अरुचि, मुँह में पानी आना, भोजन की बिल्कुल इच्छा न होना, बार-बार सफेद रंग के आम और दुर्गन्धयुक्त दस्त होना, मुखमण्डल, नेत्र और त्वचा आदि सब में निस्तेजता आदि लक्षणोंसह जीर्ण अतिसार हो तो लोकनाथ उत्तम कार्य करता है।

आमज संग्रहणी, विशेषत: जीर्ण विकार में बृहदन्त्र के तिर्यक् भाग में दुष्टता आकर कफ के सदृश दुर्गन्धयुक्त मलिन-सा आम गिरता है; शौच अधिक बार नहीं होता; थोड़े ही समय होता है और मल पक्व आता है; उदर में कुछ मरोड़ा आता है और किंछना पड़ता है। मल के साथ मल की अपेक्षा आम अधिक होता है। अग्निमांद्य, बेचैनी, किसी बात पर मन न लगना, भोजन की इच्छा न होना, उदर में जैसे कुछ चिपका हुआ हो ऐसा भासना, उदर की जड़ता दूर होने पर खूब खायेंगे ऐसी भावना बनी रहना, आदि लक्षण होने पर लोकनाथ रस उत्तम कार्य करता है।

लोकनाथ त्वचा के रोग पर उत्तम औषध है। विशेषत: पित्ती के समान शरीर पर मोटे-मोटे धब्बे, गांठ या सफेद-काले दाग होना, सबको यह नष्ट करता है। किसी-किसी को मांस वाले भागों में मांसवृद्धि हुई हो, वह भी इसके सेवन और लेप से धीरे-धीरे नष्ट होती है।

यकृद्विद्रधि और वृक्कविद्रधि की अपक्व या पच्यामन अवस्था एवं बाह्य विद्रधि की पच्यमान अवस्था में यह उत्तम कार्यकारी औषधि है।

कफज कास और श्वास में कफ की गांठ सफेद और दृढ़ निकलना, उसमें चिपचिपापन अधिक होना, मुंह के भीतर क्वचित् गोंद लगाने के समान चिपचिपापन का भास होना, मुंह के भीतर थकावट अधिकाधिक आना, मस्तिष्क में जड़ता और भारीपन होने पर भी वेदना कम होना, सर्वांग में जड़ता, देह में भारीपन भासना, भोजन की इच्छा कम होना, अधिक अरुचि, उदर में जड़ता, त्वचा पर शोथ-सा भासना आदि लक्षण होने पर लोकनाथ आवश्य देना चाहिये।

कफज गुल्म के स्थान पर जड़ता, एक स्थान पर स्थिर भासना, गुल्म चिकना लगना, गुल्म के स्थान पर पीड़ा कम होना, गुल्म के स्थान पर शीतल पदार्थ बंधा हो ऐसा लगना, गुल्म कठिन, मोटा और ऊपर उठा हुआ भासना, अंग गल जाना, बार बार उबाक आना तथा खांसी, अरुचि, जड़ता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस पर लोकनाथ रस का अच्छा उपयोग होता है।

वर्तमान में कंठ की गांठें बड़ी हो जाने का विकार अधिक प्रतीत होता है। इनमें कितनों ही की गांठे खूब लाल दिखती हैं। उसके ऊपर सफेद दाग या सफेदी नहीं आती। एवं कितनों ही की गांठों पर सफेद रंग आ जाता है या सफेद दाग हो जाते हैं। मुख में चिपचिपापन, अधिक लार गिरना, आवाज भारी हो जाना, कण्ठ में कुछ रुका-सा भासना आदि लक्षण होने पर लोकनाथ द्वारा उत्तम कार्य होता है।

सूतिका ज्वर में निमित्त कारण सूतिका विष है। इसके योग से कफ धातु दुष्ट होकर कफ-स्थान विकृत होता है। फिर कास, प्रतिश्याय, श्वास, अग्नि मांद्य और अरुचि आदि लक्षणों के साथ ज्वर उपस्थित होता है। इस पर लोकनाथ अत्युत्तम कार्य करता है। इस योग से सूतिका विष शनै: शनै: निर्विष होकर सब लक्षण शमन हो जाते हैं।

संक्षेप में यह लोकनाथ रस अत्यन्त वीर्यवान और तीव्र औषध है। इसका उपयोग श्लैष्मिक कला, कफ स्थान और कफ दोष पर होता है। कफ प्रकृति वाले मनुष्यों पर यह विशेष कार्य करता है। क्षय में कफभूयिष्ठ लक्षण होने पर इसका प्रयोग होता है। इसके योग से कफ

का क्षरण और विलयन होता है एवं कफ रूपान्तरित होने में सहायता मिल जाती है। इस तरह कफविकृति नष्ट होकर धातु-साम्य प्र होता है। इस रसायन का कार्य यकृत्, वृक्क, श्लैष्मिक कला, फुप्फुस, फुप्फुसावरण अन्य कफस्थान, माँसपेशियां और ग्रन्थियुक्त स्व विशेष रूप से होता है। कफदोष में विशेषतः स्नरधत्व और सान्द्रत्व गुणों की वृद्धि होने पर इसका उपयोग होता है। इसका प्रयोग वि रस, मांस और अस्थि, इन दूष्यों पर होता है। (औ.गु.ध.शा

यह रसायन अतिसार की अमोघ औषध है। ज्वर हो, तो ज्वर सह अतिसार को दूर करता है। २-२ रत्ती मात्रा दिन में ३ बार के साथ देवें। ऊपर सोंठ, बच, अतीस कड़वा, देवदारु और नागरमोथे का क्वाथ पिलावें।

धमनी या हृदय की विकृति से होने वाला अन्तर-अर्बुद (रक्तार्बुद), जो देह के किसी भी भाग में गांठ की तरह बन जाता है, जि पाक नहीं होता, रोग अधिक बढ़ने पर हृदय को निर्बल बनाकर सारे शरीर को निस्तेज बना देता है, फिर धीरे-धीरे शरीर का क्षय होता उस पर लोकनाथ अच्छा लाभ पहुँचाता है।

रसधातु में और मेदोधातु में विकृति होने पर गण्डमाला रोग उत्पन्न होता है; तीव्र विकार होने (अपथ्य सेवन करने) पर ज्वर भी जाता है। रोग नया हो और गांठ कच्ची हो तो उस पर लोकनाथ रस अच्छा लाभ पहुँचाता है। मंद-मंद ज्वर रहने पर इन्द्रजौ, परवल के प कुटकी, चिरायता, गिलोय, रक्तचन्दन और सोंठ का क्वाथ कर अनुपान रूप से देते रहने से सत्वर लाभ पहुँचता है। इसके अतिरिक्त निर्गु तैल का नस्य देने से गाँठ को बिखेर देने में सहायता मिल जाती है।

पथ्यापथ्य-लोकनाथ रस लेने के साथ तीन ग्रास घृत मिले भोजन के साथ लेने चाहिये। भोजन के पश्चात् कुछ मिनटों तक पलंग सिराने को हटाकर चित लेटें। अम्ल पदार्थों का त्याग करें, मधुर दही ले सकते हैं। घृत अच्छी रीति से लें। जङ्गल के पशुओं का मांस में भुना हुआ खायें। सांयकाल को क्षुधा लगने पर दूध-भात खायें। मूंग की बड़ियों का शाक खा सकते हैं। तिल और आंवलों को, दूध, या मट्ठे में पीस कल्क बना शरीर पर मर्दन कर या घृत की मालिश कर निवाये जल से स्नान करें। तैल का उपयोग बिल्कुल न करें, बेलप करेला, बैंगन, मछली, इमली, परिश्रम, मैथुन, क्रोध, शराब, ताड़ी, हींग, सौंठ, उड़द, मसूर, कूष्माण्ड, राई, कांजी, असमय पर निद्रा, के पात्र में भोजन और ककारादिवर्ग (ककड़ी, ककोड़ा, कैथ, कलिंग, तरबूज, कन्दूरी आदि) के शाक, फल आदि का त्याग करें। शास्त्रानु श्रद्धापूर्वक शुभ समय से विधिपूर्वक इस रसं के सेवन का प्रारम्भ करने से पूरा लाभ मिलता है। यह रसायन सूर्योदय होने के पश्चात् २ (४५) मिनट के भीतर सेवन करना चाहिये।

सेवन करने पर दाह हो, तो मिश्री, गिलोयसत्व और वंशलोचन मिला कर शहद के साथ लेवें। एवं खजूर, अनार, अंगूर, ईख आदि सेवन करें। अरुचि हो तो साफ किये धनिये के मगज को घी में भून मिश्री मिलाकर लेवें। ज्वर रहता हो तो धनियाँ और गिलोय का क्व लें। रक्तपित्त, कफ, श्वास और स्वरक्षय आदि उपद्रव हों तो नेत्रवाला और अडूसे का क्वाथ शहद-मिश्री मिलाकर लेवें। यदि निद्रा न आ हो और अतिसार, ग्रहणी, अरुचि आदि हों तो भाँग को घी में भूनकर रात्रि शहद के साथ लेवें, उदर शूल और अजीर्ण हो तो कालानम हरड़ और पीपल का चूर्ण निवाये जल से लेवें, जीर्णज्वर रहता हो तो पीपल का चूर्ण शहद के साथ लेवें। यदि प्लीहोदर, वातरक्त, अर्श और नाक में से रक्त गिरना आदि विकार हों तो अनार के फूल और दूब का रस निकाल मिश्री मिलाकर पीवें या सूंघें। वमन और हि के शमन के लिये बेर की गुठली का मगज, पीपल और मयूरपुच्छ के चन्देलों की भस्म को शहद के साथ देवें। हेमगर्भ पोटली रस; मृग मुक्ता आदि रसों के लिये भी इसी अनुसार पथ्यापथ्य आचरण का पालन करना चाहिये।

सूचना-इस रस का सेवन अधिक मात्रा में करने पर और अनुचित प्रयोग करने पर अङ्गसंताप, ज्वर; रक्तपित्त, शुष्क कास, स्वरभंग, निद्रान पित्तज अतिसार, शूल, प्लीहावृद्धि, पैरों के अंगूठों में सूजन; वमन, अर्श, नाक में से रक्त गिरना और हिक्का आदि उपद्रवों की उत्पत्ति जाती है। इनमें से किसी भी उपद्रव की प्राप्ति होने पर इसे बन्दकर तुरन्त गिलोयसत्व, नेत्रवाला का शर्बत मिश्री मिले दूध आदि का से कराना चाहिये।

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह द्वितीय खण्ड के राजयक्ष्मा प्रकरण के भीतर लोकेश्वर पोटली (लोकनाथ) रस का पाठ दिया है। उस साथ कितनी ही महत्व की सूचना दी है। उस रस के भीतर सुवर्ण मिलाया है, अतः कीटाणु प्रकोपज रोगों पर वह इस रसायन की अपे अधिक कार्य करता है।

(११८) तक्रमण्डूर

विधि-गोमूत्र के पुट देकर वारितर बनाया हुआ मण्डूर ४० तोले लेकर बेलपत्र का स्वरस, काले भांगरे का स्वरस, सफेद भांगरे का स्वर

अरनी की छाल का क्वाथ, पुनर्नवा की जड़ का क्वाथ, तालमखाने का क्वाथ इन ६ औषधियों की ३-३ भावनायें देवें। पश्चात् एक सेर गोमूत्र में से थोड़ा-थोड़ा मिला ८-१० भावनायें देकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लें। (र.यो.सा.)

मात्रा-१ से २ गोली दिन में ३ बार, मट्ठे के साथ दें। रोगी को मात्र मट्ठे पर ही रखें। अन्य भोजन, नमक और जलपान भी छुड़ा दें। क्षुधा और तृषा लगने पर बिना नमक मिलाया मट्ठा पिलावें।

उपयोग-इस मण्डूर के सेवन से अत्यन्त बढ़ी हुई शोथ और पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं। अरुचि, अर्श, मेदोवृद्धि, हृदय का भारीपन, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, कृमि, थोड़ा-थोड़ा दस्त होना, अंतड़ी में शूल चलना, मूत्रावरोध होना इन लक्षणों सह शोथ रोग पर मण्डूर से थोड़े ही दिनों में लाभ पहुँचता है। वृद्ध, छोटे बालक, स्त्रियां और नाजुक प्रकृति वाले, सबके लिये बिल्कुल निर्भय उपाय है।

तक्रमण्डूर में मुख्य औषधि मण्डूर है। मण्डूर सौम्य, शीतवीर्य, हृद्य और कषाय गुणयुक्त है। यह लोहकल्प होने से रक्ताणु और रक्ताभिसरण क्रिया पर लाभ पहुँचाता है। इसके विशेष गुण मण्डूर भस्म में वर्णित हैं। उन गुणों के अतिरिक्त बेल पत्रादि के स्वरस और क्वाथ की भावना के हेतु से यह रसायन यकृद् बल्य और वृक्क पर उपकारक बनता है। इसके सेवन से दीपन पाचन और मूत्रल गुण की वृद्धि होती है। इस हेतु से पाण्डु और हृदय विकृति जन्य शोथ पर यह तुरन्त लाभ पहुँचाता है।

हृदय विकृतिजन्य शोथ का आरम्भ पैर और हाथों पर पहले होता है। प्रथमावस्था में दिन में शोथ बढ़ता है और रात्रि को शांति मिलने पर दूर हो जाता है। तुरन्त उपचार न करने पर शोथ सारे शरीर पर फैलता जाता है। फिर शरीर शीतल रहना, हृदय में भारीपन, आलस्य, निद्रावृद्धि और मलावरोधादि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर तक्रमण्डूर व्यवहृत होता है।

वक्तव्य-जिन रोगियों को अम्लपित्त, रक्तपित्त अथवा वृक्क-प्रदाह न हो, उन रोगियों को इस तक्रमण्डूर का सेवन तक्र के साथ कराया जाता है। नमक का त्याग करने पर रक्त में बढ़ा हुआ विष और जल मूत्रमार्ग से विशेष मात्रा में बाहर निकलता रहता है, जिससे रोगी थोड़े ही दिनों में स्वस्थ हो जाता है।

यदि शोथ के साथ प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, आध्मान, उदर में शूल चलना आदि उपद्रव भी उत्पन्न हुए हों, किन्तु उदर में व्रण, विद्रधि, कर्कस्फोट या पूयप्रधान विकृति न हो तो वे सब उपद्रव भी शमन हो जाते हैं। फिर रक्तप्रसादन और रक्त की वृद्धि होकर शरीर स्वस्थ ओर सबल बन जाता है।

विषमज्वर दीर्घकाल तक रह जाने पर उसके विष का प्रवेश प्लीहा में हो जाता है जिससे प्लीहावृद्धि हो जाती है। साथ-साथ कितने ही रोगियों के यकृत् भी निर्बल हो जाते हैं। फिर रक्त रचना में विकृति और रक्त की कमी होकर पाण्डुता आ जाती है एवं हृदय-स्पन्दन बढ़ जाता है। हृदय और सारे शरीर की मांसपेशियां शिथिल हो जाती हैं, थोड़ा-सा परिश्रम भी नहीं हो सकता, चक्कर आते हैं, निद्रा, तन्द्रा और आलस्य बढ़ जाते हैं। किसी-किसी को अफारा आता है और मलावरोध भी होता है। ऐसे रोगियों को ४० दिन के तक्रकल्प के साथ तक्रमण्डूर का सेवन कराया जाता है। कल्पकाल में आवश्यकता होने पर सुवर्णमालिनी या सुवर्णप्रधान लक्ष्मीविलास भी दिया जाता है।

सूचना-(१) यकृद्वृद्धि हो जाने से दस्त में दुर्गन्ध आती हो मल का रंग सफेद श्याम हो तो तक्र में से मक्खन निकाल देना चाहिये। फिर दस्त का रंग पीला होता जाय, उतने परिमाण में मक्खन कम निकालना चाहिये। अच्छा पीला रंग आ जाने पर तक्र में सब मक्खन रहने देवें।

(२) यदि शोथोत्पत्ति न हुई हो केवल पाण्डुता आई हो और ग्रहणी की सम्प्राप्ति हुई हो तो तक्र में सैंधानमक मिलाना चाहिये। यदि मूत्रावरोध हो तो ३ दिन तक सोरा या यवक्षार भी रोज सुबह एक बार देते रहना चाहिये।

ग्रहणी रोग नया हो, दिन में ५-७ दस्त होते हों, उदर में गुड़गुड़ाहट, अग्निमांद्य, अरुचि, पाण्डुता आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो तक्रकल्प सेवन कराने के साथ तक्रमण्डूर का सेवन कराने से अन्त्र विशुद्ध और बलवान बन जाती है फिर रोग शमन हो जाता है।

प्रवाहि ' रोग में अन्त्र के भीतर क्षत हो जाता है फिर उस स्थान में कठोर वस्तु या तीक्ष्ण पदार्थ का स्पर्श होने पर शूल चलता है। रोग जीर्ण हो॰ पर उदरशूल बढ़ जाता है फिर अग्निमांद्य, आममिश्रित थोड़ा-थोड़ा दस्त होना, शारीरिक निर्बलता और पाण्डुता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

इस अवस्था में भी तक्रकल्पसह तक्रमण्डूर का सेवन कराया जाता है एवं साथ-साथ अफीम मिश्रित ग्रहणीकपाट रस भी दिया जाता है और जिन रोगियों को उदरपीड़ा (ऐंठन) अधिक रहती हो, उनको आवश्यकतानुसार सम्हालपूर्वक अफीम प्रधान ग्रहणीकपाट बहुत कम मात्रा में साथ-साथ दिया जाता है। इसके विपरीत जिन रोगियों को रोग पुराना होने पर कब्ज रहता हो और आमोत्पत्ति अधिक होने से हानि पहुँचती रहती हो उनको तक्रमण्डूर के सेवन के साथ आरोग्यवर्द्धिनी (द्वितीय विधि) भी देनी पड़ती है।

सूचना-जिनको उपदंश सुजाक या वृक्क-विकार जनित अन्य मूत्ररोग तृषा, ज्वर, दाह, मूर्च्छा, दौर्बल्य, भ्रम या रक्तपित्त प्रकोपयुक्त रोग हो, उनको तक्रमण्डूर या तक्र का सेवन नहीं करना चाहिये। ऐसे लक्षणों युक्त शोथ रोग में दुग्धवटी का उपयोग हितकर माना गया है।

(११९) पुनर्नवा मण्डूर

विधि–पुनर्नवा* (साँठी की जड़), निसोत, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, बायविडंग, देवदारू, कूठ, हल्दी, चित्रकमूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दंतीमूल, चव्य, इन्द्रजव, कुटकी, पीपलामूल, मोथा, काकड़ासींगी, कालाजीरा, अजवायन और कायफल ये सब औषधियां समभाग लेकर चू करें। फिर चूर्ण से दूनी मण्डूर भस्म को अठगुने गोमूत्र में पकावें। गोमूत्र चतुर्थांश शेष रहने पर औषधियों का चूर्ण मिलाकर पकावें। जब गो बांधने लायक हो जाय, तब उतार घोटकर मटर के समान गोलियां बना लें। मूलग्रन्थ में गुड़ मिलाने को लिखा है; हमने सुविधा के लि अनुपान रूप में मिला लिया है। (भा.प्र.

मात्रा–२ से ४ गोली, दिन में २ बार थोड़े गुड़ के साथ दें। ऊपर मट्ठा अथवा जल पिलावें। आमप्रधान कब्जवाले रोगी को हरड़ चूर्ण मिलाकर देना चाहिये। यदि उसमें योगराज गूगल मिला दें तो सत्वर लाभ पहुँचता है।

उपयोग–यह औषधि शोथ, पाण्डु, कामला, उदररोग, अफारा, शूल, श्वास, खांसी, क्षय, ज्वर, प्लीहा, बवासीर, संग्रहणी, कृमि, वातर और कुष्ठ का नाश करती है।

यह मण्डूर पाण्डु रोगपर अति हितकारक है। पाण्डु अथवा कुम्भकामलारोग अधिक दिन रहने से सर्वांग शोथ आया हो; शोथ पर दबा से खड्डा हो जाता हो; और जल्दी न भरता हो; तो पुनर्नवा मण्डूर के सेवन से सत्वर लाभ पहुँचता है। शोथ के साथ अफारा, मन्द-मन्द ज्वर अरुचि, रक्त में रक्ताणुओं की कमी, निर्बलता के हेतु से श्वास भर जाना, प्लीहावृद्धि आदि विकार हों, वे भी दूर हो जाते हैं। एवं अन्त्र की निर्बलता, अन्त्र में मल शुष्क हो जाने के पश्चात् वातप्रकोप होकर निकलने वाला शूल और सूक्ष्म कृमि ये सब नष्ट होते हैं। इस मण्डूर से मल, मूत्र की शुद्धि होती है। और रक्ताभिसरण क्रिया नियमित बनती है। पक्वाशय, रक्त और रसधातु की शुद्धि होने से रक्ताभिसरण क्रिया बलवान बनती है एवं वातदुष्टि नष्ट होने से दोष प्रकोपजन्य-नूतन कुष्ठ और वातरक्त का भी शमन होता है। यह मण्डूर ग्रहणी और अन्त्र को बलवान बनाता है। इस हेतु से नये संग्रहणी रोग और अर्श रोग पर भी हितावह है।

शोथ आने के मुख्य ३ कारण हैं। हृदय, वृक्क और यकृत् की विकृति इन तीनों प्रकोपों पर कार्य हो सकें, उस तरह इस रस की रच की है। मण्डूर से हृदय और रक्त पर विशेष लाभ पहुँचता है और यकृत-प्लीहा पर इससे कम। गोमूत्र, यकृत, वृक्क और अन्त्रादि पचन अवय को बल प्रदान करता है; रक्त का प्रसादन करता है; सूक्ष्म कृमि, कीटाणु और विष का नाश करता है; तथा आमपचन में सहायता पहुँचात है। निसोत, दन्तीमूल, और कुटकी अन्त्र में चिपके हुए पुराने मल को निकालकर अन्त्र को शुद्ध बनाते हैं। सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल पीपलामूल, कालाजीरा, और अजवायन, ये सब दीपन, पाचन है, आमाशय और यकृत, दोनों स्थानों को उत्तेजना देते हैं। देवदारु, कूठ, कायफल और अजवायनादि तैलीय द्रव्य वातनाड़ियों को पुष्ट बनाते हैं। हल्दी आम-पाचन और रक्तप्रसादन कार्य में सहायता पहुँचाती है। इन्द्रजौ आ नागरमोथा दीपन पाचन और ग्राही गुण दर्शाते हैं। बायविडंग यकृद्बल्य और कृमिघ्न है। बायविडंग से कृमि की उत्पत्ति में प्रतिबन्ध होता है। पुनर्नवा मूत्रल और श्रेष्ठ शोथहर, औषधि है। इस तरह इस प्रयोग में पुनर्नवादि वृक्क, हृदय, यकृत्, रक्त, आमाशय और अन्त्र पर कार्यक औषधि का संमिश्रण होने से शोथ की अति बढ़ी हुई अवस्था में यह अपना प्रभाव दर्शाता है।

यदि शोथ के साथ ज्वर भी रहता हो और अन्त्र में मल संगृहीत हो, तो इस रसायन का सेवन पुनर्नवाष्टक कषाय (आरोग्यवर्द्धिनी के उपयोग में लिखे हुए) के साथ कराया जाता है अथवा आरोग्यवर्द्धिनी दी जाती है। रोग जितना पुराना हो और अधिक बढ़ा हो, उतनी मात्रा कम करनी चाहिये। रोगी को नमक बिल्कुल नहीं देना चाहिये।

वक्तव्य–रोगी को ज्वर न हो, वृक्क विकार न हो, हृदय विकृति से शोथ हुआ या पचन-क्रिया मन्द हो, अन्त्र में मलसंग्रह और कीटाणुओं की वृद्धि हो गई हो, मुखपाक न हो, रात्रि को बार-बार लघुशंका न होती हो, और तक्र अनुकूल रहती हो, तो रोगी को तक्रकल्प कराना चाहिये।

तक्रमण्डूर भी शोथसह पाण्डुपर व्यवहृत होता है, उसमें आमाशय पौष्टिक, पित्तस्रावी, और अन्त्र की शोधन करने वाली औषधियां गोमू के अतिरिक्त नहीं मिलायी। अतः जिन रोगियों की पचन-क्रिया अधिक दूषित हो तथा अन्त्र में आम, मल और विष का संचय हुआ हो या

---

* पुनर्नवा के श्वेत और रक्त, ऐसे २ प्रकार मुख्य हैं। दोनों जातियों में कुछ उप प्रकार भी हैं। रक्त में जो बड़ी जाति है, जिसके मूल को चबाने पर कुछ गोंद पकड़ता है, जिसे लेटिन नाम बोर्हैविया डिफ्युजा (Boecrhavia-Diffusa) दिया है, वह अधिक मूत्रल है। उसके मूल को तोड़ने पर तुरन्त टूट जाता है। अन्य जाति के मूल सरलता से नहीं टूटते, वह शोथ मिटाने में अन्य जाति की अपेक्षा अधिक लाभप्रद है।
पुनर्नवा श्वेत, जिसका लेटिन नाम ट्राये-थेमा पोर्टुखेकस्ट्रम, (Trianthema Portulacastrum) है, यह तीव्र विरेचक है। यकृद्वृद्धि आदि विकार पर अधिक लाभ पहुँचाती है। अतः यकृद्दाल्युदर, जीर्णकामला, यकृद् में से पित्तस्राव की न्यूनता, यकृत् में रक्त संग्रह और प्लीहावृद्धि आदि रोगों में पुनर्नवामण्डूर का उपयोग करना हो, तब यह श्वेत पुनर्नवा मिलाना चाहिये अथवा अनुपान में श्वेत पुनर्नवा का रस या कषाय लेना चाहिये।

उदर कृमि हो गये हों, उनके पुनर्नवामण्डूर विशेष अनुकूल रहता है।

पित्ताशयनलिका और यकृत से निकलने वाली साधारण पित्तनलिका में प्रदाह होने या पित्तस्राव कम होने पर मल सफेद रंग का और दुर्गन्धयुक्त हो गया हो, तो यह रस १-२ माशे सज्जीखार (सोडाबाई-कार्ब) मिलाकर ५-५ तोले मूली के रस या तक्र के साथ दिया जाता है। रोगी को भोजन में मात्र तक्र और चावल देना चाहिये।

जलोदर और शोथ, दोनों में जल या रस संग्रह होता है। अत: दोनों की चिकित्सा में साम्य है। जलसदृश पतला विरेचन मूत्रविरेचन और स्वेदद्वारा रक्त में से जल बाहर निकाल देने पर उदर्य्याकला या त्वचा के नीचे संगृहीत जल का रक्त में शोषण हो जाता है। इस हेतु से पुनर्नवामण्डूर गोमूत्र या सनाय के क्वाथ के साथ रोज सुबह देते रहने पर नया जलोदर रोग शमन हो जाता है। भोजन में दूध और भात दें। नमक नहीं देना चाहिये।

आमाशय की पचनक्रिया दूषित होने पर अन्त्र में आम संगृहीत होते हैं। फिर अन्त्र में कृमि उत्पन्न होते हैं। पाण्डुता, उदरशूल, अरुचि, उबाक, अफारा, श्वास, कफवृद्धि, मलावरोध और निस्तेजतादि लक्षण प्रकाशित होते हैं। **सूक्ष्म कृमि** होने पर नाक ओर गुदा में कण्डू चलती है। कभी-कभी त्वचा शुष्क हो जाती है। किसी को श्वेत कुष्ठ या अन्य उपकुष्ठ हो जाते हैं। इस रोग पर पुनर्नवामण्डूर हरड़ के क्वाथ के साथ दिया जाता है। यदि वातवाहिनियों की विकृति हो तो पुनर्नवामण्डूर के साथ योगराज गुग्गुलु या चन्द्रप्रभावटी मिला दी जाती है।

हृदय और रक्त की निर्बलता होने पर प्राय: पचनक्रिया निर्बल हो जाती है। ऐसी स्थिति में मिर्चादि तेज मसाला और द्विदल धान्यादि वातप्रकोपक आहार का अधिक सेवन होता रहे, तो उदर में गुड़गुड़ाहट होती है, अफारा आ जाता है तथा मलावरोध, मल में दुर्गन्ध और किसी को मूत्रावरोध भी होता है। फिर अर्शोत्पत्ति हो जाती है। इसी तरह अपचन और अग्नि मन्द होने पर भी बारंबार आहार का सेवन अधिक मात्रा में होता रहे; तो अन्त्र शिथिल बनकर संग्रहणी रोग की सम्प्राप्ति हो जाती है। फिर कुछ दिन मलावरोध और कुछ दिन अतिसार ऐसा चक्र चलता रहता है। इन विकारों का मूल हृदय की शिथिलता और पचन-विकृति होने से इन रोगों पर भी पुनर्नवामण्डूर लाभ पहुँचाता है। मात्रा थोड़ी-थोड़ी दिन में ३-४ समय देनी चाहिये एवं पथ्य पालनसह औषधि दीर्घकाल पर्यन्त लेनी चाहिये।

(१२०) वृद्धिवाधिकावटी

विधि-शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, बंगभस्म, ताम्रभस्म, कांस्यभस्म, हरताल भस्म, नीलेथोथे की भस्म, शंखभस्म, कौड़ीभस्म, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चव्य, कचूर, बायविडंग, विधारे के बीज, पीपलामूल, पाठा, हाऊबेर, बच, इलायची, देवदारु, समुद्रनमक, सैंधानमक, साँभरनमक, बिड़नमक और कालानमक; इन ३१ औषधियां को समभाग लें, फिर यथाविधि मिला छोटी हरड़ के अष्टमांश क्वाथ में ३ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें। (भा.प्र.)

मात्रा-१ से २ गोली; दिन में २ बार जल के साथ दें।

सूचना-(१) इस औषधि में ताम्र; नीलाथोथा और काँस्य ये तीन वामक गुण दर्शाने वाली भस्में मिलाई हैं। भस्म विधिपूर्वक ठीक बनी होगी तो उक्त दोष नहीं दर्शा सकेगी।

(२) यदि प्रकृति भेद से हल्लास (उबाक) और बेचैनी हो तो अनुपान नमक मिला मठ्ठा या नींबू का रस शक्कर और जल मिलाकर लेवें।

(३) इस वटी के लेने पर तुरन्त दूध, चाय या काफी गरम-गरम न लेवें। दूध आदि लेना हो तो कम से कम १ घण्टे बाद लेवें।

(४) कब्ज रहता हो, तो आरोग्यवर्द्धिनी का साथ-साथ सेवन करना चाहिये।

उपयोग-यह वटी अण्डवृद्धि के सब दोषों को थोड़े ही दिनों में दूर करती है; और अन्त्रवृद्धि में भी लाभ पहुँचाती है एवं अण्डकोष में वायु भरने से होने वाला दर्द, नया दूषित रस उतरना; रक्त भरना और अन्य सभी प्रकार के दोषों को निवृत्त करती है। जब अण्डकोष में बहुत ज्यादा जल भर जाता है; तब यह वटी काम नहीं देती है। प्रथमावस्था के लिये उपयोगी है।

(१२१) गण्डमालाकण्डन रस

विधि-शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक ६ माशे, ताम्रभस्म १॥ तोले, मण्डूर भस्म ३ तोले, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल २-२ तोले, सफेद सैंधानमक ६ माशे, कचनार की छाल और शुद्ध गूगल १२-१२ तोले लें। पहिले पारद और गन्धक की कज्जली करके भस्म मिलावें। फिर सब औषधियों को कपड़छन चूर्ण मिलावें। गूगल में गोघृत मिला कूटकर पतला करें। फिर सब औषधियों को गूगल के साथ थोड़ी-थोड़ी मिला अच्छी रीति से कूटकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। (नि.र.)

मात्रा-१ से ४ गोली, दिन में २ बार कचनार, पियाबांसा, करंज, कटेली और बड़ी कटेली के क्वाथ के साथ ३-४ मास पर्यन्त देते रहना चाहिये। एक गोली से आरम्भ करके मात्रा धीरे-धीरे बढ़ावें।

उपयोग–यह रस गलगण्ड और दारुण गण्डमाला को नष्ट करता है। यह रस विशेषतः स्थूल प्रकृति के रोगी के लिये विशेष लाभदायक है। नयी और पुरानी गण्डमाला, दोनों में अच्छा काम देता है। गांठ फूटकर अपची होती है और उसके साथ में सूक्ष्म ज्वर रहता है, उस पर भी यह लाभदायक है। यह बद्धकोष्ट को दूर करता है, और पाचनशक्ति को सुधारता है। उपदंश को छोड़ कर जो मेद और कफविकृति ग्रन्थि उत्पन्न होती है, उस पर भी यह लाभ पहुँचाता है।

आयुर्वेद में गण्डमाला की उत्पत्ति निम्नानुसार कही है। कण्ठ और कांख या कण्ठ और वंक्षण (उरु-संधि) में रही हुई गांठों में मेद और कफ की वृद्धि होने पर उसे गण्डमाला संज्ञा दी है। केवल वंक्षण या केवल उदर में गांठ होने पर उसे गण्डमाला नहीं कहते। पहले गण्डमाला का उद्भव कण्ठ पर होकर फिर अन्य स्थानों में प्रसार होता है।

इस विकार में विशेषतः मन्द-मन्द ज्वर रहता है। सारा शरीर टूटना, हाथ-पैर गल जाना, शनैः शनैः बलमांसविहीनत्व आना आदि लक्षण होते हैं, क्षुधा मांद्य तो प्रारम्भ से ही होती है। यह गांठ शनैः शनैः बड़ी होने पर पककर फूटती है। गांठ फूटकर व्रणरोपण होता है। परन्तु पुनः गांठें बढ़ती हैं। गांठ फूटने के पश्चात् कितनी ही नष्ट होती हैं; कितनी ही पुनः भरती हैं। ऐसा क्रम वर्षों तक चलता रहता है। इस अवस्था को अपची कहते हैं। गण्डमाला फूटने पर उसमें से क्लेदयुक्त पूयस्राव होता है, परन्तु पुनः भरती है और पुनः किंचित् रसयुक्त स्राव होने लगता है। इस तरह यह विकार भयंकर त्रासदायक है। इसकी चिकित्सा जल्दी न होने पर यह बहुधा दृढ़मूल हो जाता है फिर अस्त्रचिकित्सा कराने पर भी समूल नष्ट नहीं होता।

इस रस के सेवन का प्रारम्भ होने पर शनैः शनै विकार कम होता है। विशेषतः निस्तेज और कुछ फूला हुआ-सा मुख जिनका हो गया हो, हाथ पैर में निर्बलता और कुछ शोथ-सा प्रतीत होता हो तथा अपचन, पचनेन्द्रिय की निर्बलता के हेतु से कोष्ठबद्धता आदि लक्षण हों, तो इसका उपयोग करना चाहिये।

(औ.गु.ध.शा.)

(१२२) शिलासिंदूर वटी

विधि–शिलासिन्दूर ५ तोले, आंवला और बावची २॥-२॥ तोले लेवें। पहिले शिलासिंदूर को ३ दिन भांगरे के रस में खरल करें। फिर आंवले और बावची का बारीक चूर्ण मिलावें। पश्चात् आंवले और बावची के चूर्ण १०-१० तोले मिला ६ गुने पानी में क्वाथ कर अष्टमांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। इस क्वाथ की भावना देवें। इस तरह आंवले बावची के ताजे-ताजे क्वाथ की ५ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें।

(आ.नि.मा.)

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ से ३ बार। जल के साथ दें।

उपयोग–इस वटी के सेवन से कण्ठमाला, गलगण्ड, अपची, अर्बुद, कुष्ठ, मेदरोग, मेदोरोग से होने वाली घबराहट, पसीना और निर्बलता आदि विकार दूर होते हैं। मेदो रोग पर देने के समय शक्कर, दही, ज्यादा घी, विशेष भात खाना आदि मेदोवर्द्धक आहार को छुड़ा देना चाहिये, तथा हो सके उतना व्यायाम करना चाहिये।

इस रसायन में मुख्य औषधि शिलासिन्दूर है। शिलासिन्दूर में लेखन, कीटाणु नाशक, रक्तप्रसादन, मेदोहर, कफघ्न, विषनाशक, वातशामक, मांस पौष्टिक और पित्तवर्द्धक गुण मुख्य हैं। इसके साथ भृङ्गराज, आमलकी और बावची मिलाकर विषघ्न, रक्तप्रसादन, लेखन और कुष्ठहर गुण की वृद्धि करायी है तथा रसायन को सौम्य बनाया है तथा जीवनीयशक्ति विशेष निहित करायी है।

लेखन गुण के हेतु से कण्ठमाल, गलगण्ड, अपची अर्बुद (रसोली) और मेदोरोग में यह लाभ पहुँचाता है। इन सब रोगों में संगृहीत रस या मेद को जलाना और नूतन उत्पत्ति में प्रतिबन्ध करना, ये दोनों कार्य इस वटी के सेवन से हो जाते हैं।

कण्ठमाल की गांठ पककर फूटने पर अपची कहलाती है, उसमें से पूयस्राव दीर्घकाल पर्यन्त होता रहता है। पूय का शोषण किसी-किसी को रक्त में होता रहता है। फिर उस हेतु से शीतसह ज्वर भी आ जाता है। उस पर इस वटी का सेवन हितावह होता है। यह वटी पूयज कीटाणुओं का नाशकर ज्वर को शान्त कर देती है।

मेदोवृद्धि के मुख्य ३ हेतु हैं। (१) वशांगत मेदोवृद्धि, (२) फिरंग विषादि के प्रकोप से धमनी की दीवार कठोर हो जाना (Arteriosclerosis) अथवा धमनी की दीवार मललिप्त हो जाना, (३) बालग्रैवेयक ग्रन्थि (Thymusgland) के अन्तः स्राव में विकृति। इनमें से पहले वंशागत प्रकार के लिये औषधि विशेष लाभ नहीं पहुँचा सकती। द्वितीय प्रकार धमनी की दीवार की विकृति पर कितने ही अंशों में यह रस सफल होता है। कारण, यह रस उपदंशज विष और कीटाणुओं का नाश करता है; रक्तादि धातुओं में अवस्थित धात्वग्नि को प्रदीप्त करके वसा, कफ, आम और मल को जलाता है, तथा नूतन मेदोत्पत्ति में प्रतिबन्ध करता है। तृतीय प्रकार में भी कुछ अंश में लाभ पहुँचता है। यदि बालग्रैवेयक ग्रन्थि की निर्बलता नयी हो, अति शिथिलता न आई हो, तो इस प्रकार में पचन अग्नि अतिमन्द हो और अन्त्र में पुराना मल चिपका हो तो शिलासिन्दूर वटी की अपेक्षा आरोग्यवर्द्धिनी का सेवन कराना विशेष हितावह है। बालग्रैवेयक ग्रन्थि का अन्तः स्राव न होता हो या अति कम

तो डाक्टरी मतानुसार भेड़ के बालग्रैवेयक ग्रन्थि का सत्व दिया जाता है। यह प्रयोग जीवनपर्यन्त करते रहते हैं।

वक्तव्य–मेदोवृद्धि से पीड़ित रोगी को घृत, शक्कर, दही, चावल और अन्य मेदोवृद्धि के भोजन का सेवन कम करना चाहिये तथा हो सके उतना शारीरिक श्रम भी करना चाहिये।

श्वेत कुष्ठ (Leukoderma) की उत्पत्ति रक्त के भीतर रक्त वर्ण (Haemoglobin) की न्यूनता होने पर होती है। रक्त के भीतर क्लेद या मेद प्रवेश होने पर यह विकृति हो जाती है। यह रसायन धात्वग्नि को प्रदीप्त करता है, इस हेतु से श्वेतकुष्ठ और रक्त विकृति से उत्पन्न अन्य उपकुष्ठ या त्वचा रोगों पर यह लाभ पहुँचा देता है। विकृति अधिक गहराई तक पहुँची हो, तो शिलासिन्दूर वटी का सेवन २-४ मास तक कराना पड़ता है। यदि बृहदन्त्र मलपूर्ण हो तो प्रारम्भावस्था में उसे साफ कराने के लिये आरोग्यवर्द्धिनी त्रिफला के फाण्ट के साथ दी जाती है।

शिलासिन्दूर में कफघ्न और विषनाशक गुण होने से यह वटी जीर्ण कफ कास, जीर्ण श्वासरोग, जीर्ण आमवात, रक्तविकार और जीर्ण त्वचा रोगों पर भी इसका प्रयोग सफलतापूर्वक किया जाता है।

(१२३) नित्यानन्द रस

विधि–सिंगरफ से निकाला हुआ पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, वंग भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध नीलाथोथा, शंखभस्म, काँस्यभस्म, कौड़ी भस्म, लोहभस्म, हरड़, बहेड़ा आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बायविडंग, सैंधानमक, काला नमक, बिड़नमक, काचनमक, समुद्रनमक, चव्य, पीपला मूल, हाऊबेर, बच, कपूर, पाठा, देवदारू, छोटी इलायची, विधारा (अभाव में निसोत) ये ३१ औषधियां समभाग लेकर विधिपूर्वक मिलावें। पश्चात् निसोत, चित्रक मूल, दन्तीमूल, और हरड़ के क्वाथ में क्रमशः १२-१२ घण्टे खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। (र.र.)

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ बार ठण्डे पानी के साथ देवें।

उपयोग–नित्यानन्द रस श्लीपद रोग पर दिव्य औषध है कफजन्य और कफवातजन्य श्लीपद (हाथीपगा) जिसमें त्वचा का रंग काला, ऊपर में चीरा हो गया हो, वेदना तीव्र हो, ज्वर कम हो, कभी बढ़ जाता हो, पैर जड़ अति मोटा, फीका सफेद रंग का हो, खाज बहुत आती हो, क्लेद निकलता हो, ऐसे लक्षणयुक्त श्लीपद, जो रस, रक्त, माँस, या मेद या शुक्रगत हों, इन सबकों यह रसायन नष्ट करता है। इसके अलावा अर्बुद, गण्डमाला, अतिपुरानी अन्त्रवृद्धि, वात, पित्तज, और श्लेष्मपित्तज गुदरोग और कृमि रोग को दूर करके अग्नि का प्रदीप्त करता है, तथा बल-वीर्य की वृद्धि करता है।

कई बार हाथ पैर में मांसार्बुद या रक्तार्बुद होकर बाहर से श्लीपद होने का भास होता है। मांसार्बुद घातक रोग है। इसकी वृद्धि तेजी से होती है अर्बुद स्थान सामान्यतः उष्ण रहता है। इस पर से भी विदित हो जाता है अति वृद्धि होने पर फटता है और रोगी का जीवन भय में डाल देता है। यदि यह रोग भी प्रथमावस्था में हो, तो नित्यानन्द के साथ लोकनाथ का सेवन कराने पर लाभ पहुँच जाता है।

श्लीपद रोग अधिक जलयुक्त प्रदेश, शीतल शीलवाले स्थानों में रहने वालों को होता है। जिस जलमय स्थान में पत्र-फूल-फल आदि कूड़ा कचरा संचित होकर दुर्गन्ध उत्पन्न होती है, उस स्थानवासियों के त्वचागत कफदोष में विकृति होती है। प्रारंभ में किसी स्थान में त्वचा मोटी होती है, तथा हाथ, पैर, कान की पाली, नेत्र की भांफणी, शिश्न, औष्ट और नाक आदि स्थानों में त्वचा मोटी हो जाती है; एवं मन्द-मन्द ज्वर रहता है। ज्वर रहने पर शोथ अधिक होती है। कफ-प्रधान चिकित्सा करने पर ज्वर सह शोथ कम हो जाता है।

डाक्टरी मतानुसार यह व्याधि फाइलेरिया (Filaria) नामक कीटाणु जनित है। यह बंगाल, कोचीन, मालावार आदि प्रदेशों में अधिक होता है। यह रोग पैर के अलावा वृषण, लिंग, हस्त आदि स्थानों में भी होती है। रोगग्रस्त स्थानों में रूक्ष और विषम हो जाता है। त्वचा के नीचे रही हुई संयोजक कला स्थूल हो जाती है, और उसमें लसीका संगृहीत हो जाती है। मांसपेशी, अस्थि या वातवाहिनियों की विकृति नहीं होती। रक्त-प्रणालियाँ सब बड़ी और रसायनियां प्रसारित हो जाती हैं। कभी-कभी रोगग्रस्त स्थान के विपरीत दिशा में रही हुई रसायनियां सब कठिन हो जाती हैं और बढ़ जाती है।

इस व्याधि पर इस रसायन के दीर्घकाल सेवन से ही लाभ होता है। साथ-साथ गर्जन तैल की मालिश भी कराते रहना चाहिये। रोग अति जीर्ण हो जाने पर शस्त्र चिकित्सा का आश्रय लेना चाहिये।

(१२४) केशरादि वटी (उपदंश)

विधि–शुद्ध रसकपूर, केशर, मिश्री, सफेद चन्दन का चूर्ण, लौंग और जावित्री को समभाग मिला जल के साथ खरलकर मूंग के बराबर गोलियां बनावें। (आ. औ.)

मात्रा–२ से ४ गोली, दिन में २ बार घी में लपेटकर निगल जाये, दांत को नहीं लगनी चाहिये।

उपयोग–इस वटी के सेवन से नया और पुराना उपदंश, विस्फोटक, रक्तविकार, उपदंशजन्य सन्धिवात, पक्षाघात आदि वातरोग, कुष्ठ, व्रण, नाड़ीव्रण(नासूर), गलगण्ड, तालुव्रण, वातरक्त तथा त्वचा के नये और पुराने सब रोग थोड़े ही दिनों में दूर होते हैं।

इस रस से मुँह नहीं आता और एक वर्ष के जीर्ण रोगों में भी अच्छा लाभ पहुँचता है। इस रस को महामंजिष्ठादि क्वाथ अन्य रक्त अनुपान के साथ देने से शीघ्र लाभ पहुँचता है।

सूचना–रसकपूरयुक्त औषधि होने से पथ्य का आग्रहपूर्वक पालन करना चाहिये। तैल, मिर्च, खटाई न खायें। सिगरेट, बीड़ी, त भी बाधक है। सैंधानमक थोड़े परिमाण में लें। यकृत् सबल है, तो घृत अधिक लें। यदि भोजन में गेहूँ की रोटी, घी, शक्कर, दूध और ही लें तो सत्वर लाभ होता है।

(१२५) उपदंश सूर्य

प्रथम विधि–सफेद सोमल ६ माशे, छोटी कटेली के पंचांग का स्वरस और नींबू का रस १२-१२ तोले लें। फिर लोहे की क में सबकों मिलाकर लगभग ४२ दिन पर्यन्त कड़वे नीम के डण्डे से घुटाई करें। पश्चात् मूंग के समान गोलियां बनावें। रस कम हो तो और मिला लेना चाहिये। (बृ.यो.

मात्रा–१ से २ गोली, सुबह घृत के साथ निगल जायँ। भोजन में गेहूँ का फुलका, घी और थोड़ा सैंधानमक वाली मूंग की दाल तैल, मिर्च, खटाई, नमक आदि का त्याग करें, घी अधिक लें।

उपयोग–यह रस उपदंश रोग को जलाने में सूर्य के समान तेजस्वी है। आयुर्वेद में उपदंश रोग के दो प्रकार मिलते हैं–सामान्य उप और फिरंगोपदंश। सामान्य उपदंश अधिक रति सेवन, दांत, नख, शस्त्र आदि का आघात-अधावन (अप्रक्षालन) और योनिप्रदोष (दीर्घ, कर्क रोम आदि युक्त दुष्टयोनि), इन कारणों से केवल पुरुष जननेन्द्रिय को ही होता है। फिरंगोपदंश(फिरंग रोग) का वर्णन प्राचीन आयुर्वेद संहिता में नहीं मिलता हैं। इसका उल्लेख केवल नव्य शास्त्र में ही मिलता है। इस नाम से ध्वनित होता है कि, यह व्याधि विदेशी लोगों के देश में आने के पश्चात् उनके संसर्ग से ही उत्पन्न हुई है। यह फिरंग रोग स्थानिक हानिकर नहीं है, परन्तु सर्वाङ्गव्यापी और विविध अव समूहों में अनेक उपद्रवों को उत्पन्न करने वाला है। फिरंग रोग के विशिष्ट प्रकार के कीटाणु है। ये कीटाणु संसर्ग होने पर शरीर में प्र करके आशुकारी और चिरकारी, ऐसी दो अवस्थाएं निर्माण करते हैं। इस रोग की तीव्रावस्था में पारद कल्प अधिक उपयोगी होता है और जीर्णाव चिरकारी विकार में विवक्षित संस्कारों से बने हुए पारद कल्प और मल्ल लाभदायक होते हैं। इस रोग के और भी विभाग हो सकते हैं। कौन जिन-जिन अवयवों में प्रवेश करते हैं या जिन दोष-दूष्य आदि के साथ जितने अंश में मिल जाते हैं, उतने अंश में विविध अवस्थाएं उ होती हैं। उपदंश का विष केवल रक्त और त्वचा में ही संचित होकर रह जाने पर शारीरिक अणुभवन क्रिया (Anabolism) सम्यक् न होती। ऐसा होने पर पारद, सुवर्ण, रौप्य, मल्लमिश्रित अष्टमूर्ति रसायन उपयोगी होता है। परन्तु यही विष अधिक गहराई में जाने पर माँस अस्थि के आश्रित हो जाने पर उनमें विकृति उत्पन्न करता है। मांसगत व्रण, अस्थिगत व्रण गण्ड, अर्बुद, ग्रन्थि, अस्थि में कीटाणु हो ज आदि विविध उपद्रव उत्पन्न होते हैं। यह विष जैसे-जैसे अधिक लीन होकर गहराई में चला जाता है, वैसे-वैसे उस स्थान पर पारदकल्प अपेक्षा मल्लकल्प अधिक उपयोगी होता है। इन मल्लकल्पों में उपदंश सूर्य एक उत्कृष्ट मल्लकल्प हैं।

जीर्ण उपवंश व्रण अन्य व्रणों की अपेक्षा विशिष्ट प्रकार का भासता है। कुछ दिनों तक व्रण का रोपण हो जाने का भ्रम होता है। फिर कु दिनों में पुनः दुगने बल से बढ़ जाता है। इसकी किनारी मोटी और कठिन व्रण संरक्षण कला (Scar tissue) ऊँची-नीची और विविध प्रक का स्राव होना आदि लक्षण होते हैं। यह व्रण मांस का आश्रयकर कितने ही दिनों तक जड़ जमा स्थित टिककर रह जाता है। यह व्रण श के बाह्याँग, मुख, औष्ठ, श्लैष्मिककला और जिह्वा पर भी हो जाता है। यह विकार इतना पुराना और त्रासदायक है कि, आजन्म मनुष्यों त्रास देता रहता हैं। मांसाश्रित व्रण अधिक काल तक रह जाने पर भी उसकी उपेक्षा होने से या अयोग्य उपचार करने अथवा स्वाभाविक कीटा या विष गहराई में चले जाने पर अस्थियों में विकृति हो जाती है। फिर अस्थिगतव्रण होता है। कितने ही कीटाणु अस्थियों में गल जाते इसकी अपेक्षा से ही विष का अन्तर में प्रवेश होने पर अन्तरेन्द्रियों में छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ हो जाती हैं। वातवाहिनियाँ, वातवहकेन्द्र और मस्ति तक विकृति पहुँच जाती है; तथा रोगी शक्ति रहित, विनष्टज्ञान होकर अनिच्छापूर्वक ही कष्ट से जीवित रहता है। उपदंश सूर्य का उपयोग ए मांसाश्रित और अस्थिगत व्रण पर अत्युत्तम हुआ है। इसके सेवन समय में घी का उपयोग कुछ अधिक करना चाहिये।

गुदशूक (Condyloma) विकार में गुदा के बाहर पुष्प-पल्लव के सदृश सफेद और पतली त्वचाओं की वृद्धि होती है। यह वृद्धि ए दूसरे पर अधिक-अधिक होकर फूलगोभी के सदृश गुच्छेदार बनती है। यह रोग उपदंश के विष से निर्माण होता हैं। सामान्यतः रोगी इसे अ होना कहते हैं। परन्तु अर्श के मस्से और इस शूकवृद्धि दोनों में सादृश्य कुछ भी नहीं है। संप्राप्ति और लक्षण दृष्टि से भी महदन्तर है। इ गुदशूक विकार पर उपदंशसूर्य का उत्तम उपयोग होता है।

पुराना तालुव्रण उपदंशजन्य होने पर उस पर उपदंशसूर्य का प्रयोग करने से व्रणशमन होने में सहायता मिलती है। उपदंश के योग से उत्पन्न दृष्टिमांद्य, अंधता या नेत्रव्रण, नेत्र की लाली, पक्ष्मव्रण आदि उपद्रव होने पर त्रिफला और घी के साथ उपदंशसूर्य का प्रयोग करना चाहिये। एवं त्रिफला के क्वाथ से नेत्रों को धोते रहना चाहिये। नेत्र की भांफणी के समीप उत्पन्न होने वाला जीर्ण नाड़ीव्रण(नासूर)विविध कारणों से उत्पन्न होता है। इनमें से उपदंशज व्रण का रोपण उपदंशसूर्य के सेवन से हो जाने के उदाहरण मिले हैं।

उपदंश के विष का परिणाम वातवह मण्डल; वातचक्र और वातवाहिनियों पर होकर वातप्रकोप होता है। फिर पक्षाघात या कलायखंज के समान लक्षण होते हैं। कितने की रोगियों के सर्वांग में बिल्कुल शक्तिहीनता आती है; कफप्रकोप अधिक होने पर रोगी को घबराहट और अशांति बनी रहती है, रोगी एक स्थान में पड़ा रहता है, तन्द्रा, जड़ता, विचार करने की शक्ति का ह्रास आदि लक्षण होते हैं। ऐसी परिस्थति में उपदंशसूर्य का प्रयोग सारिवादि शारकर या रक्तशोधकारिष्ट के साथ करना चाहिये।

परिवर्तित ज्वर बार-बार आता रहता है। १-२ सप्ताह तक ज्वर नहीं रहता, फिर आ जाता है। इस तरह रोगी को त्रास देता रहता है। इस ज्वर में कफ प्रधान लक्षण होने पर उपदंशसूर्य का उपयोग करना चाहिये। मात्रा अति कम देनी चाहिये।

पीतज्वर (Yellow fever) पर इस औषध का प्रयोग करना चाहिये। यह ज्वर संक्रामक है। विशेषत: बड़ी जाति के मच्छर (Aedesaegyti)के काटने पर होता है। इसमें सर्वांङ्ग में त्वचा पीले वर्ण की हो जाती है। कामला लक्षण प्रकाशित होते हैं; शीतसह ज्वर आता है; तथा मुख, नाक और आमाशय में से काले रंग का रक्त का स्राव होता है। इसकी उत्पत्ति अमेरिका के उष्णता प्रधान देशों में होती है। यह ज्वर विशेषत: भारत में नहीं होता। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना-गरम-गरम भोजन, गरम चाय, मिर्च, खटाई और नमक का त्याग करें। भोजन में थोड़ा सैंधानमक लें।

द्वितीय विधि-सोमल २॥ तोले और भेड़ का दूध २॥ सेर लें। सोमल को खरल में डालकर बारीक घोट लें। फिर थोड़ा-२ भेड़ का दूध डालते हुये खरल करते रहें। लगभग २०-२५ दिन तक घोटने पर सब दूध मिलकर रबड़ी जैसा हो जायगा। पश्चात् गुलाब के ५०० फूलों को क्रमश: मिलाते हुए खरल करना। जब गोली बनाने लायक हो जाये तब १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।(श्री.पं. लक्ष्मीनारायणजी आ.भू.)

मात्रा-२ से ४ गोली तक, दूध के साथ लें।

उपयोग-जीर्ण उपदंश के उपद्रव, संधिवात, पक्षाघात, रक्तविकार, कुष्ठ, नेत्रलाली, तालुव्रण, गुदशूक, दुष्टव्रण, विद्रधि, अन्तर्विद्रधि आदि भयंकर उपद्रवों को दूर करने में उपयोगी है।

सूचना-भोजन में मिर्च, खटाई, नमक का त्याग करें, थोड़ा सेंधानमक दें।

(१२६) उपदंशकुठार वटी

विधि-नीले थोथे का फूला, छोटी हरड़, काबुली हरड़ और सोहागे का फूला १-१ तोला और कोड़ी भस्म ४ तोले मिला, ३ दिन नींबू के रस में खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा-१ से ४ गोली, सुबह-शाम ७ दिन ठण्डे जल के साथ दें।

उपयोग-यह वटी नये और पुराने उपदंश रोग को दूर करती हैं एवं पुराने उपदंश रोग के उपद्रव-दृष्टिमांद्य, नेत्रलाली, फोड़ा-फुन्सी, संधिवात, अतिसार, संग्रहणी, मूत्र पिण्ड की विकृति, रक्तविकार आदि को भी नष्ट करती है।

कई रोगियों को गंम्भीर व्रण, नासूर या आंतों में और मुंह में फाले (Ulcers) हो जाते हैं। उनके लिए यह उपदंश कुठारवटी अधिक लाभ पहुँचाती है।

सूचना-नीलेथोथे में वमन कराने का दोष है। वह नींबू के रस के संयोग से कम हो जाता है, फिर भी किसी को उबाक हो, तो नींबू या तैल का सेवन करें। विशेष सूचना तुत्थ भस्म में देखें।

(१२७) रसकर्पूर

प्रथमविधि-शुद्धपारा, कच्ची फिटकरी, सैंधानमक और कासीस समभाग और नौसादर बीसवां हिस्सा मिलाकर घीकुंवार के रस में ६ घण्टे खरलकर डमरूयन्त्र और बालुकायन्त्र द्वारा उडा लेवें। (आ.नि.मा.)

सूचना-डमरूयन्त्र को केवल २-३ घण्टे अग्नि देकर रसकर्पूर उड़ा लेवें। फिर यन्त्र को खोल ऊपर लगे हुए रसकर्पूर को निकाल पुन: बन्दकर ३ घण्टे अग्नि देकर शेष रसकर्पूर को उड़ा लेवें। पश्चात् उस रसकर्पूर को कपड़मिट्टी लगी हुई बोतल में भर ईंट का मजबूत डाट लगाकर बालुकायन्त्र में १२ घण्टे मन्द और मध्य अग्नि देकर उड़ा लेवें। इस तरह दूसरी बार उड़ाने पर रसकर्पूर उत्तम प्रकार का बनता है। तेज अग्नि न लग जाय यह सम्हालें, अन्यथा पारद पृथक् हो जायगा।

मात्रा-१/१६ से १/४ रत्ती तक, दूसरी औषधि में मिलाकर दें।

दूसरी विधि–डाक्टरी में हाइड्रार्जिरी परक्लोराइडम् (Hydrargyri Perchloridum) नाम की औषधि आती है। उसका दूसरा नाम कोरोसिव सब्लिमेट (Corrosive Sublimate)है; वह भी एक प्रकार का रसकर्पूर ही है। बनाने की विधि निम्नानुसार है–

शुद्ध पारद २० औंस और गन्धक का तेजाब १२ औंस को एनेमल के (लोहे की सफेदी लगे) पात्र में मिलाकर चूल्हे पर चढ़ावें। थोड़ी आँच लगने पर अपने आप अग्नि लगकर संफेद धूंआ निकलने लगेगा। तेजाब जल जाने पर नीचे उतार देवें। इसे डाक्टरी में परसल्फेट ऑफ मरकरी (Persulphate of mercury) कहते हैं।

इस परसल्फेट ऑफ मरकरी २० औंस को सैंधानमक (Sodium Chloride) ३६ औंस के साथ मिलावें। फिर उसमें ब्लेक ऑक्साइड ऑफ मैंगनीज (Black Oxide of Manganese) १ औंस मिला अच्छी तरह खरलकर हरी आतशी शीशी में भर बालुकायन्त्र में रखें। पश्चात् यथाविधि १२ घण्टे अग्नि देकर उड़ा लेने से रसकर्पूर तैयार हो जाता है। इसे नीले कांच की शीशी में या नीला कागज लगाई हुई शीशी में भरकर सम्हाल पूर्वक रखें।

उपयोग–वह रसकर्पूर रक्तविकार, कुष्ठ उपदंश आदि रोगों में खाने तथा घाव को सुखाने वाले कीटाणुनाशक मलहम और घाव को धोने की औषधि में मिलाने में उपयोग में आता है। उपदंश की तो यह विशेष औषधि है।

सूचना–रसकर्पूर वाली औषध के सेवनकाल में गेहूँ का फुलका, घी, दूध, शक्कर और भात खायँ। तैल, मिर्च, खटाई, नमक आदि का त्याग करें। थोड़ा सैंधानमक मिलाना चाहें, तो गेहूँ के आटे में मिलावें।

रसकर्पूर का उपयोग बहुत कम मात्रा में करना चाहिये। मात्रा ज्यादा देने से मुंह आना, मसूड़ों में सूजन, दांतों में से रक्त गिरना, जीभ मोटी होना, श्वास में दुर्गन्ध, मुंह पर सूजन, कोष्ठ और मूत्र में जलन, थूंक में रक्त आना, उदर में तीक्ष्ण पीड़ा आदि विकार हो जाते हैं। यदि बहुत ज्यादा परिमाण में दिया जायगा, तो हृदयावरोध, होठ काले होना, शरीर पसीने से भींग जाना, पेशाब बन्द होना आदि उपद्रव उत्पन्न होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

यदि रसकर्पूर का तीक्ष्ण असर हो जाय–मुंह आ जाय या अन्य उपद्रव उत्पन्न हो जाय, तो दूध, अण्डे की सफेदी आदि पौष्टिक पदार्थ का सेवन करना चाहिये, तथा बबूल या बेर की छाल के क्वाथ में फिटकरी और नीलाथोथा मिलाकर कुल्ले करना चाहिये।

(१२८) अमीर रस

प्रथम विधि–रसकर्पूर, सिंगरफ, दाल चिकना* और सुनहरी गोटा, चारों १-१ तोला लें। रसकर्पूर, सिंगरफ और दालचिकने को कुछ कूटकर मूंग समान टुकड़े करें। गोटे में से सूत निकाल दें; फिर कतरकर सूक्ष्म-सूक्ष्म टुकड़े करें। पश्चात् लोहे के मोटे तवे पर ४ तोले सैंधानमक बिछाकर ऊपर रसकर्पूर वाले टुकड़ों को फैला दें; उनको गोटे से ढक दें, और आठ तोले सैंधानमक से चारों और किनारा इस तरह बांधें कि इस घेरे को ऊपर रखी हुई प्याली लगती रहें। फिर चीनीमिट्टी की प्याली ढक दें, तत्पश्चात् ४-८ तोले या अधिक सैंधानमक और १-२ तोले कतीरा गोंद को जल में भिगो तवा और प्याली की संधियों को दृढ़ बन्द करें। (कितने ही चिकित्सक कतीरा नहीं मिलाते) फिर यन्त्र को चूल्हे पर चढ़ा बेर की लकड़ी (पैर के अंगूठे जैसी मोटी) की १२ घण्टे तक मन्द-मन्द अग्नि देवें। पश्चात् स्वांग शीतल होने पर ऊपर की प्याली में लगे हुए अमीर रस को निकाल लेवें। कितने ही चिकित्सक प्याली रखने के समय उसके भीतर मठ्ठा (तक्र) लगा लेते हैं।

(सि.भे.म.)

वक्तव्य–अमीर रस का मूलपाठ सिद्धभेषज मणिमालाकार ने दिया है। किन्तु यह विधि सदोष होने से उसे सुधारकर पाठ दिया है। मूल पाठ में सोमल के स्थान में जरी के तार (चांदी के) मिलाने को लिखा है, उस तरह रस बन सकता है; किन्तु चांदी नीचे रह जाती है। पारद का वियोजन हो जाता है जिससे मुंह आ जाता है। सोमल मिलाने पर रस विशेष लाभप्रद बनता है।

पारद के वियोजनयुक्त रस का सेवन कराने से कदाच मुंह आ जाय तो बबूल की छाल या बेर की छाल या चमेली के पान के क्वाथ से दिन में ३-४ बार कुल्लें करावें। प्रत्येक बार २५-५० कुल्ले करावें।

दूसरी विधि–रसकर्पूर, दालचिकना, सिंगरफ १०-१० तोले, सोमल २॥ तोले और सैंधानक ५ तोले। सबको मिला बड़े उदरवाली कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भर बालुकायन्त्र में रखकर तैयार करते है। धूआँ निकले तब तक डाटा चिपका हुआ रखते हैं। फिर डाटा को दृढ़ करके ६ घण्टे मन्दाग्नि देते हैं।

---

* दालचिकना–(Hydrargy rum Ammoniatum)-रस कर्पूर (मर्क्युरिक क्लोराइड) १ औंस, लाईकर एमोनिया ४ औंस, वाष्पजल यथा प्रयोजन ले लें। पहिले रसकर्पूर को वाष्प जल में मिला मृदु अग्नि पर द्रव करें। फिर लाइकर एमोनिया मिलाकर चला लें। जो तल भाग में बैठ जाय, उसे वाष्पजल से पुनः पुनः धोयें। जब धोए हुए जल में सोरा द्रावक (Acid Nitric dil) मिश्रित नाइट्रेट ऑफ सिल्वर द्रव्य मिलाने पर कुछ भी द्रव्य तलस्थ न हो, तब औषधि शुद्ध मानी जाती है। उसे २१२ डिग्री से कम अग्नि पर सूखा लेने पर मैले सफेद रंग का दाल-चिकना बन जाता है। यह दाल चिकना मद्यार्क अथवा ईथर में द्रवीभूत नहीं होता।

यह रसायन सुन्दर सफेद बनता है। रसकर्पूर के भीतर मिले हुए गन्धक के तेजाब में से कुछ अंश पीले गंधक रूप से पृथक् हो जाता है।

सुनहरी गोटा मिलाने पर वह नीचे रह जाता है, उसका कोई विशेष गुण अमीर रस में नहीं आता। सोमल के संयोग से गुण में अति वृद्धि होती है। इस हेतु से हम सोमल मिलाते हैं।

मात्रा–आधे से १ रत्ती को मुनक्का में रख सुबह १ बार निगल जायँ। दांतों को न लगे, वह सम्हालें। ७ से १४ दिन तक सेवन करें।

उपयोग–इस रस के सेवन में उपदंश, सन्धिवात और उपदंशजनित एक दो वर्ष के भीतर उत्पन्न हुए रक्त और मांस तक पहुँचे हुए उपद्रव थोड़े ही दिनों में दूर हो जाते हैं। उपदंश के लिये अति लाभदायक औषधि है। भोजन में गेहूँ का फुलका, गाय का दूध और मिश्री के सिवा कुछ भी नहीं लेना चाहिये।

इस रस में कीटाणुनाशक गुण के अतिरिक्त उत्तेजक, कफघ्न गुण होने से यह कफप्रधान सन्निपात में प्रयुक्त होता है। जब कफ बहुत बढ़ गया हो, तब कीटाणु नष्ट करना; कफ को सुखाना; उत्पत्ति को रोकना और उत्तेजना देकर उत्तान कफ को बाहर निकालना; इन सब क्रियाओं द्वारा कफ़प्रकोप को दूर करना पड़ता है। ये कार्य इस रसायन (रसकर्पूर और मल्लमिश्रित) से सन्तोषप्रद होता है।

इन गुणों के हेतु से कफप्रकोपसह तमकश्वास के दौरे में तथा न्युमोनिया, इन्फ्लुएञ्झा और अन्य कफप्रकोपसह सन्निपात में जब ज्वर १००° लगभग हो तथा बेहोशी या व्याकुलता हो; तब इसका प्रयोग होता है। १-१ चावल रसायन मुनक्का के टुकड़े में लपेटकर निगलवा दिया जाता है। यदि वृक्कों से योग्य कार्य न होने से मुँह पर शोथ आया हो; मुँह में छाले रहते हो या ज्वर १०२° से अधिक हो; तो उस अवस्था में अमीर रस या इतर मल्लप्रधान औषधि नहीं दी जाती।

(१२९) मल्लादि वटी (फिरंग)

विधि–पीला सोमल १ तोला और सफेद कत्था ३ तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर नागरबेल के पान के रस में ३ दिन खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें। (र.यो.सा.)

मात्रा–१-१ गोली; दिन में २ बार; नागरबेल के पान के साथ दें।

उपयोग–यह वटी जीर्ण उपदंश के उपद्रव: संधिवात, पक्षाघात, गुदशूक; तालुव्रण, वातविकार, कफवृद्धि, मन्दाग्नि, कुष्ठ, गलत्कुष्ठ, रक्तविकार नाड़ीव्रण, नेत्रव्रण, दुष्टव्रण आदि को १ मास में नष्ट करती है। उपदंश जनित ५-७ वर्ष के जीर्ण उपद्रव इस औषधि से दूर होने के अनेक उदाहरण मिले हैं।

यह वटी प्रबल कीटाणुनाशक और विषघ्न है। इसका उपयोग विशेषत: फिरंगजनित उपद्रवों पर होता है। फिरंग विष रक्त में रह जाने पर मांसादि धातुओं में लीन होकर कुछ मास या वर्षों के पश्चात् रक्तविकार, फोड़े-फुन्सी, कुष्ठ, त्वचारोग, गुदशूक, तालुक्षत, पक्षाघात, धमनीकोष्ठकाठिन्य, रक्त दबाव वृद्धि और नासादि स्थानों में मस्से की उत्पत्ति इत्यादि उपद्रव उपस्थित होते हैं। इन उपद्रवों को मूलरोग मानकर उपाय करने पर सच्चा लाभ नहीं पहुँच सकता। फिरंग विष को जलाने पर ही वे निर्मूल होते हैं। इस विष को जलाने में मल्लप्रधान औषधि श्रेष्ठ मानी गई है। अष्टमूर्ति रसायन, अमीररस, मल्लसिंदूर (नं. २), उपदंशसूर्य और मल्लादि वटी आदि मल्लकल्प हैं। ये सब उत्तरोत्तर उग्र हैं। आयु, प्रकृति, ऋतु, रोगबल, उपद्रव, पथ्यापथ्य, आर्थिक स्थिति, सामयिक अनुकूलता, शारीरिक बल, व्यवसायादि का विचार करके योजना की जाती है।

रसविकृति, आमप्रकोप, कफप्रकोप, पूयप्रधान ज्वर, नेत्रव्रण, नासाव्रण, तालुव्रण आदि पर इस वटी की योजना विशेष हितावह है। कारण इस वटी में कत्था मिला हुआ है, जो उक्त विकृतियों को दूर करनें में विशेष सहायक होता है।

श्वसन संस्थान में जब अत्यधिक कफ संगृहीत हो जाता है, तब शारीरिक उत्ताप प्राय: ९६° से ९७° लगभग हो जाता है, एवं अग्निमांद्य, अरुचि, व्याकुलता, कफ थोड़ा-थोड़ा निकलते रहना, छाती में भारीपन, आलस्य, थकावट; नाड़ी अति मन्द हो जाना; मलावरोध और किसी-किसी को शोथ आ जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस पर यह वटी दूध की मलाई और मिश्री के साथ या दूध के साथ दी जाती है। जिनको दूध अनुकूल न रहता हो, तो उनको मक्खन, मिश्री या घृत अनुपान रूप से दिया जाता है। श्वासरोगान्तक वटी का पाठ देखें, वह श्वास रोग पर हितावह है।

वक्तव्य–यकृत् निर्बल हो तो अधिक घृत नहीं देना चाहिये। जो कड़वा तैल खा सके उसे पकोड़े तलकर खिलाना चाहिये। कफ को बाहर निकालने में और छाती का शोधन करने में कड़वा तैल विशेष उपयोगी है।

जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलाना चाहिये। शीतल वायु और शीतल जल का उपयोग हानिकर है।

धूम्रपान का व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये।

सूर्य का ताप, मिर्चादि गरम पदार्थ, अति उष्ण भोजन और चाय आदि का सेवन कम से कम करना चाहिये।

कफ प्रधान सन्निपात में ज्वर १०१° से अधिक न हो, नेत्रों में लाली न हो मलावरोध न हो, मूत्रशुद्धि होती हो तथा गले में [illegible] की आवाज आती रहती हो, व्याकुलता, मंद, प्रलाप, बेसुधि और श्वास ऊपर-ऊपर चलना आदि लक्षण उपस्थित हों तो उस अवस्था में [illegible] या तुलसी के पान का रस और शहद के साथ यह वटी दी जा सकती है। मुख्य औषधि संचेतनी वटी और समीरपन्नग है। तथापि इनके [illegible] में मल्लादि वटी का प्रयोग किया जाता है।

सूचना-जल गरम करके शीतल किया हुआ देवें। अच्छी तरह सुधि न आ जाय, तब तक खाने को कुछ भी नहीं देना चाहिये।

गलत्कुष्ठ होने पर प्रारम्भावस्था में रक्त के भीतर कुष्ठ-कीटाणु (Bacielus leprae) प्रवेशित होकर अपना अड्डा जमाते हैं। उनकी [illegible] बढ़ने पर उसके विष का प्रवेश मांसादि धातुओं में होता है। फिर मुखमण्डल फूला हुआ या शोथमय विकृत बन जाता है। रोगवृद्धि हो [illegible] त्वचा शुष्क बनकर सड़ने लगती है। फिर अंगुलियों के पर्व गलकर टूटने लगते हैं। उन स्थानों से दुर्गन्धमय रसस्राव होता रहता है, अति [illegible] आ जाती है; निद्रा तन्द्रा और आलस्य बने रहते हैं। इस विकार की प्रथमावस्था में पथ्य-पालन सह इस वटी का सेवन कराया जाय, तो [illegible] हो जाता है।

वक्तव्य-(१) भोजन में गेहूँ, चने मिश्रित रोटी, दूध, घी और शक्कर अति कम सैंधानमक ले। उदरशुद्धि नियमित होनी चाहिये।

(२) यदि औषध सेवन करने पर मूत्रावरोध हो जाय, रात्रि को २-४ बार लघुशंका के लिये उठना पड़े या ज्वर आ जाय अथवा मुख [illegible] पर शोथ आ जाय, तो यह दवा छोड़ देनी चाहिये। कुष्ठकुठार, आरोग्यवर्द्धिनी, चाल मोगरा तैल या अन्य औषधि देनी चाहिये।

नाड़ीव्रण,भगंदर, अन्तर्विद्रधि और दुष्टविद्रधि जो दीर्घकाल तक न भरतें हों, जिसके हेतु से ज्वर आ जाता हो, उसके बाह्योपचार के [illegible] मलाई या मक्खन (या शहद) के साथ यह नहीं दी जाती है।

(१३०) पञ्चनिम्ब चूर्ण

विधि-निम्ब पंचाङ्ग (जड़, पत्ती, फूल, फल और छाल) ६० तोले, लोह भस्म, छोटी हरड़, पुंवाड़ के बीज, चित्रकमूल, भिलावाँ, बायवि [illegible] मिश्री, आँवला, हल्दी, पीपल, कालीमिर्च, सोंठ, बावची, अमलतास का गूदा और गोखरू ये १५ औषधियाँ ४-४ तोले मिलाकर चूर्ण [illegible] फिर लोह भस्म मिलाकर भांगरे के रस और खैर की छाल तथा विजयसार के अष्टावशेष क्वाथ की १-१ भावना देकर सूखा चूर्ण बना [illegible] (शा.उ

सूचना-भिलावा नया और पक्का, टोपी निकाला हुआ मिलावें। बायविड़ङ्ग का तन्दुल निकालकर लेवें। कफ अधिक हो तो क्वाथ [illegible] पर ४-४ रत्ती कालीमिर्च का चूर्ण भी देते रहे। मलावरोध रहता हो तो छोटी हरड़ का चूर्ण २-३ माशे भोजन के बाद भी लेते रहें। [illegible] निर्बल हो तो घी का सेवन कम करावें।

रोगी के नित्यप्रति तैल मर्दन कराकर स्नान करने की सूचना करें। जल निम्ब के पत्तों को मिलाकर उबाला हुआ लेवें। अधिक गरमी में [illegible] फिरें एवं नमक, मिर्च खटाई और मिठाई का सेवन हो सके उतना कम करें। ब्रह्मचर्य का आग्रहपूर्वक पालन करें।

चाय, काफी, सिगरेट, अफीम, शराब आदि व्यसनों का त्याग करें।

मात्रा-३ से ६ माशे तक। खैर की छाल के काढ़े के साथ दें।

अनुपान-रोग बल अधिक हो और पाचनशक्ति प्रबल हो तो खैर-छाल और विजयसार के अष्टावशेष क्वाथ से दें। साथ ही यह भी स्म [illegible] रहें कि, कषाय प्रधान औषधि के पाचन में पचन शक्ति को कष्ट (श्रम) होता है, अतः रोगी के बलाबल का अवश्य विचारकर लेना चाहि [illegible] यकृत् सबल है और दाह है तो, घृत से, पाचन शक्ति मन्द है तो दूध से दें।

उपयोग-इस चूर्ण के सेवन से सब प्रकार के कुष्ठ रोगों का एक मास में शमन होता है, दूषी विष के उपद्रव रूप और पाचन क्रिय [illegible] विकृति से होने वाले कुष्ठ दूर होते हैं, एवं भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, नाड़ीव्रण, विषप्रकोप, प्रमेह, रक्तविकार, उपदंशज उपद्रव के कुष्ठ, प्र [illegible] शिरदर्द, उदर पर मेदवृद्धि और कृशता आदि रोग नष्ट होते हैं। इस चूर्ण के सेवन से रोगी सब प्रकार के रोग(पचनेन्द्रिय की विकृतिजनित [illegible] त्वचारोग) तथा जरावस्था की निर्बलता से मुक्त होकर कान्ति वाला बनता है।

कुष्ठ रोग के भीतर ही गौणकुष्ठ हैं। जिनकी गणना एलोपैथी में त्वचारोग में की है, बहुधा उनकी संप्राप्ति आमविष का नाड़ियों में संग्र [illegible] कीटाणु और सूक्ष्म उदर कृमियों के विष का रक्त में प्रवेश होने पर होती है। ऐसी अवस्था में आमविषघ्न, कीटाणुनाशक, कृमिघ्न गुणयुक्त रोग [illegible] औषध की आवश्यकता है। ये सब गुण पञ्चनिम्बचूर्ण से प्राप्त होते हैं, क्योंकि इन गुणों की प्राप्ति के लिए इस प्रयोग में भिलावा, चित्रकमू [illegible] बायविड़ङ्ग, पंवाड़बीज, बावची ये सब कृमिज विषों को जलाने और स्रोतों को खोलने में अधिकतर सहायक औषधियों की योजना की [illegible]

यह पञ्चनिम्बचूर्ण सब प्रकृति के रोगी और छोटी बड़ी आयु वालों को सब ऋतुओं में निर्भयता पूर्वक दिया जाता है। यह चूर्ण विशेषत: जीर्ण रोग में १ वर्ष तक पथ्यपालन सह दिया जाता है, जब बड़ी-बड़ी उग्र औषधियां असफल हो जाती हैं। रोग दुराग्रही बनकर दृढ़ हो जाता है, तब इस चूर्ण के सेवन से शरीर सब कुष्ठों से मुक्त होकर तेजस्वी बन जाता है।

(१३१) रस माणिक्य

विधि–बिना शोधी हुई तपकिया हरताल का चूर्ण करें। फिर अभ्रक के समान आकार के दो पतरे लें। इनके बीच में मोटे कागज जितनी मोटाई हो उतना हरताल का चूर्ण फैला दोनों पतरों को दबाकर गोबरी की निर्धूम अग्नि पर रखें। तीन-तीन मिनट पर पलटते रहें। तीन बार पलटने से माणिक के समान हरताल का रंग हो जाता है। साफ रंग होने पर अग्नि पर से उतार लेवें, ठण्डा होने पर माणिक्य रस निकाल लेवें। (आ.नि.मा.)

वक्तव्य–कई रसायन कृति से अनभिज्ञ और शास्त्रविद्, विद्वान् मानते हैं कि हरताल रसायन को अग्नि पर डालने से धूँआ निकले तो कच्चा और धूँआं न निकले तो ही पक्का। किन्तु इस कथन में कुछ भी सत्यांश नहीं है। हरताल में रहे हुए गंधक और सोमल दोनों ज्वालाग्राही हैं। अग्नि स्पर्श होने पर वे धूँआं देंगे। धूँआ न निकले तो समझना चाहिये कि लाभप्रद द्रव्य उड़ गया है।

मात्रा–१/४ से १/२ रत्ती। **कफज ज्वर में नागरबेल के पान के साथ तथा कुष्ठ और रक्तविकार आदि में गोघृत और शहद के साथ दें। और खैर की छाल का क्वाथ पिलावें।**

उपयोग–इस रस के सेवन से वातश्लेष्म ज्वर, विषमज्वर, सन्निपात, श्वास, कास, हृदयावरोध, **फूटा और गला हुआ कुष्ठ**, वातरक्त, **भगन्दर**, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, विचर्चिका, नाक और मुंह के रोग, भयंकर क्षत (घाव) और पुण्डरीक कुष्ठ, चर्मदल कुष्ठ, विस्फोटक और मण्डल कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

यह रस बालक, युवा, वृद्ध, सुकुमार स्त्रियों और प्रसूता को कीटाणु प्रकोप और आमविषज या वातकफज व्याधि पर दिया जाता है। हरताल के भीतर सोमल और गन्धक स्वाभाविक रहा है। इसकी भस्म बनाने पर गन्धक सब उड़ जाता है और सोमल का भी कुछ अंश निकल जाता है। रस माणिक्य बनाने पर गन्धक परिपक्व होकर रूपान्तरित हो जाता है और सोमल भी रह जाता है। मात्र १% सोमल उड़ जाता है। इस रसायन में सोमल और गन्धक का इस प्रकार का संयोजन हो जाता है कि, यह रक्त में शीघ्र मिलकर अपना प्रभाव तत्काल दर्शाता है।

वर्षा में भीगने या शीत लग जाने पर स्वरयन्त्र, श्वासनलिका और फुप्फुसों पर आघात पहुँचता है। फिर मन्द-मन्द ज्वर सह प्रतिश्याय उपस्थित होता है। नासिका से जल टपकता है, बार-बार छीकें आती हैं, आवाज बैठ जाती है। **ऐसी अवस्था में १-१ रत्ती हरताल रसायन शहद के साथ सुबह और रात्रि को देने से दूसरे ही दिन में प्रतिश्याय दूर हो जाता है।**

सूचना–सूर्य के ताप पर आघात होकर प्रतिश्याय होने पर इस रसायन का उपयोग न किया जाय तो अच्छा। **जिन रोगियों को वृक्कप्रदाह हो, उनको पारद, सोमल और ताल प्रधान औषधि नहीं दी जाती।**

शीत लग जाने पर छाती जकड़ जाती है, उसका तुरन्त उपचार न करने पर फुप्फुसों में कफोत्पत्ति होकर ज्वर आ जाता है, घबराहट, फुप्फसों का खिंचाव, शिर में दर्द, मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इसकी प्रारंभावस्था में यदि हरताल रसायन १-१ रत्ती, शहद-पीपल के साथ प्रात:काल और रात्रि को दिया जाय, तो आगे होने वाले सब लक्षण रुक जाते हैं। ज्वरादि उत्पन्न हो गया हो, तो मलावरोध को दूर करें। इसी तरह पञ्चसम चूर्ण आदि औषधियां शीतभंजी अथवा त्रिभुवनकीर्ति रस के समान ज्वरघ्न औषध या बच आदि वामक औषधि का सेवन कराने के साथ १-१ रत्ती हरताल रसायन मिलाने पर सत्वर लाभ पहुँचता है।

अनेक बार प्रतिश्याय होकर वातश्लैष्मिक ज्वर (इन्फ्लुएञ्जा) की सम्प्राप्ति होती है। इस ज्वर की प्रथमावस्था में इस रसायन का उपयोग करने पर कीटाणु नष्ट होते हैं और कफोत्पत्ति बन्द होती है। फिर ज्वर सरलता से शांत हो जाता है।

कफप्रधान प्रकृति बन जाने पर यदि दूषित कफ फुप्फुसों में संगृहीत होता है, तो उसमें से विष का शोषण रक्त में हो जाता है। रक्त में विषवृद्धि होने पर श्वास का आक्षेप होता है और अन्य समय में थोड़ा-सा परिश्रम होने पर श्वासावरोध और घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। रोगी गले में आये हुए कफ को भी बाहर निकालने में असमर्थ हो जाता है। किसी-किसी को ज्वर भी आ जाता है; ऐसे रोगी को १-१ रत्ती हरताल रसायन शहद के साथ या वासा स्वरस और शक्कर के साथ दिन में २ बार, १५ दिन तक देते रहने से लाभ पहुँच जाता है। यदि पूरा लाभ न हुआ तो १५ दिन छोड़कर पुन: हरताल रसायन दे सकते हैं।

सूचना–(१) यदि रोगी को धूम्रपान का व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये एवं गोमूत्रक्षार चूर्ण का सेवन भी कराते रहना चाहिये।

(२) यह अग्निपर डालने पर धूँआ देता है, उससे भ्रम में न पड़े, यह हरताल के वर्ण का रूपान्तर और कुछ पचन हुआ है, यु दृष्टि से अति सफल औषधि है।

कफप्रधान ज्वर होने पर छाती में कफ का अति संग्रह, कण्ठ में से कफ की आवाज निकलना, ज्वर १००° से १०२° तक रहना, में मीठापन और चिकनापन आलस्य, प्रतिश्याय, नाड़ियों का खिंचाव, बार-बार लघुशंका का होना, मूत्र का वर्ण श्वेत होना, अन्त्र में भारी हाथ-पैर टूटना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस ज्वर पर रस माणिक्य का उपयोग अदरक के रस और शहद के साथ होता है। इसके से कफ सरलता से बाहर निकलता है, आम का पचन होता है। उदर में अफारा आया हो, तो वह भी दूर होता है और फिर ज्वर शमन जाता है।

फुप्फुस सन्निपात (Pneumonia)-रोग होने पर फुप्फुस के भीतर से न्यूमोकोकाई कीटाणु कफ के साथ बाहर निकलते रहते हैं। रोग में कितने ही रोगी अधिक अशक्त हो जाते हैं। उनके फुप्फुस सरलतापूर्वक कफ को बाहर नहीं फेंक सकते एवं कफ की नयी-नयी उत्प होती रहती है। ऐसे रोगियों को रोगनाशक मुख्य औषधि के साथ इस रसायन का सेवन कराते रहने पर कफोत्पति कम होती है, घबराहट होती है और कफ सरलता से बाहर निकलने लगता है।

सूचना-यदि रक्तमय कफ निकल रहा हो, तो यह रसायन नहीं देना चाहिये। परिवर्तित ज्वर (Relapsing fever) विशेषतः नि को और दूषित अन्न का सेवन करने वालों को होता है। दुष्काल पीड़ित प्रदेशों में इस ज्वर की उत्पत्ति अधिक होती है। इस ज्वर से पीड़ि को शुद्ध अन्न देने के साथ इस रसायन का सेवन कराया जाय, तो थोड़े ही दिनों में रोग निवृत्त हो जाता है।

छोटे बालकों को श्वासप्रणालिका प्रदाह (डब्बा रोग) होने पर फुप्फुसों में कफ संग्रह हो जाता है। इस अवस्था में पहले एक वमन अ एक दस्त लाने वाली औषध डब्बानाशक गुटिका दी जाती है। इसके पश्चात् भी फुप्फुसों में बल न आया हो और उदर में खड्डा पड़ता तब हरताल रसायन शहद के साथ मिलाकर दिया जाता है। यदि इसके साथ अडूसे का रस भी मिलाया जाय तो सत्वर लाभ पहुँचता

वातरक्त का विकार प्रायः चिरकारी और दीर्घकाल स्थायी होता है। यह रोग हाथ या पैरों के अंगुष्ठ से प्रारम्भ होता है। अंगुष्ठ सूज है और उसमें वेदना होती है। फिर कुछ समय में ऊपर बढ़कर संधिस्थानों को पकड़ता है। उस समय त्वचा मलीन हो जाती है तथा त वेदना; सारे शरीर में नाड़ियाँ खिंचना, कम्प, जकड़ाहट, उस स्थान में स्पर्श का बोध न होना और शीतल वायु असह्य भासना इत्यादि लक्ष प्रकाशित होते हैं। किसी-किसी को सारे शरीर में शुष्क कण्डू, फोड़े-फुंसियां या ब्यूची आदि त्वचा रोग भी हो जाते हैं। इस विकार पर र शोधक क्वाथ के साथ पथ्यपालन सह रस माणिक्य देते रहने से २-३ मास में रोग दूर हो जाता है।

श्वेतकुष्ठपर लेप करने के लिये १ भाग हरताल रसायन और दो भाग बावची का चूर्ण मिला गोमूत्र में खरलकर वर्ति बनावें। फिर गोमूत्र में घिसकर लेप करते रहें। २-३ दिन में वहां पर फाले हो जाते हैं। पश्चात् औषध का लेप बन्द करें और वहां पर मक्खन लगाते र फाले मिटने पर पुनः लेप करें। इस तरह ३-४ बार करने पर सफेद दाग निर्मूल हो जाते हैं।

सूचना-कुष्ठ और रक्तविकार में रोगी को नमक रहित भोजन (दूध भात) देने से सत्वर लाभ होता है।

(१३२) मंजिष्ठादि तालसिंदूर

विधि-तालसिंदूर ४ तोले और बृहन्मंजिष्ठादि क्वाथ का चूर्ण ४ तोले मिलावें। पश्चात् बृहन्मंजिष्ठादि चूर्ण ६-६ तोले को अष्टगुण जल मिला अष्टमांश क्वाथकर ३ भावना देकर १/४-१/४ रत्ती की गोलियां बनावें। (आ.नि.मा.)

मात्रा-१ से २ गोली। दिन में ३ बार। जल के साथ देवें।

उपयोग-यह रस कुष्ठ, उपदंश, रक्तविकार और त्वचा के रोगों को दूर करता है। यह उपदंश के जीर्णविकार रूप कुष्ठ और वात-कफ प्रधान कुष्ठ में थोड़े ही दिनों में लाभ पहुँचाता है। महाकुष्ठ के पहले कईयों को शरीर के किसी भी भाग में वातनाड़ियों के भीतर शून्यता आ जाती है, उस अवस्था में यह रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है। विशेष गुण तालसिंदूर में लिखे हैं।

तालसिंदूर में बृहन्मंजिष्ठादि क्वाथ मिल जाने और उसकी भावना लग जाने के हेतु से यह रस रक्त आदि धातुओं को शोधन करने में बहुत अच्छा कार्य करता है। जीर्ण फिरंग के विष और उपद्रवों को दूर करने में अति उपयोगी है। इसका सेवन वात, पित्त, कफ सब प्रकृति वालों को एवं बालक, युवा, प्रसूता आदि को निर्भय रूप से करा सकते हैं। ग्रीष्म ऋतु और पित्त-प्रधान प्रकृति वालों को पूर्ण पथ्यपालन के साथ मंजिष्ठादि तालसिंदूर तथा साथ में प्रवालपिष्टी मिलाकर देवें एवं एक-एक सप्ताह के सेवन के पश्चात् ४-४ दिन औषधि बन्द रखें। रक्तशोधन में सहायक चन्द्रकला रस या शीतल पेय आदि का सेवन करावें।

(१३३) सूतशेखर रस

विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला, शुद्ध बच्छनाभ, सुवर्ण भस्म, ताम्रभस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, धतूरे के शुद्ध बीज, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, इलायची, बेलगिरी, शंखभस्म, कचूर इन १७ औषधियों को समभाग मिला भांगरे के रस में १२ घण्टे घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियां बनावें। (यो. र.)

सूचना–भांगरे के रस को निकाल कुछ समय तक स्थिर रहने देवें। जिससे स्थूल अंश तल में बैठ जायगा। फिर अच्छी तरह रुई की मोटी तह में छानकर काम में लें अन्यथा वनस्पति का अंश रस में मिलकर वजन अधिक बढ़ जायगा।

वृद्ध परम्परा अनुसार सूतशेखर की घोटाई २१ दिन तक कराने का रिवाज है। अधिक खरल होने से यह रसायन आशु फलप्रद बनता है। कृष्णगोपाल औषधालय की कल्याण रसायनशाला में इसी तरह विधिपूर्वक २१ दिन तक खरल कराया जाता है।

सुवर्ण के स्थान पर सुवर्णमाक्षिक भस्म मिलाकर सूतशेखर बनाने पर पित्त शमन और मस्तिष्कशूल आदि रोगों पर अच्छा लाभ पहुँचता है। उसका भी हमने अनुभव किया है।

मात्रा–१ से २ गोली दिन में २ से ३ बार दूध मिश्री, घी और शहद अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

अम्लपित्त में सूतशेखर, अपामार्गक्षार, लोटिया सज्जी (सोडा बाईकार्ब) और गुलकन्द के साथ दिन में ३ बार देवें। अथवा प्रवालपिष्टी, अमृतासत्व और द्राक्षावलेह के साथ मिलाकर प्रातः सायं देना चाहिये।

उपयोग–इस रस के सेवन से अम्लपित्त, वमन, शूल, गुल्म, खांसी, संग्रहणी, दाह, त्रिदोषज अतिसार, श्वास, मन्दाग्नि, हिचकी, उदावर्त, ज्वर, क्षय आदि रोग ४० दिन में मिटते हैं।

सूतशेखर पित्त की अम्लता और तीक्ष्णता का शमन करता है एवं वातप्रकोप को भी नष्ट करता है; जिससे वातपित्तात्मक विकारों को दूर करने में यह अत्यन्त हितकर है। यह रसायन आमाशय और पित्ताशय में पित्तप्रकोप का शमन करके पित्तोत्पत्ति को नियमित बनाता है, जिससे अम्लपित्त, खट्टी वमन, पित्तवृद्धि से उत्पन्न होने वाला कोष्ठस्थ शूल, हिक्का, उदावर्त, पित्तज शीर्षशूल, दाह, घबराहट, चक्कर आना, निद्रानाश, पित्तज उन्माद, नाक में से होने वाला रक्तस्राव, मुंह में छाले होना शीतपित्त आदि रोग नष्ट होते हैं। एवं यह पित्तशामक, हृद्य और संग्राह्य होने से मधुरा, सूतिका रोग, क्षय की प्रथमा और द्वितीयावस्था, पित्तातिसार, रक्तातिसार, ज्वरातिसार, नया पित्तज ग्रहणी रोग आदि में सेन्द्रिय विष को नष्ट करके दस्त को बाँधता है, दाह को कम करता है, और ज्वर का शमन करता है। वातपित्तात्मक सूखी खांसी, जो घण्टों तक आती रहती है; जिसमें कफ नहीं निकलता, जो सोने के समय अधिक त्रास पहुँचाती है, उसे और पित्तप्रधान श्वासरोग को भी यह दूर करता है, पित्ताशय कमजोर हो जाने से पित्तोत्पत्ति कम होती है। उस हेतु से अरुचि, मन्दाग्नि, निर्बलता आदि रहते हों; तो वह भी इस रसायन के सेवन से नियमित होती हैं।

समीरपन्नग, पञ्चसूत और मल्लसिन्दूर तीनों सिन्दूर कल्प की औषधियाँ उत्तेजक हैं। कज्जली कल्प में से महावातविध्वंसन, एकाँगवीर, स्मृतिसागर और सूतशेखर चारों शामक हैं। महावातविध्वंसन का शामक कार्य वातवाहिनियां और वातवह मण्डल पर होता है। एकांगवीर वातवाहिनियों और मांस संस्थान के क्षोभ विकार में लाभदायक है। स्मृतिसागर, कफ भूयिष्ठ पक्षाघात, आक्षेपक, अपतानक आदि वातप्रकोप का शमन करता है; तथा सूतशेखर पित्त और वातपित्तात्मक व्याधियों में विशेषतः मध्यम कोष्ठ के भीतर पचनक्रिया करने वाले अवयव समूह पर शामक असर पहुँचाता है। इस शामक शब्द का तात्पर्यार्थ अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

यह औषध अफीम के समान तीव्रशामक नहीं है; इसलिये इसके सेवन के पश्चात् प्रतिक्रिया भी नहीं होती। अफीम तीव्रशामक होने से सेवन करने पर स्वल्प समय में शामक गुण प्रदर्शित करती है, और वेदना का शमन करती है परन्तु वेदना जितनी जल्दी कम होती है, उतनी ही जल्दी पुनः जागृत हो जाती है, जिससे रोगी को पुनः संताप होने लगता है। इतना ही नहीं, क्वचित् वेदना अधिक तीव्र हो जाने का भी अनुभव में आया है। ऐसी शामक औषध का परिणाम वातवाहिनियों की संवेदना शक्ति को कम करने के लिये होता है। रोग के मूल कारण या वेदना के मूल का नाश इससे नहीं होता। किंचित् कालपर्यन्त संवेदना का ह्रास हो जाने से उस स्थान की पीड़ा का रोगी को बोध नहीं होता। शामक औषध में जितनी अधिक तीव्रता हो प्रतिक्रिया भी उतनी तीव्र होती है, रबड़ की गेंद जितने बल से पटको उतने ही बल से वह उछलती है। उस नियमानुसार तीव्र शामक औषध की तीव्र प्रतिफलित क्रिया होती है।

परन्तु सूतशेखर आदि शामक औषधियों की शामकता इस तरह की है कि, इसके योग से वेदना के मूल कारण रूप जो विकार है वही दूर होता है, और वेदना का निवारण होता है। उदाहरणार्थ सूतशेखर अम्लपित्त में शामक है। इसमें उदरपीड़ा और उदर में दर्द होकर वांति के साथ अम्लपित्त बढ़ता है, यह लक्षण बहुधा मुख्य होता है। इस विकार में उदर में दर्द यह लक्षण वात और पित्त संयोग से होता है। इस स्थान पर अनेक भिन्न-भिन्न प्रकार की योजना शामक और संशोधक रूप से की जाती है। इनमें तीव्र शामक या केवल

पित्त की अम्लता कम करने वाले स्निग्ध द्रव्य आदि का परिणाम केवल काम चलाऊ होता है। यदि यथोचित सच्चा शुद्ध प्रयोग करना हो तो दोष प्रत्यनीय चिकित्सा करना चाहिये। वात और पित्त ये दो आमाशय में बढ़ने पर अम्लता और वेदना ये दो प्रमुख लक्षण उपस्थित होते हैं। ये ही दोष पक्वाशय में बढ़ने पर लक्षण पृथक् हो जाते हैं। वेदना तो होगी ही, परन्तु अम्लता के स्थान में अब्धातु की वृद्धि होगी, अतिसार हो जायेगा, अथवा स्थूल वायु वृद्धि होकर आध्मान हो जायेगा। यहाँ पर पाचक पित्त और समान वायु का कार्य क्षेत्र होने से उस दुष्टि उत्पन्न होती है, तथा पाचक पित्त और समान वायु (धातुरूप जो हैं वे) अपने साम्य को स्थिर रखने के लिये प्रयत्न करते हैं। विकार को निर्दलन करने की चेष्टा (लड़ाई) करने पर उस स्थान पर युद्ध के आविष्करण होने पर वे लक्षण उपस्थित होते हैं। पाचक पित्त में अम्लता बढ़ना, यह पित्तविकार का लक्षण है, और अन्न ग्रहण कार्य विकृत होना यह समान वायु का दोष लक्षण है। इस दुष्टावस्था को दूर करने के लिये जीवनीय शक्ति का प्रयत्न चालू रहता है। इस हेतु से अम्लता और वेदना उत्पन्न होती है। सूतशेखर के द्रव्य समूहों का परिणाम पित्त की अम्लता और समान वायु दोनों पर होता है, जो औषधि आमशयस्थ पित्तवृद्धि पर उपयुक्त होती है, वहीं औषध पक्वाशयगत वात पित्तवृद्धि पर भी शामकता दर्शाती है। इन स्थानों में मुख्य धातुओं की साम्यावस्था स्थापित्त करना यह सूतशेखर का विशिष्ट कार्य है। इससे वातवाहिनियाँ बधिर नहीं होती, वातवाहिनियों में वातवहन कार्य व्यवस्थित होता है। जिस तरह लवण के योग से पित्तस्राव की अम्लता नष्ट होकर मधुरता आ जाती है, उस तरह इस औषधि से रूपान्तर न होकर मूल पित्त धातु व्यवस्थित होती है। फिर अम्लपित्त में अधिक बढ़ी हुई अम्लता स्वयमेव शान्त हो जाती है।

बढ़े हुए दोषों की चिकित्सा करने में जो औषधि क्षणिक शामक न हो, जिसका प्रयोग दोषों के वृद्धि-ह्रास रूप वैषम्य (जिस तरह की विषमता हो उस मूल विकृति) का शमन करने वाला हो, उससे चिकित्सा करनी चाहिये। दोष का शमन अर्थात् किसी एक स्थान में उत्पन्न विकृत द्रव्य का शमन नहीं है, एवं विकृति हुए अवयवों का शमन भी नहीं है, परन्तु जिसके योग से अवयवों में विकृति होती है, और विकृत द्रव्य उत्पन्न हो जाता है, जो सम स्थिति में रहने पर देह का संधारण करते हैं, तथा जिनमें वैषम्य होने पर जो दोष रूप कहलाते हैं, उन मूल धातुओं के वैषम्य नष्टकर धातुओं को मूल स्थिति में प्रस्थापित करना, वह सच्चा दोषशमन है। यह कार्य अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु पर्यन्त होता है। अम्लपित्त में वेदना और अम्लता का इतना गहरा सम्बन्ध होने से ऊपर-ऊपर से कार्य करने वाली तीव्रशामक औषधि से सूतशेखर की समानता नहीं हो सकती। सूतशेखर से मूल धातुओं के वैषम्य का नाश होकर धातु साम्य प्रस्थापित होता है। इस तरह यह मूल ग्राही चिकित्सा सूतशेखर से साध्य होती है। यद्यपि सूतशेखर से कार्य होने में कुछ विलम्ब लगता है, परन्तु कार्य होने लगता है। फिर प्रतिफलित क्रिया अधिक सबल नहीं होती। इस हेतु से इस औषधि से अधिक विपरीत परिणाम की प्रतीति नहीं होती।

सूतशेखर शामक होने से हृद्य भी है। सूतशेखर का परिणाम वातवाहिनियाँ और रक्तवाहिनियाँ, दोनों पर शामक होता है। रक्तवाहिनियों का कुछ आकुंचन होता है। इस हेतु से हृदय की जवाबदारी कुछ कम होकर उसे विश्रान्ति मिलती है। इस तरह यह हृद्य है। इससे कुछ अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। किसी भी प्रकार के सान्निपातिक, संक्रामक या सेन्द्रिय विषजन्य ज्वर में हृदय की क्रिया अधिक वेगपूर्वक होने लगती है। इसका कारण रक्त में प्रवेशित सेन्द्रिय विष या कीटाणुओं को नष्ट करने या इनका प्रतिरोध करने के लिये रुधिराभिसरण क्रिया अधिक बल से होती है। इस हेतु से हृदय को अधिक काम करना पड़ता है। हृदय और नाड़ी, दोनों बलपूर्वक अधिक कार्य और अधिक स्पन्दन करते हैं। फिर अधिक व्यापार के हेतु से आगे-आगे हृदय को थकावट आती है, रोगी भी क्लांत होता है। फिर आगे की स्थिति शक्तिपात की है। बुद्धिमानों को चाहिये कि, इस अवस्था की प्राप्ति होने से पहिले की हृदय को सम्हाल लें। यह कार्य उत्तेजक औषधि से नहीं होता। उत्तेजक औषधि देने पर हृदय को उत्तेजना मिलने से हृदय क्रिया अधिक वेग से होने लगती है परिणाम में हृदय जल्दी थक जाता है फिर शक्तिपातावस्था की प्राप्ति होती है। हृदय के कार्य में होने वाली यह अवस्था वातपित्तात्मक है। ऐसे समय पर हृदय को उत्तेजक औषधि नहीं देनी चाहिये। यह एक प्रकार की हृदय क्रिया ही है। सूतशेखर के सदृश औषधि से हृदय की क्रिया कम हो जाने से कुछ अंश में विश्रान्ति मिलती है, और वह सबल बनता है। इस दृष्टि से हृद्य औषधियों में सूतशेखर अत्युत्तम औषधि है।*

सान्निपातिक ज्वरों में विशेषत: आन्त्रिक सन्निपात में सूतशेखर का महत्वकारी उपयोग होता है। वह यह है कि, इस रोग के निमित्त कारणरूप कीटाणुओं का प्रतिकार होता है। रक्त में कीटाणुजन्य विष से और दोष प्रकोप से रक्ताभिसरण क्रिया वेगवती होती है। इस हेतु से सान्निपातिक ज्वरों पर सूतशेखर के शामक गुण का उपयोग होता है।

जब आंत्रिक सन्निपात-मधुरा में पित्तप्रकोप की प्रधानता हो तब इसका उपयोग होता है। निद्रानाश, अति पीला जलता हुआ पतला दस्त, तृषा, चक्कर आना, शीर्षशूल, प्रलाप आदि लक्षण होने पर सूतशेखर, प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व मिलाकर दिये जाते हैं। इस तरह रक्तपित्त के

---

* विषघ्न और शामक गुण के हेतु से रक्तदबाव वृद्धि (हाईब्लड प्रेशर) के रोगियों को सूतशेखर ज्वर शमनार्थ और रक्तदबाव ह्रासार्थ निर्भयतापूर्वक दिया जाता है।

लक्षण उपस्थित हों, रक्तस्राव होने लगे, तो कामदुधा और रक्तकमल के फूलों के अवलेह के साथ सूतशेखर दिया जाता है।

यदि आन्त्रिक ज्वर में अधिक दाह और शुष्ककास हो, शौचशुद्धि न होती हो, और पेशाब में अधिक पीलापन या लाली हो तो सारिवा, नागरमोथा कुटकी, चिरायता और धमासा ३-३ माशा मिला क्वाथकर फिर शक्कर मिलाकर सुबह-शाम देते रहने से ज्वर विष को दूर करने में सहायता मिल जाती है।

सूतशेखर का कार्यसहस्रार और वातवाहिनियों पर शामक होता है। इनमें भी हृदय, फुफ्फुस, आमाशय और अन्त्र पर अधिकार रखने वाली वातवाहिनियों पर विशेष कार्य होता है।

सूतशेखर देने योग्य वातवाहिनियां और वातनाड़ी केन्द्र विकृति के रोगी के मस्तिष्क की स्थिति अति विलक्षण होती है। यह उन्माद रोगी के सदृश भ्रम पीड़ित और जड़-सा होता है। कुछ विलक्षण, असम्बद्ध और अस्पष्ट बोलता है। ऐसे रोगी के प्रलाप में एक विशेष विलक्षणता, यह है कि, उसे सचेत करने पर यह सुधि में आ जाता है, और नेत्र बन्द होने, तन्द्रा आने या निद्रा के लक्षण प्रतीत होने पर बड़-बड़ करने लग जाता है। वातविध्वंसन देने योग्य रोगी का प्रलाप सर्व अवस्था में सम रहता है, रोगी को बिल्कुल सुधि नहीं रहती, बेसुधि में निरन्तर बकवाद करता रहता है। कभी-कभी रोगी स्वच्छन्द, क्रुद्ध होकर मारना, काटना, जोर से चिल्लाना, रोना, भागना आदि कार्य करने लगता है। यह अवस्था केवल वातवृद्धि से होती है। इस पर रोगी को महावातविध्वंसन देना चाहिये। सूतशेखर से कार्य नहीं होता।

निद्रा में बोलते रहना, करवट लेकर शयन करने पर प्रलाप, अर्द्धावभेदक, नेत्र में दर्द आदि लक्षणों के साथ आधी तन्द्रा होने पर सूतशेखर अप्रतिम औषधि है। (Side pain (अर्धशूल) side way sleep।

भ्रम (चक्कर) रोग होने पर भूमण्डल फिरने का भास होता है, अथवा कुम्हार चाक को जैसे घुमाता है, या कांटे में डालकर वस्तु तोलने के समय जैसे दण्ड ऊपर नीचे होता रहता है, उस तरह रोगी को भ्रमण या गति का भास होता हो उस पर सूतशेखर अति उत्तम कार्य करता है। यह भ्रमणावस्था कभी-कभी इतनी बढ़ जाती है कि, शय्या पर पड़े रहने पर भी अपने को कोई फेंक देता है या गोल फिरा रहा है, या बाँध रहा है, ऐसा भ्रम हो जाता है। **इस अवस्था पर सूतशेखर अमृत सदृश हितकारक औषधि है।**

कोई भी कार्य प्रारम्भ करने, पुस्तक पढ़ने और दूसरे के साथ वार्तालाप करने पर मस्तिष्क की थकावट आजाना, शिर में बार-बार चक्कर आना यह इतने तक चलते-चलते समतोलपने का भंग होकर एक और गिर जायेंगे क्या, ऐसा लगना। यहाँ पर समतोलपना चला जायेगा, ऐसा भासता है, परन्तु नष्ट नहीं होता और रोगी गिर नहीं जाता। **यदि समतोलपना नष्ट होकर बेहोशी आजाती है, तो स्मृतिसागर देना चाहिए, सूतशेखर से पूर्ण लाभ नहीं होता।** समतोलना नष्ट होने का भासना या भ्रमणावस्था की वृद्धि हो, नेत्र के समक्ष अंधकार छा जाता हो, सर्वत्र अंधकार फैल जाता हो, रोगी को ऐसा भास होता हो कि, मैं गाढ़े अन्धेरे में किसी कोने में पड़ा हूँ। यह स्थिति निमिषमात्र रहती है, फिर नेत्र के समीप का अन्धकार कम हो जाता है, और रोगी पूर्ण शुद्धि पर आता है। इस पर सूतशेखर का उपयोग होता है। **स्मृतिसागर के योग्य रोगी को पहले चक्कर आना, नेत्र के पास अन्धकार छा जाना, फिर पूर्ण होश हो जाना आदि लक्षण होते हैं। यह दोनों के कार्य में अन्तर है।**

आक्षेपक वात में झटके अधिक आने पर (रक्त की प्रतिक्रिया अत्यम्ल होने पर) सूतशेखर उपयोगी होता है। इस रसायन से झटके बन्द होते हैं। केवल ये वातपित्तात्मक होने चाहिये। **छोटे बच्चे के बालग्रह में आनेवाले झटके में सूतशेखर का उपयोग अधिक होने का अनुभव में नहीं आया।** परन्तु बड़े मनुष्य विशेषत: स्त्रियों को होने वाले उन्माद के सौम्य झटके या हिस्टीरिया के झटके सूतशेखर से कम होने के उदाहरण मिले हैं। उन्माद के वेग को कम करना और जिस दोष से या दोष दूष्य संयोग से उन्माद रोग उत्पन्न हुआ हो, उसका भी शमन करना, ये दोनों कार्य(वातपित्तात्मक दोष का निवारण) सूतशेखर के योग से होते हैं।

परन्तु संन्यास-रक्तजमूर्च्छा में भी झटके आते हैं, किन्तु उन्माद और संन्यास, दोनों के निदान सम्प्राप्ति और लक्षणों में महदन्तर है। रक्तज मूर्च्छा में मस्तिष्क में भीतर सहस्रार या उसके समीप रक्त का संचय हो जाता है। उस पर मस्तिष्क रक्तसंचय कम करने वाली रक्तशामक, विरेचक ७ र शीतल औषधि देनी चाहिये। चिकित्सा भी इस तत्व के अनुसार करनी चाहिये। सूतशेखर से यह कार्य कहीं हुआ हो, ऐसा उदाहरण नहीं मिला। **उन्माद में मनोवृत्ति के विभ्रम का कारण वातवाहिनियों का क्षोभ है। उस पर क्षोभनाशक और वातशामक औषधि देनी चाहिये। सूतशेखर में ये दोनों गुण अवस्थित है।**

कितनी ही स्त्रियों को गर्भपात के पश्चात् या कष्टार्तव में उन्माद के सदृश झटके आते हैं, रजस्राव होने में पीड़ा होती है; गर्भाशय संकुचित होने से या गर्भकोष्ठ में से गये हुए रक्त के अति बड़े-बड़े टुकड़े गिरने से वेदना होती है; तथा बीजकोषों के भीतर से शूल निकलता है। इस हेतु से रुग्णा अतिशय क्लान्त और अस्वस्थ हो जाती है। यह अस्वस्थता भी सब समय सर्वत्र एक समान नहीं होती। कुछ काल अस्वस्थता अधिक और कुछ समय कम हो जाती है, अर्थात् अस्वास्थ्य और वेदना के दौरे आते रहते हैं। चक्कर आना, छाती बांध देने के समान घबराहट, व्याकुलता, बार-बार थोड़ी-थोड़ी वमन होने में अतिशय त्रास, वमन होने पर उदर में ऐंठन और वेदना होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

इस पर सूतशेखर लाभ पहुँचाता है। इस तरह अन्य कहीं भी कारणों से वात के आक्षेप आते हों, और रोगी पूर्णांश में बेहोश न हो, तो सूतशे
देना चाहिये।

शिरदर्द, यह लक्षण सामान्य जुकाम से लेकर सहस्रार के आवरण के शोथ पर्यन्त विविध छोटे-मोटे रोगों में प्रतीत होता है। सामा
जनसमूह की प्रवृत्ति शिरदर्द होने पर सूतशेखर लेने की बढ़ती जा रही है। यदि जुकाम से शिरदर्द हो, तो सूतशेखर के सदृश बलवान औ
न देकर दूसरी सौम्य औषधि या बाह्योपचार से दर्द को शमन करना हितकारक माना जाता है। [redacted]
होने से शिरदर्द होता हो, तो भी उस स्थान पर सूतशेखर का कुछ भी विशेष उपयोग नहीं होता। इन दोनों स्थानों पर सूतशेखर का सदुप
नहीं होता।

पित्तप्रकोप से उत्पन्न शिरदर्द पर सूतशेखर का विशेष उपयोग होता है। पित्तदोष का अधिक संचय होने पर कण्ठ में जलन, वमन, वा
होने पर शिरदर्द कम हो जाना आदि लक्षण होने पर सूतशेखर का अच्छा उपयोग होता है। यद्यपि वृद्ध पित्त या पित्त की अम्लता की
होने पर उसे रूपान्तरित करा स्वादुता उत्पन्न कराने का धर्म सूतशेखर में नहीं है, तथापि सूतशेखर के योग से पित्तस्राव अधिक होने की
उदर में संचित होने की प्रवृत्ति कम हो जाती है।

कितने ही मनुष्यों में शिरदर्द की व्यथा आनुवांशिक होती है। इसमें पित्त प्रकोप या संचय के लक्षण स्पष्ट प्रतीत नहीं होते। कुछ विकृ
हुई या किसी स्थान पर दोषसंचय हुआ कि, तत्काल शिरदर्द होने लग जाता है। इस वंश परम्परागत शिरदर्द विकार पर सूतशेखर का अ
उपयोग होने के उदाहरण मिले हैं।

वातज शीर्षशूल में वातप्रकोप कारण होता है। वातप्रकोप से वेदना अति होती है, रोगी अति व्याकुल हो जाता है। इसमें शिर के भी
बाहर से कोई कील गाढ़ता है क्या, ऐसी वेदना सारे मस्तिष्क में होती है। यह वेदना कभी-कभी इतनी असह्य हो जाती है कि, रोगी मस्त
को पीटने लगता है और बड़े जोर से चिल्लाने या रोने लगता है। यदि क्वचित् वान्ति हो जाय, तो तत्काल रोगी को आराम हो जाता है। वात
शीर्षशूल में वान्ति बहुधा नहीं होती और जल्दी शांति भी नहीं होती। इस पर भी सूतशेखर का उत्तम उपयोग होता है।

भ्रम, चक्कर, प्रलाप, असम्बद्ध प्रलाप, मानसिक भ्रांति और उन्माद के सदृश स्थिति होना, कोई भी बात मन में आई कि उसका ध्या
होता रहता है, उसका बार-बार विचार आकर उसके लिये विचारणीय, प्रश्न या प्रलाप होने लगता है, इत्यादि लक्षण उन्माद या ज्वर में
पर सूतशेखर का उत्तम उपयोग होता है। इसमें विशेषत: रक्त का दबाव और पित्तवृद्धि होकर उक्त लक्षण उपस्थित होते हैं। जिन स्थानों
ज्वरोष्मा अत्यन्त बढ़ने पर प्रलाप आदि लक्षण होते हैं, उन स्थानों पर ज्वरघ्न औषधि की योजना करनी पड़ती है। परन्तु ज्वरोष्मा न्यून हो
पर प्रलाप आदि लक्षण हों तो रक्त में हानिकर त्याज्य द्रव्यों का मिश्रण होता है। वह वातवहकेन्द्र में पहुँचने पर ऐसे लक्षण उपस्थित हो
हैं, [redacted]
[redacted]ये।

आक्षेप के झटके बार-बार होने पर हाथ-पैर मुड़ जाना, अंगुलियां टेड़ी हो जाना, सेक करने पर कुछ अच्छा मालूम पड़ना, झटके
वेग अति त्वरित होना, परन्तु झटका अति जोरदार न होना, हाथ-पैरों में ऐंठन आदि अर्थात् हाथ पैरों में मांस कठिन और संकुचित होने
संक्रामक विसूचिका होने पर सर्वाङ्ग में होने वाले ऐंठन, सब पर सूतशेखर अच्छा लाभ दर्शाता है।

तीव्र अम्लपित्त के योग से होने वाली कण्ठ की जलन, खट्टी डकार, उदर में दाह, दिन जैसा-जैसा बढ़ता है वैसा-वैसा उदर में
बढ़ना, साथ-साथ कड़वी और खट्टी वमन होना, कै होने पर कण्ठ, तालु, मुख, जिह्वा आदि पर दाह होना, कण्ठ और मुंह में फोड़े हो
तथा उदर की वेदना के साथ-साथ शिरदर्द का भी प्रारम्भ होना और भयंकर व्याकुलता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। [redacted]
में पहिले सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवालपिष्टी और अन्य रस यदि उपलब्ध हो तो, मुण्डवाक औषध देनी चाहिये। तीव्र लक्षण कम होने पर
में पित्त का अधिक स्राव होने की और पित्त तीव्र होने की जो आदत हो जाती है, उसे कम करने के लिये सूतशेखर का उपयोग करना चाहिये

आमाशय में पित्तोत्पादक ग्रंथियां विविध कारणों से अधिक पित्त (आमाशय रस) उत्पन्न करने लग जाती हैं और पित्त में तीक्ष्णता
अधिक उत्पन्न होती है। इस हेतु से आमाशय की श्लैष्मिक कला में पहिले दाह प्रारंभ होता है। पश्चात् शोथ और स्फोट के सदृश अवस्
होती है, अन्त में उन स्थानों में पतले और सूक्ष्म व्रण हो जाते हैं। फिर उन स्थानों में कठोर अन्न चुभते हैं, अन्न उस में प्रवेशित होकर सड़
लगते हैं, उदरशूल उपस्थित होता है, [redacted]। जब चुभने वाले अन्न की वमन हो जाती है, तब कु
शांति होती है। इससे आयुर्वेद में अन्नद्रव शूल संज्ञा दी है। इस पर सच्ची मूलग्राही चिकित्सा उसे कहेंगे कि जिससे आमाशय व्रण का रोंप
हो। [redacted]
[redacted]।

पित्ताशय में से निकलने वाला पित्त गाढ़ा हो जाने पर उसमें से छोटे-छोटे पत्थर बन जाते हैं। फिर उससे एक प्रकार का तीव्र कोष्ठशूल उत्पन्न होता है। ग्रहणी में आने वाले पित्तवह स्त्रोतस् में या पित्ताशय में ही यह शूल चलने लगता है। पित्ताश्मरी के कण चुभने पर या क्वचित् पित्त के तीक्ष्ण ज्वर के हेतु से शूलोत्पत्ति होती है। यह शूल प्रत्यक्षतः सूतशेखर के सेवन से कम नहीं होता तो भी इससे पित्तमार्ग में अश्मरी उत्पन्न होने की आदत दूर हो सकती है। पित्त की अति तीक्ष्णता वृद्धि भी नियमित होती है। अनुपान रूप में धमासा, गिलोय, मुनक्का, मुलहठी और मिश्री का क्वाथ देवें। इसके पहिले पित्तस्राव कराने वाली औषधि देनी चाहिये। इस तरह पित्ताश्मरी उत्पन्न होने की स्थिति दूर हो जाती है।

वातातिसार और पित्तातिसार, दोनों पर सूतशेखर का अच्छा उपयोग होता है। विदाही भोजन या आम संचय से अतिसार की उत्पति होती है, अन्न का पचन सम्यक् नहीं होता उसमें यकृत् के पित्त का योग्य मिश्रण न होने से जो अन्न अन्त्र में जाता है, उस अन्न का विदाह होता है, उसका सम्यक् वियोजन नहीं होता और शोषण भी यथोचित नहीं होता। इस हेतु ये अन्त्र से अन्न रस का संचय होकर अब्धातु की वृद्धि होती है। फिर अतिसार होकर विदग्ध अन्न का स्राव होने लगता है। पित्तातिसार पित्त के सान्द्रत्व और द्रवत्व गुण की वृद्धि के हेतु से उत्पन्न हुआ हो, तो सूतशेखर विशेष उपयोगी होता है। इससे पित्त का नियमन होता है अर्थात् पित्तोत्पत्ति अत्यधिक परिमाण में होती हो, वह रुक जाती है फिर अतिसार स्वयमेव दूर हो जाता है।

क्वचित् पित्त का अतिरेक होने पर अतिसार होता है, वह उसमें वैषम्य और वैगुण्य के हेतु से होता है। शरीर में धातु द्रव्य विशिष्ट परिमाण में और विशिष्ट गुणवीर्य युक्त होना, यह स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक है। इसमें विषमता होने पर व्याधि उत्पन्न होती है। कम परिमाण या गुण क्षय से एक प्रकार का विकार और अधिक परिमाण में और गुण वृद्धि से दूसरे प्रकार का विकार होता है। मर्यादा से अधिक तीक्ष्ण पित्त तथा सान्द्र और द्रव पित्त अन्न में मिल जाने पर अन्त्र में विस्फोट और शोथ आकर अब्धातु की वृद्धि होती है। फिर अतिसार हो जाता है। पित्त की अधिकता से होने वाले विरेचन बड़े-बड़े, गरम-गरम, पीले रंग के होते हैं। दस्त होने के समय उदर में दाह, घबराहट, व्याकुलता, अतितृषा, क्वचित् भ्रम और प्रलाप आदि लक्षण होते हैं। सूतशेखर से अतिसार तो कम होता ही है, साथ-साथ प्रलाप, घबराहट, तृषा, भ्रम, व्याकुलता आदि भी शमन हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में सूतशेखर अति कम मात्रा में आध या एक-एक घण्टे पर (४-६ बार) देते रहें।

अन्त्र में अनेक प्रकार के विविध विकारों पर सूतशेखर का अति उत्तम उपयोग होता है। सूतशेखर में विशेष धर्म यह हे कि, शारीरिक घटकों को बाधा न पहुँचाते हुए कीटाणुओं का नाश करता है। यह गुण सौम्य होने से कीटाणु नाशक तो होता ही है, और शारीरिक घटकों पर दुष्ट परिणाम बिल्कुल भी नहीं होता।

विसूचिका में कीटाणुजन्य और अपचनजन्य ऐसे दो प्रकार हैं। कीटाणु जन्य विसूचिका बिल्कुल प्रथमावस्था से तृतीयावस्था तक प्रत्येक स्थिति और अवस्थान्तर में सूतशेखर का अति उत्तम उपयोग होता है। विसूचिका में अति जुलाब लगने पर शरीर में अब्धातु कम होती है, अधिक वमन होने से यह स्थिति होती है। इसके पश्चात् उदर, पीठ, पैर और सर्वांग में ऐंठन होने लगती है, मांसपेशियां निचोड़ने के समान मुड़ जाती हैं, भयंकर वेदना होने लगती है, रोगी अति व्याकुल हो जाता है। ऐसी त्रासदायक स्थिति में सूतशेखर देने से १५-२० मिनट में ऐंठन रुक जाती है। इस तरह बड़ी-बड़ी खट्टी जल के सदृश वमन होने पर उदर में तीव्र वेदना, मरोड़ा, उदर में ऐंठन आदि लक्षण उपस्थिति हों, तो सूतशेखर अमृत ही है।

विसूचिका की प्रथमावस्था से बिल्कुल अन्तिम अवस्था तक सूतशेखर का उत्तम उपयोग होता है। अन्त्र शक्ति कम होने पर कितनी ही बार रोगियों को बिल्कुल बड़े-बड़े जुलाब लगते रहते हैं। नल के डाट को हटाने से समान जल के सदृश दस्त होने लगता है। अन्त्र की शक्ति क्षीण हो जाने से गुदमार्ग में स्राव होता ही रहता है। सूतशेखर से इस अवस्था में अति उत्तम कार्य होता है।

आयुर्वेद में उदर के भीतर होने वाले गोले को गुल्म संज्ञा दी है। इनमें से कितने ही गुल्मों में मांस और मेद का संचय होता है। यह संचय धातुपोष क्रम में कुछ विकृति होने पर होता है, सूतशेखर के योग से पित्तज गुल्म की यह विकृति नष्ट होती है। इस तरह गुल्म का मूल कारण नष्ट होने से गुल्म की वृद्धि कम हो जाती है।

कास अनेक कारणों से उत्पन्न होती है। इनमें पित्तज कास, विशेषतः यकृत् वृद्धि से उत्पन्न कास में सूतशेखर का अति उत्तम उपयोग होता है। अनुपान रूप से आम का मुरब्बा देना चाहिये।

संग्रहणी में तीव्र और जीर्ण, ऐसे दो भेद हैं। नूतन संग्रहणी में भी सज्वर और विज्वर ऐसे दो, उप विभाग होते हैं। सज्वर संग्रहणी में कूडा की छाल का कुछ भी उपयोग नहीं होता। उसमें ज्वर, रक्तयुक्त आम, विलक्षण प्रवाहण(किंछना), दिन में १००-२०० दस्त होने, प्रत्येक बार किंछ-किंछ कर आम या रक्त की एक दो बूंदें गिरना, मल बिल्कुल न गिरना जल और रक्त मिश्रित या लाल रंग की बूँदें गिरना साथ-साथ उदर और हाथ-पैरों में ऐंठन, नेत्र की दृष्टि स्थिर न रहना, अधिक प्रस्वेद आना आदि लक्षण होने पर सूतशेखर अति उत्तम औषधि

है। [redacted] है।

शुष्क कास के साथ श्वास में भी सूतशेखर का उत्तम उपयोग होता है। सूतशेखर शामक और हृद्य होने से हृदय रोग में उत्पन्न कास श्व पर अच्छा लाभदायक है।

हिक्का अनेक प्रकार के विकारों में एक लक्षण हैं। आमाशय में आगन्तुक द्रव्य संचय होकर हिक्का होती है, उसमें वमन करा, उस स द्रव को दूर करने पर हिक्का का हेतु नष्ट हो जाता है। परन्तु उदर और महाप्राचीरा पेशी को हिक्क हिक्क करने की आदत हो गई हो वह जल्दी दूर नहीं होती। उस समय पर सूतशेखर का उत्तम उपयोग होता है। निज दोष कोष्ठ में संचित होकर हिक्का होती है, उसमें पि और वात दोष से उत्पन्न हिक्का में यह उत्तम कार्य करता है। हिक्का उग्र स्वरूप की होती है। विसूचिका की अन्तिमावस्था या मध्यमावर में भी हिक्का उत्पन्न हो जाती है। उस पर भी सूतशेखर उत्तम उपयोगी औषधि है। चंचल, क्रोधी और स्वच्छंदी विचार वाली स्त्रियों को अन बार हिक्का उत्पन्न होती है। वह किसी बाह्य उपचार या औषध से नहीं रुकती। इस पर सूतशेखर प्रभावशाली औषध है।

गंभीरा और महती हिक्का अति त्रासदायक हैं। ५-७ दिन तक एक समान रह जाती है। उन पर सूतशेखर उपयुक्त है। आध्मान, आना छिद्रोदर या बद्धोदर इन रोगों में हिक्का उपद्रव रूप में होती है। यह मरण का निमन्त्रण माना जाता है। उस पर भी कुछ अंश में सूतशे लाभ पहुंचा ही देता है। उस हिक्का को उग्र हिक्का कहते हैं।

हिक्का के साथ अतिशुष्कता, शुष्क उबाक, प्रस्वेद आना, नेत्र बार-बार फिरा देना, कण्ठ में दाह, शीतल जल या शीतल पेय से किंचि शांति होना, फिर बलपूर्वक हिक्का चलने लगना आदि लक्षण होते हैं। उस पर सूतशेखर अति उत्तम कार्य करता है।

उदावर्त (उदर में गैस) की उत्पत्ति वातविकृति से होती है। इस रोग में विशेषत: अपान और समान वायु की विकृति होती है। अप के अवरोध से अन्त्र की क्रिया प्रतिलोम होती है, और अन्त्र की पुर:सरण क्रिया विलोम होकर अन्त्र फूलने लगती है। अफारा आने पर उ में पीड़ा होने लगती है। श्वासावरोध-सा भास होता है, व्याकुलता, मलावरोध और कभी मूत्रावरोध भी होते हैं। इस प्रकार में सूतशेखर विशि कार्य करता है। इससे वायु का अनुलोमन होता, पुर:सरण क्रिया व्यवस्थित होती है और बेचैनी दूर होती है। फिर शौच शुद्धि होने लगती यह औषध रेचक नहीं है, किन्तु शामक होने से वायु का शमन करके उसे अनुलोमन करती है।

त्वचा के अन्तर्भाग में रही हुई वातवाहिनियां, विशेषत: संज्ञावाहिनियों में क्षोभ होकर दाह उत्पन्न होता है। शराबियों को यह दाह अ उग्र होता है। अन्य कारणों से भी त्वचा में रही हुई संज्ञावाहिनियां दुष्ट होकर दाह उत्पन्न हो जाता है। रक्त की विकृति से दुष्टि होकर दा होता है। इस सब पर सूतशेखर का उत्तम उपयोग होता है।

अन्त्र में अन्न पचन योग्य न होने पर अन्न सड़नें लगता है। फिर उससे घोर आम-विष की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार की स्वयं से उत्पन्न सेन्द्रिय विष में से विविध व्याधियों की सृष्टि होती है। इस विष को नष्ट करने में सूतशेखर अत्युत्तम औषध है।

संक्षेप में सूतशेखर कीटाणुनाशक, योगवाही, वातवाहिनियों पर शामक, हृद्य और सेन्द्रिय विषनाशक है। इसका कार्य आमाशय, पक्वाश वृहदन्त्र, यकृत्, अग्न्याशय, प्लीहा और वातवाहिनियों पर होता है तथा वात और पित्तदोष का शामक है। (औ. गु. ध. शा

(१३४) लघु सूतशेखर रस

विधि-शुद्ध सोनागेरु २९ तोले और सोंठ का बारीक चूर्ण १० तोले मिला नागरबेल के पक्के-पीले पान के रस के साथ ३ दिन तक ख करके २-२ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्रा-१ से ३ गोली, मिश्री मिलाये दूध के साथ दें।

उपयोग-इस रस के सेवन से पित्तजन्य शीर्षशूल, अर्धावभेदक, सूर्यावर्त आदि मस्तकशूल, खट्टी वमन, निद्रानाश, पित्तज उन्माद, दा पसीने में दुर्गन्ध, ऊर्ध्व रक्तपित्त, नाक में से रक्त गिरना, मुंह में छाले होना इत्यादि रोग नष्ट होते हैं।

लघु सूतशेखर पित्तधातु की अम्लता और तीक्ष्णता का नाशक, प्रसादक और स्तम्भक है, एवं पित्त प्रकोप से होने वाले सब रोगों में लाभदा है। सामान्य औषधि होने पर भी इसमें दिव्य गुण रहे हैं।

पित्तज शीर्षशूल और उसके साथ चक्कर, उदर में दर्द, व्याकुलता, वमन होने पर शिरदर्द में न्यूनता आदि लक्षण हों, तो सूतशेखर दे चाहिये। अर्धावभेदक और सूर्यावर्त (अर्धशीशी) में जैसे उष्णता की वृद्धि होती है वैसे शिरदर्द भी बढ़ता जाता है, और वमन हो जाने शिरदर्द शमन हो जाता है। ऐसा लक्षण होने पर लघुसूतशेखर देना चाहिये।

पित्तज उन्माद में बेसुधि कम, परन्तु त्रास, प्रलाप, निद्रानाश, चक्कर भ्रम और सारे शरीर और शिर में भी प्रस्वेद आना, प्रस्वेद में ए प्रकार की दुर्गन्ध आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर लघु सूतशेखर और सुवर्णमाक्षिक भस्म को मिला पेठे के रस के साथ दे

से उत्तम उपयोग होता है।

निद्रानाश पित्तप्रकोप से होता है, तब सर्वांग में दाह होता है और हाथ पैर टूटते हैं, एवं मस्तिष्क में भ्रम के सदृश या उठा उठाकर फेंकने के सदृश भास होता हो तथा उदर में दाह आदि लक्षण हों, तो लघु सूतशेखर दूध के साथ देना चाहिये।

नाक में होने वाले रक्तस्राव में पित्ताधिक्य होने पर इसका उपयोग होता है। रक्त गिरने के समय या गिरने के पश्चात् दाह, सारे शरीर में जलन आदि लक्षण होने पर लघुसूतशेखर उपयोगी होता है। अति वमन होने के पश्चात् थोड़ा-सा रक्त गिरने पर इस लघु सूतशेखर का उपयोग हितकाकरक है। (औ.गु.ध.शा.)

(१३५) लीलाविलास रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म, लोहभस्म, ये सब समभाग लेकर आंवलों के रस तथा बहेड़े के रस में ३-३ दिन तक खरल करें। पश्चात् भांगरे के रस में १ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बांधें। (भै.र.)

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में २ से ३ बार, शहद के साथ दें अथवा दूध और कूष्माण्ड का रस या आंवलों का रस मिला पकाकर फट जाने पर जल छानकर ऊपर से अनुपान रूप में पिलावें।

उपयोग–यह रसायन अम्लपित्त, तृषा, शूलसहित वमन, हृदयदाह, कृमि, पाण्डु आदि रोगों का नाश करता है।

इस रस में पारद और ताम्रभस्म तीक्ष्ण, उष्ण, व्यवायी और स्रोतोगामी है। साथ में अभ्रकभस्म और लोहभस्म सम्मिश्रण करा उष्णता और तीक्ष्णता को कितने ही अंश में दबा दिया है। फिर आंवले, बहेड़े और भांगरे के रस की भावना देकर इन सेन्द्रिय औषधियों के योग से गुणों से उत्कर्ष कराया है एवं द्रव्य-संयोग और संस्कार द्वारा अम्लपित्त नाशक गुण की वृद्धि कराई है।

आंवला उत्तम अम्लपित्त शामक औषधि है, आमाशय के प्रकुपित पित्त को शान्त करता है, और उत्पत्ति का ह्रास करता है, परन्तु केवल आंवलों का सेवन करने पर पित्त शामक गुण का शोषण होकर लाभ होने में दीर्घकाल लगता है, तथा यकृत और रक्त में रहे हुए मृत घटकों को जीवित घटकों से पृथक् कर बाहर निकाल देना या जला देना, यह कार्य जितना जल्दी ताम्र भस्म द्वारा होता है, उतना केवल आंवलों के सेवन से सत्वर नहीं हो सकता। इस हेतु से शास्त्रकार ने ताम्रभस्म सम्मिश्रण किया है। पारद, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म आदि औषधियां योगवाही होने से अपने गुणों का त्याग न करते हुए मिश्रित सेन्द्रिय औषधियों के गुणों में वृद्धि करा देते हैं। पित्तप्रधान मोतीझरा आदि ज्वर दीर्घकाल तक रहना, लवण का अतियोग, विषप्रदान, कीटाणु प्रकोप या तमाखू का अति व्यसन आदि कारणों से आमाशय में पित्त की वृद्धि और श्लैष्मिक त्वचा में उत्तेजना होती है, तथा यकृत निर्बल हो जाने से योग्य पित्त स्राव नहीं कर सकता। फिर अम्ल पित्त की संप्राप्ति होने पर यदि कफ का संसर्ग हो तो वमन में चिपचिपापन आ जाता है एवं देह में भारीपन, शीतलता, अरुचि, निद्रावृद्धि आदि कफभूयिष्ठ लक्षण प्रतीत होते हैं। अथवा वात का संसर्ग होने से जब आमाशय, पित्ताशय, हृदय, अन्त्र, बस्ति, पार्श्व, इनमें शूल चलना, झागयुक्त वमन, बार-बार डकारें आना, कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, अन्धेरा आना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। अनेकों को मलावरोध भी रहता है, उन कफ और वात प्रधान लक्षणों पर लीलाविलास रस अच्छा काम करता है।

बार-बार अत्यधिक गरम भोजन करते रहना, सूर्य के ताप का अति सेवन विषप्रकोप और किसी रोग के हेतु से निर्बलता आ जाने पर आमाशय अशक्त हो जाता है। फिर भोजन को पचन कराने के लिये शक्ति से अधिक पित्तस्राव कराते रहने या उग्र पित्तस्राव कराते रहने पर अम्ल पित्त रोग उत्पन्न हो जाता है। अपचन, भोजन का विदाह होकर छाती में जलन होना, उदर में भारीपन बना रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उन पर यह लीलाविलास रस दिया जाता है। भोजन में मधुर फलों का रस या थोड़ा लघु अन्न देवें।

यदि मुंह में छाले, भयंकर तृषा, अति खट्टी और उष्ण वमन, बार-बार बड़ी-बड़ी वमन, नेत्रों में जलन, गरम-गरम पतले दस्त, भोजन कर लेने पर तुरन्त वमन हो जाना, बार-बार वमन होना आदि पित्त प्रकोप जनित घोर लक्षण प्रतीत होते हों, तो आमाशय के बिना शोधन किये लीलाविलास या अन्य अम्लपित्त नाशक औषधि नहीं देनी चाहिये। पहिले वमन करावें या आमाशय शोधक नलिका (Stomach pipe) द्वारा आमाशय को शुद्ध करें। फिर प्रातःकाल अविपत्तिकर चूर्ण, सांयकाल को लीलाविलास रस तथा दोपहर को पित्त के तीव्रत्व और अम्लत्व को कम कराने वाली सहायक औषधि प्रवाल, वराटिका, शुक्ति, सूतशेखर या वान्तिहद् रस में से आवश्यकतानुसार योजना करें। यदि आमाशय में व्रण होकर वमन होती हो, तो लीलाविलास नहीं देना चाहिये, इस पर लघुसूतशेखर, प्रवाल पञ्चामृत और सुवर्णमाक्षिक का प्रयोग करना चाहिये।

(१३६) सारिवादि वटी

विधि–सारिवा (अनन्तमूल), मुलहठी, कूठ, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर, प्रियंगू, कमल के फूल, गिलोय, लोंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला सब द्रव्य १-१ माशा तथा अभ्रक भस्म और लोह भस्म १४-१४ माशे लेवें। काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण कर भस्में मिलावें। फिर भांगरे के रस, श्वेत अर्जुन की छाल के क्वाथ, जवके क्वाथ, मकोय के रस और गुञ्जामूल के क्वाथ की १-१ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। (र.यो.सा.)

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ बार। धारोष्ण दूध, चन्दन के अर्क अथवा शतावरी के क्वाथ के साथ दें।

उपयोग–यह वटी कान का बहना, कान का गूंजना, कम सुनना आदि कान के रोगों में लाभदायक है, और समस्त प्रमेह, रक्तपित्त, क्षय, श्वास, नपुंसकता जीर्णज्वर, अपस्मार, मोह, अर्श, हृद् रोग, मदात्यय को दूर करती है।

मस्तिष्क में किसी उष्ण औषधि के योग से अथवा तमाखू सूंघने से उत्पन्न तमाखू विष, अति गरम चाय आदि का सेवन करते रहने से या अन्य कारण से उष्णता पहुंचने के कारण से कर्ण में बधिरता आई हो या वातवाहिनियों में विकृति होने से कर्ण रोग हुए हों, या वात प्रकोप से कान में पीड़ा होती हो, उस पर यह हितावह है। इसके सेवन के साथ तैल मर्दन आदि तथा कर्ण विकार के अनुरूप बाह्य उपचार भी करते रहना चाहिये। यदि रक्त में मूत्रविष वृद्धि, उष्णता आमविष प्रवेश आदि कारणों से धमनी विकार या हृदय की निर्बलता, कम सुनना और कान गूंजना आदि उपद्रव हुए हों, तो यह रसायन हृदय और धमनी को सबल बनाकर कर्ण रोगों को दूर करता है।

सूचना–यदि कर्ण नाड़ी (Auditory Nerve) का सम्बन्ध कर्ण छिद्र (Cochlea) से विच्छेद हो गया हो, नाड़ी मृत हो गई हो, कर्ण छिद्र दूषित हो गया हो या कर्णास्थि गल गई हो, तो लाभ होने की आशा अधिक नहीं रहती है।

(१३७) प्रदरान्तक लोह

प्रथम विधि–लोहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध हरताल, वंगभस्म, अभ्रकभस्म, वराटिका भस्म, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हरड़ बहेड़ा, आंवला, चित्रक मूल, बायविडंग, सैंधा नमक, काला नमक, समुद्रनमक, बिड़नमक, काचनमक चव्य, पीपल, शंखभस्म, बच, हाऊबेर, कूठ, कचूर, पाढ़, देवदारु, छोटी इलायची और विधारा, इन ३० औषधियों को समभाग लें। काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् भस्मों को मिला ६ घण्टे खरलकर लेवें (र.र.)

मात्रा–प्रदरान्तक लोह, मिश्री और घृत १-१ माशा और ३ माशे शहद मिलाकर दिन में २ बार लेवें।

उपयोग–इस रस के सेवन से रक्त पित्त, नील और श्वेतप्रदर, कुक्षिशूल, कटिशूल, योनिशूल, सब प्रकार के शूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, मूत्रकृच्छ्र, श्वास और कास आदि रोग नष्ट होते हैं तथा मासिकधर्म साफ आता है।

प्रदरान्तकलोह समस्त जीर्ण प्रदरों के लिये बहुत लाभदायक औषधि है। इस लोह की योजना सब प्रकार के प्रदर पर लाभप्रद हो इस दृष्टि से की है। वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, पूयप्रधान आदि पर यह कार्य करता है। रोग विष फैल जाने पर आमाशय, यकृत, प्लीहा आदि अवयव कार्य करने में असमर्थ हो गये हों, मांसपेशियां, फुप्फुस और वातवाहिनियां क्षीण हो गये हों, गर्भाशय और बीजकोष (Ovaries) शिथिल हो गये हों, तथा अग्निमांद्य, अरुचि, शिरदर्द, कफयुक्त कास, थोड़े परिश्रम से हृदय और श्वास का वेग बढ़ जाना, कटिशूल आदि लक्षण उपस्थित हुए हों तथा समस्त अवयवों में भयंकर निर्बलता आई हो तथा चिपचिपा लाल, पीला या नीला आदि प्रकार का स्राव होता रहता है, ऐसे बढ़े हुये प्रदरों को भी यह प्रदरान्तक लोह दूर करता है। (र.यो.सा.)

सूचना–गर्भाशय में गुल्म (अर्बुद) हो तो उसे दूर कराना चाहिए। विद्रधि (Abscess) हो तो बाह्योपचार भी करते रहना चाहिए। इसी तरह क्षत (Ulcer) हो तो धातक्यादि तैल या अन्य व्रण रोपण तैल की पिचकारी लगाते रहना चाहिए। इस प्रकार का मूल कारण दूसरा हो, तो उसे शमन करने की चेष्टा पहले करनी चाहिये।

दूसरी विधि–लोह भस्म २ तोले, वंग भस्म, शुद्ध खर्पर या जसदभस्म कहरवापिष्टी, घी में पकाया हुआ सोनागेरु, मोचरस, सफेद राल, ये ६ औषधियां १-१ तोला लें। सबकों मिला दूब, अनार और आंवले के रस की ७-७ भावनायें देकर सूखा चूर्ण बना लेवें। (र.यो.सा.)

मात्रा–३-३ रत्ती, दिन में २ बार पाषाणभेद के मूल के ३ माशे चूर्ण के साथ देवें, ऊपर मिश्री मिला दूध पिलावें।

उपयोग–यह रस सब प्रकार के प्रदरों का नाश करता है। जिस प्रदर रोग को असाध्य कहकर वैद्य या डाक्टरों ने छोड़ दिया हो वह भी इस रसायन के सेवन से अच्छा हो जाता है। ऐसा रसयोग सागरकार का अनेक वर्षों का अनुभव हैं। हम भी इसका प्रयोग सफलता पूर्वक करते रहते हैं।

यह लोह मिश्रण प्रजनन संस्थान के रोगों के लिये आशीर्वादरूप है। जब गर्भाशय आदि में क्षत होकर पूय बन रहा हो गर्भाशय अति शिथिल और प्रसारित हो गया हो, भीतर श्लैष्मिक कला जीर्ण प्रदाह से पीड़ित रहती हो या श्लैष्मिक कला से चिकना रस स्राव सतत होता

रहता हो अथवा गर्भाशय के भीतर रक्त देने वाली सूक्ष्म रक्तवाहिनियों पर आघात पहुंच जाने से टूट गई हों और उसमें से बार-बार रक्तस्राव होता रहता हो, तब दुर्गन्ध युक्त प्रदर, पीत प्रदर, श्वेत प्रदर, गाढ़ा स्राव वाला या पतला और उष्ण स्राव वाला तथा रक्त प्रदर की संप्राप्ति होती है। इन सब जीर्ण प्रदरों को दूर करके गर्भाशय को संकुचित और सबल बनाने तथा रक्त आदि धातुओं को पोषण देने के लिये यह लोह उत्तम कार्य करता है। हजारों रुग्णाओं पर परीक्षा की गई है।

गर्भाशय के भीतर गुल्म (Tumour) या कर्कस्फोट (Cancer) हो, तो इस रस के सेवन से विशेष लाभ होने की आशा नहीं है। यदि गर्भाशय में विद्रधि (Abscess) या क्षत (Ulcer) हो तो, बाह्योपचार भी करते रहना चाहिये।

रोग पुराना हो तो मात्रा कम कर देनी चाहिये, किन्तु दीर्घकाल तक पथ्य पालन सह औषध सेवन कराना चाहिये।

यदि यह रस तैयार न हो, तो शुद्ध मुर्दासङ्ग ३ रत्ती को ३ माशे मिश्री के साथ मिलाकर देवें। ऊपर से पाषाणभेद के मूल का चूर्ण १॥ माशे समान मिश्री मिलाकर खिलावें और थोड़ा दूध पिलावें, इस प्रयोग से बहुत ही विलक्षण लाभ होता है। परन्तु कच्चा मुर्दासङ्ग अधिक दिन तक नहीं देना चाहिये, वरना वान्ति होने लगेगी, और शरीर में एक तरह की ऐंठन पैदा होगी। इसलिये शुद्ध करके ही देना चाहिये।

मुर्दासङ्गशोधन विधि–चतुर्थांश सैंधानमक मिला १ प्रहर खरलकर, ४ गुने जल में मिलाकर रख देवें। दूसरे दिन जल को सम्हालकर निकाल दें। फिर नया सैंधानमक मिलाकर खरल करें और जल भरकर रख दें। इस रीति से २१ दिन शोधन करने से मुर्दासङ्ग सब दोषों से मुक्त होकर श्वेत हो जाता है। यह उपदंश की परमौषधि है। (र.यो.सा.)

(१३८) प्रदरान्तक रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध आंवलासार गन्धक, रौप्यभस्म, वंगभस्म, कौड़ीभस्म, शंखभस्म, प्रवालभस्म, सेलखड़ी की भस्म और राल, सब समभाग और लोहभस्म सबके बराबर मिला दूब, अनार और आंवलों के स्वरस में ३-३ दिन और घीकुंआर के रस में १ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बांधें।

मात्रा–२-२ गोली, आंवलों के स्वरस और शहद के साथ देवें।

उपयोग–इस रस से सब प्रकार के नील, श्वेत, रक्त और शूलसह प्रदर तथा सोमरोग दूर होते हैं, मासिकधर्म साफ आता है, अन्तर्दाह शमन होता है, तथा शरीर नीरोग और तेजस्वी बनता है।

जिन स्त्रियों का शरीर निस्तेज पाण्डुवर्ण हो गया हो, बार-बार चक्कर आना, सहन शक्ति का अभाव, नेत्र के चारों ओर कालापन, हृदय की अनियमित गति, थोड़े से परिश्रम से हृदय के वेग की वृद्धि हो जाना, हाथ-पैर टूटना, मानसिक उदासीनता बनी रहना, दाह, अग्निमांद्य, गरिष्ठ पदार्थ का योग्य पचन न होना, उदर में भारीपन और प्रदर का स्राव गरम-गरम पतले जल सदृश होना आदि लक्षण हों उनको प्रदरान्तक रस अमृत सदृश लाभदायक है।

(१३९) प्रदरारि रस

विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और नागभस्म शतपुटी १-१ तोला, रसोंत ३ तोले, लोध ६ तोले लें। सबको मिला अडूसे के रस में ६ घण्टे घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बांधें। (यो.र.)

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में दो बार। शहद अथवा चांवल के धोये हुए जल के साथ देवें। पाषाण भेद का चूर्ण १॥ माशा समान मिश्री मिलाकर साथ में दे देने पर विशेष लाभ मिलता है।

उपयोग–यह रस श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर और गर्भाशय के दोष को दूर करता है तथा पाचन शक्ति को बलवान बनाता है।

यदि शरीर में आमसंचय अधिक हो, तो प्रदर की औषधि कुमार्यासव के साथ देना विशेष लाभदायक है एवं निद्रावस्था में ही स्राव हो जाता हो, स्राव होने पर रुग्णा जागृत हो जाती हो, तो उसे पाचक और मल निः सारक कुमार्यासव अनुपान रूप से देना चाहिये एवं शिलाजतु भी देते रहना चाहिए।

यदि गर्भाशय आदि अवयवों की निर्बलता के हेतु से उत्तेजना आये बिना बार-बार स्राव होता रहता हो, तो मात्रा अधिक देनी चाहिये। परन्तु अधिक मात्रा से मलावरोध हो जाय, तो स्वतन्त्र रूप से अधिक पुट वाली नागभस्म दें और इस रसायन का सेवन भी करावें।

अनेक स्त्रियों को अति व्यवाय, अनुचित व्यवाय, चरपरे पदार्थ, कामोत्तेजक पदार्थ और शराब आदि के अति सेवन से अति त्रासदायक प्रदररोग हो जाता है। हाथ पैर टूटना, दाह, निस्तेजता, कमर जकड़ जाना, स्वभाव क्रोधी हो जाना, मानसिक क्षोभ होने पर प्रदर स्राव अधिक होना आदि लक्षण होते हैं। उनको प्रदरारि रस अति हितकारक है। मात्रा कम देनी चाहिये। यह रसायन बढ़े हुए रोग में अधिक समय तक ब्रह्मचर्य और पथ्यपालन सह देते रहना चाहिये।

प्रयोगों में नागभस्म मिलानी हो तब नागभस्म शतपुटी मिलानी चाहिये। कम पुट वाली मिलाने पर उचित लाभ नहीं मिल सकेगा।

(१४०) गर्भचिन्तामणि रस

विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लोहभस्म २-२ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले, कपूर, वंगभस्म, ताम्रभस्म, जायफल, जावित्री, गोखरु बीज, शतावर, खरैंटी और गंगेरन २-२ तोले लें। प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली करके भस्म मिलावें। फिर काष्ठादि औषधियों का कपड़छ चूर्ण मिला, शतावर के रस या क्वाथ के साथ १ दिन खरल करके दो-दो रत्ती की गोलियां बांधें।

मात्रा–एक-एक गोली दिन में २ बार। दूध के साथ देवें।

उपयोग–यह रस गर्भिणी के ज्वर, मन्दाग्नि, दाह, श्वास कास, निर्बलता, वमन और प्रदर आदि रोगों को दूर करके गर्भ को बलवा बनाता है। सतत ३-४ मास तक सेवन करने से प्रसव के समय दुःख नहीं होता और बालक भी नीरोग और बलवान बनता है।

अनेक ग्रन्थकारों ने पारद और गन्धक के स्थान में रससिंदूर और रौप्य भस्म मिलाये हैं, एवं कतिपय ग्रन्थकारों ने रससिंदूर और हरता भस्म लिये हैं। हमें जो पाठ अधिक सौम्य प्रतीत हुआ और हमने जिसका अनुभव किया है, वही पाठ ऊपर दिया है। रससिन्दूर और रौ भस्म शतपुटी मिलाकर तैयार करने पर सुजाक जिनको हो गया हो, वातनाड़ियां अधिक शिथिल हो गई हों उनको देना हितकर माना जाय एवं जिसके शरीर में फिरंगज विष रहा हो, रक्तविकार आदि लक्षण प्रतीत होते हों उनको देना लाभप्रद रहेगा।

निर्बल और कोमल शरीर तथा पित्तप्रधान प्रकृति वाली स्त्रियों के लिये पारद गन्धक प्रधान गर्भचिन्तामणि निर्भय और विशेष हितकर सामान्यतः यह सब प्रकृति वालों के लिये व्यवहृत हो सकता है।

अनेक स्त्रियों का शरीर रोगों के हेतु से या बारम्बार सन्तान होने से या छोटी आयु से निर्बल होने पर उनको पोषण देने और गर्भ को पुष्ट बनाने के लिये पोषक आहार और पोषक औषधि का सेवन कराना चाहिये।

इस गर्भचिन्तामणि में लोह, अभ्रक, वंग और ताम्र भस्म मिलायी है। इस हेतु से यह रक्त संस्थान, मांस और वात संस्थान, प्रजनन औ मूत्रसंस्थान तथा यकृत् प्लीहा वृक्कों को लाभ पहुंचाता है। गर्भ के पोषण और वर्द्धनार्थ माता के देह में से रक्तादि धातुओं के सत्व का पोषण होता रहता है। इनकी पूर्ति करने के लिये और यकृत् आदि अवयवों को सबल बनाने के लिये यह रसायन आशीर्वाद के समान है।

यदि सगर्भा स्त्री को वमन होती रहती हो, फिर उस हेतु से आमाशय पित्त संचित होकर मुखपाक तथा कण्ठ और छाती में जलन रहती हो तथा अग्नि मन्द हो गई हो तो मूल कारण रूप वमन को शान्त करने के लिये यह रसायन दिया जाता है।

अनुपान–सोंठ, नागरमोथा, धनियां और मिश्री का क्वाथ।

सगर्भा स्त्रियों की देह निर्बल बनने पर थोड़े परिश्रम से भी कितने ही को रात्रि को मन्द ज्वर आ जाता है। फिर हाथ पैर टूटते हैं मूत्र में पीलापन रहता है तथा आलस्य, थकावट, निद्रावृद्धि, अग्निमांद्य, श्वेतप्रदर, मलावरोधादि लक्षण उपस्थित होते हैं। उनको यह धनिये के फाण्ट में दूध मिलाकर उसके साथ दिया जाता है।

कफ या वातप्रधान प्रकृति वाली निर्बल स्त्रियों को रक्तविकार, श्वास, कफविकार, यकृत् की निर्बलता, हृदय की निर्बलता पहले किसी स्थान में पूयोत्पत्ति हुई हो या उपदंश सुजाकादि रोग हुये हों और वृक्क निर्बल हों, तो रससिंदूर और रौप्य भस्म मिला हुआ गर्भचिन्तामणि हितावह है।

वातविकृति, त्वचाविकार, बारम्बार ज्वरपीड़ित हो जाना, ज्वरजन्य निर्बलता और यकृत् पित्तस्राव की न्यूनतादि उपद्रव हों तो उनसे पीड़ित रुग्णाओं को गर्भ पोषणार्थ रससिंदूर और हरताल (माणिक्य रस) मिश्रित गर्भचिन्तामणि विशेष हितावह है।

वक्तव्य–इस रस के सेवन के साथ प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण मिला लेने से गर्भिणी और गर्भस्थ शिशु, दोनों के मांस और अस्थियों को बल मिल जाता है तथा गर्भ बलवान, संपुष्ट और तेजस्वी बनता है।

(१४१) गर्भपाल रस

विधि–शुद्ध सिंगरफ, नागभस्म शतपुटी, बंगभस्म, त्रिजात (दाल-चीनी, तेजपात और इलायची), त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), धनियां, कालाजीरा, चव्य, मुनक्का, देवदारु ये १४ द्रव्य १-१ तोला, लोह भस्म ६ माशे लें। सबको यथाविधि मिला सफेद अपराजिता (कोयल) के रस में ७ दिन तक खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लें।

वक्तव्य–प्रयोगों में नागभस्म मिलानी हो तब नागभस्म शतपुटी मिलानी चाहिये। कम पुटवाली मिलाने पर उचित लाभ नहीं मिल सकेगा।

मात्रा–१ से २ ग्रेती, दिन में २ बार। मुनक्का के जल में देवें। मुनक्का २॥ तोले को १०-२० तोले जल में भिगो मसलकर पिलावें।

उपयोग–यह रस गर्भस्राव और गर्भपात होने से बचाता है, तथा गर्भिणी के अतिसार, ज्वर, प्रदर, श्वास, कास, वमन, मन्दाग्नि, अरुचि, वातवृद्धि, शूल, मलावरोध, शिरदर्द आदि को दूर करके गर्भ को बलवान और नीरोग रखता है।

कई स्त्रियों का गर्भाशय शिथिल होने से और देह में अधिक उष्णता रहने से गर्भपात हो जाता है, एवं पति वीर्य विकारी हो तो भी गर्भपात हो जाने की संभावना है, इनके अतिरिक्त उपदंश अथवा सूजाक के कारण गर्भाशय में विकृति होने पर गर्भपात होने की विशेष भीति

रहती है। उस पर पहिले रक्तशोधक औषध के साथ गर्भपाल देने से गर्भिणी और गर्भ दोनों की रक्षा होती है। यदि बीजकोषों की पूर्ण परिमाण में वृद्धि न होने से गर्भस्राव या गर्भपात होता हो, तो वंग या त्रिवंग भस्म के साथ गर्भपाल देने से गर्भ वृद्धि और रक्षण में सहायता मिलती है। अनेक स्त्रियों को गर्भधारण के पश्चात् भोजन कर लेने पर तत्काल वमन, चक्कर, घबराहट, ऐंठन, शिरदर्द, कमर में शूल आदि लक्षण होते हैं। उस पर गर्भपाल रस के साथ कामदुधा, प्रवाल भस्म अथवा सुवर्णमाक्षिक भस्म देने से सब विकारों का शमन होता है। किसी-किसी स्त्री के बच्चे जन्म के बाद थोड़े ही दिनों में अथवा थोड़े ही महीनों में बार-बार मर जाते हैं, उनमें प्राय: रजोवीर्य या स्त्रीदुग्ध में दोष रहता है यह दोष गर्भचिन्तामणि या गर्भपाल के सेवन से दूर होता है।

(१४२) प्रतापलंकेश्वर रस

विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, तीनों एक-एक तोला, कालीमिर्च(या चित्रकमूल) ३ तोले, अभ्रक भस्म १ तोला, लोहभस्म ४ तोले, शंखभस्म ७ तोले और आरने कण्डों की कपड़छन की हुई राख १६ तोले लें। फिर सबको यथाविधि मिला लेवें। (यो. र.)

वक्तव्य–कालीमिर्च के बदले चित्रकमूल मिलाया जाय, तो प्रसूता के गर्भाशय में रहे हुए दूषित रक्त को बाहर निकालने का कार्य सत्वर हो सकता है।

मात्रा–३ से ६ रत्ती, दिन में २-३ बार अदरक के रस और शहद या तुलसी के रस के साथ देवें।

उपयोग–यह रस प्रसूता के ताप, उन्माद, खांसी, शिरदर्द, वमन, कफदोष, दांत भिंचना, आफरा, गृध्रसी, धनुर्वात, जुकाम, शूल, त्रिदोष, अतिसार आदि रोगों को दूर करने में अति लाभदायक है।

प्रतापलंकेश्वर सूतिका ज्वर में उत्तम प्रकार से कार्य करने वाली औषधि है। यह रस गर्भाशय में संचित हुए रक्ताश्रित दोष को दूर करता है, वातवाहिनी के क्षोभ को शीघ्र दबाता है, लसीका आदि स्राव की विकृति का नाश करता है, निद्रा लाने में सहायता पहुंचाता है और वातप्रकोप के कारण से होने वाले प्रलाप और भ्रांति को शीघ्र शांत करता है, एवं सूतिका ज्वर से उत्पन्न होने वाले श्लैष्मिक अथवा श्वसन सन्निपात को दूर करता हैं।

सूतिका ज्वर अति दुष्ट और भयप्रद विकार है। इस हेतु से प्रसूता की सम्हाल, प्रसव होने पर पहिले दिन से ही पूर्णरूप से रखना चाहिये। प्रसूता के पहनने योग्य वस्त्र, रजाई, शय्या, बांधने की पट्टी आदि स्वच्छ और कीटाणु रहित होने चाहिए (मूर्ख, अज्ञानी स्त्रियों द्वारा प्रसव कार्य कराने पर स्वच्छता नहीं रहती, और मलिनता उत्पन्न होती है।) इस हेतु से कीटाणुओं का गर्भाशय में प्रवेश होकर सूतिका ज्वर की उत्पत्ति होती है। जच्चा के प्रसवकाल में पीड़ा सह गर्मजल लसीका और रक्त का स्राव होता है एवं गर्भाशय की पूर्व स्थिति प्राप्त कराने के लिए जीवनीय शक्ति का तीव्र प्रयत्न होने लगता है। ऐसे समय पर कीटाणु या गन्दे द्रव्य का गर्भाशय में प्रवेश हो जाय तो वह भी अति तीव्र गति से बढ़कर सेन्द्रिय विष का निर्माण करता है। फिर उसका रक्त में शोषण होने पर भयंकर लक्षणात्मक सूतिका ज्वर का जन्म हो जाता है।

इस ज्वर का प्रारम्भ शीत लगकर होता है। मुख में शुष्कता, व्याकुलता, भ्रम, प्रलाप, बेशुद्धि, तीव्र और भारी नाड़ी, जननेन्द्रिय से होने वाले स्राव में एक प्रकार की दुर्गन्ध आना और शिरदर्द आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। क्वचित् दांत भिंचना और फिर धनुर्वात भी उपस्थित हो जाता है इस विकार पर प्रतापलंकेश्वर से कीटाणुजन्य विष कम होने में सहायता मिलती है। गर्भाशय को मूल स्थिति की प्राप्ति करा देने में प्रताप लंकेश्वर के समान दूसरी कोई सबल औषध नहीं है। इस रसायन से ज्वर कम होता है। वातवाहिनियों की विकृति नष्ट होती है, निद्रा आने में सहायता मिलती है। वात प्रकोपजनित प्रलाप, भ्रम, खड़े हो होकर भागना आदि लक्षणों का प्रशमन हो जाता है। सूतिका ज्वर में अन्य लक्षण अति तीव्र न हों, केवल निद्रानाश अधिक हो, तो प्रतापलंकेश्वर देने से निद्रा आने लगती है, ऐसा अनुभव है।

सूतिका ज्वर में या सद्योव्रण आदि के पश्चात् व्रण विकृति होकर हनुस्तम्भ (दांत भिंचना) लक्षण उत्पन्न होने पर वह धनुर्वात का पूर्वरूप है। फिर धीरे-धीरे धनुर्वात के झटके आने लगते हैं। अत: हनुस्तम्भ प्रारम्भ होने पर तुरन्त प्रतापलंकेश्वर देवें, तो धनुर्वात की उत्पत्ति रुक कर अन्य लक्षण भी शनैः शनैः कम हो जाते हैं।

सूतिका को शिरदर्द अनेक बार वातवाहिनियों के उद्रेक से होता है। उस पर इसका उपयोग करने से शिरदर्द त्वरित शमन होता है।

सूतिका ज्वर में लक्षण रूप या उपद्रव रूप से उत्पन्न श्लैष्मिक(कफात्मक)सन्निपात श्वसनक सन्निपात (न्युमोनिया) पर प्रतापलंकेश्वर का उपयोग अवश्य करना चाहिये। अन्य समय में होने वाले श्वसनक या श्लैष्मिक सन्निपात और सूतिका ज्वर में उत्पन्न, इन दोनों में सम्प्राप्ति दृष्टि से महदन्तर है। इसका कारण सूतिका विष होने पर उसे नष्ट करने का उपक्रम करना वही मुख्य चिकित्सा तत्व है।

सूतिका ज्वर न आकर अर्थात् दोषोद्रेक अधिक तीव्र न होकर केवल पित्तोद्रेक के हेतु से कितनी ही स्त्रियों को वमन होने लगती है, वान्ति से जच्चा को अति त्रास होता है, कै करते-करते उदर में ऐंठन आ जाती है। ऐसे समय पर प्रतापलंकेश्वर का अच्छा उपयोग होता है।

गृध्रसी, विश्वाची और खल्ली रोग में वात का उद्वहन कार्य विकृत होता है, वातवाहिनियों के कार्यों में प्रतिबन्ध उत्पन्न होता है। इस हेतु से इन दोनों तीनों विकारों में एक प्रकार का दर्द होता है। उसे प्रतापलंकेश्वर दूर कर वात विकार को सत्वर शमन कर देता है।

वातज श्वास रोग में प्रतापलंकेश्वर अप्रतिम औषधि है। यह औषध सगर्भा स्त्री को नहीं देना चाहिये, अन्यथा गर्भपात होने की रहती है। इससे गर्भाशय का संकोच भी होता है। अन्य रोगियों के लिये इसका उपयोग श्वास नाशक और वातशामक होता है। यह बहुधा शोक आदि से वातवाहिनियों में क्षोभ होकर होता है।

सूतिका ज्वर में कफ प्रधान दोष प्रकृपित होकर कास होने या कफभूयिष्ट सन्निपात, श्वसनक या श्लैष्मिक सन्निपात होने या कफ तृषा कफज अरुचि, कफज वमन आदि विकार तीव्र रूप में होने पर और उष्ण पेय आदि से उपशम होते हों, तो उन पर प्रतापलंकेश्वर उत्तम उपयोग होता है।

(कफवृद्धि हो तो अभ्रकभस्म, अदरक का सत्व और सोहागे का फूला मिला देने से सत्वर लाभ पहुंचाता है।)

सूतिका रोग के पश्चात् उत्पन्न कफज गुल्म या कफप्रधान परिणाम शूल पर प्रतापलंकेश्वर की गणना उत्तम औषधियों में होती है।

प्रसव के पश्चात् आवश्यक गर्भ स्थान की शुद्धि न होने से गर्भ कौष्ठ शनैः शनैः प्रदुष्ट होकर वह दुष्टि सर्वांग में फैल जाती है। उ परिणाम पक्वाशय और बृहदन्त्र पर भी होता है। फिर उबासी आना, सूक्ष्म ज्वर, कम्प, तृषा, अंग भारी पड़ना आदि प्रारम्भिक चिन्ह हो यह अवस्था बढ़ने पर सर्वागं में शोथ, कोष्ठशूल और अतिसार, बार-बार त्रासदायक पतले बड़े बड़े जुलाब लगना, किसी-किसी रोगिणी केवल आम और रक्तमिश्रित दस्त होना आदि लक्षण होते हैं। उस पर पर्पटी की अपेक्षा प्रतापलंकेश्वर रस का अधिक उपयोग होता है। मूल कारण गर्भाशयस्थ सूतिका दोष है।

सूतिकावस्था में उत्पन्न उन्माद पर इस औषधि का अन्य मादक औषधियों की अपेक्षा अधिक अच्छा उपयोग होने के उदाहरण मिले इस औषधि से मादक निद्रा न आकर उन्माद के कारणभूत सूतिका विष का प्रशमन होकर मनोविभ्रम की निवृति होती है। ऐसे विकारों प्रतापलंकेश्वर को धमासे के क्वाथ, पेठे के रस या सारिवालेह के साथ देना चाहिये। (औ.गु.ध.शा. के आधार

(१४३) सूतिकारि रस

विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म सब समभाग मिला ब्राह्मी के रस में ३ दिन तक खरल करके एक-एक की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ बार। त्रिकटु अथवा अदरक के रस और शहद के साथ देवें।

वक्तव्य–सूतिकारि रस में ताम्रभस्म मिली है। उसका परिमाण ¼ है। उतनी ताम्र भस्म सहन न हो, उबाक आने लगे, तो नींबू के को जल में मिला थोड़ी शक्कर डालकर पिलावें।

उपयोग–यह सूतिकारि रस विषघ्न, कीटाणुनाशक, यकृतबल्य, मस्तिष्क पोषक तथा वातनाड़ियों को शक्ति देने वाला है। इस हेतु से प्र के नूतन आमज्वर, तृषा, दाह, मन्दाग्नि, श्वास, निद्रानाश, शोथ, उदरशूल और अरुचि आदि विकारों को सत्वर दूर करके शान्ति प्र है। यह रसायन उदर में संगृहीत आम को जला डालता है और पचनक्रिया व्यवस्थित कराता है एवं गर्भाशय में संचित विष और दूषित को तत्काल बाहर निकाल डालता है, रक्त में प्रवेशित कीटाणुओं को नष्ट करता है और वातवाहिनियों के क्षोभ को शमन करता है, यकृत, प्ली और मूत्रपिण्डों की विकृति को दूर करता है और मस्तिष्क को भी शांत बनाता है। संक्षेप में सूतिकारि रस नूतन और जीर्ण वात कफात्म तथा वातपित्तात्मक व्याधियों को शमन करने में अति लाभदायक है।

वातप्रकोप लक्षण अधिक हो तो महारास्नादि क्वाथ भी अनुपान रूप से देवें, मूत्र शुद्धि के लिये पुनर्नवाष्टक क्वाथ देवें।

यह सूतकारि रस सूतिकाओं के त्रिदोषज, दिनों तक बने रहने वाले ज्वर, तृषा, दाह, मन्दाग्नि, श्वास, शोथ, उदरशूल, अरुचि आदि विका को दूर करने में श्रेष्ठ औषधि है। विशेषतः यह वातपित्तात्मक लक्षणों पर प्रयोजित होती है। फिर भी कफात्मक में मुँह में चिपचिपापन, कफवृ शीत लगना आदि लक्षण होने पर त्रिकटु अथवा अदरक के रस और शहद के अनुपान से योजना करने पर कफप्रकोप को भी दूर करता

यदि गर्भाशय में आंवल का अंश रह जाने या क्षत हो जाने से दुर्गन्धयुक्त स्राव हो रहा हो, प्रजनन संस्थान में पूयोत्पत्ति हो जाने से ती ज्वर, के साथ वातकफात्मक लक्षण उपस्थित हुए हों, तो उस पर सूतिकारि रस का योग्य उपयोग नहीं हो सकेगा। ऐसी अवस्था में प्रतापलंकेश्व तुरन्त कार्य करता है। इसी तरह ज्वर के साथ तीव्र वातप्रकोप के लक्षण धनुर्वात आदि प्रतीत होते हों तो सूतिकाभरण की योजना करनी चाहि एवं अतिसार या संग्रहणी की प्रधानता हो तो रुग्णा को सूतिकावल्लभ देना चाहिए।

सूतिकारोग जीर्ण हो गया हो, मंद-मंद ज्वर, आमप्रकोप, उदरशूल, अरुचि मन्दाग्नि आदि लक्षण हों, शरीर में स्फूर्ति न हो, तो उस अवस्था में भी सूतिकारि रस हितकर होता है।

इस रस में ताम्रभस्म मिली हुई है। यह जिन स्त्रियों के यकृत् पित्त का स्राव सम्यक् न होने से अन्त्र की पचन क्रिया ठीक नहीं होती है, मलवर्ण सफेद हो, दुर्गन्ध आती हो या सूक्ष्म कृमि उत्पन्न हुये हों, उनके लिये अति लाभप्रद हैं।

ताम्रभस्म से यकृत् को लाभ पहुँचने के साथ वृक्की क्रिया भी उत्तेजित होती है, जिससे मूत्रोत्पत्ति सम्यक् होती है। फिर रक्त में संगृही

विष मूत्रमार्ग से बाहर निकल जाता है। मूत्रशुद्धि जिनको न होती हो उनको अनुपान रूप से पुनर्नवाष्टक क्वाथ देने से सत्वर लाभ पहुंचता है।

अभ्रकभस्म के योग से वातवाहिनियों और मांसपेशियों को बल मिलता है, तथा धातुओं के भीतर ज्वरकालीन विष हो वह जल जाता है। गर्भाशय के भीतर विकृत द्रव्य रहा हो वह बाहर निकल जाता है। फिर उस विषप्रकोप से उत्पन्न श्वास, शूल और अरुचि आदि लक्षण शान्त हो जाते हैं।

ब्राह्मी के रस की भावना देने से यह रस मस्तिष्क को बल प्रदान करता है जिसे प्रलाप होता हो या मन में विभिन्न प्रकार के विचार आते रहते हों ये सब दूर हो जाते हैं, और शान्त निद्रा मिल जाती है।

ज्वर आदि विकार उत्पन्न हो जाने पर भी अधिक घृत प्रधान भोजन का सेवन कराते रहने पर ज्वर दृढ़ हो जाता है तथा प्लीहा भी बढ़ जाती है। ऐसी भूल होने पर इस रस का सेवन कुछ अधिक दिनों तक कराया जाता है।

सूचना–९९° से ज्वर अधिक हो जाने पर गुड़, अन्न, और घृत बन्द कर देना चाहिये।

(१४४) चन्द्रांशु रस

विधि–शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, वंगभस्म और शुद्ध गंधक सबको समभाग मिला घीकुंवार के रस में १२ घण्टे खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। (र.चं.)

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ बार। जीरे के क्वाथ, दूध अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह रस गर्भाशय में संगृहीत मल, विष आदि द्रव्य के हेतु से उत्पन्न योनिशूल, योनि में पीड़ा, योनिदाह, योनि की स्थानभ्रष्टता, योनिखाज, स्मरोन्माद (Hysteria), आदि विकारों को शीघ्र दूर करता है, और शिथिल हुए गर्भाशय को बलवान बनाता है।

प्रसव हो जाने पर कई बार गर्भाशय की मांसपेशियों में निर्बलता आ जाती है। रस रक्त आदि धातुओं में विष प्रवेश होकर लीन हो जाता है। जिससे विचित्र प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं। स्त्रियों को व्याकुलता बनी रहती है और मन अशान्त बना रहता है ऐसी अवस्था में यह चन्द्रांशुरस पीड़ित स्त्रियों के लिये आशीर्वाद रूप है। इसके अतिरिक्त सूतिका रोग का कुछ असर हो, तो उसे भी यह दूर करता है।

(१४५) कुमारकल्याण रस

विधि–रससिंदूर, मोतीपिष्टी, सुवर्णभस्म, अभ्रक भस्म, लोहभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म इन ६ औषधियों को समभाग मिला १ दिन घीकुंवार के रस में घोटकर आध-आध रत्ती की गोलियां बांधें। (भै. र.)

वक्तव्य–उत्तम गुणप्रद कुमारकल्याण बनाना हो तो उसमें रससिंदूर के स्थान पर सुवर्ण चन्द्रोदय मिलाते हैं एवं अभ्रकभस्म सहस्रपुटी, लोहभस्म शतपुटी और मुक्तापिष्टी विशेष मिलाते हैं। इस तरह प्रयोग निर्माण करने पर चमत्कारी लाभ मिलता है।

मात्रा–एक-एक गोली दिन में १या २ बार। माता के दूध, बच और अदरक के स्वरस या शहद अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

छोटे शिशु को १/४ या १/२ रत्ती देवें। अधिक दिनों तक देना हो तो मात्रा कम देवें। हड्डियों की निर्बलता अधिक हो तो साथ में प्रवालपिष्टी भी मिलाते रहें।

उपयोग–यह रस ज्वर, श्वास, कास, वमन, बालशोष, बालग्रह, कामला, पसली (डब्बा), दूषित ज्वर, अतिसार, मन्दाग्नि, निर्बलता, कृशता, इनको दूर करता है, रोग की भयंकर अवस्था में शक्ति का रक्षण करता है और हृदय को उत्तेजना देता है। इस रस के नित्य सेवन से बालक पुष्ट और उत्साही बनता है।

आचार्यों ने इस रसायन को कुमारकल्याण संज्ञा दी है, वह सार्थक है क्योंकि, यह रस निर्बल, कृश और रोगी बालकों के लिये सच्चा कल्याणकर है। सामान्यतः मस्तिष्क श्रम करने वाले कुटुम्बों में स्त्रियों को शारीरिक श्रम कम मिलता है। अतः उनकी संतान बहुधा कमजोर होती है। यकृत अति निर्बल होता है, उनके लिये यह रस आशीर्वाद रूप है। आचार्यों ने इस रस की योजना इस तरह की है कि, यह वात, पित्त और कफ तीनों प्रकृतिवाले बच्चों को लाभ पहुँचा सके। इन तीनों विकृतियों में भी वातज और कफज पर यह रस अधिक प्रभाव दर्शाता है एवं पित्त प्रधान प्रकृतिवालों को इसके साथ प्रवालपिष्टी आदि शामक और पौष्टिक औषधि सम्मिलित की जाय या अरविन्दासव अनुपान रूप से दिया, तो सत्वर फल दर्शाता है।

कोई भी प्रबल व्याधि हो जाने पर बालकों की जीवनीयशक्ति सत्वर कम हो जाती है। फिर धातुपरिपोषण सम्यक् नहीं होता। इस हेतु से यकृत् आदि अवयव निर्बल बन जाते हैं। फिर भोजन पचन योग्य नहीं होता। रसोत्पत्ति लगभग बन्द हो जाती है और बालक दिन-प्रति-दिन गलता है, उसे बालशोष कहते हैं। उस अवस्था में शुष्क, निस्तेज, मुखमण्डल म्लान, देह दुर्बल हाथ-पैर, उदरवृद्धि, नितम्ब पर सलवटें पड़ना, सारा दिन रोना, अग्निमांद्य, अरुचि, अपचन और मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। मलमूत्र दुर्गन्धयुक्त हो जाते हैं तथा मल में आम की प्रतीति होती है। ऐसी अवस्था में इस रस का सेवन कराने से पचन क्रिया सुधरती है, इन्द्रियां अपना-अपना कार्य नियमित करने लगती

हैं, रस रक्तादि धातुओं की उत्पत्ति नियमित होने लगती है और शरीर थोड़े ही दिनों में सबल बन जाता है।

यद्यपि यह रस श्वास, कास, वमन, त्रिदोषजज्वर, सन्निपात, डब्बा आदि रोगों की मुख्य औषधि नहीं है, तथापि इन रोगों की तीक्ष्णा में हृदय का संरक्षण करने के लिये रोग दूर हो जाने के पश्चात् रोग निरोधक शक्ति बढ़ाने के लिये तथा शारीरिक यन्त्रों की क्रिया मि करके देह को सबल बनाने के लिए यह निर्भय रूप से व्यवहृत होता है।

वर्तमान में भारतवर्ष के भीतर बहन-बेटियों को योग्य शिक्षण न मिलने और आर्थिक कठिनता के हेतु से कितनी ही माताएं निर्बल कृश होने से या सगर्भावस्था में बीमार रहने से गर्भ का योग्य विकास नहीं होता। शिशु जन्म के समय निर्बल और कृश भासता है। माता की निर्बलता के हेतु से शिशु का योग्य पोषण और संवर्द्धन न हो उतने परिमाण में दूध (स्तन्य) की प्राप्ति नहीं होती। जो थोड़ा दूध आता है, वह भी पौष्टिक नहीं होता ऐसी अवस्था में यह रस इन निर्बल बालकों को अरविन्दासव के साथ दिया जाय तथा माता को कल्याण-प्रवालपिष्टी-सितोपलादि चूर्ण मिला कर सेवन कराया जाय और माता के भोजन में दूध की मात्रा बढ़ा दी जाय तो बालक को स लाभ पहुँचता है। यदि शैशवावस्था में ही लक्ष्य नहीं दिया जायेगा, तो फिर ३ वर्ष के पश्चात् प्रयत्न करने पर भी योग्य लाभ नहीं पहुंच सक

माताओं के अज्ञान के हेतु से सन्तानों का योग्य रक्षण नहीं होता। माताएं अपनी प्रिय सन्तानों को दांत आनेसे पहले ही अन्न और खिलाना प्रारंभ कर देती हैं। यथार्थ में ३ वर्ष तक बच्चों को अन्त्र में पचन होने वाला आहार नहीं देना चाहिये। आमाशय में पच जाय आहार दूध, फलों का रस आदि देना चाहिये। इस भूल के हेतु से यकृत्वृद्धि होती है, अन्त्र शिथिल बनता है और अन्त्र की संकोच की शक्ति का ह्रास हो जाता है। फिर शरीर निर्बल हो जाता है। अग्निमांद्य, अपचन, किसी को मलावरोध और किसी को अतिसार हो ज है। ऐसे बालकों को पथ्य आहारसह कुमारकल्याण का सेवन कराया जाय तथा आवश्यकता हो तो कुमार्यासव भी दिया जाय तो यकृत् स होकर शारीरिक क्रिया नियमित बना देता है जिससे थोड़े ही समय में देह पुष्ट हो जाता है। किसी-किसी को हरड़ का घासा अनुपान से विशेष अनुकूल रहता है। कितने ही बालक विषमज्वर, मोतीझरा, डब्बा आदि रोग हो जाने के पश्चात् निर्बल रहते हैं। पौष्टिक आहार पर भी रसोत्पत्ति योग्य नहीं होती। फिर शरीर कृश हो जाता है। रोग निरोधक शक्ति निर्बल होने से प्रतिश्याय बना रहता है या बार-बार रहता है, नाक से श्लैष्मस्राव सतत होता रहता है, मन्द-मन्द ज्वर रहता है। मानसिक प्रसन्नता भी प्रतीत नहीं होती तथा कई बालक दुरा और क्रोधी हो जाते हैं। ऐसे बच्चों को कुमारकल्याण रस अदरक के रस (या सोंठ के घासे) और शहद के साथ देते रहने से थोड़े ही दि में रोग निरोधक शक्ति सबल बनती है, धातु परिपोषण क्रम नियमित हो जाता है। फिर थोड़े ही दिनों में बालक नीरोगी और बलवान जाता है। निर्बल बालकों को तैल मर्दन नियमित करते रहना चाहिये;

कितने ही बालक शीतल वायु के आघात को सहन नहीं कर सकते। जिससे उनको थोड़ी भूल होने पर स्वरयन्त्र, श्वासनलिका या फुफ्फु को ठण्डी वायु लगकर कास, श्वास या डब्बा (Broncho Purumoina) हो जाता है, ऐसे निर्बल शक्ति वाले बच्चों को बहुधा कण्ठ घुर-घुर आवाज होती रहती हैं, एवं मन्द ज्वर, अग्निमांद्य, अपचन आदि लक्षण भी कभी-कभी उपस्थित होते हैं। इन बालकों की निर्बल को दूर करने के लिये कुमारकल्याण अमृत के समान उपकार दर्शाता है। उस अवस्था में अनुपान रूप से बच और सोंठ का घासा तथा श विशेष अनुकूल रहता है। यदि बालक का आमाशयिक रस योग्य न बनने से दूध पिलाने पर वमन हो जाता हो (दूध दोष वाला न हो) त इसी हेतु से शरीर निर्बल रहता हो, तो जायफल के घासे के साथ कुमार कल्याण दिया जाता है।

यदि बच्चे के आमाशय का रस अति उग्र हो जाने के हेतु से बार-बार जिह्वा क्षत होता रहता हो या बना रहता हो फिर इस हेतु वांति होती हो और देह कृश रहती हो तो कुमारकल्याण की मात्रा कम करें एवं उसके साथ प्रवालपिष्टी भी देनी चाहिये और माता को श्रृङ्गभस्म मुक्तापिष्टी या प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण का सेवन कराना चाहिये तथा माता को मिर्च, तेल, खटाई, गरम-गरम भोजन कम देना चाहि तथा आंवले या पेठे के पदार्थ देना विशेष हितावह है। इस तरह माता के आहार की भी सम्हाल रखने पर कुमारकल्याण बालक को जल्द लाभ दर्शाता है।

सामान्यतः बालक को पारदप्रधान औषधि अधिक अनुकूल रहती है। पारदप्रधान औषध सेवन से इन्द्रियों पर सत्वर लाभ पहुँचता है। य रस पारद (रससिंदूर) प्रधान होने से सुवर्ण आदि धातुओं के गुण को अनेक गुणा बढ़ा देता है तथा सत्वर लाभ पहुँचाता है। रससिंदूर रसाय यकृत्, हृदय और रक्त आदि के लिये उपकारक और कीटाणुनाशक है। मोती, मस्तिष्क, नेत्र, हृदय, रक्त और अस्थि को बलवान बनाता है त पित्तप्रकोप को दबाता है। सुवर्ण शीतल, रसायन, मस्तिष्क के वातनाड़ी और हृदय के लिये पोषक, विष का संशोधक, कीटाणुनाशक और आयुवर्द्ध है और अभ्रक रसायन, उत्तेजक, सर्वरोग हर, वातनाड़ी, मांसपेशियां हृदय आदि के लिये हितकर तथा कीटाणुनाशक है। लोहभस्म रक्तपौष्टिक है। सुवर्णमाक्षिक रक्तपौष्टिक, पित्तशामक तथा मस्तिष्क के लिये हितकर है। घीकुंवार की भावना देने से अन्त्रस्थ विकृति यकृद्विकृति और मलावरो में भी लाभ पहुँचता है। इस रसायन का संयोगजन्यगुण धातु परिपोषण क्रम को नियमित बनाना, इन्द्रियों को सबल बनाना तथा कीटाणु वि को नष्ट करना आदि है।

(१४६) बालसंजीवन रस

विधि–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल, जावित्री और लोंग सबको समभाग लें। प्रथम कज्जली करें। फिर जायफल, आदि का बारीक चूर्ण मिलाकर खरल कर लें। (बा.चि.)

मात्रा–आध से १ रत्ती माता के दूध या शहद के साथ दें।

उपयोग–यह रस बालकों के ज्वर, कास, अतिसार, वमन, जुकाम, अपचन, मन्दाग्नि आदि रोग में अति लाभदायक है। कब्ज हो तो पहले उदरशुद्धि करके बालसंजीवन रस देना चाहिये।

यह रस सामान्य भासता है, किन्तु बालकों के लिये अति हितावह है। इसमें कीटाणुनाशक, विषहर, यकृत्पोषक, मस्तिष्क शामक, दीपन-पाचन और ग्राही गुण अवस्थित है। अतः जिन शिशुओं को बार-बार मंद ज्वर, कफप्रकोप, अपचन, दुर्गन्धमय अतिसार, वान्ति, प्रतिश्याय और उदरकृमि आदि रोग हो जाते हैं, उनके लिये यह निर्भय और उत्तम औषधि है। आवश्यकता पर दिन में ३ बार दे सकते हैं।

कतिपय शिशुओं के देह में शुद्ध रसोत्पत्ति नहीं होती। बार-बार कफप्रकोप और प्रतिश्याय होते रहते हैं। फिर शरीर कृश, निर्बल और निस्तेज बन जाता है। पचनक्रिया योग्य नहीं होती। मल शुष्क होकर गाँठें बन जाती हैं। किसी-किसी को फक्करोग (Gees disease) की संप्राप्ति होकर दस्त आम और *वसा प्रधान बन जाता है और उदर बड़ा हो जाता है। इस रसविकृति को सुधारने के लिये लघुबसन्त नं. २ और बालसंजीवन रस का मिश्रण अति हितावह है। एकाध मास तक नियमित सेवन कराना चाहिये। यदि कफप्रकोप अधिक हो तो श्रृंगभस्म भी साथ में मिला देनी चाहिये।

माता की देह में रक्त की न्यूनता रहने से शिशु का पोषण नहीं होता एवं संवर्धन अति कम होता है। यदि माता का यकृत निर्बल है और वह घृत तैल अधिक खाती रहती है, तो स्तन्य द्वारा बच्चे पर भी असर पहुँचता है। बच्चा पाण्डु पीड़ित हो जाता है और यकृत् भी निर्बल (बड़ा) हो जाता है। इन बालकों को पुष्ट बनाने के लिये बालसंजीवन रस और मण्डूर माक्षिक भस्म को मिश्रित करके दिया जाता है। यदि मन्द-मन्द ज्वर भी आता रहता हो, तो मण्डूरमाक्षिक के स्थान पर लघुवसन्त नं. २ मिलाकर सेवन कराया जाता है।

शिशु को जल्दी बलवान बनाने की आशा से थोड़े-थोड़े समय पर विशेष दूध पिलाते रहने से आमाशय की पचनक्रिया विकृत हो जाती है। फिर योग्य पचन नहीं होता। पतले दुर्गन्धमय सफेद मैले दस्त होते हैं। किसी-किसी को थोड़ा ज्वर भी रहता है। इनको बालसंजीवन रस और गोदन्तीभस्म मिश्रित करके दिन में २ बार सेवन कराते रहने पर कुछ दिनों में स्वास्थ्य सुधर जाता है।

कतिपय शिशुओं को आमाशय प्रदाह हो जाने से दूध पिलाने पर तुरन्त वान्ति हो जाती है जिससे बालकों को पूरा पोषण नहीं मिलता एवं तृप्ति न मिलने से बच्चा सारे दिन रोता रहता है और सूखता जाता है। इन बच्चों को बालसंजीवन रस दिन में २-३ बार देते रहने से थोड़े ही दिनों में आमाशय प्रदाह दूर होकर पचन क्रिया सुधर जाती है।

इस रसायन में मिले हुये पारद में कीटाणुनाशक; विकासी और योगवाही गुण हैं। पारद बालकों को अधिक अनुकूल रहता है। रसायन गुण के हेतु से विष को नष्टकर न्यून हुई शक्ति को सत्वर बढ़ा देता है। कीटाणुनाशक गुण के हेतु से रोगोत्पादक कीटाणुओं का नाश करता है। योगवाही गुण के हेतु से साथ में मिली हुई औषधियों के गुण में वृद्धि कराता है। गन्धक में कीटाणुनाशक शोधन गुण हैं। जायफल, जावित्री और लौंग में दीपन, पाचन, कुछ ग्राही, कीटाणुनाशक, कफघ्न और वातहर गुण अवस्थित हैं।

जायफल आदि तीनों में उड्डयनशील तैल रहता है, यह तैल भी पारद के समान देह के अणु-अणु में फैल जाता है और कीटाणुओं को नष्ट कर देता है। यह कार्य जातिफलादि द्रव्यों का चूर्ण नया होने पर जैसा होता है वैसा पुराना मिलाने पर बालसंजीवन रस से पूरा लाभ नहीं मिलता।

सूचना–(१) माता के खानपान के हेतु से शिशु को कष्ट पहुँचता हो, तो उसमें सुधार करना चाहिये। माता के रोग के उपद्रव रूप से बच्चे को रोग उत्पन्न हुआ हो, तो माता को भी साथ-साथ औषधि देते रहना चाहिये। माता को रोग अधिक प्रबल और दुःखदायी हो, तो माता का दूध छुड़ा देना चाहिये और अनुपान रूप से शहद मिलाना चाहिये।

(२) रोगावस्था में शीत, वर्षादि का आघात न लग जाय, यह सम्हालना चाहिये।

(३) बालक को अन्न का सेवन कराया जाता हो और अपचन हो तो अन्न और घी कम करके दूध और फलों का रस अधिक परिमाण में देना चाहिये।

---

* मल को सुखाकर जाँच की जाय, तो ५०% तक वसा पृथक् हो जाती है।

(१४७) चन्द्रशेखर रस

विधि–रससिंदूर, अभ्रक भस्म, कान्तलोह भस्म, मण्डूर भस्म, गोरोचन और सोहागे का फूला, सबको समभाग मिला गोकर्णी(कोयल) रस में १२ घण्टे खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें। (भै.र

मात्रा–आध से १ गोली तक माता के दूध, जल या रोगानुसार अनुपान के साथ दिन में २ से ३ बार देवें।

उपयोग–यह रस यकृत् आदि पचन अवयवों को बल प्रदान करता है एवं श्वसन संस्थान और हृदय को भी उत्तेजित करता हैं। इस के सेवन से बालकों के अनेक रोग-मलावरोध होकर उत्पन्न आमज्वर, स्तन्यदोष से उत्पन्न सन्निपात, खाँसी, श्वास, अजीर्ण, वमन, अतिसार, जुकाम, धनुर्वात, डब्बा आदि रोग दूर होते हैं, और बालक पुष्ट होते हैं।

(१४८) बालार्क गुटिका

विधि–शुद्ध खर्पर, (या यशद भस्म) प्रवाल भस्म, श्रृंङ्गभस्म, शुद्ध सिंगरफ, सोहागे का फूला, सफेद मिर्च, कचूर और केसर इन औषधियों को समभाग मिला जल में खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें। (वै.सा.सं.

मात्रा–१-१ गोली माता के दूध अथवा शहद और बायविडंग के चूर्ण के साथ दिन में दो बार देवें।

उपयोग–सुवर्णमालिनी के समान यह बालार्क गुटिका भी रसादि सातों धातुओं को पोषण प्रदान करती है, निर्बल बालकों को पुष्ट बना में अति हितकर है। सामान्यतः यह वटी बालकों के वातश्लेष्म-विकार, सूक्ष्म ज्वर, अस्थिमार्दव रोग, खांसी, श्वास, कृमि, जुकाम, मन्दाग्नि वमन, अतिसार आदि को दूर करके बालकों को प्रसन्न और पुष्ट बनाती है।

जिन बालकों की माता का शरीर निर्बल होने से या माता को योग्य पोषण न मिलने से बालक का योग्य विकास न होता हो, अग्नि निर्बल हो, दाँत जल्दी न निकले हों, स्फूर्ति कम हो और पचन क्रिया सदोष होने से बार-बार पतले दूषित दस्त हो जाते हों, उन बच्चों बालार्क गुटिका का सेवन कराते रहने से उनके देह का योग्य विकास हो जाता है, तथा वे नीरोगी और सबल बन जाते हैं।

कफ प्रकृति वाली माता के अथवा क्षय या श्वास-कास पीड़ित माता की संतान को ऋतुपरिवर्तन या थोड़ी भूल होने पर कफप्रकोप जाता है। फिर प्रतिश्याय, छींके आना, कण्ठ में घर-घर आवाज और कफ से छाती जकड़ जाना, कभी-क ज्वर भी आ जाना आदि विकार हो जाते हैं। उन बालकों को बालार्क गुटिका का सेवन कराने से वे नीरोग और सबल बन जाते हैं।

माता का दूध न मिलने से कितने ही बालकों को ऊपर के दूध पर रखना पड़ता है। उस दूध में जल मिलाकर माता के दूध के सम पतला बनाना पड़ता है और ताजा लेना पड़ता है। भूल होने पर पचनक्रिया बिगड़ती है। फिर रसोत्पत्ति योग्य नहीं होती। बालक दिन-प्र दिन गलता जाता है। उसको स्वस्थ बनाने के लिये पथ्य की योजना के साथ बालार्क गुटिका का सेवन कराया जाय तो वे स्वस्थ और सब बन जाते हैं।

किसी कारणवश बालक को ज्वर जीर्ण हो जाने पर वह अति निर्बल और कृश हा जाता है। मन्द-मन्द ज्वर रहना, थोड़ा-थोड़ा दुर्गन्धयु दस्त होते रहना, मूत्र में पीलापन, स्फूर्ति का अभाव, जुकाम और कास आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। शारीरिक उत्ताप ९९° तक हो जा हो, उसे थोड़े ही दिनों तक बालार्क गुटिका का सेवन कराने पर स्वास्थ्य सुधर जाता है और उसका योग्य विकास होने लगता है।

(१४९) दन्तोद्भेदगदान्तक रस

विधि–पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, अजमोद, अजवायन, हल्दी, मुलहठी, देवदारू, दारुहल्दी, बायविडंग, छोटी इलायची, नागकेश नागरमोथा, कचूर, काकड़ासींगी, बिड़नमक, अभ्रकभस्म, शंखभस्म, लोहभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म, सबको यथाविधि समभाग मिलाकर बब के दूध के साथ ६ घण्टे खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें। (भै.र.

मात्रा–१-१ गोली दिन में २ बार जल या माता के दूध के साथ दें या गोली का चूर्ण कर दिन में ३ बार दन्तपाली पर घर्षण करें

उपयोग–इस रस के उपयोग से बालकों के दांत आने के समय होने वाले अतिसार, ज्वर, धनुर्वात आदि विकार दूर होकर दांत श्री बिना कष्ट बाहर निकल आते हैं।

बच्चों को दांत आने के समय मसूड़ों में कण्डू होती है और एक प्रकार का विषमय रस उत्पन्न होता है; उसे बच्चा निगलता रहता है इस रस के हेतु से आमाशय के भीतर होने वाली पचनक्रिया विकृत होती है एवं यकृत् निर्बल होने से विषाक्त रस का जब अन्त्र में भी यकृ के पित्त द्वारा रूपान्तर नहीं हो सकता: तब हरे-पीले फटे हुए दुग्धमय अतिसार होते रहते हैं। यदि इस विष का शोषण रक्त में होता है ज्वर भी उपस्थित होता है। वातनाड़ियों और वातकेन्द्र पर अधिक असर होने पर आक्षेप आता है। इन सब विकारों का मूल विषमय रस है यह रसायन आमाशय में उत्पन्न होने वाले रस (Gastric Juice) और यकृत से निकलने वाले पित्त (Bile)का स्राव अधिक कराता है

एवं उसे सबल बनाता है। इस हेतु से विषमय रस का रूपान्तर होता जाता है। जिससे वह ज्वर, अतिसार या आक्षेप आदि विकारों को उत्पन्न नहीं कर सकता।

(१५०) मृद्विरेचन रस

विधि–छोटी इलायची के दाने १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, शुद्ध मुर्दासंग*२ तोले और सौंफ ३ तोले लें। सबको यथाविधि मिला बारीक चूर्ण करें। (र.चं.)

मात्रा–बालकों को आधी-आधी रत्ती दिन में ३ बार दूध के साथ ५ दिन तक रोज सुबह दें। बड़ी स्त्रियों को ४-४ रत्ती दिन में ३ बार।

उपयोग–मिट्टी खाने से पाण्डु अथवा अन्य रक्ताल्पता रोग हुआ हो तब जुलाब के लिये यह औषधि दी जाती है। इस औषधि से मिट्टी दस्त में निकल कर प्रकृति स्वस्थ बन जाती है। यह औषधि स्त्रियों और बालकों के लिये अति हितकर है।

मिट्टी खाने से उत्पन्न पाण्डु रोग जीर्ण होने पर प्रायः उदरकृमि हो जाते हैं; तब मृदु विरेचन या कपीला, वायविडङ्ग, डिकामाली और कालानमक भोजन के प्रारम्भ में देकर कृमियों को निकाल देना चाहिये। रोग अति पुराना हो, तो मृदु विरेचन रस १ दिन दें, १ दिन न दें। इस तरह १ मास तक या पाण्डु दूर होकर उदर नरम होने तक प्रयोग करना चाहिये।

(१५१) सर्वाङ्गसुन्दर रस

विधि–समगुण गन्धक वाली रस पर्पटी २ तोले तथा जायफल, जावित्री, लौंग, निम्बपत्र, निर्गुण्डी के पत्ते और छोटी इलायची के दाने १-१ तोला लें। काष्ठादि औषधियों का महीन चूर्ण करें। फिर पर्पटी मिला जल के साथ १२ घण्टे खरल करें। पश्चात् जिनमें मोती होते हैं उन सीपों में इसका लेपकर २-२ सीपों का संपुट बना लेवें। ऊपर २-२ अंगुल मिट्टी लगा पुटपाक विधि अनुसार आरण्य कण्डों में पका लें। संपुट लाल होने पर निकाल लें। स्वांग शीतल होने पर औषधि को निकाल पीसकर शीशी में भर लें। (र.च.)

वक्तव्य–इस रस को पुटपाक विधि से न पकावें तो यह महागन्ध कहलाता है।

मात्रा– आधी से १ रत्ती माता के दूध या शहद के साथ देवें।

उपयोग–यह रस बालकों के रक्षण के लिये महौषधि है। ज्वरघ्न, दीपन, बल और कान्ति को बढ़ाने वाला है। भयंकर संग्रहणी, प्रवाहिका (पेचिश), सूतिका रोग; रक्तार्श और अन्य रक्तज व्याधियों को नष्ट करता है जहाँ इसका उपयोग होता है वहां विविध जाति के कीटाणु जो बच्चों को पीड़ा देते हैं वे प्रवेश ही नहीं करते। बालकों के समान स्त्रियों को भी प्रदर आदि व्याधियों में हितकर है।

बाहर के दूषित दूध से उत्पन्न अतिसार, मल में जल ही जल, या जलमिश्रित दूषित दूध, बार-बार जल समान जुलाब होते रहना, मल में खट्टी-सी दुर्गन्ध, मल का सफेद रंग या आटे मे जल मिला हो ऐसा रंग, साथ में थोड़ी वमन, अफारा, बार-बार डकार, कण्ठ में कांटे से पड़े होना आदि लक्षण होते हैं। इनमें यह रस उत्तम लाभदायक है। (उस अवस्था में सर्वाङ्गसुन्दर के साथ लोहबान पुष्प और लहशुनादि वटी मिला देना विशेष लाभदायक है।)

गर्मी के दिनों में दूध फट जाने या कीटाणु मिश्रित हो जाने से किसी-किसी बच्चे को भयंकर ज्वरातिसार हो जाता है। ज्वर १०१° डिग्री से १०४°-१०६° तक बढ़ जाता है। प्रारम्भ में बार-बार हरे-पीले गर्म-गर्म जल के समान दस्त होते हैं, पश्चात् जुलाब बार-बार किन्तु मल या जल थोड़े-थोड़े परिमाण में आता है। साथ साथ वमन, बेचैनी, प्यास आदि भयंकर लक्षण भी होते हैं। प्यास के हेतु से बालक अति बेचैन होता है। यदि दूध अधिक दिया जाता है, तो अतिसार बढ़ जाता है,और तृषा भी अधिक लगती है। व्याकुलता इतनी अधिक होती है, कि बालक शय्यापर सो नहीं सकता। ऐसी स्थिति में दूध बन्द कर देना चाहिये। (सन्तरा या मोसम्बी का रस बकरी का दूध दें सकते हैं)। चावल की खील को उबाल छानकर जल को पिलाते रहना चाहिये और सर्वाङ्गसुन्दर रस बहुत थोड़े परिमाण में बार-बार देते रहना चाहिये।

यदि अफारा अधिक हो और जुलाब बार-बार थोड़े-थोड़े परिमाण में किन्तु अधिक समय होते हों, और ज्वर भी अधिक हो, तो लक्ष्मीनारायण रस को प्रवालपिष्टी के साथ मिलाकर देना अधिक हितकर है। बड़े-बड़े जुलाब जल समान प्रवाही पीले रंग वाले होते हो, तो सर्वाङ्गसुन्दर रस देना चाहिये। साथ में कम मात्रा में दूध की शक्कर(Lactose) सैंधानमक अथवा सोहागे का फूला या सोडाबाई कार्ब देते रहने से सत्वर लाभ पहुँचता है। इस तरह दुग्ध विकृति अन्न विष या अन्य कारण से उत्पन्न ज्वरातिसार में भी यह रस अति हितकर है।

---

* मुर्दासङ्ग की शोधन विधि प्रदरान्तक लोह के अन्त में दी है, उसके अनुसार शोधन कर लेना चाहिये।

ग्रहणी रोग की प्रथमावस्था में जब तक आमानुबन्ध हो, बार-बार थोड़े-थोड़े आम और वेदनासह दस्त होते रहते हों, तब तक कुटजा और कुटजादि वटी लाभदायक है। किन्तु तीव्रता कम होने पर आम कम हो जाय, रक्त गिरने लगे, मल गोबर या काई के समान हो बार-बार दस्त होता रहे, ऐसी परिस्थिति में सर्वाङ्गसुन्दर का बहुत अच्छा उपयोग होता है। इस रोग की जीर्णावस्था आ जाने पर पर्पटी क उपयोगी होता है।

यदि प्रवाहिका होती है तो शौच की मर्यादा नहीं रहती। किसी-किसी को बार-बार बूंद-बूंद शौच आते रहते हैं। कितनों ही को बा किंछना पड़ता है। बालक अति बेचैन हो जाता है। गुदपाक होता है; शौच के समय काँच बाहर निकलती है। इस विकार पर सर्वाङ्ग सु रस अति प्रशस्त औषध है।

बालक का जन्म होने के पश्चात् भूल होने पर स्त्री को सूतिका रोग हो जाता है। यह सचमुच दारुण व्याधि है। प्रसूता को क्षय, पाण ग्रहणी आदि रोग होते हैं, वे चिकित्सा करने में अति कठिन हैं। इनमें से अतिसार और ग्रहणी होने पर इसका उत्तम उपयोग होता है। बड़े बड़े गरम-गरम पीले रंग के जुलाब होते हैं। ग्रहणी होने पर अग्निमांद्य, बार-बार शौच की शंका बनी रहना, बार-बार रक्त मिश्रित थो थोड़ा शौच होना आदि लक्षण होने पर सर्वाङ्गसुन्दर देना चाहिये। रुग्णा अति अशक्त और बलमांसविहीन हो गई हो तो इसके साथ सुवर्णमालिनीव देने पर अधिक उपयोग होता है।

माता का दूध दूषित हो जाने से अतिसार या संग्रहणी रोग हुआ हो, तो बच्चा और माता, दोनों को सर्वाङ्गसुन्दर देना चाहिये। जिस साथ-साथ दूध की भी शुद्धि हो जाय। सगर्भा माता का दूध पीते रहने से बालक को पारिगर्भिक रोग हो जाता है, तब अतिसार, बड़े-ब जुलाब, वान्ति, बालक का शुष्क हो जाना, हाथ पैर पतले और उदर घड़े के सदृश हो जाना, कुछ भी खाने पर न पचना, दिन भर खाते रहना विशेषत; चरपरे, खट्टे आदि पदार्थ खाने की अतिइच्छा होना आदि लक्षण होने पर माता का दूध छुड़वाकर सर्वाङ्गसुन्दर रस देने से उत्तम का होता है। (ऐसी अवस्था में माता और बालक दोनों को औषधि देनी हो तो सर्वाङ्गसुन्दर रस, प्रवाल पंचामृत और गोदन्ती भस्म मिलाकर दे चाहिये।

अस्थिवक्रता (Rickets) रोग में बालकों की हड्डी को योग्य परिमाण में चूना नहीं मिलता, जिससे व्याधिसंकर या उपद्रव रूप से अतिस होता है। इस अतिसार की सब अवस्थाओं में सर्वाङ्गसुन्दर उपयोगी है। साथ में प्रवालपिष्टी और मण्डुर भस्म का भी उपयोग करना चाहि

इस सर्वाङ्गसुन्दर रस के साथ बकुल (मोलसरी) की छाल का चूर्ण आधा तोला मिलाकर दिन में ३ बार देने से रक्तप्रदर में मात्र ३ दिन के भीतर ही आश्चर्यकारक लाभ पहुँच जाता है। (औ.गु.ध.शा.

(१५२) माणिक्यरसादि गुटिका

विधि-हरताल से बनाया हुआ माणिक्य रस, शुद्ध सिंगरफ, एलुवा, पीपल, सैंधानमक, कालानमक, इन्द्र जौ, कोयल (गोकर्णी) के बी २-२ तोले, शुद्ध मैनसिल, सोहागे का फूला, जवाखार, लालबोल, सोंठ, मिर्च, अजवायन, अकलकरा, बायविडंङ्ग ये ९ औषधियाँ १-१ तोल केसर, जायफल, जावित्री, इलायची, तेजपात और उसारेरेवन ये ६ औषधियाँ ६-६ माशे लेवें। पहले माणिक्य रस, सिंगरफ और मैनसिल मिलाव फिर केसर को अलग रख शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलावें। ६ घण्टे खरलकर फिर केसर का बारीक चूर्ण मिला ३ घण्टे तक ख करें। पश्चात् नागरबेल के पान के रस में ३ दिन खरलकर ¼-¼ रत्ती की गोलियां बांधें।
(आ.नि.मा.)

मात्रा-१-१ गोली दिन में २ से ३ बार पान के रस में दें और उदर पर डिकामाली (नाड़ीहिंगु) और एलुवा का लेप करें।

उपयोग-इस गुटिका के प्रयोग से बालकों के श्वास, हृदयावरोध, अफारा, कास, अतिसार, ज्वर, शूल, आदि रोग दूर होते हैं। यह आमाश और अन्त्र में संगृहीत मल, आम और विष को बाहर निकालती है, उत्तेजना प्रदान करती है तथा फुफ्फुस प्रणालिकाओं में संचित श्लेष्मा दूरकर डब्बारोग में अपना प्रभाव तुरन्त दिखाती है। सैंकड़ों बच्चों के जीवन की रक्षा इस गुटिका ने की है।

(१५३) हरताल पुष्प

विधि-२० तोले शुद्ध हरताल के चूर्ण को ५ सेर जल रह सके ऐसी हांडी में रखें। पहले हांडी के मुख को पत्थर पर जल डालक घिस लेना चाहिये फिर हांढ़ी मुखपर समान मुंहवाली २० सेर जल रह सके, उतनी बड़ी हांड़ी रखें। संधिस्थान को गर्म जल मिलाये हु उड़द के आटे से बन्द करें। सूखने पर ऊपर शहद चूनेवाली कपड़े की पट्टी के ३-४ तह लपेट, छोटे चूल्हे पर चढ़ाकर २४ घन्टे मन्द अ मध्यम आंच देकर पुष्प उड़ालें। आँच देने के समय बार-बार ऊपर की हांड़ी पर हाथ लगावें। अधिक गरम न हो जाय, इस बात का ख्या

रखें। यदि ऊपर की हांड़ी गर्म हो जाय, तो बीच में १-२ घण्टे या ३-४ घण्टे अग्नि मन्द दें, या न देवें। फिर अनुकूलता पर अग्नि दें। अच्छी रीति से पुष्प उड़ जाने पर यन्त्र को खोलकर ऊपर की हांड़ी के भीतर चारों और ऊपर के हिस्से में श्वेत वर्ण के कण मिलेंगे जो अति शक्तिशाली होते हैं। इसके निम्न भाग में हरताल के भीतर रहा हुआ गंधक, हरताल के सदृश पीले रंग का होता है, वह अलग निकाल लें।

वक्तव्य-यन्त्र उत्तम जाति का बनाया होगा, और संधिस्थान ठीक बन्द होगा, तो ४ गुनी मात्रा में या अधिक एक साथ बनाने पर गन्धक नहीं उड़ सकता एवं पृथ्क भी नहीं होता। पुष्प पीले रंग के निकलते हैं, जो विशेष फलदायी बनते हैं।

मात्रा- $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{4}$ रत्ती तक श्वेतपुष्प नागरबेल के पान या शहद या गौघृत के साथ दें। सर्पविष में १५-१५ मिनट के बाद, कफोल्वण सन्निपात में ३-३ घण्टे पर और कुष्ठ में दिन में ३ बार दें। तीव्र श्वास-प्रकोप में नागर बेल के पान के साथ दें।

उपयोग-यह श्वेतपुष्प सर्पविष, महाकुष्ठ, श्वेतकुष्ट, शून्यकुष्ट, उपदंश विकार, रक्त-विकार, श्वास, कास, विषमज्वर आदि रोगों को दूर करता है। सब प्रकार के कफ और वात प्रधान रोगों पर लाभदायक है।

यह पुष्प वातज, कफज, वातकफज और कफपित्तज कुष्ठ पर लाभदायक है। जिस कुष्ठ में केवल पित्त की प्रधानता हो, मात्र उस पर नहीं देना चाहिये। शीताँग सन्निपात, निमोनिया, श्लैष्मिक सन्निपात में एवं अन्य सन्निपात में जब बेहोशी, नाड़ी अत्यन्त मन्द होना, श्वासवाहिनी कफ से भर जाना, हृदय का अवरोध होने लगना आदि लक्षण उपस्थित हो, उन पर यह हरताल पुष्प अच्छा काम देता है।

उपदंश रोग जीर्ण होने पर श्वास, कास, त्वचा पर काले-लाल धब्बे, कुष्ठ, फोडा-फुन्सी, नेत्र में कमजोरी, सन्धिवात, आदि उपद्रव होते हैं। कभी-कभी विकृति, रक्त, मांस और अस्थि तक पहुँच जाती है। ऐसी अवस्था में यह रसायन रक्त शोधक अरिष्ट के साथ देते रहने से सत्वर लाभ पहुँचता है। विषमज्वर, पाली के एकान्तरा, चातुर्थिक आदि ज्वर, बार-बार अनियमित समय पर थोड़े-थोड़े दिन बाद आने वाले परिवर्तित ज्वर, सब पर तुलसी का रस या द्रोणपुष्पी के रस या त्रिकटु शक्कर और घी के साथ देने से सब शमन हो जाते हैं।

(१५४) आखुविषान्तक रस

विधि-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, सोंठ, मिर्च, पीपल, सोहागे का फूला, और कुटकी को समभाग लें। फिर यथाविधि मिला पुनर्नवा के रस और गौमूत्र की ३-३ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (यो.र.)

मात्रा-१से २ गोली वंध्या कर्कोटकी (ककोड़ा) के मूल के चूर्ण के साथ अथवा पाठा क्वाथ के साथ देवें।

उपयोग-यह रस जहरी चूहे के विष और अन्य विषैले जीवों के विषप्रकोप को दूर करता है।

सूचना-इस औषधि के सेवन के साथ, पारद, गन्धक, हल्दी, दुपहरिया (बांकुली) के फूल, घर का धुंआसा और सिरस के बीज, सबको समभाग मिला आक के दूध में खरल करके दंशस्थान पर लेप करते रहना चाहिये।

(१५५) कामिनीविद्रावण रस

विधि-शुद्ध हिंगुल ६ माशे, शुद्ध गन्धक ६ माशे, शुद्ध अफीम ८ तोले, केसर, जायफल, अकलकरा, जावित्री, पीपल, लौंग, सोंठ और लाल चन्दन ये आठ द्रव्य २-२ तोले लें। पहले हिंगुल, गन्धक और अफीम को मिलावें। फिर शेष वस्तुओं का चूर्ण मिला, जल या नागरबेल के पान के रस में ६ घण्टे घोटकर आध-आध रत्ती की गोलियां बनालें। (भै.र.)

मात्रा-१-१ गोली रोज शाम को दूध के साथ लें। कब्ज हो तो सुबह उदर साफ कर लेवें।

उपयोग-इस रस के सेवन से धातु का पतलापन, निर्बलता, मन्दाग्नि और मस्तिष्क की कमजोरी दूर होकर वीर्यस्तम्भन शक्ति की वृद्धि होती है।

सूचना-इस औषधि में अफीम बहुत ज्यादा परिमाण में है; अतः कम मात्रा में प्रकृति और ऋतु का विचार करके सेवन करना चाहिये। अधिक दिनों तक सेवन करने से प्रकृति औषधिवश बन जाती है; इसलिये थोड़े दिन सेवन कर औषधि को बन्द कर देना चाहिये।

(१५६) शुक्रमातृका वटी

विधि-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म और लोहभस्म प्रत्येक ४-४ तोले, छोटी इलायची के दाने, गोखरू-हरड़, बहेड़ा, आंवला, तेजपात, रसोंत, धनियां, चव्य, जीरा, तालीसपत्र, सोहागे का फूला और मीठे अनारदाने ये १३ औषधियाँ २-२ तोले तथा शुद्ध गूगल १ तोला

लें। पहले पारद और गन्धक की कज्जली करके अभ्रकभस्म और लोहभस्म मिलावें। फिर अन्य औषधियों का चूर्ण मिला-गोखरू के क्वाथ मीठे अनार के रस में १२ घण्टे घुटाईकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। (भै.र.)

मात्रा-१ से २ गोली दिन में २ बार जल या बकरी के दूध अथवा मीठे अनार के रस के साथ देवें।

उपयोग-इस रस के सेवन से वीर्यस्राव, सब प्रकार के वातज, पित्तज, कफज प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्र आदि दोष दूर होकर वीर्य शुद्ध और गाढ़ा बनता है। यह बल, वर्ण, अग्नि को प्रज्वलित करके जीर्णज्वर(अस्थिगत ज्वर) को नष्ट करता है। अश्मरी (पथरी)में भी लाभदायक है। इसके सेवन से रक्त में रक्ताणुओं की वृद्धि होती है, मांसग्रन्थियां सुदृढ़ बनती है एवं मानसिक शक्ति भी बढ़ती है।

शुक्राशय निर्बल बन जाने पर उसमें शुक्रसंचय अधिक नहीं हो सकता है एवं थोड़ा-सा विघ्न उपस्थित होने पर रात्रि को निद्रा में स्वप्नदोष हो जाता है। मलावरोध रहना, मूत्राशय में मूत्र संग्रह हो जाना, उदर में वायु उत्पन्न होना स्त्री संपर्क का स्वप्न आना, इनमें से कुछ भी कारण बनने पर स्वप्नदोष हो जाता है। उन रोगियों को शुक्रमातृका और चन्दप्रभा का सेवन लम्बे अरसे तक कराया जाय और आग्रहपूर्वक ब्रह्मचर्य पालनसह लघु पथ्य भोजन कराया जाय, तो शुक्राशय की निर्बलता तथा शुक्र का पतलापन दोनों विकृतियां दूर हो जाती हैं।

वर्त्तमान में समाज के पाश्चात्य शिक्षा दीक्षा वाले नवयुवकों और युवतियों ने बीड़ी, सिगरेट, तमाखू खाना, गरम-गरम चाय पीना, तले हुए पदार्थ चाहे तब खाते रहना, अति मिर्च-मसाला और तेज खटाई खाना आदि दुर्व्यवसों को अपनाया है। इनके अतिरिक्त रात्रि का जागरण करना और बार-बार सिनेमा देखना भी उनके लिए सामान्य बात है। इनमें से अधिकांश मनुष्य शारीरिक श्रम भी नहीं करते। जिससे पचनक्रिया बिगड़ती है एवं शुक्र पतला और गरम रहने लगता है। विषय भोग की लालसा बनी रहती है। परिणाम में उनको जरा-सी कामोत्तेजना हुई या दूषित विचार आया, कामशास्त्र की पुस्तक में ऐसे प्रसंग को पढ़ा या छोटी बड़ी बहन-बेटी का स्पर्श हुआ, तत्काल शुक्रपात हो जाता है। यदि ये रोगी अपने दुर्व्यसनों को त्याग देवें और संयमशील जीवन के पालनसह शुक्रमातृकावटी और सुवर्णमालिनी वसन्त (या कामचूड़ामणि) का सेवन लघु मात्रा में लम्बे अरसे तक करें तो भावी जीवन सुखमय बना सकते हैं।

सूचना-शुक्रमातृका वटी से तत्काल लाभ प्राप्त हो, इस आशा में बड़ी मात्रा ली जायगी या कुछ दिन सेवन करके छोड़ दी जायगी तो उचित लाभ नहीं मिल सकेगा।

(१५७) पुष्पधन्वा रस

विधि-रससिंदूर द्विगुण गन्धक जारित या पारदभस्म, नागभस्म, लोहभस्म,अभ्रकभस्म और वङ्गभस्म ये ५ औषधियाँ समभाग मिला; धतूरा, भांग, मुलहठी, सेमल की छाल और नागरबेल के पत्तों के रस की १-१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। (भै.र.)

मात्रा-१ से २ गोली तक दिन में २ बार दूध, घी, मक्खन, मलाई अथवा शहद के साथ लेवें।

उपयोग-यह रस अत्यन्त कामोत्तेजक और वीर्यवर्द्धक है। अण्डकोष फलवाहिनी और शुक्रवाहिनी की निर्बलता से आई हुई नपुंसकता, मानसिक दोष से होने वाली नपुंसकता, स्मृतिनाश, निद्रानाश, वीर्य का पतलापन, इन्द्रिय की शिथिलता स्त्रियों के बीजकोष (Ovaries) का विकास न होने से होने वाला बन्ध्यत्व उपदंश अथवा सूजाक से होने वाला योनिस्राव, स्त्रियों के नये अस्थिक्षय (हड्डी कमजोर हो जाना) शुक्रमेह, लालामेह, अथवा प्रमेह के कारण से होने वाली नपुंसकता आदि रोगों को दूर करने वाली औषधियों में पुष्पधन्वा रस प्रथम श्रेणी माना गया है।

नपुंसकत्व अनेक कारणों से होता है। इनमें अण्डकोष, फलवाहिनियां, शुक्राशय, शुक्रवाहिनियाँ आदि का योग्य विकास न होना, यह भी एक हेतु है। यदि इन अण्डकोषदि में वैगुण्य होने से नपुंसकता आई हो, तो पुष्पधन्वा का उपयोग होता है। इससे पुरुषों के अविकसित अण्डकोष और स्त्रियों के अविकसित बीजाशय का योग्य विकास होता है। इस तरह फलवाहिनियाँ और शुक्रवाहिनियां मोटी और भारी हो जाने से शुक्रवहन कार्य या रजोवहन कार्य योग्य न होने से नपुंसकता आई हो, तो इस रस के सेवन से इन वाहिनियों का विकार कम होकर नपुंसकता दूर होती है।

अनेक व्यक्तियों को मानसिक कारणों से कथन मात्र की या कुछ अंश में आई हुई नपुंसकता इस रस के सेवन से दूर हो जाती है। अन्य कारणों से बीच-बीच में भासमान नपुंसकता और फिर चेतना आना, ऐसा संशय होने पर पुष्पधन्वा का उपयोग उत्तम होता है।

अति व्यवाय और उससे उत्पन्न स्मृतिनाश या निद्रानाश, स्त्री समागम की तीव्र इच्छा होने पर उसका अकस्मात् भेद हो जाने से होने वाला स्मृतिनाश या निद्रानाश, इस विकार पर पुष्पधन्वा का अच्छा उपयोग होता है। यदि अनिच्छा से ब्रह्मचर्य पालन के प्रयत्न करने पर निद्रानाश हुआ हो, तो उस पर इस रस का उपयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिये; वरना विपरीत परिणाम आता है।

अति व्यवायी मनुष्य को व्यवाय-विषयक या स्त्री सम्बन्धी विचार आने पर शीर्षशूल उत्पन्न होकर रेतः स्खलन हो जाता है फिर शीर्षशूल की निवृत्ति होती है। यह स्खलन इन्द्रिय शैथिल्यावस्था में ही होता हो, तो उस पर इस औषधि का उत्तम उपयोग होता है। स्त्री सम्बन्धी ध्यान होकर उन्माद या आक्षेप की प्राप्ति हो, तो इस रस को ब्राह्मी के सदृश शीतवीर्य अनुपान के साथ देना चाहिये।

स्त्रियों के बीजाशयों (Ovaries) का योग्य विकास न होने से उत्पन्न होने वाले बंध्यत्व पर यह औषध उत्तम प्रकार से कार्य करती है। इसी हेतु से यदि जननेन्द्रिय के अन्य अवयव का पूर्ण विकास न होने से ग्राम्य धर्म के सुखास्वाद का अभाव रहता हो तो उस पर भी पुष्पधन्वा का उत्तम उपयोग होता है। मनोव्याघात से यह विकार उत्पन्न हुआ हो, तो उस पर भी यह लाभदायक है। सुजाक या उपदंश के हेतु से गर्भाशय दुष्ट होकर योनिमुख से स्राव होता हो और बीजकोष पर्यन्त दुष्टि फैल गई हो, और उसके विविध लक्षण प्रतीत होते हों, तो उस पर अनेक औषधियों में पुष्पधन्वा को विशेष महत्व दिया जाता है।

स्त्रियों के उत्पन्न होने वाले निम्न प्रकार के अस्थिक्षय में पुष्पधन्वा उत्तम लाभदायक है इसमें अस्थि में मृदुता आती है। विशेषतः नितम्बास्थि मृदु होने पर चलने में विलक्षण गति होती है, मुड़कर चलना पड़ता है, पैर को उठाकर आगे बढ़ाना पड़ता है; परिश्रम मालूम पड़ता है; क्वचित् अन्य स्थानों की हड्डियों पर भी गांठें हो जाती हैं। यह विकार अति जीर्ण हो एवं अशक्त और निर्बल स्त्री, जो बार-बार सगर्भा होती रहती हो, उसे यह विकार हुआ हो, साथ-साथ अन्य इन्द्रियां भी अति क्षीण हो गई हों, तो नागभस्म का उपयोग करना चाहिये। किन्तु विकार अति पुराना न हो, मनोव्याघात आदि कारण स्पष्ट हों; या मानसिक विकृति के लक्षण अधिक हों, तो यह उत्तम कार्य करता है।

प्रमेह या मधुमेह के उपद्रव रूप से या इन रोगों के लक्षणों में एक व्यभिचारी के लक्षण रूप में नपुंसकता आई हो, तो पुष्पधन्वा उपयोगी है। **शुक्रमेह और लालामेह पर यह अत्युत्तम है।**

संक्षेप में पुष्पधन्वा रस अण्डकोष आदि अवयवों को शक्तिदायक, उत्तेजक, वायु की पूर्ति कम होने से उत्पन्न शिथिलता को नष्ट करने वाला, अण्डकोष में अन्तः स्राव बढ़ाने वाला, किञ्चित स्तम्भक शक्तिवर्द्धक और वृष्य औषधि है। (औ.गु.ध.शा.)

कितने ही निर्बल और शिथिल मांसपेशीवाले रोगियों को केवल पुष्पधन्वा रस देने से योग्य लाभ प्रतीत नहीं होता। उनको मधुमालिनीरस साथ में मिलाकर देने पर आशातीत गुण मिल जाता है।

कितने ही ध्वजभंग से पीड़ित रोगियों में रक्त के भीतर कुछ अंशों में मूत्रविष बना रहता है; उनको जलन के साथ बार-बार मूत्र आता रहता है। स्वभाव में उग्रता, निद्रा में विकृति, बार-बार स्वप्नदोष हो जाना और मूत्र में पीलापन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन रोगियों में स्थानीय शिथिलता के अतिरिक्त रक्तादि धातुओं में भी विकृति उत्पन्न हो जाती है। पहिले उनके रक्त को निर्दोष बनाये बिना यदि पुष्पधन्वा रस दिया जायेगा तो कुछ भी गुण नहीं होगा; विपरीत हानि ही होगी। मानस उत्तेजना बढ़कर स्वप्न में शुक्रस्राव होता रहेगा, शुक्र अधिक पतला भी बन जायेगा और स्तम्भनशक्ति नष्ट हो जायेगी। उनको पहिले चन्द्रप्रभा (बड़े गोखरू और शीतलमिर्च)के क्वाथ से २-४ मास तक सेवन करना चाहिये तथा मूत्रेन्द्रिय पर कपूर के तैल की पट्टी रखकर स्थानिक चेतनाधिक्य को शान्त करना चाहिये। फिर पुष्पधन्वा (मधुमालिनीसह) देना चाहिये।

सूचना-जीर्ण और अधिक अशक्त रोगियों को यदि मात्रा अधिक दी जायेगी, तो दुष्प्रतिक्रिया होकर हानि पहुँचेगी। अतः कम मात्रा में अधिक काल तक औषधि सेवन करानी चाहिये।

(१५८) मृगनाभ्यादि वटी

विधि-सोने के बर्क १॥ माशे, मोती की पिष्टी ६ माशे, चांदी के वर्क ४॥ माशे, कस्तूरी ३ माशे, केशर ६ माशे, वंशलोचन १०॥ माशे, छोटी इलायची के बीज ७॥ माशे, जायफल ९ माशे और जावित्री १ तोला लें। पहिले मोतीपिष्टी के साथ सोने या चांदी के वर्कों को मिलावें। बाद में अन्य दवाओं का कपड़छन चूर्ण मिला नागरबेल के पान का रस डाल, दो दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावे।(स्वा.र.)

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २ बार दूध, या मलाई के साथ लें।

उपयोग-इसके सेवन से वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, धातुविकार, प्रमेह, क्षय, श्वास, मन्दाग्नि ये विकार दूर होते हैं। देह नीरोग बनती है तथा बल, बुद्धि, स्मरणशक्ति, वीर्य और आयु की वृद्धि होती है।

यह वटी वातवहानाड़ियाँ और रक्तवाहिनियां, दोनों को लाभ पहुँचाती है। इस वटी में सुवर्णमुक्ता आदि शीतवीर्य औषधियों का प्राधान्य होने से यह उष्ण प्रकृति वालों को विशेष अनुकूल रहती है, एवं पुरुष और स्त्रियों को उष्ण ऋतु में निर्भयतापूर्वक दी जाती है।

सुजाक, उपदंश या पित्तप्रकोप होने पर पेशाब बार-बार पीले रंग का थोडा-थोड़ा होता रहता है। रक्त में विष वृद्धि होकर नेत्र में दाह,

मस्तिष्क में भारीपन, चक्कर आना, तन्द्रा, आलस्य, मन्दाग्नि और निस्तेजता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर इस वटी के सेवन से स लक्षणों का शमन होकर वीर्य शुद्ध, शीतल और गाढ़ा बन जाता है।

मानसिक आघात, चिन्ता, अधिक प्रवास, चाय, गांजा या तमाखू का अधिक सेवन आदि कारणों से मस्तिष्क जब निर्बल हो जाता है त निद्रानाश, स्मरणशक्ति में न्यूनता, निकम्मे विचार आने लगते हैं, उन पर इस वटी का बहुत अच्छा उपयोग होता है।

गरम पदार्थों के अति सेवन या अधिक स्त्री समागम से वीर्य पतला और उष्ण हो जाता है, फिर बार-बार पेशाब के साथ निकलते रह या स्वप्न में शुक्रपात होते रहने से निस्तेजता और उदासीनता प्रतीत होने लगती है, अन्य धातुओं का क्षय होता है तथा थोड़ा कार्य करने थकावट आती है, उन पर यह वटी अति हितकर है।

अधिक मानसिक परिश्रम से वातवाहिनियाँ और वातवह केन्द्र निर्बल हो जाते हैं। फिर सुस्ती बढ़ जाती है, स्मरणशक्ति घटजाती है, आ मन चिंतातुर रहता है, ऐसी परिस्थिति में इस वटी के सेवन से मस्तिष्क और वातवह यन्त्र सबल होकर सब विकार दूर हो जाते हैं।

उपदंश, सुजाक या मधुमेह होने पर जब शरीर के घटक शनैः शनैः गलते जाते हैं, रक्त में उपदंश आदि के कीटाणु या विष का प्रवे होता है, अथवा मधुमेह से रक्त में शर्करावृद्धि, फिर मूत्रविष वृद्धि होती है; पश्चात् विष फैलने से विविध अवयवों में दाह होता रहता या शूल निकलता रहता है, क्वचित् सूक्ष्म ज्वर के समान शरीर गरम रहता है, ऐसे रोग में इस वटी का सेवन लाभदायक है।

इन रोगों के हेतु से अण्डकोष और शुक्राशय की वातवाहिनियाँ या सूक्ष्म रक्तवाहिनियाँ विकृत होकर यदि नपुंसकता आ गई हो, तो व भी इस औषध से दूर हो जाती है।

संक्षेप में यह वटी रक्त में रहे हुए विष को दूर करती है; वीर्य को शुद्ध शीतल और गाढ़ा बनाती है; मस्तिष्क को सबल बनाती मन को प्रसन्न करती है, और शरीर को स्वस्थ बनाती है।

(१५९) वीर्यशोधन वटी

विधि-चाँदी के वर्क, वंगभस्म, प्रवालपिष्टी, शुद्ध शिलाजीत और गिलोयसत्व, सब एक-एक तोला तथा कपूर ३ माशे लें। सबको यथावि मिला शिलाजीत के जल में खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें। (चि.चं.)

सूचना-प्रवालपिष्टी के स्थान पर सुवर्णमाक्षिक भस्म मिलाने पर उष्णता को शान्त करने से विशेष गुण दर्शाती है।

मात्रा-१ से २ गोली दिन में २ बार दूध के साथ दें।

उपयोग-यह वटी शुक्र में रहे हुए दूषित घटकों का शोधन करती है, उष्णता का शमन कर स्तम्भन शक्ति को बढ़ाती है तथा शुक्राश और शुक्रवाहिनी के वातप्रकोप और शिथिलता को दूर करती है एवं इस वटी से विविध प्रमेह, धातुदोष, मूत्ररोग, निर्बलता आदि विकार होकर शक्ति की वृद्धि होती है।

शुक्र और शुक्रस्थान में विकृति होने के अनेक हेतु हैं। फिरंग, सुजाक विष, तमाखू का सेवन, गरम-गरम चाय का सेवन, अति मद्यपा मिर्चादि का अति सेवन, अति स्त्री सहवास, हस्तमैथुन, क्विनाइनादि उग्र औषधियों का अधिक मात्रा में सेवन, जीर्ण पूयप्रधान रोग, दीर्घका तक मधुरा, विषम ज्वरादि रोगों की स्थिरता, मलावरोध और वातनाड़ियों को शिथिल करने वाले आहार द्विदल धान्यादि का अत्यधिक सेव सर्वदा सूर्य के ताप और अग्नि की उष्णता में परिश्रम करना, पचन होने के पहले पुनः पुनः भोजन अथवा अन्त्र में उष्णता (मलावरोध) ब रहना और दिन में शयन और रात्रि में अनियमित जागरण आदि कारण हैं। इन कारणों में से जो कारण हों या अन्य जो कारण हों उन्हें करना चाहिये। यदि मूल कारण को दूर करने का प्रयत्न नहीं किया जायेगा तो औषधि से स्थिर लाभ या पूरा लाभ नहीं मिल सकेगा।

यदि पूय या रक्तप्रकोपक इतर विष, विषमज्वरादि के कीटाणु, आम कफ मलादि जो रक्त को दूषित करने वालें हैं, उनमें से किसी प्रवेश हो गया हो तो पहले उसे दूरकर रक्तप्रसादन करना चाहिये। क्योंकि रक्त में से ही शुक्र बनता है। रक्त मलिन होने पर शुक्र कभी शु नहीं बन सकता। अतः रक्त विकारनाशक औषधि चौपची- न्यादि चूर्ण, सारिवासव, रक्तशोधक क्वाथ या और औषधि का सेवन पहले कर चाहिये।

फिरंग या सुजाक रोग पहले हो गया हो तो उसके कीटाणुओं और विष को नष्ट करना चाहिये। फिरंग विष को नष्ट करनें से मल्लप्रध औषधि अष्टमूर्ति रसायन, उपदंश सूर्य और अमीर रसादि तथा सुजाक विष को नष्ट करने से रौप्यभस्म, सुवर्ण वंग, गोक्षुरादि गुग्गुलु और चन्द्रप्रभाव व्यवहृत होते हैं। चोपचीन्यादि चूर्ण इन दोनों रोगों के विष पर तथा रक्त में प्रवेशित पूय कीटाणु के विष पर हितकारक है। अतः इस व

के सेवन से पहले अथवा साथ-साथ उक्त औषधियों में से विशेष अनुकूल औषधि का सेवन करना चाहिये।

फिरंग, सुजाक या अन्य मूत्रविकार होने पर इस वटी के साथ अनुपानरूप से बड़े गोखरू १ तोला और शीतलमिर्च ६ माशे का क्वाथ (६ माशे शहद मिला हुआ) देना विशेष अनुकूल रहता है। इस अनुपान से रक्त में रही हुई उष्णता और विष मूत्र के साथ निकल जाते हैं। जिससे औषधि अपना कार्य सरलता पूर्वक करती है।

यदि पूयप्रकोप से मंद-मंद ज्वर भी रहता हो, देह निस्तेज और निर्बल हो गई हो, मूत्र में कुछ जलन होती हो; तो चन्दनादि लोह का सेवन भी कराते रहना चाहिये। यदि मूत्र में दाह अधिक हो तथा फोड़े फुन्सियाँ भी होते हों, तो रक्तशोधक क्वाथ अनुपान रूप से देना चाहिये।

तमाखू का व्यसन-(खाना, पीना, सूघँना) वर्तमान में बहुत बढ़ गया है। किशोरवय के विद्यार्थी और स्त्री समाज में भी यह व्यसन प्रवेश कर रहा है। छोटी आयु में व्यसन होने पर शुक्रोत्पादक अवयव, शुक्रवाहिनी और शुक्राशय, ये सब दूषित हो जाते हैं। इस तरह जिन माताओं को तमाखू का व्यसन हो; उनकी सन्तानों का मन, देह, रक्त और शुक्रादि धातुएँ सब स्वभावत: निर्बल रहती हैं। अत: इस भूल से बचना चाहिये और शुक्र विकृति वालों को यदि तमाखू का व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये। यदि तमाखू विष (निकोटिन) नित्यप्रति रक्त में प्रवेश करता रहेगा, तो कोई भी औषधि शुक्र को शुद्ध और शीतल अधिक समय तक नहीं रख सकेगी। धूम्रपान के व्यसनी को इस वटी का सेवन धारोष्ण दूध या गरम करके शीतल किये हुये दूध के साथ कराना चाहिये। यदि मलावरोध भी सर्वदा रहता हो, तो रात्रि को ४-६ माशे ईसबगोल की भूसी, समान शक्कर के साथ मिलाकर औषधि और दूध के साथ लेते रहना चाहिये।

गरम-गरम चाय, गरम भोजन, अत्यधिक मिर्च और अति मद्यपानादि कारणों से रक्त रचना विकृति हो जाती है। उष्णता बढ़ जाती है तथा रक्ताणु निर्बल और निस्तेज बन जाते हैं। इस हेतु से यदि शुक्र में उष्णता और पतलापन आया हो, तो पहले मूल कारण को दूर करें फिर वीर्य शोधन वटी और चन्द्रकला रस मिलाकर धारोष्ण गोदुग्ध के साथ सेवन करें।

शुक्रमेह, अधिक स्त्री सहवास, हस्तमैथुन अथवा स्वप्नदोष कारणों से वीर्य का अति क्षय हुआ हो और पतला हो गया हो, तो इस वटी का सेवन गिलोय, गोखरू, आंवलों के क्वाथ के साथ करना चाहिये एवं मलावरोध करने वाले भोजन का त्याग करना चाहिये। वीर्य शुद्ध होने के पश्चात् आवश्यकता रहे तो वीर्यवर्द्धक औषधि शतावर्यादि चूर्ण, कौंचपाक या वसन्तकुसुमाकर रस का सेवन कराना चाहिये तथा तिला की मालिश भी करानी चाहिये।

ज्वरविष या क्विनाइन आदि उग्र औषधियों के विष से रक्त में उष्णता आई हो और फिर उसी कारण से शुक्र जलसदृश पतला हो गया हो, स्तम्भनशक्ति नष्ट हो गई हो और देह कमजोर हो गई हो, तो लोह प्रधान संशमनी वटी के साथ इस वटी का सेवन कराना चाहिये। इस विकार में प्रवाल के स्थान पर सुवर्णमाक्षिक मिलाकर बनाई हुई वीर्यशोधन वटी विशेष कार्य करती है।

पुरुषों के समान यह वटी स्त्रियों को भी ज्वरादि से उत्पन्न रक्त की उष्णता पर दी जाती है। सगर्भावस्था में भी इसे निर्भय रूप से दे सकते हैं।

सूर्य के ताप में अत्यधिक परिश्रम करके तुरन्त जलपान करना, वातनाड़ियों को दूषित करने वाला आहार, मलावरोध, अपचन में भोजन (अव्यशन) आदि कारणों से उष्णता और पतलापन आ जाता है, किसी-किसी को स्वप्न दोष भी हो जाता है, मल पीला और मैला हो जाता है तथा स्वभाव क्रोधी बन जाता है। यह कारण होने पर मूल कारण को दूर कर फिर माक्षिकमिश्रित वटी का सेवन कुछ दिनों तक करने पर शुक्र सबल और शुद्ध बन जाता है।

रक्त में उष्णता लम्बे समय तक रहने पर देह में से वसा और मज्जा का ह्रास होता है। वसा की न्यूनता से त्वचा शुष्क हो जाती है। मज्जा की कमी से सन्धि स्थानों में से कटकट आवाज निकलती रहती है तथा थकावट आ जाती है। फिर देह कृश हो जाती है। यह विकृति पुरुष और स्त्री; दोनों को होती है। इन दोनों के लिये यह वटी हितावह है। अनुपान ह्रीबेरादि क्वाथ विशेष अनुकूल रहता है।

वातप्रकोप या वातपित्तप्रकोप होने पर मंदाग्नि होकर शुक्रमेह की प्राप्ति हो जाती है। फिर शनैः शनैः शरीर गलता जाता है। त्वचा श्याम हो जाती है। थोड़ा परिश्रम होने पर शारीरिक उत्ताप बढ़ जाता है। इस विकार पर इस वटी का सेवन कराया जाता है। अनुपान छोटी इलायची, वंशलोचन, गिलोयसत्व, आंवले का चूर्ण और शहद अथवा न्यग्रोधादि क्वाथ।

इस वटी में मिला हुआ रौप्य रसायन, पूयकीटाणुनाशक, वृक्कबलवर्द्धक और शुक्रशोधक गुण दर्शाता है। यह शुक्रोत्पादक स्थान और शुक्राशय को पुष्ट करता है तथा शुक्र को भी सबल करता है। प्रवाल और माक्षिक दोनों शीत वीर्य हैं। इनमें प्रवाल अस्थिपोषक और माक्षिक रक्तपौष्टिक है। शिलाजीत रसायन, विकृतिनाशक और बल्य है। गिलोयसत्व शीतवीर्य और त्रिदोषहर होने से वीर्य को शीतल, शुद्ध और सबल बनाता है। कपूर कीटाणु और विष का नाशक, बल्य और शामक है।

(१६०) वृष्य वटी

विधि–मल्लभस्म १ रत्ती, अफीम ६ माशा, जुन्देबेदस्तर २ माशा, अम्बर १ रत्ती और केसर आठ माशा मिलाकर गोदुग्ध में ६ घण्टे खर करके $\frac{1}{2}$-$\frac{1}{2}$ रत्ती की गोलियाँ बनावें। ऊपर सोने के वर्क लगावें अथवा एक माशा सुवर्णभस्म मिला देने से विशेष फल प्रदर्शित होगा।

मात्रा–१ से २ गोली, सुबह दूध के साथ।

उपयोग–यह वटी नपुंसकता को यथाशीघ्र नष्ट करती है और शक्ति बढ़ाती है।

(१६१) वीर्य स्तम्भन वटी

प्रथम विधि–कस्तूरी और सोने के वर्क १-१ माशा, चांदी के वर्क, इलायची, जुन्देबेदस्तर १-१ तोला, नरकचूर, दरूनज अकबरी, बह लाल, बहमन सफेद, जटामांसी, लौंग, तेजपत्र ६-६ माशे, पीपल और सोंठ ३-३ माशे लें। जुन्देबेदस्तर को शहद में घोटे फिर क्रमशः व कस्तूरी और शेष वस्तुओं का कपड़छन चूर्ण मिला ३ घण्टे शहद में खरल करके ४-४ रत्ती की गोलियां बांधें। (आ.नि.मा.)

मात्रा–१ से ३ गोली, शहद में मिलाकर सुबह शाम लेवें। ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें।

उपयोग–तीसरी विधि में लिखा है।

द्वितीय विधि–चन्द्रोदय १ माशा, कस्तूरी १ माशा, केशर २ माशा, जुन्देबेदस्तर ८ माशे, लोबान के फूल २ माशे, जावित्री २ माशे औ अकलकरा २ माशें लें। प्रथम जुन्देबेदस्तर को शहद में घोटें। फिर चन्द्रोदय और कस्तूरी मिलावें, बाद में शेष दवाइयों का बारीक चूर्ण मिलाक २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा–२ से ४ गोली, दिन में २ बार दूध के साथ लें।

उपयोग–इस वटी के सेवन से शीघ्रपतन, स्वप्नदोष और प्रमेह आदि दूर होकर स्तम्भनशक्ति और शरीर बल की वृद्धि होती है।

तृतीय विधि–जायफल, लौंग, जावित्री, केशर, छोटी इलायची के दाने, शुद्ध अफीम और अकलकरा, ये सब १-१ तोला और भीमसे कपूर ३ माशे लें। इन सबको मिलाकर नागरबेल के पान के रस में १२ घण्टे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। (यो. र.)

मात्रा–१-१ गोली, रात्रि को सोने से आधे घण्टे पहले; मिश्री मिलाये दूध के साथ लेवें। कब्ज न हो, तो सुबह ही ले सकते हैं।

उपयोग–इस वटी से शीघ्रपतन दूर होता है, वीर्य शुद्ध और गाढ़ा बनता है, तथा पचनक्रिया बलवान और शरीर तेजस्वी बनता है।

सूचना–इस गुटिका में १ तोला रससिंदूर या शुद्ध हिंगुल मिला लेने से यह वटी अधिक लाभ पहुँचाती है। हम रससिंदूर मिलाकर उपयो में लेते हैं।

(१६२) महावातराज रस

विधि–धतूरे के शुद्ध बीज, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म प्रत्येक २-२ तोले, अभ्रकभस्म, दालचीनी, लौंग, जावित्री, जायफल, इलायची के बीज, भीमसेनी कपूर, कालीमिर्च, चन्द्रोदय या रससिंदूर प्रत्येक १-१ तोला और अफीम १२ तोला लें। पहिले पारद-गन्धक की कज्जलीक लोहभस्म, अभ्रक भस्म और चन्द्रोदय मिलाकर खूब मर्दन करें। फिर शेष अन्य औषधियों का कपड़छन चूर्ण और अन्त में अफीम मिलावें पश्चात् सबको धतूरे के रस में एक दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। यह प्रयोग सुजानगढ़ के स्व. यतीजी महाराज का है। सिद्धभैषज्य मंजूषाकार ने भी इसे अपने ग्रन्थ में ले लिया है। (स्व. पं. श्री गोवर्द्धनजी छांगाणी, भिषक्केसरी)

मात्रा–१/२ से १ रत्ती, जल के साथ या रोगानुसार, अनुपान के साथ दिन में २ बार दें। अतिसार आदि में शहद और न्यूमोनिया, कफज्वर आदि में अदरक के रस के साथ दें। इसी तरह अन्य रोगों पर उचित अनुपानों की योजना करें।

उपयोग–यह रस अनुपान भेद में कास, हिक्का, अतिसार, संग्रहणी, मधुमेह, प्रमेहपिटिका आदि रोगों में बहुत उपयोगी है। कफज्वर, श्वसनक, सन्निपात (Pneumonia) प्रवाहिका, जीर्ण पक्व आमातिसार और रक्तातिसार आदि में रामबाण के समान काम करता है। श्वास-कास आदि में उत्पन्न पार्श्वशूल को यह आधे घण्टे में शमन करता है। मधुमेह में शक्कर जाती हो, रोग बढ़ गया हो, साथ में हृदय विकृति, कम्प और प्रमेहपिटिका भी हो गये हों, तब इन उपद्रवों का शमन करने के साथ मधुमेह को दूर करता है।

आमवात, निमोनिया, उरस्तोय, वृक्करोग, मधुमेह और सूतिका ज्वर आदि रोगों में हृदयावरण प्रदाह उपद्रव रूप में उपस्थित होता है। फिर रोगी की छाती में खिंचाव होता है, हृदय में बार-बार शूल चलता हे और रोगी हृदयविकार से अति पीड़ित होता है। ऐसी अवस्था में रोगी

को शान्ति देने और शूल का शमन करने के लिए तुरन्त उपचार करना चाहिये। मलावरोध हो तो एरण्ड तैल या ग्लीसरीन को पिचकारी द्वारा उदरशुद्धि करके महावातराज रस पूरी मात्रा में अर्थात् १ रत्ती तक दें। अनुपान ईसबगोल की भूसी ६ माशे और शक्कर ६ माशे। पहले गोली निगलवा देवें, ऊपर ३-४ बार में शक्कर मिश्रित भूसी थोड़े जल के साथ देवें। यदि १ घण्टे में शान्ति न हो, तो पुनः आधी मात्रा में महावातराज रस देने से आशुकारी शूल शमन हो जाता है।

इस रस में मुख्य औषध अहिफेन होने से इसका विविध अविराम ज्वर (न्यूमोनिया, इन्फ्लुएञ्जा आदि) तथा विसर्प, विस्फोटक आदि प्रादाहिक ज्वरों में उपयोग होने पर उपकार होता है। इन ज्वरों में उपद्रवरूप प्रलाप, स्थिरता, अनिद्रा, अतिसार, तीव्रवेदना शूल और भ्रम आदि के निवारण में यह अच्छा कार्य करता है; किन्तु अहिफेन का उपयोग किस-किस अवस्था विशेष में निषिद्ध है, इन बातों को लक्ष्य में रखकर इसका प्रयोग करना चाहिये यथा (१) अनिद्रा है किन्तु उसके साथ प्रलाप या अचेतना नहीं है, अथवा (२) अस्थिरता और प्रलाप है; उसके साथ नाड़ी निर्बल है। मुख मण्डल और नेत्र लाल नहीं है तथा जिह्वा शुष्क और गुलाबी नहीं है; आर्द्र और निर्मल है तो इन दोनों प्रकार के लक्षणों पर इस रसायन को प्रयुक्त करना चाहिये।

उदर में यदि मल संगृहीत है, तो पहिले बस्ति द्वारा कोष्ठशुद्धि करके फिर इसका प्रयोग करना चाहिये। इन्फ्लुएञ्जा की प्रथमावस्था में इसका प्रयोग निषिद्ध है; किन्तु मल और कफ सरलतापूर्वक निकलने लगें और फुफ्फुस में रक्त संग्रह न होने पर भी वेदना, प्रलाप उपस्थित हुये हो तो इसे प्रयुक्त कर सकते हैं।

यदि दुर्बल रोगी के सन्निपात में प्रलाप, खुजली, अस्थिरता, अनिद्रा और अधिक अतिसार आदि लक्षण उपस्थित हों, तो यह रस महोपकारक होता है फिर भी दो बातों की ओर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। (१) नाड़ी पुष्ट और कठिन हो, मुखमण्डल और नेत्र उज्जवल और लाल हों, तो यह रस नहीं देना चाहिये। (२) चक्षुकी पुतली कुछ आकुंचित हो तो कदापि अफीमप्रधान औषध का उपयोग नहीं करना चाहिये, व्याधिवृद्धि हो जायेगी।

यदि अन्त्रावरण (उदर्याकला) प्रदाह, आमाशय-प्रदाह, अन्त्रप्रदाह आदि कारणों से रोगात्पत्ति हुई हो, तो अफीम प्रधान औषध निर्भय होकर प्रयुक्त की जाती है। प्रदाह की चिकित्सा में प्रधान उद्देश्य यह है कि प्रादाहिक स्थान को शान्ति मिले, उस अवयव (इन्द्रिय) की कोई क्रिया न होनी चाहिये, उसे अधिक परिश्रम न होना चाहिये; अन्त्र और अन्त्रावरण-प्रदाह में अफीम द्वारा इस उद्देश्य की सहज सिद्धी होती है। अफीम-प्रधान औषध सेवन से अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कला की वातनाड़ियों की उग्रता शमन होती है, आन्त्रिक पेशियों की क्रिया में स्थैर्यता आ जाने से कोष्ठबद्धता हो जाती है। इन सब प्रदाहों में स्वभावतः इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये चेष्टा होती है। उस कार्य में अफीम सहायता पहुँचाती है। इस हेतु से इस रस से सत्वर लाभ हो जाता है।

अतिसार और प्रवाहिका के वेग, शूल, वेदना, कुंथन आदि के निवारण में अफीम महौषध होने से यह रसायन सत्वर लाभ पहुँचा देता है। एक प्रकार से अजीर्ण रोग में अतिसार होता है। उसमें बहुधा आमाशय और अन्त्र की मांसपेशियों की क्रिया अत्यन्त बढ़ जाती है। इसी हेतु से आहार द्रव्य उदरस्थ होने पर थोड़े ही समय में अर्द्धपरिपक्व अवस्था में ही आमाशय के मुद्रिकाद्वार में से ग्रहणी के भीतर प्रवेश कर जाता है। फिर वह उग्रता उत्पन्न कर अन्त्र की मल निर्गमन क्रियाओं को बढ़ा देता है। सम्यक् जीर्ण होने के पहिले ही भेदन हो जाता है। रोगी उदर को खाली अनुभव करता है और क्षुधा लगी है, ऐसी भावना हो जाती है एवं भोजन कर लेने पर क्षणिक शान्ति प्रतीत होती है; किन्तु आहार-द्रव्य शोषित होने से पहिले मलरूप से निर्गत हो जाता है, इस हेतु से देह को योग्य पोषण नहीं मिलता और विविध वेदनाप्रद लक्षण प्रकाशित होते हैं। ये लक्षण चिरकारी अजीर्ण रोग में सामान्यतः ६ से १२ वर्ष की आयु वाले बालकों को देखने में आते हैं। यदि इन लक्षणों के साथ मुँह में छाले, खट्टी डकारें, आमाशय में दाह ये लक्षण न हो तो भोजन के १५ मिनट पहले इस रस की एक मात्रा दे देने से आमाशय और अन्त्र की माँसपेशियों की क्रिया ठीक हो जाती है जिससे आहार-द्रव्य निर्गमन में विलम्ब होता है और आहार-पचन होने के लिये समय मिल जाता है। यदि कीटाणु प्रकोप हो, उबाक होती हो, ज्वर भी रहता हो, तो इस रस की अपेक्षा वातेभकेसरी विशेष हितावह माना जाता है और आमाशय के रसस्राव में उग्रता और अम्लता अधिक हो तो ग्रहणी कपाट रस देना चाहिये।

नाग विषजशूल रोग में शूल और आक्षेप-निवारण के लिये यह रस अतिउपयोगी है। अनुपाप रूप में एरण्ड तैल देना चाहिये।

आमाशय की वातवाहिनियों की उग्रता के हेतु से वमन और हिक्का होने पर यह रस तत्काल लाभ पहुँचाता है। मात्रा बहुत कम देनी चाहिये और २-२ घण्टे पर ३-४ बार देनी चाहिये।

मूत्राश्मरी या पित्ताश्मरी का मूत्र-प्रणाली या पित्त-प्रणाली में प्रवेश होने पर भयानक वेदना होती है। वह इस रस की पूर्ण मात्रा देने से निवृत्त हो जाती है। यदि एक मात्रा से वेदना का शमन न हो, तो आध से एक घण्टा पश्चात् पुनः दूसरी बार एक मात्रा दे। साथ-साथ मूत्राश्मरी के रोगी को उष्ण जलपूर्ण टब में बिठावें, जिससे सब यातना सहज दूर हो जायगी। पित्ताश्मरी में रोगी को गरम जल (सहन हो सके ऐसा) पिलाया जाता है जिससे सत्वर वेदना दूर हो जाती है।

सूचना-इस औषधि में आधी मात्रा में अफीम मिलायी है। इसलिये सम्हाल कर प्रकृति का विचार करके उपयोग करना चाहिये।

(१६३) कालारि रस

विधि–शुद्ध पारा ३ तोले, शुद्ध गन्धक ५ तोले, शुद्ध बच्छनाभ ३ तोले, कालीमिर्च ५ तोले, पीपल १० तोले, लौंग ४ तोले, धतूरे के शुद्ध बीज ३ तोले, सोहागे का फूला ५ तोले, जायफल ५ तोले और अकलकरा ३ तोले लें। पहिले पारद गन्धक की कज्जली कर अन्य औषधियों का चूर्ण मिलावें। फिर करीर (कैर) के स्वरस (ताजे कैर की बारीक शाखाओं को जल के साथ कूटकर रस निकाल लें) और अदरक के रस में २-२ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। योग चिंतामणिकार ने "करीरार्द्रकनिम्बुकै" कहकर नींबू के रस की भावना भी बताई है। परन्तु हमारी गुरुपरम्परा में कैर और अदरक के रस की ही भावना देने का रिवाज है। (स्व. पं. श्रीगोवर्द्धन शर्मा छांगाणी)

मात्रा–१ से २ गोली। दिन में २ से ३ बार गरम जल अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें। कतिपय चिकित्सक अदरक के रस के साथ भी देते हैं। सन्निपातों में प्रलाप आदि लक्षण होने पर वैद्यजीवनोक्त अर्कादि क्वाथ या योगरत्नाकर के तगरादि कषाय के साथ दिया जाय तो उन विकारों को दूर करता है।

उपयोग–यह रस सन्निपात में उत्पन्न श्वास, कास, हिक्का और प्रलाप आदि लक्षणों को शमन करने में बहुत उपयोगी है। यह कफप्रधान और वात प्रधान सन्निपात में विशेष हितकारी है। अन्त्र के शोधन और वातकफ को शमन करने के साथ सेन्द्रिय विष को सत्वर जलाकर रोग को दूर करता है। इसके अतिरिक्त यह रस कफज्वर तथा शीतज्वर पर भी तत्काल गुण दर्शाता है।

(१६४) कफकर्त्तन रस

विधि–अपामार्ग पञ्चाङ्ग १ सेर, जावित्री २ तोले, छोटी इलायची साबुत, जायफल और लौंग १-१ तोले तथा कालीमिर्च ३ तोले लें। सबको कड़ाही में डालकर जलावें। निर्धूम राख हो जाने पर खरलकर पीस लें। फिर १ तोला चरस की भस्म मिलावें। अभाव में गांजा और तम्बाखू के चिलम में रहे गुल की निर्धूम राख बनाकर मिला लें। बाद में सोहागे का फूला १ तोला और पारे-गन्धक की कज्जली ६ माशे मिला अच्छी प्रकार मर्दनकर लेवें। गोलियां बनाना हो तो १-१ रत्ती की गोलियां अदरक की भावना देकर बना लें।

(स्व. पं. श्री गोवर्द्धनजी छांगाणी)

मात्रा–१ से २ रत्ती तक। दिन में ३-४ बार नागरबेल के पान के साथ चबाकर धीरे-धीरे निगलते रहे।

उपयोग–यह रस खांसी और श्वास रोग का शमन करने में अच्छा उपयोगी है। जमे हुए कफ को बाहर निकाल देता है। सूखी और गीली दोनों प्रकार की खांसियों में अच्छा उपयोगी है। इसका उपयोग श्री धन्वन्तरिआयुर्वेद महाविद्यालय के धर्मार्थ औषधालय, नागपुर में अनेक वर्षों से होता है। यह प्रयोग हमें एक संन्यासी महाराज से मिला था उनके हम आभारी हैं। इसलिये कि यह प्रयोग दीनदुखियों के लिये महोपकारी सिद्ध हुआ है।

(१६५) वातेभकेसरी रस

विधि–शुद्ध सोमल, कालीमिर्च, लौंग, शुद्ध बच्छनाभ, छुहारे की गुठली, जायफल और करीर की कोंपलें १-१ तोला, अफीम और मिश्री २-२ तोले लें। सबको यथाविधि मिला बड़ के दूध में मर्दनकर १/८ १/८ रत्ती की गोलियां बना लें। (सि.भै.म.)

मात्रा–१ से ३ गोली दिन में २ से ३ बार देवें।

अनुपान और उपयोग–इस रस को श्वसनक सन्निपात (Pneumonia)में मिश्री के साथ देने से तत्काल लाभ प्रतीत होता है। श्वास, कास और कफ प्रधान सन्निपात में शहद के साथ और मरणासन्न बेहोशी अवस्था में १-१ रत्ती सफेद कत्था और अकलकरे के साथ देने से सत्वर कफप्रकोप का शमन होकर बेहोशी और त्रिदोष विकृति दूर होते हैं, एवं रोगी की रुकी हुई जुबान खुल जाती है। हिचकी में मूली के बीजों के साथ, अतिसार में छोटी हरड़, सौंफ और जीरे के साथ, रक्तप्रदर में शहद या घी के साथ, शिरदर्द में नकछींकनी के साथ नस्य रूप से, अफारा में अदरक के रस के साथ सेवन और नाभि पर मूषक की मेंगनी का लेप करने के लिये दें। एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि विषमज्वरों में गुड़ के साथ, पित्तज्वर में शक्कर के साथ, नपुंसकता में दूध की मलाई के साथ, सुजाक में गुलाब के गुलकन्द या शक्कर के शर्बत के साथ तथा वाजीकरण के लिये जायफल और कस्तूरी के साथ देने से यह रसायन अच्छा चमत्कार दिखाता है। हमने इसका उपयोग सन्निपात, शीतज्वर आदि रोगों पर अनेक बार किया है और यह फलप्रद प्रतीत हुआ है। (स्व. पं. श्री गोवर्धनजी शर्मा छांगाणी)

(१६६) अर्धाङ्गवातारि रस

विधि–पारा २० तोले और ताम्रभस्म ४ तोले को जम्भीरी नींबू के रस में १ दिन खरल करें। रस सूख जाने पर शुद्ध गन्धक २० तोले

मिला कज्जली कर नागरबेल के पान के रस में १२ घण्टे खरल करें। पश्चात् गोला बाँधकर सुखा लें। बाद में हाँडी या सराव में संपुट कर ३ कपड़मिट्टी करें। तत्पश्चात् जमीन में खड्डे के भीतर संपुट रख उस पर ४ या ६ अंगुल मिट्टी दबा दें फिर खड्डे में २-३ गोबरी की अग्नि जलावें। १२ घण्टे तक बराबर १-१ गोबरी डालते जायँ। स्वांग शीतल होने पर संपुट को खोल औषधि निकाल त्रिकटु के क्वाथ की ३ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (र.र.)

वक्तव्य-इस रस का पाक योग्य न हुआ हो, गन्धक शेष रह गया हो तो पुनः संपुट करके कपोतपुट देना चाहिये। सामान्यतः गोले का वजन लगभग १८ तोले रहना चाहिये।

मात्रा-१ से २ रत्ती। त्रिकटु के चूर्ण और शहद के साथ देवें।

उपयोग-इस रसायन के सेवन से अर्धाङ्गवात तथा एकांगवात दूर होते हैं। अर्धाङ्गवात में जो थोड़े-थोड़े दिनों के पश्चात् बार-बार कम्प (झटका) आता रहता है उसका भी इसके सेवन से शमन हो जाता है।

यह रसायन उष्ण, दीपन, पाचन, कफहर, विषनाशक, मांसपेशियों के लिये बल्य और रक्तवाहिनियों में रहे हुए दोष का संशोधन करने वाला है। अतः यह कफप्रधान प्रकृति वाले, मेद बढ़े हुए मनुष्य, अत्यधिक चाँवल सेवन करने वाले और अति शीतल जलपान करने वालों के लिये अमृत के समान उपकारक है।

अर्धाङ्गवात में एकांगवीर और अर्धाङ्गवातारि ये दो रस विशेष व्यवहृत होते है। वातप्रकृति वाले उपदंश विष से पीड़ित और शराबी के लिये एकांग वीर का प्रयोग अधिक होता है एवं पित्तप्रकृति वाले, निर्बल हृदय और अधिक मेदवाले तथा जिनकी रक्तवाहिनियों में आम या कफ का संग्रह हो उनके लिये अर्धाङ्गवातारि हितावह है।

यह रसायन मन्दाग्नि, निर्बल यकृत् वालें और अधिक मेद वालों के लिये उपयोगी होने से अनुपान में त्रिकटु और शहद की योजना की है एवं आम मेद जल जाने के पश्चात् वातनाड़ियों के बल की वृद्धि के लिये महारास्नादि क्वाथ दशमूल क्वाथ (गिलोय, एरंडमूल, रास्ना, सोंठ और देवदारू मिलाकर) या देवदार्व्यादि क्वाथ अनुपान रूप में दिया जाता है।

यदि रोगी को पहले फिरंग रोग हो गया हो तो

मल्लसिंदूर नं. २ अथवा चोपचिन्यादि चूर्ण इस रसायन के साथ देते रहना चाहिये।

यह रसायन हृदयपेशी और रक्तवाहिनियों की दीवारों को बल देता है और पचनक्रिया सुधारता है। जिससे कच्चा रस जो रक्त में प्रवेशित होकर रक्तवाहिनियों के मार्ग का रोध करता है, उसकी उत्पत्ति या प्रवेश बन्द हो जाता है एवं विषघ्न और कीटाणुनाशक गुण के हेतु से रक्त में रहे हुए कीटाणु और विष का नाश होकर रक्तप्रसादन हो जाता है। फिर आक्षेप या कम्प की उत्पति नहीं होती। कोशिकाओं के टूटने की आदत दूर हो जाती है तथा रक्तवाहिनियां और मांसपेशियों के बल की वृद्धि होती है और पक्षाघात दूर हो जाता है।

पक्षाघात रोग नया होने पर लाभ थोड़े ही दिनों में हो जाता है। यदि ८-१० मास हो गये हों और केन्द्रस्थान मृत न हुआ हो तो लाभ पहुँच सकता है; किन्तु समय लगता है। ऐसे जीर्ण रोग वाले को मात्रा कम देनी चाहिये। कारण उनकी रोग निरोधक शक्ति अति कमजोर हो जाती है। अनुपान महारास्नादि क्वाथ।

अर्धाङ्गवात के समान मुखमण्डल का पक्षाघात (अर्दित) हाथ-पैर या अंगुलियों का पक्षाघात, गृध्रसी, कम्पवात आक्षेप (बहिर्आयाम, अन्तरायामादि) वात इन सब पर हितकारक है। जिस वात रोग में पीड़ित स्थान की चेतना का लोप हो गया हो उस पर बहुधा लाभ नहीं पहुँच सकता।

सूचना-(१) इस रसायन में ताम्र की प्रधानता है। अतः इस औषधि के साथ दूध का सेवन नहीं करना चाहिए। जिन रोगियों को तक्र अनुकूल हो उनको देने से यह रसायन विशेष लाभ पहुँचाता है।

(२) चाय का व्यसन हो तो अर्धाङ्गवातारि रस लेने के १ घण्टे पहले या २ घण्टे बाद देवें। उसमें दूध कम मिलावें। शराब का व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये।

(३) वृक्कदूषित हों तो यह रस नही देना चाहिये।

(४) मात्रा, शक्ति का विचार करके कम देनी चाहिये। मात्रा अधिक होने पर दुष्प्रतिक्रिया होकर वातवाहिनियां और कोशिकाऐं टूट जाती हैं।

(१६७) अचिन्त्यशक्ति रस

विधि–शुद्ध सोमल, शुद्ध हरताल और शुद्ध हिंगुल १-१ तोला मिला करेले के १॥ सेर रस में खरलकर १/८-१/८ रत्ती की गो बनालें। करेले का रस थोड़ा-थोड़ा मिलाकर १॥ सेर आत्मसात् कराना चाहिये।

मात्रा–१ से २ गोली। दिन में २ बार, बलाबल देखकर देवें।

अनुपान और उपयोग–इस रस को श्वसनक सन्निपात (Pneumonia) फुफ्फुस शोथ, श्वास, कास, कफज्वर और सन्निपात आदि में श के साथ देने से सत्वर चमत्कारिक लाभ दिखाता है। भोजन में केवल दूध ही दें; अन्य भोजन नहीं देना चाहिये। रोग का वेग शान्त होने थोड़े दिनों तक प्रातः सायं श्रृङ्ग भस्म और अभ्रक भस्म १-१ रत्ती मिला, घृत, शक्कर या केवल घृत के साथ चटाना चाहिये। श्वसनक सन्नि के समान यह रसायन विषम ज्वरों में भी लाभ पहुँचाता है। सतत, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक इन पर सत्वर प्रभाव पड़ता है। पाली ज्वर एक दिन में ३ समय औषध सेवन करने पर बहुधा रुक जाता है। ज्वर रुक जाने पर भी ४-६ दिन तक इस रस का सेवन करते र चाहिये। अनुभव करने पर यह रस वस्तुतः अचिन्त्यशक्तिशाली ही सिद्ध हुआ है। यह रस हमें सुजानगढ़ के स्वर्गीय यतीजी महाराज के शि पं. नारायणदत्त जी ज्योतिर्विद् कलकत्ता निवासी से प्राप्त हुआ है। हम उनके नितान्त कृतज्ञ हैं।(स्व. पं. श्री गोवर्द्धन जी छांगाणी, भिषक्केस

(१६८) क्षुद्बोधक रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सज्जीखार, जवाखार, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चित्रकमू चव्य, पांचों नमक, डाँसरिया (अभाव में खट्टे बेर) अनारदाना, लोहभस्म, भीमसेनी कपूर सब समभाग लेवें। पहिले पारा-गन्धक की कज्ज करके लोहभस्म मिला दें। पश्चात् अन्य औषधियों का चूर्ण मिला अम्लबेंत के कषाय, अदरक के रस, नींबू के रस और अजवायन के क्व की क्रमशः ३-३ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (स्व. पं. गोवर्धनजी छांगाणी भिषक्केसरी

मात्रा–१ से २ गोली। दिन में २ से ३ बार जल के साथ दें।

उपयोग–इस रस का उपयोग किसी भी रोगजनित अग्निमांद्य पर अच्छा होता है। भूख जल्दी खुल जाती है। ऐसा हमारा दीर्घकाल अनुभव है। वातज और कफज अग्निमाँद्य, बद्धकोष्ठ, अरुचि, उदरशूल और अपचन आदि विकार इसके सेवन से दूर हो जाते हैं।

इस रस का उपयोग आमाशय के रसस्राव में लवणाम्ल की न्यूनता से उत्पन्न अग्निमांद्य पर होता है अर्थात् वातज और कफज विकार यह प्रयुक्त होता है। वातज विकार में मलावरोध, कभी भोजन का पाचन, कभी पचन न होना आदि लक्षण होते हैं। कफज विकार में आमोत्प उदर में भारीपन, मुंह में मीठापन, जिह्वा मललिप्त रहना, उदरशूल आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। चाहे यह अग्निमांद्य किसी भी रोग में उ हुआ है, कितने ही रोगियों में लवणाम्लस्राव अधिक होता है, उन्हें भी अग्निमांद्य हो जाता है। किन्तु उसे पैत्तिक अग्निमांद्य कहा है। पैत्ति अग्निमांद्य में विदग्ध अजीर्ण के लक्षण, छाती में जलन, तृषाधिक्य, खट्टी डकारें, स्वेद आदि होते हैं। उन पर इस रस का उपयोग नहीं हो

तमक श्वास से पीड़ित रोगी जो गरम-गरम चाय, गरम-गरम भोजन आदि का सेवन अधिकांश में करते रहते हैं, उनकी पचन-क्रिया बिल्कु मन्द हो जाती है। बहुधा आमाशय के रसस्राव में लवणाम्ल का अभाव हो जाता है। जिससे उनके तमक श्वास-सर्वदा संताप देता रहता ऐसे रोगियों को गरम पेय आदि छुड़ाकर इस रस का सेवन कराया जाये तो थोड़े ही दिनों में पचनक्रिया सुधर जाती है।

(१६९) प्रमेहगजकेसरी रस

विधि–लोहभस्म, नागभस्म, बङ्गभस्म तीनों १-१ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोले, शिलाजीत ५ तोले और खखसा के फूलों की केसर ६ तो लें। सबको मिला नींबू के रस में ७ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (वै.सा.सं

मात्रा–१ से ३ गोली, दिन में दो बार। जल, गुड़मार के अर्क या रोगानुसार अनुपान के साथ। प्रमेह पर घी, मिश्री और शहद से

उपयोग–यह रसायन इक्षुमेह, लालामेह, सान्द्रमेह, पित्तप्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और दाह आदि को नष्ट करता है।

इक्षुमेह में शर्करा की मात्रा इस औषध के सेवन से अति शीघ्र कम होती है, नागभस्म और शिलाजतु के संयोग के मधु संजनन क होता है। इक्षुमेह की उत्पत्ति में शारीरिक कारणों में अग्न्याशय की विकृति, यह प्रमुख कारण है। इसमें उत्पन्न होने वाले आग्नेय रस का य धर्म न्यून होने का अर्थ मधु पचन का धर्म न्यून होता है। इस तरह तीनों दोष, मज्जारस, ओज, मेद, रक्त शुक्र, लसीका, वसा, माँस, रक्त आदि दूषित हो जाते हैं अर्थात् धातु उपधातुओं की दुष्टि हो जाती है। प्रमेहगजकेशरी से इनकी विकृति दूर होती है। अग्न्याशय के घटकों विकृति दूर होकर वह सबल बन जाता है, फिर आग्नेय रस का स्राव सम्यक् होने लगता है। परिणाम में शर्करासंजनन मर्यादित होकर इक्षु

का शमन हो जाता है।

इक्षुमेह से बार-बार मूत्रोत्सर्ग, भयंकर तृषा, मुख में शुष्कता, क्षुधा अति प्रदीस हो जाना, नेत्र के समक्ष अंधकार छा जाना, भ्रम, कान में आवाज आना, कर्णनाद के हेतु से अति बैचैनी, होना और शिरदर्द आदि लक्षण होने पर इस रसायन का उपयोग अति लाभदायक है।

इक्षुमेह में अनेक उपद्रव होते हैं। इनमें मूत्रासुत (मूत्र में एसिटोन यूरिया Aceton Uria) ये भयंकर उपद्रव है। इस पर प्रमेहगकेसरी फलप्रद माना गया है।

सर्वाङ्ग में शूल, रक्तवाहिनियाँगत वातप्रकोप, कलायखञ्ज सदृश कम्प, चलने में पैरों का विचलित होना, सांधे-सांधे शिथिल होना, वेदना इतनी तीव्र रहना कि रात्रि व दिन में निद्रा का न आना, गरम जल से सेक करने या तैल मर्दन करने पर किञ्चित् काल अच्छा लगना, इसके विरुद्ध रोगी को हाथ का स्पर्श भी सहन न होना, तब तैल मर्दन की बात ही कैसे हो? ऐसे लक्षणयुक्त इक्षुमेह में इसका अत्यन्त उपयोग हुआ है।

बार-बार चक्कर आना, शिर उठाने पर चक्कर आकर गिर जाने का भय लगना, बार-बार मूत्रोत्सर्ग होना, प्रत्येक बार लघुशंका करने पर अशक्ति बढ़ने का भास होना, मूत्र का रंग पीला या धूसर होना आदि लक्षण होने पर प्रमेहगजकेसरी देना चाहिये।

मूत्रकृच्छ् पर इसका उत्तम उपयोग होता है। मूत्रकृच्छ् और मूत्राघात में निम्न प्रकार से अन्तर है। मूत्राघात में मूत्रोत्पत्ति ही कम हो जाती है। मूत्रकृच्छ् में मूत्रोत्पत्ति के कार्य में कुछ प्रतिबन्ध नहीं होता। परन्तु मूत्राशय से लेकर मूत्र नलिका के अन्त तक के मार्ग में कुछ रुकावट उत्पन्न होती है। इस हेतु से मूत्र की प्रवृत्ति कष्ट से होती है। इसके जीर्ण विकार में इसका उत्तम उपयोग होता है। पौरुष ग्रन्थि (Prostate gland) की अति वृद्धि न हुई हो तो उनकी वृद्धि से उत्पन्न मूत्रकृच्छ् में उसका उत्तम उपयोग होता है। जीर्ण सुजाक के रोगी के मूत्रकृच्छ्र पर तो इसकी अपेक्षा सुवर्णवङ्ग का अधिक उपयोग होता है।

लालामेह और सान्द्रमेह में यह रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है। संक्षेप में प्रमेह गजकेसरी सर्व धातु के पोषण क्रम को व्यवस्थित करने वाला, शक्तिवर्द्धक, शर्करासंजनन कार्य को नियमित करने वाला, रसायन और मूत्रदोष नाशक है। यह वात, पित्त, कफ तीनों दोषों, रस रक्त से शुक्र तक सब धातुओं तथा अग्न्याशय, यकृत् और मूत्रमार्ग पर अधिक लाभ पहुँचाता है। (औ.गु.ध.शा.)

(१७०) मेहान्तक रस

विधि-अभ्रकभस्म १ तोला, लोहभस्म २ तोले, नागभस्म ३ तोले और वंग भस्म ४ तोले लें। सबकों मिलाकर तालफल, वाराहीकन्द, शतावर और सफेद चन्दन के क्वाथ में पृथक्-पृथक् ३-३ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। (यो.र.)

मात्रा-१ से २ गोली। मक्खन-मिश्री के साथ सेवन करें।

सूचना-प्रमेह के जिन रोगियों का यकृत् निर्बल हो, यकृत् में से अन्त्र के भीतर पित्तस्राव कम होता हो, उनको गरम करके शीतल किये हुए गोदुग्ध के साथ मेहान्तक रस देना चाहिये। दूध को १-२ उफाण आवे, उतना गरम करना चाहिये। दूध अनुकूल न हो उनको आंवलों के हिम या मठ्ठे के साथ दे सकते हैं।

उपयोग-इस रस का दूसरा नाम 'पञ्चावलेह रसायन' भी है। यह रसायन प्रातःकाल यथाविधि सेवन करने पर प्रमेहों का नशा करता है। शाली चावल, परवल,चौलाई, बथुआ, मत्स्याक्षी(मछेछी) आदि शाक, मूँग का यूष और कच्चे केले का शाक ये सब पथ्य हैं। प्रमेह के अतिरिक्त यह अर्श, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कामला, पाण्डु, शोथ, अपस्मार, क्षतक्षय और रक्त कास आदि व्याधियों में लाभ करता है।

इस रस का उपयोग विशेषतः पित्तजप्रमेह-कालमेह, नीलमेह, हारिद्रमेह, माँजिष्टमेह आदि पर होता है। इन मेहों में यकृत के पित्त के कार्य में विकृति होती है। इस हेतु से मूत्र में विविध वर्णों की प्रतीति होती है। अभ्रकभस्म का कार्य धातुपोषण पर होकर क्रमशः वृक्कों पर भी होता है। फलतः मेह विकृति का नाश होता है। प्रमेहपिटिका में इसका उपयोग होता है। परन्तु साथ में शिलाजीत का प्रयोग भी करते रहना चाहिये।

रक्तार्श के पश्चात् हृदय में धड़कन बढ़ जाना, धमनी में स्पन्दनवृद्धि, चक्कर और पाण्डुता आदि विकारों में उसका उपयोग होता है। ग्रहणी रोग में एक प्रकार की पाण्डुता आती है, उसे यह दूर करता है।

अश्मरी से मूत्रमार्ग में निर्बलता आ जाने पर अश्मरी के सूक्ष्म-सूक्ष्म कण किसी-किसी स्थान में रुक जाते हैं। फिर भयंकर वेदना होती है। पेशाब अति कष्ट से होता है, क्वचित् उसमें अश्मरी के कण निकलते हैं तथा मूत्र गंदला हो जाता है। इस पर मेंहान्तक रस का उत्तम उपयोग होता है। अनुपान गिलोय का स्वरस या तामलखाने का हिम देवें।

कामला की उत्पत्ति पित्तस्राव में रोध होने पर या यकृत् की विकृति होने से होती है। यदि यकृद् विकार से मन्द कामला हुआ हो तो इस रस का उपयोग किया जाता है।

तरुण स्त्रियों को होने वाले हलीमक (हारिद्रक पाण्डु) पर यह औषधि लाभ पहुँचाती है। उसके सेवन-काल में गेहूँ के बिना छने आटै (चोकर यु मोटे आटे) की रोटी, गौ का मक्खन या ताजा घी और ताजा शाक भाजी का अधिक उपयोग करना चाहिये।

पाण्डु रोग के पश्चात आये हुए शोथ, वृक्कविकार से उत्पन्न शोथ, हृद्रोग से उत्पन्न शोथ आदि सर्वाङ्ग शोथ दूर होने पर आई हुई अशक्ति दूर करने और फिर अशक्ति में पुन: शोथ न आने के लिये इस रस उत्कृष्ट उपयोग होता है। उर:क्षत के पश्चात् होने वाले क्षय रोग पर इस रसायन का उपयोग होता है। उर:क्षत में कास के साथ रक्त गिरने या अन्य प्रकार के क्षय में कास के साथ रक्त गिरने पर यह रस लाभदायक है। इस रस के साथ अनुपान रूप में वासा स्वरस और शहद या वासावलेह मिलाने पर सत्वर लाभ होता है।

इस रस में रहे हुए अभ्रक आदि भस्मों के संयोग से धातुपोषण क्रम व्यवस्थित होता है, मूत्र में जाने वाली शर्करा की मात्रा कम हो जाती है। मूत्र परीक्षा या रक्त परीक्षा द्वारा शर्करा का बारम्बार निर्णय करते रहना चाहिये। (औ.गु.ध.शा.के आधार से)

(१७१) सूतिकाभरण रस

विधि-सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, ताम्र भस्म, प्रवाल भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और कुटकी इन १३ औषधियों को समभाग लें। फिर यथाविधि मिलाकर आक के दूध में खरल करे। पश्चात् चित्रकमूल के क्वाथ और पुनर्नवा के रस की १-१ भावना देकर गोली बनावें। सूखने पर सराव संपुटकर दृढ़ कपड़मिट्टी करें। फिर भूधरयन्त्रों में रखकर अग्नि देवें। स्वाँग शीतल होने पर खरल कर लें। (र.यो.सा.)

मात्रा-१/४ से १/२ रत्ती तक। रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

उपयोग-यह रस उपद्रव सह सूतिका रोग, विशेषत: धनुर्वात और त्रिदोषज व्याधियों का नाश करता है।

सूतिका ज्वर का कारण सूतिका विष है। प्रसव के समय में आवश्यक स्वच्छता न रखने या मलिन वस्त्र या अन्य मलिन वस्तु धारण करने अथवा मूर्ख दाई के गन्दे हाथ के सम्पर्क होने पर बाहर का सेन्द्रिय विष योनिमार्ग में प्रवेश कर जाता है एवं प्रसवकाल की वेदना, प्रसव समय में योनिमुख या गर्भाशय मुख में व्रण हो जाना, अपरा (आंवल) पतन से गर्भाशय की श्लैष्मिक कला में क्षोभ हो जाना, शोथ और व्रण में विष का प्रवेश हो जाना आदि कारणों से दोषप्रकोप होता है। फिर उसका असर सर्वाङ्ग में होने पर सूतिका ज्वर उपस्थित होता है। इसमें ज्वर के सामान्य लक्षण तो होते ही हैं, साथ साथ योनिस्राव में दुर्गन्ध, गर्भाशय पर स्पर्श करने पर वेदना, रक्तयुक्त या सफेद दुर्गन्ध युक्त स्राव होना आदि लक्षण होते हैं। इस पर सूतिका भरण देना चाहिये तथा उत्तर बस्ति से योनिमार्ग का प्रक्षालन करना चाहिये। केवल योनिमार्ग ही नहीं; गर्भाशय के मुख में उत्तर-बस्ति-यन्त्र के द्वारा गर्भाशय को भी साफ करना चाहिये। ये प्रसूति कार्य विशेषज्ञों से ही कराना चाहिये। कारण प्रसव वेदना, क्लेद-वहन और अस्त्र प्रयोग से गर्भाशय अत्यन्त नाजुक बन जाता है। अत: सब कार्य सम्हाल पूर्वक करना चाहिये। पहिले शोधन बस्ति दें। फिर आवश्यकता पर तैल की शमन बस्ति दें। इस तरह प्रयोग करने पर सूतिका ज्वर के सेन्द्रिय विष का नाश होता है। फिर दोषविकृति दूर करने से ज्वर का भी शमन हो जाता है।

सूतिका विष और उससे उत्पन्न दोषप्रकोप का परिणाम वातवाहिनियों और स्नायु, विशेषत: शरीर के बर्हिमार्ग में रहे हुए स्नायु प्रतान पर होकर धनुर्वात की उत्पत्ति हो जाती है। वातवहमण्डल में सुषुम्णा के अग्रभाग और त्रिकास्थि के अन्तर्भाग में रहे हुए जल में दोष-दुष्टि अधिक होती है; फिर प्रारम्भ में हनुग्रह की उत्पत्ति होती है।* यह धनुरायाम के प्रथम और स्पष्ट लक्षण हैं। फिर सर्वाङ्ग में आक्षेप आने लगते हैं। झटकों के हेतु से समस्त शरीर धनुष के समान मुड़ जाता है। देह भीतर मुड़ता है तो उसे अन्तरायाम और बाहर की और मुड़ता है तो उसे बाह्यायाम कहते हैं। धनुष्कम्प आदि शब्द लक्षण द्योतक हैं। इस तरह धनुर्वात सूतिका को एवं अन्यों को भी होता है। दूसरों को होने में सूतिका विष हेतु नहीं होता। सूतिका विष के समान चोट आदि कारणों से उत्पन्न आगन्तुक व्रण में भी सेन्द्रिय विष का प्रवेश होकर धनुर्वात होता है। दोनों पर सूतिका भरण का उपयोग होता है।

कालकूट रस भी धनुर्वात में उपयोगी है; परन्तु वह अति तीव्र है और सूतिकाभरण अति सौम्य है। यह सूतिका भरण ज्वर होने पर भी दिया जाता है। कालकूट रस ज्वर होने पर नहीं दिया जाता। कालकूट से हृदय और नाड़ी का वेग बढ़ जाता है। रक्तस्राव होने पर भी कालकूट नहीं देना चाहिये। यदि रक्तस्राव होता है तो सूतिकाभरण और सुवर्णमाक्षिक भस्म को मिलाकर देने से उपयोगी होता है।

सूतिका विष से उत्पन्न सन्निपात ज्वर में यह रसायन उत्तम कार्य करता है। सान्निपातिक अवस्था में जो-जो स्थान विकृति हो, उसमें यदि वेदना अधिक हो तो उस पर सूतिकाभरण का अच्छा उपयोग होता है।

---

* हनुग्रह (Pucrperal-Tetanus) लक्षण उपस्थित होने के साथ व्याधि ने मारक रूप धारण कर लिया है, ऐसा मानकर हम सूतिकाभरण और चतुर्भुज मिला कर नागरबेल के पान के रस के साथ २-२ घण्टे पर ३-४ बार सेवन कराते हैं। जिससे धनुर्वात (अपतानक) के दौरे का शमन हो जाता है। इस तरह यथा समय उपचार नही किया जाय, तो फिर कई बार पश्चाताप करना पड़ता है।

श्लैष्मिक सन्निपात में उर:शूल लक्षण विशेष हो या सूतिका को श्लैष्मिक सन्निपात हुआ हो तो इस रस का विशेष उपयोग होता है। हृदयशूल चलता हो उसका भी इससे शमन होता है। कुक्षिशूल और साथ-साथ किञ्चित आक्षेप होने पर यह अच्छा लाभ पहुँचाता है।

संक्षेप में यह सूतिका-विषघ्न, आक्षेपहर, कीटाणुनाशक और ज्वरहर है। गर्भाशय, वातवाहिनियां, सुषुम्णा के मुख और अग्रभाग पर शामक प्रभाव पहुँचाता है। वातादि धातुओं और रस, रक्त माँस, स्नायुकण्डरा आदि दूष्यों पर हितकर है। (औ.गु.ध.शा.)

(१७२) स्मृति सागर रस

विधि-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल, ताम्रभस्म ये ५ औषधियां समभाग मिला बच और ब्राह्मी के क्वाथ की २१-२१ भावनायें और मालकांगनी के तैल की १ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा-आध से १ रत्ती। मक्खन या घी के साथ दिन में २ या ३ बार देवें।

सूचना-यदि स्मृतिसागर को ब्राह्मी के क्वाथ की भावना देने के पहले मालकांगनी के तैल की भावना दी जाय, तो गोलियां बनाने में सुविधा रहती है। **कितने ही ग्रन्थकारों ने इस रस के पाठ में सुवर्णमाक्षिक भस्म भी मिलाई है। सुवर्णमाक्षिक के योग से गुणों में वृद्धि होती है।** (यो.र.)

उपयोग-यह रस अपस्मार पर अति उपयोगी है। यह सहस्रार और वातवाहिनियों पर शामक असर पहुँचाता है। विशेषत: आज्ञावाही (चेष्टावाही) नाड़ीयों का क्षोभ होने पर उत्तम कार्य करता है। **महावातविध्वंसन, एकांगवीर और स्मृतिसागर ये वाताशामकत्रयी है।** यह स्निग्धगुणभूयिष्ठ रसायनों में गणना करने योग्य हैं।

स्मृतिसागर का उपयोग उन्माद में अच्छा होता है। **उन्मादविकार केवल मनोवृत्ति के विभ्रम से उत्पन्न होता है। यह अल्प सत्व मनुष्य को होने वाली मानसिक व्याधि है।** अपस्मार केवल मानसिक व्याधि नहीं है। उन्माद कारण भेद से नाना लक्षणात्मक और विभिन्न प्रकार का होता है। सर्व कारणों के मूल में क्रोधी स्वभाव और असहनशीलतायुक्त मनोवृत्ति बहुधा मुख्य कारण है। कितने ही व्यक्तियों में स्वभाव ही ऐसा होता है कि, उनसे जरा भी ऊँचा नीचा व्यवहार सहन नहीं होता। ऐसे मनुष्यों को यह विकार सहज हो जाता है। इस तरह केवल मानसिक क्षोभ से इस व्याधि की उत्पत्ति होती है। यह एक प्रकार है। दूसरे प्रकार में शारीरिक दोषों की विकृति होने से मन पर दुष्परिणाम होकर उन्माद उत्पन्न होता है। स्त्रियों के स्वभाव में सुकुमारता, गर्भावस्था और प्रसूतावस्था आदि कारणों से उन्माद की उत्तम भूमिका तैयार हो जाती है। फिर दोषप्रकोप होकर या मानसिक विकृति होकर उन्माद हो जाता है। यह विकार स्त्रियों को अधिक होता है।

स्मरोन्माद (Hysteria) और भूतोन्माद तरुण युवतियों को अधिक होते हैं। बड़ी आयु वाली स्त्रियों को कम होते हैं। इनमें भी अतिशय उतावले स्वभाव वाली संकुचित मन की, क्षुद्र कारणों से चिढ़ने वाली युवतियों पर इस रोग का आक्रमण अधिक होता है। **जिस भूतोन्माद में अमर्त्य लक्षण अधिक हों ऐसे उन्माद में स्मृतिसागर अधिक उपयोगी नहीं होता। पिशाच, ब्रह्म, सर्प, यक्ष आदि ग्रहपीड़ितों के लक्षण शास्त्र में दिये गये हैं। उन पर इस औषधि की अपेक्षा जटामांसी, माहेश्वरी (सर्पगन्धा) खस आदि औषधियाँ जो मानस शास्त्र ने निर्दिष्ट की हैं, उन का उपयोग करना विशेष हितकारक माना जाता है।**

स्मरोन्माद में ताप्यादि लोह अधिक उपयोगी है। वह पित्तविशिष्ट लक्षणात्मक विकार में अधिक उपयुक्त है। बार-बार चक्कर, नेत्र के समक्ष अन्धकार, घबराहट, दाह आदि लक्षण होकर वमन अधिक होती हों तो ताप्यादि लोह अधिक उपयोगी है। **परन्तु ये लक्षण न हों बिल्कुल अंग जड़ होना, किसी भी गढ्ढे या जल में गिरने सदृश भासना, अङ्गों में झनझनाहट, कण्ठ में घर-घर आवाज; घुरघुराहट, दांत भिंचना, दांत बंधाने पर लाला निकलना, मुंह पर जड़ता, हाथ-पैर के तलों में प्रस्वेद आना प्रस्वेद के स्थान पर खुजली चलना मोटे धब्बे पड़ना, उबाक, मुंह में जल आना, उदर में जड़ता भासना, पहले अंग जड़ और शीतल होकर उन्माद के झटके आना, प्रकृति स्थूल और कफभूयिष्ठ होना, मासिकधर्म में आर्तव बिल्कुल कम आना, और उदर में दर्द होना, उदर में ऐंठन, गर्भाशय के चारों और जड़ता, [illegible] और उबाक आकर वान्ति होना आदि लक्षण हों, तो ऐसे स्मरोन्माद पर स्मृतिसागर फलप्रद होता है। झटके के पश्चात् सर्वाङ्ग में जड़ता अतिशय आती हो, यह विशेष लक्षण होना चाहिये।**

उन्माद का कारण क्रोध, शोक या भय इनमें से कोई भी एक होने पर ताप्यादि लोह हितकारक है। परन्तु इनके अतिरिक्त कारण होने पर स्मृतिसागर का अच्छा उपयोग होता है। अफीम के व्यसनियों के उन्माद(मानसविषाद Melancholia) जिस प्रकार में रोगी की विचारशक्ति कुण्ठित-सी हो जाती है, रोगी उदासीन-सा भासता है, उन पर भी यह उपयोगी है। **तथैव गाँजा, भांग और शराब के व्यसनियों के उन्माद पर ताप्यादि लौह अत्युत्तम है।**

छोटे बालकों के बालग्रह में स्मृतिसागर उपयुक्त औषधि है। बालग्रह स्वतन्त्र व्याधि नहीं है; परन्तु परतन्त्र लक्षण है। छोटे बालक के उदर में कुछ विकृति होने पर इस व्याधि की उत्पत्ति होती है एवं सहस्रार आदि स्थानों में विकार होने पर भी इसका आक्रमण हो जाता है।

उदर विकृति से उत्पन्न बालग्रह होने पर उदर शुद्धि कारक औषधि देकर फिर शामक औषधि देनी चाहिये। स्कंधग्रह, पूतना, अहिपूतना, शीतपू
आदि बालग्रहों में दोष सहस्रार, सहस्रावरण, सुषुम्णा और सुषुम्णाकन्द में होता है। इस विकार में अस्वस्थता, बेहोशी या तन्द्रा, हाथ-पैरों
बिल्कुल चलने का अभाव, मुँदे हुये नेत्र, केवल आक्षेप आने पर चेष्टा होना और अन्य समय में शून्यता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस
स्मृतिसागर विशेष उपयोगी है।

पक्षाघात की तीव्र अवस्था कम होने पर पहले की अवस्था में स्मृतिसागर का अति उत्तम उपयोग होने के उदाहरण मिले हैं। इस वि
में शीतल स्थान में शयन, गीले वस्त्र पहनना, ठण्डे पत्थरों पर देर तक बैठे रहना; शीत लग जाना या शीत प्राय: अन्य कारण होते हैं। अ
प्रकार के कारणों से उत्पन्न पक्षाघात की जीर्णावस्था में इसका उत्तम उपयोग होता है। [redacted]
[redacted] शरीर में जड़ता, झनझना
शोथ, बोलने में स्पष्ट उच्चारण न होना, जीभ रुकना, मुंह में पानी छूटना, जिस भाग में विकार हुआ हो वह जड़ भासना आदि लक्षण हो
पर स्मृतिसागर उपयोगी औषधि है।

स्त्रियों को क्वचित् सगर्भावस्था में तीव्र यकृत-संकोच और गर्भवात ये दो अति भयंकर विकार हो जाते हैं। तीव्र यकृत् संकोच होने
नेत्र पीले हो जाते हैं, सर्वाङ्ग पीला हो जाता है, दस्त सफेद होता है, ज्वर वेगपूर्वक आता है, वमन होती है, और फिर ४-६ दिनों के
आक्षेप आने लगते हैं। इनमें पित्त भूयिष्ट लक्षण होने पर ताप्यादि लोह अधिक उपयोगी है। परन्तु जड़ता, मन्दता, आलस्य, निन्द्रा, उबाक, वा
आदि लक्षण होने पर स्मृति सागर का उपयोग होता है। गर्भवात (Eclampsia) के विकार में पहले से जड़ता आदि लक्षण होने पर फि
बड़े-बड़े झटके आने, जड़ता, उबाक, तन्द्रा, अतिशय शिथिलता आदि लक्षण मुख्य हों, तो स्मृतिसागर का उपयोग कराना चाहिये, बेहोशी हो
पर भी यह लाभदायक है।

संन्यास (Coma) अति भयंकर व्याधि है। इस रोग के अनेक कारणों में से एक कारण मन:क्षोभ है। इस हेतु से रोगी अति बैचे
थका हुआ, असावधान पड़ा रहता है। हाथ-पैर नहीं चलते, नेत्र भी बन्द रहते हैं। ऐसी स्थिति में रोगी पड़ा-पड़ा घोरता है; किसी ने आवा
दी तो भी प्रत्युत्तर नहीं देता; बिल्कुल बेहोश भासता है। [redacted]
रोग में कितने ही रोगी जड़ बेहोश देखे हैं और [redacted]
[redacted] परन्तु जड़ता अधिक होने से निश्चेष्ठा, शीतलता, लालास्राव आदि लक्षणों में इस रस का उपयोग होता है।

अपतानक (Tetanus) आदि जिन विकारों में झटके आते हैं, उनमें सुषुम्णा और मस्तिष्कावरण की विकृति होती हैं। इनमें श्लेष्म सं
और जड़ता आदि लक्षण अधिक हों तो स्मृतिसागर अत्युत्तम औषध है।

आक्षेपक वात में झटके कम होकर फिर सर्वाङ्ग में जड़ता, गरदन शून्य-सी भासना, सर्वाङ्ग में झनझनाहट, मुँह में बेस्वादुपन, उबाक
नेत्रों में अंधेरा आजाना आदि लक्षण प्रबंल होने पर स्मृतिसागर का उत्तम उपयोग होता है।

यदि आक्षेपक वात में कमर और मेरुदण्ड मे भयंकर पीड़ा, निद्रानाश, ज्वर १०२°-१०३° डिग्री रहना, अहोरात्र झटके आते रहना, हाथ-
पैरों में शीतलता, शरीर में जड़ता और झनझनाहट आना आदि कफवातप्रधान लक्षण हों तो [redacted]

ग्रन्थिक, आन्त्रिक या आक्षेपक सन्निपात या ऐसे ही भयंकर सान्निपातिक ज्वरों में अकस्मात् स्मृतिभ्रंश-स्मृतिनाश होकर कोई अवयव निश्चे
हो जाना, कार्य करने में असमर्थ हो जाना आदि लक्षण उपस्थित हुए हों, तो सान्निपातिक विकार का परिणाम मानस, सहस्रार, नाड़ी चक्र
आज्ञावाहिनियों पर हुआ है, ऐसा मानना चाहिये। ऐसे रोग का शमनकर मूल विष को नष्ट करने में यह अति उपयोगी है।

सन्निपात मूल कारण न होने पर भी अकस्मात् किसी को स्मृतिनाश हो जाता है। वृद्धावस्था में मनोदौर्बलय के हेतु से स्मृतिनाश हो
है। वृद्धावस्था में स्मृतिनाश मस्तिष्क को योग्य परिपोषण न मिलने के हेतु से होता है। वातवाहिनियों की क्रिया उत्तम प्रकार से नहीं होती
कफदोष का भी अधिक प्रादुर्भाव हो जाता है। [redacted]

संक्षेप में इस रस की मुख्य औषध [redacted] इस निरीन्द्रिय द्रव्यों पर शुद्धि
संस्करण करने के हेतु से गुणवीर्य का उत्कर्ष हुआ है। इस द्रव्यगुणोत्कर्ष की वृद्धि कराने के लिये ब्राह्मी आदि सेन्द्रिय और सचेतन द्रव्यों
की भावना दी है।

ब्राह्मी, वच और मालकांगनी तीनों सीतवीर्य, शामक, वातघ्न और आक्षेपहर हैं। इस औषधियों को भावना के हेतु से स्मृतिसागर में प्रभाव का शनैः शनैः संमिश्रण हो जाता है।

पारद आदि औषध, तीक्ष्ण उष्ण व्यवायी और सूक्ष्म स्रोतोगामी होने से उनके साथ मिश्र हुए ब्राह्मी आदि औषधियों के शामकत्व आदि गुणों का गुण परिपोष होता है। परिणाम में स्मृतिसागर उत्कृष्ट वीर्यवान् बन जाता है। ब्राह्मी में अति मन्द स्थिर गुण होने से उसके शामक गुण का सत्वर शोषण नहीं होता। अतः शरीर में उसकी शामकता फैलने में और भी समय लग जाता है। परन्तु पारद आदि का संयोग होने से ब्राह्मी आदि के गुणों का उत्कर्ष होता है और वे शरीर में सर्वत्र फैल जाते हैं। द्रव्य-संयोग और संस्कार में द्रव्यान्तरोत्पत्ति होती है, द्रव्य द्रव्यान्तर प्राप्ति होने पर मूल स्वभाव का त्याग नहीं करता। **योगवाही द्रव्यों का यह नियम है कि अपने गुणों का त्याग न करते हुए अन्य मिश्र औषधि के गुणों की वृद्धि करा देना।** इस दृष्टि से यह कफ संसर्गयुक्त रोगों पर उत्तम कार्य करता है।

यह रस वात और कफदोष तथा रस, रक्त और मांस इन दूष्यों पर कार्य करता है। इसका कार्य मनोदेश, सहस्रार, सुषुम्णा, आज्ञावाहिनियां और स्नायुओं पर शामक और आक्षेपघ्न होता है। (औ.गु.ध.शा.)

स्त्रियों के मासिकधर्म की निवृति लगभग ५० वर्ष की आयु में होती है। उस समय किसी को शिरदर्द, कमर में जड़ता और किसी को मानसिक आघात पहुँचकर उन्माद के लक्षण प्रकाशित होते हैं। **उस उन्माद पर स्मृतिसागर और महावातविध्वंसन रस मिला जटामांसी के चूर्ण और घी के साथ दिन में ३ बार देवें तथा भोजन कर लेने पर सारस्वतारिष्ट पिलाते रहने पर रोग दूर हो जाता है।**

(१७३) कुष्ठकुठार रस

विधि–पारद भस्म (रससिंदूर), शुद्ध गंधक, लोह भस्म, ताम्रभस्म, गूगल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, शुद्ध कुचिला, चित्रकमूल, और शिलाजतु इन ११ औषधियों को ४-४ तोले तथा कंरजबीज और अभ्रक भस्म को १६-१६ तोला लेवें। सबको यथाविधि मिला लें। शिलाजतु और गूगल को जल में मिश्रित करके मिलावें। अच्छी तरह खरल होकर शुष्क और एक जीव हो जाय, तब घी मिलावें। फिर शहद मिलाकर अमृतबान में भर देवें। (र.यो.सा.)

मात्रा–२ रत्ती से १ माशे तक दिन में २ बार देवें। पथ्य में शालिचावल, दुग्ध, शहद, मिश्री और गुड़ देंवें। दाह होने पर पाताल गरुड़ी की जड़, ओडहल के फूल और धनियां को समभाग मिलाकर सबके समान मिश्री मिला लगभग १-१ तोला सेवन करें अथवा नागबला की जड़ का चूर्ण घी शहद में मिलाकर चाटें।

उपयोग–गलत्कुष्ठ के जिन रोगियों के कान, नाक, अंगुलियाँ आदि गल गये हों, बिल्कुल देह भाग गल गया हो; देह में से भयंकर दुर्गन्ध निकलती रहती हो, मक्खियां भिनभिनाती हों, उनको यह रस जीवन दान देता है और देह को सुन्दर स्वरूपवान बना देता है।

यह औषधि गलत्कुष्ठावस्था में अति उपयोगी है। इसमें सम्मिश्रित अभ्रक का धर्म जो धातुपरिपोषण क्रम व्यवस्थित करने का है; वह अति स्पष्ट रूप में प्रतीत होता है। कुष्ठ में त्वचा, रक्त मांस और रक्तवारि आदि में क्रम से विकृति होती जाती है। गलत्कुष्ठ होने पर त्वचा बिल्कुल शुष्क सड़ी हुई भासती है। इसमें ऊपर का भाग, विशेषतः अंगुलियों के पर्व गलने लग जाते हैं। त्वचा की संवेदना कम होने पर या बिल्कुल नष्ट प्रायः होने पर हाथ या पैर के पर्व गिर जाते है, पर्व गिरने पर भी वेदना मर्यादा में ही होती है। जिस स्थान पर से पर्व टूट जाते हैं, उन स्थान पर मांसयुक्त भाग खुला हो जाता है, फिर उस स्थान से क्लेदयुक्त दुर्गन्धमय लसीका का स्राव होता है। सारा स्थान बिल्कुल पककर ऊंचा उठ जाता है। उतना होने पर भी जलन या पीड़ा अधिक नहीं होती। जड़ता, हाथ पैर उठाने में अशक्ति और आलस्य इतना बढ़ जाता है कि, पड़े हो तो पड़े ही रहने की इच्छा होना, अति निद्रा, त्वचा का रंग बदल जाना, सर्वाङ्ग में अति रूक्षता, त्वचा फूली हुई और फटी हुई हो जाना, स्पर्श का बोध न होना, व्रण होने पर उसमें से दुर्गन्धमय स्राव, व्रण भाग जल्दी न भरना, अति प्रस्वेद, प्रस्वेद में दुर्गन्ध आना आदि लक्षण युक्त अवस्था में इसका सेवन अति हितकर है। भोजन में मधुर रस का सेवन अधिक करना चाहिये। इस रस का कार्य संज्ञावाहिनियों को पुनः संज्ञा की प्राप्ति कराना है। इस हेतु से कितने ही रोगियों को दाह होता है। (औ.गु.ध.शा.)

(१७४) पञ्चामृत रस

विधि–पारदभस्म (रससिंदूर)अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शुद्धशिलाजतु, शुद्ध बच्छनाभ, गिलोय और त्रिफला के क्वाथ से सिद्ध किया हुआ गूगल और ताम्रभस्म इन ७ औषधियों को समभाग मिला, शहद के साथ खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें या चूर्ण ही रहने दें। गोलियाँ बनाने पर गूगल मिश्रित होने से कुछ पारद पृथक हो जाता है। (र.र.)

वक्तव्य–रस रत्नाकर आदि कतिपय ग्रन्थों के टीकाकारों ने पारदभस्म के अभाव में प्रतिनिधि स्वरूप 'ताम्रभस्म' लेने को और किसी-किसी टीकाकार ने ताम्र भस्म को पारद भस्म के समान मिलाने को लिखा है।

रससिंदूर षड्गुण लेना चाहिये। कमगुण वाला होने पर गूगल के हेतु से उसका वियोजन हो जाता है। सर्वोत्तम मार्ग यह है कि पारद

पक्षच्छिन्न की भस्म मिलावें। विशेष प्रकार का हम पञ्चामृत रस बनाते हैं, जो क्षयज्वर की बढ़ी हुई अवस्था में विषप्रकोप से उत्पन्न ज्वर दमन करने में प्रभावशाली प्रतीत हुआ है।

पारद में कीटाणुनाशक और रसायन गुणप्रधान है और ताम्र में प्लीहा यकृत शक्तिवर्द्धक गुण मुख्य है। अतः हमने इन गुणों की आवश्यक समझकर उक्त दोनों ही भस्मों को मिलाना श्रेष्ठ समझा है।

मात्रा–१ से २ गोली। वासावलेह, बकरी के दूध, शहद-पीपल, काली मिर्च और घी अथवा जल के साथ दें।

उपयोग–इस रस के सेवन से राजयक्ष्मा के ज्वर आदि विविध लक्षणों का निवारण होता है। इसका उपयोग कीटाणुजन्य क्षय में ज्व वेग तीव्र होने पर किया जाता है। परन्तु क्षय की प्रथमावस्था में जब ज्वर अधिक न हो; तब इस तीव्र रस का प्रयोग न किया जाय तो अ है। प्रथमाअवस्था में अभ्रक भस्म, श्रृंगभस्म, प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व का मिश्रण देना विशेष हितावह माना जायगा। जब द्वितीया या तृतीयावस्था में ज्वर का वेग तीव्र हो जाता है, तब आवश्यकता पर यह रस देते रहें। क्षय में रस, रक्त आदिधातु क्षीण होकर आगे की माँस आदि धातुओं की क्षीणता होने लगती है, बलमांसविहीनत्व आने लगता है; रोगी ज्वर से ग्रस्त-सा रहता है तथा कफ अधिक मात्रा में निकलता है। इसका सेवन अति हितकर है।

शुक्रपात होने की आदत हो जाने या अति व्यवाय से शुक्र धातु का क्षय होने पर अन्य धातु भी क्षीण होकर क्षय रोग हो जाता है। स्त्रियों को दीर्घकाल तक प्रदर आदि विकार दृढ़ हो जाने पर अन्य धातु क्षीण होकर क्षय रोग की संप्राप्ति हो जाती है। इन दोनों प्रकार क्षय पर इस पञ्चामृत रस का उपयोग हितकारक है।

पञ्चामृत का उपयोग प्रमेह में उत्तम होता है। मूत्रोत्सर्ग की शंका बनी रहना बार-बार अति पेशाब होना, बार-बार मूत्रोत्सर्ग होने से निद्रानाश कृशता और क्षीणता आ जाना, मुँह में शुष्कता, सर्वांग में चिपचिपा प्रस्वेद आना, सन्धिस्थान के प्रस्वेद में दुर्गन्ध आना या पक जाने सदृश भास आदि लक्षण होने पर इसका प्रयोग करें।

संक्षेप में यह रस धातुओं की क्षीणता कम करता है एवं यह धातुओं की साम्यावस्था स्थापित करने वाला, ज्वरघ्न, क्षयघ्न, बल्य, रसाय और प्रमेह आदि का शमन करने वाला है। (औ. गु.ध.शा

(१७५) कामधेनु रस

विधि–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, लोहभस्म, अभ्रकभस्म इन ८ औषधियों को समभाग मिला त्रिफ के क्वाथ में १ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (र.यो.सा.

मात्रा–१ से २ रत्ती। शहद-पीपल के साथ देवें।

उपयोग–यह रस धातुक्षय, पाण्डुरोग, जीर्ण विषमज्वर, प्रमेह, रक्तपित्त, अम्लपित्त, सन्निपात, घोर वातव्याधि, शूल, गुल्म, कृमि, अर्श, ग्र आदि रोगों को नष्ट करता है।

यह रस बल्य रसायन, पचनक्रिया-वर्द्धक तथा धातु परिपोषणक्रम को एक विवक्षित प्रकार से सहायक है। रस से लेकर शुक्रपर्यन्त सर्व क्षीण होते जाना, इस अवस्था को धातुक्षय कहते हैं। इसमें अन्न रस से बननेवाली रस धातु योग्य और सशक्त नहीं बनती। परिणाम में आदि धातुएँ भी क्षीण होती जाती हैं। इस अवस्था में पूर्व धातु में से परधातु को आवश्यक द्रव्य परिपूर्ण मिलना चाहिए एवं परधातु को चा कि पूर्वधातु में से आवश्यक द्रव्य लें, रूपान्तर करा, अपने स्वरूप में मिला लेवें।

इनमें से रस और रक्त धातु में क्रिया सम्यक् न होने पर रसक्षय और रक्तक्षय होते हैं। इन दोनों पर कामधेनु अति उपयोगी है। इ योग से रसक्षय से रसधातु बनने की क्रिया सम्यक् होने लगती है। उदर में अफारा, बड़े-बड़े जल के सदृश पतले सफेद दस्त, उदर में ज रात्रि-दिवस उबाक, तृप्ति का भास होना, मुंह और जीभ पर चिपचिपापन आदि लक्षण हों तो इसकी योजना करना चाहिए। रक्तक्षय में में से रक्तकण कम हो जाते हैं, फिर रक्त धातु कम होती है। रक्तकण कम होने पर निस्तेजता बढ़ती है, तथा रक्त धातु कम होने पर ज दाह, तृषा, चक्कर, घबराहट, नाड़ियों में वेगपूर्वक स्पन्दन, बार-बार श्वास भर जाना, जिह्वा शुष्क, फीकी और स्वादरहित, चाहे जितना पीने पर भी तृप्ति न होना, यकृत् और प्लीहा की किञ्चित वृद्धि, त्वचा और सर्वांग में विवर्णता, विशेषतः कालापन आदि लक्षण होते हैं, पर इसकी योजना की जाती है। इस व्याधि के हेतु चिन्ता, शोक, भय, मनोव्याघात, अतिचिन्तन, अभ्यास या मानसिक श्रम अधिक होना आ हो तो यह उत्तम लाभ पहुँचाता है। इस विकार में ज्वर और अपचन ये लक्षण मुख्य होने चाहिए।

जीर्णविषम ज्वर में दोष, दूष्य-संयोग देखकर विविध औषध योजना की जाती है। संतत, सतत दोनों प्रकार के ज्वरों की तीव्रावस्था कामधेनु का उपयोग नहीं होता। परन्तु इनकी जीर्णावस्था में ज्वरविष रस और रक्त धातु में प्रवेशकर उनको क्षीण बनाते रहते हैं, उस अव में कामधेनु प्रयोजित होता है। सन्तत अर्थात् एक सा बना रहने वाला ज्वर, इसके परिणाम में तीसरे या चौथे रोज से इसके विष का रस पर आक्रमण होता है। सर्वांग में जड़ता विशेषतः उदर में जड़ता, उबाक मुख में जल भर जाना, अंगसाद, विशेष ग्लानि, वमन में मीठा

जल गिरना, अरुचि, मलिन, दीन मुखमुद्रा आदि लक्षण होने पर इसकी योजना करनी चाहिए।

जो सतत् ज्वर अनेक मास तक आता रहता है, उसका असर रक्तधातु पर होता है। फिर दाह, निस्तेजता, बेचैनी, मन में विविध विचार आकर मन शून्य सा बन जाना, कड़वी और खट्टी वमन, विभ्रम, शरीर पर पिटिकाएँ हो जाना, दाह, तृषा, कुछ-कुछ प्रलाप अर्थात् बड़-बड़ करते रहना, निस्तेजता, दीनवाणी, चिंताग्रस्त-सा बन जाना आदि लक्षण होने पर कामधेनु रस का उपयोग करना चाहिये।

बार-बार अधिक मात्रा में पीले रंग का पेशाब होना, तृषा, सर्वांग में दाह, अंग पर चिपचिपापन, चिपचिपा प्रस्वेद और बगल आदि स्थानों से दुर्गन्ध निकलना आदि पित्तभूयिष्ठ प्रमेहों में कामधेनु रस जामुन के लेह या शिलाजतु के साथ देना चाहिये।

अधोगत रक्तपित्त या रक्तार्श दोनों विकारों में रक्तधातु क्षीण होकर दाह, दैन्यता, तृषा, भ्रम, घबराहट आदि लक्षण होने पर कामधेनु रस की योजना करनी चाहिए।

आमाशय की अशक्ति से आमाशय पित्त की उत्पत्ति में आवश्यक रक्त की पूर्ति न होने से पित्तस्राव सम्यक् और सर्वगुणयुक्त नहीं होता। इस हेतु से पित्त के कितने ही गुण बढ़कर अम्लपित्त व्याधि हो जाती है। अन्न का विदाह, अन्न का पचन न होना, आमाशय में दीर्घकाल तक पड़ा रहना, फिर उस हेतु से उदर में भारीपन, मुँह में बार-बार जल भर जाना, मुँह का बेस्वादुपन, घबराहट, बेचैनी, मन की अस्थिरता खाया हुआ अन्न कुछ समय में जलमय, दुर्गन्धित और क्लेदयुक्त बन जाना और वान्ति होकर बाहर निकल जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे अम्लपित्त पर इस कामधेनु रस की योजना करनी चाहिए। भोजन में पथ्य हलका अन्न, फल रस आदि देना चाहिए।

(औ.गु.ध.शा.)

(१७६) बालचन्द्र रस

विधि-सुवर्ण भस्म (अभाव में सुवर्ण के वर्क) १ तोला, सोनागेरु ३ तोला और मुक्तापिष्टी १२ तोले लें। फिर तीनों को मिलाकर अच्छी तरह खरल कर लेवें। (र.यो.सा.)

मात्रा-१-१ रत्ती दिन में २-४ बार। मक्खन-मिश्री, गिलोयसत्व, अनार शर्बत, दाड़िमावलेह या वासावलेह के साथ देवें।

उपयोग-राजयक्ष्मा में जब रक्तवमन, कफ के साथ रक्त गिरते रहना और पित्तप्रकोपज दाह, निद्रानाश, अति स्वेदोत्पत्ति, व्याकुलता, मूत्र में पीलापन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, तब इस बालचन्द्र रस का उपयोग तत्काल गुणप्रद होता है। बार-बार रसवाहिनियाँ टूटकर जो रक्तस्राव होता रहता है, वह तुरन्त काबू में आ जाता है। इसके लिए वासावलेह (अथवा दाड़िमावलेह) अनुपान रूप से प्रयोजित होता है। यदि मल के साथ रक्तस्राव होता हो, तो दाड़िमावलेह अथवा मक्खन-मिश्री विशेष लाभदायक माने जाते हैं। रक्त वमन और रक्तातिसार दोनों प्रकार में अनार शर्बत, दूर्वाघृत, अमृतासत्व आदि शामक औषधियों का सेवन सहायक होता है।

यह रस राजयक्ष्मा रोग में होने वाले वान्ति, उबाक, अतिसार, अरुचि, श्वासोच्छवास में कष्ट, पीनस, शुष्क-कास, श्वास और रक्तपित्त आदि विकारों को दूर करता है, तथा कृत्रिम विष और दूषीविषजनित दाह आदि का शमन करता है।

यह रस रक्त में रहे हुए कीटाणु और विष का संहार करता है, मस्तिष्क और वातवाहिनियों पर शामक असर पहुँचाता है, हृदय को सबल बनाता है, तथा आमाशय और अन्त्र आदि पचनेन्द्रिय संस्थान में सेन्द्रिय विषजनित विकृति को नष्टकर अतिसार, अरुचि, उबाक आदि को दूर करता है।

(१७७) योगेन्द्र रस

विधि-२ सिंदूर २ तोले, सुवर्ण भस्म, कान्तलोह भस्म, अभ्रक भस्म, मुक्तापिष्टी और बङ्ग भस्म १-१ तोला लेवें। सबको यथाविधि मिला ३ दिन घीकुंवार के रस में मर्दनकर गोली बनावें। फिर एरण्ड के पत्तों में लपेट कच्चे डोरे से बांध धान्यराशि में तीन दिन तक दबा देवें। पश्चात् निकाल खरलकर ½ -½ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा लेवें। (भै. र.)

मात्रा-१ से २ गोली। रोगानुरूप अनुपान के साथ दें।

उपयोग-इस रस के सेवन से वात-पित्तज रोग, प्रमेह, बहुमूत्र, मूत्राघात, बालपक्षाघात, (Polio) अपस्मार, भगन्दर, गुदरोग, उन्माद, मूर्च्छा, राजयक्ष्मा, पक्षाघात, इन्द्रियों की कमजोरी, शूल और अम्लपित्त आदि रोग नष्ट होते हैं। त्रिफला के स्वरस अथवा शक्कर या च्यवनप्राशावलेह के साथ सेवन कराने से स्वस्थ मनुष्य तेजस्वी होता है। निर्बलों को एक-एक रत्ती गोदुग्ध के साथ देवें। जीर्णवात, अपस्मार, उन्माद, हिस्टीरिया आदि रोगों में सारस्वतारिष्ट या धमासा, ब्राह्मी और जटामांसी के क्वाथ के साथ देना चाहिये।

यह रस आयुर्वेदिक औषधियों में एक उत्कृष्ट और वीर्यवान् वातशामक औषध है। यह विशेषत: हृदय, मस्तिष्क, वातवहानाड़ियों, मन और रक्त पर अपना प्रभाव दर्शाता है। पचनसंस्थान और मूत्रसंस्थान पर भी असर पहुँचाता है। इसके सेवन से वातवहानाड़ियाँ सबल होती हैं, अत: जोर्ण वातविकार के साथ पित्तप्रकोपजन्य दाह, व्याकुलता, निद्रानाश, मुखपाक अपचन आदि लक्षण हों तब यह विशेष लाभदायक है। जीर्ण वातविकार, अपस्मार और उन्माद आदि रोगों में यह निर्भयतापूर्वक प्रयुक्त किया जाता है।

इस रस में हृद्यगुण होने से हृदय बलवान बनता है और हृदय की संकोच विकास क्रिया नियमित होने से स्पन्दन संख्या कम हो जाती है। रक्त में रहे विष और कीटाणुओं का नाश होकर रक्ताणुओं की वृद्धि होती है। इस हेतु से इस रस से रोग शमन के साथ शारीरिक शक्ति की भी वृद्धि होती जाती है।

इस रस के सेवन से पचनेन्द्रिय सबल होने पर मूत्रसंस्थान के प्रमेह आदि रोग का भी निवारण हो जाता है, शुक्र शुद्ध और गाढ़ा बनता है, कामोत्तेजना होती है और देह दिव्य और तेजस्वी बन जाती है। मूत्रसंस्थान के रोगों पर इसे शिलाजीत के साथ देना चाहिए।

अति व्यवाय से उत्पन्न क्षय रोग की प्रथमा और द्वितीयावस्था में दाह होता हो, वीर्य पतला हो गया हो, स्वप्नदोष होता रहता को, शिथिलता और व्याकुलता बनी रहती हो, तो इस रस का सेवन करने से क्षय कीटाणुओं का नाश होता है, दाह शमन होता है और वीर्य सुदृढ़ होता है। फिर निर्बलता और व्याकुलता भी दूर होती है। युवकों के धातु जन्य क्षय रोग में अच्छा लाभ मिलता है।

पक्षाघात की संप्राप्ति विशेषत: रक्तवाहिनियों और वातवाहिनियों की विकृति होने पर होती है। इस रोग में कारण रक्तभार वृद्धि, मस्तिष्क में रक्तवाहिनी फट जाना; धमनी शिरा में शल्य आ जाना या शल्य की उत्पत्ति हो जाना, संज्ञावाही वातवहानाड़ियों के केन्द्रस्थान पर आघात, शीर्षास्थिभंग, आज्ञावाही वातवहानाड़ियों के व्यापार की विकृति या इनके मार्ग में अर्बुद हो जाना आदि अनेक हैं। उसकी तीव्रावस्था में तो इस रस का उपयोग नहीं होता। परन्तु तीव्रावस्था शमन होने पर पुन: दौरा न हो जाय इसलिए वात शामक, बृहंण, जीवन और रसायन गुणयुक्त औषधि देनी चाहिये। इसके लिए एंकागवीर और योगेन्द्ररस दोनों महत्व के हैं। इनमें से जो व्यक्ति अधिक तीक्ष्ण औषधि सहन कर सकते हैं; ऐसे वात कफप्रधान प्रकृतिवालों को एकाँगवीर दिया जाता है तथा पित्तप्रधान और वातप्रधान प्रकृति वालों के लिए योगेन्द्र रस की योजना करनी चाहिये। पक्षाघात पर यह अति दिव्य औषधि है। अर्धांगवात के समान-हाथ पैर, कमर के नीचे के हिस्से या मुख मण्डल के आधे भाग का वध हो गया हो, तो उस पर भी इसका सेवन हितकारक है। इसके सेवन के साथ मांसपेशियों को कार्यक्षम बनाने के लिये गुनगुने नारायण तैल की मालिश हल्के हाथ से कराते रहना चाहिये। पक्षाघात रोग अति जीर्ण होने पर बहुधा औषधि प्रयोग से लाभ नहीं होता।

अपस्मार और उन्माद की उत्पत्ति रक्त में विषवृद्धि होकर मस्तिष्क विकृति होने पर होती है। दोनों रोगों पर स्मृतिसागर, उन्मादगजकेशरी और भूतभैरव रस लाभदायक है, परन्तु कितने ही पित्तप्रधान प्रकृति वाले पुरुष रोगी तथा सगर्भा, प्रसूता, छोटे बच्चे की माता आदि नाजुक स्वभाव वाली स्त्री रुग्णाओं से ताम्रभस्म, हरताल, मैनसिल आदि उग्र औषधियां सहन नहीं होती। उनको रक्तप्रसादक, बृंहणीय और जीवनीय गुणयुक्तशीतल औषधि देनी चाहिये। इन गुणों का समन्वय योगेन्द्र रस में होने से अच्छा लाभ पहुँचाता है।

संक्षेप में यह रस अनेक महारोगों की अद्वितीय औषधि है। जो रोग अन्य औषधियों के दीर्घकाल सेवन से भी निवृत्त न हुए हों वे इस औषधि के सेवन से थोड़े ही दिनों में निवृत्त हो जाते हैं। बालपक्षाघात (Polio) में यह रस सर्वश्रेष्ठ कार्यकारी सिद्ध हुआ है। अनेक जीर्ण रोगी जो किसी चिकित्सा पद्धति से ठीक नहीं हो सके, वे इस रस से ठीक होने के अनुभव हुये हैं। (वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

(१७८) चतुर्मुख रस

विधि-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म और अभ्रक भस्म चारों ४-४ तोले तथा सुवर्ण भस्म १ तोला लें। सबको यथाविधि मिलाकर ७ दिन घीकुंवार के रस में खरल करें। फिर सोंठ, हरड़ और पुनर्नवा का क्वाथ, कौंच बीज और लौंग का क्वाथ तथा चित्रकमूल और पदमकाष्ठ का क्वाथ इन तीनों की क्रमश: 3-3 भावनायें देकर खूब गाढ़ा करें और एक गोला (एरंड पत्र में लपेटकर) धान्यराशि में 3 दिन दबा देवें। तत्पश्चात् निकाल (चित्रकमूल और पद्मकाष्ठ के क्वाथ में ६ घण्टे खरलकर) आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा-१ से २ गोली दिन में दो बार त्रिकला और शहद से दें।

उपयोग-यह चतुर्मुख रस ब्रह्मदेव ने राजयक्ष्मा को शमन करने के लिए निर्माण किया है। इस रस को अग्निप्रदीपक, पाचक, बल्य, रसायन और पौष्टिक औषधियों की भावना देने से यह प्रमेह और अग्निमांद्य को दूर कर शरीर को सबल बनाता है।

चतुर्मुख रस और सुवर्ण मिश्रित लक्ष्मीविलास रस, दोनों क्षयरोग में उपयोग होने वाली बल्य औषधि की जोड़ी है। इनमें से लक्ष्मीविलास ज्वर मर्यादित होने पर ही दिया जाता है, परन्तु इस चतुर्मुख रस के देने में ज्वरोष्मा चाहे जितनी बढ़ी हो या चाहे जितनी घटी हो, इस बात के विचार की आवश्यकता नहीं है। दोनों औषधों में क्षयघ्न अर्थात् क्षयोत्पादक कीटाणुओं को मारने वाली सुवर्णभस्म और धातुपरिपोषक शक्ति

को व्यवस्थित करने वाली अभ्रक भस्म मुख्य है एवं लोह आदि विशिष्ट धातुओं की बलदायक औषधियों की योजना भी की है। लक्ष्मीविलास रस में रससिंदूर का परिमाण अत्यधिक है और चतुर्मुखरस में कज्जली मर्यादित है एवं चतुर्मुख में सुवर्ण का परिमाण भी लक्ष्मीविलास की अपेक्षा कुछ कम है। इस तरह कृति-भेद होने से लक्ष्मीविलास का कार्य कफस्थान अर्थात् उर: और श्वासवाहिनियां आदि अवयवों पर अधिक [illegible] है, तब चतुर्मुख रस का कार्य आमाशय, ग्रहणी, लघुअन्त्र और बृहदन्त्र आदि पचनेन्द्रिय संस्थान पर अधिक होता है। इसलिए रोगारम्भस्थान [illegible]स आदि होने पर लक्ष्मीविलास और पचनेन्द्रिय संस्थान होने पर चतुर्मुखरस लाभदायक माना जाता है। अर्थात् जब क्षय के कीटाणुओं से उत्पन्न सेन्द्रिय विषद्वारा लघु और बृहदन्त्र दुष्ट होना प्रारम्भ हुआ हो, तब चतुर्मुख रस उत्तम कार्य करता है। इस रसायन का मुख्य गुण वीर्य बलोत्पादक है। बाहर से देखने पर रोगी हट्टा-कट्टा दीखता हो, निर्बलता का कोई भी लक्षण प्रतीत न होता हो, किन्तु भीतर से शनैः शनै शक्तिपात होता रहता हो, ऐसी परिस्थिति में चतुर्मुख रस उत्तम प्रकार से कार्य करता है।

अपचन की जीर्ण आदत अर्थात् कुछ थोड़ा-सा खाने पर उदर में आफरा आ जाय, स्निग्ध, द्विदल या जड़ पदार्थ थोड़ा-सा खाने पर भी पचन न होना, भोजन कर लेने पर उदर में भारीपन आ जाना, जैसे कोई वस्तु झूले में डालने पर नीचे बैठ जाती है, उस तरह भोजन आमाशय में जाने पर तल में बैठ जाना, भोजन उदर में जाने पर इच्छा दूर हो जाना, मुंह में पानी आना, अरुचि, अन्न का स्पर्श उदर में होने पर मन्द-मन्द शूल चलना, भोजन दीर्घकाल तक जैसा का वैसा ही पड़ा रहना, किसी तरह २४ घण्टे में एक बार कर्त्तव्य पूरा करने या बेगार टालने के लिये थोड़ा-सा खा लेना, दो ग्रास भी रुचिपूर्वक न लिया जाना, आदि परिस्थितियाँ होने पर मन अति निर्बल हो जाता है। किञ्चित् भी मानसिक आघात सहन नहीं होता, सहनशीलता बिल्कुल नहीं रहती। शरीर बल और अग्निबल भी धीरे-धीरे क्षीण होते जाते हैं। इन कारणों से रसोत्पत्ति सम्यक् नहीं होती। परिणाम में रक्त मांस, आदि धातुओं में भी क्षीणता होने लगती है। ऐसी परिस्थिति में त्रिफला चूर्ण और शहद के साथ इस रसायन की योजना करनी चाहिये।

इस तरह अपचन का परिणाम पक्वाशय पर होकर उसमें से अन्नरस का शोषण योग्य प्रकार से नहीं होता। पक्वाशय शिथिल हो जाता है। उसकी अन्तस्त्वचा के भीतर रक्त की पूर्ति चाहिये उतने परिमाण में नहीं होती। फिर इससे सारकिट्ट को पृथक् करने का कार्य सम्यक् प्रकार से नहीं होता एवं रस वहन का कार्य भी योग्य नहीं होता। परिणाम में पक्वाशय के समीपस्थ प्रदेश में रसवाहिनियाँ मोटी हो जाती हैं। इस हेतु से अग्निसाद उपस्थित होता है। सारा उदर भारी हो जाता है। सर्वदा उदर में एक प्रकार की तृप्ति होने पर भास होता है। बार-बार उबाक, अरुचि, उदर में व्यथा, मन्द ज्वर, कभी-कभी क्षुधा का भास होना, परन्तु भोजन करने की इच्छा का अभाव हो जाना आदि लक्षण होते हैं। भोजन नहीं किया जाता, ऐसी परिस्थति में आगे-आगे कुछ कच्चे झाग युक्त सफेद दुर्गन्धमय दस्त होते हैं। कितनों ही को कुछ समय जाने पर अतिसार हो जाता है। यह विकृति पित्त धातु की विकृति से उत्पन्न होती है। इस हेतु से अतिसार प्रारम्भ होता है। यकृत् अशक्त हो जाता है जिससे पित्तोत्पत्ति पूरी नहीं होती। परिणाम में रोगी निस्तेज, दीनवाणीयुक्त, क्षीण ओज वाला और बलहीन-सा प्रतीत होता है। उस पर चतुर्मुख रस उत्तम कार्य करता है।

बृहदन्त्र का उण्डुक (Coceum) भाग अशक्त हो जाने पर अन्न पर पित्त का संस्कार होकर बना हुआ अन्नांश, बृहदन्त्र के आरोही भाग (Ascending Colon) में योग्य रूप से नहीं फेंका जाता। आरोही भाग में अन्नांश को ऊपर और नीचे फेंकने की क्रिया (दोनों क्रियायें) होती रहती हैं। ये दोनों क्रियाएँ मुख्यत: लघुअन्त्र की क्रिया पर अवलम्बित है। ये दोनों कार्य मन्द हो जाने से और उस स्थान में अन्नांश के शोषण में न्यूनता आ जाने से अन्नांश जैसा का वैसा लघुअन्त्र में दीर्घकाल पर्यन्त रह जाता है। इस तरह प्रतिदिन अन्नांश रह जाने और पक्वाशय में पाचकत्व (अग्नि) कम हो जाने से अन्न का पचन, योग्य प्रकार से नहीं होता। फिर अन्न उसी स्थान पर विकृत होने लगता है और उस हेतु से विविध विकारों की उत्पत्ति होती है। यह जीर्ण बद्धकोष्ठ का विकार अत्यन्त त्रासदायक है। इससे उदर में वायु सर्वदा भरा रहता है, शौच-शुद्धि नहीं होती, अपान वायु का कार्य सम्यक् न होने से किट्ट भाग पूर्ण रूप से और योग्य समय पर बाहर नहीं निकलता, रोगी सर्वदा उदासीन और व्याकुल रहता है, तथा मन बिल्कुल निर्बल और उत्साह रहित बन जाता है। ऐसी परिस्थिति में लघुअन्त्र को शक्ति प्रदान कर अन्त्र की [illegible]र्ग-क्रिया, पाचन क्रिया को और संशोषण-क्रिया को सुधारने का कार्य इस रस से सहज हो जाता है।

इस रस से इन्द्रिय समूह को तुष्टि मिलती है और निर्बलता नष्ट होती है। अन्न सड़ने की क्रिया बन्द हो जाती है। विशेषत: कफप्रधान और कफपित्त प्रधान लक्षण होने पर इसका विशेष उपयोग होता है। यदि वातप्रधान लक्षण हो तो आरोग्यवर्द्धिनी देनी चाहिये।

धातुओं के विविध क्षय के हेतु से धातु-परिपोषण-क्रम क्षीण हो जाता है। इस क्षीणता को दूर करने का कार्य इस रसायन से सरलतापूर्वक हो जाता है। पचनेन्द्रिय क्षीण होने से पाचक पित्त में क्षीणता आती है। फिर उससे रस योग्य नहीं बनता। रसधातु की इस क्षीणता के हेतु से रक्त भी जितने परिमाण में सबल और पूर्णांशयुक्त चाहिये, उतने परिमाण में नहीं होता। परिणाम में आगे-आगे की धातुएँ और शरीर के अवयवों को एक प्रकार का उपवास करना पड़ता है जिससे क्षीणता की प्राप्ति होती है। रोगी कृश, दीन और दुर्बल बन जाता है। इस अवस्था में ज्वर रहता है, यह नियम नहीं है। इस प्रकार के धातुक्षय पर चतुर्मुख रस का उत्तम उपयोग होता है।

इस कारण परम्परा के हेतु से अन्न-पचन योग्य न होने से उत्पन्न होने वाले अतिसार में इस रस का उपयोग होता है। इस अतिसार में

शौच सफेद और झागयुक्त होता है। कभी-कभी बिल्कुल कच्चा अन्न जाता है। इसके साथ खाये हुए अन्न की वमन हो जाती है। उस वमि में अम्लता या कड़वापन नहीं होता। जैसा का वैसा अन्न किञ्चित मधुर-सा बनकर निकल जाता है।

चतुर्मुख राजयक्ष्मा की उत्तम औषध है। इस रस में सुवर्ण की मात्रा मर्यादित हैं। फिर भी इसे आरम्भ करने पर क्वचित् तुरन्त ज्वर परिमाण बढ़ने लगता है। ऐसी स्थिति में इसे कुछ दिन के लिये बन्द कर देना चाहिये या मात्रा अत्यन्त कम कर देनी चाहिए। क्षय का संशय होने पर नेत्र, छाती, पसली तथा पैर आदि में जलन, बेचैनी, अङ्ग टूटना कुछ ज्वर सदृश देह संतृप्त हो जाना आदि लक्षण होने इसे बिल्कुल कम मात्रा में प्रारम्भ करना चाहिये। ऐसी स्थिति में प्रवाल भस्म का भी उत्तम उपयोग होता है परन्तु पित्ताधिक्य हो, तो प्र और कफाधिक्य से स्रोतसों का रोध हो तो चतुर्मुख देवें। चतुर्मुख देने में दूसरा विशेष लक्षण क्षीणता होनी चाहिये। अन्तरेन्द्रिय की क्षीणता रोगी को अशक्ति लगना, यह लक्षण विशेष रूप से होने पर क्षय के प्रारम्भ काल में इसका प्रयोग करने से आगे की सब अनर्थ परम्परा प्राप्ति ही नहीं होती।

राजयक्ष्मा के आगे की अवस्था में क्षीणतारूप लक्षण प्रधान होने पर और इसी हेतु से स्वरभेद (ज्वर का वेग तीव्र न होने पर) सर्वांग में क्षीणता, मर्यादित दाह होने पर भी सहन न होना, दस्त पतला और अधिक होना, शौच दिन में एक दो बार होना और अधिक कष्ट न होना होना, प्रत्येक शौच के साथ क्षीणता की वृद्धि होना अन्न की इच्छा बिल्कुल न होना, विशेषत: जड़ और शीतगुणयुक्त अन्न (भात-दाल) की इच्छा बिल्कुल न होना, भोजन बहुत थोड़ा करने पर भी उदर में जाने पर भारीपन होना स्वल्प भोजन भी व्यथारूप भासना, खांसी शुष्क या कफयुक्त होना परन्तु खाँसी के प्रत्येक वेग के साथ मानसिक व्याकुलता और कष्ट होना, खांसी की आवाज अति गहराई में से निकलना, प्रत्येक वेग के साथ क्षीणता की वृद्धि होने का भास होना, बोलने पर कण्ठ में कफ चिपका हो ऐसा भासना, क्षीणता के हेतु से एक भी शब्द का उच्चारण नहीं हो सके ऐसी भासना होना, एकाध शब्द बोलने में भी अति कष्ट होना, हाथ-पैर चलाने की भी शक्ति न रहना और सारा शरीर शिथिल हो जाना, आदि लक्षण भासते हैं। ऐसी परिस्थिति में चतुर्मुख से उत्तम कार्य होने के अनेक उदाहरण मिले हैं।

रक्त में रक्तकण कम हो जाने से और इसका कारण विशेषत: मानसिक श्रम होने से चतुर्मुख का उपयोग उत्तम प्रकार से होता है। इसमें भी क्षीणता रूप लक्षण तो होना ही चाहिये। उस पाण्डुता में रोगी इतना क्षीण हो जाता है कि उसकी आवाज भी अतिशय कष्ट से ही बाहर निकलती है स्वरसाद होता है तथा शेष इन्द्रियां क्षीण हो जाती हैं। इस स्थिति में ज्वर हो तो चतुर्मुख का उपयोग उत्तम प्रकार से होता है।

केवल एक स्थान पर बैठे-बैठे व्यवहार करने वाले, विशेषत: कुछ भी उद्योग (परिश्रम) या व्यायाम न करते हुए स्निग्ध आहार का सेवन कर खूब सोने वाले, मांसाहार या पक्वाहार अपनी शक्ति से अधिक खाकर पाचनशक्ति की ओर दुर्लक्ष्य करने वाले, मधुर रस का सेवन अत्यधिक करने वाले, इसी तरह मत्स्य सेवन अत्यन्त करने वाले और जिनकी पचनशक्ति क्षीण हो गई हैं, ऐसे अजीर्णभोजी मनुष्यों को प्रमेह रोग की संप्राप्ति होती है। इस मेह रोग के मूल में अग्निमांद्य और उस हेतु से उत्पन्न अपचन ही विशेषरूप से कारण होते हैं। इस विकार में मूत्रोत्सर्ग बार-बार अधिक परिमाण में होता है, तृषा अधिक लगती है, मिथ्या क्षुधा बनी रहती है हाथ पैरों में दाह होना, देह पर बार-बार प्रस्वेद आना, प्रस्वेद में एक प्रकार की दुर्गन्ध रहना, शौच मर्यादित होना आदि लक्षण होते हैं। इस पर प्रारम्भ में कुछ दिन लङ्घनकरा फिर चतुर्मुख का उपयोग करना चाहिये।

(१७९) शतायु रसायन

विधि-तलस्थ सिद्धमकरध्वज शतगुण गन्धक जारित, सुवर्ण चन्द्रोदय १ तोला, अभ्रकसत्व भस्म (शतपुटी), [redacted] शिलाजीत, सोंठ, मिर्च, पीपल, बायबिड़ंग, हरड़, बहेड़ा, आमला ये प्रत्येक 2-2 तोले लें। सबका मसृण कपड़छन चूर्ण बना लें। इसमें असांश शतावरी एवं आमले के रस की १-१ भावना दे सुखाकर भर लें। (वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

मात्रा-२ से ३ रत्ती तक। घी शहद से चाटें। दोनों समय लें। भोजन में दुग्ध भात का प्रयोग करें। शरीर शुद्धि के बाद सेवन करें।

उपयोग-यह रसायन रसरक्तादि धातुवर्द्धक, पौष्टिक जीवनीयशक्ति प्रद, आरोग्यदायी है। इसके १ वर्ष सतत सेवन से शतायु की प्राप्ति होती है। यह श्रेष्ठरसायन है। एक मास में सुपरिणाम न मिलने पर वैद्य की सलाह लें।

(१८०) नागार्जुनाभ्ररस

योग-सहस्रपुटी अभ्रकभस्म।

भावना द्रव्य-अर्जुन की छाल।

विधि-सहस्रपुटी अभ्रकभस्म को लेकर अर्जुन की छाल के क्वाथ के साथ ७ दिन तक घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा-१ गोली से २ गोली अर्जुन की छाल से सिद्ध किये हुए दूध से अथवा जल से देवें।

उपयोग-इसके सेवन से हृदय के रोग, शूल, अर्श, हल्लास, क्षत-क्षय, शोथ, छर्दि, अरुचि, अतिसार, अग्निमांद्य, रक्तपित्त, उदररोग, अम्लपित्त और विषमज्वरादि नष्ट होते हैं, तथा वीर्य की वृद्धि होती है। यह उत्तम रसायन भी है। (र.चि.)

गुटिका प्रकरण

एक या अनेक औषधियों के महीन चूर्ण को जल, दूध, वनौषधियों के स्वरस, क्वाथ, शहद, गुड़ या शक्कर की चाशनी में मिला अच्छी रीति से खरल करके गोलियां बनाई जाती हैं, उन्हें गुटिका कहते हैं। गुटिका में आकृति और परिमाण-भेद से गुटिका, वटिका, वटी (बड़े), मोदक (लड्डू), पिण्डी (मुठिया), वर्ती (बत्ती के सदृश आकार वाली), गुड़ (गोला), सोगठी (शिखराकृति की गोली) आदि अनेक प्रकार हैं। वर्तमान में चक्रिका, टिकिया, केपसूल, टेबसूल आदि विविध प्रकार बनाये जा रहे हैं।

जल, दूध, स्वरस या क्वाथ आदि की भावना देकर गोलियाँ बनानी हों, तो औषधि अच्छी तरह भीग जाय, उतना द्रव पदार्थ मिला खरल करके गोलियाँ बना लेनी चाहिये। यदि गोलियां बनाने में किसी औषधि के क्वाथ की भावना देनी हो तो मूल औषधियों के चूर्ण के बराबर क्वाथ करने के द्रव्य को ले, आठ गुने जल में औटा, आठवाँ हिस्सा शेष रहने पर उतार छान कर भावना दें।

शक्कर और गुड़ प्रायः चाशनी करके मिलाये जाते हैं। शुद्ध गूगल को जल में पका या घी मिला अन्य औषधियों के साथ कूट करके गोलियां बनाई जाती हैं। शक्कर मिलानी हो तो चूर्ण से ४ गुनी, गुड़ दुगुना, शहद चूर्ण के समान और गूगल भी चूर्ण के बराबर लेना चाहिये।

यदि गूगल का पाक करना हो तो गुड़ के पाक के समान करें, किन्तु गाढ़ा बनावें, जो जल में डालने पर डूब जाय, इधर-उधर फैल न जाय, ऐसा पाक होने पर औषधियों के चूर्ण के साथ मिलावें। यदि पाक न करना हो, तो चूर्ण और शुद्ध गूगल को मिला थोड़ा-थोड़ा घी डालकर इमामदस्ते में खूब कूटकर अच्छी तरह मिला लें पश्चात् गोलियां बांधें।

गोलियाँ जो सेवन में अधिक कठोर हों, उन्हें पीस, अनुपान के साथ मिलाकर लेनी चाहिये, अन्यथा कठोर गोलियां मल के साथ ज्यों की त्यों निकल जाती हैं एवं गोली को पीसकर लेने में लाभ भी सत्वर होता है।

भस्म और रसायन की अपेक्षा काष्ठादि औषधियों से बनाई हुई गुटिका प्रायः सौम्य होती हैं। अतः अशक्त, नाजुक और उष्ण प्रकृतिवाले रोगियों को और पुराने रोगों में लाभदायक हैं। यद्यपि चूर्ण आदि की अनेक कृतियाँ सौम्य हैं, तथापि उनकी मात्रा ज्यादा है। गुटिका की मात्रा कम है और गुटिका को निगलने से औषधि में रहे हुए बेस्वादुपन या कड़ुवापन से मन में ग्लानि भी नहीं होती। इसलिए बालकों, स्त्रियों और नाजुक प्रकृति वाले पुरुषों को गोलियों का सहज सेवन करा सकते हैं, एवं हानि की सम्भावना न होने से साधारण बोध वाले चिकित्सक भी निर्भयतापूर्वक गुटिकाओं को उपयोग में ले सकते हैं।

गूगल और अन्य अनेक प्रकार की गुटिकाएँ शीघ्र लाभ न पहुँचाकर, शनैः शनैः स्थिर लाभ प्रदान करती हैं। इसलिए ऐसी औषधियों का सेवन धैर्य पूर्वक पथ्यपालन के साथ विशेष समय तक करना चाहिये।

कितनी ही प्रकार की गुटिकाओं में बच्छनाभ, जमालगोटा, कुचिला आदि विष मिलाते हैं। इन गुटिकाओं को तैयार करने में विषों के "शोधन प्रकरण" में लिखी विधि से शुद्ध करके ही मिलाना चाहिये। जहरी औषधियों को बिना शुद्ध किये मिलाने से औषधि-प्रयोग अति उग्र बनता है, जिससे विष प्रकोप का असर औषधि सेवन करने वाले पर होता है।

बच्छनाभ आदि विष-मिश्रित गुटिकाएँ उग्र हैं। अतः इनको आवश्यकता पर सम्हालकर बहुत थोड़ी मात्रा में उपयोग में लेनी चाहिये। विष-मिश्रित उग्र औषधि रोग को दबाने में तुरन्त लाभ पहुँचाती है। परन्तु वह जीवनीय शक्ति को निर्बल बनाती है, अथवा उत्तेजना के पश्चात् अवसादक असर पहुँचाती है।

जिन गोलियों को शास्त्रकारों ने सूर्य के ताप से सुखाने को लिखा है, उनको सूर्य के ताप में ही सुखाना चाहिये। शेष गुटिकाओं को छाया और खुली वायु में पत्थर या एनेमल के पात्र या कलई लगी हुई थाली में सुखाकर सावधानी से कांच की अच्छी डाट वाली शीशियों में भर लेना चाहिये।

नींबू या खट्टे रस में तैयार की हुई गोलियां कलई किये बर्तन में सुखाने पर भी दूषित हो जाती हैं। अतः उनको मिट्टी या पत्थर के बर्तनों में ही सुखावें और जब तक गोलियाँ अच्छी रीति से न सूख जायँ तब तक शीशी में न भरें। अन्यथा थोड़े ही दिनों में दुर्गन्ध आने लगेगी। गोलियां अच्छी सूख जाने पर खुली भी न रखनी चाहिये, अन्यथा उनका सत्व कम होता जायेगा व गोलियों पर वातावरण का प्रभाव हो जायेगा।

अनेक गुटिकाओं में अफीम आदि विष मिलाते हैं। उनके उपयोग के विषय में अधिकारी और समय के लिये संक्षेप में सूचना "आवश्यक सूचना प्रकरण" में लिखी है, तथापि पुनः यहां संक्षेप में लिखते हैं।

पेचिस अथवा अतिसार में जब तक सफेद आम गिरता हो, अथवा भीतर का दूषित मल दूर न हुआ हो, तब तक अफीम वाली औषध न दें।

जमालगोटा अनेक औषधियों में आता है, उसका उपयोग करने के पहले अधिकारी, समय और मात्रा का अच्छी रीति से विचार कर लेना चाहिये। जमालगोटा मिश्रित गुटिकाएँ बालक, सगर्भा स्त्री, वृद्ध, अतिनिर्बल, क्षयरोगी, मुद्दती ताप के रोगी आदि को नहीं देना चाहिये या आवश्यकता पर अति कम मात्रा में सम्हालकर देनी चाहिये।

कुचिला मिश्रित गोलियां एक साथ १५ दिन से अधिक काल तक न दें। अधिक समय तक देनी हो तो बीच-बीच में ५-७ दिन छोड़

छोड़कर दें, कारण कुचिला, डिजीटलिस (Digitalis), संखिया आदि अनेक जहरी औषधियों का अंश आमाशय में संचित होता रहता है।

बचछनाभ-मिश्रित औषध जब मूत्रल असर पहुँचाकर रोग के कारण के निवृत्यर्थ दी जाय, तब तीन दिन से अधिक नहीं देनी चाहिये। कारण, बच्छनाभ आरम्भ में मूत्र को बढ़ाता है, जिससे संचित दोष मूत्रद्वारा निकल जाने पर मूत्र साफ कुएँ के जल के समान हो जाता है। किन्तु तीन दिन पश्चात् पुनः शनैः शनैः मूत्र का रङ्ग पीला होता जाता है। फिर बच्छनाभ वाली औषध दी जायेगी तो लाभ के बदले में हानि होगी।

वक्तव्य–विशेष विवेचन और अन्य प्रयोगों के लिए यहां से प्रकाशित नित्योपयोगी गुटिका संग्रह देखें।

(१) संजीवटी वटी

विधि–वायविडंग, सोंठ, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, बच, ताजी गिलोय, शुद्ध भिलावा और शुद्ध बच्छनाभ इन १० वस्तुओं को समभाग लें। पहले बच्छनाभ, भिलावा और गिलोय को मिलावें। फिर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला गोमूत्र में १२ घण्टे खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावें। (शा.सं.)

सूचना–यदि इस वटी में बच्छनाभ के समान शुद्ध हिंगुल भी मिला लिया जाय, तो वटी अधिक प्रभावशाली बन जाती है।

मात्रा–१ से ३ गोली, दिन में २ से ४ समय। अदरक के रस या ४ रत्ती सोडाबाईकार्ब मिलाकर जल के साथ दें। अथवा गोली निगलकर ऊपर जल लेवें।

उपयोग–यह वटी ज्वर, अजीर्ण, कृमि, वमन, उदरशूल, कफयुक्त कास, गुल्म, विसूचिका (हैजा), सर्पदंश और सन्निपात आदि रोगों को दूर करती है।

इस संजीवनी वटी में बच्छनाभ मिलाया है। बच्छनाभ में उष्ण स्वेदल और ज्वरघ्न गुण होने से भीतर बढ़ा हुआ दोष, पसीने और मूत्र द्वारा बाहर निकल जाता है तथा आम का शोषण होता है। इसके कारण से अजीर्ण, जुकाम, अजीर्ण जन्य ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। स्थावर और जंगम विष एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी होने से बच्छनाभ प्रधान इस गुटिका से सर्पविष का भी शमन होता है।

कितने ही चिकित्सक संजीवनी का प्रयोग मोतीझरे पर सफलतापूर्वक करते रहते हैं। मोतीझरा की प्रथमावस्था से लेकर अन्तिमावस्था पर्यन्त यह दी जाती है। प्रातः सायं संजीवनी के साथ प्रवालपिष्टी मिलाकर तथा दोपहर को केवल प्रवालपिष्टी देते रहने से २१ दिन में ज्वरविष का परिपाक होकर मोतीझरा निवृत्त हो जाता है। यदि बीच में अपथ्य या अन्य किसी कारणवश उपद्रव उपस्थित हुआ हो, तो उपद्रव के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

सन्निपात की विविध अवस्थाओं में लाभ पहुँचाने वाली अनेक औषधियों का विवेचन आयुर्वेद में मिलता है। इन औषधियों में संजीवनी को भी स्थान मिला है। यद्यपि यह साधारण औषधि है तथापि ज्वरविष और आम को जलाने में अति उपयोगी सिद्ध हुई है। कफवृद्धि, मन्द-मन्द प्रलाप, अति बेचैनी आदि लक्षण युक्त सन्निपात पर व्यवहृत होती है। अनुपान रूप से तुलसी का रस दिया जाता है। यदि सन्निपात में उदर में भारीपन, कठोरता और मलावरोध हो तो पहिले वर्ति (सपोजिटरी) या बस्ति अथवा मृदुविरेचक औषधि देकर उदर शुद्धि करा लेनी चाहिये। कीटाणु दूषित सड़े हुए फल अथवा बासी या सड़ा हुआ अन्न खाने से अपचन होता है। फिर पतले दस्त, उदरशूल, उदर में भारीपन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं एवं किसी को विसूचिका हो जाता है। फिर बार-बार पतले दस्त और वान्ति होती है, इन दोनों प्रकारों पर संजीवनी व्यवहृत होती है। मन्द प्रकोप में दिन में ३ बार और विसूचिका के तीव्र असर में १-१ गोली एक एक या २-२ घण्टे पर ४-५ बार देने से कीटाणुओं को नष्ट करती है, अतिसार और वमन को रोक देती है, वायु को शान्त करती है तथा पचनशक्ति को सबल बनाकर आमविष को जला देती है। जिससे अपचन जनित अतिसार, विसूचिका आदि विकार दूर हो जाते हैं। अनुपान रूप से प्याज का रस या अदरक का रस देना विशेष लाभदायक है।

अपचन जनित विसूचिका के समान कीटाणु जनित विसूचिका पर भी इसका उपयोग होता है। यदि विसूचिका की प्रारम्भावस्था में ही इसका प्रयोग किया जाय तो लाभ पहुँच जाता है।

विसूचिका में वान्ति और अतिसार द्वारा जलांश अधिक निकल जाने के अतिरिक्त (बाहर अंग शीतल होने पर भी) कोष्ठ के भीतर उष्णता बढ़ जाने से भी प्रायः मूत्रोत्पत्ति नहीं होती। यदि पेशाब साफ आ जाय तो विसूचिका रोग में बहुधा आराम हो जाता है। भीतर की उष्णता को शमनकर पेशाब लाने का कार्य इस संजीवनी वटी से होता है। ये अन्दर की उष्णता शामक और मूत्रल गुण बच्छनाभ के हेतु से होते हैं।

बच्छनाभ, भिलावा, बच और त्रिकटु मिले होने से इस औषधि में दीपन, पाचन और वातश्लेष्महर गुण प्रतीत होते हैं। इन गुणों के हेतु से औषध दूषित कफ और आम का संशोषण करके शूल और अजीर्ण को दूर करती है, तथा अग्नि को प्रदीप्त करती है, एवं वात और कफोल्वण सन्निपात में दूषित कफ का संशोधन करना और बाहर फेंकने के लिये उत्तेजना देना, दोनों कार्य करती है। जिससे कफोल्वण और वातकफभूयिष्ठ सन्निपात की निवृति होती है। कफ युक्त कास और श्वास रोग में भी लाभदायक है।

इस प्रयोग में सहायक औषधियाँ त्रिफला, वायविडंग, गिलोय और गोमूत्र है। त्रिफला रुचिकर और मलशोधक है। बायविडंग जन्तुघ्न और गिलोय तीनों दोषों का संशमन करने वाली है एवं गोमूत्र अग्निदीपक, मल मूत्रावरोध नाशक और कफघ्न है। इस रीति से साधारण द्रव्यों से बनने पर भी संजीवनी दिव्य प्रभावशाली सिद्ध हुई है। इसलिए इसे "अमृत संजीवनी" भी कहते हैं।

सूचना–यह वटी सूखी खाँसी वाले को नहीं देना चाहिये और हृदय की शिथिलगति वालों को एवं हृदयरोग पीड़ितों को सम्हालपूर्वक देनी चाहिये एवं गरम गरम चाय, कॉफी आदि के साथ भी संजीवनी नहीं देनी चाहिये।

(२) ज्वरारि वटी

विधि–मल्ल पुष्प के साथ बना हुआ गुलाबी फिटकरी का फूला १ भाग, पीपल और मिर्च २-२ भाग लें। सबको मिला घीकुंवार के रस में ६ घण्टे खरल कर ½-½ रत्ती की गोलियां बनावें। (र.सा.)

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ से ३ बार जल के साथ देवें।

उपयोग–यह वटी नवीन ज्वर, जीर्णज्वर और विषम ज्वर को दूर करती है। इस वटी के प्रभाव से नूतन ज्वर २-४ दिन में ही दूर हो जाता है।

नूतन सामान्य ज्वर और नूतन विषमज्वर में यदि मलावरोध है अथवा आमाशय और लघु अन्त्र में अपाचित अन्न रहा है, तो पहले आचार्य वृन्द कथित आरग्वधादि क्वाथ या अन्य उदरशुद्धिकर अथवा आमपाचक औषधि देनी चाहिये एवं रोगी को एक दिन लंघन कराना चाहिये।

विषम ज्वर में अनेकों से क्विनाइन सहन नहीं होता, क्विनाइन देने पर पित्त प्रकोप होकर ज्वर बढ़ जाता है। फिर शिर में भारीपन, निद्रानाश, रक्तदाब वृद्धि, बार-बार लघुशंका होना और आलस्य आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उन रोगियों के लिये यह वटी अति लाभदायक है।

कितने ही रोगियों का योग्य उपचार न होने पर या अपथ्य सेवन होने से दीर्घकाल तक ज्वर नहीं छोड़ता। रोज शाम को ९९ डिग्री तक या अधिक उत्ताप हो जाता है। देह हाड़पिंजर-सा शुष्क और निस्तेज बन जाता है। पचनक्रिया दूषित को जाती है, ठण्ड और गरमी सहन नहीं होती। आलस्य बना रहता है, उन रोगियों को शुष्क कास न हो तो पथ्य पालनसह इस वटी का सेवन थोड़े दिनों तक कराने पर ज्वर निवृत्त हो जाता है।

फिटकरी में विषम ज्वर के कीटाणु विष को नष्ट करने का गुण रहता है। इसके साथ सोमल का योग होने पर उसकी शक्ति बढ़ जाता है। यद्यपि इस औषधि में मल्ल का विशेषांश उड़ जाता है, तथापि फिटकरी मल्ल संयोग से प्रबल ज्वरहर बन जाती है। ज्वरावस्था में कुछ आमविष रहता है और अग्नि मन्द होती है अतः आम विष को जलाने और अग्नि को प्रदीप्त करने का कार्य मल्लसंयोग और मिर्च मिश्रण से हो जाता है।

सूचना–(१) इस वटी में सोमल का योग होने से मात्रा अधिक नहीं देनी चाहिये।

(२) यदि रोगी का यकृत् निर्बल हो तो दही, गुड़ शक्कर, घी और तले हुये पदार्थों का सेवन कुछ दिनों तक कम परिमाण में करना चाहिये।

(३) त्रिवृदष्टक मोदक

विधि–सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नाग केशर, बायविडंग और आंवला ये ९ औषधियों १-१ छटांक, निशोथ ८ छटांक और दन्तीमूल २ छटांक लेवें। सबको मिला बारीक चूर्ण कर ६ गुनी शक्कर की चाशनी में मिलावें। फिर १ छटांक सैंधानमक और २ छटांक शहद मिलाकर १-१ माशे की गोलियां बनावें। (सु.सं.)

मात्रा–२ से ३ गोली। सुबह शीतल जल के साथ देवें। यदि पित्त श्लेष्म दोष हो तो दूध के साथ देवें।

उपयोग–यह औषधि उत्तम सौम्य विरेचन और विषघ्न है। मल मूत्रावरोध, बस्ति में शूल चलना, पित्तवृद्धि के कारण से प्यास, वमन, दाह, और शोथ, ज्वर और पांडु आदि रोगों को दूर करने में सहायक है।

सुश्रुत संहिता का यह त्रिवृदष्टक मोदक और शार्ङ्गधर संहिता का अभयादि मोदक, दोनों में अधिकांश में समानता है। गुणधर्म दृष्टि में भी यह मोदक अधिकतर गुणप्रद भासता है।

जीर्ण मलावरोध पीड़ितों को ४-४ रत्ती की १-१ गोली प्रकृति अनुरूप २-४ मास तक नियमित रोज सुबह आरोग्यवर्धिनी के साथ सेवन करायी जाय तो आंतों के भीतर चिपके हुए मल धीरे-धीरे निकल आते हैं। रस, रक्त आदि सब धातुओं का शोधन हो जाता है और क्रमशः शक्ति वृद्धि होने लगती है।

मलावरोध से उत्पन्न होने वाले मदाग्नि, अपचन, अर्श, अतिसार, उदर रोग, पाण्डु, उदरवात, विभिन्न वातरोग, मन्द-मन्द ज्वर आना और बार-बार ज्वर बढ़ जाना, आमविष संग्रह होकर विविध चर्म रोग तथा अन्य रोगों की संप्राप्ति होना आदि विकार इस औषधि का पथ्यपालनसह नियमित सेवन करने पर मलावरोध रूप मूल नष्ट होने से दूर हो जाते हैं।

यदि नया मलावरोध, अपचन, दूषीविष या अन्य विष को निकाल देने के लिए एक समय ही उदरशुद्धि करानी हो, तो मात्रा ३ से ६ माशे तक मूलकारण और कोष्ठ की मृदुता कठोरता के अनुरूप योजना की जाती है एवं जलोदर प्रधान उदर रोगों से तथा शोथ पर बड़ी मात्रा

में त्रिवृदष्टक मोदक का सेवन कराया जाता है और भोजन में मात्र दूध, दूध-भात, मूंग का यूष या खिचड़ी दी जाती है।

सूचना–इस मोदक के सेवन काल में सिगरेट, बीड़ी, गरम-गरम चाय, मिर्च-मसाला, द्विदल धान्य, तले हुए पदार्थ ये सब हो सके उतने अंश में छोड़ देना चाहिये।

(४) नाग गुटिका

विधि–शुद्ध बच्छनाभ, पीपल, लौंग, पीपलामूल, जायफल, दालचीनी, जावित्री, सोंठ, अकलकरा, कालीमिर्च, शुद्ध सिंगरफ और सोहागे का फूला ये १२ औषधियाँ १-१ तोला, केशर ३ माशे और कस्तूरी १ रत्ती लें। सबको कूट, कपड़छन कर अदरक के रस और नागरबेल के **पान के रस में अनुक्रम से १२-१२ घण्टें खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनावें।** (औ.गु.ध. शा.)

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ बार। नागर बेल के पान या जल के साथ दें।

उपयोग–यह गुटिका जुकाम, ज्वर, गला और छाती का दर्द, अरुचि, जुकाम से होने वाले अतिसार, उबाक, शिरदर्द, अपचन के हेतु से उदर में भारीपन आदि विकारों को दूर करती है।

इस गुटिका में प्रधान औषध बच्छनाभ होने से इसका प्रयोग अति सम्हालपूर्वक करना चाहिये। बच्छनाभ शोथहर, ज्वरनाशक, अवसादक और पीड़ाहर है। इसके प्रयोग से नासिका और कण्ठ की श्लैष्मिक त्वचा में से होने वाले स्राव का शोषण होकर कम हो जाता है। यह स्राव शरीर के किसी स्थान में से बाहर निकलना चाहिये। अतः इस वटी के प्रभाव से प्रस्वेद अधिक होता है, एवं मूत्रोत्पत्ति भी अधिक होती है। प्रतिश्याय में जो श्लेष्मस्राव होता है, वह इस हेतु से कम होता है। फिर विकार कम होने पर मूत्र की मात्रा कम हो जाती है।

मुँह में पानी भर जाना, उबाक, अरुचि आदि अपचन से होने पर झागयुक्त कफ गिरता हो तो, अग्निकुमार रस दिया जाता है। परन्तु शीतल स्थान में शयन करने पर, वर्षा के जल से भीगने पर या शीत लग जाने से क्षुधा नष्ट होना, उदर में भारीपन, कब्ज, मस्तिष्क में जड़ता, अंग अकड़ जाना आदि लक्षणों सह ज्वर होने पर नागगुटिका अवश्य देनी चाहिये फिर मूत्र का रंग पीला होने लगे, या मूत्रस्राव कम हो जाय, तब नागगुटिका बन्द कर देनी चाहिये। यदि ऐसी परिस्थिति में गुटिका दी जाय, तो अपाय होता है। अर्द्धावभेदक या वृक्क-विकार होकर शोथ आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।

ठण्ड लगकर जुकाम होना, फिर ज्वर, ज्वर होने से त्वचापर चिप-चिपापन, सर्वाङ्ग में जड़ता, आलस्य, जंभाई आना, मुंह में मधुरता और चिपचिपापन, खाँसी आने पर छाती और कण्ठ में दर्द होना आदि लक्षण होने पर नागगुटिका अति हितकर औषध हैं।

इस गुटिका में सफेद बच्छनाभ मिलाने पर मधुमेह, इक्षुमेह, हस्तिमेह, इन प्रमेहों पर लाभ पहुँचाती है। इसके योग से मधु की उत्पत्ति कम नहीं होती केवल बार-बार होने वाली मूत्र की शंका नष्ट होती है। मधु की उत्पत्ति कम कराने के लिये नागभस्म, बसन्तकुसुमाकर, जातिफलादि वटी या प्रमेहगजकेसरी का प्रयोग करें।

नागगुटिका के योग से रस संशोषण होने से देह में शीतलता आदि गुण कम होते हैं तथा बच्छनाभ के योग से त्वचा में रही हुई कोशिकाओं में रक्त का दबाव बढ़ता है, जिससे प्रस्वेद-वृद्धि होकर सेन्द्रियविष त्वचा से बाहर निकल जाता है। इस गुण के हेतु से बच्छनाभ प्रधान औषधियाँ क्षोभजन्य ज्वर और क्षोभयुक्त अन्य रोगों में प्रयुक्त होती है।

(औ.गु.ध.शा.)

(५) धनंजय वटी

विधि–जीरा, चव्य, सफेद चन्दन, बच, दालचीनी, छोटी इलायती, कचूर हाऊबेर, कलौंजी, नागकेशर प्रत्येक १-१ तोला, सोंफ ६ माशे, अजवायन, पीपलामूल, सज्जीखार, हरड़, जायफल, लौंग सब २-२ तोले, धनियां ३ तोले, चित्रकमूल, पीपल और साँभरनमक ४-४ तोले, कालीमिर्च ७ तोले, निसोत ८ तोले, सामुद्रनमक, सेंधानमक और सोंठ १०-१० तोले, चूका (खट्टी भाजी) ३२ तोले और इमली १६ तोले लें। सबको मिला , कूट, कपड़छन कर चूके के रस में ६ घण्टे खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (औ.गु.ध.शा.)

मात्रा–१ से ३ गोली तक, दिन में ३ बार। मट्ठा, नींबू का रस, अनार का रस अथवा जल के साथ देवें।

उपयोग–धनञ्जय वटी प्रभावशाली वीर्यवान औषधि है। यह पाचक, अग्निप्रदीपक, विरेचक, सारक और रुचि उत्पादक है, आमाशय से बृहदन्त्र तक के विबंध को दूर करती है। पक्वाशय में पाचक रस का स्राव नियमित कराती है, तथा नजला, उदरशूल और मलावरोध को दूरकर लघु अन्त्र और बृहदन्त्र की पुरःसरण क्रिया को बढ़ाती है।

इस धनंजय वटी का कार्य तत्काल देखने में आता है, अतः अपचन के विकार में विशेषतः आमाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्ण पर इसका अच्छा उपयोग होता है। इस वटी में वातनाशक औषधियों का सम्मिश्रण होने से डकारें आकर आमाशय में विबंध का नाश होता है।

शक्ति की अपेक्षा अधिक खा लेने पर केवल अपचन होता है ऐसा नहीं। अप्रिय, विष्टंभकारक, जले हुए, अधपके, जड़, रूक्ष, शीतल, बासी, दुर्गन्ध युक्त और अपवित्र भोजन करने पर भी अपचन हो जाता है। अर्थात् विभिन्न प्रकार के अन्न के अलग-अलग प्रकार के अपचन होते हैं। गुरु अन्न से उत्पन्न अजीर्ण में कफदोष का प्राधान्य और रूक्ष अन्न से वातप्रधान्य होता है। इस तरह विविध प्रकार के भोजनों से उत्पन्न अजीर्णों में विविध दोषप्रकोप होते हैं। अतः औषध योजना करने पर दोष-दूष्यविवेक अवश्य करना चाहिए। आँखे मूंदकर दीपन, पाचन औषधि

देते रहना यह शास्त्रीय चिकित्सा नहीं है। इसका विशेष विचार औषध गुणधर्म विवेचन में किया है।

केवल गुरुअन्न के सेवन से आमाजीर्ण होता है; इस तरह स्निग्ध भोजन से भी आमाजीर्ण होता है। परन्तु दोनों की दोषदुष्टि की दृष्टि से दोनों में अन्तर है। केवल गुरु स्वभाव वाले भोजन या गुरु मात्रा (अधिक भोजन) के सेवन करने से उत्पन्न अजीर्ण में क्रव्याद् रस का अच्छा उपयोग होता है : स्निग्ध अन्न से उत्पन्न अजीर्ण में शंखवटी, गन्धकवटी, लहशुनादि वटी आदि अधिक लाभदायक है। रूक्ष, निस्नेह, विष्टम्भकारक, कच्चा अन्न, शीत, बासी अन्न और अपवित्र भोजन के सेवन से विष्टब्धाजीर्ण होने पर उदर में वायु की उत्पत्ति उदरपीड़ा, शूल आदि होते हैं। डकार साफ नहीं आती या अधोवायु नहीं सरता। उदर में भारीपन और बैचेनी होती है। यदि वेदना अधिक हो तो रोगी चिल्लाता है, तृषा अधिक लगती है; खूब जल पी लेने पर भी तृषा शमन नहीं होती, ऐसे अजीर्ण में धनंजय वटी का उत्तम उपयोग होता है। इससे विबंध दूर होता है। शूल का शमन होता है; शोचशुद्धि होती है और वायु का अनुलोमन होता है। पक्वाशय में पाचक रस का योग्य स्राव होता है और आँतों की पुर:सरण क्रिया व्यवस्थित होकर मलावरोध कम हो जाता है। (औ.गु.ध.शा.)

(६) चन्द्रप्रभा वटी

विधि–कपूर, बच, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पीपलामूल, चित्रक, धनिया, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चव्य, वायविडङ्ग, गजपीपल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सुवर्णमाक्षिक भस्म, सज्जीखार, जवाखार, सैंधानमक, कालानमक, काँचनमक ये सब तीन-तीन माशे, काली निसोत, दन्तीमूल, तेजपत्र, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, वंशलोचन एक-एक तोला, लोहभस्म २ तोले, मिश्री चार तोले, शुद्ध शिलाजीत ८ तोले और शुद्ध गूगल ८ तोले लें। सबको बारीक कूट, गूगल मिला, थोड़ा-थोड़ा गोघृत डाल करके कूटते जाये। एक जीव करके चने के समान गोलियाँ बाँधें। (शा.सं.)

मात्रा–२ से ४ गोली दिन में २ बार देवें।

वक्तव्य–हम चन्द्रप्रभावटी के चूर्णादि में प्रथम ३ भावनाएं हल्दी के स्वरस या (हरी हल्दी न मिलने पर) हल्दी के क्वाथ की देते हैं। बिल्कुल सूख जाने पर थोड़ा-थोड़ा गोघृत डाल-डालकर कुटाई कराते हैं। मुलायम एक जीव हो जाने पर गोली बांधते हैं। जिससे चन्द्रप्रभावटी के गुणों में वृद्धि हो जाती है और शरीर को सुन्दरता प्रदान करती है।

यह उपरोक्त कृति वैद्यराज श्री रमेशचन्द्रजी व्यास अजमेर वालों से प्राप्त हुई है।

अनुपान–१–सब प्रमेहों पर १ तोला गिलोय का स्वरस और ६ माशे शहद या त्रिफला, दारुहल्दी, देवदारु और नागरमोथे का क्वाथ।

२–मधुमेह में निम्बपत्र और बेलपत्र का स्वरस, जामुन का रस या अरनी की छाल का क्वाथ।

3–लालामेह में त्रिफला और अमलतास का क्वाथ।

4–माँजिष्ठमेह में नीम की छाल, अर्जुन छाल, और कमलगट्टे की गिरी का हिम।

५–मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, शर्करा और सिकतामेह में शीतल-मिर्च और गोखरू का क्वाथ।

6–पुष्टि के लिये गोदुग्ध और मिश्री एवं रोगी की प्रकृति देश और काल का विचार कर अन्य अनुपानों की योजना करें।

उपयोग–यह वटी मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी, प्रमेह, भगन्दर, अण्डवृद्धि, पाण्डु, कामला, बवासीर, कमर का दर्द, नेत्र रोग, स्त्रियों के गर्भाशय के विकार, पुरुषों के धातुसम्बन्धी विकारों आदि को दूर करती है। जीर्ण रोग में इसका सेवन शान्तिपूर्वक ३-४ मास तक करना चाहिये। ज्यादा समय तक इसके सेवन से असाध्य भगन्दर जैसा रोग भी दूर हो जाता है। मानसिक श्रम करने वाले विद्यार्थियों के लिये यह अति लाभदायक है।

चन्द्रप्रभा का मुख्य कार्य मूत्रेन्द्रिय और शुक्रार्तव की उत्पादक इन्द्रिय पर शामक, बल्य और रसायन असर पहुँचाने का है। शरीर के धातु-परिपोषण क्रम में प्रतिबन्ध आकर जो व्यवस्था भंग होती है, उसे यह व्यवस्थित बनाती है। अर्थात् पूर्व धातुओं में से परधातु-निर्माण क्रिया सम्यक् होने लगती है। सुजाक, उपदंश, शराब का सेवन, तीव्र रसायन आदि औषधि सेवन अथवा गरम मसालों को अधिक उपयोग करते रहना, तमाखू, गांजा, सूर्य के ताप में अधिक भ्रमण आदि कारणों से मूत्रेन्द्रिय संस्थान में क्षोभ उत्पन्न होकर मूत्रेन्द्रिय में दाह आदि विकार उपस्थित होते हैं। इसका परिणाम वृक्कों पर होकर मूत्र की मात्रा कम बनती है। कमर में दर्द, मूत्र में अधिक जलन, मूत्र में सिकता (रेत), शर्करा (कंकड़) जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस पर चन्द्रप्रभा का उत्तम उपयोग होता है।

भिन्न-भिन्न कारणों से विशेषत: पित्तोत्पादक कारणों से पित्त विकृति होकर वृक्कों पर शोथ आ जाता है, फिर सर्वाङ्ग शोथ उपस्थित होता है। मूत्र अति कम और अति लाल रंग का उतरता है। उसमें ओजस् द्रव्य (Albumen) न्यूनाधिक अंश में जाता रहता है। कभी अधिक कभी कम ओजस् द्रव्य जाता है। इस विकार में आशुकारी तीव्र और मंद चिरकारी ऐसी दो अवस्थायें होती हैं। इसमें से चिरकारी और जीर्णावस्था में इसका उपयोग शहद मिश्रित जल या शामक मूत्रल अनुपान के साथ करना चाहिये। मूत्रल के शामक और उत्तेजक भेद का विवेचन औषधगुणधर्म विवेचन में किया है।

मूत्रकृच्छ्र यह विकार मूत्रमार्ग का है। इसमें मूत्रोत्पत्ति योग्य होती है, परन्तु गवीनी, मूत्राशय, पौरुषग्रन्थि या मूत्रप्रसेकनलिका में जीर्णव्रण, व्रणशोथ या मूत्रप्रसेकनलिका का संकोच आदि इन्द्रिय-विकृति रूप कारणों में से कोई भी एक होने पर मूत्रदाह युक्त पीला, लाल और दुर्गन्धयुक्त

आता है। कभी-कभी क्षार, सिकता, शर्करा और श्लेष्मा आदि भी होते हैं। इस पर चन्द्रप्रभा का उत्तम उपयोग होता है। विशेषत: मूत्र में जीर्णव्रण होने पर मूत्रकृच्छ् हुआ हो, तो चन्द्रप्रभा के साथ उशीरासव या सारिवासव की योजना करें।*

मूत्राघात में कितने ही प्रकार मूत्रकृच्छ् के समान इन्द्रियजन्य विकृति के होते हैं। परन्तु मुख्यत: इस विकार में मूत्रोत्पत्ति कम होती वृक्क की भिन्न-भिन्न कारणों से होने वाली विकृति ही मूत्राघात का हेतु है; और इस विकृति का परिणाम समस्त शरीर पर होकर वातव वातकुण्डलिका आदि मूत्राघात के कष्ट साध्य प्रकार उत्पन्न होते हैं। इस सबके मूल में अवस्थित वस्तु स्थिति यह है कि मूत्र कम उत्पन्न और मूत्र द्वारा शरीर से बाहर जाने वाले क्षार और विष शरीर में ही रह जाना, इस परिस्थिति पर चन्द्रप्रभा का उत्तम उपयोग होता है शामक, बल्य और मूत्रल होने से इसका असर मूत्रपिंडों पर होकर मूत्रपिंड के दाह, शोथ आदि विकार कम हो जाते हैं। इस पर चन्द्र को पुनर्नवासव, पलाशपुष्पासव या गोक्षुरादि अवलेह के साथ देना विशेष हितकारक है। इस का कार्य अधिक गहराई में होता है। इस से जीर्ण विकार पर यह अच्छी उपयोगी है।

अश्मरी रोग जब अधिक बढ़ जाता है, तब शस्त्रचिकित्सा कराना ही इष्ट है, परन्तु अश्मरी की अधिक वृद्धि न होने पर औषध चिकि द्वारा अश्मरी भेदन हो सकता है। इसके सूक्ष्म-सूक्ष्म कण मूत्र द्वारा बाहर निकल जाते हैं। [illegible] साथ करना चाहिये।

सुजाक (शुक्रमेह),जिसमें मूत्र के साथ पूय जाता है और मूत्रत्याग के समय जलन होती है। उसकी जीर्णावस्था में विविध जीर्ण व्याधि उत्पन्न होती हैं। जितना रोग जीर्ण और जितना अधिक गहराई में हो उतना ही चन्द्रप्रभा का अधिक अच्छा उपयोग होता है। व्याधि नूतन विष शाखागत और स्नायुगत हो तो सुवर्णबंग उपयोगी है। परन्तु विष का परिणाम रक्त आदि धातुओं पर होकर उससे विविध विकार उ हुए हों, तो चन्द्रप्रभा उपयुक्त है। शीर्षशूल, जीर्णसंधिशूल, स्नायु संकोच, जीर्ण नेत्राभिष्यन्द, अण्डकोष शोथ आदि उपद्रवों में और पूयशुक्र पश्चात् हाथ पैर टूटने, नेत्र का दाह, मूत्र में दाह, वृषण और शिश्नपर विष फैलकर पिटिका होना, खुजली चलना और [illegible] हो जाने का भय लगना आदि विकारों पर चन्द्रप्रभा से अत्यधिक काम लिया है। जीर्ण रोग में सेवन अधिक काल करना चाहिये। अ [illegible] में वाजीकरण, गिलोय, गोखरू और आँवले का क्वाथ दूध। साथ औषध दूध की मात्रा आवश्यकता पर निर्भर रहनी चाहिये।

गर्भस्राव, गर्भपात, सुजाक, जीर्ण उपदंश, जल्दी-जल्दी गर्भधारण, अनेक संतान हो जाने या अति व्यवाय आदि कारणों से गर्भाशय अ होकर समस्त शरीर निर्बल हो जाता है; फिर निस्तेज मुखमण्डल, उत्साह का अभाव, नेत्रों में दाह, हाथ पैर टूटना, शिर, कमर और स में दर्द; शूल निकलना; विशेषत: मासिकधर्म के समय पर शूल या अति त्रेदना होना, रजोदर्शन होने में कष्ट होना; अनियमित रजोदर्शन; [illegible] किसी को ३-४ मास रजोदर्शन न होना, रजोदर्शन हो तो भी रजःस्राव बहुत कम होना, रज:स्राव का रंग नीला, काला, पीला या मलीन योनिमुख में से सफेद जल के सदृश चिपचिपा या गाढ़ा, दुर्गन्धमय स्राव होते रहना आदि लक्षण होने पर [illegible] चाहिये। या बाह्य शारीर स्थान में कहे हुए ९ कारणों के साथ चन्द्रप्रभा देनी चाहिये।

उक्त कारणों से गर्भाशय अशक्त होकर शिथिलता आने पर भीतर एक और गिर आता है। फिर उस हेतु से बस्तिशूल और अनार्तव होते इस विकृति में भी चन्द्रप्रभा हितकर है। प्रसूति के समय मूर्खतावश या अन्य समय में गर्भाशय पर अधिक आधात पहुँच जाने पर यह अत्य शिथिल होकर बाहर निकल जाता है। ऐसी स्थिति में तुरन्त गर्भाशय को स्निग्धकर भीतर यथास्थान बैठा दिया जाय, ऊपर से कोपीन के स बन्धन बाँध दें। कुछ समय विश्रान्ति लें और चन्द्रप्रभा का सेवन करें, तो गर्भाशय स्थिर हो जाता है। किन्तु रोग जीर्ण होने पर फिर ठ नहीं होता।

गर्भाशय की अशक्ति से बीज का ग्रहण न होना, गर्भ न रहना या रहने पर ३,४ या ५ मास गर्भधारण होकर गर्भस्राव हो जाना परिस्थिति में चन्द्रप्रभा का उत्तम उपयोग होता है।

पूयशुक्र के परिणाम में बंध्यत्व आया हो, अथवा बीजाशय और गर्भाशय को सम्यक् पौषण न मिलने या अकाल में दुरुपयोग होने हेतु से विकृत हो गये हों, तो गर्भधारण में प्रतिबन्ध होता है। इस परिस्थिति में चन्द्रप्रभा लाभदायक है। चन्द्रप्रभा के सेवन से विष नि होकर गर्भाशय और बीजाशय सुदृढ़ बन जाते हैं। आर्त्तवस्राव में अनियमितता, अत्यार्त्तव, पीड़ितार्त्तव, अनार्त्तव इन सब विकारों के मूल मे कही हुई कारण परम्परा हो (गर्भाशय की शिथिलता हो) तो चन्द्रप्रभा स्त्रियों का उत्तम मित्र है।

छोटी आयु में हस्तमैथुन की दुष्ट आदत पड़ जाने से कितने ही व्यक्तियों की मूत्रेन्द्रिय शिथिल बन जाती है और शुक्रस्राव बार-बार रहता है। फिर स्वप्न के भीतर अज्ञानावस्था में शुक्रस्राव हो जाना, मूत्रसह शुक्र निकलना, मूत्र के पश्चात् शुक्रस्राव हो जाना प्रत्येक स्राव पश्चात् सारे शरीर में अशक्ति आना विशेषत: इन्द्रियाँ शिथिल हो जाना आदि लक्षण होते हैं। कितने ही मनुष्यों को स्त्री सम्बन्धी विचार पर तत्काल शुक्र स्खलन और कभी स्त्री के दर्शन मात्र से शुक्रस्राव हो जाता है। इस परिस्थिति में चन्द्रप्रभा उत्तम लाभदायक है। योग्य

---

* अनेक समय अश्मरी, सिकता या शर्करा के हेतु से मूत्रोत्सर्ग में कष्ट होता है उस पर यह चन्द्रप्रभावटी १-२ मास तक दी जाती है। अनुपान रूप में दर्भ कासमूल, छोटे गोखरू, हरड़, अमलतास की फली का गूदा, पाषाणभेद, धमासा, इन ७ औषधियों का क्वाथ दिया जाता है। [illegible] पीड़ित होने पर पहले ही या पथरी के उत्तम प्रयोग पर साथ देनी चाहिये।

हो गई हो, तो चन्द्रप्रभा की अपेक्षा वंगभस्म विशेष उपयोगी है। **चन्द्रप्रभा धातुपरिपोषण क्रम को सुधार कर शुक्रपर्यन्त धातुओं को व्यवस्थित बनाती है। यदि शुक्र की अशक्ति के हेतु से गर्भधारण सम्यक् न हो तो ब्रह्मचर्य के साथ चन्द्रप्रभा का सेवन करना चाहिये।**

अति व्यवाय से स्त्री और पुरुष दोनों के शरीर निर्बल हो जाते हैं। फिर चिरकाल स्थायी अजीर्ण और कोष्ठबद्धता के सदृश रोग उपस्थित होते हैं। परिणाम में सर्वधातु परिपोषण क्रम विकृत होता है। **इस हेतु से सर्वांग में पाण्डुता, कितनों ही को कामला के सदृश और कितनों ही को हलीमक समान चिरकारी और त्रासदायक व्याधि हो जाती है। ये विकार हस्त मैथुन की आदत से भी उत्पन्न होते हैं।** किसी-किसी को इस विषय का सर्वदा निदिध्यास बना रहता है, परन्तु पूर्ति न होने से निराश हो जाते हैं। इस वैषयिक सुख लालसा का दुष्परिणाम अत्यन्त खराब होकर रक्त विकार हो जाते हैं। सच्चे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य और बलात्कार से जगद्मय मानकर सेवन किया हुआ ब्रह्मचर्य इन दोनों में मुख्य भेद भावना का है। सच्चे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य में विषयसुख की लालसा किञ्चित् भी नहीं होती। इस हेतु से उनको दुष्ट विकार नहीं होता। कृत्रिम ब्रह्मचारी को विविध विकार होते हैं। इनके लिये चन्द्रप्रभा उत्तम कार्य करती है।

शुक्रक्षय की आदत से अपचन और कोष्ठबद्धता उत्पन्न होते हैं। फिर उदर में वायु भरा रहना, शौचशुद्धि न होना, **किसी-किसी को अर्श हो जाना, रक्त गिरना, गुदाद्वार में जलन,** अतिशय थकावट आ जाना आदि लक्षण होने पर चन्द्रप्रभा का उत्तम उपयोग होता है। **इसके साथ मृल वातानुलोमक औषधि भी आवश्यकता पर देते रहना चाहिये।**

अपचन की आदत जीर्ण हो जाने पर परिणाम कोष्ठबद्धता होता है, और कोष्ठबद्धता जीर्ण होने पर प्रमेह की उत्पत्ति हो जाती है। इन सबके मूल में अनेक दिनों तक शुक्रस्राव होते रहने की आदत होती है। इस तरह उत्पन्न लालामेह, हस्तिमेह, हारिद्रमेह, मांजिष्ठमेह आदि प्रमेह विकारों में वातपित्त का अनुबंध होता है। इन व्याधियों में शिथिलता और कृशता लक्षण हों, तो चन्द्रप्रभा का उत्तम उपयोग हो जाता है। केवल मधुमेह में चन्द्रप्रभा की अपेक्षा नागभस्म, प्रमेहगज केसरी, जातिफलादि वटी, बसंतकुसुमाकर आदि औषधियां विशेष हितकारक है। (औ.गु.ध.शा.)

रक्तदबाव वृद्धि (High blood pressure) के शराब आदि अनेक हेतु हैं। किन्तु विशेषतः इसकी उत्पत्ति बृहदन्त्र में आमविष संग्रहीत होने पर होती है। जिन व्यक्तियों को बार-बार भोजन करने या अधिक भोजन करने की आदत होती है। उनके अन्त्र में आमविष का संचय होता है, उस हेतु से फिर बार-बार अपचन होता रहता है। **पश्चात् आहार रस दूषित होने से रक्तादि धातुयें दुष्ट होती हैं। परिणाम में रक्तदबाव वृद्धि होती है। इस विकार में यदि आमविष हेतु हो और रोगी दृढ़ पथ्य पालन करे, छिलका धान्य, मांस, शराब का व्यसन और भारी भोजन का त्याग करें, तो चन्द्रप्रभा वटी के साथ नागकेशर १-१ माशा और शक्कर १-१ माशा मिलाकर १५ दिन तक दूर्वा स्वरस या गाय के दूध के साथ सेवन कराने से रक्तदबाव कम हो जाता है। विशेषतः विरेचन देने की भी आवश्यकता नहीं रहती। यदि अधिक कब्ज हो तो सुख विरेचनवटी से कोष्ठ शुद्धि करनी चाहिये।**

चन्द्रप्रभा वटी सामान्य औषधि है, किन्तु कर्कस्फोट(Cancer) और अन्त्रावरण जैसे प्रबल रोगों पर भी लाभ पहुँचा देती है। कण्ठस्थान में कर्कस्फोट नया हो, किसी स्थान के उपद्रव रूप गौण न हो, तो प्रारम्भावस्था में चन्द्रप्रभा वटी की योजना करने पर कर्कस्फोट २-४ मास में बिल्कुल दूर हो जाता है। इसी तरह नये अन्त्रावरण में शान्तिपूर्वक २-४ मास तक चन्द्रप्रभा वटी का सेवन कराते रहने से अन्त्र का उतरना रुक जाता है।

(६) शुक्रस्तम्भन गुटिका

विधि-लौंग, जावित्री, दालचीनी, अकरकरा, समुद्रशोष के बीज और शुद्ध अफीम सबको १-१ तोला लेकर महीन चूर्ण करें। फिर ६ तोले मिश्री मिला शहद के साथ खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। इन गोलियोंको ८-१० दिन खुली वायु में रहनेदेने से अच्छी सूख जाती है। पश्चात् बोतल में भरें। (आ.भि.)

मात्रा-१-१ गोली। रोज सायंकाल, दूध के साथ लेवें।

उपयोग-यह गुटिका शुक्र का पतलापन और नपुन्सकता को दूर करती है। शुक्र का स्तम्भन अधिक समय होता है। अतिसार और प्रवाहिका में भी इससे लाभ पहुँचता है। यह निद्रा भी ला देती है।

शुक्रस्तम्भन गुटिका, यह चन्द्रोदयवटी और वीर्य स्तम्भन का सौम्य योग है। चन्द्रोदय वटी में चन्द्रोदय, अभ्रकभस्म तथा अधिक मात्रा में कर्पूर मिलाने के हेतु से उग्र बना है। कई रोगियों को उग्र औषधि या पित्तवर्द्धक औषधि अनुकूल नहीं रहती। उनके लिए यह वटी अति हितकारक है।

उग्र कामोत्तेजक औषध सेवन में जिस तरह स्त्री समागम की वासना प्रबल बनी रहती है। उस तरह इस वटी के सेवन से हानि नहीं होती। परिणाम में शुक्र का अधिक नाश नहीं होता। इस दृष्टि से यह गुटिका कामोत्तेजक गुण चन्द्रोदयवटी की अपेक्षा कम उत्तेजक मानी जायेगी।

सूचना-जिन रोगियों को स्वाभाविक मलावरोध बना रहता हो, उन रोगियों को रात्रि को दूध के साथ १-१ ड्राम बादाम का तेल सेवन करना हितावय है एवं अधिक मलावरोध हो तो सुबह ४ माशे छोटी हरड़ का चूर्ण निवाये जल से देकर उदरशुद्धि करा देना चाहिये।

(८) अन्त्रवृद्धिहर गुटिका

विधि–शुद्ध सिंगरफ ५ तोले, एलुवा १० तोले, गूगल, लाल बोल, कांटेदार करंज के बीज, नौसादर, काला नमक, हींग ये सब पाँच पाँच तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर घीकुंवार के रस में खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा–१ से २ गोली। दिन में २ बार, जल के साथ दें।

उपयोग–इन गोलियों के १ मास सेवन से आंत उतरना (Hernia) उदरशूल, मलावरोध, उदरवात आदि दूर होते हैं।

अन्त्रवृद्धिहर गुटिका के सेवन से आंत सबल होती है एवं आंतों की क्रिया में वृद्धि होकर मल नियमित साफ होने लगता है। इससे अतिरिक्त पचनक्रिया व्यवस्थित होने से उदर वायु की उत्पत्ति नहीं होती और उत्पन्न हुई तो भी जल्दी निकल जाती है। इस हेतु से यह अन्त्रवृद्धि वालों के लिये विशेष उपकार दर्शाती है।

सूचना–बीड़ी, सिगरेट, गरम-गरम चाय का व्यसन छोड़ देना चाहिये, द्विदल धान्य, कन्द शाक, तले हुए पदार्थ, वातवर्द्धक भोजन अधिक घृत-तेल, अधिक मिर्च मसाला, तेज खटाई, मावा और मेदा के पदार्थ ये सब हानिकर हैं। अतः हो सके उतना कम कर देना चाहिये।

(९) काँकायन वटी (अर्श)

विधि–हरड़ २० तोले, जीरा, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च और छोटी पीपल ४-४ तोल, जवाखार ८ तोले, भिलावा ३२ तोले तथा सूरण ६४ तोले लें। सबको कूट दुगुना गुड़ मिलाकर १-१ माशे की गोलियां बना लें।

मात्रा–१ से २ गोली तक, दिन में २ बार। मट्ठे अथवा जल के साथ दें। पहले और पीछे एक-एक माशा घी-चाट लें।

उपयोग–यह वटी विशेषतः वात कफज अर्श का नाश करने में अति लाभदायक है और मंदाग्नि, संग्रहणी तथा पांडु रोग को भी दूर करती है।

(१०) दुर्नाम कुठारवटी

विधि–कालीमिर्च, छोटी पीपल, कूठ, सैंधानमक, जीरा, सोंठ, बच, भुनी हींग, वायविडंग, हरड़, चित्रकमूल और अजमोद सबको समभाग मिला सब औषधियों से दुगुने गुड़ की चाशनी में डालकर १-१ माशे की गोलियाँ बनावें। (आ. भि.)

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ बार गरम जल के साथ।

उपयोग–इस वटी के सेवन से वातज अर्श का नाश होता है, पचनक्रिया सुधरती है।

इस वटी में मुख्य गुण दीपन, पाचन और वातहर है। इसके सेवन से यकृत् का पित्तस्राव अधिक होता है, जिससे लघुअन्त्र में होने वाली पचन-क्रिया सबल होती है। अन्त्र में उत्पन्न वायु का सरलता से निःसरण होता है और वातोत्पत्ति का रोध होता है। यह गुण विशेषतः हींग से मिलता है। त्रिकटु, चित्रक, अजमोद आदि सहायक होते हैं। वायु उत्पन्न होने पर अन्त्र शिथिल और प्रसारित हो जाती है, वह हरड़, जीरा आदि द्वारा दृढ़ और आकुंचित बनती है। जिससे रुका हुआ मल सरलता से बाहर गिरता है। अग्नि या पचन-क्रिया मन्द होने पर आमवृद्धि और कफवृद्धि होती हैं इनमें से हरड़ के सम्मिश्रण से आमोत्पत्ति का रोध होता है तथा बच, पीपल, कूठ आदि के मिश्रण से आमाशय और फुप्फुस में उत्पन्न आम और कफ सहज दूर हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त रोग जीर्ण होने पर उदरकृमि और आम विषवृद्धि होकर अग्निमांद्य, शारीरिक निर्बलता, मलावरोध, व्याकुलता, तन्द्रा आदि उपद्रव हुए हों, तो भी इस दुर्नामकुठार वटी के सेवन से १ मास के भीतर अग्नि और शरीर बल की वृद्धि होकर सब उपद्रव शमन हो जाते हैं।

(११) गोक्षुरादि गुग्गुलु

विधि–गौखरू के जौकूट चूर्ण ११२ तोले का ६ गुने पानी में क्वाथ करें। आधा जल बाकी रहे तब उतार लें। फिर छानकर पुनः उबालें, लगभग आधा जल रहने पर २८ तोले गूगल मिलाकर पकावें। जब गुड़ पाक के समान गाढ़ा हो जाय, तब सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, सबको समभाग मिला, कूट महीन चूर्ण कर २८ तोले गूगल की चाशनी मिला लें। फिर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। (शा. स.)

मात्रा–१ से २ गोली दिन में २ से ३ बार। दूध या जल के साथ दें।

उपयोग–यह गूगल प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रदर, वातरोग, वातरक्त, शुक्रदोष और पथरी आदि रोगों का नाश करता है।

कभी-कभी रक्तप्रदर का योग्य उपचार न करने और दुर्लक्ष्य करने पर बहुत बढ़ जाता है। भारतीय स्त्री समाज में लज्जावश रोग को छिपाते हैं, जिससे रक्त प्रदर और रक्तगुल्म दोनों बहुत बढ़ जाते हैं। फिर अशक्ति अधिक आ जाती है। उस अवस्था में गोक्षुरादि गूगल, बङ्गभस्म, मूत्रदाहान्तक चूर्ण * और अमृतासत्व मिलाकर दिन में ४ बार दाडिमावलेह के साथ देते रहने से और अशोकारिष्ट प्रातः सायं देते रहने से दो मास में दोनों विकार नष्ट हो जाते हैं।

* मूत्रदाहान्तक चूर्ण का पाठ द्वितीय खण्ड में दिया गया है।

मूत्राशय में अश्मरीकण (शर्करा और सिकता) उपस्थित होने पर मानसिक अस्वस्थता, सांधों-साँधों में पीड़ा, अपान वायु की शुद्धि न होने में अफारा आना, कम्प आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। उस पर गोक्षुरादि गूगल गोखरु के क्वाथ और दशमूलारिष्ट के साथ दिन में ३ समय देते रहने और भोजन के प्रारम्भ में हिंग्वाष्टक चूर्ण सेवन कराने से छोटे-छोटे पत्थर और रेती निकलकर रोग दूर हो जाता है।

(१२) कांचनार गुग्गुलु

विधि-कचनार की छाल १२० तोले को जौ कुट कर ८ गुने जल में मिला कर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर छान शुद्ध गूगल ८० तोले मिलाकर पुनः मन्दाग्नि पर पाक करें। गाढ़ा होने पर त्रिफला २४ तोले, त्रिकटु १२ तोले, वरना की छाल ४ तोले और इलायची, दालचीनी, तेजपात १-१ तोले का चूर्ण मिला २-२ रत्ती की गोलियां बांधे। (शा.सं.)

मात्रा-२ से ३ गोली तक। त्रिफला के क्वाथ के साथ देवें।

उपयोग-यह गूगल कण्ठमाला, अपची, अर्बुद, कर्कस्फोट (Cancer), ग्रन्थि, व्रण, गुल्म, कुष्ठ और भगन्दर आदि उग्र रोगों में अति लाभदायक है। औषधि ३-४ मास तक सेवन करने से ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं।

(१३) चिंचाभल्लातक वटी

विधि-इमली और शुद्ध भिलावा समभाग मिला कूटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बांधे। इमली नई लें, नमक मिली हुई नहीं लेनी चाहिये। दोनों वस्तुओं को कूटने से गोली बन जाती है। जल मिलाने की जरुरत नहीं है। (आ. नि. मा.)

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २-३ बार मटठे या जल के साथ दें।

उपयोग-इस वटी के सेवन से विसूचिका (कॉलेरा), संग्रहणी, अतिसार, उदरशूल, उपदंश के हेतु से होने वाले संधिवात, पक्षाघात, अर्दितवायु, मन्यास्तम्भ, कटिग्रह, गृध्रसी, शिरागतवायु आदि दोष दूर होते हैं। इसके साथ पथ्यापथ्य का विशेष बन्धन नहीं है। यह विसूचिका में कार्यकारी औषधि समझी गई है, एवं अन्य रोगों में भी अच्छा प्रभाव दिखाती है।

विसूचिका के कीटाणुओं के आक्रमणजन्य और अपचनजन्य २ प्रकार है। इन दोनों में कीटाणुप्रधानरोग विशेष घातक हैं। इसके प्रारम्भिक लक्षण दस्त और वमन हैं। दस्त और वमन थोड़े-थोड़े समय के अन्तर पर होते रहते हैं। प्यास लगती है, देह शीतल होने लगती है और निर्बलता बढ़ती है। यदि १२ घन्टे तक योग्य उपचार न किया जाय, तो रोग असाध्य बन जाता है। अपचनजन्य विकार में भी दस्त और वमन होते हैं, किन्तु बहुत समय के पश्चात् उदर में वायु उत्पन्न होती है, अधिक प्यास नहीं लगती और अधिक निर्बलता भी नहीं आती। इन दोनों प्रकार की विसूचिका की प्रथमावस्था में इस वटी का उपयोग किया जाये तो रोगवृद्धि रुक जाती है और थोड़े ही समय में रोगी स्वस्थ हो जाता है। अपचनजन्य विसूचिका में २-२ गोली दिन में ३ या ४ बार मट्ठे के साथ देनी चाहिये। यदि कीटाणुजन्य प्रबल विसूचिका है, तो १-१ गोली आध-आध घन्टे पर प्याज के रस या २-२ तोले जल के साथ देनी चाहिये। विसूचिका रोग का जब तक शमन होकर प्रकृति स्वस्थ न बने, तब तक जल के अतिरिक्त कुछ भी भोजन नहीं देना चाहिये। जल भी १-१ चम्मच बारम्बार देते रहना चाहिये।

यदि कीटाणुजन्य विसूचिका उपचार न करने से बढ़ गया हो, रोगी अशक्त हो गया हो, ५-५ मिनट पर सफेद जल जैसा दस्त होता रहता हो, वमन भी बराबर होती रहती हो, मांसपेशियों में आक्षेप आते हों, देह शीतल हो गया हो तथा मुखमण्डल तेजोविहीन हो गया हो, ऐसी अवस्था में इस वटी का उपयोग नहीं करना चाहिये। विसूचिकान्तक रस या विसूचिकारहर वटी का प्रयोग करना चाहिये। अन्तिमावस्था जैसी स्थिति हो गई हो, तो शिराद्वारा नमक जल चढ़ाना पड़ता है।

संग्रहणी के अनेक प्रकार हैं। आमाशय की पचन-क्रिया निर्बल होने पर आमविष बनता रहता है। फिर मल के साथ आम अधिक निकलता रहता हैं। उसे आमसंग्रहणी कहते हैं। दूसरे प्रकार में अन्त्र की पचनक्रिया भी दूषित हो जाती है। यकृत् पित्त का स्राव न होने से मल सफेद रंग के और दुर्गन्धयुक्त होते हैं तथा लघु अन्त्र में उग्रता होने से पचनक्रिया नहीं होती और शोषण क्रिया योग्य न होने से पतला रस रह जाता है। यदि आमाशय, यकृत् और अन्त्र सब दूषित हो तो दोनों स्थानों की पचनक्रिया बिगड़ती है। फिर आमाधिक्य, सफेद दुर्गन्धमय पतले दस्त होते हैं। यदि पतलापन मर्यादा में हो और दिन में ३-४ दस्त से अधिक न होते हों, तो यह चिंचाभल्लान्तक वटी व्यवहृत होती है। यह वटी आमाशय अन्त्र और यकृत तीनों को बल प्रदान करती है। इस हेतु से उक्त तीनों प्रकार की ग्रहणी में इसका उपयोग निर्भयतापूर्वक होता है।

वक्तव्य-जिस संग्रहणी में अधिक पीला, उष्ण और जलसदृश प्रवाही मल हो उदर में मरोड़ा आता हो, कभी-कभी रक्तस्राव भी होता हो, एक दिन में १०-२० या अधिक बार दस्त होते हों, उस पर इस वटी का प्रयोग नहीं हो सकता। पर्पटी कल्प का उपयोग होता है।

अतिसार और ग्रहणी रोग में मट्ठे के साथ इस वटी का सेवन कराने पर सत्वर लाभ पहुँचता है। दस्त कम होते हैं, वेदना का शमन होता है और उदर में आफरा नहीं आता।

उपदंश (फिरंग) रोग कीटाणुजन्य है। रोग शमन हो जाने के पश्चात् यदि रक्त के भीतर इस रोग के कीटाणु शेष रह जाते हैं, तो विषवृद्धि, फोड़े-फुन्सी, संधिवात, पक्षाघात, अर्दित, कटिवात आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। इस रक्त विकार की अथवा उपद्रव रूप वातविकार की प्रथमावस्था में ही इस वटी का प्रयोग किया जाय और पथ्यपालन किया जाय, तो लाभ पहुँच जाता है। यदि रोग जीर्ण हो गया हो, तो मल्लप्रधान औषधि

का सेवन कराया जाता है।

उपदंश हेतु से संधिवात हुआ हो, या अर्दित, पक्षाघात, कटिग्रह, गृध्रसी आदि वातरोग हुए हों, अथवा शिरागत वातविकार हुआ हो, २-२ गोली जल के साथ देते रहने से अच्छा लाभ पहुँचता है।

सूचना-इस वटी के सेवन काल में मांसाहार का त्याग कर देना चाहिये। एवं मूत्र लाल हो जाय, तो इस वटी का सेवन बन्द कर देना चाहिये और नारियल का जल पिलाना चाहिये।

(१४) धात्रीभल्लातक वटी

विधि-शुद्ध भिलावा १ सेर, हरड़, बहेड़ा, आंवला प्रत्येक ४०-४० तोले, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल ३०-३० तोले, काले तिल एक सेर और गुड़ पुराना एक सेर लें। सबको बारीक कूट गुड़ मिलाकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बांधें। (आ. नि. मा.)

सूचना-भिलावा कूटते समय हाथ को तेल लगा लें, लोहे की कलछी से चलावें और निकालें। दूसरी औषधियों का चूर्ण मिलाकर कूटने पर भिलावें के तेल का भय कम हो जाता है।

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २ बार , जल के साथ देवें।

उपयोग-यह वटी आमाशय और उदर के सब विकार, शूल, आमवात, कई वातरोग, उपदंश अथवा किसी हेतु से होने वाले संधिवात, अर्द्धाङ्गवात, ऊरुस्तम्भ (आढ्यवात) और सुजाक के उपद्रव आदि को दूर करती है।

आमाशय की पचनक्रिया आमाशय रस के स्राव पर अवलम्बित है। आमाशय स्राव कम हो तो पचनक्रिया मन्द हो जाती है, आमोत्पत्ति होती है और मुँह फीका रहता है। यह कफ विकार कहलाता है। आमाशय स्राव कभी कम और कभी अधिक होने पर आमाशय की वातवाहिनियों की शिथिलता और उत्तेजना मानी जाती है, अत: इसे वातविकार कहा है। आमाशय रसस्राव तीव्र, अति अम्ल और अधिक मात्रा में होने पर उसे पित्त प्रकोप संज्ञा दी है। इस प्रकार विशेषत: अम्लपित्त रोग में प्रतीत होता है। इनमें से वात विकारज या कफविकारज अग्निमांद्य होने पर धात्रीभल्लातक वटी का सेवन कराया जाता है।

उदररोग बहुधा पचनक्रिया विकृत होने पर होता है। यह वटी आमाशय और यकृत् दोनों को बल देती है। इस हेतु से वातप्रधान उदररोग, प्लीहोदर और यकृद्दाल्युदर की प्रथमावस्था में इस वटी का उपयोग हो सकता है।

उदर में मल की गांठ बनकर रुकने या कच्चा मल संगृहीत होने पर उदरशूल उत्पन्न होता है। साथ-साथ अपचन के या मलावरोध के अन्य लक्षण उपस्थित होते हैं। इनमें से अपचन के हेतु से उदर शूल हो, दूषित डकारें आती हों, उदर में भारीपन हो तो यह वटी जल या मट्ठे के साथ दी जाती है। यदि मलावरोधज उदरशूल हो तो ६ माशे से १ तोले हरड़ के क्वाथ के साथ इस वटी का सेवन कराया जाता है।

आमवात (Rheumatism) की संप्राप्ति आमप्रकोप होने पर होती है। एलोपैथी में इसे कीटाणुजन्य माना है। इस रोग की तीव्रावस्था में स्थान-स्थान पर बिच्छू काटने के समान वेदना होती है, पेशाब लाल होता है तथा ज्वर १०२° से १०४° तक बढ़ जाता है। कितने ही रोगियों को हृदय में भी विकृति होती है। इस तीव्रावस्था में यह वटी अच्छा लाभ पहुँचाती है। चिरकारी अवस्था में ज्वर नहीं रहता तथा वेदना मन्द हो जाती है। उस समय भी यह वटी रक्त में रहे हुये विष को जलाती है तथा हृदयेन्द्रिय और आमाशयिक पचन अवयवों को सबल बनाती है। जिससे भावी आक्रमण से रक्षा मिल जाती है। इस रोग में पीड़ितों को चाहिये कि मधुर पदार्थों का सेवन कम से कम करें।

जिस तरह प्रदाह-प्रधान वात रोगों में चिंचाभल्लातक वटी व्यवहृत होती है, उसी तरह यह वटी भी दी जाती है। जिन रोगियों के रक्त की प्रतिक्रिया अम्ल होती है, जिनको खट्टे पदार्थ के सेवन से सब सांधें अकड़ जाते हैं और दांत आम जाते हैं, उनको चिंचाभल्लातक के स्थान पर धात्रीभल्लातक वटी दी जाती है।

सुजाक रोग अति दु:खदायी है। इसका दमन होने पर रोगी उससे निवृत्त हो गया, ऐसा मान लेता है और उपचार बन्दकर देता है। इतना ही नहीं आहार विहार में स्वच्छन्दी बन जाता है। परिणाम में सुजाक के कीटाणु विष रक्तादि धातुओं में लीन होकर दृढ़ हो जाते है। फिर सांधे-सांधे अकड़ जाना, फोड़े-फुन्सी होना, मूत्र में जलन होना, आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं। इन उपद्रवों के दमनार्थ इस धात्रीभल्लातक वटी से कीटाणुनाश और रक्तप्रसादन होकर उपद्रव दूर हो जाते हैं। यथार्थ में पूर्ण रूप से विष को नष्ट करने के लिए चन्द्रप्रभावटी और गोक्षुरादि गुग्गुलु का सेवन १ वर्ष पर्यन्त पथ्यपालनसह कराना चाहिये।

उक्त रोगों के अतिरिक्त अर्श रोग पर भी यह वटी हितकारक है। इस वटी के सेवन से गुदनलिका में रक्तदबाव कम हो जाता है। उदर में वायु की उत्पत्ति बन्द होती है तथा उदर-शुद्धि होती है। इस हेतु से अर्श का कष्ट दूर हो जाता है।

स्त्रियों के मासिक धर्म में कष्ट होता हो, रज:स्राव कम गिरता हो। फिर उस हेतु से वेदना, मस्तिष्क में भारीपन, दृष्टिमांद्य, निर्बलता,श्वेतप्रदर और अग्निमान्द्यादि रहते हो, तो उनको धात्रीभल्लातक वटी दी जाती हैं।

(१५) गन्धक वटी

विधि–शुद्ध गन्धक २ तोले, चित्रकमूल, पीपल, कालीमिर्च सब १-१ तोला, सोंठ २ तोले, जवाखार, सैंधानमक, कालानमक और साँभरनमक आधा आधा तोला लें। सबको मिला नींबू के रस की ७ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावे। (र.रा.सु.)

मात्रा–१ से ४ गोली, दिन में ३ बार भोजन के दो घण्टे बाद।

उपयोग–यह वटी मन्दाग्नि, अरुचि, अजीर्ण, शूल, सूक्ष्म कृमि, ग्रहणी दोष, आमवृद्धि, गुल्म और उदावर्त का नाशकर अग्नि को प्रदीप्त करती है। नींबू के रस की ७ भावनायें देने पर यह तत्काल अपना प्रभाव दर्शाती है। उदर में उत्पन्न दूषित वायु के ऊपर चढ़ने को तुरन्त दबाती है एवं शूल, बेचैनी आदि को दूर करती है।

यह वटी उत्तम कीटाणुनाशक और दीपन-पाचन है। इसके सेवन से आमाशयिक रस तथा यकृत् पित्त का स्राव अधिक होता है। जिससे आमाशय और अन्त्र दोनों स्थानों की पचनक्रिया सबल बनती है। इस हेतु से अग्नि मांद्य, आमवृद्धि, उदर में भारीपन, उदरकृमि और मलावरोधादि विकार दूर हो जाते हैं एवं यकृत् पित्त कम मिलने से उत्पन्न मल में दुर्गन्ध, मल श्वेत वर्ण का हो जाना, सूक्ष्म कृमि हो जाना आदि लक्षण भी दूर हो जाते है। आमाशय, अन्त्र और यकृत् निर्बल होने पर घृतादिक का सेवन अधिक हो जाय, तो अपचन होता है। फिर उदर में वेदना, आफरा, बार-बार दूषित डकारें आना, किसी को थोड़ा-थोड़ा दस्त दिन में ३-४ बार होना और अरुचि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं तथा बार-बार भोजन करने का विचार आता रहता है। इस विकार पर इस वटी का अच्छा उपयोग होता है। १-१ घण्टे पर २-३ बार गन्धक वटी देनी चाहिये। यदि रोग जीर्ण हो, तो इस वटी का सेवन एकाध मास तक कराने पर आमाशय,, अन्त्र और यकृत् सबल बन जाते हैं। फिर अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। इस वटी में गन्धक, चित्रकमूल, पिप्पली, कालीमिर्च, सौठ ये सब अग्निप्रदीपक द्रव्य हैं। यदि अपचन से विसूचिका की प्राप्ति हो गई हो, अर्थात् वमन और दस्त होते हो तथा उदर में पीड़ा बनी रहती हो तो इस वटी का सेवन १-१ घण्टे बाद ३-४ बार प्याज के रस के साथ करने से लाभ हो जाता है। रोग मन्द-मन्द बना रहे, तो यह वटी दिन में ३ बार मट्ठे के साथ ४-६ दिन तक देनी चाहिये।

शारीरिक निर्बलता और पाण्डुता की संप्राप्ति आमप्रकोप से हुई हो, तो गंधक वटी का सेवन भोजन करने के २ घन्टे बाद कुछ दिनों तक कराने से पचन-क्रिया सबल बनती है और आमोत्पत्ति नहीं होती। फिर शनैः-शनैः पाण्डुता और निर्बलता दूर हो जाती है।

यकृत् पित्त का स्राव कम होने तथा दूषित पदार्थ खाने, मांसाहार अधिक करने अथवा अपथ्य या संयोग विरोधी पदार्थों का एक साथ सेवन करने पर उदर में सूक्ष्म कृमियों की उत्पत्ति हो जाती है। अनेक बार ये कृमि १२ घण्टे में ही उत्पन्न होकर मल के साथ असंख्य निकलते हैं। इस विकृति को दूर करने के लिये पहले एरण्ड तेल का विरेचन लेकर उदर को साफकर लेना चाहिये। फिर गन्धकवटी का सेवन पथ्य पालनसह कुछ दिनों तक कराने से विकार दूर हो जाता है।

वक्तव्य–सूक्ष्म कृमि वालों को प्रायः दूध अनुकूल नहीं रहता। दही और मट्ठा विशेष अनुकूल रहता है। लहसुन और प्याज भी हितावह है।

(१६) कासीसादि वटी (रजः प्रवर्तिनी वटी)

प्रथमविधि–कासीम, सोहागे का फूला, भुनी हींग और एलुआ सबको समभाग मिला घीकुंवार के रस में ६ घण्टे खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियां बनावें। इस वटी का नाम भैषज्यरत्नावली और आयुर्वेद संग्रहकार ने रजः प्रवर्त्तिनी वटी रखा है।

मात्रा–२ से ४ गोली, दिन में २ बार। १-१ तोला गोरखमुण्डी के क्वाथ अथवा जल या निम्न अनुपान से देवें।

अनुपान–काले तिल, इन्द्रायण की मूल, अमलतास का गूदा और अनीसून की जड़ (सौंफ के मूल) १०-१० तोले, बांस की गांठ, कपासमूल, गाजर के बीज, मूली के बीज, ककड़ी के बीजों की गिरी और हंसराज ५-५ तोले लें। सबको मिला जौ कूट चूर्ण करें। उसमें से ३ तोले चूर्ण को १६ गुने जल में मिला चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर ३ हिस्से कर सुबह, दोपहर, रात्रि को २-२ गोली के साथ क्वाथ देवें। पीने के समय क्वाथ में थोड़ा-थोड़ा गुड मिला देवें।

उपयोग–यह वटी स्त्रियों के मासिक धर्म कम होना, मासिक धर्म के समय दुःख होना, अनियमित ऋतु आना, इन सब दोषों को दूर करके गर्भाशय को शुद्ध बनाती है। मासिक धर्म आने पर १० दिन तक औषधि सेवन बन्द करें। यह वटी कन्यालोहादि वटी की अपेक्षा उष्ण है।

दूसरी विधि–कासीस, भुनी हींग, सोहागे का फूला, सोंठ, चित्रकमूल, इन्द्रायण की मूल, इन्द्रायण के फल, जवाखार, सज्जीखार, सैंधानमक, हल्दी, दारुहल्दी, कपूर और समुद्रझाग इन १४ औषधियों को समभाग मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् घीकुंवार के रस में खरलकर चने के समान गोलियां और सोगठियां (शिखर के आकार वाली गोलियां) बना लेवें। (र.त.)

मात्रा–२ से ४ गोली तक, दिन में २ बार , जल के साथ देवें और आवश्यकता पर सोगठी को जननेन्द्रिय में रखें।

उपयोग–यह वटी स्त्रियों के नष्टार्त्तव और पीड़ितार्त्तव आदि मासिक धर्म के दोषों को दूर करके ऋतु को साफ और समय पर लाती है। पहली विधि की अपेक्षा यह विशेष तीव्र है, अतः नाजुक प्रकृतिवाली रुग्णाओं को नहीं देनी चाहिये।

कई मेद बढ़ी हुई स्त्रियों के गर्भाशय और बीजाशय बहुत कठोर होते हैं। उनको मासिक धर्म आने पर अति कष्ट होता रहता है रजःस्राव भी बहुत कम होता है। उनको ऊपर कहे हुए अनुपान के साथ कासीसादि वटी का सेवन मासिक धर्म आने पर १५-१५ दि मास तक पथ्य भोजन, ब्रह्मचर्य पालन के साथ कराने पर गर्भाशय नरम हो जाता है। फिर मासिक धर्म नियमित बिना कष्ट से आने लगता

सूचना–यदि वेदना तीव्र होती हो, तो पेडूपर पीड़ितार्त्तवहर लेप भी लगावें। इसका पाठ रसतन्त्रसार द्वितीय खण्ड में देखें।

(१७) प्रदरान्तक वटी

विधि–अकीक पिष्टी और कहरवा पिष्टी एक-एक तोला, हीरादोखी गोंद (दन्बुल खवैन) २ तोले, रसोंत ३ तोले सबको मिला जल खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बांधे। (वै.चि.सा.

मात्रा–२ से ४ गोली, दिन में २ बार। चांवलों के धोवन के साथ दें।

उपयोग–रक्तप्रदर तथा अर्श का खून बन्द करने के लिये यह निर्भय और अति हितकर औषध है। रक्त को बहुत जल्दी बन्द कर हैं एवं उष्णता, बेचैनी और कब्ज को दूर करती है।

यह प्रदरान्तक वटी अति निर्भय औषधि है। यह विशेषतः रक्त प्रदर ग्रस्त रुग्णाओं को दी जाती है। इसका सेवन पथ्यपालन सह कर जायेगा एवं गरम मसाला गरम-गरम चाय, शराब, तीक्ष्णपदार्थ और अधिक पति समागम ये सब कम करा दिये जायेंगे, तो इस वटी से ल हो जाता है।

जिन बहिनों को मासिकधर्म में अधिक रजः स्राव होता हो या अधिक दिनों तक रजःस्राव होता रहता हो, उनको भी इस वटी के से से लाभ पहुँच जाता है। मासिक धर्म आने के पहले या प्रारम्भ में उदर शुद्धि करा लेना चाहिये फिर लघुपौष्टिक भोजन के साथ इसका से करने पर थोड़े ही दिनों में लाभ पहुँच जाता है।

(१८) बालरक्षक सोगठी

विधि–बायविडङ्ग, वायुपुंबा (कुंभी), कालानमक, चिरायता, इन्द्रजौ, सोंठ, हरड़, डीकामाली, बच, जायफल, जायपत्री, करंज के बीज, पित्तपापड़ा, कुटकी, कालीजीरी, कोलम्बो, अतीस, एलुवा, उसारेरेवन, मरोड़ाफली सब समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। फिर ६ ग्रा जल के साथ घुटाई करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लें (वै. चि.सा.

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ समय। आवश्यकता पर २-२ या ३-३ घण्टे पर।

उपयोग–ये गोलियां छोटे बालकों के सूक्ष्म ज्वर, खांसी, कब्जियत और पेट का दर्द आदि रोगों में पत्थर पर जल में थोड़ी घिस पिला देने से तुरन्त उदरशुद्धि हो जाती है। आवश्यकता पर एक दो घण्टे बाद दूसरी बार देवें।

यह बालरक्षक सोगठी विशेषतः बालकों के मलावरोध, अपचन, उदर पीड़ा और उदरवायु को दूर करने के लिए प्रयोजित होती है। जरूरत को तब इसका उपयोग करना चाहिये। कारण कि इसमें विरेचन प्रधान द्रव्य मुख्य हैं। अधिक दिनों तक बच्चे को देते रहने से में प्रदाह उत्पन्न होता है। फिर मल संग्रह होने लगता है।

यह सोगठी अति निर्दोष है। सब प्रकृति के बच्चों को सब ऋतुओं में दे सकते हैं। किसी को हानि नहीं पहुँचती।

सूचना–बच्चों को मलावरोध अधिक होता हो, तो फलों का रस, शाक का रस, गोदुग्ध का सेवन अधिक करना चाहिये। मावा और का पदार्थ, अधिक घृत, बार-बार भोजन, गरम-गरम चाय आदि का सेवन नहीं कराना चाहिए।

(१९) बालरक्षक गुटिका,

विधि–जायफल, जावित्री, दालचीनी, लौंग, इलायची, अजमोद, सफेद मिर्च, वायपुंबा, वायविडङ्ग, सोया, कालानमक, हरड़, चिराय करंज के भुने बीज, अतीस, अनार का छिलका, पीपलामूल, वंशलोचन, एलुवा, बीजाबोल, खसखस, लोबान और केशर सब समभाग मिला बारीक चूर्ण करें। फिर शहद में घुटाई करके १/२-१/२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (वै.चि.सा.

वक्तव्य–एलुवा मिलाने से गुटिका बहुत कड़वी हो जाती है। इस हेतु से हम एलुवा के स्थान पर गोकर्णी के बीज मिलाते हैं।

मात्रा–१ से ४ गोली, दिन में २ बार। १ मास से ६ मास तक के बच्चों को माता के दूध के साथ दें। ७ मास से १२ मास तक बच्चों को २ से ४ गोली देवें। बड़े बच्चों को अधिक मात्रा देवें।

उपयोग–बालकों के पतले दस्त, वमन, अजीर्ण, वायु, मन्दाग्नि, निर्बलता और कब्ज आदि दोष दूर होकर दूध अच्छी रीति से पचन है। शरीर मजबूत और नीरोग बन जाता है। यह गुटिका नीरोगी और रोगी, सब बालकों के लिए उपयोगी है।

शिशुओं के स्वास्थ्य की रक्षार्थ जन्मघूंटी (बालघूंटी) कई प्रकार की प्रचलित है। यह भी जन्मघूंटी ही है। इसका प्रचार गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ में अत्यधिक हो रहा है। यह बालरक्षक गुटिका और द्वितीय खण्ड में दी हुई जन्मघूंटी, दोनों की औषध योजना में गुणधर्म दृष्टि से अन्तर है। इस गुटिका में दीपन, पाचन, सारक, ग्राही, कृमिघ्न और कफघ्न औषधियों को मुख्य स्थान दिया है और द्वितीय खण्ड की जन्मघूंटी में सारक, कृमिघ्न, कफहर और दुर्गन्धनाशक द्रव्यों को संयोजित किया है। यह अन्तर देश भेद और जलवायु भेद से हुआ है।

जिन बालकों के लिए दीपन, पाचन, सारक, ग्राही, कृमिघ्न और कफघ्न गुणों की आवश्यकता हो, उनके लिए यह वटी अति उपकारक है। यह सौम्य है। निर्भयतापूर्वक सब प्रकृति वालों को सब ऋतुओं में दे सकते है। जिन शिशुओं को सारक गुण के साथ ग्राही (अन्त्र आकुंचन कराने और आहार रस को धारण करने वाले) तथा दीपन, पाचन गुणप्रधान औषधि मिलाने की आवश्यकता न हो, समशीतोष्ण औषध देना इष्ट हो उनको जन्मघूंटी दी जाती है।

जिन बच्चों को पतले दस्त होते रहते हो, उदर में वायु उत्पन्न होती रहती हो, बार-बार अपचन हो जाता हो और दूध का पचन भलीभाँति न होता हो उनके लिए बालरक्षक गुटिका अति उपकारक है यह दूषित मल को फेंकवाती है और ग्राही गुण दर्शाती है एवं शनैः शनै पाचन क्रिया व्यवस्थित करके बालक को नीरोगी सबल बना देती है।

जिन बालकों को कब्ज बना रहता हो, कब्ज होकर ज्वर आ जाता हो, अन्य कोई दोष न हो, उनके लिए बालरक्षक गुटिका की अपेक्षा जन्मघूंटी हितावह है। किन्तु क्वचित मलसंग्रह होकर मलावरोध हो गया हो, तो बालरक्षक सोगठी की योजना करना विशेष हितावह माना जायेगा।

जिन बालकों को बार-बार जुकाम हो जाता हो, ऐसे बालकों के लिए यह गुटिका आशीर्वाद के समान है। जब तक बालक निर्बल हो, तब तक बाहर की शीत, वर्षा की वायु और सूर्य के ताप में अधिक रहना आदि से बचाना चाहिये। अति शीतल पेय नहीं देना चाहिये एवं स्नान कराने के पहले तैल की मालिश कर लेनी चाहिये। इस तरह सम्हालने के साथ इस गुटिका का नियमित सेवन कराया जाय तो बालक स्वस्थ और सबल बन जाता है।

कफस्राव, कफकास और नाक से श्लेष्मस्राव होते रहना आदि विकार हों, वे श्रृङ्गभस्म और इस गुटिका के मिश्रण से थोड़े ही दिनों में दूर हो जाते हैं।

जिन बच्चों को मन्द ज्वर बना रहता हो, या बार-बार आता रहता हो, उनको इस गुटिका का सेवन नियमित कराया जाय तथा मधुर पदार्थ का अधिक सेवन या मलावरोध कारक आहार का सेवन कम करा दिया जाय, तो लाभ हो जाता है। आवश्यकतानुसार गोदन्ती भस्म और प्रवालपिष्टी साथ में दे सकते हैं।

यदि ज्वर अधिक आ गया हो, मलावरोध, अपचन, जुकाम, कफप्रकोप आदि लक्षण उपस्थित हुए हों, तो ऐसी अवस्था में इस गुटिका की अपेक्षा एरण्ड तैल या अन्य विरेचन द्रव्य से उदर का शोधन करके लक्ष्मीनारायण, गोदन्तीभस्म और प्रवालपिष्टी का सेवन हितावह माना जायेगा।

उदर में सूक्ष्म कृमि हो गये हों, मल दुर्गन्धयुक्त आता हो तथा उदर में आफरा आ जाता हो, उन सब विकारों को यह बालरक्षक गुटिका बहुत जल्दी शमन कर देती है। बालक को घृत प्रधान आहार, अधिक मात्रा और बार-बार भोजन आदि बल बढ़ने की भावना से देते हों, तो बन्द कर देना चाहिए। जो भोजन पाचन नहीं होता वह शरीर बल को घटाता है।

जिन माता-पिता का शरीर निर्बल हो, उनके शिशुओं के देह भी सामान्यतः निर्बल होते हैं। इन बालकों को बालरक्षक गुटिका के साथ प्रवालपिष्टी मिलाकर सेवन कराया जाय तथा नियमित तेल मर्दन कराया जाय, तो देह क्रमशः पुष्ट होने लगती है।

सूचना-कई कुटुम्बों में बच्चों को शैशवावस्था से चाय पिलाते रहते हैं। यह प्रथा हानिकर होने से छोड़ देनी चाहिये।

यह बालरक्षक गुटिका सौराष्ट्र की घरेलू औषधि है। यह ग्राही और सारक, विषहर, कृमिघ्न, ज्वरहर, कफनाशक और मन को प्रसन्न रखने वाली निर्भय औषधि है। शिशुओं के जीवन-विकास के प्रतिबन्ध को दूर करने में अति सहायक है, सब प्रकृति के बालकों को दी जाती है और सब ऋतुओं में इसका उपयोग हो सकता है। कच्छ, सौराष्ट्र और गुजरात में इस वटी का उपयोग अधिक हो रहा है।

(२०) बालजीवन वटी

विधि-गोरोचन ३ माशे, एलुवा ६ माशे, उसारेरेवन, केशर, कटेली का जीरा, जवाखार और सत्यानाशी के बीज प्रत्येक १-१ तोला लेवें। सब को कूटपीस छानकर अदरक के रस में ३ घण्टे घोट ¼-¼ रत्ती की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लें। (धन्वन्तरि)

मात्रा-१ से २ गोली। आवश्यकता अनुसार माता के दूध या शहद से दें।

उपयोग-इस वटी के सेवन से बच्चों का पसली (डिब्बा) रोग, कब्जियत, मूत्रावरोध, आफरा, कास आदि रोग दूर होते हैं और बच्चे नीरोग हो जाते हैं। वटी का उपयोग विशेषतः डब्बानाशक गुटिका उपयोग करने के पश्चात् किया जाता है। क्वचित् निर्बल शिशु के लिये प्रारम्भ से ही यह देनी पड़ती है।

शिशुओं का यकृत् जन्म होने पर स्वाभाविक बड़ा और निर्बल होता है। इसलिए वह शीघ्र रोग पीड़ित हो जाता है। जिन बालकों को ३ वर्ष की आयु के पहले घृत-मिश्रित अन्न देना आरम्भ कर देते हैं, उनके यकृत् और अन्त्र दोनों अधिक निर्बल और शिथिल बनते हैं एवं जन्म से कृश बालकों का यकृत् भी कमजोर रहता है। उनको डब्बारोग हो जाने पर प्रायः यकृत्त् भी प्रभावित हो जाता है। उन बच्चों के लिए डब्बानाशक गुटिका की अपेक्षा बालजीवन वटी विशेष उपकारक सिद्ध हुई इसके भीतर गोरोचन आता है, वह यकृत् को बल प्रदान करता है और कीटाणुओं का नाश करता है। इस हेतु से यह सफलता पूर्वक कार्य करती है। यह वटी अति दिव्य सिद्ध हुई है। इस वटी ने सैकड़ों बच्चों के जीवन की रक्षा की है।

(२१) तृष्णाघ्नि गुटिका

विधि-नीलकमल, कूठ, धान की खील और बड़ के अंकुर सबको समभाग मिला महीन चूर्णकर शहद के साथ २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

(चक्रदत्त)

मात्रा-१-१ गोली करके प्रतिदिन १५-२० गोलियों का रस चूसते रहें।

उपयोग-यह वटी भयंकर बढ़ी हुई तृषा और वमन को तत्काल नष्ट करती है। किसी भी रोग में तृषा की वृद्धि होने पर इस गुटिका का उपयोग हो सकता है।

(२२) लहशुनादि वटिका

विधि-लहशुन, जीरा, भुनी हींग, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, शुद्ध गंधक और सैंधानमक इन ८ औषधियों को समभाग मिला नींबू के रस में ३ दिन खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें।

(वै.जी.)

मात्रा-२ से ४ गोली, दिन में ३ बार। जल या मट्ठे के साथ दें।

विसूचिका में ३-३ गोलियां आध-आध घण्टे पर देते रहे।

उपयोग-यह वटी अजीर्ण, कृमि, उदरशूल, आफरा और विसूचिका को दूर करके अग्नि को प्रदीप्त करती है। अपचन और विसूचिका के लिये अत्यन्त लाभदायक है।

रसयोग सागर में इस वटी का नाम 'गन्धक वटी' विसूचिका विध्वंसिनी और 'त्रिकटु रसायन' लिखे हैं। यह वटी विसूचिका के लिये अति हितकर है। नींबू और अदरक के रस में सैंधानमक और कालानमक १-१ रत्ती मिला कर इस के साथ यह वटी देने से शूल, वमन, विसूचिका और कृमि आदि रोग नष्ट होते हैं। इससे विसूचिका के कीटाणु नष्ट होते हैं एवं शीतांगता में कमी होती है।

(२३) विसूचिकाहर वटिका

विधि-भूनी हींग ३ तोले, आम की गुठली की गिरी और लालमिर्च के छिलके २-२ तोले, अफीम, जायफल, जायपत्री, लौंग, सोहागा का फूला और शुद्ध सिंगरफ १-१ तोला और पीपरमेंट के फूल ६ माशे लें। इन आठ औषधियों को मिलाकर ६-६ घण्टे नींबू और लहशुन के रस में खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें।

वक्तव्य-पीपरमेण्ट के फूल नींबू के रस की भावना दे देने के पश्चात् मिलावें नींबू लहशुन का रस डाल-डालकर ६ घण्टे मर्दन करें।

मात्रा-१ से २ गोली, १-१ घण्टे पर रोग काबू में आवे तब तक १ तोला जल के साथ या शक्कर के साथ देते रहें। रोग कम होने पर औषधि की मात्रा कम करें। वमन, अतिसार या पेचिश में ३ बार जल के साथ देवें।

सूचना-पिलाने के लिए १। सेर जल में १ तोला लोंग या जायफल मिलाकर उबाल लें। शीतल होने पर छानकर आवश्यकतानुसार बार-बार १-१ तोला जल पिलाते रहें।

इस औषधि में करीब १४ वां हिस्सा अफीम आती है। अतः जब तक उदर में से दुर्गन्धयुक्त मल न निकल जाये, तब तक इस विसूचिकाहरवटी का प्रयोग न करें।

इस गुटिका में अफीम मिली है। इसलिए यह वटी हो सके तब तक सगर्भा को नहीं देनी चाहिये। कारण अफीम का असर गर्भ पर हानिकारक होता है।

उपयोग-विसूचिका (कालेरा) के लिये यह औषधि अत्यन्त लाभदायक है। अनेक मरणोन्मुख रोगी इससे थोड़े ही घन्टों में स्वस्थ हो गये हैं। इसके प्रयोग से कालेरा के वमन और दस्त दोनों सत्वर रुक जाते हैं, तृषा कम होती है, कीटाणु नष्ट होते हैं, अन्तर्दाह शमन होता है, हाथ-पैर में ऐंठन आना रुक जाता है, नाड़ियों में रही हुई शीतलता सत्वर दूर होती है तथा पचनक्रिया प्रदीप्त होकर रोगी सत्वर निरोग बन जाता है। ऐसे ही यह वटी पेचिश, अतिसार, अजीर्ण जन्य अतिसार, अरूचि, वमन आदि रोगों को दूर करती है। यह छोटे बालकों को थोड़े परिमाण में दी जाती है। बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष आदि सबके लिये यह लाभदायक है।

(२४) सर्पगन्धादि गुटिका

विधि–सर्पगन्धा १० सेर, खुरासानी अजवायन २ सेर, जटामांसी और भांग १-१ सेर मिला जौकुट चूर्ण करें। इन्हें अठगुने जल में रात्रि को भिगो सुबह मन्दाग्नि पर पकावें और कड़छी से हिलाते रहें। अष्टमांश जल शेष रहने पर नीचे उतार मसलकर कपड़े से छान लेवें। फिर दूसरी बार छान मन्दाग्नि पर पकावें। जब क्वाथ कड़छी से लगे ऐसा गाढ़ा हो, तब उसे नीचे उतार धूप में सुखावें। गोली बनने योग्य हो जाय तब उसमें पीपलामूल का चूर्ण 20 तोले मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (स्व.पं. श्री यादवजी त्रिकमजी)

मात्रा–२ से ३ गोली। रात्रि को सोने के १-२ घण्टे पहले, जल या दूध से दें।

उपयोग–इस औषधि में निद्राप्रद और रक्त दबाव शामक गुण हैं। जब किसी रोग विशेष से वेदना होने या मदात्यय, क्विनाइन विष, हिस्टीरिया या शराब, उन्माद या मस्तिष्क में अधिक उत्तेजना पहुँचने से निद्रा न आती हो, तब निद्रा लाने के लिये इस गुटिका का प्रयोग किया जाता है। इसके सेवन से शान्त निद्रा आ जाती है, तथा मस्तिष्क में से रक्त का दबाव कम हो जाता है।

वृक्क प्रदाह होने पर मूत्र में ओज-धातु (एल्ब्यूमिन) जाती है तथा रक्त में मूत्र विष का संचय होता रहता है। फिर मस्तिष्क में विष पहुँचकर रक्तदबाव वृद्धि करता है, निद्रा नहीं आती, शिर में भारीपन बना रहता है, चक्कर आता है, तथा सर्वांग में शोथ प्रतीत होता है, उस पर इस वटी को सेवन कराने से शान्त निद्रा आने लगती है। साथ में वृक्क विकार और मूत्रविष शमनार्थ योग्य उपचार करना चाहिये।

हिस्टीरिया रोग में विविध लक्षण प्रकट होते हैं। अनेकों को मस्तिष्क में रक्त दबाव वृद्धि होकर मुखमण्डल पर लाली शिर में भारीपन, चक्कर आना, निद्रा नहीं आना, मन में विविध कल्पना आती रहती है, उस पर रक्त दबाव कम करके निद्रा लाने के लिये यह वटी प्रयुक्त होती है। मानसिक उद्वेग अधिक रहता हो, तो साथ में कस्तूरी भी दी जाती है।

शराब, क्विनाइन आदि उग्र औषधियों की मात्रा अधिक हो जाने पर निद्रानाश, रक्त दबाव वृद्धि, शोथ, धड़कन, अरुचि, बेचैनी, मूत्रावरोध, मलावरोध आदि अनेक उपद्रव प्रकट होते हैं। इनमें रक्त दबाव वृद्धि को शमन करा शान्त निद्रा लाने के लिये शाम को सर्पगन्धादि वटी दी जाती है।

(२५) ज्वरमुरारि गुटिका

विधि–क्विनाइन सल्फास और शुद्ध रसोंत को समभाग मिला जल के साथ खरलकर १॥-१॥ रत्ती की गोलियाँ बनावें। गोलियों को बना-बना कर मेगनेशिया कार्ब में डालते जायें। (श्री डा. कर्पूरसिंहजी)

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में ३ बार। दूध या जल के साथ देवें।

उपयोग–यह गुटिका विषमज्वरों का नाश करती है। सतत एकांतरा तिजारी आदि बुखारों को रोक देती है। ताप की पाली हो उस दिन ६ घण्टे पहले १ मात्रा दें। फिर २ घण्टे बाद दूसरी बार दें। फिर ताप न आया हो तो २ घन्टे बाद तीसरी बार देने से ताप नहीं बनता है।

जीर्णज्वरों में आधी मात्रा सुबह शाम देने से जीर्णज्वर, प्लीहावृद्धि, निर्बलता, अग्निमांद्य, निस्तेजता आदि दूर होते हैं। इन्फ्लुएञ्जा, आमवातिक ज्वर में भी यह वटी लाभदायक है।

अपचन, कफप्रकोप या ऋतुपरिवर्तन में उत्पन्न ज्वर तथा शीत लगकर आने वाले ज्वरों पर यह वटी तत्काल गुण दर्शाती है। कब्ज को भी दूर करती है। जिनको अधिक कब्ज हो उनको पहले कब्ज दूर करने के लिये अश्वकंचुकी रस या ज्वर केसरी वटी देकर कोष्ठवृद्धि करा लेनी चाहिये।

सूचना–(१) चढ़े हुए ज्वर में और बुखार बढ़ने के समय इस वटी का उपयोग नहीं करना चाहिये। ज्वर उतर जाने पर रोकने के लिये देवें (२) जो ज्वर उतर कर फिर तुरन्त बढ़ने लगता है, ऐसे ज्वर में ताप उतरने लगे तब यह वटी दी जाती है। (३) जब तक शरीर में ज्वर तीव्र हो, तब तक भोजन नहीं देना चाहिये। क्षुधा लगने पर दूध, चाय, कॉफी या मोसम्बी के रस का सेवन कराना चाहिये (४) जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलाना चाहिये।

(२६) कैशोर गुग्गुलु

द्रव्य–हरड़, बहेड़ा, आँवला तीनों ६४-६४ तोले, जौकूट, ताजी नीम गिलोय १२८ तोला तथा भैंसा गूगल ६४ तोला।

प्रक्षेप चूर्ण–त्रिफला ८ तोले, नीम गिलोय सुखाई हुई ४ तोले, त्रिकटु ६ तोला, बायविडंग ४ तोला, निशोथ १ तोला, दन्ती १ तोला।

विधि–गूगल को १ कपड़े में बाँधकर कड़ाही में दोलायंत्र विधि से लटका देवें। हरड़, बहेड़ा, आँवला तथा ताजी गिलोय को ४ गुने जल के साथ कड़ाही में भर दें तथा क्वाथ पकावें। बार-बार कलछी से चलाते रहें। चौथाई क्वाथ शेष रहने पर पोटली में अवशिष्ट गूगल के कचरे को फेंक दें और क्वाथ के जल को छानकर कड़ाही में भर लें और फिर पकावें। गाढ़ा होने तथा गूगल की-सी गन्ध आने पर नीचे उतार लें। शीतल होने पर उसमें उपरोक्त प्रक्षेप द्रव्यों को कूटकर कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला लें, इसमें गाय का घी मिलाकर कूटें और ४-४ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा–१ से ४ गोली, दिन में २ बार दूध यूष तथा रोगानुसार अनुपान के साथ।

अनुपान–वातरक्त रोग में मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ। नैत्र रोगों में वासादि क्वाथ से, गुल्म रोग में वरुणादि क्वाथ से, व्रण तथा कुष्ट रो में खदिर क्वाथ से।

त्याज्य आहार-विहार–खट्टे पदार्थ, अध्यशन, अजीर्ण में पुनः भोजन, मैथुन, परिश्रम, धूप, गर्मी, आग में तापना, मदिरा, क्रोध आदि

उपयोग–अनुपान भेद से अनेक व्याधियाँ व वातरोग नष्ट होते हैं। यह गुग्गुल जीर्ण रक्तविकार प्रधान रोग पर तथा आम विषज विकार पर लाभप्रद है।

(२७) योगराज गुग्गुलु

द्रव्य–सोंठ, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चित्रक, भुनी हींग, अजमोद, सरसों, दोनों जीरे, रेणुका (निर्गुण्डी बीज), इन्द्रजौ, पाठा, विडंग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, बच, मूर्वा, ये २० द्रव्य छः माशे, इन सबसे दूना त्रिफला (२० तोला) इन सबके बराबर गूगल ३० तोला लें। [formula name? (illegible)]

विधि–सब द्रव्यों को कूटकर बारीक कपड़छान चूर्ण बना लें। फिर त्रिफला चूर्ण एवं शुद्ध गूगल मिलावें, सबका गुड़पाक बना गूगल शुद्ध कर लें, पश्चात् घृत डालकर तीन दिन तक खूब कूटें। भली-भाँति एक जीव हो जाने पर मटर के समान गोलियां बना लें।

मात्रा–२-२ गोली, दिन में २ बार।

अनुपान–वातरोगों में रास्नादि क्वाथ, पित्तरोगों में काकोल्यादि क्वाथ, कफरोगों में आरग्वधादि क्वाथ, प्रमेह रोगों में दारुहल्दी का क्वाथ, पाँडुरोग में गोमूत्र, मेदोवृद्धि में शहद, कुष्ठरोग में नीम का क्वाथ, वातरक्त में गिलोय क्वाथ, शौथ एवं शूल रोगों में पीपल का क्वाथ, मूषक विष में पाटला क्वाथ, तीव्रनेत्र पीड़ा में त्रिफला क्वाथ सब प्रकार के उदर रोगों में पुनर्नवादि क्वाथ।

उपयोग–सब प्रकार के वातरोगों कुष्ठ, अर्श, ग्रहणीविकार, प्रमेह, वातरक्त, नाभिशूल, भगंदर, उदावर्त, क्षय, गुल्म, अपस्मार, उरोग्रह, मन्दाग्नि श्वास, कास, अरुचि, पुरुषों के धातुविकार तथा स्त्रियों के रजोविकृति, ये सब इस योगराज गूगल के सेवन से निवृत्त हो जाते हैं। यह दिव्य औषधि है। यह योगराज गुग्गुल संतानदाता तथा बन्ध्याओं की विकृति नष्ट करने वाला भी है।

वक्तव्य–इस योगराज गुग्गुल के पाठ में मतान्तर में कई भस्में मिली हुई हैं। उसके अनुसार भस्म मिला करके भी यह औषधि बनाई जाती है। यह विशेष लाभप्रद सिद्ध हुई है। उसे वृहद् योगराज गुग्गुल नाम दिया गया है।

(२८) लाक्षादि गुग्गुलु

द्रव्य–लाख, हड़सिंघार, अर्जुन की छाल, असगन्ध तथा गंगेरन, इन सबका बारीक चूर्ण और इन सबके बराबर शुद्ध गूगल मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा–१ से ४ गोली जल के साथ या दूध के साथ। दिन में ३ बार

उपयोग–टूटी हुई हड्डी, या स्थान से हटी हड्डी को स्थान पर बैठा देने के पश्चात् शेष रही हुई पीड़ा नष्ट होकर हड्डी जुड़ जाती है।

(२९) सप्तविंशतिको गुग्गुलु

द्रव्य–त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, वायबिडंग गिलोय, चित्रकमूल, कचूर, इलायची, पीपलामूल, हाऊबेर, देवदारू, तुम्बरु, पोखरमूल, चव्य, इन्द्रायण की जड़, हल्दी, दारुहल्दी, विडनमक, कालानमक, जवाखार, सज्जी खार, सैंधा नमक, गजपीपल इन २७ औषधियों को समभाग मिला चूर्ण बना कर इन सबके वजन से दूना शुद्धगूगल मिलाकर ½-½ माशे की गोली बनावें।

मात्रा–१ से ४ गोली शहद से दिन में ३ बार।

उपयोग–कास, श्वास, शोथ, अर्श, भगन्दर, हृदय का शूल, पसलियों का शूल, कुक्षि तथा बस्ति और गुदा की पीड़ा, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि और कृमिरोग को नष्ट करता है। जीर्णज्वरी तथा यक्ष्मी के लिये हितकारी है। आनाह, उन्माद, कुष्ठ, उदररोग-नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, प्रमेह, श्लीपद आदि समस्त रोगों को नष्ट करता है। यह वात, पित्त तीनों दोषों में से विकृत हुए को प्रकृतिस्थ बनाने का, आमविष जलाने का तथा पचनेन्द्रिय को बल देने का इसमें उत्तम गुण है। इस हेतु से उक्त सब रोगों के मूल रूप पचनेन्द्रिय संस्थान को व्यवस्थित करके सब रोगों पर लाभ पहुँचाता है।

(३०) सिंहनाद गुग्गुलु

द्रव्य–हरड़ १२ तोला, बहेड़ा १२ तोला, आँवला १२ तोला इनको जौ कूटकर क्वाथ बनावें। यह छना हुआ क्वाथ १२ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोला, गूगल १२ तोला और एरंड का तैल १६ तोला, इन सबको दृढ़ लोह पात्र में पकावें, और ४-४ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा–१ से ४ गोली दिन में २-३ बार जल के साथ।

उपयोग–वात, पित्त और कफ से उत्पन्न होने वाली व्याधियाँ, खञ्जता, पंगुता, महादुर्जय श्वास, पाँच प्रकार के कास, कुष्ठ, वात रक्त, गुल्म शूल, उदर विकार तथा भयंकर आमवात और बलि पलित को नष्ट करता है।

(३१) अभयादि मोदक

विधि–हरड़, पीपलामूल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात, नागरमोथा, बायविडंग और आंवला ये सब १-१ भाग, दन्तीमूल ३ भाग, निशोथ ८ भाग और मिश्री ६ भाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। बाद में गोली बन सके उतना शहद मिलाकर ३ से ४ माशे की गोलियां बना लें। इनमें १ से २ गोली सुबह शीतल जल के साथ दें। जब जुलाब बन्द करना हो तब निवाया जल पिलावें।

उपयोग–यह पाण्डु, विषविकार, कास, विषमज्वर, मन्दाग्नि, उदरशूल, पार्श्वशूल, वातशूल, दोनों प्रकार के अर्श, मूत्राघात, गलगण्ड, भगंदर, सूजन, गुल्म, प्रथमावस्था का क्षय, उदर रोग, भ्रम, दाह, मूत्रकृच्छ्र, प्लीहावृद्धि, नेत्र रोग, वातरोग, आध्मान, अश्मरी, कुष्ठ और प्रमेह आदि रोगों में मलविकार को दूर कर सत्वर लाभ पहुँचाता है।

जैसे आयुर्वेद में स्नेह आदि क्रिया का विधान किया है, वैसे युनानी मत में मुञ्जिस देने के पश्चात् जुलाब देने का रिवाज है।

(३२) एलादि गुटिका

द्रव्य–छोटी इलायची के दाने, तेजपात, दालचीनी, प्रत्येक ६-६ माशे लें तथा छोटी पीपल २ तोला, मिश्री, मुलैठी, बीज रहित छुआरा, मुनक्का प्रत्येक ४-४ तोला लें। सब चीजें महीन पीसकर शहद में मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा–१-१ गोली जल से लें या दिन में १०-१५ गोली तक चूंसे।

उपयोग–कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, वमन, मूर्च्छा, मद, भ्रम, रक्तपित्त, तृषा, पार्श्वशूल, अरुचि, शोथ, प्लीहा, ऊरुस्तंभ, स्वरभेद तथा क्षय रोग में उर:क्षत, सबको नष्ट करती है। सामान्य औषधि होते हुए अति प्रबल रोगों को भी दूर करने में अति उपयोगी सिद्ध हुई है।

(३३) करंजादि वटी

द्रव्य–भुनी हुई करंज की गिरी, इन्द्रायण की जड़, बनप्सा, अतीस, फिटकरी फूला, पीपल, बड़ी हरड सब १-१ तोला लें।

विधि–सबको कूट पीस बारीक चूर्ण कर शहद में मिला चने बराबर गोली बना लें।

मात्रा–२-२ गोली ३ बार जल के साथ दें।

उपयोग–नवीन ज्वर, विषमज्वर, मलावरोध व प्लीहा वृद्धिसह जीर्ण ज्वर दूर होते हैं।

(३४) कन्यालोहादि वटी

द्रव्य–एलुआ १० तोला, कासीस ७॥ तोला, दालचीनी ५ तोला, इलायची ५ तोला, सोंठ ५ तोला, गुलकन्द २० तोला।(आ. औ.)

विधि–सबको मिला चूर्ण कर गुलकंद में घोटकर मटर बराबर गोली बनावें।

मात्रा–२-३ गोली दिन में २ बार जल के साथ दें।

उपयोग–स्त्रियों के कष्टार्त्तव, अनियमितार्त्तव तथा अनार्त्तव सबको सुधारती है। सौम्य औषधि है। कोमल प्रकृति वालों के लिए हितावह है। ४-६ मास तक औषधि दी जाती है।

सूचना–मासिक धर्म आने के १० दिन बाद तक औषधि न दें। फिर प्रारम्भ कर दें। गोली निगलकर ऊपर जल पीवें। गोली चबाने पर मुँह कड़ुवा होता है। इस वटी के सेवन काल में मिठाई, तले हुए पदार्थ, द्विदल धान्य, इनका सेवन थोड़े परिमाण में करें अन्यथा उदर में दर्द होने लगता है।

(३५) कर्पूरादि वटी

द्रव्य–कपूर, दाड़म के फूल की छाल और लोंग १-१ तोले, कालीमिर्च, पीपल, बहेड़े की छाल और कुलिंजन २-२ तोले तथा सफेद कत्था १-१ तोले लें।

विधि–सबको मिला बबूल की छाल के क्वाथ से भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें। ३ घण्टे मे खरल करना चाहिये।

मात्रा–१-१ गोली १०-१५ बार मुँह में रखकर चूंसे।

उपयोग–सब प्रकार की खांसी विशेषत: वातज कास में अति उपयोगी है। जिस कास में सोने पर वेग उत्पन्न होता है, २-४ मिनट तक खाँसी चलती है, फिर थोड़ा झाग निकलता है, उस पर यह अति लाभप्रद है।

(३६) कंठसुधार वटी

द्रव्य–मुलैठी सत्व ७ तोले, पीपरमेंट के फूल ३ माशे, कपूर, इलायची और लोंग १-१ तोला तथा जावित्री २ तोलें लें।(धन्वन्तरि)

विधि–सबको मिला जल में आध घंटे खरल करके १-१ रत्ती की गोली बनावें।

मात्रा–१-१ गोली मुंह में रखकर रस चूसते रहें। ८-१० गोली तक।

उपयोग–अरुचि, मंदाग्नि, स्वरभेद, मुखपाक, वमन, व्याकुलता, अजीर्ण, उदरवात, कफ, श्वास आदि रोगों को नष्टकर चित्त प्रफुल्लित करती है।

(३७) कासमर्दन वटी

द्रव्य–श्वेत कत्था ४ तोला, सेलखड़ी २ तोला, कपूर १ तोला, छोटी इलायची के बीज ६ माशे लें।

विधि–सबको बारीक कर कपड़छन चूर्ण बनावें। ३० तोले बबूल की छाल को २॥ सेर जल में मिलाकर क्वाथ करें, जल चतुर्थांश रहने पर उतार कर छान लें। फिर क्वाथ और चूर्ण को मिला मंद-मंद आंच पर पकावें और चलाते रहें। जब गोली बांधने योग्य हो जाये, तब नीचे उतार लें, ठंडा होने पर चने के बराबर गोली बना लें। यदि मसाला हाथ से चिपकता हो तो थोड़ी सी सेलखड़ी लगाकर गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली मुंह में रखकर चूंसे। दिन भर में १०-१५ गोली चूसें।

उपयोग–इस वटी से वातज कास, पित्तज कास, नूतन कास, जीर्ण कास थोड़े ही दिनों में दूर होती है। मुख-पाक, दंतचालन, गल घंटिका की शिथिलता, स्वर भेद में लाभ पहुँचाता है। छोटे बच्चों को गोली का चूर्ण बनाकर चटा देना चाहिये।

(३८) कुटजादि वटी

द्रव्य–कूड़ा की छाल ८० तोले, माजूफल, लोंग, मरोडफली, बहेड़ा, बायविडंग, नागकेशर, सोंठ, मिर्च, पीपल, जायफल, जावित्री तथा बेलगिरी, प्रत्येक १-१ तोला लें। (आ.नि.)

विधि–पहले कूड़ा की छाल का जौकूट चूर्ण कर ८०० तोले जल में क्वाथ करें। २०० तोले जल शेष रहने पर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्णकर मंदाग्नि पर पाक करें। गाढ़ा होने पर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला कर चने के बराबर गोलियां बनावें।

मात्रा–१ से ४ गोली दिन में ३ बार जल या मटठे के साथ लें।

उपयोग–संग्रहणी, आमातिसार, रक्तातिसार, पेचिश और ज्वरातिसार को दूर करती है तथा रक्तार्श में रक्त गिरना बन्द करती है।

(३९) खदिरादि वटी

द्रव्य–कत्था ५ सेर, पानी १२ सेर, ६४ तोले, इनको मिलाकर पकावें। अष्टमांश शेष रहने पर जावित्री, कपूर, चिकनी सुपारी, कंकोल, ४-४ तोले इनके बारीक चूर्ण को मिलाकर गोलियां बना लें।

मात्रा–१-१ गोली मुंह में रखकर चूंसे। दिन में १०-१२ तक।

उपयोग–मुंह को सुगन्धित करने वाली, दांत, होंठ, जीभ व तालु के रोगों को नष्ट करती है।

(४०) चित्रकादि वटी

द्रव्य–चित्रकमूल की छाल, पीपलामूल, जवाखार, सज्जीखार, पांचों लवण, त्रिकटु, भुनीहींग, अजमोद तथा चव्य ये १५ द्रव्य प्रत्येक समान भाग।

विधि–सब द्रव्यों का चूर्ण बनाकर बिजोरे नींबू या दाडिम के रस में खरलकर मटर बराबर वटी बनावें।

मात्रा–२ से ४ गोली, जल से दिन में ३ बार।

उपयोग–आम दोष नाशक तथा अग्निप्रदीपक है।

(४१) छर्दिरिपु वटी

द्रव्य–कपूर काचरी १० तोला चूर्ण। (आ. नि. मा.)

विधि–जल में खरलकर चने प्रमाण गोली बनावें।

उपयोग–वमन (के) तथा अरुचि को नष्ट करती है। बच्चों को विशेष हितकारी है। वमन को रोकने में यह वटी निर्दोष और सफल औषधि है।

(४२) डब्बानाशक गुटिका

द्रव्य–सत्यानाशी के बीज १ भाग, उसारेरेवन्द २ भाग लें।

विधि–दोनों का बारीक चूर्ण कर सत्यानाशी के रस में घोटकर उड़द के बराबर गोलियां बना लें।

मात्रा–१ से २ गोली, १ या २ बार जल या माता के दूध से दें।

उपयोग–बच्चों के डब्बारोग को दूर करती है। १ दस्त व १ वमन होकर छाती का कफ निकल जाता है। एक समय में पूरा लाभ न हो तो दूसरी मात्रा देवें।

(४३) मरिचादि गुटिका

द्रव्य–कालीमिर्च १ तोला, पीपल १ तोला, यवक्षार ६ माशे, दाड़िम का छिलका २ तोला।

विधि–इन सबका महीन चूर्ण बनाकर आठ तोले गुड़ (गुड़ की चासनी) मिलाकर २-२ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा–१-२ गोली मुँह में रखकर दिन में १०-१५ गोली तक चूसें।

उपयोग–कफयुक्त कास, दुर्गन्ध युक्त, नीले, चिकने, बंधे हुये कफ वाली खाँसी तथा असाध्य खांसी में उत्तम गुणकारी है।

(४४) लवङ्गादि गुटिका

द्रव्य–लोंग, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध वत्सनाभ, भांगरा, कटेली का मूल और बहेड़ा समभाग लें।

विधि–सबका बारीक चूर्ण बनाकर गंवार पाठे के रस में घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा–१ से २ गोली गर्म जल से दिन में ३ बार। दौरे के समय १-१ घण्टे पर।

उपयोग–श्वास रोगनाशक है।

(४५) व्योषादि गुटिका

द्रव्य–सोंठ, मिर्च, पीपल, अम्लवेंत, चव्य, तालीसपत्र, चित्रक, जीरा तथा इमली का गूदा ये प्रत्येक ६-६ माशे और गुड़ २० तोले लेकर, सबका बारीक कपड़छन चूर्ण करें और इमली को अलग कूट लें, फिर गुड़ मिलाकर मसलकर एक जीव करें। फिर मटर के बराबर गोली बनावें। यदि गुड़ कठोर हो तो चाशनी बनाकर मिलावें।

मात्रा–१-२ गोली दिन में ५-७ बार मुंह में रखकर चूसें। अथवा निवाये जल से लेवें।

उपयोग–प्रतिश्याय, पीनस, श्वास, कास, अरुचि, स्वरभंग आदि में उपयोगी है।

(४६) विषतिन्दुकादि वटी

द्रव्य–शुद्ध कुचिला १० तोले, सुपारी १ तोला, कालीमिर्च ९ माशे, इमली के बीज नग ८। (आ. नि.)

विधि–सबको मिला बारीक चूर्ण कर जल में चने बराबर गोली बना लें।

मात्रा–१-२ गोली दिन में २ बार जल से दें।

उपयोग–अतिसार, जुकाम, अजीर्ण, मन्दाग्नि, हृदय की दुर्बलता, जीर्ण वातरोग, धातुक्षीणता तथा उदरशूल आदि नष्ट होते हैं।

सूचना–अधिकांश में इसका उपयोग अफीम का व्यसन छुड़ाने में किया जाता है। अफीम के बराबर गोलियां देने से उतना ही नशा आता है, किन्तु हानि नहीं करता है। एक सप्ताह में व्यसन छूट जाता है। सैकड़ों रोगियों की अफीम इस वटी से छुड़ाई है। निर्भय औषधि है। अफीम छूटने के बाद शरीर तेज युक्त होकर अग्निमांद्य दूर हो जाता है।

(४७) हिस्टीरियानाशक वटी

द्रव्य–गांजा, कपूर, बच १-१ तोला, जटामांसी २ तोला, खुरासानी अजवायन ४ तोला और केशर ३ माशे।

विधि–सबको मिला कूट कपड़छन चूर्ण बना ६ घण्टे तक अदरक के रस में खरलकर चने बराबर गोली बनावें।

मात्रा–२-२ गोली दिन में ३ बार जटामांसी के फाण्ट या जल के साथ।

उपयोग–इस वटी का सेवन करने से हिस्टीरिया रोग २१ दिन में दूर होता है। यह वटी मस्तिष्क को शान्त बनाती है और निकम्मे विचारों को दूर करती है। पुरुषार्थ देती है तथा पचनक्रिया सुधारती है।

(४८) हिंग्वादि वटी

द्रव्य–भुनी हींग, अम्लबेंत, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, अजवायन तथा तीनों नमक (सैंधा, काला तथा सांभर नमक) ये ९ औषधियां समभाग लें, बारीक कपड़छन चूर्ण बना २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा–२-४ गोली, जल के साथ दिन में २-३ बार।

उपयोग–वातजशूल नष्ट होते हैं। उदावर्त (गैस) से कष्ट होता हो, उसे कम करती है। पचनक्रिया व्यवस्थित करती है।

(४९) शिलाजतु वटी

द्रव्य–शुद्ध शिलाजीत २८ ग्राम, शुद्ध गूगल १४ ग्राम, लोहभस्म ३॥ ग्राम, वंगभस्म ३॥ ग्राम तथा स्वर्णमाक्षिक भस्म ७ ग्राम लें।

विधि–प्रथम तीनों भस्मों को खरल में डालकर १ दिन घोटें। फिर शिलाजीत व गूगल को मिलाकर इसमें उक्त भस्मों का मिश्रण मिलाकर घोटकर १ जीव कर लें तथा २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा–२ से ४ गोली तक।

अनुपान–दूध, जल, शहद।

उपयोग–वातजप्रमेह, शर्करामेह, इक्षुमेह तथा मधुमेह में अति लाभप्रद है जिन रोगियों को वातरोग सह प्रमेह भी हो उनके लिये उत्तम फलप्रद है। पूयमेह, व्रण, विद्रधि में पूय (Pus) को शुष्क करने में अद्वितीय कार्यकारी है। तथैव उक्त रोगों को नष्ट कर शुक्रधातु की वृद्धि करती है। निर्बल वीर्यवालों को आशीर्वाद तुल्य है।

चूर्ण प्रकरण

एक अथवा अनेक वनौषधियों को मिला कूटकर चूर्ण तैयार किया जाता है। यदि सब औषधियों को अलग-अलग कूट कपड़-छान करके मिलाया जाय तो ठीक शास्त्रोक्त मात्रा अनुसार गुणकारी चूर्ण तैयार होता है। मुनक्का, अनारदाना, इमली आदि औषधियां मिलाना हो, तो उनको पृथक् कूट करके ही मिलाना चाहिये। चूर्ण अति सौम्य होने से विशेष परिमाण में सेवन करना पड़ता है। चूर्ण से हानि होने की प्रायः सम्भावना नहीं है। अनेक प्रकार के रसायन और भस्म वर्षों पर्यन्त सेवन करके जिन्होंने अपनी प्रकृति को परावलम्बी बना दी हो, उनके लिये चूर्ण की कृति अति शांतिदायक मानी जाती है।

चूर्ण बनाने के लिये औषधियां शुद्ध, नयी और अच्छी देखकर लानी चाहिये। पुरानी और दूषित औषधियां त्याग दें। शास्त्रकारों ने औषधियों का संग्रह करने का कार्य वैद्य पर ही रखा है। भिन्न-भिन्न औषधियों के वीर्य का परिपाक-काल शरद, शिशिर और बसन्तु ऋतु है। इनमें से जिन ऋतु में औषधिपाक होता हो, उस समय जंगल के शुद्ध स्थानों में उत्पन्न हुई औषधियों को विधिपूर्वक या, छाया में सुखाकर सम्हालपूर्वक रखना चाहिये।

अपक्व, मकड़ी के जाले लगी हुई, कीटाणुओं से दूषित, अशुद्ध स्थान में और असमय पर उत्पन्न हुई हो, ऐसी औषधियों को नहीं लेना चाहिये। किन्तु इस नियम का पालन वर्तमान में बहुत कम अंश में होता है क्योंकि आज का वैद्य परावलंबी हो गया है।

वर्तमान में प्रायः पंसारियों के पास से ही औषधियां ले ली जाती हैं। औषधि नयी-पुरानी, अच्छी बुरी, शुद्ध-अशुद्ध कैसी है, इस बात का निर्णय करना दुष्कर हो गया है। कितने ही वैद्य औषधियों को नही पहचानते और पंसारी अज्ञान, प्रमाद या स्वार्थवश गलत औषधि दे देते हैं। फिर इच्छित लाभ कैसे हो सकेगा। चिकित्सकों को चाहिये कि अच्छी रीति से जाँच किये बिना औषधियों को प्रयोग में न लें।

चूर्णों को आवश्यक परिमाण में तैयार करके कांच की अच्छे डाटवाली शीशियों में सम्हालपूर्वक रखना चाहिये। बिना सम्हाल खुले हुए चूर्ण थोड़े समय में ही हीनवीर्य हो जातें हैं। क्षार-मिश्रित चूर्णों को लोहपात्र में नहीं रखना चाहिये, अन्यथा दूषित हो जाते हैं।

स्वादिष्ट विरेचन, लवणभास्कर, हिंग्वाष्टक आदि शक्कर या लवण मिश्रित चूर्ण वर्षा के दिनों में नहीं बनाने चाहिये।

इस प्रकरण में कतिपय क्षारयुक्त चूर्ण भी लिखे हैं। क्षार को अस्थि-पोषणार्थ हितावह माना है, परन्तु धमनियों की दीवारों को हानि पहुँचाता है। क्षार में साधारणतया पाचक, तीक्ष्ण, पित्तवृद्धिकर और शुक्रनाशक गुण हैं। इसलिये पाचन-क्रिया में हितावह होने पर भी क्षारयुक्त औषधि क्षय, प्रमेह, व्रण, नेत्र रोग और पित्ताधिक रोगों में, सगर्भा स्त्रियों, बालक और वृद्धों को तथा उष्ण ऋतु में सब रोगियों को विचार करके देना चाहिये। दुरुपयोग होने से दांतों में दर्द, मुख में छाले, आमाशय में दाह, धातुक्षीणता, मगज में उष्णता, सन्धि स्थानों में पीड़ा आदि विकार उत्पन्न होकर शरीर निस्तेज बनता जायेगा।

कितने ही चूर्णों में अफीम आदि विष मिलाते हैं। वे चूर्ण जहरी बनते हैं। अतः आवश्यक सूचना प्रकरण और गुटिका प्रकरण के प्रारम्भ में लिखी हुई सूचना लक्ष्य में रखकर उनका उपयोग करना चाहिये।

वक्तव्य-विशेष विवेचन और अन्य अनुभूत प्रयोगों के लिए "नित्योपयोगी चूर्ण संग्रह" देखें।

(१) महासुदर्शन चूर्ण

विधि-हरड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी, दारुहल्दी, बड़ी कटेली (बनभटा), छोटी कटेली (भटकटैंया), कचूर, सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, मूर्चा (मोर बेल), गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, कूड़ा की छाल, मुलहठी, नागरमोथा, त्रायमाण, नेत्रवाला, पुष्करमूल, नीम की छाल, अजवायन, इन्द्रजव, भारङ्गी, सुहिंजने के बीज, फिटकरी का फूला, बच (मीठी), दालचीनी, पद्माख, सफेद चन्दन, अतीस, खरैटी शालपर्णी (सरिवन), पृष्ठपर्णी (पिठवन), वायबिड्ङ्ग, तगर, चित्रकमूल, देवदारु,चव्य, पटोलपत्र, श्वेत कमलपुष्प, काकोली (अभाव में अश्वगन्धा), जीवक (अभाव में विदारीकन्द), ऋषभक (अभाव में वंशलोचन), खस, लोंग, वंशलोचन, तेजपात, जावित्री और तालीसपत्र इन ५३ औषधियों को समभाग लें और सबका आधा चिरायता मिलाकर बारीक कपड़छन चूर्ण करें। (शा. सं.)

मात्रा-२ से ४ माशे, दिन में ३ बार। जल के साथ दें अथवा ४ से ६ माशे चूर्ण का फाण्ट बनाकर पिलावें।

उपयोग-यह चूर्ण पुराने और नये ताप, एक दोषज, धातुगत ज्वर, द्विदोषज, त्रिदोषज, सन्निपात, शीतज्वर, विषमज्वर, मन्दाग्नि, अजीर्ण, निर्बलता, शिरदर्द और ज्वर के साथ श्वास, कास, पाण्डु, हृदयरोग, कामला, कटिशूल आदि विकारों का नाश करता है। ज्वर हो तब उतारने के लिये और न हो तब रोकने के लिए दिया जाता है। इस चूर्ण के उपयोग में किस जाति का ज्वर है; इस बात के निर्णय की विशेष आवश्कता नहीं है एवं यह चूर्ण वात, पित्त और कफप्रकोपः द्वन्द्वज और त्रिदोषज ज्वर; पुरुष और स्त्री, सगर्भा और प्रसूता, बालक, युवा और वृद्ध इन सबको निर्भयता पूर्वक दे सकते हैं।

ज्वरों की उत्पत्ति विशेषतः आमप्रकोप होने के पश्चात् प्रस्वेद द्वारा विष बाहर न निकलने पर होती है। इस चूर्ण से आम का पचन, कोष्ठशुद्धि विष को निर्विष बनाना और प्रस्वेद ग्रन्थियों को बन्धनमुक्त बनाना ये चारों कार्य सरलतापूर्वक हो जाते हैं। इस हेतु से यह चूर्ण सब प्रकार

के ज्वरों पर उपयोगी होता है।

यह महासुदर्शन चूर्ण जिस तरह नूतन ज्वर में उपयोगी है। उसी तरह जीर्ण ज्वर पर भी लाभदायक है। कभी-कभी मधुरा (आन्त्रिक ज्वर) उतर जाने पर रोगी आहार-विहार में भूल कर देता है। जिससे ज्वर पुनः प्रकुपित होकर आ जाता है। मधुरा के पहले आक्रमण में रोगी बहुधा क्षीण हो जाता है, उस पर पुनः आक्रमण होने से रोगी अधिक कृश और दीन बन जाता है। उस पर महासुदर्शन चूर्ण मिलाकर सिद्ध दूध बनाकर देते रहने से सरलता पूर्वक कीटाणु विष और आम जलकर ज्वर का शमन हो जाता है, क्षुधा प्रदीप्त होकर शरीर में बल आने लगता है।

ज्वर अधिक दिनों तक बना रहने पर बारम्बार आता रहने से देह निर्बल हो जाती है फिर किसी को मन्द ज्वर रहता है। (जिसे अस्थिगत ज्वर कहते हैं) या रात्रि को कुछ ज्वरांश हो जाता है। मूत्र में पीलापन-बेचैनी-अग्नि मांद्य, अरुचि, निर्बलता, आलस्य, हाथ-पैर टूटना, मलावरोध, स्वभाव में उग्रता आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्था में क्विनाइन आदि तीव्र औषधि के सेवन से प्रायः हानि पहुँचती है। उस पर ४ से ६ माशे इस महासुदर्शन चूर्ण का फान्ट, २ रत्ती कपूर और ६ माशे शहद मिलाकर प्रातः सायं देते रहने से थोड़े ही दिनों में ज्वर का निवारण होता है, पचन क्रिया सुधरती है, स्फूर्ति आती है और बल वृद्धि होती है।

कोमल स्वभाव की निर्बल रुग्णा या रोगी, जो पित्तप्रकोप से पीड़ित हों उनको विषमज्वर आने पर क्विनाइन नहीं दे सकते। यदि क्विनाइन अल्प मात्रा में भी दिया जायेगा, तो विविध स्थानों से रक्तस्राव, निद्रानाश, वृक्क कार्य में प्रतिबन्ध, दाह, व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते है, किन्तु इस महासुदर्शन चूर्ण का सेवन कराने पर सर्व लक्षणों सह ज्वर की निवृत्ति होती है।

रक्त में विषलीन हो जाने पर रोगी की पचनक्रिया अधिक निर्बल हो जाती है। फिर भोजन करने की रुचि नहीं होती। मूत्र में पीलापन, अग्नि-मांद्य, कठोर उदर, कभी-कभी उदर में शूल चलना, हाथ-पैर टूटना, किसी-किसी को छाती में जलन, किसी को श्वास कास हो जाना, शिर में भारीपन बना रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर महासुदर्शन चूर्ण खिलाते रहने से सब लक्षणों सह ज्वर का शमन होता है।

ज्वर लगभग २१ दिन से अधिक हो जाने पर जीर्णज्वर माना जाता है। फिर रक्ताणु का ह्रास होता है। थोड़ा परिश्रम करने पर हृदय की गति बढ़ जाती है। आलस्य बना रहता है। पाण्डुता के साथ शारीरिक निर्बलता, मलावरोध, आलस्य बना रहना, शिर में भारीपन, अरुचि और अग्निमांद्य आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर सुदर्शन चूर्ण का फांट और संशमनी वटी का सेवन कराने पर थोड़े ही दिनों में शरीर स्वस्थ हो जाता है।

सगर्भावस्था में कब्ज होने पर कितनी ही स्त्रियों को बार-बार ९९° तक ज्वर आ जाता है। पचनक्रिया मन्द हो जाती है। भोजन करने पर आहार उदर में जड़ होकर पड़ा रहता है। इनके अतिरिक्त शिरदर्द, आलस्य, जुकाम, कफवृद्धि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर सुवर्ण बसन्त के या लघुवसन्त के साथ इस चूर्ण का फांट देते रहने से ज्वर की निवृत्ति हो जाती है।

प्रसव होने के पश्चात् कितनी ही स्त्रियों को दूसरे तीसरे दिन पित्त प्रकुपित्त होकर मन्द-मन्द ज्वर आ जाता है। तृषावृद्धि, दाह, व्याकुलता, प्रस्वेद आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यदि उनको दशमूल क्वाथ दिया जाय तो पतले गरम दस्त हो जाते हैं और दाह बढ़ जाता है। उनके लिये सुदर्शन चूर्ण का फांट अति हितकारक है। यदि मलावरोध हो तो थोड़ा निशोथ का चूर्ण भी शक्कर के साथ देना चाहिये। यदि ज्वर ९९° से अधिक बढ़ गया हो तो रत्नगिरी रस के साथ सुदर्शन फांट देना चाहिये। यदि गर्भाशय में अशुद्ध रक्त रह जाने के हेतु से शूल भी चलता रहता हो तो प्रारम्भ में गर्भाशय-शुद्धि के लिये प्रतापलंकेश्वर रस के साथ दशमूल क्वाथ देना चाहिये। गर्भाशय शूल बन्द होने पर सूतशेखर के साथ सुदर्शन फांट का सेवन कराना चाहिये।

कितने ही बालकों को मधुर पदार्थ का अत्यधिक सेवन और दिनभर खाते रहने के कारण मलावरोध और अपचन होकर बार-बार ज्वर आता रहता है। फिर धीरे-धीरे प्लीहा बढ़ जाती है और अग्निमांद्य हो जाता है उनको पथ्यसह सुदर्शन चूर्ण का सेवन थोड़े दिनों तक नियमित रूप से कराया जाय और मधुर पदार्थ बन्द कर दिये जायें तो ज्वर निवृत्त होता है। प्लीहावृद्धि का ह्रास होता है और पचनक्रिया सबल बन जाती है।

महासुदर्शन चूर्ण का फाण्ट सोडाबाई कार्ब मिलाकर, दिन में २ बार देते रहने से मलावरोध, आम प्रकोप तथा अग्निमांद्य सह जीर्णज्वर निवृत्त हो जाता है। यह प्रयोग बम्बई जैसे शहर में मध्यम और सामान्य स्थिति के हजारों रोगियों पर किया गया है, परिणाम अति संतोषप्रद आया है।

(२) अमृत चूर्ण

विधि-नौसादर और फिटकरी समभाग मिलाकर डमरूयन्त्र द्वारा पुष्प उड़ा लें। फिर अपामार्ग क्षार और आक का क्षार आठवाँ-आठवाँ हिस्सा मिला, काली तुलसी और आक के पत्तों के रस की एक-एक भावना देकर चूर्ण बना लें। (धन्वन्तरि)

सूचना–सफेद फिटकरी की अपेक्षा लाल फिटकरी मिलाने पर विशेष लाभ पहुँचता है।

मात्रा–२ से ३ रत्ती, दिन में ३ बार। दूध, चाय या गुनगुने जल से।

उपयोग–यह चूर्ण नये बुखार, जीर्णज्वर, ठण्ड सहित या ठण्ड रहित विषमज्वर (सतत् चातुर्थिक आदि) को दूर करता है। केवल फिटकरी और नौसादर के पुष्प को ही ३-३ रत्ती मिश्री के साथ मिलाकर देवें, तो भी अपना प्रभाव दिखा देता है। यह चूर्ण दोषों को पचन करा प्रस्वेद लाकर ज्वर को उतार देता है।

यह अमृत चूर्ण सतत् आदि विषमज्वर पर तथा अपचन जनित ज्वर (आमज्वर) पर प्रयुक्त होता है। यह प्रस्वेद लाकर ज्वरविष और उष्णता को २-४ घन्टों में बाहर निकाल देता है तथा विषम ज्वरोत्पादक कीटाणुओं को मारकर रक्त को शुद्ध बना देता है। यह चूर्ण क्विनाइन के समान रक्त के रक्ताणुओं को हानि नहीं पहुँचाता।* यह वात, पित्त और कफ तीनों प्रकृति वालों को और सगर्भा स्त्रियों को भी निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं। जब कीटाणु विष अति बढ़ गया हो, तो उसे नष्ट करने में क्विनाइन के समान जल्दी सफल नहीं होता एवं घातक तृतीयक ज्वर और चतुर्थिक ज्वर में प्रबल कीटाणुओं को नष्ट करने में यह जल्दी कार्य नहीं कर सकता। अतः इसके क्विनाइन के समकक्ष नहीं मान सकेंगे। फिर भी यह असफल नहीं होता। क्विनाइन की अपेक्षा कुछ देर से लाभ पहुँचाता है।

विषमज्वर पीड़ितों में प्रायः जिनकी रोगनिरोधक शक्ति सबल हो, ऐसे रोगियों की संख्या अत्यधिक होती है। इनके लिए इस चूर्ण का प्रयोग क्विनाइन की अपेक्षा विशेष हितावह माना जायेगा। शेष थोड़े रोगी जो प्रबल कीटाणु पीड़ित हों या क्षीण शक्ति वाले हों, उनके लिए समय की सुविधा होते ही क्विनाइन का प्रयोग करना चाहिये।

मधुर पदार्थ के अत्यधिक सेवन से अनेकों को अपचन होकर ज्वर आ जाता है। इस प्रकार के ज्वर में आमोत्पत्ति अधिक होती है। ज्वर १००° से १०२° तक, उदर में भारीपन, आलस्य, रोंगटे खड़े हो जाना, मूत्र में पीलापन, मुख में मीठापन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस ज्वर पर इस चूर्ण का सेवन कराने से प्रस्वेद आकर सत्वर ज्वर का शमन हो जाता है।

अनेकों को आश्विन, कार्तिक में सूर्य के ताप में भ्रमण करके तुरन्त शीतल जलपान करने से मलेरिया सदृश शीतज्वर आ जाता है। उनको ३-४ घण्टे मन्दमन्द शीत लगकर ज्वरावस्था उत्पन्न होती है। सामान्यतः ज्वर १०१ डिग्री तक बढ़ जाता है। फिर २-३ घण्टे में ही स्वेद आ जाता है। इस ज्वर में अमृत चूर्ण का सेवन कराने पर ज्वर का लीन विष (रक्त में लीन आमविष) जल्दी जल जाता है और पचनक्रिया सबल बन जाती है। जिससे ज्वर का पुनः आक्रमण नहीं होता।

सूचना–इस चूर्ण के सेवन काल में पथ्य का आग्रहपूर्वक पालन कराया जाय अर्थात् ज्वरावस्था में अन्न न दिया जाय, मलावरोध हो तो उसे दूर किया जाय, जल गरमकर शीतल करके पिलाया जाय, रोगी को दूध, चाय, मोसम्बी का रस, संतरा, अमरूद आदि पर रख दिया जाय तो लाभ जल्दी पहुँचता है। प्लीहावृद्धि नहीं होती, शक्ति का ह्रास नहीं होता और ज्वर शमन के पश्चात् थोड़े ही दिनों में शरीर पूर्ववत् सबल बन जाता है।

मलावरोध हो तो पहले ज्वर केसरी, अश्वकंचुकी रस, पञ्चसकार अथवा अन्य औषधि से कोष्ठ-शुद्धि कर लेनी चाहिये।

(३) सितोपलादि चूर्ण

विधि–मिश्री १६ तोले, + वंशलोचन ८ तोले, पीपल ४ तोले, छोटी इलायची के बीज २ तोले और दालचीनी १ तोला लें। सबको कूटकर कपड़छन चूर्ण बनावें। (च.सं.)

सूचना–मिश्री, वंशलोचन और अन्य औषधियों को अलग-अलग कूट कपड़छन करें। कपड़छन वंशलोचन को ६ घन्टे खरल करें। फिर शेष औषधियां ६ घण्टे तक और खरल कर लेवें।

---

* क्विनाइन को डाक्टरी में विषमज्वर की सर्वोत्तम औषधि मानी है। वह सब प्रकार के मलेरिया के कीटाणुओं को नाशकर देती है, फिर भी आयुर्वेद की दृष्टि से उसे औषधि नहीं कह सकेंगे। आयुर्वेद की मर्यादानुसार वह विष है। कारण वह कीटाणुओं के नाश के साथ रक्त के रक्ताणुओं को भी नष्ट कर देती है। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क में उष्णता पहुँचाती है, रोगनिरोधक शक्ति को निर्बल बनाती है तथा वृक्कों के कार्य में बाधा पहुँचाती है। पित्त प्रकृति वालों को या प्रकृति वालों को क्विनाइन का सेवन कराने पर रक्तस्राव होता है, कानों में बधिरता आती है, निद्रा दूर हो जाती है और व्याकुलता उत्पन्न होती है। सगर्भावस्था में प्रयोग करने से गर्भपात या गर्भस्राव का भय रहता है। अतः क्विनाइन उपयोग सर्वरोगियों पर और सब समय में बिना विचार किये बिना नहीं हो सकता।

\+ वर्तमान में सोहागा आदि मिलाकर कृत्रिम वंशलोचन निर्माण हो रहा है, बांस में से निकला हुआ और कृत्रिम वंशलोचन दोनों को मिलाने पर बाह्य दृष्टि से ठीक अन्तर नहीं भासता है। रात्रि दिन कार्य करने वाले भी सरलता से दोनों का भेद नहीं कर सकते हैं। गुणधर्म दृष्टि से नैसर्गिक वंशलोचन में जीवनीय शक्ति और प्राणतत्व निहित है, वह रस आदि धातुओं को पुष्ट बनाता है। यह गुण कृत्रिम से नहीं मिल सकता है। नैसर्गिक वंशलोचन मिलाने पर जितना गुण मिलता है उतना लाभ कृत्रिम से नहीं मिलता है।

\+ वंशलोचन सच्चा होने पर लकड़ी पर घिसने पर रेखा चिन्ह नहीं बनता। कृत्रिम होने पर रेखा प्रायः हो जाती है। सच्चे वंशलोचन में निलाभ टुकड़े अधिकांश में होते हैं। (पुराना होने पर सच्चा भी श्वेत बन जाता है) कृत्रिम श्वेत होता है। वंशलोचन सच्चा होने पर जिह्वा पर चिपकता है।

मात्रा–२ से ४ माशे, दिन में २ बार। घी और शहद के साथ। कफप्रधान रोगों में घी से शहद दूना लें। वात और पित्तप्रधान रोगों में घी से शहद आधा मिलावें। घी पहले मिला लें और फिर शहद मिलावें। कफ सरलता से निकलता हो, ऐसी खांसी में केवल शहद के साथ दें।

उपयोग–यह चूर्ण क्षय, खांसी, जीर्णज्वर, धातुगतज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि, प्रमेह, छाती में जलन, पितविकार, खांसी में कफ के साथ खून आना, बालकों की निर्बलता, रात्रि में ज्वर आना, नेत्र में उष्णता तथा गले में जलन आदि विकारों को दूर करता है। सगर्भा स्त्रियों को ३-४ मास तक सेवन कराने से गर्भ पुष्ट और तेजस्वी बनता है। साथ में गर्भपाल रस की योजना करनी चाहिये।

राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था में श्वास प्रणालिका और फुफ्फुसों के भीतर रहे हुए वायुकोषों में क्षय कीटाणुओं के विष प्रकोप से शुष्कता आ जाती है। उस अवस्था में यदि ज्वर शमनार्थ क्विनाइन आदि उग्र औषधियों का या त्रिकटु, चित्रकमूल आदि अग्निप्रदीपक औषधियों का सेवन प्रधान रूप से या विशेष रूप से किया जाता है तो फुफ्फुस संस्थान में शुष्कता की वृद्धि होती है। फिर शुष्क कास अति बढ़ जाती है और किसी-किसी रोगी को रक्त मिश्रित थूक या झाग आता रहता है। दिन में शान्ति नहीं मिलती और रात्रि को पूरी निद्रा भी नहीं मिलती। व्याकुलता बनी रहती है। प्राय: ज्वर ९९° से अधिक नहीं बढ़ता। अग्निमांद्य, शारीरिक निर्बलता, मलावरोध, मूत्र में पीलापन, शुष्क कास का वेग चलने पर बारम्बार स्वेद आते रहना, नेत्रों में जलन होते रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसी अवस्था में अभ्रक आदि उत्तेजक औषधि से लाभ नहीं मिलता, अपितु कष्टवृद्धि होती है। शामक औषधि के सेवन की ही आवश्यकता रहती है। अत: यह सितोपलादि चूर्ण अमृत के सदृश उपकार दर्शाता है। मात्रा २-२ माशे, गोघृत और शहद के साथ मिलाकर दिन में ४ समय देते रहना चाहिये। मुक्तापिष्टी या प्रवालपिष्टी साथ में मिला दी जाय तो लाभ सत्वर मिलता है एवं क्षय कीटाणुओं की क्रिया में प्रतिबन्ध होता है तथा मस्तिष्क, रक्त और अस्थि संस्थान सबल बनते हैं।

राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था में शामक औषधियों का सेवन न होने पर फुफ्फुस संस्थान में उग्रता के हेतु से कफोत्पति होने लगती है। प्रारम्भ में झाग सदृश कफ होता है, उसमें से क्रमश: सफेद पतला कफ, सफेद गाढ़ा कफ, पीला कफ, पीला बंधा हुआ कफ आदि रूपान्तर होता है। कफ जितना जीर्ण हो जाता है, उतना ही पीतवर्ण और गाढ़ापन बढ़ता जाता है। इस कफ से श्वासप्रणालिकायें और वायुकोष्ठ सब भरे रहते हैं। जिससे श्वासोच्छवास क्रिया भी योग्य नहीं होती। उस कफ में से दूषित द्रव का शोषण रक्त में होता रहता है, क्षय कीटाणुओं की वृद्धि होती रहती है और इन कीटाणुओं की फुफ्फुस के भीतर विवर बनाने की क्रिया शनै:शनै उग्र बनती जाती है। ऐसी अवस्था में अभ्रक, श्रृङ्ग, रससिंदूर आदि उत्तेजक कफघ्न औषधियों के सेवन की आवश्यकता रहती है, परन्तु किसी-किसी रोगी को फुफ्फुस संस्थान में अधिक शुष्कता आ जाने या कैशिका आदि के टूटने से कफ के साथ रक्त निकलता रहता है। जिससे उग्रता शमनार्थ और रक्तस्राव के रोधनार्थ शामक औषधि भी देनी पड़ती है। पीला दूषित या पूयमय हरा कफ अत्यधिक हो गया हो तब तो वासाप्रधान औषधि दी जाती है, परन्तु पीला कफ दुर्गन्ध रहित हो, कफ के हेतु से ज्वर वृद्धि न होती हो तो मुक्ता, प्रवाल मिश्रित सितोपलादि चूर्ण का ही सेवन विशेष हितावह माना गया है। इस मिश्रण से विष की शुद्धि होती है, ज्वर मर्यादित बनता है, रस रक्तादि धातुओं को पोषण मिलता है, कास-वेग का ह्रास होता है और व्याकुलता दूर होकर आवश्यक निद्रा (शान्ति) मिल जाती है।

कितने ही रोगियों को राजयक्ष्मा की प्रथमा, द्वितीया या तृतीयावस्था में कफ विकृति के साथ पित्तप्रकोप भी होता है, जिससे कण्ठ, छाती, नेत्र, हथेली, पैरों के तले आदि में जलन, मुखपाक, मस्तिष्क में उग्रता, व्याकुलता, मूत्र में दाह आदि लक्षण भी प्रतीत होते हैं। उनको रोगशामक मुख्य औषधि के साथ-साथ सितोपलादि चूर्ण का सेवन कराते रहने से पित्तप्रकोपज लक्षणों की निवृत्ति होती है तथा कफोत्पत्ति, ज्वर और कीटाणु विष का भी ह्रास होता है।

ज्वर जीर्ण होने पर देह निर्बल बन जाती है। फिर थोड़ा परिश्रम भी सहन नहीं होता, आहार विहार में स्वल्प अन्तर होने पर भी ज्वर बढ़ जाता है, शरीर में मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है या रात्रि को ज्वर आ जाता है और शुष्क कास भी चलती रहती है। ऐसी अवस्था में क्विनाइन, सुदर्शन चूर्ण आदि तिक्त ज्वरघ्न औषधि के सेवन से कास बढ़ जाती है और ज्वर की निवृत्ति भी नहीं होती। उन रोगियों को प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण शहद मिलाकर दिन में ३ समय देते रहने से थोड़े ही दिनों में कास शान्त हो जाती है, ज्वर विष का पचन हो जाता है और रस रक्त आदि धातुएं पुष्ट बनकर ज्वर का निवारण होता है।

गर्भ की अस्थि का पोषण माता की अस्थि संस्थानगत मज्जा से होता है। माता निर्बल होने पर सन्तान निर्बल रह जाती है। उनकी हड्डियाँ बहुत कमजोर होती हैं। ऐसे शिशुओं को प्रवाल, सितोपलादि मिश्रण १ से २ रत्ती दिन में २ समय लम्बे समय तक देते रहने से बालक पुष्ट बन जाता है। यह उपचार प्रथम वर्ष में ही कर लिया जाये तो लाभ अधिक मिलता है।

कितने ही मनुष्यों की निर्बलता से उनकी सन्तानें निर्बल होती है। ऐसी सन्तानों की माताओं को सगर्भावस्था में अभ्रक, प्रवालसह, सितोपलादि का सेवन ६-७ मास तक कराया जाये, तो सन्तान बलवान, तेजस्वी और बुद्धिमान् बनती है। इस प्रयोग का उपयोग हमने अति कृश और क्षय पीड़ित बच्चों की माताओं पर अनेक समय किया है।

कितनी ही स्त्रियों को अधिक सन्तान होने के पश्चात् बारम्बार अधिक काल जाने के पहले गर्भधारण हो जाने, किसी रोग विशेष शरीर कृश और निर्बल हो जावे अथवा छोटी आयु से ही देह अति कृश होने पर गर्भावस्था में अति कष्ट होता है। इनमें से कितनी ही स्त्रि में थोड़ा चलने जितना बल भी नहीं रहता, आलसी की तरह पड़ी रहती हैं। (यदि सगर्भावस्था में वे परिश्रम नहीं करती, तो उनको प्रसवाव में अधिक कष्ट पहुँचता है)। इनको अभ्रक, प्रवाल और सितोपलादि के मिश्रण का सेवन ६-७ मास तक कराया जाये तो गर्भिणी और ग दोनों पुष्ट बन जाते हैं, शरीर में स्फूर्ति रहती है और मन भी प्रसन्न रहता है।

रोग विशेष के हेतु से अथवा अधिक गरम-गरम मसालों, अधिक उष्ण चाय आदि अथवा आमाशय पित्त की वृद्धि करने वाले लवणभास्क आदि चूर्णों का अधिक सेवन होने पर आमाशयस्थ पित्त की वृद्धि हो जाती है या पित्त तीव्र बन जाता है। अर्थात् आमाशय पित्त (Gastric Juice) लवणाम्ल (Acid Hydrochloric) की मात्रा बढ़ जाती है। जिससे छाती और कण्ठ में जलन, मुखपाक, खट्टी-खट्टी डकारें आ रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। आहार का योग्य पचन नहीं होता और अरुचि भी बनी रहती है। इन रोगियों को प्रवाल भस्म (या वराटि भस्म) और सितोपलादि चूर्ण का सेवन कराने से थोड़े ही दिनों में अम्ल पित्त के लक्षण और अरुचि दूर होकर अग्नि प्रदीप्त हो जाती

आमाशय पित्त तीव्र बनने के हेतु से पचन-क्रिया मन्द हो जाती है। इसका उपचार शीघ्र न किया जाय तो किसी-किसी को विदग्धाजी होता रहता है और पित्त प्रमेह (विशेषतः हारिद्रमेह) की प्राप्ति होती है। पेशाब का वर्ण अति पीला भासता है। सर्वाङ्ग में दाह, तृषा, के परिमाण में कमी, मूत्रस्राव अधिक बार होना, देह शुष्क हो जाना, चक्कर आते रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अवस्था में मु औषधि चन्द्रकला रस के सेवन के साथ-साथ आमाशय पित्त की शुद्धि करने के लिए सितोपलादि चूर्ण का सेवन कराया जाय तो जल्दी ला पहुँचता है।

जीर्णज्वर या प्रकुपित हुआ ज्वर दीर्घकाल पर्यन्त रह जाने पर शरीर अशक्त बन जाता है और मस्तिष्क में उष्णता आ जाती है। जिस सहनशीलता कम हो जाती है, थोड़ी-सी प्रतिकूलता होने या विचार विरुद्ध कार्य होने पर अति क्रोध आ जाता है। यकृत निर्बल हो जाता मलावरोध रहता है और मल में दुर्गन्ध आती है एवं मन्द-मन्द पित्त प्रकोप, पाण्डुता, हृदय में धड़कन और अति निर्बलता आदि लक्षण उपस्थि होते हैं। ऐसे रोगियों को सितोपलादि चूर्ण खमीरेगावजवां के साथ कुछ दिनों तक देतें रहने पर सब लक्षणोंसह पित्तप्रकोप दूर होकर शरीर बलवा बन जाता है।

(४) बृहत् सितोपलादि चूर्ण

विधि-दालचीनी १ तोला, छोटी इलायची २ तोले, छोटी पीपल, मुलहठी, वनप्सा के फूल, गोजिव्हा (गावजवां) और तालीसपत्र चा चार तोले, वंशलोचन ८ तोले और मिश्री १६ तोले लें। सबको कूट-पीस छान कर चूर्ण करें।

मात्रा-२ से ४ माशे, दिन में ३ बार। घी और शहद के साथ।

सूचना-चरक संहिताकार ने (चि. अ. ८-१०१) राजयक्ष्मा की चिकित्सा में सितोपलादि चूर्ण की योजना की है। इसमें इलायची बड़ी मिलायी है। बड़ी की अपेक्षा छोटी इलायची मिलाने पर अधिक लाभ मिलने का अनुभव मिला है। इसलिये सुगन्धित, हरी-छालवाली इलायची को हम मिलाते हैं।

इस चूर्ण में सितोपलादि चूर्ण के **पाठ के** अतिरिक्त मुलहठी, वनप्सा, गावजवाँ और तालीसपत्र हैं। जिससे शामक गुण के साथ कफ को आर्द्र बनाकर बाहर फैंकने का गुण **बढ़ गया है। यह** चूर्ण भी सितोपलादि के समान निर्भय है, इसका प्रयोग सब ऋतुओं में और सब प्रकृति वालों के लिये हो सकता है। **छोटे-छोटे शिशु, सगर्भा**, प्रसूता, वृद्ध और नाजुक प्रकृति के मनुष्यों में भी इस चूर्ण का सेवन कराया जाता है

उपयोग-यह **चूर्ण खांसी, श्वास, जुकाम**, मन्दज्वर, दाह और मन्दाग्नि को दूर करता है, निमोनिया में भी अति हितकर है। यह चूर्ण श्वास वाहिनियों की श्लैष्मिक **कला के क्षोभ को** दूर करता है, जिससे शुष्क कास ज्वरसह सरलतापूर्वक शमन हो जाता है।

जब प्रतिश्याय **में नीलगिरी तैल**, पीपरमेंट, सोंठ, पिप्पली या अन्य उष्ण और शोषक औषधियों का सेवन अत्यधिक होता है, तब कफ सूखकर छाती में **चिपक जाता है**। बार-बार कास वेग उपस्थित होता है, गले में या छाती में कफ भरा हो, ऐसा भास होता है। कफ की आवाज भी निकलती **रहती है**, किन्तु कफ सरलता से बाहर नहीं आता। किसी-किसी रोगी को मन्द-मन्द ज्वर भी आ जाता है। इस अवस्था में बृहत् सितोपलादि चूर्ण का सेवन कराने पर कफ आर्द्र बन जाता है। और फिर सरलता से बाहर निकलता रहता है।

श्वास रोग में सोमल, मिर्च, पिप्पली आदि उग्र और उष्णवीर्य औषधियों का सेवन अधिक मात्रा में या अधिक समय तक होने और घृत-दुग्धादि स्निग्ध पदार्थों का सेवन न होने पर छाती कफ से जकड़ जाती है, थोड़ा चलने या थोड़ा-सा श्रम करने पर श्वास भर जाता है, कास चलने पर कफ की आवाज आती है और श्वास गहरा नहीं चल सकता, आदि लक्षण उपस्थिति होते हैं। ऐसे रोगियों को पथ्य पालनसह या चूर्ण नियमित कुछ दिनों तक देते रहने से कफ, कास और ज्वरसह प्रतमक श्वास थोड़े ही समय में मर्यादा में आ जाता है।

(५) लवणभास्कर चूर्ण

विधि–सामुद्रनमक ८ तोले, कालानमक ५ तोले, काँचलवण, सैंधा नमक, धनिया, पीपल, पीपलामूल, कालाजीरा, तेजपात, नागकेशर, तालीसपत्र, अम्लवेत सब २-२ तोले, कालीमिर्च, जीरा, सोंठ तीनों १-१ तोला, अनारदाना ४ तोले, इलायची और दालचीनी आधा-आधा तोला लें। सबकों मिला कूट करके बारीक चूर्ण करें। (शा. सं.)

सूचना–**कितने ही चिकित्सक काँचलवण के स्थान में नौसादर मिलाते हैं। नौसादर मिले हुये चूर्ण का असर तीव्र होता है। मात्रा आधी लेनी चाहिए।**

मात्रा–२ से ३ माशे, दिन में २ बार। मट्ठे या जल के साथ लें।

उपयोग–यह चूर्ण उदररोग, वात और कफ से उत्पन्न गुल्म रोग, प्लीहा वृद्धि, बवासीर, संग्रहणी, अजीर्ण, मन्दाग्नि, कब्ज, शूल, शोथ, आमवात आदि दोषों को दूर कर अग्नि को प्रदीप्त करता है।

अग्निमांद्य और निर्बलता में लवणभास्कर के साथ १-१ रत्ती शुद्ध कुचिले का चूर्ण और १-१ माशा सोडाबाई कार्ब मिला देने से विशेष लाभ पहुँचता है एवं मलावरोध होने से लवणभास्कर और पंचसकार मिलाकर सेवन कराने पर मलावरोध, उदरपीड़ा, अग्निमांद्य आदि विकार दूर होते हैं। यदि अपचनसह उदरवात रहता हो तो शुद्ध कुचिला, लहशुनादि वटी और सोडाबाईकार्ब मिला देना चाहिये। **लहशुनादि वटी मिलाने पर अपचनरूप विकार सरलता से दूर होता है।**

कभी कोष्ठबद्धता होने पर अपानवायु दूषित हो जाती है। फिर सरलता से बाहर नहीं सरती। परिणाम में अफारा रहना और किसी को हृदयशूल उपस्थित होता है। उस पर यह चूर्ण अच्छा लाभ पहुँचाता है। दिन में ३ समय देना चाहिये। सुबह निवाये जल से, दोपहर और रात्री को घी के साथ देकर ऊपर निवाया जल पिलावें। इस तरह योजना करने पर अग्निमांद्य, अफारा शूल आदि दूर हो जाते हैं। आवश्यकता होने पर उदर पर एरण्ड तैल और काला नमक के चूर्ण की मालिश कर सेक भी करना चाहिये।

आमाशय रसस्राव कम होने पर भोजन कर लेने से उदर में भारीपन आ जाता है, पचन क्रिया ठीक नहीं होती। किये हुए भोजन की डकारें बार-बार आती रहती हैं। ऐसी अवस्था में भोजन के आध घन्टे पूर्व व भोजन कर लेने के पश्चात् तुरन्त लवणभास्कर चूर्ण का सेवन कराया जाता है। भोजन के पहले सेवन करना हो तो जल से और भोजन कर लेने पर सेवन कराना हो तो मट्ठे के साथ सेवन करना चाहिये।

अर्श रोग की उत्पत्ति अग्नि मंद होने के पश्चात् उदर में वायु भरी रहने पर भी हो सकती है एवं **सब प्रकार के अर्श रोग में अग्नि मन्द रहती है और प्रायः मलावरोध भी रहता है। अतः अर्श रोग में अग्नि प्रदीप्त करने के लिए लवणभास्कर चूर्ण को मट्ठे के साथ सेवन करना चाहिये।**

ग्रहणी रोग में प्रायः अग्नि मन्द होती है तथा अन्त्र निर्बल हो जाने से पंचामृत पर्पटी आदि पर्पटी-कल्प का सेवन कराने पर कितने ही रोगियों को मलावरोध भी होता है। ऐसे रोगियों को लवणभास्कर चूर्ण ताजे मट्ठे के साथ दिन में २ बार देते रहने से अग्नि प्रदीप्त होती है और मलावरोध नहीं होता।

उदर में वातनाड़ियों की निर्बलता आ जाने पर भोजन के ३-४ घण्टे बाद आमाशय या अन्त्र में वायु की उत्पत्ति होती है। आमाशय में वायु उत्पन्न होने पर वह डकार रूप से बाहर निकलने का प्रयत्न करती है और अन्त्र में होने पर वह अपान वायु रूप से बाहर निकलती है। इस वायु की उत्पत्ति रोकने और वातनाड़ियों को सबल बनाने के लिये लवणभास्कर चूर्ण के साथ शुद्ध कुचिले का चूर्ण १-१ रत्ती देते रहना लाभदायक माना गया है। यदि अपचन होकर आमाशय में दूषित अम्ल रस भी साथ में रहा हो तो सोडाबाईकार्ब १-१ माशा साथ में मिला देना चाहिये।

अग्निमांद्य के रोगी को मलावरोध होने पर उदरशूल चलता है। यह शूल मल की आगे गति होने में रुकावट आने पर उपस्थित होता है, प्रायः मल की गांठे बन जाने पर ऐसा होता है। ऐसी अवस्था में लवणभास्कर चूर्ण के साथ पंचसकार चूर्ण मिला देने से शूल का निवारण हो जाता है।

मात्रा आधी से भी कम देनी पड़ती है। इस प्रकार दोनों का मिश्रण हमने बनाकर प्रयोजित किया है। काफी लाभ पहुँचता है।

नौसादर को पुष्प उड़ाकर कार्य में लेते हैं। स्त्री और पुरुषों के गुल्म, गर्भाशयस्थ गुल्म, उदर्य्याकला के भीतर उत्पन्न गुल्म इनको गलाने में उक्त लवणभास्कर उपयोगी सिद्ध है। लवणभास्कर और सोडाबाईकार्ब समभाग मिलाकर दिन में ३ बार नींबू के रस मिश्रित जल के साथ दिया जाता है। परिणाम में काफी लाभ मिलता है। शनैः शनैः गुल्म कट जाता है। यह परीक्षण पहले कई वैद्यों द्वारा बम्बई में कराया है। करीब २००-४०० रुग्णाओं और रोगियों को लाभ मिला है। किसी को हानि नहीं पहुँची है।

सूचना-(१) यदि आमाशय रस में लवणाम्ल तीव्र हो जाने से पचन क्रिया योग्य कार्य न करती हो, अपचन हो जाता हो, छाती में जलन तथा जीभ या मुख में छाले आदि लक्षण भी प्रतीत हो तो ऐसी अवस्था में लवणाम्लवर्द्धक लवणभास्कर चूर्ण आदि औषधियां नहीं दी जाती।

(२) आमाशय अथवा अन्त्र में क्षत हो जाने के हेतु से आमाशय या अन्त्र में शूल चलता हो तो ऐसी अवस्था में लवणभास्कर चूर्ण लाभ नहीं पहुँचा सकता यदि लवणभास्कर चूर्ण में नौसादर मिला हो तो क्षत स्थान में हानि पहुँचती है, या श्लैष्मिक कला में अधिक उग्रता पहुँच कर नये क्षत हो जाते हैं।

(३) इस चूर्ण को अच्छे डाट वाली शीशी में रखे। खराब डाट वाली शीशी या टीन के डिब्बे में रखने से वर्षा ऋतु में दूषित हो जाता है।

(६) हिंग्वष्टक चूर्ण

विधि-सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अजमोद (या अजवायन), सैंधा नमक, जीरा, कालाजीरा और भुनी हींग इन ८ औषधियों को समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (अ.हृ.)

वक्तव्य-वर्तमान में वैद्यसमाज, हिंग्वष्टक चूर्ण में हींग एक भाग के स्थान पर हीरा हींग चौथाई भाग मिलाते हैं। हींग कम होने से इस चूर्ण का सेवन सरलता से हो सकता है। किन्तु कम मात्रा में सत्वर लाभ प्राप्त करने के लिये हीरा हींग को घी में भून, पूरी मात्रा में ही मिलाना विशेष हितावह माना जायेगा।

मात्रा-२ से ४ माशे, भोजन के समय घी के साथ लेवें।

उपयोग-यह चूर्ण अजीर्ण रोग, अपचन, मन्दाग्नि, हैजा, पतले दस्त, वात संग्रहणी, वातगुल्म, वातशूल, अफारा आदि दोषों को दूर करके पाचन शक्ति को सुधारता है। कफज और वातज विकार में लाभदायक है। पित्तविकार में और पित्तप्रधान प्रकृति वालो को इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

इस चूर्ण में प्रधान औषधि हींग है। हींग में उदर वातघ्न और शूलहर गुण प्रधान हैं। यह आमाशय और अन्त्र में संगृहीत वायु को दूर करती है, उदरशूल का शमन करती है, पाचक रस का स्राव अधिक कराती है और कीटाणुओं को नष्ट करती है। इस हींग के साथ मिलाये हुए त्रिकटु आदि द्रव्य यकृत्पित्त को सबल बनाकर पित्त स्राव कराने में सहायक होते हैं। इस हेतु से यह चूर्ण आमाशय और अन्त्र दोनों की पचन-क्रिया बढ़ाता है।

जब अन्त्र की निर्बलता या पचन विकृति के कारण भोजन करने पर तुरन्त शौच जाना पड़ता हो अथवा दिन में ४-५ बार थोड़ा-थोड़ा मल त्याग होता हो, उदर में भारीपन बना रहता हो तथा मुख स्वाद फीका रहता हो तब इस चूर्ण के साथ जायफल, जावित्री और कपूर मिलाकर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देते रहने से तुरन्त लाभ पहुँचता है।

(७) शिवाक्षारपाचन चूर्ण

विधि-हिंग्वष्टक चूर्ण, छोटी हरड़ का चूर्ण और शुद्ध सज्जीक्षार तीनों समभाग लें। सबको मिला बोतल से भरें। (आ. नि. मा.)

मात्रा-३ से ४ माशे, दिन में २ बार। जल के साथ लें।

उपयोग-यह चूर्ण वायु, अजीर्ण, कब्ज, अफारा, हिचकी, वमन, अरुचि, शूल, हैजा और कृमि आदि रोग नष्ट करता है। इस चूर्ण से अग्नि प्रदीप्त होती है, आमपचन होता है, अपान वायु शुद्ध होती है तथा मलावरोध दूर होता है।

यह चूर्ण पाचन, अग्नि प्रदीपक, यकृत्-शक्ति वर्द्धक और सारक है। इस चूर्ण का उपयोग अधिकतर उदर में भारीपन होने पर होता है। जब आमाशय के पित्त मे अम्लता बढ़ने तथा यकृत् में से पित्तस्राव कम होने से उदर में वायु भरा रहता है, शूल चलता रहता हो उद्‌गार शुद्धि न होती हो, अन्त्र में सूक्ष्म कृमि बने रहते हों, तब इस चूर्ण के सेवन से तत्काल लाभ होता है। यह चूर्ण यकृत् पित्त को सबल बनाता है, आम का पचन कराता है, उदर में संगृहीत वायु को बाहर निकालता है, कीटाणुओं को नष्ट करके उदर में उत्पन्न होने वाली दुर्गन्ध को दूर करता है तथा शौचशुद्धि कराने में सहायता पहुँचाता है। यह सामान्य औषधि होते हुए भी विकृत पचन-क्रिया और निर्बल यकृत् वाले बालकों के लिए अति हितावह है।

(८) पाठादि चूर्ण

विधि-पाठा, बेलगिरी, चित्रकमूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, जामुन की गुठली, अनारदाना, धाय के फूल, कुटकी, अतीस, मोथा, दारुहल्दी, चिरायता, कूड़ेकी छाल। ये १५ औषधियाँ समभाग और सबके बराबर इन्द्र जौ मिला कूट कपड़ छानकर चूर्ण करें। (च. द.)

मात्रा–४ से ६ माशे। शहद में मिलाकर दिन में ३ बार दें। ऊपर चाँवलों का धोवन पिलावें।

उपयोग–यह चूर्ण वमन, ज्वरातिसार, शूल, तृषा, दाह, ग्रहणीरोग, अरुचि और मन्दाग्नि को नष्ट करता है।

(९) प्लीहान्तकक्षार चूर्ण

विधि–सैंधानमक, बिड़नमक और कसीस प्रत्येक ८-८ तोले मिला गोमूत्र में पीस १०० पक्के पीले आक के पत्तों पर लेप करें। फिर हांडी में संपुट करके गजपुट में भस्म करें। भस्म (क्षार) निकाल पीसकर रख लें। भस्म अपक्व हो तो फिर से संपुट कर ले पका लें।

मात्रा–१/२ से १ माशा, दिन में २ बार। शहद के साथ दें।

उपयोग–यह चूर्ण प्लीहावृद्धि, वातरोग, वातगुल्म, शूल, आमवृद्धि, अपचन, पुराना अजीर्ण रोग, पाण्डु और उदरवात आदि रोगों को नष्ट करता है, चूर्ण अपक्व होगा तो उबाक लाता है।

(१०) प्लीहान्तक चूर्ण

विधि–शुद्ध नौसादर ८ तोला, कालानमक और सोनागेरु १-१ तोला मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (ब्र.स्व. सदानन्द गिरिजी)

मात्रा–४ से ८ रत्ती, दिन में २ बार। जल के साथ देवें।

उपयोग–यह चूर्ण यकृत् का पित्त स्राव अधिक कराता है, यकृत्त और प्लीहा (तिल्ली) की वृद्धि, उदररोग, शोथ, मूत्रदोष और मन्दज्वर को दूर करता है, तथा पचन क्रिया को बढ़ाता है।

सूचना–यह औषध खाकर तुरन्त चूना लगा हुआ पान और तमाखु नहीं खाना चाहिये, नहीं तो जिह्वा पर घाव हो जायेगा। छाले हो जायेंगे।

(११) त्रिफला चूर्ण

विधि–बड़ी नयी रसदार हरड़, उत्तम बहेड़ा और नया आंवला तीनों के छिलकों को समभाग मिलाकर चूर्ण करें। (च.सं.)

सूचना–पुराने, नीरस और सदोष हरड़ आदि से या पुराने चूर्ण से योग्य लाभ नहीं मिलता एवं जो हरड़ों की गुठली निकाली हुई छाल बाजार में आती है, उसके भीतर कषायाम्ल (Tannic Acid) अधिक होता है, उसका प्रयोग त्रिफला चूर्ण में करने पर योग्य लाभ नहीं मिलता।

अधिक जीर्ण मलावरोध पीड़ितों के लिए पुराने मल को खोलकर बाहर निकालने का प्रधान उद्देश्य हो, दीपन-पाचन गौण हो तो छोटी कच्ची हरड़ मिला लेना विशेष हितावह है।

अर्धपक्व हरड़ जिसमें कषायाम्ल (Tannic Acid) अधिक है, उसके उपयोग से उचित लाभ नहीं मिलता। दीपन-पाचन और सारक कार्य के लिए बड़ी हरड़ लेना चाहिए एवं सारक गुण की मुख्य आवश्यकता होने पर छोटी हरड़ मिलानी चाहिये।

अनुपान–(१) नये मन्द ज्वर में पीपल और शहद।

(२) चातुर्थिक ज्वर में दूध।

(३) खाँसी में शहद और गोघृत

(४) मेदरोग में शहद या शहद-मिश्रित जल।

(५) रसायन गुण के लिये २-२ माशे त्रिफला को पीपल, वंशलोचन और शहद से देवें या रात्रि को कान्तलोह के पात्र में त्रिफला के कल्क का लेप कर दूसरे दिन सुबह शहद और जल मिलावें। पचन होने पर गोघृत पिलावें।

(६) ऊरुस्तंभ में कुटकी का चूर्ण मिलाकर निवाये जल से दें।

(७) नेत्र रोगों में घी और शहद के साथ सेवन करते रहने से बढ़ता हुआ मोतिया बिन्दु आदि रोग रुक जाते हैं।

(८) शनैर्मेह पर गिलोय के स्वरस के साथ।

(९) सब प्रकार के प्रमेहों पर त्रिफला चूर्ण के समान हल्दी और दुगुनी मिश्री के साथ।

(१०) फेनमेह (थोड़ा-थोड़ा झागसह मूत्र आने) पर त्रिफला, अमलतास के गूदे तथा शहद के साथ दें। ऊपर मुनक्का का क्वाथ पिलावें।

(११) वृषणशोथ में गोमूत्र के साथ।

(१२) भगन्दर में खदिर छाल के क्वाथ के साथ।

(१३) मूर्च्छा रोगों में शहद के साथ।

(१४) पित्तज विद्रधि पर त्रिफला के क्वाथ में निसोत का चूर्ण और घी मिलाकर पिलावें।

(१५) संधिस्थानों में शूल होने से निद्रा न आती हो तो त्रिफला के क्वाथ में शहद मिलाकर पिलावें।

उपयोग–यह चूर्ण प्रमेह, शोथ, कब्ज, शीतपित्त, विषमज्वर, रक्त विकार, वीर्यदोष, कफ, पित्त और कुष्ठरोग में अति उपयोगी है। इसके सेवन से अग्नि प्रदीप्त और मलशुद्धि होती है। घी, शहद के साथ खाने से सेन्द्रिय विषप्रकोप और पित्तविकार जनित नेत्र रोग दूर होते हैं। पुराने रोग में कम मात्रा में दीर्घकाल पर्यन्त सेवन करना चाहिये।

इस त्रिफला चूर्ण में अनेक अद्‌भुत गुण अवस्थित हैं। यह दीपन, रुचिकर, चक्षुष्य, रसायन, आयुस्थापक, वृष्य, सारक, हृद्य और बृं है। शास्त्रीय अनेक ग्रन्थों में इसका वर्णन मिलता है। चरक संहिता में त्रिफला को रसायन कहा है और लिखा है कि 'जो मनुष्य त्रिफला घृत और शहद के साथ नित्य सेवन करता है, वह नीरोग रहकर 100 वर्ष की आयु भोगता है।'

(१२) पञ्चसम चूर्ण

विधि–सोंठ, छोटी हरड़, पीपल, काली निसोत और काला नमक इन सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। (शा.सं.

सूचना–कितने ही चिकित्सक इस चूर्ण को नींबू के रस की भावना देते हैं।

मात्रा–३ से ६ माशे तक। निवाये जल के साथ लें।

उपयोग–यह चूर्ण शूल, अफारा, कब्ज, आमवात आदि रोगों में मलशुद्धि करके रोगों को दूर करता है। इस चूर्ण के सेवन से कोष्ठशु होकर अग्नि प्रदीप्त होती है। कितने ही व्यक्तियों को बार-बार मलावरोध हो जाता है और शारीरिक उत्ताप कुछ अंश में बढ़ जाता है। उन लिये यह चूर्ण हितावह है।

पञ्चसम चूर्ण उदरकृमि, उदरशूल, विष्टब्धाजीर्ण, आध्मान, उदर में आम संग्रह, कफप्रधान उदररोग, ज्वर, शोथ, प्लीहावृद्धि, पाण्डु, जी आमवात, नूतन आमज्वर आदि रोग में मलावरोध होने पर उदरशोधन और पाचन गुण के लिये व्यवहृत होता है। यह अति निर्दोष और उत्त प्रयोग है।

सोंठ, पीपल आमपाचन गुण दर्शाते हैं, छोटी हरड़, निशोथ विरेचन गुण के लिये प्रयुक्त होते हैं। कालानमक आमपाचन गुण तथा विरेच गुण दोनों को सहायता पहुँचाता है।

पञ्चसकार और पञ्चसम चूर्ण दोनों सौम्य हैं; तथापि पञ्चसम पञ्चसकार की अपेक्षा विशेष आमपाचक और विशेष विरेचक है।

दोनों के कार्य क्षेत्र में कुछ भेद है। सौम्य रोगियों को और सामान्यवस्था में आमशोधन कार्य मुख्य होने पर पञ्चसकार का प्रयोग हितावह है और ज्वरादि रोगावस्था में आमपाचन और आम विरेचन कराना हो तब पञ्चसम विशेष सहायक होता है।

(१३) विरेचन चूर्ण

विधि–सनाय, गुलाब के फूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला ३-३ तोले, बादाम की गिरी और कुलफा के बीज १-१ तोला तथा शुद्ध जमालगो ३ माशे लें। सबको कूटकर बारीक चूर्ण करें।

मात्रा–१॥ से २ माशे चूर्ण को ३ माशे मिश्री में मिलाकर रात्रि को सोते समय लें। ऊपर गरम दूध अथवा गरम जल पीवें।

उपयोग–यह चूर्ण नवीन और पुराने कब्ज को दूर करता है, जिससे आंतें तथा आमाशय शुद्ध बन जाते हैं। इसके दस्तों से कमजोरी न आती, कोमल प्रकृतिवाला भी ले सकता है। इससे एक या दो दस्त सुबह खुलकर हो जाते हैं।

(१४) पञ्चसकार चूर्ण

विधि–सोंठ, सोंफ, सनाय, सैंधानमक और छोटी हरड़ सबको समभाग मिला कूट-छानकर चूर्ण बना लें। (सि.भै.म.)

मात्रा–३ से ६ माशे तक। रात्रि को निवाये जल के साथ लें।

उपयोग–यह चूर्ण सौम्य विरेचन है। कब्ज, आमवृद्धि, शिरदर्द, अजीर्ण, उदरवात, अफारा, उदरशूल, गुदशूल आदि दोषों को दूरकर पाच क्रिया को सुधारता है।

यह चूर्ण अर्शरोग,आमप्रकोप, जीर्ण आमवात में संधिस्थानों की पीड़ा और मलावरोध तथा नये अम्लपित्त के रोगियों के लिये हितकार है। इसके सेवन से आमाशय रस की अम्लता और उग्रता का ह्रास होता है। आंतों में गये हुये दूषित आम का पचन होता है और नये आम की उत्पत्ति का ह्रास होता है। इसके अतिरिक्त यकृत् पित्त का स्राव बढ़ता है। जिससे छोटी आंत में होने वाली पचनक्रिया सुधरती है। यकृत्पि पूरा मिलने पर मल में दुर्गन्ध नहीं होती। कीटाणु और विष नष्ट हो जाते हैं तथा मल को आगे फेंकने का कार्य सरलता पूर्वक होता है औ शुद्धि होने के पश्चात् उसका आकुंचन होने से भी सहायता मिल जाती है।

यह चूर्ण अति सामान्य औषधियों के सम्मिश्रण से बना है, फिर भी कफप्रधान रोगी, जीर्ण आमवात पीड़ित, अर्श रोगी, जीर्ण आमातिसा और अन्य रोगों में होने वाली आमवृद्धि पर अमृत सदृश उपकारक है।

सूचना–आमातिसार में आमवृद्धि और मलावरोध होने पर यह चूर्ण २ माशा सुबह को निवाये जल के साथ देना चाहिये। मात्रा अधिक होने पर अन्त्र में उग्रता की वृद्धि होती है और उदर में मरोड़ा आता है।

(१५) प्रवाहिकारिपु चूर्ण

विधि–शीशियों को बन्द करने के लकड़ी के डाट पुराने अथवा नयों को हांडी में भर जलाकर कोयला करें। निर्धूम होने पर बरतन से ढक देवें, जिससे सफेद राख न हो जाय। १ सेर डाट में से ९ तोला भस्म मिलती है।(आ.नि.मा.)

सूचना–जो डाट साफ हों, अन्य दूषित औषधियों के संयोग से खराब न हुए हों, ऐसे डाटों को उपयोग में लें अथवा कारखाने वालों से डाट के नये टुकड़े लेकर उसकी भस्म बना लेवें।

मात्रा–२ से ३ रत्ती, दिन में ३ बार। दही के साथ देवें।

उपयोग–यह चूर्ण ग्राही, स्तम्भक, शूलध्न, कीटाणुनाशक और पाचक है; घोर रक्तातिसार, पेचिश, दस्त में पीप और रक्त का जाना इत्यादि दोषों को दूर करता है। प्रवाहिका के समान रक्तप्रदर में भी तत्काल लाभ पहुँचाता है।

(१६) अविपत्तिकर चूर्ण

विधि–सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, बायविडंग, छोटी इलायची के दाने और तेजपात सब एक-एक तोला, लौंग १० तोले, निसौत ४० तोले और मिश्री ६० तोले लें। इन सबको मिला कूटकर चूर्ण करें। (रसेन्द्र चिन्तामणि)

मात्रा–४ से ६ माशे। भोजन के पहले, ठण्डे जल के साथ देवें।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन से अम्लपित्त तथा अम्लपित्त से उत्पन्न उदर शूल,अग्निमांद्य, वातनाड़ियों में शूल, अर्श, प्रमेह, मूत्राघात और मूत्राश्मरी का नाश होता है। केवल दूध और भात का भोजन करने से जल्दी लाभ होता है।

यह चूर्ण अम्लपित्त रोग में विशेष व्यवहृत होता है। अम्लपित्त होने पर छाती में जलन होती रहती है, रोग अधिक बढ़ने पर उबाक और वमन भी होती रहती है, वमन खट्टी और जलती हुई होती है। वमन होने पर कण्ठ में दाह होता है और नेत्रों में जल आ जाता है। इस विकार में अपचन होने या रोग जीर्ण होने पर आमाशय पित्त अत्यधिक बढ़ जाने से सुबह भी खट्टी डकारें आती रहें और वमन होती रहें, तब अविपत्तिकर चूर्ण का सेवन शीतल जल या नारियल के जल के साथ कराया जाता है, जिससे आमाशय का पित्त आँतों में चला जाता है।

इस चूर्ण में निसोत मिलाया है, जिससे यह कुछ विरेचन गुण भी दर्शाता है और आमाशय के भीतर संगृहीत पित्त को फेंक देता है। यदि विरेचन गुण को अति कम कराना हो, तो आचार्यों के कहे अनुसार चूर्ण भोजन के पहले और भोजन के अन्त में थोड़ी-थोड़ी मात्रा में घी और शहद के साथ देना चाहिए।

अम्लपित्त रोग बढ़ने पर आमाशयस्थ पित्त का अम्ल प्रभाव रक्त पर पहुँचता है। फिर कई रोगियों की वातनाड़ियां भी खिंचती रहती है। ऐसी अवस्था में उनको लाभ पहुँचाने की दृष्टि से आचार्यों के मूलपाठ में "बीजञ्चैव विडङ्गकम्" के स्थान पर "विडञ्चैव विडङ्गकम्" भी पाठ मिलता है। इस पाठ को मानकर १२० तोले चूर्ण के साथ १ तोला बिड़नमक (नौसादर) मिला देना चाहिए। अर्थात् ४ माशे चूर्ण की मात्रा देनी हो तो उसमें १ रत्ती बिड़नमक मिलाकर देने से रक्त और वातनाड़ियों को पहुँची हुई अम्लता का ह्रास होता है।

सूचना–यदि आँतों में शोथ हो, ऊपर दबाने पर वेदना होती हो तो इस चूर्ण का सेवन नहीं करना चाहिये, अथवा घी, शहद से करना चाहिये। आमाशय नलिका से पित्त को निकाल देना चाहिये।

वृक्क दाह होने पर रक्त में मूत्र-विष की वृद्धि होती है। फिर नेत्र और मुखमण्डलपर शोथ उत्पन्न होता है। देह कृश और निस्तेज हो जाती है, **आलस्य** की वृद्धि होती है। दृष्टि मन्द होती है, रक्त की प्रतिक्रिया अम्ल होती है। आमाशय में पित्त तेज हो जाता है। ऐसी स्थिति में **प्राय: मलावरोध** भी दु:ख देता रहता है, इस मलावरोध को दूरकर उदर को शुद्ध करने के लिये बिड़नमक मिश्रित इस चूर्ण का उपयोग किया जाता है।

इसके अतिरिक्त आमवात और रक्त की प्रतिक्रिया अम्ल होने से उत्पन्न संधिवात, पक्षाघात, उदरशूल, पित्तप्रकोप उन्माद, रक्तदबाव वृद्धि आदि रोगों में विरेचन कीआवश्यकता होने पर भी इस चूर्ण का उपयोग किया जाता है।

(१७) गोमूत्रक्षार चूर्ण

विधि–१० सेर गोमूत्र को एक लोहे की कड़ाही में औटावें। चौथा हिस्सा शेष रहने पर सोंठ ऽ। जवाहरड़ ऽ। सैंधानमक २॥ तोले और लौंग १॥ तोले कूट पीसकर डाल दें। फिर खुरपे से हिला-हिलाकर अग्नि पर भस्म बना लें। शीतल होने पर बारीक चूर्ण कर लें।

मात्रा–१ से २ माशे, दिन में २ बार। निवाया जल, नागरबेल के पान या तुलसी के पत्ते के साथ देवें।

उपयोग–यह चूर्ण कफ-सहित श्वास, कास, उदर रोग, मलावरोध आदि रोगों को दूर करता है। साधारण औषध होने पर भी श्वास रोगियों के लिये बहुत लाभदायक है। तमाखू के व्यसनियों को श्वास रोग में सत्वर लाभ पहुँचाता है। आमाशय में रहे हुए कफ और आम को दस्त के साथ बाहर निकाल देता है तथा श्वासवाहिनियों में रहे हुए कफ को पिघलाकर प्रणालियों को कफ से मुक्त करता है।

(१८) कर्पूराद्य चूर्ण

विधि–कर्पूर, खस, शीतलमिर्च, जायफल, तेजपात और लौंग १-१ तोला, नागकेशर २ तोले, कालीमिर्च ३ तोले, पीपल ४ तोले, सोंठ ५ तोले लें। सबको कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर चूर्ण के समान मिश्री मिलाकर खरल करें। चूर्ण में कर्पूर सबसे बाद में मिलाएं। (यो.र.)

मात्रा–१ से २ माशे तक, दिन में ३ बार। जल, बकरी के दूध, शहद अथवा घृत के साथ देवें।

उपयोग–यह चूर्ण राजयक्ष्मा रोग में अरुचि, कास, स्वरभंग, श्वास, गुल्म, अर्श, वमन और कण्ठ रोग को नष्ट करता है।

जब स्वरयन्त्र में कफ चिपका रहता हो तथा आमाशय में कफ चले जाने से बेचैनी बनी रहती हो, मुँह मीठा या फीका रहता हो तो इस चूर्ण का सेवन कराने से स्वरयन्त्र साफ रहता है, उबाक दूर होती है, मुँह का स्वाद सुधर जाता है और मानसिक प्रसन्नता रहती है।

(१९) अन्त्रवृद्धिहर चूर्ण

विधि–भुनी हींग, छुहारा, सोया, अजवायन, वायविडंग, सौंफ, पोदीना, इन्द्रजव, सफेदमिर्च, बड़ी इलायची और छोटी हरड़ १-१ तोला, बड़ी हरड़ और सनाय १॥-१॥ तोले तथा काँटे वाले करंज की गिरी और कालानमक २-२ तोले लें। इनमें से सनाय को छोड़कर शेष औषधियों को अलग-अलग तवे पर भूनें। फिर सबको मिला कूट कपड़छन चूर्ण बनावें। (वै.म.कि.)

मात्रा–४ से ६ माशे, दिन में २ बार। मिश्री, इलायची, दालचीनी, सोंठ और लौंग का चूर्ण मिलाये हुए आध सेर गरम दूध के साथ दें।

उपयोग–यह चूर्ण उदर में वायु की उत्पत्ति को रोकता है, संगृहित पुराने मल को निकालता है तथा अन्त्र आदि अवयवों को सबल बनाता है। इससे आँत उतरना(Hernia), उदरशूल, मन्दाग्नि, मलावरोध और उदरवात आदि विकार १ से १॥ मास में दूर होते हैं।

(२०) मंजिष्ठादि चूर्ण

विधि–मजीठ, हरड़, गुलाब के फूल और निसोत २॥-२॥ तोले, सनाय १० तोले और मिश्री ४० तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (वै.चि.सा.)

मात्रा–४ से ६ माशे। रात्रि को सोने के समय निवाये जल से।

उपयोग–यह चूर्ण उदरविकार और रक्त में रहे हुए विष को नष्ट करता है, जिससे रक्तविकार, पामा, त्वचारोग और कब्ज रोग दूर होते हैं। भोजन हल्का पथ्य लेवें। अति खट्टे, अति नमकीन और अति चरपरे पदार्थों का सेवन न करें। शक्कर वाले मधुर पदार्थ भी कम लें।

(२१) दन्तप्रभाकर मञ्जन

विधि–विलायती चाकमिट्टी ८० तोले, लोध १५ तोले, माजूफल और अकरकरा ५-५ तोले, कपूर, लौंग और छिलकासह छोटी इलायची २॥-२॥ तोले, फिटकरी का फूला १। तोले, एसिड कारबोलिक २॥ तोले और ग्लिसरीन ४ तोला तथा पीपरमेण्ट का तैल १। तोलें लें। पहिले चाकमिट्टी ग्लिसरीन मिला लें फिर कारबोलिक एसिड और कपूर को मिलावें। जल हो जाने पर चाक मिला लें। बाद में अन्य औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलावें। अन्त में पीपरमेंट का तैल मिलाकर मजबूत डाट वाली शीशी में डिब्बे में भरने से थोड़े ही दिनों में मंजन कमजोर और दूषित हो जाता है। इस चूर्ण में ४ तोले मृदुसाबुन या (बोरिक एसिड) मिलाने से गुण में वृद्धि होती है। रंग और मधुरता लाना हो तो १॥-१॥ माशे रेड कारमाइन और सैकरीन मिलावें। सुगन्ध के लिये १०० तोले मंजन में जिरेनियम आइल १ ड्राम डालें।

उपयोग–यह दन्त मञ्जन दांत और डाढ़ के दर्द, पीप आना, रक्त गिरना, चीस चलना, दाँत हिलना, मसूड़े फूलना, मैल जमना, दुर्गन्ध आना इत्यादि विकारों को दूर करके दाँतों को सफेद और मजबूत बनाता है। साथ में गले और जीभ पर लगे हुए कफ और मुँह के बेस्वादपन को भी दूर करता है।

इस मंजन में कपूर, कार्बोलिक एसिड, बोरिक एसिड, पीपरमेण्ट तैल आदि किटाणुनाशक औषधियाँ मिलायी हैं। कपूर, लौंग, इलायची आदि कण्ठ से नीचे रहे हुए कफ और मल को खेंच लेते हैं। सेलखड़ी और खड़िया दाँतों को स्वच्छ और उज्वल बनातें हैं तथा माजूफल, लौध, फिटकरी आदि मसूढ़ों को सबल बनाते हैं।

(२२) दन्तदोषहर मञ्जन

प्रथम विधि–नीले थोथे का फूला १ तोला, कपूर १ तोला, लौंग २ तोले, दालचीनी २ तोले, फिटकरी का फूला ४ तोले, समुद्रफेन ८ तोले, सोनागेरु ६ तोले और शुद्ध चाकमिट्टी १६ तोले लेवें। सबको कूटकर बारीक चूर्ण करें। (आ.नि.मा.)

उपयोग–यह मंजन दाँतों पर रगड़ने से दांत स्वच्छ और मजबूत होते हैं। दन्तशूल, कृमि, मसूड़े फूलना, पीप, रक्त निकलना, आदि दूर होते हैं। अधिक दर्द होने पर दिन में २-३ बार उपयोग करें।

सूचना–दर्द के समय इस दन्तमञ्जन को लगाकर थोड़ी देर मुँह नीचा रखकर लार टपकायें। फिर निवाये जल से कुल्ले करें। गले के नीचे मञ्जन के रस को न उतरने दें। अन्यथा नीले थोथे के हेतु से उबाक आने लगती है।

द्वितीय विधि–कासीस, फिटकरी, फूला, नीलाथोथे का फूला, मीठा कूठ, पाठा, कत्था, माजूफल, कालीमिर्च, दालचीनी, लौंग और सैंधानमक, सोहागे का फूला और साँभरनमक इन १३ औषधियों को समभाग मिला बारीक कपड़छान करें।

उपयोग–यह मंजन दांतों का हिलना, तीव्र दन्तशूल, मसूड़े की सूजन, दन्तकृमि आदि को मिटाता है। मञ्जन लगाकर लार टपकाते रहने से कीटाणु बाहर निकल जाते हैं, फिर शूल-शमन हो जाता है। कासीस के हेतु से दांतों पर कुछ कालापन आ जाता है, परन्तु यह थोड़े ही दिनों में दूर हो जाता है।

(२३) उष्णवातघ्न चूर्ण

प्रथम विधि–फिटकरी का फूला, कलमीशोरा, छोटी इलायची,संगजराहत, सफेद चन्दन, रेवतचीनी, शीतलचीनी और सफेद जीरा एक-एक तोला, गंधेविरोजे का सत्व २ तोले, सफेद राल ३ माशे और मिश्री सबको बराकर मिला कूट पीसकर छान लें।

मात्रा–आधा से १ तोले। प्रातः काल दूध की लस्सी के साथ दें।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन से नया सुजाक (पूयमेह-उष्णवात) ३-४ दिनों में दूर होते हैं।

सूचना–संगजराहत को कूट कपड़छन करने के पश्चात् ३ घण्टे तक खरल करके मिलाना चाहिये।

दूसरी विधि–कपूर, गिलोय का सत्व, वंशलोचन, शीतलचीनी, छोटी इलायची, नागकेशर, हरड़, बहेड़ा; आँवला; नागरमोथा; बड़ा गोखरू, शतावर, सफेद चन्दन, तगर, पीपल, लोंग; जटामाँसी; जायफल सब औषधियों को समभाग लें और सबके बराबर मिश्री मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण बना लें। (धन्वन्तरि)

मात्रा–३ से ६ माशे; दिन में २ बार। मिश्री मिले दूध के साथ दें।

उपयोग–यह चूर्ण सुजाक की तीव्र अवस्था दूर होने हेतु लाभदायक है। सुजाक की मूल व्याधि, रक्त में लीन विष, मूत्रप्रसेकनलिका में क्षत होना और मूत्रविकार को यह थोड़े ही दिनों में नष्ट करता है।

(२४) मूत्रविरेचन चूर्ण

विधि–शीतलचीनी, रेवत चीनी, छोटी इलायची और जीरा १-१ तोला, कलमीशोरा २ तोला और मिश्री ४ तोले मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण बनावें।

मात्रा–तीन माशे, दूध जल की लस्सी के साथ, दिन में ३ से ४ बार दो-दो घण्टे पर देवें।

उपयोग–यह चूर्ण मूत्रोत्पत्ति को खूब बढ़ाता है। सुजाक में पीप दूर करने और मूत्रमार्ग साफ करने के लिये उपयोगी है। भोजन में केवल दूध-भात खाने से इन्द्रिय जुलाब अच्छा लगता है। इस चूर्ण को ३ दिन सेवन करने से मूत्रमार्ग साफ हो जाता है और सुजाक की तीव्रावस्था का शमन होता है।

(२५) वीर्य शोधन चूर्ण

विधि–बबूल की बिना बीज वाली कच्ची फली, बबूल की कोंपल और बबूल का गोंद तीनो को समभाग लेकर चूर्ण करें।

मात्रा -४ से ६ माशे, मिश्री मिलाकर लें। ऊपर से दूध पीवें।

उपयं -यह चूर्ण वीर्य का पतलापन, स्वप्नदोष, शुक्रमेह (पेशाब के साथ वीर्य का जाना)इत्यादि धातुदोष को दूरकर वीर्य को शुद्ध गाढ़ा और श्वेत बनाता है। यह औषध सामान्य होने पर भी अच्छा काम देती है।

(२६) न्यग्रोधादि चूर्ण

विधि–बड़, गूलर, पीपल (अश्वत्थ), अरलू, अमलतास और असन (विजयसार) इन सब वृक्षों की छालें, आम और जामुन की गुठली, कैथ, चिरोंजी, अर्जुनछाल, धाय की छाल, महुए की छाल, मुलहठी, लोध, बरना की छाल, नीम की अन्तर छाल, कड़वे परवल के पत्ते, मेंदासींगी, दन्तीमूल, चित्रकमूल, पाटल (पाढल) करञ्ज के बीज, हरड़, बहेड़ा, आंवला, इन्द्रजौ, भिलावें की गिरी(गोडम्बी) सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। (यो.र.)

मात्रा–३ से ६ माशे, दिन में २ बार। शहद के साथ लें और ऊपर त्रिफला का क्वाथ पीवें।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन के वातज, पित्तज और कफज प्रमेह, मधुमेह, प्रमेहपिटिका और मूत्रकृच्छ् शमन होते हैं। शांतिपूर्वक ३-४ मास तक सेवन करना चाहिये।

(२७) नारसिंह चूर्ण

विधि–शतावरी, गोखरू, छिलके निकाले हुए तिल और विदारीकन्द ६४-६४ तोले, वाराहीकन्द १ सेर, गिलोय १। सेर, शुद्ध भिलावे १२८ तोले, चित्रकमूल की छाल आध सेर, त्रिकटु ३२ तोले, मिश्री ३॥ सेर, शहद १॥। सेर और घृत ७० तोले लेवें। इनमें से सूखी औषधियों को कूट छान महीन चूर्ण कर मिश्री मिलावें। पश्चात् घृत और फिर शहद मिलावें। बाद में अमृतबान में भरें। (चक्रदत्त)

वक्तव्य–हम घी और शहद नहीं मिलाते। सेवन के समय में ६ माशे घी और १ तोला शहद मिला लेना विशेष हितावह माना है।

रसायन और बाजीकरण गुण के लिये चूर्ण बनाना हो तो गिलोय के स्थान में गिलोयसत्व, भिलावें के स्थान में भिलावें का मगज (गोडम्बी) और त्रिकटु के स्थान में त्रिजात लेना विशेष लाभदायक है।

मात्रा–२-४ माशे चूर्ण या घी शहद मिला हो तो ६ माशे से १ तोला, दिन में २ बार दूध के साथ लेवें।

उपयोग–इस चूर्ण को १ मास तक सेवन करने से क्षय, कास, वृद्धावस्था की निर्बलता, गंज, प्लीहा, अर्श, पाण्डु, हलीमक, श्वास, कास, पीनस, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्, अश्मरी, कुष्ठ, उदर रोग, प्रमेह, वातरोग, पित्तरोग, कफरोग, द्वन्द्वज रोग, त्रिदोषज रोग, अर्श ये रोग दूर होकर पुरुष तेज वाला, पराक्रमी, वेग और गम्भीर स्वर वाला बन जाता है।

भिलावे मिलाने से चूर्ण अधिक उग्र बनता है। वातप्रधान और कफ प्रधान प्रकृति वालों के लिये यह हितकर है। पित्तप्रकृत वालों से सहन नहीं होता एवं इसमें कामोत्तेजक गुण होने से बालकों को भी न दें। यह चूर्ण वातरोगों में अच्छा लाभ पहुँचाता है।

अनेक रोगों की उत्पत्ति पचनक्रिया की विकृति से, आहार में से योग्य रस न बनने पर होती है। रस शुद्ध और योग्य परिमाण में बने तो आगे होने वाली रक्तादि धातुएं शुद्ध और सबल बनती हैं। इन सबका आधार आमाशय और यकृतादि पचनयन्त्र अथवा जठराग्नि का विशेष स्थान रहता है। जब जठराग्नि निर्बल बनती है तब उसे प्रज्वलित करना चाहिये। यह कार्य इस चूर्ण के सेवन से सम्यक् प्रकार से होता है। इस चूर्ण की क्रिया मुख्यतः आमाशय, यकृत और वातनाड़ियों पर होती है। इस चूर्ण के सेवन से आमाशय और यकृत् उत्तेजित होते हैं। अर्थात् आमाशय रस (Gastric juice) में लवणाम्ल (Hydrochloric Acid) की उत्पत्ति अधिक होती है, यकृत् पित्त (Bile) के स्राव में वृद्धि होती है एवं वातनाड़ियाँ भी सबल बनती हैं परिणाम में आमाशय और लघु अन्त्र के भीतर होने वाली पचन-क्रिया सबल बनती है। इस हेतु से आहार में से आम और विष बनना बन्द हो जाता है, रस रक्तादि धातुओं का निर्माण सम्यक् होता है। फिर अकाल में आई हुई निर्बलता या वृद्धावस्था और विविध रोगसृष्टि ये सब दूर हो जाते हैं।

इस चूर्ण में मुख्य औषधि भिलावा है, वह पाचन अग्नि और धात्वग्नि को प्रदीप्त करता है। जठराग्नि प्रदीप्त होने से पचन क्रिया सुधरती है तथा धात्वग्नि प्रदीप्त होने पर रस रक्तादि धातुओं में रहे हुये निर्बल से सबल अणुओं की उत्पत्ति होती है। इस तरह धातुओं के भीतर होने वाली चयापचय क्रिया (Metabolism) में सुधार होता है। जिससे आमविष या धातुमल का संचय होकर जो रोग उत्पन्न हुए हों, वे दूर हो जाते हैं।

माँसक्षय–रक्त, मांसादि धातुओं का ह्रास होकर देह शोष होना (Atrophy) की उत्पत्ति अपचय क्रिया की विकृति से होती है। जब तक चय क्रिया अर्थात् नवनिर्माण और संग्रह क्रिया सबल हो तब तक देहशोष नहीं होता; किन्तु इस क्रिया की विकृति होने पर रस में से रक्त पूरा नहीं बन सकता। रक्तक्षय होने पर मुखमण्डल पर सिलवटें पड़ना, चक्कर आना, शारीरिक शिथिलता, हृत्स्पन्दनवर्द्धन (धड़कन), [illegible] पड़ना, जिह्वा सूखा रहना, मलावरोध और उदासीनता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। फिर माँसक्षय होने पर देह के वजन का ह्रास, अग्निमांद्य, स्फूर्ति का नाश, [illegible] के कार्यों में शिथिलता, निद्रावृद्धि, थोड़े के परिश्रम में थकावट आ जाना, [illegible] सहन न होना, [illegible] और मधुप्रमेहाकृति आदि लक्षण बन जाते हैं। इस रोग पर नारसिंह चूर्ण का सेवन अति हितावह है। औषधि २-४ मास तक [illegible] देना चाहिये। रोग जितना पुराना हो और अशक्ति जितनी अधिक हो उतनी ही मात्रा कम होनी चाहिये।

कास–पचनक्रिया मन्द होने पर देहबल का ह्रास होता है। फिर शीतल वायु का आघात, सूर्य के ताप में घूमकर शीतल जलपान या कफप्रकोपक आहार-विहार अथवा कीटाणुओं का आक्रमण होने पर कफधातु प्रकुपित होकर कास की संप्राप्ति कर देता है। यदि प्रथमावस्था में तीव्रता होने से शुष्क कास रहती हो तो उस अवस्था में भिलावा प्रधान, उष्णवीर्य औषधि नहीं दी जाती है। फिर जब कास का वेग कम हो जाता है और कफ सफेद और कुछ चिपचिपा बन जाता है; रोग चिरकारी या जीर्ण बन जाता है, दूषित कफ सरलता से बाहर न निकलता हो तो इस चूर्ण के अतिरिक्त कफघ्न औषधि कफकुठार, श्रृंगभस्म या कफकर्तन अथवा इतर औषधि देनी चाहिये।

सूचना–यदि खांसी के साथ ज्वर भी रहता हो, ज्वर ९९° से अधिक हो जाता हो, मुंह में [illegible] रहता हो, शीत लगकर रोंगटे खड़े हो जाते हों तो यह चूर्ण नहीं देना चाहिये।

निर्बलता–वृद्धावस्था आने पर वातनाड़ियाँ शिथिल हो जाती हैं। रोग निरोधक शक्ति निर्बल हो जाती है, पचनक्रिया मन्द हो जाती है; किसी-किसी को अच्छी निद्रा भी नहीं मिलती; आलस्य बना रहता है और शरीर थका हुआ भासता है। यदि तमाखू का व्यसन हो तो कफ धातु भी दूषित बन जाती है। ऐसी अवस्था में इस चूर्ण का सेवन शीतकाल में एकाध मास तक कराने से देह स्वस्थ और सबल बन जाती है।

कुष्ठ–भिलावे में एक प्रकार का दाहक तैल रहता है, वह रक्त में जाकर फिर स्वेद द्वारा शनैःशनै बाहर निकलता रहता है। इस हेतु से त्वचा पर बाह्य कीटाणुओं की आबादी हुई तो वह इस चूर्ण के सेवन से नष्ट हो जाती है। इस हेतु से गंज, श्वेतकुष्ठ, व्रण, विद्रधि और दद्रु आदि उपकुष्ठ इन पर लाभ पहुँचाता है।

वक्तव्य–यदि मात्रा अधिक दी जायेगी, उष्ण ऋतु होगी अथवा पित्त प्रकृति वालों को सेवन कराया जायगा तो त्वचा शुष्क हो जायगी और कण्डु की प्राप्ति होगी। कदाच ऐसा हो जाय तो औषध सेवन बन्द करावें और नारियल की गिरी खिलाने तथा नारियल या तिली के तैल से मालिश कराने पर कण्डु शमन हो जाती है।

प्लीहावृद्धि–पचन क्रिया मन्द होने या थक जाने पर आमोत्पत्ति होती है। फिर उसके विष का रक्त में शोषण होने पर ज्वर आ जाता है। ज्वरावस्था में पथ्य का योग्य पालन न होने या अन्य कारण से विषमज्वर के कीटाणुओं का प्रवेश प्लीहा में हो जाने पर प्लीहावृद्धि हो जाती है। यदि यह वृद्धि ज्वर निवृत्त हो जाने पर भी रह गई है, ज्वर न आता हो और पचनक्रिया निर्बल हो तो उस अवस्था में इस चूर्ण का सेवन कराया जाय तो रक्तद्वारा प्लीहा में भिलावें के तैल का प्रवेश होने पर कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। फिर प्लीहा वृद्धि शमन हो जाती है।

अर्श–पचनक्रिया मन्द हो जाने पर अनेकों को मलावरोध रहता है तथा उदर में वायु उत्पन्न होती है; इस अवस्था में योग्य उपचार न हो तो अफारा आता है और मलावरोध रहता है। तत्पश्चात् गुदनलिका में स्थित शिराओं पर मल और वायु का बोझा पड़कर अर्श की सम्प्राप्ति हो जाती है। अर्श के मस्से शुष्क और कठोर बन जाने पर चुभते हैं। देह कृश और निर्बल हो जाती है। इन अफारा मलावरोध और अर्श रोगों पर इस चूर्ण का सेवन तक्र के साथ कराया जाता है। मिर्चादि मसाले, द्विदल धान्य और बद्धकोष्ठ करने वाले पदार्थों का सेवन कम कर देने से रोग का सत्वर दमन होता है और देह सबल बन जाती है।

पाण्डु–पचनक्रिया दूषित होने, उदर में कृमि होने और विषमज्वर की संप्राप्ति होने पर रस-रक्तादि धातुएं भी दूषित हो जाती हैं। फिर रक्त में वर्ण द्रव्य अथवा रक्त का परिमाण ही कम हो जाता है जिससे पाण्डु और हमीलक रोग की संप्राप्ति होती है। यदि ज्वर में हेतु कृमि हो तो पहिले कृमिघ्न औषधि लेकर उनको दूर कर देना चाहिये। ज्वर विष रहा हो तो पहिले ज्वरघ्न औषधि का सेवन कर उसका निवारण करना चाहिये। इस तरह उत्तान दोष को दूरकर फिर लीन विष को जलाने, रक्त बढ़ाने और शरीर को सबल बनाने के लिये नारसिंह चूर्ण का सेवन कराया जाता है।

श्वासरोग–इसकी उत्पत्ति श्वसन में विकृति होने पर होती है, इसके कारणों में कफ, धातु की विकृति, शुक्रक्षय और पचनक्रिया दूषित होना ये मुख्य हैं। इन तीनों कारणों पर इस चूर्ण का अच्छा असर होता है। इस हेतु से कफप्रधान श्वासरोग दूर हो जाता है। यदि धूम्रपान का व्यसन हो और सेवन चालू रहे तो इस चूर्ण का सेवन करने पर पूरा लाभ नहीं मिलता, यदि कफ रहित शुष्क वात-पित्तप्रधान श्वासरोग हो तो थोड़ा-सा परिश्रम भी सहन नहीं होता। परिश्रम से हृदय में धड़कन होती हो तो इस चूर्ण का कुछ विपरीत प्रभाव पड़ता है।

पीनस–भिलावे का तैल जिस समय तैल ग्रन्थियों से निकलता है, उस समय श्वसन यन्त्र में या नासापथ में रहे हुये कीटाणु कफ और माँसकोथ का नाश होता है। इस हेतु से पीनस रोग में भी इस चूर्ण से लाभ पहुँच जाता है। नस्यादि बाह्योपचार भी आवश्यकता अनुसार करते रहना चाहिये।

भगन्दर–रोग नया हो और गुदद्वार की रक्तवाहिनी बहुत दूर तक दूषित न हुई हो तो बाह्योपचार (मर्यादि बेल के कल्क की पुल्टिस) के साथ इस चूर्ण का सेवन कराया जाय तो पूयोत्पत्ति बन्द हो जाती है और माँसकोथ में भी लाभ पहुँचता है। कारण भिलावे का तैल पूय में रहे हुये कीटाणु और कोथ में उत्पन्न कृमियों को नष्ट कर देता है, यह क्रिया रक्त में से भिलावे का तैल बाहर निकलने पर होती है।

अश्मरी–यकृत् पित्त की रचना में विकृति या यकृत् पित्त गाढ़ा बनने पर अश्मरी द्रव्य की उत्पत्ति होती है। फिर द्रव्य वृक्क या मूत्राशय में संचित होकर अश्मरी बन जाती है। इस अश्मरी के कारणरूप यकृत पित्त की रचना को यह चूर्ण सुधारता है। इस हेतु से अश्मरी की उत्पत्ति को रोकने के लिए प्रथमावस्था में यह चूर्ण हितावह है।

उदररोग–इसकी सम्प्राप्ति अग्निमांद्य होने के पश्चात् होती है। पचन विकृति के साथ अन्य सहायक अवयव या धातु-विकृति के भेद से उदररोग के ८ प्रकार पृथक् हो जाते हैं। इन ८ प्रकारों में से वातोदर, कफोदर, यकृदाल्युदर और प्लीहोदर की प्रथमावस्था में यह चूर्ण सहायक औषधि रूप से व्यपहृत हो सकता है। कारण भिलावा, चित्रक मूल और त्रिकटु का प्रभाव यकृत् और प्लीहा की क्रिया पर तथा वात और कफ विकृति पर होता है। इनके अतिरिक्त शतावरी, गोखरू और तिल भी वातनाड़ियों को पुष्ट करते हैं।

प्रमेह–प्रमेह के २० प्रकार शास्त्र में कहे हैं। इन सब पर चूर्ण का उपयोग हो, ऐसा नहीं कह सकेंगे। हस्तिमेह, जिसमें मूत्र का परिमाण अत्यधिक होता है और अधिक बार होता है, रात्रि को निद्रा में भी बार-बार उठना पड़ता है। उसमें मूत्र की अधिक उत्पत्ति इस चूर्ण के सेवन से रुक जाती है। यदि ज्वरादि की उष्णता के हेतु से मूत्र में, आम, कफ, लसीका आते हों, तो उन्हें दूर करने में यह चूर्ण सहायक होता है। उसी तरह शुक्राशय को उष्णता पहुँचने से शुक्र पतला होकर शुक्रमेह हो गया हो (मूत्र के साथ बाहर निकलता हो) तो इस चूर्ण के सेवन से विष नष्ट हो जाने से वह भी दूर हो जाता है।

जिन प्रमेहों में वृक्क और मूत्राशय अपना कार्य योग्य रूप से न कर सकते हों, उन प्रमेहों में या मूत्रकच्छ्र में इसका सेवन कराना हितकर नहीं हो सकेगा।

इक्षुमेह–इसमें अग्न्याशय का अंकुश यकृत् पर से हट जाने से यकृत निरंकुश होकर अत्यधिक शक्कर उत्पन्न करता है। इसमें विकृति अन्य प्रकार की होती है। अतः इस विकार पर इस चूर्ण का उपयोग नहीं हो सकता।

भिलावा सामान्यतः वातज और कफज विकृति पर अति लाभदायक है। यह इस चूर्ण में मुख्य औषधि है। साथ-साथ चित्रकमूल, त्रिकटु आदि सहायक औषधियों में भी वातकफघ्न गुण रहा है। इस हेतु से वात और कफ धातु की विकृति से उत्पन्न रोगों के पूर्वरोग और प्रथमावस्था में यह चूर्ण व्यवहृत होता है।

पित्तप्रकोप में सामान्यतः भिलावा, त्रिकटु, चित्रकमूलादि ये औषधियाँ हानि पहुँचाती हैं, किन्तु इन औषधियों की उग्रता को दमन करने और पित्त को शमन करने के लिये गिलोय, शतावरी, विदारीकन्द, मिश्री और घृत मिलाया है। इस हेतु से वातकफ की प्रधानतासह गौण पित्तप्रकोप हो तो इस चूर्ण का उपयोग हो सकता है। पित्तप्रकोप होने पर गिलोय के स्थान में गिलोयघन या गिलोय सत्व तथा भिलावे के स्थान पर गोडम्बी (भिलावे की गिरी) का उपयोग करना विशेष हितावह माना जायेगा।

इस चूर्ण में शतावरी, बड़े गोखरू, छिलके रहित तिल, विदारीकन्द और वाराहीकन्द ये सब औषधियां मिलाने से यह चूर्ण रसायन, शुक्रवर्द्धक और कामोत्तेजक गुण दर्शाता है। कामोत्तेजना के लिये यथार्थ में इस चूर्ण का सेवन कम कराया जाय तो अच्छा। कारण, जितनी कामोत्तेजना होती है, उतना ही वीर्य का अपव्यय होता है। फिर परिणाम में हानि होती है।

कष्टार्त्तव–जिन स्त्रियों को मासिक धर्म असमय पर होता हो, उस समय वेदना होती हो और रजःस्राव कम होता हो, फिर उसी हेतु से शारीरिक निर्बलता, पाण्डुता, मस्तिष्क में दर्द रहना, दृष्टिमांद्य, अरुचि, मलावरोध, आलस्य बना रहना और प्रदरादि लक्षण प्रतीत होते हों, उन रुग्णाओं को नारसिंह चूर्ण का सेवन कराने पर लाभ पहुँचता है।

मासिक धर्म की अप्राप्ति–कतिपय नवयुवतियों को आयु बढ़ने पर भी बीजाशय या समग्र प्रजनन संस्थान का योग्य विकास न होने से मासिक धर्म का आरम्भ नहीं होता। उनका देखाव छोटी कुमारियों के सदृश भासता है। देह कृश और निस्तेज होती है एवं स्तनों में मांस वृद्धि नहीं होती। [illegible] यह चूर्ण, त्रिफला चूर्ण और मधुमालिनी के साथ दिया जाता है।

सूचना–(१) यदि उबाक, वमन, मुखपाक, छाती में दाह, मुँह में कड़वावन, स्वेदाधिक्य, अधिक उत्ताप, व्याकुलता, निद्रानाश, और क्रोधाधिक्य पैत्तिक लक्षण प्रबल हों तो इस चूर्ण का सेवन नहीं कराना चाहिये।

(२) अधिक प्रवास, अधिक सूर्य के ताप या अग्नि का सेवन करने वालों को यह चूर्ण नहीं देना चाहिये एवं ग्रीष्म ऋतु और शरद् ऋतु में भी इस चूर्ण का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(३) इस चूर्ण के उपयोग काल में अधिक मिर्चादि, गरम पदार्थ, गरम-गरम चायादि पेय, धूम्रपान, मांसाहार, स्त्री समागम, चिन्ता और क्रोधादि से हो सके उतना बचना चाहिये।

(४) शुष्ककास, [illegible] (कफरहित खांसी प्रकोप), अम्लपित्त, नूतनपित्त, नूतनज्वर, अतिसार, ग्रहणी, पेचिस, निद्रानाश, विदग्धाजीर्ण, मूत्रकृच्छ्र, शुक्र का अति पतलापन और अति उष्णता इन रोगों से पीड़ितों को नारसिंह चूर्ण नहीं देना चाहिये।

(५) इस चूर्ण का सेवन १६ वर्ष से कम आयु वालों को नहीं कराना चाहिये एवं सगर्भा स्त्री और अति वयोवृद्धों को भी नहीं देना चाहिये।

(६) इस चूर्ण के सेवन काल में बारम्बार मूत्र के परिमाण और वर्ण पर लक्ष्य देते रहना चाहिये। यदि मूत्र परिमाण अति कम और वर्ण पीला हो जाता है, अति स्वेद आने लगता है और दाह होता है, तो इसे तुरन्त बन्द कर देना चाहिये और विकार शमनार्थ नारियल का जल पिलाना चाहिये।

(७) वात नाड़ियों या सुषुम्णाकाण्ड (पीठ की हड्डी) से सम्बन्ध वाले रतिकेन्द्र में चेतनाधिक्य (Hyperesthesia) है तो नारसिंह चूर्ण या भिलावे मिश्रित अन्य औषधि का सेवन नहीं कराना चाहिये। अन्यथा स्वप्नदोष बार-बार होता रहेगा।

(८) [illegible] चूर्ण के सेवन करने पर तुरन्त गरम-गरम चाय, दूध, कॉफी सेवन नहीं करना चाहिये। अन्यथा भालातक से मुँह में शोथ आ जायेगा।

(२८) कृमिघ्न चूर्ण

विधि–करंज की गिरी, पलास के बीज, किरमाणी अजवायन, कपीला और बायविडंग सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें।

मात्रा और उपयोग–२ से ३ माशे, दिन में ३ बार। गुड़ मिलाकर गुनगुने जल से लेवें। फिर दूसरे दिन सुबह एरण्ड तैल का जुलाब लेने से उदर कृमियों का नाश होता है।

(२९) हिस्टीरियानाशक चूर्ण

विधि–भुनी हींग २ तोले, बच २ तोले, जटामांसी २ तोले, कूठ ४ तोले, कालानमक ४ तोले और बायविडंग १६ तोले लें। सबको मिलाकर कपड़छन चूर्ण करें।

मात्रा–१ से ३ माशे, दिन में ३ बार। गुनगुने जल के साथ दें।

उपयोग–इस चूर्ण का धैर्यपूर्वक एक दो मास तक सेवन करने से हिस्टीरिया रोग दूर होता है, और उदरवात, कृमि, निद्रा न आना इत्यादि विकारों का भी शमन हो जाता है।

इस चूर्ण में मुख्य औषधि हींग है। हींग हिस्टीरिया और इतर समस्त आक्षेपजनक रोगों में अति उपकारक है। इसे हिस्टीरिया की सब अवस्थाओं में प्रयुक्त कर सकते हैं। गर्भाशय के विकार जनित कम्पवात और अपस्मार पर लाभ पहुँचाती है।

बच और जटामांसी वातशामक और मस्तिष्क के लिए अति लाभदायक है। इन औषधियों के हेतु से हिस्टीरिया रोगिणी की अशांति कम होती है और निद्रा भी आ जाती है। कूठ आमाशय आदि स्थानों के दोषों को दूर करता है तथा आक्षेप निवारक है। कालानमक अग्निप्रदीपक और दोषपाचक है। बायबिडंग कृमिनाशक, उदरशोधक और अनुलोमक, रुकी हुई वायु को बाहर फेंकने में सहायक होता है।

(३०) प्रदरान्तक चूर्ण

विधि–चिकनी सुपारी, माजूफल, चौलाई की जड़, धाय के फूल, सोना-गेरु, मोचरस, पठानी लोध और राल सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। फिर सबके बराबर मिश्री मिलावें।

मात्रा–६ माशे से १ तोला। चांवलों के धोवन के साथ दिन में २-३ बार दें।

उपयोग–यह चूर्ण गर्भाशय आदि प्रजनन यन्त्र पर शामक असर पहुँचाता हैं। इसके सेवन से रक्तप्रदर और श्वेतप्रदर दूर होते हैं तथा गर्भाशय और बीजाशय सुदृढ़ बनते हैं।

प्रदर के श्वेत और रक्त ये दो भेद मुख्य हैं। अन्य रीति से जल सदृश प्रवाही उष्ण स्राव, गाढ़ा स्राव, पीलास्राव, रक्तस्राव और दुर्गन्धमय पूयमिश्रित स्राव ये ५ प्रकार होते हैं। रोगारम्भ में उष्णता अथवा प्रदाह होने पर जल जैसा प्रवाही स्राव होता है। वहीं जीर्ण होने पर या रोग चिरकारी होने पर गाढ़ा सफेद स्राव होता है। जीर्णावस्था में स्राव पीला बन जाता है। किसी रक्तवाहिनी से सम्बन्ध होने पर या बीजाशय से आने वाली नलिकाओं में से रक्तमय या रजोमय स्राव होता है। गर्भाशय में कर्कस्फोट होने, शिरा टूटने या क्षत होने पर भी स्रावरक्तमय बन जाता है। बीजाशय, बीजवाहिनी, गर्भाशय या प्रजनन मार्ग में क्षत होकर पाक होने या विद्रधि बनने पर पूयप्रधान, दुर्गन्धमय स्राव होता है। इनमें से पहले ३ प्रकारों पर इस चूर्ण का उपयोग होता है। चौथे रक्तमय प्रकार में कर्कस्फोट या अन्य अधिक विकृति न हुई हो और रोग अति जीर्ण न हुआ हो तो इस पर भी इस चूर्ण के सेवन से लाभ पहुँचता है।

वक्तव्य–(१) यदि गर्भाशय में अधिक मल संग्रह हुआ हो या कीटाणु प्रकोप हो तो उत्तरबस्ति द्वारा उसे धोते रहना चाहिये। धोने के लिये और पञ्चम प्रकार के तैल बस्ति आदि उपचार के लिये किसी स्त्री चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिये।

(२) शराब, गरम-गरम चाय, अति गरम मसाला, राई आदि दाहक पदार्थ और देर से पचने वाले भोजनादि का त्याग करना चाहिये। गर्भाशय शिथिल होने पर ब्रह्मचर्य का पालन करना हितावह है।

इस चूर्ण के सब द्रव्य कषाय रस और ग्राही गुणप्रधान हैं। अतः मन्दाग्नि वालों को मात्रा कम देनी चाहिये। कारण, हरड़ के अतिरिक्त सब कषाय रसप्रधान औषधियाँ प्रायः पचन क्रिया मन्द करती हैं, किन्तु कषाय रस और ग्राही गुणप्रधान औषधियां बहुधा शामक असर पहुँचाती हैं। इनमें इस प्रयोग की औषधियों का शामक गुण प्रजनन यन्त्र पर मुख्य होता है।

सूचना–यदि प्रदर के स्राव से गर्भाशय में कोथ होने से मुर्दे सदृश दुर्गन्ध आती हो तो उस पर चूर्ण का उपयोग नहीं करना चाहिये।

(३१) चन्दनादि चूर्ण

विधि–सफेद चन्दन, जटामांसी, लोध, खस, कमलकेशर, मिश्री, नागकेशर, बेलगिरी, मोथा, सोंठ, नेत्रवाला, पाठा, कुड़ेकी छाल, धाय के फूल, इन्द्रजौ, अतीस, रसोंत, आम की गुठली की गिरी, जामुन की गुठली की गिरी, मोचरस, कमलगट्टों की गिरी, लज्जालू, छोटी इलायची और अनार के फल की छाल इनको समभाग मिला कूट कपड़छन चूर्ण बना लेवें। (भै.र.)

मात्रा–४ से ६ माशे, दिन में २ बार लेवें। ऊपर ५-१० तोलें चाँवलों के भिगोये जल में ३ माशे शहद मिलाकर पीवें।

उपयोग–यह चूर्ण प्रदर, रक्तातिसार, रक्तार्श और रक्तपित्त रोग को दूर करता है।

इस चन्दनादि चूर्ण में गर्भाशय पर असर पहुँचाने के अतिरिक्त चिपके हुये आम मल (गर्भाशय में संगृहीत प्रदर मल) और कफादि को खोलकर बाहर फेंक देने का भी गुण अवस्थित हैं एवं इस चूर्ण में चन्दन, जटामांसी आदि सुगन्धमय कीटाणुनाशक द्रव्यों की प्रधानता है। इस हेतु से कीटाणु विषप्रकोपज प्रदाह होकर उत्पन्न होने वाले रक्तस्राव या पूयस्रावमय नूतन प्रदर पर इस चूर्ण का प्रयोग होता है। स्राव दुर्गन्धमय होने पर इस चूर्ण के उदर सेवन के अतिरिक्त इस चूर्ण के क्वाथ या फिटकरी के जल अथवा बोरिक एसिड मिले हुए जल से धोने पर बाह्यशुद्धि होती है। इनमें फिटकरी के जल से गर्भाशय की शुद्धि और आकुंचन भी होता है। अतः गर्भाशय की शिथिलता होने पर फिटकरी के जल का उपयोग करना विशेष हितावह है।

प्रदर के समान रक्तस्राव प्रधान अतिसार, अर्श और रक्तपित्त रोग में शामक असर पहुँचाने और रक्तस्राव को बन्द कराने के लिये इस चूर्ण का प्रयोग किया जाता है। रक्तातिसार में चावलों की यवागू, रक्तार्श में मट्ठा और रक्तपित्त में आंवलों के हिम या फाण्ट की योजना अनुपान रूप से करने पर लाभ जल्दी पहुँचता है।

(३२) रजः प्रवर्त्तक चूर्ण

विधि–भारंगी, कालीमिर्च, पीपल और सोंठ ये सब ८-८ माशे और भुनी हींग ३ माशे लें। सबको पीसकर चूर्ण करें।

मात्रा–२ से ३ माशे। ब्राह्मी १ तोला और काले तिल ५ तोले के क्वाथ के साथ दें। मासिक धर्म आने के समय में १० दिन पहले से रोज सुबह देवें।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन से मासिक धर्म नियमित रूप से आने लगता है, और कष्ट नहीं होता। मासिक धर्म आने पर चूर्ण देना बन्द करें। इस रीति से ४-६ मास तक देते रहने से मासिक धर्म की रुकावट, शूल, कमर में दर्द, अरुचि, बैचेनी आदि दूषित रक्त की विकृति से होने वाली पीड़ा दूर होती है।

बीजाशय नलिका में अवरोध होने से जब रक्तस्राव में कष्ट होता है तथा पूरा स्राव नहीं होता। इसी हेतु से मस्तिष्क में भारीपन और वेदना, दृष्टिमांद्य, शारीरिक निर्बलता और पाण्डुतादि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर इस चूर्ण का प्रयोग किया जाता है।

वक्तव्य–यह औषधि सामान्यतः १५ से ३५ वर्ष की आयु वाली स्त्रियों को दी जाती है। ५० वर्ष की आयु में प्रायः रजोधर्म बन्द होता है। ऐसे समय पर उत्पन्न विकारों पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। यदि रुग्ण का शरीर निर्बल हो, पाण्डुरोग से पीड़ित भी रहती हो तो मासिक धर्म के ५ वें दिन से सुवर्णमालिनी बसन्त या लोहप्रधान औषधि का सेवन १५-१५ दिन तक कराते रहना चाहिये।

मासिक धर्म के दिनों में मलावरोध नहीं रहना चाहिये। भोजन लघु पौष्टिक लेवें। ३ दिन तक स्नान न करें और शीतल वायु का सेवन भी न करे, नेत्रों को अधिक कष्ट न देवें। शान्ति से लेटे रहना विशेष हितावह है।

सूचना–यदि रुग्णा को मासिक धर्म काल में मलावरोध हो तो सनाय या स्वादिष्टविरेचन चूर्ण देकर उदरशुद्धि करा देनी चाहिये। अन्यथा रजः स्राव पूरा नहीं हो सकेगा।

(३३) रक्तप्रदररिपु चूर्ण

विधि–पुराने ऊनी वस्त्र या ऊन को घड़े में बन्दकर, जलाकर काली राख करें, सफेद राख नहीं होनी चाहिये या खुले मैदान में खुले घड़े में रख कर जलावें, निर्धूम होने पर ढक देने से राख हो जाती है।

मात्रा–१ से ३ माशे तक। दिन में २ बार ठण्डे जल के साथ दें।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन से घोर रक्तप्रदर में आराम होता है। बड़ी-बड़ी औषधियों से अच्छी न हुई अनेक रुग्णाएँ इस औषधि से अच्छी हो गयी हैं। यह चूर्ण ६ माशे गुनगुने जल में घोलकर पिला देने से उदरशूल पर भी तत्काल लाभ पहुँचाता है।

(३४) बालघोरकासघ्न चूर्ण

विधि–काली तमाखू के पत्तों के डण्ठल २० तोले साफ करके लें। शाखा का कोई भाग आ गया हो तो निकाल डालें। फिर एक-एक इञ्च के टुकड़े कर मिट्टी के बरतन में रखकर जलावें। निर्धूम होने पर ऊपर ढक्कन लगा देवें, जिससे कोयले हो जायँ। राख न होनी चाहिये। फिर सैंधानमक २० तोले मिलावें, दोनों को कूट कपड़छान कर मजबूत डाटवाली शीशी में भरें। वर्षा ऋतु में जलाने, कूटने और शीशी में भरने की क्रिया एक दिन में ही कर लेनी चाहिये, अन्यथा सर्दी पाकर औषधि निर्बल हो जायेगी। (आ. नि. मा.)

मात्रा–१ से ३ रत्ती तक, दिन में ३ बार देवें।

अनुपान–बालकों के श्वास, ज्वर और अतिसार और व्याधियों में नागर बेल के पके १ पान और १ से २ रत्ती अजवायन के चूर्ण को

३-४ माशे जल में मिलाकर बारीक पीसें। फिर छान जल को गुनगुनाकर औषधि मिलाकर पिला दें।

काली खांसी में नागरबेल के पक्के पान और २ इलायची (छिलका सहित) को साथ में मिला जल डालकर पीसें। फिर छान जल को गुनगुना कर औषधि मिलाकर दिन में २-३ बार पिलावें।

सामान्य खांसी पर शहद में चटावें। साथ में प्रवालपिष्टी १ रत्ती मिलावें।

उपयोग-इस चूर्ण के सेवन से बालकों की काली खांसी (Whooping Cough), सादा खाँसी, श्वास, ज्वर, अतिसार, हरे रंग के दस्त आदि रोग बहुत जल्दी दूर होते हैं।

(३५) बालअतिसारहर चूर्ण (गुलाबी)

विधि-आम की गुठली की गिरी, जामुन की गुठली की गिरी, मोचरस और खस १०-१० तोले तथा शुद्ध सिंगरफ १ तोला लें। सबको कूट कपड़छन चूर्ण बना लें। आम की ऋतु में बनाने से चूर्ण अच्छा बनता है। फिर विशेष गुणकारी नहीं बनता। (आ.नि.मा.)

मात्रा-१ से ३ रत्ती, दिन में ३ बार। जल के साथ देवें।

उपयोग-इस चूर्ण के सेवन से बालकों के अतिसार, पेचिश और ज्वर आदि रोग दूर होकर बालक पुष्ट बनते हैं।

(३६) बालमित्र चूर्ण

प्रथम विधि-कमल की केशर, लजालू, धाय के फूल और मोचरस को समभाग मिलाकर चूर्ण करें। (वृन्द)

मात्रा-१ से ३ रत्ती, दिन में ३ बार। जल या शहद से दें, अथवा जल में उबाल छानकर पिलावें।

उपयोग-यह चूर्ण बालकों के अन्त्र की उग्रता का शमन कर रक्तातिसार को दूर करता है।

दूसरी विधि-लोध, इन्द्रजव, धनियाँ, आँवला, नागरमोथा और नेत्र बाला सबको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें।

मात्रा-१ से३ रत्ती, दिन में ३ बार। शहद से चटावें।

उपयोग-यह पूर्ण बच्चों की प्रवाहिका, उदरपीड़ा और ज्वर को दूर करता है।

तीसरी विधि-१० तोले कुटकी के छोटे-छोटे टुकड़े कर तवे पर पंदाग्नि से भूनें, कलछी से बराबर चलाते रहे। जल न जाय, यह सम्हाले। अच्छी रीति से भून जाने पर उतार लें। शीतल होने पर बारीक चूर्ण करें। इस चूर्ण के मूल ग्रन्थकर्त्ता ने "कटुभर्जित चूर्ण" नाम रखा है।

मात्रा-१ से ४ रत्ती (बड़े मनुष्यों को २ से ४ माशा), दिन में ३ बार गुनगुने जल के साथ अथवा मण्डूर भस्म मिलाकर गुड़ के साथ दें।

उपयोग-यह चूर्ण बच्चों के यकृद् की वृद्धि, मलावरोध, ज्वर, सुस्ती, उदर विकार, सूजन आदि को ४-६ रोज में दूर करता है। बड़े मनुष्यों को १ से २ माशे तक देना चाहिये।

बालकों को शीत लग जाने या माता के आहार-विहार में भूल होने अथवा भैंस आदि के दूध पिलाने से यकृत् की वृद्धि होकर बुखार आ जाता है। फिर उदर में कुछ भारीपन मालूम पड़ता है तथा मलावरोध, उत्साह का अभाव और निस्तेजता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उस पर इस चूर्ण का प्रयोग दिन में ३ बार करते रहने से एक-दो दिन में उदर शुद्धि होकर ज्वर का शमन हो जाता है और यकृत् में लाभ होने लगता है। फिर ५-७ दिन में यकृत् मूल स्थिति में आ जाता है।

वक्तव्य-यदि यकृत्-वृद्धि अत्यधिक हो गई हो, तो बालकों को उबले हुए दूध में नींबू का रस डालकर फाड़े, फिर जल छानकर पिलाते रहना चाहिये। दूध, अन्न आदि सब आहार बन्द कर देना चाहिये।

यदि बड़े मनुष्य को जीर्ण मलावरोध और आमवृद्धि होकर अग्निमाँद्य हुआ हो तो इस चूर्ण के साथ सज्जीखार (Soda-bi Carb) मिलाकर दिन में एक या २ बार दिया जाता है।

यदि यकृद् वृद्धि, यकृद् में रक्तसंग्रह या प्रदाह हुआ हो तो इस चूर्ण के साथ नौसादर २-२ रत्ती मिलाकर दिन में ३ बार देते रहना चाहिये। ऐसी अवस्था में मात्रा कम दी जाती है।

यदि बड़ी आयु वालों को ज्वरादि रोग में उदर शुद्धि के लिये बालमित्र चूर्ण देना हो तो लगभग ३ माशे और सोंठ का चूर्ण १ माशा मिला, सुबह जल के साथ देना चाहिये। सोंठ का चूर्ण मिलाने से उदर में वेदना नहीं होती आम को निकालने में सहायता मिल जाती है।

श्री वैद्यराज कान्तिलालजी आचार्य कुटकी को जला, काले कोयले करके बालकों के कास पर उपयोग में लेते रहते थे। वे इसे दिन में २ या ३ बार २-३ रत्ती शहद के साथ देते थे। इसे उन्होंनें कृष्ण चूर्ण संज्ञा दी है। इस चूर्ण के सेवन से बालकों को वमन होकर कफ सरलता से निकल जाता है और कास का शमन हो जाता है।

श्री वैद्यराज नगीनदासजी इस चूर्ण का उपयोग अत्यधिक परिमाण में करते थे। इस चूर्ण में से कड़वावन कम कराने और गुण में वृद्धि कराने के लिये वे भूनी हुई कुटकी १० तोला, कालानमक ५ तोला, कालीमिर्च २॥ तोला और भाँग १। तोला मिलाकर मिश्रण बना लेते थे। इस मिश्रण में से बच्चों को एक माशे और बड़े मनुष्यों को ३ से ६ माशे का क्वाथ देते हैं। जब विषमज्वर में मलावरोध हो और उदर में

कच्चा आहार हो, तब उदर शोधन करके ज्वर शमनार्थ यह चूर्ण दिया जाता है। विषम ज्वर में सोड़ाबाई कार्ब भी १-१॥ माशे तक मिला देते हैं। उसके अतिरिक्त अपचन या उदर में अफारा होने पर नौसादर पुष्प भी २ रत्ती मिला देते हैं।

बालकों के ज्वर, अपचन, उदरशूल उदरकृमि, कामला और यकृद्वृद्धि पर यह निर्भय रूप से व्यवहृत होता है।

सूचना–ज्वर होने पर भोजन में दूध के अतिरिक्त कुछ भी नहीं देना चाहिये। यकृद्वृद्धि पर और कामला के रोगी को घी नहीं देना चाहिये।

इस चूर्ण में विरेचन गुण होने से छोटे या बड़े सभी को इस चूर्ण के सेवन के पश्चात् लघु भोजन, खिचड़ी, दूध, भात या तक्र लेना चाहिये।

चौथी विधि–सोंठ, नागरमोथा, बेल की गिरी, चित्रकमूल, पीपलामूल और बड़ी हरड़ का छिलका इन ६ औषधियों को समभाग बारीक चूर्ण करें। (वृ. नि. र.)

मात्रा–१ से ४ रत्ती, दिन में ३ बार । शहद के साथ चटावें।

उपयोग–यह चूर्ण बालकों की कफज ग्रहणी को दूर करता है।

पांचवीं विधि–हरड़, बच और कूठ को समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें।

मात्रा–आध-आध रत्ती, दिन में ६ बार। शहद मिलाकर माता के दूध के साथ दें।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन से बालकों को तालुपातन (गला पड़ना) रोग नष्ट होता है।

(३७) भस्मकनाशक चूर्ण

विधि–हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, बायविडंग, पीपल, मिश्री और अपामार्ग के बीज इन ८ औषधियों को समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (आ.भि.)

मात्रा–६ माशे से १ तोले तक शहद, और घृत के साथ। दिन में ३ बार चटावें।

उपयोग–यह चूर्ण आमाशय पर अवसादक असर पहुँचाता है, जिससे बढ़ी हुई अग्नि कम होकर भस्मकरोग शांत हो जाता है।

(३८) चिन्तामणि चूर्ण

विधि–रास्ना, खरेंटी, पद्मकाष्ट, देवदारू, हरड़, बहेड़ा आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल और बायविडंग इन सब औषधियों को समभाग मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करें।

मात्रा–२ से ३ माशे, शहद और घी के साथ मिलाकर दिन में २ बार चाटें। घी १ से २ माशे तक पहले मिलावें। फिर चाटने लायक शहद मिला लेवें।

उपयोग–यह चूर्ण वात-प्रकोप और पंचनेन्द्रिय संस्थान की विकृति को सुधार कर श्वास और कास रोगों को दूर करता है।

(३९) वासादि चूर्ण

विधि–अडूसे के ५ सेर पत्ते लेकर उनके बीच में रही हुई नसें निकला डालें। फिर २० सेर जल में मिलाकर गरम करें। पश्चात् कालानमक और सैंधानमक ४०-४० तोले तथा जवाखार और पापड़खार २०-२० तोले डालें। पत्तें पक जायें और पानी जल जाय, तब कड़ाही को उतार लें। फिर पत्तों को सुखाकर कपड़छन चूर्ण करें। (आ. नि. मा.)

मात्रा–२ से ८ रत्ती, दिन में ३ बार। शहद या नागरबेल के पान अथवा घी में मिलाकर देवे। जल से देना हो तो भी चल सकेगा।

उपयोग–इस चूर्ण के उपयोग से नई और पुरानी खाँसी, सूखे हुए कफ वाली खाँसी, अति कफवाली खाँसी दूर होती है। सामान्य औषध होने पर भी अच्छा लाभ पहुँचाती है।

नोट–चूर्णों की विस्तृत जानकारी हेतु संस्था द्वारा प्रकाशित "नित्योपयोगी चूर्ण संग्रह" का अवलोकन करें, जो इसी पुस्तिका का अंग है।

(४०) राजरेचन

विधि–जुलाफा (जलफ) हरड़ ५ तोले, शक्कर ५ तोला लें। दोनों का कपड़छन चूर्ण बनालें।

मात्रा–४ से ६ रत्ती जल के साथ, आवश्यकतानुसार समय पर दें।

उपयोग–बिना जी मिचलाये व बिना उदरशूल हुये २-३ दस्त हो जाते हैं। (वैद्य बद्रीनारायण)

(४१) अजमोदादि चूर्ण

द्रव्य–अजमोद, बायविडंग, सैंधानमक, देवदारु, चित्रकमूल, पिप्पली मूल, सौंफ, पीपल, कालीमिर्च ये औषधियाँ १-१ तोला, हरड़ ५ तोला, वृद्धदारु १० तोले, सोंठ १० तोले लें।

विधि–इन सबको कपड़छान चूर्ण कर बोतल में भर लें या चूर्ण के समभाग गुड मिलाकर १॥-१॥ माशे की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–चूर्ण १ से २ माशे तक। गोली १ से ३ तक। दिन में २ से ३ बार निवाये जल के साथ।

उपयोग–यह अजमोदादि चूर्ण जीर्ण आमवात के लिए उत्तम औषधि है। आमवातज वेदना, आमवातज शोथ, संधिपीड़ा, गृध्रसीवात (जंघा के पिछली ओर रही हुई गृध्रसी नाड़ी में भयंकर वेदना) कटिवात, गुदस्थान की पीड़ा, जंघा में वेदना, तूनीवात और प्रतितूनीवात (छोटी आंत से नीचे की ओर गति वाला तथा नीचे से छोटी आंत तक गति करने वाली वायु), विश्वाची (हथैली और हाथ की अंगुलियों का वातरोग) तथा कफ वातप्रकोप आदि जीर्ण विकारों में यह चूर्ण अति हितकर है।

(४२) तालीसादि चूर्ण (ग्रहणी)

द्रव्य–तालीस पत्र, बच, वंशलोचन, पीपल, पीपलामूल, चव्य , चित्रक मूल, सोंठ, कालीमिर्च, हल्दी, लौंग, धाय के फूल, अतीस, जायफल, अजवायन, पाठा, मोचरस, इमली, सैंधानमक, समुद्रनमक, अम्लबेंत, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पलाशबीज, जटामांसी, नागरमोथा, खस, इन्द्रायण की जड़, हुलहुल, बेलगिरी, अजमोद, कचूर, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, कोकम, कालानमक, साँभर नमक, विडनमक, सफेद जीरा, कालाजीरा, बायविडंग, भूमिआँवला, कूठ, नागकेशर यह ४६ औषधियां १-१ तोला, असगंध ४६ तोले, भाँग शुद्ध १२ तोले, मिश्री १८४ तोले।

विधि–भाँग को शुद्ध करें। काष्ठादि औषधियों को पृथक् कूटकर कपड़छान चूर्ण करें फिर मिश्री का चूर्ण मिलाकर एक जीव करें।

मात्रा–१ से २ माशे तक दिन में २ से ३ बार। बालकों के लिए १ से २ रत्ती।

उपयोग–यह तालीसादि चूर्ण उत्तम दीपन, पाचन, ग्राही, कीटाणुनाशक, वेदनाशामक, निद्राप्रद, समशीतोष्ण, कफघ्न, वातहर और बल्य है। ग्रहणी, क्षय कास, श्वास, अरुचि, प्लीहावृद्धि, अर्श, अतिसार, जीर्णज्वर, वातविकार, मेदोवृद्धि, प्रमेह, तीव्र आमस्मार, पाण्डु, गुल्म, उदरशूल, अफारा, कफप्रकोप, पित्तविकार, उन्माद आदि रोगों का नाशक है। बालकों के लिए यह विशेष हितावह है। वाणी, पुष्टि, आयु, बल, कान्ति, बुद्धि, स्मृति, मेधा (धारण शक्ति) और प्रसन्नता को बढ़ाता है।

(४३) नारायण चूर्ण

द्रव्य–अजवायन, हाऊबेर, धनिया, सोया, कलौंजी, कालाजीरा, पीपलामूल, अजमोद, कचूर, बच, चित्रकमूल, सफेदजीरा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सत्यानाशी की जड़, हरड़, बहेड़ा, आंवला, यवक्षार, सज्जीक्षार, पुष्करमूल, कूठ, सैंधव, समुद्रलवण, बिडलवण, कालानमक, सांभर नमक, बायविडंग यह २९ औषधियाँ १-१ तोला, दंतीमूल ३ तोले, निसोत २ तोले, इन्द्रायण २ तोले, सातलाथूहरपान ४ तोले।

विधि–सब द्रव्यों को मिला कूटकर चूर्ण करें।

वक्तव्य–इस चूर्ण में गुण वृद्धि के लिए हम थूहर के दूध की १ भावना देते हैं। योग रत्नाकर ने स्वर्णक्षीरी के स्थान पर कड्कुष्ट (उसारेरेवन) लिया है, यह अधिक विरेचन कराता है एवं तीव्र विरेचन कराता है। साथ-साथ अन्त्र में (Irritation) भी कराता है। इसलिए इसे विचार करके ही मिलाना चाहिये।

मात्रा–१ से २ माशा सुबह निवाये जल के साथ देवें।

अनुपान–उदररोग में तक्र। गुल्म में बेर की जड़ का क्वाथ। आनाह (उदरवात और मल की गाँठे बंध जाना) में सुरा का मण्ड। वात रोगों पर प्रसन्ना (सुरामण्ड)। मलावरोध पर दही का जल। अर्श पर अनार दानों का रस। परिवर्तिका, उदर शूल, गुदा में कैंची से काटने के समान पीड़ा होने पर कोकम आमचूर (वृक्षाम्ल) का क्वाथ। अजीर्ण में निवाया जल। सर्वांगशोथ और जलोदर रोग पर राजस्थान और अन्य प्रान्तों में मिल सके वहां ऊंटनी का दूध।

सूचना–भगन्दर, पाण्डु, कास, श्वास, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणी विकार, कुष्ठ, अग्निमांद्य, ज्वर, दाढ़वाले जन्तुओं के विष, मूलविष, कृत्रिम और सेन्द्रिय विष, जिनमें पचन संस्थान की श्लेष्मिक कला में क्षोभोत्पत्ति हो जाने पर पहले, कोष्ठ को स्निग्ध बनाकर विरेचन देवें।

उपयोग–नारायण चूर्ण श्रेष्ठ विरेचन औषधि है। जीर्ण मलावरोध, पाण्डु, आमविष वृद्धि, अफारा, उदावर्त, वातरोग, आमवात, भगन्दर, जलोदर, आदि सब उदररोग, कुष्ठ, जीर्णज्वर, अग्निमांद्य, विषप्रकोप, आमाशय में पित्त वृद्धि और कफप्रकोप आदि सब रोगों में यह प्रयोजित होता है।

रसायन सेवन की इच्छा वालों को पहले उदर शोधनार्थ [illegible] चूर्ण का सेवन करने पर आम, विष, कफ, मल आदि सब दूषित द्रव्य कृमि दूर हो जाते हैं।

विरेचन हो जाने पर २४ घन्टे तक जल उबालकर शीतल किया हुआ पीना चाहिए एवं भोजन में खिचड़ी जैसा हलका भोजन लेना चाहि

(४४) लघुगंगाधर चूर्ण

द्रव्य–नागरमोथा, बेलगिरी, मोचरस, इन्द्रजव कड़वा, लोध, धाय के फूल।

विधि–सब द्रव्यों को समभाग मिला कूटकर चूर्ण करें।

मात्रा–२ से ४ माशे दिन में ३-४ बार।

अनुपान–मट्ठा और गुड़ या चावलों का धोवन।

उपयोग–यह लघुगंगाधर चूर्ण उत्तम ग्राही और दीपन-पाचन औषधि है। सब प्रकार के नये अतिसार और प्रवाहिका को दूर करता है

(४५) लवंगादि चूर्ण

द्रव्य–लौंग, शीतलमिर्च, खस, सफेद चन्दन, तगर, नीलोफर, कालाजीरा, छोटी इलायची, काली अगर, दालचीनी, नागकेशर, पीपल, सोंठ, जटांमाँसी, नागरमोथा, कपूर, जायफल, वंशलोचन यह १८ औषधियां १-१ तोला, मिश्री ९ तोले।

वक्तव्य–इस लवगांदि चूर्ण में कई पाठान्तर मिलते हैं। यह पाठ शार्ङ्गधर संहिता और अन्य ग्रन्थों में भी है। अतः प्राचीन ग्रन्थ के अनुरूप पाठ को ही योग्य मानकर यहाँ दिया है।

विधि–कपूर, वंशलोचन का चूर्ण और मिश्री का चूर्ण पृथक् करें। फिर शेष औषधियों को कपड़छन करके वंशलोचन मिलावें। कपूर को मिश्री के साथ मिलाकर फिर औषधियों के मिश्रण के साथ खरलकर एक जीव करें।

मात्रा–२ से ४ माशे, दिन में ३ बार शहद के साथ।

उपयोग–यह लवङ्गादि चूर्ण रुचिकर, तृप्तिकर, अग्निदीपन, बल्य, वृष्य और त्रिदोषघ्न है। यह राजयक्ष्मा रोग से उत्पन्न छाती की जकड़ाहट, तमकश्वास, कण्ठावरोध, कफकास, शुष्ककास, हिक्का, अरुचि, यक्ष्मा, पीनस, ग्रहणी, अतिसार, भगन्दर, अर्बुद, प्रमेह, वातजगुल्म आदि सब रोगों को नष्ट करता है।

(४६) वज्रक्षार चूर्ण

द्रव्य–समुद्र लवण १० तोले, काला नमक १० तोले, सैंधव नमक १० तोले, सोहागा १० तोले, कांच लवण १० तोले, सज्जीक्षार १० तोले, यवक्षार १० तोले।

विधि–इन सबको मिला आक के दूध में भिगोकर सूर्य के ताप में सुखावें। इस तरह ३ दिन में फिर थूहर के दूध में ३ दिन तक भिगो-भिगोकर सूर्य के ताप में सुखावें। फिर गोला बना ऊपर आक के पत्ते लपेट हाँडी में बन्द करके गजपुट अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर निकालकर पीस लेवें।

सोंठ १० तोले, हरड़ १० तोले, अजवायन १० तोले, कालीमिर्च १० तोले, बहेड़ा १० तोले, जीरा १० तोले, पीपल १० तोले, आँवला १० तोले, चित्रकमूल १० तोले।

इन सबको मिला कूट कर चूर्ण करें। फिर क्षार का जितना वजन हो उससे आधा चूर्ण मिलाकर एक जीव कर लें।

मात्रा–१ से २ माशे तक दिन में २ बार।

अनुपान–वायु अधिक होने पर निवाया जल। पित्त की अधिकता होने पर घी। कफ प्रकोप में गोमूत्र। तीनों दोषों में कांजी।

उपयोग–यह वज्रक्षार दीपन, पाचन और शूलहर है। गुल्म, सब प्रकार के उदररोग, शोफ, अग्निमांद्य, अजीर्ण, उदावर्त (गैस बढ़ना), प्लीहावृद्धि आदि को दूर करता है।

(४७) वृद्धदण्ड चूर्ण

द्रव्य–सफेद मूसली १ तोला, सेमल की जड़ की छाल १ तोला, गिलोय सत्व १ तोला, आंवला १ तोला, कौंच के बीज १ तोला, मिश्री १ तोला, गोखरू १ तोला। (आ. औ.)

विधि–मिश्री को छोड़ शेष औषधियों को कपड़छान चूर्ण करें। मिश्री का चूर्ण मिलाकर एक जीव करें।

मात्रा–६ माशे से १ तोले तक दिन में २ बार प्रातः तथा रात्रि को।

अनुपान–दूध।

उपयोग–यह वृद्धदण्ड चूर्ण धातुक्षीणता, स्वप्न दोष, वृद्धावस्था में होने वाले वातज मेह, कमर की वेदना आदि को दूर करता है तथा स्फूर्ति प्रदान करता है।

(४८) श्रृङ्ग्यादि चूर्ण (श्वास)

द्रव्य–काकड़ासिंगी, अतीस, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा आँवला, बड़ी कटेली फल, भारंगी, पुष्कर मूल, सैंधानमक, समुद्रनमक कालानमक, बिड़नमक, सांभरनमक, जवाखार।

वक्तव्य–गुण वृद्धि के लिए जवाखार हमने बढ़ा लिया है।

विधि–सबको समभाग मिला कूटकर चूर्ण करें।

मात्रा–२ से ३ माशे दिन में ३ बार, प्रातः, मध्याह्न, रात्रि को और आक्षेप काल में १-१ घन्टे पर निवाये जल से। बालकों के लिए मात्रा १ से ३ रत्ती।

उपयोग–यह श्रृंग्यादि चूर्ण हिक्का, कफसह श्वास, ऊर्ध्ववात, कफकास, अरुचि और पीनस का नाश करता है। बालकों को कफ कास, कफश्वास और डब्बा का मन्द असर होने पर दिया जाता है।

(४९) सामुद्राद्य चूर्ण

द्रव्य–समुद्रनमक, सैंघानमक, सज्जीक्षार, यवक्षार, कालानमक, रोमक लवण, बिड़लवण, दन्तीमूल, लोहभस्म, मण्डूरभस्म, निशोथ, जमीकन्द।

विधि–उक्त १२ द्रव्यों को समभाग कूटकर चूर्ण करें, फिर उसे कड़ाही में डाल, दही, गोमूत्र और गोदुग्ध ४-४ गुना मिलाकर मन्दाग्नि पर पाचन करावें। शुष्क चूर्ण हो जाने पर खरलकर बोतल में भर लेवें।

मात्रा–१॥ से ३ माशे तक, दिन में २ बार निवाये जल से। औषध पचन हो जाने पर उड़द के पदार्थ घृतयुक्त शक्ति के अनुसार सेवन करते रहें।

उपयोग–यह सामुद्राद्य चूर्ण परिणामशूल, नाभिशूल,यकृत् का शूल, प्लीहावृद्धि, गुल्म, अन्तर्विद्रधि, अष्ठिला और कफवायु उत्पन्न विकारों को दूर करता है।

(५०) स्वादिष्ट पाचन चूर्ण

द्रव्य–नींबू सत्व (Ctiric Acid)१॥ तोला, मिश्री १६ तोले, अनारदाना ४ तोले, सोंठ ४ तोले, कालीमिर्च २ तोले, पीपल २ तोले, छोटी इलायची २ तोले, दालचीनी २ तोले, तेजपात २ तोले, पोदीना के पान २ तोले, जीरा भुना हुआ १२ तोले, धनियाँ ८ तोले, सैंधानमक १० तोले लें।

विधि–नींबू सत्व को आध तोले जल में खरल करें। फिर काष्ठादि औषधियों का कपड़छान चूर्ण मिलाकर खरल कर लेवें। पश्चात् मिश्री मिलावें। अच्छी तरह मिल जाने पर सैधानमक मिलाकर खरल कर लेवें।

मात्रा–३ से ४ माशे, दिन में २ या ३ बार जल के साथ।

उपयोग–यह स्वादिष्टपाचन चूर्ण रुचिकर दीपन और पाचन है। यह अग्निमाँद्य, अपचन, अरुचि, उदरवात आदि को दूर करता है।

(५१) स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण

द्रव्य–शुद्ध गन्धक ५ तोले, मुलहठी ५ तोले, सोंफ ५ तोले, सनाय १५ तोले, मिश्री २० तोले लें।

विधि–मिश्री का पृथक् चूर्ण करें। शेष औषधियों का कपड़छान चूर्ण करें। उसके साथ मिश्री मिला खरलकर एक जीव करें।

मात्रा–३ से ६ माशे रात्रि को सोने के समय निवाये जल से लेवें।

उपयोग–यह स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण मलावरोध, आमवृद्धि, शिरदर्द, अर्श, रक्तविकार, चर्म रोग, पामा और खुजली आदि में उदर के शोधनार्थ व्यवहत होता है। बालक, सगर्भा, प्रसूता, निर्बल, वयोवृद्ध, सबको निर्भय रूप से यह दिया जाता है।

कषाय प्रकरण

स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फांट ये कषाय के ५ भेद हैं। उत्तरोत्तर लघु-पाचन गुण वाले हैं अर्थात् स्वरस से कल्क हल्का से क्वाथ, क्वाथ से हिम और हिम से फांट लघु होता है।

स्वरस–ताजी औषधियों को कूट निचोड़कर रस निकाला जाता है, उसे स्वरस कहते हैं। कितनी ही औषधियों का रस स्वरस यन्त्र निकाला जाता है। अर्द्धसूखी औषधियों को कुचल या कूट, द्विगुण जल में २४ घन्टे भिगो छानकर रस निकाल लेने को भी स्वरस कहते एवं सूखी औषधियों को ८ गुने जल में पका चतुर्थांश जल शेष रहने पर छान लेने से भी स्वरस का काम निकलता है।

सूचना–अनेक वृक्षों की छालों और पत्तों में रस बहुत कम होने से कूट कर निचोड़ने से नहीं निकलता। ऐसी औषधियों को कूट एक कलई किये हुए पात्र में भरें। फिर यन्त्र वर्णन में -लिखे अनुसार स्वरस यन्त्रद्वारा स्वरस निकाल लेवें। आजकल द्रव्यों को मशीनों दबा करके सुगमता से स्वरस निकाल लेते हैं।

अनेक औषधियों का स्वरस पुटपाक कृति से निकाला जाता है और अनेकों को कूट-निचोड़कर कपड़े से छान लिया जाता है।

कल्क–ताजी औषधियों को बिना जल मिलाये और सूखा औषधियों में जल मिलाकर चटनी (लुगदी) तैयार करने को कल्क कहते यदि कल्क में प्रक्षेप शहद, घृत या तैल मिलाना हो, तो कल्क से द्विगुण, शक्कर या गुड़ मिलाना हो, तो कल्क के समान और कांजी आ द्रव्य पदार्थ मिलाना हो, तो कल्क से चतुर्गुण मिलाना चाहिये।

क्वाथ–ताजी या सूखी एक या अनेक औषधियों को मोटी-मोटी कूटकर औषध कृति में लिखे अनुसार उबाल लेने से क्वाथ तैयार हो है।

क्वाथ द्रव्यों को कूटकर रखने से ६-७ मास बाद या वर्षा ऋतु के पश्चात् हीनवीर्य हो जाते हैं। अतः आवश्यकतानुसार थोड़े-थोड़े परिम में तैयार कर कांच की शीशीयों या चीनीमिट्टी के बर्तन में सम्हालकर बन्द रखें। जिससे औषधियां अधिक समय तक अच्छी रहें।

क्वाथ करने की औषधियों को रात्रि को मिट्टी अथवा कांच के पात्र में भिगो सुबह चूल्हे पर, मन्दाग्नि से उबालकर क्वाथ करें। मोटे चू को १६ गुने जल में भिगो-उबालकर चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लेना चाहिये, बारीक कूटे हुए चूर्ण अथवा तैल युक्त मृदु औषधि का क्वाथ करना हो तो ४ या ८ गुना जल मिला पौना या आधा जल शेष रहने पर्यन्त उबालकर छान लेना चाहिये।

शास्त्र विधि–अनुसार कुटजारिष्ट के लिये या अन्य कार्य के लिये कुटजत्वक् ताजी लेनी चाहिये। परन्तु सर्वत्र ताजी छाल नहीं मि सकती। अतः सूखी छाल ही लेनी पड़ती है। उसका क्वाथ करने के लिये १६ गुने जल में उबालकर चतुर्थांश शेष रखना चाहिये। यदि ज ५ से ४ गुना लिया जायगा तो पूरा सत्व नहीं निकल सकेगा। जल में आये हुए सत्व में से कितने ही अंश का पुनः छाल में संशोषण (पा को चूल्हे पर से नीचे उतारने के समय) हो जाता है। अतः शुष्क द्रव्यों में ८ गुना जल मिलाने का नियम बनाया है।

क्वाथ करने के लिये बर्तन मिट्टी का लेना चाहिये और उबालने के समय बर्तन का मुँह खुला रखना चाहिये, ऐसा शार्ङ्गधर संहिता कहा है। किन्तु ढक्कन ढक कर क्वाथ करने से अनेक सूक्ष्म परमाणुओं का संरक्षण होता है, जिससे क्वाथ अधिक गुणदायी होता है, ऐसा कति विद्वान चिकित्सकों का अनुभव है और वही ग्राह्य करने योग्य है। यदि तैलीय औषधियों और मृदु औषधियों का क्वाथ करने के बदले नलि यन्त्र द्वारा अर्क निकालें तो विशेष लाभप्रद होता है और बार-बार करने का श्रम भी मिट जाता है।

क्वाथ रोज नया-नया बनाकर उपयोग में लेना चाहिये। क्वाथ २४ घण्टों से ज्यादा समय तक गुणदायक नहीं रह सकता। अधिक सम तक गुणयुक्त रखने के लिये औषधालयों में १२ वाँ हिस्सा रेक्टीफाइड स्पिरिट (या शराब) और चौथा हिस्सा शहद मिला लेते हैं, परन्तु उ क्वाथ के गुण में रेक्टिफाइड स्पिरिट का गुण सम्मिलित होकर मूल गुण में थोड़ा रूपान्तर कर देता है। मात्र ताजा क्वाथ करने के लिये समयाभा होने पर काम चल सकता है।

हिम–औषधियों के चूर्ण को रात्रि को ६ गुने जल में भिगो देवें। सुबह मसलकर छान लेने से शीतल कषाय-हिम तैयार हो जाता है भिगोने के लिये पात्र चीनीमिट्टी या कांच का लेना चाहिये।

फाण्ट–औषधियों के महीन चूर्ण को किसी पात्र में गरम उबलते हुए १६ गुने जल में डालकर ढक्कन लगा दें। आध या एक घण्टे बा छान लेने से फाण्ट हो जाता है।

अथवा औषध चूर्ण को ४ या ५ गुने अथवा १६ गुने जल में १२ घण्टे भिगो देवें। फिर चूल्हे पर उबाल, आधा जल शेष रहने पर उता लेवें। शीतल होने पर छानकर उपयोग में लेवें।

फाण्ट पाक में हल्का है और गुण सत्वर दर्शाता है। हिम और फाण्ट रोज ताजा बनाकर उपयोग में लेने चाहिये।

कषाय सरलता पूर्वक रस आदि धातुओं में मिश्रित होकर तत्काल अपना गुण प्रदर्शित करता है और कषाय से प्रायः अपाय होने की संभावना भी नहीं है। इसलिये रोगों की तीव्रावस्था में एवं जिनके वात आदि धातु बहुत निर्बल हो गये हों, उनके लिये गुटिका, चूर्ण आदि औषधियों की अपेक्षा कषाय अधिक हितकर है। कषाय का पचन शीघ्र होकर रस रक्तादि में पहुँचकर सत्वर लाभ दिखाता है।

क्वाथ में प्रक्षेप रूप से मिश्री मिलानी हो तो वातज रोग में अष्टमांश, पित्तज रोग में चतुर्थांश और कफप्रधान रोग में षोडशांश मिलानी

चाहिये। शहद मिलाना हो तो इसके विपरीप अर्थात् वातज रोग में १/१६ पित्तज में १/८ और कफज में १/५ हिस्सा मिलाना चाहिये। जीरा, गूगल, क्षार, नमक या त्रिकटु मिलाना हो तो १ से ३ माशे तक, भुनी हींग २ रत्ती और शिलाजीत भी २ रत्ती डालना चाहिये। दूध, घी, गुड़, तैल, गोमूत्र या अन्य कोई द्रव पदार्थ, कल्क या चूर्ण प्रक्षेप रूप में मिलाना हो तो १ तोला तक मिलावें।

चिरस्थायी कषाय–वर्तमान में आयुर्वेदिक औषधियां बनाने वाली कितनी ही फार्मेसियों ने क्वाथ-अर्क-स्वरस, शर्बत, मुरब्बा, आदि को चिरस्थायी (Durable) तैयार किये हैं। इनका उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, क्वाथ आदि को दीर्घ समय तक मूल स्थिति में रखने के लिये निम्न विधि अनुसार एसिड सेलिसिलिक (Acid Salicylic) मिलाया जाता है।

चिरस्थायी कषाय विधि–जिन क्वाथ आदि को टिकाऊ बनाना हो उनमें से किसी एक को चीनी या एनेमल के पात्र में ५ पौण्ड डालकर गरम करें। स्नान करने से अधिक गरम जल के समान गरम होने पर १ ड्राम एसिड सेलिसिलिक को मिलाकर तुरन्त बिक्री के डिब्बों में या बोतल में भरकर मजबूत डाट लगा देवें। फिर यह प्रवाही वर्षों तक मूल स्थिति में रह जाता है।

इस तरह कषाय आदि को चिरस्थायी बनाने के लिये फार्मेसी वालों ने डाक्टरी औषधि की शरण ली है। इस कषाय के साथ जो एसिड सम्मिलित किया जाता है वह एक प्रकार का मन्द विष है। अतः परिणाम में कितने ही व्यक्तियों के लिये हानि भी पहुँचा देता है। अतः दीर्घकाल तक उपयोग करने वालों को विचारपूर्वक लेना चाहिये।

संस्था ने इस पद्धति को हानिप्रद समझ कर त्याग रखा है। अन्य विधि से तैयार करने के परीक्षण चालू है।

एसिड सेलिसिलिक के सम्मिलन से क्षुधानाश, मलावरोध, और अतिसार क्रमशः होते रहना, त्वचा पर रक्तविकार के धब्बे होना, वृक्क विकृति (मूत्रोत्पत्ति ह्रास) और मानसिक निर्बलता की संप्राप्ति होती है। अधिक विकार होने पर श्लैष्मिक त्वचा में प्रदाह, शिरदर्द, रक्तदबाव का ह्रास और रक्तसंचालन में क्षीणता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

कितने ही फार्मेसी वाले लोहबान अम्ल(बेन्झाँइक एसिड) फार्माल्डीहाइड, सल्फाइट या क्लोरोफार्म का उपयोग करते हैं। किन्तु ये सभी रासायनिक द्रव्य स्वास्थ्य के लिये हितकर नहीं माने जायेंगे।

इनके अतिरिक्त क्वाथ आदि की औषधि और एसिड सेलिसिलिक दोनों के मिश्रण में रासायनिक गुण क्या होता है? इस बात का भी विचार करना चाहिये। कहीं दोनों में विरोध होकर रोगी को विपरीत असर तो नहीं पहुँचाता? जैसे-दूध और दही दोनों हितकर वस्तु होने पर भी दोनों को मिलाकर सेवन नहीं किया जाता। सेवन करने में विविध दोष शास्त्रकारों ने दर्शाया है।

क्वाथ कण–कुछेक विद्वानों के क्वाथों के कण(Crystals)तैयार किये हैं। इनकी सेवनीय मात्रा ४-६ रत्ती जितनी है जिसे किसी भी स्थान पर २-४ तोले कदुष्ण जल में मिलाने पर घुल मिलकर तैयार हो जाती है। इनसे पैंकिंग, ईन्धन व समय की बचत होकर यात्रादि में क्वाथ सेवन की सुविधा होती है तथा गुणधर्म में न्यूनता नहीं होती। हमारे यहाँ भी इसकी शोध चालू है। (संशोधक)

वक्तव्य–विशेषविवेचन और अन्य पाठों के लिये "नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह" देखें जो कि संस्था द्वारा प्रकाशित इसी पुस्तक का अंग है।

(१) दशमूल क्वाथ

विधि–बेलछाल, गंभारी छाल, पाढ़ल छाल, अरलू छाल, अरणी की छाल, गोखरू का पंचाङ्ग, छोटी कटेली का पञ्चाङ्ग, बड़ी कटेली का पञ्चाङ्ग, पृष्टपर्णी का पञ्चाङ्ग और शालपर्णी का पञ्चाङ्ग ये सब समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण कर लेवें। (शा. सं.)

मात्रा–२ से ४ तोले का क्वाथ कर दो हिस्से करके दिन में २ बार पीपल का चूर्ण अथवा घी मिलाकर पिलावें; रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–इस क्वाथ का सेवन विविध अनुपानों के साथ करने से यह वातश्लेष्मज्वर, सन्निपात के लक्षण, कण्ठावरोध, हृदयावरोध, तन्द्रा, वातप्रकोप, शोथ, कफवृद्धि, श्वास, पसलियों की पीड़ा आदि तथा प्रसूता के मुखशोष शीत, भ्रम, स्वेद, कास, श्वास आदि को दूर करता है।

दशमूल क्वाथ उत्तम गर्भाशय शोधक, विषघ्न, आम विषहर, वातशामक, मस्तिष्क संरक्षक और शूलनाशक है। इसके सेवन से किसी भी प्रकार की हानि होने की संभावना नहीं है। फिर भी जिस सूतिंका को पित्त प्रकोप हो, मुखपाक, छाती में जलन, अतिसार (पतले गरम दस्त लगना), अति स्वेदस्राव, व्याकुलता, कण्ठशोष आदि लक्षण प्रतीत होते हों उसे दशमूल का सेवन न करना ही इष्ट माना जायगा।

दशमूलों का संमिश्रण करके महर्षियों ने विश्व पर बड़ा भारी उपकार किया है। इन दिव्य औषधियों के क्वाथ का प्रयोग भारत के कई प्रान्तों में प्रसूता के गर्भाशय शोधनार्थ घरेलू प्रयोग रूप से दीर्घकाल से हो रहा है। प्रसूतावस्था में बहुधा गर्भाशय के विष और आमविष का शोषण रक्त में होता रहता है। जिससे सामान्यतः वातवृद्धि या वातक्षोभ होता है, शरीर निरोगी और सबल हो तो आघात सहन हो जाता है। अन्यथा ज्वर, भ्रम, स्वेदवृद्धि, कास, श्वास, हृदयावरोध, तन्द्रा, प्रतिश्याय, मुखशोष गर्भाशय और पसलियों में पीड़ा आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन सबकी उत्पत्ति को रोकने और उत्पन्न हुये हों तो तुरन्त दबा देने के लिये दशमूल क्वाथ का प्रयोग कराया जाता है।

यदि प्रसव होने के पश्चात् ८ या १० दिन हो गये हों, गर्भाशय में दोष शेष रह जाने से या संसर्गज कीटाणुओं का प्रवेश हो गया हो, जिससे दुर्गन्धित रसस्राव हो रहा हो, ज्वर वेग १०२° से अधिक रहता हो, आक्षेप आ रहे हों, ऐसी अवस्था में गर्भाशय का स्थानिक संशोधन आदि उपचार करना चाहिये एवं प्रतापलंकेश्वर आदि औषधि के साथ दशमूल क्वाथ की अनुपानरूप से योजना करनी चाहिये।

सामान्यतः जीवनीय शक्ति की क्रिया द्वारा सगर्भावस्था में गर्भवृद्धि और गर्भसंरक्षणार्थ पोषक रसस्राव गर्भाशय में होता रहता है। ग्रहण क्रिया में प्रसव हो जाने पर प्रतिबन्ध होता है और उसके प्रति बदले में यह स्राव स्तनों की ओर गति करता है। जिससे स्तनों में के लिये दबाव बढ़ जाता है। इस कारण से कई निर्बल सूतिकाओं को ज्वर आ जाता है। इस ज्वर का शमन दशमूल क्वाथ से हो

गर्भाशय की भीतर की वात नाड़ी पर प्रसवकाल में विष, कृमि, कीट या वातादि का आघात पहुँच जाने से कई स्त्रियों को म की उत्पत्ति होती है। इस शूल से सूतिका को असह्य वेदना होती है। इसके शमनार्थ तैलमर्दन, सेक, उत्तर बस्ति का पिचु धारण आदि के साथ दशमूल क्वाथ का सेवन कराते रहने से जल्दी रोग का शमन हो जाता है।

सूतिका के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के वातप्रकोपज रोगों पर भी दशमूल क्वाथ का सेवन आशीर्वाद के समान हिता है। देह के भिन्न-भिन्न स्थानों में अकस्मात् शूल चलना, पार्श्वशूल, उदरशूल, हृदयाधरिक प्रदेश में शूल, शिरःशूल, अपचन जनित शूल, नाड़ी में शूल, वृक्क और बस्ति के भीतर वातज शूल आदि वातप्रकोपसह रोगों में यह निर्भयरूप से सफलता सह व्यवहृत होता है।

वातज्वर, कफज्वर, वातकफज्वर, कफप्रकोप आदि में भी दशमूल क्वाथ मुख्य औषधि रूप से अनुपान रूप में बार-बार प्रयोजि है।

अनुपान-(१) **वातश्लेष्मज्वर में**-पीपल का चूर्ण।

(२) **सन्निपात पर**-दशमूल, कचूर, कांकड़ासींगी और त्रिकटु मिला क्वाथ करके पिलावें।

(३) **ज्वर और कास में**-दशमूल, पीपल, धनियाँ और सोंठ मिला क्वाथ करें। फिर चातुर्जात मिलाकर पिलावें।

(४) **वातकफोल्वण सन्निपात में**-दशमूल, चिरायता, सोंठ, नागरमोथा और गिलोय मिलाकर क्वाथ करें। शोधन करना हो तो के चूर्ण का प्रक्षेप मिला देवें।

(५) **वातकफज्वर, अपचन, अतिनिद्रा, पार्श्वशूल, श्वास, कास, तन्द्रा, कण्ठावरोध और हृदयावरोध में**-पीपल का चूर्ण

(६) **सन्निपात, श्वास, कास और पार्श्वशूल पर**-क्वाथ के साथ पीपल और पुष्कर मूल का चूर्ण मिलावें।

(७) **कफज पाण्डु, ज्वरातिसार, शोथ, संग्रहणी, कास, अरुचि, कण्ठावरोध और हृदयावरोध पर**-सोंठ।

(८) **हृदयावरोध पर**-जवाखार आधै सैंधानमक।

(९) **सूतिका रोग पर**-(१) निवाये क्वाथ में घी मिला लें। (२) क्वाथ में लोहे को गर्म करके बुझावें। (३) शराब मिलाकर पि (४) दशमूल में १६ गुणा जल और ४ गुना दूध मिला सिद्धकर शक्कर मिलाकर पिलावें।

(१०) **जलोदर पर**-दशमूल, देवदारु, सोंठ, गिलोय, सफेद पुनर्नवा और हरड़ का क्वाथकर पिलाने से जलोदर, शोथ, श्लीपद, गल और वातरोग नष्ट होते हैं।

(११) **मुख रोग में**-दशमूल, मूंग और कुलथी को उबालकर निवाया पिलावें।

(१२) **बाधिर्य (बहरापन) में**-(१) इस क्वाथ में चतुर्थांश तिल के तैल को सिद्ध करके कान में डालें। (२) दशमूल, त्रिफला, काय और भारंगी का क्वाथकर त्रिकटु और हींग मिलाकर पिलावें।

(१३) **वातरक्त में शूल पर**-इस क्वाथ के साथ दूध को सिद्ध करके पिलावें और दशमूल से सिद्ध किये हुये घृत से परिषेक क

(१४) **अपस्मार (हृदयकंप सहित) में**-कल्याण घृत के साथ।

(१५) **गृध्रसी वात पर**-भुनी हींग १ रत्ती और पुष्कर मूल का चूर्ण २ माशे मिलाकर देवें।

(१६) **गृध्रसी और आमवृद्धि (कुक्षि, बस्ति और कटिस्थान के शूल सह) पर**-दशमूल, गिलोय, अरंडी की जड़, रास्ना, सोंठ देवादरारू को मिला क्वाथ कर अरंडी का तैल मिलाकर देवें।

(१७) **वातज मूत्राघात पर**-शिलाजीत और मिश्री मिलाकर पिलावें।

(१८) **विस्फोटक में**-दशमूल, त्रिफला, चिरायता और धमासे का क्वाथ कर पीपल का चूर्ण मिलाकर पिलावें।

(२) अष्टादशांग क्वाथ

विधि-बेलछाल, गम्भारी, अरलू, पाढ़ल, अरनी, गोखरू, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, पृष्ठपर्णी, शालपर्णी, काकड़ासींगी, पुष्करमूल, क धमासा, भारंगी, इन्द्रजव, पटोलपत्र और कुटकी इन १८ औषधियों को समभाग लेकर जौकुट करें। (वृन्द)

मात्रा-२ से ४ तोले का क्वाथकर दो हिस्से कर दिन में २ बार दें।

उपयोग-अष्टादशाँग क्वाथ में उत्तेजक, कफघ्न, आमपाचन, विरेचन वातहर और विषनाशक गुण हैं। यह क्वाथ सन्निपात ज्वर को दू करने में उपयोगी है। इसके सेवन से सन्निपात में खांसी, हृदयावरोध, पसलियों की पीड़ा, श्वास, हिचकी और वमन आदि लक्षण दूर हो जा हैं। यदि मलशोधन कार्य अपूर्ण हो या न हुआ हो तो कुटकी की मात्रा बढ़ानी चाहिये अथवा बस्ति देकर जल्दी अन्त्र को शुद्ध बना दे चाहिये।

अष्टादशांग क्वाथ बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता आदि के लिये निर्भय और श्रेष्ठ औषधि हैं। इसका प्रयोग भारत में सब प्रान्तों सर्वदा होता रहता है। दशमूल क्वाथ की १० औषधियों के साथ आमपाचन और कफघ्न गुण प्रधान ८ औषधियों को मिलाकर इस अष्टादशां

की योजना प्राचीन आचार्यों ने की है।

त्रिदोषज ज्वर में वातप्रकोप के साथ आम विष और दूषित कफ विशेष परिमाण में संगृहीत हो गये हों, रोगी अधिक घबरा रहा हो, अपचन, मलावरोध, कास, श्वास, हृदयावरोध, पार्श्वशूल, हिक्का आदि लक्षण प्रतीत होते हों तब इस क्वाथ का सेवन प्रधानरूप से या अन्य रस आदि औषधि के साथ अनुपान रूप से कराया जाता है।

दूसरी विधि–दशमूल, देवदारू, चिरायता, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनियाँ और गजपीपल इन १८ औषधियों को समभाग मिलाकर क्वाथ करें।

मात्रा–२ से ४ तोले। दिन में दो हिस्से करके देवें।

उपयोग–यह क्वाथ, तन्द्रा, प्रलाप, खाँसी, अरुचि, दाह, मूर्च्छा और श्वास आदि लक्षणों सहित सन्निपात को दूर करता है।

(३) लघु मंजिष्ठादि क्वाथ

विधि–मजीठ, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कुटकी, बच, दारूहल्दी, गिलोय और नीम की अन्तरछाल इन ९ औषधियों को समभाग मिला लें। (शा.सं.)

वक्तव्य–कई ग्रन्थकारों ने "नवकार्षिक क्वाथ" संज्ञा दी है।

मात्रा–१ से २ तोले का क्वाथ बना सुबह पिलावें।

उपयोग–यह क्वाथ रस, रक्त आदि सप्त धातुओं का शोधन करता है तथा पचन संस्थानगत आम, विष कीटाणुओं को नष्ट करता है। पुराने मल आदि को निकाल, रोग के मूल कारण को दूरकर उदर को शुद्ध बनाता है। इस हेतु से कण्डु आदि त्वचा रोग, आमवात तथा वातरक्त, पामा, कुष्ठ, उपदंश, सुजाक आदि रक्तविकार मय रोगों को पोषण मिलना बन्द हो जाता है और वे सरलता से दूर हो जाते हैं।

(४) बृहत् मंजिष्ठादि क्वाथ

विधि–मजीठ, नागरमोथा, कूड़े की छाल, गिलोय, कूठ, सोंठ, भांरगी, कटेली पंचांग, बच, नीम की अन्तरछाल, हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आँवला, पटोलपत्र, कुटकी, मूर्बा, वायविंड़ग, विजयसार, चित्रकमूल, शतावर, त्रायमाण, पीपल, इन्द्रजौ, अडूसे के पत्ते, भांगरा, देवदारू, पाठा, खैर छाल, लाल चन्दन, निसोत, बरने की छाल, चिरायता, बावची, अमलतास का गूदा, सहोड़े की छाल, बकायन, करंज की छाल, अतीस, नेत्रबाला, इन्द्रायण की जड़, धमासा, अनन्तमूल, पित्तपापड़ा सब समभाग मिलाकर जौ-कूट चूर्ण तैयार करें। (शा. सं.)

मात्रा–१/२ से १ तोले का क्वाथ कर सुबह पीपल का चूर्ण और गूगल मिलाकर पीवें। शाम को पुनः नया बनाकर पीवें।

उपयोग–यह क्वाथ कुष्ठरोग, वातरक्त, उपदंश, श्लीपद, अंग शून्यता, पक्षाघात, मेदरोग और नेत्र रोग का नाश करता है। रक्तशुद्धि के लिये अति उपयोगी है। विशेषतः यह क्वाथ गन्धक रसायन या हरताल में से बनाये हुए माणिक्य रस के साथ कुष्ठादि रोगों पर प्रयुक्त किया जाता है। मेदोवृद्धि में महायोगराज गूगल के साथ दिया जाता है। इस क्वाथ का प्रचार भारत के प्रत्येक प्रान्त में दीर्घकाल से हो रहा है। यह रक्तविकार प्रधान रोगों में निर्भय और श्रेष्ठ औषधि है। इसका सेवन सब प्रकृति के स्त्री-पुरुषों को सब ऋतुओं में कराया जाता है।

वह क्वाथ उत्तम रक्तशोधक, सारक, कीटाणुनाशक, विषहर, आमपाचक, कफघ्न, पित्तशामक, वातहर और धातुगतज्वर का नाशक है। इसके सेवन से पचन संस्थान में रहे हुये कृमि, कीट और आमविष जलते रहते हैं और उदर शुद्धि होकर बाहर निकलते रहते हैं। क्वाथ का प्रधान द्रव्य रक्त में प्रवेश करके रक्तशोधन करता रहता है तथा वातनाड़ियों को पुष्ट करता रहता है। इसी हेतु से रक्त दूषित होकर होने वाले कुष्ठ, वातरक्त और श्लीपद आदि रोग दूर होते हैं एवं अंगशून्यता वातनाड़ी-विकृति और मस्तिष्क उष्णता की निवृत्ति होती है। महाकुष्ठ (Leprosy) की प्रबलावस्था में भी इस क्वाथ का सेवन माणिक्य रस (हरताल) के साथ कराते रहने से रोग वश में आ जाता है। फिर अधिक गति नहीं करता। इसी तरह वातरक्त की आशुकारी और जीर्णावस्था दोनों पर इस क्वाथ का प्रयोग होता है। इसके सेवन से वेदना का थोड़े ही समय में ह्रास होता है। संगृहीत विष मूत्र मार्ग से बाहर निकलता रहता है और २-३ मास में दूर हो जाता है।

अन्तर्विद्रधि आदि रोगों में रक्त में विष या पूय प्रवेश होता रहता है। जिसमें मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है और थोड़े-थोड़े दिन में विष-संग्रह होकर ज्वर बढ़ता रहता है। इस विकार को नष्ट करने तथा धातुगत लीन विष, पूय को जलाने के लिये पथ्य पालनसह माणिक्यरस प्रवालपंचामृत और सुवर्णवंग के साथ मंजिष्ठादि क्वाथ को सेवन कराते रहने से थोड़े ही दिनों में रोग-बल का दमन हो जाता है और ३-४ मास में रोग दूर हो जाता है। जीर्ण श्लीपद रोग में जब रक्त के भीतर विष संगृहीत हो जाता है, तब ज्वर आ जाता है और वेदना की वृद्धि हो जाती है। ऐसी अवस्था में वृद्धदारुकादि चूर्ण के साथ मंजिष्ठादि क्वाथ का सेवन कराने से १-२ दिन में वेदना सह ज्वर दूर हो जाता है।

सूचना–(१) यह क्वाथ अन्त्र में शोधन कार्य करता है। इस हेतु से जिनको प्रवाहिका रोग हो गया हो अथवा अन्त्र निर्बल हो, उनसे अधिक मात्रा सहन नहीं होती उनको मात्रा कम देवें एवं द्विदल धान्य, कन्द, शाक, भारी भोजन आदि अनाज पदार्थों से आग्रह पूर्वक रोकें।

(२) ग्रीष्म ऋतु में इसका सेवन कम मात्रा में करावें।

(३) धूम्रपान, गरम चाय, शराब आदि का व्यसन हो तो त्याग करें। माँसाहार का व्यसन हो तो छोड़ दें।

(५) अमृताष्टक क्वाथ

विधि–नीमगिलोय, नीम की अन्तरछाल, कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, पटोलपत्र और लालचन्दन आठ वस्तुएं समभाग लेकर २ से ३ तोले तक का क्वाथ करें। दिन में २ बार पीपल का चूर्ण मिलाकर पिलावें। (शा. सं.)

उपयोग–यह क्वाथ पित्तज्वर, वमन, अरुचि, दाह, तृषा आदि विकारों को दूर करता है। यह अमृताष्टक क्वाथ आचार्य शार्ङ्गधर ने पित्तज्वर के रोगियों के लिए कहा है। पित्तप्रधान प्रकृति वालों को ज्वर के साथ प्रायः मलावरोध, दाह, तृषा, वमन, अति प्रस्वेद आना, अरुचि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे लक्षण युक्त नूतन ज्वर के विष को यह क्वाथ तत्काल दूर करता है।

इस क्वाथ में कुटकी मिलायी है जो अति कड़वी होती है। इस हेतु से क्वाथ का स्वरस अति कडुवा हो जाता है। कुटकी मलावरोध दूर करने से उपकारक है। यदि मलावरोध न हो, पतले गरम दस्त होते हों, तो कुटकी नहीं मिलानी चाहिए एवं वमन न हो तो नागरादि पाचन चतुर्थ विधि वाला देना चाहिये। जब शिरदर्द, व्याकुलता, तृषा, मलावरोध, बार-बार वमन होना, अति स्वेद आदि लक्षणों सह ज्वर हो तो तब इस क्वाथ के सेवन से लाभ मिलता है।

सूचना–यदि रोगी को मलावरोध न हो, पतले दस्त दुर्गन्ध रहित होते हों, तो कुटकी मिलाने की आवश्यकता नहीं है। उदर शोधन करना हो तो ही कुटकी मिलानी चाहिये।

(६) कंटकार्यादि क्वाथ

विधि–छोटी कटेली, बड़ी कटेली, सोंठ, धनियाँ और देवदारू, पांचों को समभाग मिला २ से ४ तोले तक का क्वाथ करें। दिन में २ बार पिलावें। (शा.सं.)

उपयोग–यह क्वाथ नूतन ज्वरों में कच्चे दोष को पकाने में उपयोगी है। इसको "नागरादि पाचन" भी कहते हैं।

इस नागरादि पाचन में ५ सामान्य वनौषधियां मिलाई हैं। किन्तु यह उत्तम लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इस क्वाथ का उपयोग भारत के सब प्रान्तों में होता रहता है। वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्ज आदि नूतन ज्वर, जो आम विष के हेतु से उत्पन्न हुआ हों, उनको दूर करने के लिए यह श्रेष्ठ और निर्भय है। यदि लङ्घन कराने के साथ इस क्वाथ का सेवन कराया जाये तो सब कच्चे दोष पक जाते हैं जिससे ज्वर कदापि कुपित नहीं होता एवं सरलता से काबू में आ जाता है।

इस क्वाथ के सेवन से अग्नि प्रदीप्त होती है। पचन संस्थानस्थ उत्तान आम और मल पक जाता है। रस, रक्त आदि धातुओं के भीतर प्रवेशित और लीन हुआ विष जलकर नष्ट हो जाता है। फिर धातु निर्विष बन जाती है। यह बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता, कोमल स्वभाववाली स्त्रियां सबके लिए उपकारक है।

(७) नागरादि क्वाथ

प्रथम विधि–सोंठ, नागरमोथा, गिलोय, आंवले, पाठा, कमलनाल, और नेत्रबाला १-१ तोला लेकर क्वाथ करें। २ हिस्से कर सुबह शाम ३ माशे मिश्री और ६ माशे शहद मिलाकर पिलावें। (हा.सं.)

उपयोग–यह क्वाथ पित्तकफज्वर और रक्तदोष को दूर करता है और पाचन क्रिया को सुधारता है।

दूसरी विधि–सोंठ, गिलोय, कटेली की जड़, नागरमोथा और आँवले प्रत्येक १-१ तोले मिलाकर क्वाथ करें। २ हिस्से करके शहद, पीपल मिला कर सुबह शाम पिलावें।

उपयोग–यह क्वाथ विषम ज्वरों को रोकता है और पाचन क्रिया को सुधारता है।

तीसरी विधि–सोंठ, गिलोय, चिरायता, बेलगिरी, नेत्रबाला, इन्द्रजौ, नागरमोथा, अतीस और खस इन ९ औषधियों को समभाग लेकर जोकूट चूर्ण करें। फिर ३ से ६ तोले का क्वाथ बना, ३ हिस्से कर ३ बार पिलावें। (च.द.)

उपयोग– यह क्वाथ ज्वरातिसार, मन्दाग्नि, अरुचि, शिरदर्द और दाह को दूर करने में लाभदायक है। यदि यह क्वाथ सर्वांगसुन्दर रस के साथ ज्वरातिसार में दिया जाय तो सत्वर लाभ पहुँचाता है।

(८) पंचमूलादि क्वाथ

विधि–शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ और चिरायता इन ९ औषधियों को समभाग लेकर जौकूट चूर्ण करें। (वै.जी.)

मात्रा–४ से ६ तोले का क्वाथ कर २ हिस्से करके पिलावें।

उपयोग–यह वातपित्तशामक, आमपाचक, विषहर और ज्वरघ्न है। यह कषाय वातपित्त-ज्वर में कच्चे दोषों को पका सोपद्रव ज्वर को जल्दी नष्ट करता है।

यह क्वाथ उत्तम आमपाचक है। नूतन ज्वर, अपचन जनित ज्वर, वात प्रधान और कफप्रधान ज्वर-पीड़ितों को ज्वरावस्था में दोष-पचन कराने के लिये इसका प्रयोग कराया जाय तो ज्वर निःसंदेह कुपित नहीं होता, सरलता से दूर हो जाता है। रोग-निरोधक शक्ति सबल होती है और ज्वर जाने के पश्चात् पुनः शक्ति वृद्धि और पचनक्रिया की वृद्धि हो जाती है।

(९) मधुरज्वरान्तक क्वाथ

विधि–रक्तचन्दन, नेत्रबाला, खस, धनियाँ, पित्तपापड़ा, नागरमोथा और सोंठ इन सब औषधियों को समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें (यो.र.)

मात्रा–२ से ४ तोले का क्वाथ कर २ हिस्से करके पिलावें।

उपयोग–यह क्वाथ पाचन, कीटाणुनाशक, आमविषहर और शामक है। लक्ष्मीनारायण रस या संजीवनी वटी के साथ इसका सेवन अनुपान रूप से कराते रहने से दबे या विलीन हुए मधुरा के दाने जल्दी बाहर निकल कर बिना त्रास दिये मोतीझरा दूर हो जाता है।

अपथ्य सेवन, क्विनाइन आदि विरोधी औषधि का प्रयोग अथवा अन्य कारणों से कुपित हुए मोतीझरे के कई रोगियों को लक्ष्मीनारायण या अधिक पित्तप्रकोप होने पर सूतशेखर के साथ इस क्वाथ का सेवन कराया है। परिणाम में निराश हुए कई रोगियों को जीवनदान मिलने के उदाहरण मिले हैं।

सूचना–(१) आमाशय में सरलता से पचन हो ऐसा प्रकृति के अनुकूल आहार (दूध, फलों का रस या निरुपायवश मूंग का यूष) देते रहने से रोग सरलता से काबू में आ जाता है।

(२) अन्त्र की ग्रन्थियों की विकृति बहुधा इस रोग में होती है। अतः अन्त्र को अधिक कष्ट न हो, यह सम्हालना चाहिए।

(३) गरम चाय, मिर्च-मसाला, बीड़ी-सिगरेट आदि से रोगी को बचाना चाहिये। ज्वर बने रहने तक अन्नाहार नहीं देना चाहिये।

(१०) देवदार्वादि क्वाथ

विधि–देवदारु, दारुहल्दी, पीपल, चिरायता, इन्द्रजौ, मजीठ, अमलतास का गूदा, पाठा, पद्माख कूड़े की छाल, धनियां, सोंठ, नागरमोथा, नेत्रबाला, कालीमिर्च, पियाबांसा की छाल, कुटकी, धमासा, गिलोय, एरण्ड की जड़, छोटी कटेली, हरड़ और पित्तपापड़ा इन २३ औषधियों को समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। (वै.सा.सं.)

मात्रा–२ से ४ तोले का क्वाथ कर २ हिस्से करके सुबह-शाम शहद पीपल मिलाकर पिलाते रहें।

उपयोग–यह क्वाथ ज्वर की जीर्णावस्था में उपकारक है। धातुगतज्वर, विषमज्वर, जीर्णज्वर, त्रिदोष ज्वर, भूतज्वर आदि ज्वरों को थोड़े ही दिनों में दूर करता है। आमाशय और अन्त्र का शोधन करता है, यकृत् और प्लीहावृद्धि को दूर करता है तथा पाचन क्रिया को प्रबल बनाता है।

(११) कुटजादि कषाय

विधि–कूड़े की छाल, अतीस, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी इन ७ औषधियों को समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। (बृन्द)

मात्रा–४ से ६ तोले का क्वाथकर ३ हिस्से करके दिन में ३ बार मिश्री और शहद मिलाकर पिलावें।

उपयोग–यह कषाय मल को बाँधता है तथा पित्तकफज अतिसार का शीघ्र शमन करता है।

(१२) त्रिकण्टकादि क्वाथ

विधि–गोखरू, अमलतास का गुदा, दर्भमूल, कासमूल, धमासा, पाषाण भेद और हरड़ सबको समभाग मिलाकर ४ तोले का क्वाथ करें और शहद मिलाकर पिलावें। (भै र.)

उपयोग–यह क्वाथ अश्मरी (पथरी) और भयंकर मूत्रकृच्छ्र रोग को दूर करता है। तीव्रावस्था में आवश्यकतानुसार दो घन्टे बाद दूसरी बार पिलावें।

वृक्कस्थान में अश्मरी हो गई हो, उसके अणु या ऊपर की नलिका में से अश्मरी कण आकर वृक्क में से मूत्राशय में जाने वाली नलिका में फँस जाता है, तब भयंकर वृक्कशूल उत्पन्न होता है। साथ-साथ अति व्याकुलता, बारम्बार वमन होना ओर निर्बलता आ जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्था में अश्मरी कण को पिघलाकर मूत्राशय में फेंक देने की योजना करनी चाहिये। यह कार्य हजरूलयहूद चूर्ण के साथ इस क्वाथ के सेवन से सरलता से हो जाता है। तीव्रावस्था शमन होने के बाद अश्मरी की उत्पत्ति रोकने के लिये शिलाजीत या चन्द्रप्रभा के साथ इस क्वाथ का सेवन दिन में २ बार २-३ मास तक कराया जाता है।

सूचना–यदि धूम्रपान का व्यसन हो तो उसे छोड़ देना चाहिये। यकृत् निर्बल है तो घृत-तैलादि का सेवन कम करना चाहिये और उसे सबल बनाने के लिये चित्रकादि वटी या पिप्पल्यासव, चविकारिष्ट या अन्य औषधि का सेवन करना चाहिये।

(१३) जातिपत्रादि क्वाथ

विधि–चमेली के पत्ते, गिलोय, मुनक्का, धमासा, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा और आंवला को बराबर लेकर जौकूट चूर्ण करें। (वं.से.)

उपयोग–इस चूर्ण का क्वाथ बना शीतल करके कुल्ला करने से मुंह के छाले दाह, मसूढ़े का शोथ और कण्ठदोष दूर होते हैं।

पारद प्रधान औषधि अथवा दाहक, तीक्ष्ण या अति उष्ण पदार्थ के सेवन से मुंह में क्षत हो जाते हैं। उस पर यह क्वाथ लाभ पहुँचाता

है। यदि रोग जीर्ण होने से क्षत पूयमय बन गया हो तो इस क्वाथ का उपयोग दिन में ३ या अधिक बार करते रहने पर १०-२० दिन में क्षत का रोपण हो जाता है।

सूचना-(१) भोजन करने के पहले क्षत पर रहे हुए पूय को कुल्ले करके दूरकर देना चाहिये एवं भोजन के आध घन्टे पश्चात् पुनः कुल्ले कर लेना चाहिये। ताकि अन्न के छोटे कण जो क्षतपर लग गये हों, वे सब साफ हो जायें

(२) पूय का प्रवेश आमाशय में न हो इस बात को पूर्ण रूप से सम्हालना चाहिये। अन्यथा आमाशय की श्लैष्मिक कला में पूयप्रधान क्षत हो जायेगा। फिर आमाशय में वेदना, उबाक, वान्ति और दाह आदि लक्षण उपस्थित होंगे और पाचन क्रिया विकृत हो जायेगी।

मधुमेहादि रोगों से उत्पन्न कोथ (Gangrene) प्रधान क्षत हो तो मूल रोग को दूर करने वाली औषधि के सेवन के साथ इस क्वाथ से बारबार गण्डूष करते रहना चाहिये। यदि कोथ गहरा हो गया हो तो उस स्थान को प्रतिसारणीयक्षार के जल द्वारा जलाकर इरिमेदादि तैल के, गण्डूष कराये जाते हैं। ऐसी अवस्था में इस क्वाथ का उपयोग बहुत ही कम होता है।

(१४) महारास्नादि क्वाथ

विधि-रास्ना ५० तोले मतान्तर में २ तोले, धमासा, खरेंटी, अरण्डी की जड़, देवदारु, कचूर, बच, अडूसे के पत्ते,सौंठ, हरड़, चव्य, नागरमोथा, सांठी (पुनर्नवा) की जड़, गिलोय, विधारा, सोंफ, गोखरु, असगन्ध, अतीस, अमलतास का गूदा, शतावर, पीपल, पियावाँसा, धनियाँ, छोटी कटेली और बड़ी कटेली ये सब १-१ तोला मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। (शा.सं.)

महारास्नादि क्वाथ के पाठ के आरम्भ में 'रास्नाद्विगुणभागास्यादेकभागा स्ततः परे', यह वचन शार्ङ्गधर संहिता में है। वंगसेन ने "समभागान्वितैरत्रे रास्ना त्रिगुण भागिकै" यह वचन लिखा है। इन वचनों से टीकाकारों में मतभेद होता है। किसी ने २ या ३ तोला रास्ना ली है, किसी ने ५० या ७५ तोले रास्ना लेना हितावह माना है। रास्ना वातशामक है। रास्ना प्रधान औषध है, वह अधिक मात्रा में हो तो वात रोगी के लिये हितावह है।

मात्रा-२॥ तोले चूर्ण का क्वाथ करके दिन में २ बार पिलावें। इस क्वाथ के साथ अजमोदादि चूर्ण या सोंठ अथवा पीपल का चूर्ण अथवा अरण्डी का तैल मिला लेवें या योगराज गूगल के साथ दें।

उपयोग-यह क्वाथ वातरोग की तीव्रावस्था में विशेष उपकारक है। अनेक प्रकार के वातरोग-सर्वांगवात, कम्पवात, अर्धाङ्गवात, गृध्रसी, कमर, जंघा आदि स्थानों में फिरता वात, श्लीपद, आमवात, अन्त्रवृद्धि, पक्षाघात, अपतानक, कुब्जवात, मूत्राशय और वीर्याशय में रही हुई वायु, अफारा, स्त्रियों के योनि दोष, बन्ध्यादोष आदि को नाश करता है।

वातरोग की संप्राप्ति वातवहसंस्थान में विकृति होने पर होती है। वात नाड़ियों का प्रदाह होने पर बहुधा वातरोग की उत्पत्ति हो जाती है। जिस स्थान की वात नाड़ियां दूषित हो उस स्थान में रोगोत्पत्ति होती है। फिर स्थान भेद से नाम भेद होता है। विविध स्थानों के वातरोगों में मुख्य विकृति वातनाड़ियों की होती है। यदि वातनाड़ियों की विकृति के साथ वातनाड़ी केन्द्र का घात होकर पक्षवध हो गया हो तो वातरोग असाध्य हो जाता है।

वातरोग की उत्पत्ति होने में आमप्रकोप और रक्त में विषवृद्धि भी कारण होते हैं। वातशमन के साथ उन कारणों को भी दूर करना चाहिये। इस हेतु से रास्ना के साथ सहायक रूप से दीपन-पाचन आमशोषक, मूत्रल और कफघ्न औषधियों का मिश्रण किया है। जिससे यह क्वाथ आशुकारी वातप्रकोप में तत्काल अपना प्रभाव दर्शाता है।

गृध्रसी नाड़ी जो नितम्ब प्रदेश में रहती है और नीचे के पैरों की ओर गति करती है, उसमें प्रदाह होने पर कटि प्रदेश, नितम्ब, पैरों की पिछली जंघा और टखनें आदि में शूल निकलता है। पैरों में खिंचाव होता है और पैर जकड़ जाते हैं ऐसी अवस्था में एरण्ड तैल के साथ यह क्वाथ देने से उदरशुद्धि होकर वात शमन में सहायता मिल जाती है। इसके सेवन करने पर भी शूल शमन न हुआ हो तो शूल शमन और निद्रा लाने के लिए अफीम प्रधान औषधि निद्रोदय रस, महावातराज रस या समीरगज केसरी या अन्य का सेवन कराया जाता है अति तीव्र शूल न हों तो महावात विध्वंसन रस प्रदाह शमनार्थ रास्नादि क्वाथ के साथ दिया जाता है। देह अधिक मेदमय हो या आम प्रकोप हो तो महायोगराज गुग्गुल के साथ महारास्नादि क्वाथ देना चाहिये।

वातनाड़ियां जो ऐच्छिक मांसपेशियों का संचालन करती हैं और चेतना प्रदान करती हैं और उनको शीत लग जाने, मानस विकृति, उपदंशादि रोगों में विष प्रकोप और मधुमेह में रक्त के भीतर विष की अतिवृद्धि होकर रक्त दबाव अत्यधिक हो जाने पर वे नाड़ियाँ दूषित हो जाती हैं। फिर आक्षेप आकर पक्षाघात हो जाता है। संचालक नाड़ियों का वध हो जाने पर मांसपेशियां क्रिया करने में असमर्थ हो जाती हैं। वातनाड़ी विकृति के साथ-साथ कतिपय छोटी मोटी रक्तवाहिनियां टूट जाती हैं। फिर मस्तिकगत वातकेन्द्रों में रक्त दबाव बढ़ जाता है। यह रक्तसंग्रह ज्ञान केन्द्र के पास हो तो चेतनानाड़ियों से बोध होने वाले ज्ञान-शीत, उष्ण, सूची आदि के स्पर्श का ज्ञान नहीं होता।

यह विकार तुरन्त दूर नहीं होता तो दीर्घकालीन स्थायी बन जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में चन्द्रप्रभा, शिलाजीत अथवा योगराज गुग्गुलु के साथ इस क्वाथ का (एरण्ड तैल मिश्रित) सेवन कराया जाय तो लाभ हो जाने की आशा रख सकते हैं। इसके सेवन से वातनाड़ियों की विकृति दूर होती है, मस्तिष्क का दबाव कम हो जाता है रक्त प्रसादन में सहायता मिल जाती है फिर रक्तवाहिनियों का संधान सरलता से हो जाता है।

यदि फिरंग, सुजाकादि के कीटाणु विष या मधुमेहज विष के हेतु से वात रोग हुआ हो तो मूल रोगों के कीटाणु या रोगारम्भ द्रव्य को दूर करे, ऐसी चिकित्सा भी साथ-साथ करनी चाहिए। इन सब रोगों पर गुग्गुल, शिलाजीत सह इस क्वाथ का सेवन दीर्घकाल पर्यन्त पथ्यपालनपूर्वक कराना चाहिए, जिससे पुनः आक्षेप आकर पक्षाघात न हो जाय।

कभी-कभी प्रसूता की योग्य सम्भाल न रहने पर प्रजनन मार्ग से गर्भाशय में कीटाणुओं का प्रवेश होकर वहां सड़ाव उत्पन्न होता है। फिर उसमें से विष का शोषण होने पर आक्षेप आने लगते हैं। शीतसह ज्वर १०२° से १०४° तक बढ़ जाता है। फिर अति स्वेद आकर वह शमन हो जाता है। किसी-किसी को प्रलाप होता है। दाँत बार-बार भिचतें हैं और बेहोशी आ जाती है इस अवस्था में कालकूट रस या महावातविध्वंसन रस के साथ इस क्वाथ का सेवन कराने पर तुरन्त लाभ हो जाता है। फिर ४-६ दिन तक गर्भाशय में नतादि तैल की बस्ति देकर उसे शुद्ध कर लेना चाहिये।

देह के किसी भाग में चोट लगकर पूयपाक हुआ हो या विद्रधि होकर उसके विष का संचार रक्त में होता है तो आक्षेप आने लगते हैं। उस अवस्था में स्थानिक कीटाणुनाशक उपचार के साथ सेवनार्थ यह क्वाथ शिलाजीत, वंगभस्म और श्रृङ्गभस्म के साथ दिया जाता है। यदि रोगी मधुमेह पीड़ित हो तो शिलाजीत और महावातराज के साथ इस क्वाथ का सेवन कराया जाता है। आमाशय में वातप्रकोप होने पर आमाशय शिथिल बन जाता है और उसमें वायु भरी रहती है। वह बारम्बार बड़ी जोरों से डकार आकर बाहर निकलती रहती है। वायु न निकले तब तक व्याकुलता भासती है और आमाशय में भारीपन रहता है। इस विकार में पचन क्रिया मन्द हो जाती है। मलावरोध बना रहता है। यह विकार दीर्घकालीन स्थायी है। यदि इसके उपचार हेतु प्राथमिक अवस्था में रौप्यभस्म, शङ्खभस्म और अजमोदादि चूर्ण के साथ इस क्वाथ का सेवन कराया जाय तो लाभ हो जाता है। रोग जीर्ण होने पर कुचिला प्रधान औषधि के साथ इस क्वाथ का सेवन दीर्घकाल पर्यन्त कराना पड़ता है। मात्रा कम होनी चाहिए, भोजन भी दिन में ४ बार थोड़ा-थोड़ा कराते रहने से आमाशय को कष्ट नहीं पहुंचता।

यदि अन्त्र चौड़े और शिथिल हो गये हों तो अन्त्र में अफारा आता रहता है अपानवायु सरलता से नहीं सरतीं, मलावरोध और व्याकुलता रहती है ऐसी अवस्था में इस क्वाथ के साथ हरड़ और हिंग्वाष्टक या शिवाक्षार पाचन चूर्ण देते रहने से कुछ दिनों में लाभ पहुँचता है।

मूत्राशय की वातनाड़ियाँ शिथिल हो जाने पर उसकी मांसपेशियाँ योग्य कार्य नहीं कर सकती, मूत्राशय फूला हुआ रहता है। मूत्र त्याग में कष्ट पहुँचता है। उस पर चन्द्रप्रभा या शिलाजीत के साथ इस क्वाथ का सेवन १-२ मास तक करने पर रोग निवृत्त होकर मूत्राशय सबल बन जाता है।

वीर्योत्पादक ग्रन्थियाँ या वीर्याशयकी वातनाड़ियाँ शिथिल बनने पर उस स्थान में वायु भरी रहती है। फिर पतले, उष्ण वीर्य का स्राव बार-बार होता रहता है। मन में कामोत्तेजना का विचार आने, स्त्री स्पर्श होने या स्त्री दर्शन होने मात्र से तत्काल वीर्य निकल जाता है। वीर्य को धारण करने की शक्ति का ह्रास हो जाता है, इस रोग पर वीर्यशोधन वटी या शिलाजीत के साथ इस क्वाथ का सेवन २-३ मास तक ब्रह्मचर्य के पालन सह कराने पर रोग निवृत्त हो जाता है।

संक्षेप में किसी भी स्थान या प्रकार के वातरोग पर यह क्वाथ मुख्य औषधि रूप से अथवा अनुपान रूप से व्यवहृत होता है। इसके सेवन में किसी भी प्रकार की हानि का भय नहीं है। यह बालक, युवा, वृद्ध, प्रसूता और सगर्भादि सबको निर्भय रूप से दिया जाता है।

(१५) पर्पटादि क्वाथ

विधि-पित्तपापड़ा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ और चिरायता सबको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। ४ तोले का क्वाथ कर २ हिस्से करके सुबह शाम पिलावें। इसे "पंचभद्रादि क्वाथ" भी कहते हैं। (वृ.मा.)

उपयोग-यह क्वाथ उदरस्थित दोष का पचन करा वातपित्त ज्वर को समस्त लक्षणोंसह दूर करता है।

(१६) दार्व्यादि क्वाथ

विधि-दारुहल्दी, रसौंत, नागरमोथा, भिलावा, बेलगिरी, अडूसे के पत्ते और चिरायता सबको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। इसमें से २॥ तोले का क्वाथ कर दिन में दो बार शहद मिलाकर पिलावें। भिलावें के स्थान में अनेक चिकित्सक रक्तचन्दन लेते हैं।(शा. सं.)

उपयोग-इस क्वाथ के १ मास सेवन से स्त्रियों के प्रदर रोग शूल सहित नाश होते हैं। फिर गर्भाशय सुदृढ़ बनकर मासिक धर्म नियमित समय पर साफ आता है।

यह क्वाथ प्रजननयन्त्र के शोधनार्थ प्रयुक्त होता है। जब बीजाशय या बीजाशयनलिका या गर्भाशय में विकार उत्पन्न होता है, तब प्रदर उत्पन्न होता है, वह दृढ़ मूल बनने पर रक्त में विष शोषित होता रहता है। फिर शारीरिक निर्बलता, दृष्टिमांद्य, कटिवेदना, शिरदर्द, मन्द ज्वर आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्था में यह क्वाथ प्रजनन यन्त्र के सर्व अवयवों को बल देता है, दोष को जलाता है और प्रदर को दूर करता है। नये ओर पुराने रोग, सब पर यह लाभ पहुँचाता है। यदि गर्भाशय में क्षत (Ulcer) होकर दूषित स्राव होता हो, तो उसे भी दूर करने में सहायता पहुँचाता है। ऐसी अवस्था में धातक्यादि तैल या नतादि तैल की पिचकारी भी लगाते रहना चाहिये।

यदि गर्भाशय में कर्कस्फोट (Cancer) हुआ हो और नया रोग हो तो चन्द्रप्रभा वटी के साथ इस क्वाथ का सेवन कराने से लाभ पहुँच जाता है।

(१७) स्तन्यशोधक क्वाथ

विधि–अनन्तमूल, पाढ, देवदारू, चिरायता, मोरबेल, कुटकी, गिलोय, तगर, सोंठ, नागरमोथा और इन्द्रजौ सबको समभाग लेकर जौ चूर्ण करें।

मात्रा–२-२ तोले चूर्ण का क्वाथ दिन में २ बार माता को पिलाते रहने से दूध शुद्ध होता है और बालक की प्रकृति स्वस्थ रहती है।

उपयोग–कई माताओं के रक्त में जीर्ण उपदंश, सुजाक आदि रोगों का विष होता है और कईयों के अम्लपित्त और आमाशय या अन्न में क्षत होने पर रक्त में कच्चे रस का प्रवेश होकर स्तन्य अशुद्ध और विषमय बनता है। जिसके सेवन से शिशु अस्वस्थ रहता है और कई शिशुओं की १-२ वर्ष के भीतर ही मृत्यु हो जाती है। ऐसी माताओं के स्तन्य का शोधन करने के लिये यह क्वाथ बहुत उपयोगी है। यदि पथ्यपालन सह मूल रोग का उपचार भी साथ-साथ किया जाय तो स्थिर लाभ पहुँच जाता है।

(१८) रजः प्रवर्तक क्वाथ

विधि–चौलाई की जड़, गुलाब के पत्ते और तेलिया गेरू ६-६ माशे, कपास की जड़ १।। तोला और ३ वर्ष का पुराना गुड़ २ तोले लेवें। सबको ३ पाव जल में मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर छान लेवें।

उपयोग–इस क्वाथ को ३ दिन तक रोज सुबह पिलाने से मासिकधर्म साफ खुलकर आ जाता है। रुका हुआ दोष दूर होकर गर्भाशय शुद्ध हो जाता है। यह क्वाथ सामान्य औषधियों से बना है, तथापि दिव्य गुणप्रद सिद्ध हुआ है ऐसी स्त्रियाँ जिनको मासिकधर्म के समय भयंकर कष्ट होता था, मासिक धर्म अनियमित समय पर दुर्गन्धयुक्त आता था, उनको इसका सेवन कराया गया। परिणाम में अच्छा लाभ हुआ और वे सब रोग मुक्त हो गई हैं।

यदि इस क्वाथ के साथ रजोदोषहर वटी का सेवन कराया जाय तो लाभ जल्दी मिलता है।

सूचना–मलावरोध रहता हो तो मासिकधर्म आने पर उदरशुद्धि कर लेनी चाहिये। मासिकधर्म में विकृति होने पर ३ दिन स्नान नहीं कराना चाहिये। अन्यथा रजःस्राव मे रुकावट होती है। आवश्यकता पर गर्भाशय और बीजाशय पर एरण्ड तैल लगा, कपड़ा रखकर, गरम जल की थैली से सुबह और रात्रि को २०-२० मिनट तक सेक करना चाहिये।

(१९) उपदंशहर क्वाथ

प्रथम विधि–कटेली पंचांग २० तोले, बबूल की कच्ची फली सूखी २० तोले, इन्द्रायण के फल, इन्द्रायण की जड़, बड़ी हरड़, सौंफ, कचनार की छाल, नीम की अन्तरछाल, छोटे बेर की जड़ की छाल और दस वर्ष का पुराना गुड़ ये आठ औषधियां १०-१० तोले, दन्तीमूल ५ तोले और बेख जुलाब (काले दाने की जड़) १ तोला लें। सबको जौकूटकर ३२ सेर जल में मिलाकर मिट्टी के घड़े में उबालें। लगभग ४ सेर जल शेष रहने पर उतार, मसल कर छान ले। इस तरह 4 बार छानने से अति स्वच्छ जल हो जाने पर बोतलों में भर लें।

(स्वामी जगदानन्द गिरिजी)

मात्रा–पहले दिन २॥ तोले एक बार। दूसरे दिन २॥-२॥ तोले दो बार तीसरे दिन सुबह १ छटांक। शाम को आधी छटांक। चौथे दिन दोनों समय १-१ छटांक, पाँचवें दिन सुबह १॥ छटांक, शाम को १ छटांक। छठे दिन दोनों समय १॥-१॥ छटांक इस रीति से २ बोतल समाप्त होवे तब तक बढ़ाते जायें, पश्चात् मात्रा घटाते जायें।

उपयोग–यह क्वाथ उपदंश और सुजाक के उत्तानविष और कीटाणुओं को नष्ट करता है एवं लीनविष को भी दूर करने के लिये प्रयुक्त होता है। इस क्वाथ के सेवन से घोर उपदंश और सुजाक २१ दिन में दूर होते हैं। उपदंशजनित कुष्ठ में भी लाभदायक है। जीर्णरोग में रक्त शोधन की आवश्यकता होने पर इस क्वाथ का उपयोग किया जाता है।

सूचना–पहले उष्णवातघ्न क्वाथ में लिखे हुए मुंजिसका ४ दिन सेवन करें। बाद में इसका सेवन आरम्भ करें। इसके सेवन के समय में भोजन के साथ जितना घृत पचन हो सके उतनी मात्रा में अवश्य लेते रहें।

दूसरी विधि–नीम की अन्तरछाल, बकायन की छाल, कचनार की छाल, बबूल की कच्ची फली, इन्द्रायण की जड़, छोटी कटेली का पंचांग ये ६ औषधियां २०-२० तोले और पुराना गुड़ १॥ सेर लेवें। सबको मिला जौकूट कर १० गुने पानी में मिट्टी के घड़े में क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार मसल कर छान लेवें।

मात्रा–१० तोले रोज सुबह ४० दिन तक पिलावें।

उपयोग–उपदंश और सुजाक में दूषित व हानिकारक औषधियों के सेवन अथवा अपथ्य पालन से विष या कीटाणु शेष रह जाते हैं। उनका इस औषधि के सेवन से जड़मूल से नाश हो जाता है, भोजन हल्का और सादा लेना चाहिए।

(२०) कृमिघ्न क्वाथ

विधि–अनार की जड़ की छाल के टुकड़े कुचले हुए ५ तोले, पलाश बीज का चूर्ण ६ माशे, बायविडंग का चूर्ण १ तोला और जल १०० तोले। सबको मिला ढक्कन ढके हुए कलई के बरतन में (१॥ घन्टे तक) आधा जल शेष रहने तक उबालें। फिर शीतल होने पर छानकर बोतल में भर लेवें।

मात्रा–५-५ तोले ६ माशे शहद मिलाकर सुबह से आध-आध घन्टे पर ४ बार पिला दें।

उपयोग–यह क्वाथ उदरावेष्टकृमि (चिपटे कद्दूदानाकृमि Tape Worms), महागुदा (गोल केंचवें कृमि Round Worms), चुरव कृमि (सूती कृमि Thread Worms) अन्त्रादकृमि (धान्याङ्कुर के सदृश मुड़े हुए Hook Worms), इनको निकाल देता है। इन सबमे यह प्रयोग विशेषत: उदरावेष्ट कृमियों के लिये हैं, जो अति कष्ट देने वाले हैं।

अनार के मूल की छाल में कद्दूदानों को नष्ट करने का गुण अधिक है। पलाश बीज और बायविडङ्ग केंचवे और कद्दूदाना दोनों को निकालने में सहायक है। बायविडङ्ग सूक्ष्म कृमियों का नाशक, दीपन-पाचन, रक्तप्रसादन, सारक और चर्मरोगहर है।

इस क्वाथ सेवन से कुछ बेचैनी होती है, परन्तु वान्ति नहीं होती। उस अवस्था में कृमि च्युत होते हैं। फिर वे स्थिर न हों, इसके पहले जुलाब देकर निकाल देने चाहिये। इसके लिए एरण्ड तैल का जुलाब विशेष हितकर है, जो अन्त्र में स्निग्धता लाता है, कृमि और आम को निकालता है तथा विरेचन हो जाने के पश्चात् अन्त्र संकुचित होने में सहायक होता है।

सूचना–कद्दूदाना कृमि होने पर उसके पूर्व दस्तों के साथ निकलते रहते हैं, जब तक उनका शिर न निकल जाय, तब तक औषधि सेवन करानी चाहिये। चाहे१,२,३ दिन या अधिक दिन लगें। रोगी के दस्त को देखते रहना चाहिये, कि कद्दूदानों का शिर निकला या नहीं।

हरड़ के अतिरिक्त कषायरस वाली सब औषधियाँ प्राय: न्यूनाधिक अंश मेंअग्नि को मन्द करती है। इसलिए इस कृमिघ्न क्वाथ को भी आवश्यकता से अधिक दिन नहीं लेना चाहिए।

कृमि रोग में बहुधा पाण्डु, अग्निमांद्य, अरुचि, वमन, रक्तविकृति, मांसपेशियों और वातवाहिनियों की निर्बलता आदि अनुगामी विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये इस क्वाथ के सेवन के पश्चात् ताप्यादि लोह, नवायस लोह अथवा लोहभस्म, अभ्रकभस्म और ६४ प्रहरी पीपल का मिश्रण कुछ दिनों तक सेवन कराना चाहिए।

(२१) मूत्रशोधक द्रव

विधि–मुर्दासिंगी, फिटकरी, रसोंत, सुरमा, सफेद कत्था प्रत्येक १०-१० तोले, नीलाथोथे का फूला १। तोले, रसकपूर १। तोले और पानी १। सेर लें। सबको बारीक पीसकर जल में मिलावें। इसमें से ३-३ माशे जल लेकर १०-१० तोले पानी में मिला लें। फिर तीन-तीन उत्तर बस्ति दिन में ३ बार दें। (धन्वन्तरि)

उपयोग–इस औषधि से सुजाक की पीप और जलन दूर होते हैं। यह नये और पुराने सुजाक को नष्ट करने में अति उपयोगी है।

यह मूत्रशोधक द्रव विशेष तेज है। इसमें नीलाथोथा होने से लगाने के समय जलन भी करता है तथापि नये तीव्र प्रकोपयुक्त सुजाक के भीतरी घाव को शुद्ध करता है। इसका उपयोग बहुधा ३ दिन करने पर भीतर का घाव शुद्ध हो जाता है फिर उपदंशहर क्वाथ प्रथम विधि के क्वाथ का उपयोग करना हो तो भी हो सकता है।

इस क्वाथ के भीतर नीलाथोथा स्थानिक क्षत शोधक है, रस कर्पूर क्षत शोधन में सहायक और रक्तशोधक भी है। मुर्दासिंगी, सुरमा, फिटकरी ये व्यथा शामक और क्षतरोपक हैं, रसोंत, कत्था ये क्षत रोपण में और वेदना शमनार्थ सहायक द्रव्य हैं। संक्षेप में अनुभवी चिकित्सक ने इस प्रयोग की योजना अनुभव के आधार से की है। यह प्रयोग अति सफल सिद्ध हुआ है।

(२२) बृहत्यादि क्वाथ

विधि–छोटी और बड़ी कटेली के मूल, गोखरू, एरण्ड की जड़, कुश, कास और ईख की जड़ इन ७ औषधियों को समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। (वृ.मा.)

उपयोग–२ से ४ तोले का क्वाथ करके पिलाने से पित्त प्रकोप जनित दारुणशूल नष्ट होता है। शूल वातपित्तज हो तो शहद मिलाकर पिलावें।

यह बृहत्यादि क्वाथ उदरस्थ आमशूल, हृदयस्थ रक्तवाहिनियों के भीतर उत्पन्न (प्रवेशित) वातजनित शूल, मांसपेशियों में शूल, शीर्षशूल पर प्रयोजित होता है। यह क्वाथ निर्भय और श्रेष्ठ औषधि है।

यदि विष प्रकोपज मांसपेशियों में खिंचाव हो तो सूतशेखर और सोहागे के फूले के साथ इस क्वाथ की अनुपान रूप से योजना करनी चाहिये।

सूचना–कई रोगियो को क्वाथ की मात्रा बढ़ जाने पर वान्ति हो जाती है, किन्तु उससे आमाशयस्थ और कण्ठस्थ कफ और आम निकलकर मार्ग शुद्ध हो जाता है। प्रकृति कोमल हो तो उसके अनुरूप मात्रा कम देनी चाहिए।

(२३) दुरालभादि क्वाथ

विधि–धमासा, पित्तपापड़ा, परवल के पत्ते और कुटकी को समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। (वं. से.)

मात्रा–३ से ६ तोले का क्वाथ करके दिन में ३ बार पिलावें। विस्फोटक पर निवाये क्वाथ में काली मिर्च और गूगल मिला लेवें।

उपयोग–इस क्वाथ से पित्त और कफ पित्त प्रधान मसूरिका में संताप नष्ट होता है एवं विस्फोटक रोग का शमन होता है।

(२४) पटोलादि क्वाथ

विधि–परवल के पत्ते, गिलोय, नागरमोथा, वासा के पत्ते, धमासा, चिरायता, नीम की अन्तर छाल, कुटकी और पित्तपापड़ा इन ९ औषधियों को समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। (यो.र.)

मात्रा–३ से ६ तोले का क्वाथ करके दिन में ३ बार पिलावें।

उपयोग–यह क्वाथ अपक्व मसूरिका को शांत करता है। पच्यमान का जल्दी पाक कराता है और पक्व मसूरिका का शोधन करके सत्वर घाव को सुखा देता है। विस्फोटक और शीतला के ताप का शमन करने के लिये उत्तम औषधि है।

यह क्वाथ बालकों को मसूरिका की सभी अवस्थाओं में निर्भयता पूर्वक दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह क्वाथ उदर को शुद्धि करके पित्त प्रधान विषमज्वर को दूर करता है तथा विसर्प और कण्डू आदि त्वचा रोगों में भी यह अति हितावह है।

(२५) कपित्थादि यवागू

विधि–कैथ, कच्चे बेलफल की गिरी, अम्लोनिया (चूके के पत्ते) और अनार दाने १-१ तोला लेकर ६४ तोले मट्ठे में मिलावें। उसमें चावल का आटा मिला पकाकर पतली-पतली यवागू बनालें। (चं. सं.)

उपयोग–इस यवागू के पीने से आम का पचन होता है और मल गाढ़ा होता है। पुराने अतिसार, अर्श, प्लीहावृद्धि और संग्रहणी के रोगी के लिये अति हितकर है। यदि अतिसार या संग्रहणी में वायु का भी प्रकोप हो तो इस यवागू में वृहत् पंचमूल का क्वाथ मिला लेना चाहिये।

(२६) षडंग यूष

विधि–पीपल, जौ का सत्तू, कुल्थी, सोंठ, अनारदाने और आंवला १-१ तोले और बकरे का माँस १२ तोले लेवें। ८ गुने जल में उबाले। चतुर्थांश शेष रहने पर उतारकर छान लें। फिर घी का छोंक देकर पिलावे। (च.चि.)

उपयोग–इस यूष के सेवन से क्षय रोग में उत्पन्न पीनस, शिरदर्द, कास श्वास, स्वरभेद और पार्श्वशूल दूर होते हैं एवं क्षयरोगी की शक्ति का संरक्षण होता है।

राजयक्ष्मा में–शिरदर्द, प्रतिश्याय आदि बहुधा नाड़ियों में कफ अथवा आम का प्रवेश होने पर होते हैं। इस प्रकार का कारण प्रतीत हो तो षडङ्गयूष का सेवन कराने पर नाड़ियां शुद्ध होकर सब लक्षण शमन हो जाते हैं।

क्वचित् बृहदन्त्र में दूषित मल संग्रह के हेतु से भी ऐसे लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्था में ग्लिसरीन या एरण्ड तैल की पिचकारी देकर गुदनलिका के समीप के मल-संग्रह को निकाल देने से लाभ हो जाता है।

क्वचित पारद, क्विनाइन, सोमल आदि प्रधान उग्र औषधियों से जो वृक्कों के मूत्रोत्पत्ति कार्य में प्रतिबन्ध करने से प्रतिश्याय आदि उपस्थित हुए हों तो जिस उग्र औषधि का सेवन हो रहा हो उसे बन्द करने पर ही योग्य लाभ मिलता है।

कभी बाहर ठण्डी लग जाने से फुफ्फुस जकड़ जाते हैं। फिर कफ अधिक चिपक जाता है और कास,श्वास आदि लक्षण प्रबल हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में फुफ्फुसों पर निवाये तैल की मालिश, एण्टि प्लोजस्टिन का लेप आदि उपचार उपकारक माने जाते हैं।

कभी अफीम आदि कफ को सुखाने वाली औषधि का प्रयोग हो जाने से कफ सुखकर खिंचाव उत्पन्न होता रहता है। ऐसी अवस्था में सितोपलादि चूर्ण+प्रवाल पिष्टी+श्रृंग भस्म को घृत शहद के साथ मिलाकर दिन में ४-४ बार देते रहने और अलसी का फाण्ट (चाय) पिलाने से लाभ पहुँचता है। इस प्रकार हेतु, लक्षण, प्रकृति, शरीरबल, ऋतु औषधि-सेवन, आहार-विहार, व्यसन आदि का विचार करके राजयक्ष्मा में उपचार करना चाहिये।

(२७) षडंग पानीय

विधि–नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, लालचन्दन, नेत्रवाला और सोंठ इन ६ औषधियों को समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। फिर १ तोले चूर्ण को १२८ तोले जल में मिलाकर औटावें। आधा जल शेष रहने पर उतार लें। शीतल होने पर छान लेवें।

वक्तव्य–शास्त्रीय मर्यादानुसार आधा जल शेष रखना चाहिये, किन्तु ऐसा करने पर स्वाद कसैला हो जाता है जो रोगी को नहीं दिया जा सकता अतः २-३ उफान आने पर उतार कर तुरन्त छान लेना चाहिये, उबालने के समय ऊपर ढक्कन ढककर उबालना चाहिये जिससे उसमें धुँए का प्रवेश न हो सकें।

उपयोग–इस जल का उपयोग विशेषतः पित्तज्वर में पिलाने के लिये किया जाता है। इसके सेवन से रक्त और पित्त में संगृहीत विष सरलता से स्वेद और मूत्र के साथ बाहर निकल जाता है। सुबह औटाये हुए जल को शाम तक और शाम को औटाये हुए जल को सुबह तक काम में लें। उबाले हुए जल को अपने आप शीतल होने दें, पंखादि में ठण्डा न करें।

(२८) आरग्वधादि कल्क

विधि–अमलतास का गूदा ४० तोले को ५ सेर नींबू के रस में २४ घण्टे तक भिगावें। फिर मसल छान ४० तोले मिश्री मिलाकर शर्बत जैसा बना लें। बाद में दालचीनी, तेजपात, इलायची, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, धनियाँ, भुनी हींग इन ८ औषधियों को २-२ तोले, सेंधानमक १० तोले, बड़ी हरड़, भुना जीरा और मुनक्का ५-५ तोले लें। सबको कूट शर्बत में मिला थोड़े समय अग्नि पर रख, चटनी के समान बना लेवें।

मात्रा–३ माशे से १ तोला, दिन में १ या दो बार लें। इसे भोजन के साथ भी लिया जाता है।

उपयोग–यह कल्क अपचन, अपचन से होने वाला ज्वर, शिरदर्द, उदरशूल, आम, उदरवात, जुकाम, अरुचि आदि को दूर करके अग्नि को प्रदीप्त करता है। इसके सेवन से आंतों में चिपका हुआ सूखा मल शिथिल होकर जीर्ण मलावरोध दूर होता है।

(२९) शुष्ककासहर क्वाथ

विधि–गुलबनफ्शा, हंसराज, छिली हुई मुलहठी तीनों ६-६ माशे, खतमी के बीज और अलसी ३-३ माशे और उन्नाब ६ दाने लें। सबको कुचलकर डेढ़ पाव जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार मसलकर छान लें। शीतल होने पर ३ माशे शहद मिश्री मिलाकर पिला देवें। (चि. चं.)

उपयोग–इस क्वाथ को दिन में २ बार पिलाते रहने से १०-१५ दिनों में सूखी खांसी (वातज कास) चली जाती है।

(३०) सप्तमुष्टिक यूष

विधि–जौ का सत्तू, बेर, कुलथी, मूंग, मूली के टुकड़े,धनियाँ और सोंठ इन ७ औषधियों को एक-एक मुट्ठी (४-४ तोले) मिलाकर अठ गुने जल में पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार, मसलकर छान लेवें।

उपयोग–सन्निपात में भोजन देने की आवश्यकता हो तब इस यूष का उपयोग करना चाहिये। यह यूष, वात, पित्त, कफ तीनों दोषों को हरने वाला, गुल्म, शूल, श्वास, कास, धातुक्षय और ज्वर का नाशक, आमदोषघ्न, हृद्य एवं कण्ठ से मुंह तक के दोषों को नष्ट करने वाला है।

(३१) मधुकादि हिम

विधि–मुलहठी, विहिदाना, गावजवां, गुलबनफ्सा, रेखाखतमी, मुनक्का और ल्हिसोड़ा सबको १-१ तोला लें, जौकूट करके ७ पुड़िया बनावें। (र.यो.सा.)

उपयोग–१-१ पुड़िया को १० तोले जल में मिट्टी या कांच के पात्र में रात्रि को भिगो दें। सुबह मसल छान, मिश्री मिलाकर पी लेवें। ऐसे ही सुबह एक पुड़िया भिगोकर शाम को पी लेवें। इस तरह ७ पुड़ियों के उपयोग से अर्द्धावभेदक पित्तवृद्धिजनित शिरदर्द, लू लगने वाले मन्दज्वर, जुकाम, शिर में भारीपन आदि विकार दूर होते हैं।

सूचना–जिनको श्वास, कास या कफवृद्धि स्वाभाविक रहते हों उनको हिम के स्थान पर क्वाथ करके पिलाना चाहिये।

(३२) तगरादि कषाय

विधि–तगर, असगन्ध, पित्तपापड़ा, शंखपुष्पी, देवदारु, कुटकी, ब्राह्मी (जलनीम), जटामांसी, नागरमोथा, अमलतास का गूदा, छोटी हरड़ और मुनक्का इन १२ औषधियों को समभाग मिला ४ से ८ तोले का क्वाथ करें। फिर चार हिस्से कर ३ या ४ बार तीन-तीन घन्टे पर आवश्यकतानुसार पिलावें। (यो.र.)

उपयोग–यह कषाय सन्निपात में उत्पन्न वातप्रधान, पित्तप्रधान और वात पित्तप्रधान प्रलापों को तत्काल शमनकर देता है। यह मस्तिष्क को शांत बनाता है, अन्त्र के दोषों का शोधन करता है, पचने योग्य दोषों का पचन करता है, निकालने योग्य दोषों को बाहर निकालता है तथा वातसंस्थान पर शामक असर पहुँचाकर रोगी को निद्रा ला देता है।

जब आमाशय और अन्त्र की पचनक्रिया दूषित होती है और भोजन नियमानुसार रोज करते रहने से पचन संस्थान को विश्रान्ति नहीं मिलती, तब आम संगृहीत होता है, फिर वह सड़ने लगता है और रस, रक्तादि धातुओं में शोषित होता रहता है और सब धातुओं को दूषित बना देता है। ऐसी स्थिति में आम का संशोषण तत्काल बन्द कराना चाहिये और अन्त्रगत आम को बाहर फेंकना चाहिये, यह कार्य कुटकी और अमलतास का मुख्य है। नागरमोथा, छोटी हरड़ और द्राक्षा सहायक होती हैं। ये सब औषधियों इस क्वाथ में है। जिनसे उदर शुद्धि हो जाती है। फिर आमविष का तत्काल दमन होता है। साथ-साथ ब्राह्मी, शंखाहुली, जटामाँसी, तगर आदि द्वारा मस्तिष्कगत विष को जलाने की और मन को शान्त करने की क्रिया होती है। इन दो हेतुओं से यह क्वाथ अकेला या दूसरे रस आदि के अनुपान रूप से सान्निपातिक अवस्था में श्रेष्ठ माना गया है।

यदि उदर में आम, मल, कृमि आदि विशेष परिमाण में हों कोष्ठ क्रूर हो तो कुटकी और अमलतास की मात्रा बढ़ानी चाहिये। यदि कोष्ठ मृदु हो तो कुटकी आदि कमकर देनी चाहिये। यदि पहले प्रवाहिका हो जाने से अन्त्र में क्षत हो गये हों तो कुटकी कम मात्रा में मिलावें या न मिलावें एवं थोड़ा एरण्ड का तैल और सोंठ मिला लेवें जिससे उदर में अधिक वेदना नहीं होती है एवं अधिक दस्त भी नहीं होते पर उदर शुद्ध हो जाता है। नाड़ियों में रहा हुआ मल जल जाता है। इस तरह लक्षण और उपद्रव अनुरोध से द्रव्यों की मात्रा में न्यूनाधिकता कर लेने से यह कषाय चमत्कारिक लाभ पहुँचाता है।

सूचना–उदर शुद्ध हो जाने पर कषाय में से कुटकी अरौर अमलतास को निकाल डालें। शेष औषधियों का क्वाथ दो-चार दिन तक वातवाहिनियों के विकार को पूर्णांश में शमन करने के लिए देते रहें।

विशेष योगों की जानकारी हेतु संस्था द्वारा प्रकाशित "नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह" का अवलोकन करना चाहिये। जो इसी पुस्तक का अंग है।

आसवादि प्रकरण

वनौषधियां पुरानी होने पर न्यून, गुणवाली होकर नष्ट हो जाती है, एवं काष्टौषधियों के रस और क्वाथ भी थोड़े ही समय में बिगड़ जाते हैं। इनके गुणों को दीर्घकाल तक अवस्थित रखने के लिये आसवारिष्ट प्रणाली प्रचलित हुई है। जैसे जठराग्नि में गले हुये अन्न का सार सत्व, रस निकल आता है एवं स्थूल (मल) फेंक दिया जाता है, वैसे ही आसवीकरण क्रिया में काष्ठादिक औषधियों का सत्वाँश निकल आता है। 'आसुतत्वादासव' संज्ञा अर्थात् आसुत पद्धति (संयोगज मूर्च्छा प्रक्रिया) से तैयार हो उसे 'आसव' कहते हैं। आसुत परिस्रवण निःसरण, क्षरण, खिचांव, टपकाव, चुआव, फाँट, क्वाथ, काढ़ा। आसवीकरण क्रिया द्वारा मूल द्रव्यों के सत्वाँश एवं मधुर द्रव्यों का मद्यांश खींचा जाता है। यह मद्यांश मूल द्रव्यों के सत्वाँश को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखने में सहायक है तथा मूलक्वाथ के गुणों में भी वृद्धि करता है, एवं औषधियों के गुणों के संरक्षाणार्थ व विवर्धनार्थ आसव अरिष्ट क्रिया व्यवहार में आई है।

आसव अरिष्ट के द्रव्यों में कार्यदृष्टि से तीन विभाग होते हैं-(१) कार्मुक तत्व निष्कासन, (२) कोहल संजनन एवं (३) मधुसंजनन।

कार्मुकतत्व निष्कासन, औषध द्रव्यों में रहे सत्व द्वारा होता है। कार्मुक तत्व, जल (प्रवाही द्रव्य) में उतरना, फिर अवस्थित रहना और उसके सामर्थ्य को बढ़ाना ये तीन कार्य संधान विधि द्वारा सिद्ध होते हैं। कोहल एवं मध संजनन कार्य मधुर पदार्थों द्वारा होते है धातकीपुष्प, सुराबीज (जगल) महूवे के फूल, सुपारी, बबूल की छाल, नागकेशर, गुड़, मधु एवं शक्कर आदि मधुर पदार्थ हैं। इनके द्वारा आसवीकरण क्रिया निश्चित रूप से मर्यादित समय में हो जाती है और उपयुक्त मद्यांश भी मिल जाता है। मधुर गुणयुक्त अणुओं को किण्व कीटाणु भक्षणकर आसव के अणुओं में रूपान्तरित कराते हैं। मधुर द्रव्य न मिलाया जाय तो आसव या मद्य बन नहीं सकता।

यथार्थ में मद्य के आसव, अरिष्ट, सीधु, वारुणी, सुरा और मैरेय ६ भेद हैं।

(१) **आसव**-"यदपक्ववौषधाभ्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः"। अर्थात् अपक्व औषधियों को मधुर द्रव्य और धाय के फूल आदि के साथ, जल में मिला बिना क्वाथ किये पात्र में भर मुखमुद्राकर कुछ काल तक बन्द रखकर जो मद्य सिद्ध किया जाय, उसे आसव कहते हैं।

आसवानामासुतत्वादासव संज्ञा (चरक)

अर्थात् संधानित द्रव को परिस्रुत किये जाने से आसव संज्ञा दी गई है। जल, मीठे आदि के संधान के समय जो मदकारी वस्तु उसमें उत्पन्न हो, उसे आसव कहते हैं। आसव तथा अरिष्ट दोनों में विशेष अन्तर नहीं हैं, दोनों एक रूप हैं। कोई आसव पका करके भी बनाया जाता है। कोई अरिष्ट बिना पकाये भी बनता है। यथा-

(२) **अरिष्ट**-"अरिष्टः क्वाथसिद्धः स्यात् सम्पक्वो मधुरद्रवैः।" अर्थात् औषधियों का क्वाथ कर फिर मधुर द्रव्य और धाय के फूल आदि मिलाकर मद्य तैयार किया जाय वह अरिष्ट कहलाता है।

जो चिरकाल तक नष्ट न हो उसे अरिष्ट कहते हैं।

(३) **सीधु**-"सीधुःइक्षुरसैः पक्वैः।" अर्थात् ईख रस को उबाल कुछ काल बन्द रखकर जो द्रव्य सिद्ध किया जाता है, उसे सीधु-सिरका कहते हैं। वर्तमान में रस को बिना पकाये ही सिरका बनाते हैं। गन्ने (ईख) के समान द्राक्षा या जामुन के रस को किसी बरतन में भरकर संधान उठाने पर भी सीधु तैयार होता है। इसके पक्वरस, शीतरस, गुड़, शर्करा, आक्षिक और जाम्बव ये भेद माने गये हैं।

(४) **वारुणी**-"यत्तालखर्जूररसैरास्रुतं सैव वारुणी।" अर्थात् ताल या खर्जूर के शिखर-प्रदेश पर कुल्हाड़ी से तिरछा घाव करने से कटे हुए भाग से जो रस स्राव होता है, उसे बर्तन में भरकर रख देने से थोड़े ही समय में खमीर आकर मद्योत्पत्ति हो जाती है, वह वारुणी (ताड़ी) कहलाती है। इस तरह पुनर्नवामूल और चांवलों को पीस पिठ्टी बना, जल में घोल देने से खमीर आकर मद्य बन जाता है, उसे 'वारुणी' संज्ञा दी जाती है।

(५) **सुरा**-"परिपक्वान्नसंधान समुद्भूता सुरा मता।" अर्थात् चांवल आदि को पका, मीठा मिला, खमीर उठाकर जो मद्य तैयार की जाय उसे सुरा (शराब) कहते हैं। इसके गौडी (गुड़ मिला, बनाई हुई), माध्वी (महुआ के फूल मिलाकर तैयार की हुई), पैष्टी (चांवल आदि अन्न के संधानजन्य) और निर्यास (ईख के रस और फलों के रस में तैयार की हुई)ये चार भेद हैं। ये सब नलिकायन्त्र द्वारा वाष्प को खींचकर तैयार की जाती है। ये सब स्वच्छ वर्णरहित और एक प्रकार की गन्धयुक्त होती है।

(६) **मैरेय**-आसवस्य सुरायाश्च द्वयोरेकत्र भाजने।
संधानं तद्विजानीयात् मैरेयुमुभयात्मकम्॥

अर्थात् आसव द्रव्य और सुरा (अन्न या फल रस आदि) मिलाकर संधान किया जाय उसे "मैरेय" कहते हैं एवं बबूल या बेर की छाल और गुड़-शक्कर आदि को जल में मिलाकर मद्य बनाया जाय, वह भी "मैरेय" कहलाता है।

मद्य और आसव दोनों की क्रिया में भेद हैं। घटक, अवयव और गुण में भी भेद हैं। 'मद्यमम्लेषु च श्रेष्ठम्' तथा 'आसवं विनष्टं अम्लतां यातम्' इस प्रकार से शास्त्रकारों ने भेद दर्शाया है। तथापि सारग्राही दृष्टि से व मद्यार्कपन दृष्टि से शराब और आसवारिष्ट की एक जाति है। शराब में मद्यार्क और जल रहते हैं, तथा आसवारिष्ट में मद्यार्क और जल के अतिरिक्त विविध औषधद्रव्यों के सत्व भी रहते हैं एवं मद्यार्क की मात्रा अति न्यून होती है, शराब में मादक गुण प्रधान है किन्तु आसवारिष्टों में औषधगुणों का प्राधान्य होने से मर्यादित मात्रा में ही सेवन किया जाता है।

बिना क्वाथ किये हुए संधानित द्रव को आसव और क्वाथ कर बनाये हुए को अरिष्ट कहते हैं ऐसा अनेक आचार्यों का मत है। किन्तु कितने ही विद्वान चरक, सुश्रुत आदि आचार्यों के वचनों के आधार पर इस व्याख्या को निर्मूल दिखाते हैं। लोध्रासव, दुरालभासव, द्राक्षासव आदि अनेक आसवों की मुख्य औषधियों का क्वाथ करने की आज्ञा शास्त्रकारों ने दी है एवं चरकसंहिता के चिकित्सास्थान में तक्रारिष्ट, त्रिफलारिष्ट और अन्य अनेक अरिष्टों में क्वाथ करने का विधान नहीं है। इनके अतिरिक्त सुश्रुत संहिता में भी अनेक अरिष्टों में क्वाथ विधि नहीं कही है। अत: आसव और अरिष्ट दोनों पर्याय शब्द हैं, ऐसा भी अनेक विशेषज्ञों का मत है।

निर्माण क्रिया-

आसव बनाने से संधान क्रिया अत्यन्त आवश्यक मानी है। जल औषधद्रव्य, मधुर द्रव्य आदि को मिला अमृतबान के मुख पर ढक्कन लगा संधिस्थान पर लेपन (संधान) करने को संधान विधि की संज्ञा दी है। आधुनिक समय में अमृतबान की जगह लकड़ी के ढोल उपयोग में लाये जाते हैं, तथा उनका ढक्कन भी लेप के बजाय कपड़े से बांधकर पक्का बन्द किया जाता है। नवीन पद्धति की निर्माण क्रिया जो आजकल अधिकांश में प्रचलित है वह सामान्यत: इस प्रकार है।

प्रथम-जो भी आसव बनाना हो उसके, विधि अनुसार मूल द्रव्यों को जौकूट कर लेवें और लकड़ी के ढोल में जल डालकर उसमें प्रथम गुड़ यथा-मात्रा में मिला लेवें। जल को हिलाकर गुड़ को पूर्णतया मिश्रित कर लें। बाद में जौकूट मुख्य द्रव्य जल में डालें। ढोल को ढक्कन लगा कपड़े से बांध देवें। आसव निर्माण के पात्रों के मुख पर पतला कपड़ा बांधकर ढक्कन कुछ ऊँचा उठा हुआ रख देना चाहिये जिससे पात्र में हवा का आवागमन होता रहे।

संधान विधि में उन्हें कभी हिलाते भी रहना चाहिये। ढोल को इस प्रकार बन्द करने के उपरांत उसमें आसवीकरण क्रिया प्रारम्भ होकर खमीर उठने लगेगा। खमीर उठते समय ढोल के अन्दर एक प्रकार की 'सू सूं सी' आवाज उठने लगेगी। विशेष निश्चय करने के लिए ढोल के मुंह पर जलती दियासलाई रखें। यदि खमीर बैठ गया होगा तो दियासलाई जलती रहेगी, और खमीर बनता होगा मो दियासलाई बुझ जायेगी। जल पर फेन चक्र रूप में आ जावेंगे। खमीर में एक प्रकार के कीटाणु (किण्व) उत्पन्न होंगे, जो मद्यांश को पैदा करेंगे। आसवीय द्रव द्रव्य में किण्व (Yeast) के कीटाणुओं की जीवन क्रिया सम्पादन को खमीर उठना (Fermentation) कहते हैं और इस क्रिया से (Carbonic acid gas) कारबो० एसिड गैस उत्पन्न होता है, उत्तापोत्पत्ति होती है तथा मीठे के अणु टूट-टूटकर आसव के अणु बनते हैं।

आसवीकरण क्रिया के कीटाणु ४० फारनहीट से नीचे के तथा ९० फारनहीट के ऊपर के तापमान पर जीवित नहीं रह सकते। ४० फारनहीट से नीचे के तापमान पर वे निष्क्रिय हो जाते हैं और ९० फारनहीट के तापमान पर वे मर जाते हैं। अत: संधान क्रिया नहीं होकर आसव वैसे का वैसा पड़ा रहता है या विकृत हों जाता है। ठीक-ठीक आसवीकरण क्रिया के लिये उस स्थान का उत्ताप ५० से ७५ फारनहीट तक आवश्यक होता है।

अत: शीत व उष्ण ऋतुओं में इतना उत्ताप बने रहने का कृत्रिम प्रबन्ध करना चाहिये।

उष्ण तापमान पर यह क्रिया अच्छी प्रकार होती है। अधिक उष्णता बढ़ने पर या अधिक शीतलता आ जाने पर आसव क्रिया बन्द हो जाती है। आसव क्रिया प्रारम्भ में प्रबल होती है, फिर जैसे-जैसे मद्यार्क अधिकाधिक तैयार होता जाता है वैसे-वैसे यह क्रिया मन्द होती जाती है। १५ प्रतिशत मद्यार्क बन जाने पर उसमें कीटाणु जीवित नहीं रह सकते, कीटाणु नष्ट होते ही क्रिया बन्द हो जाती है। परिवर्तन क्रिया में अम्ल परिवर्तन इष्ठ नहीं है। कोहल परिवर्तन अपेक्षित होता है। किन्तु जैसा अम्ल परिवर्तन प्रतीत होता है वैसा कोहल परिवर्तन नहीं होता है। कुछ न कुछ अंश में अम्लरूपान्तर होता ही है। यदि अम्लरूपान्तर अधिक हो जाय तो आसव बिगड़ जाता है। अम्लत्व, यह मद्य का सहज रस है और मधुर, यह आसव का रस है। अम्लता बढ़ने से आसव मद्यरूप या शराब बन जायेगा। आसव खट्टा होकर 'शुक्त' बन जायेगा। आसव का पहिला संधान समाप्त होने पर कुछ समय के बाद यदि पुन: दुबारा संधान प्रारम्भ हो जाय तो आसव 'शुक्त' बन जायेगा इसलिए प्रथम संधान बन्द होते ही आसव को छानकर दूसरे ढोल में भर लेना चाहिये। कपरौटी करके जो बर्तन (पात्र) बन्द किये जाते हैं उनमें प्राणवायु (Oxygen) के प्रवेश की जगह न रहने से कार्बोनिक गैस बाहर जाने की भी जगह नहीं रहती और वह अन्दर ही धूमायित

होकर आसव को बिगाड़ देगी। इसलिये पात्र के ढक्कन में से थोड़ी-सी वायु आने जाने का रास्ता रहना आवश्यक है।

आसव डालने के बाद ५ दिन के अन्दर उसमें फेन उठने चाहिये। अगर फेन न उठे तो आसव में उचित उष्णतामान की कमी समझना उचित उष्णतामान पैदा करने के लिए उसे धूप में रखकर मोटे कपड़े से अच्छी तरह ढक कर ऊपर से बांध देना चाहिये। ऐसा करने से ३ दिनों के भीतर ही फेन उठने प्रारम्भ हो जायेंगे। फेन के अन्दर सूक्ष्म दृष्टि से अणुवीक्षणता यन्त्र द्वारा देखने पर लम्बे आकार (Yeast) के किटाणु कभी-कभी दिखाई देते हैं। ये कीटाणु मधुर पदार्थों को खाकर मद्यांश पैदा करते हैं। जब इनके द्वारा मधुर पदार्थों का सेवन पूर्ण हो जाता है तब यथावश्यक मद्यार्क आसव में उत्पन्न हो जाता है। ये कीटाणु "मृतसंजीवनी सुरा" में अधिक एवं बड़े आकार वाले भी पैदा होते हैं। द्राक्षासव में उससे कम और अन्य आसवों में उनसे छोटे या कम उत्पन्न होते हैं। इसीसे इनमें मद्यार्क की मात्रा प्रतिशत या पर्सेन्टेज में उत्तरोत्तर कम पायी जाती है। ऐसा भी अनुभव में आता है कि अगर कोई कीटाणु बाहर पड़ा हो और आसवीकरण क्रिया बन्द पड़ गई हो तो उस कीटाणु को ढोल में डाल देने पर क्रिया पुनः उठने लगती है और भी क्रिया भेद पड़ने पर उठाने का तरीका यह है कि गुड़, शक्कर आदि मधुर पदार्थ अनुमानतः ५ मन पानी में १० सेर डाल देने से क्रिया पुनः उठने लगेगी।

इस आसवीकरण क्रिया में मद्यांश के उत्पन्न होने के साथ-साथ मूल द्रव्यों का सत्वांश भी खिंचता जाता है। सत्वांश और मद्यांश का मिश्रण सम्यक् प्रकार से होता जाता है, जिससे औषध में गुणवृद्धि होती है। आसव केवल मद्य न रहकर औषध रूप बनता है। यथार्थ में औषधि का सत्व मद्य को अपने अंश में समाविष्ट कर लेता है। इससे यह स्पष्ट है कि आसव मद्य नहीं, औषध है।

आसवीकरण क्रिया समाप्त होने के उपरांत शीघ्र ही उसे दूसरे ढोल में छानकर भर लेना चाहिये। छानते समय यह लक्ष्य रखना चाहिये कि उसमें मच्छर, मक्खी आदि न पड़ जायँ और आसव को धीरे-धीरे छानना चाहिये। जोर से एकदम उंडेलने से उड़ने की सम्भावना है। सत्वाँश का रक्षण आवश्यक है। अन्यथा आसव हीनवीर्य हो जायेगा।

गुड़, शक्कर, मधु आदि पदार्थ आसव में जल के कितने प्रमाण में मिलाये जावें? इसमें कई मत हैं। इन मधुर पदार्थों का मिश्रण यथोचित व सम्यक् होना चाहिये। ज्यादा होने पर आसव गाढ़ा होकर (आसवीकरण) क्रिया उठेगी नहीं, कम होने पर भी क्रिया नहीं उठेगी। आसवारिष्ट के बनने का मूल आधार मीठे द्रव्य हैं। मीठी वस्तुओं से आसवअरिष्ट बनते हैं। मीठे के अणु ही आसव रूप में बदलते हैं। चाहे गुड़, शक्कर, मिश्री,शहद, खजूर, गन्ने का रस, महुआ, मुनक्का, ताड़ का रस आदि हों। किण्व के कीटाणु मीठे के अणुओं का भक्षण जैसे-जैसे करते रहते हैं वैसे-वैसे आसव बनता रहता है। अतः उन कीटाणुओं को मीठा चाहिये, चाहे गुड़ हो या शक्कर।

इसमें स्वाद व गुणों में न्यूनाधिकता हो सकती है। किन्तु आसव क्रिया में अन्तर नहीं होता। जिस मीठे में अम्लता, तिजाबी असर या (Free Phospporic Acid) युक्त स्फूरिकाम्ल होगा वे आसवारिष्ट अम्लतायुक्त या दोष पूर्ण स्वाद, गंधवाले खराब हो जाते हैं। नकली शहद के योग से भी आसवारिष्ट सदोष हो जाते हैं।

अतः शास्त्र प्रमाणानुसार मीठा मिलाना ही चाहिये।

जब आसव बन चुका है या जब आसव बनाने वाले कीटाणुओं का काम समाप्त हो जाता है, उसी समय से सिरका बनाने वाले कीटाणु सक्रिय होकर सिरका बनाना प्रारंभ कर देते हैं और उस समय यदि उसमें आवश्यक परिमाण में मीठा न मिलाया गया तो आसव शुक्त (सिरका) रूप में परिवर्तित हो जाता है।

अतः आसव बन चुकने के तुरन्त बाद छानने से पूर्व या पश्चात् आसव में १/४ भाग या १/५ भाग मीठा मिला देने से शुक्त बनने से बचेगा, आसवारिष्टों का स्वाद भी अच्छा हो जायेगा। आसव से सिरका बन जाने के बाद शक्कर आदि मीठा मिलाने से फिर आसव में मिठास नहीं आयेगा व वह द्रव सिरका ही बनता रहेगा।

आसव पूरा पक्व होने पर ही दीर्घकाल तक टिक सकता है। कच्चा रहने पर अगर बोतल में भर दिया तो उसमें वायु (गैस) पैदा होकर वह वायु शीशी को फोड़ डालेगा या डाट को फेंक देगा। आसव कच्चा रहने पर बोतल में फेन अधिक दिखाई देंगे। पक्व आसव में बोतल को हिलाने परकुछ फेन दिखाई देंगे पर वे जल्दी ही शमन हो जायेंगे। आसव पतला, हल्का व सौम्य भी होना चाहिये और साथ-साथ पारदर्शक भी हो तो बहुत ही अच्छा माना जावेगा। ऐसा होने के लिए आसव को ढोल में से निकालते समय ढोल के अन्दर नली डालकर उस नली के दूसरे मुंह से हवा को खींच लेनी चाहिये। ताकि नली आसव से भर जाय और उस नली के द्वारा बोतलें भरनी चाहिए। ऊपरी जल जैसा जैसा भरा जावेगा गाद नीचे-नीचे बैठती जावेगी। अन्त में जब जल थोड़ा रह जावे तब विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है नली गाद को स्पर्श न करें। नली गाद को स्पर्श करने पर गाद बोतल में आ जावेगी। द्राक्षासव को छोड़कर अन्य आसवों की 'गाद' पुनः उपयोग में नहीं आती है। द्राक्षासव की गाद को 'जगल' या किण्व (Yeast) कहते हैं। यह जगल पुनः आसवीकरण क्रिया में मदद करने के लिए किसी भी आसव के उपयोग में लायी जा सकती है। ५ मन पानी में मात्र २ सेर डालनी चाहिये।

अनुमान होता है कि आसवों के रूप, गुण, स्वाद और स्वभाव चिरकाल तक न्यून नहीं होते। इसी हेतु से आसव का गुणात्मक नाम अरिष्ट दिया गया है। इन ६ प्रकार के मद्यों में से आचार्यों ने विशेषतः आसव-अरिष्ट को ही औषधि रूप से प्रयोग में लिया है। इसी हेतु से आसव अरिष्ट रोगनाशक औषधियों में से ही तैयार किये हैं। सीधु, वारुणी, सुरा और मैरेय को औषधियों से नहीं बनाया। विशेषतः वारुणी, सुरा आदि का प्रयोग मादकता के लिए ही होता रहता है, औषध रूप से उपयोग बहुत कम अंश में किया है।

जो औषधि कठोर हो उसमें से उबाल करके अरिष्ट और सौम्य, तैल और सुगन्धयुक्त हों, उनमें से आसव बनाना चाहिये क्योंकि तैल औषधि उबालने पर तैल सत्व उड़ जाता है और औषध हीनगुण हो जाती है।

प्राचीन विधि–

आसवीभवन-परिवर्तन Fermentations में २ प्रकार हैं। (१) अम्ल (Acid) (२) कोहल (Alcohol), इस परिवर्तन के लिये शक्कर, गुड़, शहद, मुनक्का, गंभारीफल, महुए के फूल और धाय के फूल आदि द्रव्यों का उपयोग होता है। कितने ही चिकित्सक धाय के फूल के स्थान पर धाय के फूल का कषाय करके मिलाते हैं। क्वाथ मिलाने से परिवर्तन रूप कोहल क्रिया अति सरलता से और उत्तम प्रकार से होती है।

धाय के फूल की कषाय विधि–धाय के फूलों के चूर्ण को १० गुने जल में २४ घण्टे तक भिगो उबालकर कपड़े से छान लेवें। फूलों के चूर्ण को अच्छी तरह दबाकर निचोड़ लेवें। फिर १ सेर मधुर पदार्थयुक्त मिश्रण में २॥ तोले धातकी पुष्प कषाय मिलावे। इस जल के मिलाने से (१) फफूंदी कम आती है, (२) कोहल क्रिया सरलतापूर्वक सत्वर और इष्ट परिमाण में होती है, (३) आसव छानने के समय त्रास कम होता है। यदि आवाप (प्रक्षेप) द्रव्य को पोटली में बाँधकर डालें तो छानने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

आसव-अरिष्ट के पात्र–प्राचीन काल में घी में से रमा हुआ मिट्टी का पात्र लेने का रिवाज था। परन्तु ऐसे पात्रों को यदि धूप में रखकर घी को न पोंछ लिया जाय, तो आसव में घी का अंश आ जाता है, एवं पात्र घी से रमा हुआ न होने पर आसव बाहर निकलता रहने से कम हो जाता है।

इनके अतिरिक्त मिट्टी के बर्तन में उत्ताप वाहक गुण होने से भीतर की उष्णता को बाहर फेंकता रहता हैएवं शीतकाल में बाहर की शीतल वायु का सम्बन्ध होता रहे तो भी भीतर रहा हुआ आसव शीतल हो जाने से उसका यथोचित पाक नहीं होता। इस हेतु से भूतकाल में जमीन में या धान्य राशि में दबाते थे। परन्तु वर्तमान में अमृतबान के स्थान पर चीनी मिट्टी के अमृतबान, लकड़ी के ढोल या सीमेण्ट के हौज का उपयोग करना विशेष हितकर माना जाता है।

यदि मिट्टी के ही पात्रों को उपयोग में लेना हो तो घड़े के भीतर निम्न राल मिश्रण का लेप कर लेना चाहिये, जिससे आसव का शोषण न हो एवं भीतर की उष्णता बाहर न निकले।

राल मिश्रण–१० तोले राल, १० तोले बीजाबोल और १० तोले उत्तम चपड़ी वाली लाख की २ बोतल (४८ औंस) मैथीलेटेड स्पिरिट में मिलाकर लेप करें। एक लेप सूखने पर दूसरी बार, लेप करें। इस तरह ७ बार लेप करने पर घड़े के सूक्ष्मातिसूक्ष्म छिद्र बन्द हो जाते हैं। फिर उसके भीतर भरे हुए आसवों में जल बाहर नहीं निकल सकता। भीतर की उष्णता जैसी की तैसी बनी रहती है आसव यथासमय सिद्ध हो जाता है।

विदेशी शराब के लिये सागवान की लकड़ी के ढोल आते हैं, उनका उपयोग करना हो तो पहले गरम जल और सोडा आदि से या चूने के जल से उनको भली भाँति साफ कर लेना चाहिये। जिससे उनमें से शराब का अंश निकल जाय। ये ढोल शीशम, सागवान आदि दृढ़ लकड़ी के आते हैं, जो वर्षों तक खराब नहीं होते। उनमें भरे हुए आसव-अरिष्ट मूल स्थिति में कायम रह सकते हैं। इस ढोल की लकड़ी उत्तापरोधक होने से भीतर की उष्णता का वहन नहीं होने देती है। अतः मिट्टी के पात्रों की अपेक्षा ये अच्छे माने जाते हैं।

१-सागवान के बने ढोलों में उत्तापरोधक गुण होता है। अतः सर्दी-गर्मी का असर जल्दी नहीं होता तथा संधान क्रिया में खास परिवर्तन नहीं होता।

२-सागवान के बने ढोलों में डाले गये आसव चुचाते भी नहीं हैं।

३-इनके फूटने की भीति नहीं होती है।

४-इनका संसर्गजन्य हानिकर दोष आसव में नहीं आता।

पहले आसव अथवा अरिष्ट की वस्तुओं के क्वाथ अथवा स्वरस को तैयार करें। फिर शक्कर, गुड़ अथवा शहद मिलाकर चीनी मिट्टी के अमृतबान में भरें। पश्चात् मुंह तक थोड़ा भाग खुला रख, ऊपर कपड़ा बांधकर एकान्त स्थान में १०-१५ दिन तक खमीर आकर शांत हो जाने तक रहने दें। प्रारम्भ में कार्बोनिक गैस उत्पन्न होकर बाहर निकलती रहती है। इस गैस को यदि अरिष्ट के पात्र पर मुखमुद्रा करके रोक दी जाय, तो आसव में अम्लता बढ़ेगी, और आसव के स्थान पर शुक्त बन जायेगा। खमीर उठाने के समय "सूं सूं" जैसी आवाज अमृतबान के पास कान लगाने

से सुनने में आती है। खमीर शांत होने पर आवाज सुनने मेंनहीं आती। विशेष निश्चय करने के लिए अमृतबान के मुँह पर जलती दियासलाई रखें। यदि खमीर बैठ गया होगा तो दियासलाई जलती रहेगी और खमीर बनता होगा तो दियासलाई बुझ जायेगी। इस तरह परीक्षा करके खमीर शांत होने पर प्रक्षेप (धाय के फूल, जायफल, जावित्री का चूर्ण अथवा कल्क) डालना चाहिये, ऐसा कितने ही विद्वानों का मत है। इसके विरुद्ध अनेक चिकित्सक प्राचीन पद्धति अनुसार प्रक्षेप को तुरन्त मिला देते हैं। हमने इस ग्रन्थ में प्राचीन मत अनुसार एवं नवीन दोनों विधियां लिखी है। नव मतानुसार प्रक्षेप मिलाने वालों के लिये खमीर आ जाने के बाद कदाचित् आसव-अरिष्ट के ऊपर पूड़ी जैसी पपड़ी आ गई हो तो फेंक दें और आसव अरिष्टों को छान करके प्रक्षेप मिलावें। प्रक्षेप मिलाकर अमृतबान का पौन हिस्सा भरें। चौथाई हिस्सा खाली रखना चाहिये जिससे अमृतबान न फूटे। खमीर शांत हुए बिना पहले से एक साथ में प्रक्षेप मिला देने से अमृतबान फूटने का और उफान आकर औषधि निकल जाने का डर रहता है। प्रक्षेप मिलाकर अमृतबान का मुँह बन्द करें। फिर मुँह पर अच्छी रीति से कपड़मिट्टी कर एकान्त स्थान या धूप में रखें, अथवा जमीन में दबा दें। इस तरह १ से ३ मास तक रहने देवें। धूप में रखने से औषधियों में से जल का अंश बहुत जल जाता है। जमीन में दबाने से बर्तन फूट जाने का भय रहता है। परन्तु मकान में एक तरफ सम्हाल पूर्वक रखने से उफान या टूटने का भय नहीं रहता और कच्चे-पक्के की परीक्षा का लक्ष्य भी रह सकता है।

द्राक्षासव बनाने के समय जो गाढ़ा भाग तले में रह जाता है, उसे किण्व (सुराबीज) कहते हैं। उसे तेज धूप में सुखाकर सुरक्षित रख लेवें और आवश्यकतानुसार आसव-अरिष्ट बनाने पर दूध में दही के जमाने के सदृश मिलाते रहें। दो द्रोण (२०४८ तोले) द्रव में १ सेर किण्व मिला लेने से आसव-अरिष्ट की संधान क्रिया सत्वर होती है और आसव बिगड़ने का भय दूर होता है।

यदि उक्त किण्व को न मिलावें तो भी आसव-अरिष्ट का खमीर तो उठता ही है। कारण, धाय के फूल आदि में किण्व रहते हैं। परन्तु किण्व मिलाने से सत्वर संधान होता है। आसव अच्छा बनता है। सुराबीज विरोधी कीटाणुओं को नष्ट कर डालते हैं और आसव की रक्षा करते हैं।

आसव-अरिष्टों के पाठ में कषाय-रस प्रधान धातकी पुष्प, बबूलछाल, बेरछाल, महुआ के फूल, सुपारी, नागकेशर आदि द्रव्य मिलाये जाते हैं वे भी सुराबीज हैं। परन्तु इनकी अपेक्षा द्राक्षासव के तल भाग में से मिले किण्व में सुरा कीटाणुओं की संख्या अत्यधिक होती है। और वे सब सबल होने से सफलतापूर्वक सत्वर कार्य कर सकते हैं।

किण्व कीटाणु (Yeast) लम्बे और अति सूक्ष्म होते हैं। ये अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा प्रतीत होते हैं। ताड़ वृक्ष की मंजरी, ईख का रस, विविध पुष्प आदि में भी ये कीटाणु प्रतीत होते हैं। धाय के फूलों में बहुत रहते हैं। इन किण्व कीटाणुओं को शर्कराभूयिष्ट और पिष्टमय पदार्थ का आहार मिलने पर औषधि द्रव्य का मद्यमय रुपान्तर होने लगता है।

शीतकाल में आसव निश्चित समय से ८-१० दिन पीछे तैयार होता है और उष्ण ऋतु में ८-१० रोज पहले ही तैयार हो जाता है। इसलिए औषधि की जाति और ऋतुभेद से तैयार हो जाने का अनुमान हो तब भाण्ड को खोलकर परीक्षाकर लेनी चाहिये।

मधुर पदार्थ मिश्रण-आसवों में गुड़, शक्कर, शहद आदि मिलाने के लिये प्राचीन आचार्यों ने सामान्य परिमाण लिखा है कि

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे तुलागुड़म।
क्षौद्रं क्षिपेद् गुड़ादर्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम्॥

जहाँ गुड़ आदि के परिमाण शास्त्र में न दिये हों, वहाँ पर १ द्रोण (१०२५ तोले) द्रव में १ तुला (४०० तोले) गुड़, शहद गुड़ से आधा और प्रक्षेप दशमांश मिलाना चाहिए।

कभी-कभी आसव-अरिष्टों में सुवर्ण या लोह आदि धातु मिलाए जाते हैं। इन धातुओं के लवण बनाकर मिलाने पर वे अच्छी तरह मिल सकते हैं। भस्म रूप से धातु पूर्णांश में नहीं मिल सकते। सब धातुओं में सुवर्ण अधिक मूल्यवान होने से उसके लिए विशेष सम्हालना चाहिए। सुवर्ण का लवण निम्न पाश्चात्य विधि अनुसार बनाकर मिला सकते हैं।

सुवर्ण लवण-नमक का तेजाब (Hydrochloric Acid) ३ औंस और ३ ड्राम और शोरे का तेजाब (Nitric Acid) ४ औंस मिश्रित करें। उसे आतशी शीशी में डाल उसके भीतर शुद्ध सुवर्ण ३ तोले के पतरे डालकर ४ दिन रहने देवें। फिर आतशी शीशी को स्पिरिट लेम्प पर रखकर गरम करें अच्छी तरह गरम हो जाने पर १० तोले सैंधा नमक मिलावें। जल सूख जाय और सुवर्ण का रंग नारंगी के सदृश प्रतीत होने लगे तब शीशी उतार लेवें। स्वाँग शीतल होने पर सुवर्ण को निकाल लेवें इस लवण को केमिष्ट्री में 'ओरम क्लोराइड' (Aurum Chloride) की संज्ञा दी है।

ओरम क्लोराइड की मात्रा १/६० से १/१० ग्रेन हैं। क्रमशः मात्रा बढ़ाकर १/२ ग्रेन तक दे सकते हैं। इसकी १५-१५ ग्रेन की ट्यूब डाक्टरी औषधि बेचने वालों के पास तैयार मिलती है इसमें रक्तशोधक, उत्तेजक, बल्य, कामोद्दीपक और रसायन गुण हैं। यह डाक्टरी में वातवाहिनियों की निर्बलता, चिरकारी वृक्कदाह, शिरः शूल, कष्टार्त्तव, गर्भाशय का चिरकारी दाह, बीजाशय में वातजशूल, राजयक्ष्मा, मृगी, हिस्टीरिया, आक्षेपक वात, नपुंसकता आदि पर प्रयोजित होता है।

यदि सुवर्ण लवण का सेवन अधिक मात्रा में किया जाता है तो पारद के समान मुँह आ जाता है तथा आमाशय और अन्त्र में उग्रता की उत्पत्ति हो जाती है, फिर क्षुधा का लोप, उदर में पीड़ा, जुकाम, हाथ-पैर टूटना, व्याकुलता तथा हाथ-पैरों में पक्षाघात और श्वासावरोध होकर मृत्यु तक हो सकती है। इस लवण को सेवन करने पर यह मूत्र द्वारा देह से निर्गत हो जाता है।

लोह आदि धातु मिश्रण–जहाँ लोह ताम्र या अन्य धातुयें मिलानी हों वहाँ पर भस्म ही मिलानी चाहिये। कच्ची धातु मिलाने से आसवों में उचित गुण नहीं आ सकते।

लोहभस्म मिलाने के लिये लोहभस्म और हरड़ के चूर्ण को जल में मिलाकर ३ दिन खरल करें। फिर आँवले और बहेड़े का चूर्ण मिला खरल करें। पश्चात् और जल मिलाकर एक सप्ताह तक रहने देवें ताकि लोहभस्म त्रिफला के जल में विलीन हो जाय। तत्पश्चात् इस जल को क्वाथ आदि में मिलाकर आसव को सिद्ध करें। जिस योग में लोहभस्म डालने का विधान हो वहाँ लोहभस्म १०० पुटी या लोहभस्म वारितर मिलाने से वह आसव में घुल जाती है।

लोहासव में लोह, परिमाण में अत्यधिक मिलाने का शास्त्रीय विधान है। उसमें लोहे का बुरादा, मण्डूरभस्म या कासीस में से कौन-सा विशेष हितकर है, यह प्रश्न विचारणीय है। यद्यपि विलायती कासीस मिलाने पर आसव में लोह परिमाण अधिक आता है तथा उसमें से लोह का शोषण कितना होता है, यह अभी निश्चित् नहीं हुआ।

कस्तूरी केशर आदि मिश्रण–आसव-अरिष्ट तैयार हो जाने पर उनको बोतलों में भर लेवें। फिर कस्तूरी, केशर, कपूर आदि सुगन्ध वाली औषधियों को आसव या मद्यार्क (Alcohol) में घोल, बोतलों में यथा विभाग थोड़ी-थोड़ी बूंदे डालें, फिर मजबूत डाट लगा दें।

आसव तैयार करने में तिक्त आदि रस का परिवर्तन हो जाता है। कड़वापन, चरपरापन, मधुरता और कषायत्व बहुत कम हो जाते हैं। अम्ल रस और लवण रस दोनों विरोधी हैं। अम्लरस होने पर आसव में अम्लता आ जाती है एवं लवणरस से भी आसव क्रिया उचित रूप में नहीं होती।

प्रायः आसव-अरिष्ट भोजन के पश्चात् दिये जाते हैं, किन्तु रोग और रोगी की परिस्थिति अनुसार समय में अन्तर किया जाता है। आसव-अरिष्ट के लिये क्वाथ करने की औषधियाँ रात्रि में जल में भिगोकर सुबह उबालें। आसव-अरिष्ट में गुड़ मिलाना हो तो १ से ३ वर्ष का पुराना लेना चाहिये।

सामान्य रीति से आसव-अरिष्ट एक समय में १। से २॥ तोले तक समान भाग जल मिलाकर सेवन करना चाहिये। जल के साथ लेने से आसव नाड़ियों में शोषित होकर शरीर पर तत्काल असर पहुँचाता है और बिना जल मिलाये लेने से गले में खरखरी और आमाशय में दाह हो जाता है।

आसव-अरिष्ट साधारणतः दीपन, पाचन, मलशोधक और पौष्टिक हैं। आसव-अरिष्ट के सेवन से शीघ्र गुण प्रतीत होता है। अनेक प्रकार के आसव-अरिष्ट पुराने रोगों में बहुत हितकर हैं और कोई-कोई तीव्र प्रकोप के समय भी लाभदायक हैं। आसव अरिष्ट जितने पुराने होते हैं, उतने ही विशेष गुणयुक्त और दोष रहित बनते हैं। अगर आसव-अरिष्ट कच्चे रह जावेंगे तो थोड़े समय में ही दुर्गन्धयुक्त होकर खराब हो जायेगे। इसलिए ऊपर लिखी विधि से सम्हालपूर्वक बनाना चाहिये। आसव-अरिष्ट तैयार होने पर भी उग्रता रहती है, वह धीरे-धीरे शान्त होती है। इसलिए ३-४ मास तक तो नवीन आसव-आरिष्ट का सेवन नहीं कराना चाहिये।

नये आसव-अरिष्ट या शराब विशेषतः गुरू और वातुल होते हैं और जीर्ण होने पर (कम से कम ४ मास पश्चात्) तेजी का शमन होकर स्रोतशोधक, लघु, दीपन और रुचिकर हो जाते हैं। यदि आसव-अरिष्टों को सम्हालपूर्वक बोतलों में बन्द रखा जाय तो जितने पुराने होते हैं, उतने ही विशेष गुणकारी होते हैं।

सूचना (१) आसव-अरिष्ट वर्षा ऋतु में नहीं बनाने चाहिये। थोड़ा-सी असावधानी हो जाने पर दूषित हो जाते हैं एवं शीतल वायु वाले स्थान में भी आसव पात्र को नहीं रखना चाहिये।

(२) जल अत्यन्त स्वच्छ मिलावें। जल को गरमकर फिर छानकर मिलावें या वाष्प-जल मिलावें दूषित जल होने पर आसव-क्रिया सम्यक् नहीं हो सकती। जिस जल में खारापन हो ऐसे जल को उपयोग में न लेवें।

(३) आसव-अरिष्ट की औषधियों का मोटा चूर्ण लेवें। सूक्ष्म चूर्ण मिल गया हो तो उसे निकाल डालें। कारण गाढ़ापन आसव-प्रक्रिया में अति बाधक होता है। क्वाथ करने के लिये पहले दिन-शाम को ही जौकूट चूर्ण को जल में भिगो देवें फिर दूसरे रोज क्वाथ करें।

(४) क्वाथ मन्दाग्नि पर करना चाहिये और तैयार होने पर गरमागरम को ही छान लेना चाहिये। शेष रही हुई औषधि को अच्छी तरह दबाकर जल निकाल लेना चाहिये।

(५) आसव-अरिष्ट बनाने के लिए पात्र साफ लेना चाहिये। पहले जटामांसी, चन्दन, अगर, गूगल, कपूर, कालीमिर्च, शक्कर आदि की धूप देकर कीटाणु और दुर्गन्ध को दूर कर लें, फिर आसव-अरिष्ट का द्रव भरें।

(६) मधुर द्रव्य क्वाथ शीतल होने पर मिलावें। अच्छी तरह मिल जाने पर शेष चूर्णादि मिलावें, फिर डण्डे से चलाकर अच्छी मिश्रण कर दें।

(७) धाय के फूल ताजे, नये लेने चाहिये। मुनक्का भी नयी लें और जल से अच्छी तरह धोकर उपयोग में लेनी चाहिये।

(८) गुड़ और शहद पुराना हितकर है। परन्तु गुड़ दुर्गन्धयुक्त, काला, खट्टा या खारा नहीं लेना चाहिये एवं शहद भी खट्टा, काला दुर्गन्धयुक्त, नहीं होना चाहिये।

(९) गुड़ आदि मधुर द्रव्य में अम्ल गुण का संयोग हुआ हो किसी प्रकार की दुर्गन्ध हो या खमीर आ जाने से तिजाब जैसा उत्पन्न हुआ हो तो आसव तैयार होने के पश्चात् से अधिक काल तक नहीं टिक सकेंगे।

(१०) अनेक बार गुड़ और शहद खट्टे और दुर्गन्धयुक्त हो जाते हैं; एवं सड़ी गली द्राक्षा या फलों का स्वरस निकालने के पश्चात् समय तक पड़ा रहने पर वह भी दूषित हो जाता है। ऐसे सदोष पदार्थ को आसव-अरिष्ट बनाने के लिये उपयोग में नही लेना चाहिए।

(११) आसव-प्रक्रिया समाप्त होने पर अम्ल द्रव्य की क्रिया होने लगती है। जब तक आसव-क्रिया विद्यमान होगी तब तक अम्लक्रिया निष्क्रिय रहती हैं। चिर अम्लक्रिया द्वारा आसव सिरके में रूपान्तर हो जाता है।

(१२) आसव-अरिष्ट तैयार होने पर पहले मोटे कपड़े से या बाँस की टोकरी से छान लेना चाहिये फिर दूसरे अमृतबान में बन्दकर १५ दिन रहने दें। फिर ऊपर-ऊपर से साफ प्रवाही नितरा हुआ हो उसे सम्हालपूर्वक बोतलों में भरकर मजबूत बन्द करें। गाढ़ा द्रव नीचे में हो उसे निकाल डालें।

(१३) आसव-अरिष्ट को बोतलों में मुंह तक लबालब नहीं भरना चाहिये। मुंह तक भर देने से आसव-अरिष्ट में जोश आकर बाहर निकल जाने या बोतल के फट जाने का भय रहता है। अतः कुछ स्थान खाली छोड़ देना चाहिये।

(१४) आसव बोतल में भरने के समय यदि उसमें जल की बूंदें रह गई होंगी तो आसव दूषित हो जायेगा।

(१५) आसव को बोतल में भरने के समय तलस्थ गाढ़े भाग को भीतर नहीं जाने देना चाहिये।

(१६) जो मद्य या आसव-अरिष्ट आदि बहुत गाढ़े, पचनकाल में दाह उत्पन्न करने वाले, दुर्गन्धयुक्त, बिगड़े हुए, बेस्वादु, कृमियुक्त, गुरुपाक, मन को अप्रिय, नये बने हुए तीक्ष्ण उष्ण (स्पर्श करने में गरम) मैले या दूषित पात्र में रखे हुए-औषधियों की बहुत कम मात्रा मिलाकर तैयार किये हुए, बिगड़ जाने पर पुनः पकाये हुए या किसी खुले मुख पात्र में रहे हुए, अति पतले या अति भारी और पात्र के तल भाग में रहा हुआ किंचित् अवशेष भाग इन सब का त्याग कर देना चाहिये।

(१७) उष्ण उपचार के साथ, क्षुधा लगने पर और विरेचन लेने पर मद्य या आसव-अरिष्ट का सेवन नहीं करना चाहिये।

(१८) आसव-अरिष्ट का शोषण रक्त के भीतर त्वरित हो जाता है। इस हेतु से अन्य शुष्क औषधियां (चूर्ण, गुटिका) की अपेक्षा सत्वर फलदायी है। इसका अनुभव प्राचीन वैद्यसमाज ने किया है। अतः आसव-अरिष्ट का प्रयोग वर्तमान में अधिकतर हो रहा है। कई चिकित्सक तो मात्र आसव-अरिष्टों को ही उपयोग में लेते रहते हैं।

(१९) आसव अरिष्टों की प्रतिक्रिया(Re-action)अम्ल होती है, जिससे वह रक्त में शोषित होने पर तुरन्त अम्लता की वृद्धि करता है।

रक्त की प्रतिक्रिया क्षारीय हो या उदासीन हो उनको आसव-अरिष्टों के सेवन से पूरा-पूरा लाभ मिल जाता है। किन्तु जिनके रक्त की प्रतिक्रिया अम्ल हों, अम्लपित्त, रक्तपित्त, अन्तर्दाह, वातनाड़ियों पर दबाने पर वेदना होना, वातज शूल, वृक्क या मूत्राशय में अश्मरी होना, वृक्क से मूत्रोत्पत्ति योग्य न होती हो, ऐसे रोग या लक्षण पीड़ितों को आसव-अरिष्ट का सेवन नहीं कराना या विचार करके कराना चाहिए। दुराग्रह करने पर क्वचित् विपरीत असर पहुँच जाता है।

अर्क-अनेक औषधियों का क्वाथ नित्यप्रति बनाने में श्रम पड़ता है और समय भी लग जाता है। इनके अतिरिक्त क्वाथ में बेस्वादुपन रहता है, जिससे सब कोई नहीं पी सकते, यदि उसी औषधि का अर्क निकाल लिया जाय, तो नाजुक प्रकृति वाले रोगी सहज ही ले सकते हैं और लाभ पूर्णरूप से होता है।

अनेक कठोर औषधियों का केवल क्वाथ ही लाभदायक रहता है। कारण घनत्व अर्करूप होकर नहीं चढ़ता। किन्तु अनेक उड़नशील तैलीय औषधियों की और मृदु औषधियों के क्वाथ की अपेक्षा अर्क विशेष लाभदायक रहता है। कारण तैलीय द्रव्यों में से तैल का विशेष अंश क्वाथ करने से उड़ जाता है। अतः क्वाथ अथवा अर्क तैयार करने से पहले औषधि के स्वरूप पर लक्ष्य देना चाहिये।,

अर्क ६ मास तक प्रायः गुणयुक्त रहते हैं। नलिका यन्त्र द्वारा निकाले हुए अर्क में जल की एक बूंद गिर जायेगी अथवा गीली शीशियों में अर्क भरने में आवेगा तो थोड़े समय में ही अर्क पर फफूंदी आकर वह बिगड़ जायेगा। रेक्टीफाइड स्पिरिट से बने हुए अर्क ५-७ वर्ष तक गुणयुक्त रहते हैं। रेक्टीफाइड स्पिरिट से बने हुए अर्कों को मजबूत डाट वाली शीशी में बन्द रखना चाहिये, अन्यथा उड़कर कम हो जाता है।

(१) दशमूलारिष्ट

विधि–दशमूल सब मिलाकर २०० तोले, चित्रक छाल १०० तोले, पुष्करमूल १०० तोले, लोध ८० तोले, गिलोय ८० तोले, आँवला ६४ तोले, धमासा ४८ तोले, खेर की छाल, विजयसार की छाल, हरड़ की छाल ये सब ३२-३२ तोले, कूठ, मजीठ, देवदारु, वायबिडंग, मुलहठी, भारंगी, कबीठ, बहेड़ा सांठी की जड़, चव्य, जटामाँसी, गऊंला, अनन्तमूल, स्याह जीरा, निसोत, रेणुक बीज, रास्ना, पीपल, सुपारी, कचूर, हल्दी, सूवा, पद्म काष्ठ, नागकेशर, नागर मोथा, इन्द्र जौ, काकड़ासींगी, प्रत्येक ८-८ तोले, बिदारी कन्द असगन्ध, मुलहठी और वाराही कन्द १६-१६ तोले लें। सबको कूटकर आठ गुने जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतार लें। पश्चात् २५६ तोले मुनक्का को १०२४ तोले जल में उबालें। पौन जल शेष रहने पर उतार लेवें। फिर दोनों क्वाथों को मल छानकर शहद १३० तोले, गुड़ १६०० तोले, धाय के फूल १२० तोले, शीतल मिर्च, नेत्रबाला, सफेद चन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, तेजपात, पीपल, नागकेशर प्रत्येक ८-८ तोले लेकर जौकुट चूर्ण करें। यह चूर्ण और कस्तूरी ३ माशे मिला मुख मुद्राकर १॥ मास रख दें। परिपक्व होने पर छान लें। फिर निर्मली के थोड़े से बीज मिलाकर अरिष्ट को स्वच्छ बना लेवें। (भै.र.)

सूचना–कस्तूरी पहले मिलाने की अपेक्षा आसव तैयार होने पर मिलाने में सुगन्ध बनी रहती है और लाभ भी अधिक पहुँचता है।

मात्रा–१। से २॥ तोले तक दिन में २ बार। भोजन के बाद समान जल के साथ दें।

उपयोग–दशमूलारिष्ट के सेवन से संग्रहणी, अरुचि, श्वास, कास, गुल्म, भगन्दर, वातरोग, क्षय, वमन, पाण्डु, कामला, कुष्ठ, अर्श, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, धातुक्षय (Atrophy)आदि दोष दूर होते हैं। दुर्बलों को पुष्ट बनाता है, स्त्रियों के गर्भाशय की शुद्धि करता है। बन्ध्या स्त्री को सन्तान देता है एवं तेज, वीर्य और बल को बढ़ाता है। यह औषधि विशेषत: वातविकार, मूत्ररोग और उदररोग की नाशक है और उदर के अवयवों के लिये बल्य है।

यह औषधि प्रसूता स्त्री के लिये अत्यन्त हितकर है। पहले १० दिन में प्रसूता को देते रहने से मन्दाग्नि, जीर्णज्वर, कास; श्वास,वातविकृतिआदि रोगों के उत्पन्न होने का भय दूर होता है और प्रकृति स्वस्थ रहती है। इस अरिष्ट में थोड़ा स्तम्भक गुण होने से प्रसूता के अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी आदि विकारों में भी उपकारक है।

गर्भाशय की शिथिलता या अन्य रोग विकृति के कारण बार-बार गर्भपात या गर्भस्राव हो जाना या गर्भ-धारण ही न होना, यदि सन्तान हुई हो तो वह भी रोगी कृश होना, ऐसे विकारों में दशमूलारिष्ट उत्तम औषध है। जिन स्त्रियों को गर्भाशय की अशक्ति के हेतु से गर्भधारण नहीं होता है, उनके गर्भाशय को पुष्ट बनाकर सन्तान प्राप्त कराता है एवं पुरुषों के लिये भी शुक्र शुद्धिकर और वृद्धिकर है।

जीर्ण संग्रहणी रोग में मन्दाग्नि होकर शरीर कृश हो जाता है। ऐसे समय भोजन कर लेने पर दशमूलरिष्ट देना अति लाभदायक है।

सूतिका ज्वर की तीव्रावस्था में प्रतापलंकेश्वर और दशमूलारिष्ट उत्तम कार्य करने वाली औषधियाँ हैं। प्रसूतावस्था में पवित्रता और सावधानी न रखने पर सूतिका ज्वर की उत्पत्ति होती है। यह ज्वर अति भयंकर है। इसमें एक प्रकार के कीटाणु का अनुबन्ध होता है। प्रसव के १-२ दिन में ही यह ज्वर उत्पन्न हो जाता है। प्रसव-क्लेश, फिर होनेवाला रक्तस्राव और क्लेदस्राव के हेतु से जीवनीय शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाती है। इस हेतु से कीटाणुओं को अपना प्रभाव पहुँचाने का समय मिल जाता है। इस ज्वर में शारीरिक उत्ताप १०३° से १०४° डिग्री तक बढ़ जाता है। भयंकर तृषा, अत्यन्त व्याकुलता, भयंकर शिरदर्द, योनिस्राव में दो तीन दिन बाद दुर्गन्ध आना, योग्य उपचार न होने पर सान्निपातिक लक्षणों की उत्पत्ति, बेसुधी, प्रलाप तथा किसी-किसी रुग्णा को धनुर्वात, दाँत भिंचना और हनुग्रह आदि लक्षण होते हैं। इस ज्वर में दशमूलारिष्ट उत्तम उपयोगी है। इससे दोष प्रत्यनीक शक्ति या रोगप्रतिकार शक्ति की वृद्धि होती है। इस हेतु से गर्भाशय में से स्राव अधिक या कभी अत्यधिक होता है। रक्त का दबाव गर्भाशय की ओर अधिक होने से रक्त और क्लेद का स्राव ज्यादा होता है। परिणाम में कीटाणु और विष का देह में प्रवेश होने र भी नहीं टिक सकते एवं गर्भाशय का आकुंचन और नियमन होता एवं मक्कलशूल भी शमन हो जाता है।

दशमूलारिष्ट में रहे हुए अनेक जीवनीय द्रव्यों के हेतु से प्रत्यनीय शक्ति प्रबल होती है। इस हेतु से प्रसव होने पर तुरन्त इस औषधि का सेवन प्रारम्भ कराया जाय तो रोग प्रतिरोधक शक्ति की उत्पत्ति हो जाती है। जिससे सूतिकाज्वर की संप्राप्ति ही नहीं होती। इस उद्देश्य को लेकर अपने देश में प्रसव होने पर दशमूल क्वाथ या अन्य क्वाथ देने की प्राचीन परम्परा है। यदि सूतिका ज्वर होने पर तुरन्त ही अरिष्ट या क्वाथ का उपयोग किया जाय तो भी जल्दी लाभ पहुँच जाता है।

प्रसव होना यह नैसर्गिक कार्य है। उसमें किसी की आवश्यकता न रहें, यह स्थिति उत्तम मानी जायगी। जंगलों में रहने वाले प्राणियों के लिये प्रसव की चिन्ता का प्रश्न ही नहीं आता। उनके बिना कष्ट प्रसव होता रहता है। इस तरह नैसर्गिक नियमानुकूल रहने वाले मानवों (ग्रामवासियों) के लिये भी ऐसा ही प्रतीत होता है। प्रसव होने पर अपने शरीर और बच्चे को नदी में बहते हुए शीतल जल से धो, अपने

गोद में सुलाकर फिरने वाली अनेक स्त्रियां इस नवयुग में भी प्रतीत होती हैं। उनको प्रसूति ज्वर और तदानुषङ्गिक विकार नहीं होते। कारण इनकी प्रतिकार शक्ति बलवत्तर है। ऐसे स्थान में कीटाणुओं का प्रवेश नहीं होता और प्रवेश हुआ तो भी वे जीवित नहीं रहते। कीटाणुओं की वृद्धि के लिये उनका शरीर अनुकूल नहीं है। दूसरी और नगरवासियों में प्रतिकार शक्ति निर्बल रहती है, अतः इनके लिये दशमूलारिष्ट सूतिका रोग की उत्पत्ति में प्रतिबन्धक रूप से उपयोगी है।

सूतिकावस्था में या प्रसव के पश्चात् उत्पन्न होने वाले संग्रहणी या अतिसार में दशमूलारिष्ट अत्यन्त उपयोगी है। अन्य समय में सूतिका ज्वर के निमित्त कारण (पुराने) कीटाणु मल में प्रतीत होने पर उनसे उत्पन्न संग्रहणी में भी दशमूलारिष्ट उत्तम उपयोगी औषधि है।

यह औषधि वातशामक होने से मक्कलशूल को तो शमन करती ही है, इसके अतिरिक्त कुक्षिशूल, कक्षाशूल, वातज परिणामशूल, तीव्र शिरः शूल, कोष्टशूल आदि पर भी अच्छी उपयोगी है। इन रोगों में मात्रा कम देनी चाहिये।

वातज श्वास रोग में इसका अच्छा उपयोग होता है। श्वास के साथ शुष्ककास होने पर वह भी शान्त होती है। कास और श्वास दोनों में प्राण और उदानवायु की प्रदुष्टि होती है। वातज कास और श्वास में शुष्क कास बहुत आती है। फिर ऐसे ही शुष्क काम का वेग आता है, जिसमें कफ अधिक नहीं गिरता। शुष्क वेगवान कास और हॉफनी के हेतु से रोगी व्याकुल हो जाता है। कितने ही रोगी बेहोश हो जाते हैं या कुछ अंश में मूर्च्छा आ जाती है और नाड़ी का वेग प्रबल हो जाता है। इस अवस्था में दशमूलारिष्ट जल में मिलाकर थोड़ा-थोड़ा २-२ घण्टे पर देना चाहिये। सान्निपातिक ज्वर में भी ऐसी अवस्था होने पर यह दिया जाता है।

जब भगन्दर का व्रण बार-बार शस्त्रचिकित्सा कराने पर भी नहीं भरता, बार बार व्रण पूय से भरते हैं, फूटते हैं अन्य कई मुख उत्पन्न होते हैं, ऐसे लक्षणयुक्त भगन्दर को शतपोनक कहते हैं। उस स्थान में व्रण भरने की क्रिया करने वाली शक्ति क्षीण हो जाती है। इस तरह कितने ही जीर्ण नाड़ी व्रणों में भी ऐसा ही होता है। बार-बार शस्त्र क्रिया करनी पड़ती है। फिर भी व्रण नहीं भरता, कितने ही रोगियों का नाड़ीव्रण सर्वदा बहता रहता है। यह स्थिति मधुमेह, जीर्ण सुजाक, उपदंश और क्षय रोग में होती है, या अन्य अज्ञात कारणों से ऐसा व्रण होता है। रक्तादि धातुओं की रोग निरोधक शक्ति कम होने के अन्य भी अनेक हेतु हैं। इन प्रकारों पर दशमूलारिष्ट अत्युत्तम औषधि है।

आयुर्वेद ने अनेक विकारों की विविध परिस्थितियों का अन्तर्भाव वातव्याधि में किया है। वातवाहिनियों और स्नायुओं में प्रेरणा, प्रस्पन्दन और उद्वहन कार्य, रक्तवाहिनियों और रसवाहिनियों में पूर्ति और उद्वहन आदि कार्य तथा सचेतन परमाणु, घटक (कोषाणु) और मानस क्षेत्र में विवेक कार्य इन सबकी दुष्टि वातरोग में समाविष्ट की है। वातरोग में वातस्थान दुष्ट होने से अनेक विकार उत्पन्न होते हैं एवं भय, शोक, काम आदि मानस विकृति से उत्पन्न होने वाले रोगों का भी वातरोग में समावेश किया गया है। अकस्मात् उत्पन्न मानस आघातज विकार सृष्टि को वातरोग के भीतर स्थान दिया है। इन सब वातव्याधियों में दशमूलारिष्ट उत्तम कार्य करता है। इससे वात का शमन होता है। वातस्थान को जीवनतत्व मिलने से बृंहण होते हैं एवं इस अरिष्ट में वातशामक गुण होने से यह संकोच, मेद, स्तम्भ, कलायखञ्ज, खल्ली, विश्वाची, गृध्रसी आदि वातरोगों पर अति लाभप्रद माना गया है।

अस्थि और वायु का आश्रय-आश्रयीभाव है। इस हेतु से अस्थि क्षय के विकार में दशमूलारिष्ट उत्तम औषधि मानी जाती है। विशेषतः प्रसव के पश्चात् यह विकार हुआ हो तो इसका अवश्य उपयोग करना चाहिये। अस्थिमार्दव होकर कमर में दर्द होना, चलने में दोनों पैर पर खूब भार देकर चलना, पैर कठिनता से उठाकर चलना, अस्थिसन्धि पर गांठ उत्पन्न होने सदृश भासना, मन्द-मन्द ज्वर रहना आदि लक्षण होने पर दशमूलारिष्ट अति प्रशस्त औषधि है। (औ.गु.ध.शा.)

सूचना-जिस प्रसूता के मुँह में छाले, दाह, गरम-गरम जल सदृश पतले दस्त, प्यास आदि लक्षण हों ऐसी पित्तप्रधान विकृति में दशमूलारिष्ट न दें।

(२) लोध्रासव

विधि-पठानी लोध, कचूर, पुष्करमूल, छोटी इलायची, मूर्वा, बायविडङ्ग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, अजवायन, चव्य, प्रियंगु, चिकनी सुपारी, इन्द्रवारुणी का मूल, चिरायता, कुटकी, भारंगी, तगर, चित्रकमूल, पीपलामूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, नागकेशर, कूड़े की छाल, नख, तेजपात, कालीमिर्च और नागरमोथा इन ३० औषधियों को १०-१० तोला मिला जौकुट चूर्ण कर ३२०० तोले जल में मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर मलकर छान ले। शीतल होने पर ५०० तोले शहद मिला अमृतबान में भर मुखमुद्राकर १५ दिन रख दें। पक जाने पर छानकर बोतलों में भर लेवें। (ग.नि.)

मात्रा-१। तोला से २॥ तोले तक, समान जल के साथ देवें।

उपयोग- यह आसव पित्तज प्रमेह (क्षारमेह, कालमेह, नीलमेह, हारिद्रमेह, मांजिष्ठमेह) और कफजमेह (उदकमेंह, सान्द्रमेह, पिष्ठमेह,

शीतमेह आदि) को नष्ट करता है एवं पाण्डु, अर्श, अरुचि, ग्रहणी, किलास आदि विविध क्षुद्र कुष्ठों को भी दूर करता है। लोध्रासव यकृद्बल्य होने से यकृत्पित्त के विकार से उत्पन्न व्याधियों का नाशक है। यह आसव रक्तप्रदर, रक्तपित्त, बालकों के मसूरिका और रोमांतिका हो जाने के पश्चात् रक्त में रहे हुए शेष विष और मूत्रावरोध आदि रोगों में उपकारक है। रक्तप्रदर पर लोध्रासव के साथ अरविन्दासव, सारस्वतारिष्ट मिलाकर देने पर सत्वर लाभ पहुँचता है।

(३) कुमार्यासव

विधि–घीकुंवार का रस १०२४ तोले और गुड़ ४०० तोले लेवें। फिर हरड़ अथवा भांग १०० तोले को १०२४ तोले जल में मिला उबालकर क्वाथ करें। पानी चौथा हिस्सा रहने पर उतारकर छान लें। फिर घीकुंवार के रस, गुड़ और क्वाथ तीनों को मिलाकर अमृतबान में भरें। उसमें शहद २५३ तोले, धाय के फूल ६४ तोले; जायफल, लौंग, शीतलमिर्च, जटामांसी, चव्य, चित्रक, जावित्री, काकड़ासींगी, बहेड़े की छाल, पुष्करमूल ४-४ तोले का जौकुट चूर्ण तथा लोहभस्म और ताम्रभस्म २-२ तोले डालकर २० दिन बन्द करके रखें। पक्व होने पर छानकर बोतल में भर लें। (यो.र.)

सूचना–भस्म मिलाने की विधि आसवादि प्रकरण के प्रारम्भ में लिखी है। उस तरह मिलाना विशेष लाभदायक है। घीकुंवार का रस निकालने के लिये छोटे-छोटे टुकड़े कर कड़ाही में डाल गरम करने से सरलतापूर्वक रस निकलता है।

मात्रा–१। से २।। तोले, दिन में २ बार। भोजन के बाद जल से।

उपयोग–इस आसव में स्त्रियों के ऋतुदोष, गुल्म, रक्तगुल्म प्लीहा, खांसी, श्वास, क्षय, उदररोग, अर्श, वातरोग, अपस्मार, मन्दाग्नि, उदरशूल आदि मिटते हैं और पचनशक्ति प्रबल बनती है।

मूल संस्कृत ग्रन्थों में विजया शब्द है। विजया भांग तथा हरड़ दोनों के नाम है। हमने दोनों प्रकार के आसव बनाकर उपयोग में लिये हैं।

कितने की चिकित्सक छोटे बालकों को देने के लिये ताम्रलोह रहित कुमार्यासव बनाते हैं। इस तरह भांगमिश्रित, हरड़मिश्रित और ताम्रलोह रहित ऐसे तीन प्रकार के आसव एक ही पाठ में से बनते हैं।

घीकुंवार के रस में कड़वापन है, यह आसव-क्रिया द्वारा रूपान्तरित हो जाता है। घीकुंवार का रस स्पर्श में शीतल और वीर्य में भी शीतल है। परन्तु कुमार्यासव में ये गुण नहीं हैं। आसव क्रिया के योग में परिवर्तन हो जाता है।

हरड़युक्त कुमार्यासव–दीपन-पाचन, किंचित् स्रंसनगुणयुक्त (दस्तावर), मूत्रल, कुछ बल्य, शोथहर, रक्तप्रसादक और दाहनाशक है। इसका कार्य विशेषतः पचनेन्द्रिय पर होता है। आमाशय, ग्रहणी, अग्न्याशय, यकृत्, लघुअन्त्र, बृहदन्त्र, गुदनलिका और गुदत्रिवली इन पर प्रभाव पड़ता है। इसके योग से इन सब अवयव समूहों में से पित्तविरेचन होता है। इसका परिणाम गर्भाशय, बीजाशय, बीजवाहिनियों आदि पर भी होता है। इन स्थानों में किंचित् संरम्भ होकर आर्तव प्रवृत्ति होती है। कुमार्यासव अधिक दिनों तक बड़ी मात्रा में देते रहने से बृहदन्त्र, गुदकाण्ड और गुदत्रिवली की शिराएं रक्तपूर्ण होकर रक्तार्श की उत्पत्ति होती है या रक्तस्राव होने लगता है। कुमार्यासव के सेवन से मलशुद्धि होती है; मलका वर्ण हरा सा होता है। शौच के समय उदर में कुछ दर्द होता है परन्तु सबको नहीं।

कुमार्यासव कभी सतत और अधिक मात्रा में नहीं लेना चाहिये। इसका परिणाम, मूत्रपिण्ड, गवीनियाँ और मूत्राशय पर भी होता है। कभी-कभी इससे मूत्रमार्ग में खलबली मच जाती है। कितनों ही को वृक्क-प्रदाह की प्राप्ति होती है। अतः कुमार्यासव के इस दोष को लक्ष्य में रखकर योग्य मात्रा में, योग्य समय पर, योग्य रोग पर अधिकारी व्यक्तियों को देना चाहिये। मूत्ररोगी, प्रवाहिका या अन्त्र में प्रदाहयुक्त रोगी को नहीं देना चाहिये। इन बातों को सम्हालकर इस आसव का उपयोग किया जाय तो यह उत्तम औषध है। छोटे बालकों के लिये यह अमृत है। इस आसव से पचन क्रिया सुधरती है अन्त्र सबल बनते हैं, शौच शुद्धि होती है, पाचक पित्त का स्राव अधिक होता है, आहार रस अच्छा बनता है। फिर इस की शोषण क्रिया उत्तम होती है; रक्त सबल बनता है; शारीरिक बल की वृद्धि होती है तथा गुदत्रिवली में अवस्थित सूक्ष्म कृमि नष्ट होते हैं। इनके अतिरिक्त इसका कार्य श्वासवाहिनियों पर भी होता है और उसमें से कफ पृथक् होने लगता है।

कुमार्यासव छोटे बच्चों के बार-बार उत्पन्न होने वाले कास रोग में अति उपयुक्त औषधि है। इससे श्वास नलिका में स्राव उत्तम प्रकार से होकर संचित कफ जल्दी गिरने लगता है। इसका कार्य प्राण और उदान दोनों पर होकर कास कम होती है। कफ और वात दोष की दुष्टि से उत्पन्न श्वास भी इसके सेवन से कम हो जाता है। क्षय के विकार में विषमाशन (भोजन में नियम का अभाव) कारण होने पर कुमार्यासव थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देने से कुछ सहायता मिल जाती है।

अग्निमाँद्य और अरुचि में आमाशयस्थ पित्त का स्राव अधिक नहीं होता जिससे बिल्कुल थोड़ा खाने पर भी पचन नहीं होता, मीठी-सी या फीकी-सी डकारें आती रहती हैं। मुँह में पानी छूटता हैं एवं उदर में भारीपन, भोजन में रुचि न होना आदि लक्षण उपस्थित होते

हैं। इन विकारों में कुमार्यासव का सेवन करने से आमाशय में से योग्य पित्तस्राव होने लगता है। इन विकारों पर भोजन के आध या एक घण्टे पहले आसव लेना चाहिये।

भोजन ग्रहणी में से लघुअन्त्र में जाने पर यदि ग्रहणी सबल है तो कुछ भी त्रास नहीं होता अन्यथा उसमें खलबली होकर अन्न की गति के साथ शूलोत्पत्ति होती है। यह भोजन के २-३ घण्टे पर होता है। शूल अधिक बलपूर्व नही होता सामान्य होता है, मुंह में पानी भर जाता है तथा वमन होगी, ऐसा भासता है। ऐसे शूल पर कुमार्यासव उत्कृष्ट कार्य करता है।

अग्नाशय में से आग्नेय रस का स्राव उचित न होता हो तो कुमार्यासव के सेवन से योग्य स्राव होने लगता है। यह कार्य कालमेह और नीलमेह में प्रतीत होता है।

कुमार्यासव यकृद्बल्य होने से यकृतवृद्धि में उपयुक्त औषधि है। यकृत निर्बल होने पर यकृत पित्त का स्राव सम्यक् नहीं होता। उस पर कुमार्यासव देना चाहिये। यकृत की अशक्ति से उत्पन्न अतिसार में कुमार्यासव अमृत के सदृश कार्य करता है। इस विकार में विशेषत: दस्त श्वेत वर्ण के दुर्गन्धयुक्त होते हैं।

पित्ताशय विकृति होकर पित्त की घनता और तीव्रता बढ़कर उत्पन्न शूल और पित्ताश्मरी से उत्पन्न पित्तज शूल में कुमार्यासव का उत्तम उपयोग होने के उदाहरण मिले हैं।

यकृद्वृद्धि उत्पन्न शुष्क कास का इस आसव से बहुत जल्दी शमन हो जाता है। छोटे बालकों के यकृद्विकार में यह अत्यन्त उपयुक्त औषधि है। यकृद्दाल्युदर में जलसंचय होने के पहले या जलसंचय का प्रारम्भ होते ही कुमार्यासस दिया जाता है। इसके साथ मूत्रल-क्षार या ताम्रभस्म के समान संघातभेदी औषधि देने से सत्वर लाभ पहुँचता है। इनके अतिरिक्त बीच-बीच में तीव्र विरेचन भी देते रहना चाहिये।

प्लीहावृद्धि में इसका उत्कृष्ट उपयोग होता है। अति जीर्ण व्याधि होने पर इसके साथ ताप्यादि लोह देने से अति उत्तम कार्य होता है। प्लीहावृद्धि अधिक होने पर लोह देने से अति उत्तम कार्य होता है। प्लीहा वृद्धि अधिक होने पर लोह प्रधान प्लीहान्तक वटी और पारिजातक (रोहितक) चूर्ण या क्वाथ देना विशेष हितावह है।

जीर्ण कोष्ठबद्धता में कुमार्यासव का उत्तम उपयोग होता है। इससे अन्त्र की पुर:सरण क्रिया बढ़ती है और मलशुद्धि होती है। परन्तु इसका सेवन अधिक काल तक नहीं करना चाहिये अन्यथा अन्त्र में प्रदाह उत्पन्न होने की संभावना है।

कुमार्यासव का उपयोग अर्श रोग पर होता है। इससे अर्श निर्मूल नहीं होते, परन्तु मस्से मुलायम और निर्बल होते हैं। फिर शनै:शनै इनका बल घटता रहता है। रक्तार्श के विकार में इसका उपयोग होता है। इससे अन्त्र आमविषोत्पत्ति का विनाश होता है परिणाम में अर्श रोग में लाभ हो जाता है।

सब प्रकार के उदर रोगों पर इस आसव का उपयोग होता है। इससे अग्निमान्द्य दूर होता है। संचित मल में से थोड़ा-थोड़ा शनै: शनै: टूट टूट कर बाहर निकलता रहता है। इस हेतु से उदर रोगों पर इसका उत्तम उपयोग होता है। जलोदर में भी यह उपयोगी है। परन्तु जलोदर में इसके साथ क्षार वाली मूत्रल औषधि और विरेचन औषधि देनी चाहिये। यह आसव यकृत् विकार से उत्पन्न जलोदर में तो दिया जाता ही है, (यह ऊपर कहा है) प्लीहोदर में भी इस आसव का अच्छा उपयोग होता है। हृदय के विकार से उत्पन्न जलोदर में इसका अधिक उपयोग नहीं होता, परम्परागत कुछ सहायता मिलती है। मूत्रपिंड की विकृति से उत्पन्न होने वाले जलोदर में इसका उपयोग न करना ही अच्छा माना जायेगा। वृक्कविकारज जलोदर में चन्द्रप्रभा वटी, पलाशपुष्पासव, ताप्यादि लोह आदि औषधियों का उपयोग करना चाहिये। इस उदररोग में वातपित्त कफात्मक लक्षण होते हैं। अत: लक्षण अनुरोध से औषधोपचार करना चाहिये।

विशेषत: अग्निमाँद्य रोग अनेक दिनो तक रह जाने पर आमदोष संचित होने लगता है। विशेषत: आमविष के वृहदन्त्र में संचय होने पर वातविकार उपस्थित होता है। इस पर कुमार्यासव लाभदायक है। इस प्रकार के विष से आमवात की उत्पत्ति हो जाती है। आमवात से संधियों के शोथ, स्नायु अकड़ जाना, शिरदर्द, कमर में पीड़ा आदि लक्षण होने पर कुमार्यासव का उत्तम प्रयोग होता है।

कक्षाशूल, कुक्षिशूल, पृष्ठशूल आदि जीर्ण व्याधि, जीर्ण आमविष में उत्पन्न हुई हों तो कुमार्यासव से उत्तम लाभ होता है। इस तरह आमविष से उत्पन्न अन्य रोगों में भी यह अच्छा उपयोगी है।

जीर्ण-अजीर्ण रोग में उत्पन्न शूल और गुल्म पर कुमार्यासव प्रयोजित होता है। गुल्म का अर्थ होता है गोला। उदर में उत्पन्न होने वाले छोटे-छोटे गुल्मों की प्रथमावस्था में कुमार्यासव से लाभ पहुँचता है। वातज गुल्म से केवल अन्त्र में वातसंचय होता है, अन्य माँस आदि की वृद्धि नहीं होती। कुमार्यासव के योग से इस वातज गुल्म की विकृतियों के नष्ट होने में सहायता मिल जाती है।

स्त्रियों के बीजाशय विकृति से उत्पन्न नष्टार्तव पर यह उत्तम उपयुक्त औषधि है। इसे कन्यालोहादिवटी या महायोगराज गूगल के साथ देना चाहिये। बड़ी आयु में आई हुई लड़की को होनेवाले हारिद्रक (पाण्डु) में इसका अच्छा उपयोग होता है। यदि कुमार्यासव के साथ लोहभस्म

या मण्डूर भस्म का सेवन कराया जाय तो उत्तम कार्य होता है। (औ.गु.ध.शा.)

भाँगयुक्त कुमार्यासव–भाँगयुक्त आसव अन्त्र और गर्भाशय के विकारों पर अधिक असर पहुँचाता है। अत: विसूचिका (Cholera), पुराना संग्रहणी रोग, अफारा, आमातिसार, अजीर्ण, उदरशूल आदि रोगों को दूर करने में विशेष हितकर है। यह अन्त्र को सुदृढ़ बनाता है। स्त्रियों के मासिकधर्म में अधिक रक्त जाने को और रक्तार्श के रक्त को बन्द करता है। मासिक धर्म में होने वाले कष्ट को दूर करता है, नष्टार्तव (मासिक धर्म न आता) हो तो गर्भाशय को संकुचित और उत्तेजित करके मासिकधर्म ला देता है। निद्रा लाने में सहायता पहुँचाता है और धनुर्वात आदि वातरोग के आक्षेपों को भी दबाता है। भाँग मिलाने से यह आसव हरड़युक्त की अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण, उष्ण, दीपक और पाचक बनता है।

(४) उशीरासव

विधि–खस, नेत्रबाला, नीलोफर, लालकमल, सफेदकमल, प्रियंगु, गंभारी, पद्मकाष्ठ, लोध, मंजिष्ठा, धमासा, कचूर पाठा, चिरायता, बड़ की छाल, गूलर की छाल, जामुन की छाल, कचनार की छाल, मोचरस, पित्तपापड़ा और परवल के पत्ते सब ४-४ तोले, मुनक्का ८० तोले और धाय के फूल ६४ तोले लेकर जौकुट करें। फिर निवाया जल २०४८ तोले, मिश्री ५ सेर और शहद २॥ सेर मिला, अमृतबान में भर मुखमुद्रा करके एक मास तक रख दें; बाद में छान लें। (भै.र.)

मात्रा–१। से २॥ तोले, भोजन के पश्चात् दिन में २ बार। समान जल के साथ मिलाकर देवें।

उपयोग–यह आसव रक्तपित्त, पाण्डु, कुष्ठ, प्रमेह, अर्श, कृमि, रक्त विकार, शोषरोग आदि का नाश करता है। यह उशीरासव, शामक, मूत्रल, पित्तशामक, दाहनाशक और प्रसादक है। यह अधोग रक्तपित्त में विशेषत: मूत्रमार्ग में रक्त जाने पर अति उपयुक्त है। रक्तपित्त में रक्त निर्बल और उष्ण हो जाता है, पित्त के संयोग से विदग्ध हो जाता है। पित्त में विदग्धत्व बढ़ने पर यह रक्त को विदग्ध कर देता है। फिर रक्तवाहिनियों की दीवार पतली हो जाती हैं, पश्चात् रक्तवाहिनियाँ फूट कर रक्तस्राव होने लगता है। क्वचित् रक्त का दबाव बढ़ जाने पर भी रक्त गिरने लग जाता है। यदि रक्त विदग्ध होकर रक्तपित्त की सम्प्राप्ति हुई हो तो उशीरासाव का अति उपयोग होता है।

ग्रीष्म ऋतु में कितने ही व्यक्तियों में रक्तपित्त की अधिक प्रवृत्ति होती है। उनके नाक में से बार-बार रक्त गिरता है। जैसे-जैसे गरमी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे नाक में से रक्त गिरने का त्रास बढ़ता जाता है और मूत्र में दाह भी होता है। ऐसी प्रकृतिवालों के लिये उशीरासव अति उपयोगी होता है।

अत्यार्तव, रक्तातिसार, अर्श इन व्याधियों में अधिक रक्तस्राव होने पर इस आसव से उत्तम लाभ पहुँचता है। विशेषत: पित्त प्रकृति वालों को उष्णवीर्य पदार्थ खाने में आने; जागरण होने, सूर्य के ताप में घूमने अथवा अग्नि के पास बैठने पर रक्तस्राव की प्रवृत्ति अधिक बढ़ जाती है। इस पर उशीरासव उत्तम कार्यकारी हैं।

कितने ही लोगों को किसी भी स्थान में छोटा-सा जख्म होने पर या सुई लग जाने पर खूब रक्तस्राव हो जाता है। पुरुषों की अपेक्षा ऐसी प्रकृतिवाली स्त्रियां विशेष देखने में आती है। उनके लिये यह उशीरासव अधिक हितकर है।

रक्तस्राव अधिक होने से उत्पन्न पाण्डुरोग में धड़कन, धमनियों में स्फुरण आदि लक्षण होने पर उशीरासव सुवर्णमाक्षिक भस्म के साथ देना चाहिये।

सुजाक या उपदंश विकार के शमन हो जाने पर रक्त में कुछ विष अवशिष्ट रह जाता है। उसका निवारण उशीरासव के सेवन से हो जाता है। मूत्रकृच्छ् और मूत्राघात में मूत्र की उत्पत्ति बढ़ाना और मूत्र में होने वाली दाह को दूर करना, ये दोनों कार्य इस उशीरासव से सिद्ध होते हैं। इस तरह अश्मरी या मूत्र शर्करा के चुभने पर उसे शमन करने का महत्व का कार्य भी आसव से होता है। कालमेह, नीलमेह, मांजिष्ठमेह आदि पित्तज प्रमेहों पर यह विशेष उपकारक है एवं यह शोथ की तीव्रावस्था में रक्तसंचय की प्रवृत्ति नष्ट कर रक्तप्रसादन का महत्व का कार्य करता है। (औ.गु.ध.शा.)

(५) खदिरारिष्ट

विधि–काले खैरकी अन्तरछाल या लकड़ी का बुरादा २०० तोले, देवदारू २०० तोले, बावची ४८ तोले, दारुहल्दी ८० तोले और त्रिफला ८० तोले लेकर सबको जौकुट करें। फिर जल ८१९२ तोले मिलाकर अष्टमांश क्वाथ करें। १०२४ तोले जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। फिर शीतल होने पर मिश्री ५ सेर, शहद १० सेर, धाय के फूल ८० तोले, पीपल १६ तोले, जायफल, लौंग, शीतलमिर्च, नागकेशर, इलायची, दालचीनी और तेजपात प्रत्येक ४-४ तोले डालें। १ मास तक बन्द रखें, फिर छान लें। (भै.र.)

मात्रा–१। से २॥ तोले, दिन में २ या ३ बार। समभाग जल के साथ दें।

उपयोग–इस अरिष्ट के सेवन से कुष्ठ, पाण्डु, हृदय रोग, अर्बुदरोग, कृमि, श्वास, कास, रक्तविकार, प्लीहोदर, गुल्म आदि मिटते हैं। यह रक्तशोधक किञ्चित् सारक और पाचक है।

इस खदिरारिष्ट का विशेष प्रभाव रक्त, त्वचा और अन्त्र पर होता है। अन्त्रस्थ सेन्द्रिय विष इस अरिष्ट के सेवन से निष्क्रिय होता है। छोटे रेंगने वाले सूक्ष्म कृमि अन्त्र में होने पर उन पर भी अरिष्ट का प्रभाव होता है। ये कृमि इस आसव के योग से मूर्च्छित हो जाते हैं, उनके

अण्डे नष्ट होते हैं। इस तरह अन्त्र स्वच्छ और कृमि विकार से अलिप्त हो जाता है। अन्त्र व्रण है, तो उसमें अवस्थित कीटाणु खदिरा[illegible] नष्ट होते हैं एवं वह भी सरलता से भर जाता है।

इस तरह चर्म रोग के कारणभूत होने वाले कीटाणुओं को भी यह आसव नष्टकर देता है। इस हेतु से इस अरिष्ट को कुष्ठनाशक [illegible] है। क्षुद्र कुष्ठ अर्थात् पामा, दद्रु, ब्यूची आदि त्वचा रोगों में अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता से देखने पर विविध कृमि प्रतीत होते हैं। ये [illegible] विशिष्ट स्थूल धातु या उसके अंग प्रत्यंग विभागों में बढ़ सकते हैं। उसमें परिवर्तन कराने को चरक विमान के ५ वें अध्याय में "ततो विघा[illegible] प्रकृते:" इस वचन से प्रकृति विघात कहा है। इन कृमियों की वृद्धि में धातुओं के भीतर विशिष्ट द्रव्य परिस्थिति कारणभूत होती है इस परिस्थि[illegible] का परिवर्तन करा उसके प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न करा देने पर धातुओं में कीटाणु का प्रतिकार करने वाला प्रतिविष तैयार होता है। फिर [illegible] पर कृमियों का जीवित रहना अशक्य हो जाता है क्योंकि उनका जीवन व्यापार ही नहीं चल सकता। यह कार्य (प्रतिविषोत्पत्ति) खादिरा[illegible] के योग से सहज हो जाता है। बावची और देवदारु में से कार्यकारी द्रव्य त्वचाद्वारा देह से बाहर निकलता रहता है एवं खदिर भी रक्त [illegible] मिश्रित होकर रक्त कृमियों को निरुपयोगी बनाता है। इस तरह यह अरिष्ट कुष्ठ कृमि और कृमिज कुष्ठ का नाश करता है।

महाकुष्ठ (Leprosy) में भी खदिरारिष्ट उत्कृष्ट कार्य करता है। महाकुष्ठ की उत्पत्ति भी कीटाणुओं से होती है। इन कीटाणुओं की [illegible] राजयक्ष्मा के कीटाणुओं की आकृति में सादृश्य है। इन कुष्ठों में रक्त, लसीका, त्वचा, मांस आदि दूष्य दूषित हो जाते हैं, ये कीटाणु लसी[illegible] में बढ़ते हैं, फिर सर्वत्र फैल जाते हैं और अन्य दूष्यों को दुष्टकर देते हैं। खदिरारिष्ट का परिणाम लसीका पर विशेष होता है। इससे कुष्ठोत्पादक [illegible] जीवाणु बढ़ नहीं सकते फिर शनैः शनैः आगे की धातुओं की दुष्टि भी निवृत्त हो जाती है।

अन्त्र में आमदोष संचित होकर उसका परिणाम रक्त, हृदय पर होता है परिणाम में हृदय स्पंदन की वृद्धि होकर बार-बार घबराहट [illegible] जाती है, और प्रस्वेद आ जाता है। इन लक्षणों पर खदिरारिष्ट उत्तम उपयोगी होता है।

पाण्डुरोग, अर्बुद, गुल्म या अन्त्र में गाँठ, कास, श्वास, प्लीहोदर इन रोगों पर खदिरारिष्ट उपयोगी है। इसके सेवन से जीर्ण आमविष [illegible] शनैःशनै रूपान्तर होता जाता है, रक्तप्रसादन होता है, लसीका और त्वचा शुद्ध होती है।

(६) कनकासव

विधि–धतूरे का पंचाङ्ग और वासामूल ३२-३२ तोले, मुलहठी, पीपल, कटेली, नागकेशर, सोंठ, भारंगी, तालीसपत्र प्रत्येक का चूर्ण १[illegible] १६ तोले, धाय का फूल १२८ तोले, साफ करके कुचली हुई बीजरहित द्राक्षा १६० तोले, शक्कर ८०० तोले, शहद ४०० तोले और जल ४०[illegible] तोले लें। सब औषधियों को चीनी मिट्टी के पात्र में डाल, मुँह बन्दकर, एक मास तक रख दें। बाद में निकालकर छानलें। (भै.र.)

मात्रा–आधा से सवा तोला तक दिन में २ बार। जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग–कनकासव श्वास, कास, राजयक्ष्मा, क्षतक्षीण, जीर्णज्वर, रक्तपित्त और उरः क्षत का नाश करता है।

यह आसव उष्ण, कफस्राव कराने वाला, शोथघ्न, किंचित मादक, वेदना शामक और बल्य है। इस आसव से फुफ्फुस और श्वासवाहिनी [illegible] प्रदाह दूर होकर ये निर्दोष बनते हैं, जिससे श्वास कास, यक्ष्मा आदि रोगों का शमन होता है और क्षीणता दूर होती है।

कनकासव कास और श्वास रोगों के लिए उपयुक्त औषधि है। श्वासवाहिनियों के प्रदाह के हेतु से कास, श्वास होने पर इसका अच्छा [illegible] उपयोग होता है। कनकासव से श्वासवाहिनियों की संकुचित होने की प्रवृत्ति नष्ट होती है, कफ पृथक् होकर बाहर निकलने लगता है तथा [illegible] श्वास के हेतु से होने वाली घबराहट और बेचैनी तत्काल दूर होते हैं। कभी-कभी इस आसव के योग से कितने ही व्यक्तियों को वान्ति [illegible] जाती है, परन्तु उससे हानि नहीं होती, प्रत्युत लाभ ही होता है। श्वासवाहिनियों में से श्लेष्मस्राव हो जाने में सहायता मिल जाती है।

शरीर में उदीरित होने वाले स्राव कनकासव के योग से कम हो जाते हैं, अर्थात् स्तन्य (दूध) प्रस्वेद, उदर में पित्तस्राव, अतिसार में [illegible] अब्धातु का स्राव आदि कम हो जाते हैं। क्षय की अन्तिमावस्था में होने वाला, अत्यधिक प्रस्वेद कनकासव के योग से कम हो जाता है।

कोष्ठशूल, विशेषतः पित्तप्रधान शूलपर इस आसव का अच्छा उपयोग होता है। पित्ताशय में पित्ताश्मरी बनने पर उत्पन्न शूल के शमनार्थ [illegible] इसका अच्छा उपयोग होता है। परिणाम शूल और अन्नद्रवशूल, दोनों प्रकार के शूलों पर इस आसव का वेदना शामक रूप से अच्छा उपयोग [illegible] होता है।

मूत्रशर्करा या अश्मरी के सूक्ष्म-सूक्ष्म कण गवीनी में से मूत्राशय की ओर जाने के समय शूलोत्पत्ति होती है। इस पर भी कनकासव के [illegible] शूलघ्न धर्म का अनुभव होता है।

शीतपूर्वक ज्वर में शीत लगने पर अंग टूटना, शिरदर्द, कम्प आदि जो त्रास होता है, वह कनकासव के योग से कम हो जाता है। मात्रा [illegible] कम देनी चाहिये। (औ.गु.ध.शा.)

अनेक बार हिक्का किसी भी औषधि के सेवन से शमन नहीं होती बार-बार वेगपूर्वक आती रहती है। उत्तेजक औषध सेवन से हिक्का [illegible] का वेग बढ़ जाता है। ऐसे समय पर कभी कनकासव के प्रयोग से तत्काल लाभ पहुँच जाता है।

यदि श्वास और कास रोग में कफ अत्यधिक संग्रहीत हो गया हो, तो कनकासव के साथ अपामार्ग क्षार मिलाकर देने पर सत्वर लाभ [illegible]

पहुँचाता है।

सूचना–कनकासव का उपयोग कम मात्रा में करना चाहिये, अन्यथा विष प्रकोप होता है। विष लक्षण होने पर मट्ठा अथवा नींबू या इमली के शर्बत में जल मिलाकर पिलाना चाहिये।

(७) अश्वगन्धारिष्ट

विधि–असगन्ध २०० तोले, सफेद मूसली ८० तोले, मजीठ, हरड़, हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, रास्ना, विदारीकन्द, अर्जुन की छाल, नागरमोथा और निसोत सब ४०-४० तोले और अनन्तमूल सफेद, अनन्तमूल काला, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, बच, चीते की छाल, प्रत्येक ३२-३२ तोले लें। सबको कूट कर ८१९२ तोले जल में पकावें। अष्टमांश जल शेष रहने पर उतार कर छान लें। शीतल होने पर चीनी या मिट्टी के पात्र में भरकर धाय के फूल ६४ तोले, शहद १० सेर, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) प्रत्येक ८-८ तोले, त्रिजात (दाल चीनी, तेजपात, इलायची) प्रत्येक १६-१६ तोले, नागकेशर ८ तोले और प्रियंगु १६ तोले मिला लें। फिर मुँह बन्दकर २ मास रहने दें। बाद में छान लेवें।

मात्रा–१। से २॥ तोले, दिन में २ बार समभाग जल के साथ दें।

उपयोग–यह अरिष्ट दीपन, पाचन वृष्य और वातनाशक है। प्रमेह, ध्वजभंगता, नामर्दी, उन्माद, शोष, बवासीर, मूर्च्छा, मस्तिष्क की निर्बलता, भ्रम, मृगी, वातव्याधि, हृदयरोग इत्यादि में लाभ करके शरीर में स्फूर्ति, वीर्य की शुद्धि और वृद्धि करता है।

यह अरिष्ट हिस्टीरिया, मूर्च्छा और उन्माद के लिए उत्तम औषधि है। यह कोष्ठस्थ आमविष को नष्ट करता है। अतः आमवात का मन्द वेग होने पर इसका अच्छा उपयोग होता है। यह अग्निप्रदीपक होने से पचन-विकृति को दूर करता है, वातवाहिनियों और रस, रक्त आदि धातुओं को सबल बनाता है। प्रसूता की निर्बलता को दूर करने में हितावह है। नपुंसकता जो शारीरिक निर्बलता के हेतु से आई हो उसे दूर कर उत्साह की वृद्धि कराता है।

(८) त्रिफलारिष्ट

विधि–हरड़, बहेड़ा, आँवला, पीपल, चित्रकमूल, अजवायन, वायविडंग सब १६-१६ तोले लेकर २००० तोले जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतार छानकर लोह भस्म १६ तोले, गुड़ ४०० तोले, शहद ३२ तोले मिलावें। फिर पात्र में भर मुखमुद्राकर १ मास बन्द रखने से अरिष्ट पक जाता है। (ग.नि.)

मात्रा–१। से २॥ तोले तक दिन में २ बार। जल में मिलाकर भोजन के बाद लें।

उपयोग–इस अरिष्ट में त्रिफला के अतिरिक्त लोहभस्म का भी प्राधान्य है। यह हृद्य, दीपक और पाचक है। इस आसव से रक्त की वृद्धि होती है एवं हृदय रोग, घबराहट, फेफड़े की कमजोरी, पाण्डु, शोथ, प्रमेह, भगन्दर, अर्श, गुल्म, तिल्ली, संग्रहणी, कास, श्वास आदि रोगों का नाश होता है।

सूचना–लोहभस्म मिलाने के लिये प्रकरण के प्रारम्भ में सूचना की गई है उस तरह मिलानी चाहिये।

(९) अर्जुनारिष्ट

विधि–अर्जुन की छाल ४०० तोले, द्राक्षा २०० तोले और महुए के फूल ८० तोले मिला जौकूट कर ४०९६ तोले जल मिलाकर क्वाथ करें, चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतारकर छान लें। फिर शीतल होने पर गुड़ ४०० तोले और धाय के फूल ८० तोले मिला मुखमुद्रा करके १ मास तक रख देवें, फिर छान कर भर लेवें। (भै.र.)

इस अरिष्ट में हम गुड़ के साथ शहद १०० तोले मिलाते हैं। मूलग्रन्थ में "पार्थाद्यरिष्ट" नाम लिखा है।

मात्रा–१। से २॥ तोले दिन में २ बार जल के साथ देवें।

उपयोग–यह अरिष्ट उत्तम हृद्य है। पित्तप्रधान हृदयरोग और फेफड़ों की सूजन से फूली हुई शिथिल नाड़ियों को संकुचित और दृढ़ बनाकर निर्बलता को दूर करता है तथा शरीर में बल लाता है। हृदय-शूल, हृद्वेपन, हृदय शैथिल्य तथा विविध हृदय रोगों में उत्तम लाभकारी है।

(१०) अमृतारिष्ट

विधि–गिलोय ४०० तोले और दशमूल ४०० तोले को जौकूट करके ४०९६ तोले जल में क्वाथ करें। चौथा भाग जल शेष रहने पर उतार मसलकर छान लें। शीतल होने पर गुड़ १२०० तोले मिलावें। जीरा ६४ तोले, पित्तपापड़ा ८ तोला और सतोना, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, मोथा, नागकेशर, कुटकी, अतीस, इन्द्रजौ प्रत्येक ४-४ तोले मिला यथाविधि चीनी मिट्टी के पात्र में मुखमुद्रा करके १ मास तक रख दें। परिपक्व होने पर छान लें। (भा. भै.र.)

मात्रा–१। से २॥ तोले तक दिन में २ बार समभाग जल मिलाकर देवें।

उपयोग–अमृतारिष्ट, जीर्णज्वर, मुहूर्तीज्वर और निर्बलता को दूर करता है। जीर्ण विषमज्वर, शीतज्वर, पित्तप्रधानज्वर और अन्य ज्वरों में भी हितकर है।

अमृतारिष्ट सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक आदि विषमज्वरों में अति उत्तम कार्य करता है। इसके योग से रसरक्तगत दोषों का निर्हरण उत्तम रूप से होता है। ज्वर तीव्र होने पर भी यह दिया जाता है। कुछ दिनों तक बन्द रहकर पुनः पुनः उलटकर आने वाले परिवर्तित ज्वर इस औषधि के सेवन से शमन हो जाते हैं। कितने ही दृढ़बल ज्वरों पर सोमल कल्प के साथ इस अमृतारिष्ट का उत्तम उपयोग होता है।

जीर्णज्वर में प्लीहावृद्धि और अग्निमांद्य होने और ज्वर अति कम परिमाण में होने पर यह अरिष्ट अति उत्तम कार्य करता है। अन्य हेतुओं से अर्थात् जीर्णविषमज्वर, कालाआजार, मेदक्षय आदि से प्लीहावृद्धि होने पर अमृतारिष्ट का अत्यन्त उत्तम उपयोग होता है। यकृदाल्युदर और प्लीहोदर हो जाने पर मूत्रल अनुपान के साथ अमृतारिष्ट का प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है।

अमृतारिष्ट का उपयोग प्रमेह पर उत्तम होता है। इससे मूत्रदोष नष्ट होते हैं, फिर बार-बार मूत्रोत्सर्ग नहीं करना पड़ता। सुजाक को जीर्णविकार में यह अति उपयोगी है। सुजाक या उपदंश के हेतु से संधिवात उत्पन्न हुआ हो तो उस पर इस अरिष्ट का उपयोग होता है। इस तरह आमवात जीर्ण होने पर यह लाभ पहुँचाता है।

अग्निमांद्य में अमृतारिष्ट हितकारक है। इसके सेवन से आमाशय में रस का स्राव योग्य होने लगता है। फिर आहार का पचन होने लगता है और उत्तम क्षुधा लगती है एवं रंजकपित्त का स्राव अच्छा होता है, जिससे रक्तकणों की योग्य वृद्धि होने लगती है तथा मुखमण्डल पर से निस्तेजता दूर होकर लाली आ जाती है।

संक्रामक ज्वर अनेक दिनों तक रह जाने पर निर्बलता आती है और बल क्षय होता है। उस पर अमृतारिष्ट अत्यन्त उपयुक्त है। इससे निस्तेजता का नाश होकर शक्ति और बल, मांस की वृद्धि होती है।

अमृतारिष्ट से यकृत सबल बनता है, उसमें से पित्तस्राव उत्तम प्रकार से होने लगता है, यकृत में पित्तोत्पादक घटकों को बल की प्राप्ति होती है। फिर कार्य सम्यक् प्रकार से होने लगता है। इस हेतु से यह अरिष्ट पित्तजशूल, उदरशूल और अपचन पर अच्छा लाभ पहुँचाता है। कामला के कितने ही प्रकारों में यह उत्तम कार्य करता है। विशेषतः शीतल वायु या शीतल स्थानों में फिरने या रहने पर कामला की उत्पत्ति हुई हो तो उस पर लाभदायक है। अतिसार या जीर्ण संग्रहणी में यकृत् कार्य सम्यक न होता हो तो यह अरिष्ट देना चाहिये। अतिसार में इसके योग से अब्धातु की प्रवृत्ति कम हो जाती है और यकृत्पित्त का स्राव योग्य मात्रा में होने लगता है।

अमृतारिष्ट त्वचा के कितने ही विकारों में अति उपयोगी है। यकृत के विकार से त्वचा पर काले धब्बे या सूक्ष्म पिटिका उत्पन्न होने पर अमृतारिष्ट देवें। जीर्ण कण्डू पर भी यह उत्तम उपयोगी है।

अमृतारिष्ट का उपयोग सूतिका ज्वर में अच्छा होता है। रक्त में सूतिका विष कम करने के लिए इसके साथ प्रतापलंकेश्वर देना चाहिये। दशमूलारिष्ट भी सूतिका ज्वर में दिया जाता है, परन्तु पित्तप्रधान पतले गरमागरम दस्त लगने पर जब वह न दिया जाय तक ज्वरावस्था में इसका उपयोग किया जाता है।

(औ.गु.ध.शा.)

(११) सारस्वतारिष्ट

विधि-ब्राह्मी (जलनीम) ८० तोले, शतावरी, विदारीकंद, हरड़, नेत्रबाला, अदरक, सौंफ सब २०-२० तोले लेकर जौकुट करें। जल १०२४ तोले मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। फिर शीतल होने पर शहद ४० तोले और शक्कर १०० तोले मिलावें। धाय के फूल २० तोले, रेणुकबीज, पीपल, बच, असगन्ध, गिलोय, वायविडंग, निसोत, लौंग, कूठ, बहेड़ा, इलायची, दालचीनी ओर सोने के वर्क प्रत्येक १-१ तोला डालें। मुखमुद्रा करके एक मास तक रखें, फिर छानकर भर लें। (भै.र.)

वक्तव्य-५०० तोले छने हुए (अच्छी तरह नितरे हुए) सारस्वतारिष्ट में १ तोला स्वर्णवर्क के स्थान में हम १ तोला स्वर्णलवण मिलाते हैं। २ औंस अरिष्ट निकाल उसमें १ तोला स्वर्णलवण मिलावें तथा घोट दें। बिल्कुल गल कर एक जीव हो जाने पर १ बोतल में डालकर १६ ओंस लगभग और अरिष्ट मिला अच्छी तरह चलाकर फिर उसे ५०० तोले अरिष्ट में मिला लेवें।

मात्रा-१/४ से १ तोले तक भोजन के बाद दोनों समय, समभाग जल से।

उपयोग-यह अरिष्ट आयु, वीर्य, धृति, मेधा, बल और काँति को बढ़ाता है तथा वाणी को शुद्ध करता है। यह उत्तम हृद्य रसायन है। बालक, युवा और वृद्ध पुरुष और स्त्री सबके लिये हितकर है।

यह स्वर की कर्कशता और अस्पष्टता का निवारण करके स्वर को कोयल के समान मधुर बनाता है। स्त्रियों के रजोदोष और पुरुषों के शुक्रदोष को नष्ट करता है। अति अध्ययन, अति गाना आदि कारणों से स्मरण शक्ति शिथिल हो गई हो तो उसे सबल बनाता है एवं चित्त को प्रसन्न और संतोषी बनाता है। यह अरिष्ट एक मास में हृदयरोग का नाश करता है और एक वर्ष के सेवन से शारीरिक सिद्धि देता है।

सारस्वतारिष्ट उत्तम बल्य, हृद्य, रसायन, वातवाहिनियां और वातकेन्द्र पर शामक, चितप्रसादक, बुद्धिप्रसादक, बुद्धिप्रद और स्मृतिवर्द्धक है।

वातवाहिनियों के क्षोभ से उत्पन्न व्याधियों पर कार्यकारी औषध है।

छोटे बालकों को बालग्रह में कोष्ठशुद्धि कराकर सारस्वतारिष्ट देने से लाभ पहुँच जाता है। तोतलापन, बुद्धिमांद्य, श्रवणशक्ति और स्मरणशक्ति में न्यूनता विचार रहित बोलना आदि विकारों पर यह अच्छा उपयोगी है एवं उन्माद, अपस्मार, उत्साह का अभाव, उतावलापन आदि व्याधियों में सारस्वतारिष्ट लाभदायक है।

स्त्रियों के मासिक धर्म बन्द होने पर होने वाले अनेक विकार-घबराहट, चक्कर, हाथ-पैर में शून्यता आ जाना, बेचैनी, कहीं भी चित्त न लगना, निद्रानाश आदि होते हैं। उन पर यह सारस्वतारिष्ट उत्तम कार्य करता है। इन विकारों में कितनी ही स्त्रियों को चक्कर बहुत आते हैं, वह इतने तक कि ऊँची दृष्टि भी नहीं कर सकती। सोते-सोते मोटर गाड़ी चलने के सदृश मस्तिष्क फिरता है, सर्वदा कान में नाद गूंजता रहता है। ऐसे समय पर सारस्वतारिष्ट सुवर्णमाक्षिक भस्म के साथ देने से उत्तम कार्य करता है।

स्त्रियों के बीजाशय या पुरुषों के अण्डकोष की वृद्धि योग्य रूप से न होने से स्त्री-पुरुषों के शरीर आयुवृद्धि होने पर भी उचित अंश में नहीं बढ़ते। युवावस्था की भावनायें भी नहीं होती। ऐसी स्थिति में मकरध्वज और वंगभस्म के साथ सारस्वतारिष्ट देना चाहिये।

सूचना-स्वर्णलवण मिश्रित अरिष्ट १ तोले से अधिक मात्रा में नहीं लेना चाहिये। अन्यथा स्वर्णलवण का परिमाण अधिक हो जायेगा, फिर मुँह आना आदि उपद्रव उपस्थित होंगे। प्रारम्भ में १/४ तोला लें, फिर धीरे-धीरे मात्रा बढ़ावें। (औ.गु.ध.शा.)

(१२) द्राक्षासव

प्रथम विधि-५ सेर मुनक्का को धो, कुचलकर ४०९६ तोले जल में उबालें चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतार मलकर छान लें। फिर ५ सेर मिश्री और ५ सेर शहद मिलावें। धाय के फूल ६४ तोले, शीतलमिर्च, तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, लौंग, जायफल, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, चव्य, पीपलामूल और निर्गुन्डी के बीज प्रत्येक चार-चार तोले लें। जौ कूटकर मिला देवें। फिर पात्र में कपूर, अगर और चन्दन का धुँआ देकर आसव भरें और मुखमुद्रा करके १॥ मास तक रख देवें। परिपक्व होने पर निकाल कर छान लें। (यो.र.)

जो मुनक्का दूषित या शुष्क हो गई हो या सड़ गई हो उसे उपयोग में न लेवें।

मात्रा-१। से २॥ तोले। समभाग जल मिलाकर, दिन में २ से ३ बार लेवें।

उपयोग-यह द्राक्षासव ग्रहणी, अर्श, उदावर्त, रक्तगुल्म, उदररोग, कृमि, कुष्ठ विविध प्रकार के व्रणरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, गलरोग, ज्वर, आम, पाण्डु और कामला रोग को नाश करने में श्रेष्ठ है। यह बृंहण, बलवर्णकारक और अग्नि प्रदीपक है।

किसी भी रोग में शक्ति के संरक्षणार्थ और निर्बलता को दूर करने के लिये यह उपयोगी है। अरुचि, आलस्य, थकावट और बेचैनी को दूरकर शारीरिक उत्साह बढ़ाता है। इसके सेवन से शान्त निद्रा आ जाती है। मलशुद्धि होती है और मन प्रफुल्लित बनता है।

यह आसव पाचक पित्त का स्राव बढ़ाता है, इस हेतु से अग्निमांद्य और उससे उत्पन्न विविध व्याधियों में यह लाभदायक है।

रक्तार्श या पित्तार्श पर इसका सेवन हितकारक है। यदि उदावर्त (आमाशय से गैस का ऊपर आना) रोग प्रबल न हो गया हो तो इसका प्रयोग अच्छा माना गया है। पित्तज गुल्म में ज्वर, तृषा, समस्त देह लाल हो जाना, मुखमण्डल लाल हो जाना, भोजन के ३-४ घन्टे पर मन्द-मन्द उदरशूल, जिस तरह व्रण पर हाथ लगाने से वेदना होती है उसी तरह गुल्म पर स्पर्श करने से तीव्र वेदना का भास होना आदि लक्षणों वाले गुल्म में यह अच्छा उपयोगी है।

नवप्रसूता स्त्री को अपथ्य सेवन कराने पर या बार-बार गर्भपात होने वाली स्त्री को रक्तगुल्म हुआ हो, गर्भधारण के सदृश लक्षण प्रतीत हों, साथ में अग्निमांद्य, बार-बार वमन आदि चिह्न हो तो द्राक्षारिष्ट अधिक उपयुक्त होता है, इससे रक्तगुल्म का शमन तो नहीं होता परन्तु अधिक सन्ताप दूर होता है और वमन आदि लक्षणों का नाश होता है।

पित्तभूयिष्ठ उदर रोग में सहायक औषधि रूप में द्राक्षासव का उपयोग किया जाता है।

आमज्वर की प्रथमावस्था में ज्वर पाचन रूप से इसका प्रयोग हितकारक है ज्वर में कास होने पर उपयोगी है। (औ.गु.ध.शा.)

दूसरी विधि-(द्राक्षारिष्ट) शुद्ध जल से धोई हुई नई मुनक्का २०० तोले को २०८४ तोले जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। शीतल होने पर मसलकर छान लेवें। फिर ८०० तोले गुड़, धाय के फूल ३२ तोले, बायविडंग, प्रियंगू, पीपल, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, तेजपात, नागकेशर, कालीमिर्च और सोंठ प्रत्येक ४-४ तोले मिलाकर अमृतबान में भरें। मुखमुद्रा कर १ मास रख दें। मूलग्रन्थ में सूर्य के ताप में रखने को लिखा है परन्तु सुरक्षित मकान में रखना विशेष हितकर है। फिर आसव परिपक्व होने पर छान लेवें। (यो.र.)

हम इस आसव में गुड़ मिलाते हैं, पाँच किलो गुड़ मर्यादा से अधिक हो जानें पर मद्यार्क कम हो जाता है।

मात्रा-१। से २॥ तोले तक। समान जल मिलाकर सेवन करें।

उपयोग-यह आसव कास, श्वास, गलरोग और राजयक्ष्मा आदि रोगों को लाभ करता है, यह उरः संधानकारक होने से उरःक्षत को

भी दूर करता है।

छोटे बच्चों के कफविकार में यह उत्तम है। श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातों के शमन हो जाने पर शेष रहने वाले कास रोग को [illegible] करने में द्राक्षारिष्ट उत्तम कार्य करता है। इसके सेवन से हृदय सबल बनता है। फुफ्फुसों का क्षोभ शनैः शनैः शमन होता है। श्लैष्मिक [illegible] श्वसनक सन्निपातों में इसके सेवन से कफविकार कम होता है। शनैःशनै कफ छूटकर स्राव होने लगता है। कफ से होने वाली घबराहट [illegible] होती है। छोटे बालकों के श्वसनक सन्निपात (पसली रोग में) ३० से ६० बूंद तक बार-बार गरम जल में मिलाकर देते हैं।

अन्य प्रकार के कास रोग में भी इसका अच्छा उपयोग होता है। विशेषतः काली खांसी पर मृगशृङ्गभस्म और प्रवालपिष्टी के साथ द्राक्षारि[illegible] देने से उत्तम उपयोग होता है। इससे खाँसी के वेग और त्रास का शमन होता है।

पित्तज श्वास के विकार में अति घबराहट होती है। सारा शरीर प्रस्वेद से भीग जाता है और मस्तिष्क फिरने लगता है। ऐसे समय [illegible] इस द्राक्षासव का उत्तम उपयोग होता है।

क्षय रोग की कास में अति त्रास होने पर इसके सेवन से त्रास कम हो जाता है। यह आसव क्षय कीटाणुओं को नष्ट नहीं करता, [illegible] भी द्राक्षासव और च्यवनप्राशावलेह के सेवन से क्षयपीड़ित व्यक्ति का बल बढ़ता जाता है, अग्नि प्रदीप्त होती है, कास कम होती है, [illegible] बढ़ता है और रोगी की मुखमुद्रा अच्छी दीखने लगती है। इसके साथ सुवर्णकल्प देने पर क्षयरोग के निवारण में अच्छी सहायता मिल जा[illegible] है। जब राजयक्ष्मा में बड़े-बड़े उरःक्षत हो जाते हैं, तब किसी औषधि का उपयोग नहीं होता। परन्तु उस अवस्था में भी द्राक्षासव देते रहने [illegible] कुछ शांति रहती है। इस आसव में उरःसंधानकारकता कितने अंश में है, यह अभी निर्णीत नहीं हुआ। शांत रहना एक बात है और उरःसंधा[illegible] होना दूसरी बात है।

(औ.गु.ध.शा.)

(१३) कुटजारिष्ट

विधि-काले कूड़े की छाल ५ सेर, मुनका २॥ सेर, महुवे के फूल ४० तोले और गम्भारी की छाल ४० तोले लें। जौकुट कर [illegible] ४०९६ तोले मिलाकर उबालें, चतुर्थांश जल रहने पर उतार, मलकर छान लें। शीतल होने पर गुड़ ५ सेर और धाय के फूल १ सेर मिल[illegible] मुखमुद्रा कर १ मास रख दें। परिपक्व होने पर छान लें। (शा. सं.)

मात्रा-१। से २॥ तोले, दिन में ३ या ४ बार। समभाग जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग-यह अरिष्ट संग्रहणी, अतिसार, रक्तातिसार पेचिश, मन्दाग्नि ज्वर आदि रोगों को दूर करता है एवं बालकों की संग्रहणी, रक्तातिसा[illegible] और ज्वर में भी हितकर है।

कुटजारिष्ट किंचित वामक और कफस्रावक है। इस हेतु से जीर्ण कास और छोटे बच्चों के नूतन कास में कफस्रावी रूप में उपयोगी है[illegible] इतना ही नहीं, श्लेष्मिकसन्निपात और श्वसन सन्निपात में पुनर्नवा और मुलहठी के क्वाथ के साथ कुटजारिष्ट देने से श्लैष्मस्राव होकर खांसी [illegible] का त्रास कम हो जाता है। इसके योग से श्वासवाहिनियों का क्षोभ और प्रदाह नष्ट होता है। छोटे बच्चों के श्वसनक ज्वर (डब्बा) में कुटजारि[illegible] और द्राक्षारिष्ट मिलाकर देने से सत्वर लाभ होता है।

यह औषध प्रवाहिका प्रधान संग्रहणी के विकार में अति उत्कृष्ट है। संग्रहणी में भी कालज अर्थात् वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में होने वाली [illegible] और अन्य समय में होने वाली, ऐसे दो विभाग होते हैं। कीटाणुओं से उत्पन्न संग्रहणी इस अरिष्ट के योग से सत्वर शमन होती है। बार-[illegible] बार अति कम मल कुछ आम और रक्त गिरना, ज्वर हो तो अति कम वमन होना, उदर में भयंकर मरोड़े आना, शौच के समय किंछते ही [illegible] रहना, किंछने से कुछ ठीक आदि लक्षण होने पर कुटजारिष्ट अति उपयुक्त है।

संग्रहणी के दूसरे प्रकार में ज्वर अधिक रहता है। शौच में केवल रक्तमिश्रित आम गिरता है। मल पहले प्रकार के समान नहीं गिरता [illegible] तथा उदर में मरोड़ा अति प्रबल होता है। ऐसे विकार पर कुटजारिष्ट का उपयोग नहीं होता। इस प्रकार में गुदनलिका में मल होता है, परन्तु [illegible] गुदत्रिवली में शोथ होने या व्रण होने पर उसके बल से मल प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं हो सकती। इस प्रकार में सर्वांगसुन्दर, कनकसुन्दर, रसपर्पटी [illegible] आदि औषधियों का विशेष उपयोग होता है।

यदि ज्वररहित ग्रहणी रोग तीव्र हो तो कुटजारिष्ट अधिक मात्रा में (१ से २ औंस तक) समान जल मिलाकर या बिना जल मिलाये [illegible] दिन में ४ समय देते रहने से लाभ हो जाता है। उदर में मरोड़ा बलपूर्वक आता रहता हो तो कुटजारिष्ट के साथ वेदना शामक गुण के लिये [illegible] अमृतवटी, कनकसुन्दर या सूतशेखर जैसी औषधि देनी चाहिये। इनमें अमृतवटी विशेष हितावह है। (अमृतवटी) शुद्ध बच्छनाभ ६ भाग, वराटिका [illegible] भस्म ५ भाग और कालीमिर्च ९ भाग मिलाने से अमृतवटी तैयार होती है।

मात्रा-आध-आध रत्ती।

दुर्निवार संग्रहणी का बल कम होकर जैसे-जैसे शौचवेग कम होता जाय वैसे-वैसे कुटजारिष्ट की मात्रा भी कम करते जाना चाहिये। व्याधि [illegible] जितनी जीर्ण हो उतनी ही मात्रा कम देनी चाहिये। कभी-कभी रोगी संग्रहणी का वेग कम होने पर औषधि और पथ्य का त्यागकर देता है [illegible] जिससे पुनः रोग का आक्रमण हो जाता है। इस तरह बार-बार होने पर रोग पुराना हो जाता है। ऐसे अनेक रोगी २-२ या ४-४ वर्ष से पीड़ि[illegible]

देखने में आते हैं। ऐसे रोगी को निरोगी बनाने के लिये आग्रहपूर्वक पथ्यपालनसह कुटजारिष्ट अति कम मात्रा में दीर्घकाल तक देते रहना चाहिये। कभी-कभी यह क्रम एक-दो वर्ष तक कायम रखने का है। संग्रहणी रोग पुराना होने पर कभी-कभी यकृत्विद्रधि के सदृश अनेक भयंकर उपद्रव होने का भय रहता है, अतः इसे हो सके उतना सत्वर दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये।

यकृद्विद्रधि, अग्निमांद्य, कोष्ठशूल ये उपद्रव संग्रहणी के तीव्र विकार के पश्चात् उत्पन्न होने पर इन पर कुटजारिष्ट का अच्छा उपयोग होता है। यकृद्विद्रधि पर शिलाजीत आदि शोथघ्न और कीटाणु-विषनाशक औषधि के साथ कुटजारिष्ट देना अति हितकारक है।

संग्रहणी के विकार के पश्चात् या स्वतंत्र दोषदुष्टि से अग्निमांद्य उत्पन्न होने पर कुटजारिष्ट का अच्छा उपयोग होता है। इसके योग से यकृत का पित्तस्राव योग्य परिमाण में होने लगता है, जिससे अग्निबल की वृद्धि होकर आहार पचन और शोषण होने में अच्छी सहायता मिल जाती है।

ग्रहणी की विकृति होने पर अग्निमांद्य, अग्निमांद्य से अपचन, अपचन से बार-बार आमदोष संचित होकर ज्वर आते रहना, फिर ज्वर अति त्रासदायक बन जाना, ज्वर संतत ज्वर के सदृश हो जाना, ज्वर का वेग तीव्र न होने पर भी व्याकुलता अधिक रहना, उबाक, क्षुधा न लगना, अरुचि, मुँह फीका रहना, जिह्वा पर मैल की तह आ जाना, भोजन बेस्वादु लगना आदि लक्षणयुक्त संतत और सतत ज्वर में कुटजारिष्ट अति उत्तम कार्य करता है।

अन्त्र की संग्राहक शक्ति कम होने पर अन्त्र शिथिल हो जाते हैं। बार-बार शौच होना, कितने ही बार रक्तातिसार हो जाना, गुदभ्रंश होना आदि लक्षण होते हैं। इस पर कुटजारिष्ट अति उत्तम कार्य करता है।

(१४) अभयारिष्ट

प्रथम विधि–हरड़ ५ सेर, मुनक्का २॥ सेर, बायविडंग ४० तोले और महुवे के फूल ४० तोले लें। सबको जौकुट कर जल ४०९६ तोले मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। शीतल होने पर गुड़ ५ सेर, गोखरू, निसोत, धनिया, धाय के फूल, इन्द्रायणकी जड़,, चव्य, सौंफ, सोंठ, दन्तीमूल, मोचरस, प्रत्येक ८-८ तोले लें। जौ कुट चूर्ण कर मिला लें। फिर अमृतबान में भर मुखमुद्रा करके १ मास रख दें, पश्चात् छान लें (भै.र.)

मात्रा–१। से २॥ तोले। समभाग जल मिलाकर लें।

उपयोग–यह अरिष्ट अर्श, उदररोग, मलावरोध और मूत्रावरोध को दूर करता है तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है।

अभयारिष्ट उत्तम सारक, मूत्रल और पाचक है। इसका उपयोग कोष्ठ-बद्धता पर अत्युत्तम होता है। बद्धकोष्ठ में जमालगोटा के सदृश तीव्र विरेचक औषधि उपयोगी नहीं होती। उससे तो अन्त्र की श्लैष्मिक कला में प्रदाह हो जाता है और अन्त्र निर्बल बनता है। फिर रूक्षता आकर अन्त्र की पुरःसरण क्रिया मन्द हो जाती है। फलतः बद्धकोष्ठ व्याधि कम होने के स्थान में और बढ़ जाती है। बद्धकोष्ठ में मल संगृहीत होकर सड़ने लगता है। फिर उसमें से सेन्द्रिय विष उत्पन्न होता है। वह रक्त में शोषित होकर विविध व्याधियों के निर्माण में कारण बनता है।

अभयारिष्ट सेवन में अन्त्र की पुरःसरण क्रिया सम्यक् प्रकार से होकर मलनिः सरण कार्य योग्य होता है। सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति नहीं होती। यदि अभयारिष्ट के साथ थोड़ा घी सेवन किया जाये तो स्नेहन होने में सहायता मिल जाती है। घी पहले दें और रात्रि को निवाये जल के साथ अभयारिष्ट दें, तो भी लाभ होता है।

अर्श रोग में शौच शुद्धि न होना, यह प्रमुख लक्षण होता है। शौच-शुद्धि न होने से अधिक किंछना पड़ता है। गुदत्रिवली पर दबाव पड़-पड़कर क्षोभ उत्पन्न होता है, फिर शोथ आ जाता है। शोथ के पश्चात् शिराजाल में नीलता की वृद्धि होती है। इन सिराओं को मस्से के रूप की प्राप्ति होती है। इस सबका मूल है शौच शुद्धि न होना। यकृत् के कार्य में शैथिल्य अभयारिष्ट के योग से नष्ट होता है।

जिस तरह उदर रोग की उत्पत्ति अजीर्ण, मलिन अन्न और मल संचय के योग से होती है, उस तरह दोषसंघात भी उदर रोग का हेतु है। दोषसंघात से पचन-संस्थान में शोषण कार्य विकृत होता है। उत्तरा महासिरा और अधरा महासिरा आदि पर दबाव आता है और रसवहन कार्य में प्रतिबन्ध होता है। कोष्ठस्थ कफवृद्धि होती है। समानवायु, अपानवायु, पाचकपित्त, तीनों दोष यकृत, प्लीहा आदि यन्त्र सब विकृत होते हैं। शनैः शनै हृदय और वृक्क भी दूषित होते हैं, फिर उदर्य्याकला के भीतर जलसंचय होता है, उसे जलोदर कहते हैं। अभयारिष्ट जलसंचय से उत्पन्न उदर रोग में उत्कृष्ट कार्य करता है। इस तरह पित्तोदर, यकृतोदर और प्लीहोदर में भी इसका उत्तम उपयोग होता है। कफोदर में उसके साथ अन्य क्षार की योजना करनी चाहिए अथवा हरीतकी रसायन का उपयोग करना चाहिये।

इस औषधि से मलमूत्र शुद्धि योग्य रूप से होती है। पेशाब अधिक बार और अधिक परिमाण में होता है, अग्निमांद्य दूर होता है। अन्त्र में विस्फोट और जलवृद्धि नहीं होती। इस हेतु से कोष्ठ बल की वृद्धि होती है। अन्त्र में स्निग्धता बढ़ती है। फिर अन्त्र की पुरःसरण क्रिया सम्यक् होकर जल सरलता से बाहर निकलता रहता है।

बृहदन्त्र में जीर्ण आमविष होने पर इस अरिष्ट के योग से शनैः-शनैः वह नष्ट होता है। पक्वाशय में आहार रस का संशोषण सम्यक्

होने लगता है। रसाजीर्ण की आदत का नाश होता है। इस तरह यह आमाशय, पक्वाशय, बृहदन्त्र आदि कोष्ठावयवों पर अति उत्तम प्रकार से बल्य और दोषनाशक असर पहुँचाता है। (औ.गु.ध.शा.)

(१५) अशोकारिष्ट

विधि–अशोकछाल ५ सेर को जौकुट करके ४०९६ तोले जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतारकर छान लें। शीतल होने पर गुड़ १० सेर, धाय के फूल ६४ तोले, कालाजीरा, नागरमोथा, सोंठ, दारुहल्दी, कमल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, आम की गुठली की गिरी, जीरा, अडूसा की छाल, रक्तचन्दन प्रत्येक ४-४ तोले मिलावें। फिर अमृतबान में भर मुख-मुद्रा करके १ मास रख दें। पश्चात् छानकर उपयोग में लेवें। (भै.र.)

मात्रा–१। से २॥ तोले दिन में २ बार। समान जल के साथ दें। रक्तप्रदर में चन्द्रकला रस के साथ और पीड़ितार्तव में बृहद् योगराज गूगल के साथ विशेष लाभ पहुँचाता है।

उपयोग–यह अरिष्ट स्त्रियों के रक्तप्रदर, मन्दज्वर, रक्तपित्त, अर्श, अग्निमाँद्य, अरुचि आदि विकारों तथा पुरुषों के प्रमेह, शोफ और अरुचि को दूर करता है।

अशोकारिष्ट स्त्रियों का परम मित्र है। इसका कार्य गर्भाशय पर बल्य होता है। गर्भाशय की शिथिलता से उत्पन्न होने वाले अत्यार्तव विकार में इसका उत्तम उपयोग होता है। अत्यार्तव विकार अनेक कारणों से होता है। गर्भाशय के भीतर के आवरण में विकृति, बीजवाहिनियों की विकृति, गर्भाशय के मुख पर योनिमार्ग में या गर्भाशय के भीतर की और कर्कस्फोट होना और प्रसव के पश्चात् गर्भाशय के भीतर या बाहर व्रण हो जाना आदि कारणों से अत्यार्तव पर व्याधि की प्राप्ति होती है। इसमें से कर्कस्फोट के अतिरिक्त कारणों से उत्पन्न अत्यार्तव पर इस अरिष्ट का अच्छा उपयोग होता है। मासिकधर्म में अति रक्तस्राव होता हो तथा साथ में मलावरोध रहता हो तो अशोकारिष्ट के साथ दन्त्यरिष्ट भी मिला देना चाहिये एवं रक्तस्राव में दुर्गन्ध आती हो तो गर्भाशय और योनिमार्ग की शुद्धि के लिये निम्बपत्र को ४० गुने जल में मिलाकर उत्तरबस्ति भी देते रहना चाहिये।

कितनी ही स्त्रियों को मासिक धर्म आने पर उदर पीड़ा की आदत पड़ जाती है, उसे पीड़ितार्तव और कष्टार्तव कहते हैं। इसमें मुख्यतः बीजवाहिनी और बीजाशय की विकृति कारण है। कितनी ही रुग्णाओं को पीड़ा अत्यधिक तीव्र होती है। कमर में भयंकर दर्द, शिरदर्द, वमन आदि लक्षण होते हैं। इस पर अशोकारिष्ट अत्युत्तम कार्य करता है।

पीड़ितार्तव में मन्दज्वर होता है। ज्वरोष्मा ९९-९९॥ डिग्री होती है। परन्तु ज्वर बहुत दिनों तक रहता है। उस पर यह उपकारक है।

उर्ध्वग रक्तपित्त में अशोकारिष्ट उपयुक्त औषधि है एवं रक्तार्श में भी विशेषतः वेदना या जलन न होने पर और बिना ज्ञान रक्तस्राव होते रहने पर अशोकारिष्ट अति उपयोगी है। (औ.गु.ध.शा.)

(१६) कार्पासारिष्ट

विधि–कपास के मूल की छाल ३ सेर, बाँस की जड़ २ सेर, सुहिंजने की छाल, रक्त चित्रकमूल, अशोक छाल और दशमूल चारों १॥-१॥ सेर लें। सबका जौकूट चूर्णकर २२ सेर जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर बाबूना के फूल १ सेर, धाय के फूल ४० तोले, लोध, गूगल, एलुवा, देवदारू, पुनर्नवामूल, जटामाँसी, दारूहल्दी, शीतलमिर्च, बेल की छाल, रक्तचन्दन, श्वेत चन्दन ये ११ औषधियाँ १०-१० तोले, धोई हुई मुनक्का १। सेर, शहद २।। सेर और गुड़ १० सेर मिलाकर पात्र में भरें। मुखमुद्राकर १ मास बन्द करें। फिर छान लेवें। (श्री पं. घनानन्दजी पन्त विद्यर्णव)

मात्रा–२ से ४ तोले तक, दिन में २ बार देवें।

उपयोग–यह अरिष्ट गर्भाशय को संकुचित करता है। अतः प्रसवकाल में गर्भाशय की निर्बलता पर इसका सेवन अति लाभप्रद है एवं यह गर्भाशय में से संचित रक्त, गर्भ या जेर को बाहर निकालने में सहायक है। रक्त संचित होने पर मासिक धर्म में कष्ट होता हो तो वह इसके सेवन से दूर होता है।

(१७) चन्दनासव

विधि–सफेद चन्दन, नेत्रवाला, नागरमोथा, गम्भारी के मूल, नील-कमल, फूलप्रियंगू, पद्माख, लोध, मजीठ, लालचन्दन, पाठा, चिरायता, बड़ की छाल, पीपल वृक्ष की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, मुलहठी रास्ना, पटोलपत्र, कचनार की छाल, आम वृक्ष की छाल और मोचरस इन २२ औषधियों का जौकूट चूर्ण ४-४ तोले, धाय के फूल ६४ तोले, मुनक्का ८० तोले, शक्कर ४०० तोले और गुड़ २०० तोले लेवें। सबको २०४८ तोले जल में मिला मिट्टी के पात्र में भर यथाविधि संधानकर तैयार करें। लगभग १। मास में यह आसव तैयार हो जाता है। (भै.र.)

मात्रा–१। से २॥ तोले, दिन में २ बार। समान जल मिलाकर सुबह और रात को लें। रोग जीर्ण होने पर मात्रा कम लेवें।

गुण–यह चन्दनासव शुक्रमेहनाशक, बलकारक, पौष्टिक, हृद्य और अग्निवर्द्धक है। जीर्ण सुजाक के रोगियों के लिये हितकारक है। इसके सेवन से रक्त में उत्पन्न मूत्रविष, मूत्राशयदाह, मूत्रावरोध और मूत्रकच्छ्र आदि विकार शमन हो जाते हैं।

पथ्य–लघु (शीघ्र पचने वाला) और पौष्टिक अन्नपान, सत्संग, शास्त्र, श्रवण, शान्ति और स्वाध्याय आदि हितकारक है।

अपथ्य–शुक्रमेह रोग में अभिष्यंदी (दही आदि) तीक्ष्ण अन्नपान (लालमिर्च, तैल, शराब आदि) सूर्य का ताप, अग्निसेवन, स्त्री प्रसंग, मलमूत्र आदि वेगों का धारण, रात्रि का जागरण, क्रोध, शोक, दिन में शयन, उपवास, अत्यन्त चिन्ता, आलस्य और दुष्टों का सहवास आदि का परित्याग करना चाहिये।

चन्दनासव शीतवीर्य, बल्य, मूत्रल, दाहशामक और पित्तशामक है तथा मूत्रमार्ग की दोषदुष्टि को नष्ट करता है। इसका उपयोग पुराने और नये सुजाक में उत्तम होता है। इसके उपयोग से बार-बार मूत्रोत्सर्ग होते रहने से सुजाक के पूय का शोधन होता रहता है। सुजाक की प्रथमावस्था में मूत्रप्रसेक नलिका की श्लैष्मिककला में प्रदाह होता है। वह इस आसव के सेवन से कम होता है। फिर दाहसह वेदना भी कम हो जाती है तथा निमित्त कारण जो कीटाणु हैं, उनका बल कम होता जाता है। यद्यपि कीटाणु नष्ट होते हैं या नहीं यह अभी निश्चित् नहीं हुआ, तथापि इस आसव के योग से सुजाक की तीव्रावस्था और चिरकारी अवस्था में उपद्रव कम होते जाते हैं, यह निःसदेह है।

चन्दनासव से सुजाक समूल नष्ट होने के उदाहरण नहीं मिले हैं। इसके रोगी को तीव्रावस्था, मन्दावस्था और जीर्णावस्था की प्राप्ति होती रहती है तथा रोगी सर्वदा इनसे पीड़ित ही रहता है। इससे मूत्रोत्पत्ति की वृद्धि होकर पूय का स्राव होता रहता है, मूत्रमार्ग में जीर्ण व्रण हो तो उसका त्रास कम हो जाता है, क्षोभ हो, तो कम हो जाता है और कुछ समय के लिए पीड़ा उपशम होती है।

सूचना–यदि मूत्रमार्ग संकुचित हो गया हो तो चन्दनासव का अधिक उपयोग नहीं होता। इस आकुंचन को उत्तरबस्ति द्वारा या उत्तरबस्ति नली को मूत्र मार्ग में प्रवेश कर शनैःशनै कम करना चाहिये। आकुंचन अत्यधिक हो तो चन्दनासव या अन्य मूत्रल औषधि नहीं देनी चाहिये अन्यथा मूत्राशय में मूत्रसंचय अधिक होकर आपत्ति बढ़ जायेगी।

मूत्र में सिकता और शर्करा (अश्मरीकण) जाने पर चन्दनासव का उत्तम उपयोग होता है। इस आसव से अश्मरी के छोटे-छोटे अणु द्रवीभूत होकर बाहर निकल जाते हैं। अश्मरीजन्य शूल में इसका उपयोग होता है।

मूत्राघात में शामक व मूत्रल रूप से इस औषधि का प्रयोग किया जाता है एवं मूत्र पिण्डों के प्रदाह में प्रदाहघ्न और ज्वरघ्न रूप से यह अच्छा कार्य करता है।

(१८) जीरकाद्यरिष्ट

विधि–जीरा ५०० तोले को ४०९६ तोले जल मिलाकर अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर मसलकर छान लेवें। शीतल होने पर गुड़ १२०० तोले, धाय के फूल ६४ तोले, सोंठ ८ तोले, जायफल, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची के दाने, नागकेशर, अजवायन, शीतलमिर्च और लौंग प्रत्येक ४-४ तोले मिला अमृतबान में भर मुखमुद्राकर १ मास रहने देवे। परिपक्व होने पर छान लें। (भै.र.)

सूचना–जीरे का क्वाथ करने के पात्र पर ढक्कन रख देना चाहिये अन्यथा तैल उड़ जाता है। छानने को मोटा वस्त्र लें। वस्त्र को जल से धो गीला करके छानें तथा जीरे को अच्छी तरह मसलकर निचोड़ लेवें। क्वाथ का जल मन्दाग्नि पर अर्धावशेष अर्थात् २०४८ तोले शेष रखें या फाण्ट बना लें।

नव्य प्रयोग–जीरकाद्यरिष्ट में चतुर्थांश क्वाथ करने पर जीरे में अवस्थित उड़नशील तैल, जो कार्यकारी द्रव्य है, वह उड़ जाता है। फिर क्वाथ रूक्ष और उष्ण होता है। इससे स्तन्य की वृद्धि होती है, किन्तु माता को निर्बलता आती है। यदि फाण्ट बनाकर जीरे का तैल कायम रक्खा जाय तो मद्यार्क की उत्पत्ति कम होती है। किन्तु फाण्ट बनाकर तैयार किया हुआ जीरकाद्यरिष्ट स्तन्यवर्द्धक, माता के लिए बल्य, दीपन-पाचन और बालक के लिए हितावह है। सामान्यतः ८०० तोले जीरे के लिए १६०० तोले जल में फाण्ट कर लेने पर शेष १०२४ तोले जल ले लिया जाए तो ठीक होगा।

मात्रा–१। से ५ तोले, दिन में दो या तीन बार। समान जल मिलाकर देवें।

उपयोग–जीरकाद्यरिष्ट सूतिकारोग में उत्पन्न ग्रहणी और अतिसार को नष्ट करता है और पाचनक्रिया को सुधारता है।

यह अरिष्ट जीर्ण सूतिका रोग में अच्छा लाभदायक है। तीव्रावस्था में ज्वर अधिक होने पर प्रतापलंकेश्वर, लक्ष्मीनारायण, सूतिकारि रस, सूतिकाभरण रस और दशमूलारिष्ट आदि हितावह है। परन्तु रोग जीर्ण होकर ज्वरवेग मन्द होने पर यदि पित्तानुबन्ध के लक्षण मन्दज्वर, अंग टूटना-आलस्य, उबासी, तृषा, जड़ता, उदरशूल, अतिसार, शोथ आदि हों तो जीरकाद्यरिष्ट हितकर है।

प्रसव के पश्चात् उत्पन्न क्षयरोग में इसका उपयोग होता है। क्षय में सुवर्ण कल्प के साथ देना चाहिये जिससे क्षय के कीटाणुओं के साथ सूतिका विष भी नष्ट होकर रुग्णा को सच्चा लाभ पहुँच सके। बार-बार पतले, पीले गरम-गरम दस्त लगते हों और जिह्वा फटी हो या मुंह में छाले हो तो जीरकाद्यरिष्ट फलप्रद है।

संग्रहणी में पित्तानुबन्ध होने पर यह विशेष उपयोगी है। बार-बार शोच होना किंछना, रक्त गिरना, रक्त के साथ कुछ झाग पड़ना, तृषा, निद्रानाश आदि लक्षण होने पर यह दिया जाता है।

प्रसव के पश्चात् संग्रहणी होने पर भी इसका उपयोग किया जाता है। विदग्धाजीर्ण, पित्तज परिणामशूल और पित्तज अम्लपित्त रोग में भी जीरकाद्यरिष्ट अच्छा कार्य करता है।

इस अरिष्ट के सेवन से नवप्रसूता के स्तन्य की वृद्धि होती है। मन्दज्वर, हाथ पैरों में दाह, त्वचा में जलन आदि का निवारण होता है। इस अरिष्ट में कुछ मूत्रल गुण होने से मूत्र की शुद्धि होती है तथा त्वचा पर कण्डू, पिटिका, धब्बे आदि हों तो वे विकार निवृत्त होते हैं।

(औ.गु.ध.शा.)

(१९) चविकासव

विधि-चव्य २०० तोले, चित्रकमूल १०० तोले, हिंगुपत्री (डीकामाली), पुष्करमूल, बच, हाऊबेर, कचूर, कड़वे परवल की मूल, हरड़, बहेड़ा आँवला, अजवायन, कूड़े की छाल, इन्द्रायण के मूल,धनिया, रास्ना और दन्तीमूल ये १५ औषधियाँ ४०-४० तोले, बायविडङ्ग, नागरमोथा, मजीठ, देवदारु, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल ये ७ औषधियाँ २०-२० तोले लें। सबको ८१९२ तोले जल में मिलाकर क्वाथ करें। १०२४ तोले जल शेष रहने पर १२०० तोले गुड़, धाय के फूल ८० तोले, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची और नागकेशर ८-८ तोले, लौंग, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल और शीतलमिर्च ४-४ तोले का जौकूट मिला अमृतबान में भरें। मुखमुद्रा कर १ मास रहने दें। हम गुड़ १५ सेर के स्थान पर ७॥ सेर मिलाते हैं।

(ग. नि.)

मात्रा-१। से २॥ तोले, दिन में दो बार। समान जल मिलाकर देवें।

उपयोग-चविकासव गुल्म, प्रमेह प्रतिश्याय, क्षय, कास, अष्टीला, वातरक्त, उदररोग और अन्त्रवृद्धि आदि को नष्ट करता है।

इस आसव में मुख्य औषधियां पाचक, दीपक, सारक, उष्णवीर्य और कटु रसात्मक हैं। आमाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्ण में पचन व्यापार करने वाले अवयव समूहों में से अत्यन्त सूक्ष्म स्रोत के रूद्ध हो जाने से पाचक रस का स्राव सम्यक् नहीं होता। अन्तःस्राव के उदीरण के लिये वायु की पूर्ति और रक्त के दबाव की आवश्यकता होती है। ऐसी परिस्थिति में चविकासव के सेवन से वायु की प्रेरणा और रक्त की पूर्ति होती है और स्रोतोरोध नष्ट होकर पाचक पित्तस्राव की वृद्धि होती है। इस तरह इन दोनों अजीर्णों में इस आसव का उत्तम उपयोग होता है।

आमाजीर्ण में क्लेदक कफ की वृद्धि होती है। आमाशय में आहार जाने पर उसमें पाचक पित्त योग्य परिमाण में मिश्रित होना चाहिये, परन्तु क्लेदक कफ की अधिकता के हेतु से पाचक (आमाशय रस) का योग्य मात्रा में स्राव नहीं होता एवं आहार के साथ अच्छी तरह मिश्रण नहीं होता। इसके विपरीत क्लेदक कफ की मात्रा बढ़ जाती है, यही भोजन में मिल जाता है। प्रारम्भ में ऐसी परिस्थिति होने पर आगे-आगे के अन्य पाचक रस (यकृत्, पित्त, आंत्रिक रस, आग्नेय रस) भी निर्बल हो जाते हैं। योग्य रूप में इनका स्राव नहीं होता एवं (अन्न के साथ) मिश्रित भी नहीं होते। इस हेतु से आहार पचन नहीं होता, फिर सड़ने लगता है। इसका परिणाम समस्त शरीर पर होता है। उदर और कोष्ठ के बीच का स्थान जड़ हो जाता है। आलस्य, निद्रावृद्धि, निरुत्साह, हाथ-पैर टूटना, मुखमण्डल पर निस्तेजता, मुँह में बेस्वादुपन या मीठापन, मुंह में बार-बार जल भर जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस पर चविकासव अति उत्तम कार्य करता है।

वायु विशेषतः समान वायु की प्रेरणा की न्यूनता होने पर पाचक पित्त का स्राव योग्य मात्रा में और योग्य रूप से नहीं होता। पाचक पित्त थोड़ा निकलता है और पाचन करने का गुण भी न्यून होता है। आमाशय और अन्त्र की गति मन्द होने से आहार जितने समय में आगे बढ़ना चाहिये, उतने समय में नहीं बढ़ सकता। इस हेतु से उदर खिंचता है, मन्द-मन्द शूल चलता है, शौच शुद्धि नहीं होती, सर्वाङ्ग में मन्द-मन्द वेदना होती है तथा उदर में आफरा आ जाता है। इस प्रकार के विकार में चविकासव उत्तम उपयोगी होता है।

इसका प्रयोग वातज गुल्म, कफज गुल्म और वातकफज गुल्म पर अच्छा होता है, रक्तगुल्म और पित्तज गुल्म पर नहीं होता।

प्रमेहों के विकारों में हस्तिमेह, लालमेह की उत्पत्ति यकृत्त और अग्नयाशय की विकृति से होती है, विशेषतः पित्त का कार्य क्षीर्ण होने पर कोष्ठ में दोषोत्पत्ति और कफाधिक्य की प्राप्ति होती है। फिर आहार में से रस और रक्त की उत्पत्ति सम्यक् नहीं होती। इस हेतु से यह दोषदुष्टि मूत्र मार्ग से बाहर निकलती है। बार बार विशेष मात्रा में मूत्रोत्सर्ग होता है। मूत्र की मात्रा और संख्या दोनों बढ़ जाते हैं। मूत्र में मधु नहीं होता। किसी-किसी के लालातन्तुसह मूत्रोत्पत्ति होती हैं, मूत्र अज्ञानावस्था में हो जाता है या अनिच्छावश निकल जाता है। ऐसे विकार में चविकासव देना चाहिये।

इक्षुमेह के भीतर मर्यादा में मधु हो तथा अपचन अधिक, बार-बार दुष्ट डकार, कब्ज, क्षुधा न लगना चरपरे पदार्थों की अधिक इच्छा होना आदि लक्षण हों तो चविकासव उपयुक्त औषधि है।

प्रतिश्याय और प्रतिश्यायजनित कास, बार-बार छींकें आना, नाक बिल्कुल पका-सा हो जाना, श्वासोच्छवास में कुछ त्रास होना, नाक और कण्ठ में दर्द, समस्त शरीर में दर्द (अंगमर्द) यह एक प्रकार है। दूसरे प्रकार में नाक में से जल गिरते रहना और खाँसी में पतला कफ गिरना आदि लक्षण होते हैं। दोनों पर यह हितकारक है।

यकृतोदर और प्लीहोदर में अग्निमांद्य अधिक होने पर चविकासव दें एवं क्षय, अष्ठीला, वातरक्त और अन्त्रवृद्धि में भी अग्निमांद्य होने पर इसका उपयोग होता है। (औ.गु.ध.शा.)

(२०) रोहितारिष्ट

विधि–रोहिड़े की छाल ४०० तोले को जौकुट कर ४०९६ तोले जल में मिला चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छानकर शीतल होने पर ८०० तोले गुड़, धाय के फूल ६४ तोले, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, दालचीनी, इलायची, तेजपात, हरड़, बहेड़ा, आंवला इन ११ औषधियों को जौकुट चूर्ण ४-४ तोले मिलाकर अमृतबान में भरें। मुखमुद्राकर १ मास रखें, परिपक्व होने पर छान लेवें। (भै.र.)

मात्रा–१। से २॥ तोले समान जल के साथ दिन में २ बार दें।

उपयोग–रोहितारिष्ट प्लीहावृद्धि, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, ग्रहणी, अर्श, कामला, कुष्ठ, शोथ और अरुचि आदि को नष्ट करता है।

यह यकृत् और प्लीहावृद्धि में अत्यन्त उपयुक्त औषधि है। यह अरिष्ट जीर्ण अग्निमांद्य को दूरकर पाचक पित्तों के स्राव की वृद्धि कराता है। पाचक पित्तस्रावक सूक्ष्म कोषों को रक्त की मात्रा पूर्ण रूप से मिलती है, इस हेतु से पाचक पित्तस्राव योग्य होता है।

विषमज्वर जीर्ण होने पर प्लीहावृद्धि हो जाती है। उस पर यह रोहितारिष्ट उत्तम कार्य करता है।

मध्यम कोष्ठ (उदरगुहा) में रही हुई रसग्रन्थियों के आकार की वृद्धि होने पर उदर में गाँठ होने का भास होता है। यह वृद्धि क्षयरोग में होने पर सुवर्णकल्प का सेवन कराना चाहिये। परन्तु क्षय और उपदंश के अतिरिक्त कारणों से होने पर रोहितारिष्ट देना चाहिये।

गुल्म (पित्तज या वातज) में रोहितारिष्ट हितकर है। अष्ठीला में इसके सेवेन से रोगशमन में सहायता मिलती है एवं वातार्श में और पित्तार्श में भी यह उपयोगी है। (औ.गु.ध.शा.)

(२१) पुनर्नवासव

विधि–सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दारुहल्दी, गोखरू, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, अडूसे के पत्ते, एरण्ड की जड़, कुटकी, गजपीपल, पुनर्नवा, नीम की अन्तरछाल, गिलोय, सूखी मूली, धमासा, पटोलपत्र इन २० औषधियों को ४-४ तोले, धाय के फूल ६४ तोले, मुनक्का ८० तोले, मिश्री ४०० तोले और शहद २०० तोले लें। काष्ठादि औषधियों को जौकूट करें। फिर सबको २०४८ तोले जल में मिला अमृतबान में भर १ मास रहने दें। परिपक्व होने पर वस्त्र से छान लेवें। (भै.र.)

मात्रा–१। से २॥ तोले समान जल मिलाकर देवें।

उपयोग–पुनर्नवासव शोथ, उदररोग, प्लीहावृद्धि, अम्लपित्त, यकृद् वृद्धि, गुल्म, ज्वर आदि कष्टसाध्य रोगों को दूर करता है।

यह औषध उत्तम मूत्रल और हृद्य है। इस हेतु से हृदय, यकृत; प्लीहा और वृक्कों पर लाभ पहुँचाता है। इनमें से किसी के भी विकार से शोथ आने पर उसे दूर करता है एवं हृदय को सबल तथा यकृत् और वृक्कों को कार्य क्षम बनाता है। अतः सर्वांग शोथ पर यह आसव अतिकार्यकारी औषधि है।

शोथ तीव्र होने पर पुनर्नवासव के साथ सारिवासव मिलाना चाहिये; जिससे रक्तप्रसादन होकर शोथ की सत्वर निवृत्ति हो जाय। अन्तर्विद्रधि या अन्तर अवयवों के शोथ पर भी यह हितकर है।

यकृतवृद्धि; प्लीहावृद्धि, वातगुल्म और कफज गुल्म के विकार में यह आसव अच्छा सहायक होता है। (औ.गु.ध.शा.)

(२२) सारिवासव

विधि–सुगन्धवाली सफेद अनन्तमूल, नागरमोथा, लोध, बड़ की छाल, पीपल की छाल, कचूर, काली अनन्तमूल, पद्माख, नेत्रबाला, पाठा, आँवला, गिलोय, खस, सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, अजवायन और कुटकी ये १८ औषधियाँ। ४-४ तोले तथा छोटी इलायची, बड़ी इलायची, कूठ, सनाय और हरड़ १६-१६ तोले लें। सबको जौकुट कर जल २०४८ तोले, गुड़ १२०० तोले, धाय के फूल ४० तोले और मुनक्का २४० तोले मिलाकर अमृतबान में भर मुखमुद्रा कर एक मास रहने देवें। परिपक्व होने पर छान लें। इस आसव में हम सुगन्धवाली अनन्तमूल का परिमाण ४ गुना अर्थात् १६ तोले लेते हैं। (भै.र.)

मात्रा–१। से २॥ तोले तक द्विगुण जल मिलाकर देवें।

उपयोग–सारिवासव प्रमेह, प्रमेहजनित शराविका आदि पिड़िका उपदंश के उपद्रव, वातरक्त और भगन्दर आदि रोगों को नष्ट करता है।

यह आसव अत्यन्त शामक, मूत्रल, दाहशामक और उत्तम रसायन है। इसका कार्य वातवाहिनियों, वातवाहिनियों के मूल, वातवहा नाड़ीकेन्द्र, नाड़ीचक्र, मूत्रेन्द्रिय, जननेन्द्रिय और अन्तःस्रावक ग्रन्थियों पर शामक होता है। इस आसव का अधिक समय तक सेवन करने पर उपदंश का विष नष्ट हो जाता है। वातरक्त आदि विकार का शमन होता है। प्रमेहों में विशेषतः पित्तप्रमेह पर इसका कार्य अच्छा होता है।

स्मृतिनाश और बुद्धिमांद्य जन्म से न हो, किसी हेतु से बीच में उत्पन्न हुए हों, तो सारिवासव का अच्छा उपयोग होता है। यदि रक्त का

दबाव बढ़कर बार-बार चक्कर आता हो तो सर्पगन्धा के सेवन के साथ सारिवासव का सेवन कराना चाहिये।

मूत्राघात में मूत्रोत्पत्ति कम होती है। मूत्रकच्छ्र में मूत्रोत्पत्ति तो होती है परन्तु बस्ति के आगे के अवयवों में प्रतिबन्ध होने से मूत्र को बाहर निकालने में बाधा पहुँचती है। उन पर सारिवासव के सेवन से मूत्रोत्पत्ति अधिक होकर मूत्राघात और मूत्रकच्छ्र में लाभ पहुँचता है।

मूत्राश्मरी, मूत्रशर्करा और सिकता आदि पर यह आसव अच्छा कार्य करता है। इसके योग से अश्मरी का क्षरण होकर मूत्र के साथ अणु बाहर निकलते रहते हैं। अश्मरी पर सारिवासव के साथ तिलक्षार, केले या इमली का क्षार देवें। पौरुषग्रन्थि पर शोथ आने से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र में भी यह आसव लाभदायक है। वातभूयिष्ठ मूत्रकृच्छ्र पर चन्द्रप्रभा के साथ इसका सेवन कराना चाहिए।

पुराने सुजाक रोग से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र में यह आसव अति लाभ पहुँचाता है। इसके सेवन से पूय बाहर निकलता रहता है जिससे प्रदाह कम होकर मूत्रकच्छ्र दूर होता है। नये सुजाक में प्रमेहान्तक वटी (प्रथम विधि) के साथ सारिवासव देने से सत्वर लाभ पहुँचाता है।

ज्वरदाह या धातुक्षय से उत्पन्न दाह पर यह आसव उपयोगी है। उपदंश और सुजाक के पश्चात् जननेन्द्रिय में चिरकारी अनेक विकृतियां उत्पन्न होती हैं। स्त्रियों के लिये इन रोगों की जड़ जाना अति कठिन है। इस पर सारिवासव उत्तम औषधि है। इससे विषनिवृत्ति होने में अच्छी सहायता मिल जाती है।

अन्तःस्रावक ग्रन्थियों की विकृति से उत्पन्न विकार सारिवासव से शमन हो जाते हैं। मधुमेह में इस आसव का योगवाही रूप से उपयोग होता है। प्रमेहपिड़िका होने पर सारिवासव उपयुक्त औषधि है।

आमवात, वातरक्त और आढ्यवात में सारिवासव उपयोगी होता है। (औ.गु.ध.शा.)

(२३) भृंगराजासव

विधि-भांगरे का रस १०२४ तोले, गुड़ ८०० तोले और हरड ३२ तोले मिला अमृतबान में भरकर १५ दिन रहने देवें। फिर पीपल, जायफल, लोंग, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर प्रत्येक ८-८ तोले का जौकूट चूर्ण मिला १५ दिन रहने दें। बाद में छान लेवें।

मात्रा-१। से २॥ तोले तक। समान जल मिलाकर सेवन करें।

उपयोग-यह आसव धातुक्षय और उत्कट कास को दूर करता है। कृश मनुष्यों को पुष्ट बनाता है। यह आसव बलकारक, बाजीकरण और बन्ध्या स्त्रियों को संतानोत्पादक है।

इस आसव का उपयोग बद्धकोष्ठ में बहुत अच्छा होता है। बद्धकोष्ठ होने पर अन्त्र के भीतर मल का संचय अधिक होता है, मल सड़ता रहता है। फिर उसमें से दुर्गन्ध और सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति होती है। यह विष श्लेष्मिक कला से शोषित हो विविध व्याधियों की सृष्टि निर्माण में सहायक होता है। बार-बार बिना हेतु थकावट, पित्तविकार होकर बार-बार वमन, मलसंचय से अन्त्र चौड़े और शिथिल हो जाना, उनमें वायु भरा रहना, क्षुधा, तृषानाश, जिह्वा पर मैल जमना, श्वासोच्छ्वास और मुह में से दुर्गन्ध निकलना, बार-बार ज्वर होते रहना, शिरःशूल निद्रानाश, कमर मे दर्द होना, बार-बार ज्वर आते रहना, हृदय की शिथिलता, मानसिक अक्षमता, मूत्राघात, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, गलग्रन्थियों की वृद्धि, सर्वांग शोथ, मधुमेह, अन्य प्रकार के मेह, पाण्डुता, अन्त्रक्षय, कर्कस्फोट, आमवात, संधिवात, आढ्यवात, वातरक्त, धातुक्षय (धातुवृद्धि होने के बदले क्षीण होते जाना), क्षुद्र कुष्ठ, दन्तव्रण, नेत्ररोग, बाधिर्य, अकाल में वार्धक्य आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इनकी उत्पत्ति को यह भृंगराजासव रोक देता है। इसके योग से कोष्ठस्थ सेन्द्रिय विष निर्विष हो जाता है या हानि पहुंचाने के लिये समर्थ नहीं रहता। भृंगराजासव के साथ सिद्ध घृत या एरण्ड तैल के सदृश स्नेह विरेचन देने से विशेष लाभ होता है। (औ.गु.ध.शा.)

(२४) पर्पटाद्यरिष्ट

विधि-पित्तपापड़ा ४०० तोले को ४०९६ तोले जल में मिलाकर क्वाथ करें। १०२४ तोले जल शेष रहने पर उतार मसलकर छान लेवें। शीतल होने पर गुड़ ८०० तोले, धाय के फूल ६४ तोले, गिलोय, नागरमोथा, दारुहल्दी, छोटी कटेली, धमासा, चव्य, चित्रकमूल सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बायविडंग इन ११ औषधियों के ४-४ तोले का जौकूट चूर्ण मिला १ मास तक आसव को बन्द रखें फिर छान लेवें। (भै.र.)

मात्रा-१। से २॥ तोले। समान जल मिलाकर देवें।

उपयोग-पर्पटाद्यरिष्ट पाण्डु, गुल्म उदररोग, अष्ठीला, कामला, हलीमक, प्लीहावृद्धि, यकृत् का शोथ और विषमज्वर को नष्ट करता है।

इस अरिष्ट में मुख्य औषधि पर्पट है। उसमें शामक, हृद्य, पित्तशामक और वातवाहिनियों के क्षोभ को नष्ट करने के गुण है। अतः इस अरिष्ट में अम्लपित्त के विकार में पित्त की अम्लता और तीक्ष्णता को नष्ट करने का उत्तम गुण हैं। यह अरिष्ट पित्त की विषमता नष्टकर उसका साम्य प्रस्थापित करता है जिससे पाण्डु रोग में इसका अच्छा उपयोग होता है। विशेषतः पाण्डु रोग में हृदय की धड़कन और स्पन्दन की वृद्धि होने पर यह उपयोगी है। पाण्डुता रञ्जक पित्त के नष्ट होने से उत्पन्न होती है। रञ्जक पित्त का स्राव आमाशय, यकृत और प्लीहा में से होता है, उसे इस औषधि से सहायता मिल जाती है।

पित्तस्राव यकृत् में से अच्छा न होने या साक्षात् पित्तांश का रक्त में शोषण होने पर उत्पन्न होने वाले कामला और हलीमक में इसका उत्तम उपयोग होता है। इन पर विरेचन औषधि भी साथ में देनी चाहिये।

यकृद्वृद्धि में कामला या प्लीहावृद्धि में शरीर पीला बन जाने पर पर्पटाद्यरिष्ट का उपयोग होता है। यकृत् और प्लीहा की वृद्धि से शोथ आने या अन्य कारणों से शोथ होने पर भी यह प्रयोजित होता है।

विषमज्वर की तीव्रावस्था में तिक्त रसात्मक औषधि, क्विनाइन आदि औषधियों का उपयोग होने पर लाभ हो जाता है। परन्तु तीव्रता शमन होने पर और जीर्णावस्था की प्राप्ति होने पर इन औषधियों का अधिक उपयोग नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में तीव्र कड़वी औषधि का उपयोग किया जाय तो घबराहट, ज्वर, पाण्डुता, विशेषतः पीली और चिकनी वमन, अन्न पर इच्छा न होना आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्था में विष धातुओं में लीन रहता है। इस लीन हुए विष को नष्टकर धातु साम्य प्रस्थापित करने का कार्य इस औषधि द्वारा होता है।

पारद के अधिक मात्रा में सेवन से उत्पन्न विकारों पर यह अरिष्ट उपयोगी है। जिनसे पारद की तीक्ष्णता और उष्णता सहन नहीं होती उनके लिये इसका अच्छा उपयोग है। (औ.गु.ध.शा.)

(२५) अरविन्दासव

विधि–सफेद कमल, खस, गम्भारी की छाल, नीलकमल, मजीठ, छोटी इलायची, खरेंटीमूल, जटामांसी, नागरमोथा, काली अनन्तमूल, हरड़, बहेड़ा, बच, आंवला, कचूर, काली निसोत, नील के बीज, पटोल पत्र, पित्तपापड़ा, अर्जुन की छाल, मुलहठी, महुआ के फूल, मुरा (अभाव में जटामांसी) इन २३ औषधियों का ४-४ तोले जौकूट चूर्ण, मुनक्का ८० तोले, धाय के फूल ६४ तोले, जल २०४८ तोले, शक्कर ४०० तोले और शहद २०० तोले लें। सबको मिला अमृतबान में भरें १ मास रहने देवें, परिपक्व होने पर छान लेवें। (भै.र.)

मात्रा–बालकों को ३ माशे से ६ माशे और बड़े मनुष्यों को १। से २॥ तोले दिन में २ बार जल के साथ देवें।

उपयोग–यह आसव बालकों का अनेक रोगों का नाशक है; बच्चों को पुष्ट बनाता है, अग्नि को बढ़ाता है तथा गृहदोष को दूर करता है।

यह आसव बच्चों के रोगों पर उपयोगी है, ऐसा गुणपाठ है। छोटे बच्चों को होने वाले अस्थिवक्रता रोगपर इस औषधि का अच्छा उपयोग होता है। इस रोग में अस्थियों में विकार होता है। वे नरम बन जाती हैं जिससे बालकों के हाथ, पैर मुड़ जाते हैं, पतले हो जाते हैं और उन पर सलवट हो जाते हैं, नितम्ब प्रदेश बैठ जाता है। इस विकार में जीवनीय द्रव्यों की कमी होती है फिर धातुपोषण सम्यक् नहीं होता। इस हेतु से अन्तर अवयवों को भी योग्य पोषण नहीं मिलता; उनका व्यापार ठीक नहीं चलता। खांसी, अपचन, पतले दस्त, उदर में अफारा, सारे दिन रोते ही रहना आदि लक्षण होते हैं। इस विकार पर यह आसव जीवनीय द्रव्य की पूर्तिकर अग्निबल बढ़ाने का कार्य करता है।

सुजाक रोग के पश्चात् शेष विष धातुओं में लीन रह जाता है; जिससे मूत्र में बार-बार जलन, मूत्र गाढ़ा हो जाना, मूत्र में पूय या पिष्ट होना आदि लक्षण होने पर अरविन्दासव लाभदायक है। स्त्रियों के प्रदर विशेषतः रक्त प्रदर में यह उपयुक्त औषधि है। (औ.गु.ध.शा.)

(२६) कर्पूरासव

प्रथम विधि–उत्तम पुरानी देशी शराब अथवा रेक्टीफाइड स्पिरिट १। सेर, कपूर ८ तोले, छोटी इलायची, नागरमोथा, सोंठ, अजवायन और बायविडंग प्रत्येक १-१ तोला लेकर चूर्ण करके मिला दें। अमृतबान अथवा काँच की बोतलों में १ मास बन्द रखें, छानकर भर लेवें। (भै.र.)

मात्रा–१० से २० बून्द। बताशे में अथवा मिश्री के साथ दें। कॉलेरा में आध-आध घण्टे पर। शेष रोगों में दिन में ३ बार।

उपयोग–यह विसूचिका (Cholera) की परम औषधि है। इसका प्रयोग विसूचिका की प्रारम्भावस्था से अन्तिमावस्था तक निर्भयता पूर्वक होत है यदि प्रथमावस्था में ही इसे प्रयुक्त किया जाय तो रोगियों को जीवन लाभ मिल जाता है। किन्तु जब देह अति शिथिल हो जाती है और रक्त में से जल का अति ह्रास हो जाता है, तब रक्त में लवण जल के प्रदान और हृदयपौष्टिक औषधि के साथ इसका प्रयोग किया जाय तो लाभ होने की आशा रख सकते हैं। इसके अलावा अतिसार, वमन, दांत के दर्द आदि को भी यह दूर करता है।

दूसरी विधि–रेक्टीफाइड स्पिरिट १२ ओंस, कर्पूर २ औंस और ऑइल पीपरमेंट २ औंस लेवें। पहिले स्पिरिट में कपूर का चूर्ण मिलाकर रख दें। २-४ घण्टे में कपूर गल जाने पर पीपरमेंट का तैल डाल, अच्छी रीति से मिला, मजबूत डाट वाली शीशियों में भर लें।

मात्रा–३ से १० बून्द। बताशे अथवा मिश्री के साथ दें। कॉलेरा में १-१ घण्टे के बाद देते रहें। अतिसार, पेचिश, वमन आदि रोगों में दिन में २ से ४ बार दें। दांत के दर्द में फोहा रखें।

उपयोग–यह अर्क हैजा, अतिसार, वमन, दांत और डाढ़ का दर्द, सबको दूर करता है। यह कॉलेरा में आशुफलप्रद है। कॉलेरा के अनेक रोगियों के प्राण इस अर्क ने बचाये हैं।

सूचना–पेशाब बन्द हो तो मूत्रेन्द्रिय में कपूर रखें। कलमीशोरा और केसूला को जल में पीसकर नाभि के नीचे भाग पर लेप करें। सौंफ का अर्क मिला जल १-१ चम्मच पिलाते रहें या बर्फ या जल १-१ चम्मच पिलावें। ज्यादा जल पिलाने से वमन नहीं रुकेगी। दस्त बन्द होने पर भी वमन न रुके तो २-२ तोले घी या तैल २-३ बार पिलावें।

(२७) देवदार्वाद्यरिष्ट

विधि–देवदारु २०० तोले, अडूसे के पत्ते ८० तोले, मंजिष्ठा, दन्तीमूल, इन्द्रजौ तगर, दारुहल्दी, हल्दी, रास्ना, बायविडंग, नागरमोथा, सिरस की छाल, खैरछाल, अर्जुनछाल, प्रत्येक ४०-४० तोले, गिलोय, चित्रकमूल, अजवायन, रक्तचंदन, कुटकी, कूड़े की छाल प्रत्येक ३२-३२ तोले लें। सबको जौ कूटकर जल ८१९२ तोले मिलाकर क्वाथ करें। अष्टमांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। शीतल होने पर शहद १२०० तोले, धाय के फूल ६४ तोले, दालचीनी, तेजपात, इलायची तीनों मिलाकर १६ तोले, सोंठ, मिर्च, पीपल तीनों मिलाकर ८ तोले; नागकेशर ८ तोले और प्रियंगु १६ तोले लेकर मोटा-मोटा चूर्णकर मिला अमृतबान में भर मुखमुद्रा करके १ मास रख दें, फिर छान लें। हम शहद १५ सेर के स्थान में ११। सेर मिलाते हैं। (शा.सं.)

मात्रा–१। से २॥ तोले दिन में ३ बार। समभाग निवाया जल मिलाकर भोजन से पिलावें।

उपयोग–देवदार्वाद्यारिष्ट के सेवन से दुस्तर वातज प्रमेह, पूयमेह, उपदंश आदि जन्य मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, संग्रहणी, अर्श, प्रदर, गर्भाशय दोष, कण्डू, कुष्ठ इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। यह अरिष्ठ रक्तशोधक है। जीर्ण उपदंश और सुजाक के उपद्रवों को दूर करता है। मलशुद्धि करता है और पाचन क्रिया को सुधारता है।

यह अरिष्ट स्त्रियों के गर्भाशय विकार पर अधिक हितावह है। कुमारियों को इसका सेवन नहीं कराना चाहिये। तरुण स्त्रियों को सगर्भावस्था में या प्रसव के पश्चात् यह उपयुक्त होता है। पीड़ितार्तव, नष्टार्तव, अनार्तव इन रोगों में यह हितावह है। प्रसव के पश्चात् मक्कलशूल में इसका उत्तम उपयोग होता है। प्रसूता के ज्वर को भी दूर करता है। ज्वर के साथ गर्भाशय में से स्राव बन्द हो गया हो, अथवा थोड़ा-थोड़ा स्राव दुर्गन्ध रहित होता हो, गर्भाशय के चारों ओर वेदना हो तो उसकी प्रारम्भिकावस्था में देवदार्वाद्यरिष्ट देना चाहिये। इस अवस्था में स्रोतेवारोध हो, तो इसका उपयोग करें। वातज या सान्निपातिक लक्षण होने पर दशमूलारिष्ट देना चाहिये।

जीर्ण सूतिका रोग में इसका उपयोग होता है। प्रसव के पश्चात १० दिन में ज्वर आने और सूतिका रोग के लक्षण उपस्थित होकर अधिक दिनों तक रह जाये तो देवदार्वाद्यरिष्ट देना चाहिये। गर्भाशय अशक्त और शिथिल होने से उत्पन्न सूतिका रोग में यह अधिक उपयोगी है। कीटाणुजन्य विषप्रकोप और व्रण आदि में उत्पन्न तीव्र विकारों में दशमूलारिष्ट हितकारक है। (औ.गु.ध.शा.)

(२८) रक्तशोधकारिष्ट

विधि–अनन्तमूल ४० तोले, मुनक्का ४० तोले, उशबा, कचनार की छाल, खेर की छाल और चोबचीनी २०-२० तोले, छोटी कटेली, इन्द्रायण की जड़, सिरस की छाल, मंजिष्ठा, चिरायता, पित्तपापड़ा, गिलोय, मुण्डी, सरफोंका, उन्नाव, शतावरी, बबूल की छाल, जवासे की जड़, देवदारु तथा नीम और बकायन की अन्तरछाल १०-१० तोले लेवें। सबको मिला जौकूटकर २५६० तोले जल मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार मलकर छान लें। शीतल होने पर गुड़ २॥ सेर, शहद १। सेर, धाय के फूल २४ तोले, रक्तचन्दन का चूर्ण १२ तोले तथा पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर २-२ तोले मिला मुखमुद्रा करके १ मास रख देवें फिर छान लेवें।

मात्रा–२ से ४ तोले, दिन में दो बार समान जल से।

उपयोग–यह अरिष्ट रक्त में लीन कीटाणु और विष को जलाकर रक्त को शुद्ध बनाता है। उपदंश के उप्रदव लाल, काले धब्बे, सन्धिवात, कुष्ठ वातरक्त, रक्तविकार, फोड़ा-फन्सी आदि को १ मास में दूर करता है।

(२९) द्राक्षारिष्ट

योग–मुनक्का २॥ कि. ग्रा., शीतल चीनी २५० ग्रा. तेजपात, दालचीनी, बड़ी इलायची, नागकेसर, लवंग, जायफल, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, सम्भालू के बीज प्रत्येक २५०-२५० ग्राम, धाय के फूल २१-१/२ कि. बम्बूल छाल १-१/२ कि. शक्कर ६५ कि. महुआ ५ कि.।

विधि–सर्वप्रथम मुनक्का को साफ पानी डालकर साफ कर लें फिर ६ गुने पानी याने १८० कि. पानी में मुनक्का, महुआ और बबूल की छाल को उबालें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतारकर ठण्डा कर लें।

जिस ड्रम में अरिष्ट डालना हो उसमें कपूर अगर आदि से बनी धूप लगा दें फिर ड्रम में डालकर ६५ कि. शक्कर डालकर हिताले रहें। शक्कर मिल जाने पर शेष औषधियों का प्रक्षेप, धाय के फूल सहित डालकर ५ दिन के लिए मुखमुद्रा कर दें याने कपड़ा मिट्टी से ढोल का मुंह बन्द कर दें। अगर जरूरत समझें तो ४५ दिन से पूर्व भी देख सकते है।

(३०) महाद्राक्षासव

विधि–मुनक्का १। सेर, मिश्री ५ सेर, झरबेरी की जड़ की छाल ५० तोले, धायके फूल २५ तोले, चिकनी सुपारी, लौंग, जावित्री, जायफल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागकेशर, रूमीमस्तंगी, कमलकन्द, अकलकरा और मीठाकूठ ये १५ औषधियां १०-१० तोले लें। सबको ४ गुने (१६। सेर) जल में मिलाकर अमृतबान में भरें। मुँह पर कपड़मिट्टी करके १४ दिन रहने दें। शीतकाल में २-४ रोज अधिक रखना पड़ेगा। फिर परीक्षा करके निकालें। यदि कच्चा हो तो पुनः मुखमुद्रा करके ३ दिन रहने दें। अपक्व आसव को निकाल लिया जायगा ये बहुत खट्टा बन जायगा। पश्चात् वारुणीयन्त्र या नलिकायन्त्र में डालकर अर्क लेवें। फिर निकले हुए अर्क में से दूसरी बार अर्क निकालें और इस समय २ तोले केशर और ३ माशे कस्तूरी मिलाकर कपड़े की पोटली में बाँधकर यन्त्र के मुँह पर बाहर लटका दें।

सूचना–शराब निकालने के पुराने घड़े में पाक जल्दी होता है, अमृतबान और नये घड़े में लगभग १ मास लग जाता है।

मात्रा–१ से २ तोले तक, दिन में ३ बार लेवें। ऊपर से स्निग्ध मधुर पदार्थ का भोजन करना चाहिये।

उपयोग–यह आसव कास, श्वास, रायजक्ष्मा, निर्बलता, निद्रानाश, मानसिक भ्रम, अरुचि, मलावरोध, मन्दाग्नि, शिरदर्द आदि रोगों को दूर करता है तथा बल वीर्य की वृद्धिकर बलिपलित का नाश करता है। अधिक मात्रा होने पर नशा लाता है, अतः मात्रा कम देवें।

(३१) अंगूरासव

विधि–मीठे अंगूरों का स्वरस १०० कि., शर्करा ५० कि., धाय के फूल ५ कि., चिकनी सुपारी २५० ग्राम., लौंग, जावित्री, दालचीनी, तेजपात, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, नागकेशर, अकरकरा, कमलकन्द, कूठमीठा और बबूल की छाल ये बारह औषधियाँ २००-२०० ग्राम लेवें। इन सबको यवकूट करके यथाविधि संधान के लिए अमृतबान में भरकर मुखबन्द करके १५ दिन रहने देवें। फिर परिपक्व होने पर परीक्षा करके निकाल कर छान कर बोतल मे संवेष्टित कर देवें।

मात्रा–इस २५ ग्राम से ४० ग्राम तक दिन में २ या ३ बार लेवें।

उपयोग–यह सुमधुर पेय है। यह बल और वीर्य को बढ़ाता है। कास, श्वास, क्षय, अग्निमांद्य, विबन्ध, शिरःशूल, भ्रम तथा अनिद्रा को दूर करता है। मन को प्रसन्न करके शरीर को स्वस्थ और बलवान् बनाता है।

(३२) मृद्विकासव

विधि–मुनक्का ५ सेर, शक्कर २० सेर, छोटे बेर के मूल की छाल २॥ सेर, महुआ फूल १ सेर, सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, जायफल, जावित्री, लोंग, अकरकरा, कूठ, चिकनी सुपारी, नागकेशर ये प्रत्येक जौकूट की हुई आधा-आधा सेर, जल ६५ सेर को एकत्र लकड़ी के ढोल में भर दें। ढोल का मुंह बन्दकर १५-२० दिन रहने दें। आसव पक जाने पर निकाल छानकर दूसरे ढोल या शीशियों में भर दें। (वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

सूचना–यह आसव पीछे वर्णित द्राक्षासव या द्राक्षारिष्ट की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली व गुणप्रद बनता है। उनकी अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट व रुचिकर बनता है।

मात्रा–१। से २॥ तोले तक। भोजन के बाद, दोनों समय समान जल मिलाकर लें।

उपयोग–इसके सेवन से श्वास, कास, उरःक्षत, धातुक्षय, रक्ताल्पता, किसी रोग के बाद आई निर्बलता, मंदाग्नि, शारीरिक व मानसिक श्रम को दूर करता है। इससे शान्त निद्रा आती है। थकावट दूर होती है। मलावरोध दूर हाता है। यह सर्वोपयोगी स्वादिष्ट व रुचिकर पेय है।

(३३) वासारिष्ट

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह के द्वितीय भाग षष्टम संस्करण पृ. २२७ में लिखा गया वासकासव ही वासारिष्ट है।

ज्ञातव्य (नोट)-आसव अरिष्टों में जितनी जल की मात्रा है उससे द्विगुण ही लेनी चाहिए। "द्रवद्वैगुण्यतो विधानात्" के सिद्धान्त के अनुसार क्योंकि, शास्त्रकारों का विधान है कि, क्वाथ आदि के निर्माण के लिए जल की कही हुई मात्रा से दूनी लेवें। यथा - "क्वाथ्यादष्टगुणं वारि पादस्थं स्यात् चतुर्गुणम्" तो चतुर्थांश में शेष, चौगुनी जब ही रहता है, जब सौलह गुना लेते हैं। इसी सिद्धान्त को 'भैषज्य रत्नावलीकर' श्री विनोदीलाल सेन ने भी अपनी टीका में उद्धृत करके अपनाया है तथा रसतन्त्रसार के कषाय प्रकरण में भी उल्लेख कर दिया है। इसी सिद्धान्त से आसव निर्मल और पारदर्शक बनते हैं। (वैद्य स्वरूपनारायण)

अर्क प्रकरण

(१) चन्दनादि अर्क

विधि–सफेद चन्दन १० तोले, लाल चन्दन, नेत्रवाला, खस, कमल के पुष्प, गुलाब के पुष्प, नागरमोथा, गिलोय, नीम की अन्तरछाल, धनिया, सौंफ, छोटी इलायची, शीतल मिर्च, पित्तपापड़ा, दारुहल्दी, देवदारु, धमासा की जड़, गन्ने की जड़, कांस की जड़, दर्भ की जड़, कुश की जड़, गोखरू, सहदेवी, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, जटामांसी, गोरखमुण्डी, गावजवां, बनपशा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पोस्तडोडे, शतावर, काँच के बीज की गिरी और तालमखाना इन ३५ औषधियों को २-२ तोले लें। सबको जौकूट करके ८ सेर जल में भिगों दें। २४ घण्टे बाद नलिकायन्त्र में भरे। फिर ६ माशे केशर और १ तोला कपूर को एक पतले कपड़े की पोटली में बाँध यन्त्र के मुँह पर बाहर लटकाकर मन्दाग्नि से अर्क निकाल लेवें।

मात्रा–२॥ से ५ तोले, दिन में ३ बार पिलावें।

उपयोग–यह अर्क पेशाब में जलन, पेशाब बूंद-बूंद गिरना, पेशाब में रक्त आना, वीर्य की उष्णता, पित्तज प्रमेह, मूत्रकृच्छ, मूत्राशय में दाह, जीर्णज्वर, क्षय रोग में पेशाब का पीलापन एवं सूर्य के ताप में भ्रमण से होने वाले दाह इत्यादि को दूर करता है। रक्त में संचित विष को मूत्र द्वारा बाहर निकालकर प्रकृति को स्वस्थ बनाता है।

(२) बालबन्धु अर्क

विधि–कलीचूना २ तोले, मिश्री ४ तोले ओष जल ३० तोले मिलाकर घोल दें। चूना नीचे बैठ जाने पर साफ जल को नितार लें। (धन्वन्तरि)

मात्रा–३ मास के बच्चे को ५ से १० बूंद। १ वर्ष तक २० से २५ बूंद। ३ वर्ष तक ४० से ५० बूंद। दूध मिलाकर पिलावें।

उपयोग–इस अर्क के सेवन से आमाशय रस की विकृति से उत्पन्न बालकों के अपचन, दूध फेंकना, उदरपीड़ा, जुकाम, मन्दाग्नि, कब्ज आदि रोग दूर होकर वे नीरोग और बलवान बन जाते हैं।

(३) नींबू द्राव

विधि–नौसादर, कलमीशोरा, सोहागे का फूला, फिटकरी का फूला, सज्जीखार और जवाखार २०-२० तोले मिला कूटकर चूर्ण करें। फिर नींबू का रस २ सेर मिला अमृतबान में भर मुखमुद्राकर एक मास रखें, पश्चात् छानकर बोतल में भर लें। (र.त.)

मात्रा–५ से १० बूंद मिश्री में मिलाकर पिलावें, अथवा २॥ तोले जल में मिलाकर पिलावें।

उपयोग–यह द्राव गुल्मरोग को थोड़े ही दिनों में दूर करता है। प्लीहा वृद्धि यकृद् विकार, उदररोग और शूल को भी नष्ट करता है।

(४) उदरामृत योग

विधि–घीकुंवार का रस, मूली का रस, नींबू का रस, २०-२० तोले, अदरक का रस ५ तोले, सोहागे का फूला, नौसादर, पंचलवण २-२ तोले, चित्रकमूल, पीपलामूल, भुनी हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, भुना जीरा, अजवायन, लोहभस्म प्रत्येक १-१ तोला लें। फिर गुड़ १५ तोले डाल सबको अमृतबान में भरकर १५ दिन धूप में रखें। बाद में छानकर बोतल में भरें।

मात्रा–६ माशे से १। तोला, दिन में २ बार भोजन के बाद २॥ तोले जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग–यह अर्क उदर रोग, प्लीहा, यकृददोष, पाण्डु, स्त्रियों के गर्भाशय के दोष, मदाग्नि, कब्ज और शूल आदि रोगों को थोड़े ही दिनों में दूर करता है।

(५) लघु शङ्खद्राव

विधि–नौसादर, कलमीशोरा, फिटकरी और जवाखार, चारों को समभाग लेकर नींबू रस में खरल करें! फिर गेहूँ के आटे की दो मोटी रोटी बना, एक के ऊपर कल्क रखकर उसकी किनारी मोड़ दें। ऊपर दूसरी रोटी ढक सन्धि को जल लगाकर बन्द करें। फिर तवे पर दोनों ओर पकाकर लाल करें। पश्चात् हिलाकर देखें। जल हिलने पर रोटी में एक और सलाई से छेदकर चीनी के प्याले मे सम्हालपूर्वक निकाल दें।

मात्रा–५ से १० बूंद तक। २ से ५ तोले जल मिलाकर दिन में २ बार पिलावें यह शंखद्राव थोड़े दिनों तक अच्छा रहता है।

उपयोग–यह द्राव गुल्म, अफारा, शूल, यकृद् दोष, प्लीहा, अश्मरी इत्यादि को दूर करने में अति लाभदायक है। पथरी को गलाकर निकाल देता है और तकलीफ भी नहीं होती।

(६) शंखद्राव

विधि–सैंधानमक, कालानमक, बिड़नमक, समुद्रनमक ५-५ तोले साँभर नमक १८ तोले, सज्जीखार १९ तोले, कलमीशोरा २० तोले, फिटकरी ९ तोले, नौसादर ४॥ तोले, कसीस २॥ तोले और सोहागा २॥ तोले सबको एकत्रकर चौगुने नींबू के रस में मिला, चीनी मिट्टी के तेजाब रखने लायक पात्र में डालकर धूप में रख दें और प्रतिदिन लकड़ी से चला दिया करें। ७ दिन के पश्चात् मिट्टी या चीनी मिट्टी के वारूणी-यन्त्र से अर्क निकाल लें।

मात्रा–१० से ३० बूंद, दिन में २ बार। २॥ तोले जल के साथ, भोजन के बाद दें।

उपयोग–यह द्राव गुल्म, शूल, उदररोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्, अग्निमाँद्य, संग्रहणी आदि रोगों को दूर करता है।

शंखद्राव दीपन-पाचन (आमाशय पौष्टिक) यकृद्बल्य, उदरशोधन, कृमिघ्न और अश्मरीनाशक है। यह उग्र तेजाब होने से इसका सेवन सर्वदा कम मात्रा में करना चाहिये। यह बहुधा लवणाम्ल (Acid Hydro-Chloric) और सोरकाम्ल (Acid Nitric) मिश्रण (जलयुक्त) के समान बन जाता है। इसका योग एसिड नाइट्रोम्युरेटिक डिल० के नाम से केमिस्टों के यहाँ मिलता है।

जब आमाशय के पित्त की उत्पत्ति योग्य नहीं होती हो, बहुत कम स्राव होता हो अथवा पित्त कम तेज हो, तब इस शंखद्राव का उपयोग हितावह है। भारी भोजन, अपथ्य सेवन या दूषित भोजन से अपचन होकर दुर्गन्ध युक्त आहारमय वमन होती हो, दूषित डकार आती हो, उदरशूल होता हो, ऐसी अवस्था में २-२ घण्टे पर २-३ बार शंखद्राव का प्रयोग करने पर उदर विकार निवृत्त हो जाते हैं।

उदर में वातप्रधान गुल्म जो वातवर्द्धक पदार्थ का सेवन करने पर उत्पन्न होता है और वायु शमन होने पर दूर हो जाता हो उस विकार को यह नष्ट करता है। अर्थात् पचनसंस्थान को सबल बनाकर गूल्मोत्पत्ति को रोक देता है। इस विकार में अफारा, मलावरोध अपानवायु का अवरोध और अन्न पचन हो जाने पर उदर का खिंचना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस तरह कफज गुल्म होने पर श्लैष्मिक कला पर मेद के सदृश मुलायम बड़ी गाँठ भासती है। उबाक, अरुचि, कास, हाथ-पैर टूटना, रोंगटे खड़े होना और अंग में भारीपनाआदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इसकी प्रथमावस्था में यदि शंखद्राव का सेवन १-२ मास तक कराया जाय तो गुल्म गल जाता है। अधिक शराब पीने का व्यसन, रक्तवर्द्धक औषधि का अतियोग अथवा कीटाणु विषप्रकोप से यकृत् में रक्तसंग्रह हो जाता है। फिर यकृत् में भारीपन, अन्त्र की पचन क्रिया और मूत्र में विकृति आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं, उस पर शंखद्राव दिन में ३ बार थोड़े दिनों तक देते रहने से लाभ हो जाता है। इस तरह ज्वरादि रोगों में वृद्धि हो जाने पर भी शंखद्राव का सेवन कराया जाता है।

वक्तव्य–यह द्राव उग्र होने से छोटे बालकों को नहीं देना चाहिये। बालकों को कुमार्यासव या गोमूत्र सदृश सौम्य औषधि देनी चाहिये।

पित्त नलिका में प्रदाह होकर कामला उत्पन्न हुआ हो, पित्तशय या पित्त नलिका में शूल न चलता हो तो शंखद्राव का सेवन ३ दिन तक दिन में ३ बार कराते रहने और भोजन मे मट्ठा और भात देने से कामला दूर हो जाता है।

वातज अश्मरी अर्थात ऑक्जलिक एसिड (Oxalic Acid) के क्षार से बनी हुई अश्मरी विशेष दु:खदायी और कठोर होती है। इसकी रचना वृक्क में होने पर कुछ-कुछ दिनों के बाद गविनी में अणु का प्रवेश होने पर तीव्रशूल उत्पन्न होता है। उसकी प्रथमावस्था में शर्करा या सिकता को दूर करने और उत्पत्ति को रोकने में शंखद्राव हितावह है। यदि मूत्राशय में अश्मरी बनती हो या सिकता से मार्गावरोध होने पर मूत्रकृच्छ् होता हो तो उसका भेदन यह सरलता से कर देता है।

सूचना–(१) अश्मरी और वृक्कशूल के रोगी को तमाखू का व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये। अश्मरी के रोगी को चाहिये कि प्रवाल, मुक्तादि चूने प्रधान औषधि का सेवन न करें।

(२) आमाशय के पित्त में उग्रता आई हो, छाती में दाह रहता हो तो इस द्राव का सेवन नहीं करना चाहिये।

अन्त्र में रस शोषण क्रिया शिथिल होने से पतले दस्त होते रहते हों अथवा सूक्ष्म उदर कृमि के प्रकोप से अपचन होकर पतले दस्त होते हों और त्वचापर कण्डू होती हो तो शंखद्राव का सेवन कुछ दिनों तक करने पर पचन क्रिया सुधरकर अतिसार और अपचन शमन हो जाते हैं।

(३) यह एक प्रकार का तेजाब है। सम्हाल कर उपयोग करें। केवल तेजाब पिलाने से दाँतों में लगेगा तो दाँत गिर जायेंगे। अत: जल मिलाकर उपयोग करना चाहिये। इस अर्क को धातु के यन्त्र में नहीं निकालना चाहिए।

(७) जम्भीरी द्राव

विधि–जम्भीरी नींबू का रस २॥ सेर, भुनी हींग २ तोले, अजवायन, सोंठ , पीपल, मिर्च, बायविडंग, लौंग, शोरा और छोटी हरड़ ५-५ तोले, सेंधानमक २५ तोले और राई १० तोले लें। सबको कूट जम्भीरी के रस में डालकर १ मास रखें। फिर छानकर काम में लें। (आ.भि.)

मात्रा–१। से २॥ तोले, भोजन के १॥-२ घण्टे बाद, दिन में २ बार। जल मिलाकर पीवें। अधिक वेदना होती हो तो शंख भस्म १ माशा मिलाकर पिलावें।

उपयोग–इस द्राव के सेवन से यकृत्, प्लीहा, गुल्म, शूल, अफारा, अजीर्ण और मलावरोध दूर होता है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

जम्भीरी द्राव सौम्य और उत्तम दीपन-पाचन, शूलहर और कृमिघ्न है। आमाशय रसस्राव के ह्रास से उत्पन्न अग्निमान्द्य, अपचन, उदरशूल, आफरा और मलावरोध को दूर करने के लिये उपयोगी है। नूतन अपचन हुआ हो तो १-२ बार सेवन कराने से ही लाभ हो जाता है। किन्तु दीर्घकाल से अग्निमांद्य, अजीर्ण रोग हुआ हो तो दिन में २ या ३ बार कुछ दिनों तक सेवन कराते रहना चाहिये। यदि यकृद्वद्धि, यकृत् में रक्त संग्रह, प्लीहावृद्धि अथवा उदर में वातप्रधान गुल्म या कफज गुल्म हो तो उसे भी यह नष्ट कर देता है। इन रोगों पर दिन में ३ बार शंखभस्म या अन्य पौष्टिक औषधि (मण्डूभस्म, आरोग्यवर्द्धिनी या अन्य) के साथ एकाध मास तक पथ्यापालनसह सेवन कराना चाहिये।

सूचना–आमाशय में व्रण, आमाशयविद्रधि और अम्लपित्त प्रधान रोगों पर इस द्राव का उपयोग नहीं करना चाहिये।

(८) गाजर का अर्क

विधि–गाजर १ सेर, गावजवां १० तोले; गावजवां के फूल, सफेद चन्दन, तोदरी लाल और बहमन सफेद ५-५ तोले लें। सबको ८ सेर जल में मिलाकर नलिकायन्त्र द्वारा ४ बोतल अर्क खींच लें।

मात्रा–१/२ से १ छटांक, दिन में ३ बार पिलावें।

उपयोग–यह अर्क हृदय की धड़कन, शारीरिक निर्बलता और मंदाग्नि को दूर करता है। वातवाहिनियों को सबल बनाता है। मूत्र को साफ लाता है एवं अन्नजा और यमला हिक्का, श्वास, अर्श, शोथ, अतिसार और कामला रोगियों के लिये हितकर है। सगर्भा स्त्री को इस अर्क का सेवन नहीं करना चाहिये। कारण गाजर गर्भाशय को उत्तेजित करता है।

(९) किरातादि अर्क

विधि–चिरायता, कुटकी, नीम की अन्तरछाल, सोंठ, हरड़, धमासा, पटोलपत्र, लालचन्दन, नागरमोथा और खस इन १० औषधियों को समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। फिर ८ गुने जल में रात्रि को भिगोकर सुबह नलिकायन्त्र द्वारा अर्क खींच लें।

मात्रा–२॥-२॥ तोले अर्क ३-३ घण्टे बाद ३ बार पिलावें।

उपयोग–यह अर्क विषमज्वर-सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक, चातुर्थिक आदि चढ़े हुए ताप में दिया जाता है। प्रवालपिष्टी के साथ देने से ज्वर के विष को जल्दी जला देता है और तत्काल वेग का शमन करके ताप को उतार देता है। प्राय: एक ही दिन में दोष का पचन करा देता है, जिससे पारी छूट जाती है। इस औषधि से रोगी के हृदय आदि अवयवों को हानि नहीं पहुँचती एवं निर्बलता नहीं आती। इनके अतिरिक्त अन्य ज्वरों में भी यह लाभ पहुँचाता है।

(१०) मेदोहर अर्क

विधि–गोमूत्र को मिट्टी के नलिका-यन्त्र में भरकर अर्क खींच लें। अर्क निकलने के मुंह पर १० बोतल अर्क के लिये ३ माशे केशर को पतले कपड़े की शिथिल पोटली में बांध कर रखें। जिससे अर्क में केशर मिश्रित हो जाये। (स्व. वैद्य श्री बंशीधरजी आयुर्वेदाचार्य)

मात्रा–१ से २ औंस दिन में २ या ३ बार, १-१ तोला शहद मिलाकर लेवें।

उपयोग–यह अर्क मेदवृद्धि, दुर्गन्धयुक्त पसीना आना, हृदय में पीड़ा, श्वास बढ़ जाना, बेचैनी, प्रमेह आदि दोषों को दूर करता है। मेदवृद्धि में अभ्रक प्रधान लक्ष्मीविलास रस या चन्द्रप्रभावटी के साथ इस अर्क का सेवन करने से सत्वर लाभ होता है।

सूचना–यदि इस अर्क की मात्रा अधिक ली जायगी या शहद कम मिलाया जायगा तो व्याकुलता होने लगती है। फिर एकाध दस्त लग जाता है, पसीना आ जाता है और कुछ मिनटों के लिये निर्बलता आ जाती है।

(११) कर्पूरधारा (जीवनरसायन) अर्क

विधि–कर्पूर १० तोले, पीपरमेंट के फूल ५ तोले, थाइमोल (अजवायन के फूल) ५ तोले, बेंजोइक एसिड (लोबान के फूल) २॥ तोले लें। पहले कपूर, पीपरमेंट और थाईमोल को मिलावें। जल हो जाने पर एसिड मिला दें।

मात्रा–२ से ५ बूँद तक, दिन में ३ या ४ बार, बताशे में या शक्कर के साथ अथवा जल में देवें।

उपयोग–हैजे में आध-आध घण्टे पर बताशे में देते रहें। जल बहुत थोड़ा थोड़ा (चम्मच से) पिलावें। अन्य रोगों में दिन में २ से ३ बार दें। दाँत-डाढ़ के दर्द में फोहा रखें और २ से ५ बूँद तक जल के साथ पिलावें। त्वचारोग में ८ गुणा तिल का तैल मिलाकर मालिश करें और दिन में ३ बार २-४ बूंद जल में मिलाकर पिलावें। कर्ण रोग में १ माशा तिल का तैल गरम करें, गुनगुना रहें, तब उसमें चौथा हिस्सा अर्क मिलाकर २-२ बूंद कान में डालें।

उपयोग–यह अर्क हैजा, अतिसार, मन्दाग्नि, खांसी, अरुचि, उदरशूल, वमन, रक्तविकार, आमवात, अजीर्ण-कर्णपीड़ा, शिरदर्द, ज्वर कफविकार, जुकाम, डाढ़ में चीस चलना, दाँतों की पीड़ा, कण्डू आदि को दूर करता है।

(१२) ज्वरहर अर्क

विधि–नौसादार और चूना, १०-१० तोले लेकर एक चीनी मिट्टी के बरतन में डालें। ऊपर से ईख का सिरका या एसेटिक एसिड या सल्फ्यूरिक एसिड १०% वाला २० तोले लें। झाग उतर जायें तब जल २ सेर मिला कर रहने दें। जल ऊपर से स्वच्छ हो जाये तब बोतल में भर लेवें। (आ.नि.मा.)

मात्रा–१ से २ तोले, तीन -तीन घण्टे के बाद ३ बार। सौंफ का अर्क अथवा जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग–इस अर्क के सेवन से नवीन ज्वर पसीना आकर सत्वर उतर जाता है। पेशाब साफ आता है। कफ प्रधान ज्वर, अजीर्ण ज्वर और इन्फ्लुएजा में यह उपयोगी है।

(१३) शोथनाशक अर्क (बाह्य प्रयोगार्थ)

विधि–सोंठ १ तोला, हीराबोल २ तोले, आमाहल्दी ५ तोले, मैदालकड़ी ५ तोले, उसारेरेवन, सज्जीखार, लोध, कपूर और फिटकरी ये ५ औषधियाँ २॥-२॥ तोले लें। सबको जौकुटकर २४ औंस मेथीलेटेड स्पिरिट में डाल दें। रोज बोतल को ३-४ बार चला देवें तथा रोज

बोतल को १-२ घण्टे सूर्य के ताप में रखें। एक सप्ताह पश्चात् वस्त्र में छानकर बोतल में भरें।(श्री गोपालजी कुंवरजी ठक्कुर आयुर्वेदाचार्य)

उपयोग-इस अर्क को सूजन, वेदना, चोट लगना, रक्त जम जाना आदि पर रूई के फाहे से दिन में एक या दो बार लगा देने से बहुत जल्दी आराम हो जाता है। यह औषधि टिंचर आयोडीन का कार्य करती है।

(१४) लाक्षा अर्क (बाह्य प्रयोगार्थ)

विधि-१० तोले लाख को २० औंस मेथोलेटेड स्पिरिट में मिलावें। आध घण्टे में रस होकर अर्क बन जाता है।

उपयोग-शस्त्र लगने अथवा चोट से रक्त निकलने के स्थान पर इस अर्क में रूई की पट्टी भिगोकर लगा देने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इससे घाव पर पट्टी चिपक जाती है। फिर विजातीय द्रव्य का बाहर से प्रवेश नही होता, जिससे घाव नहीं पकता। जब यह घाव भर जाता है और त्वचा मिल जाती है तब ३-४ दिन बाद वह पट्टी खुल जाती है।

वक्तव्य-कितने ही चिकित्सक लाख के स्थान पर लोहवान पुष्प (Acid Benzoic) मिलाकर टिंचर बेंजोइक बनाते हैं यह भी अच्छा कार्य करता है।

यदि शस्त्र दूषित होने से या मिट्टी, धूल आदि लगने से घाव में विजातीय द्रव्य रह गया हो तो त्रिफला क्वाथ, बौरिक लोशन (टंकणानुद्रव) या अन्य किसी कीटाणु नाशक धोवन से घाव को धोना चाहिये। रूई से पोंछ कर इसे लगावें।

(१५) स्त्रीगदान्तक अर्क

विधि-अशोकारिष्ट ६ औंस, ऑइल कोपायबा १॥ ड्राम, ऑइल सेन्डलवुड (चन्दन का तैल) १० बूंद, टिंचर केंथारिडीस १५ बूंद, लाईकर फैंरी ४ ड्राम अरबी गोंद (गम एकेशिया) १५ ग्रेन और एक्वा केम्फर केन्सेण्टेड १॥ ड्राम लें। गोंद को २ औंस वाष्पजल में मिलावें। फिर छान कर उसके साथ तैल मिलावें। अशोकारिष्ट में शेष औषधि मिलावें। बाद में सबको मिला १२ औंस में कम हो उतना अशोकारिष्ट और डाल लेवें।

उपयोग-इस अर्क के उपयोग से स्त्रियों के गर्भाशय के दोष, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, नीलप्रदर, गर्भाशय में दाह, मासिक धर्म में अनियमितता, मासिक धर्म के समय गर्भाशय में शूल चलना, गर्भाशय विकृति जनित मलावरोध, बेचैनी, अरुचि, नेत्रदाह, शिरदर्द, हाथ-पैर टूटना, अपचन आदि विकार दूर होते हैं। जीर्ण रोग में अर्क २-३ मास तक पथ्यपालन सह लेना चाहिये।

जब किसी भी कारण से गर्भाशय में उग्रता उत्पन्न होने, प्रदाह होने, दूषित अथवा द्रव्य संगृहीत होने से प्रदरोत्पत्ति हुई हो तब यह अर्क पिलाते रहने से थोड़े समय में ही लाभ पहुँच जाता है। यह उत्तम गर्भाशय शोधक औषधि है। गर्भाशय के साथ यदि मूत्रसंस्थान में भी विकृति हो गई हो तो उसे भी यह अर्क दूर कर देता है। इस अर्क के सेवन से मूत्रदाह, मूत्र बून्द-बून्द गिरना, मूत्र का पीलापन, मूत्रावरोध आदि दोष दूर हो जाते हैं।

प्रारम्भ में यह अर्क सुजाक के उपद्रवों से पीड़ित रुग्णा के लिये तैयार किया था। फिर इसका उपयोग सुजाक रहित रोगियों पर भी किया गया। अनेकों को लाभ होने से पाठ जैसा का वैसा दे दिया है। अभी तक इस अर्क का उपयोग ५०,००० से अधिक रुग्णाओं पर हो चुका है। यह अति निर्भय और उत्तम औषधि है।

सूचना-यदि पूयमय प्रदर हो, प्रदर में दूर्गन्ध आती हो, तो गर्भाशय को कीटाणुनाशक धोवन से धोते हरें। फिर धातक्यादि तैल या नतादि तैल की पिचकारी लगाते रहना चाहिये।

(१६) ज्वरमुरारी अर्क

विधि-क्विनाइन सल्फास २ औंस, एसिड सल्फ्यूरिक डाइल्यूट ४ औंस, टिंचर नक्सवॉमिका १। औंस, टिंचर डिजिटेलिस ४ औंस, ऑइल पीपरमेन्ट ३० मिनिम और डिस्टिल्वाटर (परिश्रुत सलिल) २० औंस लें। क्विनाइन को थोड़े वाष्प जल में मिला, फिर एसिड के साथ मिलावें। पश्चात् तैल को एक जीवकर फिर सबको मिला लेवें। रंग मिलाना हो तो १ औंस अर्क में ३० बूँद के अनुपात से रासबरी कलर मिला लेवें।

ऐसिड सल्फ्युरिक डाइल्युट बनाने के लिये १ औंस वजन गन्धक के तेजाब को ९ औंस जल में मिलाना चाहिये। जल को तेजाब पर न डालें। तेजाब को जल पर डाल दें। फिर चलाकर रहने दें। जल शीतल हो जाने पर काम में लावें। १० औंस जल में जितना कम हो उतना (३ ड्राम) जल मिला लेवे अथवा एक औंस नाप से लिये हुए गन्धक के तेजाब को १४॥ औंस जल में मिला लेने से डाइल्युट हो जाता है।

मात्रा-१/२ से १ ड्राम तक, १-१ औंस जल के साथ, दिन में ३ बार दें। बालकों को मात्रा कम देवें।

सूचना-(१) अर्क तैयार होने पर उतना परिश्रुत जल मिला लेवें कि एक मात्रा में क्विनाइन ४ ग्रेन और एक पौण्ड क्विनाइन से २० पौण्ड अर्क बन जाय।

(२) जिन रोगियों के रक्त की प्रतिक्रिया अम्ल हो, उनसे क्विनाइन सहन नहीं होती। उनको क्विनाइन देने पर मस्तिष्क में उष्णता, निद्रानाश, रक्तदबाव वृद्धि, वृक्कों के कार्य में शिथिलता और थोड़ा-थोड़ा मूत्र त्याग होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। अतः इन रोगियों को क्विनाइन मिश्रित औषधि देने से १०-२० मिनट पहले सोड़ाबाई कार्ब १ माशे को १०-२० तोले जल में मिलाकर देना चाहिये या अन्य क्षार देकर रक्त को क्षारीय बना देना चाहिये। रक्त क्षारीय होने पर क्विनाइन सेवन के बाद भी मूत्रशुद्धि होती रहती है। विष विकार के चिह्न उपस्थित नहीं होते और क्विनाइन से योग्य लाभ मिल जाता है।

(३) पित्तप्रधान प्रकृति वालों को पहिले दूध पिलाकर ऊपर से अर्क पिलावें अथवा पित्तशमनार्थ यह अर्क या क्विनाइन वाली कोई भी औषधि देने से ३ घण्टे पहिले सोडाबाई कार्ब २० ग्रेन जल में मिलाकर पिला देवें।

उपयोग–ठण्डी लगकर आने वाले ज्वर, विषमज्वर-एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि एक दिन में ही चले जाते हैं। पाली के बुखार में जिस दिन की पाली हो उस दिन रोगी को खाने को कुछ भी न दें। अति निर्बल रोगी को या बालक को हो तो थोड़ा दूध पिलावें और बुखार आने पर ६ घण्टे पहले औषधि की मात्रा दे दें फिर २-२ घण्टे पर दो बार औषधि देने से एक ही दिन में ज्वर रुक जाता है। ज्वर का समय चला जाने पर रोगी को क्षुधा लगने पर दूध दें। भोजन दूसरे दिन करावें। उस दिन स्नान ही नहीं कराना चाहिये। पाली के दिन से अन्य दिनों में औषधि ३ बार दें।

यह अर्क सौम्य, विषमज्वर तथा घातक विषमज्वर पर हितावह है। सन्ततज्वर (Malarial Remmityent Fever) सततज्वर (Double Quotidian Fever) एकाहिकज्वर (Quotidian Fever) सौम्य तृतीयक ज्वर (Benigntertion Fever) मृदुतृतीयकज्वर (Obvaltertian Fever) गम्भीर तृतीयक ज्वर (Malignant Tertian Fever), चातुर्थिक ज्वर (Quartau Fever) इन पर इस अर्क का उपयोग होता है। अभी तक एक लक्ष से अधिक रोगियों पर यह अर्क व्यवहृत हो चुका है। यह अति सफल प्रयोग सिद्ध हुआ है।

कितने ही रोगियों को ज्वर ९९॥ से कम नहीं होता। बढ़कर १०४° तक हो जाता है। रोगी की अवस्था अति भयप्रद मानी जाती है। ऐसे रोगियों पर भी इस अर्क ने जादू के समान कार्य किया है। कितने ही रोगियों को चातुर्थिक ज्वर महीनों तक नहीं छोड़ता। ऐसे अनेक रोगियों को यह अर्क दिया गया है। जिनकी देह पिंजर जैसी शुष्क और निस्तेज बन गई थी। उनमें से अनेकों को ३ दिन अर्क पिलाने मात्र से ज्वर चला गया था। किसी-किसी को ७ दिन तक देना पड़ा है। इस अर्क से सबको लाभ पहुँचा है। कभी किसी को हानि नहीं हुई।

मेलरिया के अतिरिक्त पूयज्वर (Pyaemia) आमवातिक ज्वर (Rheumatic Fever) परिवर्तित ज्वर (Relapsing Fever) राजयक्ष्मा में ज्वर वातश्लैष्मिक ज्वर(Influenza) अपचनजनित ज्वर, सूतिकाज्वर(Puerperal Fever) और आगन्तुक ज्वर आदि रोगों पर भी इस अर्क का उपयोग निर्भयतापूर्वक किया जाता है।

(१७) चांदी का खिजाब

विधि–रौप्यक्षार (सिल्वर नाइट्रास)१ तोले और गन्धक का तेजाब १ तोले को चीनी मिट्टी की प्याली में रखकर कोयलों की जलती हुई सिगड़ी पर रखें। १५-२० मिनट में तेजाब जलकर चाँदी की भस्म तैयार हो जायगी। फिर गन्धक आंवलासार २० तोले को ३ दिन खरल करें। चौथे रोज थोड़ा-थोड़ा गुलाबजल मिलाकर खरल करें। ३-४ रोज खरल करने से गुलाबजल अच्छी तरह मिल जाता है। फिर बोतल में भरें। ६० तोले गुलाबजल में से घट गया हो उतना और गुलाबजल तथा चांदी की भस्म मिला लें। (श्री.ठा. रघुरामसिंह)

उपयोग–पहिले बालों को साबुन से धोकर ब्रुश से थोड़ा खिजाव लगावें। सूखने के बाद बाल धो दें। अन्य जगह खिजाब लगकर काला दाग हो जाय तो तैल अथवा घी का हाथ लगाकर साफ कर लें। पहिले रोज रंग थोड़ा कम आवेगा। तीसरे समय लगाने से नैसर्गिक बालों का रंग आ जाता है।

(१८) गुडमार अर्क

विधि–चौगुणे जल में गुड़मार पत्ती को भिगोकर अर्क विधि से अर्क खींच लिया जाता है। यही गुड़मार अर्क है।

उपयोग–यह यकृत की शक्कर बनाने की क्रिया का दमन करता है इसी हेतु से मधुमेह की औषधियों के साथ व्यवहृत होता है।

मात्रा–१। से २॥ तोला दिन में दो बार।

(१९) पुनर्नवा अर्क

विधि–पुनर्नवा को चौगुणे जल में भिगोकर अर्क खींच लें। हस्त पादादि सर्वांगिंक शोथ, यकृत्शोथ, मूत्रविकार, मूत्रकृच्छ्र आदि विकारों में पीने से तथा नेत्रों में डालने से नेत्र प्रदाह शोथादि को मिटाता है।

मात्रा–१। से २॥ तोला दिन में २-३ बार दें।

(२०) महासुदर्शन अर्क

विधि–महासुदर्शन चूर्ण के नुश्के को जो कूटकर भिगोकर चौगुने जल से अर्क खींच लें। जीर्ण नूतन ज्वर, दिनों तक बना रहने वाला ज्वर, अग्निमांद्य, पाण्डु, शारीरिक निर्बलता आदि पर हितकारक है।

मात्रा–१। से २॥ तोला दिन में २ बार सुबह शाम।

(२१) सौंफ का अर्क

विधि–सौंफ को चौगुने जल में भिगोकर अर्क विधि से अर्क खींच लें। यह अर्क आम प्रकोप, उदर में आम बढ़ जाना, बेचैनी, मलावरोध, तृषा अधिक लगना, अग्निमांद्य, उदर में वायु भरा रहना आदि पर हितकारी है।

जुलाब लेने के बाद सौंफ का अर्क पीने पर उबाक आना दूर होता है। दाह शान्त होता है और आम निकल जाता है।

मात्रा–५-५ तोले दिन में ३ बार या जुलाब के २ घण्टे बाद।

मृदु प्रकृति वाले, बालक, स्त्री, वृद्ध, पुराने रोगी अथवा जो कड़वे चूर्ण आदि सेवन न कर सकें और जो भस्म आदि औषधियों के अनधिकारी हों, उनके लिए पाक, अवलेह आदि औषधियाँ विशेष अनुकूल रहती हैं। पाक आदि औषधि स्वादिष्ट होने से, रस-रक्त में मिलकर रोगों को दूर करती है और शरीर को सुदृढ़ बनाती है। केवल भस्म जिनको लाभ नही पहुँचाती उनको यदि पाक अथवा अवलेह में मिलाकर दी जाय तो वह अपना लाभ अवश्य पहुँचाती हैं।

पाक और अवलेह बनाने की विधि औषधिकृति प्रकरण में लिखी है। माजून यूनानी हिकमत वालों का है। वे लोग शहद को उबालकर ऊपर आने वाले मैल को निकाल देते हैं। शेष रही हुई शहद को माजून के चूर्ण के साथ मिला लेते हैं। किन्तु आयुर्वेद ने गर्म किये शहद को विष माना है जिससे शहद को तपाना, आयुर्वेद के नियम के विरुद्ध है। इसलिये शहद को बिना गरम किये मिलाया जाय तो भी औषधि प्रयोग न्यून गुणवाला नहीं होता।

कुछ शर्बत इस प्रकरण के अन्त में दिये हैं। अनेक समय पर शर्बत रूप से औषधियां देनी पड़ती हैं अथवा अन्य औषधि के साथ अनुपान रूप से शर्बत मिलाना पड़ता है। शर्बत मधुर व स्वादिष्ट होने से सब कोई ग्रहणकर सकते हैं जिससे स्वाद के साथ-साथ औषधि का लाभ भी पहुँच जाता है।

पाक सेवन प्राय: दिन में १ बार प्रात:काल होता है। अनेक पाकों में भस्म मिलाने को लिखा है। उनको यदि न मिलावें या न्यूनांश में मिलावें तो कोई दोष नहीं होता; पाक विशेष सौम्य बनता है, केवल भस्मों का लाभ नहीं मिलता। अवलेह और माजून सबकी मात्रा नियमित न होने से सब के साथ दी है।

सूचना-अवलेह के भीतर वंशलोचन मिलाना हो, उसे भस्म सदृश या नेत्राञ्जन के समान मुलायम करके मिलाना चाहिये। मोटा चूर्ण रह जाने पर दाँतों के नीचे रेती समान करकरा-सा प्रतीत होता है।

(१) सौभाग्य सुंठी पाक

प्रथम विधि-सोंठ के ३२ तोले चूर्ण को घी की भावना (मौण) देकर ४ सेर गाय के दूध में मिलाकर खोवा बनावें। फिर खोवें में थोड़ा-थोड़ा घी डालते जाय और हिलाते जायं। १ सेर घी डालने से दाना अलग-अलग पड़ेगा। बाद में ४ सेर मिश्री की चाशनी कर उसमें खोवा डाल दें। फिर धनियाँ ३ माशे, सौफ १। तोला, वायविडङ्ग, सोंठ, नागकेशर, कालीमिर्च, पीपल और मोथा ४-४ तोले का चूर्ण एवं थोड़े-थोड़े बादाम, पिस्ता, चिरोंजी मिलाकर पाक तैयार करें। (ध.वै.)

वक्तव्य-इस पाठ में मूल ग्रन्थकार ने धनियाँ ३ माशे और सोंफ १। तोला लिया है। उनके स्थान पर हम ४-४ तोले मिलाते हैं।

मात्रा-सौभाग्य सुंठी पाक वातनाड़ीपौष्टिक, अग्निप्रदीपक, यकृदबल वर्द्धक, कीटाणु-नाशक, स्तन्योत्पादक और अन्त्रशोधक है। इस पाके के सेवन से स्त्रियों के प्रसूति (सूवा) रोग, वातरोग, प्यास, वमन, ज्वर, दाह, शोष, श्वांस, खांसी, तिल्ली कृमि इत्यादि विकार नष्ट होते हैं।

सूचना-यदि प्रसूता को निद्रानाश, मुखपाक, छाती में जलन, खट्टी डकारें आना या गरम-गरम पतले दस्त होना आदि विकार हों तो इस पाक का सेवन नहीं करना चाहिये।

दूसरी विधि-१९२ तोले सोंठ के चूर्ण को समभाग घृत मिलाकर भूनें। फिर ७६८ तोले दूध मिलाकर उबालें। आधा दूध शेष रहे तब १९२ तोले मिश्री डालकर पाक करें। पाक तैयार होने पर जायफल, त्रिफला, जीरा, काला जीरा, धनियाँ, सौंफ, इलायची, पीपल, नागरमोथा, नेत्रवाला, मुनक्का, विदारीकन्द, सफेद चन्दन और छुहारा सब २-२ तोले, ताजे नारियल की गिरी ३२ तोले, शिलाजीत और लौह भस्म ८-८ तोले, सोवा १६ तोले, चिरौंजी १६ तोले और निसोत ३२ तोले का बारीक चूर्ण डालें और केशर आदि सुगन्धित पदार्थ इच्छानुकून मिलावें। मिश्री १९२ तोले मिलाने पर पाक अधिक चरपरा रहता है इस हेतु से हम ३८४ तोले मिलाते हैं। (आ.भि.)

शिलाजीत को ४ गुनी मिश्री के साथ खरल करके पाक तैयार होने पर मिला लेवें। पहले मिलाने से पाक ढीला हो जाता है और शिलाजीत से पाक का रङ्ग श्याम हो जाता है। यदि शिलाजीत पाक में न मिलावें, बल्कि पाक सेवन के साथ रोज-रोज २ रत्ती दूध के साथ लेते रहें तो भी पूरा लाभ मिल सकता है।

मात्रा-२ से ४ तोले तक। सुबह खाकर दूध पीवें।

उपयोग-इस पाक के सेवन से बल, कान्ति, सौभाग्य, वृद्धि, स्मृति; वाणी सौंदर्य और सुकुमारता की प्राप्ति होकर योनि की शिथिलता दूर होती है। स्त्रियों के स्तन घट्ट (दृढ) होते हैं और वातरोग, कफ रोग, पित्तरोग, ज्वर, मूत्ररोग एवं नासा, नेत्र, कर्ण, मुख मस्तिष्क के रोग, बस्तिशूल, योनिशूल और अन्य रोग भी नष्ट होते है।

(२) सुंठ्यादि पाक

विधि-सौंठ, बादाम की गिरी और पिस्ता ५-५ तोले; मेथी चास्को (बनकुलथी), खसखस, सौंफ, सोवा, पीपल, गोखरू, सफेद मसूली, काली मूसली, कौंच, मिर्च, धनिया, तालमखाना, बायपुंबा, हालो (चन्द्रशूर), प्रत्येक १-१ तोला, शतावरी, जायफल, जावित्री, नागकेशर, दालचीनी, तेजपात, पीपलामूल, बायविडङ्ग, कुलिंजन, जीरा, हल्दी ६-६ माशे, खरेंटी के बीज २ तोले, नारियल की गिरी १० तोले और बबूल का गोंद

२० तोले लें। गेहूँ का आटा सब चूर्ण से ड्योढा तथा घी और गुड़ चूर्ण से २॥-२॥ गुना लें। बबूल के गोंद और दूसरी औषधियों को अलग-अलग कूटकर मोटा चूर्ण बनावें। बबूल के गोंद, चूर्ण और आटे को घी में अलग-अलग भूनें। फिर तीनों को मिला लेवें। बाद में गुड़ मिलाकर पाक सिद्ध करें। (वै.चि.सा.)

मात्रा-रोज सुबह ८ से १० तोले तक अनुकूल हो उतने परिणाम में खाकर ऊपर दूध पीवें। पाक पचन होने पर भोजन करें।

उपयोग-यह पाक प्रसूता स्त्रियों की निर्बलता को दूर करता है और जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। निर्बल मनुष्य के लिये भी पौष्टिक रूप में अच्छा काम देता है।

(३) कौंच पाक

विधि-कौंच १२५ तोले को गरम जल में १२ घन्टे भिगो दें। फिर निकाल खादी के कपड़े से घिस ऊपर के छिलकों को अलग करें। पश्चात् छाया में सुखा कूटकर बारीक चूर्ण करें। इस चूर्ण को १६ गुने दूध में मिलाकर उबालें। जब दूध मावा जैसा गाढ़ा हो जाय तब चूर्ण से दुगुना घी मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। फिर चूर्ण से चार गुनी शक्कर की चाशनी करें। पश्चात् कौंचवाला मावा मिला लें। अगर जायफल, जावित्री, सोंठ, लौंग, अकलकरा, जीरा, पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, कपूर, शीतल मिर्च, समुद्रशोष, भिलावा, केशर, करंज के बीजो की गिरी, खुरासानी अजवायन और दूध में शोधन किया हुआ बच्छनाभ २-२ तोले काली मूसली और शुद्ध अफीम ४-४ तोले लें फिर बारीक चूर्ण करके मिला दें। रससिंदूर, नागभस्म, वंगभस्म २-२ तोले और लोहभस्म ४ तोले डालें। ठण्डा होने पर ६४ तोले शहद मिलावें। सुगन्धित द्रव्य केशर, कस्तूरी इच्छानुकूल मिला पाक बनाकर कलईदार बरतन में भर दें।

सूचना-इस पाक में अफीम का परिमाण बहुत ज्यादा है। अफीम के व्यसनी से इतनी अफीम सहन होती है, अन्य लोगों से नहीं। अतः अफीम आधे से १ तोला मिलावें। ४ तोला अफीम मिलाने से ४ तोले पाक में १ रत्ती अफीम आती है। इसके अतिरिक्त बच्छनाभ का परिमाण अफीम से आधा है। यह भी अत्यधिक है। बच्छनाभ आध तोले से अधिक नहीं डालना चाहिए।

मात्रा-२ से ४ तोले। रोज सुबह खाकर ऊपर से दूध पीवें।

उपयोग-यह पाक धातुवृद्धि और पुष्टि के लिये अति उपयोगी है। यह अत्यन्त कामोत्तेजक है। श्वास, पाण्डु, क्षय, खाँसी, सूजन, मेद और वातरोगों का नाश करता है। क्षीणवीर्य, नष्टवीर्य और खंजवात से पीड़ित मनुष्यों के लिये अमृतरूप है। इस पाक के सेवन से बुद्धि की वृद्धि होती है और शरीर पुष्ट होता है।

सूचना-इस पाक के सेवन काल में अंगूर, मुनक्का, केला, चिरौंजी, मिश्री, दूध, घृत और तिल पथ्य है और खट्टे पदार्थ अपथ्य है।

(४) जीरकादि मोदक

विधि-जीरा ३२ तोले, भांग (भुनी हुई) १६ तोले, लोहभस्म, बंग भस्म, अभ्रकभस्म, सौंफ, तालीसपत्र, जावित्री, जायफल, धनियां, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दालचीनी, नागकेशर, इलायची, तेजपात, लौंग, छरीला, सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, जटामांसी, मुनक्का, कचूर, सोहागे का फूला, कुदंरू, मुलहठी, वंशलोचन, शीतलमिर्च, नेत्रवाला, सौंठ, मिर्च, पीपल, धाय के फूल, बेलगिरी, अर्जुनछाल, सोया, देवदारू, कपूर गंगरेन की छाल, प्रियंगू, कुटकी, जीरा, मोचरस, कमल की नाल सब १-१ तोला लें। भस्म को छोड़ शेष सबको कूटकर बारीक चूर्ण करें। ८० तोले मिश्री मिलावें और गोली बंध सके उतना शहद मिलाकर आध-आध तोले की गोलियाँ बनावें। कितने ही चिकित्सक इस मोदक में आध सेर गोघृत मिला पश्चात् शहद के साथ गोलियां बनाते हैं। (भै.र.)

सूचना-इस प्रयोग में आचार्यों ने कुटकी मिलायी है। कुटकी मिलाने से मोदक का स्वाद कड़वा हो जाता है। मलावरोध न हो तो मिलाने की आवश्यकता नहीं है।

यदि यकृत् बलवान हो तो लड्डू बनाने के समय गोघृत मिलाना हितावह होता है यदि दस्त में दुर्गन्ध हो सफेद वर्ण हो, आम अधिक हो तो घी नहीं मिलाना। (५-१० तोले ही मिलाना) हितावह माना जायेगा।

मात्रा-१ से २ गोली रोज सुबह जल या मठ्ठे के साथ दें।

उपयोग-इस मोदक के सेवन से संग्रहणी, आमदोष, पित्तदोष, मन्दाग्नि, रक्तातिसार, अतिसार, विषमज्वर, शब्द सहित अतिसार, अम्लपित्त, उदररोग, शूल अरुचि आदि रोग दूर होते हैं।

वक्तव्य-यह जीरकादि मोदक आमप्रधान ग्रहणी पीड़ितों के लिए विशेषतर हितावह माना जाता है। यदि आमाशय के पित्त में उग्रता आकर दाह-मुखपाक हो जाता हो तो उसे भी शमन करता है। मुखपाक, दाह आदि अम्लपित्त के लक्षण हों तो अनुपान रूप से मठ्ठा नहीं देना चाहिए। शीतल जल ही देना चाहिए एवं भात आदि अम्लविपाक वाले पदार्थ का सेवन भी कम कराना चाहिये।

अग्निमांद्य, आमाशय के पित्त की उग्रता होने पर एवं आमाशय के पित्त की उत्पत्ति कम या पित्त कमजोर होने पर तथा यकृत का पित्तस्राव कम होने पर भी होता है। इन पर यह मोदक अनुपान और पथ्यभेद से उपयोगी है। इस प्रकार से आचार्यों ने औषध योजना की है। यह मोदक आमाशय पित्त की न्यूनाधिकता को सम बनाता है एवं यकृत् को भी बल प्रदान करता है।

क्वचित् अन्त्र में प्रदाह होने या उग्रता आ जाने पर रक्तातिसार होता है। उस विकार को शान्त करने के लिए इसमें वंशलोचन आदि शामक

औषधियां तथा बेलगिरी आदि स्निग्ध औषधियां मिलायी हैं।

कई मात्राधिक आहार सेवन करने वाले, बार-बार भोजन करने वाले, अपथ्य सेवन करने वाले तथा सिगरेट और गरम चाय आदि व्यसनियों की आंते शिथिल व चौड़ी हो जाती हैं। जिससे मल, और वायु संगृहीत होती है तथा उदरशूल या उदावर्त रोग की भी संप्राप्ति हो जाती है। उस विकार को शान्त करने या लक्षणों को दूर करने के लिए भांग, अभ्रक आदि औषधियों का मिश्रण किया है।

कई रोगियों को आम ग्रहणी जीर्ण होने और मलावरोध बना रहने के कारण मन्द-मन्द ज्वर आने लगता है, वह भी मुख्य रोग दूर होने के साथ दूर हो जाता है। कई रोगियों को मलावरोध भी बना रहता है। अतः मल की शुद्धि करने के लिए कुटकी मिलायी है। इसका कार्य बढ़ाने के लिए भांग भी योगवाही बन जाती है।

संग्रहणी के अनेक रोगियों को अरुचि बनी रहती है। उसे दूर करने के लिए भांग श्रेष्ठ औषधि मानी जाती है। रोग जीर्ण होने पर रक्त में न्यूनता और पाण्डुता आती है, वह लोह मिलाने से दूर हो जाती है। मांसपेशियां शिथिल हो जाती हैं, यह अभ्रक भस्म के मिश्रण से दूर होती है एवं मूत्र संस्थान की विकृति को वंगभस्म दूर करता है।

संक्षेप में आचार्य ने इस प्रयोग में औषध योजना इस प्रकार से की है कि ग्रहणी, जीर्ण अतिसार और जीर्ण प्रवाहिका पर लाभ पहुँचाता है।

सूचना–गरम चाय-गरम-गरम कॉफी, सिगरेट, बीड़ी, अतिभ्रमण करना, अति मिर्च, मसाला खाना छोड़ देना चाहिए।

(५) नेत्रशूलान्तक मोदक

विधि–पक्के नारियल (जिसमें से तैल निकलता है), उसकी गिरी २० तोले, गुड़ १० तोले और आनन्द भैरव रस ४ रत्ती मिलाकर ५ अथवा ७ लड्डू बनावें (श्री वैद्य परमानन्दजी)

मात्रा–एक-एक मोदक रोज सुबह बकरी के दूध के साथ दें।

उपयोग–इस मोदक के सेवन से नेत्रशूल (अधिमन्थ Glucoma), शिरागत वातविकार, शिरदर्द आदि रोग दूर होते हैं।

नेत्रशूल तीव्र होने पर १-१ तोला कलौंजी भी गुड़ के साथ मिलाकर दिन में दो समय देते रहना चाहिए। जिससे मस्तिष्क में से प्रस्वेद को अधिक बाहर निकालकर नेत्रान्तर दबाव को कम कर देता है फिर नेत्रशूल का शमन हो जाता है। इस मोदक के साथ रौप्यभस्म आध-आध रत्ती, अभ्रक भस्म $\frac{१}{४}-\frac{१}{४}$ रत्ती मिलाकर देने से तीव्रशूल का तीन दिन में शमन हो जाता है।

(६) च्यवनप्राशावलेह

विधि–पाटला, अरणी, गंभारी, बेल और श्योनाक (अरलू) इन सब की छाल, गोखरु, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, पीपल, काकड़ासींगी, मुनक्का, गिलोय, हरड़, खरैंटी, भूमि आंवला, अडूसा, जीवंती, कचूर, नागरमोथा, पुष्करमूल, कोआठोडी, मूंगपर्णी, माषपर्णी, बिदारीकंद, सांठी, कमलगट्टा, छोटी इलायची, अगर, चन्दन और अष्टवर्ग [अभाव में प्रतिनिधि द्रव्य]* की आठों औषधियां, सब चार-चार तोले लेकर जौकुट चूर्ण करें। फिर यह चूर्ण बड़े-बड़े ताजे ५०० आंवले [६ सेर आंवले ताजे, सूखे हों तो वजन में आधे] और २०४८ तोले पानी को एक घड़े में डालकर पकावें। आठवां हिस्सा पानी शेष रहने पर छान लेवें और आँवलों को निकाल लेवें। फिर कलई किये हुए बरतन पर मजबूत खादी को बांधकर उस पर आंवलों को मसलने से आंवलों का मगज छन जाता है। इस मगज को २८ तोले घृत में (मतान्तर में घी-तैल १४-१४ तोले) मिलाकर मन्दाग्नि से लाल होने तक भूनें। आंवले भुन जाने पर घृत अलग निकल जाता है। फिर क्वाथ के छाने हुए जल को पुनः उबालें। आधे से अधिक अंश जल जाय तब ५ सेर शक्कर मिलाकर पाक करें। कुछ गाढ़ा होने पर आंवलों वाला पाक मिलाकर पकावें। फिर पीपल ८ तोले, वंशलोचन १६ तोले और दालचीनी, इलायची, नागकेशर तथा तेजपात १-१ तोले का बारीक चूर्ण करके मिलावें। अवलेह ठण्डा होने पर ४८ तोले शहद मिलावें। हमने शहद और शक्कर का परिणाम अधिक लिया है। शेष पाठ शास्त्रानुसार (शा. सं.)

सूचना–क्वाथ का जल अधिक रहने पर शक्कर मिला दी जाये तो अवलेह चिट्ठा पड़ जाता है एवं दांतों को लगता रहता है। कितने ही चिकित्सक शक्कर १० सेर मिलाते हैं। इससे शक्कर की मात्रा अधिक बढ़ कर मात्रा व गुणों में अन्तर आता है।

आंवलों को कलई लगी हुई पीतल की कड़ाही में भूनना चाहिये। लोहे की कड़ाही या खुरपी के स्पर्श से अवलेह का रंग काला हो जाता है।

भूनने के लिये घृत और तैल दोनों लेने पर घी शीतल होने पर मिल जाता है, किन्तु तैल अवलेह के ऊपर निकल जाता है जो सेवन करने वालों को बेचैनी लाता है।

---

* ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभ, काकोली, क्षीरकाकोली इन ८ औषधियों को अष्टवर्ग की संज्ञा दी गई है।
ये औषधियां जो वर्तमान में मिलती हैं, वे अभी तक संदिग्ध मानी जाती हैं। इस हेतु से इन औषधियों के प्रतिनिधि की योजना की जाती हैं। प्रतिनिधि के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। विशेषतः निम्नानुसार प्रतिनिधि विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है।
खरैंटी, पञ्चासालब, शकाकुल छोटी, शकाकुल बड़ी, लम्बासालब, काली मूसली, सफेद मूसली और सफेद बहमन ये क्रमशः लिये जाते हैं।

आवंला परिपुष्ट पक्व बनने पर विशेष गुणदायी बनता है। इस अवस्था में आंवला सुखाते भी हैं। जो आंवले वृक्ष पर ही अति कठोर हो जाते हैं उन्हें नहीं लेने चाहिये। जिन आंवलों का मांसल भाग वृक्ष पर ही काष्ठमय बन जाय और जिनमें से द्रव पूरा न निकल सके वे आंवले अवलेह के लिए उपयोगी नहीं माने जाते। ताजे आंवलों के स्थान में सूखे आंवले यदि लिये जायेंगे तो अवलेह का रंग काला होता है और गुण भी न्यून करता है।

क्वाथ्य द्रव्य के जौकूट चूर्ण को १२ से २४ घन्टे पहले से जल में भिगो देना चाहिये। अन्यथा क्वाथ करने पर पूरा सत्व नहीं निकल सकेगा।

घी में भूना हुआ बंबूल गोंद ३२ तोले तथा सोया और खसखस ४-४ तोले भी मिलाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त जिनको गुड़ अनुकूल हो वे शक्कर के स्थान पर गुड़ को घी में पकाकर मिलाते हैं।

गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ में इस पाक के भीतर मेथी और चास्को (बन कुलथी) भी मिलाते हैं। ये दोनों औषधियाँ दुग्धवर्द्धक और पौष्टिक हैं। किन्तु कड़वी होने से राजस्थान, यू.पी. आदि प्रान्तों में प्रायः कोई नहीं मिलाते हैं।

इस अवलेह में जो शहद मिलाया जाता है वह अधिक द्रव (पतला) न होना चाहिये। यद्यपि आयुर्वेद ने शहद को गरम करने का निषेध किया है, तथापि सारग्राही दृष्टि से यूनानी मतानुसार शहद को शुद्ध कर लिया जाय तो उसके मिलाने से अवलेह दूषित होने का भय नहीं रहता। (किन्तु वह शक्कर रूप बन जाता है। शहद का गुण नहीं दर्शा सकता) जो शहद अधिक पतला होता है वह अवलेह को बिगाड़ देता है।

मात्रा–१ से २ तोले, दिन में २ बार, १० से २० तोले दूध के साथ। उदर में वायु उत्पन्न हो तो आध घन्टे बाद दूध पीवें।

उपयोग–यह अवलेह उत्तम शक्तिप्रद है। यह पचन संस्थान, श्वसन संस्थान, हृदय, मस्तिष्क, रक्तवाहिनियों, वातवाहिनियों, मूत्रसंस्थान और प्रजनन संस्थान आदि को शक्ति प्रदान करता है। यह उत्सर्जक इन्द्रियों को सबल बनाकर आवश्यक शोधन कार्य भी करता है। जिससे शारीरिक सर्व व्यापार सरलतापूर्वक चलने लगता है। यह क्षय, उरःक्षत, शोथ, हृदयरोग, स्वरभंग, निर्बलता, कास, श्वास, प्यास वातरक्त, नेत्ररोग, मूत्र दोष, वीर्य के दोष तथा वात, पित्त और कफ के रोगों में हितकर है। बालक, सगर्भा स्त्री, वृद्ध, क्षतक्षीण, सबके लिये लाभदायक है। बल, वीर्य, मेधा, स्मृति और कांति को बढ़ाता है। यह किसी भी रोग से उत्पन्न निर्बलता को दूर कर जीवनीय शक्ति को बहुत जल्दी बढ़ा देता है, इस हेतु से इस अवलेह को 'जीवन' भी कहते हैं। च्यवनप्राशावलेह का मूलपाठ चरक संहिता का है। उसमें आंवलों को घृत में और तैल में भूनने को लिखा है और शार्ङ्गधर संहिताकार ने केवल घृत में पकाने का विधान किया है। केवल इतना ही दोनों में अन्तर है।

यह अवलेह रसायन, उत्तम शक्तिप्रद, कान्तिवर्द्धक, वाजीकर, दीपनपाचन, पित्तप्रकोप-शामक, सारक, मूत्रजनक, रुचिकर और चर्मरोगनाशक है। यह अवलेह बड़ी आयु वाले नीरोगी मनुष्यों को रसायन गुण दर्शाता है, अर्थात् शारीरिक सब यन्त्रों की क्रिया को सुधार तथा दोष को जलाकर कम हुई शक्ति की फिर से वृद्धि कराता है तथा साथ-साथ उदर में वायु उत्पन्न करता है। मात्रा अधिक होने पर शक्ति वृद्धि नहीं कर सकता।

पित्तधातु की वृद्धि होने पर उष्णता उत्पन्न होती है, फिर वह कफ को पतला बनाना, नासिका में से श्लेष्म स्राव होना अथवा प्रमेह या श्वेतप्रदर की उत्पत्ति होना अथवा मासिकधर्म में अति रजःस्राव होना आदि विकार उत्पन्न करता है। यह अवलेह उन विकारों के मूल धातुवैषम्य को दूर कर साम्यावस्था ला देता है।

कोष्ठ में दुष्ट मल संगृहीत होने पर विविध रोगों की सृष्टि का आविर्भाव होता है। रक्तविकार, कुष्ठ, त्वचा शुष्क और काली हो जाना, शिरदर्द, नेत्ररोग, उदरकृमि, अरुचि, अग्निमांद्य, मन्द-मन्द ज्वर रहना, प्रतिश्याय, श्वास, कास, शूल, उदरवात, पाण्डु, शोथ आदि अनेक रोगों का मूल हेतु मलसंग्रह है। इस जीर्ण मलसंग्रह को दूर करने में च्यवनप्राशावलेह उत्तम सहायक होता है।

यदि आंते अति निर्बल हो जाने से च्यवनप्राश से मलावरोध होता हो तो च्यवनप्राश या अन्य सारक द्रव्य का सेवन नहीं कराया जाता। अन्त्र को बलवान बनाने वाली कुचिलाप्रधान औषधि या अजवायनादि वातहर द्रव्य का उपयोग करना चाहिये।

च्यवनप्राश हृद्य है। यह हृदय की मांसपेशियों को पुष्ट करता है तथा रक्त को शुद्ध और सबल बनाता है। जिससे उष्णता, रक्तविष या रक्त की न्यूनता से बढ़ी हुई हृदय की गति कम होती है और धड़कन भी मर्यादित होती है। यदि रोगी को गरम गरम चाय, धूम्रपान आदि का व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये।

सूर्य के ताप की उष्णता, गरम-गरम भोजन, गरम-गरम चाय तमाखू विष (Nicotin) तथा उपदंश आदि रोगों के कीटाणुओं के विष से मस्तिष्क में उष्णता और रक्तदबाव वृद्धि रहती हो या मस्तिष्कगत हृदय केन्द्र के अनुचित प्रकुपित होने से हृदय की गति तेज रहती हो वातनाड़ियों की विकृति हुई हो परिणाम में निद्रानाश, चक्कर आना, निकम्मे-निकम्मे विचार आना, धड़कन, अग्निमांद्य और पाण्डुता आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो मुक्तापिष्टी या प्रवालपिष्टी और अकीकभस्म के साथ च्यवनप्राश का सेवन कराने से ये दूर हो जाते हैं। साथ ही मूल कारणरूप दोष को दूर करना चाहिये।

इस अवलेह के साथ स्थानिक विकृति अनुरूप भस्म या रसादि मिला दिया जाय तो लाभ सत्वर और अधिक मिलता है। यकृत पित्तस्राव कम हो, तो ताम्रभस्म १/८ रत्ती और रससिंदूर १/४ रत्ती। प्लीहावृद्धि और रक्त की न्यूनता में ताम्रभस्म १/८ रत्ती और लोहभस्म १/४ रत्ती।

फुप्फुस की शिथिलता में अभ्रक भस्म १/४ रत्ती। विविध प्रकार के कीटाणु विकार पर रससिंदूर १/४ रत्ती। अस्थिसंस्थान की निर्बलता में प्रवालपिष्टी १ रत्ती और गोदन्ती भस्म १ रत्ती। राजयक्ष्मा में शक्ति सरंक्षण को सुवर्णभस्म १/१०० रत्ती, अभ्रक १/८ रत्ती, शृंगभस्म १ रत्ती और प्रवालपिष्टी ४ रत्ती। हृदय की निर्बलता पर अकीक भस्म १ रत्ती। हृदय शूल में शृंगभस्म। ज्वर पीछे की निर्बलता पर सुवर्णमालिनीवसन्त १ रत्ती और प्रवालपिष्टी १ रत्ती। मस्तिष्क की निर्बलता पर बृहद् ब्राह्मीवटी। वातसंस्थान की निर्बलता पर नवजीवन रस। शुक्र की उष्णता पर रौप्यभस्म और प्रवालपिष्टी। नाड़ी संकोच और खिंचाव पर रौप्यभस्म, शतावरी और अमृतासत्व। शुक्रस्थान की शिथिलता पर बंगभस्म। गर्भस्थान और बीजाशय की निर्बलता पर त्रिवंगभस्म। व्रण, भगन्दर पर जसदभस्म १/२ रत्ती। सुजाक के लीन विष पर रोप्यभस्म और गोक्षुरादि गूगल मिलाते हैं। इस तरह योजना करने पर यह अवलेह अनेक कष्टसाध्य जीर्ण रोगों को दूर कर स्वास्थ्य और बल की प्राप्ति कराता है। अकाल में वृद्धावस्था, मानसशक्ति का ह्रास और नपुंसकता आने पर च्यवनप्राशावलेह का कल्प कराना चाहिये। यह कल्प एक वर्ष पर्यन्त चालू रखना चाहिये। रोज सुबह १।-१। तोले तक च्यवनप्राश का सेवन करें। आध घन्टे बाद दुग्ध पान करें। पश्चात् क्षुधा लगने पर भोजन करें। भोजन सत्वर पचन हो तथा प्रकृति को अपथ्य न हो ऐसा करें। फिर रात्रि को च्यवनप्राशावलेह का सेवन करें और सोने के आध घन्टे पहले दूध पीते रहें तो विकार निवृत्त होकर बल, बुद्धि, इन्द्रियों को शक्ति, अग्नि और आयु की वृद्धि होती है तथा गई हुई युवावस्था की पुनः प्राप्ति होती है और ग्राम्यधर्म में उत्साह आता है।

सूचना–(१) जिन रोगियों की मूत्र की प्रतिक्रिया अम्ल हो, रात्रि को २-४ बार मूत्र त्याग के लिये उठना पड़ता हो, स्वप्न दोष बार-बार होता हो, पचनक्रिया मन्द हो, उदर में वायु भरी रहती हो जीर्ण मलावरोध रहता हो उन रोगियों को च्यवनप्राशका सेवन नहीं कराना चाहिये।

(२) जिन रोगियों को मल अति पतला उतरता हो और मूत्र में पीलापन बना रहता हो, उन रोगियों को च्यवनप्राश नहीं देना चाहिये।

(७) गोक्षुरादि अवलेह

विधि–५ सेर गोखरू जड़-सह उखाड़ थोड़ा कूट २० सेर पानी में पकावें। पानी चौथा हिस्सा रहने पर उतार मलकर छान लें। फिर चूल्हें-पर चढ़ाकर उबालें। शेष जल १। सेर रहने पर २॥ सेर मिश्री मिला मन्दाग्नि पर पका कर अवलेह सिद्ध करें। नीचे उतारने पर सोंठ, मिर्च, पीपल, नागकेशर, दालचीनी, इलायची, जायफल, अर्जुन वृक्ष की छाल और ककड़ी के बीज का मगज प्रत्येक ८-८ तोले और वंशलोचन ३२ तोले मिला दें। (आ. भि.)

मात्रा–२ से ४ तोले, रोज सुबह खाकर ऊपर से दूध पीवें।

उपयोग–इस अवलेह के सेवन से मूत्रकृच्छ्र, रक्तप्रमेह, पेशाब की जलन, पेशाब में रक्त, अश्मरी (पथरी) या रेती जाना और धातुदोष आदि दूर होते हैं। मूत्र रोग के नाश के लिये यह उत्तम औषधि है।

(८) सितोपलादि अवलेह

विधि–शुद्ध सिंगरफ, अभ्रकभस्म, श्रृंगभस्म, गिलोयसत्व और लौंग १-१ तोला और सितोपलादि चूर्ण ५ तोले को खरल में मिला लें। फिर शहद १० तोले मिलाकर लेह बना लें। (आ. नि. मा.)

मात्रा–१-१ माशा, दिन में ३ बार। चटाकर ऊपर अडूसे का क्वाथ पिलावें या ५-१० मिनट बाद थोड़ा बकरी का दूध पिलावें।

उपयोग–इस अवलेह के सेवन से क्षय, खांसी, उरःक्षत, हृदयशूल, ज्वर, मन्दाग्नि, निर्बलता आदि रोग दूर होते हैं। क्षय के लिये सरल और लाभदायक औषधि है। इस अवलेह से क्षय-कीटाणुओं की वृद्धि में प्रतिबन्ध होता है और शक्ति का संरक्षण होता है।

(९) कासकंडनावलेह

विधि–बकरी का मूत्र ५ सेर लेकर मन्दाग्नि से पकावें। रबड़ी के समान गाढ़ा होने पर नीचे उतारकर छोटी कटेली के फलों का चूर्ण और बहेड़े का चूर्ण ८-८ तोले तथा पीपल और लोहभस्म ४-४ तोले मिलावें। शीतल होने पर समभाग शहद मिलावें। (वृ.यो.त.)

मात्रा–२ से ४ माशे। निवाये जल के साथ दिन में २ से ४ बार दें।

उपयोग–यह अवलेह फुप्फुसों में संगृहीत दूषित कफ को बाहर निकालने का कार्य करता है। कास, जिसमें पीला दुर्गन्धमय कफ बार-बार निकलता रहता हो तथा मन्द-मन्द ज्वर, अग्निमांद्य, अति निर्बलता, छाती में भारीपन, उत्साह का अभाव और पाण्डुता आदि लक्षण प्रतीत हों, जिन रोगियों को वैद्यों ने त्याग दिया हो तथा जीर्ण कफकास, पथ्य के अपालन से कुपित हुई कास इनको यह नष्ट करता है। कफ को सरलता से बाहर निकालता रहता है तथा नयी उत्पत्ति में प्रतिबन्ध करता है। क्षय रोगी के लिये भी यह हितकारक प्रयोग है।

जिन रोगियों के फुप्फुसों के वायुकोष्ठों की आकुंचन-प्रसारण शक्ति (स्थितिस्थापक गुण) नष्ट हो गई हो तो फिर उसी हेतु से उनमें कफ भरा रहता हो, थोड़े परिश्रम से श्वास भर जाता हो तथा कफकास, श्वास, मन्द-मन्द ज्वर बना रहना, अग्निमांद्य, मलावरोध, मूत्र में पीलापन, आलस्य, तन्द्रा, हाथ पैर टूटना, शक्ति का अभाव भासना, ऋतु परिवर्तन और थोड़े से अपथ्य आदि से कष्ट बहुत बढ़ जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो उन रोगियों के लिये यह अवलेह कष्ट कम कराने में सहायक होता है। यदि इस अवलेह के साथ लोहबानपुष्प २-२ रत्ती मिलाते रहें तो कफनिःसरण में विशेष सुविधा रहती है।

सूचना–(१) फुप्फुसों को शीत न लग जाय यह सम्हालें।

(२) दूध अनुकूल हो तो सेवन करें अन्यथा नहीं। किन्तु अवलेह लेने पर १ घन्टे तक दूध नहीं लेना चाहिये।
(३) दही का पूर्ण रूप से त्याग करना चाहिये।

(१०) वासावलेह

प्रथम विधि–अडूसे का स्वरस, (यन्त्र से निकाला हुआ) ६४ तोले और शक्कर १२८ तोले मिलाकर पाक करें। फिर पीपल और घी ८ ८ तोले मिलाकर मन्द अग्नि से पकावें। चाटने योग्य हो तब उतार लेवें। ठण्डा होने पर ३२ तोले शहद मिला देवें।

वक्तव्य–कितने ही चिकित्सक इस अवलेह में बहेड़े और हल्दी का चूर्ण ४-४ तोले मिलाते हैं। बहेड़ा व हल्दी मिलाने से कफ सरलता से बाहर आ जाता है।

मात्रा–६माशे से १ तोला तक, दिन में २ बार। चटाकर गौ या बकरी का दूध पिलावें।

उपयोग–वासावलेह क्षय, खांसी, रक्तकास, श्वास, पार्श्वशूल, हृदयशूल, कण्ठ के दर्द, तृषा, उरःक्षत, रक्तपित्त और ज्वर को दूर करता है।

दूसरी विधि–अडूसे के ताजे पत्ते ४०० तोले लेकर आठगुने पानी में उबालें। चतुर्थांश पानी शेष रहें तब उतारकर छान लें, फिर हरड़ का चूर्ण २५६ तोले और शक्कर ४०० तोले मिलाकर मन्दाग्नि पर पाककर अवलेह तैयार करें। नीचे उतार वंशलोचन १६ तोले, पीपल ८ तोले, दालचीनी, तेजपाल, इलायची और नागकेशर ४-४ तोले का चूर्ण मिलावें। फिर ठण्डा होने पर शहद ३२ तोले मिला लें। (यो. र.)

मात्रा–१ से २ तोले, दिन में २ बार। चटाकर दूध पिलावें।

उपयोग–यह अवलेह रक्तपित्त, कास, श्वास, क्षय, विद्रधि, उदररोग, गुल्म, तृषारोग, पीनस, हृदयरोग, मलावरोध आदि के दोषों को दूर करता है। बालकों की काली खांसी में भी अच्छा लाभ पहुँचाता है।

(११) अष्टांगावलेह

विधि–कायफल, पुष्करमूल, काकड़ासींगी, धमासा, कालाजीरा, सोंठ, मिर्च और पीपल सब समभाग लेकर चूर्ण करें। फिर समान शहद मिला लें। इसे 'अवलेहिका' भी कहते हैं। (वृन्द)

मात्रा–४ से ६ माशे, दिन में ३ बार। चाटकर दूध पीवें। सन्निपात के रोगी के मुंह में रखकर चूसावें। अधिक कफप्रकोप होने पर अदरक के रस के साथ दें।

मात्रा–इस अवलेह के सेवन से कफ ज्वर, खांसी, श्वास, अरुचि, वमन, हिचकी, कफ और वात तथा सन्निपात के रोगों के गले का रोध, कफ और कास दूर होते हैं। न्यूमोनिया आदि रोगों में इसके सेवन से कफ सरलता से बाहर आ जाता है।

(१२) कुटजावलेह

विधि–कूड़े की छाल ४०० तोले को जौकूट कर १०२४ तोले पानी में डालकर काढ़ा करें। पानी चतुर्थांश शेष रहे तब उतारकर कपड़े से छान लेवें। इसमें गुड़ ११० तोले डालकर फिर औटावें। गाढ़ा होने पर रसोंत, मोचरस, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, लजालू, चीते की छाल, पाढ़, कच्चा बेलफल, इन्द्रजौ, बच, भिलावा, अतीस, बायविडंग, नेत्रबाला इन १७ औषधियों का ४-४ तोले चूर्ण मिलावें और घी १६ तोले डालें। अवलेह ठण्डा होने पर शहद १६ तोले मिलावें।

मात्रा–१ से २ तोले, दिन में ३ बार। बकरी के दूध, मट्ठा, दही अथवा घी के साथ देवें।

उपयोग–यह अवलेह बवासीर, अतिसार, अरुचि, संग्रहणी, पाण्डुरोग, रक्तपित्त, कामला, अम्लपित्त, सूजन, कृशता और पेचिश आदि रोगों को दूर करता है। भगन्दर में हितकर है। मलाश्रित वायु और गुदपाक का भी शमन करता है।

दूसरी विधि–कूड़े की छाल को १६ गुने जल में उबालकर ८वाँ हिस्सा जल शेष रहने पर हांडी को उतार क्वाथ को वस्त्र से छान लेवें। फिर पानी को कड़ाही में डाल पुनः चूल्हें पर चढ़ाकर गाढ़ा करें। पश्चात् कूड़े की छाल का चौथा हिस्सा गुड़ और ८वाँ हिस्सा अतीस का चूर्ण मिलाकर अवलेह बना लेवें। (च. द.)

मात्रा–आधा-आधा तोला, दिन में ३ बार चटावें।

उपयोग–इस अवलेह के सेवन से अतिसार (आमातिसार, त्रिदोषज अतिसार, रक्तातिसार, ज्वरातिसार),अरुचि, संग्रहणी, पेचिश, अम्लपित्त आदि रोग शमन होते हैं। यह अवलेह अन्त्रप्रदाह को दूर करने और अन्त्र को शक्ति देने के लिये विशेष प्रयोजित होता है। अग्निमन्द हो तो मात्रा कम देवें।

(१३) गुलाब का गुलकन्द

विधि–मौसमी गुलाब के ताजे फूलों की डीटें एवं बीच की केसर निकाल पंखड़ियों को अलग-अलग करके उनमें ३ गुनी पिसी हुई मिश्री मिलावें। कलई अथवा कांच के तसले में थोड़ी पंखुड़ियों और थोड़ी मिश्री को हाथ से मसलकर अमृतबान में डालते जायें। प्रथम अमृतबान के नीचे थोड़ी मिश्री की तह बिछावें, उस पर पंखड़ियों की मिश्री मिली तह लगावें। फिर केवल मिश्री, ऊपर पंखड़ियां और मिश्री मिली हुई तह रखें। इसी रीति से तहों को लगा सबके ऊपर मिश्री की तह डालें। फिर अमृतबान का मुंह बन्द कर कपड़मिट्टी करके रखदें। एक

मास बाद गुलकन्द तैयार हो जाता है।

मात्रा–१ से २ तोले तक दूध के साथ लेवें।

उपयोग–गुलकन्द दाह, पित्त दोष और कब्ज को दूर करता है तथा मस्तिष्क को शान्ति पहुंचाता है। इससे स्त्रियों के गर्भाशय की गरमी का शमन होकर अत्यार्तव (मासिक धर्म में ज्यादा रक्त जाना) रोग शान्त होता है।

(१४) कूष्माण्डावलेह

विधि–पेठे का स्वरस ४०० तोले, गाय का दूध ४०० तोले और आंवलों का चूर्ण ३२ तोले को एकत्र मिलाकर धीरे-धीरे मन्दाग्नि से पकावें। पिण्ड बंधने लगे तब ३२० तोले बूरा मिलाकर अवलेह बना लेवें। (आ.भि.)

मात्रा–२-२ तोले रोज दो बार। दूध के साथ देवें।

उपयोग–यह अवलेह रक्तपित्त, अम्लपित्त, दाह, तृषा और कामला रोग को नष्ट करता है, मस्तिष्क को शान्त बनाता है तथा आमाशय रस की उग्रता को दमन कर अग्नि को प्रदीप्त करता है।

दूसरी विधि–(कूष्माण्ड खण्ड) पक्के पेठे को बारीक कसकर जल निचोड़ लेवें। फिर कसे हुए पेठे को सुखा कलई किये हुए तांबे के पात्र में डाल घी में भूनकर लाल बना लेवें। पश्चात् पेठे के सूखे चूर्ण के सम परिणाम में बादाम के मगज को जल में भिगो, ऊपर से पतले छिलके निकाल, पीसकर घी में अलग भून लें एवं पेठे के समान मावे को घी में अलग भून लें। तत्पश्चात् जायफल, लौंग, जावित्री, छोटी इलायची के दाने, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर और कमल गट्टे का मगज (भीतर से हरी पत्ती निकाले हुए) १ सेर पेठे में २-२ तोले के हिसाब से लें। बारीक चूर्ण कर पेठा, बादाम, मावा और चूर्ण सबकों मिला लें। फिर इन सबके वजन से दुगुनी शक्कर की चाशनी और १ तोला केशर मिला अवलेह बना लेवें। (आ. भि.)

मात्रा–१ से २ तोले, दिन में २ बार। गोदुग्ध के साथ लेवें।

उपयोग–यह अवलेह अम्लपित्त, दाह, तृषा, भ्रम, शोष, धातुक्षय और कामला आदि रोगों को नष्ट करता है तथा अग्नि को प्रदीप्त करके शरीर को पुष्ट बनाता है।

(१५) मधुयष्ट्याद्यवलेह

प्रथम विधि–मुलहठी, रक्तचन्दन, रसौंत, पीपल की लाख, लाल कमल के पुष्प, कुश की जड़, वीरण (खस) की जड़, खरैटी की जड़, अडूसे की जड़, बेर की गुठली की मींगी, मोथा, मोचरस, बेलगिरी, दारुहल्दी, धाय के फूल, अशोक की छाल, मुनक्का, जपाकुसुम(गुड़हर) की कली, कमल के पत्ते, आम की कोंपल, जामुन की कोंपल, शतावर, विदारीकन्द, रौप्यभस्म, लोहभस्म, और अभ्रक भस्म ये २६ चीजें २-२ तोले लें। मिश्री १०४ तोले शतावर का स्वरस ६४ तोले और शहद ८ तोले लें। प्रथम मुलहठी से लेकर विदारीकन्द तक सब औषधियों को अलग-अलग कूटकर कपड़े में छान लें, तीनों भस्में खरलकर मिला लें। फिर शतावर के स्वरस को कड़ाही में डाल कर पकावें, उसमें मिश्री मिलाकर चाशनी करें, फिर भस्म मिश्रित चूर्ण मिला लें, शीतल होने पर शहद मिलाकर कांच के बरतन में रख दें।(आयुर्वेद संग्रह)

मात्रा–६-६ माशे, दिन में २ बार। खिलाकर अशोकारिष्ट पिलावें।

उपयोग–यह अवलेह प्रदर, वेदनायुक्त कुक्षिशूल, दु:सह बस्तिशूल और योनिशूल आदि रोगों को दूर करता है। स्त्रियों के लिये यह अमृत के सदृश हितकारी है। जीर्ण रक्तपित्त, रक्तातिसार, रक्तार्श, मूत्ररोग, दाह, वमन, भ्रम (चक्कर आना) आदि इस अवलेह के सेवन से दूर हो जाते हैं।

द्वितीय विधि–मुलहठी, पीपल, मुनक्का, लाख, काकड़ासींगी और शतावर १-१ तोला, वंशलोचन २ तोले और मिश्री ३२ तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करें। बाद में १६ तोले घृत मिलावें। पश्चात् चाटने लायक हो जाय उतना शहद मिला लें।(वृन्द)

मात्रा–१-१ तोला, दिन में ३ बार चाटें।

उपयोग–यह अवलेह उर:क्षत, कास, दाह और रक्तपित्तका शमन करता है।

(१६) द्राक्षावलेह

विधि–१ सेर मुनक्का को जल में १ घण्टा भिगो मसलकर धो लें। फिर दूध मिला चटनी की तरह पीसकर कल्क तैयार करें। पश्चात् २० तोले गोघृत में मन्दाग्नि पर भूनें। बाद में २ सेर शक्कर की चाशनी करके मुनक्का मिला देवें। साथ में जायफल, जावित्री, छोटी इलायची, वंशलोचन, लोंग, दाल चीनी, तेजपात, नागकेशर, छिलके तथा जीभी निकाली हुई कमल गट्टे की गिरी १।-१। तोले का बारीक चूर्ण और केशर ३ माशे मिलावें। (वै.सा.सं.)

मात्रा–१ से २ तोले, दिन में २ बार। दूध के साथ देवें।

उपयोग–यह अवलेह अम्लपित्त, रक्तपित्त, दाह, पाण्डु, कामला, क्षय, भ्रम, शोथ, सिरदर्द, बद्धकोष्ठ, अतिसार, अरुचि, मन्दाग्नि और रक्तार्श में जलन इत्यादि को दूर करता है।

(१७) आर्द्रकावलेह

विधि–बारीक कतरे हुए अदरक के टुकड़े १ सेर, पुराना गुड़ १ सेर और घृत ४० तोले लें। पहले अदरक के टुकड़ों को घी में लाल होने तक भूनें पश्चात् गुड़ को थोड़े जल में पाक करें। फिर अदरक के टुकड़ों को मिला लें। पश्चात् दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, लोंग, बहेड़ा (दूसरी बार) भारगंमूल, अडूसे के पत्ते, चिरायता, पुष्कर मूल, देवदारु, असगन्ध, जायफल, जावित्री, अगर, कत्था, मुनक्का ये २३ औषधियां १-१ तोला और लोहभस्म २ तोले मिलाकर अवलेह सिद्ध करें। (आ.भि.)

यह प्रयोग पाकावली (उपाध्याय माधव) का है। मूलग्रन्थ में अदरक ६४ तोले, घी १६ तोले ३२ औषधियां ४-४ तोले और लोहभस्म ८ तोले लिखी है। आर्यभिषक्कार ने समयानुसार प्रक्षेप वाली औषधियों की मात्रा कम की है एवं उग्रता दमनार्थ घृत की मात्रा बढ़ा दी है।

मात्रा–१-१ तोला, दिन में २ बार।

उपयोग–यह अवलेह कफयुक्त कास, श्वास, धातुक्षय, शोष, कफप्रकोप मन्दाग्नि, उदररोग, आमवृद्धि, हृदयरोग, रक्तदोष और क्षय में लाभ करके अग्नि को प्रदीप्त करता है तथा कांति, बल और शुक्र की वृद्धि करके शरीर को पुष्ट बनाता है।

(१८) एरंड पाक

विधि–१ सेर अरंडी के अन्तर्जिह्वा निकाले हुए मगज को पीस, ४ सेर गोदुग्ध में मिलाकर मावा करें। पश्चात् ४० तोले घृत मिलाकर भूनें। फिर २ सेर शक्कर की चाशनी कर मावे को मिला दें और सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची, पीपलामूल, चित्रकमूल, चव्य, गिलोय सत्व शठी, अजवायन, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, असगन्ध, खरेंटी के बीज, पाठा, हाऊबेर, बायबिडङ्ग, गोखरू, कूडे की छाल, देवदारु, वृद्ध दारु, विदारीकन्द सब १-१ तोले का कपड़छन चूर्ण मिलाकर लड्डू बना लें। (आ.भि.)

मात्रा–४ से ८ तोले। सुबह खाकर ऊपर से दूध पीवें।

उपयोग–यह पाक वातव्याधि, शूल, शोथ, अण्डवृद्धि, उदररोग, बद्धकोष्ठ, अफारा, गुल्म, आमवात, कटिग्रह, हिक्का, श्वास, कास, पक्षाघात, पांगुल्य, अर्दित, वातरोग, अश्मरी, और अर्शरोग आदि को दूरकर बल, वीर्य और कांति की वृद्धि करता है तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है।

(१९) बादाम पाक

प्रथम विधि–बादाम का मगज ४० तोले, मावा २० तोले, बीहीदाना ४ तोले, लौंग, जायफल, जावित्री, केशर, वंशलोचन ये सब ६-६ माशे, कमलगट्टों की मींगी, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर १-१ तोला, अभ्रक भस्म, वङ्गभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक ६-६ माशे और प्रवालपिष्टी ३ माशे लें। पहले बादाम के कल्क को ३० तोले घी में भूनें। फिर मावे को १० तोले घी में भूनकर मिला लेवें। पश्चात् २॥ सेर शक्कर की चाशनी कर उसमें केशर और पाक मिलावें। फिर काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण और उसमें भस्म मिलाकर ४-४ तोले के लड्डू बांधे।(वै.सा.सं.)

मात्रा और उपयोग–दूसरी विधि के साथ लिखे हैं।

द्वितीय विधि–बादाम का मगज १ सेर को जल में भिगो, छिलका निकाल कर कल्क करें। पश्चात् ४ गुने गौदुग्ध में मिलाकर मावा करें। फिर १ सेर घी मिलाकर भूनें। पश्चात् ४ सेर मिश्री की चाशनी कर १ तोला केशर और मावे को मिला दें तथा जावित्री, जायफल, सोंठ, मिर्च, पीपल, लोंग, दालचीनी, तेजपात, इलायची, विदारीकन्द सबको १-१ तोला ले कूट कपड़छन चूर्ण करके मिला दें एवं रससिंदूर, अभ्रकभस्म, लोहभस्म और वगंभस्म १-१ तोला मिलावें।

मात्रा–२ से ४ तोले खाकर ऊपर २० तोले गौदुग्ध पीवें।

उपयोग–बादाम का पाक मस्तिष्क और हृदय को लाभदायक है। मानसिक श्रम और वृद्धावस्था की निर्बलता, वातवृद्धि और शुक्रक्षय आदि को दूर करके अग्नि को प्रदीप्त करता है। बल, वीर्य, स्मृति, आयु और कान्ति को बढ़ाता है।

(२०) सालमपाक

विधि–पन्जासालम ४० तोले, पिस्ता २० तोले, बादाम २० तोले, चिरौंजी ९ तोले, अखरोट १ तोला, सफेद मूसली ९ तोले, गोखरू ४ तोले, असगन्ध, तालमखाना, शतावर, रुमीमस्तंगी, कौंच बीज २-२ तोले, केशर, जायफल, जावित्री, लौंग, शीतल मिर्च, वंशलोचन, दालचीनी और बिहीदाना १-१ तोला, मिश्री १२८ तोले और घी ४० तोले लें। पहले सालम के बारीक चूर्ण को २०-२० तोले घी में भून लें। पश्चात् पिस्ता, बादाम, चिरौंजी और अखरोट के कल्क को २० तोले घी में भूनें। फिर मिश्री की चाशनी कर केशर, सालम मिश्रित भूने हुए चूर्ण को मिलावें। अन्त में शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर ४-४ तोले के लड्डू बांधें।

सूचना–सालम को मन्दाग्नि पर भूनें। जल न जाय यह सम्हालें, सावधान रहकर हिलाते रहें अन्यथा पाक में जली दुर्गन्ध आयगी।

मात्रा–१ से २ लड्डू खाकर ऊपर २० तोले दूध पीवें।

उपयोग–यह पाक वीर्यवर्द्धक और पौष्टिक है। अण्डकोष की नसों के दोष से वीर्य का पतलापन, शारीरिक निर्बलता, मस्तिष्क की निर्बलता, अधिक निद्रा, आलस्य और मन्दाग्नि आदि दोषों को दूर करता है।

क्षीण शुक्र वालों के लिए यदि भस्म मिलानी हो तो रस सिन्दूर १ तोला, सुवर्ण भस्म १ तोला, अभ्रक भस्म २ तोले और वगंभस्म २ तोले मिला लेने से पाक विशेष लाभदायक बनता है। भस्म मिलाने पर पाक की मात्रा कम लेनी चाहिये। शीतकाल में सेवन करने से विशेष लाभ पहुंचाता है।

(२१) मदनमोदक

विधि–सुवर्ण सिन्दूर (पूर्णचन्द्रोदय रस अथवा षड्गुण जारित रससिन्दूर)लौहभस्म, अभ्रक भस्म, वगंभस्म, जलबेंत के बीज, चोबचीनी, सेमल का कन्द, धामन की छाल, केशर, जीरा, जायफल, लौंग, समुद्रशोष, सोंठ, मिर्च, पीपल और वंशलोचन ये १७ औषधियां ६-६ माशे तथा जावित्री, शतावरी, मुनक्का, खैरैटी की जड़, काकड़ासींगी, छोटी इलायची के बीज, कौंच के बीज, मीठा कूठ, नागरमोथा, बिदारीकन्द, पेठा, नाग केशर, जटामांसी, शुद्ध कपूर, शीतल चीनी और गोखरू ये १६ औषधियां २-२ तोले लें। सबसे आधी(२०। तोले) भुनी भांग और सबसे दूनी (१२१॥ तोले) मिश्री लें। मिश्री की चाशनी लेकर क्रमशः सब औषधियों के कपड़छन चूर्ण को मिला ३-३ माशे की गोलियां बना लें। (र.यो.सा.)

मात्रा–१से २ गोली, सुबह शाम। मिश्री मिले निवाये दूध के साथ सेवन करें। मात्रा धीरे-धीरे बढ़ावें।

उपयोग–इस मोदक के सेवन से नष्टेन्द्रिय, नष्ट शुक्र और वलीपलित व्याप्त जर्जरित वृद्ध भी युवा के समान बनते हैं और ग्रहणी, श्वास, कास, अर्श, प्रमेह, मधुमेह दूर होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट और तेजस्वी बनता है। यह मोदक परम रसायन है।

(२२) भल्लातक पाक

विधि–अच्छे पक्के भिलावे(जो जल में डालने से डूब जायें)१२८ तोले लेकर २-२ टुकड़े करें। फिर १०२४ तोले दूध में मिलाकर मन्दाग्नि से पचन करें। खोवा बन जाने पर भिलावे को निकाल डालें। पश्चात् खोवे में १२८ तोले घृत मिलाकर पकावें। बाद में उसके साथ शक्कर २५६ तोले की चाशनी तथा त्रिफला १२ तोले, नागरमोथा, मजीठ, धनियां, जीरा, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, छोटी इलायची के दाने, हाऊबेर, मुलहठी, तेजपात, लौंग, नागकेशर, जायफल, शीतलमिर्च, बिदारीकन्द, कमल, वंशलोचन, लोहभस्म, ताम्रभस्म, भीमसेनी कपूर और कत्था इन २२ औषधियों के १-१ तोले चूर्ण को मिलाकर पाक बना लें। (र.यो.सा.)

सूचना–(१) पाक के समय जो वाष्प निकलती है, उससे बचना चाहिये। अन्यथा शोथ हो जाने का भय रहता है।

(२) इस पाक में भिलावे जो निकाल दिये हैं, उनको भी चटनी की तरह पीस घी में भूनकर पाक बना लें, तो वे भी अच्छा काम देते हैं।

(३) भिलावों के टुकड़े करते समय हाथों को भिलावे का तैल न लगने दें। कदाच लग जाय तो, तुरन्त घी या तैल लगा देना चाहिये।

मात्रा–१ से २ तोले, दिन में दो बार सेवन करें।

उपयोग–इस पाक के सेवन से रक्तपित्त, कुष्ठ, दाद, पामा, विचर्चिका, वातरक्त, शून्यवात, वंशपरम्परागत व्याधियां और वातरोग नष्ट होते हैं। गलित्कुष्ठ में इस पाक के सेवन से रोग का बढ़ना रुक जाता है। पक्षाघात में अच्छा लाभ पहुँचता है। अस्थिभग्न एवं मूढ़मार में भी लाभ करता है।

सूचना–यह पाक पित्त प्रधान प्रकृतिवाले को एवं ग्रीष्म ऋतु में नहीं लेना चाहिये।

इस पाक के सेवनकाल में गरम-गरम भोजन, अधिक गरम जल से स्नान, सूर्य के ताप में भ्रमण और अग्निसेवन निषिद्ध हैं।

इस पाक के सेवन से कदाच खुजली हो जाय तो पाक बन्द करें और नारियल की तैल की मालिश करें तथा भोजन में बादाम, पिस्ता, काजू, नारियल की गिरी, चिरौंजी आदि तैलीय फलों को सेवन करें।

(२३) विजयापुष्पाद्यवलेह

विधि–शुद्ध गांजा १४ तोले, जायफल, जावित्री, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, अकरकरा और केशर २-२ तोले तथा बादाज की गिरी ४ तोले लें। सबकों मिलाकर कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर १ सेर मिश्री की अवलेह लायक चाशनी कर चूर्ण मिलावे फिर कस्तूरी और अम्बर ६-६ माशे डालें।

गांजे की शुद्धि–गांजे में से शाखा और बीजों को निकालकर केवल दलपत्र लें। उसे जल में १ घण्टे भिगो देवें। फिर मलकर जल निकाल डालें तथा बार-बार जल डाल-डाल कर हरा जल निकले तब तक धोवें। पश्चात् छाया में सुखा देवें।

मात्रा–१से ३ माशे। प्रातः काल या रात्रि को चाटकर ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें।

उपयोग–इस अवलेह के सेवन से थोड़े ही दिनों में शरीर में स्फूर्ति आती है; शान्त निद्रा मिलने लगती है, मन प्रफुल्लित बनता है, पचन शक्ति सबल होती है तथा शरीर पुष्ट बनता है। शीघ्र पतन, उदासीनता, स्मृतिह्रास आदि दूर होते हैं। जिन स्त्रियों को हिस्टीरिया का दौरा होता है उनके लिए यह अवलेह हितावह है।

यदि केवल शुद्ध गांजे के साथ समभाग गुड़ मिला मटर के समान गोली बनाकर हिक्का के रोगी को दी जाय तो हिक्का शांत होती है। आवश्यकता पर आध या एकघण्टे पर दूसरी बार गोली दी जाती है। इस गोली से कुछ नशा आता है।

(२४) दवाउल मुश्क

विधि–नरकचूर, दरूनज अकरबी, मोतीपिष्टी, कहरवापिष्टी, प्रवालपिष्टी, प्रत्येक ३५-३५ माशे, आबरेशम, बहमन सफेद, बहमनलाल, जटामांसी इलायची १७॥-१७॥ माशे, पत्थर फूल (छरीला), पीपल और सोंठ १४-१४ माशे तथा कस्तूरी ६ माशे लें। सबको कपड़छन करके मिला लें। पश्चात् चाटने योग्य तैयार हो सके उतना शहद मिलाकर माजून बना लें।

आबरेशम को कैंची से कतर कृमि को निकाल देने के पश्चात् बारीक टुकड़े करके प्रयोग में मिलाना चाहिये।

वक्तव्य–हमने दवाउल मुश्क विशेष बनाने का प्रारम्भ किया है। जिसमें कस्तूरी पाठ की अपेक्षा ४ गुनी तथा कस्तूरी से आधा अम्बर मिलाते हैं। इस विशेष प्रकार की मात्रा ४ रत्ती है।

मात्रा–१ से ३ माशे, दिन में २ बार। चाटकर दूध पीवें। मस्तिष्क शामक असर पहुचाने के लिये सुवर्ण भस्म १/४ रत्ती, मुक्तापिष्टी १/२ रत्ती और प्रवालपिष्टी १ रत्ती मिला लेने पर तत्काल लाभ मिलता है।

उपयोग–यह दवाउल मुश्क यूनानी का प्रसिद्ध और सफल योग है। यह मस्तिष्क शामक है। इससे मुख्य औषधि कस्तूरी है। मोती, अम्बर, केसर आदि गुणवर्द्धक सहायक द्रव्य हैं। शेष गौण द्रव्य भी गुण-वृद्धि और उपद्रव के शमनार्थ मिलाये गये हैं। यह औषधि यकृत, हृदय और मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करती है तथा उदरस्थ दोष को निवृत्त भी कराती है। इनके अतिरिक्त मस्तिष्क शान्ति और कामोत्तेजना के लिए सेवन करने वालों को गुण भी दर्शाती है।

वातप्रधान प्रलापयुक्त सन्निपात, श्वासावरोध, हृदय एवं नाड़ी गति मांद्य, उन्माद, उदरस्थ वायु(गैस) का मस्तिष्क में पहुंचकर विविध विकारों की प्राप्ति होना तथा निद्रानाश इन पर यह दवाउल मुश्क हितावह है। यदि रोगी मलावरोध से पीड़ित हो तो पहले उसका उपचार कर लेना चाहिए, फिर बादाम तैल का सेवन कराते रहना चाहिए।

राजयक्ष्मा की प्रारम्भिक अवस्था में सुवर्ण, अभ्रक, श्रृंग भस्म प्रधान औषधि सेवन के साथ इस औषधि का सेवन कराया जाय तो शीघ्र लाभ पहुंच जाता है।

कई सगर्भा स्त्रियां कृश और निर्बल होती हैं। वे कई बार विविध रोगों की शिकार हो जाती हैं। राजयक्ष्मा, मलावरोध, ज्वर, वातविकार, शक्ति ह्रास आदि रोग उपस्थित होते हैं। कईयों को गर्भपात हो जाता है। उन स्त्रियों को ६ मास हो जाने पर आवश्यकता हो तो इस औषधि का सेवन कम मात्रा में कराया जाता है। परिणाम में गर्भ और गर्भिणी दोनों को पोषण मिल जाता है और यथासमय स्वस्थ संतान का जन्म होता है एवं इस शिशु को वातविकार, धनुर्वात आदि नहीं होता तथा क्वचित् कोई रोग हो जाय तो उससे उसकी रोग निरोधक शक्ति रोगों को सत्वर दूर कर देती है।

दवाउल मुश्क उत्तम हृद्य है। वातप्रकोपजशूल, **हृदयशूल (Angina pectoris)**, उदरशूल (Angina abdominis), हिस्टीरिया या अपचन जन्य हृदयशूल (Angina false) और फुफ्फुसावरण शूल आदि एवं स्वरयन्त्र प्रदाह, शीत लग जाना, वाताक्षेप, हृदय में भारीपन और मानसिक व्याकुलता आदि विकारों को यह दूर करता है।

जिह्वालोलुप व्यक्ति स्वादिष्ट भोजन मिलने पर बार-बार अत्यधिक परिमाण में खा लेते हैं, उनका आमाशय शिथिल और प्रसारित हो जाता है। इसके अतिरिक्त गरम-गरम पेय, फिरंग विष, उदरकृमि आदि कारणों से भी ऐसा हो जाता है। उनकी चिकित्सा तुरन्त न करने पर उदावर्त(गैस बनने) की संप्राप्ति होती है। आमाशय रिक्त होने पर बार-बार गैस उठता रहता है। ऐसी अवस्था में भी यदि अपथ्य सेवन होता रहे और कब्ज होने पर विरेचन लेते रहे, तो अन्त्र भी वायु से भर जाती है, हृदय में भारीपन आ जाता है और अति व्याकुलता होती है। ऐसे रोगियों को दवाउल मुश्क देने पर शान्ति मिल जाती है। इस औषधि में मूल रोग को दूर करने की शक्ति न होने पर भी लक्षणों का तुरन्त दमन हो जाता है।

गैस उठने पर अनेकों के मस्तिष्क, नेत्र और हृदय को हानि पहुंचती रहती है। अतः उनको अनुपान रूप से वातपित्त शमनार्थ वैद्यजीवनोक्त पञ्चमूलादि कषाय अथवा वातशमनार्थ रास्नापञ्चक क्वाथ दिया जाता है।

मुद्दतीज्वर, आशुकारी अतिसार, संग्रहणी, राजयक्ष्मा, चोट लग जाना और मानसिक आघात आदि कारणों से शक्तिपात होने पर सहायक औषधि रूप से दवाउल मुश्क लेने से हृदय उत्तेजित होकर बलवृद्धि और जीवन की रक्षा हो जाती है।

कई सज्जन शारीरिक और मानसिक शक्ति के संरक्षणार्थ इस औषधि का प्रतिदिन प्रातः काल एक बार सेवन करते रहते हैं। उनका स्वास्थ्य दीर्घकाल तक ठीक बना रहता है वे शारीरिक रोग के शिकार प्रायः नहीं होते।

सूचना–कई धनिक इस औषधि में सुवर्ण भस्म, माणिक्य पिष्टी, रौप्यभस्म गुण वृद्धि के लिये मिलाते हैं, **ऐसे योग को दवाउल मुश्क (जवाहर वाला) संज्ञा दी जाती है।**

(२५) माजून नुकरा

विधि–कस्तूरी, मोतीपिष्टी, माणिक्यपिष्टी, पन्नापिष्टी, स्वर्णवर्क, अम्बर ये ६ वस्तुएं ४॥-४॥ माशे, संगेयशव पिष्टी, कहरवा पिष्टी, प्रवालपिष्टी और जहरमोहरापिष्टी ६-६ माशे, वंशलोचन १ तोला, बालछड़ ६ माशा, आबरेशम कूटा हुआ १ तोला लें। इन सबको अर्क केवड़ा, अर्क वेदमुश्क में घोटें, फिर अर्क सेव और अर्क अनार १०-१० तोले, अर्क केवड़ा, अर्क गावजवां, अर्क वेदमुश्क २०-२० तोले और मिश्री ४० तोले मिलाकर

चाशनी करें। चाशनी में वर्क चांदी ४ तोला मिलाकर खूब घोटें, फिर उपरोक्त औषधियां मिलाकर एक जीव करें, जिससे वर्क चांदी और दवाइयां चाशनी में एक रूप हो सकें। (राजवैद्य पं. रमेशचन्द्र जी)

मात्रा–१ से २ माशे तक।

उपयोग–यह यूनानी योग बड़ा सौम्य हृद्य, वातनाड़ियों के दौर्बल्य तथा विकारों को दूर करने वाला है। वर्क चांदी मिले होने से पित्त को नहीं बढ़ाता है, रक्त चापाधिक्य से उत्पन्न उपद्रवों में दुर्बलता मिटाने के लिए, मस्तिष्कगत कफ, आम, विष का शोधन करने के लिये सर्वोत्तम योग है। किसी भी कारण से उत्पन्न दिल की घबराहट को दूर करकें शांति व बल प्रदान करता है। जब ऊष्मा बढ़ने के डर से जहाँ दवाउलमुश्क नहीं दी जा सके, तब इस योग को निर्भय होकर दिया जा सकता है। यह यूनानी का बड़ा सुन्दर योग है।

सूचना–अम्बर को प्रथम थोड़ी मिश्री में पीसकर मिलाना चाहिए।

(२६) माजूज हिजरलयहूद

विधि–कद्दू, ककड़ी, खीरे और खरबूजे के बीजों का मगज और काकनुज ५-५ माशे और हिजरलयहूद ५० माशे लें। सबको कूट कपड़छनकर खरल में बारीक करें। फिर चाटने लायक शहद मिलाकर माजून बनालें (ति.अ.)

मात्रा–१ से २ माशे। सुबह जल अथवा गोखरू के क्वाथ या चने के क्वाथ के साथ दें।

उपयोग–यह माजून मूत्राशय की शर्करा (कंकड़ी) को निकालने में उपयोगी है। अश्मरी को तोड़-तोड़कर निकाल देती है।

(२७) माजून फिलासफा

विधि–सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, आंवला, बहेड़ा, चित्रकमूल की छाल, झराबंद, मद्देहर्ज, पंजा सालब, मगज चिलगोजा, वेखबाबूना (बाबूना का मूल) और जटामांसी ये १२ औषधियां ६-६ माशे, बाबूना के बीज १५ माशे, मुनक्का बीज निकाली हुई ३ तोले लें। मुनक्का के अतिरिक्त अन्य औषधियों का कपड़छन चूर्ण करें। चूर्ण से दूना शहद और मुनक्का का कल्क मिलाकर बोतल में भर लें। (घ.वै.)

मात्रा–६ माशे से २ तोले। दिन में २ बार अर्क मकोय या अर्क सौंफ के साथ दें।

उपयोग–यह माजून अग्नि को प्रदीप्त करती है, वीर्य वृद्धि करती है एवं स्मरण शक्ति को बढ़ाती है। ज्यादा मूत्र होता हो उसे कम करती है। कमर की पीड़ा, कफवृद्धि, वृक्क स्थान का शूल और सन्धिवात को दूर करती है। बहुमूत्र, मूत्रातिसार, सोमरोग और मधुमेह में भी हितकर है।

(२८) माजून चोबचीनी

विधि–चोबचीनी २० तोले, असगन्ध १० तोले और मीठीं सुरंजान ५ तोले लेकर बारीक चूर्ण करें। बाद में ४ सेर शक्कर की अवलेह के समान चाशनी बना चूर्ण मिलाकर माजून बना लें।

मात्रा– १ से २ तोले, दिन में २ बार। दूध के साथ दें।

उपयोग–इस माजून के सेवन से उपदंश और सुजाक से होने वाला रक्त विकार, संधिवात और कुष्ठ आदि रोग दूर होते हैं।

(२९) माजून उशबा

पहली विधि–उशबा मगरवी, बिसफाईज कस्तकी (Polypodiam Vulgare) अफतीमून विलायती, गाऊजुबान, कबावचीनी, दालचीनी ये ६ औषधियां २-२ तोले, गुलाब के फूल, चोबचीनी, सफेद चन्दन चूर्ण और लाल चन्दन ये ४ औषधियां ३-३ तोले, सनाय ४ तोले, हरड़, बालछड़ १-१ तोला, हरड़ ६ माशे, बहेड़ा ७ माशा सबको कूटकर वस्त्रछान चूर्ण कर लेवें। फिर शक्कर ६० तोले, शहद ४० तोले इनको यथाविधि पाककर चूर्ण मिलाकर माजून बना लेवें।

मात्रा–आध तोले से १ तोले तक। रात्रि या प्रातः काल सेवन करें। अनुकूल हो तो ऊपर गोदुग्ध सेवन करें।

उपयोग–यह माजून विशेषतः ज़ीर्ण लीन विष को जलाने और स्वदेद्वारा विष को बाहर निकालने के लिए प्रयोजित होती है। इसके सेवन से प्रवृत्ति भेद से एकाध दस्त अधिक आता है। जीर्ण फिरंग, जीर्ण सुजाक, नाड़ीव्रण, विस्फोटक आदि के लीन विष से उत्पन्न रक्तविकार, चर्मरोग, कण्डू, अर्श और संधिस्थानों की वेदना आदि को दूर करती है। इसके अतिरिक्त अर्बुद (केंसर और ट्यूमर) अन्तर्विद्रधि, कोथ, जनित लीन विष को जलाने में उपयोगी है।

द्वितीय विधि (दस्तावर)–उशवा मगरबी (असली) १ तोला, बिसफाईज ३ तोला, अफतीमून विलायती ३ तोला, गुलाब के फूल ३ तोला, वंशलोचन १॥ तोला, चोबचीनी नयी ६ तोला, सुरंजान शीरी (मीठी) ३ तोला, चन्दन सफेद चूरा ३ तोला, सनाय के पत्ते १२ तोला, रेवन्दचीनी १॥ तोला, शहद १३२ तोला, बादाम रोगन ७॥ तोला इनमें से काष्ठादि दवाओं को कूटकर कपड़छन चूर्ण कर लेवें। शहद १३२ तोले में १० तोला अर्क गुलाब डालकर १-२ उफान ले लेवें, फिर उसे छान लेवें, अगर ठण्डा हो जाय तो फिर आधा उफान ले लेवें, नीचे उतारकर बादाम रोगन मिलावें, फिर ठण्डा होने पर कपड़छन चूर्ण थोड़ा-थोड़ा करके मिलावें। अच्छी तरह से घोट लेवें ताकि दवा और शहद एक रूप हो जाए। (श्री वैद्यराज रमेशचन्द्रजी व्यास)

मात्रा–६ माशे से १॥ तोला तक। रात्रि को या प्रातः काल दिन में १ बार।

उपयोग–यह माजून उत्तम रक्तशोधक है, उत्तानविष और रक्तादि धातुओं में लीन विष दोनों को नष्ट करता है। पचनसंस्थान के [illegible] मसूड़े, मुख ग्रसनिका, आमाशय नलिका, आमाशय, यकृत और लघु-बृहद् अन्त्र इन सबमें से किसी के भी भीतर क्षत, विद्रधि, [illegible] अथवा ट्यूमर) आदि विकारों में से कोई हो रहा हो या हुआ हो और विष उत्पन्न होता रहता हो तो उस पर भी इस माजून का प्रभाव [illegible] रहता है। इसी तरह फुफ्फुस, गर्भाशय, मस्तिष्क आदि में भी उक्त विकार हो तो उनसे उत्पन्न विष का भी दमन होता है। जब तक मूल हेतु दूर न होगा तब तक रोग तो दूर न हो सकेगा। किन्तु विषोत्पत्ति व वृद्धि का दमन यह अवश्य करती है।

पचनसंस्थान में आमविष, कृमि, पूय, मल आदि कुल संगृहीत हुये हों तो उस [illegible] को रोज एक या दो दस्त लगाकर बाहर [illegible] रहती है, साथ-साथ रक्त मांसादि धातुओं के भीतर जो विष लीन हो गया हो उसे जलाती है एवं स्वेदद्वारा बाहर भी निकालती रहती है। इस तरह उत्तान व लीन दोनों प्रकार के विषों को कुछ दिनों में नष्ट करके देह को पूर्ववत् स्वस्थ बना देती है।

विषों के अनेक प्रकार हैं, प्राणिज, वनौषधज विष, खनिज विष ये सामान्यतः अधिक आपत्तिकर होते हैं, तथापि उन लीन विषों को भी यह नष्टकर देती है।

बासी भोजन जनित विकृति, भोजन की संजोगजविकृति तथा ताम्रादि पात्रों के भीतर रखे हुये दुग्धादि पदार्थों के समान, दूषित पात्रों के संयोग से भोजन में विकृति हुई हो तो उसे भी यह माजून दूर करती है।

क्वचित् दूषित औषधियां (कच्ची ताम्र, नागभस्म, पारद विष आदि-आदि) के सेवन से विषप्रकोप हुआ हो तो उसे भी शमन करने के लिये यह माजून अत्यन्त उपकारक है।

संक्षेप में यह कहना पड़ेगा कि जिन मनुष्यों को **अतिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी रोग भूतकाल में न हुये हों और इस दस्तावर माजून के सेवन में समर्थ हों उन व्यक्तियों के लिये यह अत्यन्त हितावह है।**

(३०) माजून कचूर

विधि–कचूर, दरूनज, जायफल, लौंग, अकाकिया, अजवायन, अजमोद और सोंठ १-१ तोला सिरके में भिगौया हुआ जीरा २॥ तोले और जुन्देबेदस्तर ३ माशे लें। पहले जुन्देवेदस्तर को ४ तोले शहद में मिला लें, पश्चात् शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण और ९ तोले शहद मिलाकर माजून बना लेवें। (ति.अ.)

मात्रा–२ से ३ माशे निवाये जल या अशोकारिष्ट के साथ दें।

उपयोग–यह माजून गर्भाशय में उत्पन्न वायु, मासिक धर्म में रक्त की गांठ और काले रंग का रक्त (शूल और आवाजसहित) गिरना, कमर और शिर में दर्द रहना आदि को दूर करती है।

(३१) खमीरा गाऊजुबान (सादा)

विधि–गाऊजुबान ३ तोला, गाऊजुवान पुष्प, धनियां, अपक्व आबरेशम कैंची से कतरा हुआ, चन्दन सफेद, वादरंज वोया, उस्तेखद्दूस, बालंगा बीज, जुख्म फरंजेमुश्क, बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, तोदरी सुर्ख, तोदरी सफेद, ये १२ औषधियां १-१ तोला मिश्री या कन्द २ सेर, शुद्ध मधु एक पाव सब औषधियों को रात्रि को २ सेर पानी में भिगो देवें, प्रातः क्वाथ करें। तीसरा भाग जल शेष रहने पर हाथ से मलकर कपड़े में छान लेवें। क्वाथ जल में मिश्री की चाशनी शर्बत से कुछ गाढ़ी लेवें। इसके बाद मधु मिलावें। मधु मिलाने के बाद दो तीन उफान चाशनी में और आजावे तब नीचे उतार लेवें। फिर कूंडी या कड़ाही में सोटे से खूब घोटें। यहां तक घोटें कि खमीरा गाऊजुबान का रंग बिलकुल सफेद हो जावे। अनेक स्थानों में इसकी घुटाई मशीन से की जाती है।

मात्रा–६ माशे से १ तोला तक। सुबह शाम सेवन करें।

उपयोग–यह खमीरा हृदय और मगज को पुष्ट तथा वातवाहिनियों को दृढ़ बनाता है स्मरण शक्ति बढ़ाता है। अग्नि प्रदीप्त करता है, तथा उदरशुद्धि में भी सहायता पहुंचाता है।

नोट–हम उपरोक्त योग में विशेष रूप से ६ माशे केशर और मिलाते हैं।

(३२) खमीरा गाऊजुबान (अम्बरी)

वक्तव्य–खमीरा गाऊजुबान सादे में घोटते समय अम्बर सह ३ माशे, चांदी वर्क ६ माशे (आवश्यकतानुसार वंशलोचन में खरलकर) मिश्रित करें, तो यह खमीरागाऊजुबान (अम्बरी) हो जाता है।

मात्रा– ३-३ माशे, दिन में दो समय, दूध के साथ।

उपयोग–यह खमीरा हृदय, मस्तिष्क और पचन सस्थान को बल देता है। जब मगज या हृदय अपना कार्य योग्य व्यवस्थित नहीं कर सकते हैं तब यह खमीरा दिया जाता है। यह बहुधा निर्भय है। सब प्रकृति वालों को अनुकूल रहता है एवं स्वादु और श्रेष्ठ औषधि है। इसके सेवन से नेत्र-दृष्टी और स्मरण शक्ति में भी वृद्धि होती है।

(३३) खमीरा गाऊजुबान अम्बरी (जवाहरवाला)

वक्तव्य–खमीरा गाऊजुबान अम्बरी में स्वर्ण वर्क ६ माशे तथा मुक्ता, याकूत (माणिक्य), जमुर्रद (पन्ना), तथा जहरमोहरा इनकी पिष्टियां ४-४ माशे खरल कर मिश्रित करें, तब खमीरा गाऊजुबान अम्बरी जवाहर वाला बन जाता है।

मात्रा–१॥ माशे से ३ माशे तक, दिन में दो बार दूध के साथ।

उपयोग–मस्तिष्क, हृदय और शरीर को दृढ़ बनाता है। विशेषतः वातपीड़ितों के लिए श्रेष्ठ है। अर्दित, अर्धाङ्ग, वातकम्प, अपस्मार, अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) और बालग्रह में अत्युपयोगी है।

(३४) खमीरा आबरेशम स्वर्णमुक्ता युक्त

विधि–आबरेशम कतरा हुआ ९ तोले, गुले गाऊजुबान ९ तोले, गाऊजुबान पत्ते और सूखा धनियां नया १॥-१॥ तोले लेकर जौकुट करें। फिर चीनीमिट्टी या कलईदार बर्तन में रात्रि को अर्क केवड़ा, अर्क वेदमुश्क और अर्क गाऊजुबान २०-२० तोले को भिगोवें। सुबह उबाल, आधा जल जलाकर छान लेवें, पश्चात् तुरजवीन १० तोले और शीरखिस्त ७ तोले को गुलाबजल ३० तोले में मिला १ उबाल देकर छान लेवें। इसमें से बत्ती बनाकर जल नितार लेवें या कुछ समय रख जल को नितार लेवें। इस जल को ऊपर वाले उबालकर छाने हुये जल में पुनः डालकर चाशनी करें। चाशनी होने में आवे, तब मुरब्बे की हरड़ चटनी की तरह पिसी हुई १० तोले मिलाकर जोश देकर नीचे उतार लेवें। फिर सफेद चन्दन का चूर्ण १ तोला, फिरंजमुश्क, काली अगर और सफेद बहमन ६-६ माशे बहमन लाल और वंशलोचन ३-३ माशे तथा कपूर १॥ माशा मिलावें एवं मोतीपिष्टी, सोने के वर्क १॥-१॥ माशे, कहरवा पिष्टी और जहरमोहरा खताई पिष्टी ३-३ माशे, प्रवालपिष्टी और चांदी के वर्क ६-६ माशे को पृथक घोट कर एक जीवकर खमीरा में अच्छी तरह मिला लेवें।(स्व. राजवैद्य राजचन्द्र जी द्वारा परिवर्द्धित)

यूनानी वाले चन्दन चूर्ण, फिरजे मुश्क, अगर और बहमन को क्वाथ द्रव्य के साथ मिला देते हैं एवं धनिया के स्थान पर धनिया मग्ज लेते हैं। हम भी वेसे ही बनाते हैं।

मात्रा–२ से ४ माशे तक, दिन में २ समय सुबह और रात्रि को।

उपयोग–खमीरा आबरेशम पचनेन्द्रिय संस्थान को पुष्ट करता है। आमाशय, क्षत, अन्त्र क्षत, उदरशूल, दाह, अम्लपित्त, तृषावृद्धि, वमन, यकृत की निर्बलता, मलावरोध, उदरवात, विदग्धाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण, कृमिविकार, अपचन और व्याकुलता आदि विकारों पर चमत्कारिक लाभ पहुंचता है एवं हृदय मस्तिष्क को भी बल देता है। खमीरे का सेवन नियमित २-४ मास तक करते रहने से आमाशय और अन्त्र दोनों की पचन क्रिया नियमित बन जाती है।

पचन क्रिया सुधर जाने से जो मूत्रयन्त्र को अनावश्यक कष्ट होता है वह भी दूर हो जाता है जिससे वृक्क और मूत्राशय की क्रिया भी नियमित बन जाती है। मूत्र में दाह होना दूर हो जाता है।

खमीरा आबरेशन विष को नष्ट करके मस्तिष्क और हृदय को बल प्रदान करता है। मन को प्रसन्न रखता है तथा रक्त को सबल और शुद्ध बना कर प्राकृत फुफ्फुसों को भी पुष्ट बनाता है।

(३५) खमीरा मरवारीद स्वर्ण मुक्तायुक्त

विधि–गावजुवां पत्ती और गुले गाऊजुबान ५-५ तोले, कुलफा बीज १० तोला, बादरञ्जबोया और सफेद चन्दन २-२ तोले को जौकुट कर रात्रि को कलईदार बर्तन में अर्क वेदमुश्क और गुलाबजल १-१ सेर में मिलाकर भिगों देवें। सुबह उबालकर आधा जल जला देवें, फिर २ सेर मिश्री डालकर चाशनी करें। पाक होने के पहले केशर ९ माशे को अर्क केवड़े में खरलकर मिला लेवें, फिर पाक होने पर बहमन सफेद, बहमन लाल, तोदरी पीली, तोदरी लाल सब १-१ तोला, प्रवालपिष्टी और अम्बर ६-६ माशे, मोतीपिष्टी, सुवर्ण के वर्क और कस्तूरी ३ माशे मिलावें। अम्बर को मिश्री में खरलकर लेवें फिर कस्तूरी और सुवर्ण के वर्क मिला खरलकर खमीरे में मिला लेवें।(स्व. राजवैद्य रामचन्द्रजी शर्मा)

मात्रा–१॥ माशे से ३ माशे तक दिन में २ समय सुबह और रात्रि को अर्क गाऊजवां के साथ।

सूचना–घबराहट अधिक हो तो मात्रा कम देवें या अर्क गाऊजुबान १० तोले पिलावें।

उपयोग–खमीरा मरवारीद हृदय-पौष्टिक है। हृदय के स्पन्दनों की अनियमितता, हृदय शोथ, हृदय वृद्धि आदि रोगों में हृदय की शक्ति संरक्षणार्थ इसका उपयोग किया जाता है।

यह खमीरा हृदय और मस्तिष्क विकार पर व्यवहृत होता है। मानसिक बेहोशी, अशान्ति और व्याकुलता को दूर करके मन को प्रसन्न करता है।

मोतीझरा, शीतला और विषज ज्वर, जो दीर्घकाल तक बने रहे हों उनके लीन विष को दूर करके शरीर स्वस्थ बनाता है।

(३६) खमीरा जमुर्रद

विधि– जमुर्रद (पन्ना) पिष्टी ४ तोले, राजावर्त रत्न की पिष्टी, सोने के वर्क चांदी के वर्क और अम्बर १-१ तोला, आबरेशम कतरा हुआ, गावजुवां के फूल बहमन सफेद, बहमन लाल, पीली तोदरी और लाल तोदरी ६-६ माशे, मिश्री ६० तोले तथा सेव कर रस ३० तोले लेवें। पन्ना आदि सबको खरलकर एक जीव करें एवं सेव का रस और मिश्री को मिलाकर चाशनी करें। नीचे उतार कुछ शीतल होने पर औषध मिलाकर खमीरा बना लेवें।

मात्रा–२ से ४ माशे तक दिन में २ बार सुबह और रात्रि को।

उपयोग–यह खमीरा जमुर्रद शीतल, हृदय पौष्टिक और वातशामक है। हृदय की घबराहट, मस्तिष्क को उष्णता, मानसिक व्याकुलता तथा शरीरिक निर्बलता को दूर करता है तथा मुखमण्डल को प्रसन्न और तेजस्वी बनाता है।

(३७) खमीरा सन्दल

प्रथम विधि–सन्दल (सफेद चन्दन) का चूर्ण ८ तोला और धनियां का मगज १॥ तोला जौकुट कर रात्रि को १ सेर जल में भिगो देवें। सुबह उबालकर आधा जला देवें। फिर छानकर उसमें अंगूर, तुर्शका अर्क, गुलाबजल और वेदमुश्क का अर्क २०-२० तोले, अंगूर का सिरका २॥ तोले और मिश्री २॥ सेर मिलाकर चाशनी करें। पश्चात् सफेद चन्दन को जल में घिसकर सुखाया हुआ चूर्ण और वंशलोचन २॥-२॥ तोले चांदी के वर्क और प्रवालपिष्टी ६-६ माशे मोतीपिष्टी और संगेयशव पिष्टी ३-३ माशे मिला लें। (स्व. राजवैद्य रामचन्द्रजी शर्मा)

मात्रा–६ माशे से ९ माशे तक, २ समय सुबह और रात्रि को लस्सी या दूध के साथ।

उपयोग–यह खमीरा सन्दल पूयमेह (गोनोरिया), बस्तिव्रण, मूत्रनलिका क्षत आदि में मूत्रशुद्धि कराता है। मूत्रदाह और पूय को दूर करता है, प्रबल व्यथा को दबा देता है, गर्मी को शान्त करता है।

दूसरी विधि–सफेद चन्दन के १० तोले चूर्ण को ८० तोले गुलाबजल में मिलाकर शिला पर पीसकर २४ घण्टे भिगो देवें, मन्दाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर शक्कर १२० तोले मिलाकर पुनः पकावें। गुलकन्द जैसा खमीर बने तब उतार लें।

मात्रा–१ से २ तोले। सुबह शाम लेकर दूध पीवे।

उपयोग–यह खमीरा मस्तिष्क के लिये शामक और मूत्रसंशोधक है। मूत्र में दाह, घबराहट, तृषा आदि को नष्ट करता है। मस्तिष्क की उष्णता, पित्तविकार एवं नेत्रों की जलन को दूर करता है। सुजाक रोगी के लिये हितकर है।

(३८) लबूब कबीर

द्रव्य–मग्ज पिस्ता, मग्ज बादाम, हिब्बल खिजरा, मग्ज अखरोट, सकंकूर, कुलिञ्जन, सकाकुल, बहमन सफेद, बहमन सुर्ख, तोदरी सफेद, तोदरी सुर्ख, तोदरी जर्द, हब्ब किलकिल, काले तिल, दालचीनी ये प्रत्येक ३५-३५ माशा, जायफल १५ माशा, कालीमिर्च, नागरमोथा, लवंग, कबावचीनी, तुख्म गाजर, तुख्म हलियुन, तुख्म मूली, तुख्म शलजम, तुख्म प्याज, तुख्म शिब्बित, इन्द्रजौ मीठी, दरुनज अकरबी, कचूर ये प्रत्येक २३-२३ माशा, सोंठ ३५ माशा, जावित्री १४ माशा, पीपल १४ माशा, पञ्जा सालिम ६ तोला, खोपरा ताजा ६ तोला, खशखश श्वेत ६ तोला, सुरंजान शीरी २० माशा, बोजीदान २८ माशा, पोदीना २८ माशा, मायाशुत्र अहराबी २८ माशा, जाफरान २८ माशा, गूगल लकड़ी २८ माशा, सोने के वर्क ९ माशा, चाँदी के वर्क ९ माशा, अम्बर शहब ९ माशा, मुश्क ९ माशा, शहद (या मिश्री) तिगुनी मिलाकर लबूब तैयार करें।

मात्रा–४ से ६ माशे। दूध से दिन में २ बार।

उपयोग–यह अत्यन्त बलप्रद लबूब है। यूनानी में यह श्रेष्ठ वीर्यप्रद तथा वाजीकरण औषध है। यह उत्तेजक, स्तम्भक तथा शरीर पोषक है। इसके सेवन से शरीर सुन्दर, सुडौल बनता है तथा मन उत्साहित होता है। (वैद्यराज श्री रमेशचन्द्रजी व्यास, भिषगाचार्य धन्वन्तरि)

(३९) अतरीफल कश्नीजी

विधि–चार जाति की हरड़ (बड़ी हरड़, काबुली हरड़, सादी हरड़ और जवाहरड़) ४ तोले लें। चारों मिला कूट छानकर चूर्ण बनावें। फिर २ तोले बादाम के तैल का मूण देकर १ तोले धनिये का बारीक चूर्ण मिलावें। बाद में २० तोले शहद मिला चीनी मिट्टी के बरतन में भरकर जौ (अनाज) की कोठी में ३ मास दबा दें। (घ० वै०)

मात्रा–६ माशे से १ तोले, दिन में २ बार। दूध के साथ लें।

उपयोग–यह औषध नेत्र रोगियों के लिये हितकारक है। इससे नेत्रों की जलन, शिरदर्द, कब्ज, रक्तविकार, आदि रोग दूर होते हैं। बवासीर में लाभदायक है। मोतियाबिन्दु के रोगी को देते रहने से रोग को बढ़ने नहीं देता।

सूचना–अतरीफलको टीन के डिब्बे में न रखे। अन्यथा रंग काला हो जायगा। चीनी मिट्टी के पात्र में या कलईदार बर्तन में रखें।

(४०) अतरीफल मुलैयन

विधि–काबुली हरड़, पीली हरड़, काली हरड़, आंवले, बहेड़ा १-१ छटांक, गुलाब के फूल, सनाय, तुरबुद की छाल और सोंठ २०-

२० माशे लें। सबको कूट बारीक चूर्ण कर बादाम के तैल में भून लें। बाद में ३ गुने शहद में मिलाकर अवलेह के समान बना लवें। इस मिश्रण को चीनी मिट्टी के अमृतबान में भरकर ४० दिन रहने देवें। फिर उपयोग में लेवें।

मात्रा–३ से ६ माशे, दिन में २ बार। निवाये जल या दूध के साथ लें।

उपयोग–इस अवलेह के सेवन से मस्तिष्क की उष्णता, चक्कर आना, नेत्रों की कमजोरी मोतियाबिन्दु की वृद्धि, कान में शब्द होना, बहरापन, तन्द्रा, मलावरोध, दाह आदि दूर होते हैं। यह अवलेह आंख, कान, नाक और मगज के पुराने रोगों में प्रयुक्त होता है।

(४१) सारिवादि शार्कर

विधि–श्वेत सारिवा, मुलहठी, सनाय, श्वेत मूसली, असगन्ध, उशवा और हरड़, ६ औषधियां १०-१० तोले, जवासा ५ तोले, लोंग, गोरखमुण्डी, उन्नाव सोंफ, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, गुलाब के फूल, छोटी इलायची, मजीठ, और दालचीनी १० औषधियां २॥-२॥ तोले लें। सबको जौकुट कर १६ गुने जल में उबालकर क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार छानकर ५ सेर शक्कर मिलाकर शर्बत जैसी चाशनी बना लें। (पं. लक्ष्मीनारायण वैद्यभूषण)

मात्रा–१। से २॥ तोले दिन में २ बार। जल के साथ दें।

उपयोग–इस शर्बत के सेवन से उपदंश, सुजाक अथवा अन्य कारणों से बिगड़ा हुआ रक्त थोड़े ही दिनों में शुद्ध हो जाता है।

(४२) लऊक सपिस्तां

विधि–ल्हिसोड़े ५० नग, उन्नाब २० नग, मुलहठी १ तोला, तुख्म खतमी १ तोला, पोस्त के छिलके २ तोले और बिहीदाना ६ माशे ले। सबको २ सेर जल में मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर मल कर छान ले। फिर क्वाथ से ४० तोले शक्कर मिलाकर पकावें और बादाम की गिरी ६ तोले, पोस्त दाना १ तोला, जवाखार १ तोला, कतीरा ६ माशे, गोंद ६ माशे और मुलहठी ६ माशे का बारीक चूर्ण मिलाकर चाटने योग्य बना लेवें। (चि.चं.)

मात्रा–४ से ६ माशे, दिन में ३ या ४ बार चटावें।

उपयोग–इस चाटण के सेवन से श्वास नलिका में चिपका हुआ कफ बाहर निकल आता है। फुफ्फुसों की उष्णता का ह्रास होकर शुष्क कास शमन होती है। और फुफ्फुस निर्दोष बनते हैं। जीर्ण प्रतिश्याय, कास व पीनस में उपयोगी है।

(४३) आंवले का मुरब्बा

विधि–ताजे पक्के बड़े-बड़े आंवलों को बांस की शलाका या जर्मन सिलवर अथवा पीतल के कलई किये हुए कांटे से चारों और अच्छी तरह से टोंचे। फिर कली चूने के नितरे हुए जल में २४ घण्टे भिगो दें। चूने से ३२ गुना जल मिलाकर १ घण्टे बाद ऊपर-ऊपर से स्वच्छ जल नितारकर उपयोग में लें। पश्चात् आंवलों को हल्का-सा जोश देकर छाया में सुखा दें। १२ घण्टे बाद आंवलों के वजन से दूनी शक्कर की चाशनी बनाकर आंवले मिला दें। ८-१० दिन बाद मुरब्बे में आंवले का स्वरस मिल जाने से ऊपर झाग आने पर उस चाशनी को निकाल, पुन नयी दूनी शक्कर की चाशनी बनाकर मिला देने से मुरब्बे में से अम्लता दूर हो जाती है तथा दो-तीन वर्ष तक मुरब्बा अच्छा रह सकता है। १ सेर आंवलों में ३ माशे के हिसाब से केसर दूसरी बार की चाशनी में मिला लेवें।

अनेक दुकानदार आंवलों को नहीं गोदते। केवल चूने के पानी में फिटकरी मिलाकर उबाल लेते हैं। ५ सेर आंवलों में २ तोले फिटकरी मिलाते हैं। कितने ही लोग पहली बार की हुई चाशनी को पुनः पकाकर मिला लेते हैं। नई शक्कर नहीं मिलाते। परन्तु नई शक्कर की चाशनी मिला लेने से मुरब्बा विशेष स्वादिष्ट व गुणकारी होता है। दुकानदार पहले समय की चाशनी को हरड़ के मुरब्बे में मिला लेते हैं। इस हेतु से वह शक्कर भी निकम्मी नहीं होती।

मात्रा–१ से २ आंवले। चांदी के वर्क के साथ लें।

उपयोग–यह मुरब्बा दाह, शिरदर्द, पित्तप्रकोप, चक्कर, नेत्र जलन, बद्धकोष्ठ, अर्श, रक्तविकार, त्वचारोग, प्रमेह और वीर्यदोष को नष्ट करता है, पित्त वृद्धि का शमन करता है और शरीर को बलवान बनाता है।

(४४) शुव्ठ्यादि पायस

विधि–सोंठ और अरण्डी के मगज अन्तर्जिह्वा निकाले हुए १-१ तोले के बारीक चूर्ण को १६ गुने दूध में मिलाकर पायस (खीर)बनावें। आवश्यकतानुसार शक्कर मिला लें।

उपयोग–इस खीर के सेवन से आमप्रकोपसह वातविकार, कटिशूल और गृध्रसी आदि रोगों का नाश होता है।

(४५) रक्तशोधक शर्बत

विधि–उसवा ८ तोले, मण्जिष्ठा ४ तोले, सौंफ २ तोले, उन्नाव २५ नग, सपीस्ताँ २५ नग, हंसराज १ तोला और गावजुवां १ तोला लेकर

जौकुट चूर्ण करें। रात्रि को ८ गुने जल में भिगो दें, सुबह क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। फिर २० तोले मिश्री मिलाकर शर्बत बना लें।

मात्रा–१ से २ तोले, दिन में २ बार, जल के साथ लें।

उपयोग–यह शर्बत उपदंश विकार, सुजाक, कुष्ठ, वातरक्त, फोड़ा-फुन्सी आदि रोगों में रक्त को शुद्ध करता है।

(४६) बनप्सा शर्बत

विधि–बनप्सा १० तोले को उबलते हुए ३५ तोले जल में २४ घण्टे भिगो दें, फिर छान लें। छानने के समय दबाकर निचोड़े। पश्चात् ४० तोले शक्कर मिलाकर शर्बत बना लें।

सिद्धभेषज मणिमालाकार ने लिखा है कि ८ गुने जल में भिगो अष्टमांश क्वाथकर गाढ़े कपड़े से युक्ति पूर्वक छान (अर्थात् पोटली को लटकाकर जल टपका) लेवें। फिर ४ गुनी शक्कर मिलाकर शर्बत बनावें और इसे पित्तज्वर पर प्रयुक्त करें।

मात्रा–१ से २ तोले तक, जल मिलाकर पीवें।

उपयोग–यह शर्बत ज्वर के पीछे की निर्बलता, स्त्रियों के गर्भाशय की गर्मी, नेत्र की उष्णता, शिरदर्द, मलावरोध, पसली की पीड़ा और मूत्राशय के दर्द को दूर करता है तथा निद्रा अच्छी लाता है। बढ़े हुए पित्त को बाहर निकाल देता है, मल-मूत्र साफ लाता है।

(४७) चन्दन का शर्बत

विधि–आध पाव श्वेत चन्दन के चूरे को आध सेर गुलाबजल में रात को भिगो दें, सबेरे हल्का-सा जोश दें। डेढ़ पाव जल शेष रहने पर मलकर छान लें। फिर आध सेर मिश्री मिलाकर शर्बत बना लें। उबालने पर ढक्कन ढँक देना चाहिये, अन्यथा तैल उड़ जाता है।

वक्तव्य–कई चिकित्सक गुलाबजल और मिश्री दूने परिमाण में अर्थात् गुलाबजल १ सेर लेते हैं।

मात्रा–२-२ तोले, दिन में २ बार, जल के साथ देवें।

उपयोग–यह शर्बत तृषा, दाह, बहुमूत्र, पिशाब का पीलापन, जलन होना, नाक मुख में खुश्की रहना, नकसीर फूटना, तथा गर्मी के दिनों में होने वाले पित्त के विकारों को नष्ट करता है। गर्मी, प्यास, लू, बेचैनी सबसें रक्षा करता है। सुजाक रोग में पेशाब साफ ला देता है।

(४८) स्वादिष्ट शर्बत (स्वदेशी पेनकिलर)

विधि–नींबू का रस १ सेर, अदरक का रस ४० तोले, सैंधा नमक २ तोले, काला नमक २ तोले, हींग ६ माशे और मिश्री १ सेर मिला कलई वाली कड़ाही में ३ ऊफान आवे तब तक उबालें। फिर नीचे उतारकर तुरन्त छान लें। शीतल होने पर ऊपर-ऊपर से अलग निकाल लें। पैंदे में कचरे वाला भाग होवे उसे अलग रखें। (आ.नि.मा.)

मात्रा–६ माशे से २ तोले तक, आधी रत्ती कपूर मिलाकर दें अथवा जल के साथ दें।

उपयोग–इस शर्बत के सेवन से अपचन, अपचन-जनित अतिसार, हैजा, पेचिश, अरुचि, मन्दाग्नि, मलावरोध, उदरशूल, वमन आदि रोग दूर होकर क्षुधा की उत्पत्ति होती है।

(४९) गुलाब का शर्बत

विधि–गुलाबजल में दूनी शक्कर मिलाकर चाशनी करें। फिर नीचे उतारकर तुरन्त छान लें।

मात्रा–१ से ४ तोले तक, जल मिलाकर पीवें।

उपयोग–इस शर्बत से मगज की उष्णता, पित्तविकार, तृषा और दाह शांत होते हैं तथा मलावरोध दूर होता है। स्त्रियों के गर्भाशय की गरमी भी कम होती है।

(५०) नींबू का शर्बत

विधि–नींबू के रस में २॥ गुनी शक्कर मिलाकर चाशनी बना लें, फिर गरम गरम को छान लें। शीतल होने के बाद नहीं छनता।

मात्रा–१ से २ तोले तक, जल मिलाकर पीवें।

उपयोग–इस शर्बत से पित्तविकार, मन्दाग्नि, अरुचि, तृषा, उबाक, अजीर्ण, मलावरोध और रक्तदोष आदि दूर होते हैं तथा अग्नि प्रदीप्त होती है सूर्य के ताप में भ्रमण से उत्पन्न हुई व्याकुलता और पित्तप्रकोप दूर होते हैं।

(५१) अदरक का शर्बत

विधि–अदरक का रस निकालकर २ घण्टे रहने दें। रस स्थिर होने पर सम्हालकर ऊपर-ऊपर से निकाल लें। नीचे अदरक का सत्व रहे उसे सुखा कर अलग उपयोग में लें। नितरा हुआ रस ६४ तोले लेकर १९२ तोले शक्कर मिलाकर चाशनी बना लें। उसमे केशर १ माशे, इलायची, जायफल, जावित्री और लौंग ३-३ माशे का चूर्ण मिलावें। इसे विशेष गाढ़ा बनावें तो अवलेह बन जाता है।

मात्रा–६ माशे से १ तोला तक, जल मिलाकर दिन में २ बार पीवें।

उपयोग–इस शर्बत के सेवन से अपचन, अरुचि, मन्दाग्नि, अजीर्ण, आमवात, श्वास, कास, अतिसार, उदरशूल आदि दूर होते हैं।

(५२) प्रतिश्यायहर शर्बत

विधि–तुलसीपत्र, मरवा (सब्जा) के पत्ते, गावजुवां, अफतीमून विलायती, उस्तेखद्दूस और विसफाइज १-१ छटांक लेकर १ सेर गुलाबजल और आध सेर अंगूरी सिरकें में रात्रि को भिगो दें, सुबह उबालें। चतुर्थांश जल शेरू रहने पर उतारकर छान लें। पश्चात् १॥ सेर शक्कर मिलाकर शर्बत बनालें।

मात्रा–२ से ४ तोले, जल में मिलाकर, पिलावें।

उपयोग–यह शर्बत जुकाम, कण्ठदाह, निद्रानाश, नाक में से खून गिरना, हृदय की निर्बलता, मगज की कमजोरी, सूक्ष्म ज्वर, मलावरोध आदि को दूर करता है।

यूनानी माजून-खमीरे आदि की निर्माण विधि

माजून-पतले अवलेह जैसी मृदु रहती है। इसके लिये विशेषतः शहद और शक्कर की चाशनी कर शीतल होने पर इसमें थोड़ा-थोड़ा चूर्ण मिलाते हैं और एक जीव कर लेते हैं। सामान्यतः जवारिश का पाक और माजून का पाक समान-सा होता है। यह चम्मच से या अंगुली से सरलता से सेवन की जाती है।

विशेषतः औषध द्रव्यों से तीन गुने शहद या शक्कर के पाक से माजून तैयार की जाती है। क्वचित् कुछ कम शक्कर भी ली जाती है।

बादाम, पिस्ता आदि इसमें मिलाना हो तो उन्हें पीसकर, हो सके उतना बारीक कर, घी में भूनकर मिलाना चाहिये।

केशर कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्य मिलाना हो तो इन्हें अलग अच्छी तरह से पीसकर माजून बना लेने के बाद सबसे अन्त में मिलावें।

जवारिश-इसे अवलेह या माजून के समान चाटने योग्य बनाया जाता है। विशेषतः यह पचन-संस्थान की विकृति के शमनार्थ या दमनार्थ सेवन किया जाता है।

इसमें मिलाये जाने वाले चूर्ण को कुछ मोटा रखते हैं जिससे आमाशय में पाचनकाल में उसका सत्व शनैः शनै वियोजित होकर पित्त के साथ सम्मिलित होता रहे।

जवारिश में गुरुपाकी द्रव्य नहीं मिलाये जाते। अतः बादाम, पिस्ता आदि मेवे, स्वादिष्ट बनाने के लिये भी इसमें नहीं डाले जाते हैं।

जवारिश निर्माणार्थ विशेषतः शहद समभाग तथा शक्कर द्रव्यों की अपेक्षा दुगुनी ली जाती है। शहद, शक्कर का यूनानी विधि अनुसार पाक किया जाता है। अर्थात् शहद को मृदु अग्नि देकर गरम किया जाता है और झाग आवे उनको झर से निकालते जाते हैं। इसी समय चाशनी में थोड़ा दूध मिलाकर मोम का सम्पूर्ण अंश पृथक कर दिया जाता है।

चाशनी पाक के निर्णार्थ चम्मच से थोड़ी निकालकर थाल में कुछ ऊंचाई से गिरावे। चाशनी की आकृति उस समय त्रिकोण-सी हो जाय, तो पाक योग्य हो गया है ऐसा माना जाता है। यदि जवारिश में सुगन्धि अर्क मिलाना हो तो चाशनी को अग्नि से नीचे उतार तुरन्त मिला लेंवें।

चाशनी शीतल होने पर औषधियों का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा मिला-मिलाकर एक जीव करें एवं एक या दो सप्ताह बाद इसका उपयोग करें। ऐसा करने से चाशनी में मिलकर औषधियों का वियोजन भलीभांति हो जायगा।

खमीरा–यह भी माजून के समान शहद-मिश्री का पाक बनाकर तैयार किया जाता है। खमीरें के लिये चाशनी औषध द्रव्यों के क्वाथ में मिश्री मिलाकर बनायी जाती है। (यह चाशनी चम्मच से थाली में गिराने पर गोल-सी आकृति में गिरती है) फिर कुण्डे में लकड़ी के सोटे (डण्डे) से (हिन्दी के अंक '४' या अंग्रेजी के अंक '8' के सदृश आकृति बनाते हुए घोटाई करें) ऐसा करने से खमीरा गाढ़ा प्रवाही और चिपचिपा बनता है एवं श्वेताभ भासता है। यदि केशर, कस्तूरी, अम्बर, स्वर्णवर्क, रौप्यवर्क आदि मिलाना हो तो इन्हें पृथक् खरलकर श्वेताभ खमीरा बन जाने पर थोड़ा-थोड़ा मिलावें। वर्क मिलाना हो तो १-१ पत्र का चूरा डालते जायें और एक जीव करते जायें।

अतरीफल–इसकी चाशनी अवलेह जैसी रखते हैं। इसमें प्रधान द्रव्य त्रिफला है। टिन के डिब्बे में रखने से इसका रंग श्याम हो जाता है। अतः कांच या चीनी के बर्तन में ही रखें।

सूचना–अतरी फल तैयार हो जाने के ४० दिन या इससे अधिक समय व्यतीत होने पर इसको उपयोग में लिया जाता है एवं बीच-बीच में बार-बार सेवन बन्द कर किया जाता है। नियमित सेवन करते रहने पर पचनक्रिया कुछ मन्द हो जाती है।

लबूब–इसका पाक माजून के समान ही रहता है किन्तु कुछ प्रवाही रूप में।

उपयोग–धातुओं के पोषणार्थ विशेषतः होता है। इसमें बादाम पिस्तादि मगज मिलाने के लिये इनको बारीक पीस मन्दाग्नि पर घी में भूनें। फिर चाशनी शीतल होने पर इनको मिला लें। सुगन्धित द्रव्य एवं स्वर्ण के वर्क अन्त में थोड़ा-थोड़ा मिला-मिलाकर एक जीव बना लें।

घृत-तैल प्रकरण

घृत सिद्धि-सिद्ध घृत बनाने के लिये गौघृत को ही श्रेष्ट माना है। गो-घृत को पहले मूर्छित करें। मूर्छित करने के लिये ३४ तोले घृत को पीतल की कलई की हुई कड़ाही में डालकर मन्दाग्नि पर गरम करें। झाग दूर होने पर नीचे उतार लें। उष्णता थोड़ी कम होने पर हरड़, बहेड़ा, आंवला, हल्दी और नागरमोथा इन ५ औषधियों को ४-४ तोले लेकर बिजौरे नींबू के रस में कल्क बनाकर डाल दें। पश्चात् २५६ तोले जल मिलाकर पाक करें। थोड़ा जल शेष रहने पर उतारकर ७ दिन तक रहने दें। इससे घृत साफ, आमदोष रहित और वीर्यवान बन जाता है। इसमें घृत के साथ क्वाथ, दूध-दही आदि द्रव पदार्थ और अन्य औषधियों के कल्क को मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें।

घृत पाक के लिये गिलोय आदि मृदु क्वाथ द्रव्यों में चार गुना जल, सोंठ, अमलतास आदि मध्यम द्रव्यों में ८ गुना जल और देवदारु, पद्माख आदि कठिन द्रव्यों में १६ गुना जल मिलाना चाहिये। घृत पाक के लिये जिन औषधियों का क्वाथ बनाना हो उन सबको मिलाकर घृत से द्विगुण परिमाण में लें। सामान्यत: आठ गुने जल में मिलाकर क्वाथ करें, चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। किन्तु क्वाथ करने की औषधियों का परिमाण अत्यधिक हो तो ५-५ सेर औषधियों का क्वाथ अलग-अलग कराके सबको मिला लें तथा १ सेर औषधियों के लिये जल १०२४ तोले तक लें। इस रीति से जल के परिमाण में थोड़ी औषधि और अधिक औषधि के लिये अन्तर है।

यदि केवल दूध से ही घृत-पाक करना हो अन्य क्वाथ आदि द्रव पदार्थ न मिलाना हो तो घृत से आठ गुना दूध लेना चाहिये और क्वाथ आदि द्रव मिलाना हो तो दूध घृत के समान लेना चाहिये। यदि २ या ३ प्रकार के द्रव से घृत को सिद्ध करना हो तो सबको समान परिमाण में मिलाकर घृत से चार गुना लेना चाहिये। (किन्तु सुश्रुत संहिता के टीकाकार डल्हणाचार्य के मतानुसार सब द्रव्यों को ४-४ गुना मिलाना चाहिये) यदि ४ या ४ से अधिक प्रकार के द्रव पदार्थों को मिलाना हो तो सबको घृत के समान लेना चहिये और केवल स्वरस, दूध या दही से घृत को सिद्ध करने का लिखा हो तो भी घृत के ४ गुने जल को अवश्य साथ में मिलाना चाहिये। कारण केवल स्वरस, दूध या दही से घृत का पाक अच्छी रीति से नहीं हो सकता।

स्नेह में प्राय: चतुर्थांश कल्क डाला जाता है किन्तु केशर, नागकेशर, लौंग, चम्पा, कमल आदि पुष्पों का कल्क हो तो घृत से अष्टमांश लें। सर्प विष, बच्छनाभ आदि तीक्ष्ण विष के संयोग से स्नेह सिद्ध करना हो, वहां पर इस नियम का पालन नहीं हो सकेगा। यदि घृत में क्वाथ या स्वरस न मिलाना हो, केवल जल मिलाना हो तो कल्क चौथा भाग, क्वाथ से घृत सिद्ध करना हो तो कल्क छठा भाग और केवल स्वरस से सिद्ध करना हो तो स्नेह से कल्क को आठवां भाग लेना चाहिये। किन्तु अन्य आचार्यों का मत है कि दूध, दही, स्वरस या तक्र में से किसी एक को मिलाया हो तो कल्क अष्टमांश मिलाना चाहिये। यदि इनसे भिन्न प्रकार का हो तो कल्क चतुर्थांश लें।

जहां द्रव्यों का परिमाण न लिखा हो, वहां के लिये यह नियम है। जैसे-सुश्रुत संहिता में "सौवर्चल यवक्षार कटुका व्योषचित्रकै:। वचाऽभया विडङ्गैश्च साधितं श्वासशान्तये।" इन औषधियों से घृत, सिद्ध करना हो, तब ऊपर लिखी परिभाषानुसार कल्क क्वाथ आदि को मिलावें। अन्य किसी भी प्रकार के घृत-तैल आदि बनाना हो तभी उक्त विधि अनुसार बनावें। किन्तु जहां शास्त्र ने परिमाण निश्चित किया है वहां पर शास्त्राज्ञानुसार पदार्थ लें। उसमें परिभाषा में अन्तर होने पर भी परिवर्तन न करें। स्नेहपाक के तीन प्रकार हैं-मृदु, मध्यम और खर। कल्क किंचित रसयुक्त हो तो मृदुपाक, रस रहित किन्तु मुलायम हो तो मध्यम पाक और कल्क जलकर कठिन हो गया हो तो खरपाक समझना चाहिये। इसमें से नस्यार्थ मृदु पाक सभी कार्य के लिये मध्यम पाक और मालिश के लिये खरपाक उत्तम है।

स्नेह सिद्धि की परीक्षा-घृत और तैल सिद्ध होने पर उसमें थोड़ा कल्क निकालकर अग्नि में डालें। किसी प्रकार की आवाज न हो तो उसे सिद्ध समझें, घृत सिद्ध होने पर बिल्कुल झाग नही रहते और तैल की सिद्धि के समय खूब झाग उठते हैं। इसके अतिरिक्त स्नेह परिपक्व होने पर कल्क को अंगुली से मर्दन करने पर गोली अथवा वर्ति (बत्ती) हो जाती है एवं वर्ण और सुगन्ध से भी परिपाक का निश्चय हो जाता है। जिस प्रयोग में जितने घृत का पाक करने का विधान किया है, उतना ही लें। न्यूनाधिक परिमाण (आधे अथवा दूने) में घृत का पाक ठीक नहीं होता।

घृत को दूध से सिद्ध करना हो तो दो दिन में सिद्ध करें। स्वरस से सिद्ध करने में तीन दिन और कांजी मट्ठा आदि से सिद्ध करने में पांच दिन तक पकावें। अधिक दिन लगाने में रोज थोड़े-थोड़े समय तक पाक करके छोड़ देवें।

घृत सिद्ध होने पर कड़ाही नीचे उतार तुरन्त छान लेना चाहिये। शीतल होने तक कड़ाही में रह जाने से घृत कुछ उड़ जाता है।

घृत पुराना होने से भी गुणयुक्त रहता है। घृत शीतवीर्य होने से सिद्ध घृत में भी प्राय: वही गुण रहता है। इसके अतिरिक्त जिन-जिन औषधियों से सिद्ध घृत तैयार किया जाता है, उन-उन औषधियों के गुण, वीर्य, विपाक आदि घृत में सम्मिलित होते हैं। प्राचीन आचार्यों ने सिद्ध घृतों का विशेष उपयोग किया है। घृत से रोग शीघ्र दूर होकर शरीर स्वस्थ, बलवान् और कांतिवान् बनता है, जो रोगी अनेक प्रकार

की औषधियां अनेक वर्षों पर्यन्त सेवन करके निराश हो गये हों, जिनकी पाचन-शक्ति अति मन्द हो गई हो, जिन्होंने अपने शरीर को सदा के लिये मलावरोध, अफारा बेचैनी, अरुचि, शिरदर्द आदि विकारों का घर रूप बना लिया हो उनको सिद्ध घृत के सेवन से थोड़े ही दिनों में आशातीत लाभ प्राप्त हो जाता है। वात, पित्त अथवा कफ प्रकृति वाले पुरुष, स्त्री, बालक, वृद्ध आदि सब मनुष्य सिद्ध घृत को सुबह शाम अथवा भोजन के साथ सेवन कर सकते हैं।

घृत सेवन से बिना कष्ट अन्न पचन और मलशुद्धि नियमपूर्णक होती है, रोगी की मनोवृत्ति प्रसन्न रहती है और श्रद्धापूर्वक सप्रेम नियमित सेवन कर सकता है। किसी को सिद्ध घृतों से हानि होने की लेशमात्र सम्भावना नहीं है।

घृत शास्त्रोक्त विधि से सिद्ध कर लेने पर सुगन्धयुक्त बन जाता है। घृत को सम्हालपूर्वक कांच की खुले मुंह वाली शीशियों में अथवा चीनी मिट्टी के अमृतबान में रखने से खराब होने की संभावना नहीं रहती। वृन्द माधवकार ने तो लिखा है कि "एक वर्ष पश्चात् सिद्ध घृत हीनवीर्य हो जाता है, और तैल हीनवीर्य नहीं होता।" परन्तु पुराना सिद्ध घृत गुण वाला ही रहता है और पुराना तैल दोषयुक्त हो जाता है ऐसा अनुभव में आया है।

तैल सिद्धि-तैल को सिद्ध करने से पहले दुर्गन्ध और दोष की निवृत्ति के लिये मूर्च्छित करें। पश्चात् तैल का पाक घृत के पाक के समान करें, किन्तु मूर्च्छा विधि में अन्तर है। तिल के तैल, अरण्डी के तैल, सरसों के तैल तीनों की मूर्च्छा की औषधियां पृथक्-पृथक् हैं। तिल के लिये मजीठ, हल्दी, लोध, नागरमोथा, दालचीनी, आंवला, बहेड़ा, हरड़, केवड़े का फूल और बड़ की जटा लें। सरसों के तैल में मजीठ, हल्दी, आंवला, नागरमोथा, बेल की छाल, अनार की छाल, नागकेशर, कालाजीरा, सुगन्ध वाला, दालचीनी और बहेड़ा मिलावें एवं एरण्ड तैल की मूर्च्छा के लिये मजीठ, नागरमोथा, धनियां, चमेली के पत्ते, सुगन्ध वाला, खजूर, बड़ की जटा, हल्दी, दारुहल्दी, दालचीनी, केवड़े का फूल, दही और कांजी लें।

मूर्च्छा के लिये ४ सेर तैल हो तो मजीठ ४ छटांक और सब द्रव्य एक-एक छटांक लेना चाहिये। उनमें से हल्दी और मजीठ का कल्क अलग-अलग करें। और शेष औषधियों को मिलाकर कल्क करें। तैल को मूर्च्छित करने के लिये कलई की हुई पीतल की साफ कड़ाही में डालकर चूल्हे पर चढ़ावें। जब तैल गरम होकर झागरहित हो जाय, तब नीचे उतारें। उष्णता थोड़ी कम होने पर उसमें हल्दी का कल्क, फिर मजीठ का कल्क पश्चात् शेष औषधियों का कल्क और तैल में चौगुना पानी मिलाकर पुनः अग्नि पर चढ़ाकर मन्दाग्नि से पाक करें। थोड़ा जल शेष रहने पर उतारकर ७ दिन तक रहने दें। पश्चात् तैल को छानकर तैल पाक में कही हुई औषधियों से सिद्ध करें।

यदि वातनाशक तैल बनाना हो तो आम, जामुन, कैथ और बड़े नींबू के पत्तों को तैल से ८-८ वाँ हिस्सा लेकर चौगुने जल में औटावें। जल चतुर्थांश शेष रहने पर छान, मूर्छित तैल में मिलाकर पाक करें। थोड़ा जल शेष रहने पर उतारकर छान लेवें।

सिद्ध तैल तैयार करने के लिये तिल, सरसों या अरण्डी का ताजा तैल, रोगी की प्रकृति, देश व ऋतु और रोग पर विचार करके लेना चाहिये। तैल सिद्ध होने पर चिपचिपापन, मूल की वास और तैल मूल दोष तीनों दूर होते हैं तथा गुण की वृद्धि होती है। तैल स्निग्ध और उष्णवीर्य है। सिद्ध तैलों में भी प्रायः वे ही गुण रहते हैं। तैल का मुख्य उपयोग वातजन्य रोगों पर होता है। सिद्ध तैल शरीर के बाह्य भाग में मर्दन करने तथा पीने के लिये उपयोग में आता है। मर्दन करने के समय त्वचा के रोम टूट न जायं, यह सम्हालना चाहिये। नीचे से ऊपर की तरफ तथा आड़ी बाजू में मर्दन करने से हानि होने की संभावना है। अनुलोम (ऊपर से नीचे की ओर) धीरे हाथ से शान्तिपूर्वक मर्दन करने से वेदना नहीं होती और हानि होने का भय नहीं रहता। तैल मर्दन से स्नायु और शिराबन्धन नरम होते हैं तथा रक्ताभिसरण क्रिया की वृद्धि होती है, अथवा रक्त में रहे हुए दूषित परमाणु प्रस्वेद द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

पक्षाघात (Paralysis) आदि वातरोगों में मर्दन के पश्चात् गर्म जल से निर्गुण्डी के पत्तों से अथवा अन्य वातनाशक औषधियों के क्वाथ से सेक करना अति हितकर है। केवल पित्ताधिक्य विकार में विशेष तैलमर्दन अथवा सेक नहीं करना चाहिये। तैल मर्दन अथवा सेक करने के बाद तुरन्त ठण्डी वायु न लगे इस बात को भी लक्ष्य में रखना चाहिये।

तैलपान की प्रथा प्रायः वर्तमान समय में लोप हो गई है। फिर भी आवश्यकता पर पिलाने में कोई हानि नहीं है। केवल नये ताजे तैल में से सिद्ध तैल बनाकर प्रकृति और ऋतु का विचार करके पिलाना चाहिये। तैलपान के पश्चात् तुरन्त ठण्डा जल नही पिलाना चाहिये।

सूचना-घृत-तैल बनाने के लिये पीतल का कलई किया हुआ बरतन लें लोह पात्र में घृत-तैल का रंग काला हो जाता है।

गोमूत्र आदि अधिक उफान लाने वाले पदार्थ मिलाना हो तो कड़ाही आठगुनी बड़ी चाहिये। कारण, गोमूत्र से उफान बहुत आता है। घृत-तैल का पाक होने पर कड़ाही को नीचे उतार तुरन्त छान लेना चाहिये। देर होने से घृत या तैल जमकर परिमाण में कम हो जाता है।

घृत और तैल में कई पीने के और कई लगाने के हैं। उपयोग औषधियों के साथ स्पष्ट लिखे हैं।

(१) त्रिफलादि घृत

विधि–त्रिफला ६४ तोले का आठ गुने जल में क्वाथ करें। अष्टमांश जल शेष रहने पर छानकर उपयोग में लें। यह क्वाथ, भांगरे का रस, अडूसे का रस, आवंले का रस, शतावर का रस अथवा क्वाथ, गिलोय का रस और बकरी का दूध, प्रत्येक ६४-६४ तोले लेवें। सबकों एकत्र करें। इनमें पीपल, मिश्री, मुनक्का, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीले कमल, क्षीरकाकोली (अभाव में मुलहठी) असगन्ध की जड़ और कटेली सबकों सम भाग मिलाकर १६ तोले कल्क डाल घी ६४ तोले मिलाकर पकावें। फिर उतारकर तुरन्त छान लें। (वं. से.)

मात्रा–आध से १ तोले तक, दिन में २ बार, सुबह रात्रि को दूध के साथ या दोपहर को और रात्रि को भोजन के प्रारम्भ में प्रथम ग्रास के साथ।

उपयोग–इस घृत के सेवन से नेत्र रोग दूर होते हैं। यह घृत रुधिर के बढ़ने या दूषित होने से नेत्रों में जो रोग उत्पन्न हुए हों, रतोंधी, तिमिर, मोतियाबिन्दु, मांस बढ़ना, नेत्र की लाली, तीव्र जलन सहित नेत्र की लाली, भांफनी के बाल गिरना, वातज, पितज और कफज नेत्ररोग, अन्धता, मन्द दृष्टि, कफ-वात से दूषित दृष्टि, वात और पित्त प्रकोप से नेत्रस्राव, खुजली, आसन्नदृष्टि (दूर की वस्तु स्पष्ट न दीखना)(Short Sight) दूर दृष्टि (दूर की वस्तु अच्छी दीखना किन्तु समीप की वस्तु या छोटे अक्षर स्पष्ट न दीखना) (Long Sight)आदि नेत्र रोगों को नष्ट करके गृध्र के समान प्रबल दृष्टि बनाता है। शरीर बल, पचनशक्ति और शारीरिक कांति को बढ़ाता है इस त्रिफलादि घृत का ४-६ मास तक श्रद्धापूर्वक पथ्यसहित सेवन करने से लाभ मिलता है। जीर्णबद्ध कोष्ठ के रोगियों की आंतों की मेदा और यकृत की शुद्धि हो जाती है।

मोतियाबिन्दु का विष रक्त में शनैः शनैः दृष्टिमणि (Lens) में पहुंचता है। फिर दृष्टिमणि के तन्तु दूर-दूर होते जाते हैं, जिससे बीच में दूषित रस भरकर अपारदर्शकता आने लगती है। यदि इस रोग की प्रारम्भावस्था में ही इस घृत का सेवन कराया जाय, नेत्र में नेत्रसुदर्शन अर्क डाला जाय तथा विष वर्द्धक तमाखू आदि द्रव्यों का त्याग किया जाय तो मोतियाबिन्दु की वृद्धि रुक जाती है, इतना ही नहीं अनेकों की दृष्टिमणि पारदर्शक होकर मोतियाबिन्दु नष्ट हो जाता है।

मोतियाबिन्दु पीड़ित को इस घृत का सेवन एक वर्ष तक सतत करते रहना चाहिए। अन्य तीव्र नेत्र रोगों में थोड़े दिन तक तथा दृष्टिमांद्य में दीर्घकाल तक इस घृत का सेवन करना तथा त्रिफला हिम से नेत्र धोते रहना चाहिए। मस्तिष्क की निर्बलता और जीर्ण मलावरोध वालों के लिए भी इस घृत का सेवन लम्बे अरसे तक करते रहना हितावह है।

(२) फल घृत

विधि–मुलहठी, हरड़ बहेड़ा, आंवला, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, बायविडंग, पीपल, नागरमोथा, इन्द्रायण की जड़, कायफल, काकोली और क्षीर काकोली (अभाव में असगन्ध और शतावर), मेदा और महामेदा (दोनों के अभाव में शतावर), बच, सफेद अनन्तमूल, काली अनन्तमूल, फूलप्रियंगु, सौंफ, भूनी हींग, रास्ना, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, चमेली के फूल, कमल, वंशलोचन, मिश्री, अजमोद, दन्तीमूल इन ३२ औषधियों को एक-एक तोला लेकर कल्क करें। फिर यह कल्क, गोघृत ६४ तोले, गाय का दूध २५६ तोले और जल २५६ तोले मिलाकर पाक करें। पश्चात् उतारकर तुरन्त छान लेवें। इस घृत पाक में लक्ष्मणा (अभाव में सफेद फूल वाली कटेली) का पञ्चांग डालना विशेष लाभदायक है। (शा.सं.)

मात्रा– आध से १ तोले, रोज सुबह सेवन करें।

उपयोग–यह घृत स्त्री और पुरुष दोनों के लिये हितकर है। धातुदोष, रजोदोष और गर्भाशय के दोषों को दूर करता है। बन्ध्या को पुत्र की प्राप्ति होती है और जिसके बच्चा होकर मर जाता हो उसकी सन्तति नीरोग होती है। जिसको बार-बार कन्या ही जन्मती हो, जिसको गर्भ रहकर बार-बार नष्ट हो जाता हो, जो स्त्री मृत संतान या अल्पायु संतति को उत्पन्न करती हो, वह यदि इस घृत का सेवन करे तो दीर्घायु और नीरोग पुत्र को जन्म देने में समर्थ होती है। संक्षेप में गर्भाशय दोष की निवृत्यर्थ यह घृत अत्युत्तम है।

शास्त्रकारों ने १ वर्ष की जीवद्वत्सा (बछड़ा जीता हो ऐसी) बलवान् गौ का घृत लेने को लिखा है, एवं पुष्यनक्षत्र में गौ के जंगली कण्डों की अग्नि पर शास्त्रोक्त विधि से पाक करने की आज्ञा की है।

(३) नाराच घृत

विधि–लोध, चित्रकमूल, चव्य, बायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, निसोत, शंखिनी (ओंधाफूली), अतीस, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी और दन्तीमूल १-१ तोला लें। थूहर का दूध १६ तोले, अमलतास का गूदा १६ तोले और गोमूत्र ६२ तोले लें। गोमूत्र को छोड़ शेष सबको पीसकर कल्क करें। पश्चात् कल्क, गोमूत्र, गोघृत ६४ तोले और घृत से ४ गुना जल मिलाकर यथाविधि मन्दाग्नि पर घृत को सिद्ध करें। (भै.र.)

मात्रा–१/२ से १ तोला, सुबह निवाये दूध के साथ लेवें।

उपयोग–यह घृत उदर रोग, गुल्म, अफारा, प्लीहावृद्धि, आमवात, भगन्दर, गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ आदि रोगों को शमन करता है। कोष्ठस्थ दोषों को बाहर निकालने के लिये उत्तम औषधि है।

इस घृत की योजना दीपन, पाचन, आमविषहर और विरेचन औषधियों के संयोग सह की है। यह घृत पचन संस्थान की इन्द्रियां जब अति निर्बल और अपना कार्य करने के लिये परावलम्बी हो जाती हैं, जब उन्हें शनैःशनै सबल बनाने, पचन संस्थानगत उत्तान मल को बाहर फेंकने एवं रस, रक्त आदि सब धातुओं में प्रवेशित आमविष को जलाने का कार्य करता है। इस घृत के सेवन से उत्तान विष और लीन विष नष्ट हो जाता है। जिससे पचन क्रिया क्रमशः नियमित होने लगती है। २-४ मास तक इस घृत का सेवन करने पर दृढ़ मलावरोध, उदररोग, उदावर्त, आध्मान,प्लीहावृद्धि, वातज गुल्म, उदरकृमि, आमवात, गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ आदि रोग सरलता से काबू में आ जाते हैं।

इस घृत सेवन के साथ पचन संस्थान पर रोगानुरोध और प्रकृति भेद से उपकारक औषधि की योजना करने पर लाभ जल्दी मिलता है। विशेषतः ताम्र प्रधान, यकृत के लिए उपकारक क्रव्याद रस, प्रवालपञ्चामृत, अग्निकुमार, चतुर्मुख या क्षुद्बोधक रस की योजना की जाती है। ये सब वात और कफ प्रधान रोगों में प्रयोजित होते हैं। यदि प्रकृति पित्तप्रधान हो, मुखपाक दाह, स्वेदाधिक्य, निद्रानाश, मूत्र में पीलापन, रक्त स्राव आदि लक्षण हों तो चन्द्रकला, सूतशेखर, शंखभस्म, वराटिका भस्म, शंखवटी, प्रवालपञ्चामृत आदि औषधियों का प्रयोग किया जाता है। साथ-साथ रक्त और मांस संस्थान को बल देने के लिय सुवर्णभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, मण्डूरमाक्षिक भस्म, कासीस भस्म, रोप्य भस्म, त्रिवंग भस्म, अभ्रक भस्म प्रधान औषधियों का सेवन भी कराया जाता है।

(४) षट्पल घृत

विधि-पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ और सैंधानमक, सब समभाग मिलाकर कल्क करें। फिर कल्क १६ तोले, गोघृत ६४ तोले, दूध २५६ तोले और जल २५६ तोले मिलाकर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें।

मात्रा-६ माशे से १ तोला, दिन में २ बार दें।

उपयोग-यह घृत विषमज्वर, जीर्णज्वर, मन्दाग्नि, प्लीहावृद्धि और गुल्म का नाश करता है एवं भोजन में रुचि उत्पन्न करता है।

यह घृत दीपन, पाचन औषधियों के योग से बना है। पचन-संस्थान के लिए एवं रक्त-रक्तादि के भीतर उपस्थित अग्नि को प्रदीप्त करने के लिए सहायक है। जब रोग विष सब धातुओं में लीन हो जाता है तब उससे उत्पन्न रोग सरलता से दूर नहीं होता। उस अवस्था में धातुओं के भीतर रही हुई अग्नि को प्रदीप्त करने वाली औषधि देने की आवश्यकता रहती है। इस उद्देश्य को लेकर आचार्यों ने इस षट्पल घृत की योजना की है। यह दीर्घकाल व्यापी विषमज्वर, प्लीहावृद्धि और गुल्म को दूर करने में अति हितकर माना गया है। इसके सेवन के साथ सर्वज्वरहर लोह, विषमज्वरांतक लोह, संशमनी वटी या अन्य अनुकूल औषधि की योजना की जाये तो शीघ्र लाभ मिल जाता है।

(५) दशमूलाद्य घृत

प्रथम विधि-दशमूल (शालपर्णी, पृष्टपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू, बेलछाल, गम्भारी, पाढ़ल, अरलू और अरणी की छाल) १२८ तोले लेकर १६ गुने जल में चतुर्थांश क्वाथ करें। पश्चात् रास्ना, सोंठ, देवदारु, लाल पुनर्नवा और श्वेत पुनर्नवा समभाग मिला जल में पीसकर १० तोले कल्क करें। बाद में छाना हुआ दशमूल क्वाथ, उपरोक्त कल्क और १२८ तोले गोघृत मिलाकर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें।

मात्रा-आधे से १ तोला, दिन में ३ बार लें।

उपयोग-यह घृत वातोदर, मन्दाग्नि, अरुचि, शूल, श्वास, कास, हिक्का, वातविकार को शमन करके प्राणवायु को बलवान बनाता है। प्रसूता स्त्रियों के लिए विशेष लाभदायक है।

दूसरी विधि-दशमूल क्वाथ और दधिमण्ड (दही का पानी) २-२ सेर लेवें। पीपल, कालानमक, जवाखार, आंवला, हींग, बिजोरे की छाल और हरड़ सबकों समभाग मिला जल में पीसकर कल्क १२॥ तोले बनावें। फिर कल्क क्वाथ, दधिमण्ड और गोघृत १ सेर मिला मन्दाग्नि कर सिद्ध करें।

मात्रा-आधे से १ तोला तक। दिन में २-३ बार देवें।

उपयोग-यह घृत हिक्का और कफ सूख जाने पर बनी हुई शुष्क खांसी को नष्ट करता है, श्वास और कास रोग में कफ को बिना कष्ट बाहर निकालता है, मन्दाग्नि, वातविकार, प्रसूति का रोग, उदररोग इत्यादि में लाभदायक होता है। शुष्क शरीर वालों के लिये अति हितकर है।

यह दशमूलाद्यघृत उत्तम वातहर, दीपन, पाचन और सारक है। यह प्रसूतरोग, उदर में आमसंग्रह पीड़ित हिक्का रोगी और शुष्ककास, पीड़ितों के लिए अति शान्तिप्रद है। इसके सेवन से नाड़ियो में प्रवेशित आम दूर होता है, फिर वायु की गति सरलतापूर्वक अव्याहत होती रहती है एवं उदर में चिपके हुए मल और आम खुलकर निकल आते हैं तथा उदर में रही हुई वायु भी साफ हो जाती है। जिससे बनी रहने वाली व्याकुलता, मस्तिष्क में उग्रता, शरीर के विविध भागों में होने वाली वेदना आदि लक्षण शमन हो जाते हैं। फिर रोगी शनैः शनैः स्वास्थ्य लाभ करता है और सबल बन जाता है।

जब तीक्ष्ण या उष्ण औषधि या अफीम प्रधान औषधि का अधिक सेवन होने पर श्वसन-संस्थान में कफ सूखकर चिपक जाता है जिससे कास का वेग बार बार होता रहता है, सोने के आरम्भ में कास अधिक सताती है एवं थोड़े से परिश्रम में श्वास भर जाता है कार्य करने का उत्साह दूर हो जाता है तब ऐसी अवस्था में इस घृत का सेवन होने पर चिपका हुअ कफ सरलता से खुल जाता है। श्वासवाहितिनयां और फुफ्फुसस्थ कोषों में वायु की गति प्रतिबन्धरहित होती है। फिर थोड़े ही दिनों में श्वास, कास की निवृत्ति हो जाती है। यदि इस घृत के सेवनकाल में सितोपलादि चूर्ण+प्रवालपिष्टी+श्रृंगभस्म के मिश्रण का सेवन शहद के साथ दिन में २-३ बार किया जाय तो लाभ जल्दी मिल जाता है। सेवनकाल में अभ्रकभस्म, रससिंदूर, क्विनाइन, सोमल या सोंठ, मिर्च आदि उष्ण द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए।

वायु के आघात या अन्त्र यन्त्रों की क्रिया विकृति आदि कारणों से जब महाप्राचीरा पेशी की गति में प्रतिबन्ध होता है या इसकी विपरीत गति हो जाती है तब हिक्का उपस्थित होती है। इस प्रतिबन्ध का कारण कफ की शुष्कता और उदर में वायुप्रकोप तथा आमसंग्रहणी आदि कारण हो (किसी अन्त्र में गुल्म, विद्रधि, अन्त्रप्रदाह या शुक्रक्षय हेतु न हो), तब इस घृत के सेवन से लाभ पहुंच जाता है। साथ-साथ हिक्कान्तक रस, आरोग्यवर्द्धिनी, कनकासव या ताम्रभस्म अथवा किसी प्रकृति के अनुकूल रोगशामक औषधि का प्रयोग हो तो लाभ जल्दी मिल जाता है।

(६) पञ्चगव्य घृत

विधि-दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कूड़े की छाल, सतौना की छाल, अपामार्ग, नील, कुटकी, अमलतास, कठगूलर के मूल, पुष्करमूल और धमासा ये २४ औषधियां १०-१० तोले लेकर ३२ सेर जल में मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। फिर भारंगी, पाठा, सोंठ, मिर्च, पीपल, निसोंत, समुद्रफल, गजपीपल, पीपल, मूर्वा, दन्तीमूल, चिरायता, चित्रकमूल, काला सारिवा (अनन्तमूल), सफेद सारिवा, रोहिष घास, गन्धतृण, चमेली के पत्ते सब १-१ तोले मिला जल में पीसकर कल्क करें। फिर क्वाथ, कल्क के साथ गाय के गोबर का रस, दही, दूध, गोमूत्र और गोघृत २-२ सेर मिलाकर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें।

मात्रा-आधा से १ तोला, दिन में २ बार लें।

उपयोग-पंचगव्यघृत अपस्मार, उन्माद, सूजन, उदररोग, गुल्म, बवासीर, पाण्डु, कामला, भगंदर इत्यादि रोगों में लाभदायक है, चातुर्थिक ज्वर को नष्ट करता है।

पंचगव्य घृत का प्रवेश धातुओं में सरलतापूर्वक हो जाता है। मस्तिष्क के भीतर आम, विष, कफ, कृमि या कीटाणु की स्थिति हुई हो, उसे यह घृत जला डालता है या नष्ट कर देता है। इस हेतु से रोगी को श्रद्धासह पथ्य पालन पूर्वक २-४ मास तक इस घृत का सेवन कराया जावे तो भगवान् धन्वन्तरिजी रोगी को निःसंदेह आरोग्यता प्रदान करते हैं। अपस्मार और उन्माद पीड़ित कई रोगियों को इस घृत का सेवन सफलतापूर्वक कराया गया है और हमें घृत ने यश दिलाया है।

यह पंचगव्यघृत अपस्मार और उन्माद के रोगी के लिए आशीर्वाद रूप श्रेष्ठ औषधि है। यद्यपि जीर्णावस्था और तीक्ष्णावस्था दोनों में प्रयुक्त होता है। तथापि जीर्णावस्था में इसके सेवन की विशेष आवश्यकता रहती है। जीर्णावस्था में लीन विष को नष्ट करने, वायु के प्रतिबन्ध को दूर करने, मन और इन्द्रियों की विकृति को दूर कर प्रकृति को सबल बनाने तथा चिन्ता को नष्टकर मन को प्रसन्न रखने की आवश्यकता है। वे इस पंचगव्य घृत से होते हैं।

(७) जीवन्त्यादि घृत

विधि-जीवन्ती (डोडीकी), मुलहठी, मुनक्का, इन्द्रजौ, शठी (कचूर) पुष्करमूल, छोटी कटेली, गोखरू, खरेंटी, नीला कमल, भूई-आँवला, त्रायमाणा, धमासा और पीपल १-१ तोला मिला जल में पीसकर कल्क करें। फिर कड़ाही में कल्क के साथ १॥ सेर गौघृत, बकरी या गाय का दूध और जल ६-६ सेर मिलाकर मन्दाग्नि पर सिद्ध करें। (च.सं.)

मात्रा-आधा से १ तोला। दिन में २ बार सेवन करें।

उपयोग-यह घृत राजयक्ष्या(क्षय), जीर्णज्वर, कफप्रकोप, दाह, निद्रानाश, धातुक्षीणता आदि दोषों को दूर करता है। क्षय के तीसरे वर्ष में भी इससे लाभ होता है।

राजयक्ष्मा की प्रथम अवस्था में जब तक शुष्क कास हो तब तक सामान्यतः इस घृत के सेवन के साथ सूतशेखर+सितोपलादि चूर्ण+कामदुधाका मिश्रण दिन में ३ बार सेवन कराया है।

द्वितीयावस्था और तृतीयावस्था में जयमंगल रस, महामृगांक, मृगांक, वसन्तकुसुमाकर या कामचूड़ामणिका सेवन हितकाकर माना है। इसमें से रोगहर मुख्य औषधि सेवन के साथ ब्रह्मचर्य और पथ्य पालन पूर्वक यदि इस घृत का सेवन कराया जाय तथा निबोली का तैल प्रातः सायं ५-१० बूंद पतासे में या केप्सूल में दे दिया जाय तो रोगी आरोग्य लाभ प्राप्त कर लेता है। इस घृत में राजयक्ष्मा के पीड़ितों को अच्छा लाभ पहुंचाने के कई उदाहरण मिले हैं।

(८) अशोक घृत

विधि–अशोक की छाल सेर का चौगुने जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर नीचे उतारकर छान लेवें। पश्चात् १ सेर जीरे को ४ गुने जल में (ढक्कन से ढंककर)पका, आधा जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। फिर जीवनीयगण की औषधियां (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी जीवन्ती और मुलहठी), चिरौंजी, फालमा, रसौंत, मुलहठी, अशोक की छाल, मुनक्का, शतावर, चौलाई की जड़ प्रत्येक २-२ तोले लेकर कल्क करें। तत्पश्चात् कल्क, अशोक का क्वाथ, जीरे का क्वाथ, चांवलों का धोवन २ सेर, बकरी का दूध २ सेर, भांगरे का स्वरस २ सेर और गोघृत २ सेर लें। सबको कड़ाही में डाल शास्त्रोक्त विधि अनुसार पाक करें। घृत छान लेने पर १ सेर मिश्री मिला लेवें। (भै.र.)

मात्रा–१-१ तोला, दिन में २ बार दें।

उपयोग–यह घृत स्त्रियों के रोगों का नाशक है। श्वेत, नील और कृष्ण वर्ण के प्रदर, गर्भाशय में शूल, कटिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, कृशता, श्वास, कामला आदि को नष्ट करता है। शरीरबल कान्ति और आयुकी वृद्धि करता है।

जब गर्भाशय या अपत्यमार्ग के भीतर क्षत या विद्रधि होकर पूयोत्पत्ति होती है, तब नील या नीलकृष्ण (पूय रक्त मिश्रित) दुर्गन्धमय स्राव होता रहता है, व्रण स्थान में शूल भी चलता रहता है, रोग जीर्ण होने पर रुग्णा निस्तेज और कृश हो जाती है। इन विकारों पर बाह्य उपचार के साथ अशोक घृत का सेवन लाभदायक है। धातक्यादि तैल या इतर व्रणरोपण तैल की पिचकारी गर्भाशय में लगाते रहना चाहिये।

यदि बीजाशय या बीजाशयनलिका में विकृति होने से मासिक धर्म के समय वेदना होती हो, रजःस्राव पूरा न होता हो तथा प्रदररूप से स्राव होता रहता हो तो ऐसी स्थिति में चन्द्रांशु रस के साथ इस अशोक घृत का सेवन २-४ मास तक कराने से विकार दूर हो जाता है और रुग्णा सबल हो जाती है।

मासिकधर्म की योग्य शुद्धि न होने पर विष का प्रवेश रक्तद्वारा मस्तिष्क में होता है, नेत्रदृष्टि मन्द हो जाती है तथा शिरदर्द, निद्रावृद्धि और आलस्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं, किसी-किसी को श्वास प्रकोप भी हो जाता है। क्वचित् उन्माद का असर आ जाता है। **इस रोग पर चन्द्रांशु रस के साथ अनुपान रूप से घृत की योजना की जाती है।**

सामान्यतः ५०-६० वर्ष की आयु में मासिकधर्म की निवृत्ति होती है। इसके पहले कुछ समय तक मासिक धर्म की योग्य शुद्धि नहीं होती। फिर उसी हेतु से सारे शरीर में वेदना होना, मस्तिष्क में भारीपन रहना, व्याकुलता और किसी-किसी को स्मृतिनाश और उन्माद का असर होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्था में चन्द्रांशु रस के साथ अशोक घृत का सेवन कराया जाय तो मासिक धर्म की शुद्धि होती है और व्याकुलतादि लक्षणों का दमन हो जाता है।

सूचना–(१) यदि रुग्णा को मलावरोध हो तो मासिकधर्म आने के पहले मृदुविरेचन देकर उदरशुद्धि करा लेनी चाहिये।

(२) मासिकधर्म के दिनों में ३ दिन तक शीतल वायु का सेवन, शीतल जल से स्नान, सूर्य के ताप में घूमना, नेत्र को परिश्रम पहुंचे ऐसा कार्य करना और भारी भोजन ये सब हानिकारक हैं।

(९) बृहत्धात्री घृत

विधि–आंवलों का स्वरस, विदारीकन्द का रस, दूध, शतावर का रस, पञ्चतृण (कुश, कास, ईख, मूंज और नरसल) का रस और गोघृत २-२ सेर लें। छोटी इलायची, लोग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कैथ, नेत्रवाला, सिरसकी छाल, जटामांसी, केले का कन्द, कमल की जड़ को समभाग मिला जल के साथ २० तोले कल्क करें। सबको लोहे की कड़ाही में मिला मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें। घृत में मिश्री और शहद ४०-४० तोले, मुलहठी, निसोत, जवाखार और विधारे का चूर्ण ५-५ तोले मिला मन्थनकर एक जीव बना लें।

मात्रा–आधा से १ तोला, दिन में २ बार चाटें।

उपयोग–यह घृत बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रमेह, तृषा, दाह, अरुचि, सोमरोग, पित्तवृद्धिजन्य विकार, वातिकरोग को दूर करके बलवीर्य की वृद्धि करता है। इस औषधि से सोमरोग और बहुमूत्र में ठीक लाभ होने लगता है।

(१०) अष्टमंगल घृत

विधि–बच, कूठ, ब्राह्मी, सफेद सरसों, अनन्तमूल, सैंधानमक और पीपल इन ७ औषधियों को समभाग मिला जल के साथ पीसकर कल्क करें। बाद में कल्क, ४ गुना गोघृत और १६ गुना जल मिलाकर यथाविधि घृत सिद्ध करें। (भै. रं.)

मात्रा–१-१ माशा, शक्कर में या भोजन के पहले ग्रास में मिलाकर, दिन में १ या २ बार देते रहें।

उपयोग–यह घृत २॥ वर्ष से बड़े बालकों को रोज चटाने से उनकी बुद्धि बढ़ती है और धारण शक्ति तीव्र होती है तथा पिशाच, राक्षस-भूत आदि की बाधा नहीं होती एवं बालक स्वस्थ और पुष्ट बनता है।

वक्तव्य–जिस बालक का यकृत बढ़ा हुआ (निर्बल) हो तो उसे घृत प्रधान औषधि या भोजन नहीं दिया जाता है। ३ वर्ष से बड़ी आयु वाले बच्चों को घृत प्रधान औषधि देने से मस्तिष्क को जल्दी लाभ पहुंचता है।

(११) ब्राह्मी घृत

प्रथम विधि–ब्राह्मी का स्वरस ४ सेर और गोघृत २ सेर लेवें। सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, कालीनिसोत, सफेद निसोत, दन्तीमूल, शंखाहुली, अमलतास की फली का गूदा, सातला की छाल (सिक्काकाई) और बायविडंग १-१ तोला मिला जल में पीसकर कल्क करें। फिर सबको ८ सेर जल में मिला मन्दाग्नि पर पचनकर घृत सिद्ध करें।

मात्रा–आध से १ तोला, दिन में २ बार दें।

उपयोग–यह घृत उन्माद, कुष्ठ, अपस्मार, मगज की निर्बलता और मन्दाग्नि आदि को दूर करता है। वाणी, स्वर और स्मृति को बढ़ाता है। बन्ध्या स्त्री को संतान की प्राप्ति कराता है। जिन रोगियों को मलावरोध रहता हो उन रोगियों के लिये यह विधि हितावह है।

यह घृत वातसंस्थान के लिये बल्य और मस्तिष्क शोधक है। जब मस्तिष्क में कफसंग्रह होकर भारीपन आ जाता है, तब बुद्धि और स्मरणशक्ति का ह्रास, निद्रावृद्धि थोड़े से मानसिक प्रयत्न से मस्तिष्क थक जाना, मुखमण्डल निस्तेज और उदासीन भासना, पाचनक्रिया मन्द रहना और मलावरोध बना रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, तब मस्तिष्क को शुद्ध और सबल बनाने के लिये यह घृत आशीर्वाद के समान है।

कतिपय विद्यार्थियों पर परीक्षा के समय अभ्यास का बोझा बहुत बढ़ जाता है जिससे वे रात्रि को पूरी निद्रा भी नहीं ले सकते। उनके स्वास्थ्य की रक्षा करने और मस्तिष्क को शक्ति देने के लिये यह घृत उपयोगी है। इसके सेवन से अनेक विद्यार्थियों को आशातीत लाभ हुआ है।

नव्य वैद्यक के मतानुसार अपस्मार रोग कीटाणुजन्य है, अथवा अपस्मार होने पर मस्तिष्क के भीतर विशेष प्रकार के कीटाणु संगृहीत हो जाते हैं। फिर उनके विष का प्रकोप होने पर अपस्मार को दौरा होता है। इन कीटाणुओं को मस्तिष्कस्थ कफ या मल से पोषण मिलता रहता है। यदि अपस्मार की प्राम्भावस्था में इस घृत का सेवन कराया जाय तथा वैरेचनिक नस्य सुंघाया जाय तो संगृहीत कफ और कीटाणु सब निकल जाते हैं। फिर मस्तिष्क का शोधन होकर रोग का शमन हो जाता है।

मस्तिष्क में आम, मल या कफ का संचय होने पर उसके विष का रक्त में प्रवेश होता है। फिर उसी हेतु से श्वेतकुष्ठ, दद्रु आदि त्वचा रोग की संप्राप्ति हो जाय तो इस घृत से मस्तिष्क और रक्त का शोधन हो जाता है और उक्त विकार शमन हो जाते हैं।

सूचना–यदि यकृत निर्बल हो और मल सफेद दुर्गन्धयुक्त निकलता हो तो घृत का सेवन नहीं कराना चाहिये।

दूसरी विधि–ब्राह्मी का स्वरस या क्वाथ ४ सेर, गोघृत १ सेर तथा बच, कूठ और शंखपुष्पी तीनों को समभाग मिला २० तोले कल्क करें। फिर सबको मिला मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें। (च.सं.)

मात्रा–आधा से १ तोला दिन में २ बार लेवें।

उपयोग–यह घृत उन्माद, अपस्मार और बालकों के बालग्रह को नष्ट कर स्मरण शक्ति, बुद्धि और कान्ति की वृद्धि कराता है। जिन रोगियों को मलावरोध न रहता हो उन रोगियों के लिये यह विधि अति लाभदायक है।

(१२) गन्धक घृत

विधि–गोदुग्ध ८ सेर को गरम करें। उफान आने पर आधा सेर शुद्ध आंवलासार गन्धक का चूर्ण डालें। ३-४ उफान आ जाने पर दूध को नीचे उतारें। शीतल होने पर दही को मिलाकर जमा देवें। दूसरे दिन मन्थनकर मक्खन निकाल घी बना लेवें। छाछ में शुद्ध गन्धक रह जाय उसे अलग निकालकर उपयोग में लें।

उपयोग–इस घृत में से ६ माशे से १ तोला दिन में २ बार दूध के साथ सेवन करने से रक्तविकार, दाह, प्रमेह, दृष्टिमांद्य, शिरदर्द, मन्दाग्नि, कब्ज, फोड़ा-फुन्सी और कुष्ठ आदि रोग दूर होते हैं। मालिश करने से सूखी खाज और त्वचा रोग नष्ट होते हैं। वातरक्त और गलत्कुष्ठ रोग में भी यह घृत हितकारक है।

(१३) चांगेरी घृत

विधि–चांगेरी (चूका) का रस, बेलफल की छाल का क्वाथ और खट्टा दही ३-३ सेर, गोघृत १ सेर और सोंठ तथा जवाखार ५-५ तोले लें। सोंठ और क्षार का कल्क करें। फिर सबको मिला मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें।

मात्रा–आधा से १ तोला, दिन में २ बार।

उपयोग–इस घृत के पिलाने से गुदभ्रंश रोग दूर होता है। आवश्यकता पर चूहे की चरबी गुदभ्रंश पर लगाते रहें। बंगसेन ने इस घृत को शूलयुक्त अतिसार नाशक कहा है। आमातिसार, अग्निमांद्य, अरुचि और उदर पीड़ा को भी दूर करता है।

(१४) दूर्वादि घृत

विधि–दूब का मूल, नीलमकल, कमल की केशर, मजीठ, एलुवा (अभाव में नेत्रबाला), मूर्वा, लोध, खस, नागरमोथा, रक्तचन्दन, पद्मकाष्ठ, मुनक्का, मुलहठी, हरड़, गम्भारी की छाल और सफेद चन्दन प्रत्येक १-१ तोले मिला जल के साथ पीसकर कल्क करें। पश्चात् बकरी अथवा गाय का घी १ सेर, बकरी का दूध और चावलों का धोवन ४-४ सेर मिला कर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें। (यो.र.)

मात्रा–आध से २ तोले, दिन में ३ बार चाटें और जहाँ से रक्त निकलता हो वहां पर अंजन नस्य अथवा पिचकारी दें या मालिश करें।

उपयोग–यह घृत ऊर्ध्व रक्तपित्त, अधोरक्तपित्त और रक्तार्श में गिरने वाले रक्त को शीघ्र बन्द करता है। स्त्रियों के रक्त प्रदर और अत्यार्तव रोग को भी दूर करके गर्भाशय को शुद्ध बनाता है। भयंकर बढ़े हुए रक्तपित्त का भी इस घृत के सेवन से शमन होता है।

इस घृत का सेवन कराने से रक्तपित्त दूर होते हैं। यदि वमन होती हो तो घृतपान कराना चाहिये। कानों से रक्त आता हो तो कानों में डालना चाहिये। नेत्र से रक्त आता हो तो नेत्र को घृत पूरित कराना चाहिये। गुदा या मूत्रेन्द्रिय से रक्तस्राव हो तो समस्त शरीर पर मालिश करानी चाहिये। इस तरह इस घृत को विविध प्रकार से उपयोग में लिया जाता है। बाह्य स्थानिक प्रयोग करते हुये भी घृतपान तो कराना ही चाहिये। घृतपान कराते रहने में आभ्यन्तरिक दोष की निवृत्ति सत्वर होती है।

(१५) कल्याण घृत

विधि–इन्द्रायन की जड़, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सम्हालू के बीज, देवदारु, एलुवा (अभाव में नेत्रवाला), शालपर्णी, धमासा, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा, प्रियंगु, नीलोफर, छोटी इलायची, मजीठ, दन्तीमूल, अनारदाना, नागकेशर, तालीसपत्र, बड़ी कटेली, चमेली के ताजे फूल, बायविडंग, पृष्ठपर्णी, कूठ, चन्दन, पद्माख इन २८ औषधियों को १-१ तोले लेकर कल्क करें। पश्चात् कल्क, गोघृत १ सेर और ४ सेर जल मिलाकर यथाविधि पाक करें। (च.सं.)

चक्रदत्त ने इस घृत पाक में दूध द्विगुण और जल चतुर्गुण मिलाकर नाम 'क्षीरकल्याण' घृत रखा है।

मात्रा–आधा से २ तोले, दिन में २ बार चाटें।

उपयोग–कल्याण घृत अपस्मार, चातुर्थिक ज्वर, तृतीयक ज्वर, जीर्णज्वर, हृदय का कम्प, कास, श्वास, मन्दाग्नि, प्रतिश्याय, वातरोग, वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ्, विसर्प, खुजली, पाण्डु, उन्माद, दूषी विष, प्रमेह, भूतबाधा, हिस्टीरिया, बालग्रह, स्वरभेद और स्त्रियों के बन्ध्यापन को नष्ट करता है तथाा आयु, बल, बुद्धि को बढ़ाता है। निस्तेजता, पापज रोग, राक्षस और ग्रहों की बाधा का विनाश करता है। यह घृत सन्तानोत्पत्यर्थ उत्तम वृष्य है।

(१६) जात्यादि घृत

विधि–चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, पटोलपत्र, मैनफल, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, मुलहठी, करंज के पत्ते, नेत्रवाला और अनन्तमूल प्रत्येक १-१ तोला मिला पानी में घोट लुगदी बना लें। फिर लुगदी से चार गुना गाय का घी और १६ गुना जल मिला मन्द आंच से पकाकर घृत सिद्ध करें।

अनेक चिकित्सक घृत पक ताने पर छान, मोम और नीलेथोथे का फूला १-१ तोला मिलाकर मलहम जैसा घृत बना लेते हैं।

उपयोग- पुराना नाड़ीव्रण (नासुर), व्रण, गम्भीर व्रण, दुष्टव्रण आदि पर इस घी की पट्टी बांधने से बहुत जल्दी आराम होता है।

(१७) नासाकृमिहर घृत

विधि–हींग, आंवलासार, गन्धक, मैनसिल, कूड़ाछाल, बच्छनाभ, आमाहल्दी, दारुहल्दी, सहिंजने के बीज और बायविडंग १०-१० माशे, नीम की निम्बोली की गिरी २ तोले और कालीमिर्च ५ माशे लें। सबको गोमूत्र में खरलकर छोटी-छोटी टिकिया बांधे। बाद में ३ पाव गोघृत को कड़ाही में डाल चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि दें। घी पकने पर टिकिया डालें। टिकिया काली हो जाने पर कड़ाही उतार लें। थोड़ा गरम रहने पर घृत को छान लें। (पं. श्री धूलचन्दजी शर्मा, वैद्य)

उपयोग–यह घृत दोनों नथनों में ५-५ बूंद रोज सुबह चढ़ाने से थोड़े ही दिनों में नाक मे से कृमि मरे हुए गिर जाते हैं, फिर शिरदर्द तथा नेत्रों की कमजोरी दूर हो जाती है। जली हुई टिकियाओं को पीसकर व्रण, नाड़ीव्रण आदि में डालने से वे भर जाते हैं।

(१८) मल्ल तैल

विधि–सफेद मल्ल ५ तोले, जायफल २॥ तोले और बादाम का तैल २० तोले लेवें। पहिले मल्ल और जायफल का कपड़छान चूर्ण करें। फिर जल मिला पीसकर कल्क (चटनी) बनावें। पश्चात् तैल, कल्क तथा १ सेर जल मिला, कलईदार पीतल के भगोने में मन्दाग्नि से तैल सिद्ध कर लें।

मात्रा–१ सींक भर के पान में खाँय और रात्रि को एक अंगुली पर लगा इन्द्रिय की सुपारी और सीवन को छोड़कर मालिश करें। फिर उस पर नागरबेल का पान बांध दें।

उपयोग–इस तैल के सेवन से थोड़े दिनों में शारीरिक निर्बलता दूर होती है। थोड़े सरसों के तैल में मिलाकर मालिश करने से संधिवान दूर होता है। कफप्रधान श्वास के रोगी को खिलाने से फायदा होता है। घी खूब खाना चाहिए।

सूचना–तैल खुले स्थान में निकालें। बिना जल मिलाये तैलपातन यन्त्र से तैल निकालें। उस शीशी में से बहुत दुर्गन्धयुक्त धुआं निकलता है उससे बचना चाहिये।

(१९) व्याघ्री तैल

विधि–छोटी कटेली का पञ्चांग, दन्तीमूल, बच, सहिंजने की छाल, तुलसी के पत्ते, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और सैंधानमक सब समभाग लें। सबको कूट जल मिला पीसकर कल्क करें। फिर कल्क से ४ गुना तिल तैल और तैल से ४ गुना छोटी कटेली के पञ्चांग का क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से तैल सिद्ध करें।

उपयोग–इस तैल को सूंघने से पीनस (नाक में से निकलने वाले पीप और दुर्गन्ध), नाक में से श्लेश्मा आना, मस्तिष्क में कृमि होना आदि रोग दूर होते हैं तथा इस तैल को पीने से कफ दूर होकर खांसी और श्वास का नाश होता है।

सूचना–पीने के लिये ताजे तिल के तैल को और सूंघने के लिये सरसों के तैल को सिद्ध करना चाहिये।

(२०) चन्दनबला लाक्षादि तैल

विधि–सफेद चन्दन, खरेंटी की मूल, लाख और लामज्जक (खस) चारों को ६४-६४ तोले लेकर १०२४ तोले जल मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार छानकर सबको मिला लें। फिर सफेद चन्दन, खस, मुलहठी, सोया, कुटकी, देवदारु, हल्दी, कूट, मजीठ, अगर, नेत्रबाला, असगन्ध, खरैंटी, दारुहल्दी, मरोड़ाफली, नागरमोथा, मूली, छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर, रास्ना, लाख, अजमोद, चम्पा के फूल, सफेद अनन्तमूल, पीलाचन्दन, (पीतक्षार) सैंधानमक और बिड लवण सब समभाग मिलाकर ३२ तोले कल्क करें। तिल तैल १२८ तोले और दूध २५६ तोले लें। सबको कड़ाही में डाल मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें। (यो.र.)

उपयोग–इस तैल की मालिश करने से कास, श्वास, क्षय, वमन, ज्वर कामला, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, पाण्डु पित्त और कफ के प्रकोप आदि रोग दूर होकर धातुएं बलवान बनती हैं। मस्तिष्क की उष्णता, नेत्रदाह और शरीर दाह का नाश होकर कान्ति की वृद्धि होती है। खुजली, सूजन, फोड़ा-फुन्सी आदि रक्त और त्वचा के दोष दूर होते हैं। बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा स्त्री सबके लिये हितकर है। जीर्णज्वर और पाण्डु रोग में यह तैल विशेष उपयोगी है। प्रसूता स्त्रियों और बालकों को इसकी मालिश करते रहने से रोग होने का भय दूर होकर शरीर बलवान बनता है।

(२१) चन्दनादि तैल

प्रथम विधि–सफेद चन्दन, मुलहठी, मुर्वा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीलोफर, प्रियंगू, बड़ के अंकुर, गिलोय, कमल की केशर, लोह का चूरा, जटामांसी, सफेद सारिवा, काली सारिवा सबको समभाग मिला जल में पीसकर कल्क करें, पश्चात् ४० तोले कल्क, तिल का मूर्च्छित किया हुआ तैल २ सेर और भांगरे की स्वरस ८ सेर मिलाकर यथाविधि पाक करें। (च.द.)

उपयोग–इसकी नस्य लेने तथा शिर में मालिश करने से गिरे हुए केश उत्पन्न होते हैं, बाल स्निग्ध दृढ़ मूल वाले और भ्रमर के समान काले हो जाते हैं।

द्वितीय विधि–सफेद चन्दन, नेत्रवाला, नख, कूठ, मुलहठी, छारछरीला, पद्माख, मजीठ, सरल (चीड़), देवदारु, कचूर, छोटी इलायची, जायफल, नागकेशर, तेजपात, बेल की छाल, शीतल मिर्च, रक्तचन्दन, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत अनन्तमूल, कृष्ण अनन्तमूल, कुटकी, लौंग, अगर, केशर, दालचीनी, निर्गुन्डी के बीज और नलिका इन ३० औषधियों को २-२ तोले मिला मस्तु के साथ पीसकर कल्क तैयार करें और पीपल की लाख का (लाक्षा रस में कही विधि से) क्वाथ करें। फिर एक पीतल की कलई की हुई कड़ाई में कल्क, ३॥ सेर लाक्षा रस, १० सेर मस्तु (दही का तोड़) और ३॥ सेर तिल्ली का तैल मिला मन्दाग्नि यथाविधि पाक करें।

उपयोग–इस तैल की मालिश से विशेषत: जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा और रक्तपित्त दूर होते हैं। यह उन्माद, अपस्मार, दाह, शिरदर्द, धातु विकृति आदि रोगों में लाभ पहुंचा करके आयु और कान्ति को बढ़ाता है।

(२२) चक्रमर्दादि तैल

विधि–पंवाड़ के मूल का कल्क १६ तोले, भांगरे का स्वरस २५६ तोले और सरसों का तैल ६० तोले मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। पाक होने के ५-७ मिनट पहले १६ तोले सिन्दूर मिलावें, फिर उतार लें, शीतल होने पर तैल निकाल लें। (वं. से.)

उपयोग–इस तैल की पट्टी लगाते रहने से भयंकर गण्डमाला नष्ट हो जाती है एवं नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण आदि में भी लाभ पहुँचता है।

(२३) वातहर तैल

विधि–अरण्डी के बीज, मालकांगनी और एक पोथिया लहसुन १-१ छटांक, भेड़ का दूध ३ छटांक और तिल अथवा सरसों का तैल १२ छटांक लें। इन तीनों औषधियों को पीसकर दूध में मिला लें। बाद में कलई की हुई पीतल की कड़ाही में तैल डाल चूल्हे पर चढ़ावें। फिर उस तैल में औषधि की छोटी-छोटी पकोड़ी डालते जायें और अच्छी रीति से लाल होने पर निकालते जायें। अन्त में तैल को नीचे उतार शीतल होने पर छानकर बोतल में भर लें।

उपयोग–इस तैल की मालिश करने से वातरोग दूर होते हैं। न्युमोनिया में फेफड़ों पर मालिश करने से फेफड़ों के दोष दूर होते हैं, कान में डालने से फुन्सियां दूर होती हैं, देह के किसी भाग में वातनाड़ियों के प्रदाह से होने वाली पीड़ा इस तैल की मालिश से शान्त हो जाती है। यदि उदर में वायु भरा हो तो उदर पर इस तैल की मालिश धीरे हाथ से करायी जाती है। प्रसूता के गर्भाशय पर इस तैल की मालिश कराते रहने से गर्भाशय सबल बनता है। ठण्डी वायु के आघात से शरीर का कोई भाग रह गया हो और नया हो तो इस तैल की मालिश से जल्दी लाभ पहुँचता है। उपयोग करने के समय एक कटोरी में निकाल निवाया करलें। इस तैल को पैरों के तलवें और गले के ऊपर के भाग में नहीं लगाना चाहिये।

इस तैल का लगभग १०० से अधिक वर्षों से श्री पं. मंगूलालजी के पितामह आदि उपयोग करते आयें हैं। साधारण औषधि होने पर भी बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

सूचना–जल प्रधान शोथ में वेदना होती हो या न होती हो तो उस शोथ पर इस तैल की या अन्य तैल की मालिश नहीं की जाती।

(२४) अपूर्व तिला

विधि–सफेद सोमल के १० तोले चूर्ण को ७ दिन तक आक के दूध में भिगों दें। पश्चात् गाय के २० तोले घी के साथ सोमल की ३ दिन घुटाई करें। फिर छोटी कड़ाही में डाल चूल्हे पर चढ़ाकर मन्द अग्नि दें। जब घी बिल्कुल नितरकर ऊपर आ जाय और सोमल नीचे बैठ जाय तब कड़ाही को नीचे उतार लें। कड़ाही किंचित् गरम रहने पर सम्हालकर ऊपर-ऊपर से स्वच्छ घी दूसरी कटोरी में लें लें। जो सोमल वाला घी शेष रहे उसे जमीन में गाड़ दें। फिर स्वच्छ घी ५ तोले, केशर और कस्तूरी १०-१० रत्ती, जायफल, जावित्री, लोंग और बीरबहूंटी ५-५ माशे मिलाकर १ दिन घुटाई करें। (धन्वन्तरि)

उपयोग–यह तिला एक चने के बराबर लेकर, रात को सोते समय इन्द्रिय पर सुपारी तथा सींवन के भाग को छोड़कर सम्हाल पूर्वक मालिश करें। फिर नागरबेल के पान को थोड़ा गरमकर उस पर लपेट लें, ऊपर कपड़ा बांधे। इस तरह थोड़े दिन मालिश करने से हस्तमैथुन से उत्पन्न नपुंसकता और इन्द्रिय कां टेढ़ापन दूर होता है।

सूचना–४-६ रोज बाद इन्द्रिय पर छोटी-छोटी फुन्सियां हो जाय तो ३-४ दिन मालिश बन्द करें और धोये घी की मालिश दिन में ३-४ बार करें। फुन्सियां मिटें तब फिर तिला की मालिश करें। इस रीति से १५-२० रोज मालिश करने से रोगियों को आशातीत लाभ होता है।

दूसर विधि–सफेद सोमल १ तोले को ३ दिन आक के दूध में खरल करें फिर मुर्गी के २४ अण्डों की जर्दी मिला छोटी कड़ाही में डाल तेज अग्नि पर रखें, कलछी से सम्हालपूर्वक हिलाते रहे। जर्दी जलकर काली हो जाय और धुआं निकलने लगे, तब उसमें से तैल अलग हो जाता है। इस तैल को अलग निकाल शीशी में भर लें। दूसरे दिन शीशी को धूप में रख देने से साफ हो जाता है।

उपयोग–इस तैल की इन्द्रिय पर मालिश कर ऊपर नागरबेल का पान बांध देवें। यह तैल ४-६ बूंद पताशे या कैपशूल में डालकर निगल जायें ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें। इसके उपयोग से इन्द्रिय की शिथिलता (किसी भी प्रकार से उत्पन्न हुई हो) दूर होती है और इन्द्रिय का टेढ़ापन भी दूर होता है।

सूचना–पहली विधि में लिखी है।

(२५) मल्लसर्पि

विधि–शुद्ध मल्ल ४ माशे, कनेर के जड़ की छाल २ तोले, सफेद गुञ्जा ३ तोले और दूध ४ सेर लें। सबको दूध में औटाकर दही जमा देवें। दूसरे दिन मथकर घृत निकाल लेवें।

उपयोग–इस घृत की मालिश करने से हस्तमैथुन जनित शिथिलता दूर होती है। इस घृत को सुपारी को छोड़ लिंग पर मर्दन कर ऊपर नागर बेल का पान बांध देना चाहिये। विशेष सूचना अपूर्व तिला में देखें।

(२६) लिंग तैल

विधि–कस्तूरी ७ रत्ती, कालीमिर्च, अकरकरा, जुन्देबेदस्तर, हींग बढ़िया और बीरबहूंटी ५-५ माशे, केशर १ माशा और बिनौले की गिरी माशे लें। सबको खरलकर चमेली के ५ तोले तैल में मिला लेवें।

उपयोग–थोड़ा-सा तैल लेकर रात्रि को लिंग पर मालिश करें। यह तैल लिंग की शिथिलता को दूर करने में अति लाभदायक है। हस्तमैथुन और शारीरिक निर्बलता से उत्पन्न नपुसंकता को दूर करता है।

(२७) चर्मरोगनाशक तैल

विधि–नीम की छाल, चिरायता, हल्दी, दारुहल्दी, लाल चन्दन, हरड़, बहेड़ा, आंवला और अडूसे के पत्ते सबको समभाग लेकर कल्क करें। कल्क से चौगुना तिलों का तैल और तैल से चौगुना जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। पानी जल जाने पर उतारकर तुरन्त छान लेवें। (स्वा. र.)

उपयोग–इस तैल की मालिश करने से त्वचारोग, ब्यूची, खुजली, खाज, चमड़ी फटना, शुष्क होना, फुन्सी आदि दूर होते हैं। साधारण औषधियों से यह तैल बनता है। फिर भी बड़े-बड़े दृढ़ रोगों को थोड़े ही दिनों में दूर करता है।

(२८) बिल्वादि तैल

विधि–कच्चे बेल की गिरी ४० तोले, सरसों का तैल २ सेर, जल और बकरी का दूध ८-८ सेर लेवें। प्रथम बेलगिरी को गोमूत्र में पीसकर लुगदी बना लेवें। फिर एक पीतल की कलईदार कड़ाई में सबको मिलाकर धीमी आंच से पकावें। जब लुगदी लाल होने लगे तब उतारकर तुरन्त छान लें। (शा. सं.)

मात्रा–२ से ४ बूंद ड्रापर से कान में डालें।

उपयोग–इससे कर्णशूल, कर्णस्राव, बधिरता आदि कान के रोग मिटते हैं। लोहे की कड़ाही में तैल का रंग काला हो जाता है, इसलिए पीतल का बरतन ही काम में लेना चाहिये।

सूचना–जब कान में फुन्सी होकर पाक हो रहा हो तब बहुधा शूल चलता है। ऐसी अवस्था में बिल्वादितैल या अन्य किसी भी तैल का उपयोग नहीं करना चाहिये। उस समय धतूरे के पानों का रस या अन्य वेदनाहर औषधि का रस या क्वाथ डाला जाता है। एवं शीतल जल और शीतल वायु से कान की रक्षा करनी चाहिये।

(२९) क्षार तैल

विधि–कोमल मूलियों का खार, सज्जीखार, जवाखार, सैंधानमक, कालानमक, समुद्रनमक, बिड़नमक, सांभरनमक, हींग, सहिंजने की छाल, ..., देवदारु, कूठ, सोंफ, बच, रसौंत, पीपलामूल औरनागरमोथा सब १-१ तोला लेकर कल्क करें। सरसों का तैल ६४ तोले, केले के खम्भे का रस, बिजोरे का रस और मधुशुक्त प्रत्येक २५६-२५६ तोले लें। फिर सबको मिला चूल्हे पर चढ़ाकर पाक करें। तैल मात्र शेष रहे तब उतारकर छान लेवें। (शा.सं.)

मधुशुक्त विधि–नींबू का रस ६४ तोले, शहद १५ तोले और पीपल का चूर्ण ४ तोले मिला एक बोतल में बन्द कर अनाज की कोठी में ३ दिन दबा देने से मधुशुक्त तैयार होता है।

उपयोग–इस तैल को कान में डालने से सब प्रकार के कर्णरोग, पीप बहना, कर्णनाद, कर्णशूल और बधिरता आदि दूर होते हैं। इसके अतिरिक्त मुखरोग भी नष्ट होते हैं।

यह तैल कर्णार्शजनित बधिरता पर उपयोगी है। इस तैल के प्रयोग से कर्णार्शका क्षरण होता है; फिर बधिरता दूर होती है। इस तरह दोष को निकालने के लिये इसका उपयोग कर्णपाक पर भी होता है। कभी देह के अन्य भाग में व्रण भरने लगे तब मांस वृद्धि अधिक होती ... उस मांसवृद्धि की कमी कराने के लिए क्षार तैल का उपयोग होता है।

(३०) निम्बादि तैल

विधि–निम्बोली का तैल २॥ तोले, हरताल २॥ तोले, मैनशिल २॥ तोले, चमेली के पत्ते, मजीठ, मुलहठी, भिलावा, अगर, चन्दन का चूरा, इलायची प्रत्येक ५-५ तोले लेकर इनका कल्क करके तैल में मिलावें और ५ सेर छाछ (तक्र) डालकर तैल सिद्ध करें।

उपयोग–इस तैल में बत्ती भिगोकर भगन्दर के छेद में रोज रखने से थोड़े ही दिनों में आराम होता है। दूसरी जगह के सड़े घाव भी उसके उपयोग से मिटते हैं। इस तैल को योगतरङ्गिणीकार ने बल्मीकनाशक लिखा है।

(३१) चक्रमर्द तैल

विधि–पुंवाड़ के बीज, आहलिव (हालो), राई, सरसों, मालकांगनी, तिल और नारियल की गिरी समभाग लें। नारियल को छोड़ अन्य वस्तुओं को मिलाकर चूर्ण करें। फिर नारियल मिलाकर कोल्हू में तैल निकलवा लें। फिर इससे से ४० तोले तैल को गरम कर उबलने पर नीचे उतार लें। आधी गरमी कम होने पर ५ तोले कपूर का चूर्ण मिलाकर ढक देवें। शीतल होने पर ८० तोले शेष तैल में इसे मिला लेवें। अतः १२० तोले तैल हो जायेगा। (आ.नि.मा.)

उपयोग–इस तैल को किञ्चित गुनगुना कर मालिश करने से वातरोग से जकड़ी हुई कमर, जांघ, पिण्डी, आदि अंग अच्छे हो जाते हैं। यह पुराने रोगियों को लाभ पहुँचाता है।

(३२) नारायण तैल

विधि–असगन्ध, खरैंटी, बेल की छाल, पाढ़, कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू, अतिबला (कंघई), नीम की अन्तरछाल, अरलू, पुनर्नवा, प्रसारणी और अरणी ये १३ वस्तुएं ४०-४० तोले लेवें। सबको जौकुटकर ४०९६ तोले पानी में डालकर काढ़ा करें। चतुर्थांश जल अवशेष रहने पर उतारकर छान लेवें। इसमें तिल तैल २५६ तोले, शतावरी का रस या क्वाथ २५६ तोले तथा गौ का दूध १०२४ तोले मिलावें। फिर कूठ, इलायची, सफेद चन्दन, खरैंटी, बच, जटामांसी, सैंधानमक, असगन्ध, शैलेय (पत्थर फूल), रास्ना, सोया, देवदारु, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी और तगर ४-४ तोले के कल्क करके मिलावें। फिर कड़ाही को चूल्हें पर चढ़ाकर मन्द ताव पर पाक करें। पश्चात् उतारकर तुरन्त छान लेवें। (भा० प्र०)

उपयोग–इस तैल का वातशमनार्थ पीने, नस्य, बस्तिकर्म और मर्दन में उपयोग होता है। वातरोग, पक्षाघात, मन्यास्तम्भ, उरुस्तम्भ, कटिग्रह वायु, गलग्रह, खंज, चलते समय पैर टेढ़े पड़ना, अंग सूखना, इन्द्रियों की शक्ति नष्ट होना, वीर्य के साथ रक्त जाना, ज्वर, राजयक्ष्मा, अण्डवृद्धि, अण्डकोष में शूल चलना, दन्तरोग, पसलियों का शूल, ज्वर, क्षय धातुक्षीणता, रक्तविकार आदि रोगों में अति लाभदायक हैं इसके प्रभाव से वन्ध्या को पुत्र होता है। इसकी मालिश हाथी और घोड़ों के लिये भी हितकर है।

यह तैल वातनाड़ियों के क्षोभ को दूर कर वातवाहिनियों को सबल बनाता है। वात के साथ पित्तविकार हो तो भी इस तैल की मालिश हितावह है। यदि आमदोष हो तो इस तैल की अपेक्षा विषगर्भ तैल की मालिश विशेष अनुकूल मानी जायेगी।

(३३) कासीसादि तैल

विधि–कासीस, लांगली (कलिहारी), कूठ, सोंठ, पीपल, सैंधानमक, मैनसिल, कनेर की छाल, बायविडंग, चित्रकमूल, अडूसे के पत्ते, दन्तीमूल, कड़वी तोरई के बीज, सत्यानाशी की जड़, हरताल सबको १-१ तोला जल में पीसकर लुगदी बनावें। फिर तिलों का तैल ६४ तोले, थूहर का दूध ८ तोले, आक का दूध ८ तोले और गोमूत्र २५६ तोले लें। सबको बड़ी कड़ाही में मिलाकर मन्दाग्नि से पकावें। फिर उतारकर तुरन्त छान लेवें। (शा.सं.)

उपयोग–यह तैल अर्श पर लगाने से मस्से मुरझा जाते हैं। यह तैल गुदा की वली को नुकसान नहीं पहुँचाता। इस तैल को धैर्यपूर्वक ३-४ मास तक लगाते रहना चाहिये।

(३४) लाक्षादि तैल

विधि–पीपल की लाख ४ सेर, सोया, असगन्ध, हल्दी, देवदारू, रेणुकबीज, कुटकी, मूर्वा, कूठ, मुलहठी, नागरमोथा, लालचन्दन, रास्ना, पद्माख खस, सफेद चन्दन, जटामांसी और मजीठ १-१ तोला लें। तिल का तैल १ सेर और दही का पानी अथवा मट्ठा ४ सेर लें। पहले लाख को १६ सेर जल में मिलाकर औषधिकृत प्रकरण में लिखे अनुसार क्वाथ (रस) करें। ४ सेर जल शेष रहे तब उतारकर छान लें, फिर और वस्तुओं को जल में पीसकर कल्क करें। पश्चात् कलई की हुई पीतल की कड़ाही में सबको मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। तैल शेष रहे तब उतारकर तुरन्त छान लें। (शा.सं.)

सूचना–तैल पाक होने पर छरीला, नखी, कपूर, कूठ, और सफेद चन्दन आदि सगुन्धी द्रव्य १।-१। तोला मिला लेने से तैल सुगन्धित बनता है। यह तैल हो जाता है तथा कुछ लाख के रस में मिल जाता है, जिससे कम हो जाता है। इस पाठ में लाख १ सेर, तैल ४ सेर,

मटठा १६ सेर लें तो तैल योग्य बनता है।

उपयोग–इस तैल की मालिश से जीर्णज्वर, विषमज्वर, कास, श्वास, प्रतिश्याय, कटिवात, पीठ में कफ पित्त से होने वाला दर्द, वात-पित्त प्रकोप अपस्मार, उन्माद, खुजली, शूल, यक्ष व राक्षस का प्रकोप (कीटाणुजन्य ज्वर धनुर्वात् आदि) प्रस्वेद में दुर्गन्ध आना, गात्र-स्फुरण और क्षय रोग में हितकर है। इस तैल की मालिश से गर्भिणी स्त्री और गर्भ पुष्ट होते हैं, हाथ पैरों की जलन दूर होती है, क्षय रोग में इस तैल की मालिश करते रहने से शक्ति का रक्षण होता है। क्षयरोग में जब ज्वर मर्यादित (९९ डिग्री से कम) हो तब मालिश करें। ज्वर बढ़ जाने पर मालिश न करें।

यह तैल वातवाहिनियों और मांसपेशियों को सुदृढ़ बनाता है, रक्त में रहे हुए विष को शान्तकर शारीरिक उष्णता कम करता है तथा त्वचा पुष्ट बनाता है।

सूचना–(१) क्षयरोग में जब ज्वर मर्यादित (९९ डिग्री से कम) हो तब मालिश करनी चाहिए। सामान्यत: रात्रि को स्वेद निकल जाने के पश्चात् मालिश कर लेनी चाहिये। यदि बढ़ते हुये उत्तापकाल में मालिश की जायेगी तो त्वचा से बाहर निकलने वाली उष्णता और स्वेदस्राव में अवरोध होगा। फिर विषवृद्धि हो जायेगी।

(२) शीतकाल में तैल को निवाया करके मालिश करनी चाहिये एवं शरीर को शीत न लग जाय, यह सम्हालना चाहिये। यदि अन्तर्दाह होता हो तो शीतल तैल से मालिश करनी चाहिये।

(३) मालिश धीरे-धीरे हाथ से मांसपेशियों को और नाड़ियों को कष्ट न पहुँचे और सहन हो सके वैसी करनी चाहिये। मालिश सर्वदा सीधे हाथ से करनी चाहिये विपरीत गति से नहीं।

(४) इस तैल की मालिश मस्तिष्क पर नहीं करनी चाहिये अन्यथा बाल चिपक जायेंगे और फिर मैल जम जायेगा।

(५) मालिश करने से त्वचा के छिद्र कुछ बन्द हो जाते हैं। इस हेतु से दोपहर को अधिक ज्वर न हो तब, तोलिये को गरम जल में भिगोकर देह को पोछ लेना चाहिये एवं उस समय तेज-वायु न लगे यह सम्हालना चाहिये।

(३५) घाव तैल

विधि–भिलावा, लहसुन, प्याज और अजवायन ५-५ तोले को मिला कर ४० तोले तिल के तेल में भूनें ठण्डा होने पर छान ले।

उपयोग–यह तैल आगन्तुक घाव (छुरी, चक्कू, पत्थर आदि से चोट लगने पर खून निकलना) दूर करने में अति उपयोगी है। यह तैल साधारण वस्तु से बना है, परन्तु अति लाभदायक है। इस तैल में हाथ-पैर का भाग डुबो देने से रक्तस्राव तत्काल रूक जाता है और घाव भर जाता है। इस तैल का फोहा बांधने से घाव नहीं पकता।

(३६) नाड़ीव्रणहर तैल

विधि–भिलावा और कौंच बीज २-२ तोले, खुरासानी अजवायन, मुर्दासंग, नीलेथोथे का फूला ३-३ तोले और तिल का तैल १॥ सेर लें। पहले तैल को चूल्हे पर चढ़ावें। उफान आने पर भिलावा डालकर जलावें। फिर कौंच का चूर्ण और अजवायन का चूर्ण डालें। पश्चात् कडाही को नीचे उतार मुर्दासंग और नीलाथोथा मिलाकर अच्छी रीति से घोटें फिर छानकर बोतल में भर लें।

उपयोग–यह तैल सब प्रकार के नासूरों को भरने में उपयोगी है। साधारण फोड़ों के लिये छानने की जरूरत नहीं। अनेक नाड़ीव्रण में रोगियों को इस तैल के उपयोग से लाभ हो गया है, जो अनेक वर्षों से पीड़ित रहते थे एवं बड़े-बड़े शहरों के डाक्टरों की औषधियां करके निराशा हो गये थे, ऐसे रोगियों का रोग निर्मूल हुआ है।

सूचना–तैलपाक करते समय भिलावे के धूएं से शरीर को बचाना चाहिये।

(३७) भृंङ्गराज तैल

विधि–भांगरे का रस ४ सेर, मंडूर, त्रिफला और अनन्तमूल इन पांच औषधियों को समभाग मिलाकर २० तोले कल्क और तिल का तैल १ सेर लें। सबको ४ सेर जल के साथ गिलाकर मन्दाग्नि से तैल सिद्ध करें। (शा.सं.)

उपयोग–दारुणक (शिर पर छोटी-छोटी फुन्सियां होना, केशभूमि कठोर होना, खुजली चलना), अरुषिंका (छोटे-छोटे फोड़े शिर पर होना, पीप निकलना), बाल सफेद हो जाना, इन्द्रलुप्त (बाल झड़ जाना) इत्यादि दोष इस तैल की मालिश से दूर हो जाते हैं। इस तैल का अनेक समय हमने अनुभव किया है। यह सत्वर लाभ पहुँचाता है।

(३८) करबीर तैल

विधि–सफेद कनेर का मूल, दन्तीमूल, हल्दी, कलिहारी, चित्रकमूल, सैंधानमक ३-३ तोले, बिजोरे का रस ४ सेर और आक का दूध २० तोले लें। पहली ६ वस्तुओं को जल में पीसकर चटनी बनालें। फिर एक कड़ाही में सबके साथ सरसों का तैल १ सेर मिलाकर मन्दाग्नि पर सिद्ध करें।

उपयोग–भगन्दर और नासूर में इस तैल का बत्ती द्वारा उपयोग करने से थोड़े ही दिनों में दूषित भाग का शोधन होकर वे भर जाते हैं। गहरे भाग में शोधन के लिये यह अच्छा प्रयोग है।

(३९) कोशातक्यादि तैल

विधि–कड़वी तोरई का रस २ सेर, तिल का तैल २० तोले तथा कड़वी तुम्बी के बीज और सोंठ ५-५ तोले लें। पहले तुम्बी के बीज और सोंठ का कल्क करें। फिर सबको कलई वाली पीतल की कड़ाही में भरकर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें। (आ. भि.)

उपयोग–इस तैल की पट्टी बांधने से सड़ा मांस, उपदंश के घाव में कीड़े पड़ गयें हों, दुष्टव्रण, भगन्दर आदि रोग दूर होते हैं।

सूचना–इस तैल में मोम, सिन्दूर, कपीला और मुर्दासङ्ग मिलाने से मलहम बनता है जो घावों को सत्वर भर देता है।

(४०) षड्बिन्दु तैल

विधि–अरण्डी की जड़, तगर, सोया, जीवन्ती (डोडी), रास्ना, सैंधानमक, भांगरा, बायबिडंग, मुलहठी और सोंठ को समभाग मिला भांगरे के रस में पीसकर कल्क करें। बाद में कल्क से ४ गुना काले तिल का तैल और उतना ही बकरी का दूध तथा तैल से ४ गुना भांगरे का रस मिलाकर यथाविधि तैल सिद्ध करें। तैल पाक खर न हो जाय यह सम्भालें।

उपयोग–इस तैल के नस्य से शिरोरोगों में लाभ होता है और बाल गिरना, दांत हिलना, प्रतिश्याय, नाक के सूजन, आदि दोष दूर होकर दृष्टि तीव्र होती है एवं पलित रोग दूर हो जाता है।

नस्य कराने के लिए मनुष्य को चित्त लिटावें। गले से नीचे धड़ ऊँचा रहे इस तरह सिरहाना रखें कि मस्तिष्क पिछली और झुकता रहे। फिर ४-६ बून्दे षड्बिन्दु तैल की डालें। इस तरह योजना करने पर तैल मस्तिष्क में पहुंचता है अन्यथा कण्ठ मार्ग से चला जाता है।

(४१) सिद्धार्थादि तैल

विधि–सफेद सरसों, पीपल, कूठ, गोमी और जटामांसी को समभाग मिला जल में पीसकर कल्क करें। कल्क से चार गुना सरसों का तैल और १६ गुना जल मिलाकर तैल सिद्ध करें।

उपयोग–गुदा अथवा योनि में बस्तिद्वारा इस तैल का प्रवेश कराने से प्रसूता स्त्री का रुका हुआ जेर शीघ्र गिर जाता है।

(४२) कटुतुम्बी तैल

विधि–बायविडंग, जवाखार, सेंधानमक, बच, रास्ना, चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल ओर देवदारु सबको समभाग मिला कड़वी तुम्बी के रस में पीसकर कल्क करें। बाद में कल्क से ४ गुना सरसों का तैल और १६ गुना कड़वी तुम्बी का स्वरस मिलाकर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें।

उपयोग–इस तैल के नस्य से गलगण्ड रोग का शमन होता है। इसके अतिरिक्त नाड़ीव्रण और भगन्दर में इस तैल की बत्ती रखने से भीतर के विकार का शोधन होता है।

(४३) मनः शिलादि तैल

विधि–मैनसिल, हरताल, भिलावा, छोटी इलायची, अगर, रक्तचन्दन, चमेली के पत्ते और तगर सबको जल के साथ पीसकर कल्क करें। बाद में नीम के बीजों (निबोली) का तैल कल्क से ४ गुना और १६ गुना जल मिलाकर तैल सिद्ध करें। (वृन्द)

उपयोग–बल्मीक (सूजन होकर छोटे-छोटे अनेक छिद्र होना) रोग पर इस तैल की पट्टी लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

(४४) बालरक्षक तैल

विधि–मकोय के पत्ते, पियाबांसा, करेला, भांगरा, छोटी दूधी का पंचांग ओर नागरबेल के पान, सबका रस ४०-४० तोले लें। हल्दी

जटामांसी, अगर, कूठ, सुगन्धवाला, असगन्ध, मुलहठी, रक्तचन्दन, जायफल, लौंग सबको समभाग लेकर २० तोले कल्क करें। रस, कल्क और तिल का तैल १ सेर मिलाकर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें। फिर १ छटांक तैल गरम कर १ तोला कपूर डालकर सब तैल में मिला लें।

उपयोग–इस तैल की मालिश से बालकों के जीर्णज्वर, तालुकण्टक (बालशोष) निर्बलता, मृद्धस्थि, कण्डु, आदि रोग दूर होते हैं।

(४५) धातक्यादि तैल

विधि–धाय के फूल, आंवले, तेजपात, जल बेंत, मुलहठी, कमल के फूल, जामुन की गुठली, आम की गुठली, कसीस, लोध, कायफल, तेंदू की छाल, कच्ची फिटकरी, अनार की छाल, गूलर की छाल और कच्चे बेलफल इन १६ औषधियों को १-१ तोले मिला कूट चूर्ण कर बकरी के मूत्र में पीसकर लुगदी बनालें। पश्चात् कड़ाही में २ सेर मिल का तैल, ४-४ सेर बकरी का मूत्र और बकरी का दूध मिलाकर मन्दाग्नि पर यथाविधि पाक करें। (चं.सं.)

उपयोग–इस तैल का फोहा योनि में रखने या उत्तर बस्ति (पिचकारी) देने से विप्लुता, परिप्लुता, आदि वातज योनि रोग, योनि के भीतर का शोथ, योनि का बाहर उभर आना, योनिशूल, घाव होना, पीप बहना एवं योनिकन्द आदि रोग दूर होते हैं। योनिशूल में पेडू, कमर, पीठ आदि पर मालिश भी करनी चाहिए।

(४६) नतादि तैल

विधि–तगर, बड़ी कटेली का पंचाङ्ग, कूठ, सैंधानमक और देवदारु सबको समभाग मिला जल में पीसकर ४० तोले कल्क करें। एक कड़ाही में कल्क २ सेर तिल का तैल और कल्क में कही हुई औषधियों का क्वाथ ८ सेर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें। (अ. ह.)

उपयोग–इस तैल की पिचकारी लगाने या फोहे को योनि में रखने से विप्लुता (योनि के भीतर की पीड़ा बनी रहना), उदावृत्ता योनि, वातला योनि, योनिशोथ, योनिशूल आदि दूर होते हैं।

गर्भाशय शिथिल होने पर मासिक धर्म अनियमित आता है एवं मासिक धर्म के समय शूल निकलना कमर में वेदना, चारों और दबाने में पीड़ा आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, ऐसी अवस्था में इस तैल की उत्तरबस्ति दिन में १-२ बार देने (१-२ औंस तैल चढ़ाने) तथा कमर, गर्भाशय, पैर आदि भाग पर मालिश करने पर योनिशूल निवृत्त होता है, गर्भाशय सबल होता है और मुखमण्डल तेजस्वी बनता है। यदि योनिमार्ग में बस्ति देना हो तो रुग्णा को बांयी करवट लेटा, बांयी हाथ पीठ की ओर करा, दाहिना पैर मुड़वावें। अर्थात् सिम्स पोजिशन (Simi's Position) में लेटाकर पिचकारी देवें और आध घण्टे तक लेटे ही रहने देवें। योनि मुख पर रुई का फोहा लगा देवें। बस्ति गर्भाशय में देना हो तो पलंग पर चित्त लेटा, गर्भाशय और योनिमुख ऊँचा रखवाकर रबर के निजन्तुक किये हुए केथेटर द्वारा तैल प्रवेश करावें। इस बस्ति के प्रयोग से अच्छा लाभ पहुंच जाता है।

(४७) बला तैल

विधि–बला (खरैंटी) के मूल, दशमूल, जौ, बेर, कुलथी सबका अलग-अलग क्वाथ ८-८ सेर, गोदुग्ध ८ सेर, तिलका तैल १ सेर और निम्न औषधियों का कल्क २० तोले मिला यथाविधि पाककर तैल को सिद्ध करें। कल्क के लिये मधुरादिगण (काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा महामेदा, जीवक ऋषमक ऋद्धिवृद्धि, मुदगपर्णी, माषपर्णी, गिलोय, काकड़ासींगी, वंशलोचन, पद्माख, मुनक्का, जीवन्ती, मुलहठी और पुण्डरिया (इनमें जो मिल सके), सैंधानमक, अगर, राल, सरेस का गोंद, देवदारु, मजीठ, सफेद चन्दन कूठ, छोटी इलायची, कृष्ण सारिवा, जटामांसी, छरीला, तेजपात, तगर, श्वेत सारिवा, बच, शतावर, असगन्ध, सोया, पुनर्नवा की जड़ सबको समभाग मिला जल में पीसकर कल्क करें। (सु.सं.)

उपयोग–इस तैल की मालिश या योनि में संतर्पण करने और पिलाने से प्रसूता के वातप्रकोप शमन होते हैं। यह तैल गर्भ धारण की इच्छा रखनेवाली स्त्री और क्षीणशुक्र पुरुषों के लिये हितकर है। इसके प्रयोग से धातुक्षीणता, मर्मस्थान पर चोट लगना, टूटे हुए तथा निर्बल हुए अवयव, आक्षेप आदि वातव्याधि नष्ट होती हैं। इसके सेवन से धातु और यौवन स्थिर रहते हैं।

(४८) महाविषगर्भ तैल

विधि–धतूरे के बीज, निर्गुण्डी के बीज, कड़वी तुम्बी के बीज, पुनर्नवामूल, अरण्डी के बीज, असगन्ध, पुंवाड़, चित्रकमूल, सहिंजने की छाल, काकमाची, कलिहारी की मूल, नीम की अन्तरछाल, बकायन की छाल, दशमूल (शालपर्णी आदि १० औषधियां), शतावर, छोटे करेले, सारिवा, गोरखमुण्डी, विदारीकन्द, सेहुंड, आक, मेढ़ासिंगी, सफेद कनेर की मूल, पीले कनेर की मूल, काकजंघा की मूल, अपामार्ग

की मूल, बला, अतिबला, नागबला, महाबला, छोटी कटेली, अडूसे के पत्ते, गिलोय और प्रसारणी इन ४३ औषधियों को ४-४ तोले लेकर १०२४ तोले जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। पश्चात् त्रिकटु, कुचिला, रास्ना, कूठ, पीला सोमल, नागरमोथा, देवदारु, काला बच्छनाभ, जवाखार, सज्जीखार, पंच लवण, नीलाथोथा, कायफल, पाठा, भारंगी, नोसादर, त्रायमाण, जवासा, जीरा, इन्द्रायण फल इन २६ औषधियों को १-१ तोले लेकर जल के साथ पीसकर कल्क करें। पश्चात् कल्क, क्वाथ और काले तिल के ४ सेर तैल को मिलाकर यथाविधि सिद्ध करें। (यो.र.)

वक्तव्य-तैल तैयार होने पर थोड़ा गरम रहने पर उसमें कर्पूर का चूर्ण १० तोले मिला लेना चाहिये।

उपयोग-इस तैल की मालिश से आम और शूलसह वातरोग, सन्धिवात, कटिवात, अर्धांगवात, गृध्रसी, दण्डापतानक आदि वातरोग तथा कर्णनाद, कान से कम सुनना आदि दूर होते हैं। वेदना शमनार्थ यह उत्तम प्रयोग है।

(४९) लघुविषगर्भ तैल

विधि-काले तिलों का तैल, भूसी का क्वाथ, कनेर की जड़ का क्वाथ, धतूरे का स्वरस, निर्गुण्डी के पत्तों का स्वरस, आक के पत्तों का स्वरस, जटामांसी का क्वाथ सबको २५६-२५६ तोले मिलाकर तैल सिद्ध करें। पश्चात् धतूरे के बीज, कूठ फूलप्रियंगु, बच्छनाभ, सत्यानाशी की जड़, रास्ना, सफेद कनेर की जड़, मालकांगनी, कालीमिर्च, दन्ती की जड़, जटामांसी, चित्रकमूल, पीली सरसों, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, अरण्डी की जड़, लाख, त्रिफला, मजीठ इन २३ औषधियों के ४-४ तोले बारीक चूर्ण को तैल में मिलाकर ७ दिन धूप में रखकर छान लेवें। शीतकाल में २१ दिन धूप में रखना चाहिये। (यो. र.)

उपयोग-इस तैल की मालिश से महाविषगर्भ तैल प्रकरण में लिखे हुए वातरोग नष्ट होते हैं।

(५०) चन्दनादि यमक

विधि-रक्तचन्दन, बड़ की जटा के अंकुर, मजीठ, मुलहठी, नीले कमल, दूब, पतंग और धाय के फूल सबको समभाग मिला दूध में पीस ४० तोले कल्क करें। फिर तिल का तैल और गोघृत १-१ सेर तथा गोदुग्ध ४ सेर मिलाकर यमक सिद्ध करें। (वृन्द)

उपयोग-इस यमक के लेप से अग्निदग्ध व्रण भर जाते हैं। लगाने के साथ ही तीव्र व्यथा शमन होती है और थोड़े ही दिनों में घाव भर जाता है।

सूचना-अग्निदग्ध व्रण को ठण्डे जल से नहीं धोना चाहिये।

(५१) पीड़ाशामक तैल

विधि-सिरस, धतूरा, निर्गुण्डी और सिताब (सर्पदंष्ट्रा) इन चारों के पान, मैदालकड़ी, सोंठ, अजवायन, बच, सैंधानमक और कपूर ये १० औषधियाँ ५-५ तोले, बच्छनाभ और कुचिला २॥ तोले और तिल का तैल १२० तोले लेवें। कपूर को छोड़ शेष सब औषधियों को मिला कूट जल में पीसकर कल्क करें। फिर कड़ाही में तैल डालकर गरम करें। इसमें सब कल्क की पकौड़ी तल-तलकर निकाल देने से तैल में गुण और सुगन्धी आ जाती है। तैल का रंग हरा हो जाता है। फिर कड़ाही को नीचे उतार तैल को तुरन्त छान लेवें और उसमें कपूर का चूर्ण मिलाकर ढंक दें। शीतल होने पर बोतल में भर लेवें। (श्री गोपालजी कुंवरजी ठक्कर, आयुर्वेदाचार्य)

उपयोग-इस तैल का उपयोग वातरोग में तात्कालिक वेदना शमनार्थ किया जाता है। कभी-कभी चोट लगने के पश्चात् कुछ कसर रह जाती है। फिर मन्द-मन्द वेदना होती रहती है, कभी-कभी शूल निकलता है और दीर्घकाल तक त्रास पहुंचता रहता है। इन पर इस तैल की मालिश और थोड़े सेक से लाभ पहुँचता है। संधियाँ खुल जाती हैं, हड्डियों में होने वाली वेदना दूर होती है और ये सब अवयव पहिले के समान दृढ़ बन जाते हैं।

चोट लगकर रक्त जम जाय, रक्ताभिसरण क्रिया योग्य न हो, वायु प्रकुपित होकर वेदना होने लगी हो ऐसी परिस्थिति में इस तैल की मालिश अति हितकर है।

सूचना-जहरी होने से इस तैल की मालिश करने के पश्चात् हाथों को अच्छी तरह साबुन से धो लेना चाहिये।

अंजन प्रकरण

विधि–प्राणिमात्र के जीवन के आधार नेत्र है। नेत्र निर्दोष होने से जीवन सुखमय रहता है। इसलिए नेत्रों की औषधियां बनाने में विशेष सावधानी रखनी चाहिए और पूरी परीक्षा कर रोग का निश्चय करके औषधि का प्रयोग करना चाहिये एवं हो सके तब तक नेत्रों में तीक्ष्ण औषधियों का उपयोग नहीं करें।

वर्षाऋतु में वायुमण्डल के भीतर विविध प्रकार के कीटाणु फैल जाते हैं एवं बड़े शहरों के वायुमण्डल में तो रोगोत्पादक कीटाणु बारहों मास वर्तमान रहते हैं। वे कीटाणु वायु के संस्पर्श के साथ नेत्र की श्लैष्मिक त्वचा बाह्यपटल को लगते रहते हैं। इनमें से कितने की कीटाणु नेत्रवारि द्वारा नष्ट हो जाते हैं। दिन में पलक के खुलने व बन्द होने की क्रिया सतत चलती रहती है। इस हेतु से आवश्यक नेत्रवारि बाहर निकल कर सतह को सम्हालता रहता है। किन्तु रात्रि के समय पलकों की क्रिया स्थगित हो जाती है। इस हेतु से नेत्रकोण या नासारन्ध्र में प्रवेशित कीटाणुओं को मौका मिल जाता है। जिससे कितने ही कीटाणु वहां दृढ़ स्थिर हो जाते हैं जो शनैः शनैः आबादी बढ़ाकर कुछ दिनों में विविध रोगों की सम्प्राप्ति कराते हैं। इस उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर शास्त्राचार्यों ने सोवीरांजन (सुरमा) का नित्य प्रति अञ्जन और ५ या ८ दिन होने पर रसांजन का अञ्जन करने की आज्ञा की है। (च.सं. भू. ५। १२) तथापि आधुनिक विद्वानों की दृष्टि से निर्दोष नीरोग नेत्रों में सुन्दरता दिखाने के लिये अथवा तेज वृद्धि निर्मित्त नित्य प्रति विविध तीक्ष्ण औषध मिश्रित नेत्रांजन डालते रहने की प्रथा को लाभदायक नहीं कह सकेंगे। केवल बालकों के निर्बल नेत्रों को सबल बनाने के लिये काजल डालने में विरोध नहीं है। नेत्र में अवस्थित अन्तर शक्ति सबल होने पर यदि बाह्य सहायता बिना नेत्र रोगों की उत्पत्ति से संरक्षण कर सकती है तो विविध औषध मिश्रित नेत्रांजन का उपयोग न करना ही श्रेयस्कर माना जायगा। अन्यथा वह शक्ति शनैःशनैः पराधीन और निर्बल हो जायेगी। इसके अतिरिक्त जो नेत्रों की अच्छी स्थिति में तीक्ष्ण नेत्रांजन डालकर ज्यादा अश्रु बिन्दु निकालने का प्रयत्न करते हैं, वे तो नेत्रों को निःसन्देह हानि ही पहुँचाते हैं।

आहार-विहार के दोषों से उष्णता बढ़कर रोग उत्पन्न हुआ हो तो कारणभूत मूलदोष का (अपथ्य आहार-विहार का) त्याग करें। पश्चात् मस्तिष्क और नेत्रों को शान्ति पहुँचाने के लिये खाने की औषधि और अनुकूल पथ्य भोजन के साथ नेत्रोषधि का उपयोग किया जाये तो लाभ शीघ्र पहुंचता है।

उपदंश, सुजाक आदि रोगों से रक्त दूषित होकर नेत्ररोग हुआ हो तो साथ में रक्तशोधक औषधि का सेवन कराना चाहिये। रक्त की शुद्धि हुये बिना केवल नेत्रौषधि से कदापि नेत्ररोग दूर नहीं हो सकेगा।

नेत्र रोगों की चिकित्सा में निम्न सेक आदि ७ कर्म कहें है–

सेकं आश्च्योतनं पिण्डी विडालस्तर्पणं तथा। पुटपाकोऽञ्जं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत्॥

(१) **सेक**–जल आदि की धारा से नेत्रों को स्वेद देना।

(२) **आश्च्योतन**–नेत्रों में ड्रापर आदि से अर्क आदि औषधियों की बूँदे डालना।

(३) **पिण्डी**–नेत्रों पर लुपंड़ी बांधना।

(४) **बिड़ालक**–नेत्रों के ऊपर के भाग में लेप करना।

(५) **तर्पण**–नेत्रों को बन्द रखकर दुग्ध आदि नेत्र तृप्तिकर औषधि भरना। (विशेष विधि चिकित्सा तत्वप्रदीप प्रथम खण्ड में है)

(६) **पुटपाक**–पुटपाक कृति से निकाला हुआ स्वरस आश्च्योजन या तर्पणरूप से नेत्रों में डालना।

(७) **अञ्जन**–परिपक्व दोष होने पर औषधि को आंख में डालना।

इन सबमें अनेक उपविभाग हैं। इन सबको शास्त्रीय ग्रन्थों से समझ करके ही नेत्र रोग का उपचार करना चाहिये। बिना समझे उपचार करने पर अनेक समय हानि होने की संभावना है।

अञ्जन में लेखन, रोपण और स्नेहन ऐसे ३ भेद हैं। कलमीशोरा आदि क्षारयुक्त, तीक्षण मिर्च आदि और अम्ल, नींबू रस आदि युक्त अञ्जन को लेखन अञ्जन, हरीतकी आदि कसैले और निम्ब आदि कड़वे रसवाले स्निग्ध अञ्जन को रोपण अञ्जन एवं घी, आदि मधुर रसयुक्त स्निग्ध अञ्जन **स्नेहन** अञ्जन कहते हैं।

सामान्यतः वातजरोग में स्निग्ध और उष्ण औषधि, पित्तज व्याधि में शीतल और मधुर औषधि, कफज में तीक्ष्ण, रूक्ष और विशद औषधि

एवं सन्निपातज रोग में तीक्ष्ण, उष्ण, मृदु और शीतल नेत्रौषधियों के सम्मिश्रण का उपयोग करना चाहिये।

अञ्जन के लिये सलाई काँच, स्फटिक आदि धातु या बारहसींगे से बनी हुई चिकनी, दोनों मुँह की ओर से सकुची हुई आठ अंगुल लम्बी बनानी चाहिये। लेखन औषधि के लिये ताँबा, पत्थर, काँच या बारहसींगे की सलाई लें। रोपण औषधि के लिये अंगुली से अञ्जन करें अथवा शीशे, लोहे या जस्ते की सलाई तथा स्नेहन के लिये सोने या चांदी की सलाई लेनी चाहिये।

नेत्रौषधि का सुबह-शाम अंजन करें। मध्याह्न के समय नेत्रों में औषधि न डालें। अञ्जन काले भाग के नीचे करें। पहिले बाँयी आँख में और फिर दाहिनी आँख में अंजन करें। वर्षाऋतु के समय बादल न हों तब अंजन करें।

कच्चे दोष में अंजन, घृतपान, स्नान, गुरु भोजन, क्वाथ आदि औषधि के प्रयोग का निषेध किया है। उपवास करना हितकर है। किन्तु बालक और नाजुक प्रकृति वालों के लिये मधुर भोजन, भाप से सेक और नेत्रों पर लेप आदि का उपचार करना चाहिये।

जब अन्तर दोष-वृद्धि के हेतु से नेत्र पीड़ा बहुत बढ़ रही हो तब नेत्रों के दोषघ्न अञ्जन का प्रयोग नहीं करना चाहिये। कच्चा दोष बाहर आ जाने के पश्चात् दोषघ्न औषधि का अञ्जन करने से सब दोष नष्ट होकर नेत्र निर्दोष बन जाते हैं। थके हुए, उदावर्त रोगी, बहुत रोये हुए, भयभीत, मद्यपान किये हुए, क्रोध आया हो तब, तरुण ज्वर वाले, अजीर्ण रोगी, शिरोरोग से पीड़ित और मलमूत्र के वेग को रोकने वाले को अञ्जन नहीं करना चाहिये। अति ठण्डी, अति उष्णता, वायु का अत्यन्त वेग, अत्यन्त बादल हो जाना इन समयों में नेत्रों में अञ्जन नहीं करना चाहिये अति तीक्ष्ण अञ्जन का दिन में उपयोग न करें। रात्रि में ही लगाना चाहिये।

लेखन अञ्जन में मधुर रस का निषेध है। अन्य रसों का प्रायः उपयोग किया जाता है। जैसे-वातजन्य रोग में लेखन अञ्जन का उपयोग करना हो तो अम्ल और क्षार द्रव्ययुक्त, पित्तज और रक्तज नेत्र रोगों में कड़वे और कसैले द्रव्यों का और कफज व्याधियों में कड़वे, तीक्ष्ण और कसैले रसयुक्त लेखन अञ्जन हितकारी हैं। द्वन्द्वज और त्रिदोषज प्रकोप में दोषानुरूप लेखन अंजन की योजना करनी चाहिये। लेखन औषधि में मधुर रस का निषेध होने पर भी शहद में लेखन, कषाय, रूक्ष और नेत्ररोगनाशक गुण होने से लेखन औषधियों में मिलाया जाता है। कफज नेत्र रोगों में लेखन अञ्जन सुबह, वातजन्य रोगों में सायंकाल को और पित्तज तथा रक्तज व्याधियों में तीक्ष्ण लेखन औषधि रात्रि को सोने के समय डालनी चाहिये। प्रथम लेखन, फिर रोपण तत्पश्चात् स्नेहन अञ्जन का उपयोग करना चाहिये।

लेखन के योग से नेत्र, भौंफणी, नेत्रशिरा, नेत्रपटल, नेत्रवारि, नेत्रदर्पण, नेत्रस्रोतस और शृंङ्गाटक (नासा, नेत्र कर्ण और जिह्वा की संतर्पणी शिराओं के भीतर के मर्मस्थान) आदि स्थानों में रहा हुआ दोष पतला होकर नेत्र, नासा और मुँह से बाहर निकल कर नेत्र निर्दोष बनते हैं।

रोपणाँजन कसैला, कड़वा, स्निग्ध, शीतल और वृष्य होने से नेत्र दृष्टि को स्वच्छ करता है।

स्नेहाञ्जन (प्रसादाञ्जन) मधुर स्निग्ध होने से दृष्टि को स्वस्थ करता है। इस रीति से तीनों के गुण पृथक्-पृथक् हैं।

(१) नेत्रप्रभाकर अंजन

विधि-शुद्ध काला सुरमा (या सफेद सुरमा) ४० तोले, कपूर १ तोला, छोटी इलायची के दाने ३ माशे, शीतलचीनी ३ माशे, सफेद मिर्च १॥ माशे और मोती की पिष्टी ६ माशे लें। कपूर को छोड़ शेष सबको गुलाब जल में ३ दिन खरल करें फिर कपूर मिला १ दिन खरल कर के शीशी में भर लेवें।

वक्तव्य-हम सुरमें को पहले त्रिफला के फाण्ट में ७ दिन तक खरल करके मिलाते हैं।

उपयोग-इस नेत्रांजन का दिन में दो बार अञ्जन करने से उष्णता, पानी गिरना, कमजोरी आदि दोष दूर होकर नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

(२) कृष्ण नेत्रांजन (नयनामृतांजन)

विधि-शुद्ध शीशा ५ तोला लेकर रस करें। रस होने पर कड़ाही नीचे उतार पारा ५ तोले मिलाकर खरल करें। पारा मिल जाने पर शुद्ध काला सुरमा २० तोले मिलावें। फिर कपूर १। तोले डाल ६ घन्टे खरल करके शीशी में भर लेवें। (यो.त.)

वक्तव्य-कपूर १। तोला मिलाने पर नेत्रदाह और अधिक नेत्रस्राव होता है। अतः हम निर्दोष मात्रा में ६ माशा डालते हैं।

उपयोग-इस नेत्रांजन का दिन में २ बार उपयोग करने से जलन, तिमिर, धुन्ध, फूला, कांचबिन्दु, मांसवृद्धि आदि नेत्र रोग दूर होते हैं और नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

(३) रक्तनेत्रांजन

विधि–सिन्दूर ८ तोले, शौरा १ तोला और सफेद मिर्च का चूर्ण ३ तोले लें। सबको मिला ३ दिन खरल करें। (आ.नि.मा.)

उपयोग–बबूलादि स्वरसवाली सलाई पर रक्त नेत्रांजन लगाकर नेत्रों में आँजने से नेत्रशोथ, फूला, लाली, जलन, कुकूणक, मांसवृद्धि, तिमिर आदि दोष दूर होते हैं। बालकों तथा बड़े मनुष्यों सबके लिये हितकर है। नेत्रों के ऊपर की सूजन २-४ रोज में ही दूर हो जाती है। मांसवृद्धि को थोड़े दिन में कम कर देता है।

(४) बबूलादि स्वरस

विधि–बबूल की हरी पत्ती कांटा कचरा रहित १ सेर, जल १० सेर पापड़खार (लोटिया सज्जी) और सैंधानमक १०-१० तोले मिलाकर गरम करें। पानी ४ सेर रहे तब उतार मलकर छान लें। फिर जल को पीतल के कलईदार बरतन में डालकर पकावें। आधे से अधिक पानी कम होने पर शहद १ सेर डालकर मन्दाग्नि से पाक करें, शहद जैसी चाशनी बनालें। चाशनी पतली रहने से सड़ जाती है। कड़ी हो जाने पर अञ्जन में उपयोगी नहीं होती। नेत्रों में स्वरसवाली सलाई फिराने से औषधि फैल जाये ऐसी चाशनी चाहिये। (आ.नि.मा.)

उपयोग–इस स्वरस के अञ्जन से नेत्रों की लाली, पानी गिरना, मल आना, खड्डा होने से पीप बहना, कुकूणक, शोथ ये दूर होते हैं। छोटे-छोटे (१ मास के) बालक और बड़े मनुष्य सबके लिये हितकर है, विशेष बढ़े हुए रोग में रक्त नेत्रांजन के साथ में प्रयोग करें और नेत्र के ऊपर रसांजनादि लेप लगावें तो जल्दी आराम होता है।

(५) नेत्र बिन्दु

विधि–अनारदाना ४ तोले लेकर गुलाब जल २० तोले में शाम को भिगों दें, सुबह मलकर छान लें। फिर फिटकरी का फूला ६ माशे, नीलथोथे का फूला ४ रत्ती, रसौंत ६ माशे, शुद्ध अफीम १ माशा, कपूर देशी १ माशा लें। सबको पीस उपरोक्त गुलाबजल में मिलाकर दिन में २ या ३ बार हिला देवें बाद में फिल्टर पेपर से छान लेवें।

उपयोग–इस अर्क की २-३ बूंदे दिन में दो बार डालते रहने से नेत्रों की लाली, खुजली, पानी गिरना, जलन होना इत्यादि रोग २-३ दिन में दूर होते हैं।

(६) रसकेश्वर गुटिका

विधि–शुद्ध खर्पर या जसद भस्म, सैंधानमक, नीलेथोथे का फूला, सोहागे का फूला, सोंठ, मिर्च, पीपल सबको समभाग मिला नींबू रस में ७ दिन खरल करके वर्ति बना लें। फिर शहद में घिसकर अञ्जन करें। (वैद्यामृत)

उपयोग–यह गुटिका फूला, धुन्ध, जाला, नये मोतिया बिन्दु और नेत्र वायु आदि पर लाभकारी है। इसके अतिरिक्त इस अञ्जन से सन्निपात की बेहोशी दूर होकर रोगी जल्दी होश में आ जाता है।

(७) चन्दोदया वर्ति

विधि–हरड़, बच, कूठ, पीपल, कालीमिर्च, बहेड़े की मींगी, शंखनाभि और मैनसिल सबको समभाग मिला कपड़छान चूर्ण करें। फिर दो दिन खरल करें। पश्चात् बकरी के दूध में ६ घन्टे खरलकर वर्त्ति बना लें। शंख नाभि को अलग खरलकर बारीक होने पर मिलानी चाहिये। (वृन्द)

उपयोग–यह उत्तम लेखन अञ्जन है। मांसवृद्धि, कफवृद्धि को दूर कर दृष्टि को स्वच्छ बनाता है। इस वर्त्ति को शहद में घिसकर आंखों में लगाने से फूला मिटता है। नेत्र में मांसवृद्धि और रतौंधी को नष्ट करती है। तिमिर में भी लाभदायक है।

मस्तिष्क और नेत्र में उष्णता हो तो सप्तामृत लोह का सेवन कराना चाहिए या सुवर्णमाक्षिक भस्म, वंशलोचन, त्रिफला और मुलहठी मिला घृत और शहद के साथ देते रहने से सत्वर लाभ पहुंचता है।

(८) अञ्जन रस (सन्निपातहर अञ्जन)

विधि–पारद, गन्धक, लोहभस्म और पीपल १-१ तोला तथा शुद्ध जमालगोटा १२ तोले लेकर २१ दिन तक जम्भीरी नींबू के रस में खरल करके सोगठी बना लें।

उपयोग–यह अंजन सन्निपात के तन्द्रा आदि विकार और सर्पविष में निद्रा आना आदि दोष को दूर करता है, रोगी सचेत होता है।

(९) दार्व्यादि रसक्रिया

विधि–दारुहल्दी, परवल के पत्ते, मुलहठी, नीम की अन्तरछाल, पद्माख, नीलोफर, पूण्डरिया इन ७ औशधियों को समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। रात्रि को ४ गुने जल में भिगों, सुबह मन्दाग्नि पर बरतन के मुंह को ढककर, क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहे तब नीचे उतारकर छान लें। पुनः रस का पाक करें और सम्हालपूर्वक चलाते रहें। रबड़ी जैसा गाढ़ा हो जाय तब नीचे उतार लें। शीतल होने पर चतुर्थांश शहद मिलाकर खुले मुंह की शीशी या अमृतबान में भर लें। शहद के स्थान में बंगसेन ने शहद और मिश्री ८-८वां हिस्सा मिलाने को लिखा है।

उपयोग–इस रसांजन के अञ्जन से दाह, जल गिरना, रक्त प्रकोपजनित पीड़ा (नेत्रों की लाली) आदि रोग दूर होते हैं।

(१०) नेत्रसुदर्शन अर्क (पलाशांजन)

विधि–पलाश की ताजी जड़ ३ सेर सुबह मंगाकर ऊपर से मिट्टी लगी हो उसे साफ कर लेवें जल से नहीं धोवें। फिर एक-एक इञ्च के टुकड़े कर नलिकायन्त्र अथवा आकाशपातन यन्त्र द्वारा अर्क निकाल लें। जड़ लाने और अर्क निकालने की क्रिया एक ही दिन होने चाहिए। दूसरे दिन अर्क बहुत कम निकलता है। नलिकायन्त्र द्वारा अर्क अच्छा निकलता है, आकाशपातन यन्त्र से अर्क थोड़ा निकलता है, और किसी-किसी समय जल भी जाता है। अर्क यदि जला हुआ निकलेगा तो नेत्रों में जलन ज्यादा करेगा और फायदा कम होगा।

(स्वा० अखण्डानन्दजी)

सूचना–वर्षाऋतु में अर्क निकालना हो तो पलाश के मूल को १ दिन रहने दें। फिर दूसरे दिन अर्क निकालना चाहिये। अन्यथा अर्क बहुत कमजोर निकलता है और बहुत जल्दी खराब हो जाता है। शीतकाल में अर्क निकाला जाय तो पूरा निकलता है और दीर्घकाल तक टिकता है।

उपयोग–इस अर्क की २-३ बूंदे दिन में ३ बार नेत्रों में डालने से नेत्रों के सब प्रकार के रोग-लाली, तिमिर, कमजोरी, दाह, रतौंधी आदि दूर होते हैं। इस अर्क से हजारों मनुष्यों के चश्मे उतर गये हैं। इस अर्क की ३-४ बूँदे नागरबेल के पान में डालकर दिन में २ बार खाने से धातुविकार दूर होता है और पाचन शक्ति बढ़ती है।

मोतियाबिन्दु प्रारम्भ हुआ हो और शनैःशनै बढ़ने वाला हो तो इस अर्क के ४-६ मास तक उपयोग करने पर दृष्टिमणि की अपारदर्शकता दूर होकर मोतिया बिन्दु नष्ट हो जाता है।

(११) पथ्यादि अञ्जन

विधि–हरड़ की मींगी ३ भाग, बहेड़ा की मींगी २ भाग और आवंलों की गुठली की मींगी १ भाग लें। सबको मिला जल में ६ घन्टे खरल करके बत्तियां बना लें।

उपयोग–इस बत्ती को जल के साथ घिसकर नेत्रों में अंजन करने से नेत्रों की लाली, भयंकर अश्रुस्राव, कष्टसाध्य नेत्रपाक इत्यादि रोग दूर होकर नेत्र स्वच्छ होते हैं।

(१२) चन्दनादि वर्त्ति

विधि–रक्तचन्दन, सोनागेरु, लाख, चमेली की कली, चारों को समभाग मिलाकर महीन पीसें। फिर गुलाबजल के साथ ६ घन्टे खरल करके बत्तियाँ बना लें।

उपयोग–इस बत्ती को जल में घिसकर अंजन करने से व्रणशुक्र (घावयुक्त फूला) (Corneal Ulcer) नेत्रों में घाव होकर पीप आना, नेत्रों की लाली, खुजली आदि रोग नष्ट होते हैं।

(१३) पुष्पहर अंजन

विधि–कलमीशोरा ४० तोले को पत्थर की खरल में शुद्ध शीशा-धातु के बत्ते से ४० दिन तक गुलाबजल के साथ खरल करें। फिर २ तोले कपूर मिलाकर ६ घन्टे खरल करके नेत्राँजन को शीशी में भर लें।

कितने ही चिकित्सक गुलाबजल और कपूर नहीं मिलाते। समुद्रझाग १६वां हिस्सा मिलाकर ७ दिन घोट लेते हैं। ये नेत्रांजन तेज होता है, परन्तु लाभ अधिक करता है।

उपयोग–यह अंजन फूला, कुकूणक, लाली, तिमिर, खुजली वर्म (नेत्र के सफेद भाग, में मांसवृद्धि, अजका जात (नेत्र के काले भाग में मांसवृद्धि) रतौंधी, अश्रुस्राव दृष्टिमांद्य को थोड़े ही दिनों में दूर करता है।

लेप-मलहम-सेक-धूम्र प्रकरण

व्रण, विद्रधि, शोथ, अस्थि-भंग, चोट, शूल आदि में लेप, मलहम आदि औषधियों का उपयोग होता है। व्रण चिकित्सा क्रम निम्नानुसार शास्त्रकारों ने दिखाया है

आदौ शोथहरो लेपो द्वितीयो रक्तसेचनः।
तृतीयश्चोपनाहः स्याच्चतुर्थः पाटनक्रमः॥
पञ्चमः शोधनो भूयात्षष्ठो रोपणमिष्यते।
सप्तमो वर्णकरणो व्रणस्यैते क्रमाः मताः॥

पहिला शोथहर लेप, दूसरा जौंक आदि से रक्त निकालना, तीसरा पकाने के लिये पुल्टिस आदि उपचार, चौथा शस्त्र से चीरकर पीप और दूषित रक्त आदि को निकाल देना, पांचवाँ घाव का शोधन, छटवाँ घाव भरना और सातवाँ पूर्ववत् त्वचा का रंग लाने का प्रयत्न करना ये क्रमशः व्रण के चिकित्सोपचार हैं।

इस नियमानुसार पहले अपक्व शोथ या गाँठ को बैठाने के लिये लेप, सेक और औषधियों के क्वाथों के तरडे देने चाहिये। इनमें भी पित्तज व्याधि हो तो सेक न करें। जो रक्त निकालने योग्य हों, उसमें से दूषित रक्त को जौंके लगवाकर निकाल देना चाहिये जो बैठाने के अयोग्य हों उसे पकाने के लिए लेप करना चाहिये या पुल्टिस बाँधना चाहिये। पकने पर पीप और दूषित रक्त को निकालकर घाव को निर्दोष करने वाले तथा सूखाने वाले मलहम आदि को लगाना चाहिये। फिर घाव को भरकर त्वचा को पूर्ववत् रंग लाने वाले मलहम या घृत तैल आदि का प्रयोग करना चाहिये।

लेप के चूर्ण अथवा गोली को गरम जल के साथ पीस लेप कर ऊपर से रुई लगा दें। जिससे लेप जल्दी सूखकर फट न जाये। लेप वाला भाग खुला रहने से पूरा लाभ नहीं मिलता।

पहले समय का लेप सूखने पर नया लेप लगाना चाहिये। परन्तु नया लेप लगाने के पहले विशेष सावधानी से पुराने लेप को गरम जल से धोकर सूजन वाले भाग को साफकर लेना चाहिये अन्यथा नये लेप का असर शीघ्र नहीं होगा। कारण पहले वाले लेप ने जो दूषित परमाणु रोग में से खींचे हैं वे सब पहले वाले लेप के साथ मिले हुए बाह्य त्वचा पर ही लगे रहते हैं।

वायु सूजन पर रात्रि को लेप नहीं लगाना चाहिये और किया हुआ लेप गिर जाय तो उसे उठाकर फिर नहीं लगाना चाहिये। दिन में लेप को सूखने पर बार-बार हटा दें। किन्तु गांठ पर बैठने का गाढ़ा लेप किया हो उसे रात्रि में ही रहने दें। पकाने के लिए गांठ पर रात्रि को भी लेप अवश्य करें। फोड़ा पकाने के लिए बांधी हुई पुल्टिस २-३ घन्टे पर बदलते रहें तो फोड़ा जल्दी पकता है। अधिक समय पुल्टिस रहने से फोड़ा जल्दी नहीं पकता। अस्थिभंग का लेप २-३ दिन अथवा अधिक दिन के बाद खोलकर बदलना चाहिये।

वातज शोथ में स्निग्ध, अम्ल और नमक मिश्रित लेप, पित्तज में स्निग्ध, शीतल और दूध मिश्रित लेप तथा कफज व्याधियों में गोमूत्र और अन्य क्षार मिश्रित निवाया लेप करना चाहिये।

वायु की सूजन पर गरम जल की भाप देकर फिर लेप लगाने से शीघ्र आराम होता है। कफ प्रकोप के शमन के लिये लेप लगाकर ऊनी वस्त्र लपेट देना चाहिये और ठण्डी वायु से भी रक्षण करना चाहिये।

(१) दोषघ्न लेप

विधि-सहिंजने की छाल, सोंठ, सरसों, पुनर्नवा की जड़ और देवदारु सबको समभाग मिलाकर चूर्ण करें। फिर काँजी या खट्टी छाछ मिलाकर चटनी जैसा पीस कर मोटा लेप करें। (शा.सं.)

उपयोग-यह लेप वात और कफ से उत्पन्न होने वाले शोथ और गाँठ को दूर करने के लिए उत्तम है। विष शोथ पर गोमूत्र में मिलाकर लेप करना चाहिये।

(२) दशांग लेप

विधि-सिरस की छाल, मुलहठी, तगर, लाल चन्दन, इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ और खस इन दस औषधियों को समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (शा. सं.)

उपयोग-इस लेप को जल में पीस चूर्ण से १/५ हिस्सा घी मिलाकर मोटा लेप करें, ऊपर रुई चिपका दें। यह लेप उग्र विस्फोटक, विपर्स, दाह, विषदोष, शोथ, सर्वाङ्ग शोथ, व्रण-शोथ, सिर का दर्द, दुष्ट व्रण आदि को दूर करता है।

पामा और ब्यूची पर दशांग लेप हितकारक है। इन रोगों में दशांगलेप के साथ समान सोनागेरू मिला, गुलाबजल में चटनी के समान पीस कर लेप लगाते रहने से दाह कण्डूसह विकार शमन हो जाता है। दो-चार रोज में विष का आकर्षण होकर पामाव्रण और ब्यूची सूख जाते हैं।

यह लेप पैत्तिक शोथ और रक्तज शोथ पर लाभ पहुँचाता है। वृषण पर शोथ आने पर दशाँग लेप के साथ निर्गुण्डी के पान मिला पीसकर लेप करने से शोथ का शमन हो जाता है।

ज्वर में १ तोला दशाँग लेप को १०-१५ तोले शीतल जल में मिला, उसमें कपड़े को भिगो उसकी पट्टी कपाल पर रखने से शिरदर्द और ज्वर का वेग कम हो जाता है। यू.डी कोलन के बदले इसका प्रयोग अच्छा है। ऐसा पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य का अनुभव है।

(३) बीजपूरजटादि लेप

विधि-बिजौरे की जड़, जटामाँसी, देवदारु, सोंठ, रास्ना और अरनी को समभाग मिला काँजी में पीस लें। (शां. सं.)

उपयोग-यह लेप वातज शोथ को दूर करने में उत्तम है, गले की सूजन भी शमन करता है।

(४) मधुकादि लेप

प्रथम विधि-मुलहठी, रक्त चन्दन, मूर्वा, नरसल, पद्मकाष्ठ, नेत्रबाला, खस और कमल को समभाग लेकर दूध में पीस लें।(शा.सं.)

उपयोग-इस लेप से दाह सह पित्तज शोथ का शमन होता है।

द्वितीय विधि-मुलहठी, त्रिफला, मोरबेल, दारूहल्दी की छाल, नीला कमल, नेत्रबाला, लोध और मजीठ इन १० औषधियों को समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। (वृन्द)

उपयोग-यह लेप पित्तप्रकोपज दोषों पर हितकारक है। इसे बकरी के दूध में पीसकर लेप करें। मसूरिका (शीतला) के फोड़े आँख में होने पर नेत्रों के ऊपर लेप करें और दूध में पतला प्रवाही बनाकर नेत्रों में थोड़े-थोड़े बून्द डालने से फोड़े अच्छे हो जाते हैं। ऐसे ही शरीर के किसी भी भाग में उत्पन्न पित्तज शोथ पर यह उपयोगी है।

(५) कृष्णादि लेप

विधि-पीपल, पुरानी खली, सहिंजने की छाल, नदी की रेत और हरड़ को समभाग मिला गोमूत्र में पीस कर कल्क करें पश्चात् थोड़ा गरम करके बाँध देवें।

उपयोग-इस लेप के लगाने से कफज शोथ नष्ट होता है।

(६) द्विनिशादि लेप

विधि-हल्दी, दारुहल्दी, सफेद चन्दन , लाल चन्दन, हरड़, दूब का मूल, साठी की जड़, खस, पद्मकाष्ठ, लोध, सोनागेरू और रसौंत सबको समभाग मिला जल में चिपचिपा हो तब तक पीस लें।

उपयोग-यह लेप चोट लग जाने से आये हुए नये शोथ और रक्तज शोथ का शमन करता है।

अभिष्यन्दी व गुरु भोजन अत्यधिक कर लेने पर अपचन हो जाता है एवं मल अन्त्र मे चिपक भी जाता है। फिर उदर में वेदना होने लगती है। उस पर मालिश करने और शुष्क सेक करने पर अन्त्र के भीतर शोथ आ जाता है। फिर जुलाब और बस्ति देने पर भी उदर शुद्धि नहीं होती, बार-बार वमन होती रहती है, जल पीने पर भी वान्ति हो जाती है, उदर अति कठोर बना रहता है। इस प्रकार के उदावर्त (Intestinal Obstruction) में डाक्टरी मत अनुसार शस्त्र चिकित्सा ही एक मार्ग है। उसके लिये द्विनिशादि लेप को जल में पीसकर उदर पर लेप करने और सूखने पर उसे हटाकर पुनः नया लेप करते रहने से एक ही दिन में उदर नरम होकर मल मूत्र आदि की योग्य प्रवृत्ति होने लगती है।

(७) कुष्ठहर लेप

प्रथम विधि-हरड़, करंज के बीज, सरसों, हल्दी, सफेद गुञ्जा (चिरमी) सैंधानमक और बायबिडंग, सबको समभाग मिला गोमूत्र में खरल करके लेप करें।

उपयोग-इस लेप के लगाने से कुष्ठ के सफेद दाग, ब्यूची, दद्रु, खाज आदि रोग दूर होते हैं।

दूसरी विधि-आंवलासार गन्धक, कासीस, हरताल, हरड़, बहेड़ा और आँवला, सबको समभाग मिला गोमूत्र में खरल करके गोलियां बनावें (र.चं.)

उपयोग-इस लेप को गोमूत्र अथवा जल में घिस कर लगाने से मुंह पर के कुष्ठ के सफेद दाग दूर होते हैं।

(८) व्रणशोधक लेप

प्रथम विधि-सिरस के बीज, मैनफल, जंगाल, रेवाचीनी, प्याज और नीम के पत्ते प्रत्येक एक-एक तोला और एलुवा, गूगल, अलसी और मैथी ६-६ माशे लें। सबको मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर तेज शराब या गर्म पानी में मिला गरमकर लेप करने से भयंकर पीड़ा और शोथयुक्त कठिन फोड़ा पककर जल्दी फूट जाता है।

दूसरी विधि-साबुन, रेवाचीनी, गूगल और मैनफल को पीस कपड़े की पट्टी पर लगाकर गरम कर बाँधने से फोड़ा फूट जाता है।

वक्तव्य-पहले नीम, करंज, अरंडी और तुलसी सबके पत्तों को जल में उबालकर भाप देने से पीड़ा दूर होकर सूजन उतर जाती है और गांठ नरम हो जाती है।

तीसरी विधि-नीलेथोथे का फूला, पत्थर का कोयला, सज्जीखार, हल्दी, सैंधानमक एक-एक तोला और साबुन २ तोले लेवें। सबको घीकुंवार के रस में मिला गरम करके लेप करें। इसे फोड़े के मुँह पर लगाने से जल्दी फूट जाता है। लेप लगाकर ऊपर पट्टी बाँधे।

(९) प्रतिसारणीय क्षार

विधि–एक सेर लोटिया सज्जी और दो सेर चूना बिना बुझा मिलाकर १ हाँडी में भरें। फिर पानी १ मन मिला लकड़ी के डण्डे से खूब चला, हाँडी को ५ दिन तक खुले मैदान में रहने दें। दिन में एक दो बार रोज डण्डे से चला दें। फिर छठे दिन ऊपर से स्वच्छ पानी लोहे की कड़ाई में निकाल कर चूल्हे पर चढ़ावें। आधा सेर जल शेष रहें तब लहसुन का रस ४ तोले मिला कर मन्दाग्नि से पकावें। आधा जल (२० तोले) शेष रहने पर कड़ाही को नीचे उतार फिर क्षार को शीशी में भर लें। (र.सा.)

उपयोग–यह क्षार पके फोड़े और प्लेग की गाँठ पर लगाने से गांठों को फोड़कर बिठा देता है। सड़े हुए घाव पर लगाने से दोष को जला देता है। बवासीर के मस्से अथवा कुष्ठ के दाग पर लगाने से तुरन्त उतनी जगह उपड़ जाती है और घाव हो जाता है। इस घाव पर गरम घी लगाने से पीड़ा शांत हो जाती है। दोषों को जलाने के लिये यह उत्तम औषधि है।

सूचना–यह क्षार तेजाब जैसा है। इसलिये हाथ नहीं लगाना चाहिये और जहाँ लगता है वहाँ बहुत जलन होती है। जलन दूर करने के लिये धोया हुआ घृत लगावें। देश, काल और रोगी की प्रकृति का विचार करके उपयोग करें। इस क्षार से सूजन आ जाती है, कभी-कभी बुखार भी आ जाता है।

(१०) अंगुलीपाकहर लेप

विधि–सोमल, सोहागे का फूला और नीलाथोथा का फूला एक-एक तोले का बारीक चूर्ण कर गीला गन्धाविरोजा ६ तोला मिला लें।

उपयोग–अंगुलीपाक (Whitlow) जो कीलों की तरह गड़ता रहता है, उस पर इस लेप की पट्टी लगाने से दर्द दूर होता है और पककर कील निकल आती है। कील भीतर से निकली हुई देखने में आवे उसे कैंची से काट देनी चाहिये। कील काटने के बाद सादा मलहम लगाने से घाव भर जाता है।

(११) अंजननामिकाहर लेप

विधि–रसौंत, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल को समभाग मिला जल में खरल करके सोगा ठियाँ बना लेवें।

उपयोग–आँख भापणी पर होने वाली फुन्सी पर जल में घिसकर इसे लगाने से फुन्सी दूर होती है।

(१२) तुत्थादि लेप

विधि–नीलेथोथे का फूला १ तोला, काबुली हरड़ का छिलका, भाँग, चूना और सफेद कत्था दो-दो तोले मिला, घोटकर जल में सोगठी बनायें या सबसे चौगुना धोया घी मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग–इस सोगठी को धोये घी में मिलाकर लगाने से मुंह पर तथा दूसरे भागों में होने वाली फुन्सियाँ दूर होती हैं।

(१३) कंकुष्ठादि लेप

विधि–मुर्दासंग, नीलेथोथे का फूला, सफेद कत्था, जल सुपारी, हरड़ और उसारेरेवन्द को समभाग लेकर कपड़छान चूर्ण करें।

उपयोग–यह लेप पिटिकाए और फोड़ों पर हितकारक है। इस चूर्ण को फुन्सियों पर धोये हुए घी के साथ अथवा पानी में मिलाकर लगावें। फूटे हुए फोड़ों पर सूखा चूर्ण डालें।

(१४) अस्थिसंधानक लेप

विधि–एलुवा, हीराबोल, गूगल, कुन्दरू, गूजर (अजरूल Astragulus Sarcocolia) उसारेरेवन्द, मेदा लकड़ी, सज्जीक्षार, लोध, माजूफल और फिटकरी ये ११ औषधियां १०-१० तोले लेवें तथा आमाहल्दी ५० तोले लेवें। (आ.नि.मा. के पाठ से थोड़ा परिवर्तित)

थोड़े से चूर्ण को गरम जल में मिला लेपकर ऊपर रूई लगाकर कपड़ा लपेटें। जरूरत हो तो लकड़ी की पट्टी रखकर ऊपर कपड़ा बाधें। आवश्यकता पर ३ दिन बाद दूसरा लेप करें। ३ दिन से पहिले पट्टी को नहीं खोलना चाहिए।

उपयोग–यह लेप मूढ़मार, शूल, शोथ, हड्डी टूटना अथवा हड्डी उतर जाना, रक्त इकठ्ठा होना आदि दोष दूर करने में बड़ा उपयोगी है। टूटी हुई हड्डी को जोड़ देता है, मांस में होने वाली वेदना को दूर करता है। हमने इसका अनेकों बार उपयोग किया है।

इस औषधि के एक, दो या तीन लेप से चोट आई हो या हड्डी टूटी हो, वह दोष निवृत्त हो जाता है और तीव्र बेदना शमन हो जाती है। अनेकों को केवल एक ही बार लेप करने से आराम हो गया है। इस लेप को ४८ घन्टे तक रहने देना चाहिए। फिर सम्हालपूर्वक धोकर नया लेप लगाना चाहिए।

डाक्टरी प्लास्टर वेलाडोना, एक्स्ट्रेक्ट बेलाडोना आदि औषधियों की अपेक्षा इस औषधि से सत्वर लाभ होता है।

लाठी की मार से गाँठ हो जाना, सूजन आ जाना या किसी स्थान में मांस कुचल जाना, इन पर यह लेप फलप्रद है।

सूचना–यदि लेप खोलने पर त्वचा लाल हो गई हो, तो दूसरा लेप १२ घण्टे बाद लगाना चाहिये। तब तक उस भाग को खुला रखना चाहिये।

(१५) पार्श्वशूलनाशक लेप

विधि–सोंठ, कुचिला और बारहसींगे को जल के साथ घिस उसमें २ से ४ रत्ती अफीम मिला लें। फिर थोड़ा गरमकर लेप करें। ऊपर गर्म पानी की थैली से सेंक करें।

उपयोग–न्यूमोनिया में पसली और छाती पर लेप करने से फुफ्फुस दोष दूर होता है।

(१६) रसांजनादि लेप

विधि–रसौंत, मिश्री, बंबूल गोंद, समुद्रझाग, फिटकरी का फूला सब दो-दो तोले और अफीम १ तोला लें। फिर सबको मिलाकर ३ दिन जल में घोटें। जल उतना मिलावें कि अच्छी रीति से पतला हो जाय। रसौंत और अफीम को शुद्ध करके डालें। ३ दिन बाद अवलेह जैसा गाढ़ाकर खुले मुँह की शीशी में भर लेवें अथवा सुखाकर सोंगठियां या बत्तियां बना लेवें। (ब्र. स्वा. सदानन्द गिरिजी)

मात्रा–यह लेप जरूरत पड़े तब १-२ रत्ती सीप अथवा कटोरी में निकाल जल मिला, पतले दही के घोल जैसा करके नेत्रों के ऊपर और नीचे लगावें तथा नेत्रों में भी अंजन करें।

उपयोग–यह लेप नेत्रों की लाली, दाह, खाज, भयंकर सूजन, चोट लगना घाव होना, पीप आना, नेत्रशूल (घोबा) चलना, नासूर आदि दोषों को दूर करता है। १ मास के छोटे बच्चे और बड़े मनुष्य सबके लिये हितकर है। यह निर्भय रूप से नेत्रों में अञ्जन किया जाता है। इस लेप के अंजन से लाली, दाह और शूल दूर होते हैं। अनेकों बच्चों को इस अञ्जन से लाभ पहुँचा है।

सूचना–(१) तीक्ष्ण नेत्ररोग में नेत्रों को ठण्डे जल और वायु से बचाना चाहिये। गरम जल में कपड़ा भिगोकर उससे आंखों को धोवें। शूल होता हो तो सोने के समय रूई का फोहा फिटकरी के जल में भिगो घी में तलकर आंख पर बांध करके सोना चाहिये।

(२) तीव्र प्रकोप बढ़ रहा हो उस समय इस अञ्जन का या दूसरे रोग शामक अञ्जन का उपयोग नहीं करना चाहिये।

(१७) प्रलापहर लेप

विधि–तम्बाखू, कायफल, कोड़िया लोबान और हींग को पीसकर गुड़ में मिलावें। फिर जल मिला, गरमकर कपड़े की पट्टी पर लगाकर बांधे। कनपटी, कपाल और मस्तक पर लेप लगे, इस रीति से कपड़ा बाँधना चाहिये लेप भी मोटा लगाना चाहिये। (धन्वन्तरि)

उपयोग–इस लेप से वातज और पित्तज सन्निपात की बकवास शान्त हो जाती है और रोगी को निद्रा आने लगती है।

(१८) दद्रुहर लेप

विधि–आंवला सार गन्धक, कच्चा सोहागा, सफेद कत्था और राल ५-५ तोले मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर ५ तोले गूगल का बारीक चूर्ण मिला नींबू के रस में तीन घण्टे खरल करके सोगठी बना लें।

उपयोग–इसे गोमूत्र अथवा नींबू के रस में घिसकर लगाने से लाल काला नया पुराना दाद चला जाता है।

(१९) कासीसादि लेप

विधि–कासीस, गोरोचन, नीलेथोथे का फूला और वर्की हरताल १-१ तोला तथा रसोंत २ तोले को काँजी अथवा नींबू के रस में पीसकर सोगठियां बना लें। (बृ. नि.र.)

वक्तव्य–वृद्धपरम्परा अनुसार गोरोचन के स्थान पर गन्धक मिलाने का रिवाज है।

उपयोग–इस लेप को नींबू के रस अथवा जल में घिसकर लगाने से खाज, योनि की खुजली, अण्डकोष की खुजली, बालकों का अहिपूतना रोग (गुदा पकना) और बवासीर के मस्से की सूजन दूर होती है। खुजली के स्थान को पहिले २-४ रत्ती नौसादर या फिटकरी को २० तोले जल में मिलाकर धो लेना चाहिये, बाद में लेप करें। हमने इसका उपयोग बिना गोरोचन मिलाये किया है।

(२०) मांस्यादि लेप

विधि–जटामांसी, राल, लोध, मुलहठी, निर्गुण्डी के बीज, मूर्वा, नीलकमल, लालकमल, सिरस के फूल सबको समभाग मिला चूर्णकर धोये हुए घृत के साथ मिलाकर लेप करें। (शा.सं.)

उपयोग–इस लेप को वातरक्तज या पित्तरक्तज विसर्प पर लगाने से दाह का शमन होकर रोग दूर होता है।

(२१) कर्णशोथहर लेप

प्रथम विधि–बारहसिंगे का सींग, बच, सोंठ, हींग और सुहिंजने की जड़ सबको थोड़े-थोड़े पानी के साथ घिस गरमकर कान की बाजू में सूजन के ऊपर लेप करने से सूजन मिट जाती है और कान के शूल, पीप निकलना आदि रोगों में भी लाभ होता है।

द्वितीय विधि–गीले अरमानी, लोध, आंवला और आमाहल्दी को समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें।

उपयोग–गुलाबजल में मिला गरमकर दिन में ३-४ बार पतला-पतला लेप करने से कान की जड़ में आया हुआ शोथ दूर होता है। केवल गीले अरमानी भी गुलाब जल में पीसकर लगाई जाती है।

(२२) श्लीपदहर लेप

प्रथम विधि–हल्दी, आँवला, अमरबेल, सरसों, अपामार्ग, रसोई घर का धुँआ सबको समभाग मिला पानी में पीसकर श्लीपद पर लेप करें। (डॉ. श्री रामरक्षपालजी)

उपयोग–इस लेप के लगाने से वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, श्लीपद (फीलपांव) की सूजन नष्ट हो जाती है। डाक्टर साहब ने इस प्रयोग द्वारा अनेक रोगियों को लाभ पहुँचाया है। सामान्य औषधियों से बनने पर भी श्लीपद के लिये अत्युत्तम प्रयोग है।

दूसरी विधि–कनेर की छाल, बच्छनाभ, धतूरे के बीज, कलिहारी, सरसों, अपमार्ग मूल की छाल, करंज की छाल, सेंधानमक, कूठ,

हरड़, सांठी की जड़, आक की जड़ और संहिजने की जड़ समभाग लेकर चूर्ण करें। आवश्यकतानुसार गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करने से श्लीपद का प्रकोप शमन हो जाता है।

(२३) वृद्धिदमन लेप

प्रथम विधि–गूगल, एलुवा, कुंदरू, लोध, फिटकरी और गन्धाबिरोजा सबको समभाग मिला पानी में पीसकर लेप करें।

उपयोग–वृषण पर से बाल दूर करके इस लेप को लगाते रहने से अण्डवृद्धि दूर होती है।

यह "वृद्धिदमन लेप" शिथिल बने हुए वृषण का आकुंचन कराता है। इस हेतु से वायु भर गया हो तो निकल जाता है एवं रस आदि उतरा हो तो उसका नया स्राव बन्द हो जाता है और संगृहीत रस शनैःशनै स्वेद रूप से बाहर निकल जाता है और कुछ अंश में जल जाता है।

द्वितीय विधि–तम्बाखू, कसूम, केसूला, सोंठ, कुदंरू, एलुबा, आमाहल्दी, रूमीमस्तंगी, बच, बच्छनाभ, खसखस के डोडे सबको मिला बारीक चूर्ण कर मकोय के रस में गोली बांधें।

उपयोग–इस गोली को पानी में घिस अण्डकोष पर लेपकर गोबरी से थोड़ा सेक करने से थोड़े ही दिनों में अण्डवृद्धि दूर होती है। साथ में खाने के लिये वृद्धिवाधिका वटी चालू रखनी चाहिये।

पहली विधि की अपेक्षा यह कम चिपकता है, किन्तु इसके गुणधर्म का प्रभाव भीतर के भाग पर तुरन्त और विशेष रूप से होता है। इस लेप के भीतर तमाखू मिलाई है जो हल्लास करती हैं और क्वचित वान्ति भी करा देती है। इस तरह भीतर रहे हुए वायु, रस, जल आदि को यह ऊपर फेंकने की क्रिया होती है, जिससे वृषण में प्रवेशित द्रव्य निकलकर थोड़े ही समय में वृद्धि दूर हो जाती है।

(२४) निशादि लेप

विधि–हल्दी, दारूहल्दी, खस, सिरस की छाल, नागरमोथा, लोध, सफेद चन्दन और नागकेशर इन ८ औषधियों को समभाग मिला जल के साथ लेप तैयार करें। (बं.से.)

उपयोग–इस लेप के लगाने से विस्फोट, मसूरिका (शीतला) के व्रण, विसर्प दाह, पसीना, शरीर की दुर्गन्ध, रोमान्तिका और कुष्ट रोग का शमन होता है। इस निशादि लेप को जल, गोमूत्र या नींबू के रस में खरलकर लेप करते रहने से त्वचा की उग्रता शान्त होती है और कीटाणु नष्ट होते हैं। फिर कण्डू की उत्पत्ति नहीं होती।

विसर्प, विस्फोट, और मसूरिका आदि विकार शान्त हो जाते हैं एवं देह के किसी भी भाग में उत्पन्न रोमान्तिका की पिटिकाओं पर भी यी लेप लाभ पहुंचाता है तथा हाथ-पैरों के तलों के दाह को भी शान्त कर देता है। यदि व्रण फूट गये हों तो इस लेप का कपड़छन चूर्ण बुरकाते रहने से व्रण जल्दी सूख जाते हैं।

(२५) कर्पूरादि मलहम

विधि–पारा, गन्धक, कुन्दरू, गूलर (अजरूल), गूगल, लोबान सब समभाग और सबके समान कपूर लें। पहले कपूर को खरल में डाल तेज धूप में घुटाई करें। थोड़े समय बाद कुन्दरू, गूलर, गूगल, लोबान क्रम से मिलाते जायँ, अन्त में पारा-गन्धक की कज्जली मिलावें। जब खरल करते-करते नरम होकर मलहम बन जाय तब चीनी मिट्टी की डिबिया में भर लें। (आ.नि.भा.)

इस मलहम को कड़क हो जाने पर निम्ब तैल के साथ मिला गरम कर लें। जिससे लगाने लायक मुलायम बन जाए। ग्रन्थकार ने इस मलहम का नाम "तड़कानों मल" अर्थात् सूर्य के ताप का मलहम रखा है।

उपयोग–विद्रधि, गलगण्ड, नासूर आदि रोगों पर यह अच्छा काम देता है। इस मलहम से गाँठ पिघलती हैं, पकती हैं और फूटकर भर भी जाती हैं। नासूर में पहले निम्ब तैल की पिचकारी लगावें, फिर इस मलहम की पट्टी बाँधनी चाहिये।

यह कर्पूरादि मलहम विद्रधि (Abscess), गलगण्ड (Goitre) और नाड़ीव्रण, किसी भी भाग में होने वाली पीड़ा और दुष्ट व्रण आदि रोगों पर सफलतापूर्वक कार्य करता है। मूल प्रयोगदाता ने ४२ वर्ष तक अनेक रोगियों पर इसका प्रयोग करके लाभ उठाया था एवं हम भी इसका प्रयोग करते रहते हैं।

निम्ब तैल–नीम के सूखे पत्ते से चौगुने तिल्ली के तैल को कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढ़ायें। तैल गरम होने पर थोड़े-थोड़े नीम के पत्तों का चूर्ण डालते जाएं। सब पत्ते डालने के बाद भुन जाने पर कड़ाही को नीचे उतार लें। ठण्डा होने पर छानकर शीशी में भर लें।

(२६) राल का मलहम

विधि–तिल तैल १६ तोले, राल ४ तोले और नीलाथोथा ३ माशे लें। पहले तैल को कड़ाही में डाल मन्दाग्नि पर गरम करें। धूआँ निकलने पर राल और नीलाथोथा डालकर कड़ाही को उतार तैल को तुरन्त एक थाली में छान लें। शीतल होने पर जल मिला-मिलाकर धोवें। बार-बार मलकर जल को निकाल डालें। इस तरह १०-२० बार धोने से मलहम मक्खन के सदृश मृदु और सफेद बन जाता है। इसे काँच के अमृतबान में भर ऊपर जल भरें। रोज सुबह पुराना जल निकाल डालें और ताजा भर दें। जब तक मलहम जल में डुबा रहेगा, और जल बदलते रहेंगे तब तक मलहम अच्छा रहेगा। मूल ग्रन्थकार ने इसे जल का मलहम और सफेद मलहम संज्ञा दी है। (आ.नि.मा.)

वक्तव्य–जल न बदलने से जल का रंग काला हो जाता है और मलहम पर फफून्दी आ जाती है एवं जल में न रखने पर भी मलहम चिपचिपा होकर बिगड़ जाता है।

उपयोग–इस मलहम की पट्टी लगाने से **अग्निदग्ध व्रण**, बालकों की गुदा का पक जाना, सड़े हुए फाले, व्रण रोग, मूत्रेन्द्रिय के पास उत्पन्न शोथ, अर्श का शोथ और पाक ये अच्छे हो जाते हैं। सामान्य फोड़े-फुन्सियों पर यह बहुत अच्छा कार्य करता है।

अकस्मात् मनुष्य के जल जाने पर पीड़ित स्थान में भयंकर दाह होता है, देह का कोई-सा भाग जल जाय या कभी सारी देह जल जाय एवं कोमल भाग के भीतर श्लेष्मिक कला में भी दाह होने लग जाय तो ऐसी अवस्था में तत्काल दाह शान्त करने की आवश्यकता है। यह कार्य इस मलहम से सफलतापूर्वक होता है। दाह शान्त हो जाता है, मानसिक प्रसन्नता प्राप्त होती है, फिर निद्रा आ जाती है तथा फाला होने की भीति भी दूर हो जाती है।

सूचना–जले हुए भाग को शीतल जल को स्पर्श नहीं कराना चाहिए। धोने की आवश्यकता पर जल को उबालकर निवाया या शीतल करके लेवें या खदिर छाल के क्वाथ अथवा चाय के क्वाथ से धोते रहें।

पैरों के तल की शिरा पर चोट लग जाने को शोथ होता है। उस पर इस मलहम की पट्टी लगाने पर ५-१० मिनट में मलहम का शोषण हो जाता है और पट्टी शुष्क हो जाती है, फिर तुरन्त दूसरी पट्टी लगावें। इस तरह ३-४ बार पट्टी बदल देवें। जैसे-जैसे पट्टी बदली जायगी वैसे-वैसे शीतलता आती जायगी वेदना कम हो जायेगी और विकार दूर हो जायगा।

इस मलहम का उपयोग राजवैद्य रामचन्द्रजी ने अनेक वर्षों पर्यन्त अग्नि से जले हुए भागों पर सफलतापर्वूक किया था। वे इस २० तोले मलहम में १ ड्राम यूकेलिप्टस ऑयल (नीलगिरी तैल) मिला मन्थन कर प्रयोग करते थे।

(२७) व्रणामृत मलहम

विधि–गन्धाबिरोजा, देशी मोम, राल का चूर्ण प्रत्येक १०-१० तोले और अलसी का तैल २० तोले लें। चारों चीजें कड़ाही में डाल ढँककर अत्यन्त मंद अग्नि से गलावें। जब पिघलकर एक रस हो जाय तब नीचे उतार तुरन्त वस्त्र से छान लें। शीतल होने पर खरल में घोटकर रख लें।

उपयोग–यह मलहम हर प्रकार के खुले घाव के दोष को आकर्षित करके सुखाने में श्रेष्ठ है। इससे उपदंश के घाव का आराम हो जाता है। दुष्ट व्रण जिसका जहर चारों और फैल गया हो जो अनेक प्रकार के मलहमों से अच्छा न हुआ हो, ऐसे अनेक रोगी इस मलहम से अच्छे हो गये हैं।

(२८) व्रणामृत श्वेत मलहम

प्रथम विधि–कपूर १ तोला, सफेद मोम ५ तोले, सफेदा १० तोले और मीठा तैल १० तोले लें। पहिले तैल और मोम गरम करें। थोड़ा ठण्डा होने पर सफेदा मिला लें। फिर कपूर मिलाकर मलहम बना लेवें। यह मलहम शुद्ध हुए घावों को भर देता है।

दूसरी विधि–गूगल, पीपली कौड़ी की भस्म, गली सुपारी की काली भस्म, छोटी इलायची के दाने और पपड़िया कत्था १-१ तोला और शतधौत गोघृत ५ तोले मिलाकर मलहम बना लें। (पं. मंगलालजी)

उपयोग–यह मलहम शुद्ध हुए व्रणों को भर देता है। पुराने व्रणों में से भी पीला-पीला पानी निकाल कर थोड़े दिनों में भर देता है। अग्निदग्ध व्रण (जले हुए घाव) पर भी लाभदायक है।

(२१) गुलाबी मलहम

विधि–**कोकम** अमचूर का तैल (Theobromine) और अरंडी का तैल १०-१० तोले को कड़ाही में डाल चूल्हे पर चढ़ाकर गरम करें। फिर छानकर १ तोला सफेदा और १ तोला सिंदूर मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग–इस मलहम के लगाने से विपादिका (हाथ पैर फटना) होंठ फटना आदि रोग दूर होते हैं, त्वचा मुलायम बनती है।

(३०) चूने का मलहम

विधि– ॥ ५ तोले, अरंडी का तेल ३ तोले और रूई ६ रत्ती मिला कर मलहम बना लें।

उपयोग–यह मलहम व्रण का शोधन करके घाव भर देता है। सड़े हुए घावों के दोषों को निकालकर व्रण को साफ कर देता है।

इस मलहम का विशेषत: उपयोग अति पूयमय दूषित व्रणों के शोधनार्थ होता है। सहनशीलता, रोगबल का विचार कर एक दिन में २ से ४ बार मलहम की पट्टी बदल दी जाती है। इस तरह करने पर १-२ दिन में घाव शुद्ध हो जाता है। घाव में लाल स्वच्छ मांस प्रतीत होने लगता है। **फिर पारद-मिश्रित या अन्य रोपण मलहम का प्रयोग करने पर व्रण जल्दी भर जाता है।**

रोगी को डाक्टरों ने हाथ-पैर कटवा देने को कह दिया था, ऐसे कुछ रोगियों को इस प्रकार का उपचार करने से लाभ हो गया था और अंग विच्छेद कराने से बच जाने के उदाहरणा भी हमें मिले हैं।

दुष्टव्रण और नाड़ीव्रण की चिकित्सा करने के समय रोगी को मल्लादिवटी, रसमाणिक्य या व्याधिहर अथवा अन्य रक्तशोधक उपकारक औषधियों का सेवन भी हम कराते रहते हैं तथा साथ में लघंन या लघु, पौष्टिक पथ्य आहार की भी योजना करते हैं।

यदि रोगी मधुमेह पीड़ित हो तो हम मधुमेह के विष और मधुहर [redacted] (मधुमेह) की योजना आवश्यकता अनुसार करते रहते हैं।

दुष्व्रणों को धोने से के लिए रोगबल, रोगीबल, और स्थान भेद से [redacted] या खदिर क्वाथ का उपयोग करते रहते हैं।

(३१) दारुणकनाशक मलहम

विधि–नीलेथोथे का फूला, कपीला, सफेद कत्था, गेरू और शोरा १-१ तोला, मुर्दासंग, कालीमिर्च और मेंहदी के पत्ते २-२ तोले, सरसों का तैल १८ तोले और देशी मोम २ तोले लें। पहले तैल में मेंहदी के पत्ते पकावें, जल जाने पर नीचे उतारकर मोम डालें। ठण्डा होने लगे तब और वस्तुओं का कपड़छन चूर्ण मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग–इस मलहम के उपयोग से दारुणक (केश-भूमिखुश्क होकर खुजली आना) अरुंषिका (शिर पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ होना) बाल गिरना आदि विकार दूर होते हैं।

(३२) पामाहर मलहम

प्रथम विधि–पारा, गन्धक, कालीमिर्च, नीलाथोथा, सिन्दूर, काला जीरा, सफेद जीरा प्रत्येक समभाग लें। पहले पारद और गन्धक की कज्जली करें। सब औषधियों का बारीक चूर्ण मिला, सबके समान धोया गोघृत डालकर चीनी के बरतन में लें।

उपयोग–इस मलहम को पामा (खुजली) और कच्छू पर लगाने से ५-७ रोज में दर्द दूर होता है। पानी में नीम के पत्ते डाल, गरम करके रोज स्नान करना चाहिये। यह मलहम सौम्य व निर्भय है तथा बालक और कोमल प्रकृति की स्त्रियों के लिये भी प्रयोजित होता है।

दूसरी विधि–पारद, गन्धक, नीलेथोथे का फूला और जमालगोटा सब १-१ छटाँक लेवें। पारद गन्धक की कज्जली करके नीलाथोथा मिलावें। फिर जमालगोटे को मिलाकर ६ घण्टे अच्छी तरह खरल करें। पश्चात १ सेर धोये गोघृत या सफेद बेसलीन में मिला, खरलकर बोतल में भर लेवें।

(श्री. वैद्य कान्तिलालजी आचार्य)

उपयोग–यह प्रयोग प्रथम विधि की अपेक्षा अधिक तेज और अधिक उपकारक है। अति गहराई तक पहँचे हुये घाव को शुद्ध करने में यह विशेष सफल है। यह मलहम पामा, सूखी खुजली, ब्यूची, सड़ी हुई विद्रधि और दुष्ट विद्रधि आदि पर सफलतापूर्वक व्यवहृत होती है।

इसके लेप से सामान्य पामा ३ दिन में दूर हो जाती है। सारे शरीर में कण्डू आने पर मलहम के साथ समान तैल मिलाकर, समग्र शरीर पर मालिश कर १-२ घण्टे सूर्य के ताप में बैठकर स्नान करते रहने से २-४ दिन में कण्डू शमन हो जाती है। दुःखदायी जीर्ण व्यूची पर इसे लगाने से उसे पकाकर [redacted] देता है।

सूचना–[redacted] निमित्त उदर शुद्धि करावें। मिर्च, नमक, शक्कर और मलावरोध करने वाले भोजन हो सकें उतना कम करें।

फोड़ा जो दिनों तक दुःख देता हो, जिसके भीतर मांस के सड़ जाने से दुर्गन्ध आती रहती हो या जिसका पूय दूसरे स्थान पर लगने पर दूसरी जगह पर फोड़ा हो जाता हो अथवा जो अधिक गहराई तक चला गया हो, उसके शोधनार्थ इस मलहम का उपयोग होता है। घाव शुद्ध हो जाने पर दूसरे रोपण मलहम का लेप करने से जल्दी लाभ पहुँचता है।

(३३) ब्यूचीहर मलहम

विधि–पारा, गन्धक, मैनसिल, सफेद कत्था, पाषाणभेद पत्थर, मुर्दासंग सब १-१ तोला और पुंवाड़ के बीज ७ तोले लें। पारा-गन्धक की कज्जली कर अन्य वस्तुओं का कपड़छन चूर्ण मिला दें फिर सब औषधियों को चौगुने गोघृत के साथ ताँबे के बरतन में तांबे के दस्ते से (या नीम के डण्डे के नीचे तांबे का पतरा लगाये हुए दस्ते से) ६ घण्टे खरलकर मलहम बना लें।

उपयोग–इस मलहम से सूखी ब्यूची (उकवत Eczema), पामा, दाद, खाज इत्यादि दूर होते हैं। विस्फोटक और चाँदी के घाव पर लगाने में भी यह उपयोगी है।

क्वचित् यकृद्वृद्धि होने पर भी अपथ्य सेवन करने वालों को ब्यूची हो जाता है। वह बाह्य उपचार से और गन्धक रसायन आदि रक्तशोधक औषधि के सेवन से भी दूर नहीं होता वरन् क्रमशः बढ़ता है और अधिक दुःखदायी बनता जाता है। ऐसे विकार पर यकृत् पौष्टिक औषधि के सेवन के साथ ब्यूचीहर मलहम का उपयोग करने पर लाभ होता है।

सूचना–(१) ब्यूची को रोज सुबह शाम तमाखू के जल से धोना चाहिये। तमाखू १ तोले को आध सेर जल में भिगों दें, फिर छानकर उपयोग में लेवें। सुबह भिगोया जल शाम को लें। शाम को भिगोया जल सुबह लें और शीतकाल में जल को गरम कर लेवें।

(२) जिस ब्यूची में से जल जैसा स्राव अत्यधिक हो रहा हो, उस पर घृत तैल युक्त कोई भी मलहम नहीं लगाना चाहिये अन्यथा विष अधिक स्थान में फैलता है। उस पर दशांग लेप या हरीतकी आदि कषाय द्रव्य अथवा गोमूत्र की पट्टी का प्रयोग हितावह होता है।

(३४) दद्रुदमन मलहम

विधि–एसिड क्राईसोफेनिक ४ ड्राम, एसिड कार्बोलिक ४ ड्राम, एसिड सेलीसिलिक २ ड्राम और पीली बेसलीन १६ औंस लें। सूखी औषधियों को वेसलीन में डालकर मलहम बना लें।

उपयोग–यह मलहम दाद को २-४ दिन में नष्ट कर देता है। मलहम वाला हाथ नेत्रों को नहीं लगाना चाहिये।

(३५) अदीठ कारबंकल का मलहम

विधि–पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, मुर्दासंग ४ तोले, कपीला ८ तोले और नीलेथोथे का फूला २ माशे लें। पहिले पारे और गन्धक की कज्जली करें फिर सबको मिलाकर ६ घण्टे खरल करें। बाद में धोया हुआ चौगुना गोघृत मिलाकर मलहम बना लें। (धन्वन्तरि)

उपयोग–मलहम लगाते ही अदीठ की जलन और पीड़ा दूर होती है। व्रण को पकाकर अन्दर से पीप, रुधिर और गले-सड़े मांस को अलग करता है। बार-बार मृतमाँस काट करके अलग करते रहना चाहिये। साथ में खाने के लिये मधुमेह नाशक औषधि तथा निम्ब तैल का सेवन कराते रहने से थोड़े दिनों में अदीठ रोग दूर होता है।

सूचना–विशेषत: अदीठ मधुमेह पीड़ित व्यक्ति को होता है। अत: उनको शक्कर प्रधान भोजन, मधुर फल आदि जो अपथ्य हों वे बन्द कर देने चाहिये।

(३६) भगन्दरनाशक मलहम

प्रथम विधि–रस कपूर, सिंदूर, सेलखड़ी, मुर्दासंग, सफेदा, सफेद कत्था, कपूर, चिकनी सुपारी की राख प्रत्येक १-१ तोला, सत्यानाशी के बीज ८ तोले मिलाकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर चार गुना धोया हुआ गोघृत मिलाकर मलहम तैयार करें। (आ.नि.मा.)

उपयोग–इस मलहम के लगाने से नूतन भगन्दर, कण्ठमाल, उपदंश, नासूर, गम्भीर व्रण, बवासीर, पामा, फोड़ा-फुन्सी, दाद इत्यादि रोग दूर होते हैं। छोटा छिद्र हो तो मलहम की बत्ती बनाकर भर दें।

जब भगन्दर में गुदा की बाह्य त्वचा और भीतर की रक्तवाहिनी में सीमित विकृति हो या मांस तक विकृति प्रविष्ट हो गई हो, तब तक इस मलहम के उपयोग से लाभ पहँच जाता है। बार-बार कीटाणुनाशक धावन से इसे धोते रहना चाहिए एवं सुविधा अनुरूप निम्बतैल, नाड़ीव्रणहर तैल, करवीर तैल या अन्य पूयहरशोधक तैल को; इञ्जेक्शन सीरिञ्ज या बत्ती द्वारा प्रवेश कराते रहें तथा भगन्दर हर रस या कैशोरगुग्गुलु आदि सेवन कराते रहें, तो भगन्दर रोग १-२ मास के प्रयोग से दूर हो जाता है।

दूसरी विधि–बिलाव के पैर और कुत्ते के पैर की हड्डी ५-५ तोले को एक करवे में संपुट कर जलाकर कोयला करें। फिर राख से समान वजन में धोया घी मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग–भगन्दर, नासूर और भयंकर व्रण में इस मलहम को भर देने से आराम होता है। त्रिफला का क्वाथ अथवा नीम के क्वाथ में घिसकर भी लगाया जाता है। दो प्रकार की हड्डियों में से किसी की भी हड्डी मिल जाय तो भी लगाने के काम में आ सकती है। ऊँट की हड्डी लगाने से भी भगन्दर दूर होता है।

जब गुदस्थान की अस्थि के समीप भगन्दर हो जाने से अस्थि को हानि पहुंची हो और अधिक पहुँच रही हो तब दूसरी विधि के मलहम को प्रयोग करते रहने से एवं कैशोरगुग्गुलु और श्रृंगभस्म मिलाकर उदर में सेवन कराते रहने पर भगन्दर नष्ट हो जाता है।

(३७) कण्ठमालका मलहम

प्रथम विधि–दालचिकना, पारा, गन्धक मुर्दासंग, सफेदा, सफेद कत्था, सोहागे का फूला, कुँदरू, भिलावा (ऊपर की टोपी निकाला हुआ) काली मिर्च, नीम के पत्ते और मोम २-२ तोले तथा सरसों का तैल ४० तोले लें। पहिले दालचिकना और पारा गन्धक की कज्जली मिलावें। फिर मुर्दासंग और सफेदा, पश्चात और वस्तुओं का चूर्ण मिलावें, नीम के पत्ते बाकी रखें। सरसों के तैल और नीम के पत्ते को मिलाकर मन्दाग्नि पर गरम करें। पत्ते जल जायं तब मोम मिलावें। फिर कड़ाही को नीचे उतार अन्य वस्तुओं का चूर्ण मिलाकर पतला मलहम तैयार कर लें। (आ.नि.मा.)

उपयोग–इस मलहम में कपड़े की पट्टी डुबोकर कण्ठमाल, अपची जो फूट गई हो उस पर लगाते रहने से थोड़े ही दिनों में रोग निर्मूल हो जाता है।

दूसरी विधि–मनुष्य की खोपड़ी अथवा हड़डी का बारीक चूर्ण और मक्खी की विष्ठा समभाग मिलावें। मक्खी रात को डोरी पर बैठती है उस डोरी पर विष्ठा लगी रहती है, वह डोरी लेवें। इसे मनुष्य के मूत्र (या गोमूत्र) में पीसकर तैयार करें। फिर कपड़े पर लगाकर कण्ठमाल पर बाँध लेवें। (धन्वन्तरि)

उपयोग–यह लेप थोड़े दिन तक लगाने से कण्ठमाल और गलगण्ड दूर होते हैं तथा अन्य प्रकार की गांठ भी बैठ जाती है।

(३८) उपदंशरिपु मलहम

विधि–रसकपूर ६ माशे, कपूर ६ माशे, मुर्दासंग १ तोला, सफेद कत्था ६ तोले, हीरादोखी गोंद (दमुल अखवैन) २ तोले, नीलेथोथे का फूला ३ माशे और पीली वैसलीन २० तोले लें। वैसलीन को गरम कर अन्य वस्तुओं का चूर्ण मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग–नीम के पत्तों के क्वाथ से उपदंश के घाव को धोकर मलहम लगाते रहने से थोड़े ही दिनों में घाव भर जाता है।

यह मलहम फिरंग रोगी के क्षत पर लगाने के लिए अति उपयोगी है। कोमल स्वभाव की स्त्रियों और पुरुषों, दानों के लिए उपकारक है। यदि घाव पुराना हो, गहराई तक सड़ान्द पहुँच गई हो तो पहले सड़े हुए माँस या त्वचा को जल्दी गलाने की और घाव को शुद्ध करने की आवश्यकता रहती है। अतः उनको पारदादि मलहम दिया जाता है। यह नहीं देना चाहिए।

(३९) अर्शोहर मलहम

विधि–वर्की हरताल और सफेद कत्था २-२ तोले लेकर खरल करें। फिर १०० बार पानी में धोया हुआ ८ तोले गोघृत मिलाकर मलहम बना लें। (आ.नि.मा.)

उपयोग–इस मलहम को दिन में २ बार लगाने से खून गिरना बन्द हो जाता है; जलन और वेदना दूर होती है तथा शुष्क मस्से मुरझा जाते हैं।

दूसरी विधि–सिंदूर ४ तोले और गोघृत २० तोले मिला काँसी की थाली में डालकर नीम के डंडे से रगडें। डण्डे पर ५ तोले सीसे का पतरा लगा दें और घृत को १०० बार पानी से धो लेवें। रगड़ने से मलहम बन जाता है। (इलाजुलगुरबा)

उपयोग–दिन में दो-तीन बार मलहम लगाते रहने से जलन मिट जाती है और मस्से थोड़े ही दिनों में मुरझा जाते हैं।

तीसरी विधि–अफीम ३ माशे, आक का दूध १ माशा, जायफल १ तोला और धोया हुआ गोघृत १ तोला लें। सबको मिला खरलकर मलहम बना लें।

उपयोग–शौच (जंगल जाने) के बाद दिन में २-२ बार मस्सों पर इस मलहम का लेप करने से मस्से नष्ट होते हैं, मस्से की वेदना शमन होती है, शौथ नष्ट होता है और धीरे-धीरे अर्श मृत बनते जाते हैं।

चौथी विधि–सेलखड़ी, कली का चूना, सोनागेरू, फिटकरी का फूला, मरोड़फली, आमाहल्दी इन ६ औषधियों को समभाग लेकर कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात ४ गुने गाय के मक्खन में मिलाकर मलहम बना लें। (स्वामी कृष्णानन्दजी चक्रवर्ती)

उपयोग–शुष्क और रक्त निकलने वाले, दोनों प्रकार के मस्सों पर यह औषधि लाभदायक है। पहिले ही दिन वेदना और जलन शमन हो जाती है, शोथ दूर होती है, शोथ दूर होती है और शनैःशनै मस्से मुरझा जाते हैं। रोज शौच जाने के बाद २-३ बार मलहम लगाते रहें।

सूचना–अधिक बद्धकोष्ठ करने वाले पदार्थों का सेवन और अधिक मिर्च का उपयोग नहीं करना चाहिये। कदाच मलावरोध हो जाय तो स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण अथवा सौम्य औषधि का सेवन करके उदर को साफ कर लेना चाहिये।

(४०) शिरःशूलान्तक मलहम

प्रथम विधि–सफेद वैसलीन ३ पौण्ड, पेराफीन (विलायती मोम) १ पौंड, लोहबानपुष्प ३ औंस, कपूर २ औंस, पीपरमेंन्ट के फूल १ औंस, अजवायन के फूल २ औंस, नीलगिरी तैल ६ औंस, दालचीनी का तैल २ औंस लें। पहिले (लोहे के सफेदी लगे हुए) बर्तन में वैसलीन और मोम को गरम करके छान लें। कपूर, पीपरमेंट और अजवायन के फूलों को मिलाकर प्रवाही अर्क बना लें। पश्चात् तैल और लौहबान पुष्प को वैसलीन वाले प्रवाही द्रव्य में मिला लें। फिर जब थोड़ा गरम रहे तब अर्क को डाल, काँच या लोहे की शलाका से चलाकर सबको भली भाँति मिला लें और शीशियों में तुरन्त भर लें।

उपयोग–इस मलहम की मालिश करने से शिरदर्द, सूजन, साँधों में दर्द होना, चोट लगने से रक्त जम जाना, अग्नि, तैल, घी अथवा तेजाब से जलना, शूल, वायु का दर्द, स्त्रियों के स्तन फटना, होंठ फटना, जहरी जन्तु का काटना आदि दर्द दूर होते हैं एवं बिच्छू का जहर जब दंशस्थान में रह जाता है तब दंश-भाग पर मालिश करने से जलन शान्त होती है।

दूसरी विधि–नीलगिरी तैल ८ भाग, लोहबान पुष्प ४ भाग, कठिन मोम (पेराफिर हार्ड) ३८ भाग। मृदु मोम (पैराफिन सोफ्ट) ५० भाग लें। पहिले मोम को गरम करें; फिर तैल और पुष्प मिला लेवें, शीतल हो तब तक चलाते रहें।

उपयोग–पहली विधि के अनुसार।

(४१) अग्निदग्धव्रणहर मलहम

प्रथम विधि–राल ४ तोले और अलसी का तैल ४० तोले लेकर दोनों को कड़ाही में डालकर पकावें। फिर उतार तुरन्त ही वस्त्र से छान लें। शीतल होने पर काँसी की थाली में चूने के पानी से २१ बार धोवें। धोने के लिये कलई चूना १ तोला लेकर १ बोतल में डालें। ऊपर १। पौंड जल डालें। फिर डाट लगा २-३ मिनट चलाकर १ घण्टे रहने दें। चूना नीचे बैठ जाने पर ऊपर से साफ जल को निकालकर उपयोग में लें। इस हिसाब से अधिक जल बना लें।

उपयोग–इस मलहम को आग से दग्ध स्थान पर लगाने से जलन शान्त हो जाती है; घाव भरता है और खूबी यह है कि वहाँ सफेद दाग भी नहीं पड़ता।

दूसरी विधि–शुद्ध चूना ४ तोले, मोम २ तोले और नारियल का तैल १६ तोले लें। प्रथम मोम और तैल को अग्नि पर गला लें। फिर चूना मिलाकर मलहम तैयार करें।

उपयोग–अग्निदग्धव्रण में चमड़ी जलकर बिल्कुल उतर गई हो, वहां पर भी इस मलहम को लगाने से आराम हो जाता है। चूना भिगोकर ऊपर का जल फेंक करके पुनः सुखा लेने से शुद्ध होता है।

यह मलहम योनि कण्डू, योनि के भीतर क्षत, योनिदाह इन पर प्रयोजित होता है। ३ दिन में योनिकण्डू दूर करता है। योनिदाह और क्षत पर लगाने से शान्ति मालूम पड़ती है और घाव थोड़े दिनों में भर जाता है।

(४२) मनः शिलादि मलहम

विधि–मैनसिल, छोटी इलायची, मजीठ, लाख, हल्दी और दारुहल्दी को २-२ तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करें। पश्चात् ६ तोले घी और ६ तोले शहद मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग–व्रण अच्छा हो जाने के बाद दाग रह जाता है और चमड़ी खराब हो जाती है, यह दोष इस मलहम लेप से दूर हो जाता है।

(४३) पारद मलहम

द्रव्य–विलायती मोम (पेराफीन) १ सेर, तिल का तैल १/२ सेर, शुद्ध पारद १५ तोले, निम्ब की अन्तर छाल रस २॥ तोले, भृंगराज रस २॥ तोले, सिन्दूर ६ माशे।

विधि–पहले कड़ाही में तिल का तैल गरम करें। फिर मोम थोड़ा-थोड़ा डालते जायें और चलाते जायं। दोनों मिल जाने पर लोहे की खरल में डाल लेवें। पश्चात् पारद मिलाकर मर्दन करना आरम्भ करें। करीब ४ घण्टे में पारद अणु-अणु में मिल जायगा और पारद की प्रतीति नहीं हो सकेगी। फिर सिन्दूर, निम्बरस और भृंगराज रस मिलाकर पुनः २ घण्टे खरल करके बोतलों में भर लेवें।

उपयोग–यह पारद मलहम छोटे बड़े घाव, ब्यूची गीली, सड़े हुए घाव, लगा हुआ घाव, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण इन पर सफलतापूर्वक कार्य करता है।

गीली ब्यूची पर पहले मैदे के साथ शक्कर मिला पुल्टिस बनाकर लगा देवें। ऊपर में टाट का टुकड़ा बाँध फिर सेक करें। जिससे खुजली काफी आने लगेगी। जब असह्य हो जाय तब टाट के टुकड़े को खोल देवें और पुल्टिस को जल में डाल देवें। अणुवीक्षण यन्त्र से उस जल में देखने पर सूक्ष्मतम कीटाणु प्रतीत होते हैं।

तदन्तर निंम्ब जल से धोकर स्थान को शुद्ध करें और पौंछ लेवें। पश्चात् मलहम लगाते रहे। कदाच कण्डू आती रहे तो पुनः उपयुक्त पुल्टिस बाँधनी पड़ती है। बहुधा ४ पट्टी में ब्यूची साफ हो जाती है।

सड़े हुए घाव पर मलहम लगाना हो तब घाव को पहले निम्बजल या खदिर छाल के क्वाथ से धोवें। फिर पौंछकर मलहम लगायें। इसी तरह पूयमय फोड़े, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण इनको धोने का पूरा-पूरा लक्ष्य रखें। पूय चारों और न फैले यह सम्हालें। पूय फैलने पर उस स्थान पर भी त्वचा दूषित होती है और नये फोड़े हो जाते हैं या पुराना ही फैल जाता है।

यह मलहम पारदादि मलहम की अपेक्षा सौम्य है। बालक, सगर्भा, कोमल स्वभाव वाले स्त्री, पुरुष, वृद्ध तथा निर्बल व्यक्ति जो तीव्र शोधक पारदादि मलहम न लगा सकें उन सबके लिये यह मलहम हितावह है।

(४४) पारदादि मलहम

विधि–पारद और गन्धक १-१ तोला, मुर्दासंग २ तोले, कपीला ४ तोले और नीलथोथे का फूला ३ माशे लें। सबको खरलकर ३२ तोले धोये हुए गोघृत में मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग–यह मलहम अतिप्रभावशाली है। व्रणों पर व्यवहत होता है। यह व्रणों का शोधन करके उनको भर देता है। दुष्टव्रण जिसमें अति दुर्गन्ध वाला पूय स्राव होता है, मांस सड़ गया हो, खूब फैल गया हो और गहरा हो गया हो, ऐसे गम्भीर व्रण इसके योग से थोड़े ही दिनों में भर जाते हैं। मस्तिष्क जांघ और अन्य स्थानों के दुष्टव्रणों पर इसका प्रयोग होता है।

इसके लगाने से उपदंशज व्रण का रोपण हो जाता है। शीतला का टीका लगाने पर कभी कीटाणु प्रवेश होकर दुष्टव्रण हो जाता है। फिर अत्यन्त दुर्गन्धमय पूयस्राव होता रहता है, इस पर भी यह लाभदायक है।

कितने ही रोगियों के रक्त और त्वचा की रचना में विकृति आ जाती है। फिर थोड़ा-सा घाव लगने पर वहां व्रण होकर महीनों तक नहीं भरता। ऐसे व्रणों का भी यह मलहम शोधन और रोपण कर देता है।

कितने ही व्रण औषधि लगाने पर भर जाते हैं। किन्तु थोड़े ही दिनों में उस स्थान में या उसके समीप में पुनः व्रण उत्पन्न हो जाते हैं। इस तरह बार-बार दुःख पहुँचता रहता है। ऐसे दुष्ट व्रणों को यह मलहम सम्यक प्रकार से शोधन करके फिर रोपण कर देता है। इस मलहम में पड़े हुए नीले थोथे के प्रभाव से व्रण के भीतर रहे हुए विष और कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। मुर्दासंग के योग से घाव में सत्वर शुष्कता आ जाती है। कपीला घाव सुखाने और भरने में सहायक है। इस मलहम का उपयोग कई वर्षों से सफलतापूर्वक हम कर रहे हैं। यह दद्रु, पामा व कण्डू में भी उपयोगी है।

(४५) निम्बादि मलहम

विधि–निम्ब के पत्तों का स्वरस ४० तोले, गोघृत १० तोले, रसकपूर १ तोला और मोम २ तोले लें। पहले निम्ब के पत्तों के रस को घी में मन्दाग्नि से जलावें। पश्चात् मोम मिलाकर घी को छान लें। निवाया रहने पर रसकपूर मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग–यह मलहम नये और पुराने घावों को शुद्ध करके भर देता है। जिन घावों में से जहरी पानी निकलता रहता हो, वह पानी जहाँ-जहाँ लगे वहाँ पर नया व्रण हो जाता हो, उनके विष को नष्ट करके व्रण को भरने का कार्य यह मलहम सत्वर कर देता है।

(४६) माहेश्वर धूप

विधि–राई, सरसों, नमक, गूगल, कुन्दरु, बच, बायविडंग और नीम के पत्तों को समभाग मिलाकर चूर्ण करें।

उपयोग–छोटे बालकों के ज्वर में माहेश्वर धूप का चूर्ण १-२ तोला लेकर बालक से थोड़ी दूर अग्निपर डाल दें। जिससे वातावरण में धूप के अणु मिलकर बालक के श्वासोच्छ्वास द्वारा शरीर में प्रवेश करके ज्वर को उतारने में सहायता पहुँचाते हैं। बड़ों के लिये भी हितकर है।

(४७) अपराजित धूप

विधि–गूगल, अगर, रोहिस घास, नीम के पत्ते, आक के पत्ते, बच, राल और दारुहल्दी को समभाग मिला लें।

उपयोग–इसका धुँआ देने से ज्वर कीटाणु नष्ट होते है।

(४८) जन्तुघ्न धूप

विधि–नमक ३० तोले, कासीस १० तोले और नौसादर २० तोले मिला लें। (वै.सं.वि.)

उपयोग–प्लेग के मरीज जहाँ रहते हों, वहाँ कोयलों की जलती हुई अंगीठी के ऊपर तबा रखकर नमक वाला धूप रख दें, जिससे वातावरण में धूप का असर फैल प्लेग के मरीज के श्वासोच्छ्वास में मिलकर रोग दूर करने मे सहायता पहुंचाता है। शेष अंश (लाल राख) तवे पर रहे, उसे जल में मिलाकर प्लेग की गाँठ पर लगाने से लाभ पहुँचता है।

(४९) दशांग धूप

विधि–बच, हींग, बायविडंग, सैधानमक, गजपीपल, पाठा, अतीस, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल इन १० औषधियों को समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। (वा.भ.)

उपयोग–इस चूर्ण का धूप देने से बालकों के ग्रहदोष नष्ट होते हैं। धूप देने के लिए बेहोश बालक को कपड़ा बिछा खाट पर सुलावें। फिर अग्नि पर धूप द्रव्य डालें, पैरों से कण्ठ के नीचे तक कपड़ा ओढ़ा देवें। जिससे धूँआ शरीर के सब भाग को लगता रहेगा। इस तरह ५-१० मिनट धूआँ दिन में २ बार ३ दिन तक देते रहने से कीटाणु और विष प्रकोप में लाभ पहुँच जाता है।

(५०) जात्यादि धूप

विधि–चमेली के पत्ते, मैनसिल, राल और गूगल को समभाग मिलाकर बकरी के मूत्र में पीसकर गोलियाँ बना लें। (यो.र.)

उपयोग–इस गोली को चिलम में रखकर धूम्रपान करने से कफ निकल जाता है, हृदयावरोध और कण्ठावरोध दूर होते हैं तथा कास, श्वास का शमन होता है।

(५१) अर्शोघ्न धूम्र

प्रथम विधि–कचूर (शठी) १० तोले, बायबिडंग १० तोले और भाँग ५ तोले लेकर चूर्ण करें। फिर एकाध तोले का धूआँ दें।

धुआँ देने की विधि–एक बर्तन में निर्धूम कोयले रख ऊपर चूर्ण डाल तुरन्त हुक्का पीने की चिलम से ढक दें। चिलम के छिद्र में से धूआँ निकलता रहे, उसे मस्से पर लगाते रहे। कमर तक कपड़ा ओढ़ करके धूआँ देना चाहिये।

उपयोग–इस धूम्र के प्रयोग से फूले हुये मस्से नरम होकर वेदना शमन होती है, फिर मस्से भी मुरझा जाते हैं। जो मस्से भीतर के हैं वे नरम होकर ऊपर चढ़ जाते हैं। यदि शौथ आया हो तो शमन हो जाता है तथा खुजली आती हो तो वह दूर हो जाती है।

दूसरी विधि–कुचिला, कपूर, शमी (छोकर) के पत्ते, हल्दी, छोटी कटेली के फल सबको समभाग लेकर चूर्ण करें।

उपयोग–कमर तक कपड़ा ओढ़ा ईंटों पर उकडू बैठाकर गोबरी की निर्धूम अग्नि पर एक तोला औषध डाल, चिलम की नली द्वारा अर्श के मस्से को धूआँ देने से दर्द शाँत होता है।

(५२) कृमिघ्न धूम्र

विधि–छोटी कटेली के सूखे फल को एक कलछी में रखकर कोयलों की सिगड़ी पर रखें और कलछी पर एक नली रखकर, दाँत अथवा कान में जहाँ कृमि हों वहां पर धूआँ देने से कृमि बाहर निकल जाते हैं एक-एक फल चिलम में रखकर धूम्रपान करने से तमाखू के व्यसनी की खाँसी, कफप्रकोप, हृदयावरोध आदि दूर हो जाते हैं।

(५३) देवदार्व्यादि धूम्र

विधि–देवदारु, खरेंटी की जड़ और जटामांसी को समभाग मिला बकरी के मूत्र में पीसकर वर्ति बना लें।

उपयोग–इस बत्ती पर घी चूपड़कर धूम्रपान करने से श्वास की पीड़ा नष्ट हो जाती है।

जिन रोगियों को अधिक कफ प्रकोपसह श्वास-वेग का आक्रमण हुआ हो और सिगरेट आदि धूम्रपान का व्यसन हो, उनके लिये यह धूम्रपान लाभ पहुँचा देता है। छाती में चिपके हुए कफ को खोलकर सरलता से बाहर फेंक देता है।

सूचना–(१) कफ निवृत्त होने और दौरा शान्त होने पर निम्ब तैल ४-५ बूंदें कुछ दिनों तक सेवन कराने से शेष रहा हुआ कफ निकल जाता है और कृमि (कीटाणु) नष्ट हो जाते हैं।

(२) अलसी को भून, आटा कर, चाय बनाकर पीते रहने से भीतर स्निग्धता आ जाती है और भावी आक्रमण से रोगी बच जाता है।

(५४) मनः शिलादि धूम्रपान

विधि–मैनसिल, हरताल, कालीमिर्च, जटामाँसी, नागरमोथा और हिंगोट के फल की छाल को समभाग लेकर चूर्ण करें। (वृन्द)

उपयोग–२ से ४ रत्ती चिलम में डालकर धूआँ लेने से कफ निकल कर एकादोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज कास और श्वासावरोध दूर होते हैं। विशेषतः तमाखू पीने वालों के वातकफ जनित श्वास और कफयुक्त कास में लाभदायक है। धूंआं लेकर ऊपर गुड़ या मिश्री मिला निवाया दूध पीवें। जो सैकड़ों औषधियों से अच्छे नहीं हुए हों, ऐसे रोगी भी इस प्रयोग से त्वरित अच्छे हो जाते हैं।

सूचना–रक्तपित्त, उदररोग, तिमिर दोष और प्रमेह के उपद्रव वालों को धूम्रपान नहीं करना चाहिये। धूम्रपान करने पर उनको धूआँ मुँह से निकालना चाहिये, धूंएँ को नाक से न निकालें।

(५५) अस्थिदोषहर सेक

विधि–गेहूँ का मैदा, मैदा लकड़ी और हल्दी १०-१० तोले, सज्जीखार २तोले और तिल का तैल २० तोले लें। पहले तैल को गरम कर मैदा भूनें फिर सज्जीखार, मैदा लकड़ी और हल्दी क्रम से डालें, थोड़ा पानी मिलाकर हलवे के समान पकावें। फिर बार-बार गरमकर आध घण्टे तक चोट पर सेक करें। पश्चात् औषधि बाँध देवें। चोट के कारण हड्डी पर आघात, शोथ, रक्त इकट्ठा होना, वेदना आदि दोष दूर होते हैं।

(५३) कलिंगाद्यनस्य

विधि–इन्द्रजौ, कच्ची हींग, कालीमिर्च, लाक्षा, कायफल, कूठ, बच, सहिंजना के बीज और बायबिडंग इन ९ औषधियों को समभाग मिला कूट-कपड़छन चूर्णकर बोतल में भर लें। इस नस्य में थोड़ा कपूर भी मिला लिया जाय तो विशेष हितकर है। (यो.र.)

उपयोग–इस नस्य के सूंघने से जुकाम, शिरदर्द, श्वास की रुकावट और सब प्रकार के नासिका रोग दूर होते हैं।

रोगावस्था में यह नस्य उपकारक है किन्तु फिर सुविधा अनुरूप षड् बिन्दु तैल का नस्य मस्तिष्क को झुकाकर कुछ दिनों तक कराते रहने से मस्तिष्क में रहे हुए आम, कफ निकल जाते हैं या जल जाते हैं। यदि उदर विकृति या अन्य कारण से जुकाम, शिरदर्द आदि होते हों तो मूल कारण को दूर करना चाहिये यदि नासिका में अर्श होने से श्वासावरोध होता हो तो षड्बिन्दु या कासीसादि तैल का नस्य कराते रहना चाहिए।

(५७) नजलानाशक नस्य

विधि–काश्मीरी पाठा और उस्तखद्दूस दोनों २-२ भाग तथा बालछड़ (जटामाँसी) और गुलबनप्सा १-१ भाग लें। सबको मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें। (स्वा. कृष्णानन्दजी चक्रवर्ती)

उपयोग–इस नस्य के सूँघने से कपाल में संगृहीत कफ दूर होता है। श्वासनलिका साफ होती है। जिसे नजले का पानी आँखों में उतरकर नुकसान पहुँचता हो, वह बन्द हो जाता है। शिरदर्द का शमन होकर मस्तिष्क हल्का और शान्त बन जाता है। जुकाम वालों के लिये अति लाभदायक है। सन्निपात और उदावर्त रोगों में शिरोविरेचन की जहाँ आवश्यकता हो वहाँ पर यह लाभ पहुँचाता है।

(५८) शिरःशूलान्तक नस्य

विधि–कायफल ५ तोले, नकछींकनी २ तोले, छोटी पीपल, तुलसीपत्र, बायबिडंग, छोटी इलायची के बीज, कपूर सब १-१ तोला और देवदाली ६ माशे लें। सबको कूट कपड़छन चूर्ण बना लें। इसमें से १-१ रत्ती आवश्यकतानुसार सुंघावें।

उपयोग–इस नस्य से शिरदर्द, जुकाम, तन्द्रा, श्वासावरोध आदि दोष दूर होते हैं।

दूसरी विधि–हरड़, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल ६-६ माशे, बच्छनाभ २ माशे तथा पीपल (अश्वत्थ) की छाल की राख १॥ तोले लें। सबको अच्छी रीति से खरल करके नस्य तैयार कर लें।

सूचना–इस नस्य में से आध रत्ती सुँघाने से कफ, कृमि आदि दोष निकल कर शिरदर्द का शमन होता है।

(५९) मूर्च्छान्तक नस्य

विधि–नौसादर, चूना और कलमीशोरा प्रत्येक १-१ तोला लें। फिर अलग-अलग पीस स्टोफर्ड बोतल में भरकर मिला लें। पश्चात् कपूर ३ माशे मिलाकर अच्छी रीति से हिला लें।

उपयोग–बेहोशी के समय सुँघाने में अति उपयोगी है। सन्निपात, हिस्टीरिया और सर्प आदि जानवरों के जहर की मूर्च्छा दूर कर देता है। दाँत भिंचे हुए हों, औषध खा न सके तो उसकी नाक के पास बोतल खोलने से गैस नाक में प्रवेश कर जाती है।

(६०) विषादि उद्धूलन

विधि–अशुद्ध बच्छनाभ १ तोला, कालीमिर्च का चूर्ण ३ तोले और जंगली कण्डों की राख १३ तोले मिला धतूरे के पत्तों की भावना देकर सूर्य के ताप में सुखा लें।

उपयोग–यह उद्धूलन सन्निपात में शीत और पसीना दूर करने के लिए सारे शरीर पर मालिश करने में उपयोगी है।

(६१) भूनिम्बादि उद्धूलन

विधि–चिरायता, कुटकी, कूठ, सौंफ, इन्द्रजौ और कचूर को समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें।

उपयोग–सन्निपात में अत्यन्त पसीना आता हो और कण्ठावरोध हो, तब शरीर की प्रत्येक सांधों पर इसकी मालिश करने से सन्निपात के विकार शान्त हो जाते हैं।

(६२) त्वक्पत्रादि उद्वर्त्तन

विधि–दालचीनी, तेजपात, रास्ना, अगर, सहिंजने की छाल, कूठ, बच और सौंफ सबको समभाग मिलाकर चूर्ण करें। (वृन्द)

उपयोग–इस चूर्ण को नींबू के रस या काँजी में पीस, गरमकर लेप करने से हैजे में हाथ पैर की नसों का खिंचना बन्द हो जाता हे। यदि इस चूर्ण का कल्क बना, काँजी मिला, सरसों का तैल सिद्ध करें और इस तैल की मालिश करें तो भी शीघ्र लाभ होता है।

(६३) चन्द्रप्रभा उबटन

विधि–पीली सरसों, चिरौंजी और मसूर की दाल को समभाग मिला गोदुग्ध में पीस रात्रि को सोने के समय मुँह पर लेप करें।(श्री रामस्वामी जी)

उपयोग–तारुण्य पिटिका (मुहाँसे) और मुँह के काले दाग थोड़े ही दिनों में दूर होते हैं। सारे शरीर में मालिश करने से दुर्गन्ध, फुन्सी और खाज दूर होकर शरीर की त्वचा सुन्दर बन जाती है।

(६४) रजः प्रवर्तिनी वर्त्ति

विधि–एलुवा और कड़वे बादाम (देवदाली) के फल ६-६ माशे लें, तेज शराब में पीस, पतले कपड़े पर लेप करके फिर वस्त्र को गुण्डालकर वर्त्ति बना लें। (श्री मंगूलालजी)

उपयोग–इस वर्त्ति को भग में धारण कराने से मासिकधर्म आने लगता है। साथ में चोक (सत्यानाशी की जड़) को जल में घिसकर नाभि पर लेप करें।

(६५) फलवर्ति

विधि–मैनफल, पीपल, कूठ, बच, सफेद सरसों और जवाखार १-१ तोला लेकर बारीक चूर्ण करें। बाद में ५ तोले गुड़ को जल में मिला गरम करके चाशनी करें फिर चूर्ण मिलाकर चलाते रहें। जब वर्त्ति बांधने लायक हो जाय तब कनिष्ठिका से कुछ पतली और नोकवाली वर्त्ति (बत्तियां) बना लें। (वृन्द)

उपयोग–इस वर्त्ति पर थोड़ा घी वाला हाथ लगाकर गुदा में चढ़ाने से मलावरोध जनित उदावर्त रोग का शमन होता है, उस समय रुकी हुई अधोवायु निकल कर अफारा दूर होता है।

यदि मल सूखकर गुदनलिका में फंस गया हो या दृढ़ हो गया हो तो वह निकल जाता है और फिर ऊपर में रही हुई अपान वायु सरलता से बाहर निकल जाती है।

सूचना–यदि मल सूख गया हो तो एरण्ड तैल का उदर सेवन कराने, उदर पर एरण्ड तैल लगा कपड़ा रख, गरम जल भरी हुई रबर की थैली से १५-२० मिनट सेक करने से जल्दी लाभ पहुँच जाता है।

(६६) निर्मला गुद वर्त्ति

विधि–साबुन (सनलाइट) २० तोले, गुड़ नरम १० तोले, एरण्ड तैल २ तोले, मैनफल का सूक्ष्म चूर्ण ५ तोले, सैंधानमक २ तोले लें। साबुन का बारीक चूर्ण कर गुड़ मिलावें, फिर मैनफल का चूर्ण, एरण्ड तैल व सैंधानमक मिलाकर सबको एक जीव करके कनिष्ठिका (अंगुली) सम गोलाकार १ इंच लम्बी बत्तियाँ बना लें। ऊपर पन्नी लपेटकर चौड़े मुख वाली शीशी या डिब्बे में भर कर रख दें।

उपयोग–ग्लीसरीन की बत्ती के समान गुदा में भीतर रखकर १५ मिनट तक प्रतीक्षा करें। इससे मलाशय से खुश्क मल निकलकर उदावर्त्त व अफारा दूर होगा। (वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

परिशिष्ठ

पिष्टियां (विशेष)

नोट–यहाँ संस्था की निर्माणशाला में कुछ सुधाकल्पों तथा रत्नों यथा प्रवाल, मुक्ता, शुक्ति आदि तथा पन्ना, माणिक्य, नीलम, कहरवा (तृणकाँत), संगेयहूद, संगेयशव, पुखराज, पिरोजा, गोमेदमणि, जहरमोहरा आदि के अति सूक्ष्म चूर्ण को गुलाबजल या केवड़ा अर्क में २१ दिन या निश्चित अवधि तक घोटकर उन-उन उक्त द्रव्यों की पिष्टियां बनाते हैं जो कि हृद्य, शीत, सौम्य व बलप्रद होती हैं।

(१) अकीक पिष्टी (विशेष)

द्रव्य–उच्च जाति (Highquality) के पक्के तथा अपेक्षया अति मूल्यवान अकीक इस विशेष प्रकार में लेना चाहिये।

विधि–इनका अति सूक्ष्म, मृस्रण चूर्ण बना छानकर खरल में डालें तथा गुलाबजल में तर करके घुटाई करें एवं प्रतिदिन गुलाबजल डालते हुये १० दिन तक घुटाई करें। बाद में छाया-शुष्क कर घोटकर छान लें।

मात्रा–१ से ३ रत्ती तक, मक्खन-मलाई अथवा खमीरेगावजवाँ के साथ।

उपयोग–यह अकीक पिष्टी (विशेष) उक्त अकीक पिष्टी की अपेक्षा सत्वर व अधिक गुणप्रद है।

(२) तृणकान्तमणि पिष्टी (विशेष)

द्रव्य–उत्तम तथा अपेक्षाकृत उच्च जाति की तृणकान्तमणि (कहरवा) जो सामान्य से सवा-डेढ़ गुने मूल्य वाला हो यथेच्छ लें।

विधि–सतर्कता से सूक्ष्मश्लक्ष्ण बारीक चलनीछन चूर्ण बना, खरल में डालकर गुलाबजल में डालकर १० दिन तक घोट छान भर लें।

मात्रा–१से ४ रत्ती तक।

अनुपान–रक्तस्राव व कृमियों के लिए अनार रस, जल, शहद के साथ।

उपयोग–यह विशेष पिष्टी अपेक्षाकृत शीघ्र प्रभावी व अधिक गुणों वाली होती है। शेष उपयोग व गुण सामान्य के समान। (वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

(३) यशद भस्म (विशेष)

विधि–पहली विधि के अनुसार बनी हुई यशद भस्म नींबू के रस में घोटकर गजपुट में फूँखे। फिर निकालकर नींबू के रस की भावना देकर गजपुट दें। इस प्रकार ३ गजपुट दें, इसी प्रकार हल्दी के स्वरस या क्वाथ की ३ भावना व ३ गजपुट दें। फिर कुमारी स्वरस की भावनायें व गजपुट देने से अपेक्षाकृत जल्दी गुण प्रभाव दर्शाने वाली, उत्तम भस्म बनती है। यही इसका वैशिष्टय है।

मात्रा व उपयोग–यशद भस्म के समान।

(४) कुक्कुटांडत्वक् भस्म (विशेष)

विधि–पूर्वोल्लिखित कुक्कुटांडत्वक् (श्वेत) भस्म ८ तोले हो तो उसमें १ तोले हिंगुल मिला-कुमारी रस की भावना देकर गजपुट लगावें। इस प्रकार १-१ तोले हिंगुल डालते हुए ४ पुट लगा दें। यही इनमें विशेषता होगी।

गुण–इस प्रकार हिंगुल के पुट लगाने से शीघ्र प्रभावकारी एवं अल्प मात्रा में ही लाभप्रद होगी। शुक्र, दौर्बल्य, शुक्र बीजाणु दौर्बल्य नाशक, यह उत्तम सुधा कल्प है। बालशोष, प्रमेह, श्वेतप्रदर, सोमरोग, बहुमूत्रादि में उत्तम फलप्रद है।

(५) प्रवाल पंचामृत (नं.२)

द्रव्य–प्रवाल भस्म या पिष्टी ६० ग्राम, शुक्ति भस्म या पिष्टी ३० ग्राम, शंखभस्म ३० ग्राम, शुक्ति भस्म ३० ग्राम तथा वराटिका भस्म ३० ग्राम लें।

विधि–उक्त पाँचों को खरल में डालकर बारीक मिश्रण बनाकर आक के दूध या गौदुग्ध १८० ग्राम में घोटकर गोला बनाकर संपुट कर गजपुट में फूंक दें। यह उत्तम मुलायम बनेगी।

मात्रा–१ से ३ रत्ती दिन में २-३ बार।

अनुपान–शहद, शहद पीपल, गुलकन्द या अनार रस।

उपयोग–यह उत्तम सुधा कल्पयोग है जो प्रवाल पंचामृत (मुक्ता वाले से कुछ ही न्यून गुणवाला है।)

इसका उपयोग–बालशोष, कफ व आमज व्याधियाँ, हृद्रोग, प्लीहा, क्षय मंदाग्नि श्वास तथा अन्य विविध उदर रोगों मे प्रयुक्त होता है। अश्मरी व मूत्र रोगों में भी उत्तम कार्य करता है। निर्बल अस्थिवालों के लिये शक्तिप्रद है। शेष गुण-प्रवाल पंचामृत (मुक्ता) से कूछ न्यून है।

संस्था की निर्माण शाला में बन रहे औषध निर्माणों के विशेष योगों के विषय में विशेष सूचना (विशेष दवाओं की परिभाषा)

संस्था में विगत २० वर्षों से निर्माण हो रहे विशेष योगों में डाले जाने वाले द्रव्यों के समान ही होते हैं, किन्तु विशेष योगों में वे ही द्रव्य सामान्यों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् व उच्च गुणवत्ता के डाले जाते हैं तथा बहु द्रव्य मिश्रण वाले योगों में सामान्य पुटवाली भस्मों के स्थान पर १०० पुटी, ५०० पुटी, सहस्त्र पुटी भस्में या मुक्तापिष्टी (विशेष) प्रवालपिष्टी (विशेष) आदि का विशेष योग कराने से वे दवायें

विशेष नाम वाली दर्शाई गई हैं। विशेष दवाओं में गुणों, मात्राओं तथा शीघ्र प्रभावकारिता आदि गुण सामान्य की अपेक्षा अधिक बढ़ जाने की दृष्टि से इन योगों (विशेष योगों) का विवरण दिया गया है।

यथा-

(१) **प्रवालपिष्टी**-मध्यमदर्जे की प्रवालशाखा द्वारा किन्तु प्रवालपिष्टी (विशेष) उच्च क्वालिटी की अधिक मूल्य वाली निर्माण कराई जाती है। किन्तु इन दोनों में प्रवाल मूल का कदापि प्रयोग नहीं किया जाता है। यही नियम अन्य पिष्टियों में भी पालन किया जाता है। किसी भी प्रकार की मुक्तापिष्टी में मोती, सीप का प्रयोग नहीं किया जाता।

(२) **लक्ष्मीविलास रस** (सुवर्ण विशेष) के निर्माण में रौप्य भस्म १०० पुटी अभ्रकभस्म ५०० पुटी, लोहभस्म १००पुटी, नागभस्म १०० पुटी, मुक्तापिष्टी (वि.) डाले जाते हैं, जबकि सामान्य में उक्त द्रव्य कम पुटों वाले डाले जाते हैं। यही नियम अन्य विशेष-रस रसायनों में पालन किया जाता है। (वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

(६) शतावरी गुग्गुल

द्रव्य-शतावरी, गिलोय, गन्धप्रसारणी, गोखरू, पीपल, सौंफ, अजवायन, रास्ना, असगंध, पद्माक, कचूर और सोंठ ये सब औषधि १-१ पल (५-५) तोले, शुद्ध गूगल १२ पल (६० तोला)।

विधि-इन सब औषधियों का महीन चूर्ण करके शुद्ध गूगल को घृत के साथ मिलाकर कूटकर ८-८ माशे की गोलियां बनावें।

मात्रा-१ गोली से २ गोली तक गरम जल या गरम दूध के साथ सेवन करें।

उपयोग-यह सर्व प्रकार के वातरोग विशेष कर अर्धांग वात (पक्षाघात) के लिए शीघ्र लाभ पहुँचाती है। (र.र.स.)

(७) पञ्चतिक्तघृत गुग्गुलु

क्वाथ द्रव्य-नीम की छाल, गिलोय, वासा, पटोलपत्र, और कटेली १०-१० पल, शुद्ध गूगल ५ पल। घी २ सेर।

प्रक्षेप-पाठा, बायबिडंग, देवदारू, गजपीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोंठ, हल्दी, सोया, चव्य, कूठ, मालकांगनी, कालीमिर्च, इन्द्रजौ, जीरा, चित्रक, कुटकी, शुद्ध भिलावा, बच, पीपलामूल, मजीठ, अतीस, हरड़, बहेड़ा, आमला, अजवायन, प्रत्येक औषधियां १।-१। तोला।

विधि-क्वाथ द्रव्यों में गूगल को छोड़कर सब औषधियों को यवकुट करके ३२ सेर पानी में रात को भिगोकर प्रातः काल पकावे और ४ सेर जल शेष रहने पर उतारकर छान लेवें। फिर इस क्वाथ में पोटली में गूगल बांधकर लटवा देवें, घृत, मिलाकर पाक करें। जब क्वाथ जल जावे तब घृत को और प्रक्षेप वाली औषधियों का चूर्ण डालकर गूगल मिलाकर कूटकर ६-६ माशे की गोलियाँ बनावें अथवा अमृतबान में भरकर रक्खें।

मात्रा-६ माशे से १ तोला तक। तत्तद् रोगहर अनुपान से।

उपयोग-इसके सेवन से सन्धि, अस्थि तथा मज्जागत प्रबल वायु, कुष्ठ, नाड़ीव्रण, अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला, ऊर्ध्व जत्रुगत समस्त वातरोग, गुल्म, अर्श, प्रमेह, यक्ष्मा, अरुचि, श्वास, कास, शोष, हृद्रोग, पाण्डु, गलविद्रधि और वातरक्त का नाश हो जाता है। (भै.र.)

(८) चित्रकहरीतकी

योग-चित्रक, आमले, गिलोय, दशमूल उन का क्वाथ या स्वरस ६।-६। सेर, बड़ी हरड़ का चूर्ण ४ सेर, गुड़ ३। सेर।

सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची का चूर्ण प्रत्येक १०-१० तोले, यवक्षार ५ तोला, शहद ४० तोले।

विधि-चित्रकादि औषधियों के क्वाथ या स्वरस में गुड़ डालकर पकावें। गाढ़ा होने पर हरड़ का चूर्ण तथा अन्य औषधियों का चूर्ण मिला देवें। दूसरे दिन ठण्डा होने पर शहद ४० तोला मिलाकर पात्र भरकर रक्खें।

मात्रा-२ तोला से ४ तोला तक अग्निबल के अनुसार।

उपयोग-दुष्ट प्रतिश्याय, कास, क्षय, दुस्तरपीनस, कृमि, गुल्म, उदावर्त, बवासीर और भयंकर श्वास का नाश तथा अग्नि की वृद्धि होती है। यह विष्टब्ध को दूर करने में भी अपूर्व लाभ पहुँचाती है। (भै.र.)

(९) पञ्चतिक्त घृत

द्रव्य-नीम की अन्तर छाल, पटोलपत्र, कटेली का पञ्चांग, गिलोय, अडूसा इन पांचों औषधियों को १०-१० पल (५०-५० तोले) गाय का घी १ सेर।

कल्क-त्रिफला चूर्ण २० तोले।

विधि-निम्ब आदि पांचों औषधियों को जौकूट करके ३२ सेर पानी में क्वाथ करें ८ सेर शेष रहने पर उतार कर छान लेवें और घी और कल्क मिलाकर पाक करके घृत सिद्ध करें।

मात्रा-६ माशे से १ तोला तक।

उपयोग-१८ प्रकार के कुष्ठ रोग, ८० प्रकार के वातरोग, ४० प्रकार के पित्त रोग, २० प्रकार के कफ रोग, दुष्टव्रण (बिगड़े हुए घाव) क्रिमिजन्य रोग, अर्श (बवासीर) तथा पांच प्रकार के कास रोगों को नष्ट करता है। (भै.र.)

रोगानुसार औषध सूची

इस सूची में किस रोग पर कौन-कौनसी औषध दी जाती है, यह दिखाया है। एक ही रोग पर अनेक औषधियाँ काम देती हैं। परन्तु इनमें से देश काल दोष दूष्य आदि भेद से कोई विशेष अनुकूल रहती है, कोई कम। कोई सत्वर लाभ पहुँचाती है, कोई चिरकाल में। एक समान औषधियों में से अनेक लाभ नहीं पहुँचा सकतीं। अतः विवेकपूर्वक उपयोग करना चाहिये। यथाहि निद्रानाश पर मुक्तापिष्टी, सूतशेखर, निद्रोदय रस आदि औषध उपयोग में आती है। इनमें से पित्त प्रकोप या रक्त की उष्णता हेतु हो, तो मुक्तापिष्टी, वातपित्तात्मक दोष हो, तो सूतशेखर और तीव्र वेदना होने पर वात केन्द्र को बलात्कार से सुप्त बनाकर निद्रा लानी हो, तो निद्रोदयरस देना चाहिये। पृष्ट २१४ में हेमगर्भपोटली रस की दो विधि लिखी हैं दोनों क्षय और संग्रहणी पर उपकारक हैं। इनमें प्रथम विधि जब यकृत्पित्त का स्राव कम होता हो, तब बढ़ाकर नियमित कराने तथा कफस्राव और अनेक पिण्डों को सुदृढ़ बनाने की जहाँ आवश्यकता हो, वहां पर हितकारक है। द्वितीय विधि उदर वात तथा आमाशय के पित्त की अम्लता और उष्णता को शमन करने, अन्त्र संग्राहक शक्ति बढ़ाने तथा अस्थिसंस्थान को दृढ़ बनाने के लिये लाभदायक मानी गई है। इस रीति से सब औषधियों में सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर विभिन्नता जानी जाती है। यहाँ पर कुछ अंश में दोष आदि भेद से औषध की पृथक्ता का दिग्दर्शन कराया है। अधिक विस्तार "चिकित्सा तत्वप्रदीप" में देखें।

पाठकों से प्रार्थना है कि संक्षेप में लिखी हुई चिकित्सा पद्धति के अनुसार रोगी, रोग, रोगबल, हेतु, दोष-दूष्य, लक्षण, आयु, औषधिबल, आहार-विहार परिस्थिति सब बातों को विचार करके चिकित्सा करें। रोगी के नाम प्रांत भेद से भिन्न होने से किसी एक प्रांत में प्रचलित नाम अन्यत्र उपयोग में नहीं आते। अनेक नाम अन्य प्रान्तवासी नहीं जानते अतः यहाँ माधव-निदान में लिखे संस्कृत नाम ही प्रायः अकारादि क्रम से लिखे हैं।

पाठकों की सुविधा के लिये रोगों के नामों की सूची यहाँ दी है, जिससे सब कोई इच्छित रोग वर्णन तुरन्त निकालकर देख सकें। उदाहरणार्थ कब्ज, कब्जियत, मलावरोध, बद्धकोष्ठ और आनाह, इन शब्दों में से वर्णन आनाह के साथ लिखा है। इस रीति से अनेक पर्याय नाम वाले रोग के लिए समझ लें-

१. अग्निदग्ध व्रण।+
२. अग्निमांद्य।
३. अजीर्ण।
४. अतिसार, दस्त।
५. अन्तर्विद्रधि।
६. अन्तःस्रावक ग्रन्थि-विकृति
७. अन्त्रपुच्छ प्रदाह।
८. अन्त्रवृद्धि।
९. अपस्मार-मृगी।
१०. अम्लपित्त।
११. अरोचक।
१२. अर्बुद।
१३. अर्श-बवासीर।
१४. अश्मरी-पथरी।
१५. अष्ठीला।
१६. अस्थि-भंग।
१७. अस्थि-क्षय।
१८. अहिफेन व्यसन।
१९. आध्मान अफारा।
२०. आनाह-बद्धकोष्ठ।
२१. आमवात।
२२. आमाशय व्रण।
२३. उदर रोग।
२४. उदावर्त।
२५. उन्माद।
२६. उपदंश (गर्मी)।
२७. उरस्तोय कुक्ष्युदर।
२८. उरुस्तम्भ।
२९. कण्ठमाला।
३०. कण्ठ रोग
३१. कब्ज।
३२. कर्कस्फोट।
३३. कर्णरोग।
३४. कामला।
३५. कास-खाँसी
३६. कुष्ठ-कोढ।
३७. कृमि।
३८. गुल्म।
३९. ग्रहणी-संग्रहणी।
४०. ज्वर-बुखार।
४१. ज्वरातिसार।
४२. तृषा।
४३. त्वचारोग।
४४. दन्तरोग।
४५. दद्रु-दाद।
४६. दाह।
४७. धातुक्षीणता।
४८. नासारोग।
४९. निद्रानाश।
५०. नेत्ररोग।
५१. पलित (सफेदबाल)
५२. प्रतिश्याय (जुकाम)
५३. प्रभापात (लू लगना)
५४. प्रमेह।
५५. प्रमेहपिटिका।
५६. प्रवाहिका (पेचिश)
५७. पाण्डु।
५८. पामा-खुजली।
५९. पित्तवृद्धि।
६०. प्लीहा-वृद्धि।
६१. बद्धकोष्ठ।
६२. बहुमूत्र।
६३. बालरोग।
६४. बुद्धिमाँद्य, स्मृतिनाश।
६५. भगंदर।
६६. भस्मक।
३७. भ्रम-चक्कर।
६८. मदात्यय।
६९. मसूरिका-रोमंतिका।
७०. मुखरोग।
७१. मूत्रकृच्छ्र-मूत्राघात।
७२. मूत्रवाहिनी में व्रण।
७३. मूर्च्छा।
७४. मेदोवृद्धि।
७५. यकृद्वृद्धि।
७६. रक्तदबाववृद्धि।
७७. रक्तपित्त।
७५. रक्तविकार।
७९. रक्तस्राव।
८०. वमन-कै।
८१. वमन कराना।
८२. वातरोग।
८३. वातरक्त।
८४. विचर्चिका-ब्यूची।
८५. विद्रधि।
८६. विरेचन
८७. विषविकार।
८८. विसर्प विस्फोटक।
८९. विसूचिका (हैजा)।
९०. वृक्कविकार।
९१. वृष्णवृद्धि।
९२. व्रणशोथ आदि।
९३. शिरःशूल।
९४. शीतपित्त (पित्ती)
९५. शूल।
१६. शोथ-सूजन।
१७. श्लीपद-हाथीपगा।
९८. श्वास-दमा।
९९. सन्निपात।
१००. संग्रहणी।
१०१. सूजाक।
१०२. सेन्द्रियविषवृद्धि।
१०३. स्त्री रोग।
१०४. स्नायुविकृति।
१०५. स्नायुक-नारु।
१०६. स्वेदवृद्धि।
१०७. हलीमक।
१०८. हारिद्रक।
१०९. हिक्का (हिचकी)।
११०. हिस्टीरिया।
१११. हृद्रोग।
११२. क्षय-राजयक्ष्मा।
११३. क्षुद्ररोग।

(१) अग्निदग्ध व्रण (आग से जलना)

वराटिका भस्म ९९। अग्निदग्ध व्रणहर मलहम ४३६। शिरःशूलान्तक मलहम ४३६।

(२) अग्निमांद्य–मन्दाग्नि (Loss of Appetite)

वात प्रधान–अग्नितुण्डी वटी २०३। हिंग्वाष्टक चूर्ण ३३२। धनंजयवटी ३१०। शिवाक्षारपाचन चूर्ण ३३२। गन्धकवटी ३१७।

पित्तप्रधान–वैडूर्य भस्म ९०। प्रवाल भस्म ९३। शुक्तिभस्म ९८। शंखभस्म १०१। वराटिका भस्म ९९। नींबू का शर्बत ४०६। स्वादिष्ट शर्बत ४०६। सितोपलादि चूर्ण ३२८।

कफ प्रधान–अग्निकुमार रस २०१। धनञ्जय वटी ३१०। लोकनाथ रस २५४। गन्धक वटी ३१७।

जलवायु दोष जनित–दुर्जल जेता रस १६७।

धातु की निर्बलता से–सुवर्ण भूपति १४१। अभ्रकभस्म ७५। ताम्र भस्म ४९। लोहभस्म ५३। वंगभस्म ५७। लक्ष्मीविलास रस १७६। सुवर्णमालिनी वसंत १८१। हिंगुल रसायन २३८। द्राक्षासव ३७५। अश्वगन्धारिष्ट ३७३। त्रैलोक्य चिन्तामणि १६५। वसंतकुसुमाकर २४३।

विष्टब्ध या आमाजीर्ण से मन्दाग्नि–रससिन्दूर १३०। प्राणदा पर्पटी १५३। अग्नितुण्डी २०३। द्राक्षासव ३७५। महाद्राक्षासव ३८५। क्षुद्बोधक रस २९६। हिंग्वष्टक चूर्ण ३३२। शिवाक्षार पाचन चूर्ण ३३२।

ज्वर के पश्चात् अग्निमांद्य–सुवर्णमालिनी वसन्त १८१। लघुमालिनी १८५। लक्ष्मीविलास रस १७६, १७९, २१४। जयमंगल रस १६७। ६४ प्रहरी पीपल २३।

विष प्रकोप से अग्निमांद्य–सुवर्णमालिनी वसन्त १८१। सुवर्णभूपति रस १४१। चतुर्मुख रस ३०४। प्रवालपिष्टी ९४। शुक्तिभस्म ९८। मुक्ताभस्म ९१। वराटिका ९९।

आमाशय वृद्धि जन्य–समीरपन्नग + शंख भस्म १३८, १०१।

(३) अजीर्ण अपचन (Indigestion Dyspepsia)

सामान्य अपचन और आमाजीर्ण–अग्निकुमार रस २०१। क्रव्याद् रस २०२। संजीवनी वटी ३०८। आरग्वधादि कल्क ३५८। धनञ्जय वटी ३१०। गन्धक वटी ३१७। लहशुनादि वटी ३२०। हिंग्वष्टक चूर्ण ३३२। शिवाक्षार पाचन चूर्ण ३३२। चविकासव ३८०।

विदग्धाजीर्ण–आरोग्य वर्द्धिनी २५०। शंख वटी १९५। स्वादिष्ट शर्बत ४०६। धनञ्जय वटी ३१०। लवणभास्कर चूर्ण ३३१। भृंगराजासव ३८२। चविकासव ३८०। खमीरा आवरेशम ४०३।

रसशेषाजीर्ण–प्रवाल भस्म ९३। वराटिका भस्म ९९। शंखभस्म १०१। शुक्ति भस्म ९८। अग्नितुण्डी वटी २०३। क्रव्याद् रस २०२। स्वादिष्ट शर्बत ४०६। लवणभास्कर चूर्ण ३३१।

जीर्ण अजीर्ण–कासीस भस्म ८१। समीरगज केसरी रस २३२। लोह भस्म ५३। ताप्यादि लोह २०६। सुवर्णमालिनी वसन्त १८१। लक्ष्मीविलास रस १७६, १७९, २१४।

अलसक विलम्बिका–क्रव्याद रस २०२। लक्ष्मीविलास नारदीय १७६।

(४) अतिसार–दस्त (Diarrhoea)

वात प्रधान–अगस्ति सूतराज रस १९१। कनक सुन्दर रस १९२। कामदुधा रस २२३। सूतशेखर रस २६९। शंखोदर रस १९६। प्रवाल पञ्चामृत २४०। अश्विनीकुमार रस २४५। कुटजावलेह ३९६।

कफ प्रधान–(नया)अगस्तिसूतराज रस १९१। (जीर्ण) लोहभस्म ५३। लक्ष्मीविलास रस १७६, १७९, २१४। लोकनाथ रस २५४। प्राणदा पर्पटी १५३।

जीर्ण आमातिसार–रसपर्पटी १४७। प्राणदापर्पटी १५३।

पक्व आमातिसार–महावातराज रस २९२। लक्ष्मीनारायण रस १७३। संगजराहत भस्म ११०। शम्बूक भस्म ११३। बोल पर्पटी १५१। कर्पूर रस १९०। शंखोदर रस १९६। सूतशेखर रस २६९। जातिफलादि वटी १९६। कुटजारिष्ट ३७६। उशीरासव ३७१।

मानसिक आघात जन्य–द्राक्षासव ३७५। अभ्रक भस्म ७५ और वराटिका भस्म ९९। (शहद और सोंठ के चूर्ण के साथ)।

प्रसूता के आमातिसार–जरिकाद्यरिष्ट ३७९। सूतशेखर रस २६९।

अन्त्र शोथज अतिसार–जसद भस्म ६३। भृंगराजासव ३८२। रस पर्पटी १४७। सिद्ध प्राणेश्वर रस १९८।

गुद भ्रंश–क्षुद्र रोग में देखें।

आँतों की साधारण शक्ति वृद्ध्यर्थ–अभ्रक भस्म, नाग भस्म और रससिंदूर (कुटजारिष्ट के साथ) पञ्चामृत पर्पटी १५१।

(५) अन्त्र विद्रधि (विद्रधि रोग में)

नूतन–अन्त्रवृद्धिहर गुटिका ३१४। अन्त्र वृद्धिहर चूर्ण ३३६। वृद्धिवाधिका वटी २५९।

जीर्ण–नित्यानन्द रस २६१।

(६) अन्तःस्त्रावक ग्रन्थियों की विकृति

सारिवासव ३८१। नाग भस्म ६५। जसद भस्म ६३। जातिफलादि वटी १९६। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। लक्ष्मीविलास नारदीय १७६।

(७) अन्त्रपुच्छ प्रदाह (Appendicitis उदर रोग में देखें)

(८) अन्त्र वृद्धि (आंत उतरना) (Inguinai Hernia)

(९) अपस्मार–मृगी (Epilepsy)

नया–**ताप्यादि लोह** २०६। अमर सुन्दरीवटी २३०। रौप्य भस्म ४७। वातकुलान्तक २२९। भूतभैरव रस १८१, २२९। उन्मादगज केसरी २२९। **स्मृतिसागर** २९९। योगेन्द्र रस ३०३।

जीर्णावस्था–अभ्रक भस्म ७५। अष्टमूर्ति रसायन १४२। मल्लसिंदूर १३२। सूतराज रस १५७। मल्लसिंदूर वटी २३६। सारस्वतारिष्ट ३७४। पञ्चगव्य घृत ४१२। ब्राह्मी घृत ४१४। कल्याण घृत ४१५। **स्मृतिसागर २९९**।

बेहोशी शमनार्थ–श्वास कुठार २१८। मूर्च्छान्तक नस्य ४४०।

अर्श रोग-सह अपस्मार–गन्धक रसायन २२५।

उपदंश रोग के उपद्रव रूप अपस्मार का दौरा–अष्टमूर्ति रसायन १४२। मल्लसिंदूर १३२। उपदंश सूर्य २६२।

हिस्टीरिया सह अपस्मार का दौरा–मलेरिया वटी १८०।

(१०) अम्लपित्त (Hyperacidity)

सब पर हितावह–जीरकादि मोदक ३९२।

वातप्रकोप सह–रौप्य भस्म ४७। अविपत्तिकर चूर्ण ३३५।

आमाशय वृद्धिज–रौप्य भस्म ४७। नागभस्म ६५। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। वङ्ग भस्म ५७। ताप्यादि लोह २०६। कामधेनु रस ३०२।

कीटाणु प्रकोपज–लीलाविलास २७५।

उदर में व्रणहोकर जीर्ण अम्ल पित्त–नागभस्म ६५। स्वर्णमाक्षिक भस्म ६९। ताप्यादि लोह २०६। खमीरा आबरेशम ४०३।

यकृत् की निर्बलता सह–लीलाविलास २७५।

भोजन के बाद हृदय शूल–शीतल पर्पटी १५३।

उदर में भारीपन–शंख भस्म १०१।

कफ प्रधान अम्लपित्त–लीला विलास २७५।

पित्त की तीक्ष्णता और अम्लता कम कराना–मुक्ता भस्म ९१। प्रवाल भस्म ९३। कामदुधा रस २२३। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। ताप्यादि लोह २०६। सूतशेखर २६९। शंख भस्म १०१

शरीर शोथनार्थ–तुत्थ भस्म १११। नीलकण्ठ रस १८८।

(११) अरोचक, अरुचि (Anorexia)

सब पर हितावह–अदरख शर्बत ४०६। धनञ्जय वटी ३१०। शंखवटी १९५। आर्द्रकावलेह ३९८। आरग्वधादि कल्क ३५८। गन्धकवटी ३१७। द्राक्षासव ३७५

वातिक–मानसिक चिन्ता जन्य–रौप्य भस्म ४७। फिरङ्गग सुजाक-बाद, रौप्य भस्म ४७। क्षयादि पश्चात्–अभ्रक भस्म ७५।

पित्तविकार जन्य–प्रवाल भस्म ९३। कामदुधा रस २२३। प्रवाल पंचामृत २४०। नींबू का शर्बत ४०६। सितोपलादि चूर्ण ३२८।

कफ दुष्टि जन्य–अग्निकुमार २०१। हिंग्वष्टक चूर्ण ३३२। अग्नि तुण्डीवटी २०३। हिंगुल रसायन २३८।

ज्वर के पश्चात्–आरग्वधादि कल्क ३५८। सुवर्ण मालिनी वसंत १८१। लघुमालिनीवंसत १८५। चौसठप्रहरी पीपल २३। खमीरा आवरेशम ४०३।

(१२) अर्बुद

सब प्रकार पर–कांचनार गूगल ३१५। खदिरारिष्ट ३७१। **कनकप्रभा वटी ३११**।

वात या कफ प्रधान–ताम्रभस्म ४९

पित्तप्रधान–बंग भस्म ५७। **नागभस्म** ६५।

यकृद्पर मांसार्बुद–ताप्यादिलोह २०६।

(१३) अर्श–(Piles)

सब प्रकार पर हितकर–ताप्यादि लोह २०६। नित्योदित रस १९९। अर्शः कुठार रस १९९। अभयारिष्ट ३७७।

वातार्श–रौप्यभस्म ४७। लौहभस्म ५३। नागभस्म ६५। बंगभस्म ५७। बृहद् योगराज गूगल २३३। अश्वगंधारिष्ट ३७३। दुर्नाम कुठार वटी ३१४।

पित्तज–रौप्य भस्म ४७। गन्धक रसायन २२५। मुक्तापिष्टी ९२। अभयारिष्ट ३७७। द्राक्षासव ३७५।

कफज–क्रव्याद् रस २०२। नवायस चूर्ण २१०।

रक्तार्श–नागभस्म ६५। पीतल भस्म ११०। सुवर्ण माक्षिक भस्म ६९। द्राक्षासव ३७५।

रक्त बन्द करने के लिये–बोल पर्पटी १५१। शंखोदर रस १९६। जातिफलादि वटी २००। बोलबद्ध रस २००। लोहभस्म ५३। उशीरासव ३७१। तृणकान्तमणि पिष्टी १०३।

शक्ति सरंक्षणार्थ–अभ्रकभस्म ७५। लक्ष्मीविलास रस १७६, १७९।

लगाने के लिये–प्रतिसारणीय क्षार ४३०। कासीसादि लेप ४३१। अर्शोहर मलहम ४३६। कासीसादि तैल ४१९।

मल शुद्धय्यर्थ–द्राक्षासव ३७५। अभयारिष्ट ३७७ नाराच घृत ४१०। त्रिफला चूर्ण ३३३। विरेचन चूर्ण ३३४।

अर्शसह कास, ग्रहणी या अपस्मार–गन्धक रसायन २२५।

(१४) अश्मरी–पथरी–शर्करा–सिकता (Calculus)

संगेयहूद भस्म ११०। त्रिविक्रम रस २४४। पाषाणवज्रक रस २४५। **त्रिकंटकादि क्वाथ** ३५३। माजून हिजरुलयहूद ४०१। गोक्षुरादि गुगल ३१४। चन्दनासव ३७८।

(१५) अष्ठीला (वायु की गांठ)

ताम्र भस्म ४९। लोह भस्म ५३। क्रव्याद रस २०२। चविकासव ३८०। शूल और रसोत्पादक पिंड की विकृति सहपर–अभ्रक भस्म ७५।

(१६) अस्थिभंग (हड्डी टूटना)

अस्थि दोषहर सेक ४३९। अस्थि संधानक लेप ४३०। अस्थि शूल-नागभस्म ६५ और नागभस्म प्रधान औषधियां।

(१७) अस्थिक्षय-अस्थि शोष

पुष्यधन्वा रस २८८। मधुमालनी वसन्त १८४। कुक्कुटाण्डत्वक भस्म ११३। प्रवालपिष्टी ९४।

(१८) अहिफेन व्यसन

अफीम छुड़ाना-कुचिला शोधन ३७।

(१९) आध्मान-अफारा (Tympanites)

जडान्न या अपक्व भोजन से-शंख वटी १९५। क्रव्याद रस २०२। शंखद्राव ३८६। उदरामृतयोग ३८६। धनञ्जय वटी ३१०। शिवाक्षार पाचन चूर्ण ३३२। पंचसम चूर्ण ३३४। पंचसकार चूर्ण ३३४।

जीर्ण रोग-अग्नि तुण्डी वटी २०३। बृहद् योगराज गूगल २३३। दशमूलारिष्ट ३६७।

उदरवात पेट में वायु भरा रहना-कासीस भस्म ८१। लोहपर्पटी १५० आनन्द भैरव रस १८९।

अन्त्रस्थ जन्तु जन्य विकृति से तीव्र अफारा-पंचसूत १४३।

(२०) आनाह-बद्धकोष्ठ कब्ज (Constipation)

नया-शुद्ध गन्धक ३०। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। इच्छाभेदी रस १८८। धनंजय वटी ३१०। आरग्वधादि कल्क ३५८। त्रिफला चूर्ण ३३३। पंचसम चूर्ण ३३४। नाराच घृत ४१०। विरेचन चूर्ण ३३४। पञ्चसकार चूर्ण ३३४। भृङ्गराजासव ३८२। लवणभास्कर चूर्ण ३३१।

अपानवायु अवरोध-लवणभास्कर चूर्ण ३३१।

जीर्णरोग-अभ्रक भस्म ७५। शंखवटी १९५। द्राक्षासव ३७५। कुमार्यासव ३६९। अभयारिष्ट ३७७। नाराच घृत ४१०। जातिफलादि वटी २००। अग्नितुण्डी वटी २०३। भृङ्गराजासव ३८२। ताप्यादि लौह २०६। नागभस्म ६५।

धातु क्षीणता के पश्चात्-नागभस्म ६५। ताप्यादिलोह २०६। वंग भस्म ५७। सुवर्ण वंग १३६। चन्द्रप्रभा वटी ३११।

उपदंश-बोलपर्पटी १५१। गन्धक रसायन २२५।

(२१) आमवात (Rheumatism)

नया तीव्र-महावातविध्वंसन रस २३०। आमवातप्रमथिनी वटी २३७। ज्वरकेशरी वटी १५९। जयमंगल रस १६७। लक्ष्मीविलास १७६, १७९, २१४। मृत्युञ्जय १७०।

सामान्य प्रकोप-महारास्नादि क्वाथ ३५४।

जीर्ण-लोह भस्म ५३। मल्लसिंदूर वटी २३६। सुवर्णभूपति १४१। ताप्यादि लोह २०६। बृहद्योगराज गूगल २३३। समीरगज केशरी रस २३२। महारास्नादि क्वाथ ३५४। चिंचाभल्लातक वटी ३१५। धात्री भल्लातक वटी ३१६। अमृतारिष्ट ३७३।

हृदय रक्षणार्थ-लक्ष्मीविलास रस २१४। पूर्णचन्द्रोदय रस १२९। खमीराजमुर्रद ४०४। नागार्जुनाभ्र रस ३०६।

सूतिकाकोप आमवात-अश्वगन्धारिष्ट ३७३।

कोष्ट दोष शोधनार्थ-नाराच घृत ४१०।

(२२) आमाशय व्रण

पित्तज-कामदुधा रस २२३। सूतशेखर २६९। खमीराआबरेशम ४०३।

वातप्रकोप सह-रौप्य भस्म ४७।

वातवाहिनियों की विकृति-अभ्रकभस्म ७५ और नागभस्म ६५।

(२३) उदर रोग

वातोदर-दशमूलाद्य घृत ४११। दशमूल क्वाथ ३४९। हिंगुल रसायन २३८। अग्नितुण्डी वटी २०३।

पित्तप्रधान-रौप्य भस्म ४७।

अफारासह-प्रवाल पंचामृत २४०।

कफोदर-ताम्रभस्म ४९। अग्नितुण्डीवटी २०३। तालसिंदूर १३४।

अन्त्रपुच्छ प्रदाह-अग्नितुण्डी वटी २०३।

यकृदाल्युदर-आरोग्यवर्द्धिनी २५०। नवायस चूर्ण २१०।

यकृद्विकृति-आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

यकृत् प्लीहावृद्धि-प्लीहान्तक क्षार चूर्ण ३३३, प्लीहान्तक चूर्ण ३३३। रोहितारिष्ट ३८१। नींबूद्राव ३८६। उदरामृत योग ३८६। लघु शंखद्राव ३८६। शंखद्राव ३८६। शंखभस्म १०१। ताम्रभस्म ४९। क्रव्याद रस २०२। प्रवाल पंचामृत २४०। शूलवज्रिणी ४३७। लौहभस्म ५३। स्वर्ण माक्षिक भस्म ६९। मण्डूर भस्म ७२। प्लीहान्तक वटी २४९। सुवर्णमालिनी १८१। मधुमालिनी १८४। पर्पटाद्यरिष्ट ३८२। अश्वकंचुकी रस; कुमार्यासव ३६९। पुनर्नवासव ३८१। अभयारिष्ट ३७७।

जलोदर-ताम्रभस्म ४९। तालसिंदूर १३४। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। जलोदरारि रस २५४। लक्ष्मीविलास अभ्रक १७६। दशमूल क्वाथ ३४९। पुनर्नवासव ३८१।

तीव्रयकृत्संकोच-पंचसूत १४३। ताप्यादि लोह २०६।

पित्ताशय संकोच-ताम्रभस्म ४९।

यकृत में कंकर जमना-ताम्रभस्म ४९। अगस्ति सूतराज रस १९१। क्रव्याद् रस आदि ताम्र घटित औषधियां और कुमार्यासव ३६९।

मलशुद्धि अर्थ-इच्छाभेदी रस १८८। अभयारिष्ट ३७७। नाराच घृत ४१०।

पाण्डुसह उदर रोग-त्रिफलारिष्ट ३७३।

(२४) उदावर्त

सुवर्ण भूपति १४१। बृहद् योगराज गूगल २३३। सूतशेखर २६९। अभयारिष्ट ३७७। फलवर्ति ४४०। शंखभस्म १०१। गन्धक वटी ३१७। द्विनिशादि लेप ४२९।

(२५) उन्माद (पागलपन) (Insanity)

सब पर हितकर–उन्मादगज केसरी २२९। भूतभैरव रस २२९। अभ्रक भस्म ७५।

वातप्रधान–रौप्य भस्म ४९। कस्तूरी भैरव रस १५८। अश्वगन्धारिष्ट ३७३। पंचगव्य घृत ४१२। वातकुलान्तक रस २२९। भूतभैरव रस २२९।

पित्त प्रधान–सुवर्ण भस्म ४४। प्रवाल भस्म ९३। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। मुक्ताभस्म ९१। कामदुधा २२३। सूतशेखर २६९। सारस्वतारिष्ट ३७४। ब्राह्मीघृत ४१४।

वात पित्त प्रधान–योगेन्द्र रस ३०३।

कफप्रधान–मल्लसिन्दूर १३२। समीरपन्नग १३८। मल्लसिन्दूर वटी २३६। पञ्चगव्य घृत ४१२।

मानसिक आघात जन्य–स्मृति सागर २९९। अभ्रक भस्म ७५। विजयापुष्पाद्यवलेह के साथ ३९९। रौप्य भस्म ४९।

गर्भाशयविकार और मासिकधर्म विकृति–स्मृतिसागर २९९। ब्राह्मीवटी १८०। लक्ष्मीविलास रस १७९ रजोदर्शन बन्द होने पर सारस्वतारिष्ट ३७४।

शुक्रक्षयजन्य उन्माद–पूर्णचन्द्रोदय रस १२९। (च्यवनप्राशावलेह के साथ) वंगभस्म ५७।

भूतोन्माद–पुन:पुन: प्रकुपित होने वाला जीर्ण–अभ्रक भस्म ७५। शिलासिन्दूर वटी २६०। सूतराज रस १५७। स्मृतिसागर २९९। पञ्चगव्य घृत ४१२। कल्याण घृत ४१५।

फिरंग अनुबन्ध सह–अष्टमूर्ति रसायन १४२। मल्लसिन्दूर १३२।

निद्रानाश पर–सर्पगन्धादि वटी ३२१। विजयापुष्पाद्यवलेह ३९९। सूतशेखर २६९। प्रवालपिष्टी ९४ (ब्राह्मी के क्वाथ के साथ)

बाह्योपचार–दशांगधूप ४३८।

(२६) उपदंश–फिरंग–गरमी (Syphillis)

नया रोग– पारद भस्म ६९। व्याधिहरण रस १४३। सत्यानाशी का तैल २६ अमीर रस २६४। उपदंश कुठार २६३।

जीर्ण रोग–उपदंश सूर्य २६२। मल्लादि वटी २६५। त्रिपुरभैरव रस १४४। केशरादि वटी २६१। रसकर्पूर २६३। अमीर रस २६४। गंधक रसायन २२५।

संधिवात, रक्तविकार कुष्ठ गुदशूक, नासाव्रण, नाड़ीव्रण आदि उपद्रव–हरताल भस्म १०३। हरताल पुष्प २८६। मल्लभस्म १०६। मल्लसिन्दूर १३२। अष्टमूर्ति रसायन १४२। उपदंश सूर्य २६२। मल्लादि वटी २६५। बृहद् मञ्जिष्ठादि क्वाथ ३५१। उपदंशहर क्वाथ ३५६। अमृतारिष्ट ३७३। देवदार्वाद्यरिष्ट ३८४। रक्तशोधकारिष्ट ३८४। माजून चोपचीनी ४०१। माजून उशवा ४०१। सारिवासव ३८१। सुवर्ण बंग १३६। पंचतिक्त घृत गुग्गुल ४४१।

मूत्रदाह–प्रवालपिष्टी ९४ गन्धक रसायन २२५।

लगाने के लिए–उपदंशरिपु मलहम ४३५। पारदादि मलहम ४३७। कोशातक्यादितैल ४२१।

(२७) उरस्तोय–कुक्ष्युदर–फुप्फुसावरण शोथ

फुप्फुस आवरण में प्रदाह (Pleurisy)

थोड़ा जल संचय–रस सिन्दूर १३०। माणिक्य रस १३५। लघुमालिनी बसन्त १८५। श्वासकुठार रस २१८।

फुप्फुसावरण शोथ–आरोग्यवर्द्धिनी २२५।

फुप्फुस और हृदय में वातजन्य व्यथा–महावात विध्वंसन रस २३०।

अधिक जल संचय–पंचसूत १४३। नीलाञ्जन भस्म ११७।

(२८) उरुस्तम्भ–आढ्यवात–जङ्घा की वायु

सुवर्णभूपति १४१। वातगजाँकुश २३२। बृहद्योगराज गूगल २३३। सारिवासव ३८१।

कोष्ठदोष शोधनार्थ–नाराच घृत ४१०। नारायण तैल ४१९।

(२९) कण्ठमाल, गलगण्ड और अपची

नूतन रोग–नित्यानन्द रस २६१। काँचनारगूगल ३१५। लोकनाथ २५४।

जीर्ण–जसदभस्म ६३। गण्डमालाकण्डन रस २५९। नागभस्म ६५। गंधक रसायन २२५। मल्ल भस्म १०६। शिलासिन्दूर वटी २६०। शिलासिन्दूर १३५।

मन्द ज्वर हो तो–सुवर्णमालिनी बसन्त १८१। लोकनाथ रस २५४।

लगाने के लिए–चक्रमर्दादि तैल ४१७। कटुतुम्बी तैल ४२१। प्रतिसारणीय क्षार ४३०। कण्ठमाल का मलहम ४३५।

(३०) कण्ठरोग (गले के रोग)

स्वरघ्न, विदारी, गलायु, अधिजिह्विका, उपजिह्विका पर–प्रवाल पिष्टी ९४। जसद भस्म ६३। गन्धक रसायन २२५।

स्वरसाद स्वरभंग–जसद भस्म ६३

उपजिह्वा प्रदाह–शुभ्रा भस्म ११४।

गलोघ–(गाँठों का जीर्ण शोथ)जसद भस्म ६३। सुवर्णमाक्षिक ६९। बीजपूरजटादि लेप ४२९।

(३१) कब्ज (आनाह में देंखे)

(३२) कर्क स्फोट (Cencer) विधि में देंखें।

(३३) कर्ण रोग (कान के रोग)

बाधिर्य–कर्णशूल पूय आदि–कर्पूरधारा अर्क ३८८। बिल्वादि तैल

४१८। वराटिका भस्म ९९। दशमूल क्वाथ ३४९।

कर्णार्श जनित बधिरता–क्षार तैल ४१८।

खाने के लिए–सारिवादि वटी २७६। श्रृंगभस्म १०७। वंगभस्म ५७ कर्णपाक में दोष निकालना–क्षार तैल ४१८।

(३४) कामला–पीलिया (Jaundice)

सब प्रकार पर–ताप्यादि लोह २०६। महामृगांक रस २१३। लोहभस्म ५३। सुवर्ण माक्षिक भस्म ६९। मंडूरभस्म ७२। सुवर्ण भूपति १४१। पर्पटाद्यरिष्ट ३८२। आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

जीर्ण कामला–मण्डूर भस्म ७२ और शिलाजीत ३२। लक्ष्मीविलास १७९, २१४। नवायस चूर्ण २१०। चन्दनादि चूर्ण ३४१। पुनर्नवामण्डूर २५८। अमृतारिष्ट ३७३। मेहान्तक रस २९७।

कुम्भ कामला–मण्डूर भस्म ७२।

यकृद् के मांसार्बुद जन्य–ताम्र भस्म ४९। बंगभस्म ५७। ताप्यादि लोह २०६।

(३५) कास-खांसी (Bronchitis)

सब प्रकार का कास–चन्द्रामृत रस २१७। अभ्रक भस्म ७५। कफकर्त्तन रस २९४। वासादि चूर्ण ३४४। चित्रकहरीतकी ४४१।

शुक्रक्षय जन्य–बंगभस्म ५९। लक्ष्मीविलास नारदीय २७९।

वातिक–रौप्यभस्म ५७। नागभस्म ६५। मधुमालिनी बसंत १८४। ताप्यादि लोह २०६। सूतशेखर २६९। शुष्ककासहर क्वाथ ३५८। दशमूलाद्यघृत ४११। लऊक सपिस्तां ४०५।

पैत्तिक–सुवर्ण भस्म ४४। महामृगांक २१३। गोदन्तीभस्म ८३। प्रवाल पिष्टी ९४। महाद्राक्षासव ३८५। सितोपलादि चूर्ण ३२८। बृहत् सितोपलादि चूर्ण ३३०। लऊक सपिस्तां ४०५।

कफकास–अभ्रम भस्म ७५। लोहबान पुष्प २२। अग्निरस २१८। सुवर्णबंग १३६। मल्लभस्म १०६। बोलबद्ध रस २००। महावातराज २९२। श्रृंगभस्म १०७। रससिंदूर १३०। आनन्दभैरव १८९। लोकनाथ २५४। संजीवनी वटी ३०८। त्रैलोक्यचिन्तामणि १६५। कफकुठार रस २१७। कनकासव ३७२। वासादिचूर्ण ३४४। शुभ्राभस्म ११४। समीरपन्नग १३८।

कफसंग्रह–कफकुठार २१७। समीरपन्नग १३८। कनकासव ३७२। कास कण्डनावलेह ३९५। सुवर्णबंग १३६। श्रृंगभस्म (फुफ्फुसों की निर्बलता पर) १०७। नीलाञ्जन भस्म ११७।

वातपित्तात्मक–सूतशेखर २६९।

वातकफात्मक–समीरपन्नग १३८।

कफपित्तज–मल्लभस्म १०६। अग्निरस २१८। लवंगादि तालसिंदूर २१८। अष्टांगावलेह ३९६। आर्द्रकावलेह ३९८।

उरःक्षतजन्य–द्राक्षासव ३७५। महाद्राक्षासव ३८५। प्रवालपिष्टी ९४। मुक्तापिष्टी ९२। सितोपलादि चूर्ण ३२८। ताप्यादि लोह २०६। स्फटिकमणि भस्म ११६।

हृदयफुफ्फुस को सबल बनाने के लिये–अभ्रक भस्म ७५। वज्रभस्म ८६। नीलमणि भस्म ९०। वैक्रान्तभस्म ९१। श्रृंगभस्म १०७। लक्ष्मीविलास रस १७६, १७९, २१४। खमीराजमुर्रद ४०४। अभ्रपर्पटी १५४। महाद्राक्षासव ३८५।

सगर्भावस्था में शुष्ककास–प्रवालपिष्टी ९४। कामदुधारस २२३। सितोपलादि चूर्ण ३२८।

वृद्धावस्था में कास–वसन्त कुसुमाकर २४३।

अतिसार जन्य कास–सुवर्ण पर्पटी १४८।

(३६) कुष्ठ-कोढ़ (Leprosy & Skin diseases)

सब पर लाभदायक–शुद्धगन्धक ३०। गन्धक रसायन २२५। नारसिंह चूर्ण ३३८। लक्ष्मी विलास रस १७९। रक्तशोधकारिष्ट ३८४। मंजिष्ठादि चूर्ण ३३६। खदिरारिष्ट ३७१। बृहद् मंजिष्ठादि क्वाथ ३५१।

पंचतिक्त घृत गुग्गुलु ४४१।

वातप्रधान–वात कफप्रधान और अन्य द्वंद्वज–आरोग्यवर्द्धिनी २५०; रसमाणिक्य २६७। मंजिष्ठादि तालसिंदूर २६८। हरताल भस्म १०९।

हरताल पुष्प २८६। पीतल भस्म ११०। पंचतिक्त घृत ४४१।

पित्तप्रधान–लोह भस्म ५३। लोहपर्पटी १५०। गन्धक रसायन २२५। पञ्चनिम्बादि चूर्ण २६६।

कफप्रधान–शिलासिंदूर १३५। त्रैलोक्यचिन्तामणि १६५।

उपदंशज कुष्ठ–हरताल भस्म १०९। मल्लभस्म १०६। तालसिंदूर १३४। मल्लसिंदूर १३२। मल्लपुष्प १८०। मल्लादि वटी २६५। उपदंशसूर्य २६२। रक्तशोधकारिष्ट ३८४।

आमानुबन्धयुक्त कुष्ठ–बृहद्योगराज गूगल २३३।

गलत्कुष्ठ–कुष्ठकुठार रस ३०१।

क्षुद्र कुष्ठ–अश्वकंचुकी रस १६१। आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

श्वेत कुष्ठ–रसमाणिक्य २६७। आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

किलास कुष्ठ–लोध्रासव ३६८।

दुषी विष के उपद्रव रूप– आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

लगाने के लिये–कुष्ठहर लेप ४२९। प्रतिसारणीय क्षार ४३०।

शरीर शोधनार्थ–तुत्थभस्म १११। इच्छाभेदी रस १८८। अश्वकंचुकी रस १६१।

ब्यूची–फिटकरी ३७। ब्यूचीहर मलहम ४३४। गन्धक रसायन २२५ दशांगलेप ४२८।

(३७) कृमि (Worms)

उदरकृमि और पुरीषज–कृमिकुठार रस २०६। कृमिघ्न क्वाथ ३५६।

आमाशयस्थ कफज और पुरीषज–कृमिमुद्गर रस २०५। कृमिघ्न चूर्ण ३४१।

सूक्ष्म पुरीषज कृमि पर–वंगभस्म ५७। संजीवनी वटी ३०८। पीतल भस्म ११०। काँस्यभस्म १११। वर्त्तलोहभस्म १११। खदिरारिष्ट ३७१।

कृमिजन्य ज्वर–लघुमालनी वसन्त १८५। वंगभस्म ५७।

(३८) गुल्म गोला (Abdominal Tumor)

सब प्रकार के गुल्मों पर–कांकायन वटी ३१४। लवणभास्कर चूर्ण ३३१। गुल्मकालानल रस २४०। अग्निकुमार २०१। क्रव्याद रस २०२। हिंग्वष्टक चूर्ण ३३२ पुनर्नवासव ३८१।

पित्तज–नागभस्म ६५। गुल्मकुठार २३९। प्रवालपञ्चामृत २४०। कुमार्यासव ३६९। रोहितारिष्ट ३८१।

कफज–ताम्र भस्म ४९। लोह भस्म ५३। कुमार्यासव ३६९। लघुशंखद्राव ३८६। शंखद्राव ३८६। जम्भीरीद्राव ३८७। पुनर्नवासव ३८१।

रक्तगुल्म–नागभस्म ६५। गुल्म कुठार २३९। कुमार्यासव ३६९। गोक्षुरादि गुग्गुल ३१४।

सूतिका रोग से उत्पन्न गुल्म–प्रतापलंकेश्वर रस २७९।

कोष्ठदोष शोधनार्थ–नाराचघृत ४१०।

(३९) ग्रहणी संग्रहणी (Chronic Diarrhoea)

सब प्रकार पर हितकर–जीरकादि मोदक ३९२। जातिफलादि वटी १९६।

वात प्रधान नया–निराम है, तो अगस्ति सूतराज १९१। कनक सुन्दर रस १९२। हेमगर्भ पोटली १६८। दशमूलारिष्ट ३६७। हिंग्वष्टक चूर्ण ३३२। पञ्चामृत पर्पटी १५१।

पित्त प्रधान–मंडूर माक्षिक भस्म ७५। प्रवाल पंचामृत २४०। सूतशेखर २६९। महावातराज रस २९२। लोध्रासव ३६८।

पेचिश पाण्डु शोथ सह–दुग्धवटी १९४। महावातराज रस २९२ कुटजारिष्ट ३७६।

शीतज्वर सह संग्रहणी– पञ्चामृत पर्पटी १५१। अभ्रक भस्म ७५।

अम्लपित्तसह संग्रहणी–पञ्चामृत पर्पटी १५१।

कफ प्रधान नया–निराम है जो अगस्ति सूतराज रस १९१। जाति फलादि वटी १९६।

शूलसह–शंखवटी १९५।

आमसंग्रहणी (नया)–ग्रहणी कपाट १९३। लाही चूर्ण १९४। लघुलाही चूर्ण १९५। प्राणदापर्पटी १५३। सूतराज १५७। आनन्दभैरव १८९। क्रव्याद रस २०२। रामबाण रस १९८। कपित्थादि यवागू ३५८। दशमूलारिष्ट ३६७। चींचाभल्लातक वटी ३१५। लवणभास्कर चूर्ण ३३१।

आमसंग्रहणी (जीर्ण)–प्राणदा पर्पटी १५३। रससिन्दूर १३०। कुटजारिष्ट ३७६। लोकनाथ रस २५४। कुटजादि वटी ३२४।

आम और रक्तसह (जीर्ण)–महावातराज रस २९२। पञ्चामृत पर्पटी १५१।

पित्त प्रकोपशमनार्थ–वैडूर्य भस्म ९०। उशीरासव ३७१। बोलपर्पटी १५१।

पित्तोत्पत्ति वृद्धि अर्थ–ताम्रभस्म ४९। पीतलभस्म ११०। हेमगर्भपोटली १६८। रसपर्पटी १४७। ताम्र पर्पटी १४९।

अन्त्रशोथसह संग्रहणी, आँत्रक्षय–सुवर्णभूपति १४१। सुवर्णपर्पटी १४८। हेमगर्भपोटली १६८।

यकृत् प्लीहा विकृति सह (जीर्ण)–ताम्रपर्पटी १४९। (ज्वर है, तो) विजय पर्पटी १५०। पंचामृत पर्पटी १५१।

प्रसव होने के पश्चात् ग्रहणी–सर्वांगसुन्दर रस २८५।

आन्त्रिक सन्निपात के पश्चात् ग्रहणी–लक्ष्मीनारायण रस १७३। लक्ष्मीविलास रस २१४। सूतशेखर २६९।

जीर्णरोग में शक्ति रक्षणार्थ–लोहभस्म ५३। अभ्रक भस्म ७५। नागभस्म ६५।

फिरंग विषज ग्रहणी–आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

(४०) ज्वर-बुखार (Fever)

सामान्य नया ज्वर–ज्वरकेशरी १५९। मृत्युञ्जय १७०। कासीसगोदन्ती भस्म ८२। गोदन्ती भस्म ८३। महासुदर्शन चूर्ण ३२६।

दुष्टजलवायु-जनित–दुर्जलजेता रस १६७। जयमंगल रस १६७। त्रैलोक्यचिन्तामणि १६५। गदमुरारी १७१। अमरसुन्दरी २३०। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। संजीवनी वटी ३०८। ज्वरारि वटी ३०९। किरातादि अर्क ३८८।

दोष पाचनार्थ–प्रवालपिष्टी ९४। रत्नगिरी रस १६०। गदमुरारि रस १७१। कंटकार्यादि क्वाथ ३५२। ज्वरहर अर्क ३८८। किरातादि अर्क ३८८। अमृत चूर्ण ३२७।

वातज्वर–विश्वतापहरण १५६। सूतराज रस १५७। त्रिभुवनकीर्ति १६३। मृत्युञ्जय रस १७०। महाज्वरांकुश १५९।

आक्षेपवातसह ज्वर–स्मृतिसागर २९९।

पित्तज्वर–गोदन्ती भस्म ८३। प्रवालपिष्टी ९४। ताप्यादि लोह २०६। षडंगपानीय क्वाथ ३५८। शुभ्राभस्म ११४। अमृताष्टक क्वाथ ३५०।

कफज्वर–अभ्रक भस्म (काससह ज्वर)७५। हरताल भस्म १०३। मल्ल भस्म १०६।

शम्बुक भस्म ११३। मल्ल पर्पटी १५४। शीतभंजी रस १५६। अश्वकंचुकी रस १६१। आनन्द भैरव रस १८९। सूतराज रस १५७। मृत्युञ्जय रस १७०। नाग गुटिका ६१०। महाज्वरांकुश १५९। त्रिभुवन कीर्ति १६३। सुवर्ण वंग १३६। अर्कमूल त्वक्। संजीवनी वटी ३०८।

वात कफ ज्वर–आरग्वधादि कल्क ३५८।

वात पित्त ज्वर–पञ्चमूलादि कषाय ३५२।

पित्त श्लेष्म ज्वर–कण्टकार्यादि क्वाथ ३५२। नागरादि क्वाथ ३५२।

द्वन्द्वज–ज्वरकेशरी १५९। त्रिभुवनकीर्ति १६३। लक्ष्मीविलास १७९।

अश्वकंचुकी १६१। महाज्वराँकुश १५९। वातपित्तज पंचमूलादि क्वाथ ३५२। मधुकादि हिम ३५८। पटोलादि क्वाथ ३५७। वात-कफज-आरग्वधादि कल्क ३५८। नागरादि क्वाथ ३५२। त्रिभुवनकीर्ति १६३। मृत्युञ्जय रस १७०। पित्त कफज-अमृताष्टक क्वाथ ३५०। कण्टकार्यादि क्वाथ ३५२। नागरादि क्वाथ ३५२।

विषमज्वर (Malaria Fever)-शम्बूकभस्म ११३। कासीस गोदन्ती भस्म ८२। त्रिभुवनकीर्ति १६३। मृत्युञ्जय १७०। विश्वतापहरण १५६। महाज्वरांकुश १५९। लक्ष्मीनारायण १७३। मलेरिया वटी १८०। ज्वरमुरारि गुटिका ३२१। अमरसुन्दरी वटी २३०। अमृत चूर्ण ३२७। अमृतारिष्ट ३७३। किरातादि अर्क ३८८। ज्वरमुरारि अर्क ३८९। नागरादि क्वाथ ३५२।

विषमज्वर शीतसह-हरताल भस्म १०३। मल्ल भस्म १०६। शीतभंजी १५६। नारायण ज्वरांकुश १५९। मलेरिया वटी १८०। ज्वरमुरारि गुटिका ३२१। ज्वरमुरारि अर्क ३८९। वातेभकेसरी २९४। मल्लादि वटी १८१। भूतभैरव रस १८१। महाज्वरांकुश १५९।

जीर्ण वातपित्तात्मक-ताप्यादि लोह २०६। चन्दनादि लोह १८१। अमृतारिष्ट ३७३। संशमनी वटी १८८।

जीर्ण रसगत पित्तज्वर-गदमुरारि १७१। सुवर्णमालिनी बसंत १८१ लघुमालिनी १८५। अश्विनीकुमार रस २४५।

बाह्योपचार-माहेश्वर धूप ४३८। अपराजित धूप ४३८।

कृष्ण ज्वर जीर्ण-अष्टमूर्ति रसायन १४२।

परिवर्तित ज्वर (Relapsing Fever)-हरताल भस्म १०३। हरताल गोदन्ती भस्म ११३। मल्लसिंदूर १३२। अष्टमूर्ति रसायन १४२। लक्ष्मीनारायण रस १७३। चन्दनादि लोह १८१। हरताल पुष्प २८६। ज्वरमुरारि अर्क ३८९।

पूयजन्य ज्वर-ताप्यादि लोह २०६। शिलाजीत ३२।

शीतला, छोटी माता और अन्य संक्रामक ज्वर-त्रिभुवनकीर्ति रस १६३। प्रवालपिष्टी ९४।

कफज सन्निपात-मलसिंदूर १३२। त्रिभुवनकीर्ति १६३।

वात कफ प्रधान सन्निपात(Influenza)-सूतराज १५७। महावात विध्वंसन २३०। त्रिभुवनकीर्ति रस १६३। पञ्चवक्त्र रस १६९। मृत्युञ्जयरस १७०। कालकूट १७२। मल्लसिंदूर १३२। तगरादि कषाय ३५९।

हृदय रक्षणार्थ-लक्ष्मीविलास २१४। ब्राह्मी वटी १८०। पूर्णचन्द्रोदय रस १२९। हेमगर्भपोटली रस १६८।

आंत्रिक सन्निपात-मधुरा (२१ दिन का मुद्दती ताप Typhoid) लक्ष्मीनाराण रस १७३। कस्तूरीभैरव रस १५८। **सूतशेखर रस २६९।** (पित्ताधिक्य पर)-संजीवनी वटी ३०८। पुनः प्रकुपित्त-महासुदर्शन अर्क ३९०।

मधुरा का विष बाहर निकालना-मधुरान्तक वटी १७५। मधुरज्वरान्तक क्वाथ ३५३। प्रवालपिष्टी ९४। शुभ्राभस्म ११४।

शुष्क कास-प्रवालपिष्टी ९४। सूतशेखर २६९।

दुष्ट रक्त-जन्य वातप्रकोप-ताप्यादि लोह २०६।

कफ-प्रकोप हो तो-हरतालगोदन्ती भस्म ११३।

वातप्रधान हो तो- अष्टमूर्ति रसायन १४२।

हृदय रक्षणार्थ-ब्राह्मीवटी १८०। अभ्रक भस्म ७५। प्रवाल ९४ और रससिन्दूर १३०। लक्ष्मीविलास २१४।

निद्रानाश-सूतशेखर २६९।

अतिसार और बहुमूत्र-रौप्य भस्म ४७।

मधुरा में प्रलाप-चन्द्रकला रस २११।

चित्तविभ्रम और भयंकर प्रलाप-महावातविध्वंसन २३०। प्रवालपिष्टी ९४। तगरादि कषाय ३५९।

कोष्ठ शूल, संधिवात, मन्दप्रलाप-बृहद्योगराज गूगल २३३। सूतशेखर २६९।

श्वसनक सन्निपात-फुफ्फुस सन्निपात(Pneumonia)-अभ्रकभस्म ७५। मल्ल भस्म १०६। हरताल गोदन्ती भस्म ११३। **कफ बाहर निकालने के लिये-समीरपन्नग** १३८। कफरूपान्तरार्थ-पंचसूत रस १४३। **कफशोषणार्थ-मल्लसिंदूर** १३२। त्रैलोक्यचिन्तामणि १६५। वातेभकेशरी रस २९४। महावातविध्वंसन २३०। शीतभंजी रस १५६। सूतराज रस १५७। महावातराज रस २९२। मल्लपुष्प १८०। कालारि रस २९४। अचिन्त्यशक्ति रस २९५। शुभ्राभस्म ११४। (त्रिभुवनकीर्ति रस+अभ्रक भस्म+श्रृंग भस्म) पञ्चवक्त्र रस १६९। कुटजारिष्ट ३७६।

फुफ्फुसदाह शमनार्थ-लक्ष्मीविलास रस अभ्रकयुक्त १७६।

लगाने के लिये-पार्श्वशूलनाशक लेप ४३०।

हृदय उत्तेजनार्थ-संचेतनी १७५। रससिन्दूर १३०। हेमगर्भपोटली रस २१४। लक्ष्मीविलास १७६, २१४।

विविध सन्निपात-गोदन्ती ८३। हरताल गोदन्ती ११३। अमरसुन्दरी २३०। संजीवनी ३०८। महाज्वरांकुश १५९। सूतराज १५७।

सन्निपात में कफप्रकोप-पूर्णचन्द्रोदय १२९। मल्लसिंदूर १३२।

सन्निपात में वाताक्षेप-पंचसूत १४३।

वात कफप्रकोप-समीरपन्नग १३८। पञ्चवक्त्र १६९। अष्टादशांग क्वाथ ३५०। कालारि रस २९४। वातेभकेसरी २९४।

वातपित्त प्रकोप-सुवर्णभूपति रस १४२। सूतशेखर २६९।

पित्तप्रकोप-चन्द्रकला २११। प्रवालपिष्टी ९४।

शीतांग सन्निपात-महामृत्युञ्जय १७१। हरतालभस्म १०३। मल्ल भस्म १०६। शीतभञ्जी १५६। सूतराज रस १५७। मल्लसिंदूर १३२। अचिन्त्य शक्ति रस २९६। कालकूट रस १७२।

शीतल स्वेद आना-लक्ष्मीविलास १७६। हेमगर्भ पोटली ११४।

सन्धिक सन्निपात-महावातसिध्वंसन २३०। कालकूट १७२।

ग्रन्थिक सन्निपात (प्लेग)–अश्वकंचुकी रस १६१। महामृत्युञ्जय १७१। कालकूट १७२। महावातविध्वंसन २३०।

बाह्योपचार–प्रतिसारणीय क्षार ४३०।

बेहोशी शमनार्थ–संचेतनी गुटिका १७५। हरतालपुष्प २८६। सूचिका भरण १५८। हेमगर्भपोटली रस २१४। श्वासकुठार रस २१८।

निद्रानाश और प्रलाप पर–कस्तूरी भैरव १५८। निद्रोदय रस २२९। सर्पगन्धादि गुटिका ३२१।

हृदय रक्षणार्थ–त्रैलोक्यचिंतामणि १६५। पूर्णचन्द्रोदय १२९। लक्ष्मीविलास २१४। अष्टादशांगक्वाथ ३५०। संचेतनी वटी १७५।

कफवृद्धि, हिक्का और वमन–अष्टाङ्गवलेह ३९६। विजयापुष्पाद्यवलेह ३९९। हिक्कान्तकरस २२१। सूतशेखर २६९। अष्टादशाँग क्वाथ ३५०।

बाह्योपचार–दशांगधूप ४३८। (शीतस्वेद पर) विषादि उद्धूलन ४४०। भूनिम्बादि उद्धूलन ४४०। प्रलापहर लेप ४३१। अञ्जनरस ४२६। मूर्च्छान्तक नस्य ४४०।

जीर्ण सन्निपात–गदमुरारी १७१।

जीर्ण ज्वर–शिलाजीत ३२। सुवर्णभस्म ४४। कासीसगोदन्ती भस्म ८२। तार्क्ष्य (पन्ना) भस्म ८९। वैक्रान्त भस्म ९१। मल्लभस्म १०६। रससिंदूर १३०। अभ्रक भस्म ७५ और श्रृङ्गभस्म १०७। रस माणिक्य २६७। सुवर्णमालिनी १८१। लघुमालिनी बसंत १८५। मधुमालिनी बसंत १८४। कामदुधा रस २२३। षडङ्गपानीय ३५८। संशमनी वटी १८८। कनकासव ३७२। जीवन्त्यादि घृत ४१२। पर्पटाद्यरिष्ट ३८२।

राजयक्ष्मा में ज्वर–पञ्चामृत रस ३०१। कामधेनु रस ३०२। जयमंगल रस १६७। चतुर्मुख रस ३०४। सितोपलादि अवलेह ३९५।

जीर्ण ज्वर शीतसह–मल्लभस्म १०६। हरतालभस्म १०३। तालसिन्दूर १३४। विश्वतापहरण १५६। शीतभंजी १५६। नारायणज्वरांकुश १५९। त्रैलोक्यचिन्तामणि १६५। जयमंगल १६७। मलेरिया वटी १८०।

मालिश के लिये–लाक्षादि तैल ४१९।

धातुगत ज्वर–सितोपलादि चूर्ण ३२८। बृहत् सितोपलादि ३३०। अमृतारिष्ट ३७३। संशमनी वटी १८८। चन्दनादि लोह १८१।

मज्जागत ज्वर– प्रवालपिष्टी ९४।

(४१) ज्वरातिसार–ज्वर और दस्त

सर्व प्रकार पर हितकर–प्राणदापर्पटी १५३। सूतराज १५७। नागरादि क्वाथ ३५२। सिद्धप्राणेश्वर रस १९८।

अन्त्रशोथज–रसपर्पटी १४७। जसदभस्म ६३।

वातप्रधान–

वातपित्तात्मक–सूतशेखर २६९।

वमन सह–

सूतिका को ज्वरातिसार–लक्ष्मीनाराण रस १७३। जीरकाद्यरिष्ट ३७९। सूतशेखर २६९। सिद्धप्राणेश्वररस १९८।

(४२) तृषा–प्यास

रसादि चूर्ण २२२। कुमुदेश्वर २२२।

आमज तृषा–कुमुदेश्वर रस २२२।

मधुमेहज तृषा–जातिफलादि वटी २४८।

(४३) त्वचारोग–खुजली आदि

वंगभस्म ५७। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। ताप्यादि लोह २०६। गन्धक रसायन २२५। कर्पूरधारा ३८८। विरेचन चूर्ण ३३४। चर्मरोगनाशक तैल ४१८। आरोग्यवर्द्धनी २५०। समीरपन्नग १३८। अमृतारिष्ट ३७३। खदिरारिष्ट ३७१।

उपदंश जनित–व्याधिहरण रस १४३। अष्टमूर्ति रसायन १४०।

अण्डकोष की खाज–चर्मरोगनाशक तैल ४१८। कासीसादि लेप ४३१।

(४४) दन्तरोग–दांत के रोग

मसूढ़े की निर्बलता–दन्तप्रभाकर मंजन ३३६।

पारदविषज मसूढ़े की निर्बलता–शुभ्राभस्म ११४।

दन्तकृमि–बृहत्यादि क्वाथ ३५७। कर्पूरधारा अर्क ३३८। कर्पूरासव ३८३। कृमिघ्न धूम्र ४३८। दन्तदोषहर मंजन ३३६। फिटकरी ३७।

दन्तवेष्ट–(Pyorrhoea) गन्धकरसायन २२५। आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

(४५) दद्रु–दाद (Ringworm)

दद्रुहर लेप ४३१। दद्रुदमन मलहम ४३५। गन्धक रसायन २२५। कर्पूरधारा ३८८। नारसिंह चूर्ण ३३८। खदिरारिष्ट ३७१। समीरपन्नग १३८। भृंगराजासव ३८२। आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

(४६) दाह

गन्धकरसायन २२५। राजावर्त्तभस्म ९१। सितोपलादि चूर्ण ३२८। बृहत् सितोपलादि चूर्ण ३३०। चन्दनादिचूर्ण ३४१। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९।

ज्वर में दाह–जसद भस्म ६३। प्रवालपिष्टी ९४। सूतशेखर २६९ अमृताष्टक क्वाथ ३५०। स्फटिकमणि भस्म ११६।

शराबी की दाह–सूतशेखर २६९। राजावर्त्त रस २२३। मुक्तापिष्टी ९२। राजावर्त्त पिष्टी ९१। दूर्वाद्य घृत ४१५।

सर्वांगदाह में दाह कण्डूसह–चन्द्रकला रस ४११। उसीरासव ३७१।

सेन्द्रिय विषजन्य दाह और उदरवात–कासीस भस्म ८१।

उष्णकाल में दाह–मुक्तापिष्टी ९२। प्रवालपिष्टी ९४। कामदुधारस २२३। रसादिचूर्ण २२२। पर्पटादिक्वाथ ३५५। चन्दन का शर्बत ४०६। गुलाब का शर्बत ४०६। आंवले का मुरब्बा ४०५। चन्दनादि अर्क ३८६। गुलकन्द ३९६।

(४७) धातुक्षीणता-निर्बलता-नपुंसकता

शुक्राशय की निर्बलता–प्रवालपिष्टी ९४ और वंगभस्म ५७। सुवर्ण वंग १३६। त्रिवंगभस्म ६२। नागभस्म ६५। मृगनाभ्यादिवटी २८९। शुक्रमातृका २८७। वीर्यशोधन वटी २९०। वीर्यशोधक चूर्ण ३३७। विजयापुष्पाद्यवलेह ३९९। कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म ११३। लबूब कबीर ४०४।

सप्तधातु की क्षीणता और शारीरिक निर्बलता–सुवर्णमालिनी वसंत १८१। शिलाजीत ३२। नागभस्म ६५। लक्ष्मीविलास १७६,१७९,२१४। रससिन्दूर १३०। अभ्रकभस्म ७५। नारसिंह चूर्ण ३३८। कासीस और लौहभस्म ८१, ५३। च्यवनप्राशावलेह ३९३। नारसिंह चूर्ण ३३८। कासीस और लौहभस्म ८१, ५३। च्यवनप्राशावलेह ३९३। बादाम पाक ३९८। ब्राह्मी वटी १८०। सशंमनी वटी १८८। मधुमालिनी १८४।

लघुमालिनी वसंत १८५। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। कामधेनु रस ३०२। भृंगराजासव ३८२। अश्वगन्धारिष्ट ३७३। त्रिफलारिष्ट ३७३। लबूब कबीर ४०४।

अण्डकोष की निर्बलता से नपुंसकता–सुवर्णभस्म ४४। नागभस्म ६५ और शीलाजीत ३२। रौप्यभस्म ४७। वंग भस्म ५७। अभ्रकभस्म ७५। लोहभस्म ५३। वज्रभस्म ८६। वैक्रान्तभस्म ९१। लक्ष्मीविलास २१४। पूर्णचन्द्रोदय १२९। पुष्पधन्वा २८८। वसन्तकुसुमाकर २४३। बृहद्वंगेश्वर २४६। अश्वगन्धारिष्ट ३७३। मल्ल तैल ४१६। अपूर्वतिला ४१७। मल्लसर्पि ४१८। लिंग तैल ४१८। कौंचपाक ३९२। सालमपाक ३९८। कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म ११३। वृष्य वटी २९२।

सुजाकजन्य नपुंसकता–सुवर्णवंग १३६।

मधुमेहादि से कोथ और निर्बलता– नागभस्म ६५। ताप्यादि लोह २०६। शिलाजीत ३२। महावातराज रस २९२। पूर्णचन्द्रोदय १२९। प्रमेहगजकेशरी २९६। माणिक्य पिष्टी ८९।

रक्तस्राव से निर्बलता–लोहभस्म ५३। लबूब कबीर ४०४।

मस्तिष्क की निर्बलता–पित्तप्रधान–मुक्तापिष्टी ९२। कामदुधा २२३। वसन्तकुसुमाकर २४३। खमीरासंदल ४०४। अतरीफल मुलैयन ४०४। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९, प्रवालपिष्टी ९४। वृष्यवटी २९२। लबूबकबीर ४०४।

मस्तिष्क की निर्बलता वातप्रधान–सुवर्ण मालिनी बसन्त १८१।

रक्त की कमी से हो तो–मण्डूर भस्म ७२ अथवा लोह भस्म ५३। स्फटिकमणि भस्म ११६।

शारीरिक कृशता, धातुक्षय–अभ्रक भस्म ७५। भृंगराजासव ३८२। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। लक्ष्मीविलास रस स्वर्णयुक्त २१४। वसन्तकुसुमाकर रस २४३। सुवर्णमालिनी १८१। च्यवनप्राशावलेह ३९३। वृष्यवटी २९२। लबूब कबीर ४०४।

वातवाहिनी की विकृति और मानसिक निर्बलता–अभ्रक भस्म ७५। बादामपाक ३९८। दवाउलमुश्क ४००। खमीरे गावजवां अम्बरी ४०३। च्यवनप्राशावलेह ३९३।

स्तम्भनार्थ–कामिनीविद्रावण २८७। वीर्यस्तम्भन २९२। शुक्रस्तम्भन गुटिका ३१३। विजयापुष्पाद्यवलेह ३९९। वृष्यवटी २९२। लबूब कबीर ४०४।

(४८) नासारोग-नाक के रोग

रक्त गिरना–सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। चन्द्रकला रस २११। कामदुधा रस २२३। सूतशेखर २६९। मुक्ताभस्म ९१। प्रवालपिष्टी ९४। लघुसूतशेखर २७४।

नासाव्रण–गन्धक रसायन २२५।

पीनस–व्याघ्री तैल ४१६। नासाकृमिहर घृत ४१५।

(४९) निद्रानाश-नींद न आना

राजवर्त भस्म ९१। मुक्तापिष्टी ९२। निद्रोदय रस २२९। सूतशेखर २६९। द्राक्षासव ३७५, महाद्राक्षासव ३८५, विजयापुष्पाद्यवलेह ३९९।

मानसिक निर्बलता से–वसन्तकुसुमाकर २४३। द्राक्षासव ३७५।

वृष्कविकार जनित–सर्पगन्धादि गुटिका ३२१।

क्विनाइन से निद्रानाश–सर्पगन्धादि गुटिका ३२१।

(५०) नेत्ररोग-आंख के रोग

नेत्रों के सब रोगों पर–अतरीफल कश्नीजी ४०४। त्रिफला चूर्ण ३३३। त्रिफलादि घृत ४१०। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। स्फटिकमणि भस्म ११६।

दृष्टि की निर्बलता–नेत्रसुदर्शन अर्क ४२७। शुद्धताम्रक ३०। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। स्फटिकमणि भस्म ११६। गन्धक रसायन २२५। नेत्रप्रभाकर अञ्जन ४२५। अश्वकंचुकी १६१।

नेत्रशूल–अक्षि दबावज अभिष्यन्द (Glaucoma) रौप्यभस्म ४७। शम्बूक भस्म ११३। अश्वकंचुकी १६१। नेत्रशूलान्तक मोदक ३९३।

रक्तदबाववृद्धिजन्य–आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

पित्तप्रधान–रोगों पर–सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। जसद भस्म ६३। काँस्यभस्म १११। वर्त्तलोहभस्म १११। कासीसभस्म ८१। मुक्तापिष्टी ९२।

उपदंश पूयाभिष्यंद आंख में से पीप आना–गन्धक रसायन २२५। उपदंश सूर्य २६२। लगाने के लिये रसांजनादि लेप ४३१।

पूयमेहज दृष्टिनाश–गन्धक रसायन २२५।

नेत्रदाह लाली और अभिष्यंद (Conjuctivitis)–कासीस-भस्म ८१। शुभ्राभस्म ११४। नेत्रबिन्दु ४२६। दार्व्यादिरसक्रिया ४२७। पथ्यादि अञ्जन ४२७। रसाञ्जनादि लेप ४३१। बबूलादि स्वरस ४२६। सुवर्णभस्म ४४। मुक्तापिष्टी ९२। प्रवालपिष्टी ९४ और सुवर्णमाक्षिक

[illegible] ११६।

तिमिर, धुन्ध आदि–कृष्ण नेत्राञ्जन ४२५। चन्दनादिवर्ति ४२६। [illegible] ११६।

[illegible] ४२६।

जीर्णपोथकी (Chronic Trachoma)–लघुमालिनी वसंत १८५। कृष्णनेत्रांजन ४२५।

पारद विषज नेत्रदाह–गन्धक रसायन २२५।

पूयशुक्रज अभिष्यंद–गन्धक रसायन २२५।

कुकूणक (Phlyctenule) रक्तनेत्रांजन ४२६। पुष्पहरअञ्जन ४२७।

शुक्र, फूला, जाला, मांसवृद्धि, अर्बुदक्षत (Corneal ulcer) शंखभस्म १०१। रसकेश्वर गुटिका ४२६। चन्द्रोदयावर्ति ४२६। रक्तनेत्रांजन ४२६। कृष्ण नेत्रांजन ४२५। पुष्पहर अञ्जन ४२७।

नूतन काचबिन्दु (Catract)–अतरीफल कशनीजी ४०४। त्रिफलादिघृत ४१०। नेत्रसुदर्शन अर्क ४२७।

[illegible] ४२९।

(५१) पलित (बाल सफेद हो जाना)

चाँदी का खिजाब ३९०। चन्दनादि तैल ४१६। नारसिंह चूर्ण ३३८। [illegible] ३७३। पूर्णचन्द्रोदय रस १२९। [illegible] २४३। [illegible] ३८२।

(५२) प्रतिश्याय-जुकाम-नजला (Coryza)

नया–अग्निकुमार रस २०१। कज्जली २५ (नागरबेल के पान में)। अश्विनीकुमार रस २४५। नागगुटिका ३१०। आनन्दभैरस रस १८९। लक्ष्मीविलास अभ्रकयुक्त १७६।

अजीर्ण जन्य–धनञ्जय वटी ३१०। आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

जीर्ण–लक्ष्मीविलास १७९। समीरगज केसरी २३२।

बारम्बार प्रतिश्याय–रससिन्दूर १३० और अभ्रकभस्म ७५।

सूंघने के लिये–नजलानाशक नस्य ४३९। कलिंगादि नस्य ४३९।

(५३) प्रभापात (लू लगना)

प्रवालपिष्टी ९४। मुक्तापिष्टी ९२। मधुकादि हिम ३५८। चन्दन का शर्बत ४०६।

(५४) प्रमेह

सब प्रकार के प्रमेह–त्रिफला चूर्ण ३३३। न्यग्रोधादि चूर्ण ३४७। चन्द्रप्रभा वटी ३११। लोध्रासव ३६८। वसन्तकुसुमाकर २४३। बृहद् वङ्गेश्वर २४६।

वात प्रधान–रौप्यभस्म ४७। शिलाजीत ३२। ताप्यादि लोह २०६। बृहद् योगराज गूगल २३३। अश्वगन्धारिष्ट ३७३।

वृद्धावस्था में हो, तो–वंगभस्म ५७। कांस्यभस्म १११। हेमनाथ रस २४२। प्रमेहान्तक वटी २४७।

शुक्रक्षय जन्य–वंगभस्म ५७। सुवर्णवंङ्ग १३६। बृहद् वंगेश्वर २४६। सुवर्ण भूपति १४१। लक्ष्मीविलास रस २१४। शुक्रमातृका वटी २८७। पुष्पधन्वा रस २८८। पञ्चामृत रस ३०१। लबूब कबीर ४०४।

शुक्रमेह–चन्दनासव ३७८। प्रमेहान्तक वटी २४७। शिलाजीत ३२।

लालाप्रेह–प्रमेहगज केसरी २९६।

इक्षुमेह–चविकासव ३८०। जातिफलादि वटी २४८। वंगभस्म ५७।

वातपित्त–प्रकोपसह–जीर्णप्रमेह–योगेन्द्र रस ३०३।

आमप्रकोपसह–बृहद् योगराज गूगल २३३।

अपचन जन्य–आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

पित्तप्रधान–गन्धक ३०। सुवर्णभस्म ४४। रौप्य भस्म ४७। लोह भस्म ५३। जसदभस्म ६३। ताप्यादि लोह २०६। सुवर्णमाक्षिक ६९। राजावर्त भस्म ९१। प्रमेहान्तकवटी २४७। मेहान्तक रस २९७। पञ्चामृत रस ३०१। अश्विनीकुमार रस २४५। कामधेनु रस ३०२। चन्द्रकला रस २११। प्रवाल पञ्चामृत रस २४०। उसीरासव ३७१।

कफप्रधान–शिलाजीत ३२। लोहभस्म ५३। नवायस चूर्ण २१०। आनन्द भैरव रस १८९। बोलबद्ध रस २००। त्रैलोक्यचिन्तामणि १६५। प्रमेहान्तक वटी २४७। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। प्राणदापर्पटी १५३। चन्द्रप्रभा वटी ३११।

मांस खाने वाले को–ताम्रभस्म ४९। पीतल भस्म ११०। विजय पर्पटी १५०।

मधुमेह–शिलाजीत ३२। नागभस्म ६५। जसदभस्म ६३। सुवर्ण वङ्ग १३६। अभ्रक भस्म ७५। हेमनाथ रस २४२। वसन्तकुसुमाकर २४३। जातिफलादि वटी २४८। न्यग्रोधादि चूर्ण ३४७। महावातराज रस २९२। प्रमेह गज केसरी २९६। चविकासव ३८०।

पूयमेह (सुजाक Gonorrhoea) नया–संगजराहत भस्म ११०। शुभ्राभस्म ११४। मूत्रकृच्छांतक २४२। प्रमेहान्तक वटी २४७। उष्णवातघ्न चूर्ण ३३७। अरविन्दासव ३८३।

पूयमेह (जीर्ण)–रौप्यभस्म ४७। नागभस्म ६५। सुवर्ण वंग १३६। गन्धक रसायन २२५। हरिशंकर रस २४६। धात्री भल्लातक वटी ३१६। देवदार्वाद्यारिष्ट ३८४। रक्तशोधकारिष्ट ३८४। सारिवासव ३८१। चन्दनासव ३७८। अमृतारिष्ट ३७३। अरविन्दासव ३८३।

मूत्रविरेचन–मूत्रशोधक क्वाथ (द्रव) ३५७। मूत्र विरेचन चूर्ण ३३७।

पूय प्रमेह जन्य संधिवात, शोथ, पूयाभिष्यंद आदि–सुवर्ण वंग १३६। धात्री भल्लातक वटी ३१६।

(५५) प्रमेह-पिटिका (Carbuncle)

जातिफलादि २४८। हेमनाथ २४२। वसन्तकुसुमाकर २४३। अदीठ का मलहम ४३५। महावातराज रस २९२। मेहान्तक रस २९७। सारिवासव ३८१।

(५६) प्रवाहिका - पेचिश (Dysentery)

आमसह-प्राणदापर्पटी १५३। जातिफलादिवटी १९६। कुटजारिष्ट ३७६।

रक्त और आमसह-जातिफलादि वटी १९६। कर्पूर रस १९०। शंखोदर रस १९६।

रक्त पूयसह-जातिफलादि वटी १९६। प्रवाहिकारिपु चूर्ण ३३५।

जीर्णज्वर आम और रक्तसह-पञ्चामृत पर्पटी १५१।

निराम प्रवाहिका-अगस्ति सूतराज १९१। जातिफलादि वटी १९६। कुटजावलेह ३९६।

(५७) पाण्डु (Anaemia)

वातज-मानसिक चिन्ताजन्य-रौप्यभस्म ४७। अभ्रक भस्म ७५। नागभस्म ६५। अभ्रकपर्पटी १५४। सुवर्णभूपति १४१। कामधेनुरस ३०२।

पित्तज पाण्डु और हलीमक-लोहभस्म ५३। ताक्ष्र्यभस्म ८९। जसदभस्म ६३। मण्डूरभस्म ७२। त्रिफलारिष्ट ३७३। ताप्यादिलोह २०६। बोलपर्पटी द्वितीय विधि १५१।

कफप्रधान-यकृतप्लीहावृद्धिजन्य-ताम्रभस्म ४९। पीतल भस्म ११०। त्रैलोक्य चिन्तामणि रस १६५। नवायस चूर्ण २१०। दशमूल क्वाथ ३४९। लक्ष्मीविलास २१४।

यकृतक्षीणताजन्य पाण्डु-लक्ष्मीविलास स्वर्णयुक्त २१४। पूर्णचन्द्रोदय रस १२९।

निर्बलता या शुक्रक्षय जन्य पाण्डु-बंगभस्म ५७। नागभस्म ६५ और लोहभस्म ५३। वज्रभस्म ८६। वैक्रान्त भस्म ९१। महामृगांक २१३। लक्ष्मीविलास २१४। त्रिफलारिष्ट ३७३। द्राक्षासव ३७५।

मृतभक्षणजन्य-लोहभस्म ५३। ताप्यादिलोह २०६। मण्डूर भस्म ७२ और लघुमालिनीवसन्त १८५। मृदविरेचन रस २८५।

कृमिजपाण्डु-ताप्यादिलोह २०६। मृदविरेचन रस २८५।

हारिद्रक (स्त्रियों के लिए पाण्डु Chlorhsis) मण्डूर भस्म ७२। लोहभस्म ५३। ताप्यादिलोह २०६। अभ्रकभस्म ७५ और लोहभस्म ५३। बोलपर्पटी द्वितीय विधि १५१। लघुमालिनी वसन्त १८५। मेहान्तकरस २९७। कुमार्यासव ३६९।

रक्तस्राव रजःस्राव या रक्ताणु की कमी से पाण्डु-कासीस ८१ और लोहभस्म ५३। गोमेदमणि ८९। मेहान्तकरस २९७। त्रिफलारिष्ट ३७३।

गर्भाशय दोष से पाण्डु-बोलपर्पटी १५१। सुवर्णमालिनीवसन्त १८१। प्रदरान्तक लोह २७६। ताप्यादि लोह २०६।

सेन्द्रियविष और विष्टब्धाजीर्ण जन्य-आरोग्यवर्द्धिनी २५०। चविकासव ३८०। अभयारिष्ट ३७७।

ज्वर के पश्चात् पाण्डु-लघुमालिनीवसन्त १८५। ताप्यादिलोह २०६। नवायस चूर्ण २१०। सुवर्णमालिनी १८१। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९।

शोथसह पाण्डु-तक्रमण्डूर २५६। पुनर्नवा मण्डूर २५८। दुग्धवटी १९४। मेहान्तकरस २९७।

अतिसारजन्य पाण्डु-लोहपर्पटी १५०। सुवर्णपर्पटी १४८।

पाण्डुरोग में स्पन्दन वृद्धि-उशीरासव ३७१।

(५८) पामा-कच्छू-खुजली (Itch)

लघुमञ्जिष्ठादि क्वाथ ३५१। गन्धकरसायन २२५। खदिरारिष्ट ३७१। अमृतारिष्ट ३७३।

लगाने के लिये-कंकुष्ठादिलेप ४३०। पामाहरमलहम ४३४। दशांगलेप ४२८।

(५९) पित्तवृद्धि

गिलोयसत्व २४। मुक्तापिष्टी ९२। प्रवालपिष्टी ९४। लोहभस्म ५३। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। मण्डूर भस्म ७२। गुलकन्द ३९६। सूतशेखर २६९। च्यवनप्राशावलेह ३९३। पर्पटाद्यरिष्ट ३८२।

(६०) प्लीहावृद्धि (उदर रोग में देखें)

(६१) बद्ध कोष्ठ (आनाह मे देखें)

(६२) बहुमूत्र-मूत्रातिसार (Ployurea)

थोड़ा - थोड़ा पेशाब अनेक बार होना-जसदभस्म ६३। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। अभ्रक भस्म ७५। हेमनाथ रस २४२। पञ्चामृत रस ३०१। बृहद् वंगेश्वर रस २४६। अश्विनीकुमार रस २४५। बृहदधात्रीघृत ४१३। माजूनफिलासफा ४०१। शिलाजीत ३२। चन्द्रप्रभावटी ३११। प्रमेहान्तक वटी (दूसरी विधि) २४७।

वृद्धावस्था की निर्बलता पर-माणिक्य रस १३५।

मूत्रोत्पत्ति अधिक होती हो तो-बंगभस्म ५७। नागभस्म ६५। जातिफलादि वटी (मधुमेह) २४८।

(६३) बालरोग-बालकों के रोग

ज्वर ताप-गोदन्ती भस्म ८३। ज्वरकेसरी १५९। रत्नगिरी रस १६०। चन्द्रशेखर २८४। प्रवालपिष्टी ९४। बालसंजीवनी २८३। बालरक्षक सोगठी ३१८।

जीर्ण ज्वर-सुवर्णमालिनी १८१। लघुमालिनी वसंत १८५। बालार्कगुटिका २८४। बालरक्षक तैल ४२१।

दांत आने पर अतिसार-कनकसुन्दर १९२। दन्तोद्भेद गदान्तक २८४। प्रवालपिष्टी ९४।

अतिसार और प्रवाहिका-पञ्चसूत १४३। सर्वांगसुन्दर २८५। बालार्क गुटिका २८४। बालसंजीवन रस २८३। माणिक्यरसादि वटी २८६।

बालबन्धु अर्क ३८६। बालअतिसारहर चूर्ण ३४३। बालमित्र चूर्ण दूसरी विधि ३४३।

रक्तातिसार–बालमित्रचूर्ण (प्रथम विधि) ३४३। बालअतिसारहरचूर्ण ३४३।

ग्रहणी–सर्वाङ्गसुन्दर रस २८५। कनकसुन्दर १९२। बालमित्र चूर्ण (तीसरी विधि) ३४३। ग्रहणीकपाट रस (दूसरी विधि) १९३।

मलावरोध ओर अफारा–बालरक्षक सोगठी ३१८।

कास और श्वास–माणिक्यरसादि वटी २८६। कुमारकल्याण रस २८१। बालार्क गुटिका २८४। कुटजारिष्ट ३७६। कुमार्यासव ३६९। कफ प्रकोप द्राक्षासव ३७५।

कालीखाँसी–(Whooping cough) प्रवालपिष्टी ९४। शुभ्रा भस्म ११४। श्रृंगभस्म १०७। हरतालगोदन्तीभस्म ११३। कामदुधारस २२३। बालघोरकासघ्न चूर्ण ३४२। द्राक्षासव ३७५।

यकृत्प्लीहा वृद्धि–अश्वकंचुकी १६१। लघुमालिनी वसन्त १८५। मण्डूर भस्म ७२। बालमित्र चूर्ण (तीसरी विधि) ३४३।

वमन कै–बालसञ्जीवन २८३। बालार्क गुटिका २८४। चन्द्रशेखर २८४। बालबन्धु अर्क ३८६।

उदरशूल–मणिक्य रसादिवटी २८६। चन्द्रशेखर २८४।

उपदंशज त्वग्रोग–अष्टमूर्ति रसायन १४२। व्याधिहरण रस १४३। मल्लसिंदूर १३२।

रोमान्तिका–(Measles) त्रिभुवनकीर्ति रस १६३।

बार–बार शिशुओं की १–३ वर्ष में मृत्यु हो जाना–गर्भपाल रस २७८। बनप्सा शर्बत ४०६।

शारीरिक निर्बलता–प्रवालपिष्टी ९४ और मण्डूर भस्म ७२। कुमारकल्याण २८१। बालरक्षक गुटिका ३१८। बालार्कगुटिका २८४। अरविन्दासव ३८३।

उदर कृमि–अग्नितुण्डीवटी २०३। कृमिकुठार २०६। ताप्यादिलोह २०६।

अपचन, मन्दाग्नि, अरुचि–बालसञ्जीवन २८३। बालार्कगुटिका २८४। बालबन्धु अर्क ३८६।

तालुकण्टक–सर्वांगसुन्दर २८५।

अस्थि मार्दव–(Rekets) प्रवालपिष्टी ९४। गिलोयसत्व २४। मण्डूर भस्म ७२। श्रृंगभस्म १०७। प्रवालपिष्टी ९४। मधुमालिनी वसन्त १८४। सर्वांगसुन्दर रस २८५। अरविन्दासव ३८३।

क्षीरालसक, बालशोष और पारिगर्भिक–श्रृंगभस्म १०७ और प्रवालपिष्टी ९४। लघुमालिनी वसंत १८५। कुमारकल्याण २८१ और मण्डूर भस्म ७२। मधुमालिनी वसंत १८४। सर्वांगसुन्दररस २८५। गन्धकरसायन २२५। बालरक्षक तैल ४२१।

उष्ण पसली–(Broncho Pneumonia) मल्लसिंदूर १३२। चन्द्रशेखर रस २८४। मणिक्यरसादि गुटिका २८६। बालजीवन वटी ३१९। अश्वकंचुकी रस १६१

धनुर्वात–(Infantile Convulsions) कालकूट १७२। लक्ष्मीनारायण रस १७३। चन्द्रशेखर २८४। कृमिकुठार रस २०६।

पाण्डु–मण्डूभस्म ७२। लघुमालिनी वसन्त १८५। ताप्यादि लोह २०६। मृदविरेचन रस २८५।

बुद्धिमन्दता–अभ्रकभस्म ७५। ब्राह्मीघृत ४१४। सारस्वतारिष्ट ३७४। प्रवालपिष्टी ९४। कुमारकल्याण रस २८१।

उपदंश अनुबन्ध से निर्बलता–अभ्रक भस्म ७५ और गन्धक रसायन २२५। अभ्रकभस्म ७५ और प्रवाल पञ्चामृत २४०।

रुक–रुककर बोलना–सारस्वतारिष्ट ३७४। ब्राह्मीघृत ४१४।

बालग्रह–पञ्चसूत १४३। कुमारकल्याण रस २८१। स्मृतिसागर २९९। अष्टमंगल घृत ४१३। ब्राह्मीघृत ४१४। कल्याणघृत ४१५।

जीर्ण हो तो–ताप्यादि लोह २०६। सारस्वतारिष्ट ३७४।

रक्तस्रावमय ग्रन्थियाँ–जसद भस्म ६३।

पूयवृक्क–कालकूट रस १७२।

(६४) बुद्धिमान्द्य और स्मृतिनाश

अभ्रकभस्म ७५। वंगभस्म ५७। सुवर्णभस्म ४४। सारिवासव ३८१। सारस्वतारिष्ट ३७४। च्यवनप्राशावलेह ३९३। पुनर्नवा रस २८८।

अधिक मानसिक श्रम जन्य–ब्राह्मीघृत ४१४। मुक्तापिष्टी ९२। प्रवालपिष्टी ९४। अभ्रक भस्म ७५।

(६५) भगन्दर (Anal Fistula)

बृहद योगराज गूगल २३३। नारसिंह चूर्ण ३३८। योगेन्द्र रस ३०३। दशमूलारिष्ट ३६७। त्रिफलारिष्ट ३७३। अभ्रकभस्म ७५। जसदभस्म ६३। लक्ष्मीविलास रस अभ्रक १७६।

ब्राह्योपचारार्थ–निम्बादि तैल ४१९। करवीर तैल ४२१। कोशातक्यादि तैल ४२१। भगन्दरनाशक मलहम ४३५।

(६६) भस्मक

भस्मकनाशक चूर्ण ३४४। सुवर्णमालिनी ६९। वराटिकाभस्म ९९ और शंख भस्म १०१। (गिलोयसत्व के साथ)

(६७) भ्रम चक्कर (Vertigo)

प्रमेहगजकेसरी २९६। लक्ष्मीविलास १७९, २१४। सुवर्णमाक्षिकभस्म ६९। अभ्रकभस्म ७५ और लोहभस्म ५३। सूतशेखर २६९। मुक्तापिष्टी ९२। च्यवनप्राशावलेह ३९३। सारस्वतारिष्ट ३७४। शतावरी घृत २४३।

(६८) मदात्यय शराबजन्य विकार (Alcoholism)

सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। राजावर्त्त भस्म ९१। राजावर्त्त रस २२३। रसादि चूर्ण २२२। मुक्तापिष्टी ९२। कृष्माण्डावलेह ३९७।

(६९) मसूरिका, शीतला, रोमान्तिका

प्रवालपिष्टी ९४। त्रिभुवनकीर्ति १६३। लक्ष्मीनारायण + गोरोचन + प्रवालपिष्टी ९४। दुरालभादि क्वाथ ३५७। पटोलादि क्वाथ ३५७। दशांगलेप ४२८। निशादि लेप ४३२।

नेत्र पर बांधने के लिये–मधुकादि लेप ४२९।

(७०) मुखरोग

कण्ठरोग–(पृथक् लिखे हैं)

मुखपाक–मुँह के छाले–जातिपत्रादि क्वाथ ३५३।

मुंह चिकना रहना–लक्ष्मीविलास रस १७६। आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

(७१) मूत्रकृच्छ् और मूत्राघात

शिलाजीत ३२। मूत्रकृच्छान्तक २४२। सारिवासव ३८१। उशीरासव ३७१। चन्दनादि अर्क ३८६। यवक्षार २२। देवदार्वाद्यारिष्ट ३८४। चन्द्रप्रभा वटी ३११। लोहभस्म ५३। प्रमेहगज केसरी २९६। प्रवालपिष्टी ९४। न्यग्रोधादि चूर्ण ३४७।

मूत्रावरोध–संगेयहूद भस्म ११०। शीतल पर्पटी १५३। त्रिकण्टकादि क्वाथ ३५३। गोक्षुराद्यवलेह ३९५। बृहद्योगराज गूगल २३३। गोक्षुरादि गूगल ३१४।

फिरंगज वातबस्ति–वात–कुण्डली–अष्टमूर्ति रसायन १४२।

सुजाकजन्य मूत्रवाहिनी शोथ–चन्दनासव ३७८। प्रमेहान्तक वटी २४७। सारिवासव ३८१।

मूत्राशय की निर्बलता–अभ्रक भस्म ७५। कांस्य भस्म १११। बृहद्वंगेश्वर रस २४५। शिलाजीत ३२।

मूत्र में दाह और रक्त जाना–कामदुधा २२३। मुक्तापिष्टी ९२। प्रवालपिष्टी ९४। चन्द्रकला २११। चन्दनादि अर्क ३८६। उशीरासव ३७१। सुवर्ण माक्षिक भस्म ६९।

(७२) मूत्रवाहिनी में व्रण

चन्द्रप्रभावटी ३११। उष्णवातघ्न चूर्ण ३३७। प्रमेहान्तक वटी २४७। मूत्रकृच्छ्रान्तक रस २४२।

(७३) मूर्च्छा और संन्यास (Apoplexy)

वात प्रधान–कस्तूरीभैरव रस १५८।

पित्तज–कामदुधा रस २२३। मुक्तापिष्टी ९२।

रक्तदबाववृद्धि से मूर्च्छा–अश्वकंचुकी १६१। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। चन्द्रप्रभा वटी ३११। ताप्यादि लोह २०६।

कफाधिक्य से मूर्च्छा–पञ्चसूतरस १४३। सुंघाने के लिये–श्वासकुठाररस २१८।

हिस्टीरिया या उन्मादजन्य मूर्च्छा–अश्वगन्धारिष्ट ३७३।

जीर्णरक्तज मूर्च्छा–ताप्यादि लोह २०६। चन्द्रकला २११।

फिरंग अनुबन्ध से हो तो–अष्टमूर्ति रसायन १४२।

मधुमेह की अतिशयावस्था में–नागभस्म ६५। वसन्तकुसुमाकर रस २४३। प्रमेहगज केसरी २९६।

सुंघाने के लिये–मूर्च्छान्तक नस्य ४४०। श्वासकुठार रस २१८।

सर्पविषजन्य मूर्च्छा–अञ्जन रस ४२६।

(७४) मेदोवृद्धि (Obesity)

शिलासिन्दूर १३५। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। शिलासिन्दूर वटी २६०। शिलाजीत ३२। चन्द्रप्रभावटी ३११। मेदोहर अर्क ३८८। बृहद्योगराज गूगल २३३। लक्ष्मीविलास रस अभ्रक प्रधान १७६।

जीर्णरोग, हृदय और नाड़ियों में मेद संचय–लक्ष्मीविलास रस १७६। त्र्यूषणाद्य लोह २४९।

(७५) यकृद्वृद्धि उदररोग में देखें।

(७६) रक्त दबाव वृद्धि (High blood Pressure)

सर्पगन्धादि गुटिका ३२१। अश्वकंचुकी रस १६१। इच्छाभेदी रस १८८। चन्द्रप्रभा वटी ३११। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। सारिवासव ३८१। शुद्ध शिलाजीत ३२। चन्द्रकला रस २११। ताप्यादिलोह २०६। जहरमोहरा पिष्टी १०२।

मासिकधर्म के बदले में रक्तदबाव वृद्धि–आरोग्यवर्द्धिनी + चन्द्रप्रभा ३११।

शराबजनित रक्तदबाव वृद्धि–चन्द्रप्रभावटी ३११। शिलाजीत ३२।

(७७) रक्तपित्त (Haemorrhagic Diseases)

शुद्ध गेरू ३१। चन्द्रकला रस २११। सारिवादि वटी २७६। लोहभस्म ५३। वैडूर्यभस्म ९०। पीतलभस्म ११०। वासावलेह, प्रवाल और स्वर्णमाक्षिक भस्म ६९। पर्पटादि क्वाथ ३५५। वसन्तकुसुमाकर २४३।

रक्त बन्द करने के लिए–स्फटिकमणि भस्म ११६। वराटिका भस्म ९९। प्रवालपिष्टी और सुवर्ण गैरिक ३१। कामदुधा २२३। मुक्तापिष्टी ९२। शुक्तिभस्म ९८। बोलबद्ध २००। बोलपर्पटी १५१। तृणकान्तमणिपिष्टी १०३। उशीरासव ३७१। अशोकारिष्ट ३७८। दूर्वादिघृत ४१५। कुष्माण्डावलेह ३९७। अरविन्दासव ३८३।

रक्तदबाव वृद्धिजन्य–पुनर्नवासव ३८१। इच्छाभेदी १८८।

जीर्ण रोग में–अभ्रकभस्म ७५। प्रवालपिष्टी ९४। संगजराहत

भस्म ११०। द्राक्षासव ३७५। [illegible] २४३। उशीरासव ३७१। कनकासव ३७२। शक्तिसंरक्षणार्थ-कामधेनु रस ३०२।

(७८) रक्तविकार

माजून उशवा ४०१। मंजिष्ठादि चूर्ण ३३६। पीतल भस्म ११०। कांस्यभस्म १११। लोकनाथ रस २५४। लघुमंजिष्ठादि क्वाथ ३५१। बृहद्मंजिष्ठादि क्वाथ ३५१।

दाहसह-गन्धक ३०। गन्धक घृत ४१४। गन्धक रसायन २२५। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९।

सुजाकजन्य-सारिवासव ३८१। अरविन्दासव ३८३। सुवर्ण बंग १३६। माजून उसवा ४०१।

उपदंशज-वंगभस्म ५७। मल्ल भस्म १०६। मल्लसिन्दूर १३२। व्याधिहरण १४३। मंजिष्ठादि तालसिन्दूर २६८। उपदंश सूर्य २६२। रक्तशोधकारिष्ट ३८४। तुत्थभस्म १११।

(७९) रक्तस्राव

पित्तप्रकोपज-मुक्तापिष्टी ९२। प्रवालपिष्टी ९४। उशीरासव ३७१।

छुरी से लगने पर-संगजराहत ११०। घाव तैल ४२०। लाक्षा अर्क ३८९। पारद मलहम ४३७। व्रण शोथ में से स्राव-(व्रण शोथ में देखें)

(८०) वमन-छर्दि-कै (Vomiting)

पित्तप्रकोपजन्य-वान्तिहद् रस २२२। कुमुदेश्वर २२२। शुक्तिभस्म ९८। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। सूतशेखर २६९। पुष्पराज भस्म ९०। चन्द्रकला रस २११। तृष्णाघ्नि गुटिका ३२०।

गर्भपात के पश्चात् वान्ति-सूतशेखर २६९।

अजीर्ण जन्य-संजीवनी वटी ३०८। कर्पूरासव ३८३। कर्पूरधारा अर्क ३८८। द्राक्षासव ३७५। अग्निकुमार रस २०१। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। जहरमोहरा पिष्टी १०२।

कर्कस्फोटजन्य-वंग भस्म ५७।

आक्षेपक वात के पश्चात् वमन-सुवर्णभस्म ४४। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९।

(८१) वमन कराना

नीलकण्ठ रस १८८। तुत्थ भस्म १११।

(८२) वातरोग

अर्धाङ्गवात (Hemiplegia)-महावातविध्वंसन २३०। एकांगवीर २३५। अर्धांगवातारि २९४।

[illegible] २०६।

वातश्लेष्मात्मक हो तो-वातगजांकुश २३२। महारास्नादि क्वाथ ३५४।

जीर्ण पक्षवध-पञ्चसूत १४३। अभ्रक भस्म ७५। अग्नितुण्डी २०३। लक्ष्मीविलास १७६। स्मृतिसागर २९९। ताप्यादि लोह २०६। बृहद्योगराज गूगल २३३। महारास्नादि क्वाथ ३५४। मल्लसिंदूर १३२।

उपदंशजन्य पक्षाघात-मल्लसिंदूर १३२। समीरपन्नग १३८। अष्टमूर्ति रसायन १४२। मल्लसिंदूर वटी २३६। बृहद्मञ्जिष्ठादि क्वाथ ३५१। उपदंशसूर्य ३६२।

शिरा विकृति जन्य कम्पवात-त्रिवंग भस्म ६२। सुवर्णभूपति १४१ ताप्यादि लोह २०६। एकांगवीर २३५। अर्धांगवातारि रस २९४।

वातवाहिनी दोष और आमप्रकोप-सूतराज रस १५७। मल्लभस्म १८०। महारास्नादि क्वाथ ३५४। कुमार्यासव ३६९।

शुक्रक्षय से वात प्रकोप-रोप्यभस्म ४७। वंग भस्म ५७।

अर्दित (Facial paralysis), अवबाहुक, हनुग्रह, मन्याग्रह, जिह्वास्तम्भ, शिरोग्रह, विश्वाची, खञ्ज, कलायखञ्ज, कटिवात आदि-समीरपन्नग रस १३८। सुवर्णभूपति १४१। शुण्ठ्यादिपायस (कषाय) ४०५। वातगजांकुश २३२। बृहद्योगराज गूगल २३३। एरण्डपाक ३९८। धात्रीभल्लातक वटी ३१६। रौप्य भस्म ४७। शिलाजीत ३२। महावातविध्वंसन २३०।

कम्पवात-सुवर्णभूपति १४१।

विश्वाची-लक्ष्मीविलास रस १७६। प्रतापलंकेश्वर रस २७९।

सर्वाङ्गवात (Diplegia) और अन्य जीर्णवात-रौप्य भस्म ४७। वज्रभस्म ८६। लक्ष्मीविलास रस १७६, २१४। समीरपन्नग १३८। समीरगज केसरी २३२। मल्लसिन्दूर १३२। अश्वगन्धारिष्ट ३७३। दशमूलारिष्ट ३६७।

आमाधिक जीर्णवात-बृहद् योगराज गूगल २३३।

पित्तप्रकोप वातसह वात-योगेन्द्र रस ३०३। सूतशेखर रस २६९। धात्रीभल्लातक वटी ३१६।

कीटाणुप्रकोपक आक्षेप-चन्द्रकला २११। संचेतनी वटी १७५।

मलावरोधजन्य आक्षेप-समीरपन्नग १३८।

तीव्र पीड़ासह आक्षेप-स्मृतिसागर २९९।

आक्षेपक (Convulsions) अपतानक, धनुस्तम्भ आदि-वंगभस्म ५७। अश्वकंचुकीरस १६१। समीरपन्नग १३८। लक्ष्मीनारायण १७३। संचेतनी गुटिका १७५। महावातविध्वंसन २३०। सुवर्णभूपति १४१। कुमार्यासव ३६९।

अपतन्त्रक (Hysteria)-मल्लसिंदूर १३२। कस्तूरीभैरव १५८। पूर्णचन्द्रोदय १२९। मल्लसिन्दूर वटी ३३६। सारस्वतारिष्ट ३७४। हिस्टीरिया नाशक चूर्ण ३४१। संचेतनी गुटिका १७५। वातकुलान्तक रस २२९। सर्पगन्धादि वटी ३२१।

जीर्ण आक्षेपक-अष्टमूर्तिरसायन १४२। मल्लसिन्दूर १३२। समीरपन्नग १३८।

बारम्बार उत्पन्न होने वाला वात-नागभस्म ६५।

गर्भपात और कष्टार्तव से वातप्रकोप–सूतशेखर २६९।

कलायखंज–लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त २१४। अष्टमूर्ति रसायन १४२। उपदंश सूर्य २६२। रौप्यभस्म ४७।

खल्ली–प्रतापलंकेश्वर रस २७९। लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त २१४।

सूतिका का वातप्रकोप–हेमगर्भपोटली रस १६८।

पूय और व्रण से धनुर्वात–एकांगवीर २३५। ताप्यादिलोह २०६।

उपदंशज संधिवात–मल्लभस्म १८०। मल्लसिन्दूर १३२। अष्टमूर्ति रसायन १४२। तालसिन्दूर १३४। चिंचाभल्लातक वटी ३१५। धात्रीभल्लातक वटी ३१६। रक्तशोधकारिष्ट ३८४। उपदंश सूर्य २६२। गन्धक रसायन २२५। सारिवासव ३८१।

वातज और वातकफात्मक गृध्रसी (Sciatica)–समीरपन्नग १३८। दशमूल क्वाथ ३४९। नाराच घृत ४१०। शुण्ठ्यादि पायस (कषाय) ४०५। योगराज गूगल ३२२। महावातविध्वंसन २३०।

मालिशार्थ–मल्ल तैल ४१६। वातहर तैल ४१७। चक्रमर्द तैल ४१९। नारायण तैल ४१९।

आमसह होने पर–महाविषगर्भ तैल ४२२। लघु विषगर्भ तैल ४२३।

प्रस्वेद लाकर रोग शमनार्थ–शिरः शूलान्तक मलहम ४३६।

शक्ति रक्षणार्थ–त्रैलोक्यचिंतामणि रस १६५। लक्ष्मीविलास १७६। २१४। पूर्णचन्द्रोदय १२९। अश्वगन्धारिष्ट ३७३। नागभस्म ६५।

निर्बलताजनित कुब्जता–त्रिबंगभस्म ६२।

(८३) वात रक्त (Gout)

सब प्रकार पर–लघुमंजिष्ठादि क्वाथ ३५१। बृहदमंजिष्ठादि ३५१।

जीर्ण रोग–लांगल्यादि लोह २३७। दशमूल ३४९।

वात और कफ प्रधान–हरताल भस्म १०३। तालसिन्दूर १३४। माणिक्यरस १३५।

पित्त प्रधान–गन्धक रसायन २२५। पंचनिम्ब चूर्ण २६६।

जीर्ण मूत्रविकृति सह–ताप्यादिलोह २०६। सारिवासव ३८१।

आम और कफ प्रधान–बृहद्योगराज गूगल २३३। चविकासव ३८०।

आमप्रधान जीर्ण–बृहद्योगराज गूगल २३३।

(८४) विचर्चिका खर्जू–ब्यूची (Eczema)

बंगभस्म ५७। गन्धक रसायन २२५। माजून उशवा ४०१।

लगाने के लिये–ब्यूचीहर मलहम ४३४। पारद मलहम ४३७।

(८५) विद्रधि (Abscess)

कज्जली २५। त्रैलोक्य चिन्तामणि १६५। त्रिफला चूर्ण ३३३। नागभस्म ६५। वंगभस्म ५७। जसदभस्म ६३। महामृगांक २१३।

अन्तर्विद्रधि–लोकनाथरस २५४। अश्वकंचुकी १६१। ताम्रभस्म ४९। अग्नितुण्डी वटी २०३। श्रृंगभस्म १०७। पुनर्नवासव ३८१।

लगाने के लिये–कर्पूरादि मलहम ४३२। व्रणामृत मलहम ४३३। राल का मलहम ४३२। कोशातक्यादि तैल ४२१। घावतैल ४२०।

मांसार्बुद (Cancer)–वंगभस्म ५७। ताम्रभस्म ४९।

(८६) विरेचन–जुलाब देना

इच्छाभेदी १८८। पंचसमचूर्ण ३३४। विरेचन चूर्ण ३३४। शेष औषधि "आनाह" रोग में लिखी है।

(८७) विष विकार

मूषक (चूहे) का विष–अश्वकँचुकी रस १६१। बृहद्योगराज गूगल २३३। आखुविषान्तक रस २८७।

सर्प विष–तुत्थभस्म १११। संजीवनी वटी ३०८।

बेहोशी हो गई हो तो–हरताल पुष्प २८६। अञ्जनार्थ–अञ्जनरस ४२६।

श्वान विष–अग्नितुण्डी वटी २०३।

लूता–मकड़ी का विष–त्रैलोक्यचिन्तामणि रस १६५। सुवर्णभूपति १४१। गन्धकरसायन २२५। अश्वकंचुकी रस १६१।

मधुमक्षिका विष–बृहद् योगराज गूगल २३३। शोथनाशक अर्क ३८८। शिरःशूलान्तक मलहम ४३६।

दूषी विष–तुत्थभस्म १११। कल्याणघृत ४१५। गन्धक रसायन २२५।

अजीर्ण सेन्द्रिय विष–ताप्यादि लोह २०६। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। रक्तशोधक शर्बत ४०५।

पारद विष–पर्पटाद्यरिष्ट ३८२। गन्धक रसायन २२५।

नाग (शीशा) विष–गन्धक ३०, शुभ्राभस्म ११४।

जीर्ण विष प्रकोप–सुवर्ण भस्म ४४। सुर्वणमाक्षिक भस्म ६९। तार्क्ष्यभस्म ८९। पुष्पराज भस्म ९०। प्रवालपिष्टी ९४। रसादिचूर्ण २२२। पिरोजाभस्म १०३। ताप्यादिलोह २०६।

कोष्ठ शोधनार्थ–तुत्थभस्म १११। इच्छाभेदी रस १८८।

क्विनाइन जनित विष–सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। प्रवालपिष्टी ९४। पर्पटाद्यरिष्ट ३८२।

(८८) विसर्प और विस्फोटक

मुक्तापिष्टी ९२। प्रवालपिष्टी ९४। और गिलोयसत्व २४। गन्धक रसायन २२५। पिरोजा भस्म १०३।

बाह्योपचारार्थ–माँस्यादि लेप ४३१। निशादिलेप ४३२।

(८९) विसूचिका हैजा (Cholera)

जन्तुजन्य–कर्पूरासव ३८३। कर्पूरधाराअर्क ३८८। संजीवनी वटी ३०८। विसूचिकाहर वटिका ३२०। लहशुनादिवटी ३२०। सूतशेखर २६९।

अजीर्णजन्य-पित्ताधिक-जातिफलादि वटी १९६। सूतशेखर २६९। शंखभस्म १०१। संजीवनी वटी ३०८।

अजीर्णजन्य कफाधिक-अग्निकुमार २०१। क्रव्याद रस २०२। चिंचाभल्लातकवटी ३१५। हिंग्वष्टक चूर्ण ३३२। शिवाक्षार पाचनचूर्ण ३३२। लहशुनादि वटी ३२०।

नाड़ियों का खिंचाव शमनार्थ-ताम्रभस्म ४९। सूतशेखर २६९। त्वक्पत्रादि उद्वर्त्तन ४४०।

रोग के अन्त में वमन हो तो-सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९।

शक्तिरक्षणार्थ-मल्लसिन्दूर १३२। लक्ष्मीविलास रस १७६।

हेमगर्भपोटली रस १६८। समीरपन्नग १३८।

(९०) वृक्क विकार

वृक्कशोथ (Bright's Disease)-ताम्रपर्पटी १४९। चन्द्रप्रभावटी ३११। देवदार्वाद्यरिष्ट ३८४। सर्पगन्धादि गुटिका ३२१।

वृक्कव्रण-देवदार्वाद्यरिष्ट ३८४। वंगभस्म ५७।

वृक्क विद्रधि-लोकनाथ रस २५४।

वृक्क शूल-त्रिविक्रम २४४। पाषाणवज्रक २४५। अगस्तिसूतराज १९१। शीतल पर्पटी १५३। माजून फिलासफा ४०१। महावातराज २९२। कनकासव ३७२।

(९१) वृषण वृद्धि

वृद्धिवाधिका वटी २५९। वृद्धिदमनलेप ४३२।

वृषण शोथ-त्रिफला चूर्ण ३३३।

(९२) व्रणशोथ, अन्तरव्रण, सद्योव्रण, नाड़ीव्रण

शुद्धगन्धक ३०। वंगभस्म ५७। जसद भस्म ६३। कासीस भस्म ८१। गन्धक रसायन २२५।

अन्तर व्रण-नागभस्म ६५। कामदुधा २२३। कुटजारिष्ट ३७६।

व्रण पर लेपार्थ-दशांगलेप ४३८। व्रणामृत मलहम ४३३। व्रणशोधक लेप ४२९। चूने का मलहम ४३३।

अस्थिव्रण-नागभस्म ६५।

नाड़ीव्रणादि गम्भीर व्रण-गंधकरसायनादि ४४८। दशमूलारिष्ट ७३०। जात्यादि घृत ४१५। चक्रमर्दादि तैल ४१७। निम्बतैल ४११। नाड़ीव्रण हर तैल ४२०। करवीर तैल ४२१। कोशातक्यादि तैल ४२१। कर्पूरादि मलहम ४३२। भगंदर नाशक मलहम ४३५। पारद मलहम ४३७। लक्ष्मीविलास नारदीय १७९।

नेत्रगत व्रण-कासीस भस्म ८१।

रक्तज शोथ और मूढ़मार-निशादि लेप ४३२। अस्थिसंधानक लेप ४३०।

उपदंशज व्रण-उपदंश सूर्य २६२। अष्टमूर्ति रसायन १४२। व्याधिहरण रस १४३।

(९३) शिर:शूल (Headache)

तीक्ष्णशूल-महावातविध्वंसन रस २३०। दशमूलारिष्ट ३६७।

सामान्य शूल-अभ्रकभस्म ७५। शूलवज्रिणी २३७। सुवर्णमालिनी वसंत १८१। गोदन्तीभस्म ८३।

कृमिजन्य शूल नासिका से रक्तस्राव-तृणकांतमणि पिष्टी १०३।

अर्द्धावभेदक-लघु सूतशेखर २७४। सूतशेखर २६९।

शिरदर्द का बार बार दौरा होना-शिलाजीत ३२। सूतशेखर २६९।

वातज शीर्षशूल-महावातविध्वंसन २३०। लक्ष्मीविलास अभ्रकयुक्त १७६। सूतशेखर २६९। अगस्ति सूतराज १९१।

वातरक्त से शूल-बृहद्योगराज गूगल २३३।

पित्तप्रधान दर्द-गिलोयसत्व २४। गोदंतीभस्म ८३। कामदुधा२२३। सूतशेखर २६९। प्रवालपिष्टी ९४। लघु सूतशेखर २७४। च्यवनप्राशावलेह ३९३। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। सितोपलादि ३२८। चन्दनादि चूर्ण ३४१। शुक्तिभस्म ९८।

पित्तप्रधानजीर्ण व्यथा-सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। मण्डूरमाक्षिक ७५।

पित्तप्रधान अर्द्धावभेदक-मधुकादि हिम ३५८।

वातपित्तात्मक शूल-सूतशेखर २६९। सुवर्णभूपति १४१। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९।

वातकफात्मक सूर्यावर्त्त-श्वासकुठार रस २१८।

पित्तज-लघुसूतशेखर २७४।

मलावरोध से भारीपन-आरोग्यवर्द्धिनी २५०। अश्वकंचुकी १६१। सुवर्णभूपति १४१। आंवलों का मुरब्बा ४०५। भृंगराजासव ३८२।

बाह्योपचार-शिर:शूलान्तक मलहम ४३६। षड्बिन्दु तैल ४२१।

सूतिका शिरदर्द-प्रतापलंकेश्वर २७९। दशमूलारिष्ट ३६७। सूतशेखर २६९।

(९४) शीतपित्त-पिस्ती उदर्द-कोठ

जसद भस्म ६३। प्रवालपिष्टी ९४। सूतशेखर २६९। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। अश्वकंचुकी रस १६१। गन्धक रसायन २२५। मल्लसिन्दूर १३२।

अपचन जनित-सुवर्णभस्म ४४। गन्धक रसायन २२५।

(९५) शूल (Colic)

सब प्रकार के शूल पर-शूलवज्रिणी २३७। सुवर्णभूपति १४१।

अजीर्णजन्य नया-शंख वटी १९५। हिंगुलवटी १९७। जातिफलादि वटी १९६। हिंगुल रसायन २३८। नींबूद्राव ३८६। उदरामृत योग ३८६। लघुशंखद्राव ३८६। जम्भीरीद्राव ३८७। स्वादिष्ट शर्बत ४०६। अदरख का शर्बत ४०६। हिंग्वष्टक चूर्ण ३३२। गन्धक वटी ३१७। कुमार्यासव ३६९। शीतल पर्पटी १५३।

वात प्रधान–नागभस्म ६५।

तीव्र हो तो–महावात विध्वंसन २३०। दशमूलारिष्ट ३६७।

पित्तप्रधान–ताप्यादि लोह २०६। शंखवटी १९५। शुक्तिभस्म ९८। शंख भस्म १०१। कनकासव ३७२। जीरकाद्यरिष्ट ३७९। वान्तिहृद्रस २२२। प्रवालपिष्टी ९४।

वात कोप जन्य–ताम्रभस्म ४९। क्रव्याद रस २०२। पीतल भस्म ११०। अश्वकंचुकी १६१। लक्ष्मीविलास १७६। हिंगुल रसायन २३८। नागगुटिका ३१०। अश्विनीकुमार २४५। लक्ष्मीनारायण रस १७३।

आम शूल–अग्निकुमार २०१। क्रव्याद रस २०२। बृहद्योगराज गूगल २३३। कासीस भस्म ८१। आनन्दभैरव १८९। लोहभस्म ५३। शंखवटी ३८८।

वात पित्तप्रधान–सूतशेखर २६९। सुवर्णभूपति १४१। नागभस्म ६५। बृहत्यादि क्वाथ ३५७। वराटिका भस्म ९९।

परिणाम शूल–ताम्र भस्म ४९। मण्डूरमाक्षिक ७५। शंखभस्म १०१। कनकासव ३७२। कुमार्यासव ३६९। लक्ष्मीविलास २१४। गंधक वटी ३१७। वराटिका भस्म ९९। सुवर्णमाक्षिक ६९। गुल्मकुठार २३९। दशमूलारिष्ट ३६७। सुवर्णपर्पटी १४८। कामदुधा २२३। संगजराहत भस्म ११०। खमीरा आबरेशम ४०३।

नाग विषज जन्य–नागभस्म ६५। शुभ्राभस्म ११४। शम्बुक भस्म ११३। शंखवटी १९५। शंखद्राव ३८६। जम्भीरी द्राव ३८७।

शीतोपचार जन्य शूल–आनन्दभैरव रस १८९। कस्तूरीभैरव १५८।

कृमिजन्य शूल–कृमिकुठार रस २०६।

अन्नद्रव शूल–ताम्रभस्म ४९। सुवर्णभूपति १४१। शुक्तिभस्म ९८। वान्तिहृद्रस २२२। सूतशेखर २६९। कनकासव ३७२।

अष्ठीलादि ग्रन्थि जन्य–ताम्र भस्म ४९।

वातज गुल्म और शूल–कासीस भस्म ८१।

वातरक्त जन्य–बृहद् योगराज गूगल २३३। दशमूल क्वाथ ३४९।

बद्धकोष्ठजन्य शूल–चविकासव ३८०।

रक्तवाहिनियों के संकोच से–लोहभस्म ५३।

संधिगत और अस्थिगत शूल–नागभस्म ६५।

पार्श्वशूल–नीलाञ्जन भस्म ११७। लक्ष्मीविलास १७९। शुभ्राभस्म ११४। गुल्मकुठार २३९।

पित्ताशय शूल–कुमार्यासव ३६९। महावातराजरस २९२। श्रृंगभस्म १०७। पञ्चसूतरस १४३। दशमूलारिष्ट ३६९। लक्ष्मीनारायण रस १७३।

रक्तातिसार में शूल–शंखोदर रस १९६।

हृदय शूल–(वातज–नागभस्म ६५) (पित्तज–गुल्मकुठार २३९), कफज–त्रैलोक्यचिन्तामणि १६५। श्रृंगभस्म १०७। पूर्णचन्द्रोदय १२९। रससिंदूर १३०। लक्ष्मीविलास रस २१४। खमीरा जमुर्रद ४०४।

अर्दितशूल–महावात विध्वंसन २३०।

शुष्क कफज शूल–समीरपन्नग १३८।

मस्तिष्क शूल–रौप्यभस्म ४७। गोदन्तीभस्म (कफाधिक्यपर) ८३।

लेपार्थ–शिरःशूलान्तक मलहम ४३६। शोथनाशक अर्क ३८८।

आमवातज शूल–बृहद् योगराज गूगल २३३।

(९६) शोथ-सूजन (Anasarca)

नया शोथ–लोहभस्म ५३। लोहभस्म और ताम्र भस्म ४९। तक्र मण्डूर २५६। पुनर्नवामण्डूर २५८। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। लोहपर्पटी १५०। ताप्यादि लोह २०६। त्रिफलारिष्ट ३७३। अभयारिष्ट ३७७। उशीरासव ३७१। पुनर्नवासव और सारिवासव मिश्रण ३८१।

हृदय विकृति जन्य जीर्ण–सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। लक्ष्मीविलास १७६। अभ्रकभस्म ७५। वसन्तकुसुमाकर २४३। आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

यकृद्दाल्युदरसह शोथ–ताप्यादि लोह २०६। आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

फुफ्फुसावरण में शोथ–आरोग्यवर्द्धिनी २५०।

कफप्रधान–ताल सिन्दूर १३४। दुग्धवटी १९४।

मूत्रपिण्ड–विकृति पित्तप्रधान सर्वाङ्गशोथ–कामदुधा रस २२३। आरोग्यर्द्धिनी २५०।

त्रिदोषज–शिलाजीत ३२।

रक्तक्षय; रक्तस्राव या प्लीहावृद्धिजन्य शोथ–ताप्यादि लोह २०६। लोहभस्म ५३।

चिरकारी मन्द शोथ–गदमुरारी रस १७१।

दाह, वमन, शिरदर्द हो, तो–कामदुधा रस २२३।

प्रदाह शोथ पर बाह्योपचार–शिरःशूलान्तक मलहम ४३६।

वातज–शोथनाशक अर्क ३८८। बीजपूरजटादि लेप ४२९।

पित्तज–दशांग लेप ४३१। मधुकादि लेप ४२९।

कफज–कृष्णादि लेप ४२९।

वातकफज–दोषघ्न लेप ४२८।

(९७) श्लीपद–हाथीपगा (Elephantiasis)

गन्धक रसायन २२५। नित्यानन्द रस १९९। लक्ष्मीविलास रस १७९। बृहद्योगराज गूगल २३३।

लगाने के लिये–श्लीपदहर लेप ४३१।

(९८) श्वास दमा (Dyspnoea)

तमकश्वास (Asthama)–श्वासरोगान्तक वटी २१९। मल्लभस्म १०६। अभ्रकभस्म ७५। मल्लसिंदूर १३२। शिलासिंदूर १३५। मल्लपुष्प १८०। श्रृंगभस्म १०७। रससिंदूर १३०। मल्लादि वटी २२०। समीरपन्नग १३८। रसमाणिक्य २६७। पञ्चसूत १४३। मल्लसिंदूर वटी २३६। कनकासव ३७२। महाद्राक्षासव ३८५। महावातराज रस २९२। आनन्द भैरव रस १८९।

प्रतमक-पित्तज श्वास-सुवर्णभस्म ४४। पन्नाभस्म ८९। मुक्तापिष्टी ९२। जसदभस्म ६३। लोहभस्म ५३ और अभ्रकभस्म ७५। नीलमणि भस्म १०। वैक्रान्त भस्म ९१। लक्ष्मीविलास २१४। मल्लभस्म १०६। हरतालगोदन्ती भस्म ११३। प्रवालपञ्चामृत २४०।

जीर्ण रोग-सुवर्णभस्म ४४। लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त २१४।

कफसह श्वास-श्रृंगभस्म १०७। कनकासव ३७२। नीलाञ्जन भस्म ११७।

वातज श्वास-दशमूलारिष्ट ३६७। प्रतापलंकेश्वर रस २७९।

अपचन जनित श्वास-क्रव्याद् रस २०२।

हृदयावरोध दूर करने के लिये-महावातराज रस २९२। पूर्णचन्द्रोदय १२९। पञ्चसूत १४३। जात्यादि धूप ४३८। देवदार्व्यादि धूम्र ४३९। मन:शिलादि धूम्रपान ४३९।

क्षुद्रश्वास (Brethlessness)-चिन्तामणी चूर्ण ३४४। लोहभस्म ५३। आनन्दभैरव रस १८९। अभ्रकभस्म ७५। द्राक्षासव ३७५।

छिन्नश्वास लक्ष्मीविलास २१४। वसन्तकुसुमाकर २४३। पूर्णचन्द्रोदय १२९। अश्वगन्धारिष्ट ३७३। श्वासकुठार २१८।

वातरक्त में श्वास-हरताल भस्म १०३।

तमाखू के व्यसनियों की-श्वासरोगान्तकवटी २१९। गोमूत्रक्षार चूर्ण ३३५।

तीव्र वेग हो तो-रस कर्पूर २६३। मल्लसिंदूर (नं. २) १३२।

मलावरोध जनित श्वास-आरोग्य वर्द्धिनी २५०। अश्वकंचुकी १६१। आमवातजन्य श्वस-बृहद् योगराज गूगल २३३।

कोष्ठगत वातवृद्धि से-शुक्तिभस्म ९८। प्रवालपञ्चामृत २४०।

मानसिक आघातजनित श्वास-अभ्रक भस्म ७५। द्राक्षारिष्ट ३८४। लक्ष्मीविलास अभ्रक १७६।

हृदरोग में श्वास-सूतशेखर २६९। अर्जुनारिष्ट ३७३।

कफप्रकोप में शमनार्थ-अश्वकंचुकी रस १६१। आनन्दभैरव १८९।

अभ्रक ७५ और श्रृंगभस्म १०७। कफकुठार २१७। समीरपन्नग १३८। त्रैलोक्य चिन्तामणि १६५। नागगुटिका ३१०। लोकनाथ रस २५४। कनकासव ३७२।

अन्तर्दाह शमनार्थ-मुक्तापिष्टी ९२। सूतशेखर २६९।

पार्श्वशूल-महावातराज रस २९२। महावातविध्वंसन २३०। शूलवज्रिणी वटी २३७। नीलाञ्जन भस्म ११७।

शुक्रक्षय से श्वास-पूर्णचन्द्रोदय १२९। वसन्तकुसुमाकर २४३। बृहद्वंगेश्वर २४६।

मलशुद्धि अर्थ-आरोग्यवर्द्धिनी २५०। गोमूत्रक्षार चूर्ण ३३५।

विष को मूत्रद्वारा निकालने के लिये-शिलाजीत ३२।

अतिसार में श्वास-सुवर्ण पर्पटी १४८। पञ्चामृत पर्पटी १५१।

(९९) सन्निपात (ज्वर में देखें)

(१००) संग्रहणी (ग्रहणी में देखें)

(१०१) सुजाक-प्रमेह (पूयमेह में देखें)

(१०२) सेन्द्रिय-विषवृद्धि

सूतशेखर २६९। कामदुधा रस २२३। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। भृंगराजासव ३८२। सरिवासव ३८१। चन्द्रप्रभा वटी ३११। शुद्ध शिलाजीत ३२ नागभस्म ६५।

(१०३) स्त्री रोग

श्वेतप्रदर-वंगभस्म ५७। त्रिवंगभस्म ६२। नागभस्म ६५। सुवर्णवंग १३६। सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। प्रवाल भस्म ९३। संगजराहत ११०। सुवर्णमालिनीवसंत १८१। मधुमालिनी १८४। लघुमालिनी १८५। बोलबद्ध रस २००। प्रदरान्तक लोह २७६। प्रदरान्तकरस २७७। प्रदरारि रस २७७। दार्व्यादि क्वाथ ३५५। स्त्रीगदान्तक अर्क ३८९। मधुयष्ट्याद्यवलेह ३९७।

वातपित्तज श्वेत प्रदर-वंगभस्म ५७।

पित्तज श्वेत प्रदर-गोदन्ती भस्म ८३।

रक्तप्रदर-गोदंती भस्म ८३। प्रवालपिष्टी ९४। वंगभस्म ५७। शुभ्राभस्म ११४। बोलपर्पटी १५१ बोलबद्ध २००। चन्द्रकला २११। कामदुधा २२३। प्रदरांतक लोह २७६। सर्वाङ्गसुन्दर २८५। प्रदरांतक वटी ३१८। प्रदरांतक चूर्ण ३४१। चन्दनादि चूर्ण ३४१। दार्व्यादिक्वाथ ३५५। स्त्रीगदांतक अर्क ३८९। अशोकारिष्ट ३७८। दूर्वादि घृत ४१५। मधुष्ट्याद्यवलेह ३९७। गोक्षुरादि गुग्गुलु + बंगभस्म + प्रवालपिष्टी मिश्रण लोध्रासव + अरविन्दासव + सारस्वतारिष्ट। चन्द्रकला सह अशोकारिष्ट ३७८।

मासिक धर्म में अति रक्तस्राव-चन्द्रकला २११ + अशोकारिष्ट ३७८। जहरमोहरा भस्म १०२। आरोग्यवर्द्धिनी २५० और चन्द्रप्रभा ३११ (अमलतास के गुदा के साथ)

मानसिक लालसाजनित प्रदर-प्रदरारि रस २७७।

सोमरोग-हेमनाथ रस २४२। बृहद्वंगेश्वर २४६। जातिफलादिवटी २४८। महावातराज रस २९२। बृहद्धात्री घृत ४१३ वंगभस्म ५७।

जीर्णप्रदर-मण्डूर ७२। वसन्तकुसुमाकर २४३। सुवर्णमालिनी वसन्त १८१। लोहभस्म ५३।

बालक के स्तनपान से-सुवर्णमालिनी और प्रवालपिष्टी, कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म ११३।

श्वेतप्रदर जनित-सुवर्णवंग + सुवर्णमाक्षिक + गोदन्तीभस्म मिश्रण।

जीर्ण अपचनसह प्रदर-बोलबद्ध २००। प्रदरारि रस २७७। सुवर्णमालिनी वसन्त १८१। लघुमालिनी वसन्त १८५।

बहुमूत्र, मूत्रदाह और प्रदर-बोलबद्धरस २००। चंद्रप्रभा ३११।

शूलसह प्रदर–प्रदरान्तक लोह २७६। प्रदरान्तक रस २७७।

सुजाकजनित दाहयुक्त प्रदर–गन्धक रसायन २२५।

सगर्भा के गर्भाशय में वातप्रकोप–ताप्यादिलोह २०६ स्मृतिसागर २९९।

सुजाकजनित गर्भाशय शोथ–प्रवालपिष्टी ९४। बनपशाशर्बत ४०६।

चंद्रांशु रस २८१। प्रदरांतक रस २७७। चन्द्रप्रभा वटी ३११।

गर्भाशय की शिथिलता–चन्द्रप्रभा वटी ३११। अभ्रकभस्म ७५ और नागभस्म ६५। नतादि तैल ४२२।

बीजाशय की वृद्धि न होना–पुष्पधन्वा रस २८८। पूर्णचन्द्रोदय १२९। सारस्वतारिष्ट ३७४। त्रिवंगभस्म ६२।

गर्भाशय विकृति–वंगभस्म ५७। त्रिवंगभस्म ६२। प्रदरान्तकलोह २७६। लघुमालिनीवसन्त १८५। चन्द्रप्रभावटी (उष्णता हो, तो बनप्शा के साथ) ३११। स्त्रीगदान्तक अर्क ३८९। माजूनकचूर ४०२।

अनार्तव, नष्टार्तव और पीड़ितार्तव–मण्डूरभस्म ७२। वंगभस्म ५७। बोलपर्पटी १५१। बृहद् योगराज गूगल २३३। रज: प्रवर्त्तक क्वाथ ३५६। कुर्मायासव ३६९। रज: प्रवर्त्तनी वर्ति ४४० कासीसादि वटी ३१७। रज: प्रवर्त्तक चूर्ण ३४२। प्रदरान्तक रस २७७ देवदार्वाद्यरिष्ट ३८४। सारस्वतारिष्ट ३७४।

अत्यार्तव (मासिक धर्म ज्यादा आना)–मुक्तापिष्टी ९२। बोलपर्पटी १५१। तृणकांतमणि पिष्टी १०३। उशीरासव ३७१। बोलबद्ध रस २००। अशोकारिष्ट ३७८।

अनियमित रजोदर्शन–ताप्यादिलोह २०६। फलघृत ४१०।

गर्भाशय और वस्ति में शूल–वंगभस्म ३७। प्रदरांतकलोह २७६। बृहद् योगराजगूगल २३३। अशोकारिष्ट ३७८। देवदार्वाद्यरिष्ट ३८४। चन्द्रांशुरस २८१। अशोकघृत ४१३। फलघृत ४१०। मधुयष्टयाद्यवलेह ३९७। बोलबद्धरस २००।

बंध्यत्व–वंगभस्म ५७। त्रिवंगभस्म ६२। फलघृत ४१०। पुष्पधन्वारस २८८। दशमूलारिष्ट ३६७।

योनिदाह मैथुनासह–मुक्तापिष्टी ९२। प्रवालपिष्टी ९४

सूतिका रोग–सामान्य ज्वर धनुर्वात रौप्यभस्म ४७। ताप्यादिलोह २०६। हिंगुलरसायन २३८। सूतिकाभरण रस २९८।

तीव्रकफात्मक ज्वर–कालकूट रस १७२। प्रतापलंकेश्वर २७९। दशमूलारिष्ट ३६७।

कफात्मक सामान्य ज्वर–अमरसुन्दरी २३०।

प्रसव होते समय वेगशमन हो जाना–बृहद्योगराज गूगल २३३।

सन्निपात–हेमगर्भपोटली रस १६८।

हृदय शूल–लक्ष्मीविलास रस अभ्रक १७६।

अतिसार मक्कल शूल–जीरकाद्यरिष्ट ३७९। लक्ष्मीनारायण १७३। सूतशेखर २६९।

कफवृद्धि–प्रतापलंकेश्वर रस २७९।

मक्कल शूलसह ज्वर–महावात विध्वंसन २३०। दशमूलक्वाथ ३४९। देवदर्वाद्यरिष्ट ३८४। बृहद्योगराज गूगल २३३। प्रतापलंकेश्वर रस २७९

धनुर्वात, कम्प, श्वास, कास, दांतभिंच जाना–कस्तूरीभैरव १५८। कालकूट रस १७२। प्रतापलङ्केश्वर २७९। देवदार्वादि क्वाथ ३५३।

धनुर्वात आदि लक्षण सौम्य हो तो–सूतिकाभरण २९८।

आक्षेप और पित्त प्रधानता हो तो–ताप्यादि लोह २०६।

वातकफ जड़ता लक्षण हो तो–सूतिकारी रस २८०।

कफप्रधान जड़ता बेहोशीसह धनुर्वातपर–कालकूट १७२।

दाह, तृषा, धनुर्वात प्रलाप आदि–लक्ष्मीनारायण रस १७३। सूतशेखर रस २६९।

मानस उन्माद–रौप्यभस्म ४७।

जीर्णज्वर, उदरशूल, शोथ, तृषा–सूतिकारिरस २८०। प्रतापलंकेश्वर रस २७९। लक्ष्मीविलास रस १७९।

दूषित रक्त का स्राव करना–बोलपर्पटी दूसरी विधि १५१। कुमार्यासव ३६९। प्रतालंकेश्वर रस २७९।

शीर्षशूल–प्रतापलंकेश्वर रस २७९। महावातविध्वंसन २३०। दशमूलारिष्ट ३६७।

फिरंग अनुबन्ध से बालक मर जाना–अष्टमूर्तिरसायन १४२। गन्धक रसायन २२५। प्रवालपिष्टी ९४।

वातप्रकोप–सौभाग्य शुण्ठिपाक ३९१। शुंटयादि पाक ३९१। दशमूल क्वाथ ३४९। दशमूलारिष्ट ३६७।

पाण्डुता और शोथ पर–मण्डूर भस्म ७२। पुनर्नवामण्डूर २५८।

आमशूल प्लीहा वृद्धि, ज्वरातिसार–लोहपर्पटी १५०। पंचामृत पर्पटी १५१। दशमूलारिष्ट ३६७।

स्तन्यविकृति–स्तन्यशोधक क्वाथ ३५६। सोभाग्यसुण्ठी पाक ३९१।

स्तन्यवृद्धि–जीरकाद्यरिष्ट ३७९।

रुकी हुई जेर गिराना–सिद्धार्थादि तैल ४२१।

जीर्ण अतिसार और ग्रहणी–सर्वांगसुन्दर रस २८५। पञ्चामृत पर्पटी १५१। जीरकाद्यरिष्ट ३७९।

गर्भस्राव और गर्भपात–गर्भपाल रस २७८। वंगभस्म और गर्भपाल २७८। प्रवालपिष्टी ९४। त्रिवंगभस्म ६२।

गर्भपात के पश्चात् पीड़ितार्तव–सूतशेखर २६९।

योनि रोग (विप्लुता 'परिप्लुता' वातुलादि) धातक्यादि तैल ४२२। नतादि तैल ४२२।

कमल और योनि की शिथिलता–शुभ्राभस्म ११४।

योनिकण्डू–फिटकरी ३७। शुभ्राभस्म १४४।

सगर्भा के रोग–ज्वर–मधुरान्तक वटी १७५। गिलोयसत्व २४।

गोदन्तीभस्म ८३। प्रवालपिष्टी ९४। किरातादि अर्क ३८८।

जीर्णज्वर–सुवर्णमालिनी वसन्त १८१। लघुमालिनी १८५।

पाण्डु और निर्बलता–मण्डूरमाक्षिक ७५। गर्भचिन्तामणि रस २७८ सितोपलादि+अभ्रकभस्म+प्रवालपिष्टी मिश्रण। मधुमालिनी १८४।

अस्थिक्षीणता–प्रवालपिष्टी ९४। गिलोयसत्व २४ और सितोपलादि ३२८। मधुमालिनी १८४।

गर्भ का शोषण–उपविष्टक नागोदर–मधुमालिनी १८४।

वमन और कास–प्रवालपिष्टी ९४। गर्भपालरस २७८। गर्भचिन्तामणि रस २७८। कामदुधा रस २२३।

अतिसार–अभ्रपर्पटी १५४।

बालक जल्दी कमजोर होना या जल्दी मर जाना–गर्भचिन्तामणि रस २७८। गर्भपाल रस २७८।

(१०४) स्नायुविकृति

स्नायु संकोच–लोहभस्म ५३। ताप्यादि लोह २०६। प्रवालपिष्टी ९४। स्नायुओं की निर्बलता–मण्डूरमाक्षिक ७५। लोहभस्म ५३। कुक्कुटाण्डत्वक्भस्म ११३। बृहद्योगराज गूगल २३३। त्रैलोक्यचिन्तामणि रस १६५।

(१०५) स्नायु नारु (Guinea Worm)

मल्लभस्म १०६। शंखभस्म १०१।

(१०६) स्वेदवृद्धि

उष्णपेयादि स्वेदवृद्धि–प्रवालपिष्टी + सितोपलादि चूर्ण मिश्रण।

(१०७) हलीमक (पाण्डु रोग में देखें)

(१०८) हारिद्रक (पाण्डु रोग में देखें)

(१०९) (हिक्का हिचकी Hiccup)

हिक्कान्तक रस २२१। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। ताम्रभस्म ४९। सूतशेखर २६९। विजयापुष्पाद्यवलेह ३९९। कनकासव ३७२।

(११०) हिस्टीरिया (वातरोग के भीतर अपतन्त्रक में देखें)

(१११) हृदयरोग (Deseases of the heart)

हृदयेन्द्रिय की निर्बलता–अभ्रक भस्म ७५। अर्जुनारिष्ट ३७३। माणिक्यभस्म ८८। संगेयसवपिष्टी १०९। लक्ष्मीविलासरस १७६, २१४। सुवर्णभस्म ४४। अकीकभस्म १०२। मुक्तापिष्टी ९२। खमीरा मरवारीद ४०३। माजून नुकरा ४००। खमीरा जमुर्रद ४०४। नागाजुनाभ्र ३०६।

रक्त की निर्बलता से–सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। त्रिफलारिष्ट ३७३। गाजर का अर्क ३८८। लक्ष्मीविलास सुवर्ण २१४। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। लोहभस्म ५३। मण्डूर भस्म ७२। वसन्तकुसुमाकर रस २४३।

हृदयावरण शोथ–प्रभाकर वटी २४१। लक्ष्मीविलास २१४। आरोग्यवर्द्धिनी २५०। त्रिनेत्र रस २४२। खमीरा मरवारीद ४०३।

फुफ्फुस शोथसह–अर्जुनारिष्ट ३७३। शृंङ्गभस्म १०७ और स्वर्णमाक्षिकभस्म ६९। नागार्जुनाभ्र ३०६।

पित्तप्रकोपजन्य–(घबराहट) संगेयसवपिष्टी १०९। दवाउलमुश्क ४००। खमीरे गावजवां ४०२। खमीरे गावजवां अम्बरी ४०२। मुक्तापिष्टी ९२। प्रवालपिष्टी ९४। कामदुधा रस २२३। प्रभाकर वटी २४१। त्रिनेत्र रस २४२। खमीरा मरवारीद ४०३।

पाण्डु से निर्बलता–लोहभस्म ५३। त्रिफलारिष्ट ३७३। ताप्यादिलोह २०६।

हृदय का वेग बढ़ना–मधुमेहादि से हो तो महावातराज २९२। जातिफलादि वटी २४८। वसन्तकुसुमाकर २४३। शिलाजीत ३२। नागभस्म ६५। संगेयसवपिष्टी १०९। अकीकपिष्टी १०२। मुक्तापिष्टी ९२। खमीरा मरवारीद ४०३। खमीरा जमुर्रद ४०४। नागार्जुनाभ्र ३०६।

अनेक रोगों से वातकफ प्रकोपज निर्बलता–पूर्णचन्द्रोदय १२९। रस सिन्दूर १३०। त्रैलोक्यचिन्तामणि १६५। वसन्तकुसुमाकर २४३।

रक्तवाहिनियों को विकसित करना–भीमसेनी कपूर २२।

आमवातज हृद्ग्रह–बृहद् योगराज २३३।

वातवाहिनियों की निर्बलता–अग्नितुण्डी वटी २०३।

हृदय से रक्त गिरना–वासावलेह ३९६। तृणकांतमणि पिष्टी १०३।

हृदय शूल–शृंगभस्म १०७। महावातविध्वंसन रस २३०। त्रैलोक्य चिन्तामणि १६५।

शुक्रक्षयजन्य हृदयसंकोच–वंगभस्म ५७। च्यवनप्राशावलेह ३९३। वसन्तकुसुमाकर २४३। अश्वगन्धारिष्ट ३७३।

(११२) क्षय-राजयक्ष्मा-तपेदिक (Phthisis)

सब समय पर हितकर–सुवर्णभस्म ४४। अभ्रकभस्म ७५ और सुवर्णभस्म ४४। वज्रभस्म ८६। माणिक्यभस्म ८८। गोमेदमणि ८९। पुष्पराग पिष्टी ९०। प्रवालपिष्टी ९४। मुक्तापिष्टी ९२। शृङ्गभस्म १०७। पूर्णचन्द्रोदय १२९। शुद्ध शिलाजीत ३२। वैक्रान्तभस्म ९१। तालसिंदूर १३४। सुवर्णभूपति रस १४१। सुवर्णमालिनी वसन्त १८१। लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त २१४। रससिंदूर और सुवर्णभस्म ४४।

निर्जन्तुक अनुलोमक्षय और प्रतिलोमक्षय–अभ्रकभस्म, शृङ्ग और प्रवाल पिष्टी मिश्रण। कासीसभस्म और लोहभस्म ५३। पुष्पराग पिष्टी ९०।

अनुलोमरस क्षय–मुक्तापिष्टी ९२। अभ्रकभस्म ७५। सुवर्णभस्म ४४। पञ्चामृत पर्पटी १५१। सुवर्ण पर्पटी १४८।

शुक्रक्षय और रजःक्षय–वंगभस्म ५७। रौप्यभस्म ४७। वंग और सुवर्णमाक्षिक भस्म ६९। वसन्तकुसुमाकर रस २४३। पञ्चामृतरस ३०१ सुवर्ण पर्पटी १४८। बंगभस्म ५७। श्रृङ्गभस्म और रससिंदूर मिश्रण।

मधुमालिनी वसन्त १८४। लक्ष्मीविलास नारदीय १७९।

मज्जाक्षय–मधुमालिनी वसन्त १८४।

ओजक्षय–मधुमालिनी वसन्त १८४। जीवंत्यादि घृत ४१२। खमीरे-गावजवाँ अम्बरी ४०२। च्यवनप्राशावलेह ३९३।

सुजाक के हेतु से मांसक्षय–रौप्यभस्म ४७।

फिरंग अनुबन्ध से क्षय–अष्टमूर्ति रसायन १४२।

उरोग्रह और उर:क्षत पीला दुर्गन्धयुक्त कफ निकलना–रससिंदूर १३०।

ताप्यादि लोह २०६। सुवर्ण और प्रवाल मिश्रण। अग्निरस २१८। लवङ्गादि तालसिंदूर २१८।

प्रसूता की क्षय–जीरकारिष्ट ३७९। सूतशेखर २६९।

रक्तगिरना (बन्द करने के लिये)–संगजराहत भस्म ११०। शुभ्राभस्म ११४। बोलपर्पटी १५१। कनकासव ३७२। द्राक्षासव ३७५। महाद्राक्षासव ३८५। च्यवनप्राशावलेह ३९३। चन्द्रकलारस २११। बालचन्द्र रस ३०३।

ज्वर और कफकास–श्रृंगभस्म १०७। द्राक्षारिष्ट ३८४। प्रवाल + श्रृंग और गिलोयसत्व २४।

सदैव उदर में गांठ और अतिसार हो तो–लोकनाथ रस २५४।

तीव्रज्वर–त्रैलोक्यचिन्तामणि १६५। गदमुरारि १७१। पञ्चामृतरस ३०१।

जन्तुओं की वृद्धि रोकने को–श्रृंगभस्म १०७। सुवर्ण, अभ्रक और श्रृगभस्म १०७। कर्कट भस्म ११७।

शुष्ककास–सुवर्णभस्म ४४। प्रवालपिष्टी ९४। सुवर्णभूपति १४१। बालचन्द्र रस ३०३। सितोपलादि चूर्ण ३२८।

तीव्रज्वरसह अतिसार–गदमुरारि रस १७१। बालचन्द्र रस ३०३।

स्वरभंग–जसदभस्म ६३। (वमनसह कर्पूराद्य चूर्ण ३३६)।

स्वरभेद, पार्श्वशूल, पीनस, शिरदर्दादि उपद्रव–षडंग यूष ३५८। च्यवनप्राशावलेह ३९३। सिलोपलादि अवलेह ३९५।

अग्निमान्द्य–चविकासव ३८०।

अधिक प्रस्वेद को घटाने के लिए–कनकासव ३७२। शिलाजीत-मिश्रित जसदभस्म ६३। शुभ्राभस्म ११४।

वमन–शुभ्राभस्म ११४। बालचन्द्र रस ३०३

उपद्रवरूप वातप्रकोप, मूर्च्छा या उन्माद–योगेन्द्र रस ३०३। सूतशेखर २६९।

दाह–रौप्यभस्म ४७। जसदभस्म ६३। तार्क्ष्यभस्म ८९। मुक्तापिष्टी ९२। प्रवालपिष्टी ९४। महामृगांक रस २१३।

स्नायु और मांस की निर्बलता–नागभस्म ६५।

पेशाब में पीलापन–चन्दनादि अर्क ३८६। शिलाजतु ३२।

मालिश के लिये–चन्दनबलालाक्षादि तैल ४१६। चन्दनादि तैल ४१६।

नारायण तैल ४१९ लाक्षादि तैल ४१९।

शक्ति संरक्षणार्थ–च्यवनप्राशावलेह ३९३। बालचन्द्र ३०३। हेमगर्भपोटली (दूसरी विधि) १६८।

वातप्रकोप–शिलाजतु ३२।

(११३) क्षुद्ररोग

बल्मीक–निम्बादि तैल ४१९। मन: शिलादि तैल ४२१।

दारुणक, अंरुषिका और इन्द्रलुप्त–भृङ्गराज तैल ४२०। दारुणक नाशक मलहम ४३४।

गुदभ्रंश–चाँगेरी घृत ४१४। कनकसुन्दर + पञ्चामृत पर्पटी १५१। शुभ्राभस्म ११४।

गुदद्वारकंडू, गुदद्वारविदारण–गन्धक ३०।

गुदनलिका संकोच–गन्धक ३०।

माँसग्रन्थियां निकलना–ताम्रभस्म ४९।

चर्मकील–सुवर्णवङ्ग १३६।

दुष्टग्रन्थि बद आदि–प्रतिसारणीय क्षार ४३०।

अंगुली पाक (चिप्य)–अंगुलीपाकहर लेप ४३०।

अंजननामिका–अंजननामिकाहर लेप ४३०।

तारुण्य पिटिका, मुखदूषिका मुंहासे–तुत्थादि लेप ४३०। चन्द्रप्रभा उबटन ४४०। रक्तशोधक शर्बत ४०५। प्रवालपिष्टी ९४। गन्धक ३०।

विपादिका हाथ पैर की चमड़ी फटना–गुलाबीमलहम ४३३। शिर:शूलान्तक मलहम ४३६।

शिशुओं की रस ग्रन्थियां–जसद भस्म ६३।

अहिपूतना (Pruritus Ani) बालकों की गुदापकना–कासीसादि लेप ४३१। चर्मरोगनाशक तैल ४१८। निम्बादि मलहम ३३८।

वृषण कच्छू अण्डकोष की खुजली–चर्मरोगनाशक तैल ४१८। कासीसादि लेप ४३१। पामाहर मलहम ४३४। व्रणामृत श्वेत मलहम ४३३।

उदरकृमिजनित नख विकृति–श्रृंगभस्म १०७।

पादतल में दाहशोथ–राल का मलहम ४३२।

फिरङ्गजनित नख विकृति–श्रृंगभस्म १०७।

पारिभाषिक शब्दों की सूची

अग्निमाँद्य	Anorexia
अग्न्याशय	Pancreas
अणुभवन क्रिया	Construction of Elements
अत्यधिक वमन	Hyperemesis
अञ्जननामिका	Stye
अण्डकोष	Testicles
अण्डकोष वृद्धि	Orchitis
अतत्वाभिनिवेश	General paralysis of the insane, dementia paralytica
अजीर्ण	Dyspepsia
अतिसार	Diarrhoea
अधिजिह्वा	Epiglottis
अधिमन्थ	Glaucoma
अधिमांस	Polypus
अनावश्यक तृषा	Dipsosis
अन्तस्त्वचा (श्लैष्मिक कला)	Mucous Membrane
अन्तः प्राचीराधमनी का मध्यावरण	Tunica Intima
अन्तः स्रावी ग्रन्थि	Internal Secretory gland
अन्त्र पुरः सरण	Intestinal peristalsis
अन्त्र क्षय	Intestinal Tuberculosis
अन्त्र क्षोभ	Intestinal Spasm
अन्त्र पुच्छ	Appendix
अन्त्र पुच्छ प्रदाह	Appendicitis
अन्त्र पुच्छ विद्रधि	Suppurative Appendicitis
अन्त्र व्रण (अन्त्रक्षत)	Intestinal Ulcer
अन्त्र विद्रधि	Intestinal Abscess
अन्त्रवृद्धि (अन्त्रावतरण)	Inguinal Hernia
अनुलोम क्षय	Sprue
अनैच्छिक क्रिया	Involuntary action
अपची	Tuberculous adenitis
अपतन्त्रक	Hysteria
अपतानक (धनुर्वात)	Tetanus
अपस्मार	Epilepsy
अब्धातु (लसीका, रसधातु)	Lymph
अभिघात	Trauma
अभिष्यन्द (आँख आना)	Coujunctivitis
अम्लपित्त	Hyperacidity
अरुचि	Loss appetite for food
अर्दित	Facial paralysis
अर्धावभेदक	Hemicrania
अर्म (नेत्ररोग-बल)	Pteygium
अलसक (उदर रोग)	Atonic Dyspepsia
असलक (कुष्ठ भेद)	Lichen ruber
अवबाहुक	Paralysis of arm
अश्मरी	Calculus
अष्ठीला (पौरुष ग्रन्थि)	Prostate gland
अष्ठीला प्रदाह	Prostatitis
अस्थिमार्दव (अस्थिशोष)	Rickety
असृाभिनोदन (रक्त दबाव)	Blood Pressure
अस्थिव्रण	Sinus leading to bone
अहिपूतना	Pruritus ani
आध्मान	Tympanites
आन्तरिक रोग क्षमता	Immunity
आन्त्रिक ज्वर	Typhoid Fever
आमप्रकोपज शूल	Pain in Abdomendue to Indigestion
आमवात	Rheumatism
आमातिसार	Mucous Colitis
आमाशय	Stomach
आमाशयस्थ पित्त	Gastic Juice
आसन्न दृष्टि	Short sight Myopia
आक्षेप	Convulsions
इक्षुमेह	Glycosuria
उदक मेह	Diabetes Insipidns
उदर ग्रन्थि	Tumour in Abdomen
उदरगुहा पतन	Visceroptosis
उदावर्त (अन्त्रनिरोधज)	Intestinal Obstruction
उदावर्त (वातप्रकोपज)	Colic due to gassing
उन्डुक	Coecum
उन्माद	Mania

उपजिह्वा (काकलक)	Uvula
उष्णता (उत्ताप)	Temperature
उरस्तोय	Pleurisy
उरुस्तम्भ	Paraplegia
एक कुष्ठ	Ichthyosis
कटिग्रह	Lumbago
कण्ठमाला	Scrofula
कण्ठरोहिणी	Diphtheria
कण्ठशालूक	Tonrillitis
कण्डरा	Tendon
कच्छू	Scabies
कदर (कठोर चर्म)	Corn
कनीनिका (नेत्र के द्वितीयपटल का छिद्र)	Pupil
कर्कटार्बुद (कर्क स्फोट)	Cancer Carcinoma
कर्णस्राव	Otorrhaea
कलायखञ्ज	Locomotor ataxia
कक्षा ग्रन्थि	Herpes zoster
कामला	Jausice
काली खांसी	Whooping Cough
कास	Brochitis
किट्टिभ	Dry Eczema
कुकूणक	Phlyctenule
कुम्भ कामला	Passive Congestion of the liver
कुक्ष्युदर (उरस्तोय)	Pleurisy
कृमि	Worms
कृष्ण ज्वर	Black Fever
क्लैब्य	Sexual Debility
कोथ	Gangrene
कोष्ठ (उदरगुहा)	Abdomen
क्रोष्टुकशीर्ष	Synovitis of knee joint
गर्भपात	Abortion
गर्भवात	Eclampsia
गलगंड	Goitre
गलत् कुष्ठ	Anesthetsc Leprofy
गलशुण्डिका प्रदाह	Uvulitis
गलौंघ	Croup
गवीनी	Ureter
गाद	Sediment
गुदत्रिवली	Sphinetors
गुद नलिका	Rectum
गुद नलिका पाक	Proctitis
गुद भेदन	Fissure of the Anus
गुद शुक	Condyloma
गृध्रसी	Sciatica
ग्रन्थि ज्वर	Plague
ग्रन्थि पूय	Pus in gland
ग्रन्थिक सन्निपात	Plague
ग्रहणी	Duodenum
घटक	Tissue
घंटिका (काकलक)	Uvula
चक्कर (भ्रम)	Giddiness Vertigo
चयापचय	Metabolism
चर्मदल	Erythema Nodosum
चेतना ह्रास	Apsychia
छोटी माता	Chicken pox
जलसन्त्रास (श्वान विषज उन्माद)	Hydrophobia
जलोदर	Ascites
तमक श्वास	Asthma
तालुव्रण	Ulcer in palate
तीव्र अवस्था	Acute stage
त्रिदोषज रक्तपित्त	Purpura
दद्रु	Ringworm
दन्त वैष्ट (पूयमय)	Pyorrhoea Alveolaris
दन्त शूल	Tooth-ache
दन्तोद्भेद	Teething
दाह (हृदय का)	Cardialgia. Pyrasis
दूर दृष्टि Farsightedness	Hyperopia.
धमन्यर्बुद	Aneurysm
धातुपरिपोषण क्रम	Metabolism
धारणा (रोग निरोधक शक्ति)	Immunity

नकसीर (नासारक्त)	Epistaxis
नष्टार्तव	Amenorrhoea
नाड़ी व्रण	Fistula
निद्रानाश	Insomnia
निद्रा में मूत्रस्राव	Enuresis Nocturena
निर्बलता	General debility
निरीन्द्रिय औषधि	Inorganic Drugs
निर्जंतुक क्षय	Simple Atrophy
नृत्यवात	Chorea
नेत्रव्रण	Corneal Ulcer
नेत्रार्बुद	Tumour in Eye
पक्वाशय (लघुअन्त्र)	Small Intestine
पचन संस्थान	Alimentary or digestive system
परिवर्तित ज्वर	Relapsing Fever
पक्ष्म व्रण	Ulcer in Eyelids
पक्ष्मशात (पलक से जल गिरना)	Blepharitis
पक्षाघात (अवबाहुक)	Hemiplegia
पाचक रस	Gastric Juice
पाण्डु	Anaemia
पाद दाह	Burning sensation of the feet
पामा	Pruritus Intense Itching
पाषाण गर्दभ (कर्णमूल शोथ)	Mumps
पिच्छिल त्वचा (श्लैष्मकला)	Mucous Membrane
पित्ताशय	Gall Bladder
पिष्टमेह	Chyluria
पिंड	Lobe
पीड़ितार्तव	Dysmenorrhea
पीनस	Oxaena
पीनस	Purulent rhinitis Chronic Nasal Catarrh
पूयमय रक्त (पूयज ज्वर)	Pyaemia
पूय मेह (पूय शुक्र सुजाक)	Gonorrhoea
पूय वृक्क	Suppurative Nephritis
पूयाभिष्यंद, पूययुक्त चक्षु प्रदाह	Purulant Conjuctivitis
पोथकी (रोहे)	Trachoma
पुरः सरण	Peristalsis
पुरीतती (हृदयावरण)	Pericardium
प्रतिविष	Antidote
प्रतिश्याय	Coryza
प्रदाह (शोथयुक्त)	Inflammation
प्रमेहपिटिका	Carbuncle
प्रलाप	Delirium
प्रलापक सन्निपात	Typhus Fever
प्रवाहिका	Dysentery
प्रस्वेद	Perspiration
प्लीहा	Spleen
प्लीहा वृद्धि	Enlargment of spleen
फलवाहिनी (बीजस्रोत)	Fallopian tube
फिरंग	Syphilis
फुफ्फुस सन्निपात	Pneumonic fevr
फुफ्फुसावरण	Pleura
फुफ्फुसावरण शोथ	Pleurisy
फोड़ा	Boil
बढ़ी हुई तृषा	Polydipsia
बद्धोदर	Intestinal obstruction
बस्ति (मूत्राशय)	Bladder
बस्ति प्रदेश	Pelvic Regsion
बस्ति मूत्रपिंड (अष्ठीला, पौरुष ग्रन्थि)	Prostate gland
बस्तिप्रदाह	Cystitis
बहुमूत्र	Polyuria
बाधिर्य	Deafness
बाल धनुर्वात, बाल आक्षेप	Infantile Convulsions
बालग्रह	Infantile Eclampsia
भगंदर	Anal fistula
भ्रम	Vertigo
मक्कल शूल	After-pains
मज्जा	Bone-marrow
मदात्यय	Alchoholism
मन्यास्तम्भ	Steff neck
मल में रक्त आना	Malaena

मस्सा (मशक)	Worts
महा कुष्ठ	Leprosy
महाधमनी	Aorta
महाप्रचीरा पेशी	Diaphragm
मानस व्यग्रता	Confusion
मानस विषाद	Melancholia
मानस शास्त्र	Psychology
मुख पाक	Stomatitis
मूकत्व	Aphonia, Syncope
मूर्च्छा	Fainting
मूत्रकृच्छ्	Dysuria
मूत्र नलिका	Urethra
मूत्र पिंड (वृक्क)	Kidney
मूत्रवह स्रोत	Ureter
मूत्रविबन्ध	Retention of urine
मूत्रातिसार	Polyuria
मूत्राशय	Bladder
मूत्रोत्सर्ग क्रिया	Micturition
मृद्वस्थि रोग	Rickets
मेदोवृद्धि	Obesity
मोतीझरा	Typhoid fever
मन्दाग्नि(अजीर्ण)	Dyspepsia
माँस ग्रन्थि (मांसार्बुद)	Sarcoma
माँस घटक	Muscular Tissue
यकृत्	Liver
यकृद्दाल्युदर	Cirrhosis of liver
यकृत्पित्त	Bile
यकृत्प्रदाह (शोथ)	Hepatitis
योनिकण्डू	Pruritus-valvae
यौवनपिटिका	Acne
रक्तकण	Red corpuscles
रक्तकणिका	Blood platelets
रक्तपित्त	Hemorrhagic Diseases
रक्त वाहिनियाँ	Arteries and Veins
रक्त मेह (मूत्र में रक्त आना)	Haematuria
रक्त में मूत्रविष वृद्धि	Uraemia
रक्तसंग्रह	Congestion of Blood
रक्ताभिसरण	Blood circulation
रक्तसंग्रह निष्क्रिय	Passive congeston
रजस्रावाधिक्य	Menorrhagia
रतौंधी	Night Blindness
रस क्षय (संग्रहणी)	Sprue
रसवह ग्रन्थि (रसोत्पादक पिंड)	Lymphatic gland
रसवहन संस्थान	Lymphatic System
रसवह पिंड	Lymphatic node
रसवाहिनी	Lymphatics
रसाँकुरिकाऐं	Villi
राजयक्ष्मा	Phthisis T.B.
राजिका	Lichen-planus
रोग निरोधक शक्ति	Immunity
रोमांतिका	Measles
लघु मस्तिष्क	Cerebellum
लसिका	Lymph
लसीका मेह	Albuminuria
लाला पिंड	Salivary gland
वातकफ ज्वर	Influenza
वातनाड़ी संस्थान	Nervous System
वातबस्ति (मूत्रावरोध)	Retention of urine
वातरक्त	Gout
वातवह नाड़ी केन्द्र	Nervous Centre
वातवाहिनी	Nerve
वातश्लेष्मक सन्निपात	Influenza
विचर्चिका	Weeping Eczema
विजातीय द्रव्य	Foreign Substanee
विद्रधि	Abscess
विषम ज्वर	Melarial fever
विसर्प	Erysipelas
विसूचिका (कॉलेरा)	Cholera
वृक्क (गुरदा)	Kidney
वृक्क शूल	Renal colic
नेत्र व्रण शुक्र (फूला)	Cornal Ulcer
श्लीपद	Elephantiasis

श्वसनक (श्लैष्मिक) सन्निपात	Pneumonia
श्वासकेन्द्र	Respiratory Centre
श्वासावरोध	Dyspnaea
श्वासरोग कष्ट से 'श्वासौच्छवास होना'	Dyspnoea
श्वेत कुष्ठ	Leucoderma
श्वेत प्रदर	Leucorrhoea
शिर:शूल	Sever headache
शीतपित्त	Urticaria
शीतला	Small Pox
शुक्रमेह	Spermaterrhoea
शुक्रवाहिनी	Vas deferons
शेषान्त्रक प्रदाह	Regional lleits
शूल	Colic
शोफ (श्वयथु)	Dropsy
श्रोणि गुहा	Pelvic Cavity
स्तन शोथ	Mastitis
स्तन्यशिशु (दूध पीने वाला बालक)	Lactation
स्नायुक (नाहरू)	Guinea worm
स्नायु रज्जु	Ligament
स्मृति विकृति	Psyeholepsy
स्वप्नदोष	Natural emission
स्वरभेद	Hoarseness
स्वेद पिंड	Sweat gland
स्त्रीअण्डकोष (बीजाशय)	Ovary
स्रोत	Dust
सगर्भावस्था	Pregnancy
सतत ज्वर	Intermittent fever
सन्यास	Coma Apoplexy
सर्वसर (मुखपाक बालकों का)	Aphthae Thrush
सर्वांग शोथ	General Anasarea
सहस्रार	Cerebrum
सहस्रारावरण	Meninges
सिक्तामेह	Uric acid in Urine
सिरा	Vein
सुजाक	Gonorrhoea
सुप्तकुष्ट (कापालकुष्ठ)	Anesthetic leprosy
सूतिका ज्वर	Puerperal fever
सेन्द्रिय औषधि	Organic drug
सेन्द्रिय विष	Toxin
संचालक वातनाड़ी	Motor Nerve
सम्वेदक वातनाड़ी	Sensory Nerve
संग्रहणी	Sprue chronic diarrhoea
संतत ज्वर	Remittent fever
हारिद्रक	Chlorosis
हृत्पटल	Cardiac volve
हृत्स्नायु	Cardiac ligament of bundle of His
हृत्स्पंदन	Palpitation
हृदयाधरिक प्रदेश	Epigastric Region
हृदय केन्द्र	Cardio inhibitory center
हृदयशूल	Cardiac pain
हृन्नाड़ी	Cardiac nerves
हस्ति मेह	Enuresis
हिक्का	Hiccup
क्षत,व्रण	Ulcers
क्षतौदर	Ulceration of the Intestine
क्षारमेह	Phosphaturia

सम्पूर्ण

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन [ध.ट्र.] द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

क्र.सं.	ग्रन्थ का नाम	मूल्य
1.	रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह (प्रथम खण्ड)	335.00
2.	रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह (द्वितीय खण्ड)	124.00
3.	रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह (प्रथम खण्ड) गुजराती	प्रकाशन में
4.	चिकित्सा तत्व प्रदीप (प्रथम खण्ड)	185.00
5.	चिकित्सा तत्व प्रदीप (द्वितीय खण्ड)	215.00
6.	नेत्र रोग विज्ञान	250.00
7.	सिद्ध परीक्षा पद्धति (प्रथम खण्ड)	120.00
8.	गांवों में औषधरत्न (प्रथम खण्ड)	45.00
9.	गांवो में औषधरत्न (द्वितीय खण्ड)	85.00
10.	गांवो में औषधरत्न (तृतीय खण्ड)	90.00
11.	रसहृदयतन्त्रम्	55.00
12.	रसोपनिषद् (प्रथम खण्ड)	87.00
13.	नित्योपयोगी चूर्ण संग्रह	23.00
14.	नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह	27.00
15.	नित्योपयोगी गुटिका संग्रह	प्रकाशन में
16.	रसशास्त्र प्रवेशिका	40.00
17.	रसतत्व विवेचन	55.00
18.	ज्योतिष से रोग निदान	48.00
19.	धन्वन्तरि कथा दर्श:	15.00
20.	वृहद् सूची पत्र	प्रकाशन में
21.	औषध गुणधर्म विवेचन	प्रकाशन में